प्रथमवार . २०००

मूल्य

पच्चीस रुपए

बैसाख. संवत् २०११

प्रकाशक ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया, जिला गंगानगर (राजस्थान)

मुद्रक हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, २७ शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली

समर्पण

भारत की अनेक धार्मिक संस्थाओं के प्राण और इस युग में भामाशाह की प्रतिमूर्ति तथा भारत व भारत से अन्यत्र हिन्दु, बौद्ध, सिख आदि सभी को सिख-गुरुओं, एवं देश के अन्य ऋषि-मुनियों और साधु-सन्तों द्वारा मर्यादित परम्परा की अनुराग, अबाध्य, अकाट्य पवित्र-पावन-धारा में बहते देखने के इच्छुक

श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिरला

के कर-कमलों में

सादर, सप्रेम और निष्ठा-पूर्वक समर्पित

सिख-इतिहास पर कुछ सम्मतियाँ

हिन्दी-जगत मे सुपरिचित स्वामी केशवानन्द जी ने सिखो का महान् गौरवपूर्ण इतिहास (हिन्दी में) प्रकाशित कराया है। उससे न केवल सिख ही प्रसन्न होगे वल्कि हिन्दुओ की भी गुरु महानुभावो के आदर्श-जीवन और अमृत-मयी उपदेशों को पढकर आत्म-तुष्टि होगी।

मैं चाहता हूँ इस इतिहास का सिख और हिन्दू सभी में समान रूप से आदर और प्रचार हो। इस इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज जी भी वधाई के पात्र हैं। जिन्होंने इसे वडे परिश्रम-पूर्वक तैयार किया है।

अमृतसर

२३—४—५४

सिखों के गौरवपूर्ण इतिहास को हिन्दी में लिखकर ठाकुर देशराज जी ने हिन्दी-साहित्य की एक वड़ी कमी को तो पूरा किया ही है, साथ ही सिखों के साथ भी अहसान किया है। स्वामी केशवानन्द जी भी कम धन्यवाद के पात्र नहीं हैं जिन्होंने इतने वड़े ग्रन्थ के प्रकाशन का समस्त भार उठाया है। मैं प्रत्येक सिख से आशा करूँगा कि वह इस इतिहास को प्रत्येक घर में पहुँचाने की कोशिश करे।

पटियाला

२४—४—५४

ज्ञानसिंह राड़ेवाला

भू० पू० मुख्य मन्त्री, पेप्सू

स्वामी केशवानन्द जी को मैं निकट से जानता हूँ। उन्होने शिक्षा-प्रचार और साहित्य सवर्धन का वहुत कार्य किया है। अव उन्होंने हिन्दी में सिखों का एक मुकम्मिल इतिहास तैयार कराया है। जिसमे गुरुओ से लेकर सिख-राज्यों, सिख-शहीदो, सिख-महिलाओं और सिखो की राजनैतिक, धार्मिक एवम् सामाजिक प्रवृत्तियों का सन् १६४८ तक का विशद और सजीव वर्णन । उनके इस कार्य में शिरोमणी गुरुद्वारा प्रवन्धक कमेटी ने भी आर्थिक महायता दी है। स्वामी जी के इस प्रयत्न का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। साथ ही इसके लेखक ठाकुर देशराज जी के परिश्रम और लगन की हृदय से प्रशसा करता हूँ। मेरी इच्छा है कि प्रत्येक साहित्यिक व्यक्ति के पास और वाचनालयो मे इसकी एक-एक प्रति हो ।

जालधर

२३—४—५४

ज्ञानी करतारसिंह

भू० पू० मत्री पजाव

हिन्दी में सिखों सम्बन्धी पूरी जानकारी कराने वाली एक पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। मुझे प्रसन्नता है कि स्वामी केशवानन्द जी ने इस आवश्यकता को पूरा कर दिया है। उन्होंने हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक ठाकुर देशराज जी से हिन्दी में सिख इतिहास लिखाकर सिख और हिन्दू सभी ऐसे लोगों के साथ उपकार किया है जो भारत की बहादुराना परम्पराओं में प्रेम रखते हैं।

अमृतसर
२७—४—५४

धनवन्तसिंह गुरुदासपुरी
जैनरल सेक्रेटरी, शि० गु० प्र० कमेटी

O

राजस्थान और पंजाब की जहाँ सरहदें मिलती हैं उन फीरोजपुर, हिसार और गंगानगर जिलों में स्वामी केशवानन्द जी ने शिक्षा प्रचार और नव चेतना पैदा करने के लिये बहुत काम किया है। अब उन्होंने एक बड़ा कार्य सिखों का राष्ट्रभाषा हिन्दी में एक मुस्तनद और मुकम्मिल इतिहास तैयार कराकर किया है। इस इतिहास की छपाई और कागज तो बढ़िया है ही, किन्तु विषय, वर्णन भी बड़ा सुन्दर है। इसके लेखक ठाकुर देशराज ने इसको कई वर्ष की मेहनत से तैयार किया है। मैं चाहता हूँ प्रत्येक शिक्षण संस्था में इसकी कापी होनी चाहिये।

नई दिल्ली
४—५—५४

ज्ञानी गुरमुखसिंह मुसाफिर
प्रेजीडेन्ट—पंजाब प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी

O

हिन्दी में सिख गुरुओं और सिख शहीदों एवं सिख सूरमाओं के ऊँचे कारनामों को पूरे तौर पर बताने वाली एक पुस्तक की बड़ी जरूरत थी। मुझे खुशी है कि स्वामी केशवानन्द जी ने जो एक उत्साही और कर्मठ साधु हैं इस कमी को भी पूरा कर दिया है। हिन्दी में सिख इतिहास प्रकाशित करके उन्होंने हिन्दी भाषा की बड़ी सेवा की है और सिख और हिन्दू दोनों ही उनके इस बात के लिये उनके कृतज्ञ हैं। मैं चाहता हूँ इसकी सब जगह खपत हो जिससे इसके प्रकाशकों का उत्साह बढ़े।

नई दिल्ली
२३—४—५४

हुकमसिंह एम० पी०

O

मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है कि ठाकुर देशराज जी ने हिन्दी में सिखों का एक मुकम्मिल और मुस्तनद इतिहास लिखा है। इसके लिये हम उनके आभारी हैं (राजनैतिक कान्फ्रेंस भरतपुर में दिये गये भाषण का एक अंश)

ईश्वरसिंह मझैल
भू० पू० मन्त्री पंजाब

O

हिन्दी सिख इतिहास के सम्बन्ध में मैं हृदय से इस बात का आकांक्षी हूँ कि प्रत्येक हिन्दी पढ़े-लिखे सिख के घर इसकी पहुँच हो। इसके लेखक ठाकुर देशराज व प्रकाशक स्वामी केशवानन्द दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

जालंधर
२५—४—५४

अमरसिंह दोसान्झ
मैनेजिंग डायरेक्टर दैनिक "अकाली पत्रिका"

O

सिख गुरुओं की अमर वाणियों और सिख वीरों के महान् कारनामों की गाथायें हिन्दी जगत तक पहुँचाने का जो पवित्र काम स्वामी केशवानन्द जी ने ठाकुर देशराज से एक पूर्ण और प्रामाणिक इतिहास लिखाकर कराया है। उससे मुझे निहायत प्रसन्नता हुई है। मैं ऐसे प्रत्येक सिख और हिन्दू से जो हिन्दी जानता है, आशा करता हूँ कि इस इतिहास की एक प्रति अपने पास रखे।

दिल्ली
२—५—५४

दर्शनसिंह फेरुमान
संसद सदस्य

०

मुझे इस बात को जानकर निहायत खुशी हुई कि हिन्दी में भी सिखों का एक विस्तृत विवरण वाला इतिहास प्रकाशित हो रहा है। मैं इस प्रयत्न का हार्दिक स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि इस इतिहास को हिन्दी जगत में उचित स्थान प्राप्त होगा।

देहली
४—५—५४

बुद्धसिंह नारंग
मालिक : अखबार 'स्नेह' और "प्रीतम"

०

हिन्दी में ठाकुर देशराज जी ने जो सिख इतिहास लिखा है वह सर्वाङ्गपूर्ण और प्रमाणिक होने के साथ ही सरस भी है। मैं चाहता हूँ कि सर्व भारतीयों में वे सिख हों चाहे हिन्दू इसका अधिकाधिक प्रचार होवे।

नई दिल्ली
६—५—५४

अमरसिंह एम० ए०
सम्पादक—साप्ताहिक 'रिपब्लिक'

०

हिन्दी में सिखों का गौरव-पूर्ण इतिहास देखकर मुझे इतनी खुशी हुई जिसका इजहार नहीं कर सकता। यह एक बहुत अच्छा काम है जिसकी हरएक समझदार आदमी प्रशंसा करेगा। मैं चाहता हूँ कि सिख इसकी हजारों प्रतियाँ खरीद कर इस इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज और प्रकाशक स्वामी केशवानन्द के उत्साह को बढ़ावें।

गोपालसिंह (कौमी)

नई दिल्ली
८—५—५४

०

यह सर्वांगपूर्ण इतिहास हिन्दी साहित्य के विशेष अंग की पूर्ति करेगा। इस इतिहास में सिक्खों से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक बात का सविस्तर वर्णन है। इसे 'सिक्ख-विश्व कोश' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

—डा० बाबूराम सक्सेना, एम० ए०, डी० लिट्०
प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग

०

ठाकुर देशराज जी द्वारा लिखित हिन्दी मे 'गुरु इतिहास' तथा 'सिख-इतिहास' का मसौदा मैंने भली प्रकार पढा है। इस ग्रथ मे सुयोग्य तथा खोजी लेखक ने वह सारे ही गुण भर दिये है जोकि इतिहास में होने जरूरी हैं। हिन्दी पढी-लिखी जनता के लिये यह इतिहास एक अमूल्य वस्तु है।

ज्ञानी हरिनामसिंह 'वल्लभ'
भूतपूर्व सम्पादक, 'सिखवीर'—नई दिल्ली।

O

लेखक
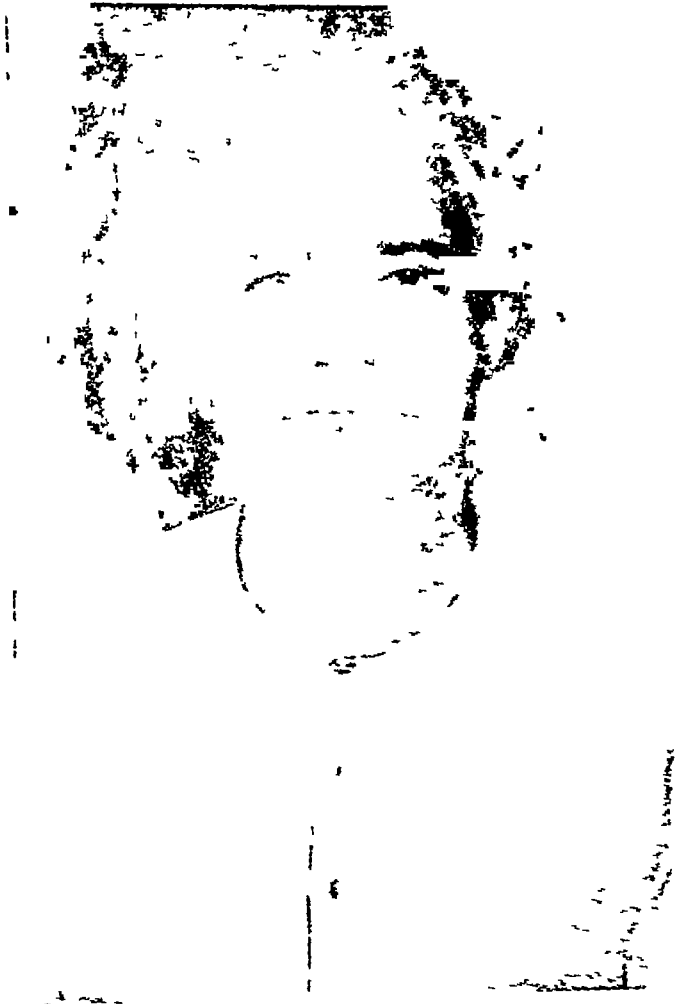
ठाकुर देशराज

भूमिका लेखक

डाक्टर गंडासिंह

भूमिका

I have read through most of the History of Sikhs in Hindi by Thakur Desh Raj and have suggested certain changes here and there I am now of opinion that it is the best book so far written on the subject in Hindi and Thakur Desh Raj deserves to be congratulated for the commendable work that he has produced It is a complete History of the Sikhs from the time of the Gurus to that of the desolution of the Sikh Empire, with an account of Sikh Institutions and customs and manners It contains also chapters on the Sikh States and prominent Jagirs

He has made a very valuable addition in the Hindi literature and the Indian public in general should be thankful to him for the service he has done to the sacred cause of national history The Sikh Community also owes him a debt of gratitude for placing their history when published, in the hands of millions of the Hindi-knowing Indians The learned author has tried to go into the spirit of the teachings of the Gurus and to express them with spirit and enthusiasm, and, to my mind, he has succeeded to a great extent,

The greatest credit is due to Swami Keshwanand, the founder of the Sahitya Sadan, Abohar for the undertaking of its publication which should be whole-heartedly helped by one and all interested in Sikh History

Sd/-Ganda Singh
Research Scholar In Sikh History
Khalsa College, Amritsar.

ठाकुर देशराज द्वारा लिखित हिन्दी सिख इतिहास का मैंने अधिकांश भाग पढा है और जहाँ तहाँ कुछ परिवर्तन के सुझाव रखे हैं। मेरी राय अब यह है कि हिन्दी में इस विषय की यह पुस्तक सर्वोत्तम है और इस प्रशंसनीय कार्य के लिए बधाई के पात्र हैं।

गुरुओं के उद्भव काल से लेकर सिख साम्राज्य के अधःपतन तथा सिख संस्थाओं व सिखों के रीति रिवाजों के वर्णन सहित सर्वाङ्गीण इतिहास है। इसके अलावा इसमें सिख राज्यों तथा महत्त्वशाली जागीरों का भी उल्लेख है।

लेखक ने इस इतिहास के द्वारा हिन्दी साहित्य में एक बहुमूल्य वृद्धि की है और इस राष्ट्रीय इतिहास के पुनीत कार्य द्वारा जो सेवा की है उसके लिए भारतीय जनता को कृतज्ञ होना चाहिए। सिख जाति उनकी ऋणी है कि उनका इतिहास प्रकाशित होकर लाखों हिन्दी भाषी लोगों के हाथों पहुँच रहा है। विद्वान लेखक ने गुरुओं की शिक्षा की तह तक पहुँचने का प्रयास किया है और मेरे ख्याल में लेखक इस प्रयत्न में बहुत दूर तक सफल हुआ है।

साहित्य सदन अबोहर के संस्थापक स्वामी केशवानन्द जी विशेष रूप से श्रेय के पात्र हैं जिन्होंने इतिहास को प्रकाशित करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है।

सिख इतिहास में रुचि रखने वाले समस्त लोगों को इस काम में उनकी हार्दिक सहायता करनी चाहिए।

ह० गण्डासिंह
अन्वेषक—सिख इतिहास विभाग,
खालसा कालेज, अमृतसर

प्रस्तावना

पंजाब प्रकृति का क्रीड़ास्थल कहलाता है। शस्य श्यामला का विशेषण भारत के लिए सत्यत. ही यहाँ लागू होता है। पजाब से अभिप्राय उस समूचे पजाब से है जिसका चित्र आज भी लोगों के हृदय में अमिट रूप से विराजमान है. ऐसा पजाब सदा ही है प्रकृति का क्रीड़ा-कौतुक रहा है, और आज भी उसका कटा हुआ अग अपनी शोभा खो नहीं बैठा है। इसी पावन भूमि पर उद्भव हुआ वेदों का गान उछलते हुए नद और नदियों की बहती हुई तरगों के साथ-साथ सारे भारत में फैला। पंजाब की भूमि का प्रत्येक कण अपने अन्दर एक इतिहास का चित्र लिये बैठा है। ज़रा सा प्रयत्न करने पर ही उसकी झलक दिखाई दे सकती है।

पंजाब को जहाँ अपने साहित्य-भडार पर और उन साहित्यकारों पर--जिनके साहित्य ने ससार को अमरता का सदेश दिया है--गर्व है, वहाँ पंजाब अपने वीरों और साधु, सन्तों पर भी स्वाभिमान करता है जिन्होंने अपने तन, मन, से इसकी समुन्नति में सहयोग दिया। यूनान के आक्रमणकारियों को विफल बनाने मे और उनकी तथाकथित सभ्यता से भारत को बचाये रखने में, इसी पंजाब ने सब से बढ़ कर भाग लिया है, यहाँ की विश्व विद्यापीठ तक्षशिला के स्नातक, चाहे वे राजनीति के स्नातक रहे हों या कृषि के। अपनी विद्या के कारण सारे ससार मे अपनी महिमा एवं चातुरी का झडा लहरा चुके हैं। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, पाणिनी, चरक आदि का नाम प्रत्येक व्यक्ति जानता है। यह सब पंजाब के सपूत थे अत इन सब पर पंजाब को गर्व है, यह भी सबको पता है कि पजाब ने कभी अपना 'पानी' नहीं खोया, वह तो सदा अपने समूचे देश के 'पानी' को न खोने देने के लिये संघर्ष करता रहा है।

इसी पंचनद की पवित्र भूमि में लगभग पौने पाँच सौ वर्ष पहले प्रभु की अमर ज्योति के सच्चे रूप श्री गुरु नानक देव जी ने जन्म लिया और उन्हीं के शिष्य (सिख) अपने तन, मन और धन से धर्म नाशकों से जूझते रहे है तथा अपना बलिदान देकर भी धर्म उद्धार में प्रवृत्त रहे हैं। स्वयं गुरु नानकदेव जी की दिव्य आँखों ने भारत का भविष्य देख लिया था इसी कारण बिना किसी भेद-भाव के सबको एक सूत्र में बांधने का क्रम उन्होंने चलाया, उनकी शिक्षाओं से अनुप्राणित शिष्यों का जो समूह संगठित हुआ वही सिख समाज के नाम से अभिहित हुआ।

श्री गुरु नानक देव जी से पहले भारत का चित्र ठाकुर देशराज जी द्वारा लिखे गये इस इतिहास में पूर्णतया अंकित है, सचमुच ऐसी ही दशा थी उस समय के भारत की यद्यपि यवनों और हिन्दुओं में एकता भाव उत्पन्न करने के लिए कबीर, रामानन्द और जायसी द्वारा प्रयत्न हुए अवश्य थे किन्तु सफलता के चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे चूँकि हिन्दू जाति अपने ऊपर से आत्म विश्वास खो बैठी थी अत इस बात की आवश्यकता थी कि उसमें नवोत्साह और आत्म-विश्वास पैदा किया जाय। नानक देव जी

ने यही किया और खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने का काम उनके दशम रूप श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने इसी बात को 'पंथ प्रकाश' मे इस प्रकार व्यक्त किया है।

"भई अधिक जब ऐम विरामी, तब विचार ईश्वर जग स्वामी।
पालन हेत सनातन नेतं, वैदिक धरम रखन के हेते।
आप प्रभु गुरु नानक रूप, प्रगट भए जग में मुख भूप।

यह शब्द स्पष्ट ही उस समय वैदिक के धर्म की क्रियाओं मे ढील सूचित करते हैं, और था भी सचमुच ऐसा ही, क्योंकि पाखण्डवाद पूरी तरह व्याप्त हो रहा था, इस पाखण्ड से वैदिक धर्म की शुद्धता की रक्षा आवश्यक थी जिसे गुरु नानक देव जी ने पूर्ण किया। अनेक प्रकार के मत मतांतरों और आपस के वैमनस्य के बीहड़ जंगलों मे भटकने वाले लोगों के लिये एक अमर सन्देश लेकर श्री गुरु नानक आये और उन्होंने लोगों को धीरज, सत्य और संतोष का पाठ पढ़ाया। गुरु नानक देव और उनके परवर्तियों का यह पुनीत कार्य भी निर्विघ्न रूप से न चलने दिया गया। उनके शिष्य समुदाय पर अनेक विपत्तियों के पहाड ढाहे गये। जिसके कारण उनके पथ का पथिक बनना हँसी खेल का काम नहीं रहा। इसी परिस्थिति का मार्मिक चित्रण दसवें नानक श्री गुरु गोविन्दसिंह जी के इस वाक्य से हमारे सामने आता है। "जो तोहि प्रेम खेलन का चाव, सिरधर तली गली मोरी आव।" वास्तव मे ही सिख लोग घोर से घोर यंत्रणाये सहकर और सभी प्रकार के अत्याचारों का सामना करके आगे बढ़े और गुरु गोविन्दसिंह के "सिर धर तली गली मोरी आव' के आह्लाद मे पूरा किया।

गुरु नानकदेव जी और उनके परवर्ती गुरुओं के विषय मे इसी इतिहास में सब कुछ लिख दिया गया है। हम तो केवल इतना कहना चाहते हैं कि उनकी शांतमयी भावना ने सदा सिखों को उत्तेजित होने से रोका। पर वे कब तक यवनों के अत्याचार के सामने झुके रहते। यह ठीक है कि श्री गुरु महानुभावों के दिव्य सदेश को कुछ यवनों ने भी अपनाया परन्तु अपार राज्य और शासन की मदान्धता उन्हे अधिक न रोक रख सकी। दौर आरम्भ हुए. किसी महापुरुष को गाय के चमडे मे मढ़वाया गया, किसी को जलते रेत से भूना गया, और किसी को जलते चिमटों से नोचा गया, आखिर क्यों? क्योंकि वे सत्यनाम के उपासक थे, और अपने धर्म मे आस्था रखते थे, वे इस देश के लिये, इसकी आन के लिये सब कुछ स्वाहा कर रहे थे। प्राणों की बलि देकर भी इसकी प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहते थे और स्पष्ट शब्दों मे वह उन धर्मान्ध अत्याचारियों के विरोध मे अपनी छाती तानकर खड़े हो रहे थे जो सारे देश को इस्लाम के झंडे के नीचे लाना चाहते थे, धर्म शब्द जिन अर्थों को अपने अन्दर छिपाये हुए है वे उसी के सच्चे उपासक थे। धर्म की इसी ज्योति की अखण्डता को उन्होंने कायम रखा। भले ही इस्लाम की आंधी चली, दीपक बुझाने का प्रयत्न किया परन्तु एक दीपक की लौ बुझाई नहीं कि दूसरे का दिव्य प्रकाश फैल उठा। उनका सिद्धान्त था.—

दीपक ते दीपक प्रगाग्या त्रै भुवन ज्योति जगाई।
दीपक की जोत सदा ही जले
इक जल जाए दूजा आये ज्योति अमर रहे।

इसी अमर ज्योति की एक शिखा—जिसे हम श्री गुरु तेगबहादुर जी के नाम से संबोधन कर सकते हैं—जब अपने दिव्य प्रकाश से जनमन को प्रकाशित कर रही थी। अत्याचारियों द्वारा बुझा दी गई तो इस हिन्दू जाति की आँखे भौचक्की हुईं और ज्यों ही वह ज्योति गुरु गोविन्दसिंह जी के रूप में

प्रस्तावना - लेखक
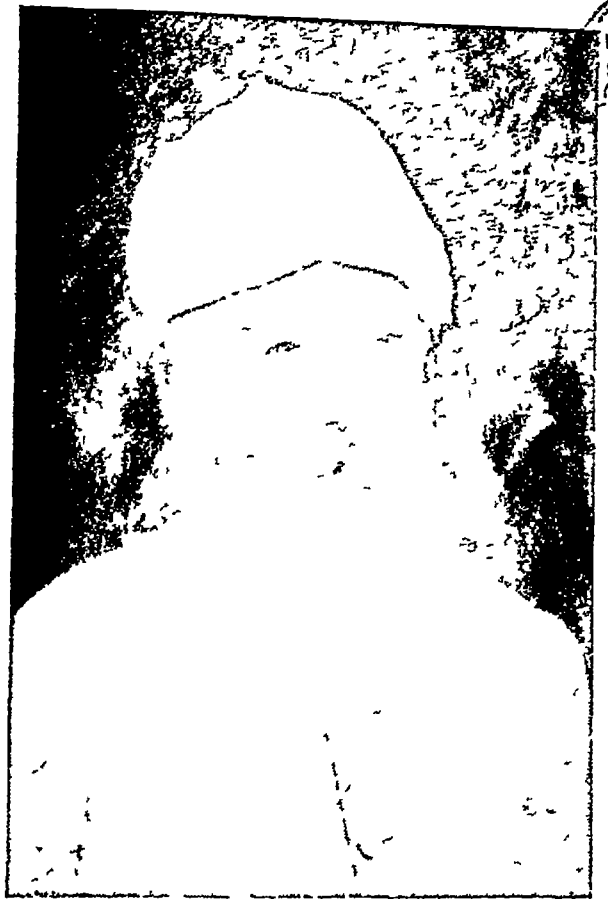
श्री सन्त इन्द्रसिंह जी 'चक्रवर्ती'

प्रकाशित हुई यह जाति अपनी अकर्मण्यता छोड़ कर आगे बढी। और महान आत्मा अखंड ज्योति के सत्य स्वरूप श्री दशमेश गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने समय की पुकार को पूरा किया। वह समय कैसा था उसका चित्र भाई ज्ञानसिंह जी ज्ञानी ने इन शब्दो मे खींचा है।

"सैयद शेख मुगल पठान, जालिम भए जभी बलवान ॥
हिन्दुन को दु ख दियो महाए। देवन के मन्दिर गिरवाए ॥
घोर नाथ से औघड साधू, पडत वत से सुमति अगाधू।
मरवा चीला को खिलवाए, केचित कुत्तियो से फडवाए।
केचित मेखें ठोक सुकाए, केचित कच्चे चाम मढ़ाए।
तुरक रोवना जिनें न मान्यो, तिन तिन को अति दु ख हान्यो।
यज्ञ हवन कोई करन ना पाए, करे जो तिह दु ख दे मरवाए।
सुन्दर पिखें जाह की तरनी, पकर करें बलसों निज घरनी।
काज़ी रिशवत लै कर सारे, साचे को झूठा कर डारे।

इसी कठिन परिस्थिति मे—"धरम चलावन संत उबारन, दुष्ट सबन को मूल उखारन" के लिये वीरता की साकार प्रतिमा श्री गुरु गोविन्दसिंह जी आगे बढ़े। हा, इसके लिए यह आवश्यक था कि शक्ति पूजन हो और उन्होने शक्ति पूजन के लिए वह सभी कुछ किया जो करना चाहिए था, "चण्डी चरित्र" इसका प्रमाण है।

उन्होंने कहा है—

धूप दीप सवार आरती करत पूजा चार सुर।
घसत कु कुम अगर चदन पुष्प गध सुगध चूर ॥
नईबेद नाना भात बिंजन विविध मेवे जात तर।
अनिक कुसुम सुगध नाना भात परिमल पसर कर ॥ (सर्व लोह प्रकाश)

यज्ञ होम आदि की रक्षा उन्होंने प्राणपन से की इसके लिए उन्हे बहुत मूल्य चुकाना पड़ा, मित्रो के साथ साथ पुत्रों का बलिदान भी देना पडा, परन्तु दशमेश पिता का ही यह हृदय था कि अपने देश और धर्म के लिए सब कुछ सह कर भी कर्त्तव्य पथ पर चलने से पाव नहीं रोका। यह ज्योति अपना अखण्ड रूप लिए हुए दूसरो को सदा न्याय का राह दिखाती हुई सतत जलती रही। इसी ज्योति के एक रूप की झलक हमें बन्दा बहादुर मे भी मिलती है, जिसके बलिदान की कहानी इतिहास अपने अमर शब्दो मे पुकार पुकार कर सुनाता है।

जिस एकता की ओर श्री गुरु नानक देव जी ने सरस दृष्टि से ताका था वह महाराज रणजीतसिंह तक ही सीमित रह गई। इसके बाद भी चली, मगर लगडा कर। यह सच्ची बात है कि जो सुन्दर दृश्य भारत को चद्रगुप्त मौर्य के समय में देखने को मिला था वैसा ही शायद थोड़ा बहुत कम इस भारत ने महाराजा रणजीतसिंह के समय मे देखा। वेद विहित रंग का केसरिया झंडा उन्होंने कहा तक लहराया था इसे इतिहास के पाठक स्वयं जान जाएगे। बस इसके बाद तो गुरु महाराज के शिष्य (सिख) अपना दूसरा ही रूप ले बैठे जिसमे आज तक भी उन्हे अवकाश नहीं मिला।

रणजीतसिंह जी के पश्चात् सिख बादशाहत समाप्त हो गई। विलासिता की घुट्टी जो अंगरेज भारत के लिए विशेष तौर से लाया था उसे पीकर वह शिष्य पंथ यादवों की तरह परस्पर लड़कर विनष्ट

होने का उपक्रम कर बैठा, परन्तु सत्य धर्म की भागीरथी सतगुरु श्री रामसिंह जी महाराज का पावन वरदान पाकर साहस के साथ साथ अत्याचार को मिटाने की उमंगों के तरंगों के रूप में उछलती हुई आगे बढ़ी। गौ, गरीब की रक्षा, यज्ञ हवन की पुनीत भावना के पोषण का मूल मंत्र लेकर सद्गुरु श्री रामसिंह जी महाराज के शिष्य वर्ग ने सिख पंथ की सच्चे रूप में सेवा की। गौ, गरीब द्रोही, यज्ञ हवन के नाशकों का नाश चुन चुन कर किया, और इस तरह अंगरेज का बिछाया हुआ जाल तोड़ने के लिये सहयोग की नींव डाली।

इस इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज से बन्दाबहादुर के सम्बन्ध में मेरा मतभेद है, वह यह कि बन्दा सिंह नहीं बना। उसने अपने को गुरु जी का बन्दा अवश्य कहा था किन्तु पाहिल नहीं ली थी। बन्दा को बन्दासिंह कहना वैसा ही है जैसा आदमी को आदमी सिंह व मनुष्य को मनुष्य सिंह।

पुस्तक की भाषा छपाई आदि सब सुन्दर है। कहीं कहीं कुछ शब्द ऐसे आ गए हैं जो भारत की संसद में बाहर से आने वाले अरबी, ईरानी और तुरकी के राजदूतों की तरह अपना वेष निराला लिए हुए होने के कारण अहिन्दी जान पड़ते हैं। ठाकुर श्री देशराज जी का प्रयत्न वास्तव में महान् और स्तुत्य है। इस इतिहास की विशेषता यह है कि सिखों सम्बन्धी कोई भी बात छोड़ी नहीं गई है। लिखने की शैली इतनी अच्छी है कि कहीं कहीं तो इतिहास उपन्यास का सा आनन्द देता है। वास्तव में इसी कृति में ठाकुर साहिब की कला अपना रूप लेकर उपस्थित हुई है।

मेरा यह सौभाग्य है कि मुझे ऐसे विशिष्ट इतिहास के लिए कुछ पंक्तियां लिखने का अवसर मिला है। इसके लिए हिन्दी जगत को भी कृतज्ञ होना चाहिए कि उसे सिख इतिहास का पूर्ण रूप अवलोकनार्थ प्राप्त हो रहा है। यह सब कृपा स्वामी श्री केशवानन्द जी की है जिन्हों ने सदा अपने अनथक प्रयत्नों से हिन्दी जगत को ठाकुर श्री देशराज जी जैसे हीरों से जगमगाने का काम किया है। स्वामी जी के कार्य और प्रणाली से शायद ही कोई अपरिचित होगा।

अन्त में मैं ठाकुर श्री देशराज जी के प्रति कृतज्ञ हूँ कि उन्हों ने हिन्दी जगत को एक ऐसा अमूल्य ग्रन्थ रत्न दिया है जिसकी कि आभा में हम अपने गत वैभव देख सकते हैं। मुझे यह कहने में भी प्रसन्नता है कि इन पंक्तियों के लिखने में श्री ओंप्रकाश आनन्द ने मेरा हाथ बटा कर मेरी व्यस्तता को कम किया है। मैं आशा रखता हूं कि ऐसी अमूल्य पुस्तक का सर्वत्र मान होगा और यह सफलता प्राप्त करेगी।

उपभाषा विशेषज्ञ, पंजाबी विभाग
पटियाला ५-१-१९५४

'संत इन्द्रसिंह चक्रवर्ती'

लेखक की ओर से

सिख भारतवर्ष की एक ख्यातिनामा जाति है। ख्यातिनामा भी ऐसी कि जिसका नाम भारत के कोने कोने में तो व्याप्त है ही साथ ही दूसरे मुल्कों मे भी उसका नाम है। उसका यह नाम पिछली शताब्दियो में किये गये उसके बहादुराना कारनामो से तो हुआ ही है—साथ ही उन्होने अपने को हर क्षेत्र में योग्य बनाकर भी शोहरत हासिल की है।

सिखों की गिनती भारत की सामरिक जातियों मे होती है किन्तु उन्होंने राजपूत और जाटों की भाति एक ही प्रकार की उन्नति नहीं की है। उनकी उन्नति बहुमुखी है। उनमे विद्वान्, योद्धा, व्यवसायी और कलाकार अथवा कारीगर सभी अच्छे श्रेणी के मिलते हैं।

सिखों मे जहाँ साहस, बलिदान की भावना और शूरवीरता है। वहाँ उनमें प्रत्येक काम में चिपट कर उसमें पारंगत होने की लगन और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये चतुरतापूर्ण अध्यवसाय भी है। वे पूरे परिश्रमी होते हैं। आज कौन सा धधा है जिसमे सिख अग्रणी बनने की होड़ न कर रहे हों। कौन सा प्रात और देश है जहाँ वे न पहुँच रहे हों। धीरे धीरे उन्होंने अपने को एक जाति के पद से उठाकर समाज के रूप में परिणित कर लिया है। वैसे ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो 'सिख' आरभ से ही एक जाति की बजाय समाज ही है। क्योंकि उनमे एक ही वर्ण अथवा एक ही जाति के लोग नहीं हैं। उसमें सभी वर्णों, सभी जातियों और धधो के लोग आरम्भ से ही हैं। किन्तु वे सब हैं, हिन्दू जाति की उप जातियो में से ही।

आज भारत में उनका एक अपना समाज और अपना पंथ है। कुछ ब्राह्मणों की अनुदारता कुछ उनकी खुद अपने को अलग रखने की चाह और कुछ अग्रेज शासकों के प्रोत्साहन से वाह्यरूप उनका भारतमें एक तीसरा धर्म और तीसरा समाज जैसा बन गया है।

वैसे नस्ल और वश परम्परा से तथा धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों से वे भी उतने ही आर्य-हिन्दू हैं। जितनी उत्तरी भारत की कोई भी जाति हो सकती है किन्तु उनके अलग सगठन और वेश भूषा तथा नित्त नैमितिक आचार व्यवहार के ढग ने उन्हें अलग समाज के रूप में परिणित कर दिया है।

उत्तरी भारत के प्राय हिन्दू यह मानते है कि सिखों ने एक समय भारत की लाज और हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिये बड़े-बड़े बलिदान किये थे। प्रत्येक हिन्दू की गुरुनानक मे अपार श्रद्धा है और गुरु गोविन्दसिंह के शौर्य और तप से समस्त हिन्दू जनता प्रभावित है। यही कारण है कि दिल्ली से लेकर पेशावर तक के प्रत्येक हिन्दू के घर में गुरुओं की फोटो उसी प्रेम से सजी हुई पाई जायेंगी, जिस प्रेम से कि अन्य महापुरुषों की, और ग्रन्थ साहब तो उनके साझे की उपासना-पुस्तक है।

पजाब के हिन्दू गुरुओं और उनके बहादुर शिष्यों के कारनामों को बड़े चाव से पढते हैं। यह चाव दिल्ली से नीचे के भारत मे भी आरम्भ से ही है और अब जब कि पंजाबसे बाहर भी सिख प्रभाव बढने लगा है तो यह चाव

और भी बढ़ गया है किन्तु हिन्दी भाषी भारत के हिन्दुओं के लिये सिखों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी देने वाले ग्रन्थ का एक दम अभाव था। कुछ छोटी-छोटी किताबें सिखों और उनके गुरुओं के सम्बन्ध की हिन्दी में प्रकाशित हुई किन्तु वे सिखों सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओं का समाधान करने वाली न थीं।

जाट-इतिहास के लिखने के समय में सिखों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना मुझे भी आवश्यक हो गया। क्योंकि सिखों मे जाटों की एक बड़ी आबादी है तथा हिन्दू जाट और सिख जाट भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी होते हुए भी शादी सम्बन्धों में अलग नहीं हैं। भरतपुर, धौलपुर और मुरसान के हिन्दू-जाट-राजे पटियाला जींद, फरीदकोट और नाभा सिख-जाट-राजों में ब्याहे जाते रहे हैं। सिखों की वीरतापूर्ण अनेक गाथाओं से मैं चौ० छिछूपालसिंह जी धमेडा के लेखों द्वारा जोकि जाटवीर में लगातार प्रकाशित हुए थे, सन १९२५ में ही परिचित हो चुका था।

सन् १९३४ ई० के बसन्त पर जाट इतिहास प्रकाशित हुआ। सिख-जाटों में भी उसकी खपत हुई। सिख जाटों ने उसे इतना पसन्द किया कि सीरीज के रूप में कुछ उत्साही सिखों ने उर्दू में उसका प्रकाशन आरम्भ कर दिया। इससे मेरे मन में सिखों की पूरी जानकारी हिन्दू जगत के सामने रखने की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई किन्तु वह उत्कण्ठा शीघ्र ही अमल में न आ सकी।

सन् १९३७ मे चौधरी देवासिंह बोचल्या जोकि जयपुर राज्य (अब डिवीजन) के सहेलावाटी इलाके के निवासी हैं। साहित्य-सदन अबोहर[1] पहुँचे। वहाँ उनकी सदन के संस्थापक और ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया के सञ्चालक स्वामी केशवानन्द जी से भेंट हुई और उन्होंने मेरा लिखा जाट इतिहास स्वामी जी को दिखाया।

स्वामी केशवानन्द जी के दर्शन सन् १९३२ में मैं अजमेर के ऐतिहासिक आर्य सम्मेलन में चौधरी हरिश्चन्द्र जी गगानगर और जीवनराम जी दीनगढ के सौजन्य से कर चुका था। जब देवासिंह जी ने लिखा कि आपको अबोहर आकर स्वामी जी से मिलना चाहिए तो मैं बिना विलम्ब के अबोहर पहुँचा और चूंकि स्वामीजी सिखों के बीच में रहते थे अतः मैंने उनसे सिख इतिहास लिखने में मेरी सहायता करने की प्रार्थना की। जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया, यही सिख इतिहास के लिखने की प्रेरणा का इतिहास है।

सन् १९३८ ई० मे स्वामी केशवानन्द जी ने फीरोजपुर जिले के कुछ प्रतिष्ठित सिखों से जिनमें एक दो तो शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के भी मेम्बर थे एक सिख इतिहास कमेटी बना दी। मैं अबोहर बैठ गया। पूरे आठ महीने उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया। उसके बाद आचार्य बंशीधर जी को जोकि आजकल नई शिक्षा के प्रयोग-कर्त्ताओं में अपना अच्छा स्थान रखते हैं और जिनके लिये जोधपुर के लोक-प्रिय मन्त्रिमण्डल ने एक लाख रुपया देकर एक शिक्षालय जोधपुर में खुलवा दिया है—साथ लेकर फीरोजपुर के कन्या महाविद्यालय की लाइब्रेरी में बैठा। उन दिनों फीरोजपुर के कन्या महाविद्यालय की आचार्या और सचालिका बीबी गुरबचनकौर थीं जोकि इस महाविद्यालय के संस्थापक और स्त्री शिक्षा के प्रबल हिमायती भाई तख्तसिंह जी की सुपुत्री थीं। उन्होंने हमें पूरी सुविधायें हमारे अध्ययन और खोज कार्य के लिये दी। अध्ययन के इन दिनों में मैंने सिखों के तीर्थों और प्रमुख ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा भी की। मैं कह सकता हूँ कि इस कार्य के लिये मैंने कम से कम पचास हजार पृष्ठ व सैंकड़ों छोटी मोटी पुस्तकें पढ़ी। तब यह सिख-इतिहास जो अब पाठकों के हाथ में है, तैयार हुआ। इसके लिखने के दिनों में मैंने १५-१६ घंटे रोज परिश्रम किया है।

[1] पंजाब में साहित्य सदन अबोहर अपने ढंग की एक बड़ी हिन्दी संस्था है। इसके अधीनस्थ एक बड़ा पुस्तकालय और संग्रहालय है। विशारद, रत्न, प्रभाकर आदि परीक्षाओं के दिलाने के लिये एक शिक्षणालय भी है। गाँवों के लिये चलता पुस्तकालय है।

जब इतिहास पूरा हो गया तो स्वामी केशवानन्द जी ने मुझे सिखों के प्रसिद्ध और तपस्वी लेखक भाई वीरसिंह जी के पास भेजा। वीरसिंह जी का सिखो में बहुत आदर है। उन्होंने सिख साहित्य का बहुत ही अधिक सृजन किया है वे प्रसन्न चित्त और शातमुद्रा से मिले। मेरे लिखे इतिहास के कुछ प्रसग उन्होंने सुने और मुझे एक चिट्ठी खालसा कालेज के प्रोफेसर(अब डाक्टर आफ लिटरेचर)सरदार गडासिंह के नाम लिखकर उनके पास भेजा। उन दिनों वे इतिहास के ही प्रोफेसर थे। उन्होंने काफी समय देकर इतिहास को सुना और तब इस ग्रथ की भूमिका लिखी।

इसके पश्चात् देश में रियासती सघर्ष आरम्भ हो गये और प्रजामण्डल के प्रेसीडेन्ट की हैसियत से मैं भरतपुर की जेल में चला गया। फिर सन् १९४२ का "अग्रेजो भारत छोडो" आन्दोलन आरम्भ हो गया जिसमें स्वामी केशवानन्द जी भी उलझ गये। उसके बाद स्थितिया इसी प्रकार की आती रहीं। स्वामी जी और मैं राजनैतिक उलझनों में बराबर फसे रहे। मै भरतपुर में वहाँ की असेम्बली का डिप्टी स्पीकर और फिर राजस्व मत्री बन कर उधर उलझा रहा और इधर स्वामी जी सगरिया के ग्रामोत्थान विद्यापीठ को भव्य रूप देने मे चिपट गये। इस प्रकार सन् १९५३ आ गया। सन् १९५१ में होने वाले आम चुनावों में मैं हार गया और स्वामी जी को उनकी अनिच्छा होते हुए भी सयोग ने भारत की राजपरिषद् में ला बिठाया। स्वामीजी ने मेरी हार को शुभ काम में परिणित करने के लिये मुझे बुलाकर दिल्ली बिठा दिया।

इसका दर्शन भाग मैंने दिल्ली में बैठ कर ही लिखा है। और यह इसी वर्ष की कृति है। शेप इतिहास में जहाँ तहाँ कुछ घटनायें और जोड दी गई हैं। वरना सारा मैटर वही है जो सन् १९४१ के पहले लिखा गया था।

यह इतिहास हिन्दू और सिख दोनों को ध्यान में रख कर लिखा गया है इसलिये इसमें सरल हिन्दी के प्रयोग की कोशिश की गई है। फिर भी सिख इस हिन्दी को भी कठिन मानते हैं किन्तु बहुत यत्न करने पर भी और अधिक सरल एव उर्दू-मय न बना सका। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें इसमें उर्दू शब्दों के प्रयोग पर प्रसन्नता नहीं है।

इस ग्रथ की भाषा, लेखन शैली और सामग्री कैसी है? इसका निर्णय पाठक ही करेंगे। मैं तो यही कह सकता हूँ कि मैंने इसे पूर्ण मनोयोग, परिश्रम और निष्पक्ष भाव से लिखा है।

सिख इतिहास की अनेक घटनाओ और तथ्यों पर सिख इतिहास के लेखकों मे मतभेद रहा है और अब भी है। उनमे से मोटे मोटे मतभेद इन बातो पर हैं।

(१) गुरुनानक देव कार्तिक में हुए या बैसाख में ? दोनो पक्ष अपने अपने समर्थन में अनेक प्रमाण पेश करते हैं। मैंने उनका जन्म कार्तिक मे ही माना है। उसका आधार उनका नाम है। क्योंकि उनका नाम उनके उन नक्षत्र ग्रह और राशियों के आधार पर रक्खा गया था जो उनके जन्म के समय वर्तमान थे। इसीलिये मैंने उनकी जन्म कुण्डलिया भी इस ग्रथ मे अकित कर दी हैं। सिख लेखक जन्म कुण्डलियों पर विश्वास नहीं करते। वे करें या न करें जन्म कुण्डली बनवाने वाला तो कालूराय था जो पक्का सनातनी हिन्दू था। और नाम रखने वाले भी सनातनी पडित थे न कि आज के लेखक।

(२) गुरु गोविंदसिहजी के पुत्रों का सरहिंदकी दीवारों में चुने जानेपर भी मतभेद है। मैं कागजों, दस्तावेजो से भी अधिक प्रामाणिक लोक श्रुतियो को मानता हूँ। सैंकडो वर्ष से पीढी दर पीढी सारा पजाबय ही सुनता आ रहा है कि गुरु गोविंदसिह जी के दो पुत्र सरहिंद की दीवारो में चुन दिये गये थे।

(३) कुछ लोग यह भी कहते हैं कि गुरु गोविंदसिंह जी के दो पुत्रों का चमकौर मे मारा जाना सही नहीं है। इस प्रकार के लेखकों में ५२ कवियों में से कविवर सेनापति भी हैं जो कि गुरु गोविंदसिह जी के दरबारी कवि थे। यह विषय अवश्य अनुसधान चाहता है।

(४) बन्दा वैरागी सिख नहीं बना। यह बात अधिकाश मे वे विद्वान कहते है जो सिख नहीं हैं। बेचारे

गया। उसने यह कहते हुए सोलंकी का सिर काट दिया कि चौहानों के सामने कोई दूसरा मूछों पर ताव नहीं दे सकता है। कान्ह के इस मिथ्याभिमान का फल यह निकला कि सोलंकियों और चौहानो मे एक घोर युद्ध हुआ और सदा के लिए वैर बंध गया। गहरवार (कनोजिए) और चौहानो मे गहरी शत्रुता संयोगिता के ऊपर होगई। संयोगिता के ऊपर दोनों ओर के लगभग १८ लाख आदमी काम आए। पृथ्वीराज के १०८ सरदारों मे से ६४ सरदार नौ लाख सैनिकों के साथ मारे गए। यह युद्ध लगातार ६४ दिन तक हुआ था।

पह ी एक दो लड़ाइयों में पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी को हरा चुका था। इसमे कोई सन्देह नही कि अपने समय का पृथ्वीराज एक महान् योद्धा और निपुण सेनापति था किन्तु वह अन्ध विश्वासी भी पूरा था। अजमेर को केवल एक फकीर चिस्ती के जादू के भय से छोड़कर भाग गया था। घटना इस प्रकार बताई जाती है कि एक मुस्लमान फकीर अजमेर के बाजार मे धरना देकर बैठ गया। चामुंडराय उसे हटाने आया। उसने जादू से अग्नि की लपट पैदा कर दी। साथ ही कहा कि मे तुम सब को जला दूंगा। बस तारागढ़ खाली कर दिया गया।

गहरवार और सोलंकी पृथ्वीराज को तबाह कर देना चाहते थे और पृथ्वीराज उधर राजमहलों मे कामान्धता के भोग भोग रहा था। इस मौके से लाभ उठाने के लिए मुहम्मद गौरी ने एक लाख बीस हज़ार पठान लेकर भारत पर चढ़ाई कर दी। गहरवार और सोलंकियों ने उसका साथ नहीं दिया। तला-वड़ीके मैदान मे पृथ्वीराज कैद कर लिया गया। दिल्ली की खूब लूट की गई। और भारत की राजधानी दिल्ली का अधिपति गौरी ने अपना एक गुलाम कुतुबुद्दीन बना दिया। इस तरह भारत को गुलाम का गुलाम बनना पड़ा।

इसके दूसरे वर्ष मुहम्मद गौरी ने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी। जयचन्द ने एक मूर्खता इन दिनों यह की थी कि अपनी सेना मे लगभग पचास हज़ार मुसलमानों को भरती कर लिया था। यह सब उलटे राठौरों से ही लड़ने लगे। जयचंद इस लड़ाई मे मारा गया और भारत की कुबेरपुरी कन्नौज लूट ली गई। मुसलमान इतिहासकार कहते है कि यहां से लूट मे गौरी ४००० ऊंटों पर लादकर चाँदी, सोना और जवाहिरात गजनी को ले गया था। १००० मंदिरों को उसने विध्वंस कराया था। हजारों राजपूत और ब्राह्मण बालाओं को पठान अपनी लौंडी बनाने को यहाँ से ले गये।

महत्वाकांक्षी कुतुबुद्दीन ने हासी, मेरठ, कोल, रणथम्भोर, गवालियर, कालिंजर और गुजरात की ईंट से ईंट बजादी। हज़ारों मन्दिरो को धूल मे मिला कर उनके स्थानों पर मस्जिदे खड़ी करा दीं। लाखों नर नारियों को कत्ल कर दिया। अपने सरदारो को भारत मे चारों ओर मार काट और विजय करने के लिए फैला दिया। जिनमे से बख्तियार ने बिहार और बंगाल को मटियामेट किया। रास्ते मे काशी की भी खबर ली। बिहार मे १२००० भिक्षुओं को कत्ल कराया और उनके पुस्तकालय को आग लगाकर भस्म करा दिया। इसके बाद अल्तमश ने उज्जैन पर चढ़ाई की और वहां के प्रसिद्ध मन्दिर महाकाल को मटियामेट किया।

कुतुबुद्दीन और उसके अन्य ७ उत्तराधिकारियों ने १०० वर्ष तक इसी प्रकार भारत माँ की छाती पर मूंग दली। फिर इन गुलामों के बाद खिलजी भारत के शासक हुए। इन लोगो ने भी दिल भर कर हिन्दू जाति को तंग किया और लूटा खसोटा। अलाउद्दीन खिलजी के भयानक और रोमांचकारी कार-नामो को पढ़ कर आज भी मुट्ठियाँ बंध जाती है और शरीर गर्म हो जाता है। उसने दगा फरेब, मक्कारी

प्रकाशकीय वक्तव्य

इससे तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि सिख गुरुओ के हिन्दू जाति और भारत देश पर बहुत बड़े अहसान हैं। ऋषि दयानन्द, राजा राम मोहन राय और परमहस रामकृष्ण से पहले जिन्होंने बिना जाति और धर्म भेद के अपने उपदेशों को मनुष्य मात्र के लिये फैलाया था—वे सिख गुरु ही थे। उनकी वाणियों से सर्व साधारण ने लाभ उठाया। उनका मिशन सब के लिये था और उन्होंने सबको अपना समझा।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' मे जहा गुरुवाणियों का सग्रह है। वहा बिना जाति और मजहब के भेद के दूसरे सतों की वाणियों का भी सग्रह है जिनमें छीपी (नामा) जुलाहे (कबीर) चमार (रैदास) जाट (धन्ना) ब्राह्मण (रामानन्द) और मुस्लिम फकीर (शेख फरीद) जैसे विभिन्न जातियों और धर्मों के सन्त शामिल हैं।

सचाई यह है कि गुरुओं की वाणी की रचना भाषा या बोली को लेकर जाति या कुटुम्बको लेकर अथवा अन्य किसी स्वार्थ या आग्रह को लेकर नहीं हुई है। और इन वाणियों के द्वारा नये आचार विचार नये सम्प्रदाय एव नवीन धर्म के स्थापन के प्रयत्न की बजाय पुरानी रूढियों, रस्म रिवाजों, आचार विचारों के आडम्बरों और पाखण्डों को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न और प्रचार किया गया है। जिससे कि लोग सरल जीवन, उत्तम आचार वाले और सब के साथ सौहार्द का बर्ताव करने वाले बन जावें तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" (ससार हमारा कुटुम्ब है) के सिद्धान्त को अपनाकर सुख और शाति का जीवन बिताव।

इन महामना गुरुओं की वाणी में भक्ति का ऊ चे से ऊ चा सिद्धान्त "ब्रह्म दीसै ब्रह्म सुणिये ब्रह्मो ब्रह्म बखा- नियै। आतम पसारा करनहारा ब्रह्म भिन्न न जाणिये।" भरा पड़ा है। जो वेद,शास्त्र और पुराणोंको पढ़ते तो हैं किन्तु उनकी शिक्षाओं पर अमल नहीं करते हैं। उनके लिये भी "चार पुकारें न तू माने। षट भी एकों बात बखानें।। दस अष्टी मिलि एको कहीइआ। तौ भी जोगी भेद न लहीइआ।।" शब्दों में चेतावनी दी थी।

उस युग के लोगों के हृदय से भय, आशका, भ्रम और आत्म-ग्लानि के भावों को दूर करके ईश्वर में दृढ विश्वास, आस्था और भक्ति पैदा करना अत्यावश्यक था। प्रात' ब्राह्म मुहूर्त्त में उठना, शौच स्नान करना और फिर भजन में लगना। इस तरह की जीवन चर्य्या बनाना और शुभकर्मों में (लोगों को) लगाना उनके उपदेशों का मूल उद्देश्य था। "चिड़ी चु हकी पौ फटी वैगन बहुत तरग। अचरज रूप सतन धरे नानक नामें रग।।" का आदर्श उनके सन्मुख था।

गुरुओं का प्रधान मार्ग भक्ति मार्ग था। वे स्वयम् भक्ति स्वरूप थे और दूसरे लोगों को भी ऐसा ही बनाना चाहते थे। उनके इस मार्ग में भी जब विघ्न पड़ा तब वे भक्ति के साथ ही पुरुषार्थ (युद्ध) को भी अपनाने को विवश हुए। यह करवट गुरु हरिगोविन्द जी ने तब बदली जब कि उनके पिता गुरु अर्जुन देव जी को अकारण अनेक असहनीय यंत्रणायें देकर बलिदान कर दिया गया। इससे पहले तो गुरु लोग अपने भक्ति-मार्ग को ही प्रशस्त करने में लगे हुए थे। गुरु नानकदेवजी के भक्ति चेतावनी स बधी जो प्रवचन थे। गुरु अगद देव जी ने-उन्हें उस

समय की पंजाब में प्रचलित लिपि में जो अब गुरुमुखी के नाम से प्रख्यात है संग्रह कराया। गुरु अमरदास जी ने भक्ति के साथ सेवा का--अपने जीवन को उत्कृष्ट सेवामय बनाकर-आदर्श लोगों के सामने रक्खा। गुरु रामदास जी ने भक्ति को साकार रूप देने और अधिक आस्था उत्पन्न करने के लिये अमृत-सरोवर की आधार-शिला रक्खी। गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने समय तक की समस्त गुरुवाणियों और अन्य सन्तों तथा भक्तों की गुरु-यश संवर्धनी कविता का संग्रह कराया। यही संग्रह "ग्रन्थ साहिब" की प्रथम बीड था।

हम पहिले ही कह चुके हैं कि गुरु लोग अपने पराये के स्तर से बहुत ऊंचे उठे हुए थे। इसका उत्कृष्ट उदाहरण गुरु नानकदेव जी द्वारा अपने पुत्रों की बजाय अंगददेव जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना है यद्यपि उनके बड़े पुत्र बाबा श्रीचन्द जी उत्कृष्ट विद्वान और अत्युच्च चरित्रवान थे किन्तु चूंकि उनकी रुचि तप प्रधान थी। अतः गुरु नानकदेव जी ने उनको उसी मार्ग पर बढ़ने की स्वतन्त्रता बख्शी।

गुरु नानक देव में जो तप भावना और वीतरागपन था वह बाबा श्रीचन्द में और जो सेवा एवं जन-कल्याण भाव था वह अंगद देव जी में प्रस्फुटित हुआ और इस में सन्देह नहीं कि बाबा श्रीचन्दजी का उदासीन समाज और अंगददेव जी का सिख समाज दोनों ही समान रूप से आगे बढ़े और गुरु नानकदेव जी के मन्तव्यों को दोनों ने ही आगे बढ़ाया। पंजाब से बाहर उदासियों ने नानक-मत को फैलाने में प्राथमिकता प्राप्त की। बाबा श्रीचन्द गुरुओं का कल्याण चाहते थे तो गुरु लोग भी अपने आदि गुरु का पुत्र तथा एक वीतराग तपस्वी समझकर उन्हें सम्मान देते थे। छटे गुरु हरिगोविन्द जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गुरुदित्ता जी को बाबा जी की सेवा के लिए भेंट कर दिया था जो आगे चल कर दीन दुखियों के टिक्का (सहारा) बने।

गुरु हरिगोविन्द जी ने मर्माहत होकर अत्याचार का प्रतिशोध करने के लिए जो करवट बदली थी। उसमें नवें गुरु श्री तेगबहादुरजी तक साधारण सी ही प्रगति हुई किन्तु दसवें पातशाह के समय में उसमें वह क्रांतिकारी परिवर्तन आया कि न केवल सिखों बल्कि सारे पंजाब अथवा यों कहिये कि उत्तरी भारत में एक नया ही रंग पैदा हो गया।

गुरु तेगबहादुर जी के अनुपम बलिदान के बाद जो क्षोभ और प्रतिशोध भावना जो बाद सिख समाज में आई। वही आगे चलकर खालसा पंथ की आधार शिला बनी। गुरु तेगबहादुर के बलिदान के पश्चात् उनके सुयोग्य पुत्र एवं उत्तराधिकारी श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने जिस प्रकार उस समय की विकट परिस्थितियों का सामना करने के लिये खालसा पंथ को जन्म दिया यह उन्हीं की विलक्षण बुद्धि का पराक्रम था। अपने निकट के पहाड़ी राजाओं को जब वे नवोत्साह से मंडित करने के प्रयत्न में असफल हुए तो जिस प्रकार पुराने क्षत्रियों से निराश होने पर कुछ ऋषियों ने आबू में यज्ञ करके चार नये क्षत्रिय खानदानों का निर्माण किया और उन्हें एक नए वंश (सूर्य और चन्द्र नहीं) अग्निवंश के नाम से अभिहित किया था। उसी भांति काल और स्थिति के पारखी गुरु गोविन्दसिंह जी ने राजपूत-क्षत्रियों से निराश होकर एक नये योद्धा-सम्प्रदाय को जन्म दिया और उसे खालसा (विशुद्ध एवं कसौटी पर कसा हुआ) के नाम से सम्बोधित किया। खालसा में बिना जाति पांति भेद के उन सब खत्री, जाट, कहार, नाई छीपी को शामिल किया जो सिर देने को उद्यत हुए। उनको गुरु गोविन्द सिंह जी ने यह पाठ भी पढ़ा दिया कि "एक पिता एकस के हम बालक।" इस प्रकार जाति पांति के थोथे आडम्बरों को एक ओर फेंकने वालों के एक नये समाज "खालसा" को उन्होंने जन्म दिया। वे समझते थे मनुष्य परिस्थितियों का पुतला है। जैसी परिस्थितियों में वह पलेगा वैसा ही बन जायगा। जब भेड़ियों की मांद में पाला गया मानव-बालक भेड़ियों जैसे स्वभाव और रहन सहन का बन जाता है तो उसे शूरवीर, सज्जन और दयालु भी बनाया जा सकता है। परिस्थितियां और संस्कार मनुष्य को कुछ से कुछ बना देते हैं। तैमूर और चंगेज ने जहां भेड़ बकरियों की भांति एक समय पंजाब के हिन्दुओं को जिबह किया

था वहा गुरु गोविन्दसिंह की दीक्षा से अभिषिक्त हुए इन लोगो ने गुरु के 'बाजन से चिड़ी लड़ाऊ' घोष को चरितार्थ कर दिया। करते भी क्यों न जब कि पिछली कई सदियों से शूद्र और नीच घोषित किये जाने वाले लोगों को गुरु गोविन्दसिंह ने "रगरेटा गुरु का बेटा" घोषित कर दिया था।

गुरु गोविन्दसिंह मे जहा एक योद्धाका तेज व्याप्त था। वहा उनमें एक विद्वान्, एक दाता और एक राजनेता के गुणों का भी सम्मिश्रण था। वे एक रूप मे एक प्रबल योद्धा, एक दयालु सत, एक साहित्यज्ञ और कला मर्मज्ञ विद्वान् तथा एक उदार दाता और राज पुरुष थे। उनकी साहित्यिक प्रतिभा का आभास हमें दशम ग्रथसे मिलता है। इस गुण से प्रभावित होकर उनके इर्द-गिर्द विद्वान् कवियों का एक खासा जमघट रहता था, उन्होंने सस्कृत के अध्ययन के लिये अपने कई सिखो को काशी भी भेजा था। जिनमें अनेकों सस्कृत के विद्वान् होकर वापिस आये और गुरु-मन्तव्यों का जिन्होंने सस्कृत मे अनुवाद भी किया।

गुरु गोविन्द सिंह ने त्याग और बलिदानों का जो सिलसिला आरम्भ किया था। वह एक दिन रग लाया और सैंकड़े हजारो वृद्ध, युवा, बालकों एव माता बहनो के बलिदानों की नींव पर सिख अथवा खालसा राज्य की नींव पड़ गई। कुरुक्षेत्र से लेकर जमरूद के उस पार तक और काश्मीर जम्मू की सुहावनी भूमि से लेकर सिंध की पश्चिमी सीमाओं तक खालसा राज्यो का झडा लहरा गया।

सिख खूब बढे। उनका लोहा दुर्दान्त पठान भी मान गये। वे और भी बढते यदि अपने व्यक्तिगत हितों की कुरबानी और अहम् का परित्याग उसी भाति करते रहते जैसा कि गुरुओ का उन्हें उपदेश था। किन्तु वे ऐसा न कर सके और अग्रेजी सत्ता उनके वैभव को निगल गई। उनको ही नहीं सारे भारत को ही निगल गई।

कोई भी सदा न तो गुलाम ही रहता है और न अवनत ही। भारत भी उठा और वह स्वतन्त्र हो गया। आज भारत स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र भारत के अनुकूल ही सबको आज फिर एक मन एक प्राण हो जाना है। एक मन होने के लिये एक दूसरे के भावों के समझने के लिये एक भाषा की आवश्यकता होती है। भारतीय सविधान ने हिन्दी को जो कि देवनागरी लिपि मे लिखी जाती है राष्ट्र की भाषा स्वीकार किया है। कुछ लोग प्रातीय भाषाओं की आवाज उठा रहे हैं और भाषाओं के आधार पर ही प्रातों की रचना भी चाहते हैं। सिखों ने भी चाहे सामूहिक रूप मे और चाहे एक पार्टी के रूप में पजाबी भाषी प्रात की माग आरम्भ की है। पजाबी पजाब के समस्त निवासियों की बोली है। उसमें न तो हिन्दुओंको यह समझना है कि पजाबी से सिख उनके ऊपर हावी हो जावेंगे। और न सिखों को ही यह समझना है कि पजाबी केवल उन्हीं की है। हमें तो कहना यह है कि प्रत्येक सिख को हिन्दी सीखनी चाहिये क्योंकि उनका समस्त धार्मिक साहित्य हिन्दी बोली में है। बिना हिन्दी के अच्छे ज्ञान के वे अपने धर्म के मर्म को कैसे जान सकेंगे। उनके धर्म को आज कोई खतरा नहीं। आज तो देश विधर्मियो के हाथ मे नहीं है। मैं जानता हूँ कि विषय अप्रासंगिक है किन्तु है सिखों के भावी भारत मे सुयोग देने के लिये, उन्हें सच्चे सिख बनाने के पक्ष मे। और सच्चे सिख के अर्थ सच्चे भारतीय के ही हैं।

अब तक मैंने सिखों, सिख गुरुओ और सिखों की पूर्व परिस्थितियों एव उनके उत्थान और ह्रास पर लिखा अब कुछ शब्द इस "सिख-इतिहास" पर लिखना चाहता हू जो पाठकों के हाथ में है।

१५ वर्ष पूर्व की बात है कि ठाकुर देशराज जी ने सिख-इतिहास के लिखने में मेरी सहायता की आकाक्षा प्रकट की। मैंने भी यह अनुभव किया कि हिन्दी साहित्य मे सिखो सम्बन्धी सर्व प्रकार की जानकारी की एक पुस्तक का होना आवश्यक है अत: मैंने फीरोजपुर जिले के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनो की एक समिति इस काम मे परामर्श और उचित सहायता देने के लिये बना दी और साहित्य सदन अबोहर में बैठकर लिखने की सुविधायें भी ठाकुर देशराज जी को प्रदान कर दीं।

ठाकुर देशराज जी परिश्रमी, लग्नशील और सिद्ध-हस्त लेखक हैं। इसलिये उन्होंने इस काम में तन्मयता से चिपट कर और पूर्ण हिम्मत करके साल डेढ साल के भीतर-भीतर इस काम को पूरा कर लिया। साहित्य सदन में तो पुस्तकों का भण्डार था ही, उनके सिवा भी जिन उर्दू, फारसी और अंग्रेजी पुस्तकों की आवश्यकता पड़ी। उन्हें मगाने का प्रयत्न किया गया और जो न मिलीं उनके देखने के लिये कन्या महाविद्यालय फिरोजपुर और खालसा कालेज अमृतसर मे लेखक महोदय को जाना पड़ा।

दैवयोग से इतिहास लिखने के दिनो में ही द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात ही "अंग्रेजो भारत छोड़ो" आन्दोलन आरंभ हो गया। साथ ही बाजार मे कागज मिलने में कठिनाई भी पैदा हो गई, अतः इस इतिहास के छपने का मामला खटाई में पड़ गया।

दो वर्ष पहले ठाकुर देशराज जी ने इसे प्रकाशित करने का प्रश्न उठाया। हमने इस ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित करने का संकल्प किया किन्तु चूंकि इस प्रकाशन संस्था के पास इतने बड़े ग्रन्थ के प्रकाशन के व्यय को सहन करने की सामर्थ्य न थी अतः सिखों की प्रतिनिधि संस्था शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर को इस पवित्र काम में सहायता देने के लिये लिखा। कमेटी ने उदारता पूर्वक पांच हजार रुपया नकद देकर हमारे उत्साह को बढ़ाया। अतः इस ग्रन्थ की प्रकाशन संस्था, शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी की अत्यन्त आभारी तथा कृतज्ञ है।

इसके पश्चात हमने अपने इलाके के उदार और साहित्य प्रेमी सिख सरदारों से भी सहायता प्राप्त की है। और यह उन उदार सहायकों की ही उदारता का फल है कि यह महत्वपूर्ण इतिहास प्रकाशित हो सका है। आशा यह थी कि यह इतिहास तीन चार मास में ही छप जायेगा किन्तु ऐसा न हो सका और लगभग एक वर्ष ही लग गया कारण कि इतनी बड़ी रकम के जुटाने मे समय तो लगना ही था इसके सिवा बीच में मुझे स्वयम डेढ महीने से लगभग बुखार के हवाले रहना पड़ा और एक फसल यों ही निकल गई। उसके अतिरिक्त भी इसके प्रकाशन मे अनेक कठिनाइयाँ और हानियां हम तथा ग्रामोत्थान विद्यापीठ को सहन करनी पड़ी हैं क्योंकि इसके लिये कार्य करने के कारण विद्यापीठ के अन्य आवश्यक कार्यों के लिये ठीक समय पर योग न दिया जा सका। हमें इस सिख इतिहास के प्रकाशित होने से प्रसन्नता है कारण कि इससे हिन्दी साहित्य के एक अभाव की पूर्ति होती है। इस पूर्ति से सिख जाति और सिख धर्म के सम्बन्ध मे हिन्दी जनता को सही परिचय प्राप्त करने का साधन प्रस्तुत हो गया है। यह इतिहास एक प्रकार से सिखो सम्बन्धी जानकारी के लिये कोष है। इसके साथ ही एक प्रशंसनीय कार्य लेखक ने यह किया है कि इसमे लगभग सवासौ पृष्ठका "गुरु-मत-दर्शन" अध्याय और जोड़ दिया है। सिखधर्म जिसे कि 'गुरु-मत' कहा जाता है अपने अन्दर क्या दार्शनिकता रखता है और वह दार्शनिकता हिन्दू दर्शन के साथ कितना मेल खाती है? तथा उसका आधार और प्रवाह क्या है? इस विषय पर पूरा प्रकाश इस अध्याय मे डाला गया है। जो सिखों के लिये भी अध्ययन की एक अच्छी सामग्री प्रस्तुत करता है।

एक बात जिस पर कि इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज जी ने बहुत कम प्रकाश डाला है। हम और कहना चाहते हैं वह यह कि पंजाब और पंजाब से बाहर गुरुमत के फैलाव के लिये सिख गुरुओं और उनके प्रचारकों की भांति ही उदासीन सम्प्रदाय के आचार्यों और विद्वानों ने भी काफी काम किया है। उदासीन सम्प्रदाय के पुनरुद्धार कर्त्ता बाबा श्रीचन्द जी थे जो गुरु नानकदेव जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। अपने पिता के संसर्ग से वैराग्य उन्हें बपौती में मिला था। वह सनक, सनन्दन, शंकराचार्य और ऋषि दयानन्द की भांति बाल-ब्रह्मचारी और बाल सन्यासी थे। हिन्दुओं की आश्रम व्यवस्थाके अनुसार सन्यास (७५ वर्ष की आयु के पश्चात आरम्भ होने वाला) चौथा आश्रम है किन्तु वे उपरोक्त ऋषियों की भांति पहली अवस्था में ही सन्यासी हो गये थे। उनके तप और त्याग का आदर गुरु घर
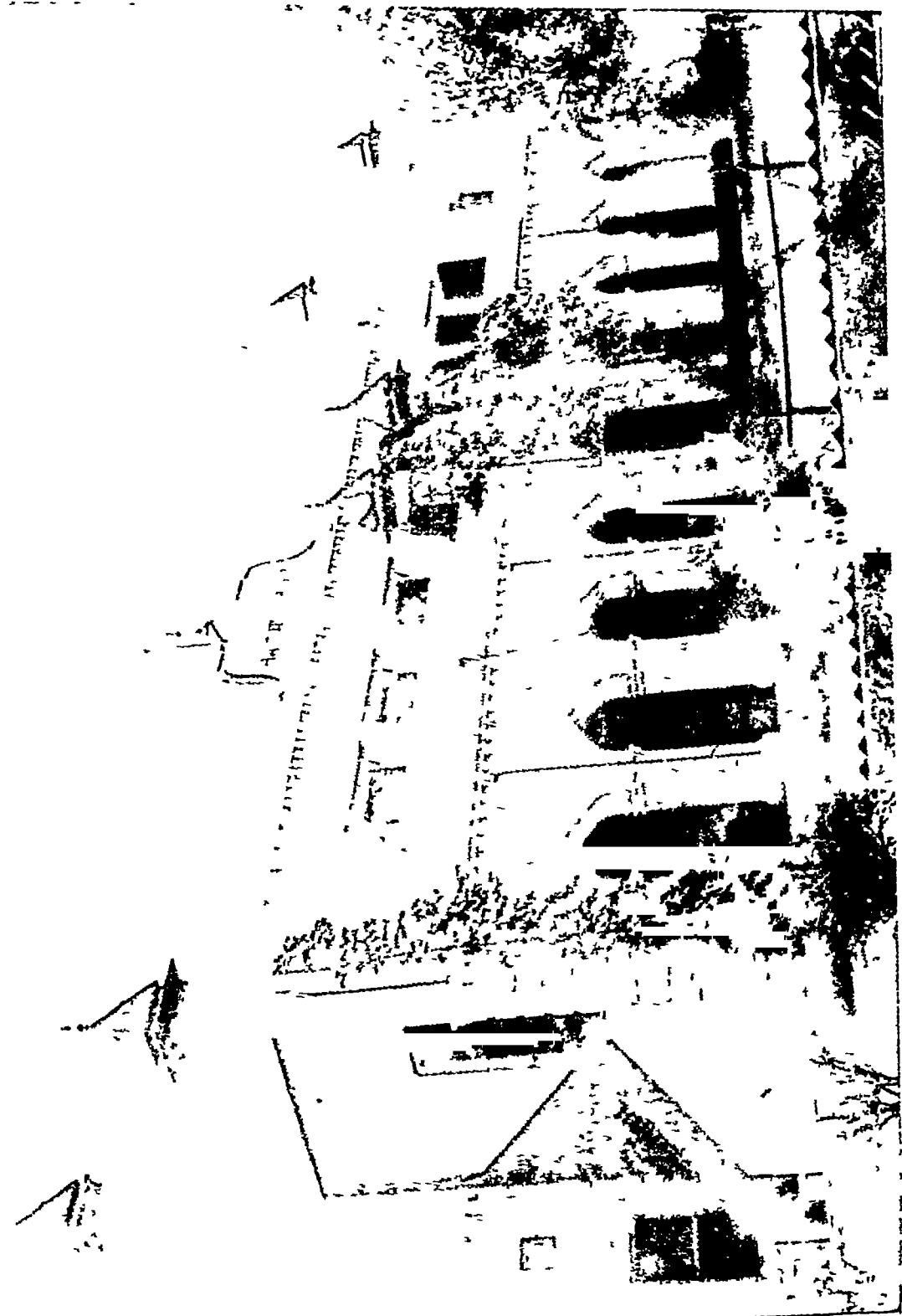
पंजाब की एक प्रसिद्ध हिंदी प्रचारक संस्था जहाँ बैठ कर यह इतिहास लिखा गया

ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया (राजस्थान)
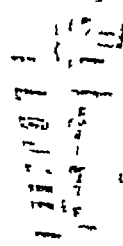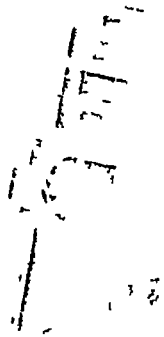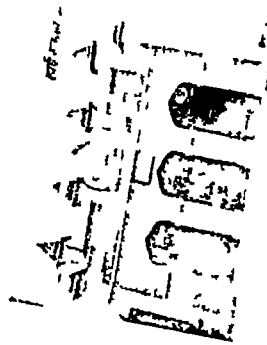
नवजीवन औषधालय

सरस्वती मन्दिर

विद्यार्थी भवन

विद्यापीठ कार्यालय
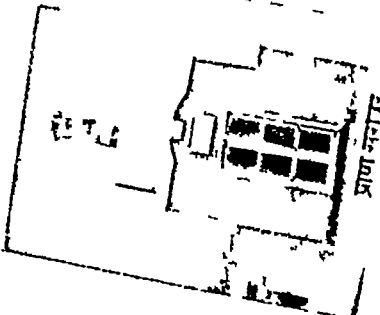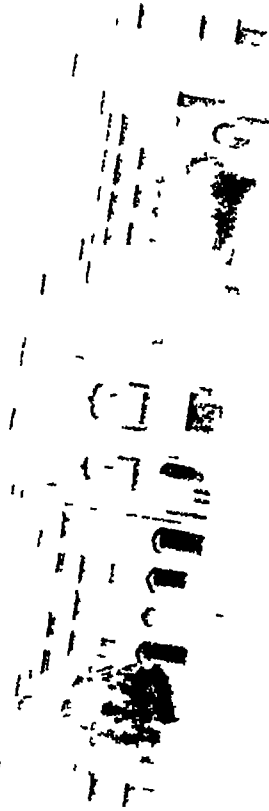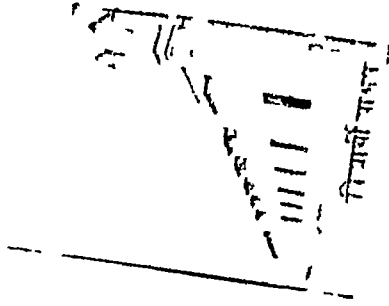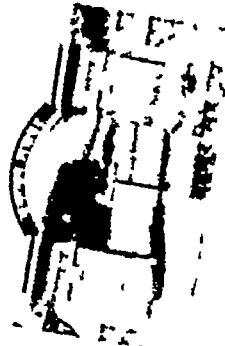
जिसके द्वारा यह इतिहास प्रकाशित कि

में भी होता था। छटे गुरु श्री हरिगोविन्द जी ने अपने बडे पुत्र गुरु दित्ता जी को बाबा जी की सेवा में भेट कर दिया था। आरभ मे इस प्रकार का घनिष्ट सम्बन्ध उदासियों और गुरु घराने में था। उस समय उदासी पूर्वी भारत में नानक पथी भी बोले जाते थे। और इस मे सन्देह नहीं कि उदासी सतों ने नानक पन्थ का काफी प्रचार किया। जहा जहा गुरु लोगो ने यात्रायें की थीं वहा वहा उन्होने गुरुद्वारे (डेरे) बनवाये और वहां के अपने भक्तों को गुरु वाणी का रसास्वादन कराते रहे। उनकी भी धार्मिक पुस्तक ग्रन्थ साहब रही।

लखनऊ, रानोपाली और अयोध्या के सतों को इन उदासीन आचार्यों के चमत्कार के सामने झुकना पड़ा था और वे भी इनके पन्थ मे आगये थे।

प्रयाग काशी आदि में जो कुंभ के मेले होते है, उनमें उदासी साधुओं ने बडी कुर्वानियों और प्रयत्नों के पश्चात अखिल भारतीय आधार पर ग्रन्थ साहब के जुलूस निकालने तय करा लिये। अब तक भी बाबा श्रीचन्द के डोले के साथ ग्रन्थ साहब को भी कुभ के अवसरो पर निकालते हैं।

पजाब के बाहर भारत में हमने जगली जातियों को भी बाबा नानक का नाम और उनकी वाणियों का कीर्तन करते देखा है। उन तक यही उदासीन साधु पहुँचे हैं और उनमें नानक-धर्म का प्रचार किया है। इस प्रकार उदासीन साधु एक लम्बे समय तक सिखों के पूरक रहे हैं किन्तु जब से गुरद्वारों पर सिखो ने अधिकार का काम अपने हाथ लिया तब से बाबा नानक की ये दोनों सताने आपस मे खिच सी गई हैं। वर्तमान में कुछ भी हों किन्तु भूत मे गुरु मत के प्रचार में उदासी, निर्मले और नामधारी अलग अलग नहीं रहे। उनका मूल एक है। उदासी गुरु नानक देव के पुत्र बाबा श्रीचन्द के अनुयायी हैं तो सिख उनके प्रिय शिष्य अगद देव जी की शिष्य परम्परा में हैं।

यह एक ऐतिहासिक सचाई थी जिस की ओर मुझे सकेत करना था अत इसी हेतु यह थोडी सी पक्तिया लिखनी पडी हैं कि उदासियो की नानक पथ के प्रचार में कम सेवायें नहीं है। उन्होने बडी बडी कठिनाइयो से संस्कृत शिक्षा पाकर फिर सस्कृत में "गुरु नानक चन्द्रोदय" 'जपुजी साहब का सस्कृत भाष्य' 'गुरु नानक गीता' 'गुरु नानक निरकार मीमासा' आदि ग्रन्थ लिख कर गुरुमत का प्रकाश और प्रचार किया था। गुरुमुखी न जानने के कारण काशी उज्जैन, जयपुर प्रयाग आदि के जो पण्डितजन गुरुनानक के मतव्यों से अजान थे उनको गुरुमत का सन्देश इन्हीं उदासियों ने पहुँचाया था। अत' उदासियों का भी गुरुमत-प्रचार में एक अच्छा भाग और स्थान है।

—केशवानन्द

लेखक का परिचय

इस सिख इतिहास के लेखक श्री ठाकुर देशराज राजस्थान के प्रथम श्रेणी के उन किसान नेताओं में से हैं, जिन्होंने पिछली दो दशाब्दियों में राजस्थान के किसानों मे जागृति पैदा करने मे अपने को खपाया है। उन्होंने राजस्थान के किसानों में उस समय जागृति का कार्य आरम्भ किया था जबकि राजाओं और जागीरदारों का आतंक अपनी पराकाष्ठा पर था। सीकर और शेखावाटी के किसान-आन्दोलन आपके ही नेतृत्व में सचालित हुए थे।

भरतपुर में कांग्रेस (प्रजामंडल) को जन्म देने का श्रेय आप ही को है। सन् १६३०, १६३६ और १६४८ में आपने तीन बार जेल-यात्रा की। जयपुर राज्य में आप के प्रवेश पर दो साल से ऊपर पाबन्दी रही और बीकानेर के षडयन्त्र केस में जो महाराजा गंगासिंह के समय में खूबराम सर्राफ़, गोपालदास स्वामी आदि पर चला था, उसमें भी आप का नाम लिया गया। अजमेर-मेरवाड़ा, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, अलवर और भरतपुर आपके कार्य के क्षेत्र रहे। इस तरह से राजस्थान मे इनका काफी नाम और काम है।

साहित्यिक क्षेत्र मे उन्होंने 'राजस्थान सन्देश', 'गणेश', 'किसान सन्देश', 'किसान जगत' और 'नव जागृति' के सम्पादक तथा 'जाट-इतिहास', 'किसान-राज्य', "आर्थिक कहानिया", "तरुणाई के बोल" आदि पुस्तकों के रचियता के रूप म ख्याति प्राप्त की है।

ठाकुर देशराज जी का जन्म ब्रज में सवत् १६५८ विक्रमी मे द्वितीय श्रावण सुदी एकादशी को भरतपुर राज्य के जघीना गॉव में श्री ठाकुर छीतरसिंह के घर माता सुन्दरी देवी के उदर से जन्म लेने का आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सन् १६२३ में आपकी सार्वजनिक कार्यों मे रुचि उत्पन्न हुई और उसी समय से आर्य समाज, हिन्दू सभा और जाट महासभा के कामों में हिस्सा लेने लग गये। पंजाब मे लाला लाजपतराय पर लाठी चार्ज होने के बाद आपने कांग्रेस के कामों मे भाग लेना आरम्भ कर दिया और सन् १६४२ तक बराबर कांग्रेस के कार्यों में भाग लेते रहे। उसके पश्चात् से आपके जीवन का लक्ष्य साहित्य सेवा और किसानो की जागृति बन गया। एक बार आप हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन के लिये आगरे जिले की ओर से प्रतिनिधि चुने गये थे। उन दिनों आप भरतपुर से निर्वासित होने के कारण आगरे मे ही रहते थे।

सन् १६४४ मे जब भरतपुर मे ऐसेम्बली की स्थापना हुई जिसका कि नाम ब्रजजया प्रतिनिधि समिति था उसमें आपकी किसान पार्टी बहुमत में निर्वाचित हुई और आप उस ऐसेम्बली के डिप्टी स्पीकर चुने गये और इस पद पर लगातार ४ वर्ष तक आपने काम किया। सन् १६४८ मे जब भरतपुर मे लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई तो आप उसमें राजस्व मन्त्री चुने गये।

इस प्रकार आपने राजनैतिक और साहित्यिक दोनों ही क्षेत्रों में काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है। आप परिश्रमी, मननशील और धुन के पक्के आदमियों में से है। मिलनसारी और सौजन्य आपके ईश्वर-प्रदत्त गुण हैं।

ग्रामोत्थान विद्यापीठ,
संगरिया

कुलभूषण

श्री कुलभूषण
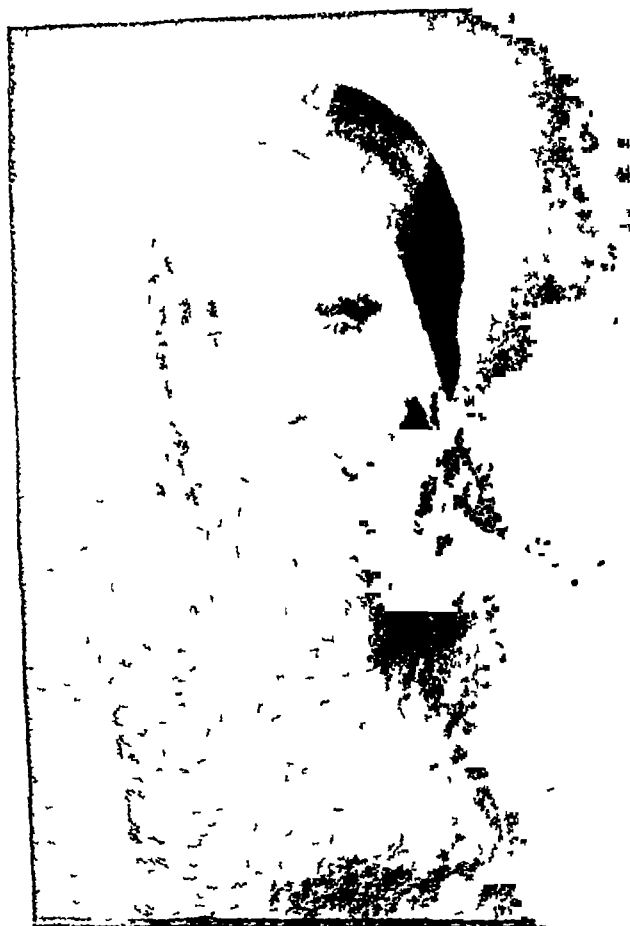
श्री ज्ञानी हरिनामसिंह 'वल्लभ'

कृतज्ञता-ज्ञापन

यह उचित ही होगा कि 'सिख इतिहास' के प्रकाशन के अवसर पर हम उन मित्रों और हितैषियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें जिनका इस इतिहास के प्रकाशन में सौहार्दपूर्ण सहयोग रहा है।

सब से अधिक श्रेय के पात्र हैं सरदार गंडासिंह जी—जो इस इतिहास के लिखने के दिनों में खालसा कालेज अमृतसर में 'सिख हिस्ट्री' के रिसर्च स्कालर एवं प्रोफेसर थे और अब पेप्सु में पुरातत्व के डाइरेक्टर हैं। इस बीच में आपने अहमदशाह अब्दाली पर निबन्ध (थीसिस) लिखकर डाक्ट्रेट भी प्राप्त कर लिया है।

उन्होंने अपने कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी समय निकाल कर इस इतिहास के लगभग तीन चौथाई भाग का अध्ययन किया है और फिर अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान करने का अनुग्रह किया है। उनकी सम्मति हम भूमिका शीर्षक में इस इतिहास में प्रकाशित कर रहे हैं।

इस अवसर पर हम सिखों की सर्व प्रिय धार्मिक एवं साहित्यिक संस्था—"शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी" अमृतसर की उस उदारता को भी नहीं भुला सकते हैं जो उसने मुक्त-हस्त से इस इतिहास को छपाने के लिये पांच हजार रुपये की नकद रकम प्रदान करके की है। हम हृदय से कमेटी के पदाधिकारियों और सदस्यों के कृतज्ञ हैं।

फाजिलका व मुक्तसर (तहसील) इलाके के सम्पन्न सरदारों ने भी इस पुनीत कार्य में उत्साहपूर्वक आर्थिक सहायता दी है। यही क्यों बादल के सरदार श्री रघुराजसिंह गुरुराजसिंह जी, झोंडवाली के सरदार श्री जोगेन्द्रसिंह जी और गोविन्दगढ़ के सरदार श्री करतारसिंह जी, बाडीवाला के सरदार लालसिंह जी और गदोंडोब के सरदार ईश्वरसिंह जी और अबलखराना के सरदार टेकसिंह जी ने अपना समय देकर इस काम के लिये आर्थिक सहायता संग्रह कराई। जिन-जिन लोगों ने इस कार्य में हमें सहायता दी उनकी सूची इस इतिहास के अन्तिम पृष्ठों में प्रकाशित कर रहे हैं।

नामधारी सिखों के प्रसिद्ध विद्वान संत इन्द्रसिंह चक्रवर्ती ने प्रस्तावना के लिये कुछ शब्द लिखने का अनुग्रह किया है हम उनके भी कृतज्ञ हैं।

दरबार साहिब पटियाला द्वारा प्रकाशित 'गुरुशब्द रत्नाकर' महान् कोष के लेखक व प्रकाशक के हम इसलिये कृतज्ञ हैं कि उसके चित्रों के आधार पर हमने कुछ चित्र इस इतिहास के लिये तैयार कराये हैं।

श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला ने जो कि समस्त आर्य्य, (हिन्दू) धर्मों की एकता के प्रबल समर्थक हैं तथा जिन्हें सिख भी अपने मित्र की दृष्टि से देखते हैं, इसका समर्पण स्वीकार किया है इससे हमें पूर्ण प्रसन्नता और संतुष्टि है।

यह कहने में हमें प्रसन्नता होती है कि इसके लिखाने का गौरव पंजाब की प्रसिद्ध संस्था साहित्य-सदन अबोहर को है और प्रकाशित कराने का श्रेय ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया को। इन दोनों ही संस्थाओं से हमारा सम्बन्ध है और दोनों का ही इस शुभ काम में सहयोग है।

—केशवानन्द

सिख इतिहास की विषय सूची

चित्र-सूची

पंजाबी प्रेस सदरबाजार दिल्ली के सौजन्य से महाराजा रणजीतसिंह, बाबा फूलसिंह, गुरु रामदास जी, बलिदान, गुरु गोविन्दसिंह जी, गुरु नानकदेव जी, हरिसिंह नलुवा, बाबा दीपसिंह जी तथा शहीद बन्दा बहादुर के चित्रों के डिजाइन प्राप्त हुए है जिनके आधार पर ब्लाक बनवा कर इस इतिहास में चित्र दिये गये हैं। अत हम प्रेस मालिकान के कृतज्ञ है। उक्त चित्रों का कापी राइट पंजाबी प्रेस को ही है।

प्रकाशक—

पहला अध्याय

गुरु नानक से पहले का भारत

इस वात से प्रत्येक भारतीय जानकार है कि गुरु नानक देव जो महाराज का जिस समय जन्म हुआ था, उस समय हिन्दू धर्म और भारत देश एक भयकर खतरे मे से गुजर रहे थे। काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और विलोचिस्तान से लेकर आसाम तक सारा देश उन लोगों की हुकूमत मे था जो न तो भारतवासी ही थे और न इस देश के वाशिन्दों के सहधर्मी ही। वे मगोल, तुर्क, ईरान और अफगानिस्तान प्रभृति देशो के उन भारत-विजयी लोगों की सन्तान थे जिन्होंने गुरु नानकदेव जी से ५००-६०० वर्ष पूर्व से भारत मे—लूट खसोट और स्वधर्म प्रचार के लिये आना आरंभ किया था और फिर जीवन निर्वाह की सुविधाये—स्वदेश की अपेक्षा अधिक मात्रा मे—यहाँ पाकर वस जाना उचित समझा।

इनमे अधिकांश अपने धर्म के पक्के और दूसरे धर्मों के प्रति घोर तास्सुवी थे। शासकों की अपेक्षा इनका पुरोहित वर्ग जो काजी और मुल्लाओं के नाम से अभिहित होता था—दूसरे धर्मो के प्रति अधिक असहिष्णुता के भाव रखता था। हालाकि इन लोगों ने हिन्दुस्तान को अनेक अच्छे खयालात और कला कौशल के ज्ञान दिये किन्तु धर्म-प्रसार के इनके जो ढग थे वह मानवता की सीमा स वहुत परे और हृदय हिला देने वाले थे यही कारण था कि हिन्दुओं की उस समय की दशा खाडव-वन के उन जीव धारियों की जैसी थी जो दावानल से धांय-धाय जल रहा था।

भारत देश और हिन्दू जाति के इन जलते-वलते दिनों मे भी यह वात नहीं थी कि हिन्दू राजाओं के राज्यों से देश शून्य था। गणना के लिहाज से तो उस समय भी लगभग आधे देश मे राजपूत नाम से मशहूर होने वाले अनेक हिन्दू खान्दान राज करते थे। ये सव मिलकर चाहते तो उन अत्याचारों को खत्म भी कर सकते थे और भारत को स्वतन्त्र भी किन्तु यह लोग ऐसा न कर सके, (उलटा) हुआ यह कि इन्होंने परस्पर एक दूसरे की स्वतन्त्रता अपहरण कराने के लिये देश को रौंदने वाले और हिन्दू धर्म को ध्वंस करने वालों का साथ दिया। यह (राजपूत) लोग आपस मे ऊँच-नीच के भावों से यहा तक ओत-प्रोत थे कि एक दूसरे की अधीनता एव अनुशासन मे रहना अपनें वंश की हेटी समझते थे किन्तु विधर्मी शासकों के साथ इनमे से अनेकों ने लड़की देने मे भी वंश मर्यादा का लोप न समझा। हमें यह कहने मे कोई हिचक नहीं है कि मराठा और सिखों के उस प्रयत्न मे भी इन लोगों द्वारा वाधा

पहुँची जो उन्होंने हिन्दू पादशाही स्थापित करने के लिए किया था। और यही कारण है कि भारत को राजनैतिक मुक्ति दिलाने और हिन्दू धर्म को इस्लाम की धधकती लपटों से बचाने के लिए गुरु नानकदेव जी के दशवे उतराधिकारी गुरु गोविन्दसिंह जी को एक नई जाति (खालसा) की स्थापना करनी पड़ी।

गुरु नानक जी से पूर्व भारत की वास्तविक दशा बताने के लिए हमे कुछ अधिक लम्बाई के साथ चर्चा करनी पडेगी।

६०० ई० से १२ वीं सदी तक

इतिहासकारों के मत से ईसा की छठी सदी से लगाकर बारहवीं सदी के बीच का समय राजपूत काल माना जाता है। क्योंकि इस बीच मे भारत मे जितने भी शासक खान्दान थे वह सब अपने को राजपूत कहते थे और यह भी सही है कि इन छ सौ वर्षो तक भारत मे राजपूतों का ही वैशिष्ट्य रहा। वैसे इसके बाद भी और कल तक राजपूतों के भारत मे अनेकों राज्य रहे हैं किन्तु ये समय उनकी खुद मुख्तियारी के समय नहीं कहे जा सकते। सर्वोपरिसत्ता उनकी बारहवीं सदी से आगे नष्ट हो गई। भारत के इतिहास मे इन छ सौ वर्षों को हिन्दू काल भी कहा जाता है उसका कारण यही है कि हिन्दू नाम से अभिहित होने वाले धर्म और जाति इन्हीं ६०० वर्षो में इस रूप को प्राप्त हुए थे इन्ही छ सौ वर्षो में बौद्ध और जैनधर्मों का खात्मा किया गया था।[१] हमारा मौजूदा हिन्दू-समाज बौद्ध-जैन धर्मों के नष्ट किये जाने के बाद का निर्माण किया हुआ ही है। ये दोनो भी आर्य्य धर्म के ही अग थे और आर्य्य कुमारों द्वारा ही[२] प्रादुर्भित भी हुए थे किन्तु कुछ अशों मे ब्राह्मण विरोधी होने के कारण इनके साथ ब्राह्मणों का संघर्ष छिड़ गया। ब्राह्मण अपने प्रयत्न मे सफल हुए और उन्होंने बौद्ध धर्म का तो भारत से निशान ही मिटा दिया। थानेश्वर के प्रसिद्ध राजा हर्षवर्द्धन शिलादित्य के बाद बौद्धो मे कोई बडा राजा शेष न रह गया था। सिन्ध और काबुल के प्रदेशों के जो छोटे-छोटे बौद्ध राजा थे वह भी ब्राह्मणों ने राजच्युत कर दिये। बौद्ध धर्म को छोड़ कर जो क्षत्रिय खान्दान ब्राह्मण धर्म स्वीकार कर लेते थे वे राजपूत नाम से अभिहित होते थे। नये ऐसे समूह भी जो प्राचीन क्षत्रिय वशों के तो उत्तराधिकारी न थे किन्तु जिन्होंने ब्राह्मण धर्म को स्वीकार कर लिया और राजशक्ति भी प्राप्त कर ली वे भी राजपूत दल मे शामिल कर दिये गये। अग्नि वंशी राजपूतो के लिए भी इतिहासकारों का ऐसा ही खयाल है। अनेक स्थानो पर बौद्ध राज्यों को नष्ट करके ब्राह्मण लोग खुद भी शासक बने। सिन्ध के साहसीराय[३] और काबुल के लल्लिय बौद्ध राजा को हटाने के बाद क्रमश चच और साम्वन्त नाम के ब्राह्मणो के अधिकार कर लेने की बात काफी प्रकाश मे आचुकी है। आगे चलकर ऐसे ब्राह्मण शासक खान्दान भी राजपूत समुदाय में ही मिल गये। इस तरह से इन छ सौ वर्षों मे बौद्ध धर्म और साम्राज्य के भवन को ढहाकर जो इमारत खड़ी की गई थी वह हिन्दू-धर्म और राजपूत-साम्राज्य के नाम से मशहूर हुई।

यह छ सौ वर्ष का समय भी ऐसा समय नहीं था जिसे हम भारत के लिए एकता और शांति का समय कह सके। बाहरी तौर से हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की रचना अवश्य इस समय मे हो रही थी[४]

१ जैन धर्म कुछ ससकती अवस्था में भारत में अभी भी शेष है। —लेखक

२ देखो हिन्दू मिडीवल इण्डिया अथवा भारतीय सस्कृति का इतिहास।

३. मौजूदा हिन्दू धर्म बौद्ध धर्म के बाद का है। जो कि कुछ अशो में वैदिक की भी छाया है। और यह उन समस्त बौद्ध-जैन विरोधी सम्प्रदायो का सगठन है जो शैव, शाक्त, वैष्णव आदि नामो से प्रकट हुए थे।

४. देखो चचनामा

किन्तु अनैक्यता, भिन्नता और विद्वेष की अग्नि अन्दर ही अन्दर काफी सुलग रही थी। आठवीं सदी में सिन्ध को चन्द अरबों ने जीत लिया था। इसका एक कारण— और भारी कारण—यह भी था कि सिन्ध के जाट, लुहाने और दूसरे इसी प्रकार के लोगों ने सिन्ध के राजा दाहिर का साथ नहीं दिया। देते भी क्यों जबकि दाहिर के बाप चच ने उनके साथ केवल इस कारण से कि वे बौद्ध थे पशुओं का सा व्यवहार किया था। उनके लिये घोड़ों पर चढ़ना हथियार बांधना और सुन्दर वस्त्र पहनना तक निषद्ध करार दे दिया था।[1] मुहम्मद कासिम चन्द अरबों से सारे सिन्ध को जीत ले और पंजाब की ओर भी बढ़ जाय यह कम आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु वास्तविकता तो यह है कि सिन्ध और पंजाब का जनसमूह उस समय एक कब था जो विदेशी आक्रान्ता का मुकाबिला करता। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत इन छः सौ वर्षों में एकता के सूत्र में तनक भी न पिरोया जा सका था किन्तु हुआ यह था कि वह छोटे-छोटे टुकड़ों—जाति-पाँति और सम्प्रदायों में बंट गया था।

पिछले एक हजार वर्ष

गुरु नानक देव जी के जन्म से पहिले का एक हजार वर्ष का लँबा समय भारतवर्ष के लिये निहायत ही बुरा समय कहा जा सकता है कासिम, गजनवी, गोरी और तैमूर जैसे आक्रान्ता भारत के इस सिरे से घुसते हैं और मध्य तक मार पीट कर लूटते खसोटते चले जाते हैं, साथ ही जब विदा होते हैं तो इस देश के लूट के माल को भी इसी देश के आदमियों के सिर पर रखवाकर ले जाते हैं। मन्दिरों को ढहा देते हैं। मूर्तियों को चूर कर देते हैं। माँ, बहिन और बेटियों को भेड़ों और बकरियों की भाँति हाँक ले जाते हैं किन्तु राष्ट्र की आत्मा नहीं तिलमिलाती है उसका पुरुषत्व नहीं जागृत होता है। और न वह अपमान से जमीन में गड़ता है। यह क्या बात थी? ऐसा क्या था? आज यह बात हमारे दिमाग को परेशान कर डालती है। वास्तव में बात यह है कि उस समय राष्ट्रीयता तो थी ही कहाँ? लोग राष्ट्र का तो नाम तक न जानते थे। समस्त राष्ट्र (देश) के लिये सोचने वाला कोई न तो उस समय व्यक्ति ही था और नाहीं कोई सम्प्रदाय और पंथ। प्रत्येक व्यक्ति केवल अपनी चिन्ता करता था समिष्ट-वाद कतई नष्ट हो चुका था। अपनी चिन्ता भी केवल मुक्ति की। स्वच्छता और स्वस्थता की नहीं। शरीर को नाशवान मानकर "एक दिन मिट्टी में मिल जाना है क्यों धोता नर कंकाल को" इस लकक्ति को लोग अपना सिद्धान्त बनाये हुये थे। ग्यारहवीं सदी के अरब यात्री अलबरूनी ने बताया है कि लोग शरीर और घरों की शुद्धता की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। नाखूनों को बढ़ाये रहते हैं। साधु और पुजारी कहे जाने वाले लोग तो और भी मैले कुचैले रहते हैं।

उस समय के धर्म ने भारत को निराशावाद की अतुल सपति दी हुई थी। संसार उनके लिये मिथ्या और परिवार भार रूप था। हालांकि इन मिथ्या संसार में ही वे सब प्रकार के आनन्द भोगते थे, गीता का सुन्दर उपदेश कौन किसको मारता और कौन मरता है? बिल्कुल उल्टे रूप में माना जा रहा था। आत्म-विश्वास और स्वावलंब कतई नष्ट हो चुके थे। भयंकर से भयकर और छोटी से छोटी आपत्ति को ईश्वर का कोप समझते थे, "ईश्वर को ऐसा ही करना था, उसकी मर्जी के आगे पेश नहीं जाती है।" यह उस समय हिन्दू जाति का मोटो था। भूत, पिशाच, देवी देवता और अदृश्य पर उनका

[1]. देखो चचनामा।

भारी विश्वास था। मुहम्मद कासिम ने जब सिन्ध को घेरा तो युद्ध के पहले ही भविष्य वाणी कर दी गई कि लड़ाई करना व्यर्थ है अरबों से जीता न जा सकेगा। पृथ्वीराज रासो में भी इस बात की झलक है। अदृश्य वाणी पृथ्वीराज को भी सूचना देती है कि तुम्हे गोरी से हारना पड़ेगा। भागवत पुराणादि धार्मिक ग्रन्थों मे भी भारत के भविष्य को पहले मे ही अंकित कर दिया गया था। यह भविष्य कथन किया तो इसलिये जाता था कि भविष्य वक्ताओं का मान बढे किन्तु हिन्दू जाति का इन भविष्य कथनों से जो अपार घाटा होने को था उसका किसी भी भविष्य वक्ता ने खयाल नहीं किया ? करते भी क्यों जबकि उनके दिल मे समिष्टि के हित का कोई खयाल ही न था। इस तरह मे यह तेतीस करोड की जन-सख्या रखने वाला भारत देश अंधविश्वासो और विभिन्न सम्प्रदायों और जातियों के कारण कपास के पौदों की तरह बॅटा हुआ था। जत्थेवन्दी की तो कोई भावना देश मे थी ही नहीं। अधिक से अधिक इतना कहने भर को जत्थे वन्दी थी कि हम अमुक सप्रदाय और पथ के हैं। पथ और संप्रदायों मे भी लोग इसलिये थे कि वे मुक्ति दिलाने मे सहायक होंगे। परलोक का रास्ता बतावेंगे इस तरह यह परलोक का भूखा भारत इहिलोक मे पुरुपत्व हीन और "अनार्य्य जुष्टम कीर्ति कर्म" जैसा जीवन विता रहा था।

इस स्थिति का इतिहास

भारत देश मे इस प्रकार की हीन और नाकाविले वर्दास्त हालत पैदा क्यों हो गई थी। इस वात का कुछ इतिहास पेश करना अच्छाही होगा। क्योंकि इससे असलीयतको समझनेमे भी सहायता मिलेगी।

साकेतिक तौर पर यह हम पहले ही वता चुके हैं कि बौद्ध और जैन धर्मों ने ब्राह्मण वर्ण के खिलाफ काफी प्रचार किया था जैनों ने ब्राह्मण वर्ण ही को उडा दिया था। केवल—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र–तीन ही वर्ण रक्खे थे। उन पर टैक्स भी लगा दिये थे। अत ब्राह्मणों ने भी अपनी मान मर्यादा को कायम रखने के लिये प्रयत्नों मे कोई कसर न छोड़ी। एक समय आया कि बौद्ध धर्म गिरने लगा। उसके गिरने के कारणों मे उसकी आन्तरिक कमजोरी ने भी साथ दिया। आन्तरिक कमजोरियों मे दो कमजोरी मुख्य है। क भिक्षु और भिक्षुनिओं मे संयम का वाध टूट जाना दूसरे बौद्ध राजाओं का युद्ध से घबराना, कारण कि युद्ध मे जो नर सहार होता था उससे वे अपने अहिन्सा सिद्धान्तो के कारण घबराते थे। ब्राह्मण प्रचारकों ने बौद्ध और जैन राजाओं की इन दोनो कमजोरियों से लाभ उठाया। मगध, अग, वग और कलिंग के बौद्ध राजाओ को उसके ब्राह्मण-धर्मी वजीरों ने गद्दी से उतार दिया। मालवे और मध्य भारत मे यही हुआ। नन्द, मौर्य्य वज्जियन, वर्द्धन और आन्ध्र लोगों के स्थान पर पुष्यमित्र, कन्व और गुप्त आदि नये वंश प्रकट हुए। जिन्होंने वडे वडे अश्वमेघ यज्ञ भी किये ताकि उनके—धारण किये हुए नए धर्म का और भी अधिकाधिक प्रचार हो।

उत्तर काल में समस्त भारत मे इस नवधर्म से मंडित राज-वशो का राज्य हो गया। जो शिशोदिया, राठौर, चौहान और सोलंकी आदि नामों से प्रसिद्ध हो चुके थे। इतनी वड़ी राजनैतिक सफलता प्राप्त करने में ब्राह्मण और बौद्ध धर्मावलंवियों में संघर्ष भी काफी हुए। रक्त पात भी हुए किन्तु हमे उन समस्त घटनाओं पर प्रकाश नहीं डालना है। हॉ, इतना अवश्य कह देना है कि इस प्रकार की राजसत्ता प्राप्त कर लेने से ब्राह्मणों ने अपने उस खोये हुए वैभव से अधिक (पुन.) प्राप्त कर लिया जितना कि वे बौद्ध और जैनों के समय मे खो चुके थे।

राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के प्रयत्नों के अलावा ब्राह्मणों के उन प्रयत्नों का भी कम महत्व नहीं है जो उन्होंने जैन और बौद्धों के महान् दार्शनिक ज्ञान को पीछे हटा देने के लिए किया था। जैन-बौद्ध दर्शनों मे ईश्वर, जीव और प्रकृति के सम्बन्ध मे अत्यन्त गहराई मे पैठ कर जो सिद्धान्त स्थिर किए गये हैं उनके स्थान पर उतने ही उज्वल दार्शनिक खयालात बिना पेश किए जैन और बौद्ध पडितों को परास्त नहीं किया जा सकता था। उत्तर बौद्ध-काल मे इस ओर किया गया ब्राह्मणों का प्रयत्न भारत ही नहीं अपितु ससार के लिए एक अलभ्य प्रयत्न है। यह प्रयत्न षट-दर्शन के रूप मे आज ससार के सामने है। आधुनिक भारत के समस्त सम्प्रदायो मे जो भी सार-पदार्थ है वह इन षट-दर्शनो की छाया प्रतिच्छाया है।

किन्तु, दर्शनो के ऊंचे ज्ञान सर्व साधारण की समझने की चीज नहीं होते है, इसलिये ब्राह्मणो का यह महान ज्ञान भी काशी और कश्मीर के पंडितों तक—सो भी केवल वाद-विवाद की वस्तु के रूप मे—रह गया। जैन और बौद्ध धर्मों के भी समस्त अनुयायी उस उच्च ज्ञान को नहीं जानते थे जो उनके दर्शनो मे है। प्राय. समस्त बौद्ध लोग अपने धर्म मे आस्था प्रकट करने के लिए महात्मा बुद्ध की चरण-प्रतिमाओं की पूजा किया करते थे। जैन लोग भी स्वामी पार्श्वनाथ और महावीर जी की सुसज्जित एवं नग्न मूर्तियों को पूज कर अपने अटल-धर्मप्रेम का परिचय देते थे। इस तरह से ये दोनों धर्म सामूहिक रूप से पौत्तलिक (मूर्ति पूजक) धर्म थे। इनकी प्रति स्पर्द्धा मे खड़े किए गये नवीन हिन्दू धर्म मे भी आगे चल कर मूर्ति पूजा को स्थान मिल गया। शकराचार्य और कुमारिल भट्ट के बाद जो सत इस धर्म को आगे बढ़ाने वाले हुए उन्होने अपने २ इष्ट देवों को पूजा के लिए लाकर खड़ा कर दिया।

वेदों मे परमात्मा को ब्रह्मा (सृजन कर्ता), विष्णु (पालन कर्ता) और शिव (कल्याण कर्ता) के नामों से याद किया गया है। उसके इन त्रिरूपों के आधार पर उनकी मूर्तियां मन्दिर और मठों मे स्थापित कर दी गई। प्रकृति के उपासकों ने माया, महामाया और इस प्रकार जगदम्बा आदि की मूर्तियां कायम कर लीं। मूर्ति पूजा का यह पहला रूप था जो बौद्धों के प्रतिरोध मे नवीन हिन्दू समाज ने ग्रहण किया।

जैन लोगों मे पूर्व-भव (पुराने जन्म)की बाते बताने का बड़ा रिवाज था। कह नहीं सकते भारत मे यह रिवाज वे कहां से लाए थे क्योंकि भारत के वैदिक, स्मार्तक और औपनिषधक किसी भी समय मे यह-पूर्व भव बताने की प्रथा न थी। इस तरह से अपरिपक मस्तिष्क के लोगों पर बड़ा असर पड़ता था। ब्राह्मण वर्ग द्वारा निर्मित नये हिन्दू धर्म मे भी कुछ हेर-फेर के साथ इस रिवाज को ग्रहण कर लिया। हाथ की रेखाओं को देख कर भूत भविष्य की बाते बताने की कला ईजाद कर ली गई जिसे सामुद्रिक शास्त्र का नाम दिया गया। कहा गया कि महेश से यह विद्या समुद्र ने सीखी थी। महेश के मानी लोग उस शिवजी के समझते हैं जो इतिहासो मे असुरों के साथ लड़ता हुआ अथवा उन्हे वर देता हुआ वर्णन किया गया है। वास्तव मे मौर्यों से पहले नन्द काल मे महेश एक प्रसिद्ध वैयाकरण गुजरा है समुद्र नाम का पंडित उसका शिष्य था। पाणिनी से कुछ ही पहले महेश वैयाकरण हुआ है। इसके साथ ही कुग्रहों और कुमुहुर्तों के अनिष्ट को भी गणित ज्योतिष मे शामिल कर लिया। भविष्य जानने के लिये स्वभावत उत्कंठा होती है।

शरीर शास्त्र के अनुसार यह बात आश्चर्य की नहीं कि नाक के दो नथुनों से बारी-बारी से हवा का आवागमन होता है। शरीर के भीतर प्रवाहित होने वाली वायु का रक्त गति से सम्बन्ध होने के कारण उसका शरीर और मन पर भी सुस्ती फुर्ती आलस्य और नींद एवं उत्साह अनुत्साह के रूप मे असर पड़ता

है। दाँया स्वर चलता हो तब स्फूर्तिवान और बाँया चलता हो तो सुस्ती दायक गति होने के कारण कार्यों मे कुछ लोग इसका खयाल रखते थे आगे इसी को बढा कर सगुन की प्रणाली डाल ली गई।

इस तरह से हिन्दू समाज ब्राह्मणों के दिये हुए उच्च दार्शनिक ज्ञान से तो निरन्तर वंचित होता गया और वह प्रत्येक बुद्धि हीनता और अकर्मण्यता के जाल में फंसता गया। मूर्ति पूजा यहां तक बढ़ी कि शिव, विष्णु और ब्रह्मा का स्थान राम, कृष्ण ने लिया और फिर चामुण्ड, भैरवों, चंडी, भुमिया आदि के रूप मे आ गई। आगे की मन्दियों मे तो हालत यह हुई कि प्रत्येक गांव मे एक चामुण्ड का एक भैरो का एक महादेव का एक रामकृष्ण का और एक हनुमान का मठ बनाना जरूरी हो गया। चामुण्ड को गाव की रोग धोग से रक्षा करने वाली, भैरो और हनुमान को भूत जिन्नो से बचाने वाले, महादेव को सम्पत्ति देने वाला और रामकृष्ण को वैकुण्ठ धाम पहुँचाने वाला की दृढ़ कल्पना हृदयों मे जमा ली गई चेचक के निकलने पर देवी माता का नाराज हो जाना और कगाल होने पर शिवजी का कुपित होना माना जाने लगा था। इन मठो मे जो लोग नियुक्त रहते थे वे जतर, मंतर, जप, जाप, और अनुष्ठान से रोगों को दूर करने और देवताओं को प्रसन्न करने का काम करते थे। लोग यहाँ तक विश्वास करने लग गये थे कि शत्रु के आयु, बल, कुटम्ब और धन का नाश भी इन अनुष्टानों और जप, तपों से किया कराया जा सकता है। कौन नहीं जानता कि महमूद गजनवी के सोमनाथ को चूर-चूर कर देने तक यही कहा गया था कि वे स्वत ही यवनो का नाश कर देंगे। लडने की क्या आवश्यकता है। शिवाजी जैसा बहादुर और चतुर आदमी भी लड़ने से पहले देवी के मदिर मे घुटने टेकने जाया करता था। इस तरह का अन्ध विश्वास पूरी गहराई के साथ ईसा की आरभिक सदियों से गुरु नानक जी के जन्म काल तक फैल चुका था।

संतों के हाथ बागडोर

बौद्ध और जैन धर्मों का मुकाबिला और विनाश केवल ब्राह्मण अथवा हिन्दू राजाओं ही ने कर दिया हो, ऐसी बात नहीं है। इसमे अनेकों उन गृह त्यागी साधु सतो का भी हाथ था जो जैन यतिओं अथवा बौद्धभिक्षुओं की भाँति घरबार और समस्त सुखो को छोड कर त्यागी होचुके थे, स्वामी शंकराचार्य जी उन बौद्ध भिक्षुओं की जानकारी भी प्राप्त कर चुके थे जो बिना ही ज्ञान और योग्यता के भिक्षु बन जाते थे और अपनी युवा अवस्था के झकोरों मे सयम करने मे भी विफल सिद्ध होते थे। अत उन्होंने साधू बनने के कुछ कडे नियम व प्रतिबन्ध रक्खे। स्त्रियो के साध्वी बनने के रिवाज को तो उन्होंने कतई उठा दिया था। साधु बनने का अधिकार भी उन्होंने केवल द्विजों के लिये ही रक्खा। शायद वे समझते होंगे कि द्विज जातिया तो शिक्षित होना अपना अटल नियम बनाये रक्खेगी किन्तु सखेद कहना पड़ता है कि ऐसा हुआ नहीं, द्विजों में भी आगे के समय मे तो अधिकाश समूह निरक्षर ही रहता रहा। और इन द्विजो मे से साधु सत बनने वाले भी अधिकाश निरक्षर ही रहते थे। समाज के पास इन सतों का सम्पर्क ब्राह्मण पुरोहितों की अपेक्षा अधिक था और ब्राह्मण वैसे भी अपनी अनन्तकाल से चली आई आदत के अनुसार यजमानी के काम मे ही लगे रहते थे। उपदेश का प्राय सारा भार इन साधु सतों पर ही था। परिव्राजक और स्थानिक इनके दो मुख्य समूह थे। इस प्रकार जनता की मनोवृत्ति के संचालन की बागडोर प्राय: इन साधु संतों के हाथ आ गई थीं। इनमे पढ़े लिखे और निरक्षर—जैसा कि ऊपर कह चुके है दोनों प्रकार के होते थे और अधिकाश मे तो अनपढ़ ही होते थे। फिर भला समाज का कहा तक

कल्याण इन लोगों के हाथों हो सकता था। श्रद्धा के कारण जनता से इन्हे पैसे भी काफी मिलते थे अत. भांग, गांजा और चरस के दम लगाने का दुर्व्यसन इन लोगों मे घर कर गया। आगे इन लोगों ने अखाड़े कायम कर लिये। भिक्षु संघ की तरह नागा लोगो के अखाड़ों की सख्या भी वढने लगी। पौत्त-लिक धर्म को इन लोगों ने ब्राह्मणों की अपेक्षा कहीं वहुत ज्यादा उत्तेजन दिया।

किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इन साधु सतों मे से सव ही एक से निकले, कुछ तो इतने ऊँचे चरित्र और खयालात के थे जो अपना नाम धार्मिक इतिहास मे अमर कर गये हैं। इन्हीं प्रसिद्ध सतों मे से कुछेक के मन्तव्य और कार्य्यों का यहा हम दिग्दर्शन करना चाहते हैं। किन्तु उससे पहले हम यह भी कहना चाहते है कि स्वामी शकराचार्य्य की साधु होने सम्वन्धी जो प्रणाली थी उनमे गुरु नानक जी ने एक ऐसा संशोधन किया जिसके कारण एक परिवर्तनकारी रख इस प्रथा मे हो गया। उन्होंने अपनी विलक्षण और भविष्य निर्धारणी मेधा से सोचकर स्पष्ट ऐलान किया कि यह काई आवश्यक वात नहीं है कि परमेश्वर अथवा सद्‌गति घर को छोड देने ही से प्राप्त हो सकेंगे। महात्मा कवीर भी इसी सिद्धान्त के संत थे। पूरा विवेचन तो इस प्रसग पर आगे के पृष्ठों मे करेंगे। यहा तो केवल उन थोडे से संतों के कार्यों पर प्रकाश डालते है जिनका कि हिन्दू समाज के अग प्रत्यग पर एक वड़ा भारी प्रभाव पड़ा था और जिसके कारण उसे सुदिन और कुदिन भी देखने पड़े थे।

शकराचार्य्य जी के दस शिष्य थे वे दशनाम से मशहूर हैं। इनमें से चार तो मठाधीश हुए। इन मठों में शिव मूर्ति की उपासना की जाती है क्योंकि इन शिष्यों का खयाल था कि स्वामी शंकराचार्य जी साक्षात शिवजी का अवतार थे। शेष छ. ने नास्तिक पथ का अनुकरण किया। यह घटना दसवीं शताब्दी की है। कहा जाता है रामानुज शंकराचार्य जी के भानजे और शिष्य थे उन्होंने शकराचार्य जी से कहा था कि आपका पंथ मुझे नहीं रुचता उसमें कुछ सुधार होना चाहिए। स्वामी शकराचार्य जी के वाद स्वामी रामानुज जी ने अपना पथ अलग से चलाया। इस पथ मे प्राय. ब्राह्मण ही लिये जाते थे। उनके आचार सम्वन्धी कुछ कठोर नियमों का भी निर्माण किया। उपासना शिवजी की वजाय विष्णु की रक्खी। तिलक, माला छाप का भिन्न प्रकार के साम्प्रदायिक चिह्न नियत किए। रामानुज कहते थे कि निराकार ईश्वर का चिन्तन सर्व साधारण के लिए असम्भव है। अत उसका रूप और स्वभाव निश्चित करना आवश्यक है। अत उन्होंने विष्णु की कल्पना श्वेत वस्त्रधारी और श्वेत भोजन वादी के रूप मे पेश की। इस सम्प्रदाय के लोग भी श्वेत वस्त्रों को ही अधिक पसंद करने लगे और विष्णु मूर्तियों के सामने भोग भी सफेद—खीर, दही, मिश्री और पेड़े आदि पदार्थों का ही लगने लगा।

रामानुज

रामानुज ने विष्णु पूजा के अलावा अपने सम्प्रदाय मे गुरु पूजा भी प्रचलित की। तन, मन, धन सव गुरु चरणों पर अर्पण की प्रवृत्ति शनै. शनै पराकाष्ठा पर उनके सम्प्रदाय मे पहुँच गई। इसका फल यह हुआ कि लोगों की स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने की वुद्धि कतई तौर से नष्ट हो गई। कर्मवाद की फिला-सफी पीछे पड़ गई। अन्ध विश्वास घोरतम रूप से फैल गया। स्वामी रामानुज का यह समय ११-१२ वीं ई० सदी का है।

स्वामी रामानुजचार्य का यह मत वैष्णव मत के नाम से मशहूर हुआ। इसे प्रचारित करने के लिये आपने शकराचार्य के अद्वैतवाद और शैवों के मायावाद के विरुद्ध काफी प्रचार किया था। उन्होंने अपने ही समय मे ७०० विष्णु मन्दिर वनवा दिये थे।

ईश्वर जीव और प्रकृति को नित्य मानते हुए भी आपने ईश्वर के अवतार लेने की कल्पना रक्खी थी। दुष्टों के संहार और धर्म की स्थापना के लिए परमात्मा शरीर धारण करता है। सम्भव है इस कल्पना से स्वामी रामानुज शैवो के मुकाबिले मे अपना सम्प्रदाय बढ़ाने मे सरलता से सफल हुए हों किन्तु सर्व साधारण को इस सिद्धान्त के अपनाने से हानि भी हुई। दुष्टो के स्वत. दंड देने की प्रवृत्ति उनके अन्दर से नष्ट हो गई और इसका फल यह हुआ कि जब विदेशी आक्रान्ताओं ने बुरे से बुरे कृत्य इस देश मे किये तो लोग इस आशा से बर्दाश्त करते रहे कि इन दुष्टों को परमात्मा स्वयं भुगत लेंगे।

छूत,छात और आचार विचार से रहने का सिद्धान्त व्यक्तिश' अच्छा हो सकता है। किन्तु समाज के टुकडे करने और नीच ऊँच के भाव पैदा करने मे भी स्वामी रामानुज जी के इस सिद्धान्त ने कुछ कम काम नहीं किया। दक्षिण मे तो जहां कि स्वामी रामानुज पैदा हुए थे इस सिद्धान्त का इतना घातक प्रभाव पडा कि अछूत लोगों की छाया पडने से ही लोग अपने को अपवित्र मानने लगे। वहा अब तक तालाबों से इतनी दूर होकर अछूतों को गुजरना पड़ता है कि उनकी छाया तालाब तक न पहुँच जाय।

रामानुज के बाद दूसरा नाम जो धार्मिक जगत में आता है वह स्वामी रामनन्दजी का है। आपने 'श्री' या लक्ष्मी सम्प्रदाय की स्थापना की और आगे चलकर यही विष्णु लक्ष्मी अथवा राम सीता या कृष्ण राधा की पूजा के रूप मे परिवर्तित हो गई। कहा जाता है स्वामी रामानन्द जी ने सभी जातियों को वैष्णव होने का रास्ता खोल दिया था। इस तरह से प्रायः सारे ही भारत मे वैष्णव मत फैलने मे समर्थ हुआ। आपके पीछे माधवाचार्य, वल्लभाचार्य और निम्बकाचार्य ने कुछ ही हेर फेर के साथ इस पंथ को और भी उत्तेजन दिया। रामानन्द जी मूर्ति पूजा के पक्षपाती थे किन्तु माधव, वल्लभ और निम्वार्क ने मूर्ति पूजा का बहुत ज्यादा प्रचार किया।

रामानंद

विष्णु के स्थान पर रामचन्द्र जी की पूजा का प्रचार स्वामी रामानंद जी के ही समय से आरंभ हुआ था। रामचन्द्र और सीता जी क्रमश विष्णु और लक्ष्मी का अवतार है यह कल्पना स्वामी रामानद जी के समय मे आरम्भ हुई और आगे की सदियों मे तो इस प्रकार से लोगो के दिमाग मे घर कर गई कि यह ज्ञात होने लगा मानो कल्पान्तर से यह बात सही है।

शकर मत रामानुज औ रामानन्द प्रभृत्ति सतों के उपदेशों और सिद्धान्तों से मिट गया तो ऐसी बात नहीं। हो यह रहा था कि दिन पर दिन नये सम्प्रदाय बढ़ते जा रहे थे। दस नाम के स्थान पर शकराचार्य के अनुयाइयो के ही लगभग १०० फिरके बन चुके थे कोई उनके अद्वैतवाद को लेकर अलग पथ चला रहा था तो कोई योग मार्ग को लेकर। पजाब मे प्रकट होने वाले गुरु गोरखनाथ जी ने योग धर्म का ही प्रचार किया। रामानुजी लोगो के जैसे सख, चक्र, गदा पद्म के चिह्न थे गोरखनाथी लोग गले मे रुद्राक्ष की माला और कानों मे भारी-भारी कुंडल पहनते थे। वस्त्र श्वेत और पीत की अपेक्षा गेरुए पहनते थे। यह गोरखनाथी सतों की पहचान थी। पंजाब प्रान्त मे इस मत का खूब प्रचार हुआ। वास्तव मे गोरखनाथ जी का पथ सिद्धमत और शिव मत का एक मिश्रित रूपान्तर था। चूंकि इस पंथ मे स्त्रियों को भी गुरु मंत्र दिया जाता था अत शिव मूर्ति के साथ पार्वती जी की भी पूजा और उपासना आरंभ हो गई। भारत मे जोगियों की एक बडी भारी जाति गोरखनाथी साधुओं का विकृत रूप है।

गोरखनाथ

मनुष्यता के अधिक नजदीक ले जाने वाला और प्रत्येक मनुष्य के लिए कल्याण के भाव रखने वाला इन संतों मे महात्मा कबीर हैं। कहा तो यह जाता है कि वे स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे किन्तु उन्होंने जो भी कुछ कहा है वह उनका निज का ज्ञान और अन्तर आत्मा की आवाज थी। उन्होंने पौतलिक धर्म के विरुद्ध और अन्य विश्वासों के विरोध मे स्पष्ट आवाज उठाई थी। वे एक धर्म प्रचारक की अपेक्षा समाज सुधारक अधिक थे। द्विज लोग उनसे सदैव असन्तुष्ट रहे। हीन जातियों ने उनके उपदेशों को बडी तत्परता से ग्रहण किया। ईश्वर के सम्बन्ध मे वे अपने विचार अलंकारिक भाषा मे प्रकट करते थे। वे बहुत उदार थे किन्तु व्यक्ति निर्माण के लिए वे भी दूसरे संतों की तरह चुप ही रहे।

कबीर

बंगाल मे चैतन्य स्वामी ने वही किया जो दक्षिण मे रामानुज और मध्य भारत मे रामानन्द वल्लभ प्रभृति संतों ने किया था। आपने राधा कृष्ण की पूजा का प्रचलन किया। आप गा, गा, कर और नाच कर प्रभु भक्ति का प्रचार करते थे। सारा बंगाल आपके रंग मे रगा हुआ था। शक्ति (दुर्गा) पूजा का केन्द्र बंगाल इनके प्रचार से शाक्त और वैष्णव दोनों मतों के रंग मे अद्भुत प्रकार मे रंग गया। इसी प्रकार का ढग मध्य भारत मे वल्लभाचार्य के प्रचार से हुआ। यहां भी लोग मन्दिरों में नाच कूद कर हरि कीर्तन करने लग गये। मन्दिरों मे देवता की राधा रूप से अर्चना करने का रिवाज भी चल पड़ा। पुजारियों की भाति ही मन्दिरों मे पुजारिनों का दल भी बढ़ने लगा। दक्षिण मे देवदासियाँ और ब्रज मे सखियाँ मन्दिरों की शोभा बढ़ाने लगी। यह भक्ति का प्रेम यहाँ तक बढ़ा कि भगवान कृष्ण ही सबके सच्चे पति माने जाने लगे। विवाहित पतियों के लिए स्त्रियाँ यह कहने लग गईं आप तो मेरे शरीर के पति हैं आत्मा के पति आप नहीं। स्त्री पुरुप के नैसर्गिक प्रेम को इस से बड़ा धक्का लगा। तीर्थवासी प्राय. सभी स्त्रियाँ अपने सत गुरुओं की सेवा मे अधिकाश समय बिताने लगीं। कुछ ने शादियां करना भी बन्द कर दिया वह अपने को भगवान कृष्ण की पत्नी मानने लगीं। तन, मन कृष्ण के अर्पण के बाद स्वार्थी साधु अपने लिए कृष्ण का प्रतिबिम्ब बताने लगे। हद यहा तक न रही कुछ पुरुप भी अपने को राधा ललिता और चन्द्रकला समझने लगे। इस तरह ब्रज मे सखी सम्प्रदाय की नींव पड़ी।

चैतन्य

भारत के संतों की बराबर ही मीरा का भी ऊँचा स्थान है उसके भजन और पद हृदयों मे भक्ति का संचार किये बगैर नहीं रह सकते। राना कुम्भा की यह राजमहिषी भी भक्ति आवेश में अपने को कृष्ण की पत्नी का भाव रखती थी। उसने स्पष्ट कहा था "कोई कहो कुलटा कुलीन कोई कहौ कलंकिनी किन्तु मेरे तो गिरधर गुपाल और ना कोई"। मीरा के उज्ज्वल चरित्र और कठिन तप के लिए हमारे हृदय अभिमान से भर जाते हैं किन्तु यह रोग सारे देश मे गलत तरीके पर फैल रहा था और यही तत्कालीन समाज के लिए गर्त की ओर ले जाने वाला भी था।

मीरा

राम और कृष्ण की सपत्नीक पूजा को स्थायित्व और अटल महत्व देने वाले दो महात्मा भारत मे बहुत ऊंचे दर्जे के हुए हैं। एक सूरदास जी और दूसरे तुलसीदास जी। ये दोनों जहाँ स्वय आदर्श थे वहाँ इनके कार्य भी हिन्दू समाज को ऊँचा उठाने वाले सिद्ध हुए है। यद्यपि सिख गुरुओं की भांति इन्होंने कोई रणवीरों का दल खड़ा नहीं किया फिर भी यह हिन्दू जाति को रक्षा का अभेद कवच पहना गए। भक्ति के साथ ही चरित निर्माण की ओर समाज

सूर और तुलसीदास

एवं धर्म सशोधन की इनकी कार्य शैलियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हुईं। भारत के हजारों सम्प्रदायों को एक करने के लिए तुलसीदास का प्रयत्न सर्वोत्कृष्ट प्रयत्न है। उनका रामायण, वैष्णव, शैव, शाक्त, द्वैतवादी और अद्वैतवादी सबका साझे का ग्रन्थ समझा जा सकता है। उसमे जाति देश और समाज निर्माण के लिए सब कुछ है। "सब मे कठिन जाति अपमाना" की आवाज एक हजार के लम्बे अर्से के बाद महात्मा तुलसीदास के ही ग्रन्थ मे दिखाई देती है। भक्ति के साथ वीरता, साहस, धैर्य, उत्साह और पुरुषत्व की शिक्षा केवल तुलसी दास की रामायण मे है। कृष्ण और देवताओं की पत्नी बनने की रुचि रखने वाली स्त्रियों के लिए तुलसीदास ने स्पष्ट कहा "एके व्रत एके दृढ नेमा। तन मन सन पति चरनन प्रेमा" उन्हे वैरागिन बनने की अपेक्षा सद्गृहस्थिनी बनने के लिए मोडने वाले तुलसीदास ही थे।

इस प्रकार सन् ६०० से लेकर गुरु नानक जी के समय तक और भी अनेक संत हुए हैं। जिन्होंने अपने-अपने सिद्धान्तों के अनुसार अनेक सम्प्रदाय स्थापित किये। जिस समय गुरु नानक जी अवतरित हुए थे। उस समय तक भारत का हिन्दू समाज अनेक सम्प्रदायों मे बट गया था दक्षिण भारत, मध्य भारत और उत्तर भारत मे ऐसे हजारों सत समुदाय थे।

और भी संत

इन सम्प्रदायों का देश और समाज पर जैसा असर पडा था वह पीछे के वर्णन से भली प्रकार समझ मे आ सकता है। फिर भी यहा हम बता देना चाहते है कि इन सम्प्रदायों ने जैन, बौद्ध धर्मों मे उत्पन्न हुई नास्तिकता को भले ही दूर कर दिया हो किन्तु ईश्वर के सम्बन्ध मे न तो सही जानकारी ही लोगों को हुई थी और न उनकी भक्ति का ही तरीका आदर्श था। हाँ, सारा देश मूर्ति पूजक हो गया था। सो भी किसी एक देवता की मूर्ति का नहीं। सैकडों और हजारों देवताओ की मूर्तियाँ पूजी जाती थीं। इस तरह से एकेश्वरवाद नष्ट हो चुका था और बहु देव पूजा प्रचलित हो गई थी। इन मूर्ति देवो के चमत्कार और करामातों की विचित्र कहानियाँ भी पुजारी लोग सेवकों को सुनाते थे। इस तरह से सर्व साधारण अन्ध विश्वासी, पराश्रयी और कुण्ठित बुद्धि हो रहा था। रोग, शोक और दु ख सब का आना जाना (आम लोग) इन देवताओं की प्रसन्नता अथवा कोप का फल समझते थे। मारण, उच्चाटन, जन्तर-मतर मे अधिक से अधिक शक्ति का विश्वास होने लगा था। व्यक्ति और समाज का तेज, ओज, बुद्धि, साहस, शौर्य्य और आत्म चिन्तन तथा पौरुष नष्ट हो चुका था। पारस्परिक सहयोग, साहचर्य्य, समाज मे नाम निशान को भी शेष न रह गये थे। सम्प्रदाय भेद, श्रेणी भेद और जाति भेद ने सारे हिन्दू समाज को छिन्न-भिन्न कर रक्खा था यद्यपि देश मे उस समय ३० करोड़ मनुष्य बसते थे किन्तु समान उद्देश्य और समान महत्वाकाक्षाओं वाले तीस लाख तो क्या तीस हजार भी न थे।

प्रभाव

किसी भी कार्य को वे अपने बल और बुद्धि के भरोसे पर न तो आरम्भ ही करते थे और न उसे पूरा कर लेने की अपने मे समर्थ्य ही समझते थे। व्यापार के लिए 'बाहर जाने के लिए' खेत मे बीज बोने के लिए, बच्चों की शादी करने के लिए प्राय' सब ही कामों के लिए सगुन दिखाते थे या मुहूर्त पूछते थे। पहलवानों को यद्यपि कुश्ती अपने ही बल पर लड़नी पड़ती थी किन्तु उसे जीतने का विश्वास रखना पडता था भैरों बाबा की महरबानी पर। दुकानदार को सौदा दुकान से ही बेचना पड़ता था किन्तु विश्वास उसका यही रहता था कि लाभ महादेव की कृपा से ही होगा।

वात यह न थी कि समाज की वागडोर इस समय ब्राह्मणों या साधु सतों के ही हाथ मे हो। अव्वल तो इनमे भी साक्षर और विद्वान लोगों का एक दम घाटा था किन्तु यहाँ पर तो परले सिरे के मूर्ख और ढोंगी हिन्दू जाति के नेता वने वैठे थे। ज्ञान-विज्ञान और वुद्धि का तो नाम निशान भी शेष न रहा था। यह उस समय के भारत की सामाजिक और धार्मिक अवस्था है जव कि निरंकारी गुरु नानकदेव पैदा हुए थे और यह अवस्था सौ पचास वर्ष से पैदा नहीं हुई थी किन्तु यह अवस्था पूरे एक हजार वर्ष से थी। ईसा की छटी सदी से लेकर सोलहवीं सदी तक ज्यों-ज्यों समय वीतता गया हिन्दू जाति की अवस्था भयावह होती गई। इस वीच मे यदि कोई प्रयत्न कुछ उलट फेर करने का भी हुआ तो वह केवल ईश्वर सम्वन्धी विश्वासों और भक्ति के तरीकों मे हेर फेर करने का हुआ। सामाजिक और वौद्धिक विकास को सहायता देने वाला कोई भी प्रयत्न नहीं हुआ।

इस शोचनीय और हृदय द्रावक सामाजिक पतन से भारत देश को जो अपमान सहना पडा एव जो हानि उठानी पड़ी, उसका भी थोड़ा सा जिक्र कर देना हम उचित समझते हैं।

भारतीय समाज के इस प्रकार हत-प्रभ हो जाने से विदेशी अक्रान्ताओ ने खूव लाभ उठाया। 'सूनी भेड़ प्रयाग नहाती है' लोकोक्ति के अनुसार स्वच्छन्दता और निर्भीकता के साथ उन्होंने भारत पर आक्रमण किये और इस देश की सपत्ति को लूटा। अकेले महमूद गजनवी ने ही १२ वार हमले किये और प्रत्येक वार असख्य सम्पत्ति यहा से ले गया। इससे पहले और वाद के सभी आक्रमणकारियों ने हिन्दुस्तान को इसी निर्दयता से लूटा था। इस लूट खसोट और नृशंसता का थोड़ा सा इतिहास देना हम जरूरी समझते हैं।

सन ६१२ ई० मे मुहम्मदविन कासिम ने जो कि कुल २० वर्ष का एक अलहड नौजवान था केवल छः हजार अरव सिपाहियों के साथ भारत पर चढ़ाई की। विलोचिस्तान के रास्ते से सिन्ध मे घुस गया। सिन्ध के दाहिर राजा ने दस हजार सवार और वीस हजार पैदलों से उसका मुकाविला किया। किन्तु हार गया। इस हार के कई कारण थे और वे सभी कारण उस समय की सामाजिक स्थिति से सम्वन्ध रखते हैं। दाहिर एक अय्याशी राजा था। सेना के लोगों की युद्ध शिक्षा का कोई प्रवध न था। वौद्ध भिक्षुओं ने घूम-घूम कर भविष्यवाणी कर दी थी कि दाहिर हारेगा। लड़ाई के समय एक ब्राह्मण ज्योतिषी ने कासिम को वताया कि यदि अमुक मदिर का झडा गिरा दिया जाय तो सारी सेना भाग जायेगी क्योकि हिन्दू सेना समझेगी देवता कुपित हो गया है। कासिम ने ऐसा ही किया। दाहिर की सेना भाग गई और वह युद्ध मे मारा गया। उस ब्राह्मण ने लालच वश गुप्त खजाने का पता भी दे दिया। इस खजाने की लूट से कासिम को १७२०० मन सोने की मूर्तियाँ प्राप्त की इनमे एक मूर्ति तो ३० मन की थी। कई ऊँटों पर लादने लायक हीरा, पन्ना और मोती मानिक उसके हाथ लगे। यह सारा माल कासिम ने मय दाहिर की राजकुमारियों के अरव के खलीफा की सेवा मे भेज दिया। इसके वाद उसने नगरों और गांवों का लूटना शुरू किया और वरावर उस समय तक जुलम करता रहा जव तक कि उसे अरव वापिस न वुला लिया गया। अपने समय मे वह हजारों हिन्दुओं को मुसलमान वना गया और हजारों को मौत के घाट उतार गया। कासिम के वाद कोई वड़ा हमला लगभग ३०० वर्ष तक नहीं हुआ किन्तु इसके यह माने नहीं है कि भारत की सभ्यता और जातियता को वाहरी लोगों से हानि नहीं पहुँच रही थी। दसवीं सदी मे मलावार का एक हिन्दू राजा अन्धविश्वास के कारण मुसलमान हो गया। उसने रात्रि को स्वप्न देखा कि चन्द्रमा के दो टुकडे हो गए है। एक मुसलमान सौदागर ने जो कि लंका से लौटा था इस स्वप्न का

अर्थ उसे बताया कि ईश्वर ने अरब मे एक ऐसी विभूति पैदा की है जो संसार के लिये दूसरा चन्द्रमा साबित होगी। राजा मक्के मदीने की यात्रा को चला गया और मुसलमान हो गया। अरब से एक सरदार ने आकर उसके राज्य मे अनेको मस्जिद बनवाई। गुजरात और दक्षिण मे सैकडों अरब सौदागर और फकीर प्रचार कार्य के लिए आकर बस रहे थे और बराबर अपने धर्म का प्रचार करते थे यहाँ की स्त्रियों से अपने घर बसाते थे किन्तु हिन्दू समाज को इसका कुछ भी रंज न था।

ग्यारहवी सदी के आरम्भ मे महमूद गजनवी ने आक्रमण किया और बराबर २० वर्ष तक आक्रमण करता ही रहा। महमूद के इस प्रकार के धर्म जोश मे अरब का खलीफा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने महमूद को 'अमीनुल मिल्लत' और 'अमीनुल दौलत' का खिताब दिया। महमूद ने आजीवन भारत पर चढ़ाई करने और इसलाम धर्म का प्रचार करने की प्रतिज्ञा करली थी[१] इस जोश को पूरा करने मे उसने कोई कसर नहीं छोडी "आइने तवारीखनुमा" के लेखक ने लिखा है कि महमूद ने लगभग दस हजार मन्दिर बर्बाद कर दिये।[२] तारीख फरीस्ता आदि के आधार पर कहा जाता है कि लाहौर के राजा जैपाल और आनन्द पाल ने आरम्भ के हमलों मे महमूद से मुकाबिला किया था और अफगानिस्तान पर भी चढाई की थी किन्तु वह भारी फौज रखते हुए भी हार गया। इसका कारण वही लडाई की बेतरतीबी और देश के कुछ लोगो की की जयचन्दी प्रवृत्ति ही है। देश मे देशभक्ति और जातीयता तो थी ही नहीं, इसलिए लोग अपने निज के स्वार्थ के लिए बडे से बडा अपराध करने मे भी नहीं झिझकते थे। महमूद से हार जाने के कारण राजा जयपाल अग्नि मे जलकर प्रायश्चित करता है यह अन्ध विश्वास नहीं तो क्या है। आगे भी जयपाल के लड़के आनन्द पाल को भी सदैव उसके ब्राह्मण मंत्रियो ने गलत ही सलाह दीं। "फरिस्ते" से पता चलता है कि महमूद को भी भारत मे किसी ने तग किया था तो वे जाट थे उन्होंने उसे जबकि वह मथुरा का बहुत सा माल लूट कर ले जा रहा था सिन्ध के छोर पर लूट लिया। महमूद बहुत बिगडा और उसने दुबारा पूरी तैयारी के साथ जाट और गक्खरों को दड देने के लिए चढ़ाई की।

भारत की लूट जो महमूद ने की उसके कुछ आकडे इतिहासकार इस प्रकार बयान करते है। नगर कोट के मन्दिर की लूट मे उसे ७४० मन सोना ७०० मन चादी सोने के बर्तन २००० मन चादी और २० मन जवाहिरात प्राप्त हुए। मथुरा की लूट से १०० ऊँट चादी के मूर्तियों और धातुओं के भरवाये गये ५ मूर्तियां निरे सोने की हाथ लगीं जिनमे से एक का वजन चार मन का था। ५३०० आदमियों को जिनमें मर्द औरत और बच्चे थे भेड़ बकरियों की भाँति अपने देश को हाक लेगया। "फरिस्ता" लिखता है कि थानेश्वर की अतुल लूट के साथ इतने आदमी यहा से गुलाम बनाकर गजनी लेजाये गये कि सारा गजनी हिन्दुओं से पट गया। "मुहमद अल-उटबी ने लिखा है कि महमूद मथुरा से इतने हिन्दू पकड कर ले गया कि फी आदमी २॥) २॥) देकर बेचा गया। यह सब गुलाम बना लिए गये। सबसे बड़ी लूट सोमनाथ के मन्दिर की बताई जाती है। इस मन्दिर मे ५३ खभे थे। जो बहुमूल्य रत्नों से जडे हुए थे। ४० मन भारी सोने की जंजीर में घटा लटकता रहता था। पाच गज ऊची शिवजी की स्वर्ण मूर्ति थी। महमूद ने यह सब लूट लिया। गजनी जाकर मूर्ति का एक टुकडा मस्जिद की सीढ़ियों मे और

१. मुख्तसिर तवारीख हिन्द सन १८८७ लाहौर सफा ४८

२ सफा ८ आइने तारीख नुमा १८८१

एक अपने महल की सीढ़ियों में लगवा दिया। मन्दिर में जो हजारों दासियाँ पुजारियों के एश व आराम के लिए थीं उन्हे पकड़कर अपने देश को ले गया।

सोमनाथ गजनी से बहुत दूर है। उस तक पहुँचने के लिये अनेकों पहाड़ और नदियों को पार करना पड़ता था। सबसे भयकर सिन्ध का रेगिस्तान था जहाँ दस-दस कोस तक पानी का अभाव था। इतनी दूर तक धावे मारने के लिए महमूद के साहस पर आश्चर्य किया जा सकता है किन्तु उससे भी कहीं अधिक आश्चर्य हिन्दू जाति की दशा पर होता है कि चार छ छोटे मोटे राजाओं के सिवा किसी ने उसका मुकाबिला नहीं किया। मन्दिरों के तोड़ने पर स्त्रियों के अपहरण और धर्म भ्रष्ट करने पर पुंसत्व नहीं जागा, यह कम आश्चर्य और शर्म की बात नहीं है।

अलबरुनी ने हिन्दुओं की इस हीन दशा का वर्णन इस प्रकार किया है—"भारत बहुत छोटे २ राज्यों में विभक्त है देश मे कोई ऐसी बड़ी राजसत्ता नहीं है जिसके इशारे पर यह एक होसके। यह आपस मे लडते भिड़ते रहते हैं। ब्राह्मण अपने को ऊंचा बनाने और शेष समाज पर आतक जमाए रखने की धुनि मे व्यस्त है। जाति भेद का द्वेष इतने जोर पर है कि वैश्यों और शूद्रों को वेद पाठ करते देखकर ब्राह्मण आग बबूला हो जाते हैं और उनपर तलवार लेकर टूट पडते है। और उन्हे लेजाकर राज दर ार मे पेश कर देते हैं। जहाँ उनकी जिव्हा काट ली जाती है। ब्राह्मण सब प्रकार के राज कर से मुक्त है। स्त्रियों को सती कर दिया जाता है। विदेश का आना जाना निषद्ध माना जाता है। उनमे पारस्परिक सदभावनाए बहुत कम हैं।"

यह हालत थी भारत देश की फिर क्यों न महमूद गजनवी अपने उद्देश्य मे सफल हो जाता। यहा उसने अथवा उसके पहले के आक्रान्ताओं ने जिन लोगों को मुसलमान बनाया था वे फिर कभी भी हिन्दू जाति मे नहीं मिलाए गये। हालांकि उन लोगों ने अपने पुरोहितों और सजातियों से बहुतेरी प्रार्थनाए हिन्दू होने के लिए कीं।

महमूद ने भारत के जिन हिस्सो को विजय किया था उनमे उसने अतिम दिनों मे अपने सूबेदार भी नियत कर दिये थे। लाहौर में उसने अपने बेटे सुल्तान मुहम्मद को छोड दिया था। 'यवनराज' बशावली के लेखक ने इन गजनवी हाकिमों की जो कि लाहौर में बैठकर पंजाब की हकूमत करते थे इस इस प्रकार सूची दी है। १ सुल्तान महमूद २ सुल्तान मसऊद ३ अमीर मोदूद ४ मसऊद ५ अबुल अली ६ अब्दुल रसीद ७ फरूख जाद ८ इब्राहीम ९ मसऊद १० शेरजाद ११ आसलखा १२ बहराम शाह १३ खुशरोशाह १४ खुशरो। इसको सन् ११८८ में पकड कर शहाबुद्दी गोरी ने गजनी भेज दिया था। इस लंबे अर्से मे पजाब मे इन गजनवी हाकिमों ने अपने धर्म प्रचार और लूट खसोट में कोई कसर न छोड़ी थी।

गजनवी के बाद भारत पर आक्रमण करने का नम्बर मुहम्मद गोरी का आता है। इस डेढ़ सौ वर्ष के अरसे मे भारत की राजनैतिक दशा मे कुछ थोड़ा सा अन्तर यह पड़ा था कि मध्यभारत मे दो बड़ी सल्तनतें हिन्दुओं को—देहली और कन्नौज मे बन चुकी थीं। दो सल्तनतें और भी जरा अच्छी शक्तिशाली थीं। एक गुजरात मे सोलंकियों की दूसरी चित्तौड़ में शिशोदियों की। ये चारों ही आपस में नातेदार थे यदि मिलकर मुहम्मद गौरी का सामना करते तो उसके साथी चना चबैना की तरह इनके हिस्से मे आते किन्तु इनमे तो आपस मे कलह था। गुजरात के कुछ सोलंकी चौहानों के दरबार मे रहते थे। एक दिन एक सोलकी ने मूंछों पर ताब दे दिया। पृथ्वीराज का चाचा कान्ह इसी पर आपे से बाहर हो

गया। उसने यह कहते हुए सोलंकी का सिर काट दिया कि चौहानों के सामने कोई दूसरा मूछों पर ताव नहीं दे सकता है। कान्ह के इस मिथ्याभिमान का फल यह निकला कि सोलंकियों और चौहानों में एक घोर युद्ध हुआ और सदा के लिए वैर बंध गया। गहरवार (कनोजिए) और चौहानों में गहरी शत्रुता संयोगिता के ऊपर होगई। संयोगिता के ऊपर दोनों ओर के लगभग १८ लाख आदमी काम आए। पृथ्वीराज के १०८ सरदारों में से ६४ सरदार नौ लाख सैनिकों के साथ मारे गए। यह युद्ध लगातार ६४ दिन तक हुआ था।

पहले ही एक दो लडाइयों में पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी को हरा चुका था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने समय का पृथ्वीराज एक महान् योद्धा और निपुण सेनापति था किन्तु वह अन्ध विश्वासी भी पूरा था। अजमेर को केवल एक फकीर चिश्ती के जादू के भय से छोडकर भाग गया था। घटना इस प्रकार बताई जाती है कि एक मुसलमान फकीर अजमेर के बाजार में धरना देकर बैठ गया। चामुंडराय उसे हटाने आया। उसने जादू से अग्नि की लपट पैदा कर दी। साथ ही कहा कि मैं तुम सब को जला दूंगा। बस तारागढ खाली कर दिया गया।

गहरवार और सोलकी पृथ्वीराज को तबाह कर देना चाहते थे और पृथ्वीराज उधर राजमहलों मे कामान्धता के भोग भोग रहा था। इस मौके से लाभ उठाने के लिए मुहम्मद गौरी ने एक लाख बीस हजार पठान लेकर भारत पर चढाई कर दी। गहरवार और सोलकियों ने उसका साथ नहीं दिया। तलावडीके मैदान मे पृथ्वीराज कैद कर लिया गया। दिल्ली की खूब लूट की गई। और भारत की राजधानी दिल्ली का अधिपति गौरी ने अपना एक गुलाम कुतुबुद्दीन बना दिया। इस तरह भारत को गुलाम का गुलाम बनना पड़ा।

इसके दूसरे वर्ष मुहम्मद गौरी ने कन्नौज पर चढाई कर दी। जयचन्द ने एक मूर्खता इन दिनों यह की थी कि अपनी सेना मे लगभग पचास हजार मुसलमानों को भरती कर लिया था। यह सब उलटे राठौरों से ही लडने लगे। जयचंद इस लडाई मे मारा गया और भारत की कुबेरपुरी कन्नौज लूट ली गई। मुसलमान इतिहासकार कहते हैं कि यहा से लूट मे गौरी ४००० ऊटों पर लादकर चॉदी, सोना और जवाहिरात गजनी को ले गया था। १००० मदिरों को उसने विध्वस कराया था। हजारों राजपूत और ब्राह्मण बालाओं को पठान अपनी लौंडी बनाने को यहॉ से ले गये।

महत्वाकाक्षी कुतुबुद्दीन ने हासी, मेरठ, कोल, रणथम्भोर, गवालियर, कालिंजर और गुजरात की ईंट से ईंट बजादी। हजारों मन्दिरों को धूल मे मिला कर उनके स्थानों पर मस्जिदें खडी करा दीं। लाखों नर नारियों को कत्ल कर दिया। अपने सरदारों को भारत मे चारों ओर मार काट और विजय करने के लिए फैला दिया। जिनमें से बख्तियार ने विहार और बगाल को मटियामेट किया। रास्ते मे काशी की भी खबर ली। विहार मे १२००० भिक्षुओं को कत्ल कराया और उनके पुस्तकालय को आग लगाकर भस्म करा दिया। इसके बाद अल्तमश ने उज्जैन पर चढ़ाई की और वहा के प्रसिद्ध मन्दिर महाकाल को मटियामेट किया।

कुतुबुद्दीन और उसके अन्य ७ उत्तराधिकारियों ने १०० वर्ष तक इसी प्रकार भारत मॉ की छाती पर मूंग दली। फिर इन गुलामों के बाद खिलजी भारत के शासक हुए। इन लोगों ने भी दिल भर कर हिन्दू जाति को तग किया और लूटा खसोटा। अलाउद्दीन खिलजी के भयानक और रोमाचकारी कारनामों को पढ़ कर आज भी मुट्ठियॉ बध जाती हैं और शरीर गर्म हो जाता है। उसने दगा फरेब, मक्कारी

सब प्रकार से हिन्दुओं को नेस्त नाबूद करने की कोशिश की। उसके सम्बन्ध की चन्द घटनाएँ यहाँ दी जाती हैं—तारीख 'आलाई' का लेखक लिखता है कि एक दिन अलाउद्दीन ने काजी से पूछा कि काफिर हिन्दुओं के वास्ते शरह मे किस सजा का बयान है। काजी ने कहा हिन्दू तो मुसलमान के वास्ते खेती हैं। जिसमे चॉदी मागने पर सोना मिलना चाहिए। गन्ने को जितना भी अच्छी प्रकार से पेला जायेगा उतना ही ज्यादा वह रस देगा हिन्दू भी इसी प्रकृति के हैं। अगर मुसलमान थूके तो हिन्दू को तो खुशी के साथ अपना मुँह खोल देना चाहिए। हदीस मे पैगम्बर साहब ने फर्माया है कि काफिरों को लूटे गुलाम बनाये। हिन्दुओ का माल तो मुसलमानों के वास्ते वैसा ही है जैसा बच्चे के लिए मॉ का दूध। जितना भी कोई मोमन हिन्दुओ को कष्ट देगा उतना उसके लिए बहिश्त का रास्ता सरल होगा।" काजी के इस फतवे पर अलाउद्दीन ने कहा, काजी जी शरह की बात पूरी होनी तो दूर है किन्तु मैंने अपने सैनिकों को हुक्म दे रक्खा है कि किसी हिन्दू के घर छ: महीने के गुजारे से ज्यादा कोई चीज मत रहने दो। घी, दूध, मूंग, चावल, फल आदि कोई भी अच्छा खाद्य पदार्थ हिन्दुओं के खाने को मत छोडो। सुन्दर लड़के लडकियों को भी उठा लाओ।" तारीख फरिस्ता ने लिखा है कि बादशाह की सख्तियों और लूट पाट से लाखों हिन्दू इतने तबाह हो गए कि उनमे से हजारों को मुसलमानों के यहॉ मजदूरी करके अपना पेट पालना पड़ा।" एक दिन काजी ने बादशाह से कहा कि आपके राज्य मे काफिर इतने तबाह हो गये हैं कि उनके स्त्री बच्चे मुसलमानों के द्वार पर आकर रोते और भीख मागते हैं। मैं समझता हूँ। इस्लाम की इतनी बडी सेवा के उपलक्ष मे आपको बहिश्त अवश्य ही मिलेगा।

इसी अलाउद्दीन खिलजी के कारण जैसलमेर की चौबीस सौ और चितौड़ की तेरह हजार राजपूतनियों को आत्मघात करके अपनी आबरु बचानी पड़ी थी। फिर भी सैंकड़ो हजारों हिन्दू ललनाओं को अपने धर्म से इसके सिपाहियों द्वारा हाथ धोना पड़ा था। खुद इसने गुजरात के राना कर्ण की स्त्री को अपने घर मे डाल लिया था और रानी की बेटी को अपने लड़के की स्त्री बना कर अपने दिल को शांत किया।

३० वर्ष के अपने शासन मे खिलजी लोगों ने हिन्दुओं के साथ वह सब कुछ किया। जिसके करने की उनके शैतान काजियों ने सलाह दी। एक मुसलमान लेखक मीर अब्दुल्ला ने लिखा है कि अपने दीन का प्रचार करने मे अलाउद्दीन दूसरा (खलीफा) उमर साबित हुआ।

खिलजियों के बाद दिल्ली के तख्त पर तुगलक वंशी मुसलमानों की हकूमत हुई। इसके छ बादशाहों ने लगभग १०० वर्ष तक राज किया। इनमे मुहम्मद तुगलुक मिहरगुल हूण से भी भयानक नर राक्षस था। कहा जाता है कि मिहरगुल ने अपनी प्रसन्नता के लिए हाथियों को पहाड़ों से धकेलवाया था किन्तु मुहम्मद तुगलक ने तो मनुष्यों का शिकार खेला था एक दिन उसने हजारों स्त्री पुरुष और बच्चों को एक बाड़े मे घिरवाकर विभिन्न हथियारों से शिकार खेली। नाक, कान कटवा लेने ऑख निकलवा लेने और सिर मे लोहे की कीले ठोक देने में उसे आनन्द आता था।

फीरोजशाह तुगलक ने जब नगरकोट को ध्वंस किया तो वहां के हिन्दुओं के गले मे गौ मास के तोबड़े लटकवा दिए और फिर उन्हे बाजार घुमाकर वही मास खिलाया। जिन्होंने नहीं खाया उनके सिर कटवाये। एक मूर्तिपूजक ब्राह्मण को जिन्दा जलवा दिया।

इस तुगलक खान्दान के समय मे ही तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया। १३९८ ई. मे ९२ हजार तातारी भेड़ियों को लेकर वह भारत मे घुस आया। नगरों को जलाता हुआ कत्लेआम करता हुआ

वह भटनेर पहुँचा। यहां उसने एक घंटे मे दस हजार आदमियों का कत्ल कराया। यहा से दिल्ली की ओर बढा। रास्ते मे हजारो स्त्री पुरुषों को भेड बकरी की भाति अपने साथ हाकता हुआ चला। दिल्ली पहुँचते पहुँचते एक लाख कैदी उसके साथ हो गये। इन सबको रोटी देना मुश्किल समझ कर १५ वर्ष से ऊपर के प्रत्येक आदमी को कत्ल करा दिया। लाशो का ढेर लग गया खून की नहर बह निकली किन्तु तैमूर प्रसन्न था। दिल्ली मे घुस कर नगर मे आग लगा देने का हुक्म दे दिया। बराबर पाच दिन आग की लपटे लूट पाट और कत्लेआम के बीच दिल्ली मे हाहाकार मचा रहा। कहा जाता है कि एक लाख आदमियो की जानें इस तरह से ली गईं। इसके बाद तैमूर ने अपने को कृत-कृत्य हुआ जान कर शाही मस्जिद मे नमाज पढी और फिर खुशी मे सुरा और सुन्दरियो का सेवन किया। दिल्ली के बाद मेरठ की ओर तैमूर ने कूच किया। यहा पर पचास हजार स्त्री पुरुषों का कत्ल किया गया। हजारों स्त्री बच्चों को कैदी बनाया यहा से हरिद्वार जाकर यही काड किया। उन दिनो हरिद्वार मे मेला था। मेले मे इसके सिपाही भूखे भेड़ियों की भाति घुस कर कत्ल करने लगे।

इस तरह से महीनों हिन्दुस्तान मे रह कर तैमूर ने नगा नाच नाचा और अत मे यहां महामारी और अनेक आक्रमणकारी रोग छोड कर स्वदेश को चला गया। वह यहा से इतना धन ले गया कि उसने अपने एक लाख से ऊपर सैनिकों को आठ साल की पेशगी तनख्वाह दे दी। फिर भी अपने बचे हुए धन का अनुमान नहीं लगा सका।

तैमूर के जाने के बाद तुगलक खान्दान का राज खतम हो गया और सैयद खान्दान भारत के रग मच पर आया। सैयदों का प्रभाव बडा भारी न था। अत इनके समय मे देश मे अनेकों छोटे-छोटे राज्य बन गये और ३७ वर्ष के बाद इनके हाथ से भी दिल्ली निकल गई और लोदियो के हाथ मे आई। इब्राहीम लोदी इस खान्दान का पहला बादशाह था। इसके राज्य मे भी वही जुल्म हिन्दुओं के साथ जारी रहे। मन्दिर और मूर्तियॉ तो तोडे ही जाते थे किन्तु तीर्थ यात्रा करना भी हिन्दुओं का रोका जा रहा था। "इसके समय मे एक ब्राह्मण की जीभ केवल इतने से अपराध पर निकलवा ली गई थी कि उसने हिन्दू धर्म को ससार के किसी भी धर्म से घटिया न होने का उपदेश दिया था।

लोदियों के समय मे तैमूर के वंशज बाबर ने भारत पर आक्रमण किया। कहा जाता है बाबर एक दयालु मुसलमान था किन्तु हिन्दुओ के लिये तो उसने भी खूब कतल कराए। उसने अपने हाथ से लिखी हुई किताब तुजुक बाबरी मे लिखा है—'लडाई मे जो हिन्दू कैदी हाथ लगते थे उन्हे मेरे तम्बू के सामने कत्ल किया जाता था एक दिन तो इतने कत्ल हुए कि खून और लाशों के मारे तीन बार जगह बदलनी पडी।"

वास्तव मे बात तो यह थी कि आक्रान्ता मुसलमानो ने हिन्दुओ को गाजर मूली समझ रक्खा था। गुलबर्गा के छोटे से अमीर ने तैलंग के राजा की लडकी को उसकी जीभ कटवा कर जीता अग्नि में भून डाला था और पाच लाख हिन्दुओ के सिर गर्दन से जुदा कर दिये गए।

इन कत्लों और हत्याकाडों के बाद ये मुसलमान लुटेरे और शासक पश्चाताप नहीं करते थे किन्तु उत्सव मानते थे। जिस दिन भारी कत्ल होते थे उस दिन विशेष रूप से यह लोग शराब पीते और नाच रग कराते।

यह सब कुछ हुआ और पूरे एक हजार वर्ष—उस समय तक हुआ जब तक कि पंजाब मे गुरुओं के लाडले सिखों और दक्षिण में संत रामदास जी के शिष्य वीर शिवाजी ने तलवार न पकड़ ली। किन्तु

इन एक हजार वर्षों में प्राय. सारा भारत मुसलमानों की हुकूमत मे पहुँच चुका था। हिमालय की तरैटी के और राजस्थानी रेगीस्तान के कुछ एक राजपूतों को छोड़ कर कहीं भी हिन्दू शासक शेष न थे। और शेष रहने वाले भी उन मुसलमान शासकों के हाथ के हथियार ही साबित हो रहे थे।

आठवीं सदी मे सिन्ध, ११ वीं सदी मे पंजाब, १३ वीं सदी में दिल्ली,गवालियर और चौदहवीं सदी में कश्मीर और गुजरात हिन्दुओं के हाथ से निकल गये। बिहार, वगाल और दक्षिण भारत बारहवीं और तेरहवीं सदी में ही मुसलमानों के हाथ पहुँच गये थे। उड़ीसा ने एक लम्बे अर्से तक अपने को बचाये रक्खा किन्तु मुगल हुकूमत उसे भी निगल गई। हाँ कहीं-कहीं, छोटे-छोटे राजा और जागीरदार प्रत्येक प्रांत मे अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे किन्तु उनकी स्थिति रणमल भट्टी से अधिक कहीं भी नहीं रही जान पड़ती जिसने अपनी लड़की देकर कुछ समय के लिए अपने प्राणों और राज्य की रक्षा कर ली थी। इन शेष राज्यों पर भी कोई अभिमान नहीं किया जा सकता।

यह हालत तो हो गई थी उस समय राजनैतिक और धार्मिक भारत की। अब थोडा सा प्रकाश उस समय के भारत की आर्थिक अवस्था पर और डालना चाहते हैं।

आर्थिक अवस्था

एक समय था कि भारत का व्यापार अरब, ईरान और चीन तक होता था। महाराजा कनिष्क के समय मे कश्मीर की पश्म अरब तक पहुँचती थी। और भी कच्चा माल विदेशों मे यहाँ के व्यापारी ले जाते थे और दूसरे देशों की भी अनेकों चीजे यहा लाते थे। यह व्यापार जल, थल दोनों ही मार्गों से होता था। बड़ी-बड़ी नावे इस देश की नदियों और भारत अरब के बीच के सागर मे चलती थीं। किन्तु बौद्ध धर्म के मटियामेट करने की धुनि मे यहाँ के धर्माचार्य्यों ने विदेश गमन पर भी रोक लगा दी। समुद्र यात्रा और विदेश गमन करने वालों को जाति से बाहर निकाल देने का भयकर दण्ड दिया जाने लगा। इस तरह से विदेशों के साथ व्यापार करने की प्रणाली तो कतई मिट गई। इस प्रतिबन्ध मे कला और कारीगरी को भी बड़ा धक्का लगा। विदेशगमन निषेध के साथ ही अन्तर-प्रान्तीय यातायात और व्यापार मे भी शिथिलता आ गई क्योंकि खाने पीने और छूतछात के कड़े नियमों ने लोगों को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वे अपने ही प्रांत और सजातियों से आगे कोई संबंध न रक्खे। व्यापार का तो इस तरह से चौपट हो गया।

खेती के काम को मुश्किल बना दिया। विदेशी आक्रान्ताओं और हाकिमों ने, किसानो की खड़ी हुई फसलो मे होकर लश्कर जा रहे हैं। बर्बाद कर रहे हैं और आवश्यकता हुई तो किसानों को बेगार मे पकड़ कर ले जा रहे है। इस तरह से खेती से भला क्या बचत हो सकती थी। किसान बेचारों को साथ मे तलवार और गाव मे एक ऊँचे मँच पर नगाड़ा रखना पड़ता था इस तरह से वे कुछ कमा पाते थे। इस कमाई में से भी लूट पाट होती रहती थी और जजिया देना पड़ता था वह अलग था।

देश का पुरातन सचित धन जो अशोक कनिष्क और गुप्त राजाओं के जमाने से पहिले का लोगों के पास था वह लुट कर गजनी काबुल और कन्धार पहुँच चुका था। या वह भारत के मुसलमान शासकों और उनके सिपाहियों के घरों मे संचित हो रहा था। हिन्दुओं की तबाही का इससे और क्या बडा दृश्य उस समय का हो सकता है कि हजारो हिन्दू स्त्री और बच्चे मुसलमानों के घरों मे जाकर या तो मजदूरी करते थे या उनके द्वारों पर भीख मांगने को विवश होते थे। इस भूख प्यास, लूट मार और कत्लों की

मरमार से देश की भारी आबादी घट गई थी। जिस समय गुरु नानक देव इस संसार में आए थे सारे भारत में कुल २० करोड की आबादी थी। जो मुश्किल से जहांगीर के समय तक बाईस करोड़ हो गई थी। जिसमें चार करोड के लगभग मुसलमान थे।[1]

यहाँ का वैदेशिक व्यापार तो प्रायः विदेशी मुसलमानों के हाथ जा चुका था। चोल मंडल के किनारे बहुत सी मंडियाँ बन गई थीं। "वस्साफ" ने लिखा है कि मावर से समुद्र का वह किनारा जो कोलम से नलोर तक फैला हुआ है। चीन, हिन्द और सिन्ध के मालों से लदे हुए बड़े-बड़े जहाज गुजरते हैं जिनसे इराक, खुरासान और यूरोप के लिए वहां से लदकर माल जाता है और फिर वहां से बहुमूल्य कारीगरी की चीजें यहां आती हैं।" आगे वह फिर लिखता है—"प्रतिवर्ष दस हजार घोडे फारस से यहां आते हैं जिनकी कीमत लगभग २२ लाख दीनार होती है।"

इस तरह से हमारा देश एक ओर लोमहर्षण अत्याचारों और दूसरी ओर व्यवसाय धंधों के नष्ट होने के कारण दीनहीन अवस्था को प्राप्त हो गया था। और समस्त देश में मायूसी, निराशा और हाय-हाय! का वातावरण फैला हुआ था। इतने पर भी निठल्ले भिक्षुओं और साधुओं के दलों के दल देश में बढ़ रहे थे जो समाज के रहे सहे खून को चूस कर मौज उडाते थे। देश की इसी दयनीय दशा के बीच परमात्मा ने निरंकारी नानक को संसार में भेजा।

इस समय का चित्र काव्यमय भाषा में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि "यहां उस समय मानवता के स्थान पर पशुता, सहृदयता के स्थान पर निर्दयता, धर्म के नाम पर ढोंग, भक्ति के बहाने प्रपंच, दया और दयालुता के स्थान पर खूनी फाग के खेल खेले जा रहे थे।"

उस समय न यहां राष्ट्रीयता थी और न धर्म रक्षा के हेतु प्राण देने की ऊंची भावना का अंग न किसी को यहाँ किसी के प्रति सहानुभूति थी और न किन्हीं का कोई सम्मिलित उद्देश्य था। सब को केवल अपनी-अपनी चिन्ता थी सो भी सत्साहस और उत्साह के साथ नहीं किन्तु परावलम्ब और निराशा के साथ समाज अनेकों जाति, उपजाति, शाखा और प्रशाखाओं में बँट चुका था। प्रत्येक जाति और शाखा दूसरी जाति और शाखा को अपने से नीच एवं हेटी समझती थी और खान पान व्यवहार किसी में भी एक्य और सामंजस्य न था। इस तरह से हिन्दू राष्ट्रीय पिंड के अस्थि पंजर ढीले हुए पडे थे।"

स्वयं गुरु नानक देव जी ने हिन्दू जाति की इस हीन दशा को देखकर कहा था—"हे परमात्मा तुमने खुरासान पर तो कृपा की और भारत पर कोप किया। कोई सीधे तुमको दोष न दे इसलिये यम रूपी यवनों को यहां अत्याचार करने के लिए भेज दिया, भगवान अब तो बहुत हो चुका है हिन्दू काफी पीटे जा चुके हैं। स्वामी आप तो सभी के हैं।"[2]

स्त्रियों की दुर्दशा को देखकर गुरु जी ने हृदय-द्रावक शब्दों में कहा था—"जिन देवियों के सिर के केश पट्टियों के रूप में सँवारे हुए थे। जिनकी मांग सिन्दूर से शोभित होती थीं। आज वह केश मूंडे जा रहे हैं। और उनके मुँह में धूल झोंकी जाती है।

जो महलों में आनन्द करती थी आज उनके बैठने के लिए जगह नहीं है।

व्याह के समय जो पालकियों में सवार होकर आई थीं। जिनके खाने के लिए अनेक प्रकार के

१ तुजुक जहांगीर के आधार पर।

२ खुरासान खसमाना किया हिन्दुस्तान डराया। आदि पद।

स्वादिष्ट व्यंजन, सोने के लिए सुन्दर पलंग, और पहनने के लिए उत्तम उत्तम वस्त्र और आभूषण मिले थे। आज वही धन और यौवन उनके वैरी हो रहे हैं। उनके पैरों मे बेड़ियाँ पडी हुई है। सतीत्व नष्ट किए जा रहे हैं। गहने उतारे जा रहे है। रोटी से भी मोहताज है।"[1]

प्रकृति का एक यह भी नियम बताया जाता है कि "जिन लोगों पर अत्याचार होता है वे परस्पर मिल जाते हैं, क्योंकि अत्याचार मे मिलाने की अद्भुत शक्ति है। यही क्यों पीडित वर्ग या समाज पर दर्शक भी सहानुभूति प्रकट करने लगते है।" किन्तु इन एक हजार वर्षों के लंबे समय मे भारी से भारी और हृदय विदारक अत्याचार हिन्दुओं पर हुये किन्तु उन्होंने एकता के लिए करवट तक नहीं बदली, मुसलमान अपनी धर्मान्धतापूर्ण नीति और आनन्द विलास के कारण आपस मे ही लड़ भिड कर परिवर्तित अवश्य हो रहे थे किन्तु हिन्दू बिल्कुल निश्चेष्ट थे। उनके लिए कई सुअवसर आए किन्तु उन्होंने उसमे लाभ नहीं उठाया। इसका कारण यह था उन्हे जो उपदेश मिलते थे उसमें इहलोक के लिए कोई महत्वाकाक्षा थी ही नहीं। स्वराज्य और पर राज्य के बीच जो अन्तर होना है उसके सम्बन्ध मे वे कभी एक क्षण तक भी नहीं विचारते थे। इसीलिए न उनमे एक देशीयता थी और न एक जातीयता। उनके लिए उनके प्रान्त और जिले ही स्वदेश और अपने घर ही घर थे। समस्त भारत और भारतीयों के प्रति कोई भी कुछ जिम्मेवारी महसूस नहीं करता था। यही कारण था कि भारत की राज्यश्री को लावारिस समझकर दूसरे लोग भोग रहे थे और इनके स्त्री बच्चों को उनकी दया पर जीवित रहने और उनके कोप पर प्राण गँवाने का अधिकार मिला हुआ था। इस हालत को भी यहाँ के हिन्दू धर्मप्रिय लोगो की हालत समझते थे। अपने को अब भी एक दूसरे से ऊँचा नीचा समझते हुए अहंकार का जीवन बिताते थे।

गुरू नानक आये और उन्होने दु:ख भरे हृदय से इनकी दशा का अनुभव किया और परमपिता परमात्मा से इनके कल्याण के लिए प्रार्थना की। साथ ही उन गलत खयालातों को भी दूर किया जिनके कारण हिन्दू समाज भीतर ही भीतर घुना जा रहा था।

१. जिन सिर सोहं पट्टियां मांगे पायें सिंदूर। पद के अनुसार।

द्वितीय अध्याय

सिख सम्प्रदायान्तर्गत कुछ प्रमुख जातियाँ और उनका परिचय

ऐसी हीन थी उस समय हिन्दू भारत की अवस्था। जैसा कि पहिले अध्याय में बताया गया है। गुरु नानक देव जी तथा अन्य गुरु महानुभावों ने भी इसी हिन्दू भारत में जन्म लिया था कौन? जानता था कि गुरुओं के के प्रताप से उनके शिष्यों का कोई ऐसा गिरोह भी खड़ा हो जायगा जो भारत माता के शिर को ऊँचा करने में अपना सर्वस्व बलिदान करने को तयार होगा। वास्तव में सिखों ने पिछली सदियों में वे कारनामे करके दिखाए हैं जो गुरुओं से पिछले एक हजार के वर्ष के हिन्दू इतिहास में खोजने पर भी नहीं मिलते। तुर्क ईरानी और पठान जो भारत को भेड़ बकरियों का मुल्क समझते थे। शौर्य्यवान सिखों ने उनका भारत आगमन ही नहीं रोका किन्तु स्वदेश में भी वे इन रण-सिंहों के दर्प से भयभीत रहने लगे।

सिखों की वीरता और रणनैपुण्य भारत ही नहीं उससे बाहर के देशों में भी आज इतिहास के महत्व को बढ़ाता है। प्रत्येक व्यक्ति जो सिखों की बहादुराना लड़ाइयों और कभी न झुकने वाले स्वभाव की कहानियों को पढ़ता है तो अनायास ही उसके हृदय में सवाल होता है। "आखिर ये महावीर हैं कौन? एक शब्द में—और सबसे अच्छा—उत्तर तो यही है कि गुरुनानक से गुरु तेग बहादुर लों ले—एकेश्वरवाद की भक्ति में अनुप्राणित कि ये हुए और गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा कायाकल्प का अमृत पिलाये हुए शिष्यों का समूह ही सिख हैं। परन्तु इतिहास प्रेमी इससे भी कुछ ज्यादा जानना चाहते हैं। इसी हेतु से कनिंघम जैसे प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता को सिख-इतिहास में "पंजाब के अधिवासी गण और उनके सम्प्रदाय एवं मतों पर एक स्वतन्त्र अध्याय लिखना पड़ा। पृष्ठ पेयण के भय से हम केवल उन्हीं पंजाबी—अधिवासियों का परिचय देना चाहते हैं जो गुरुओं के सतज्ञान और एकेश्वरवाद की भक्ति से प्रभावित होकर उनके शिष्य-समाज में दाखिल हुए और जिन्होंने दसवें पातशाह गुरु गोविंद सिंह की इस घोषणा को पूरा किया कि "जो मैं गुरु गोविन्द कहाऊँ, तो बाजों से चिड़ी लड़ाऊँ॥

खत्री, बेदी, सोढी आदि

दसों पातशाह जिस समूह में पैदा हुए थे वह खत्री के नाम से अभिहित होता है। नस्ल के लिहाज से खत्री आर्य्य हैं। संसार में रूपरंग चेहरे की बनावट और प्रकृति जन्य स्वभाव के अनुसार

पाच नस्लें मानी जाती है। आर्य, द्रविड, मगोलियन, हवशी और सेमी। सबसे पहले सभ्यता प्राप्त करने और ऊँचा एव आदर्श जीवन-विताने के कारण आर्य नस्ल ही ससार में श्रेष्ठ नस्ल मानी जाती है। राम, कृष्ण, शिवि, दधीच, हरिश्चन्द्र, महावीर, बुद्ध, महात्मा जरदुस्त और युधिष्ठिर जैसे महापुरुषों को जन्म देने का सौभाग्य आर्य नस्ल को ही प्राप्त हुआ है। भारत अनन्त काल मे आर्यों का है। वह उनके नाम पर आर्य्यावर्त कहलाता है। इसलिए इस देश के प्रत्येक समुदाय और जाति को सबसे पहला गौरव इस बात में प्राप्त होता है कि वह आर्य्य नस्ल से हैं। आर्य्य नस्ल के सिवा अन्य जाति के लिए तो यह मुलक एक प्रकार से वैसा ही है जैसा एक बंगाली के लिए पजाव। भारतीय आर्यों की सभ्यता पजाव मे ही फूली फूली थी। आज भी यह कहा जाता है कि आर्यों के वास्तविक उत्तराधिकारी पजाव मे ही मिलते है। आर्य्य नस्ल मे पैदा होने का गौरव इसलिए भी एक महत्व की चीज है कि भगवान राम और कृष्ण इसी नस्ल के थे। भारत के अनेकों चत्रिय खान्दान गौरव के साथ अपने को भगवान राम या कृष्ण के वशज वताते है। वात है भी गौरव की। इससे भी अधिक गौरव इस वात का है कि वे राम और कृष्ण आर्य्य थे और अपने आर्य्य होने पर उन्हे अभिमान था। राम ने कहा था—

अहम् भवति आर्य्य ज्ञातिनामान्तर्गत रघुकुलेन।"

इसी प्रकार भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन को सम्वोधित करते हुए कहा—"कुतस्त्वा-कश्मल-मिद विपमे समुपस्थितम्। अनार्य्य जुष्टम स्वर्ग्यम कीर्तिकर-मर्जुन॥" अर्थात हे अर्जुन इस विपम परिस्थिति मे तुझे यह क्या अनार्यो की जैसी वात सूझी है। गुरु गोविन्द सिंह जी ने भी वडे गौरव से 'विचित्रनाटक' मे लिखा है कि हम उस सोढ़ी वश के हैं जो सूरजवशी है और जिनका निकास राम की संतान मे से है। विचित्र नाटक का वह स्थल इस प्रकार है —

"ताते सूरज रूप कउ धरा। जाते वश प्रचुर रवि करा॥
जो तिनके कहि नाम सुनाऊ। कथा वढन ते अधिक डराऊ॥१६॥
तिनके वश विखै रघु भयो। रघुवसहि जिह जगहि चलयो॥
ताते पुत्र होत भये अज वर। महारथी और महा धनुर्धर॥२०॥
जव तिन भेष जोग को लयो। राजपाट दसरथ को दयो॥
होत भयो वहि महा धनुर धर। तीन त्रिश्रान व राजहि सचकर॥२१॥
प्रथम भयो तेहि राम कुमारा। भरत लछमन शत्रु विदारा।
वहुत काल तिन राज कमायो। काल पाय सुरपरहि सिधायो॥२२॥
सीअ सुत वहुरि भये दोउ राजा। राज पाट उस ही को छाजा॥
मद्र देस स रजा बरी जव। भाति भाति के जग कीये तव॥२३॥
तिही तिनै वाधे दुइ पुरवा। एक कसूर दुतीय लहुरवा॥
अधकपुरी ते दोऊ विराजी। निरख लक अमरावति लाजी॥२४॥
बहुत काल तिन राज कमायो। जाए काल ते अत फसाओ।
तिनते पुत्र पौत्र जो भये। राज करत इहि जग को भये॥२५॥
कहाँ लगे ते बरन सुनाऊ। तिनके नाम न सख्या पाऊं॥
होत चहुं जुग में जो आये। तिनके नाम न जान गनाए॥२६॥

जो अब तो किरपा बल पाऊ । नाम जथा मत भाख सुनाऊं ॥
काल केत भये बली अपारा । काल राय जिन नगर निकारा ॥२७॥
भाज सनोढ देश ते गये । तही भूप जा विपदरत भये ॥
तिहते पुत्र भयो जोह धामा । सोढीराय परा तेहि नामा ॥२८॥
वंश सनोढ़ ता दिन ते खीआ । परम पवित्र पुरुष जो कीया ॥
ताते पुत्र पौत्र हुइ आए । ते सोढी सम जगत कहाये ।२६॥

"विचित्र नाटक' के इस पद का भाव यही है जो हमने ऊपर लिख दिया है। कुछ विदेशी इतिहासकारों ने खत्रियों के आर्य नस्ल से होने मे सन्देह किया था किन्तु जब मूरत शक्ल और चेहरे की बनावट को देखकर नस्लों की परीक्षा का विज्ञान सामने आया तो उन्हे स्पष्ट शब्दों मे मानना पड़ा कि खत्री आर्य नस्ल से हैं। मिस्टर ई० बी० हेवल ने "हिस्ट्री आफ आर्य्यन रूल इन इंडिया" मे लिखा है.—"Enthonographic investigations show thet Indo Aryan type described in the Hindu epic-a tale, fair complexioned, long needed race, with narrow prominent noses, broad shoulders, long arms, thin waists like a lion and thin legs like a deer is how (as it was in the earliest times) most confined to Kashmere, the Punjab & Rajputana & represented by the khatris Jats & Rajputs

अर्थात्—"मानवतत्व विज्ञान की खोज बतलाती है कि भारतीय आर्य जाति जिसको कि हिन्दू-युद्ध ग्रन्थों मे लंबे कद, सुन्दर चेहरा पतली लबी नाक, चौड़े कन्धे लबी भुजाए, शेर की सी कमर और हिरन की सी पतली टांगों वाली जाति बतलाया है। जैसी कि वह प्राचीन समय मे थी। आधुनिक समय मे पंजाब, राजपूताना, और काश्मीर में, खत्री, जाट और राजपूत जातियों के नाम से पुकारी जाती है। आगे यही महाशय फिर लिखते हैं—"The Indo Aryan type, occupying the Punjab, Rajputana & Kashmere & having its characteristic members the Rajput Khatris & Jats. This type approaches most closely to that ascribed to the traditional Aryan colonists of India. The statore is mostly tell, complexian fair, eyes dark, hair on face plentiful, head long, nose narrow and prominent, but not especially long"

अर्थात्, भारतीय आर्य जाति जिसके कि वंशधर आज राजपूत, खत्री और जाट हैं, पजाब, राजपूताना और काश्मीर मे बसी हुइ है। यह जाति उस प्राचीन आर्य जाति से बहुत मिलती जुलती है जो भारत मे आकर बसी थी। इसकी शारीरिक बनावट अधिकतर लंबी, सुन्दर चेहरा, चेहरे पर पर्याप्त बाल। लम्बा सिर और ऊंची पतली नाक जो अधिक लम्बी नहीं होती है।

भारतीय इतिहास की रूप रेखा के लेखक और इतिहास पर मंगलाप्रसाद पुरस्कार के विजेता जयचन्द्र विद्यालकार ने लिखा है—"आर्यवर्तीय आर्यों का सबसे अच्छा निर्विवाद नमूना पंजाब के अरोड़े, खत्री, ब्राह्मण, जाट, अराईं आदि हैं। औसत से अधिक डील, गोरा या गेहुँआ रङ्ग, काली आँखें दीर्घ कपाल ऊँचा माथा, लंबा नुकीला सम चेहरा, सीधी नुकीली और समुचित लंबी नाक उनके मुख्य लक्षण हैं।

नस्ल निर्णय के पश्चात हमे यह देखना है कि खत्री प्रचलित वर्णों मे से किस वर्ण के हैं। पौराणिक लोग उन्हे क्षत्रिय स्वीकार करने के लिए तय्यार नहीं है किन्तु यह भी सही है कि पौराणिक वर्ण व्यवस्था जोकि जैन बौद्धों के पश्चात् भारत मे ईस्वी पूर्व ३०० वर्ष से ईस्वी सन् ११०० तक कायम हुई है खत्री उनमे से किसी भी वर्ण मे दीक्षित नहीं हुए है। जाट, अरोड़ा और मराठों के लिए भी यही बात कही जा सकती है। हॉ वे प्राचीन वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार क्षत्रिय हैं। ईस्वी सन् की आरम्भिक सदियों मे भी उनके पास राज सत्ता थी। सिकन्दर के भारत मे आने पर उनके कई कुलों ने उनका सामना किया था। ईसा की छठी सदी से अठारहवीं सदी तक भारत मे इतने जोर का अज्ञानांधकार रहा कि जातियॉ खुद अपने पूर्वजों के इतिहास और पते से अनभिज्ञ होगई यही कारण है कि खत्री स्वयम् भी अपने-पूर्व इतिहास के सम्बन्ध मे कोई सही जानकारी नहीं रखते हैं। यदि उनसे कहा जाय कि जिन खत्रियों ने मिश्र, अरमीनिया तक जाकर अपने राज्य और उपनिवेश स्थापित किए थे उन्हीं का अवशेष भाग आप है तो उन्हे अनायास ही विश्वास न होगा।

हमारी अपनी मति मे खत्री उन क्षत्रियों का एक अवशिष्ट समूह है जो समय-समय शासक जातियो मे बनने वाले किसी भी जत्थे में शामिल नहीं हुए। महाभारत के समय से हम देखते हैं कि शासन पद्धतियों एवं अन्य राजनैतिक भेदों के कारण भारत मे अनेक समुदाय क्षत्रियों के बने है। हैहय ताल जघों के अलग होने के बाद एक समूह सजात तत्र के उद्देश्यों के अपनाने के कारण जात अथवा जाटों का बन जाता है। दूसरा दक्षिण पश्चिम भारत में, महाराज्य (महाराष्ट्र) प्रणाली को अगीकार करके महाराष्ट्रों अथवा मराठों का वन जाता है। तीसरा समूह सिन्ध और पजाब मे अराष्ट्र (प्लीनी के शब्दों मे अरट्टों)—शासन मे राजा के अस्तित्व को अस्वीकृत करने वालों—का वन जाता है जो अराट, अराड और फिर अरोडा कहलाने लगता है। सबसे अतिम समूह बनता है राजपूतों का। इसी प्रकार क्षत्रियों मे और भी समूह बने। अन्त मे जो शेष रहे वे ही क्षत्रिय है। यह बात हमने इसलिए भी कही है कि बहुतेरे लोग कहा करते हैं कि जब राजपूत, जाट, मराठा आदि भी क्षत्रिय है तो केवल वे ही खत्री क्यों कहलाते रहे। ऊपर के वर्णन से इस प्रश्न का हल हो जाता है। कहना न होगा कि इन अवशिष्ट क्षत्रियों मे जो पीछे मे भाषा भेद के कारण खत्रिय भी कहलाने लगे हैं किसी एक ही वश के लोग शामिल नहीं है इनमे। चन्द्रवशी, सूर्यवशी और नागवंशी तीनों ही वशों के कुल शामिल हैं। उदाहरण के लिए कुक्करों को लीजिए, "यादवा कुकुरा भोजा सर्वे चान्धक कृष्णाय" के अनुसार चन्द्रवंशी यादव है। सोढी और वेदी उन सूर्यवंशियों मे से हैं। जो क्षुद्रक कहलाते थे और अन्तर्वेद एवं सनाढ्य देश मे रहने के कारण इन नामों से प्रसिद्ध हुए। हमारे ऐसा कहने से सोढी और वेदियों की वशावली रामचन्द्र जी से मिलने मे भी रुकावट नहीं डालती है क्योंकि पुराणों मे जो वशावली सूर्यवशियों की दी हुई है उनमे राजा क्षुद्रक का नाम रामचन्द्र जी से ५७ वीं पीढ़ी पर आता है। क्षत्रिय से खत्री नाम क्यों पड़ गया? इस प्रश्न का हल भी लोगों ने अनेक अटकलों से किया है। किसी ने कहा है पंजाब मे नागा (नाग लोगो की) भाषा का जब प्रचार था तब क्ष के स्थान पर ख होगया क्योंकि उनकी उच्चारण शैली इसी प्रकार की थी किन्तु यह खयाल हमें जॅचता नहीं है। क्ष के स्थान पर नाग लोग स तो बोल सकते थे क्योंकि उनके पडोसी सत्रप कहते थे। और नागों की भाषा मे क्षुद्रक का शुद्रक और सोद या सोदी तो हो सकता है यूनानियों ने भी क्षुद्रकों को OXYDRAKA एव OXYDRAKAI (ओक्सेडरा) लिखा है। ((ई 1) का प्रयोग करने की तो आदत जान पडती है क्यों शिवि को भी उन्होंने शिवोई लिखा है।) कुछ का कहना है कि खात नाम के

राजपूतों ने वनियानी से शादी करली थी। इसलिए ये खत्री कहलाए और तभी से व्यापार करने लग गये हैं। एक कल्पना यह थी कि वावर के समय में और आगे के मुगल शासन मे अनेक अच्छे ओहदों पर काम करने के कारण राज्य से सम्पर्क होने पर रजिस्टरों मे खत्री लिखे गये क्योंकि अरवी या फारसी वर्णमाला में क्ष नहीं होता। यह कल्पना कुछ जॅचती भी है किन्तु हमारा अपना खयाल इस सम्बन्ध में यह है कि वौद्ध काल मे चारों ओर प्राकृतिक मागधी का प्रचार होने से ये क्षत्रिय की वजाय खत्तिय कहलाए और ज़रा अधिक शुद्ध वोलने वाले खत्री कहने लगे। वौद्ध साहित्य में महात्मा वुद्ध के लिए भी कई जगह खत्तिय-पुत्र शब्द आता है जिसके कि माने क्षत्रिय पुत्र के होते हैं।

परशुराम की आतंककारी कथा का प्रयोग इतना भारी होने लगा है कि प्रत्येक ऐसी जात के लिए जो राजपूत नहीं है यही कल्पना फैलाई गई कि वे नि क्षत्री किये हुये लोगों में से हैं। खत्रियो की वंशावली रखने वाले लोग भी यही कहते हैं। यह तो एक वाहियात और आत्म सम्मान को ठेस पहुँचाने वाली कल्पना है और जव कि जो लोग अपने को रामचन्द्र या लवकुश का वंशज होने का खयाल करते हों तो उनके सम्बन्ध में तो यह कतई गलत है कारण कि रामचन्द्र के वश के लोगों से परशुराम की कभी भी कोई लड़ाई नहीं हुई। उल्टा परशुराम ही रामचन्द्र को अपने से श्रेष्ठ मानकर मिथिलापुरी से चले गये थे। जहाँ कि वह शिव धनुप के ऊपर झगड़ा करने आये थे।

अरोड़े लोग खत्रियों से भिन्न नहीं हैं और पजाव के वाहर के लोग भी भेद नहीं समझते। धन्धा अरोड़ों ने भी प्राय व्यापारिक ही ले लिया है हालाकि उतराधे अरोड़े देहातों मे खेती भी करते हैं। हमारी धारणा के अनुसार इनमें भी नाग, तक्षक चन्द्र और सूरजवंशी लोग शामिल हैं। विवाह संस्कार के समय जो परिचय इनके पुरोहित देते हैं उसके अनुसार यह कश्यप गोत्र के हैं। ऋषि कश्यप सूर्य के पिता थे अत यह सूर्यवंशी सिद्ध होते हैं। अरोड़ों के जो अव तक के इतिहास निकले हैं उनके अनुसार इनका ख्याल है कि परशुराम से अभयदान पाये हुए उरट अथवा अरट नाम के राजा ने सिंध मे अडोर (अलोर) नगर वसाया। उरट के वंशज एव साथी ही अरोड़ा हैं। भविष्य पुराण के जिस श्लोक के अनुसार अरोड़ों ने अपने को अरुट का वंशज होने की धारणा वनाई वह इस प्रकार है—"नाग वशोद्भवा दिव्या। क्षत्रियास्म मुदाहृता। ब्रह्म वंशोद्भवाश्चान्ये तथा उरुट वंश सम्भवा.॥" किन्तु यह आश्चर्य की वात है कि उरट के वंशज आपस में ही शादी भी करते है। यदि वे एक ही पुरुप की सन्तान हैं तो मनु के विधान के विरुद्ध ऐसा क्यों करते हैं। वास्तव मे वात यह है कि पंजाव और सिन्ध मे ईस्वी सन् पूर्व की सदियों मे अनेकों ऐसे खान्दान थे जो अरट अर्थात् विना राजा की प्रजा कहलाते थे। सारा न्याय नीति और शासन का काम पचायत द्वारा इन कुल राज्यो मे सम्पन्न होता था। सिकन्दर को भी ऐसे लोगों से लड़ना पड़ा था। आगे की सदियों मे इनमे से कुछ लोग सजात तन्त्री हो गये और वे जाटों मे शामिल हो गए। जाटों मे अरोड़ा एक गोत्र भी है। और भी अनेक गोत्र अरोड़ों के जाटों मे मिलते हैं कुछ अराट (अराष्ट्र) अन्य जातियों मे भी चले गये। सिकन्दर के साथी और यूनान के महान् इतिहास लेखक प्लिनी ने अरोड़ों को अपने इतिहास मे अरोटुरी ओरेट्टरी लिखा है। यह केवल भापान्तर है। प्लिनी के कथनानुसार इन लोगों से सिकन्दर का वास्ता रावी नदी के किनारे पड़ा था। कहा जाता है कि उस समय लड़ाई के मैदान में १० हाथी और सैंकड़ो घोड़े और रथों की सेना लेकर ये मैदान मे उतरे थे।

अव से ४०-४५ वर्ष पहिले अरोड़ों में नाता (पुनर्विवाह) की रिवाज न थी किन्तु इनकी जातीय सभा के प्रयत्न से अव यह रिवाज चल निकली है। ऐसा ही खत्री लोगों मे भी एक समय था। इस जाति

के बनने के सम्बन्ध मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक पुस्तक का जिक्र किया है जिसमे लिखा था कि "लव के वश मे किसी राजा के दो स्त्रियाँ थीं। दोनों के पुत्र हुए। छोटी ने राजा पर दबाव डाल कर बडी के पुत्र की बजाय अपने पुत्र को राज्य दिला दिया। राज्य का मालिक होने पर छोटे भाई ने बड़े को निकाल दिया जो अपने साथियों सहित राज छोड कर बाहर चला गया। मुलतान की तरफ जाकर उसने अपने साथियों तथा आस पास के अन्य लोगों को बुलाकर कहा कि हम सब एक जाति बनाते हैं। उसका नाम अरुट होगा अर्थात् क्रोध न करने वाली।" बस जात बन गई।

कनिंघम ने अरोडो के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा है—"अरोडा जाति ऐसा दावा करती है कि उसने क्षत्रिय के औरस से बनियानी से जन्म लिया है। जब दिल्ली मे क्षत्रियों ने वितरित होकर दाडा और सिन्ध देश के अन्यान्य हिस्सों व मुल्तान मे आश्रय लिया तो उस समय अरोड़ा लोग भी उनके पडोसी थे। किसी युद्ध मे अरोडा लोगों ने खत्रियों को मदद नहीं दी तब खत्रियों ने इनको बहिष्कृत कर दिया। एक लम्बे अर्से के बाद दीपालपुर के सिद्धभोजा और सिद्धस्यावा लोगों ने बहिष्कार को उठा दिया। शिकारपुर के कोठी वाले और बुखारा और खुरासान के व्यवसायी भी सभवत अरोड़ा हैं।" सभव है जनरल कनिंघम के समय कुछ अरोडे ऐसा ही मानते हों कि वह क्षत्रिय के औरस से बनियानी के पेट से पैदा हुए हैं किन्तु यह धारणा है गलत। हाँ आगे के शब्दों से यह जरूर जान पड़ता है कि खत्रियों की आपत्ति मे अरोडा शामिल नहीं हुए और उनका दड अरोडा लोगों को भी यह मिला कि जिन आक्रमणकारियों ने खत्रियों से दीपालपुर राज्य छीन लिया था उन्होंने ही थोडे दिनों बाद अरोडों मे अरोड कोट (अलोर) छीन लिया। और उसका फल यह हुआ कि फिर इन लोगों को व्यवसाय करके अपना जीवन निर्वाह करना पडा। सिखों मे अरोडो की संख्या खत्रियों से कम नहीं है। और गुरु नानक के सिद्धान्तो मे अरोडों का एक बडा हिस्सा भक्ति रखता है।

खत्री लोगों ने एक लम्बे अर्से से व्यापार, व्यवसाय करना आरम्भ कर दिया था। चूकि हम देखते हैं कि गुरु नानकदेव जी के पिता भी व्यापार मे रुचि रखते थे। यह ठीक तौर से तो अभी तक पता नहीं चल रहा है कि खत्रियों के हाथ से अतिम तौर से—कब राज सत्ता चली गई और किन कारणों से, किन्तु यह अवश्य जान पडता है कि बौद्ध और जैन धर्मो के पतन के दिनो मे ही—इनको भी जीवन निर्वाहार्थ व्यापार करने के लिए बाध्य होना पडा हो। यह भी सभव है कि जैन धर्म के प्रभाव मे आकर ही खत्री लोगों ने खेती और तलवार को नमस्कार कर दिया हो क्योंकि जैन लोग तलवार के साथ ही कृषि-कर्म मे भी तो हिंसा मानते हैं ऐसा अन्य क्षत्रिय कुलो ने भी किया था। एक समय क्षत्रिय अग्रवाल भी जैनधर्म के प्रभाव से ही वैश्य बन गये थे।

कुछ भी हो खत्री जाति को एक बार फिर दसवे पातशाह गुरु गोविन्दसिंह, उनके पिता, साहिबजादों और बन्दों ने संसार की महान क्षत्रिय जातियों की कतार मे खडा कर दिया। भले ही खत्री आज वैश्य के पद आसीन हो गये हों किन्तु उनके एक बड़े भाग को शिष्य बनाकर गुरु लोग उसे बहुत ऊँचा दर्जा दिला गये हैं। हकीकतराय और हरीसिंह नलुआ ने ससार को क्रमश प्रण और शूरता के हिसाब से बता दिया कि हमने जिन खत्रानियों का दूध पिया है वे कितनी ऊँची सिंह प्रसूता क्षत्राणी हैं।

जाट लोग

इस सचाई से कोई भी आदमी इनकार नहीं कर सकता है कि गुरु गोविन्दसिंहजी के मिशन को पंजाब में जाट लोगों से बढ़कर किसी दूसरी जाति ने पूरा नहीं किया। प्रथम गुरु नानकदेव से लेकर दसवें गुरुदेव तक गुरुओं की सेवा करने शिक्षाओं का पालन करने और अपने को सच्चा खालसा सिद्ध करने मे वे किसी से पीछे नहीं रहे हैं। सिख समुदाय मे संख्या भी उन्हीं की ज्यादा है। उनके धर्म प्रेम और शौर्य का पता इससे भी चल जाता है कि ,बारह ,मिसलों मे सात मिसलें जाटो ने खड़ी की थीं। रणजीतसिंह के समय मे तो उन्होंने बहुत बड़ा उरुज हासिल किया था। रियासत पटियाला, नाभा, जीन्द और कलसिया उनके प्रबल प्रताप की साक्षी देती हैं जो उन्होंने पिछली सदियों मे कर दिखाया था। भाई बालाजी का नाम गुरु नानकदेव जी के नाम के साथ उसी प्रकार अमर है जिस प्रकार कि भगवान राम के साथ उनके अनन्य भक्त हनुमान का। भाई मनीसिंह, तारुसिंह, शहबेगसिंह और शहबाजसिंह जी की शहीदियाँ आज सिख-जाटों ही नहीं हिन्दू जाटों के हृदयों को भी अभिमान से फुला देती हैं। विदेशी और विधर्मी शासकों के विरुद्ध सत्रहवीं और अठाहवीं सदी में सारे देश मे जाटों ने विद्रोह का झंडा खडा किया था। पजाब मे यदि वे केसरिया झण्डे के नीचे खडे होकर लडे थे तो राजपूताना और युक्त प्रान्त मे बसन्ती झडे को उन्होंने फहराया था। वीर गोकुला राजाराम और महाराजा सूर्यमल जी की शहीदी ने उन्हे एक समय प्रबल वेग से अनुप्राणित किया था जिसके फलस्वरूप भरतपुर, धौलपुर, मुरसान और बल्लभगढ जैसे राज्यों की नींव पड़ी। जाटों के स्वभाव और धीरता-वीरता की देशी, विदेशी सभी लोगों ने प्रशंसा की है। महमूद जैसे लुटेरे को लूटकर और तैमूर पर हमला करके भारत के उन गये बीते दिनो भी भारतीय वीरता का परिचय दिया। डाक्टर विरंटन साहब ने उनके सम्बन्ध में कहा है—"वे साहसी होते हैं अपनी रीति रस्म। का दृढ़ता से पालन करते हैं। उनका शरीर स्फूर्तिवान और सुगठित होता है।" हिस्ट्री आफ जाटस् के लेखक प्रोफेसर कालिकारंजन जी कानूनगो ने उनके प्रकृत-स्वभाव का परिचय इन शब्दों में दिया है—"वे खेती करने और तलवार चलाने मे एक बराबर दिलचस्पी रखते हैं। और इस ओर यहाँ तक उन्नति की है कि मेहनत और हिम्मत मे हिन्दुस्तान की कोई अन्य कौम इनके बराबर नहीं है। डीलडौल में वे राजपूतों और खत्रियों से समानता रखते हैं और भारत के पुराने आर्यों से बहुत मिलते जुलते हैं। · पंजाब की तमाम कौमों से यह कौम बहुत उतावल और व्यक्तिगत स्वतत्रता चाहने वाली है एक जाट करता वही है जिसे वह ठीक समझता है वह स्वतत्र और खुद पसद है।'

सुल्तान महमूद गजनवी या नादिरशाह या अहमदशाह अब्दाली किसी के साथ उनके किए गए सघर्ष की ओर नजर डालिये, हरेक से और हर जमाने में उनके जातीय चरित्र का पता चलता है बड़े से बड़े विजेता की दिल दहला देनेवाली तारीफ सुनकर उससे न डरना और बाद मे हो जाने वाले नुकसान का खयाल न करके भागते हुए दुश्मन को खदेड़ते चले जाना लड़ाई में शत्रु से भिड जाने पर पूर्ण धैर्य धारण करना और अद्वितीय गम्भीर साहस का परिचय देना युद्ध क्षेत्र मे तथा हार जाने पर आने वाली आपत्तियों का तनक भी खयाल न करना और अपने दुश्मन की निर्दय तलवार के सिखाये हुए सबकों को बहुत जल्दी भूल जाना आदि बातें जाटों के चरित्र का मुख्य अग है।" 'मुगल साम्राज्य के क्षय और उसके कारण' नामक इतिहास मे प० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने जाटों के इसी जन्मजात स्वभाव का चित्रण इन शब्दों मे किया है—"जाटों मे आज भी एक अल्हड़पन से युक्त वीरता और भोलेपन से मिश्रित उद्दण्डता

विद्यमान है। इन्हें प्रेम से वश में लाना जितना सरल है आंखें दिखलाकर दबाना उतना ही कठिन है। धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से ये अन्य हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक स्वाधीन हैं और सदा रहे हैं। लड़ना उनका पेशा है। मनमानी करने में और अपनी आन की खातिर में अपना घर बिगाड़ देना या जान को खतरे में डाल देना जाट की विशेषता है।" जाटों की इन्हीं विशेषताओं से प्रभावित होकर 'तारीख पंजाब' में भाई परमानन्द जी को लिखना पड़ा—"पंजाब में खालसा राज्य को स्थापित करके सीमाप्रान्त की तमाम पठान जातियों को काबू में करना और अफगानिस्तान के पठानों को कई दफे हरा देना जो कि हिन्दू जाति के इतिहास में एक अचंभा समझा जाता है—जाट जाति के वीरों ही का काम था। मैं यह कहना चाहता हूँ कि इन देश में क्षत्रिय के कर्त्तव्य को जाटों ने यदि राजपूतों से बढ़कर नहीं तो कम भी पालन नहीं किया है।"

हम यह कह सकते हैं कि इस प्रकार के स्वभाव और चरित्र वाली जाट जाति ने सिख धर्म में दीक्षित होकर अपने प्रकृत जन्य क्षात्र तेज में उसी प्रकार उन्नति की जिस प्रकार कि गिलोय नीम वृक्ष पर फल उसके रस को पान करके अपने को और भी अधिक गुणकारी बना लेता है। लेकिन यह सखेद कहना पड़ता है कि भारत की इस जाति के उद्भव और उसके अति प्राचीन कारनामों के सम्बन्ध में बहुत ही कम लोगों को जानकारी है। अधिकांश जाट भी इस सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी रखते हैं। हमने इस ओर जो ऊहापोह की है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि जाट कोई एक वंश या कुल नहीं किन्तु वंशों और कुलों का एक जत्था है। अन्य अनेकों विद्वानों ने भी यही बात स्वीकार की है। जैसे कि वर्तमान में सिखों की एक स्वतंत्र जाति बनती जा रही है उसी भांति किसी समय में जाट जाति के संगठन की भी नींव पड़ी थी। अन्तर केवल इतना है कि सिख लोगों के संगठन का आधार आरंभ में धार्मिकता थी और आगे चलकर वही राजनीति मय हो गया। जाट संगठन का आरंभ ही राजनैतिक कारणों से हुआ था। जिसे बौद्ध, जैन, और नवीन हिन्दू धर्म ने काफी ढीला भी कर दिया। एक दूसरा अन्तर जाट संगठन और सिख संगठन में यह भी रहा कि जाट संगठन में केवल उन क्षत्रिय खान्दानों का ही समावेश हो सका जो उन सिद्धान्तों के मानने को तैयार हुए जिनकी नींव पर कि जाट संगठन खड़ा हुआ था और सिख संगठन में क्षत्रियेतर जातियों को भी खूब स्थान मिला जैसा कि प्रायः धार्मिक संगठनों में होता है। गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा अनुप्राणित सिख धर्म पूर्णतः जाटों की रुचि के अनुकूल था। अतः इसमें दीक्षित होकर उन्होंने एक बार पुनः अपने को दुनिया के प्रकाश में ला दिया। और इसमें तनक भी सन्देह नहीं कि गुरु गोविन्दसिंह यदि बीस वर्ष और भी संसार में रहते तो इन वीर खालसाओं का समस्त उत्तरी हिन्दुस्तान और अफगानिस्तान बिलोचिस्तान तक प्रभाव छा जाता। क्योंकि उनसे एक लंबे अर्से तक धर्म-प्रचार और एक सूत्र में पिरोये जाने का कार्य बन्द रहा था। जिन बारह मिस्लों ने अलग-अलग कार्य किये थे गुरुजी के सामने सबकी एक ही तो शक्ति होती और वह एक शक्ति उस समय सारे संसार को हिला देने के लिए काफी थी।

जाट शब्द के उद्भव और जाट जाति के निर्माण के संबंध में हमारी स्थापना यह है कि भगवान कृष्ण के समय में उस समय की स्थिति के अनुसार क्षत्रियों के दो दल होगये थे। एक दल चाहता था कि देश में जो छोटे २ कुल (कबीलों) के राज्य हैं। इन्हें खतम करके बड़े २ राज्य कायम किए जांय। जरासंध, शिशुपाल, गोनर्द और कंस इसी खयाल के थे। इस खयाल के अनुसार पूर्व में मगध और उसके निकटवर्ती प्रदेशों के छोटे २ राज्यों को जरासंध ने, ब्रज में कंस ने और मध्यभारत में शिशुपाल ने

मिटाना आरम्भ कर दिया। कंस ने अपने बहनोई वासुदेव को इसी कारण से जेल में डाल दिया चूंकि वे उसके इस कार्य का विरोध करते थे। कृष्ण जब समर्थ हुए तो उन्होंने गोप, वृष्ण और नन्द लोगों की मदद से कंस को मार डाला और उन्होंने इन कुल राज्यों को जाति राज्यों के रूप में बदल डालने की बुनियाद डाली। अनेक कुलों के मिलने से जाति-राज्य बनता था इन जाति राज्यों का कोई एक ही राजा नहीं होता किन्तु यह मिलकर एक राज सभा बनाते थे। जिसमे प्रत्येक कुल के प्रतिनिधि शामिल होते थे। महाभारत के एक संदर्भ मे कृष्णा द्वारा ऐसा संघ राज्य बनाने की चर्चा है।

'भेदाद विनाश सघा मा सघ मुख्योशि केशव । यथा त्वा प्राय नोत्सीदे देव सघा तथा कुरु॥"

इस श्लोक मे नारद ने कृष्ण से कहा है कि हे कृष्ण, सघ राज्य भेद नीति से नष्ट हो जाते है। तुम संघों के मुख्य नेता हो, अथवा सघ ने तुम्हे इस समय प्रधान के रूप में प्राप्त किया है अत तुम इस प्रकार वर्तो जिसमे यह संघ नष्ट न हो सके। आगे के एक श्लोक से यह भी बात साफ़ जाहिर हो जाती है कि यह संघ राज्य अनेकों कुलों के संघ से बना था जो जाति प्रधान था यथा :—

"ज्ञातिनाम् विनाश स्याद्यया कृष्ण तथा कुरु।"

अर्थात् हे कृष्ण ऐसा करो जिससे ज्ञाति (जाति को) नुकसान न पहुँचे। कृष्ण का जाति-राज्य आरम्भ में "यादवा कुकुरा भोजा. सर्वे चान्धक. वृष्णाय.।" कुलों के संगठन से बना था। आगे चलकर भारत मे अनेकों ऐसे जाति राज्य अथवा सजात तत्र कायम हुए। पजाब मे बाहलीक और शिवि जाति के मद्र, सिन्धु, जर्त आदि कबीले (कुल या वंश) थे उन सबने गण स्थापित कर लिए। इसी प्रकार मगध मे वज्जियन जाति का एक जाति-राष्ट्र कायम होगया। सिन्ध राजपूताने में यौधेय, शाल्व आदि के जाति-राष्ट्र कायम होगए। सिक्खी को धारण करने पर जैसे सिख कहलाते हैं उसी प्रकार जाति-राष्ट्र के अनुयायी जात कहलाते थे। अरबी और फारसी ग्रन्थों मे जाट को जात और जत ही लिखा गया है कि नागलोगों की भाषा में जिसमे हम उत्तरी पंजाबी या प्राकृति भाषा कह सकते हैं जात का ज्याट या जट मशहूर हुआ। भाषा विज्ञान के पडित इस बात को जानते है कि सस्कृत त प्राकृत मे ट हो जाता है उदाहरण के लिये संस्कृत भक्त प्राकृत मे भट्ट है जो पश्चिमी हिन्दी मे भात और सिन्धी मे भट है। इसी प्रकार संस्कृति का जात प्राकृत मे जट्ट पच्छिमी हिन्दी मे जात और सिन्धी मे जट्ट उच्चारण होगा। पडितों की संस्कृत मे जाति को ज्ञाति बोलते हैं बंगाल मे ज्ञातर अथवा जातर और मालवी (सी० आई०) मे न्यात बोलते हैं। इस प्रकार बंगाल के पड़ोसी सजाततंत्री ज्ञात् (भगवान महावीर भी ज्ञात थे) बोलते थे। मालवा के जैन लोग महावीर के वंश को न्यात (नात) वंशी केवल उच्चारण भेद से बोलते हैं। रोम की तरफ बढ़ने वाले यह ज्ञाति तंत्री ज्ञात अथवा जात की बजाय गाथ पुकारे गये। इन लोगों का भी खत्तियों की भांति एक बड़ा समूह कृष्ण काल के बाद विदेशों को चला गया था। कहा जाता है जटलेंड भारतीय जाटों का ही बसाया हुआ है। शब्द जात से जाट शब्द बनने की बात कई विद्वानों ने स्वीकार की है। रिसाला जगत के लेखक धर्मवीर पं० लेखराम जी ने लिखा है। "अन्य देशों और भारत की भाषाओं के अन्दर अदल बदल होता है और फार्सी मे भी सस्कृति की जाति का जाद, जात बन जाता है। बस बाज़ सरहदी मुलकों मे जातो से जाटो (अर्थात् जात से जाट 'ले०') बन जाता है अरबी साहित्य जिसमे २७ मशहूर गजवाता (लड़ाइयाँ) होने का वर्णन है। उनमे से एक गजवा (लड़ाई) जात (जाट) लोगों से भी हुई थी जो गजवा जातुर्रिका के नाम से मशहूर है। यह वे जात थे जो अरब के पड़ोस में अपना प्रभाव जमा चुके थे।

जाटों का इतिहास तो बताता है कि वे अरब और ईरान से भी बहुत आगे गए थे। कर्नल टाड लिखता है कि —"प्रात ही बिस्तरे पर उठ खडे होना और स्नान करना शीत प्रधान जर्मनी के लोगों की आदतें बतलाती हैं कि उनके पुरखे भारत से आये थे और गुमान होता है कि वे जाट थे।" स्कन्डेनेविया की धर्म पुस्तक में लिखा है कि यहाँ के आदि निवासी जटेस व जिटस पहले आर्य्य कहे जाते थे। तथा वे असीगढ के निवासी थे।"

ईस्वी सन् से ३–४ सदी पूर्व भारत मे भी जाटो ने बड़ा गोरव प्राप्त किया था। प्रसिद्ध श्यूची शासक कनिष्क भारत के उन जाटो का उत्तराधिकारी था जो काश्मीर के शिवियों का एक समुदाय तिब्बत को पार करके चीन मे जा बसा था और शिवि के बजाय श्यूची कहलाने लग गया था। गुप्त लोगों का भी कारस्कर जाट होने के प्रमाण अभी-अभी खोज से प्राप्त हुआ है।[1] 'अजय जर्टो हूणान्' चन्द्र के व्याकरण का यह शब्द मन्दसौर के राजा यशोधर्मा को जाट बतलाता है। यशोधर्मा वरिक गोत के (जोकि जार्टो मे मिलता है) थे इसका प्रमाण ब्याना के विजय स्तम्भ पर खुदी हुई लिपि मे है। सिकन्दर से भिडने वाले जिन शिवोई लोगों का यूनानी लेखकों ने जिक्र किया है। उनके सम्बन्ध मे कर्नल टाड ने टमीटस, टालेमी और पिङ्कर्टन के हवालों से इस प्रकार वर्णन किया है। "उनमें सुएवी, हेमेन्द्री और कट्टी भी शामिलथीं।" इससे भी ज्यादा साफ बात मि० डवल्यू कुर्क साहब ने 'ट्राइब्स एन्ड कास्टस आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्रावेन्सेज एण्ड अवध' नामक पुस्तक मे लिखी है उन्होंने अकित किया है :—

"दक्षिणी पूर्वी प्रान्तों के जाट अपने को दो भागों मे विभक्त करते हैं। शिवि गोत्री या शिव के वंशज और कश्यप गोत्री।" मद्र लोगों का भी भारतीय इतिहास मे वडा स्थान है वे पुराणों के अनुसार शिवियों की ही एक शाखा है। शिवि के दो पुत्र थे एक मद्र और दूसरे केकय। यह पुराणों का हवाला है। बगला विश्व कोष की सातवीं जिल्द मे नगेन्द्रनाथ वसु ने लिखा है कि प्रोफेसर लासेन के मतानुसार जाट मद्रों के वशज है। वे शब्द इस प्रकार हैं —अध्यापक लासेन पडित बोलेन कि महा भारते जे मद्र उ जाति गणे उल्लेख अस्त्विच जाट जाति ताह दीग अन्तर्भुक्त।" हमारा इन शब्दो से केवल इतना मतभेद है कि जाट मद्रों के अन्तर्भुक्त नहीं किन्तु मद्र जाटों के अन्तर्भुक्त है। कारण कि मद्र तो कवीला (वश, या कुल) है और जाट है जाति, जिसमे अनेकों कवीले (वंश) शामिल हैं।

इनके अलावा तक्षक, गाधार, नव, क्रमि, यौधेय, वृष्णि, भोज, दशार्ण, कुन्तल, सिन्धु, कुशान आदि अनेकों प्राचीन क्षत्रिय खान्दानो का जाटों मे निशान मिलता है जाटों का कहना है कि एक समय सारे भाटी जाट थे किन्तु जब राजपूतों का एक नया सगठन खड़ा हुआ तो उनमे से बहुत सारे अपने पुराने स्टाक को छोडकर राजपूत हो गए। जनरल कनिंघम ने भी लगभग ऐसा ही मत जाहिर किया है। उन्होंने भी सिख हिस्ट्री मे लिखा है कि —"एक समय की महान् पराक्रमी जाट जाति ही रणजीतसिंह के

१ गुप्त राजा कारस्कर जाट थे और उनका गोत्र धारण था। प्रभावती गुप्ता को पूना वाले ताम्र लेखो में धारण गोत का वर्णन है। धारणीय जाट बीकानेर राज्य की सर्गरिया हनुमागढ सूरतगढ और दूसरी तहसीलों में पजाब के किनारे २ पाये जाते हैं। ये लोग कदाचित पजाब के फीरोजपुर और भटिंडा जिलो में भी पाये जाते है। अन्य जाटों के समान वे भी गोरे ऊ चे और हृष्ट पुष्ट होते हैं। नागरी प्रचारणी पत्रिका, (भाग १६ अक १—४ पृष्ठ २३१) बिहार उडीसा रिसर्च जनरल जून सन् १९३४।

समय मे समस्त पजाब की अधिकारिणी थी। 'यह जाति बहुत बड़ी सख्या में थी।··· जाट लोग एक ओर राजपूतों के साथ और दूसरी ओर अफगानों के साथ मिल गए हैं किन्तु यह छोटी २ जाट जाति की शाखा सम्प्रदाय पूर्व अचल के 'राजपूत' और पच्छिम अचल के 'अफगान और बलोची' के नाम से अभिहित हैं।" कनिंघम साहब के इस कथन का अर्थ है कि एक समय जाटों की संख्या बहुत थी किन्तु उनमें से कुछ तो राजपूत होगये और कुछ इस्लाम के कारण बिलोच और अफगान कहाने लग गए किन्तु पटियाला आदि रियासतों के जगा और भाटों ने उन्हे इस बात को उलटे प्रकार समझाया कि आप पहले राजपूत थे किन्तु आपके किसी बुजर्ग ने जाटिनी मे शादी करली तब से आप जाट होगए। एक समय था कि इस प्रकार की वाहियात बातों पर भी लोग विश्वास करते थे।

जाट और राजपूतों मे जो अन्तर है उसका खुलासा मि० आर्जीलेथम ने 'एथोनोलोजी आफ इण्डिया' मे इस प्रकार किया है —

"रक्त मे जाट, परिवर्तन किए हुए राजपूत से न अधिक है और न कम, किन्तु अदल बदल है राजपूत अगर प्राचीन धर्म का पालन करे तो जाट हो सकता है।" इस कथन का सार है कि जाट प्राचीन धर्म (वैदिक) का पालक है और राजपूत अर्वाचीन (पौराणिक) धर्म का पालक। यही दोनों में अन्तर है वरना दोनों एक हैं। जस्टिस कैम्पवैल ने इसी बात को इस प्रकार कहा है '—

"यह संभव हो सकता है कि राजपूत जाटों मे से है जोकि भारत मे आगे बढ गए है। और वहाँ हिन्दू जातियों से परस्पर मिल गए हैं तथा ऊचे और कट्टर हिन्दू हो गये हैं। उन्होंने अपने प्राचीन बल वैभव को प्राप्त कर लिया है लेकिन यह सिद्धान्त कि जाट राजपूतों मे से हैं और ऊचे दर्जे से घट गए हैं। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके लिए बिल्कुल सबूत नहीं है और जो आज वर्तमान उन्नत-शील जाटों के बाहरी वर्तमान आचरण से स्पष्ट तौर से प्रकट होता है। जाट जाति के प्राचीनता और महत्व के ऊपर भारतीय जाति-शास्त्र के एक अद्वितीय ज्ञाता मि० नेस फील्ड ने लिखा है .—

" जाट जदू के वर्तमान हिन्दी उच्चारण के सिवा कोई दूसरा शब्द नहीं है, यह वही जाति है जिसमे श्री कृष्ण पैदा हुए थे।"

किन्तु बौद्ध जैन काल के बाद जो नया हिन्दू धर्म भारत में फैला उसने सभी उन पुराने क्षत्रिय समुदायों के प्रति इसी प्रकार के भाव फैलाए जो शीघ्र ही उनके धर्म मे दीक्षित नहीं हुए और राजपूत शब्द को ग्रहण नहीं किया। जाट, अहीर, गूजर, खत्री, अरोड़ा और मराठों सभी के सम्बन्ध मे इसी प्रकार की भ्राति-मूलक बातें फैली हुई हैं। यही कारण था कि इन युद्ध-प्रिय जातियों को गिरा देने के बाद हिन्दुओं ने सकट भी बहुत झेले। मि० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने 'हिस्ट्री आफ हिन्दू मिडिवल इन्डिया' मे बडे खेद के साथ लिखा है —

"जाट और लुहानों ने अपनी लड़ाकू प्रवृति को अब तक कायम रक्खा है हालाकि कट्टर हिन्दुत्व ने उन्हे गिराने की भरपूर कोशिश की।"

ऊपर के उदाहरणों से यह भली प्रकार सिद्ध हो चुका है कि जाट भी उसी प्रकार आर्य नस्ल मे हैं जिस भाति खत्री अरोड़ी और राजपूत। फिर भी हम कुछ प्रमाण यहाँ और उद्धृत करते है। 'कार-नामा राजपूत' के लेखक की नजीमुलगनी रामपुरी ने लिखा है —"जाट कौम की रवायतों से उसका मसकन मग़रब दरियाये सिन्ध पाया जाता है और यादवों मे से इनका निकास साबित होता है।"'इस

कौम को कृष्ण से पैदा होने का गुमान रफै होता है।" इसी प्रकार श्री सुख सम्पतराय जी भंडारी ने 'भारत के देशी राज्य' नामक महाग्रन्थ में लिखा है—"जाट आर्य वंश के हैं और प्राचीन काल में भारत में उनकी वस्ती होने के ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं। यह भी पता चलता है कि उस समय ये (अन्य) क्षत्रियों की भाति उच्च वंशीय माने जाते थे किन्तु सामाजिक मामलों में अधिक उदार होने के कारण ये (पिछले जमाने के) ब्राह्मणों की आँखों में खटकने लगे और उन्होंने इनका जातीय पद गिराने का प्रयत्न किया।" मिस्टर ई० वी० हेवल ने 'हिस्ट्री आफ आर्यन रूल इन इंडिया' में राजपूत और जाटों को आर्य्य बताते हुए लिखा है कि 'इन दोनों की शारीरिक बनावट में अन्तर इतना है कि जाट कुछ मोटे और राजपूत पतले होते हैं।'

भाषा विज्ञान के ज्ञाता सर हेनरी एम० इलियट के० सी० वी० ने 'डिस्ट्रीव्यूशन आफ दी रेसेज आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज आफ इंडिया में लिखा है—

"बहुत समय हुआ मने कराची से पेशावर तक यात्रा करके देख लिया है कि जाट लोग कुछ खास परिस्थितियों के सिवा अन्य शेष जातियों से कुछ अधिक पृथक नहीं हैं। भाषा से जो कारण निकाला गया है वह जाटों के शुद्ध आर्यवंश में होने के जोरदार पक्ष में है। यदि वे सिथियन विजेता थे तो उनकी सिथियन भाषा कहाँ चली गई? और ऐसा कैसे हो सक्ता है कि वे अब आर्य भाषा को-जो हिन्दी की एक शाखा है—बोलते हैं। तथा शताब्दियों से बोलते चले आते हैं। गोंडवाना में यह भाषा हिन्द—की या जाट—की नाम से प्रसिद्ध है। जाटों के आर्यवंश में होने के सिद्धान्त को यदि कतई एक ओर फेंक दिया जावे तो इसके विरुद्ध बहुत ही जोरदार प्रमाण दिये जावेंगे जैसे कि अब तक कहीं नहीं दिये गये। शारीरिक गठन और भाषा ऐसी चीज है जो कि केवल क्रियात्मक समानता के आधार पर एक तरफ नहीं रक्खे जा सकते। खास कर जबकि वे शब्द जिनपर कि समानता अवलंबित है हमारे सामने आते है तो जाट यूनानी या चीनियों से भिन्न पाये जाते हैं।" इलियट साहब के इस कथन से यह भी साफ हो जाता है कि जाटों के शब्दों में उनके हूण या सिथियन होने की कल्पनाये भी निर्मूल हैं।" इस बात को मिस्टर नेस्फील्ड ने तो यहाँ तक जोर देकर कहा है—

"सूरत शकल कोई समझे जाने वाली चीजे है तो जाट सिवा आर्यों के कुछ और हो नहीं सकते।"

इन सब उद्धरणों के अलावा भी जाटों का रहन सहन रस्म और रिवाज सभी वैदिक आर्यों से मिलती जुलती हैं। वे वास्तव में ही पुरातन आर्यों के उत्तराधिकारी हैं अत. इस प्रसग को लंबा करना हम अनावश्यक समझते हैं।

खत्री, अरोडों और जाटों की तरह पंजाब की अन्य जातियों ने भी अमृत चख कर अपने को अमर समुदाय में शामिल किया था। सिखों को अमर समुदाय कहना उस समय तक तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं जब तक कि वे इसी भाति अपने सिद्धान्तों के पक्के रहेंगे जैसे कि इस समय हैं। कुछ लोग कहने लगे हैं कि सिखों में अन्धविश्वास है तो हम कहेंगे यह सिख जाति के लिए शाप नहीं प्रसाद है, पतन नहीं अभ्युदय है और त्याज्य हरगिज नहीं किन्तु श्रेय और ग्राह्य है। दसम गुरु के पाच प्यारों में कई जातियों के रत्न थे। इसी तरह आज के सिख माज में भी कलाल, दर्जी, मोच, ब्राह्मण, खाती आदि अनेकों जातियाँ है।

आज भी सिख समाज का वह तेज और शौर्य है कि दलित जातियों में से भी लोग अमृत चखते

ही यह खयाल करने लग जाते है कि मैं निस्सहाय नहीं, कमजोर नहीं, और न दबने वाला हूँ। फिर उन लोगो का तो कहना ही क्या ? जिनकी पीढ़ी दर पीढ़ी अमृत पान करती आ रही हैं। वे धर्म की रक्षा के लिये हर समय सिर पर कफन बाधे रहते हैं। उनका उत्साह अदम्य है। साहस अपार है और धर्म का प्रेम कल्पना से बहुत गहरा है। इतना गहरा जिसका कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता। इन्ही सब बातों को देखकर तो एक अग्रेज ने लिखा था कि उत्तर भारत को मुस्लिम इंडिया बनाने मे मुसलमानों के लिए सिख एक अजेय दीवार साबित हो रहे है। दूसरी ओर हिन्दू भी अब पूर्ण विश्वास के साथ समझने लग गये है कि भारत के स्वतन्त्र होने पर कोई भी उत्तरी शक्ति तब तक पजाब को पार नहीं कर सकती है जब तक कि सिख समाज जिन्दा रहेगा।

लेकिन यह सब श्री नानक देव प्रभृति गुरुओं के तप का ही फल है।

तीसरा अध्याय

गुरु नानकदेव जी का जीवन और शिक्षाएं

जन्म और वंश

आज सारा पंजाब और पंजाब से बाहर के सभी पठित एवं इतिहास से जानकारी रखने वाले हिन्दू जिन महापुरुष का नाम आदर और श्रद्धा की दृष्टि से याद करते हैं उन गुरु श्री नानक देव जी महाराज का जन्म सम्वत् १५२६ विक्रमी में कार्तिक सुदी १५ को वेदी वंश के एक पटवारी कल्यानरायजी के घर माता तृप्ता देवी जी के उदर से हुआ था। कल्यान राय जी तलवंडी गाव मे जो कि लाहौर से कोई ४० मील दक्षिण-पश्चिम है राय बुलारकी जमीदारी मे रहते थे। यह समय लोदियों की हुकूमत का था और दिल्ली के तख्त पर इस समय बहलोल खां लोदी आसीन था।

वेदी लोग खत्री जाति के अग है और खत्रियों के अनेक गोतों (कुलों) मे से वेदी एक मशहूर गोत है। वेदी और सोढ़ी गोतो की वजह तस्मीया सिख लेखकों ने इस प्रकार वर्णन की है– "राम के दोनों पुत्रों ने लाहोर और कसूर दो नगर बसाए। कई पीढ़ियों बाद लव के कालाराय और कुश के कालकेतु हुये। कालकेतु ने कालाराय को देश से निकाल दिया। उस ने सनोढ़ देश मे पहुँच कर वहा के राजा की लड़की से शादी की। तब से उनकी संतान सोढ़ी कहलाने लगी। सनोढ़ देश को मथुरा आगरा से अमरकोट तक फैला हुआ माना गया है। जिस राजा ने अपनी लड़की की शादी कालराय के साथ की थी वह अमरकोट का राजा था।

सोढ़ी राव की पाँचवी पीढ़ी मे विजय राव हुए। उन्होंने अपने पूर्वजों का बदला लेने और अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए कसूर पर चढ़ाई करके कालकेतु के वंशज धीर राय को वहा से हटा दिया। धीरराय भाग कर अवध की ओर चला गया और वहा धीरे-धीरे अपनी एक जमीदारी बनाली। उनकी संतान उधर की ओर ठाकुर कहलाती है। इनके वंश मे एक महात्मा अमृतराय हुए, उन्होंने काशी जाकर वेद पढ़े तब से यह लव वशी क्षत्रिय वेदी कहलाने लगे। वेद पढ़ कर अमृतराय जो अब वेदीराय कहाने लग गये थे। शास्त्रार्थ के लिये निकले। अनेकों पंडितों को हराते हुए पजाब मे पहुचे यहा पर अब मुल्क राय राज्य करता था। यह विजय की चौदहवीं पीढ़ी मे था। इसने वेदीराय से वेदों का उपदेश सुना और ऐसा प्रभावित हुआ कि अपने राज्य को वेदीराय को देकर आप गगा किनारे तप करने के लिये चला गया। वेदीराय की संतान मे अंभोज, नरोतम, सल्व, तीन पुत्र हुए। इनमे सल्व सब से बड़ा

था[1] समय के हेर फेर से सल्व के पास केवल २० गाव रह गये ।

अभोज की सतान मे नाथ जी, संभू जी, प्रजापति, नारायण और सन्नपात थे जिनमे नारायण पहिले से ही खेतीवारी और व्यापार करने लग गया था ।

सवत १४७१ मे पिंडी भट्टिया के भट्टी राजपूत मुसलमान होगये उन्हे इस उपलक्ष में दस गाव मिले और साथ हीं राय की पदवी भी । १४८६ विक्रम मे उन्होंने तलवडी गांव वसाया । और गौंडे पिंड[2] से नारायण के बेटे शिवराम वेदी को भी तलवडी मे ही बुला लिया । इसी शिवराम वेदी के घर सवत १४६७ मे कालू और सवत १५६१ विक्रमी मे लालू का जन्म हुआ ।

सवत् १५१८ विक्रम मे राय भोंये मर गया । उनका बेटा रायबुलार मालिक हुआ । उसने कालू अथवा कल्यानराय[3] को अपनी जागीर का पटवारी वनाया । इन्ही कालू के घर माता तृप्ता के उदर से महान् गुरु नानक देव जी ने जन्म लिया ।

खत्रियों के सम्बन्ध मे दूसरे अध्याय मे हम वहुत कुछ लिख चुके हैं इसलिए उसे दुबारा दुहराना व्यर्थ होगा । यहा केवल इतना कहना है कि सिख इतिहासकार वेदियों की शृखला वद्ध वशावली की अभी तक खोज करने मे सफल नहीं हुए है । यह काम है भी कठिन क्योंकि श्री रामचन्द्र जी से लेकर सुमित्र तक की वशावली तो पुराणो ने भी दी है किन्तु आगे के लिए उन्होंने भी कोई पता नहीं दिया किन्तु उलटा यह और कह दिया है कि "इक्ष्वाकूणामय वंश । सुमित्रान्ते भविष्यति ।" अर्थात भविष्य में इक्ष्वाकु का वश सुमित्र पर अत हो जायगा । पुराणों के इस कथन के होते हुए भी लोगों ने आगे वशावली तयार करने की कोशिश की है । उन्होंने रास्ते निकाले हैं कोई कहता है सुमित्र ने अमुक को गोद ले लिया था कोई कहता है सुमित्र के भाई का लडका गद्दी का मालिक हुआ किन्तु हम कहते हैं । पुराणों का ऐसा कथन करने का अर्थ दूसरा है बात यह है कि सुमित्र की सतान के लोग एक दम से कट्टर वोद्ध अथवा जैन हो गए । पुराणों के कर्ताओं के लिए तो यह अन्त सही था । किन्तु यह नहीं कह सकते कि जिन लोगों ने सुमित्र से नीचे की वशावली तयार की है वे सही भी हैं । वेदियो की पीढियो की वशावली तयार करना तो और भी कठिन है क्योंकि वे लव वंशी है और लव वशियों की तो पुराणो ने भी कोई वंशावली तयार नहीं की है । फिर भी जितना भी इस सम्बन्ध मे हम खोज कर सके हैं उसके आधार पर सूरज वंश का एक कुर्सीनामा आगे दे रहे है ।

नानकदेव जी के जन्म से कल्यानराय के घर मे निहायत खुशी हुई क्योंकि आप उनके इकलौते और अतिम पुत्र थे । पुत्र के लिए माताएँ कितनी लालायित रहती है और वह भी देर से पैदा हो तो और भी खुशी का ठिकाना नहीं रहता है । कल्याणराय ने इस अवसर पर खूब उत्सव मनवाया, मंगलाचार हुए । वधावे गाये गये । कुल पुरोहित हरदयाल पडित ने आकर जन्म पत्र वनाने की तैयारी की । पंडित के पूछने पर दौलता दाई ने

जन्मोत्सव

१ कुछ लेखको ने एक बात वडे मजे की लिखी है कि यह सल्व पाडवो का समकालीन था । पाडव तो अब से पाच हजार वर्ष पहिले पैदा हुए थे जव कि यह सल्व अव से आठ सौ वर्ष से भी ज्यादा पहिले नहीं पदा हुआ ।

२. पजावी में गाव को पिंड कहते है ।

३. इनके कल्यानचन्द कल्यान और कालू कई नाम लिये जाते थे ।

वताया लड़का वड़े शुभ मुहूर्त मे हुआ। पैदा होते ही विहँसा है। इसके पैदा होने के समय घर मे दैवी प्रकाश और सुगन्धि फैल गये थे। दाई ने लाकर पुरोहित जी को भी बच्चा दिखा दिया। ठीक समय पर पंडित ने जन्मपत्र तैयार करके कल्यानराव को दिया और सुनाया कि लड़का वडा प्रतापी होगा। इसके

इतिहास गुरु खालसा से

६ ४ रा ७ शु० शा० ५ मं० ३ ८सू०बु० २ च० ९ ११ बृ० १ १० के १२

प्राण संगली से
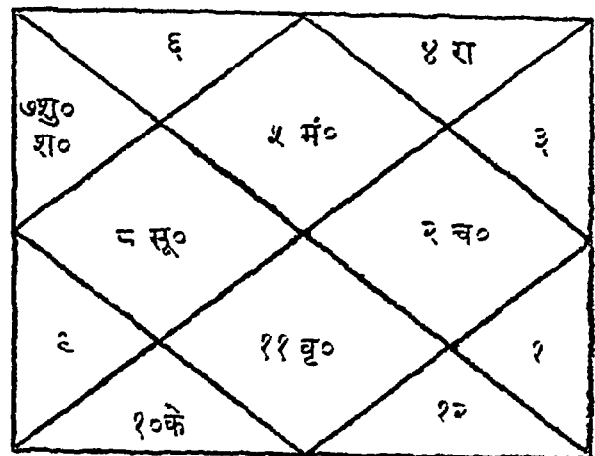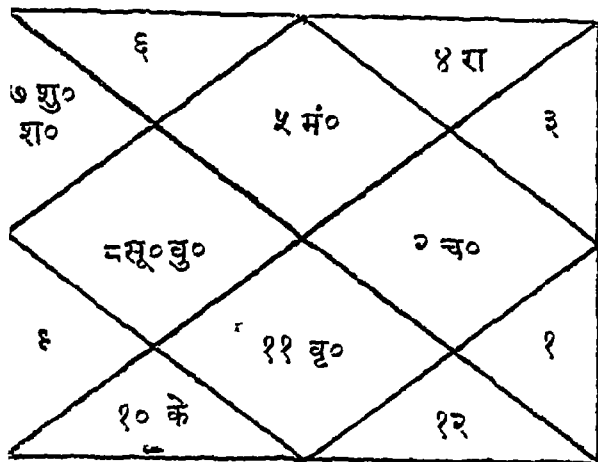
लक्षण तो चक्रवर्तियों जैसे है। तुम्हारे कुल को उजागर कर देगा। नाम इसका नानक होगा, कल्यानराय जी अपने पुत्र के ऐसे शुभ लक्षण और उज्वल भविष्य को सुनकर वडे प्रसन्न हुए। पुरोहित जी को खूब दान दक्षिणा दी गई।

नाम पर वहस

नानक जी के नाम पर वहुत वहस होती है। कुछ लेखको ने लिखा है कि शायद गुरु जी अपनी ननसाल मे पैदा हुए थे—पंजाब में ऐसा रिवाज भी है कि प्राय. स्त्रियाँ प्रसव के समय मायके चली जाती है—अत उनका नाम नानक रक्खा गया। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि चूंकि उनकी वड़ी वहिन का नाम नानकी था। इसलिए नानक नाम रक्खा गया। कुछ लोग यह भी लिखते है कि पुरोहित ने नानक नाम इसलिए रक्खा कि यह वच्चा हिन्दू, मुसलमान दोनों के लिए प्रिय और हितकारी सिद्ध होगा। अपने-अपने दृष्टिकोण से यह सभी कथन सही हो सकते है किन्तु हमें जो ठीक कारण नानक नाम रखने का जान पड़ता है वह यह है। गुरु जी का जन्म जिस घड़ी और नक्षत्र में हुआ था उसके अनुसार उनके नाम का पहला अक्षर 'ना' होना चाहिये। ज्योतिप शास्त्र के अनुसार वारह राशियाँ हैं सत्ताईस नक्षत्र है। यह वारहों राशियाँ वारह महीनों पर वर्तती है उदाहरणार्थ बृख राशि जेठ महीने और मकर राशि माघ महीने पर वरतती है। गुरुजी का जन्म कार्तिक की पूर्णिमा को हुआ था अत उस समय वृश्चिक राशि थी। इसी प्रकार सत्ताईसों नक्षत्र वारी-वारी से इन वारहों राशियों पर वरतते हैं। उनका वरतने का क्रम यह है कि सालभर मे उन्हें वारह राशियों पर घूम लेना होता है। गुरुजी के जन्म समय वृश्चिक राशि पर अनुराधा नक्षत्र था नाम रखने की प्रणाली मे—ज्योतिप ग्रन्थो मे—कुछ अक्षर मुकरिर हैं। अतः उसके अनुसार तो वच्चे के नाम मे प्रथम अक्षर 'न' होना चाहिए था। इस अक्षर पर नारायण, नागपाल, नाथ, नानक आदि नाम रक्खे जा सकते है चूंकि नारायण और नाथ कालू जी के दादे पड़दादों के नाम थे। अत पंडित ने नानक नाम ही उचित समझा। नानकी नाम पहिले से ही उनकी वहिन का था भी। इसलिए पंडित को और भी सहूलियत होगई। हम समझते है कि वहिन नानकी का नाम भी शायद घड़ी मुहूर्त और राशियों के

विचार से ही रक्खा गया होगा। इस धारणा मे कुछ सार भी दिखाई देता है। क्योंकि हम देखते हैं। दोनों बहिन भाइयों के स्वभाव मे बहुत कुछ समानता भी है घर के अन्य सभी कुटुम्बी नानकदेव जी के भक्ति भाव और मनोवृत्ति के विरोधी है किन्तु नानकी जी ने कभी एक शब्द भी अपने भाई के विचारों के खिलाफ नहीं कहा, धर्म परायणता, दयालुता, पवित्रता सभी गुण नानकी मे मिलते हैं। परिवार के लोगों मे नानकी ही पहिला व्यक्ति था। जिन्होंने नानकदेवजी की अलौकिक शक्ति को पहचाना।

"पूत के पॉव पालने मे ही दीख जाते है।" यह एक लोकोक्ति है जिससे बच्चों के सम्बन्ध मे यह खयाल कर लिया जाता है कि वह बड़ा होने पर कैसा होगा। बचपन वास्तव मे नींव है। गुरु नानक जी की यह नींव भी भक्ति और दयालुता पर ही खडी हुई थी। बच्चों मे

बालकपन

खेलते समय वे उनके साथ प्रेम का व्यवहार करते उन्हे ईश्वर सम्बन्धी भजन सुनाते। घर की चीजों को उठाकर गरीब बालकों को देते-देते या पडोसी गरीब घरों मे दे आते। मॉ बड़ा लाड करती थीं। बड़े प्रेम से रखती थीं और उस प्यार के साथ इस कार्य के लिए डपटती भी कि वह घर की चीजों को बाहर क्यो दे आता है। मॉ ने एक दिन स्वप्न मे देखा एक सिंहासन पर बालक नानक बैठा है और ऋषि मुनि एवं देवता आकर उसकी स्तुति कर रहे है। उस दिन उनका प्यार और भी बढ गया।

एक दिन नानकदेव जी की मौसी अपनी बहिन से मिलने आई। उसने देखा बालक नानक अच्छी चीज का सग्रह अपने लिए नहीं करता किन्तु अडोस-पडोस के गरीब बालकों को दे देता है या फकीरों को बॉट देता है। उसने कहा बहिन तेरा नानक तो पागल लड़का है। नानकजी हँसकर बोले किन्तु मौसी तेरे घर मे मेरा जैसा ही एक पागल होगा (आगे चलकर हुआ भी ऐसा-उनकी मौसी का लडका रामरत्न घर-बार छोडकर सत हो गया। जिसका कसूर में स्थान भी है) कहा जाता है उनके बैठने, खेलने, कूदने और हँसने के सभी ढंग निराले और मोहक थे।

सवत १५३२ विक्रमी मे जब नानकदेव जी की अवस्था सात वर्ष की हुई तो कल्यानराय जी ने उन्हे लेजाकर गोपाल पंडित की पाठशाला मे हिन्दी पढने के लिए बिठाया। जो आगे चलकर ससार को पढावेगा और पढ़ावेगा वह चीज जो मुरदा जगत को जीवन ज्योति प्रदान करेगी। प्रेमवश पिता ने उसी पुत्र को पंडित के सुपुर्द किया।

शिक्षा दीक्षा

आदि गुरु ग्रन्थ साहब महला १ मे एक श्रीराग इस प्रकार है—"जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु। करि चितु लिखा री गुरु पुछि लिखु बिचारु॥ लिखि नाम सालाहु लिख, लिखि अन्तु न पारावार॥१॥ बाबा इहु लेखा लिखि जाणु, जित्थै लेखा मागियै तिथै होइ सचा निसाणु॥ अर्थात्—हे चित्त रूपी लेखक मोह को जलाकर त्याग रूपी स्याही बना और बुद्धि रूपी कागज पर प्रेम रूपी कलम से सत्यासत्य का विचार लिख और लिख परमात्मा का नाम जिसका पार ही न आ सके। बाबा अगर ऐसा लिखना जान गया तो जहॉ भी लेखा (हिसाब) मागा जायगा वहीं सचाई सिद्ध (निशान) होगा।" इसके लिये श्रद्धालु सिखों का कथन है कि गुरुदेव ने यह वाक्य गोपाल पंडित के प्रति कहे थे। गुरुजी का चित्त आठो पहर भक्ति मे डूबा रहता था, चलते-फिरते उठते बैठते ध्यान उनका परम पिता परमात्मा की ओर ही रहता था। पाधे के बार-बार यह कहने पर कि लिखो गुरु जी ने उसके हृदय कपाट को खोलने के लिये अवश्य ही ऐसा कह दिया होगा क्योंकि जिस लिखने की अत्यन्त आवश्यकता है वैसे लेखे की ओर तो ध्यान तक नहीं है और उस लेख के लिए इतनी सिर पच्ची करता है। गुरुदेवजी के

लिये पढ़ना गौण था ध्येय नहीं। ध्येय तो भक्ति थी और पाडे गोपाल जी का ध्येय (मकसद) ही पढ़ना, पढ़ाना था। गुरुजी के इस पद मे यही उपदेश है कि ध्येय तो इस प्रकार का लिखना नहीं किन्तु "लिखना सालाह का है, जिसका कि अत न पारावार। कारण कि (बाबा) 'इहु लेखा लिख जाणु' तो "जित्थै लेखा मांगि ऐ तित्थै होइ सचा निसाणु" परन्तु ऐसा लिखना उस समय तक नहीं आ सकता जब तक कि "जालि मोहघसि मसु करि मति का गद्दु करि साह" कृत्य न किया जायगा और "काट चितु लिखारी गुरु पुछि लिखु विचारु" की वृत्ति न बनाई जायगी।

इस हृदय स्पर्शी शब्द का गोपाल पाडे पर जो भी असर पड़ा हो किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि गुरु जी पढ़ने से वचित रह गये हों किन्तु यह सही है कि पढ़ने के पीछे उन्होने अपनी लौ को परम पिता परमात्मा की ओर से न हटने दिया।

उस जमाने मे हिन्दी की शिक्षा ऐसी कोई लबी चौडी न होती थी आज की तरह भूगोल, भौमितिक, ड्राइंग, तवारीख और बीज गणित के इतने सारे मजमून न थे। अक्षरज्ञान के अलावा वही खातों का हिसाब और बस हिन्दी की पढ़ाई खतम। पढ़ने लिखने मे दत्तचित न होते हुए भी गुरु नानक देव जी जैसे मेधावी महापुरुष के लिये इन बातो को सीख लेने मे देर ही क्या थी। पडित तो गुरु जी की बुद्धि से चकित ही रहता था।

इसके बाद ३ वर्ष बाद पिता ने अपने प्यारे पुत्र को संवत १५३५ विक्रम मे प० ब्रजनाथ जी शर्मा के पास संस्कृत सीखने के लिये बिठाया। "ॐम नम सिद्धम" पंडित ने लिख कर गुरु जी को दिया और कहा इसे याद करलो। भला गुरु जी को इसमे याद करने को क्या था। उन्होंने कहा पंडित जी इसका अर्थ भी समझा दीजिए किन्तु पडित ने प्रचलित प्रणाली के अनुसार केवल रट लेने पर ही जोर दिया। संस्कृत के पुराने ढंग के शिक्षक अब भी रटाते ही हैं। अर्थ साथ ही साथ नहीं बताते हैं। गुरु जी के दुवारा अर्थ बताने के लिए जोर देने पर पंडित ने कहा अभी आपको इस प्रकार अनेकों ग्रन्थ कण्ठस्थ करने होंगे। गुरु जी ने इस पर उत्तर दिया भला उन ग्रन्थो को कण्ठ करने मे क्या लाभ जिनका अर्थ ही मालूम न हो। पंडित ने ओंकार का अर्थ अपनी धारणा के अनुसार गुरु जी को बताया किन्तु गुरु जी उससे संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने स्वयम ही ओंकार का ऐसा विवेचना युक्त अर्थ किया कि पंडित विस्मत रह गया। पंडित पर गुरु जी की योग्यता की वह छाप लगी कि वह स्वयम गुरु जी की ओर आकर्षित होने लगा और उनकी मानव जीवन को ऊँचा उठाने वाली और कल्याण प्रद बाते बडे चाव से सुनता।

सं० १५३७ विक्रमी मे कल्याणराय जो ने नानक देव जी को मौलाना कुतुबुद्दीन के पास फारसी पढ़ने के लिये बिठाया। सिख तवारीखों मे लिखा है कि यहाँ भी नानक जी ने अपने चातुर्य से मौलवी साहिब को चकित कर दिया। अलिफ बे, पे आदि परमात्मा सम्बन्धी ऐसे सुन्दर अर्थ कि कि मौलवी कुतुब आनन्द विभोर हो गया और उसने गुरुजी को मन ही मन कोई वली अन्दाज कर लिया। और जब तक गुरु जी उसके मकतब मे गये वह उन्हे सम्मान की दृष्टि से देखता रहा।

इसी बीच नानक देव जी ग्यारह वर्ष के हो चुके थे हिन्दू धर्म शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार क्षत्रिय के बालक का जनेऊ इस उम्र मे हो जाना चाहिये। इसलिये कल्यानराय जी ने भी यज्ञोपवीत सस्कार कराने का आयोजन किया। घर मे और बिरादरी मे बड़ी खुशी मनाई जा रही थी। साफ सुथरे और सजे हुए घर के बीच यज्ञ मडप मे पडित लोग स्वस्ति वाचन और मगलाचरण पट

रहे थे। स्त्रियाँ गीत गा रही थीं वेद मंत्रों की ध्वनि से वायुमंडल गूंज रहा था। पुरोहित हरिदयाल ने ठीक मुहुर्त मे कहा बच्चे को लाओ। नानक देव ने यज्ञस्थल मे पहुचकर पडित से कहा–"मुझे ऐसा जनेऊ पहनाओ जो न तो कभी टूटे और न बदला जावे। जो ईश्वरीय हो। जिसमे दया का कपास हो, संतोप के सूत से जिसकी जत बनाई गई हो। ऐसे जनेऊ को पहन कर ही कोई मधन्य हो सकता है।

ग्रन्थ साहब में इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है —

दया कपाह सतोप सूत जतु गढी सतु वट्टु।
ऐह जनेऊ जीय का हई त पाडे घतु॥
ना एहु तुट्टे न मल लगै न एहु जलै न जाइ।
धन्न सु माणस नानका जो गलि चल्ले पाइ॥ श्लोक महिला १

हिन्दू धर्म मे जनेऊ केवल हिन्दुत्व और खास करके द्विजत्व का परिचायक है। स्वच्छता और स्वस्थता के लिये जनेऊ प्रेरक है किन्तु नानक देव जी के समय मे जनेऊ धारण करने के माने ही उलटे थे। लोग अशुद्ध भी रहते थे। झूठ भी बोलते थे पाप भी करते थे। मूर्ख और निरक्षर भी बने रहते थे किन्तु केवल जनेऊ धारण कर लेने ही के कारण वे अपने को द्विज, ब्राह्मण या श्रेष्ठ समझने लग जाते थे। एक तरह से उन दिनो जनेऊ ढोंग का आधार बना हुआ था। व्यर्थ की अहमन्यता जनेऊ धारण से पैदा हो रही थी। ऐसी हालत का गुरुदेव ने विरोध किया यह हिन्दूधर्म के भले ही की बात थी। यह विरोध जनेऊ का नहीं किन्तु नाशकारी और गलत भावना का था जो जनेऊ पहनते ही उस समय पैदा हो जाती थी।

यज्ञोपवीत संस्कार के इस उत्सव पर हुई बहस का यह नतीजा हुआ कि लोग गुरु जी के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की बाते कहने लग गये कोई कहता इसका दिमाग ठीक नहीं है, कोई कहता यह तो कुराह पर चलने लगा है। कुछ लोग सचाई के साथ भी उनकी बातों को विचारने लगे।

कहा जाता है कल्यान राय जी को पैसे से बड़ा मोह था वे अधिक से अधिक कमा लेने और सग्रह करने की रुचि के लोक व्यवहारी आदमी थे। यद्यपि नानक देव उनके एक ही पुत्र थे किन्तु वह

घर के धधों में

यह नहीं बर्दास्त कर सकते थे कि यह एक लडका भी बैठा ठाला रह सके इसलिये उन्होंने देखा कि जब इसका पढने लिखने मे चित नहीं लगता है तो उन्होंने अपने पुत्र को गायें चराने के लिए जगल भेजना आरभ कर दिया। उस समय खत्रियों में आज की तरह लालापन नहीं आया था वे खेती और पशु पालन के काम को बुरा नहीं समझते थे। भगवान् कृष्ण ने बालक पन मे गाये चराई थीं। हजरत मुहम्मद भी बकरी चराते थे। काम और धंधों को हेटा समझने की रवाज तो अब चली है। नानक जी भी गाये चराने जाने लगे। साथ के बालकों मे अपना प्रचार भी करने लगे। जगल मे सगति बैठती और हरि चर्चा आरभ होती। नानक जी उपदेश करते और दूसरे बच्चे ध्यान से सुनते। गायों के लिये छुट्टी थी जहाँ तक भी तबीयत आये चरें। कुछ लोगों ने कल्यानराय जी को उलाहना दिया कि आपका पुत्र जब से गायों को चराने जाने लगा है। हमारा नुकसान होता है क्योंकि दूसरे लड़के भी उसकी हरि कथा सुना करते है। पशुओं की रखवाली नहीं करते। इस तरह का श्री नानक देव का ढंग देखकर कल्यानराम बडे घबराये क्योंकि वह तो लोक व्यवहारी आदमी थे। सोचने लगे इस तरह से तो घर बरबाद हो जायगा और लडका जब न तो पढ़ता है और न घर का काम करता है तब काम कैसे चलेगा। साथ ही घर के माल को फकीर फुकरों को बॉट

कर वर्बाद और करता है। उन्हें तो बड़ी-बड़ी आशायें थी बड़े-बड़े उनके मनसूबे थे वे सोचते थे मैं लड़के को ज्यादा से ज्यादा पढ़ाऊंगा अगर वह मेरे मन की माफिक पढ़ गया तो किसी बड़े नवाब के यहाँ दीवान बनवा दूंगा और अगर दुकानदारी का काम सीख गया तो एक बड़ा सौदागर बना दूंगा किन्तु जब इन दोनों ही ओर से कल्यान राय निराश हुए तो हरिदयाल पाडे[1] से जाकर कहा महाराज खूब जन्म पत्र बनाया।[2] तुम तो कहते थे यह लड़का बड़ा प्रतिभावान और वैभव सम्पन्न होगा। क्या घर की वर्बादी का ही नाम वैभव सम्पन्नता है? पंडित के पास से आकर घर अपनी गृहणी से कहा, लड़का तो किसी भी काम का नहीं।

इधर श्री नानक देव जी का भी यह हाल था कि वे बहुत उदास रहते थे। घर से जंगलों को निकल जाते, भूख प्यास की कोई चिन्ता नहीं करते। वक्त बे वक्त घर आते। तबीयत में आता तो कुछ खाते पीते। माता तृप्ता जी अपने बच्चे की यह हालत देख कर घबरा गई कल्यानराय जी से उन्होंने समझा कर कहा कि हो, न हो, बच्चे को कोई तकलीफ है। कल्यानराय जी नानक जी से वैसे खिन्न थे किन्तु आखिर थे तो पिता, घबरा गये और वैद को बुलाकर लाये। वैद क्या इलाज करता और नानक देव जी क्या इलाज कराते उन्हें कोई शारीरिक रोग थोड़े ही था इसलिये जब वैद्य उनकी नाड़ी टटोलने लगा तो उन्होंने कहा—"वैद बुलाइया वैदगी पकड ढढोले बाँह। भोला वैद न जानई करक कलेजे माहि ॥१॥ वैदा वैद सु वैद तू पहला रोग पछाण। ऐसा दारू लोड लहि जित वर्ज रोगा घाण ॥२॥ जित दारू रोग उठि अहि तन सुख वसं आइ। रोग गवायहि आपणाता नानक वैद सराय ॥३॥" (श्लोक महला १) इन शब्दों का वैद हरिदास पर ऐसा असर पड़ा कि उसने नानक देव को नमस्कार करके अपनी श्रद्धा अर्पित की और कल्यानराय जी से कहा कि आप कहीं भी न भटकिये तुम्हारा पुत्र रोगी नहीं किन्तु वह इस दुखी देश के रोग को दूर करने के लिए ईश्वर का भेजा हुआ वैद्य है।

रायबुलार का आकर्पित होना

तलवंडी का जागीरदार रायबुलार एक खुदा परस्त औ भली प्रकृति का आदमी था। वह फकीर लोगो की पीरी और करामातों मे खूब विश्वास रखता था। नानक देव जी का भी वह शनैः शनैः भक्त होता जा रहा था। उसके आकर्पित होने की शुरुआत एक किसान की शिकायत के झूठे होने वाले दिन से होती है। श्रद्धालु सिख उस घटना का वर्णन इस प्रकार करते है कि जब नानकजी अपनी गायों को चराया करते थे तो एक किसान का सारा खेत गायों ने उजाड़ दिया। किसान श्री नानक देव जी समेत सभी चरवाहों को राय बुलार के पास पकड़ कर ले गया और कहा कि इन लोगों ने अपने पशुओं से मेरे खेत को चरवा दिया है। राय बुलार के पूछने पर नानक जी ने कहा इसका खेत तो हरा भरा खड़ा है यह कैसे कहता है कि चरवा दिया। राय बुलार ने अपने आदमी को उस किसान के साथ खेतो की

१. पंजाब में पाडे को पाधे कहते है।

२. प० हरिदयाल ने जन्म पत्र के अनुसार बताया था यह बालक लोक प्रसिद्ध होगा। इसके ग्रह बहुत ऊंचे है। दरअसल बात यह है कि जिस अनुराधा नक्षत्र में वे पैदा हुये थे वह नक्षत्र देवता वर्ग में है। और वह वृश्चिक राशि ब्राह्मण वर्ण है। इस प्रकार के योग से नानकदेव जी के सम्बन्ध में पंडित ने जो कुछ कहा था वह अपने उस विश्वास के माफिक ठीक कहा था जो उसने ज्योतिष शास्त्र के पढ़ने से बनाया था।

जाच करने भेजा, किसान ने लौटकर कहा मैं नहीं जानता यह क्या जादू होगया है। अब तो खेत हरे खडे है। बस इसी दिन से राय बुलार यह खयाल करने लगा कि कल्यानराय का लड़का "यों ही साधारण आदमी नहीं है।"

इसके बाद उसने एक दिन जबकि वह अपने आदमियों समेत शिकार खेलकर लौट रहा था देखा कि बालक नानक एक पेड के नीचे सो रहा है और एक नाग फन को फैलाकर उनके चेहरे की छाया कर कर रहा है क्योंकि ऊपर से पेड की पत्तियों मे छन छन कर धूप आ रही थी। बुलार ने मन ही मन मे गुरुदेव की वन्दगी की तथा अपने साथियो को भी यह कौतुक दिखलाया। इन घटनाओं को देखने के बाद राय बुलार पूरी तरह से गरुजी की ओर आकर्षित हो गया। उसने कल्यानराय जी से कहा कि कालू तेरे घर मे जो लड़का पैदा हुआ है। वह कोई मामूली आदमी नहीं है। अवश्य ही वह कोई वली है।

जहाँ तक भी हमे ससार के धार्मिक महापुरुषो के इतिहास का पता है वहाँ तक हम कह सकते हैं कि उनके उन महान कार्य्यों के साथ जो उन्होने लोक उद्धार के लिए किये थे करामातों का भी एक वडा सिलसिला है। भगवान कृष्ण ने गोवर्द्धन पहाड को अगुली पर उठा लिया, हजरत मुहम्मद ने चांद के दो टुकडे कर दिये। भगवान बुद्ध ने मुरदे को जिया दिया। हजरत मूसा ने दरियाव को फाड दिया। आदि आदि। ऐसा सिलसिला गुरु नानक देव जी के उन महान सुधार-कार्यों के साथ भी लगा दिया गया है जो उन्होंने हिन्दू जाति को अमर करने के लिये किये। इस तरह के कथन से हमारा यह मतलब नहीं कि उपरोक्त महा पुरुष करामाते स्वत दिखाते थे या भक्तजन उनके सामर्थ्य पूर्ण कार्यों को ही अपनी सामर्थ्य से बाहर होने के कारण करामात समझ लेते थे। हमारा तो खयाल है महापुरुष संसार के लिए ईश्वरीय देन होते है और उनके अनेकों कार्य भी देवोत्तर होते है। रायबुलार पर भी ऐसे ही देवोत्तर कार्य्यों का प्रभाव पडा था और वह उतरोत्तर वढता ही गया।

शेख फरीद

पाक पट्टन मे शेख फरीद की समधि पर उन दिनो वडे भारी मेले[1] लगते थे। कल्यान राय जीके मीरासी मरदाना ने नानक देव को मेला देखने के लिये उत्साहित किया। नानक तो स्वत ऐसी बातों के लिये तयार रहते थे। राजी हो गये और दोनों पाक पट्टन पहुँचे। क्या हिन्दू क्या मुसलमान हजारों ही आदमी बावा शेख फरीद की समाधि पर श्रद्धा के फूल चढ़ा रहे थे। गुरु देव ने यह सब कुछ देखा किन्तु वह इस पाखड को देखने थोडे ही आये थे वे तो फकीरो से ज्ञान चर्चा करना चाहते थे। उन दिनों वहाँ का महत शेख इब्राहीम था। गुरुजी ने उसके साथ सत्सग का प्रस्ताव रक्खा पहिले तो इब्राहीम ने सोचा यह कमसिन बालक उनके साथ क्या ज्ञान चर्चा करेगा किन्तु जब बाते हुई तो इब्राहीम पर गुरुनानक का वडा असर पडा। यहाँ गुरुजी ने जो उपदेश दिया वह गुरु ग्रन्थ साहब में मारू राग की वार मे लिखा हुआ है। यह घटना सवत १५४१ विक्रमी जेष्ट की पूर्णमासी की है। बराबर तीन दिन तक साधु सतो और फकीरों से सतसंग करके जब गुरुजी घर लौटे तो कल्यान राय जी ने उन्हे एकान्त मे विठाकर सिर पर हाथ फेरते हुए समझाया कि बेटे इस तरह विना काम काज के इधर उधर घूमने से हमारा काम कैसे चलेगा। कुछ तो तुम्हे करना ही चाहिए। रात को माँ ने भी बडे प्यार से उन्हे समझाया। माँ तो दुखी भी हुई कि बेटे तुम मुझे इस तरह छोडकर

१. इस घटना को डा० गडासिह जी और दूसरे कई लेखक सुल्तानपुरा के बाद की मानते है।

विना ही कहे सुने घर से चल देते हो किन्तु माँ विचारी को क्या पता था कि तेरा पुत्र आगे चलकर सैकड़ों माताओं के पुत्रों को सन्मार्ग पर लाने का देवोपम कार्य करेगा।

कल्यानराय ने यही उचित समझा कि लड़के को व्यापार मे लगा दे इससे उसका चित भी बँटा रहेगा और ठाली न होने की वजह से फकीर फुकरों और वैरागियों के झंझट से भी दूर रहेगा, अत उन्होंने श्री नानक देव को रुपये देकर कहा कि ये रुपये लेकर शहर जाओ और वहा से कुछ ऐसा सौदा लाना जो खरा हो और साथ ही मुनाफे का हो। क्योंकि अभी तक उन्होंने अपने पुत्र को अकेला कहीं भेजा था नहीं। इसलिए भाई वाला जी को साथ कर दिया। भाई वाला सिन्धू गोत के जाट जमीदार के लडके थे। दोनों चूहडकाने की ओर चले। देखा साधुओं का एक दल पडा हुआ है। वस उधर को मुड़ पड़े। इन साधुओं को कोई कवीर पंथी वतलाते हैं कोई गोरखपंथी और कोई निर्वाने। इनके महन्त सत रेन के साथ नानक जी ने ज्ञान चर्चा की। इसी बीच उन्हें मालूम हुआ कि यह साधु तीन दिन से भूखे है। इस वात को सुनकर नानक जी को वडा दु ख हुआ और उन्होंने उसी समय भाई वाला जी को चूहडकाना गाव मे भेज कर दाल चावल और आटा घृत मंगा दिया। कहा जाता है कि भाई वाला ने नानक जी को इस वात का भी ध्यान दिलाया था कि हमे तो आपके पिता जी ने सौदा खरीदने भेजा है किन्तु वह नानक की आज्ञा को टाल नहीं सका। अव आगे किसलिये जाना था। अतः लौट कर गाव आ गये किन्तु नानक ने पिता जी की नाराजगी को धीरे-धीरे खतम करने के उद्देश्य से घर जाना ठीक नहीं समझा वहीं एक पेड़ पर ठहर गए। यह स्थान आजकल तम्बू साहव के नाम से मशहूर है। भाई वाला भी सीधे कल्यानराय के पास न पहुँचे घोड़ों को तो कल्यानराय के यहा भिजवा दिया और खुद अपने घर को चले गए। कल्यानराय समझ गये—मेरे मन कछु और है करता के मन कछु और।" किन्तु वे विलकुल कर्ता के भरोसे पर रहने वाले आदमी न थे। और कोई ही संसारी आदमी ऐसा होता है। वाला जी से सारा हाल दर्याफ्त करके कल्यानराय जगल मे पहुँचे और श्री नानक देव जी को फटकारते हुए घर ले गए। तृप्ता देवी से कहा, ले देखले अपने वेटे की करतूत। माता ने वीच मे पड कर मार पीट को रोक दिया। हम देखते है माता यशोदा ने भगवान कृष्ण का ठीक करने के इरादे से ऊखल से वाध दिया था। वह वेचारी क्या जानती थी कि भविष्य में कृष्ण अवतारों मे गिना जायगा। यही वात कल्यानराय के भी सम्वन्ध मे है। नानक देव जिन सिद्धान्तों को लेकर संसार मे [हमदर्दी, प्रेम और भक्ति फैलाना चाहते हैं कल्यानराय जी के लिए वे हीं वातें और कार्य नाकाविले वर्दाश्त जान पड रही थीं।

रायवुलार ने जव यह समाचार सुना तो कल्यानराय को अपने पास वुलाया और कहा नानक देव ठीक कहते है कि पिता जी मैंने सच्चा ही सौदा किया है। इस सौदे मे कोई घाटा नहीं है। विलकुल खरा और धोखे धड़ी से खाली है। आगे वुलार ने फिर कहा ऐसे पुत्र सव किसी के घर नहीं पैदा हुआ करते हैं। वली होकर भी वे तेरी डाट दपट सव स्वीकार करते हैं। एक दिन सारी दुनियाँ जिसकी पूजा करेगी उसे तुम दस बीस रुपये के लिये तंग करते हो यह लो वीस रुपये। उनके खर्च किया हुआ रुपया मुझसे लेते रहना। तुम उनसे कुछ भी न कहना। कल्यानराय शर्मिन्दा होकर घर को चले आये।

रियासत कपूरथला मे सुलतानपुर एक शहर है उन दिनों यहां पर दौलतखान नाम का मुस्लिम सूवेदार था। एक प्रकार से वही मालिक था। गुरु जी की वहिन नानकी का विवाह दौलतखाँ के कारिन्दे

गुलाबसिंह जम्मू लेगया। हम तो समझते हैं। जवाहरसिंह को कैद करने में डोगरों की चालाकी थी।

जल्ला पंडित ने महारानी जिन्दा के लिये भी बुरे भाव सिखों मे फैलाना शुरू किया। सिख इस बात से नाराज हुये। उधर जम्मू मे गुलाबसिंह भी शाति से न बैठा रहा। उसने लाहौर दरबार के पास एक पत्र भिजवाया कि काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह, अतरसिंह के साथ मिलकर सिख राज्य को हड़पने की कोशिश मे है। हीरासिंह ने उनके दमन के लिये गुलाबसिंह के पास पत्र लिख दिया और एक सेना भी भेज दी। इस बात को सुनकर हजारो सिख सैनिक हीरासिंह से नाराज होगये और उन्होंने हीरासिंह और जल्ला पंडित को उसी की हवेली मे कैद कर लिया। हीरासिंह ने इस काम से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हुए विश्वास दिलाया कि मैं राजकुमारों के साथ कोई दुर्व्यवहार न होने दूंगा और जल्ला पंडित को अब राज काज से अलग कर दिया जायगा।

उधर गुलाबसिंह की सेनाओं के हाथ जब दोनों राजकुमार जोकि अपनी जागीर को भी छोड़कर भाग गये थे न आये तो गुलाबसिंह ने उन्हे धोके से बुलाकर कैद कर लिया। यह थी डोगरों की वफादारी ?

इधर कुछ दिनों से वेतन रुका हुआ था। उधर काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह गिरफ्तार कर लिये गये। इन कारणों से खालसा सेना एक बार फिर विगड़ी उसने सुचेतसिंह को कहलवा भेजा कि तुम लाहौर आजाओ। मंत्री बना दिया जायगा। सुचेतसिंह लाहौर की ओर ४०० सैनिकों के साथ चला आया। किन्तु हीरासिंह ने अपनी चालाकी से पुनः सिख सेना को संतुष्ट कर लिया। आरजू, मिन्नत करने के अलावा उसने पुरुस्कार बाटने की भी घोषणा की और अपने ताऊ सुचेतसिंह की सेना पर हमला कर दिया। सुचेतसिंह इस लड़ाई मे मारा गया। कहा जाता है। सुचेतसिंह की मृत्यु से हीरासिंह को बहुत दुःख हुआ।

जवाहरसिंह जिसे कि नाबालिग महाराज की इच्छा के अनुसार हीरासिंह ने मुक्त कर दिया था। सुचेतसिंह के मारे जाने के कारण लाहौर छोड़कर अमृतसर चला गया। वहाँ उसने भाई और बाबा सिंहों के सामने हीरासिंह की चालबाजियाँ पेश कीं, वे सब लोग जवाहरसिंह के पक्ष मे होगये।

माझे मे मे बाबा वीरसिंह रहते थे। जब उनके पास लाहौर के दिल दहला देने वाले षड्यन्त्रों के समाचार पहुंचे तो वे बड़े दुखी हुये। उन्होंने घूम २ कर देहाती सिखों से कहा "लाहौर का राज्य गुरुओं के कृपा पर कायम हुआ राज्य है। इसकी रक्षा के लिये प्रत्येक सिख को कमर कसनी चाहिये। उनके प्रभाव से लगभग १५०० सिख उनके पास जमा होगये। अतरसिंह सिंधानवाला, कुँवर पिशोरासिंह और काश्मीरासिंह भी बाबा के पास पहुच गये।

जब हीरासिंह को यह खबर लगी तो उसने एक बड़ा दल इन्हे दमन के लिये भेजा। बाबा जी ने बहुत प्रयत्न किया कि रक्त पात न हो। किन्तु लड़ाई हो ही गई। इसमे बाबा वीरसिंह, सरदार अतरसिंह और काश्मीरासिंह अनेकों सिखों के साथ मारे गये। कुँवर पिशोरासिंह एक दिन पहले लाहौर चले आये थे वे बच रहे। उनके साथ हीरासिंह ने काफी बनावटी प्रेम दिखाया। उनकी आवभगत भी अच्छी की।

खालसा सेना बाबा वीरसिंह के प्राण तो ले आई। किन्तु उसे बड़ी ग्लानि हुई। उसका हृदय हीरासिंह से जल उठा। हीरासिंह ने बहुत कोशिष असंतोष को दबाने की की। किन्तु जब पाप का घड़ा भर जाता है तब फूट कर ही रहता है। इन्हीं दिनों अफवाह उड़ी कि हीरासिंह और जल्ला पंडित महारानी और महाराज के साथ कठोरता का बर्ताव करते है। फिर क्या था अग्नि पर घी की आहुति

महान् गुरु

श्री नानक देव जी

उदासी सम्प्रदाय संस्थापक

बाबा श्रीचन्द जी

गृहस्थ प्रवेश

दिन की खबर पहुँचा दी। बरात पक्खो पहुँची ब्याह हुआ। इस समय जेठ की २४ वों तिथि और संवत १५४५ विक्रम था। संवत १५५१ विक्रम में माई सुलक्खनी जी उदर से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम श्रीचन्द रक्खा गया।[1] इसके बाद संवत् १५५३ वि० १६ फाल्गुण में दूसरा पुत्र रत्न हुआ जो लक्ष्मीचंद के नाम से मशहूर हुआ।

यह सब कुछ हुआ किन्तु जैसे कमल जल मे रहकर भी जल से अछूता ही रहता है वैसे ही गुरु जी भी गृहस्थ मे रहकर भी गृहस्थ यानी बन्धन से अलिप्त रहे। वे प्रात चार बजे उठकर शौच स्नान से निवृत्त होते थे और फिर परमात्म-चिन्तन मे लग जाते थे दिनभर मोदीखाना का काम करते कराते, भूखे नंगों की खबर लेते। शाम को साधु सन्तो की संगति करते। यही उनकी जीवनचर्या थी।

गुरुजी के दान पुण्य और परोपकारी स्वभाव की चर्चा चारों ओर बराबर फैलती जा रही थी और आस-पास के अनेकों लोग उनकेपास संगत को आया करते थे एक दिन भैंसीमीहाँ गाँव का भगीरथ नामक ब्राह्मण भी आया यह काली का उपासक था। नानकदेव से काफी देर तक ज्ञानचर्चा की और अन्त मे वह उनका शिष्य हो गया।

जब सारी ही दुनियाँ गुरुजी से मागती है मरदाना क्यों चुप रहे आखिर तो वह उनका मीरासी है। बचपनसे सेवा करता रहा है वह गुरुजी के पास सुल्तानपुर पहुँचा और कहा महाराज मेरी लड़की का ब्याह है यह आपको ही करना होगा। क्या-क्या चाहिए? यह सब मरदाना से पूछकर गुरुजी ने फहरिस्त तय्यार की और भागीरथ को लाहौर भेजा कि यह सब चीजे तय्यार तो वहाँ मिल सकती है। भगीरथ ने वे सब चीजे मनसुख नाम के साहूकार के यहाँ से खरीदीं। मनसुख ने भागीरथ से गुरुजी की प्रशंसा सुनी, वह भी भागीरथ के साथ सुल्तानपुर आया और दर्शन एवं ज्ञानचर्चा से इतना प्रभावित हुआ कि गुरुजी का शिष्य बन गया। मरदाना अपनी लड़की के ब्याह का सामान लेकर अपने घर चला गया।

यह हम ऊपर कह चुके हैं कि गुरुजी की कीर्ति बराबर इधर-उधर फैलती जा रही थी और दूर-दूर से ज्ञानचर्चा के लिये लोग उनके पास आने भी लगे थे। इस तरह से अब मोदीखाने के काम की बजाय ज्ञानचर्चा और सतसग का काम बराबर बढ़ता जा रहा था। उधर घर मे माई सुलक्खनी भी अधिक असतुष्ट रहने लगी थीं क्योंकि अब उन्हे धन समह करने की ओर भी अधिक जरूरत महसूस होने लगी थी। कारण कि दो बालकों के पैदा होने से उनके भविष्य की चिन्ता भी उन्हे लगरही थी। इसलिये वे अधिक धन देने और सब झगडों को छोड़कर केवल दुकान और ग्रहस्थ की ओर ध्यान देने के लिये बराबर गुरुजी के ऊपर जोर दे रही थीं। इस समय गुरुजी को अनुभव हुआ कि यहि घर और वहि घर दोनों मे अब एक को ही चुनना पड़ेगा। अत उन्होंने स्पष्ट सोचा —

"बाबा जे घरि करते कीरति होइ। सो घरु राखि वडाई तोइ॥ (महला १)

गृहस्थ का त्याग

भगवान बुद्ध राजा के पुत्र थे। जन्म से ही वे आत्म-चिन्तन मे लगे रहते थे वे एकान्त मे बैठकर अकेले ही बडी चिन्ता के साथ कुछ सोच करते थे। महाराज शुद्धोधन ने इस विचार से कि शायद ग्रहस्थ मे फँसकर राज कुमार गौतम (बुद्ध) प्रसन्न रह सके इसलिये उनका विवाह कर दिया। विवाह के बाद एक उनके पुत्र भी हुआ। राज-सुख, गृहणी सुख और पुत्र-लाभ सब कुछ होते हुए भी एक दिन अचानक भगवान् बुद्ध इन सबको छोडकर

१ उदासीन सम्प्रदाय में यह एक अवतार माने जाते हैं।

फकीर होगये। वहिन नानकी ने वडे चाव से अपने भाई का व्याह किया था। वह भी समझती थी कि अब उनका भाई ग्रहस्थ मे बंधकर सदा के लिये हमारे बीच रह सकेगा। दो पुत्र भी हुए किन्तु नानकदेव जी को मा, वाप, स्त्री और पुत्र किसी का मोह न बांध सका एक दिन वहिन नानकी और सारी दुनियाँ ने सुना कि नानक तो सब झंझट को छोडकर फकीर होगया है।

इस्लामिक धर्म ग्रन्थो मे यह बात वडे गौरव के साथ व्यक्त की गई है कि —"फरिश्ता जबाइल हजरत मुहम्मद को सातवे आसमान पर खुदा के पास लेगया था और वहाँ पर्दे मे से खुदावन्द करीम ने हजरत मुहम्मद से कहा अब मुहम्मद मैंने तुझे ससार मे कुफ्र को मिटाने के लिये दुनियाँ मे भेजा है।" उसी उत्साह के साथ हमे सिख-साहित्य मे भी यह पढने को मिलता है कि वेई नदी में स्नान करते समय वरुण देवता गुरुदेव को सच खड मे परमात्मा-देव के पास ले गया। वहाँ उन्होंने राम, कृष्ण, मूसा, मुहम्मद और जरदुस्त आदि सभी उन महापुरुषो को देखा जो उनसे पहले ससार मे ईश्वर का सदेश देने के लिये आये थे। आगे अनुपम प्रकाश मे से गुरुदेव के प्रति वाणी होती है ले मेरे नाम का प्याला है तू इसे पी और ससार के मनुष्यो को गलत रास्ते से हटाकर परमेश्वरवाद की ओर प्रेरित कर मनुष्य समाज के लिये अपने इन महापुरुषो के प्रति उत्कट सन्मान और भक्ति प्रदर्शित करने की यह सबसे वडी श्रद्धाजलि है कि वह दृढता के साथ यह ख्याल करे कि उनका आराध्य देव परम-पिता परमात्मा के प्यारो मे था। इसमे कोई सन्देह भी नहीं कि लोक के हित के लिए अपने को कुर्बान करने के लिए परमात्मा के प्यारे ही तय्यार होते है। साधारण जनो का यह काम नहीं होता।

इधर गुरुजी के तीन दिन तक लापता रहने के कारण चारोओर भाति २ की अफवाहे उडने लगी थीं कुछ लोग कहते थे कि मोदीखाने मे वडी हानि हुई है जयराम चिन्ता मे पडे किन्तु बीबी नानकी को यह विश्वास था कि भैया अवश्य आवेगे वे कहीं किसी सत से मिलने जुलने गये होगे। तीन दिन के बाद नानकदेव जी जब शहर मे लौटे तो उन्होंने घोषणा की —

"हिन्दू मुसलमान सभी उस परमपिता परमात्मा के पुत्र हैं। यह भेद तो यहाँ खडे करलिये हैं और इस समय दोनोंही धर्म गलती पर है वास्तव मे न तो कोई हिन्दू है और न मुसलमान। गुरुजी को दुवारा

पहली घोषणा

बुलाने के लिये नवाव ने आदमी भेजा। नवाव ने गुरुजी के पहुंचते ही पूछा आप पहिलीवार के बुलानेमे क्यों नहीं आए थे। "चूंकि अब मैं आपका नौकर नहीं रहा खुदाकी नौकरी करली है।" गुरुजीने गभीरता के साथ उत्तर दिया। नवाव ने गुरुजी को दवाते हुये फिर पूछा—"इस समय तुम कर क्या रहे हो ?" गुरुजी ने जवाव दिया "चूंकि इस समय हिन्दू और मुसलमान दोनों सतपथ से हट गये है, इसलिये मैं दोनों को सत्य का रास्ता दिखाने की तय्यारी कर रहा हूं।" वैसे मै दोनो धर्मो को एक दृष्टि से देखता हूं। काजी ने बीच ही मे कहा यदि आप दोनों धर्मों को एक निगाह से देखते हैं तो हमारे साथ नमाज पढने चले। नवाव भी इसी बात पर अड गया। यह बात विजली की भाति शहर मे फैल गई। हिन्दू वडे चिन्तित हुए। जयराम जी ने जब यह समाचार सुना तो वे वडे घवराये किन्तु बीवी नानकीने कहा—"आप चिन्ता न करे। भैयाजी को कोई भी ताकत मुसलमान नहीं वना सकती है।

मस्जिद मे भीतर और वाहर भारी भीड होगई। मुल्ला और काजी नमाज पढने के लिये सफ मे खडे हुए। गुरुजी को भी खडा कर लिया गया। किन्तु गुरुजी खडे ही रहे। जब नमाज खतम होगई तो नवाव वोला, तुमने नमाज क्यों नहीं पढ़ी, गुरुजी ने हँसकर उत्तर दिया भला, मैं किसके साथ

नमाज पढ़ता। आपतो कन्धार मे घोड़े खरीद रहे थे और आपका काजी देख भाल कर रहा था अपने उस बछेड़े की जोकि आज ही उनकी घोड़ी ने दिया है।" वास्तव मे नवाज के समय नवाब का चित्त कधार मे और काजी जी का घोड़ी के पास था। नवाब बडी हैरत मे हुआ। अब तक के जीवन मे गुरुजी का यह काम एक विशेष महत्त्व का था। क्योंकि आज धर्म पर संकट था इस संकट से सुल्तानपुर के सारे हिन्दू घबराये हुए थे। जब उन्होंने गुरुजी की इस विजय को सुना तो बडे प्रसन्न हुये।

घर की दासी ने दौड़कर बीबी नानकी को खबर दी कि तुम्हारे भैया जी आरहे है। उनकी करामात और सच्चे उपदेशों का नवाब पर भी बडा असर पडा है। बीबी नानकी को बडा ही आनन्द हुआ। उन्होंने द्वार पर जाकर भाई का स्वागत किया।

कहा जाता है कि तलवंडी मे गुरुजी के घर वार त्याग देने की खबर देर से पहुँची। खबर के पहुँचने पर भी उनके माता-पिता बहुत दु खी हुये और अपने मीरासी मरदाना को भेजा कि वह जाकर नानकदेव की खबर लावे। मरदाना सीधा बीबी नानकी के घर पहुँचा और फिर वहाँ से खबर पाकर श्मशान मे पहुँचा गुरुजी की वर्तमान दशा को देखकर उसे दु:ख हुआ।

मरदाना का आना

मरदाना रबाव बजाना खूब जानता था। गुरुजी ने उसे बीबी नानकी से रुपये लेकर रबाव लाने को भेजा। जब मरदाना रबाव लेकर आया तो गुरुजी ने सर्व प्रथम उस पर अपने इस पद को सुना :— "तूही निरकार तूही निरकार नानक बन्दा तेरा॥" यह पद इतनी मधुर ध्वनि मे और स्वर के साथ मरदाना ने गाया कि गुरुजी लोकोत्तर आनन्द मे विभोर होगये।" इसी तरह से गुरुजी अवसर के समय मरदाने के भजन सुनते और उसको सिखाते। कभी-कभी गुरुजी समाधि बड़ी लंबी लगाते थे।

संवत् १५५६ विक्रमी मे गुरुजी ने अपनी आरम्भ की। इस समय तक सुल्तानपुर मे रहते हुये उन्हे १३—१४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे और अब उनकी अवस्था ठीक ३० वर्ष की थी।

यात्रा पर

गुरु जी कई छोटे-मोटे गाँवों और कस्बों को पार करते हुए लाहौर मे पहुँचे जहाँ अपने भगत जवाहिरमलजी के घर ठहरे। यहाँ अनेकों मुसलमान फकीरों और हिन्दू सन्तों से सत्संग किया। एक दिन सैयद अहमदशाह जो सिकन्दर लोदी बादशाह का गुलाम था। अनेकों मुल्ला मौलवियों को लेकर गुरु जी के साथ धर्म चर्चा करने के लिए आया। मन्त्र मुग्ध की भाति गुरु जी की बाते सुनता रहा। वह उनके सामने कोई भी दलील पेश नहीं कर सका और गुरुजी का शुक्रिया अदा करके चला गया। इस बात का आम लागों पर बडा असर पडा सैकड़ों लोग गुरुजी के पास आ आकर उनके शिष्य हो गए।[1]

लाहौर में

लाहौर से चलकर गुरु जी एमनाबाद पहुँचे। यहाँ लालू नाम का खाती रहता था उसी के घर जाकर ठहरे। यहाँ खाती के घर कच्चा भोजन कर लेने से लोगो मे बडी सनसनी फैली, मूढ लोग कहने लगे यह कुराही तो अब शूद्रो के घर का भोजन भी खाने लग गया।

एमनाबाद में

यहाँ का दीवान था खत्री जाति का मलिक भागो। इसके अत्याचार से सारा एमनाबाद दु खी

१. लाहौर में रहने की यादगार में उनके नाम का मकान बना हुआ है।

था। एक दिन मालिक भागो के यहाँ ब्रह्म भोज हुआ उसने गुरुजी को भी निमंत्रण आया किन्तु वे शामिल नहीं हुये। इससे मलिक भागो बड़ा बिगड़ा उसने गुरुजी को बुलवाकर पूछा तुम एक शूद्र के घर का तो भोजन किया करते हो किन्तु एक खत्री के घर पर तुम भोज में शामिल नहीं हुए। इस पर गुरु जी ने कहा- भोजन का क्या शूद्र और क्या क्षत्री हम तो नेक कमाई वाला अन्न खाते हैं। गुरु जी ने शान्ति के साथ कहा, नाराज होने की कोई बात नहीं है। तुम अपने यहा का बना हुआ भोजन भी मँगालो और इधर लालो के घर का भोजन भी मगाए लेते हैं मलिक के यहाँ से एक आदमी जाकर—ले आया। इधर लालो बेचारे के घर सूख रोटी का टुकड़ा पड़ा हुआ था वह उसे ही ले आया। गुरु जी ने दोनों को अलग-हाथों में लेकर दबाते हुये कहा लालो की रोटी का टुकड़ा पसीने की कमाई से पैदा किया हुआ है इसमें से मुझे दूध और तुम्हारे पकवान में से उस खून की धार बहती नजर आती है जो कि गरीबों को चूस करके ब्रह्म भोज पर लगाया गया है।

कहते है कि मरदाना एक दिन एक मुसलमान रईस के यहाँ शादी मे खाना मागने के लिये चला गया। खाना तो उसे खिला दिया किन्तु उसकी पिटाई खूब की और कहा तू 'काफिर' के साथ रहकर कुफ्र का प्रचार करता है। इस पर मर्दाना रोता हुआ गुरुजी के पास आया। गुरुजी ने सब हाल सुनकर लालो को सम्बोधित करते हुए कहा कि हम तो वही कहते और करते हैं जो हमारा मालिक हम से कहाना और कराना चाहता है किन्तु होना यह है कि यहाँ के लोग अपने कुकर्मों का बहुत कड़वा फल भोगेंगे।[1] आगे हुआ भी यही, बाबर और नादिरशाह के हमलों मे एमनाबाद को बहुत दुख उठाने पड़े।

जब गुरु जी स्यालकोट पहुँचे। शहर के बाहर एक बेर वृक्ष के नीचे अपना आसन जमाया। शहर से बहुत से लोग दर्शन और ज्ञान चर्चा के लिये आने लगे। लोगों ने "हमजा गौस" नाम के फकीर का हाल सुनाते हुए कहा बाबा वह इस नगर को नष्ट करने के लिए अनुष्ठान कर रहा है। गुरु जी ने उस फकीर को बुलाकर उसके ऐसा करने का कारण पूछा तो उसने बताया। इस शहर के लोग झूठे हैं मेरे से एक आदमी ने वायदा किया था कि मेरे अगर लड़का होगा तो आपको दे दूंगा। मैंने खुदावन्द से दिन रात उसके घर लड़का होने की मिन्नतें कीं। अब वह उसे मुझे नहीं देना चाहता है। तब मैं सोचता हूँ ऐसे झूठे लोगों की बस्ती खुदा की खलकत मे न रहे तो अच्छा ही है गुरु जी ने कहा साईं जी, सभी आदमी एक से नहीं होते हैं और इस बात की सचाई जानने के लिए मैं अपना आदमी शहर में भेजता हूँ। यह कहकर गुरुजी ने मरदाना को दो पैसे देकर—एक पैसे का सच और एक पैसे का झूठ खरीदलाने को—शहर भेजा। सैकड़ों दुकानों पर फिरने के बाद मूला खत्री दुकानदार ने एक कागज पर लिख दिया 'जीना झूठ और मरना सत्य' है। मरदाना का लाया हुआ वह कागज गुरुजी ने उस फकीर को दिखाया। फकीर ने कहा कि मैं कैसे जानूं यह आदमी जो लिखता है उसे मानता भी है। तब गुरु जी ने मरदाना को दुबारा भेजकर मूला को बुलवाया और उससे कहा, तुम सचमुच ही अपने लिखे उसूल को सही मानते हो तो फिर भी भी क्यों माया में फँसे हुए हो, मूला ने उसी समय स ाको त्याग दिया और गुरु जी का शिष्य हो गया। फकीर को भी यकीन हो गया कि किसी भी स्थान के सभी आदमी यकसा नहीं होते। यहा जिस स्थान पर गुरुजी ठहरे थे वहाँ पक्का मकान बन गया है और वह स्थान अब "बेर बाबा नानक' के नाम से मशहूर है।

स्यालकोट में

१. यह वेदान्त से मिलता-जुलता उसूल है।

भाई वाला को घर के लोगों ने और राय बुलार ने गुरुदेव को एक बार तलवंडी लाने के लिये भेजा राय ने कहलवाया था मेरा दिल उनके दर्शनो को बहुत इच्छुक है। यदि शरीर बुड्ढा न हो गया होता तो मैं खुद उनकी खिदमत में हाजिर होता। भाई वाला श्री गुरु जी का पता लगाते-लगाते स्यालकोट पहुँच गये और उन्होंने रायबुलार का सन्देश दिया। गुरु जी भी राय बुलार के प्रति काफी स्नेह रखते थे इसलिए वे बुलार के सदेश को टाल न सके और भाई वाला और मरदाना के साथ तलवंडी की ओर चल पड़े।[1]

तलवंडी

तलवडी में जाकर गुरु जी खूह पर ठहरे। वहां पर माता, पिता और चाचा सब मिलने आये। उनको फकीरी भेष मे देखकर वे बहुत ही दु खी हुए और उनसे कहने लगे तुम घर चलो हमेशा परमात्मा का भजन करो किन्तु इस फकीरी भेष को उतार दो किन्तु गुरु जी अपने इरादा से कब डिगने वाले थे। राय बुलार ने दर्शनार्थ निमंत्रित किया। गुरु जी जब राय बुलार के मकान पर पहुचे तो राय बुलार ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत किया और बड़ी श्रद्धा और प्रेम से ले जाकर उन्हे सुन्दर आसन पर बिठाया। कहा जाता है राय बुलार ने कई दिन गुरु जी को रक्खा। नित प्रति सत्संग होता और राय ज्ञानचर्चा सुनता। उसने गुरुजी से इच्छा प्रकट की कि आप सदा यहीं रहे कोई स्थान बनवा लें। आपके खर्च के लिये मैं उससे जमीन लगा दूंगा किन्तु गुरु जी ने अस्वीकार कर दिया। माता और पिता ने भी राय बुलार की मार्फत और खुद गुरुदेव से वहां रहने को कहलवाया किन्तु सब व्यर्थ सावित हुआ। कहा जाता है जब यह चलने लगे तो राय बुलार ने कहा मेरे लायक कोई खिदमत फरमाइये। इसके जवाब मे गुरु जी ने उससे तलवंडी मे एक तालाब बनवा देने के लिए कहा, राय ने इस बात को स्वीकार कर लिया और तालाब बनवा दिया जो अब नानकसर के नाम से मशहूर है।

तलवंडी से चलकर आप छांगा, मागा के जगल मे पहुँचे। यहाँ पर जिस स्थान पर रहे थे वह आजकल छोटा ननकाना कहलाता है। यहां पर जो संत साधू रहते थे उनमे से अनेकों ने गुरुजी के दर्शन और उपदेशों से लाभ उठाया। वहां से शहर चूनिया मे आये, जहां शेख दाऊद सैयद, हामिद गजबखां आदि से सत्सग किया। कहा जाता है ये दोनों फकीर अपनी करामातों और योग्यता के लिये बड़े प्रसिद्ध थे किन्तु गुरु जी से मिलकर उन्होंने भी अपने को धन्य माना।

दिल्ली की ओर

इस प्रकार मांझ की यात्रा पूरी करके सतलज पार की और मालवा[2] मे उतरे मालवे के अनेक स्थानों को पवित्र करते हुए सरस्वती नदी के किनारे पहाये नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ उन्होंने लोगों को पिंड भरते देखा तो ब्राह्मणों से कहा कि इस समय जैसे तुम पोल चलाकर मुफ्त का माल खा रहे हो यह मनुष्योचित नहीं। यहां से चलकर सूर्य ग्रहण के अवसर पर गुरु जी कुरुक्षेत्र पहुँचे। यहा स्नान के लिए मेला लगा हुआ था। समस्त हिन्दू अपनी भावना के अनुसार स्नान करके दान पुण्य कर रहे थे। गुरु जी ने मांस रांधना आरंभ किया। लोगों ने पूछा यह क्या करते हो तो आपने कहा—"मैं

१. कुछ इतिहासकारों का खयाल है कि तलवंडी सीधे एमनाबाद से ही गए थे। स्यालकोट तो तलवंडी के बाद गये हैं किन्तु कई स्थानों पर स्यालकोट से ही तलवडी जाना लिखा है। और यदि यह सही है तो यह भी सही है कि मरदाना बीच में तलवंडी नहीं गया किन्तु भाई बाला ही उन्हें ढूंढता-ढूंढता स्यालकोट पहुँच गया।

२. यह मध्य भारत का मालवा नहीं किन्तु पजाब का मालवा है।

समझता हूँ कि न तो आज के इस किंचितमात्र दान पुण्य से आपको स्वर्ग मिलेगा और न मेरे इस मांसाहार से मेरा स्वर्ग नष्ट होगा। अब तक जो भी भले बुरे कर्म किये हैं उनका तो फल भुगतना ही पड़ेगा। कुछ लोग तो इस माकूल जवाब को सुन कर चुप हो गए किन्तु नानू नाम का पंडित विवाद करता रहा।

सम्वत १५६२ विक्रमी की वैसाखी के दिन गुरु जी हरद्वार पहुँचे। जहाँ हरद्वार में ठहरे थे वहाँ आज नानक बाड़ा के नाम से एक स्थान मशहूर है। यहाँ गुरुजी के पास गढ़वाल का राजा विजय प्रकाश आया। उसने आते ही पूछा, तुम कौन हो? क्यों साधु बने हो? और किस सम्प्रदाय के साधु हो? गुरुजी ने "देवतिआं के दरसन ताई" वाला शब्द सुनाया जिसे सुनकर राजा निरुत्तर हो गया।

यहाँ से गुरुजी दिल्ली पहुंचे और मजनूं के टीले पर ठहरे। उन दिनों दिल्ली का बादशाह सिकन्दर लोदी था। वह साधु सन्तों या फकीरों का बड़ा विरोधी था। वास्तव में उन दिनों साधु बनने की धींगा गर्दी भी मची हुई थी जिसका जी चाहता वही साधु हो जाता। सिकन्दर लोधी ने खरे खोटे की पहचान के लिये साधु फकीरों को पकड़-पकड़ कर जेल खाने में बन्द कर देना शुरू कर दिया। वहाँ उनसे चक्कियां पिसवाई जाती थीं। गुरु नानक जी का भी नम्बर आ गया उन्हें भी जेल में बन्द कर दिया गया। मरदाना ने कहा लीजिए गुरुजी फकीर बनने का कैसा मजा चखना पड़ रहा है। गुरुजी ने उसे धीरज दिया। अन्य लोगों से भ गुरुजी ने चक्कियाँ चलाने से मना कर दिया। और मरदाने से कहा लो भाई रबाब उठाओ। मरदाना स्वर और लय के साथ गाने लगा "कुलह चर्या चरखी चक। थल निरोले बहुत अनन लाटो मधानिया अनगाह। पखी भौंदिया लैन न साह॥ सूचे चार भवाए जन्त। नानक भौंदिया अन्त न अन्त।" कहते हैं चक्किया अपने आप चलने लगीं [1] जेलर ने यह समाचार बादशाह को सुनाया। वह दौड़ा हुआ गुरुजी के पास आया और अपने अपराध की क्षमा मांगी तथा गुरुजी की आज्ञा के अनुसार सब कैदियों को छोड़ दिया बादशाह की विनती पर गुरुजी ने उसे उपदेश दिया —

यक अरज गुफतम पेश तू दर गोश कुन कर्तार ॥
हक्का कबीर करीम तू बे एब परवरदिगार ॥१॥
दुनिया मकामें फानी तहकीक दिल दानी।
मम सर मूइ अजराइल ग्रिफतह दिल हेचि न दानी ॥१॥
जन पिसर पिदर बिरादरां कस नेम दस्तगीर।
आखिर ब्यफतम कस न दारद चू सवद तकबीर ॥२॥
सब रोज गश्तम दर हवा कर देम बदी खयाल।
गाहेन नेकी कार करदम मम ई चिना अहवाल ॥३॥
बदबखत हम चू बखील गाफिल बेनजर बेवाक।
नानक बगोयद जन तुरा तेरे चाकरा पाखाक ॥४॥

देहली में एक मियां मारूफ थे। उनकी करामातों और औलियापने की दिल्ली में खूब चरचा थी। गुरुजी ने उससे भी बातचीत की और उसे ईश्वर जीव सम्बन्धी अनेकों बातें सुनाकर अपनी ओर आकर्षित किया।

१. संगीत साहित्य में दीपक राग की भी इसी प्रकार की महिमा बताई गई है।

दिल्ली में काफी दिनों रहकर गुरुजी अपने मर्दाना साथी समेत काशी देखने के इरादा से वहां चल पड़े। रास्ते में अलीगढ़ में दो चार दिन विश्राम किया। अलीगढ़ से मथुरा वृन्दावन होते हुए और वहाँ साधु सन्तों से सत्संग करते हुए आगरा आये। आगरा में जिस धर्मशाला में आप ठहरे थे वह गुरुजी की धर्मशाला के नाम से पुकारी जाती है। यहाँ अनेकों लोगों को आपने अपने उपदेश सुनाये और फिर कानपुर, लखनऊ होते हुए सूरजवंशियों की पुरानी राजधानी अयोध्या पहुँचे। सिख इतिहासकार मानते हैं कि गुरुजी का बेदी कुल भी भगवान रामचन्द्र जी के वंशजों का कुल है। अयोध्या से चलकर संवत् १५६३ विक्रमी में गुरुजी काशी में जा पहुंचे। वह स्थान जहाँ पर गुरुजी ठहरे थे 'गुरु का बाग' नाम से प्रसिद्ध है।

काशी की ओर

थोड़े ही दिनों में सारे काशी शहर में यह चर्चा फैल गई कि नानकदेव नाम का एक पंजाबी साधु आया हुआ है और वह बड़ी मीठी भाषा में किन्तु सारयुक्त ढंग से हिन्दू और मुसलमानों की धार्मिक कमजोरियों की आलोचना करता है। फिर क्या था सैंकड़ों मनुष्य नितप्रति गुरुजी के पास आकर तर्क-वितर्क के साथ ज्ञानचर्चा करने लगे। गुरुजी की आलोचनाओं से जहाँ हिन्दू और मुसलमान तिलमिलाते थे वहाँ सब कोई उन्हें यह भी समझते थे कि यह तो हमारे ही सम्प्रदाय का है। वैष्णव उन्हें वैष्णव और शैव उन्हें शैव समझते थे। इसी प्रकार कबीर पंथी नामदेव पंथी सभी उनके सम्बन्ध में यही ख्याल करते थे कि गुरुनानक जी हमारे पंथ के हैं। यहाँ तक कि मुसलमान भी उन्हें अपना उपदेष्टा खयाल करते थे। वास्तव में गुरुजी के सिद्धान्त भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के मौलिक सिद्धान्तों का समन्वय जान पड़ते थे। उनकी वाणियों के सार को वे लोग अपने २ पंथी संशोधित संस्करण समझते थे। ऐसा समझना उनका उचित भी था। गुरुजी भारतीय संस्कृति का परिमार्जन ही तो कर रहे थे। वह उसे अपने ज्ञान और तप की अग्नि में तपाकर खरा सोना ही तो बना रहे थे।

सभी धर्मों और सम्प्रदायों के विद्वान आकर उनसे शंका समाधान भी करते थे। काशी के उस समय के प्रसिद्ध पंडित वासुदेव शास्त्री ने भी आकर उनसे ज्ञानचर्चा की थी।

नामदेव और श्री रविदास (रैदास) जी काशी के उस समय के प्रसिद्ध महात्माओं में से थे। उनके साथ गुरुजी का बहुत मेल जोल रहा। आपस में ज्ञान गोष्ठी और हरिचर्चा भी खूब रही। कबीर जी जो उस समय बाहर गये थे। गुरुजी का आना सुनकर वे भी काशी जी गये। कहना यही होगा कि भारत के सन्तों में दार्शनिकता और बुद्धि प्रखरता की दृष्टि से कबीर जी का स्थान बहुत ऊंचा है। उनके बहुत सारे सिद्धान्त गुरु नानक जी से मिलते जुलते हैं।[1]

काशी से चलकर जौनपुर, बक्सर छपरा आदि स्थानों में होते हुए गुरुजी पटना शहर में जो कि बहुत प्राचीन नगर है पहुंचे। उनकी स्मृति में पटना में एक धर्मशाला अब तक बनी हुई है। यहां भी गुरु।

१ कुछ इतिहासकार कबीर जी को भी नानकदेव जी का समकालीन नहीं मानते किन्तु कबीर जी के चेले धर्मदास जी ने कबीर संबंधी कुछ घटनाएँ अपने ग्रंथ में इस प्रकार दी हैं।

जन्म-संवत् १४५५ विक्रमी। दीक्षा रामानन्द जी से—संवत् १४६२ वि०, विवाह संवत् १४७१ वि०, यज्ञ अनुष्ठान संवत् १४६२ विक्रमी, सिकन्दर लोधी से विगाड़ संवत्-१४६२ विक्रमी।

मृत्यु, संवत् १५७१ विक्रमी। इसी तरह से कबीर जी ११६ वर्ष जिन्दा रहे और जब नानक जी से मिले ये १०८ वर्ष के थे।

समझता हूँ कि न तो आज के इस किंचितमात्र दान पुण्य से आपको स्वर्ग मिलेगा और न मेरे इस मांसाहार से मेरा स्वर्ग नष्ट होगा। अब तक जो भी भले बुरे कर्म किये हैं उनका तो फल भुगतना ही पडेगा। कुछ लोग तो इस माकूल जवाब को सुन कर चुप हो गए- किन्तु नानू नाम का पंडित विवाद करता रहा।

सम्वत् १५६२ विक्रमी की वैसाखी के दिन गुरु जी हरद्वार पहुँचे। जहाँ हरद्वार में ठहरे थे वहाँ आज नानक वाडा के नाम से एक स्थान मशहूर है। हाँ गुरुजी के पास गढवाल का राजा विजय प्रकाश आया। उसने आते ही पूछा, तुम कौन हो ? क्यों साधु बने हो ? और किस सम्प्रदाय के साधु हो ? गुरुजी ने "देवतिआं के दरसन ताईं" वाला शब्द सुनाया जिसे सुनकर राजा निरुत्तर हो गया।

यहाँ से गुरुजी दिल्ली पहुंचे और मजनूं के टीले पर ठहरे। उन दिनों दिल्ली का बादशाह सिकन्दर लोदी था। वह साधु सन्तों या फकीरों का बडा विरोधी था। वास्तव में उन दिनों साधू बनने की धींगा गर्दी भी मची हुई थी जिसका जी चाहता वही साधू हो जाता। सिकन्दर लोधी ने खरे खोटे की पहचान के लिये साधू फकीरों को पकड-पकड कर जेल खाने मे बन्द कर देना शुरू कर दिया। वहाँ उनसे चक्कियां पिसवाई जाती थीं। गुरु नानक जी का भी नम्बर आ गया उन्हे भी जेल में बन्द कर दिया गया। मरदाना ने कहा लीजिए गुरुजी फकीर बनने का कैसा मजा चखना पड रहा है। गुरुजी ने उसे धीरज दिया। अन्य लोगों से भ गुरुजी ने चक्कियाँ चलाने मे मना कर दिया। और मरदाने मे कहा लो भाई रबाब उठाओ। मरदाना स्वर और लय के साथ गाने लगा "कुलहू चर्खा चक्की चक। थल निरोले बहुत अनत लाटो मधानिया अनगाह। पखी भौंदिया लैन न साह॥ सूचे चार भवाए जन्त। नानक भौंदिया अन्त न अन्त।" कहते हैं चक्कियां अपने आप चलने लगीं[१] जेलर ने यह समाचार बादशाह को सुनाया। वह दौडा हुआ गुरुजी के पास आया और अपने अपराध की क्षमा मागी तथा गुरुजी की आज्ञा के अनुसार सब कैदियों को छोड दिया बादशाह की विनती पर गुरुजी ने उसे उपदेश दिया —

यक अरज गुफतम पेश तू दर गोश कुन कर्तार॥
हक्का कबीर करीम तू बे एब परवरदिगार॥१॥
दुनिया मकामें फानी तहकीक दिल दानी।
मम सर मूइ अजराइल गिरफतह दिल हेचि न दानी॥१॥
जन पिसर पिदर बिरादरां कस नेस दस्तगीर।
आखिर ब्यफतम कस न दारद चूं सवद तकबीर॥२॥
सब रोज गश्तम दर हवा कर देम बदी खयाल।
गाहेन नेकी कार करदम मम ई चिना अहवाल॥३॥
बदबखत हम चूं बखील गाफिल बेनजर बेबाक।
नानक बगोयद जन तुरा तेरे चाकरा पाखाक॥४॥

देहली में एक मियां मारूफ थे। उनकी करामातों और औलियापने की दिल्ली में खूब चरचा थी। गुरुजी ने उससे भी बातचीत की और उसे ईश्वर जीव सम्बन्धी अनेकों बाते सुनाकर अपनी ओर आकर्षित किया।

१ सगीत साहित्य में दीपक राग की भी इसी प्रकार की महिमा बताई गई है।

दिल्ली में काफी दिनों रहकर गुरुजी अपने मर्दाना साथी समेत काशी देखने के इरादा से वहां चल पड़े। रास्ते में अलीगढ़ में दो चार दिन विश्राम किया। अलीगढ़ से मथुरा वृन्दावन होते हुए और वहाँ साधु सतों से सत्संग करते हुए आगरा आये। आगरा में जिस धर्मशाला में आप ठहरे थे वह गुरुजी की धर्मशाला के नाम से पुकारी जाती है। यहाँ अनेकों लोगों को आपने अपने उपदेश सुनाये और फिर कानपुर, लखनऊ होते हुए सूरजवंशियों की पुरानी राजधानी अयोध्या पहुँचे। सिख इतिहासकार मानते हैं कि गुरुजी का बेदी कुल भी भगवान रामचन्द्र जी के वंशजों का कुल है। अयोध्या से चलकर संवत् १५६३ विक्रमी में गुरुजी काशी में जा पहुंचे। वह स्थान जहाँ पर गुरुजी ठहरे थे 'गुरु का बाग' नाम से प्रसिद्ध है।

काशी की ओर

थोड़े ही दिनों में सारे काशी शहर में यह चर्चा फैल गई कि नानकदेव नाम का एक पंजाबी साधु आया हुआ है और वह बड़ी मीठी भाषा में किन्तु सारयुक्त ढंग से हिन्दू और मुसलमानों की धार्मिक कमजोरियों की आलोचना करता है। फिर क्या था सैंकड़ों मनुष्य नितप्रति गुरुजी के पास आकर तर्क-वितर्क के साथ ज्ञानचर्चा करने लगे। गुरुजी की आलोचनाओं से जहाँ हिन्दू और मुसलमान तिलमिलाते थे वहाँ सब कोई उन्हें यह भी समझते थे कि यह तो हमारे ही सम्प्रदाय का है। वैष्णव उन्हें वैष्णव और शैव उन्हें शैव समझते थे। इसी प्रकार कबीर पंथी नामदेव पंथी सभी उनके सम्बन्ध में यही ख्याल करते थे कि गुरुनानक जी हमारे पंथ के हैं। यहाँ तक कि मुसलमान भी उन्हें अपना उपदेष्टा खयाल करते थे। वास्तव में गुरुजी के सिद्धान्त भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के मौलिक सिद्धान्तों का समन्वय जान पड़ते थे। उनकी वाणियों के सार को वे लोग अपने २ पंथी संशोधित संस्करण समझते थे। ऐसा समझना उनका उचित भी था। गुरुजी भारतीय संस्कृति का परिमार्जन ही तो कर रहे थे। वह उसे अपने ज्ञान और तप की अग्नि में तपाकर खरा सोना ही तो बना रहे थे।

सभी धर्मों और सम्प्रदायों के विद्वान आकर उनसे शंका समाधान भी करते थे। काशी के उस समय के प्रसिद्ध पंडित वासुदेव शास्त्री ने भी आकर उनसे ज्ञानचर्चा की थी।

नामदेव और श्री रविदास (रैदास) जी काशी के उस समय के प्रसिद्ध महात्माओं में से थे। उनके साथ गुरुजी का बहुत मेल जोल रहा। आपस में ज्ञान गोष्ठी और हरिचर्चा भी खूब रही। कबीर जी जो उस समय बाहर गये थे। गुरुजी का आना सुनकर वे भी काशी जी गये। कहना यही होगा कि भारत के सन्तों में दार्शनिकता और बुद्धि प्रखरता की दृष्टि से कबीर जी का स्थान बहुत ऊंचा है। उनके बहुत सारे सिद्धान्त गुरु नानक जी से मिलते जुलते हैं।[1]

काशी से चलकर जौनपुर, बक्सर छपरा आदि स्थानों में होते हुए गुरुजी पटना शहर में जो कि बहुत प्राचीन नगर है पहुंचे। उनकी स्मृति में पटना में एक धर्मशाला अब तक बनी हुई है। यहां भी गुरु।

[1] कुछ इतिहासकार कबीर जी को भी नानकदेव जी का समकालीन नहीं मानते किन्तु कबीर जी के चेले धर्मदास जी ने कबीर सबंधी कुछ घटनाएं अपने ग्रंथ में इस प्रकार दी हैं।

जन्म-संवत् १४५५ विक्रमी। दीक्षा रामानन्द जी से—सवत् १४६२ वि०, विवाह सवत् १४७१ वि०, यज्ञ अनुष्ठान सवत् १४६२ विक्रमी, सिकन्दर लोधी से बिगाड़ सवत्-१४६२ विक्रमी।

मृत्यु, संवत् १५७१ विक्रमी। इसी तरह से कबीर जी ११६ वर्ष जिन्दा रहे और जब नानक जी से मिले थे १०८ वर्ष के थे।

जी के उपदेशों को सुनने के लिए हिन्दू मुसलमान सभी प्रकार के लोग आते थे कई दिन गुरु जी ने 'मानव जीवन' पर उपदेश दिया। पटना से चलकर गुरुजी गया पहुचे। वहाँ आपको पडों ने घेर लिया और कहा कि अपने पितरों का पिंड दान कराइये। गुरुजी ने पडो को दीपदान और पिंडदान के सम्बन्ध में अपने ख्यालात इस प्रकार प्रकट किये —

पटना और गया की ओर

"दीवा मेरा एकु नामु दुख विच पाइया तेलु।
उनि चाननु ओहु सोखिया चूका जम सिउ मेलु ॥
पिंड पतल मेरी केसो क्रिया सच्च नाम करतार।
इत्थे उत्थे आगे पीछे एह मेरा उद्धार ॥

अर्थात्—मेरा दीप (दान) तो ईश्वर का नाम है। उसमें लोगों के दुःखों का तेल पड़ा हुआ है। जिसके प्रकाश से मृत्यु का भय भी नष्ट हो गया है। मरे हुए को पिंड या पत्तल देना तो मूर्खता है वास्तविक कर्म तो ईश्वर का सत्य नाम है। जो हर जगह मेरा उद्धारक है। पडे लोगों ने अपने जीवन में इस प्रकार के श्राद्ध-कर्म के विरुद्ध पहली ही बार आलोचना सुनी थी इसलिये वे भौंचक्के से होकर गुरु जी की तरफ देखते रहे।

यहाँ से चलकर गुरु जी बुद्ध गया पहुचे, जहा पर गोस्वामी देवगिरि एक प्रतिष्ठित जागीरदार रहता था। उसके साथ भी गुरु जी ने सत-संग किया और अपने मौलिक विचारों को प्रकट किया। महन्त गुरु जी के दर्शनों और धार्मिक विवेचनों से वडा प्रसन्न हुआ। कहा जाता है कि देवगिरि का पोता शिष्य गुरु हरिराय जी का शिष्य हो गया था।

बुद्ध गया से चलकर वैद्यनाथ धाम की यात्रा करते हुए, मुँगेर, भागलपुर, राजमहल आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए ७ वीं हाड सवत् १५६४ वि में मालदा (मालदेव) में पहुचे। यहाँ जिस स्थान पर बैठकर आपने उपदेश किया था वह गुरु के बाग के नाम से मशहूर है। यहाँ कई दिन विश्राम करके गुरु जी ने आसाम की ओर कूच किया। मुर्शिदाबाद, वर्दवान, हुगली आदि अनेकों स्थानों पर ठहरते हुए तथा उपदेश करते हुए सवत् १५६४ के ६ को ढाके में पहुचे यहा नारायणदास शामलनाथ, चन्द्रनाथ और शेख अहमद गुलामअली आदि कई साधु और फकीरो ने आपके पास आकर सतसग करके लाभ उठाया। इस देश में जादू टोने का वडा प्रचार है। कई लोगों ने गुरुजी के सामने अपने २ जादू की विशेषता दिखानी चाही किन्तु सभी निष्फल हुए तब उन्होंने पूछा कि आपके आगे हमारा मत्र और देवता क्यों नहीं काम देता है। इसके उत्तर में गुरु जी ने कहा तुम्हारे सब के देवताओं और मत्रो से हमारा देवता और मत्र वडा है इसीलिए वे हम पर असर नहीं करते हैं। उन लोगों ने वडे कौतुहल से पूछा तो फिर महाराज उस मंत्र और देवता का उपासक हमें भी वनाइये न। गुरुजी ने वताया हमारा देवता निरकार अकाल पुरुष है और "१ ओं सतिनामु करता पुरुख निरभउ अकाल मूरति अजुनी सै भ गुरु प्रसादि।" मूल मत्र है। अनेकों लोगों ने गुरु जी के मत्रों को अपनाया।

बगाल व आसाम में

ढाका से चलकर तीन कोस के फासले पर गुरुजी ने मुकाम किया। यहाँ एक कौतुहल वर्द्धक घटना यह वताई जाती है कि गुरुजी के सेवक मरदाना को यहाँ की जादूगर स्त्रियां पकड़ ले गई। इन स्त्रियों में नूरशाह नामक स्त्री वडी चतुर और सब जादूगरनियों की सरदार थी।" घटना इस प्रकार

वर्णन की जाती है कि मरदाने ने उस गॉव में जाकर घूमने और अपनी भूख शात करने की गुरुजी से आज्ञा चाही। गुरु जी ने पहले तो मरदाने को मना किया किन्तु उसकी हठ देखकर इजाजत दे दी। मरदाना वहीं स्त्रियों ने कैद कर लिया[1] काफी देर तक भी जब मरदाना नहीं आया तो गुरु जी उसे खोजने के लिये गाँव मे घुसे। और घूम फिर कर उसी घर के सामने पहुँचे तथा मरदाना को उस कैद से रिहाई दिलाई। गुरु जी ने स्त्रियों को उपदेश भी दिया कि केवल बोल चाल मे ही अच्छे होने से काम नहीं चलता है आचरण भी ऐसे होने चाहिएं जो प्रभु को अच्छे लगें।

इस स्थान पर जहॉ कि गुरु जी ठहरे थे बरछा साहिब के नाम से एक स्थान है। इस नाम के पड़ने की घटना सिख लेखकों ने इस प्रकार वर्णन की है। इस देश मे पानी प्राय खारा ही निकलता था। लोगों ने गुरु जी के सामने अपने कष्ट का वर्णन किया। दयालु गुरु जी ने एक स्थान पर बरछा गाड़कर कहा यहॉ का पानी मीठा है। सचमुच ही वहा का पानी मीठा निकला, तभी से यह स्थान बरछा साहिब के नाम से मशहूर है।

यहां से गुरु जी कामाख्या देवी के स्थान को देखने के लिए गये यहां उन दिनों वाममार्ग का प्रचार था। कामाख्या देवी के मन्दिर मे हर महीने लाल रग डाल कर लोग उसे माथे पर लगाते थे मूर्ति के बजाय देवी के गुप्ताग की पूजा करते थे। गुरुजी ने लोगों के इस गर्हित खयाल के विरुद्ध मन्दिर के पास बैठकर लोगों को उपदेश दिया किन्तु वर्षों और सदियों के कुसस्कार शीघ्र थोड़े ही नष्ट होते हैं। फिर भी कुछ लोगों पर असर पड़ा ही।

इसी वर्ष के फागुन की १३ वीं तिथि को गुरु जी गौरीपुर धौबिया बन्दर मे पहुचे। यह यात्रा समुद्र के किनारे की गई थी। फल फूल और कन्द पर कई दिन तक गुजारा करना पडा था। यहॉ पर गुरुजी की यादगार मे जो स्थान बना हुआ है वह मरदाना साहिब के नाम से मशहूर है। इस स्थान को गुरु तेगबहादुर जी ने जब कि वे राजा जयसिंह के शाही लश्कर के साथ राजा के आग्रह पर उधर की तरफ गये हुए थे। ऊँचा करा दिया था। जो बहुत दूर से दिखाई देता है। इस स्थान पर रहकर गुरु नानक देव जी ने अपने साथियों समेत कई दिन तक आराम किया था तथा लोगों को हरि चर्चा सुनाई थी। इस स्थान के पुजारी लोग उदासीन साधु कहलाते रहे हैं। यहा के राजा की रानी ने भी गुरु जी के पास आकर उपदेश सुने और उसने उसी समय से पत्थर पूजा को तिलाजलि दे दी। इसी रानी का प्रपौत्र नवे गुरु श्री तेग बहादुर जी का शिष्य हो गया था और उसके पुत्र रतनदेव ने पातशाह श्री गुरु गोविन्दसिंह की सेवा मे आनन्दपुर हाजिर होकर प्रसादी नाम का हाथी और अनेक वस्तुऐं भेंट की थीं।

कुछ दिन यहा रह कर गुरु जी सवत् १५६५ विक्रमी में ब्रहमपुत्र को पार करके आसाम देश के करीमगज, अजमेरी गज और सिलहट आदि नगरों को देखते हुए सरिता नाम की नदी को पार करके कछार देश मे पहुचे। यहा नाग लोगों की आबादी है। ये सब देवी के उपासक थे। गुरु जी ने इन लोगों मे भी एकेश्वरवाद और प्रेम धर्म का प्रचार किया। इस देश मे मनीपुर और रोसम फल आदि प्रसिद्ध शहर हैं पास ही में लोशाई नगर है उन दिनों यहा का राजा देवलोत था। वह परदेशियों को अपने राज्य में नहीं घुसने देता था। निषेध मे दण्ड की सजा नियत कर रक्खी थी जब गुरु जी उसके देश मे

१. भेड़ा बना लिया।

पहुच गये तो उसने पूछा आप मेरी आज्ञा के विरुद्ध मेरे देश में कैसे आ गये हैं तो गुरु जी ने जवाब दिया —

जिस ही की सरकार है तिस ही का सभु कोई ।
गुरुमुखी कार कमावणी सचु घटि परगट होई ।

अर्थात्—सर्वत्र उसी परम ब्रह्म परमात्मा का राज्य और सब कोई उसी के हैं किन्तु यह सत्य परमात्मा की ओर झुकाव होने पर ही हृदय में प्रगट होता है। राजा गुरु जी के इस सत्योपदेश से बड़ा प्रभावित हुआ। इसी राजा के सीमा प्रदेश पर सगरसैन नाम का राजा राज करता था, राजधानी उसकी 'घरगाउ' थी। आजकल यह जगह शिवसागर जिले में नाजरा नाम से मशहूर है। एक दिन गुरु नानक देव जी ने वहा जाकर भी लोगों को उपदेश दिया। कहा जाता है सैकड़ो नर नारी यहा उनकी सेवा में हाजिर हुए और उनके उपदेशों को बडे प्रेम से सुना। राजा स्वयम् भी अपने परिवार सहित उपदेश में शामिल हुआ था। ऐकेश्वरवाद के विचार इस देश में खूब पसन्द किये गये। लोशाई के पड़ोस मनीपुर के पहाड़ी प्रदेश में राजा सुधर सैन राज करता था। उसके शहर में झडा नाम का एक हरिभक्त था। राजा के भानजे इन्द्रसैन से उसकी मैत्री थी। गुरुजी के यह दोनों ही भक्त हो गए। अब तक मरदाना का रबाब पुराना हो चुका था। इसीलिए इन्हीं दोनों महानुभावों ने नया रबाब भी लिवा दिया। कहा जाता है इस देश के लगभग १० पहाड़ी राजाओं को जो कि अधिकाश में नामवश के थे गुरु जी ने अपना उपदेश सुनाया। और यहां से फिर सिंहल द्वीप की ओर प्रस्थान किया।

सिंहल द्वीप की राजधानी ब्रहमपुर थी। गुरु जी मरदाना समेत संवत् १६६२ के सावन की ५ वीं को ब्रह्मपुर पहुँच गए। एक बाग मे डेरे जमा दिये किन्तु यहां अधिक दिन न ठहरे आगे चल कर चाम्पुर, स्वर्णपुर के राजा कमल सैन के बाग मे पहुचे। मरदाना भूख से व्याकुल होकर शहर की ओर चला गया, जहा धर्मसिंह नाम के हरि भक्त ने उसको खूब मिठाई खिलाई और यह जान कर कि उसके एक साथी समेत गुरुजी राजा के बाग मे ठहरे हुए हैं। धर्म सिंह उनके लिए भी मिठाई लाया। उसके साथ गुरुजी ने धर्म चर्चा भी की। जिससे वह गुरुजी की ओर और भी आकर्षित हो गया और उसने जाकर अपने देश के राजा कमल सैन से भी गुरुजी के दर्शन करने और ज्ञान चर्चा अर्जन करने के लिए उत्साहित किया। राजा भी अच्छे साधु सतों की सगत करता था उसने भी धर्मसिंह के साथ आकर गुरु जी के उपदेश से लाभ उठाया। इस देश मे पद्मा नाम की नदी बहती है। शायद अब तक सिंहल द्वीप ही कहलाता है नदियों से घिरे रहने के कारण आसाम का यह हिस्सा इस समय इस नाम से मशहूर रहा है।

इस देश से चल कर गुरुजी अनेक छोटे छोटे नगर और गाँवों को पार करते हुए। कालीघाट मे आये जो अब कलकत्ता कहलाता है। यहा के लोग इसी देवी को पूजा करते थे। इनमे गुरु जी ने केवल एक ईश्वर ही पूजने योग्य है अपने इस सत्य सिद्धान्त का प्रचार किया।

आसामी बंगाली प्रदेशों की यात्रा करके गुरु जी लौट पड़े। अनेकों ही स्थानो पर उपदेश करते हुए जिनमे काचीपुरी और साखी गोपाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जगन्नाथ पुरी मे पहुचे।

जगन्नाथ में

सवत् १५६५ का इस समय चैत्र मास था। यहा गुरुजी जिस स्थान पर ठहरे वह मगुमठ के नाम से मशहूर है। जगन्नाथ के मन्दिर मे जाकर भी साधु सतों से समागम करते रहे। एक दिन पडों ने कहा बाबा आप हमारी आरती में क्यों शामिल नहीं होते

हैं। गुरुजी ने कहा हमारे देवता की जैसी आरती होती है वैसे आपके देवता की नहीं होती यह कह कर मरदाना की ओर इशारा किया जिसने रबाब पर गाया —

"गगन में थाल रवि चन्द्र दीपक बने, तारका मडला जनक मोती।
धूप मलिआनलो पवन चँवरो करे, सगल बनराय फूलन्त जोती॥
कैसी आरती होय भव खंडना तेरी, आरती अनहदा शब्द वाजन्त भेरी।
सहस तब नैन नन नैन हहि तोहे को, सहस मूरत नैन एक तोही।
सहस पद विमलनन एक पद गध बिनु, सहस तव गध इव चलत मोही।
सब महि जोति जोति है सोई, तिसदे चानन सब मह चानन होई॥
गुरु साखी जोति परगटु है, जो तिसु भावैसु आरती होई।
हर चरन कोमल मकरन्द लोभित मनो अनदिनो मोही आही प्यासा।
कृपा जल देह नानक सारग कठ, होय जाने तेरे नाय वासा॥

अर्थात्—सर्व व्यापक परमात्मा की आरती के लिये अनन्त दूर तक फैला हुआ आकाश मानो थाल है और सूर्य, चन्द्र दीपक है, सुन्दर तारागण मोती हैं। मलयागिर चन्दन धूप का काम दे रहा है। पवन देवता चॅवर ढल रहा है। समस्त वानस्पतिक जगत उस थाल के फूल पत्ती हैं। अनहद शब्द का घोर रव शंख, घड़ियाल का काम दे रहा है।

हे भव भयहारी परमात्म देव यह कितनी सुन्दर तुम्हारी आरती हो रही है। तुम एक भी नेत्र न रखते हुए भी सहस नेत्र हो। किसी भी प्रकार का रूप न रखते हुए भी महाकाय हो। तुम एक भी पैर न रखते हुए भी सहस्त्रों पद वालो से ज्यादा द्रुतिगामी हो। जिस ज्योति से सारा ससार प्रकाशित है वही जोति तो तुम हो। वह कौनसा स्थान है जहॉ आपका प्रकाश नहीं है। हे जगतपते मेरा मन तुम्हारे कमल चरणों मे पहुँचने के लिए भॅवर की तरह लालायित है भगवान अपने कृपा रूपी जल से मेरी प्यास को बुझाइये।

आरती के समय मे इस राग का ऐसा समॉ बॅधा कि पंडे पुजारी उसी प्रकार मुग्ध होकर सुनते रहे जिस प्रकार हिरणी वीणा की आवाज को मस्त होकर सुनती है। पंडे पुजारियों ने गुरु जी को भक्ति के साथ कई दिन तक वहॉ रक्खा। फिर यहॉ से कुछ थोडी दूर चलकर शोण नदी के किनारे डेरे जमाये। जहॉ यादगार मे बनी हुई "बावा साहिब की बावड़ी" अब तक मौजूद है। यह स्थान जगन्नाथपुरी से सटा हुआ ही है। पास की बस्ती मे जो पुरी का एक मुहल्ला था कलियुग नाम का एक पंडा रहता था। उसने गुरु जी की बड़े प्रेम से सेवा की, इस सेवा के अन्तर मे उसका दिल एक पुत्र की कामना से प्लावित था। परमात्मा की कृपा से उसके पुत्र हुआ।

यहा से प्रस्थान करके गुरु देव जी खुर्दहा दानापुर आदि नगरो मे होते हुए सुनारस गढ़ के पास से महानदी पार हुए और सुहागपुर मे आकर ठहरे। यहॉ शनिश्चर देव की पूजा आम रिवाज था। गुरु जी ने लोगों को अपने उपदेशों द्वारा समझाया कि परमात्मा ही सब देवों का देव है उसी की पूजा क्यों नहीं करते हो?

विन्ध्याचल पर्वत की एक शाखा का नाम कंटक गिरि है। गुरु जी सुहागपुर से चलकर वहॉ पहुँचे और वहाँ पर साधु सन्तों को उपदेश दिया। यह लोग वरुण की भावना से पानी की पूजा करते थे।

विन्ध्याचल के आगे के हिस्से मे कौल किरात और गोंड लोग रहते हैं। उन दिनों

बिहार में

वहॉ का राजा कोड़ा नाम का था यह लोग देवी पर नर बलि दिया करते थे। राजा

के आदमियों ने मरदाना को पकड लिया और उसे राजा के पास ले गए। गुरुजी ने राजा को उपदेश दिया कि परमात्मा तो सबका पालन कर्त्ता है उसने मनुष्यों को पालने के लिए ससार में कैसे कैसे उत्तम पदार्थ पैदा किए हैं। तुम कैसा उलटा काम करते हो कि ईश्वर के पुत्रों का वध करते हो। इसके सिवा ईश्वर सम्बन्धी और भी उपदेश गुरु जी ने राजा को दिया। जिससे राजा बडा संतुष्ट हुआ और उसने मरदाना को छोडने की इजाजत दे दी।

आगे चलने पर एक घोर जगल दिखाई दिया जिसमे कोसों तक बांस, साल, शीशम, देवदारु आदि-आदि पहाड़ी वृक्ष खडे हैं। दूर-दूर तक वस्ती का नाम नहीं है। मरदाना ऐसे अवसर पर घबरा गया। उसने कहा गुरु जी कहाॅ ले आये मैंने तो सोचा गुरु जी के साथ रह कर खूब मौज उड़ावेगे जैसा कि वैरागी लोगों के सग पडकर लोग माल उडाते है किन्तु जान पडता है आपके साथ तो प्राण और देने पड़ेगे। गुरुजी ने मरदाना को धैर्य्य बधाया और काफी दूर चलने के बाद एक ऐसी जगह पहुँचे जहाॅ पानी का भी सुपास था, अनेक स्वादिष्ट फलों से वृक्ष लदे हुये थे। पास ही में अनेक संतों के आश्रम भी थे। यहा कई दिन विश्रान्ति पाकर और ज्ञान चर्चा करके आगे बढ़े और नर्मदा नदी को पार करके जबलपुर पहुँचे। यहाॅ नदी किनारे पर फूल नाम का फकीर रहता था इसने आसपास के इलाके पर अपने करामाती होने का सिक्का बिठा रक्खा था। गुरु जी ने इसके साथ ज्ञान चर्चा की और उसे बताया करामातें लोगों को बहकाने के काम मे आ सकती हैं किन्तु ईश्वर तो प्रेम से ही प्राप्त किया जा सकता है। इस सही बात का फकीर के दिल पर बड़ा असर पडा और उसने गुरु जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। यहा से चलकर गुरु जी ने चित्रकूट, महीरकी आदि स्थानों को देखा भाला और इस तरह फरीद-वाडा मे पहुँचे।

विहार की यात्रा विंध्याचल के आरम्भिक सिरे पर ही खतम हो गई थी। अब तो मध्यप्रांत मे आ पहुंचे थे। फरीदवाडा मे प्रसिद्ध फकीर फरीद बावा का एक कूप है कहा जाता है बावा उसी मे लटके रहते थे। उनके मास को जब चील कौवे खाते तो वे कहते थे, 'कागा सब तन खाइयो चुन-चुन खइयो मास। दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस।" वे ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहते थे इसीलिये इस प्रकार का कठोर तप किया करते थे। फरीदवाडा से चलकर, भूपाल, सत्य महल, चन्देरी, झासी, गवालियर, आगरा, धौलपुर, भरतपुर, मथुरा, गुड़गावा, रिवाडी मे धर्मोपदेश किया और थोडे-थोड़े समय विश्राम भी किया, रिवाड़ी से नारनौल आये जहाँ कि एक गुरु स्थान भी बना हुआ है।

मध्यप्रान्त राजपूताना

नारनौल पर राजपूताना खतम हो जाता है यहाॅ से गुरु जी झझर और दुजाना आदि अनेक नगरो को पार करते हुये कर्नाल में पहूँचे। यहा उन दिनों शेख शरफुद्दीन का शिष्य शेख शमसुद्दीन प्रसिद्ध फकीर समझा जाता था उसने गुरुजी की पहले से ही प्रशसा सुन रक्खी थी जब उसने सुना कि यहाॅ गुरु नानकजी आये हुये हैं तो वह अनेक प्रतिष्ठित मुसलमानों के साथ गुरु जी से मिलने के लिये आया। वे सभी लोग गुरु जी की सूफीयाना बातचीत से प्रसन्न हुए। कर्नाल मे उनकी यादगार में एक गुरुद्वारा भी बना हुआ है। कर्नाल के पास थानेसर और कुरुक्षेत्र हैं।

पंजाब में

यहां से विदा होकर गुरु जी मालेरकोटला तथा जगराव के रास्ते हरि के पत्तन पर सतलज को

पार करके सुल्तानपुर अपनी बीबी नानकी के घर पहुँचे जहां उन्हे देखकर उनके वहिन वहनोई हर्षे हो गये। यह दिन संवत १५६६ के पौष का ११ वा था।

इस तरह यह प्रथम यात्रा गुरु जी के पूरे दस साल मे समाप्त हुई। इस यात्रा मे हमें कामरु देश से आगे समुद्र के किनारे चलकर गुरु जी के संगलाद्वीप मे पहुँचने का वर्णन मिला है।[1] वहाँ के सम्बन्ध में उदासी सतों ने इस प्रकार लिखा है कि यहाँ का राजा शिवनाभ वर्षो से गुरुजी के आगमन की वाट देख रहा था क्योंकि लाहौर के मनमुख सेठ ने इसी देश मे जाकर व्यापार किया था और उसने गुरु जी के सम्बन्ध मे राजा का वहुत कुछ सुनाया था।

गुरु जी के यहाँ पहुँचने पर जब राजा को खबर लगी तो उसने गुरु जी का बडा आदर सत्कार किया। किन्तु वह परीक्षा भी करना चाहता था अत गुरु जी को और उनके साथियो को अलग मकानों मे ठहराया और रात्रिको परीक्षार्थ गुरुजी के पास एक सुन्दर स्त्री को भेजा। उसने और उसकी दासियों ने अपनी सब चेष्टाएं गुरुजी के डिगाने के लिए कीं किन्तु वे असफल रहीं और राजा से जाकर हाल कहा तो राजा वड़ा प्रसन्न हुआ। उदासी ग्रन्थकारों का कथन है कि जो ज्ञान गुरु जी ने राजा नाभ को दिया था वही प्राणसंगली नामक ग्रन्थ मे हैं। इस प्रसग को केवल सूचना के तौर पर हमने भी जोड़ दिया है क्योंकि यह उनकी प्रथमवार की महान धर्मयात्रा से सवन्ध रखता है।

दूसरी उदासी

सुल्तानपुर मे केवल चार महीने रहकर गुरु जी पुन यात्रा पर चल निकले किन्तु चू कि मरदाना अपने घर जाने को उत्सुक था वह घर चला गया। वहाँ उसने गुरु जी के पिता से सब हाल जाकर कहा। इस खबर को सुनकर वे सुल्तानपुर आये और उन्हे तलवडी लिवा ले गये क्योंकि रायबुलार का भी निमंत्रण था अत. गुरु जी तलवंडी पहुँचे, सभी लाग वड़े खुश हुए। यहाँ वहुत ही थोड़े दिन रहे फिर यहां से यही होकर कसूर मे कई मुसलमान फकीरों से मुलाकात की। और उनके साथ हरि चर्चा भी हुई। यहां से सतलज को पार करके धर्म कोट और भटिंडा होते हुये इसी संवत के आषाढ मे सिरसा पहुँचे। यहाँ कुछ दिन रहकर वीकानेर पहुँचे। वीकानेर मे जैन साधुओं के साथ धर्म चर्चा हुई। जैन साधुओं ने गुरु जी से पूछा "आपका धर्म क्या है ?" गुरुजी ने कहा "भूले भटकों को रास्ते पर लाना", मेरा धर्म है। साधुओं ने कहा आप किस रास्ते पर डालते हैं ?" "जो रास्ता परम पिता परमेश्वर से मिला देता है" गुरुजी ने उत्तर दिया। साधुओं ने फिर पूछा अगर ईश्वर के पचडे मे न पड़ा जाय तो क्या हर्ज है। "इससे वढ़कर फिर कौनसी कृतघ्नता होगी" जवाब में गुरु जी ने कहा। इसके अलावा गुरु जी ने ईश्वर के अस्तित्व और गुण स्वभाव एवं स्वरुप के सम्बन्ध मे जैन साधुओं को वहुत उपदेश दिया किन्तु उन्होंने हठ वश एक भी वात को स्वीकार नहीं किया।

यहा से चलकर गुरुजी जसलमेर पहुँचे। जोधपुर होते हुए अजमेर पहुँचे। वहाँ उन्होंने ढाई दिन के झौंपड़े को देखा। वहा उनके पास वहाँ के कई फकीर आकर मिले और कहने लगे आप तो हिन्दू और मुसलमान सभी को प्यार करते हैं। चलिए आज हमारे साथ चलकर नमाज पढ़िये। उनकी इस वात को सुनकर गुरु जी ने कहा—

अपने नजदीक तो शुभ कर्म कावा है सत्य भाषण कलमा है कर्तव्य की पूर्ति निवाज है" इसे हम

[1] कई एक लेखकों के कथनानुसार यह संगलाद्वीप का सफर गुरुजी के करतारपुर स्थापन कर चुकने के बाद हुआ है।

नितही करते है आप लोगों में से भी कोई इसी तरह वरता हो तो उसका और हमारा साथ है। इस सत्य उपदेशों को सुनकर वे लोग चुप हो रहे और गुरुजी के खयालात की प्रशंसा करने लगे। अजमेर से सात मील के फासले पर पुष्कर तीर्थ है। यहाँ कार्तिक पूर्णमासी पर कई दिन तक भारी मेला रहता है। गुरु जी ने वहाँ पहुँचकर भी अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। वहाँ से नसीरावाद, देवगढ़, लोदीपुर होते हुए आबू पहाड पर पहुँचे। यहा भी जैनी साधुओं का वडा जमघट रहता है। जैन साधुओं से गुरु जी ने यहाँ भी काफी लोहा लिया और उन्हे अपने सत्यज्ञान की ओर आकर्षित करने की चेष्टा की। उनके दिलों पर तो गुरु जी के उपदेशों का असर पडा किन्तु सहज ही वे आनन्दों को छोड़ने वाले थोडे ही थे। यहाँ से चलकर झालरा पाटन, ईडर, डूंगरपुर, वासवाडा आदि नगरों से होते हुए मही नदी का पार किया। जावरा के रास्ता से गुजरकर धारानगरी होते हुये चम्बल को पार करके उज्जैन पहुँचे। उज्जैन वही नगर है जिसमे राजा विक्रमाजीत और भर्तृहरि जैसे विद्वान आदमी हो चुके थे यहाँ गुसाईं लोगों और शैव मत के अनुयाइयों को गुरु जी ने उपदेश दिया। कई दिन तक यहाँ रहे भी। यह देश नदियों और वृक्षों करके वडा सुहावना मालूम देता है। पैदावार भी यहाँ अच्छी होती है।

उज्जैन से ओंकार पहुँचे यहाँ महादेव की मूर्ति पर गगा जल की शीशियाँ चढ़ाई जाती हैं। आरती के समय सव अन्य साधु सत तो खडे हो गए किन्तु गुरु जी वैठे ही रहे पुजारियों ने पूछा वावा ओंकार की प्रार्थना में क्यों शामिल नहीं हुए ? गुरु जी ने फर्माया।

ओअंकार ब्रह्मा उतपति। ओ अंकार किया जिनि चिति।
ओ अंकार सैल जुग भये। ओ अंकार वेद निरमये।
ओअंकार सवदि उघरे। ओ अंकारि गुरमुखि तरे।
ओनम अखर सुणहु विचारु। ओनम अखर त्रिभवण सारु॥

गुरु जी वहा से चल कर, होशिंगाबाद, नरसिंहपुर वालाघाट इत्यादि गाडरदेशीय शहरों और जगलों को पार करते हुए महादेव गिरि नाम की पहाडी को लाघ कर शहर सोनी के पास रामटेक पर पहुचे। कहा जाता है अति प्राचीन काल मे यहाँ पर राजा अम्बरीप ने यज्ञ किये थे। यहा पहाड़ी पर एक तालाव तथा प्राकृतिक किला यहाँ वना हुआ है। यहा से कामठी नागपुर होकर आवडा नामक स्थान मे पहुचे। नाम देव भक्त भी यहीं पैदा हुए वताये जाते हैं। वे जाति के छीपे थे किन्तु परमात्मा के दरवार मे तो "जाति पाति पूछे नहिं कोई। हरि भजे सो हरि का होइ।" का सिद्धान्त है। नामदेव जी के साथ मे गुरु जी की खूब ज्ञान गोष्ठी रही। नामदेव जी भी गुरु जी के अनन्य प्यारों मे से थे क्योंकि इनकी भी साखिया श्री ग्रन्थ साहव मे मिलती है। हमने दूसरे स्थानों पर भी नामदेव जी की जो वाणियाँ पढी हैं उनसे भी हम इसी नतीजे पर पहुचे हैं कि नामदेव जी भी गुरु जी के सम-विचारक थे।

यहाँ से कड़खा होते हुए करहून नगर मे पहुँचे जहाँ प्राय: सभी लोग गणेश जी की मूर्ति की पूजा करते थे। इन लोगों को उपदेश देकर गुरु जी ने इतना तो करा दिया कि लोगों ने मूर्तियों को गले मे लटकाना वन्द कर दिया ? यहाँ से आगे विदर देश मे पहुँचने पर गुरु जी ने देखा कि यहाँ का समाज कनफटे जोगियों के हाथ मे है जो सेली टोपी वाध कर फिरते है। यहाँ इनके इस पाखंड की भी पोल खोली। विदर के इलाके को पार करके वलदाना और मलकापुर से गुजरते हुए, गुरु जी ने गोदावरी नदी को पार कर हैदरावाद जिले में प्रवेश किया और फतिहावाद मे रहकर कुछ दिन प्रचार किया।

विदर और हैदरावाद के कई स्थानों पर अपने उपदेशों की वर्षा करके गुरुजी पागल प्रात मे दाखिल हुए और जंगलों से घिरे हुये एक पहाड़ पर जा विराजे। यहाँ भी कनफटे जोगियों के डेरे थे। इन लोगों ने सुन रक्खा था कि गुरु नानक के पास लोग जो सौगात या भेंट ले जाते हैं वे उसे उसी समय वंटवा देते हैं। अतः वे जोगी केवल एक तिल लेकर गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुए। वे सोच रहे थे देखे इस छोटे से तिल को इतने आदमियों मे कैसे बांट दें। गुरु जी ने तिल को लेकर मरदाना को आज्ञा दी कि इस तिल को पानी मे पीस कर सब को आचमन करादो। जोगी लोग गुरु जी की इस अपरिग्रही बात से वड़े प्रसन्न हुए। इस स्थान पर तिलगज नाम का एक गुरु स्थान है। यहाँ से गुरु जी केरल प्रांत मे पहुँचे तारीख खालसा के लेखक सतसिह ने वहाँ उस समय स्त्रियों का राज वताया है। शायद किसी समय रहा हो। अति प्राचीन समय मे तो यह सूर्पनखा के अधिकार मे था। इस देश के कदली वन को लांघते हुए और कृष्णा नदी को पार करके घूमते घामते पालम कोट पहुँचे। कहा जाता है इस यात्रा मे मनसुख भी मिला था। पालम कोट मे गुरु जी की स्मृति मे एक मकान वना हुआ वताया जाता है। यहाँ से गुरु जी ने उन स्थानों को देखा जहाँ वानर लोग रहते थे। कंपकपी नगर को भी देखा। वह पहाड भी देखा जहाँ शिव पार्वती कुछ अनमन हो जाने के कारण अलग रहे थे। पालम कोट से कुछ ही दूर पर पाप नाशिनी गंगा नामक छोटी सी नदी है उसे पार करके आगे वढ़े। यहाँ लोग विष्णु की मूर्ति को तेल से स्नान करा कर अपनी भक्ति प्रकट करते थे। आगे वे अरकाट, पांडेचरी आदि को देखते हुए रामेश्वर पहुँचे। यहाँ पंडों के साथ ज्ञान चर्चा की किन्तु उन पर कोई स्थायी असर नहीं हुआ।

यहा से गुरु जी सीलोन अथवा लंका मे पहुँचे। वहाँ के राजा रानी ने गुरु जी का खूब आदर सत्कार किया। तथा वड़ी श्रद्धा से नित प्रति उपदेश भी सुनते रहे। कहते हैं एक दिन रानी ने गुरु जी से कहा महाराज पति को वश मे रखने का कोई मत्र वताइये न। गुरु जी ने कहा :—

"प्रिय लगने वाले वचन वोलना, पति के क्रोध होने पर सहनशीलता से काम लेना, और पति से कोई कपट न करके प्रेमी स्वभाव रखना यही पति को वश मे करने का मत्र है। रानी इस वात को सुनकर वड़ी प्रसन्न हुई और उसने गुरु जी के इस मत्र को गाँठ वाध लिया।"

लंका से लौटकर गुरु जी दक्षिण भारत मे मैसूर राज्य के राजा से मिले। वहाँ से शृंगेरीमठ आये। जो कि स्वामी शंकराचार्य जी के मठों मे से है। यहाँ के महंत ने गुरु जी का अच्छा सत्कार किया तथा उपदेश भी सुने। यहाँ से अनेक नगरों को देखते हुए कालीकट से आगे मैसूर राज्य के वगलोर आदि गांवो व नगरों को देखते भालते वम्बई प्रांत से गुजरते हुए गोदावरी के तीर पर पंचवटी को देखा जहाँ भगवान वनवास के समय रहे थे। वहाँ से अम्बकेश्वर शिवजी का मदिर देखते हुए और ताप्ती नदी को पार करके भड़ौच, वरोदा, अहमदावाद के रास्ते से भावनगर और पालीताना को देखते हुए जूनागढ़ पहुँचे। यहां गुजरात के प्रसिद्ध सत नरसी भगत[1] से भेंट की। नरसी भगत ने कई दिन तक गुरुजी को वहीं रख लिया। नित ज्ञान चर्चा होती रही। यहाँ एक फकीर फैजवख्श भी वडा नेक आदमी था। वह भी गुरु जी का आना सुनकर उपस्थित हुआ और ज्ञान चर्चा मे भाग लिया। वह गुरु जी की तरफ इतना आकर्षित हुआ कि जव गुरु जी वहां से चले तो उसने गुरु जी की खड़ाऊँ स्मृति के रूप मे रख ली। यह खड़ाऊँ अव भी एक धर्मशाला मे रक्खी हुई वताई जाती है।

१. कहा जाता है नरसी का शरीरात माघ ५ सवत् १५८२ को हुआ था।

यहाँ से गुरु जी गिरनार पर्वत पर पहुँचे क्योंकि वहाँ पर अनेकों साधु महात्मा तप करते थे। कई दिन तक उनके साथ सतसंग करके सुदामापुरी का अवलोकन करते हुए द्वारिका पहुचे। सुदामापुरी तक गिरनार से पहुँचने मे रास्ते मे गुरु जी ने सोमनाथ के मन्दिर और यादवों की रण भूमि प्रभास क्षेत्र को भी देखा था। द्वारिका में गुरु जी उस स्थान पर भी गये जहाँ के लिये कहा जाता है कि कृष्ण काल मे यही द्वारिकापुरी थी अब समुद्र मे डूब गई है। यहाँ से गुरु जी मुडकर कच्छ के मैदान में जा पहुँचे। वहाँ के लोग वाम मार्गी थे और उसी ढंग से देवी की पूजा किया करते थे। गुरु जी ने वहाँ ठहर कर इस प्रकार के अनेकों लोगों को परमपिता परमेश्वर की शरण मे आने के लिए उपदेश दिया।

यहा से लौटते हुए लखपत शहर और भुज को देखते हुए रास्ते मे आशापूर्णा देवी के मन्दिर पर ठहरे और फिर नारायण सरोवर में जाकर लोगों को उपदेश दिया। यहाँ से धरनीधर की झाडी मे होकर गुजरते हुए अमरकोट पहुँचे। यहाँ भी देवी पूजा का प्रचार था। आपने एकेश्वर पूजा के लिए लोगों को सलाह दी। यहाँ से अलदियार के टांडे से होकर फीरोजपुर मे आ गये और फिर अहमदपुर, खानपुर इलाका बहावलपुर, आदि अनेकों स्थानों पर होते हुए शहर उच्च मे जा पहुचे। यह बस्ती निरी फकीरों की थी। आपने गाँव के बाहर डेरे डाल दिये। अनेक बार फकीरों से वार्तालाप हुई, फिर मुलतान में पहुचे। जब यहां के फकीरों को पता चला तो उन्होंने दूध से लबालब भरा हुआ एक कटोरा गुरु जी की सेवा में भेजा। जिसका अर्थ था कि यहा तो पीर फकीरों से यह शहर पहिले से ही पूरा भरा हुआ है अब आप कहाँ समावेंगे। गुरु जी ने उस दूध मे दो बताशे डालकर और ऊपर मे एक फूल रखकर उसे वापस कर दिया। यह फकीरों के लिए एक जवाब था अर्थात् हम तो आप लोगों के वैसे ही सहकारी हैं जैसा मीठा, दूध का सहकारी है और भरे कटोरे पर भी जैसे फूल रह सकता है साथ ही उसे सुगन्धित भी बना सकता है वैसे हमारे रहने से आप लोगों की हानि तो नहीं होगी अपितु आपके खयालात और अच्छे हो जायेंगे। पीर और फकीर इस सांकेतिक उत्तर से बडे प्रसन्न हुए और हकशाह, शरीफसानी, कोकलदीन और सदा सुहागन आदि जो जो माने हुए पीर थे गुरु जी की सेवा में भेट पूजा ले हाजिर हुए। यहाँ से विदा होकर तलम्बा नामक ग्राम मे जाकर ठहरे। यहाँ सजन नामक ठग रहता था। उसने रास्तागीरों के ठहरने के लिये स्थान भी बनवा रक्खे थे पर मुसलमानों के लिये मस्जिद और हिन्दुओं को मदिर। रात्रि को मुसाफिरों को सुलाने के लिए कहकर भीतर ले जाता और कुँए मे पटक देता। जब गुरु जी और मरदाना उनके यहाँ पहुचे और सोने का समय हुआ तो उसने इसी प्रकार इनसे भी कहा, चलिये बाबा सोइये क्योंकि गुरु जी के चमकते चेहरे को देखकर उसने इन्हे भी मालदार ही जाना था। गुरु जी ने उससे कहा "सज्जन परमात्मा की बदगी करके सोवेंगे। उसने कहा हा, हा, बाबा करिए वंदगी करिए। मैंने तो सोने का समय जानकर अर्ज की थी। गुरु के संकेत पर मरदाना ने गाना आरम्भ किया —

"उजलू कहिया चिलकना घोटम कालडी मसु।
धोतिया जूठि न उतरै जो सउ धोवा तिसु।
सजन सोई नालि मै चलदिया नालि चलन्ति।
जित्थै लेखा मगिए तित्थै खडे दिसन्ति। रहाउ।
कोठे मडप माडिया पासहु चितवीं आहा।

कुठीग्रा कमिन ग्रावनी विचहु मन्वरणी ग्राहा।
वगा वगे कपड़े तीरथि मन्झि वसनि।
घुटि-घुटि जीग्रा खावरणे वगे ना कहीं ग्रनि।
सिम्मल रुखु शरीर मैं जनि देखि भुलनि॥
सो फल काम न ग्रावही ते गुरा मैं तनि हनि॥
ग्रवुलै भार उठाइग्रा डूगर वाट वहुतु।
ग्रखीं लोडी नालहा हउ चढि लघा कितु।
चाकरिया चगिग्राइया ग्रवर सियारणपु कितु।
नानक नाम सम्भाल तू वधा छूटहि जितु॥

इन शब्दों को सुनते ही सजना के अतर कपाट खुल गए और उसे प्रतीत हुआ मानो अपने ही ऊपर यह पद घटित होता है वह गुरु जी के चरणों में पड़ कर अपने अपराधों की माफी मागने लगा। गुरु जी ने कहा जो पापों का माल इकट्ठा किया है उमसे तो मोह छोड़ो और परमात्मा मे चित लगाओ इसी मे तुम्हारा कल्याण है।

सजना उसी समय से सुमार्गी हो गया। कहा जाता है गुरुजी ने पहली धर्मशाला इसी गॉव मे वनवाई थी। यहॉ से गुरुजी अपनी जन्म भूमि तलवडी मे पहुँचे इस समय सवन् १५७७ का भादवा महीना था। माता पिता सभी लोग आपके आने से वडे प्रसन्न हुये। यहॉ आपने सुना कि रायवुलार वीमार है तो आप उसके घर पहुँचे। आपको देखकर वुलार वड़ा प्रसन्न हुआ और इसने प्रार्थना की कि आप अव यहा से न जावे क्योंकि मैं थोड़े दिन का मेहमान हूँ। आपके रहने से मुझे आनन्द मिलेगा गुरुजी ने उसकी वात को मान लिया। इस तरह तेरह दिन उन्हे तलवंडी में ठहरना पड़ा।[१]

रायवुलार के देहान्त के वाद गुरुजी तलवंडी से प्रस्थान करके सुल्तानपुर मे अपनी वहिन के घर आये। मरदाना गुरुजी से आज्ञा लेकर तलवडी ही रह गया था। यहां नवाव दौलतखा ने गुरुजी को सदैव के लिये ठहरने को कहा किन्तु आपने उत्तर दिया कि भविष्य का क्या पता है?[२] क्या होना है? हम क्या निश्चय कर सकते हैं क्योंकि होना तो वही है जो ईश्वर के वश मे है। नवाव चुप हो रहा, कुछ दिन यहां ठहरने के वाद फिर गुरुजी लाहौर पहुँचे। आपका इरादा यहां कुछ दिन स्थिर रूप मे रहने का था किन्तु वहॉ के गौवध को देखकर आपको दुख हुआ और यह कहते हुये वहॉ से चल दिये "लाहौर शहर जहर कहर सवा पहर" और गुरुदासपुर जिले के कलानौर ग्राम मे पहुँचे। यहॉ दोदह गोत्र के जाट रहते थे उन्होंने गुरुजी से वहीं स्थान वना लेने के लिये आग्रह किया। अत आपने परमात्मा के नाम पर करतारपुर[३] आवाद किया। करोड़ीमल खत्री ने वहॉ की कुल भूमि आपके स्थान मे लगवा दी। मकान और धर्मशाला के वन जाने पर आप अपने वच्चों को भी यहीं ले आये। इस तरह पन्द्रह वर्ष के वाद सुलखरणी माई को पुन. अपने आराध्य देव की सेवा करने का मौका मिला।

१. पुरातन जन्म साखी के अनुसार गुरुजी अपनी वाकायदा यात्रा पर जाने से पहले ही इस स्थान पर आये थे।
२. कुछ लेखको ने लिखा है करतारपुर की नींव १५६६ में रखी गई और तीसरी यात्रा १५७० में आरम्भ हुई।
३. यहाँ चार ठंडे-कुण्ड भी है जो राम-कुण्ड, लक्ष्मरण कुण्ड, सीता कुण्ड और हनुमान कुण्ड के नाम से मशहूर है।

तीसरी उदासी

सिख तवारीखों में लिखा है कि करतारपुर की नींव संवत् १५७२ विः के माघ की १३वीं को रक्खी गई थी। धर्मशाला मकान कुएँ बन जाने तथा काफी जमीन हो जाने पर गुरुजी ने खेती कराना भी आरम्भ कर दिया क्योंकि वे भेट चढ़ावे पर अपना जीवन निर्वाह का आधार नहीं बनाना चाहते थे इसीलिये यह रकम उसी समय लंगर मे डाल देते और अपने परिवार के खर्चे के लिये खेती करना उन्होंने जरूरी समझा।

तीन वर्ष के करीब वहाँ रह कर गुरुजी फिर यात्रा के लिये निकले। मरदाना भी आ पहुँचा था। यह यात्रा उन्होंने सवत् १५७५ के असू की २५ वीं को आरम्भ की। कलानौर, गुरदासपुर, दसूहे, त्रिलोकनाथ, पालमपुर, और कोट कांगड़े होते हुये ज्वालामुखी पहुँचे। यहाँ अरजुन नाग को उपदेश दिया। गुरुजी की यादगार मे यहाँ एक धर्मशाला भी है। वहाँ से मनीपुर होते हुए, रवालसर पहुँचे। यहाँ देखा कि पत्थर के छोटे-छोटे टीले तालाब में तैर रहे हैं और उन पर हरे-हरे वृक्ष उगे हुए हैं। पंडा लोग इन्हे दिखा-दिखा कर अपना रोजगार चलाते हैं। मरदाने के पूछने पर गुरुजी ने बताया झावाँ नामक पत्थर परमात्मा ने पानी मे न डूबने वाला ही बनाया है यह सब उसी की कुदरत है। इस देश मे मनीकर्ण में एक गर्म पानी का चश्मा है जिसमे चावल डालते-डालते पक जाते हैं। यहाँ से नादौन, सुकेत, मंडी को देखते हुए कुल्लू राज्य मे पहुँचे। वहाँ पर गद्दी जाति के लोगों को उपदेश दिया। चम्पा राज्य में जाकर जहाँ कि एक शीतला का मदिर था लोगों को ईश्वर पूजा की ओर खींचने के लिये उपदेश दिया। आगे कीर्तिपुर मे बुड्ढनशाह फकीर से भेट की। यह फकीर बकरिया भी पालता था उसने मटकी दूध गुरुजी के पास भेजा किन्तु गुरुजी ने यह कह कर लौटा दिया कि कभी फिर लेंगे हमारी अमानत जमा रहे। तत्पश्चात पंजोर गये वहाँ वैसाख सुदी ३ को प्रति वर्ष बड़ा मेला लगता है, यहाँ से आगे जोहड़ साहब मे पहुँचे वहाँ गुरुजी की यादगार मे एक बडा मकान भी बना हुआ है और प्रति वर्ष जेठ के महीने मे मेला लगता है। यहाँ से तीन कोस की दूरी पर एक बहुत ऊँची पर्वत की चोटी है उस पर भी गुरुजी पहुँचे और लोगों का पानी का दुख मिटाने के लिये पर्वत शिला को हटा दिया जहाँ पानी निकल आया। इससे लोग बड़े कृतज्ञ हुए। उस स्रोत के आस पास घेरा बांध कर अब उसे तालाब का रूप दे दिया गया है जो माहीसर कहलाता है। यह नाम पड़ने का कारण यह है कि माही नाम के व्यक्ति ने ही गुरुजी से सर्व प्रथम जल कष्ट की कहानी कही थी। चलते समय भी गुरुजी ने उसको ही यहाँ का प्रबन्धक बनाया था उसने गुरुजी के सिद्धान्तों का बड़ा प्रचार किया यहाँ तक कि अब भी इस पर्वत के वासी नानकशाही नाम से ही संबोधित होते हैं यहाँ से चलकर गढ़वाल, मंसूरी और चकराता होते हुये उत्तरकाशी मे पहुँचे, जहाँ अनेक अग्नि व जल के उपासकों को सन्मार्ग बताया। यहाँ से गगोतरी और जमनोतरी स्थानों को देखा जहाँ से कि गङ्गा, यमुना निकलती हैं। श्री नगर में पहुँच कर वहाँ के राजा अमर शाह को उपदेश दिया और फिर अनेक स्थानों को देखते हुए बद्रीनारायण में पहुँचे। यहाँ का महत द्राविड़ ब्राह्मण था। उसके पंडों ने गुरुजी के पास आकर बद्रीनारायण जी का इतिहास इस प्रकार सुनाया कि यह नारायण की मूर्ति सतयुग की है। जैनी लोगों ने इसे गंगा में फेंक दिया था पुन श्री शकराचार्य जी ने इसे स्थापित किया है "जल थल महीअल पूरिआ स्वामी सिरजन हार, अनिक भांति होइ पसरिआ नानक ओंकार।" अर्थात् जल, थल सभी स्थानों पर फैले हुए, परमेश्वर ही का मैं तो उपासक हूँ। इससे पड़े समझ गये कि यह साधू मूर्ति पूजक नहीं है। यहां से

चलकर गुरुजी वसुधारा होते हुए हिमालय को पार करके हेम कूट मे आगे सप्त शृंग पहाड़ पर पहुँचे। यहां पर लोकनाथ नाम का एक तीर्थ था वहाँ अनेक साधु सन्तों के साथ सतसंग किया। यह स्थान बद्रीनाथ से आगे १० कोस के फासले पर धरातल से १७६८७ फीट की ऊंचाई पर बताया जाता है। यहाँ प्रातः सूर्योदय के समय सारी पर्वत शिखरें सुनहरी हो जाती हैं, इसलिये इसे हेम कूट व सुमेर पर्वत भी कहते हैं। कहा जाता है राजा पाडु भी यहा आकर रहे थे।

यहां से उतर कर और कई मंजिले पार करके रानी खेत, अल्मोड़े आदि से गुजरते हुए नैनीताल के इलाके मे पहुँचे। इस जंगल मे कनफटे जोगियों के कई डेरे थे। यह जोगी लोग अपने को सिद्ध माना करते थे इनके साथ गुरु जी का काफी विवाद हुआ और अंत मे जोगियों को हार खानी पड़ी। उसी समय से उस स्थान का नाम गोरख मते के बजाय नानक मता हो गया। यहा से तीन कोस के फासले पर गुरु जी ने कनफटे साधुओं को उनकी बार बार की इस जिद से कि कोई करामात दिखाओ रीठे को मीठा करके बताया। यहां से गोरख पुर पधारे। यहाँ भूत प्रेत की पूजा का भारी प्रचार था गुरु जी ने उपदेश करके बताया और कहा क्यों तुम जन्म को व्यर्थ गमाते हो परम पिता परमात्मा की शरण मे आओ। यहाँ से मानसरोवर कृष्ण ताल और धौलागढ़ के मार्ग से नैपाल देश की राजधानी काठमाडू मे पशुपति नाथ के शिवालय के पास जाकर डेरा लगाया। यहाँ अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के बाद ललता पट्टी और एवेरस्ट पहाड़ को देखते हुये सिक्म की भूमि मे पहुँचे और एक टीले पर जाकर डेरे लगाये। यहाँ रबाब पर गाकर लोगों को गुरु जी के शब्द मरदाना ने सुनाए। इसके आगे कंचनचंगा, और देश की राजधानी तासी सूदन में धर्मोपदेश किया। यहा से तिब्बत का देश भी मिला हुआ है गुरु जी ने तिब्बती लामाओं से भी सत संग किया। एक लामा ने तो गुरु जी की वाणियों का अपनी भाषा मे संग्रह भी किया। यहां से गुरु जी भारत की ओर लौट पड़े और, लर्खीम, ब्रह्मकुड डेरहगढ़, शिवपुर, रानीगंज होते हुये मिथिला प्रान्त के जनकपुर मे आये। यहाँ भी कई लोगों को अपना शिष्य बनाया इसके बाद गन्डकी नदी को पार करके सीतामढ़ी गोरखपुर बलिरामपुर, काशीपुर, सीतापुर और वल्लभ शहरों मे होते हुए लुधियाने से गुजर कर जालंधर से आये और फिर शीघ्र ही सुल्तान पुर मे अपनी बहिन नानकी के घर पहुँचे। कुछ दिन बहिन के घर रह कर फिर अपने बसाये हुए ग्राम करतार पुर मे पधारे। वहाँ आपको आया सुनकर आस पास के इलाकों के लोग दर्शनों के लिये उमड़ पडे और दर्शन करके तथा विविध देश और नगरो का गुरु जी के मुंह से हाल सुनकर सबने आनन्द लाभ किया। इस तरह यह तीसरी उदासी समाप्त हुई।

चौथी उदासी

तीसरी उदासी लगभग दो वर्ष मे समाप्त हुई थी। फिर भी गुरु जी ने करतार पुर मे इस पांच वर्ष भी विश्राम नहीं किया। यात्रा पर चल पडे[1] यह चौथी यात्रा भाई मरदाना के आग्रह पर उन्होंने भारत से बाहर के पच्छिमी देशों को देखने के लिये आरंभ की। लालो को दर्शन देने की इच्छा से पहिले एमनाबाद पहुँचे। फिर वजीराबाद से आगे रोहितास पहाड़ के पास पहुँचे। यहाँ मरदाना की प्यास

१. यहां यह भी बता देना उचित होगा कि गुरु जी तलवंडी भी गये थे और अपने परिवार वालों को देश विदेश की चर्चा और सदुपदेशों से संतुष्ट किया था।

बुझाने के लिये एक पत्थर को हटाकर श्रोत खोला। कहा जाता है कि जब संवत १५६६ वि० मे बादशाह ने यहां किला बनवाया था तो उसने इस चश्मे को किले के भीतर लेने का निष्फल प्रयत्न किया था। आगे टिल्ले वाल गदाई के पास कनफटे जोगियो के साथ धर्म चर्चा की। फिर आगे चलकर पिंडदादन खा, डेरा इसमाइल खा और डेरा गाजी खां आदि शहरो मे अनेक मुसलमान साधुओं के साथ विचार-विनमय और ज्ञान चर्चा करते हुये जमानपुर, राजनपुर और कोट मिट्ठन मे होकर शहर सक्खर मे पहुँचे। तथा प्रचार किया, इसके अलावा सिन्ध प्रान्त के शिकारपुर, लरकाना और हैदराबाद तथा किराची आदि रास्ते के सभी बडे और छोटे नगरों मे गुरु जी ने धर्म प्रचार किया। यहा के सभी लोग जल देवता, इन्द्र देवता आदि की मिट्टी की मूर्तिया बनाकर अपनी धार्मिक भावनाओं की पूर्ति करते थे किन्तु गुरु जी के उपदेशो से हजारो आदमी एक ओंकार के उपासक बन गये। और अब तक भी सिन्ध मे गुरु नानक के मतानुयाइयो की भारी सख्या पाई जाती है। यहा प्रत्येक नगर मे धर्मशालायें है जिनमे उदासी सत रहते हैं। और गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ करते हैं।

शहर कराची के मार्ग से गुरु जी भारत से बाहर हो गए और बिलोचिस्तान मे पहुँच गये। इसी देश मे हिंगलाज की देवी का मन्दिर है जिसे बहुत पहिले जाटों ने शक्ति की पूजा के लिये बनवाया। इस्लाम के प्रवाह से यहा के पुराने बाशिन्दे जिनमे अधिकाश जाट ही थे कुछ मुसलमान हो गये कुछ भारत की ओर चले आये थे। गुरु जी ने कलात को देखते हुये इस तरह बिलोचिस्तान को भी पार किया और अनेकों स्थान को देखते भालते मक्का पहुँचे।

बिलोचिस्तान में

मक्का पहुँच कर लोगों के वेश भूषा रहन सहन और चाल चलन को देखकर गुरु जी ने मरदाना से रबाब पर यह पद गवाया —

अरब में

"नौ सत चौदह तीन चार करि, महलति चारि बहाली।
चारे दीवे चहु हथि दीये एका एका बारी॥
मिहर मान मधु सूदन माधो ऐसी सकति तुमारी। १ रहाउ॥
घरि घरि लसकरु पावकु तेरा धरमु करे सिकदारी।
धरती देग मिले इक बेरा भागु तेरा भडारी॥ २॥
ना साबरु होवै फिरि मगे नारदु करे खुआरी।
लब अधेरा बन्दीखाना औगुण पैरि लुहारी॥ ३॥
पूजी मार पवै नित मुदगर पाप करे कोटवारी।
भावै चगा भावे मदा जैसी नदरि तुम्हारी॥ ४॥
आदि पुरुष को अलहु कहीए सेखा आई वारी।
देवल देवतिया करु लागा एसी कीरति चाली॥ ५॥
कूजा बाग निवाज मुसला नील रूप बनवारी।
घर घर मीयां सभना जीआं बोली अवर तुम्हारी॥ ६॥
जे तू मीर मही पति साहिब कुदरति कौण हमारी।
चारे कूट सलाम करिहिगे घरि घरि सिफत तुम्हारी॥ ७॥
तीरथ सिमित पुनि दान किछ लाहा मिलै दिहाडी।
नानक नामु मिले वडिआई मेका घडी सभाली॥ ८॥

इसका भावार्थ यह है कि हे परमात्मन् आपने सात द्वीप, नौ खंड, चौदह भुवन वाला जो ससार बनाया है। हे भगवन यह आप ही की ताकत का काम है अर्थात् दूसरा कौन है जो ऐसी रचना कर सके। इस संसार में तूने भोगने को सब चीजों के भडार दिये किन्तु तृष्णा पापिन ख्वार करती है। अज्ञान अंधकार के बन्दीखाने मे लोग यम की मोगरी की मार खा रहे हैं। विचित्रताओं के इस ससार में (यहाँ अरब के) लोग आदि पुरुष को तो अलहि 'अप्राप्त' कहते हैं। हे बनवारी यहां तो कूजा बांग वालों मे आपका नील (भद्दा) रूप माना जाता है। जिअन (जीवित लोगों) को मीआं (मुये हुये) कहते हैं। यहां आपकी भाषा ही दूसरी हो गई है। यह सब तेरी ही कुदरत है इसलिये हमें चारों खूट तुम्हारी सलामी देनी होगी। चाहे तू मीर कहला और चाहे महीपति। तीर्थ, दान पुण्य और स्मृति पाठ से यदि कुछ भी लाभ होता हो तो मुझे केवल आप अपने नाम की बड़ाई (गुणगान का प्रेम) ही दीजिये।

कई दिन के सफर के कारण रात्रि के समय गुरु जी और मर्दाना गहरी नींद में सो गये इससे प्रात: ही जल्दी न जग सके। मुल्ला ने देखा कि गुरु नानक जी के पाव कावा की ओर है तब कहने लगे आप खुदा के घर (कावा) की ओर पैर करके सो रहे हैं। गुरु जी ने कहा भाई हमारे पैर उधर कर दो जिधर खुदा का घर न हो। इस यथोक्त बात को सुनकर मुल्लाओं के ज्ञान चक्षु खुल गये।[1] मुल्ला गुरु जी को काजी के पास ले गया और सब हाल सुनाया। काजी ने पूछा भाई जी आप कौन हैं ? "मैं मनुष्य हूँ" गुरु जी ने जवाब दिया। मनुष्यों में भी हिन्दू और मुसलमान में से आप कौन हैं ? काजी ने दूसरा प्रश्न किया। गुरु जी ने जवाब दिया "पंच तत्व का पुतला तो न हिन्दू है न मुसलमान" मनुष्य जाति में विभेद पैदा करने की पद्धति ईश्वरीय काम तो नहीं। काजी ने प्रश्न को बदल कर गुरुजी से पूछा आपकी बगल में जो पुस्तक है किस मतलब की है ? इस पर गुरुजी ने कहा मतलब तो जो जैसी प्रकृति का होता है वैसा ही निकाल लेता है। तब फिर आपके किस काम आती है ? काजी ने पूछा। मेरी यह खुराक है गुरु जी ने उत्तर दिया। काजी इस उत्तर पर बड़ा हैरान हुआ और पूछने लगा, साईं जी भला किताब में से कोई क्या खायेगा ? गुरु जी ने कहा हा खाते हैं, सुनो जो लोग बहस मुबाहिसा करने के शौकीन होते हैं वे किताब के हाड भाग को खाते हैं और जो महान् लोगों की कृति समझ कर पुस्तकों का अध्ययन करते हैं वे उसके मास भाग को खाते है। और जो पुस्तकों को पढ़कर अपने और परमात्मा के रूप का साक्षात्कार करता है, वह पुस्तक का प्राणभाग खाता है। इस तरह के विवेचन को सुनकर काजी का आत्मज्ञान जाग्रत हो उठा और उसने गुरु जी का हाथ पकड कर अपने से ऊँचे आसन पर बिठाया तथा कई दिन तक सत्संग का लाभ लिया।

मक्का से चल कर गुरु जी मदीना पहुँचे। वहां उनके साथ आरम्भ में कुछ लोग इस कारण कटुता से पेश आये कि वे चाहते थे कि संगीत के द्वारा गुरु जी कोई प्रचार न करे। आखिर गुरुजी के न मानने पर बात इमाम तक पहुची। इमाम ने भी मना किया और कहा शहर में संगीत वर्जित है। गुरु जी ने कहा कि मन को विचलित करने वाला, आचरणभ्रष्ट लोगों द्वारा गाया जाने वाला संगीत शराह मे निषेध होगा। परमात्मा की भक्ति को पैदा करने वाला संगीत निषिद्ध नहीं हो सकता है। इमाम

१. साखियो में लिखा है कि जब गुरु जी के पैर पकड कर घुमाये गये तो जिधर को पैर घुमाये गये ऐसा प्रतीत हुआ कि जिधर उनके पांव घुमाये जाते हैं उधर ही काबा भी दिखाई देता है।

की समझ में यह बात आ गई। उसने कुछ शब्द उसी समय मरदाना के रवाब पर सुने। जिनसे वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने गुरु जी का बडा आदर सत्कार किया। यहां गुरु जी सब इमामों से मिले तथा उनके साथ ज्ञान चर्चा की। साखियों में अरब देश में गुरु जी के सतसग और धर्म प्रचार सम्बन्धी बहुत बातें हैं और पढ़ने सुनने लायक हैं किन्तु हमने तो संक्षिप्त ही वर्णन किया है।

मदीने से चलकर अनेक ग्राम और शहरों को पार करते हुए बगदाद में पहुँचे। यहा एक दिन आप शहर के बाहर खड़े होकर अल्ला हो अकबर का नारा लगाने लगे। इस बेवक्त के नारे को सुनकर हजारों आदमी उनके इर्द गिर्द इकट्ठे हो गये और उनसे अनेक प्रश्न करने लगे। गुरुजी ने

बगदाद

उनके साथ उस दिन जो बातचीत की उनसे उन लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि नित ही लोग उनके स्थान पर आकर ज्ञान चर्चा करने लगे।

गुरु नानक जी जब बगदाद से चले तो खलीफा ने उनको एक जामा व चोला भेंट किया जिस पर कई भाषाओं में कुरान की आयतें लिखी हुई हैं। डेरा बाबा नानक में मेले के अवसर पर यह चोला दिखाया जाता है। आगे चलकर गुरुजी रोम की राजधानी अलैपो में जो हल्ब नाम से

रोम

भी मशहूर थी पहुचे। गाने बजाने की यहाँ के अधिपति ने भी आरम्भ में मनाही की किन्तु गुरु जी की तर्कों के आगे वह कायल हो गया और रवाब पर भजन सुनकर उसके दिल में भी गुरु जी के प्रति श्रद्धा के भाव पैदा हुए।

कुछ साखियों में लिखा है कि बगदाद और हल्ब जाने से पहले गुरुजी मिश्र भी गये थे और जलाल नामी पीर और हमीद कारु बादशाह के सामने भी उन्होंने अपने ख्यालात का प्रकाशन किया था। यह भी संभव हो सकता है। अत मे वे हल्ब से लौटकर दरियाये दजला और फरात

ईरान, अफगानिस्तान, बलख बुखारे में

को पार करके ईरान देश के तेहरान नगर में पहुँचे वहा के बादशाह के साथ गुरु जी ने धर्मचर्चा की। ईरान के प्रदेश से गुरुजी अफगानिस्तान उतरे और हिरात में आये। हिरात के खान ने गुरु जी की बातें सुनीं और बडा प्रसन्न हुआ। हिरात से रवाना होकर गुरुजी अफगानिस्तान के उत्तरी हिस्से की ओर बढ़ गये और बुखारा में पहुँचे। काबुल, कन्धार से गुजरते हुए जलालाबाद से पेशावर मे आ पहुँचे।

पेशावर से आगे बढकर हसन अब्दाल की पहाड़ी तले गुरुजी ने डेरा लगाया। यहा पहाड़ी पर वली कधारी नाम का एक फकीर रहता था। उसके पास पानी का एक स्रोत था जब मरदाना पानी लेने गया तो उसने मरदाना से यह जानकर कि वह नानक का शिष्य है कहा,

स्वदेश में

तू काफिर का शिष्य हो गया, तुझे लाज नहीं। मरदाना ने कहा साईं जी आप क्या कहते हैं गुरु जी तो इस जमाने के महापुरुष हैं। इस पर उसने कहा तो फिर यहां पानी लेने तुझे क्यों भेजा। वह वहीं पानी क्यों नहीं निकाल लेते। मरदाना ने लौटकर यह बाते गुरुजी से कहीं। गुरुजी ने एक दो दफा फिर उसके पास भेजा किन्तु जब उस ने पानी नहीं ही लेने दिया तो पहाड़ी मे उसी स्थान पर एक स्रोत निकाल दिया। जब वली कधारी को मालूम हुआ कि दूसरा स्रोत, निकाल लिया तो चिढ़कर ऊपर से एक चट्टान ढकेल दी। यह चट्टान पजा साहिब के नाम से मशहूर है क्यों कि गुरुजी ने अपने ऊपर गिरने से हाथ लगाकर रोका था। इसे पजे से रोकने के कारण यह अब पजा साहिब के नाम मे मशहूर है। अब भी वहाँ पजे की निशान वाली शिला दर्शकों को दिखाई जाती है।

इस स्थान से चलकर गुरुजी कश्मीर प्रदेश मे पहुँचे। जहां के अनेकों शहरों और गांवों में

अपना संदेश सुनाया और फिर एमनाबाद की ओर लौट पड़े। रास्ते में स्यालकोट पड़ा, इसलिये इच्छा की कि मूला से मिलते चलें। किन्तु चूंकि मूला को घर वालों ने इस डर से कि वह साधु संतों के साथ न भाग जाय, छिपा लिया और गुरुजी से भी यही कहा कि यहाँ मूला कहाँ है। दैवात हुआ भी यही कि मूला इस लोक में नहीं रहा। उसे छिपने वाले स्थानों में सर्प डस चुका था। इस बार स्यालकोट मे जहाँ गुरुजी ठहरे थे उस स्थान का नाम बावली साहब के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरुजी यहाँ ऐमनाबाद में ठहरे ही हुए थे कि बाबर बादशाह ने एमनाबाद की लूट कराली। यहां से लूट के माल को उठवाने के लिये जो अनेकों आदमी पकडे गये उनमे गुरु नानक भी थे। किन्तु मालूम होने पर बादशाह ने उन्हे छोड़ दिया।

बादशाह के पास से आकर गुरुजी ने परमात्मा को संबोधित करते हुये कहा:—

खुरासान खसमाना कीता हिन्दुस्तान डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चढाइआ॥
एती मार पई करलाणै तैं की दरदु न आइआ।
करता तू सभना का सोई।
जो सकता सकते कउ मारे ता मनि रोस न होई। रहाउ
सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई।
रतन विगाडि विगोए कुती मुइआ सार न काई॥

यवनों द्वारा हिन्दू ललनाओं की जो वेइज्जती हो रही थी उस हालत का गुरुजी ने इन दर्द भरे शब्दों में स्मरण किया है:—

जिन सिरि सोहनि पटीआ मागी पाइ संधूर।
सो सिर काती मुंनीअनि गल विचि आवै धूडि।
महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलनि हदूरि॥१
आदेसु बाबा आदेसु।
आदि पुरख तेरा अंतु न पाइआ करि करि देखहि वेस। रहाउ
जदहु सी आवी आहीआ लाडे सोहनि पासि।
हीडोली चढि आइआ दंद खंड कीते रासि।
उपरहु पाणी वारिअै झले झिमकनि पासि॥
इक लखु लहनि बहिठीआ लखु लहनि खडीआ।
गरी छुहारे खादी आ माणनि सेजडिआ॥
धनु जोवनु दुह बैरी होए जिनी रखे रगु लाइ।
दूतानों फुरमाइआ लै चले पति गवाइ।
जे तिस भावे दे वडिआई जे भावे देइ सजाइ॥
अगहु देजो चेतिऐता काइतु मिलै सजाइ।
साहा सुरति गवाइआ रगति मासै चाइ।
बाबर वाणी फिरि गई कुइरु रोटी न खाय।

यहां से गुरुजी करतारपुर आ गये। और अपने प्यारे शिष्यों को उपदेश दिया।

कुछ इतिहासकारों का कहना है कि गुरुजी ने पांचवीं यात्रा फिर की और कन्धार से वलख बुखारा और ख्वारिज्म पहुँचे जहाँ मरदाना का शरीरांत हुआ। किन्तु कुछ लोग केवल चार ही यात्रा मानते हैं।

शेष जीवन

लगभग ३० वर्ष गुरु जी की आयु के देशाटन मे व्यतीत हुये। उन्होंने भारत ही नहीं भारत से बाहर तिब्बत, अरब, ईरान और रूम तक यात्रा की और अपने सिद्धान्तो को फैलाया। उसके वाद निश्चित रूप से वे करतारपुर मे रहने लगे। यहाँ उनके पास दूर-दूर से लोग दर्शन करने के लिये आते थे। शिष्यों की सख्या भी लगातार बढ़ती जा रही थी।

करतारपुर में रहते हुए वे सब काम नियम से करते थे। उनके समय का एक मिनट भी व्यर्थ नहीं जाता था। उन्होंने अपनी दिनचर्या भी इतनी सुन्दर वना रक्खी थी कि अन्य साधु संत जब गुरुजी के रहन, सहन और दिनचर्या को देखते तो उन्हे अपने जीवन मे भी परिवर्तन का भाव आता जान पड़ता। गुरुजी सदैव तारागणों की छाया मे उठते थे। सूर्योदय तक शौच और स्नान से निवृत्त होजाते थे। पश्चात एक प्रहर दिन चढे तक एकान्त में ईश्वर प्रार्थना करते थे। ईश्वर प्रार्थना से निवृत्त होने पर आये हुये भक्त लोगों को दर्शन देते और उनका कुशल मगल पूछते। इसके वाद लगर मे जाकर भोजन की व्यवस्था देखते।

गुरुजी के आश्रम मे सभी लोग विना किसी भेद-भाव के एक पक्ति में बैठकर भोजन पाते थे। सब के लिये एक सा भोजन दिया जाता था। दोपहर की समाप्ति तक यह कार्य हो जाता था। कभी-कभी स्वय गुरु जी अतिथियों के भोजन के समय उपस्थित रहते। पक्ति में बैठकर ही भोजन भी करते। सायंकाल को सभा लगाते। मरदाना के पुत्रों शाहजादा और रजादा को रवाव पर भजन गवाते। पश्चात् आप उपदेश करते। इसके बाद शौच आदि से निवृत्त होकर फिर हरि कीर्तन होता। पुन भोजन आदि से निवृत्त होकर एकान्त में ईश्वर के गुणानुवाद करते। यह थी गुरु जी की अष्ट पहर की चर्य्या।

गुरु जी की धर्मशाला पर आते ही दर्शकों का चित्त आनन्द से भर जाता था। शिष्य लोग और धर्मशाला पर आठ पहर रहने वाले कार्यकर्त्ता आगन्तुकों का वड़े ही प्रेम से सत्कार करते। गुरु जी के दर्शनो से किसी की तृप्ति न हो यह असम्भव वात थी। गोरा सुन्दर स्वर्ण जैसा चमकता हुआ चेहरा और उस पर चाँदी जैसे उजले केश। प्रथम झांकी में ही दर्शनार्थी के चित्त को मोह लेते थे। चेहरे पर सचाई और देवत्व का नूर बरसता था, और जिस समय गुरु जी उपदेश करते थे सचमुच अमृत वरसता था। यद्यपि गुरु जी पजाव में पैदा हुये थे, किन्तु उनकी वाणी मे ब्रज भाषा की जैसी मधुरता और गुजराती की जैसी कमनीयता थी। ऐसे वहुत ही कम उदाहरण मिलते है जब कोई गुरुजी के मधुर उपदेशों से प्रभावित न हुआ हो।

यहा हिन्दू मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र और क्षत्री, वैश्य का कोई भेद न था। सभी आकर समान रूप से आत्म-भोज प्राप्त करते थे। आत्मा और पेट दोनों की ज्वालाओं को यहा शांत किया जाता था। ऐसी थी गुरु जी की यह धर्मशाला, लोग करतारपुर का रास्ता पूछ कर यहां आते थे किन्तु यहां से ऐसा ज्ञान प्राप्त करके ले जाते कि फिर उन्हें किसी दूसरे से "करतारपुर" का रास्ता पूछने की आवश्यकता नहीं रहती थी।

अपने जीवन के अतिम १५, १६ वर्षो मे इस धर्मशाला में बैठकर खुले दिल से लोगो को धर्म का दान दिया और करतार के नगर का सच्चा रास्ता बताया। इमी बीच मे, तहना जैसे मूर्ति पूजर्को और बुड्ढा, लालू से साधारण जनों को ऐसे ऊचे स्थान पर लाकर खडा कर दिया जिसे विना गुरु कृपा के पाना एक दम असंभव है।

इसी समय संवत् १५६० विक्रमी मे गुरु जी के माता पिता का स्वर्गवास हो गया था। अब तलवंडी मे केवल चाचा (लालु) अवशिष्ट रह गये थे।

एक दिन वह भी आया जब गुरु देव ने भी अपनी लीला समेट ली और सवत् १५६६ वि० मे आश्वन सुदी १० को परमधाम सिधार गये।

गुरु नानकदेव जी के जीवन, कार्य और मन्तव्यों पर एक सरसरी नजर

पीछे के पृष्ठों मे गुरु जी के सम्बन्ध मे जो प्रकाश डाला है, उससे केवल उनकी लम्बी यात्राओं और सहज सिद्ध करामातो का ही पता चलता है। आरभिक पृष्ठों मे उनके घर, गाव, जाति, कारबार, और उनके निज के थोड़े से हालात भी मालूम हो जाते हैं किन्तु गुरु नानक देव जितने महान् थे उतना ज्ञातव्य मैटर एक साधारण बुद्धि के आदमी के लिये विना अधिक विवेचन के हाथ नहीं लग सकता है इसीलिये यहाँ हम उनके जीवन पर कुछ विवेचना करना जरूरी समझते है।

जिस घर मे गुरु जी ने जन्म लिया था न तो वह बड़ा अमीर घर था और न गरीब। कालूराय मध्य श्रेणी का आदमी था। अत. हम यह नहीं कह सकते कि गरीबी की चपेटों ने गुरु जी के आत्मिक ज्ञान को जागृत किया। जैसा कि हजरत मुहम्मद और हजरत ईसा के लिये खयाल किया जा सकता है। न यह कह सकते है कि माया के जजाल ने उन्हे वीतराग बनाया था। जैसा कि भगवान बुद्ध के ऊपर मुर्दे को देखकर यह असर पड़ा कि ओह! एक दिन क्या राजा और क्या भिखारी सभी को मरना पड़ता है। अधिक गौर से देखे तो हमे ऐसा जान पड़ता है वे प्रकृत रूप से ही वैरागी थे। जन्म से ही उदासी थे। आरभ से ही साधु स्वभाव थे। आगे के जीवन मे हम उन्हें महात्मा बुद्ध की तरह घर छोड़ते देखते हैं। हज़रत ईसा की तरह प्रेम और ईश्वर-आस्था की शिक्षा देते देखते हैं। और देखते हैं स्वामी शंकराचार्य की तरह पर्यटक के रूप में।

प्रकृति

वालपन मे उन्हे फारसी, सस्कृत और हिन्दी की प्रचलित सभी पाठशालाओं मे बिठाया गया। कह नहीं सकते कि उन्होंने वहाँ क्या और कितना पढ़ा? किन्तु यह अवश्य कह सकते हैं कि आत्मा की तुष्टि और विकास के लिये मौलवी पंडित और पाधा से उन्हे कुछ भी नहीं पढ़ना पड़ा। हम 'दबिस्तान' के लेखक मोहन की इस धारणा से कतई सहमत नहीं हैं कि एक दरवेश (मुसलमान फकीर) से शिक्षा पाकर नानक का आत्मा प्रकाशवान हुआ था[1]। गोकि मैलकम साहब को भी कुछ मुसलमानों ने यही बताया था कि "भविष्यतवक्ता इलियास ने नानक ने सब तरह का नैसर्गिक विज्ञान सीखा था"[2] अपितु वे जन्म से ही ऐसे लक्षणों को लेकर आये थे

शिक्षा

१. Dabisthan, 11. 247
२. Siketeh. P. 14 By Melecome

जिन्हे ईश्वर-प्रदत्त-देन ही कह सकते हैं ।यह संभव हो सकता है कि जिन लोगों का मुसलमान इतिहास-कर जिक्र करते हैं उनके खयालात भी गुरु नानक देव जी से मिलते जुलते हों जैसे कि कबीर, नामदेव और धन्ना जाट के मिलते थे। परन्तु "आदि गुरु ग्रन्थ साहब" को जब हम पढ़ते हैं तो हमें मालूम होता है कि मुस्लिम इतिहासकार जिन लोगों को गुरु नानक देव के आध्यात्मिक शिक्षक होने का नाम लेते हैं, उनसे या तो गुरु जी का कतई ससर्ग नहीं रहा या उनके खयालात भी गुरु जी से नहीं मिलते थे वरना अवश्य ही शेख फरीद और कबीर जी की तरह उनकी भी एक दो वाणियों का ग्रन्थ साहब मे समावेश होता है। ना ही इन व्यक्तियों के होने का पता किसी इतिहास मे ही मिलता है।

लौकिक काम चलाऊ शिक्षा गुरु जी ने कितनी पाई थी इसके लिये हम इतना ही जानते हैं कि सुल्तानपुर की मोदीगिरी का वे हिसाब रखते ही थे। अरब के काजी मुल्लाओं को जो उपदेश दिया था वह अवश्य ही अरबी भाषा मे रहा होगा। द्रविड़ देश मे सस्कृत भाषा के सिवा वहाँ के लोग अन्य प्रातिक भाषाओं को नहीं समझ सकते थे। हा इतना और हमे भासता है कि न तो मौलवियों के ज्ञान को उन्होंने सीखा और न पडितों के आडम्बरों को अपनाया। ससार को जो कुछ उपदेश उन्होंने दिया था वह उनका अपना निज का और अन्तरात्मा का था।

गुरु जी ने गृहस्थ मे भी प्रवेश किया था। हमे तो इसमे गुरु जी की महानता के दर्शन होते हैं। संसार के सारे सुखों मे मुक्ति के बाद गृह जीवन ही प्रधान है। लोक कल्याण के लिये गुरुजी ने गृहजीवन को भी छोडकर ससार के सामने एक आदर्श रख दिया।

गृहस्थ

गीता मे इस बात पर जोर दिया गया है कि "निष्काम कर्म करो" निष्काम के अर्थ हैं जैसे कमल पानी मे रहते हुए भी पानी से अलग रहता है वैसे ही निर्लिप्त रहो। भारत के सारे धार्मिक इतिहास मे राजा जनक के सिवा इतने लबे समय में हम गुरु नानक देव को ही जल में कमल की भांति संसार से निर्लिप्त देखते है।

अतिम दिनों मे उनकी स्त्री और बच्चे भी उनके पास आ गये थे। जैसे अन्य शिष्य रहते थे पुत्र पास मे हैं विद्वान भी है और सेवा भी करते हैं, गुरु जी भी उनसे प्रेम करते है किन्तु इसलिये नहीं कि वे उनके पुत्र हैं किन्तु इसलिए कि वे ससार को प्रेम करते थे। यदि ऐसा न होता, तो कैसे कहा जा सकता है कि गुरु जी ने कभी मोह को पास तक नहीं फटकने दिया। यदि जरा भी उनके हृदय मे मोह होता तो गुरु गद्दी अंगद जी के बजाय श्रीचद जी या लक्ष्मीचन्द जी को देते क्योंकि हजारों शिष्य भी आग्रह करते थे। लेकिन जिस सत्य और न्याय से वे प्रेम करते थे उसके खिलाफ नहीं गये और न जा सकते थे। यही तो उनकी महानता थी। गृहस्थ मे रह कर भी कोई ईश्वर को कैसे पा सकता है यह सिद्धान्त गुरु जी ने केवल कह कर नहीं किन्तु करके बताया था।

मोदीखाने (सुलतानपुर) मे ईश्वर की कृपा से खूब बरकत थी। दोनों हाथों से भूखों नंगों को देते थे किन्तु खुद क्या खाते थे "केवल सूखी रोटी।"

'नारि मरे घर सम्पत्ति नाश' पर तो हजारों साधु हो जाते हैं और वृद्धावस्था मे तो सभी उपदेश देते हैं कि स्त्रियों से दूर ही रहना चाहिये किन्तु एक गुरु नानक देव है जो स्त्री के होते हुए जवानी में वैराग लेते हैं। इसलिए नहीं कि स्त्री जाति से इन्हे कोई घृणा थी, किन्तु संसार जिस बात को अनादि काल से कठिन कहता आ रहा है उसे ही उन्होंने सरल करके दिखा दिया। जब वह समय निकल गया जिसमे कि ऐसा त्याग कठिन समझा जाता है तब फिर उन्होंने गृहणी को पास रख लिया। यह था

ग्रहस्थ का कठोर तप, जो उनकी महानता को प्रकाशित करता है।

एक पुराण ने गुरु नानक जी के सम्बन्ध मे इस प्रकार भविष्य वाणी की थी —

"एवं वैधर्म्य प्राचुर्य्य भविष्यति यदा कलौ।
तदा वै लोकरक्षार्थ म्लेच्छाना नाशहेतवे ॥
पश्चिमे ते शुभे देशे वेदिवशे च नानक।
नाम्ना च भुवि राजर्षि ब्रह्मज्ञानैक मानस।
भविष्यति कलौ स्कन्द तत्व वित्कल्या हरे·।
स श्रीमद्राज शार्दूलानुपदिशा च पुन पुन।
म्लेच्छान् हनिष्यति स्कन्द धर्म तत्वोपदेशकृत् ॥
तेनोपदिष्ट मार्ग वै ये ग्रीह-ष्यति भूमिपा।
ते वै राज्य करिष्यन्ति तस्य शिक्षानुसारत ॥ भविष्य पुराण

अर्थात्—कलियुग मे जब धर्म के स्थान पर अधर्म बढ़ जायगा। तब जनता की रक्षा के लिए और म्लेच्छों के नाश के वास्ते अति उत्तम पच्छिम देश मे वेदी कुल में नानक नाम का एक राजर्षि जिस का मन एक ब्रह्मज्ञान में ही लगा है और तत्वज्ञान से पूर्ण भी है अवतार लेगा। इसे कलियुग मे हरि का (निष्कलंक) अवतार समझिये। सो वह नानक राज सिंहों (जाट, खत्री आदि खालसा लोगों) को अपने—पुन उपदेश से जगा देगा। ये ही सिंह म्लेच्छों का विनाश करेगे।

उस नानकदेव के उपदेशों और नाम की महिमा वाली भक्ति के ऊपर चलकर वे ही (सिंह) अपना राज्य कायम करेंगे।[1]

गुरुजी ने भारत के लिए क्या किया और वे कितने महान् थे? पुराण के इस श्लोक से भली भांति मालूम हो जाता है। गुरु जी को जितना आज हम जानते हैं तथा उनके प्रति जितनी श्रद्धा रखते हैं उससे कई गुना जानकारी और श्रद्धा भविष्य पुराण की रचना के समय में गुरु जी के प्रति थी।

दया, क्षमा, शील, परोपकार, प्रेम और धैर्य आदि गुणों का महापुरुषों से बड़ा सम्बन्ध है। गुरु-नानकदेव जी दया-क्षमा परोपकार और धैर्य की साक्षात मूर्ति थे यह कहने मे कोई भी अतियुक्ति नहीं।

धैर्य

सुल्तानपुर मे नवाब दौलतखा ने कहा आप मेरे प्रथम बार के बुलाने से क्यों नहीं आये थे। आपने बिना लाग लपेट के सीधा सा जवाब दिया "अब आपका नौकर थोड़े ही हूँ।" अब तो मैंने परमात्मा की सेवा अख्तियार कर ली है। सत्ताधारी मदांध होते हैं यह प्रकृति का नियम है। नवाब साहब गुस्से ;हो गया और उसने गुरुजी को मुसलमान बना लेने की ठान ली। आपको मस्जिद मे ले जाया गया और कहा गया हमारे साथ नमाज पढ़ो। नवाब ने नमाज शुरू कर दी, आप शान्ति से बैठ गये। क्रोध के साथ नमाज के खात्मे पर नवाब ने कहा आपने मेरे साथ नमाज नहीं पढ़ी। गुरु जी ने बडी निर्भयता के साथ जवाब दिया। मैं तुम्हारे साथ नमाज क्या पढ़ता जब कि तुम और तुम्हारे काजी जैसे श्रद्धालु मोमिनों का चित्त ही नमाज मे नहीं था।

दूसरा प्रसंग और लीजिये। अभिमानी मलिक भागू जो बड़ा क्रोधी और निर्दयी था गुरु जी से धमकी के साथ पूछता है—तुम शूद्र के घर का भोजन कर लेते हो किन्तु मेरे ब्रह्मभोज मे नहीं आये। मैं

१. 'भविष्य पुराण पूर्वार्द्ध त्वाष्ट कल्प अध्याय १२६। स्कंध ब्रह्मा संवाद

इस अपमान को भला बर्दाश्त कर सकता हूँ। गुरुजी ने बिना किसी संकोच के तुरन्त कहा, तुम्हारा अन्न गरीबों के खून से सना हुआ है मैं उसी अन्न को खाता हूँ जो नेक कमाई का हो। इस खरे उत्तर ने भागू को लाल कर दिया किन्तु गुरु जी ने उसकी राई रत्ती भर भी परवाह नहीं की।

विंध्याचल के गहन वन में प्यास और भूख से दम लबों पर आ रहा है। मरदाना घबरा कर कहता है गुरुजी यहां क्या मारने के लिये लाये हैं। रीछ, तेंदुए, सिंह इधर-उधर दहाड़ रहे हैं किन्तु बिना किसी घबराहट और चिन्ता के आगे बढ़ रहे हैं। मक्के में मुल्ला तड़के ही जगाकर लाल पीला होकर कहता है इतना बडा गुनाह ओहो काबे की ओर पैर करके सो रहे हैं। आप बड़ी निश्चिन्तता से कहते हैं। अच्छा तो लो मेरे पैरों को उधर कर जिधर खुदा का घर न हो।

परोपकार

परोपकार मे तो उनका सारा जीवन ही व्यतीत हुआ। बालकपन से ही दूसरों के हित के लिए अग्रसर थे। घर की चीजों को गॉव के गरीबों के घर डाल आया करते थे। सच्चे सौदे के रुपये भूखे साधुओं को ही खिला दिये। यात्रा के दिनों मे जो भी मिलता उसे उसी समय बाँट देते थे। अपना शरीर भी, देकर वे दूसरों का भला करने को सदैव तय्यार रहते थे वह कौनसी घडी और मिनट था जिसमें वे परोपकार न करते रहे हों। तन, मन से वाणी से कभी परोपकार बिना खाली नहीं रहे। अन्तिम दिनों में यद्यपि उनके पास अतुल धन और वस्त्र भेंट मे आते थे किन्तु अपने लिये उन्होंने कुछ भी नहीं रखा, किन्तु अपने खाने-पीने के लिये खेती करते थे।

नम्रता

संसार मे अनेकों ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने शक्ति बढ़ जाने पर या तो अपने को ईश्वर का पुत्र कहा है या उसका पैगम्बर, कुछ ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने उन लोगों को दुष्ट, नीच, मलेच्छ और काफिर आदि कह कर सताने में कोई कसर नहीं छोडी है। जिन्होंने कि उनके उसूलों को मानने से इन्कार किया था। गुरु नानकदेव जी में यह बात कतई नहीं पाई जाती है। वे जहा भी गये वहा के विद्वानो, ज्ञानियों और पीर फकीरो को निरुत्तर किया। सभी जगह सत्कार पाया। लाखों ही मनुष्य उनके शिष्य हो गये थे किन्तु कभी भी उनके मुँह से ऐसी बात नहीं निकली जो किसी के प्रति कडवी हो या अभिमान भरी हो। बल्कि जब उनसे कहा गया कि आप नीच लोगों को पास बिठा लेते हो, उनसे कोई परहेज नहीं करते तो आपने कहा.—

नीचा अन्दरि नीच जो नीची हू अति नीच। नानक तिनके सग साथ बिडियां सो क्या रीस ॥

बाबा मैं कर्महीन कुडिया नामन पाया तेरा, अन्धकार भूला मन मेरा।

उपदेशों की गति भी आपकी कठोर नहीं होती थी। जिन सिद्धान्तों का आप खंडन करते थे उनके तरीकों मे भी मिठास होती थी। हरिद्वार मे जब आप हरि की पौड़ी पर गये तो वहां देखा लोग पूर्व को सूर्य की ओर जल फेंक रहे हैं। आप पच्छिम की ओर जल फेंकने लग गये। लोगों ने पूछा आप यह क्या करते हैं? आपने कहा करतारपुर में मेरे खेत हैं कहीं सूख न जाये इसलिये पानी दे रहा हूँ। लोग बोले भला करतारपुर तक यह पानी कैसे चला जायगा? तो आपने कहा, सूर्य से करतारपुर कुछ न कुछ पास ही है। इसी तरह बगदाद के बादशाह को बिना ही कडवे शब्दों का प्रयोग किये उसके दुर्गुण को जता दिया। कहा जाता है वह रुपया पैसा वसूल करने मे प्रजा को बहुत सताता था। गुरु जी से जब वह मिलने आया तो उसे कुछ ककड़िया अमानत मे रखने को दीं। बादशाह ने पूछा आप इन्हे लेने कब लौटेंगे। गुरु जी ने कहा कयामत के दिन तो मिलोगे ही वहीं लेंगे। बादशाह बोला गुरु जी वहा तो

कुछ भी नहीं जाता। आपने कहा जहाँ आपका धन जायगा इतना एकत्रित किया हुआ उसके साथ ही मेरी कंकड़ियाँ भी ले जाइयेगा। बादशाह की इस प्रकार के मीठे खडन से आँखे खुल गईं। यही कारण था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के हजारों लोग गुरु जी के चेले बने और दोनों ही यह खयाल करते थे कि गुरुनानक जी तो हमारे हैं। कहा जाता है उनके स्वर्गवास के दिन भी दोनों ही जातियों ने उनकी ल्हास को प्राप्त करने की कोशिश की।[1]

यह कहने मे हमे कोई अत्युक्ति नहीं जान पड़ती ज्ञात इतिहास काल मे गुरु जी जैसा कोई यात्री नहीं हुआ। महात्माबुद्ध के लिए कहा जाता है कि उन्होंने समस्त भारत मे घूम २ कर प्रचार किया था और तिब्बत तकभी पहुँचे थे किन्तु ईरान, अरब और रूम तक वे नही गये। इस तरह हम उन्हें भारत ही नहीं संसार का सबसे बड़ा अथवा महान धर्म प्रचारक या महा यात्री कह सकते हैं वास्तव मे उनकी यह धर्म यात्रा 'दिग्विजय' कही जानी चाहिए क्योंकि उन्होंने भारत के बाहर भी समस्त संसार मे प्रत्येक मजहब और सम्प्रदाय के पंडितों, महन्तों और पीर योद्धाओं को परास्त किया था।

महान यात्री

उस जमाने मे यात्रा आजकी जैसी सरल न थी कहीं २ तो बारह-बारह कोस तक पानी का सुपास न मिलता था। अराजकता भी सारे देश मे छाई हुई थी। इसके अलावा भी एक खतरा था उन धर्मान्धों से जो आदमियों की बलि अपने देवताओं पर चढ़ाकर प्रसन्न होते थे गोंड लोगों ने बेचारे मरदाने को इस काम के लिये पकड़ भी लिया था। प्रत्येक प्रांत की भिन्न भाषा और आचार-विचार भी यात्रा के लिये कम कठिनाई पहुँचाने वाले न थे। ऐसी हालत मे भी एक नहीं गुरु जी ने चार यात्रायें कीं जिनमे भारत के कोने २ को छान डाला। यहीं नहीं लंका, अरब, ईरान और मिश्र तक धावा किया और भारत मां के गौरव को उन देशों मे फैलाया। कहा जाता है आजभी ईराक और ईरान मे गुरुनानक की नानक पीर के नाम से मान्यता होती है और मेला लगता है।

हम अपने देश मे अरबी, चीनी और मिश्री यात्रियों के यात्रा वर्णनो का जब हवाला पढते है तो उनके साहस और परिश्रम की सराहना करते नहीं थकते किन्तु गुरुनानक जी की यात्रायें उन यात्रा विवरणों से सैकड़ो गुणा आनन्द और कौतुहल बढ़ाने वाली है साथ ही गौरव से हमारे सिर को भी ऊँचा करती है कि जिन अरबों, तूरानी और ईरानियो ने तलवार के बल से हमारा देश मे अपने धर्म का प्रचार किया था तथा हमारे देश को जीता था उन्हीं देशों के बडे २ आलिम फाजिलों और पीर पिरानों को हमारे गुरु ने अपने अतुल ज्ञान से और महान उसूलों से अकेले ही जाकर परास्त किया था।

अंत मे हम कहना चाहते हैं कि गुरुनानकदेव जी उससे कहीं बहुत ज्यादा महान् थे जितना कि हमलोग अब तक उन्हे समझ पाये है। अपने धर्म का सन्देश देने के लिये भूले भटकों को राह पर लाने के लिये, संसार से ढोंग के ढकोसले को मिटवाने के लिये और एक ओंकार परमात्मा की भक्ति का प्रचार करने के लिये अपने जीवन मे संसार के शायद ही किसे दूसरे वली अवतार या धर्माचार्य ने इतनी लम्बी यात्रा की हो।

प्रत्येक सुधारक के कार्यों के दो ही अंग होते है एक विनाशात्मक दूसरा रचनात्मक। विनाशात्मक कार्य वे होते है जिन्हे हटाया, मिटाया और बदला जाता है और रचनात्मक कार्य वे होते हैं जिनके

१. सिख साखियों में लिखा है जब चादरा उठाकर देखा गया तो शव के स्थान पर चन्द फूल अवशेष थे।

अनुसार खुद अपना जीवन ढाला जाता है और दूसरों को वैसा बनने और करने के लिये कहा जाता है। मूर्ति पूजा छोड़ो, तीरथ और क्षेत्रों में मत भ्रमो। बहुदेव पूजा मत करो। आदि २ उपदेश गुरु जी के कार्यों का पहला अंग था। जिस पर कि हमने पिछले पृष्ठों में काफी प्रकाश डाला है अब उनके कार्य के दूसरे अग पर सक्षिप्त सा विचार करते है। जिसके संम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में भी जिक्र आगया है फिर भी यह पंक्तियां भी काम की ही होंगी।

उनके रचनात्मक कार्य

सत्य को वे मनुष्यता का अग मानते थे और यह है भी सही जिसके हृदय मे जितना ही सत्य का अश होगा उतना ही वह उदार, सहृदय दयालु और ईश्वर परस्त होगा। गुरुजी के समय मे तो सत्य के दर्शन और भी दुर्लभ हो रहे थे। उस समय तो झूठे देवता, झूठे शास्त्र और झूठे खयालातों का साम्राज्य था यह तो नहीं कहा जा सकता कि उस समय सत्य का एक दम अभाव था किन्तु यह बिल्कुल सही है कि सत्य की हत्या आज की अपेक्षा उस समय यह हिन्दू जाति अधिक कर रही थी। ऐसी हालत मे भक्ति के बाद गुरु जी ने सत्य पर ही अधिक से अधिक कहा है। उनकी सत्य सम्बन्धी सैकड़ों वाणियों से कुछ इस प्रकार हैं :—

सत्य

"सच्चता पर जाणिये जे रवि सच्चा होय।
कूड की मल उतरै तन करै हिच्छा धोय।"

अर्थात्—सच्च पर चलने से हृदय स्वच्छ हो जाता है और आत्मा पर से झूठ का मैल धुल जाता है।

"मन झूठे तन झूठे जीवा झूठे होय।
मुख झूठे झूठ बोलना क्योकर सोचा होय॥"

(अर्थ) जिनका तन, मन, आत्मा और वाणी सभी झूठ मे लिप्त हैं। वह कैसे शुद्ध (पवित्र) होवेंगे। और —

सच्च बिन दर सजै न कोई।" बिना सचाई के परमात्मा के द्वार तक नहीं पहुँचा जा सकता।

हिन्दू समाज का सबसे बड़ा रोग आपस मे नीच ऊँच के भावों का होना भी है। दुर्भाग्य से रामानुज और वल्लभाचार्य्य के अनुयाइयों ने इसे और भी बढ़ाया। गुरु देव ने इस विप-वृक्ष को काट देने के लिये उपदेश ही नहीं किन्तु करके भी दिखाया हजारों हिन्दू तो उनसे केवल उसी लिये नाराज रहते थे कि वे ऊँच-नीच व जात-पांत का अन्तर नहीं मानते हैं। मलिक भागो इसी बात से काफी चिढ़ गया था। एमनाबाद लका मे वे खाती लोगों के घर ही ठहरे थे। दक्षिण मे नामदेव (छीपा) लोगों के घर रहकर आराम किया था।

ऊँच नीच

गुरु ग्रन्थ मे जिन नामदेव, रविदास और सहना भगत को वाणियाँ हैं' वे गुरुजी के प्यारे संतों मे से थे। जब भी गुरुजी उनके देशों मे गये उन्हीं के घर ठहरे। अभागे हिन्दू इन महान संतों के सम्बन्ध मे अब तक यही खयाल रखते है कि रविदास और सहना ऊँच जातियों के नहीं थे। इस सम्बन्ध में गुरु नानक देव की यह वाणी कितनी अच्छी है।

"ऊँचे तो ऊँचा बडा सभ सगि वरनेह।
दास दास को दासरा नानक करि लेह॥"

जब मनुष्य सचाई के मार्ग को छोड देता है तो उससे "माया ममता छोड़ी न जाय"। बल्कि और उसके दिल मे माया का मोह बढ़ता है, तब माया का मोह बढ़ जाने पर मनुष्य न्याय और अन्याय की

परवाह करना छोड़ देता है और जब यह खयाल नहीं रहता कि न्याय क्या है? तब वह दूसरे के हक और अधिकारों को नष्ट करने में कुछ भी हिचक नहीं करता। साधारण आदमी की तो बात क्या?

न्याय

"काजी होके भर्ने अन्याय। विड्ढ लेके हक गवाय।"

काजी भी अन्याय करने लगता है और रिश्वत लेकर हकों का हनन करता है। यहां क्यों —

"कलि काती राजे कसाई धर्म पख उडाया।" अर्थात सतयुग के दुश्मन इस कलियुग में राजा भी प्रजा रूपी गाय के लिये कसाई हो गये है। धर्म को पंखहीन अथवा लुञ्ज बना रहे है। अत अपने और दूसरों के हित की भावना से सभी को सत्याचरण करना चाहिये क्योंकि —

"साची कीरत साथी वानी। हीर न देमी वेद पुरानी"

अर्थात वेद और पुरानों ने भी सत्य की के सिवा कोई और उत्तम रास्ता नहीं बताया है।

सुखी और पवित्र जीवन बिताने के लिये यह भी आवश्यक है कि सतोप की वृत्ति को धारण किया जाय। कारण —

सतोप

नाम बीज सतोष सोहागा रख गरीबी वेल।
भाव करम जे मयी घर भागड देव॥

अर्थात—यदि ईश्वर के नाम का बीज सतोप रूपी भूमि मे शुद्ध भाव के साथ बोया जायगा तो ऐसी खेती हरी होगी कि घर और बाहर मालामाल हो जायगा।

सत्य के बाद उन्होंने संतोप पर भी जोर दिया है और ठीक भी है क्योंकि इच्छाओं और आवश्यकताओं को तो जितना भी बढ़ाया जाय उतनी ही ये बढ़ जाती हैं और फिर उनकी पूर्ति के लिये अन्याय पर ही मनुष्य को कमर बांधनी पड़ती है।

पंजाब मे क्या सारे भारत मे ही लगर की प्रथा पहले पहल गुरु नानकदेव ने ही डाली थी। जो भ्रातृभाव को पैदा करने मे लाखो लेक्चरो से अधिक फलदायक सिद्ध हुई। और जो आज भी सिख समाज के संगठन की कड़ी को मजबूत बनाने मे काम दे रही है। सक्षेप मे हम गुरु नानक देव जी के रचनात्मक कार्यों का इस प्रकार उल्लेख कर सकते है

(१) अनेकों शताब्दियों के बाद हिन्दू धर्म का उन्होंने परिमार्जन किया और भ्रांतियो मे जकड़े हुये हिन्दू समाज को सोचने, विचारने और मनन करने की स्फूर्ति प्रदान की।

(२) बहुदेव और कंकड़ पत्थर की पूजा से हटाकर एक परमेश्वर की मान्यता की ओर हिन्दू जाति को आकर्पित किया।

(३) परमात्मा जन्म मरण के बन्धन मे परे है इस सचाई को जोरदार शब्दों मे पेश किया।

(४) समस्त कर्म कांड, सस्कारों, तीर्थ व्रतो से बढ़कर परमात्मा की भक्ति है गुरु नानकदेव जी ने इस सचाई को भी हिन्दुओं के गले उतारा।

(५) परमात्मा की भक्ति सत्याचरण, हृदय की स्वच्छता और सतगुरु के ज्ञान से प्राप्त होती है उसके लिये ब्रह्म भोज, गोदान, और हज तीर्थ की कोई जरूरत नहीं, गुरुजी ने इस बात को भी समझाया।

(६) उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा, पुजारी पंडे, काजी मुल्ले, सत्यमार्ग के प्रदर्शक नहीं है इन्होंने तो धर्म को अपनी जीविका का धन्धा बना रक्खा है।

(७) किसी के अनुयायी या मुरीद बनने के लिये यह देखो वह सतगुरु है या यों ही ढोंगी, टोगी है।

(८) हिन्दू और मुसलमान जन्म से कोई नहीं होता जन्म से सब मनुष्य और भाई-भाई हैं यह भेद तो यहाँ स्वार्थी लोगों का चलाया हुआ है।

(९) नशा तो सभी कुराह पर ले जाने वाले हैं। केवल सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की भक्ति का रस ही सच्चा लाभकारी नशा है।

(१०) अपने लिये तो सभी जीते हैं जीना तो उसका सार्थक है जो दूसरों के उपकार के लिये सुख की परवाह न करे।

(११) यदि एक दिन संसार के सभी सुख और वैभवों को छोड़ना ही है तो उनमें लिप्त क्यों हुआ जाय। दुनिया में जल के बीच कमल की तरह क्यों न रहा जाय।

(१२) जब यह निश्चय है कि एक दिन मरना होगा तो फिर मृत्यु से डरा क्यों जाय परमात्म-भक्ति से उस पर विजय क्यों न प्राप्त की जाय।

(१३) केवल मौज से रहने और मुफ्त का खाने की इच्छा के लिये जो घर छोड़ बैठते हैं ऐसे लोगों की भी गुरुदेव ने निन्दा की है।

(१४) नेक कमाई की रूखी सूखी रोटी, पाप कर्म से पैदा किये हुए हलुवे माडे से बेहतर है। हम समझते हैं इतनी सतर्कता उनसे पहले कई शताब्दियों तक किसी सुधारक द्वारा पेश नहीं की गई थी।

गुरु नानकदेव जी के उन महान कार्यों और उपकारों की यह तो एक छोटी सी सूची है जो उन्होंने भारत देश के निवासियों के लिये किये थे। वास्तव में तो जो जितना ही गुरु नानकदेव जी के जीवन पर गम्भीरता से अध्ययन करेगा उसे उतने ही गुरुजी महान पुरुष और ईश्वरीय आज्ञाओं के प्रचारक नजर आयेंगे। वे सचमुच ही इतने महान थे जिसे आज संसारी आदमी सहज ही नहीं समझ सकते। एक विद्वान इतिहास लेखक ने गुरुजी के सम्बन्ध में लिखा है "उनके व्यक्तित्व की आकर्षण शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि वे सहस्रों ही मनुष्य जो उनके साक्षात सम्पर्क में आये, उनके भक्त तथा अनुयायी बन गये।'[1] कर्नल कनिंघम ने अपने लिखे हुये 'सिख इतिहास' में श्री गुरु नानकदेव जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि इन शब्दों में प्रकट की है—उनके सद्व्यवहार एकाग्र ईश्वर निष्ठा और प्रवृत्ति एवं सद्वक्तृता सभी प्रशंसा की बातें हैं। उन्होंने बहुसंख्यक लोगों को अपने उद्वेग से उत्साही, कर्मठ और दृढ़ विश्वासी शिष्य बनाया।"[2] आगे फिर इन्होंने लिखा है—"नानकदेव ने सर्ववादि सम्मत सत्य धर्म को ही अपने गौरव कार्य का एक मात्र अस्त्र स्वरूप ग्रहण किया था। उनके ग्रन्थ विवेक और आत्मोत्सर्ग विषयक उपदेशों से भरे हैं।' उन्होंने कभी अपने धर्म के प्रचार करने में अलौकिक कार्य की सहायता नहीं ली और न यह कहा कि अलौकिक कार्यकलाप से ही उनके फैलाए धर्म की सत्यता बढ़ेगी।'

कर्नल मैलकम साहब ने Sketch[3] में गुरु नानकजी के सम्बन्ध में लिखा है—"वे कहते थे—

१ डा० गोकुलचन्द नारंग द्वारा लिखित सिखों का परिवर्तन नामक पुस्तक।

२. दूसरा अध्याय सिखों का परिवर्तन।

३ संक्य पृष्ठ २०, २१, १६५।

"एक ईश्वर के वाक्य के सिवा दूसरे किसी अस्त्र का प्रयोग (धर्म प्रचार में) मत करो धर्मनीति की पवित्रता के सिवा निष्ठावान धर्म गुरु जैसा कोई उपाय या शास्त्र नहीं है।" 'दबिस्तान' के प्रसिद्ध मुसलमान लेखक मोसन फानी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है—"वे आदम जाति को रास्ता दिखाने वालों में से थे उन्होंने कभी नशा नहीं किया और न ऐसी शिक्षा दी।" कनिंघम ने एक दूसरे स्थान पर गुरु नानक जी के महान कार्यों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है "उन्होंने दीर्घकाल से चले आये एव पूंजीकृत कुसंस्कार और कुरीतियों से मुक्त करके लोगों को अपना शिष्य बनाया, उन्होंने शिष्यों को स्वतत्रता से सोचने वाला और साहसी आदमी बनाया।"

इसी तरह से अनेकों देशी विदेशी विद्वानों ने गुरु नानकदेव जी के धर्म के प्रति अपनी श्रद्धाजलिया अर्पित की हैं। सबने उन्हें मुक्त कठ से भारत का उद्धारक और महान पुरुष माना है।

वही गुरु नानकदेव जी जिन्होंने मृत हिन्दू समाज को जीवन प्रदान किया था लगभग ७० वर्ष की अवस्था में संवत् १५९६ के क्वार महीने की १० वीं को इहि संसार में अपनी जीवन लीला समाप्त कर गये।

उनके परिवार में उस समय चाचा लालू और उनकी धर्मपत्नी और दो पुत्र थे। परिवार के तथा रिश्तेदारियों के सभी लोग यह चाहते थे कि वे अपनी गद्दी का अधिकारी अपने पुत्रों में से ही बनावें किन्तु उन्होंने इस बात को अपनी अन्तरात्मा की आवाज के विरुद्ध समझा और अपने एक शिष्य लहना को उनके खयाल के अनुसार अपने सचालित मिशन को जारी रखने के लिए अपना उत्तराधिकारी बनाया।

गुरु नानकदेव जी की रचनाएं

गुरु नानकदेव जी अपने उपदेशों को बहुधा पद्य भाषा में लोगों तक पहुँचाते थे। जो शब्द व वाणियों के नाम से अभिहित होते हैं। ऐसी सब रचनायें 'आदि गुरु ग्रन्थ साहब' में संग्रहीत हैं। ग्रन्थ साहब के सम्बन्ध में विस्तार से तो किसी अगले अध्याय में चर्चा करेंगे। क्योंकि उसमें छः गुरुओं की वाणियाँ हैं यहाँ केवल गुरु नानकदेव जी की रचनाओं का ही वर्णन करना है।

जहाँ तक हम समझते हैं गुरुजी ने जो कुछ रचा था वह भी आदि ग्रन्थ में सब का सब मौजूद है।

ग्रन्थ साहब में ३१ राग रागिनियाँ हैं और इनके सिवा दोहे श्लोक, और चौबेले आदि अलग हैं। उनमें महला १ के अन्तर्गत जो कुछ है वह श्री गुरु नानकदेव जी की रचना है। दूसरे महलों में दूसरे गुरुओं की रचना हैं।

गुरु जी की कई रचनाओं के लिये कई अंग्रेज लेखकों तक ने पढ़ने के लिए जोर दिया है कनिंघम साहब ने 'आशाराग' का अंतिम भाग, सूही और रामकली अंश, श्रीराग माझ एव माझवार के पढ़ने के लिये काफी जोर दिया है। हमारी समझ में तो संस्कृत में सामवेद का जैसे प्रत्येक स्मा सस्वर पढ़जाने से अमृत वर्षा करता है उसी प्रकार 'लौकिक भाषा में आदि ग्रन्थ के प्रत्येक राग और रागिनी अपने-अपने समय पर सस्वर पढ़े जाने पर आत्मा को आनंद से विभोर करने वाले हैं। साखियों में लिखा है कि जिस समय मरदाना रबाव पर रागिनी छेड़ता था जगल के पशु चरना छोड़ देते थे। वास्तव में आदि ग्रन्थ की भाषा बहुत ही मीठी और प्रेम भरी है। और कहीं-कहीं तो उसमें इतना

विरह भरा पड़ा है कि आनन्द से आंसुओं की वर्षा होने लगती है। गुरुदेव नानक जी अपने प्रियतम से मिलने को कितने छटपटा उठते थे। उसके यहाँ कुछ नमूने देते हैं।

राग धनाश्री—

गगन मैं थालु रविचन्दु दीपक वनेतारिका मडल जनक मोती।
धूप मलियानलो पवरण चवरो सलग वनराइ फूलंत जोती ॥१॥
कैसी आरती होई। भवन खडना तेरी आरती ॥ अनहता सवद वाजत भेरी।
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरतिनना एक तोही।
सहस पद विमल नन एक पद गध विनु सहस तव गध इव चलत मोही ॥
सभ महि जोति जोति है सोई। तिसदै चाणन सभमहि चानरण होइ।
गुर साखी जोति परगटु होई। जोति सुभावैं सुआरती होई ॥३॥
हरि चरण कमल मकरद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही प्यासा।
कृपाजल देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरे नाइवासा ॥४॥

सिरीराग—

तनु जलि वलि माटी भया, मन माया मोहिमनूरु।
अवगुण फिरि लागू भए कुरि वजावै तूरु ॥
विनु सवदै भरमाइए दुविधा होवे पूरु।
मनरे सवदि तरहु चितलाइ। जिन गुरुमुखि नामुन
वूझिआ मरि जनमैं आवैं जाहि ॥ रहाउ
तनु सूचासो आखिये जिसु महि साचानाउ।
भैंल चिराती देहुरी जिह्वा सचु सुआउ ॥
सची नदरि निहालीये वहुडि पावै ताउ।
साचे ते पवना भया पवनैं ते जल होइ।
जलते त्रिभवणु साजिआ घटि घटि जोति समोइ।
निरमलु मैला नाथिए सवदिरते पति होइ।
इहि मनु साचि सतोखिया नदरि करै तिसुमाहि
पच भूत सचि मंरते जोति सची मन माहि।
नानक अवगुण वीसरे गुरि राखें पति ताहि।

राग गुजरी—

हरि की तुम सेवा करहु दूजी सेवा करहु न कोई जी।
हरि मेरी प्रीति रीति है हरि मेरी हरि मेरी कथा कहानी जी।
गुर परसादि मेरा मन भीजै एहा सेव बनी जीउ। रहाउ
हरि मेरा सिम्रिति हरि मेरा सासतर हरि मेरा बधु हरि मेरा भाई
हरि की मैं भूख लागै हरिनामु मेरा मनु त्रिपतै हरि मेरा साकु अति होइ सखाई।
हरि विनु होर रासि कूडी है चल दिया नालि न जाई।
हरि मेरा धनु मेरे साथ चालै जहा हउ जाउ तह जाई ॥
सो झूठा जो झूठे लागैं झूठे करम कमाई।
कहै नानकुहरि का भाणा होआ कहणा कछू न जाई।

राग सोरठा—

हउ पापी पतितु परम तू निरमलु निरकारी।

अम्रितु चाखि परम रसि राते ठाकुर सरणि तुमारी ।
करता तू मै माणु निभाणे । माणु महतु नामु धनु—
पलै साचे सबदि समाणे । रहाउ
तू पूरा हम ऊरे ओछे तू गहिरा हम हउरे ।
तुझही मन राते अहिनिसि परभाते हरिरसना जपि मनरे ।
तुम साचे हम तुमही राचे सबदि भेद पुनि साचे ।
अहिनिस नाम रते से सूचे मरि जनमे से काचे ।
अवरु न दीसै किसु साला ही तिसहि सरीकु न कोई ।
प्रणवति नानकु दासनिदासा गुरमति जान्या सोई ।

राग तिलंग—

जिन कीआ तिनि देखा कीआ कही रे भाई ।
आपे जाणै करै आपि जिनि वाडी है लाई ।
राइसा प्यारे का राइसा जितु सदा सुख होई । रहाउ
जिनि रंगि कतु न राविआ सा पछोरे ताणी ।
हाथु पछोडै सिरु धुनै जब रैणि विहाणी ।
पछोता वाना मिलै जब चूकैगी सारी ।
ता फिरि पिया रावीये जब आवेगी वारी ।
कतु लीया सुहागणी मै ते वधवी एह ।
से गुण मुझै न आव नीकै जी दोसु धरेह ॥
जिनी सखी सहुराविया तिनि पूछउगी जाए ।
पाइ लगउ विनती करउ लेउगी पथ वताए ॥
हुकमु पछाणे नानका वहु चन्दनु लावै ।
गुण कामणी कामणि करै तो पिआरे कउ पावै ॥

राग सूही—

अंतरि वसै न बाहरि जाइ । अम्रितु छोडि कहा बिसु खाइ ॥
ऐसा ज्ञान जपहु मन मेरे । होवहु चाकर साचे केरे ॥ रहाउ
गिआनु धिआनु सभ कोई रवै । बाधिन बाधिआ सभु जगु भवै ।
सेवा करै सु चाकर होइ । जलि थलि महि अल रवि रहिआसोइ ।
हम नहीं चगे बुरा नहीं कोइ । प्रणवति नानकु तारै सोइ ।

राग रामकली—

सरब जोति तेरि पसरि रही । जह जह देखा तह नर हरी ॥
जीवन तल वनि वारि सुआभी ॥ ॥ रहाउ ॥
जह भीतर घट भीतर बसिआ बाहिर काहे नाहीं ।
तिन की सार करै नितु साहिबु सदा चित मन साई ॥
आपे नेडे आपे दूरि आपे सरब रहया भरपूरि ।
सत गुरु मिलै अधेरा जाइ । जह देखा तह रहा समाइ ॥
अंतरि सहसा बाहरि माया नैणी लागि सिआणी ।
प्रणवति नानक दासनि दासा परतापहिगा प्राणी ॥

राग गौरी—

जै घरि कीरति आखिये करते का होइ विचारो ।
तित घरि गावहु सोहिला सिवरहु सिरजन हारो ?
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ।
हउ वारी जितु सोहिले सदा सुख होइ ॥ रहाउ ॥
नितनित जीअडे समाली अनि देखेगा देवण हारु ।
तेरे दाने कीमति न पवै तिसु दाते कवणु सुमारु ॥
सवति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेल ।
देहु सजन असीसडीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ॥
घरि घरि एहो पाहुँचा सदडे नित पवनि ।
सदन हमारा सिमरीए नानक से दिह आवनि ।

राग आसा—

छिअ घर छिअ गुरु छिअ उपदेस गुरु-गुरु एको वेश अनेक ।
बाबा जे कीरति होइ । सो घरु राखि वडाई तोइ ॥ रहाउ ॥
विसुए चसिआ घडीआ पहरा थिती वारी माहु होआ ।
सूरज एको रुति अनेक । नानक करते के केते वेस ॥

राग बिलावलु—

गुर वचनी मनु सहज धिआने । हरि के रग रता मनु मानें ॥
मन मुख भरम भुलेवउ राने । हरि विन किउ रहिअै गुर सवदि पछानै ।
विन दरसन कैसे जीवउ मेरी माई। हरि बिनु जियरा रहि न सकै खिनु सतिगुरि बूझ बुझाई ॥ रहाउ ॥
मेरा प्रभु विसरै हउ मरउ दुखाली । सासि गिरा सिज पउ अपने हरि भाली ।
सद वैरागिन हरि नामु निहाली । अव जानै गुर मुखि हरनाली ॥
अकथ कथा कहीअै गुर भाइ । प्रभु अगम अगोचर देइ दिखाइ ॥
विनु गुर करणी किआ कार कमाइ । हउ मै वाटि चले गुर सवदि समाइ ।
मन मुखि विछुडै खोटी रासि । गुर मुखि नाम मिलै सावास ।
हरि किरपा धारी दासनि दासि । जन नानक हरिनाम धनु रासि ॥

राग सारंग—

हरि विनु किउ जीवा मेरी माई ।
जै जगदीस तेरा जसु जाचउ मैं हरि विनु रहनव जाई ॥ रहाउ ॥
हरि की पिआस पिआसी कामिनि देखउ रैनि सवाई ।
श्रीधर नाथ मेरा मनु लीना प्रभु जानै पीर पराई ॥
गणत सरीरि पीर हैं हरि बिनु गुर सवदी हरि पाई ।
होउ दइआल किरपा करि हरि जीउ हरि सिउ रहा समाई ॥
अै सी रव तर वहु मन मेरे हरि चरणी चित लाई ॥
विसम भये गुण गाइ मनोहर निरभउ सहजि समाई ॥
हिरदै नामु सदा धुनि निहचल घटै न कीमत पाई ।
बिनू नावै सभु कोई निरधनु सति गुरि बूझ बुझाई ।
प्रीतम प्रान भये सुनि सजनी दूत मुए बिखु खाई ॥

जब कि उपजी तब की तंमी रगत भई मन भाई ।
सहज समाधि सदा लिव हरि सिउ जीवा हरि गुन गाई
गुर कै सबदि रता बैरागी निज घरि ताडी लाई ।।
सुध रस नामु महा रसु मीठा निज घरि ततु गुसाई ।।
तह ही मनुजह ही तैं राखिया ऐसी गुरमति पाई ।
सनक सनादि ब्रह्मादि इन्द्रादिक भगति रते बनि आई ।।
नानक हरि बिनु घरी न जीवा हरि का नामु वडाई ।।

राग मलार—

साची सुरति नामि नहीं त्रिपतै हउ मै करत गवाइआ ।
पर धन पर नारी रतु निंदा बिखु खाई दुखु पाइआ ।।
सबदु चीन मै कपटु न छूटै मन मुखि माइआ माइआ ।।
अजगरि भार लदे अति भारी मरि जन्मे जनमु गवाइआ ।
मनि भावै सबदु सुहाइआ ।। भ्रमि भ्रमि जोनि भेख बहु—
कीने गुरि राखे सचु पाइआ ।। रहाउ ।।
तीरथि तेज निवाग्नि नाते हरि का नामुन भाइआ ।
रतन पदारथु परिहरि तिआग आज तको तत ही आइआ ।।
बिसटा कीट भये उतहीते उतही माहि समाइआ ।।
अधिक सुआद रोग अधिकाई बिनु गुर सहज न पाइआ ।।
सेवा सुरति रहिस गुणगावा गुरि मुख ज्ञानु वीचारा ।।
खोजी उपजै वादी बिनसै हउ बलि बलि गुर करतारा ।।
हम नीच हुते हीण मति झूठे तूं सबदि सवारण हारा ।।
आतम चीनि तहाँ तू तारण सचु तारे तारणहारा ।।
बैसि सुथान कहाँ गुण तेरे क्या क्या कथउ अपारा ।।
अलखु न लखिजै अगमु अजोनी तू नाथां नाथण हारा ।
किसु पहि देखि कहउ तू कैसा सभि जाचक तू दाताए ।।
भगति हीण नानकु दरि देखहु इकु नामु मिलै उरिधारा ।।"

स्थानाभाव से इतने ही राग देकर इस प्रसंग को हम समाप्त करते हैं। जिन्हें अधिक आनन्द लेना हो वे श्री गुरु ग्रन्थ का अनुशीलन करें और भक्ति रस के छलछलाते सरोवर में गोते लगाकर जीवन को सफल बनावें।

चौथा अध्याय

गुरु अंगददेव जी की जीवन कथा

गुरु अगददेव जी का जन्म जिला फीरोजपुर में इलाका मुक्तसर के मतेकीसराय नामक गांव मे फेरूमल जी तिहुन गोती खत्री के घर संवत १५६१ विक्रमी की वैसाख सुदी १ को हुआ था। आपकी माता का नाम सुभराई देवी था जो कि निहाल कौर नाम से भी प्रसिद्ध हुई। उस समय माता पिता ने आपका नाम लहणा रक्खा था। इस नाम से जहाँ तक हम समझते हैं आप अपने माँ, बाप की सम्पूर्ण आकांक्षाओं के बाद पैदा हुए अथवा एकलौते पुत्र थे, क्योंकि चालू भाषा में लहणा के अर्थ भाग्य का या लाभप्रद होते हैं। अंगद नाम तो आपको महान गुरु नानक देव जी द्वारा दिया गया था जिसका कि विस्तारपूर्वक वर्णन अगले पृष्ठों में किया गया है।

आरम्भिक परिचय

आपका स्वभाव वचपन से ही उदार, दयालु और धैर्य्यवान था। सब किसी के दुःख सुख मे शामिल होना, सहानुभूति दिखाना और भरसक सेवा करना यह गुण आपको परमात्मा की ओर से धरोहर रूप में मिले थे। १५ वर्ष की अवस्था मे संवत १५७६ वि० मे खडूर के देवीचन्द्र खत्री की पुत्री बीबी खीवी से, जो कि बड़े अच्छे स्वभाव की थीं आपका विवाह हुआ। इनसे दो पुत्र और दो पुत्रियों ने जन्म लिया। बड़े पुत्र दासू जी सवत १५८१ विक्रमी की भादवा ६ को पैदा हुए थे और १५८६ वि० के पूष मे बीबी अमर कौर तथा जेठ की २६ वीं संवत १५६१ मे बीबी अनोखी पैदा हुई थीं। दातू अपने बहिन भाइयों में सबसे छोटे थे जो संवत १५६४ के वैसाख में पैदा हुए थे।

गुरु अंगद देव जी का जन्म मत्ते की सराय का अवश्य था किन्तु किसी कारण से वहां के चौधरी तख्तमल ने उनके पिता को बन्दीघर में डाल दिया। तख्तमल बडी कठोर तबियत का आदमी था और किसी की भी नहीं सुनता था, इसलिये लहना जी खंडूर पहुँचे ताकि उसकी लड़की के जरिये पिता की रिहाई के लिये यत्न करें। खंडूर पहुँच कर जब आप तख्तमल की लडकी बीबी सभराई से मिले तो वह उस समय गुरु नानक देवजी के दर्शन और उन्हे भोजन कराने के लिये गांव से बाहर उनके ठहरने के स्थान पर जाने की तैयारी मे थी। आप भी उसके साथ ही हो लिये। सभराई जी उन्हें कुछ पीछे छोडकर गुरुजी के पास पहुँची। कहते हैं गुरुनानक देव जी ने बीबी सभराई से पूछा जिसे साथ लाई हो उसे पीछे क्यों छोड़ आई। इस पर जब लहना ने सेवा में उपस्थित होकर वन्दना की तो गुरुजी ने कुशल

क्षेम पूछने के बाद उसका नाम पूछा। जब उसने अपना नाम लहणा बतलाया तो आपने मुस्कराते हुये कहा "तुम्हारा लहणा(पावना) तो हमारे पास है। हमें तुम्हारा देना है। तदनन्तर लहनाजी बीबी समराई को साथ लेकर मते की सराय में गये और अपने पिता को जेल से छुड़ाया।

कुछ समय बाद लहणा जी अपना जन्म स्थान छोड़ कर खडूरिया के खडूर ही आ बसे।

गुरु नानकदेव जी से भेंट

यहां पर जोधा नामक एक जमींदार था वह गुरु नानकदेव जी का शिष्य भी हो चुका था उसका नित्यनेम था कि प्रात तारों की छाया में उठकर स्नान करना और आसा की वार को गा-गाकर ईश्वर वन्दना करना। उसके इस काम में कुछ दूसरे लोग भी शामिल होते थे। लहणा जी का भी उससे प्रेम हो गया। वह उन्हें गुरु वाणियां सुनाया करता था। वैसे तो पहले ही वे बीबी समराई जी के साथ गुरु जी के दर्शन कर चुके थे अतः अब और भी उनकी उत्कंठा गुरु जी से पुनः मिलने की हुई। वैशनो देवी के वार्षिक मेले को दल बल सहित वे गए क्योंकि वे अब तक वैशनो देवी के पुजारी थे। अपने साथियों समेत कर्तारपुर पहुँचे और गुरु नानक देव की सेवा में हाजिर हुये तो लहणाजी को इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह महापुरुष तो वे ही हैं जो अभी थोड़ी दूर तक हमारे साथ पैदल चलकर आये थे। लहणा जी ने हाथ जोड़कर इस बात के लिये गुरु नानक देव जी से क्षमा मांगी कि महाराज आप मेरे साथ पैदल चले और मैं घोड़ी पर सवार रहा। हालांकि यह अपराध अनजान में हुआ था फिर भी लहणा जी ने क्षमा चाही यह बात उनके बड़प्पन और शिष्टता की द्योतक है। गुरु नानक देव ने बड़े प्यार से कहा लहणा तुम्हारे अपराध तो परमात्मा की ओर से क्षमा हो चुके हैं। अब तुम्हें परमात्मा की ही शरण में आ जाना चाहिए यह बीच के देवी देवते तो व्यर्थ की चीज हैं। यह उपदेश लहणा जी के हृदय को भा गया।

सिख साहित्य के पढने से पता चलता है कि लहणा जी ने जिस प्रकार गुरु जी की सेवायें की थीं वह सर्वसाधारण का काम नहीं। उस समयके गुरुजी के शिष्य बाला और बुड्ढा आदि भी लहणाजी की सेवाओं के मुकाबिले में बहुत पीछे थे। बड़े से बड़ा कष्ट सहकर और प्राणों की भी बाजी लगाकर वे गुरु जी की सेवा में तत्पर रहते थे।

सेवाएं

(१) एक समय बड़े जोर की वर्षा हुई। धर्मशाला के उस छप्पर वाले हिस्से का एक स्तंभ ढह गया जहां गुरु नानक देव जी सोते थे। लहना तुरन्त वहां गये और शहतीर को थामे रात भर खड़े रहे। किन्तु सोते से गुरु जी को जगाना उचित नहीं समझा।

(२) एक बार ठंडी रात्रि में गुरु जी ने पहले पुत्रों से फिर अन्य शिष्यों से कहा भाई मेरे कपडे धोकर लाओ मैं वस्त्र बदलूंगा। देखो दिन निकल आया है। सभी ने बहाने कर दिये किन्तु लहणा जी उसी वक्त गये और कपड़े धो लाए। किन्तु उन्होंने यहांतक भी कहा महाराज सूरज तो जहां तक आपने चढाया है वहीं तक चढा हुआ है। हालांकि जिस समय वह कपडे धोकर लाए थे आधी रात थी।[1]

(३) एक बार गुरु जी ने एक कीच के गड्ढे में कटोरा फेंक दिया। गुरु जी ने सबसे कहा

१. सिख साहित्य में लिखा मिलता है कि कपडे धोने के समय सूरज निकल आया या फिर रात हो गई थी।

किन्तु कोई भी उस गन्दी और खराब कीच में घुसने को राजी नहीं हुआ। लहणा जी ने हुकम पाते ही कटोरा निकाल कर और साफ करके गुरु जी के हवाले किया और खुद कपड़े साफ करने को चले गये।

(४) एक बार गुरु नानक देव जी ने परीक्षा के लिये जंगल में जाकर अपना विक्षिप्तों का जैसा भेष बनाया और धर्मशालापर आकर सिखोंमे सोटे लगाने लगे। बहुतसे इधर-उधर भाग गये। फिर गुरु जी जंगल की ओर चल दिये। कुछ शिष्य उनके साथ जंगलमे गये वहा एक जगह उन सबने देखा आग जल रही है। गुरु जी ने उनकी ओर देखकर कहा इस आग पर से होकर गुजरो सब चुप हो गये लहणा जी चल पड़े किन्तु देखा वह आग नहीं किन्तु जंगली बूटी है, जो रात मे प्रकाश दे रही है।

इसी तरह की और भी अनेक कथायें हैं जिनमें मालूम होता है कि कठिन से कठिन आज्ञा को पालन करने के लिये लहणा जी तैयार रहते थे। उन्होंने कभी भी किसी काम के करने में हिचकिचाहट और आलस्य नहीं दिखाया। वास्तव मे गुरु जी के प्रति लहणा जी के हृदय मे अगाध भक्ति थी। भक्ति की इसी सचाई और सेवा भाव की गहराई की परीक्षा के लिये ही गुरु जी ने उन्हे तथा अपने अन्य सिखों को परखा। उनमें लहणा अव्वल नम्बर रहे।

इन कठिन से कठिन सेवा सम्बन्धी और प्रेम एवं श्रद्धापूर्ण परीक्षाओं के बाद ही गुरु जी ने घोषणा कर दी कि लहणा मेरा "अंग" है। उसी दिन से लहणा जी का नाम अंगद जी हो गया।

अब चूंकि गुरु नानक देव जी की की आयु ७० साल की हो चुकी थी। अत उन्होंने एक दिन संगत के सामने यह एलान कर दिया कि आज मैं अंगद जी को गुरुआई देना चाहता हूँ। मुझे पूर्ण यकीन हो गया कि एक यही हैं जो मेरे बाद मेरे चलाये हुये धर्म-मिशन को जारी रख सकेंगे। इतना कह कर उन्होंने अंगद जी के सामने एक नारियल और पांच पैसे रखकर मत्था नवाया और सभी को अपने स्थान पर अंगदजी को गुरु मान लेने की आज्ञा दी। यह शुभ दिन संवत १५९६ वि० के क्वार की ५ का था।

गुरुआई मिलना

इसके कुछ ही दिन बाद गुरु नानकदेव जी के देहावसान हो जाने और करतारपुर में गुरु पुत्रों द्वारा विरोध होने के कारण अंगददेव जी खडूर चले आये गुरु नानकदेव जी ने भी उन्हे अपने बाद खडूर चले जाने का आदेश दे दिया था। खडूर के लोग इस खबर को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और गुरु अंगददेव जी के लिये सब प्रकार का प्रबन्ध करने लगे. किन्तु गुरु अंगददेव जी ने कोई अधिक सुविधा नहीं चाही। वे कठिन बिछाकर एक कोठरी मे तप करते रहे और इसी तरह बराबर आठ महीने तक ईश्वराधना और गुरु जी का स्मरण किया।

खडूर लौटना

गुरु नानकदेव जी के परम धाम के बाद

कुछ समय से इधर लक्ष्मीचन्द जी ने कोशिश की कि सिख उन्हे ही अपना गुरु मानें किन्तु उनकी कोशिश सफल नहीं हुई। भाई बुड्ढा, बाला, मारणक आदि सभी प्रसिद्ध सिख गुरु अंगददेव जी के पक्ष का समर्थन करने लगे और उन्होंने कह दिया कि गुरु नानकदेव जी ने जिसको अपना उत्तराधिकारी बनाया है वही सिखो का गुरु हो सकता है।

गुरु अंगददेव जी मे प्राय. सभी बाते गुरु नानकदेव ही जैसी थीं। उन्हीं जैसी हरिभक्ति उन्हीं जैसा त्याग और तप। उन्हीं जैसा वैराग्य। उन्होंने अपने घर वालों से स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था कि अपने खाने पीने के लिये परिश्रम करो। चढावे में जो आता है वह धर्म के लिये है। उसको हम अपने

लिए खर्च नहीं कर सकते। उनके दोनों पुत्र दुकान करके अपने घर का काम चलाते थे।

उपदेश और सत्संग का काम भी पहले ही की भांति अब चलने लगा था। गुरु अंगद देव जी ने अपने दिन भर के कार्मों का वैसा ही सिलसिला बना लिया जैसा गुरु नानकदेव जी का था।

लंगर का काम इनके यहाँ और भी बढ़ गया था। खडूर ग्राम के जाट सिक्खों में इतनी श्रद्धा थी कि प्रत्येक घर से आठवें दिन इनके लंगर के लिए दूध आ जाता था। गुरुजी का उपदेश सुनने के लिये दूर दूर से लोग आते थे।

बादशाह हुमायूं की भेंट

शेरशाह सूरी से परास्त होकर बादशाह हुमायूं जब पंजाब में आया तो उसने गुरु अंगद देवजी की कीर्ति सुनी और वह दर्शनों के लिये खडूर पहुँचा। उस समय गुरुजी समाधि पर थे। हुमायूं इस बात से बड़ा नाराज हुआ कि यह संत मेरे सम्मान के लिये उठा तक नहीं। अतः तलवार निकाल कर उसने गुरु जी पर वार करना चाहा, दैवात उसी समय गुरुजी की समाधि समाप्त होने का भी समय आ गया। उन्होंने बादशाह को तलवार ताने देखकर हसते हुए कहा, बादशाह यह तलवार शेरशाह के आगे भोंथरी हो गई थी क्या? संतों पर वार करना कहाँ की बहादुरी है। इस बात को सुनकर बादशाह हुमायूं बड़ा लज्जित हुआ और उसने कहा, संत जी मैं आप से अपने लिए शुभ आशीर्वाद चाहता हूँ।

कुछ चमत्कारिक प्रसंग

यहाँ कुछ ऐसी घटनाये दे देना भी उचित होगा जिन्हे चमत्कार के नाम से याद किया जाता है। वैसे "सूर्य प्रकाश" में इस सम्बन्ध का काफी वर्णन है।

गुरुजी के लंगर में माना नाम का एक शिष्य रहता था। कड़ाह प्रसाद खा खाकर वह खूब तगड़ा हो गया। काम धंधे की तरफ से भी लापरवाह रहने लगा। गुरुजी ने उसे समझाया कि सेवा करने से कभी भी मुँह नहीं छिपाना चाहिए। उसने कहा हमें तो स्वर्ग जाने वाली बातें बताओ। गुरु जी ने सहज स्वभाव से कह दिया कि स्वर्ग चाहता है तो आग में जल मर। उसने ऐसा ही करने की तैयारी कर दी। जंगल में जाकर लकड़ियों के ढेर में आग लगा दी और उसमें कूदने को तैयार हुआ। इतने में एक चोर ने आ कर उससे ऐसा करने का कारण पूछा। सारी बातें सुनकर चोर ने सोचा मैंने इतने पाप किए हैं मुझे स्वर्ग मिलना मुश्किल है फिर आज इस तरह ही क्यों न प्राप्त करलूं। उसने माणा को चोरी के माल का जवाहरात से भरा डिब्बा देकर उसे तो वापिस कर दिया और खुद उसमें जलने को तैयार हो गया। इतने में एक राजा आ गया। उसने चोर से सब हाल सुना तो वह बड़ा खुश हुआ और उसे जलने से रोक लिया। कहा जाता है ये दोनों ही चोर और राजा गुरु जी के पास जाकर उनके शिष्य हो गये। उधर माणा बादशाही लश्कर द्वारा डिब्बा उसके पास मिलने के कारण—चोरी के अपराध में पकड़ लिया गया और एक लंबे अर्से तक सजा भुगतता रहा। सजा से छूट कर आया तो उसने गुरु जी के सामने हाजिर होकर अपनी भूल के लिये क्षमा मांगी।

जीवा नाम का गुरु जी का एक भक्त था। उसके यहां से गुरु जी के लिये खिचड़ी आया करती थी। कभी जीवा और कभी उनकी पुत्री लाते थे। पुत्री का नाम जीवाई था। इस तरह से लगभग १० साल गुजर गये। एक दिन आँधी चलने लग गई। जीवाई ने कहा कि अगर आँधी रुक

जाय तो मैं गुरु जी के पास खिचड़ी पहुँचा आऊँ। आँधी रुक गई और वह खिचड़ी लेकर गुरु जी के पास पहुँची किन्तु, गुरु जी ने खिचड़ी खाने से इन्कार कर दिया। इस पर जीवाई रोने लग पड़ी। तब गुरु जी ने कहा कि तेने केवल मेरी वजह से आँधी को क्यों बन्द कराया। इतनी देर में आँधी से जो लाभ संसार को व जहाजवालों को होता उससे वे वंचित रहे न। इस बात को सुनकर उपस्थित सिखों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और जीवाई ने भी अपनी भूल स्वीकार करके भविष्य में ऐसा न करने का वायदा किया।

खंडूर में एक शिवनाथ नाम का जोगी रहता था। वह अपने लिये बड़ा चमत्कारी बताया करता था और इन्हीं चमत्कारों की माया से वह खूब धन लूटता था। एक वर्ष उस इलाके में अकाल पड़ गया। भादों तक पानी नहीं बरसा। लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। शिवनाथ ने मौका समझ कर लोगों से कहा अगर यहां से अंगद को हटा दिया जाय तो वर्षा हो सकती है। वह गुरु जी से भारी ईर्ष्या रखता था। लोग जब हिचकिचाने लगे तो उसने कहा अगर तुम अंगद को करामाती और सिद्ध पुरुष समझते हो तो उसी से कहो। वह करामात रखता होगा तो मेह बरसा देगा। कुछ लोगों ने यही बात गुरु जी के सामने रक्खी। बुड्ढा जी तो इस बात को सुनकर नाराज हुए किन्तु गुरु जी ने कहा हमारे हट जाने में मेह बरसता हो, तो हमें यहा से हटने में क्या हर्ज है। हम तो परोपकार के लिए ही तो इस दुनिया में आये हैं। कहा जाता है गुरु जी अपनी संगति के साथ 'खान रजादा' नामक गाव में अपने शिष्य भाई प्रेमा के यहां जा विराजे। गुरुजी चले गये। रुपये शिवनाथ ने उनसे ऐंठ लिये वह अलग। पर पानी न बरसा दूसरे दिन लोग अमरदास जी के पास पहुँचे। उन्होंने हँसते हँसते लोगों से कहा मेह तो बरस सकता है किन्तु इस तरह नहीं। जिस तरह कि तपा ने कहा है। मेह बरस जायगा बल्कि इस तरह कि जिस-जिस खेत पर तपा को ले जाओगे वहीं-वहीं वर्षा हो जायगी। अमरदास जी ने यह बात यों ही सहज स्वभाव से कह दी थी किन्तु जाट लोग शिवनाथ को खेतों में ले जाने के लिए चिपट गये। कभी कोई और कभी कोई उसे अपने खेतो में ले जाता किसी का खेत बाकी न रह जाय इसलिये उसकी खिंचातानी भी शुरू हो गई। इसी खेंचातानी में शिवनाथ मर गया। दैव माया कि मेह भी खूब बरसा। इसके बाद जाट लोग गुरु जी के पास पहुँचे और उन्हें वहां लिवा लाये। वहाँ आपने मलका नाम के चौधरी को उपदेश करके शराब पीने की आदत से भी मुक्त किया।

एक समय गुरु जी अमरदास जी से मिलने जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि बहुत से मनुष्य इकट्ठे हो रहे हैं और बकरे भेड़ों को पकड़े हुए हैं। पूछने पर सींहा नाम के खत्री ने बताया कि मेरे लड़के का मुण्डन सस्कार होने वाला है इस समय जो मेहमान इकट्ठे होंगे उनके वास्ते यह बकरे खरीदे हैं। गुरु जी ने कहा, इस हिंसा का ऐसा बदला तुम्हें भी चुकाना पडेगा। इस बात को सुनकर सींहा घबरा गया। बोला तब हमें क्या करना चाहिए जिससे हम इस हत्या से भी बच जाये और बिरादरी के लोगों की नाराजगी से भी बच जाये। गुरु जी ने कहा तुम्हें कडाह प्रसाद करना चाहिये। सींहा ने गुरु जी को भी रोक लिया और कडाह प्रसाद से आने वाले बिरादरी के लोगों का सत्कार किया। कहते हैं गुरु जी ने कहा था कि हमें इस केश मुण्डन की प्रथा को भी हटाना पडेगा। इस समय से सींहा पक्का सिक्ख हो गया और प्यारे सींहा के नाम से वह आज तक याद किया जाता है।

एक बार देव गिरि गुसाईं गुरु जी के पास जमात समेत आया। वहां रहकर उसने गुरु जी के लगर को देखा तो सोचने लगा यहां जिस प्रकार का बढ़िया प्रसाद बनता है। इसमें तो खर्च बहुत पड़ता होगा और गुरु जी के पास कोई स्थायी आमदनी है नहीं। इसलिये उसने गुरु जी से कहा महाराज मैं

रसायन बनाना जानता हूँ और रसायन विद्या के कारण तावे को सोना बनाया जा सकता है। उसने कुछ पैसों को सोना बना कर दिखाया भी और कहा आप मुझ से धातु मारने की इस विद्या को सीख ले। गुरु जी ने कहा, हमें माया का क्या करना है ! हम तो मन को मार रहे हैं। जिसके मर जाने पर सोना और मिट्टी सभी बराबर जान पडते है। इस मार्मिक उपदेश से देवगिरि पर बडा प्रभाव पडा और उसने कहा वास्तव मे जैसा कि लोग कहते है आप ऋषि और सत गुरु हो।

एक दिन गूजर नाम के एक लुहार ने गुरु जी की सेवा मे निवेदन किया, महाराज मेरे जैसे गृहस्थ के कल्याण का कोई मार्ग वताइये जिसे अपने पेट पालन के धधे से कभी भी सतगुरु की सेवा करने का और उपदेश ग्रहण करने का अवसर ही नहीं मिलता है। गुरु जी ने कहा प्यारे बन्धु, नित प्रति जपु जी का पाठ, अतिथियों का सत्कार, गरीबो के प्रति स हृदयता और कर्तव्यपालन के लिए तत्परता के भाव अपने हृदय मे रक्खा करो। परमात्मा अवश्य ही तुम्हारा कल्याण करेंगे।

इसी प्रकार एक समय मलूशाह नाम के शिष्य ने आकर विनती की। गुरु जी मुझे मुगलों की नौकरी मे रहते हुए, आपकी सेवा करने का सौभाग्य तो प्राप्त है नहीं, फिर किस तरह से अपने भविष्य को सुधारूं ? गुरु जी ने कहा, देखो किसी के साथ कटुता का व्यवहार मत करना. मीठी वाणी वोलना कभी किसी का दिल न दुखाना और वाहि गुरु का जाप, यही वाते ऐसी है जो तुम्हारे जीवन की गति को ठीक ओर ले जायेगी। मलूशाह वडा प्रसन्न हुआ और गुरु जी के चरणों मे अपना मत्था टेक कर विदा हुआ।

भाई केदारी देवी का वड़ा भगत था। एक बार उसने गुरु जी की सेवा मे हाजिर होकर कहा. महाराज मैं वडी भक्ति के साथ देवी की उपासना करता हूँ। फिर भी मेरा जीवन अशात है। काम क्रोध. मोह, लोभ भी चिपटे हुए हैं। गुरु जी ने कहा वन मे लगी हुई दावानल से छलाग मारने वाले हिरन ही अपने प्राण बचाते हैं और फिर वही नदी किनारे की हरियाली मे रह कर निर्भयता और शाति का जीवन विताते हैं। इसी प्रकार काम क्रोध, मोह आदि की भट्टी मे से वही निकल सकते हैं। जो साहस रखते हैं, इनसे मुक्त होने के वाद सत्सग रूपी सरोवर मे आकर वे ही अपना जीवन सुफल वनाते हैं। सत वचन महाराज कह कर केदारी ने भक्तिपूर्वक गुरु जी के चरणों पर अपना माथा टेका और सच्चा शिष्य वन गया।

नौरंगावाद का रहने वाला धींगा नाई गुरु जी की सेवा मे वडा अनुरक्त रहता था। वह उनके पैरों को दवाया करता था। एक समय उसके यजमान के घर शादी थी। रात को उसे वहा पहुँचना था, किन्तु सेवा मे से जाना उसने उचित नहीं समझा। दूसरे दिन जब वहा पहुँचा तो उसे यह जानकर ताज्जुव हुआ कि लोग उससे कहने लगे रात तो तुमने वडी लगन से काम किया धींगा ने सोचा यह तो सैन भगत के कार्य की तरह भगवान ही मेरी ड्यूटी बजा गये है। वस उसी दिन से उसने संसार मे विल्कुल वैराग्य ले लिया और रात दिन गुरु की सेवा मे रत रहने लगा।

पारे जुलका नाम का एक भगत गुरु जी की सेवा मे आया और कहने लगा, गुरु जी। प्राणायाम और ध्यान वरावर करता हूँ किन्तु फिर भी मन को पूर्ण शाति प्राप्त नहीं होती है। इसका क्या कारण है ? गुरु जी ने फर्माया शांति तो विना आत्मज्ञान प्राप्त किये नहीं मिल सकती अतः सतगुरु की सेवा में रह कर पहिले आत्मा को चीन्हों फिर शाति अवश्य ही मिल जायेगी। जुलका के हृदय मे गुरु जी का यह वचन घर कर गया।

एक बार भाई दीपा, नारायनदास और बूला ने पूछा, महाराज ! जीव, जीवन-मरण के फन्दे से किस प्रकार छूट सकता है ? गुरु देव ने उत्तर दिया भक्ति से। वैसे ज्ञान, वैराग्य, जोग और भक्ति ये सभी ईश्वर से मिलाने वाले और जीवन को मुक्त बनाने वाले साधन है किन्तु ज्ञान, वैराग्य और जोग को माया भरमा लेती है। बड़े-बड़े ज्ञानी, वेद और शास्त्रों की चर्चा करने वाले भी कभी-कभी माया के चक्कर मे बुरी तरह से फंसते देखे गये हैं। समाधियों के लगाने वाले जोगी भी माया के आगे डिगते हुए पाये गये हैं। वैरागियों को राग-जाल मे फँसते देखा गया है किन्तु भक्ति डिगती हुई कभी नहीं देखी गई। भक्ति तो परमात्मा की पतिव्रता नारी सदृश है।

यात्रा

गुरु अंगददेव जी ने लम्बी यात्राये नहीं की थी। शायद वे पंजाब मे बाहर कभी नहीं गये। गुरु नानकदेव जी जिस काम को इतना विस्तृत रूप दे गये थे उसे सभालना आसान न था, जिसके कारण गुरु अंगददेव जी लम्बी यात्रा नहीं कर सकते थे। गुरु नानकदेव जी के समय मे तो उन्होंने अपना सारा समय गुरुसेवा मे लगाया और उनके पीछे घोर तपस्या मे। इस तरह उनका यात्राओं के लिये निकलना दुसह कार्य ही था। हमे उनके मालवे की ओर जाने वाली यात्रा के कुछ समाचार मिलते हैं। मालवे के अनेकों गावों मे प्रचार करते हुए वे अपनी जन्म-भूमि मते-की-सराय मे भी पहुँचे थे।

इस यात्रा मे गुरुजी के साथ ५० शिष्य और चार ऊंट सामान लादने के थे। रास्ते मे सभी लोगों ने उनका आदर सत्कार किया और उपदेश सुने।

मते-की-सराय के पास जब पिंड (गाव) मे पहुचे तो वहा कई दिन तक लोगों ने आपको रक्खा और बड़ा आदर सत्कार किया किन्तु एक दिन चौधरी बक्ता जो इस समय ७२ गांव का कारवाहक (मालगुजार) था, मंझी पर गुरु जी के सिरहाने बैठ गया। इस पर शिष्य लोग नाराज होने लगे। गुरुजी ने शिष्यो को शात किया। उन्होंने कहा हमे किसी के प्रति कड़वे शब्द नहीं कहने हैं किन्तु बक्ता चौधरी ने कहा, क्या हो गया, जो आपके सिरहाने बैठ गया, यहा मेरी जाति में मेरे बराबर किस की इज्जत है। गुरुजी ने कहा ठीक है यहां तो जाति वाले आपकी इज्जत करते हैं किन्तु आगे (परमात्मा के यहा) तो कोई जाति पाति नहीं है वहां के लिए क्या सोचा है ? इस वचन को सुनकर चौधरी की आखे खुल गई और उसने श्रद्धापूर्वक गुरु जी के चरणों मे माथा टेक दिया।

यह यात्रा गुरुजी ने संवत् १६०४ विक्रमी मे आरम्भ की थी और शायद उसी वर्ष के चन्द महीनों में समाप्त की थी। भाई बुड्ढा इस यात्रा मे साथ था। मते की सराय के पास एक दूसरे स्थान पर जहां गुरुजी ठहरे थे, वहां दीवान हुकमचन्द ने एक मन्दिर बनवा दिया था जहां कि पास ही में आगे चलकर नागे की सराय नाम की बस्ती बस गई थी।

हम लोग जिसको स्वर्ग, वैकुण्ठ और परम धाम कहते हैं सिख लोग उसे सचखण्ड अथवा जोत मे समा जाना कहते है। गुरु अंगददेव जी ने जब यह जान लिया कि अब परमधाम पधारने का हमारा समय आ गया है तो उन्होंने अपने सभी प्यारे और मुख्य शिष्यों को

सचखण्ड प्रस्थान

यह खबर दे दी। दासू, दातू और बुड्ढा, बाला दोनों इस समय गुरु जी की सेवा में हाजिर हो गये। दूर दूर से अनेको संगत आ गई और जो भी जहा सुन लेता था वह इस अन्तिम

समय पर इनके दर्शन की लालसा से खण्डूर की ओर चल पड़ा । सबद कीर्तनों का आनन्द दायक समारोह होने लगा ।

और एक दिन दरबार लगाकर अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा यद्यपि मेरे शिष्यों मे कई आदमी बडे योग्य है। मेरे पुत्र भी नेक और आज्ञाकारी है किन्तु गुरुआई के योग्य मैं अमरदास ही को समझता हू। इस सम्बन्ध मे मैंने अपने गुरु जी से जो ग्रहण किया था। उसी के अनुसार मैं यह कहने को तैयार हू। अमरदास जी को अपना उत्तराधिकारी बनाकर न्याय और अपने सही कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ क्योंकि वही मेरे बाद इस कार्य को सभाल और चला सकते हैं। इतना कहकर गुरु अंगददेव जी उठे और पाच पैसे और नारियल आगे रखकर अमरदास जी के लिए माथा झुकाया। इसके बाद अपने पुत्रों और शिष्यों से भी माथा टिकाया । इस प्रकार अमरदासजी को गुरु अगददेव जी ने गुरुआई समर्पण कर दी अब से वे सिखो के गुरु हो गए।

निदान वह अन्तिम दिन आ गया और स० १६०६ चैत की चतुर्थी को गुरुजी शरीर को छोड़ कर सचखण्ड को पधार गये।

गुरु अगददेव जी के जीवन और कार्यों पर दृष्टिपात

गुरुनानकदेव जी ने श्री अङ्गददेव जी को गुरुआई देते समय कहा था कि यह मेरे ही "अङ्गदा" अर्थात् मेरे ही शरीर का अङ्ग है। मुझ मे और इनमे कोई अन्तर न समझना। इसमे कोई भी सन्देह नही कि गुरु अङ्गदजी स्वभाव प्रवृति, सरलता और दयालुता सब बातोंमे दूसरे नानकदेव ही सिद्ध हुए। यद्यपि उनके लगर मे कडाह प्रसाद भी बनता और इधर-उधर के आने जाने वाले तक उस प्रसाद को पाते थे किन्तु स्वयम् गुरुजी के पुत्रो को यह अधिकार न था वे उसे अपने पिता की चीज समझकर उपयोग करे। उन्होंने अपने परिवार वालों से स्पष्ट कह दिया था कि यह दान का धान तुम्हारे खाने और बरतने के लिये नहीं है। तुम अपने हाथ पैरों से कमाओ और उसे खाओ बरतो। स्वयम् गुरुजी के लिये कभी घर से और कभी भगतों के यहा से रोटी या खिचडी बन कर आती थी। खिचडी भी किस की, बाजरे और मूग, मौठ की दाल की।

व्यक्तित्व

आप भी अपने पूर्ववर्ती गुरुदेव की नाई तारों की छाया मे ही उठकर स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर उसी भाति उपदेश और सकीर्तन कराते तथा दरबार लगाते थे। तप करने के आपके भी ढंग बडे कठोर थे। खण्डूर मे लगातार आठ महीनों तक ककडों पर बैठकर आपने तप किया था। समाधि भी कई २ दिन के लिये लगा जाते थे।

निरअभिमान आप प्रथम श्रेणी के थे। करतारपुर मे आते ही घास खोदने, पशुओं को चराने और खेत बोने जोतने के काम मे लग गये। हालांकि बचपन में उन्होंने यह काम नहीं किये थे, आपके पिता दुकान और लेनदेन से काफी रुपया कमाने वाले शख्सों मे से थे। आपके घर पर किसी भी प्रकार का घाटा न था।

यह हम सुनते और पढते हैं कि गुरु नानकदेव जी से आपको गुरुआई मिली थी, किन्तु उस गुरुआई के साथ क्या मिला था। कोई जागीर? कोई जवाहरातों का खजाना? कोई वैभव? कुछ भी नहीं। यहाँ तक कि करतारपुर की वह धर्मशाला भी नहीं। सासारिक वस्तुओ मे तो उन्हे एक पाई का भी गुरुआई में नहीं मिला था। यह हम इसलिये कह रहे हैं कि लोग इस गुरुआई को कहीं आजकल के या

उस समय के मठाधीशों और महंतों की जैसी गुरुआई न समझलें। हाँ, मिली थी एक चीज किन्तु वह सब किसी को मिल भी नहीं सकती है वह चीज थी आत्मज्योति। गुरु अङ्गद जी को यही चीज गुरु-नानकदेव जी से मिली थी और यही चीज थी जो उन्हे दूसरी जगह से नहीं मिल सकती थी। यही गुरुआई थी, गुरु नानकदेव जी की सांसारिक चीजे शायद दूसरों ने ले ली हों। उनके खेत, धर्मशाला, पशु, कुछ पूंजी और वस्त्र चाहे दूसरो के हाथ लग गये हों किन्तु गुरुत्व जो था वह मिला था केवल गुरु-अङ्गददेव जी को ही। या यो कहिये उसे कोई दूसरा ले ही नहीं सका था। उसे अङ्गददेव जी ने प्राप्त किया था। और सच बात यह है कि गुरु नानकदेव जी मे पंचभूतों के सिवा जो कुछ और था वह अङ्गददेवजी ने पूर्णरूपेण पा लिया था। इसलिये वास्तविक नानकदेव अङ्गददेव मे समा गया था। इस प्रकार का गुरुत्व संसार मे कितने लोगों ने पाया है। इस रहस्य को जानते भी बहुत ही कम लोग होंगे कि इस प्रकार नानकदेव अगददेव मे समा गये थे और अङ्गद ही अब नानकदेव थे।

यह समीकरण संसार के इतिहास मे एकदम निराला और शायद ही कभी होने वाला समीकरण है। "आत्मा वै जायते पुत्र" का समीकरण तो बहुत समय से सुनते आये है किन्तु "आत्मा वै मर्थीयते शिष्य:" का उदाहरण गुरु अङ्गददेव ही थे।

अब हम उनकी पातशाही के दिनों मे हिन्दू समाज और भारत देश के हित के लिये होने वाले कार्यो का जिक्र करना चाहते हैं। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के जीवन के—चाहे वह साधारण हो चाहे महापुरुष—दो हिस्से होते हैं एक व्यक्तिगत, दूसरा सार्वजनिक। जिसके जीवन के दोनों पहलू उच्च होते हैं उसे संसार बहुत याद करता है। मध्यकालीन भारत मे और गुरुओं के समय मे भी ऐसे कई महापुरुष थे जिनका व्यक्तिगत जीवन और योग्यता बहुत ऊँची थी, किन्तु संसार के प्रति उदासीन रहने यानी लोकसेवा के झंझट से दूर रहने के कारण ही वे लोगों की स्मृति पर चढे हुए नहीं है। गुरु अङ्गददेव के समय ही मे और उनके ही प्रतिद्वन्दी महात्मा श्रीचन्द उस समय के गिने चुने विद्वानों और संतों में से थे। उनकी अपनी भावनाओं के अनुसार उनका तप भी बहुत ऊँचा था। संस्कृत के धारावाही विद्वान थे किन्तु जनसम्पर्क से दूर रहने और सार्वजनिक क्षेत्र से उदासीन रहने के कारण अपने पिता के बहुसंख्यक शिष्य समाज को यह गुरु अङ्गददेव की शरण मे जाने से न रोक सके। इस तरह हम कह सकते हैं कि गुरु अङ्गददेव जी का जहाँ व्यक्तिगत जीवन बहुत ऊँचा था वहाँ सार्वजनिक जीवन भी अत्यन्त श्रेष्ठ था। अथवा जहाँ उनका व्यक्तित्व हिमालय की उच्चतम शिखर की भांति जनता की दृष्टि से अगम अगोचर था वहाँ छोटे बडे गरीब, अमीर, अंधे, लूले सबकी चिन्ता करने और अपने समाजको ऊँचा उठानेवाले अथक प्रयत्नोंका सिलसिला भी मामूली दर्जेका न था।

कार्य

गुरु नानकदेव ने जिस ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाकर अंकुरित किया था उस भूमि के उपजाऊपन को स्थिर बनाये रखने और उगे हुए अंकुर को विकसित करने के लिये जो कार्य और प्रयत्न गुरु अङ्गददेव जी ने किये थे व महान् दर्जे के कार्य थे। उन अनेकों कार्यों मे से यहाँ हम केवल तीन कार्यों का विवेचन करना चाहते हैं।

पहिला और सर्वोपरि कार्य था गुरमुखी लिपि का प्रचार करना।[1] कहाजाता है संसार की

[1] आज कल की की जाने वाली खोज में सिद्ध हुआ है कि गुरमुखी लिपि गुरु नानकदेव जी के समय में निर्माण हो चुकी थी।

लिपियों में पहली लिपि देवनागरी है और देवनागरी ही पूर्ण लिपि है। पूर्णलिपि वह समझी जाती है जिसमे प्रत्येक ध्वनि को अंकित करने के लिये स्वतत्र अक्षरों का प्रयोग हो सके। कोई दो अक्षर किसी भी ध्वनि के अंकित करने के लिये मिलाने न पड़े। गुरु अङ्गददेव जी के समय में भारत मे और खास तौर मे पंजाब और सिन्ध मे चार लिपियॉ थीं। नागरी जिसे संस्कृत और शास्त्रीय भाषा भी कहते थे।[1] दूसरी फारसी जिसे प्रत्येक मुसलमान और वह हिन्दू सीखता था जो उन समय के मुसलमान हाकिमो के सम्पर्क मे रहता था। तीसरी मुण्डा या महाजनी जिसमे वैश्य लोग अपना हिसाब रखते थे। चौथी सिन्धी यह महाजनी से मिलती जुलती थी। इनके भी कुछ आन्तरिक भेद थे। जिनमे एक जाटकी या पश्चिमी हिन्दकी नाम से अभिहित होती थी।

किसी भी जन समुदाय को समाज का रूप देने के लिये यह जरूरी होता है कि उसकी भाषा और लिपि एक हो। प्रचलित भाषाओं में से फारसी और मुडा का तो पंजाब वाले अपना नहीं सकते थे और खास कर उस सूरत मे जबकि धर्म ग्रन्थ और प्रार्थनाए भी लिखी जाने वाली हों। महाजनी तो एक निहायत भद्दी और अपूर्ण लिपि है उसमे "अजमेर गये" और "आज मर गये" मे कोई भी अन्तर नहीं होता। फिर एक देवनागरी ही ऐसी थी जिसे गुरुजी और उनका समस्त सिख समुदाय अपनाता किन्तु देवनागरी पढ़ाने का काम उस समय पूर्ण रूप से उन पौराणिक ब्राह्मणों के हाथ मे था जिन्होंने शूद्र और स्त्रियों को पढाना निषेध कर रक्खा था और उनकी पाठशाला मे वैठते ही सबसे पहले सिद्ध गणेशाय' का एक लबा पाठ रटना होता था। गुरु नानकदेव के मत मे एक ओंकार को छोड़कर किसी भी दूसरे देवता को स्थान नहीं था। यही कारण था कि गुरु नानक जी ने एक नई लिपि का निर्माण किया जो आजकल गुरुमुखी के नाम से मशहूर है। गुरु अगद देव जी ने भी देवनागरी को नहीं अपनाया और गुरु नानक द्वारा निर्मित लिपि का प्रचार किया। इन गुरुमुखी अक्षरों मे गुरुनानक देव जी की वाणियों के अलावा जो भी कुछ लिखा गया वह पजाव प्रात की वीली मे लिखा गया अत यह गुरुमुखी अक्षर पजावी भाषा के नाम से मशहूर होगये।

गुरमुखी लिपि देवनागरी की भाति ही पूर्ण लिपि है उसमे प्रत्येक ध्वनि को अंकित करने के स्वतन्त्र सकेत अथवा अक्षर है। देवनागरी से उसका घनिष्ट सामजस्य है। जो गुरुमुखी वर्णमाला जानता है वह तीन चार दिन मे ही देवनागरी और देवनागरी जानता है वह इतने ही समय मे गुरमुखी वर्णमाला को सीख सकता है।

इस वर्णमाला का प्रचार करके समस्त शिष्य समाज को गुरु अगददेव ने एक सूत्र मे वाध दिया। इसे प्रत्येक शिष्य चाहे वह किसी भी जाति का हो पढ़ सकता था। इस तरह से समस्त शिष्य समाज के लिए शिक्षित वनने का रास्ता भी साफ होगया और कट्टर पथी ब्राह्मणों के सघर्ष मे न आना पड़ा। यदि उनकी देवनागरी को सभी लोगों को पढने की इजाजत दे दी जाती तो वे शोर मचाते कि अक्षर अपवित्र हो गये और इस कुराह को हम पसंद नहीं करते। व्यर्थ का झगड़ा होता।

गुरुमुखी लिपि के अविष्कार से जहॉ प्रत्येक जाति को पढ़ने की स्वतन्त्रता हासिल होगई वहॉ एक वडा काम अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये गुरुजी के लिये यह और होगया कि उनके शिष्यों का सम्पर्क ब्राह्मण पुरहितों और आचार्यों से कम होगया। और इस तरह उनके शिष्यों के विचारों को ढीला

१ पजाव के हजारो आदमी अव नागरी अक्षरो को शास्त्री जवान कहते है कारण कि हिन्दू शास्त्र इन्हीं अक्षरो में लिखे हुये है।

करने वाले ब्राह्मण निरन्तर सिख समाज से दूर होते गये।

गुरुमुखी लिपि में ही गुरु नानक देव जी की वाणियों के लिखे जाने से समस्त शिष्य सम्प्रदाय के लिये यह भी जरूरी होगया कि वे गुरुमुखी लिखना पढ़ना सीखे। प्रत्येक सिख इस बात में अपना गौरव समझता था कि अपने गुरुओ की वाणी और जीवन कथाएं उसे अधिक से अधिक याद होनी चाहिये। इस तरह से पंजाब मे अन्य हिन्दुओ की अपेक्षा शिष्य समुदाय मे पठितों की संख्या अधिक होगई और भविष्य मे भी यही क्रम जारी रहा और आज भी है।

गुरु अंगददेवजी ने जीवन वृतान्त और वाणियों को संग्रह करनेके समय भाई वाला जो कि गुरुनानक देव जी का बालापन का साथी तथा उनके ही गॉव मे पैदा भी हुआ था और अंतिम समय तक गुरुजी के साथ भी रहा था। भाई बुढ्ढा जो कि एक समझदार योग्य शिष्य था औरगुरुजी के पिछले दिनों के जीवन मे साथी भी था। किन्तु इसे गुरुजी की वाणियों के सिवा उनके समस्त जीवन चरित्र के सम्बन्ध मे बहुत कम जानकारी थी अपने पास रखा। यह लोग तब तक अंगद जी के पास रहे जबतक कि जीवन वृतान्त और वाणिया संग्रह न हो गई।

वाणियों के संग्रह और जीवन चरित्र के लिख जाने से शिष्य समूह को उन विशिष्ट खयालातो का पाबन्द बनाने मे बड़ी मदद मिली जो गुरु नानक देव जी ने स्थिर किये थे। नये शिष्य भी इस ग्रन्थ की सहायता से बहुत बने। साथ ही गुरुनानक का सन्देश देने मे अन्य ऐसे लोगो का सहयोग भी काम देने लगा जो पढ़े लिखे थे। अथवा अपने घर और गॉव मे उन वाणियो को जो संग्रह की जा चुकी थी पढ़-कर सुनाते होंगे। हम समझते हैं आगे गुरु अमरदास जी ने जो २२ मांझियां स्थापित की थीं। उन मंजिओं के प्रमुखों ने अवश्य ही जन्मसाखी की प्रतिलिपि ली होंगी और गुरु नानक देवजी के धर्म का प्रचार किया होगा। मालूम होता है कि पीछे से इस जन्मसाखी मे बहुत क्षेपक मिला दिये गये जो अस-गत से भी है। जैसे गुरु नानक देव जी के पूर्व जन्मों की कथायें।

यह बात बिल्कुल सही जान पड़ती है कि पंजाब में गुरु नानकदेव ही ऐसे पहले कवि थे जिन्होंने लोकव्यवहृत भाषा मे काव्य रचना की थी और अंगददेव ही पहले लेखक थे, जिन्होंने लोकभाषा मे पद्य ग्रंथ लिखा था। हिन्दुओ के समस्त ग्रंथ संस्कृत मे थे। तुलसीकृत रामायण अभी बनी नहीं थी बल्कि यों कहना चाहिए कि कवि तुलसीदास का अभी जन्म ही नहीं हुआ था। इसमें हिन्दुओं के पास ऐसा कोई भी धर्म ग्रंथ नहीं था। जिसे वे खुद पढ कर समझ सकते हों। संस्कृत के धर्मग्रथों को चन्द पण्डित लोग ही पढ सकते थे। सो वे मुफ्त में और जातियों को पढ़कर सुनाते नहीं थे। चन्द श्रीमान ही उन धर्मग्रंथो के उपदेशों को सुन सकते थे, जिस के लिए कि उन्हे भारी दक्षिणा (कीमत) देनी पडती थी। गुरु अंगददेव जी का लिखा हुआ ग्रंथ ही ऐसा था जिसको सब कोई पढ सकता था और इसके मानने वाले स्वत ही लोगों को सुनाते थे। जिसे समझने मे कोई कठिनाई नहीं होती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि उस समय सारा पंजाब और उससे सटा हुआ सिन्ध का हिन्दू समाज तो पूर्णत गुरु नानकदेव जी का अनुयायी और भक्त हो गया। पंजाब और सिन्ध के सर्वसाधारण मे आज भी नानकदेव जी की निष्ठा सभी देवी देवताओं से ज्यादा होने का सबसे बड़ा कारण गुरु अंगददेव जी द्वारा गुरु नानकदेव जी की जीवन लीला के वृत्तात और वाणियों का संग्रह हो जाना ही है।

इस संग्रह ग्रंथ के बन जने के बाद सिखों की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी और कुछ मनुष्यों ने

इस ग्रथ की सहायता से गुरु नानकदेव जी के मिशन को पूरा करने का अपना जीवन उद्देश्य ही बना लिया। वह जहा जाते, जहा किसी समारोह में शामिल होते गुरु जी के जीवन चरित और वाणियों को को सुनाकर लोगों को आत्मशाति देते।

इस तरह जहा गुरुमुखी लिपि के प्रचार से शिष्यों मे शिक्षितों की सख्या बढ़ने लगी थी वहा इस संग्रह के हो जाने से शिक्षित शिष्यों मे भी नानकदेव के सिद्धातों के जानकार एवं पण्डितों की सख्या बढ़ने लगी। इस तरह से गुरु अगददेव जी के इन दोनों महान कार्यों से शिक्षा और धर्म प्रचार दोनों मे वृद्धि हुई।

मनुष्य जन्म पाने का सब से बडा लाभ यही समझा जाता है कि अज्ञान, अन्धकार से निकल कर जीव ज्ञान के प्रकाश मे आवे और यदि ज्ञान से धर्म की प्राप्ति भी हो जाय तो फिर कहना ही क्या। अत समझना चाहिए कि गुरु अगददेव जी के इन दोनों कार्यों से शिष्य लोगों को मानसिक और आत्मिक दोनो ही प्रकार का भोजन मिला।

तीसरा कार्य जो गुरु अगददेव जी ने किया। उसका आरम्भ यद्यपि नानकदेव ही कर गये थे किन्तु उसे गुरु अगददेव जी ने और भी उन्नत किया, वह कार्य था लगर को जारी रखने का। साथ ही ऐसे लोगो को जो शीत और धूप से अपने शरीर की रक्षा वस्त्रों के अभाव से नहीं कर सकते थे उनको वस्त्र भी देना। गुरु अगददेव जी का लंगर बराबर चलता रहता था। इस लगर मे राजा भी आकर उसी पगति मे बैठता था[1] जिसमे एक गरीब। पगति में ऊच नीच का भी कोई भेद न होता था। लंगर की विशेषता थी कडाह प्रसाद। अब तक सर्व साधारण को पण्डित लोग यह उपदेश देते आ रहे थे कि मोटा झोटा खाकर जीवन निर्वाह करना चाहिए। इसका फल यह हो रहा था कि लोग जर्जर तन और तेजहीन होते जा रहे थे। लंगर के इस कढाह प्रसाद के आयोजन ने शिष्यों के घरो मे भी जाकर अपना पैर जमाया। इस तरह से खाने पीने मे गुरु जी के इस कार्य ने लोगों के धरातल (स्टैन्डर्ड) को ऊचा किया। उसका फल आज भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं। औसतन एक सिख शारीरिक बल और स्वास्थ्य में चाहे वह देहाती हो या शहराती, तगडा होता है। इस बात से गुरु का शिष्य समाज शारीरिक उन्नति भी करने लगा। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों ही उन्नति गुरु जी के इन तीनों आयोजनों से सिख समाज मे दिखाई देने लगा। जितना भी गम्भीरता से गुरु अगददेव जी के इन कार्यों को ओर हम देखते हैं उतने ही हमे यह तीनों कार्य महान् तथा शिष्य समाज मे चेतना और शक्ति एव सगठन पैदा करने वाले दिखाई देते हैं।

लंगर की प्रथा ने शिष्य समाज मे और भी गुण पैदा किये। उनमे से एक बडा गुण था पैसे का सदुपयोग करना सीखना, दान देने की हिन्दुओ और प्राय सभी जातियों मे स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। अब तक जहा वे अपने पैसे को देवी देवताओ के मेलों मे जाकर तथा शराब और भंग आदि नशों मे खर्च करते थे अब वे गुरुद्वारे मे देने और अच्छा खाने पर खर्च करने लग गये।

गुरुद्वारे मे दिया हुआ उनका दान उसी प्रकार उनके काम आता था जिस प्रकार कि सूर्य पृथ्वी के जल को अपनी किरणों द्वारा खींच कर उसे निर्मल करके फिर पृथ्वी पर ही वर्षा देता है। उस

१. गुरु अमरदास के समय में आने वाले राजा हरीपुर और बादशाह अकबर भी उस ही पक्ति में बैठे थे जिसमें सर्वसाधारण।

दान से इन्हें कड़ाह प्रसाद तो मिलता ही था सत्संग का लाभ और भ्रातृ भाव की जैसी अच्छी और आवश्यक भावनाएं भी मिलती थीं। दान की यह प्रणाली सिख समाज की शारीरिक, आत्मिक, बौद्धिक और सामाजिक शक्ति के बढ़ाने मे दिनों दिन अग्रसर हुई।

इन कार्य्यों के अलावा गुरु अंगद देव जी के अनेकों ही छोटे बड़े ऐसे कार्य हैं जिनमे सिख समाज का विस्तार हुआ। उपदेश करने का ढग भी आपका बड़ा ही सरल था। कोई आकर आपने अपने कल्याण की बात पूछता, सरल सा मार्ग बता देते। एक ज्ञानी ने आपसे आकर पूछा मैंने अनेकों धर्म ग्रन्थ पढ़े हैं मुझे शांति नहीं हुई, आपने कहा आपने आत्मा के सम्बन्ध मे कभी कुछ सोचा है बिना आपे को पहचाने शांति कहां। एक बार आपने अनेकों शिष्यों के प्रश्न के उत्तर मे बतलाया ज्ञान, योग और वैराग इन तीनों से भी परमात्मा की प्राप्ति होती है। आत्मानंद भी मिलता है किन्तु माया के आकर्षण मे ज्ञानी, वैरागी और योगी भी घिर जाते हैं। हां, भक्ति को माया नहीं डिगा सकती भक्ति तो परमात्मा की पतिव्रता नारी है। ज्ञान बाहर से मिलने वाला और वैराग संसार से नफरत होने के बाद हृदय में आने वाली चीजे हैं। भक्ति पैदा होती है हृदय मे और सिर्फ आत्मा की छटपटाहट से अतः भक्ति ही इन सब मे श्रेष्ठ है।

इसी तरह न जाने उन्होने कितने प्रकार से और किन २ कार्य्यों द्वारा मनुष्य जाति का कल्याण किया। सभी कार्य्यों के सम्बन्ध में जानना तो मुश्किल है। परन्तु हां हम यह खूब जानते हैं कि उन्होंने मनुष्य जाति का कल्याण करने मे उन सिद्धान्तो के द्वारा जो उनके गुरु नानक देव जी ने स्थिर किये थे कोई कसर नहीं उठा रक्खी।

आपके समय मे जो मुख्य २ शिष्य थे उनमे से कई तो काफी योग्य और प्रभावशाली थे।

गुरु अंगददेव की कुछ वाणियां

(सलोकम)

सेही पूरे साहजिनी पूरा पाइआ।
अठी वे परवाह रहनि इकतै रंगि।
दरस निरूपि अथाह विरले पाई आई।
करमि पूरै पूरा गुरु पूरा जाका बोलु।
नानक पूरा जे करे घटै नाही तोलु ॥२॥ पउड़ी
जा तू ताकिआ होरि मंस चुरणाईऐ ॥
मुठी धर्षे चोरि महलुन पाइऐ ॥
एने चित कठोरि से वगवाईऐ।
जितु घटि सचुन पाइ सुभनि घड़ाइऐ।
किउ करि पूरे वटि तोलि तुलाईऐ ॥
सउदाइ कतु हटि पूरै गुरि पाइऐ ॥

× × × ×

(श्लोक)

मत्री होइ अठूहिआ नागी लगै जाइ।
आमरण हथी आपणै दे कूचा आपे लाइ ॥
हुकम पाआ धुरि खसम का अतीहू धका खाइ ॥

गुर मुख सिउ मन मुख अडै डुबैह किन आइ ।
दुहा गिणिआ आपै खसमु बेखै करि विउ पाइ ।।
नानक एवै जाणीअै सभ किछु तिसहि रजाइ ।।

× × × ×

आपै साजि करे आपि जाईभि रखै आपि ।
तिसु विचि जतउ पाइकै देखै थापिउ थापि ।।
किसनो कहिअै नानका सभु किछु आपै आपि ।। पउडी
बडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ ।
सो करता कादर करीम दे जीआ रिजक संवाहि ।।
साई कार कमावणी धुरि छोडी तिनै पाइ ।।
नानक एकी बाहरी होर दूजी नाही जाइ ।
सो करे जिति सैर जाइ ।।[१]

१. इनमें गुरु नानकदेव का नाम आने से यह खयाल न करना चाहिए कि यह गुरु अगद जी के नहीं हैं । महला दो की वाणिया दूसरे गुरु अगद जी की ही हैं ।

पाँचवाँ अध्याय

गुरु अमरदास जी की पातशाही

जन्म और आरम्भिक जीवन

गुरु अमरदास जी साहब का जन्म इलाका अमृतसर के बासर के गाव में तेजभान जी भल्ले खत्री के घर संवत् १५३६ वि: में वैसाख सुदी १४ को हुआ था।[1]

गुरु जी की शादी खन खतरे गाँव के देवीचन्द वहिल खत्री की लड़की के साथ हुई थी। जिनका आरम्भिक नाम रामकौर जी था किन्तु गुरु जी के घर आने पर मन्सा देवी जी रख लिया गया था।

गुरु अमरदास जी साहिब के चार संतानें थीं। जिनमे सबसे बड़ी बीबी भानी जी थीं। दूसरी बीबी दानी थीं। दो पुत्र मोहन जी और मोहरी जी थे।

सिख ग्रन्थों मे लिखा है कि गुरु अमरदास जी बचपन से ही शीलवान, जितेन्द्रिय और संत सेवी थे। जप, तप और दान पुण्य में उनकी खूब ही रुचि थी। उनके यहां दूकान होती थी। आपने पैदल चलकर २१ बार गंगा स्नान किया था। अमृतसर जिले से हरिद्वार २१ बार पैदल जाना उनके उत्कट धर्म प्रेम को तो जाहिर करता ही है। साथही उनके शारीरिक बल और पौरुष की भी साक्षी देता है।

आपके जीवन की गति या धर्म का प्रवाह गुरु नानक देव जी के प्रचारित धर्म की ओर किस प्रकार गया? इसके सम्बन्ध में एक प्रभावकारी घटना का इस प्रकार वर्णन मिलता है। आप जब बीसवीं बार हरिद्वार से गंगा स्नान करके लौट रहे थे, तो मार्ग में थेहड़े नामक गाव के निकट एक सुन्दर उद्यान में विश्राम करने के लिये ठहर गये। वहीं पर एक विद्वान् ब्राह्मण ठहरा हुआ था। उसने इनके पांव में पद्म को देखकर कहा, महाराज आपके शारीरिक लक्षण तो इस बात की साक्षी देते हैं कि आप राजा या महाराज होने चाहिएं। अथवा आपको कोई महान् संत होना चाहिए। प्रचलित रिवाज के अनुसार पंडित के इस शुभ कथन पर गुरुजी उसे पुरुस्कार में कुछ खाने पीने की चीजें देने लगे। पंडित जिसका कि नाम दुर्गादत्त बताया जाता है—ने कहा, यह तो बताइये आप किस गुरु के शिष्य हैं। अमर दास जी साहिब ने फरमाया। ऐसा कोई दिन नहीं जाता जब मैं साधु संतों और विद्वानों का सत्कार न

१. गुरु अमरदास जी की जन्म तिथियो के सम्वत् में अनेक मत हैं कोई उनका जन्म १५२६ कोई १५३६ और कोई १५६२ का बतलाता है इसी प्रकार उनकी सन्तानों की जन्म तिथियों में भी लेखकों का एक मत नहीं।

करता हूँ किन्तु पंडित जी मैंने अभी तक गुरु तो किसी को नहीं बनाया है। इस उत्तर को सुनकर पंडित ने कहा तब तो मैं आपके हाथ का अन्न जल तो क्या मोती मूंगे भी नहीं ले सकता हूँ। जो आदमी बिना गुरु का होता है उसके हाथ का दान लेना पाप माना गया है[१]। कहा जाता है श्री अमरदास जी साहिब के साथ एक छोहडा नाम का ब्रह्मचारी था पडित की इस प्रकार की बात को सुनकर चीख उठा तब तो गजब हो गया। मेरे सभी तीरथ व्रत नष्ट हो गए मैंने तो इनके घर अनेकों बार खाया पिया है।

अमरदास जी महाराज के हृदय पर इन लोगों की इस बात का यह असर पड़ा कि उन्होंने उसी समय कोई सतगुरु बना लेने का दृढ निश्चय कर लिया अब वे सतगुरु की खोज मे रहने लगे।

एक दिन प्रात'काल तारों की छाया मे जब उठे तो उनके घर में से कोमल स्वर मे अमृत वर्षा करने वाली रागनियों के गाने की मधुर ध्वनि सुनाई दी। जाकर देखा तो उनके भतीजे की बहू जो गुरु अगदढेव जी की पुत्री बीबी अमरकौर थी गा रही हैं। अमरदास जी साहिब ने पूछा, बेटी यह सुन्दर और जीवन को पवित्र करने वाली रागिनी किस गुरु की है और तूने किससे सीखी हैं? बीबी अमरकौर ने कहा यह अमृत वाणी गुरु नानकदेव जी महाराज की हैं जिनकी गद्दी पर इस समय मेरे पिता गुरु अगदढेव जी महाराज विराजमान हैं। मेरी माँ ने यह वाणियाँ मुझे सिखाई हैं। हमारे पिता जी के पास नित सत्सग होता है। सैंकड़ों आदमी जाकर अपनी आत्म-तुष्टि करते हैं।

अमरदासजी उसी दिन बीबी अमरकौर को साथ लेकर खडूर पहुँचे। गुरु अगदढेव जी बड़े प्रेम से अमरदास जी से मिले और उन्हे अपना शिष्य बना लिया। सतगुरु पाकर अमरदास जी की आत्मा को सतोष हुआ। और वहीं रहकर गुरु अंगददेव जी की सेवा करने लगे।

आदर्श सेवा

गुरु अंगददेव जी की उन सेवाओं का वृत्तान्त पढ़ कर जो उन्होंने गुरु नानकदेव जी की की थीं। यह कहा जा सकता है कि सेवा की हद थी और मनुष्य शक्ति से बाहर की चीज थी किन्तु गुरु अमरदास जी ने गुरु अगदढेव जी की जो सेवायें की हैं उन्हें पढ़ कर तो और भी स्तब्ध रह जाना पड़ता है। वे नित आधी रात को ही उठ पडते थे और ब्यास नदी के लिये चल पडते। वहाँ स्वयम स्नान करते और गुरु अगददेव जी के स्नान करने के लिये जल का घडा भरकर लाते। और गुरुदेव को स्नान कराते। फिर लगर का काम देखते। बर्तनों को साफ करते। झाडू देते। रात के समय गुरु अगदढेव जी के पैर के अगूठे जिसमें कि लगातार टीस होती थी। चूमते रहते। इस तरह मुँह मे रखने से उसमे टीस चलना बन्द हो जाता था और अंगददेव जी सो लेते थे।

यह भी कहा जाता है कि अमरदास जी महाराज गुरु अगददेव जी के पास से दूसरी जगह जाने के लिये काफी दूर तक उलटे पैरों चलते थे क्योंकि गुरुजी की ओर पीठ करके चलने मे उन्हे दिल मे कष्ट का अनुभव होता था। ऐसी थी अमरदास जी साहिब की उत्कट भक्ति अपने सतगुरु के प्रति।

ब्यास नदी के किनारे गोइन्दा नाम के खत्री ने कुछ जमीन ठेके पर ली हुई थी। उसने वहाँ गाव भी बसाया किन्तु रात में जाकर अदृश्य जीवों ने उस गांव के बाशिन्दों को तग किया। इससे गांव उजड़ गया। गोइंदा खत्री गुरु अंगददेव साहब के पास खंडूर पहुँचा और उसने कहा महाराज मेरे बसाये हुये गांव को भूत प्रेतों ने उजाड़ दिया है। अगर आप उसे

गोइन्दवाल में

१ उस समय ऐसी ही अनेकों और भी प्रथायें थीं।

बसादे तो मैं आपका कृतज्ञ हूँगा। गुरु अंगददेव जी ने अमरदास जी को वहाँ रहने और गाँव को आबाद करने की आज्ञा दी। अमरदास जी साहिब बड़ी खुशी के साथ वहाँ चले गये और निर्भयता के साथ रहने लगे। डरे हुए लोगों को भी अभयदान दिया। इस तरह थोड़े दिनों में गोइन्दवाल आबाद हो गया। यह घटना संवत् १६०३ विक्रमी की है।[1]

पीछे गुरु अंगददेव जी की आज्ञा होने पर अमरदास जी साहब बासरके से अपने पुत्र-पुत्रियों घर वालों और संबंधियों को भी गोइंदवाल ही ले आये।

श्रद्धापूर्वक कठोर सेवा करते हुए लगभग बारह वर्ष हो चुके थे। अमरदास जी महाराज का शरीर भी अब बहुत बुड्ढा हो चुका था। या यों कहिए कि बुढ़ापे में ही तो उन्होंने शिष्यत्व ग्रहण किया था किन्तु बल और पौरुष उनका क्षीण नहीं हुआ था। नित प्रति

गुरुआई मिलना

ब्यासा से पानी लाकर गुरु अंगददेव जी को स्नान कराने की बात हम पहले लिख चुके हैं किन्तु यही सेवा उस समय को भी लाई। जाड़े के दिन थे और रात भर वर्षा होती रही। महावट बन्द न हुई किन्तु अमरदास जी वर्षा और शीत की कुछ भी परवाह न करके नित प्रति की तरह तीन कोस दूर ब्यासा नदी गये और वहां से गुरुजी के स्नान के लिये जल का घड़ा लाए। घोर अन्धकार और कीच होने के कारण ठोकर खाकर गिर पड़े थे। जिस घर के सामने गिरे वह जौलाहे का था। उसने धमकी सुनकर कहा कौन गिरा? जुलाहिन बोली इस भयकर समय और कौन बाहर निकलने की हिम्मत कर सकता है वही निथामा अमरू होगा। गुरु अंगददेव जी ने पड़ौसी जुलाहिन की यह बात सुनली। देखा तो अमरदास साहब कीच में से उठकर आ रहे हैं किन्तु उन्होंने घड़े को नहीं गिरने दिया। उस समय गुरु अंगददेव जी ने कुछ नहीं कहा। इस तरह रहे मानों उन्हे कुछ भी मालूम नहीं है। किन्तु जब यथा समय नित की भांति दीवान लगा तो गुरु अंगददेव ने उस जौलाहिन को बुलाकर सबके सामने पूछा! आज तड़के ही तुमने अमरदास जी के लिये जो शब्द कहे थे उन्हे दुहरा दो। पहले तो जौलाहिन डरी किन्तु धीरज दिलाने पर उसने कहा गुरुदेव उस भयंकर समय में जबकि सनसनाती ठंडी महावट पड़ रही थी और अंधियारी झुक रही थी धमाके की आवाज को सुनकर मैंने यही कहा था कि गिरने वाला निथामा अमरू ही हो सकता है वही गुरुजी के नहाने को इस भयकर समय में भी ब्यासा से जल लाया होगा।" जुलाहिन की इस बात के पूरी होते ही अंगददेव जी ने झपटकर अमरदास जी को हृदय से लगा लिया और कहा यह निथामों का थाम है।

उसी दिन गुरु अंगददेव जी ने विधि पूर्वक समारोह के साथ अमरदास जी को गुरुआई की रस्म अदा कर दी। सभी लोगों ने अमरदास जी के सामने मत्था टेक कर उन्हे अपना गुरु स्वीकार किया यह पुण्य दिन सवत् १६०६ विक्रमी चैत्र की शुक्ल प्रतिपदा का था।

इसके बाद अमरदास जी गुरु अंगददेव जी की आज्ञा से कतई रूप से गोइंदवाल में जाकर और वहीं ? ओंकार और सतगुरु का ध्यान करते हुए तप करने लगे।

अब तक हमने उनके उस समय तक के जीवन पर प्रकाश डाला है, जिसे गाहस्थिक और शिष्य काल का जीवन कह सकते हैं। अब उनके गुरु हो जाने के बाद के कार्यों, उपदेशों और विशेष प्रसंगों का वर्णन करना चाहते हैं।

गुरुगद्दी मिलने के बाद के कार्य

१. लिखा है कि एक देव को गुरुजी ने उसके नटखटपने के कारण मना कर दिया था जो भटिंडे जा पहुँचा। वहाँ से उसे गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने भगाया।

एक दिन शिष्य लोगों ने कहा गुरुदेव आपके दर्शनों को नितप्रति सैंकड़ों आदमी आते हैं किन्तु कोई अच्छा मकान न होने से बड़ी तकलीफ है। यह सुनकर गुरुजी ने अपने भतीजे सावनमल को एक रूमाल देकर हरीपुरा के जगलो से लकडी लाने के लिये भेजा। सावणमल अपने साथ कुछ शिष्यों को लेकर हरिपुरा पहुँचा तो उसी दिन वहाँ के राजा के आदमी सावणमल को गिरफ्तार करके ले गये। अपराध यह बताया गया कि आज एकादशी के दिन तुमने खुद अन्न पकाया और और दूसरे लोगों को खिलाया। हमारे यहाँ एकादशी के दिन अन्न नहीं पकाते हैं। सावणमल ने कहा है सब दिन ईश्वर ने एक से बनाये हैं। अन्न खाने को पैदा किया है। उसके संबन्ध में ऐसे नियम व्यर्थ हैं। जब राजा को मालूम हुआ कि यह गुरुजी के आदमी हैं तो उसने अच्छी से अच्छी लकडी काट लेने की आज्ञा देदी, सावणमल के उपदेश से राजा इतना प्रभावित हुआ कि वह भी सावणमल के लौटने के समय उसके साथ ही गुरु अमरदास जी साहिब के दर्शनों को गोइंदवाल पहुँचा। लंगर में एक ही पंक्ति में बैठकर सब लोगों के साथ प्रसाद पाया और गुरु जी के दर्शन किये तथा उपदेश सुनकर अपने को कृतार्थ किया।

द्वारिका से लौटते हुये सत माईदास ने सुना कि गुरु अमरदास जी ही इस समय के सब सतों में शिरोमणि हैं। निर्भिमान हो जाने पर उनके यहाँ कोई दर्शन का जाता है तो पहले गुरु लगर में सब जाति के लोगों के साथ एक पंक्ति में बैठकर उसे भोजन करना पड़ता है, उसके बाद उसे दर्शन का अधिकारी समझा जाता है इस महिमा को सुनकर सन्त माईदास गोइंदवाल पहुँचा और वहाँ के नियमानुसार लगर में भोजन खा के गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुआ। गुरुजी के दर्शनों और उपदेशों से प्रभावित होकर उनका शिष्य बन गया।

गुरु जी ने इसे भी एक मंजी बखशी और सिख धर्म-प्रचार का अधिकार प्रदान किया। इस प्रकार से गुरु अमरदास जी साहिब ने बाईस मजिया कायम कीं, जिनके द्वारा नानक-धर्म का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा।

गुरु अमरदास जी साहिब के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर दातू जोकि गुरु अंगददेव जी का पुत्र था। मन ही मन कुढने लगा। कहा जाता है एक दिन उसने क्रोधवश होकर ऐसी हरकत की कि गुरु अमरदास जी महाराज के जाकर लात जमा दी। गुरु जी ने सहज भाव से दातू जी के पैर को पकड़ कर कहा कहीं आपके लग तो नहीं गई। हमें यहाँ एक कथा याद आती है विष्णु भगवान के पास भृगुऋषि पहुँचे और उन्होंने सोते हुए विष्णु जी की छाती पर लात जमाई। विष्णु भगवान् ने हँसते हुए कहा मैं समझता हूँ मेरे कठोर शरीर पर पदाघात करने से अवश्य ही आपके पैर में चोट पहुँची होगी। लाओ दबा दूँ। इन दोनों कथाओं में पूरा सामंजस्य है। इस घटना से हमे तो पता चलता है कि गुरु अंगददेव जी की तरह गुरु अमरदास जी को भी काफी विरोध और झगड़ों का सामना करना पड़ा किन्तु उनके तप और सहन-शीलता ने सबको ठडा कर दिया। फिर भी उन्हें एक बार गोइंदवाल छोड़ जाना पड़ा था।

आप एक दिन सगत को बिना सूचना दिये चुपचाप निकलकर बासरके पहुंच गये और एक कोठी में बैठकर परमात्मा का जाप करने लगे। दरबार के समय भी जब गुरु जी के दर्शन नहीं हुए तो संगत बड़ी घबड़ाई। आखिर बाबा बुढ्ढे को लेकर सब लोग बासरके पहुचे। वहाँ कोठी के बाहर उन्होंने लिखा देखा "जो कोई इस दर्वाजे को खोलेगा उसके लोक परलोक दोनों बिगड़ जावेंगे"। अब क्या करें बड़ी देर तक सभी लोग यही बात सोचते रहे। सोचते सोचते बाबा ने कहा गुरु जी ने दरवाजा खोलने की मनाही की है न, यों तो नहीं कहा है कि कहीं होकर भीतर मत आओ। आओ संधि (छेद)

करके भीतर चलें। ऐसा ही किया गया जब भीतर बाबा बुड्ढा पहुँचे तो गुरु अमरदास जी अपने शिष्यों के इस प्रकार के प्रेम को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उनके कहने से फिर गोइन्दवाल आ गये।

गुरु जी सहनशील तो बहुत ही ज्यादा थे। उनके साथ कोई झगड़ा करो। कोई नुकसान पहुँचाओ। वे अपनी ओर से उसका कभी भी बुरा नहीं चीतते थे। उनकी सहनशीलता की एक कहानी दातू के व्यवहार की लिख चुके हैं। एक दूसरी कथा इस प्रकार है। मरवाहे के खत्री और शेख गुरु जी के प्रताप से काफी जलते थे और उस जलन को इस तरह शांत करते थे कि जब सिख लोग पानी भरने जाते तो उनके घड़ों को फोड़ देते। शिष्य लोगों ने गुरु जी से शिकायत की, आप बोले भाई उनके साथ झगड़ा तो करना नहीं है ? तुम मश्कों में पानी भर लाया करो। जब शिष्य मश्कों में पानी लाने जाने लगे तो उन्हें वे तीर मार कर फोड़ने लगे। अंत मे गुरु जी ने पीतल के बर्तन बनवा लेने की आज्ञा दी। तब उन्होंने गुलेलों से पीतल के घड़ों को भी तोड़ना शुरू कर दिया। इस पर भी गुरु जी ने उन लोगों के साथ झगड़ा करना नहीं चाहा। शिष्यों द्वारा इस बार शिकायत करने पर कहा, उन लोगों को शीघ्र ही ईश्वर दण्ड देगा। हुआ भी ऐसा ही उधर से गुजरने वाले सैनिक दल और एक शाही खजाने के रक्षकों ने इन लोगों को खूब ही मारा पीटा और इनके घरों को भी लूट ले गये।

संवत् १६१७ वि० मे गोइन्दे के पुत्रों ने शाही अदालत मे गुरु जी पर इस आशय का दावा कर दिया। चूंकि जमीन हमारे पिता के नाम थी, उन्होंने ही गोइन्दवाल को बसाया गुरु और उस के शिष्यों ने उस पर जबरदस्ती कब्जा कर रक्खा है। अदालत मे जाकर बाबा बुड्ढे भाई बुल्ला और केदारी आदि ने सब बातें रख दीं कि किस प्रकार यह गाँव उजड़ा पड़ा था और किस प्रकार गोइन्दे ने गुरुजी से उसे बसाने के लिये सहायता प्राप्त की। हाकिम ने आकर जांच की उसने गुरु जी के जीवन से प्रभावित होकर उनके मुकदमे को खारिज कर दिया। और कहा कि जो नित प्रति भेंट मे आई हुई वस्तुओं को अपने काम में नहीं लेते, उनके लिये यह ख्याल करना गलती होगा कि वे किसी की जमीन पर बलात कब्जा कर लें।

गुरु जी ने इन्हीं दिनों एक यात्रा भी की थी। गोइन्दवाल से चलकर शहर नूरमहल होते हुए कुरुक्षेत्र में पहुँचे और वहाँ साधु सन्तों और पण्डितों के साथ ज्ञान चर्चा की। कई दिन वहाँ रह कर जब जमुना किनारे इमली नामक गाँव मे पहुँचे तो घाट पर आपको रोक लिया गया और १।) प्रति आदमी के हिसाब से ठेकेदार ने टैक्स मांगा किन्तु आपने कहा हम सतों के पास देने को क्या धरा है। ठेकेदार ने सारी संगति को रोक लिया और बादशाह के यहाँ शिकायत भेजी। दीवान टोडरमल गुरुजी का भक्त था उसने बादशाह से कह कर लिखवा दिया कि गुरु अमरदास जी साहब और उनके साथियों से कोई टैक्स नहीं लिया जाय।

यात्रा

इस यात्रा से लौटने के कई वर्ष बाद आपने एक बावडी तैयार कराई जो अति पवित्र करार दी गई और सिखों का एक प्रकार का तीर्थ सा बन गई।

इस बावड़ी के बन जाने पर मरवाहे खत्रियों का पुरोहित जो कि शिवनाथ का शिष्य था कुछ लोगों को लेकर लाहौर के सूबेदार के पास पहुँचा और शिकायत की कि सिख लोग न तो गायत्री मन्त्र में विश्वास रखते हैं और न तीर्थों में जाते हैं, उन्होंने तो बावडी को एक नया तीर्थ बना लिया है। सूबेदार ने गुरु जी के पास खबर भेज कर सफाई देने के लिये कुछ सिखों को बुलाया। वहाँ बाबा बुड्ढे और एक दो अन्य शिष्यों ने बताया कि हम एक परमात्मा को मानते हैं ? एक ओंकार इसका नाम है

परमात्मा के मिलने के लिये जो हमारे गुरु देवों ने हमे शिक्षा दी हैं उन पर चलते हैं। लंगर मे बिना किसी पक्षपात के सब को प्रसाद मिलता है। हम कभी भी किसी के नुकसान करने की बात नहीं सोचते। यह अवश्य है कि ब्राह्मण और पुरोहितों ने जो पाखड फैला रक्खा है उसमे हम विश्वास नहीं करते। सूबेदार गुरु जी से पहिले से ही परिचित था अत उसने मारवाहे, खत्री और ब्राह्मणों की पुकार अनुचित करार दे दी।

एक बार बादशाह अकबर गोइदवाल मे गुरु जी से मिलने आया। जब उसने और उसके साथियों ने कडाह प्रसाद पाया तो कहने लगा, शायद गुरु जी बुड्ढे आदमी हैं। इसीलिये हलुआ खाते हैं। बाबा बुड्ढा ने कहा यह सिख लोगों का प्रसाद है जो सभी आगुन्तकों को दिया जाता है। सवेरे जब बादशाह सेवा पर हाजिर हुआ तो कई गाव जागीर मे देने लगा। गुरु जी ने कहा बादशाह हम फकीरों को बन्धन मे नहीं पडना है। बादशाह गुरु जी के दर्शनों से निहायत ही खुश हुआ।

गुरु अमरदास जी साहिब का जस दूर दूर तक फैल रहा था। राजा रईसों के अलावा साधू सन्त और पीर फकीर भी बड़ी सख्या मे उनके दर्शनो को आते थे। भाई फिराया और बिदारा दोनों गोरख-नाथ के पथ के थे, वे एक दिन गुरु जी के दर्शनों के लिये आये और बहुत कुछ ज्ञान चर्चा गुरु जी से की और उसी दिन से जतर मंतरों के सारे पाखड छोड दिये और सच्चे परमेश्वर का ध्यान करने लगे।

एक कथा हमे ऐसी मिलती है कि तलवडी में एक लगडा सिख था उसे एक दिन एक आदमी ने कहा तू गुरु अमरदास साहिब की सेवा मे क्यों नहीं हाजिर होता। जब उन्होंने मुरदे जिला दिये हैं, तो तेरा पाव उनसे ठीक नहीं किया जायगा। वह सिख गोइन्दवाल मे गुरु जी की सेवा में हाजिर हुआ और लगडा से ठीक चलता फिरता पॉव वाला हो गया। भगवान कृष्ण ने कुबरी को बिल्कुल सुन्दर कटिवाली बना दिया था। यह कथा आम हिन्दुओं मे प्रचलित है। महापुरुषों के जीवन के सग सभी पंथों और समाजों मे ऐसी चमत्कार पूर्ण गाथाओं की बाहुल्यता प्राय मिलती हैं। इसी प्रकार प्रेमा नामक खत्री का गुरु जी ने अपनी सत्कृपा से कोढ दूर करके उनका उद्धार किया। वास्तव में महान् पुरुप जग के कल्याण के लिये ही आते हैं और उनकी निगाह मे न कोई छोटा होता है और न बडा, इसलिये समान रूप से सब का कल्याण करने मे अपने को लगा देते है। उनकी यही उदारता तात्कालिक समाज को अखरती है इसलिये वह रूढियों से बधा हुआ उन महापुरुषों की सराहना करने के बजाय निन्दा और सेवा करने के बजाय डाह करता है। गुरु अमरदास जी को भी आरभ से लेकर रूढिवादी और अज्ञान लोगों के कोप का भाजन न बनाना पडा हो ऐसी बात नहीं है वास्तव में महापुरुषों को एक समय क्या अनेक समय विरोधों का सामना करना ही पडता है।

गुरु अमरदास जी के आशीर्वादों से जहॉ दुखी बीमार अच्छे होने की कथायें हमे पढने को मिलती हैं, वहॉ लोगो ने उनकी सेवायें करके धनवान होने और अपने खोये हुए वैभव को प्राप्त करने के भी आशीर्वाद प्राप्त किये, गगूशाह नामक एक व्यक्ति ने बहुत दिनों इसी आशय से सेवा की। गुरुजी ने उसे दिल्ली मे व्यापार करके धनी होने का आशीर्वाद दिया। गंगू का व्यापार रात दिन अबाध गति

से बढ़ा और एक दिन वह इतना बडा धनी हो गया कि एक एक लाख की हुंडियों का भुगतान करने लग गया।

मनुष्य कितना कृतघ्न हो सकता है यह बात गंगू के उस आचरण से ज्ञात हो जाती है जो उसने गुरु जी की चिट्ठी पर एक गरीब ब्राह्मण की लड़की के व्याह के लिये ५०० रु० देने से इनकार करके प्रकट किया।

गुरु जी के आशीर्वादों और सहज उदारताओं की अनेक कथायें हैं जो सिख साहित्य में विस्तार के साथ पढ़ने को मिल सकती हैं। हमने तो केवल उनका आभास मात्र इन पृष्ठों में कराया है। हिन्दु कथा पुस्तकों में भगवान् शिव की उदारता और दयालुता की बहुत चर्चा है। लोग उनकी जरा सी सेवा करके बड़े २ वरदान प्राप्त कर लेते थे। वही बात हमे गुरु अमरदास जी के स्वभाव में दिखाई देती है। जिसने जो मांगा और चाहा उसे वही दिया।

गुरु अमरदास जी के स्वभाव और कार्यों का सिंहावलोकन

गुरु अमरदास जी साहब का स्वभाव अत्यन्त ही कोमल और दयालु था। उनके स्वभाव में बदले की भावना तनिक भी न थी वे आततायी को भी ईश्वर के न्याय पर छोड़ने वाली प्रकृति रखते थे। स्वत. दंड देने की उन्होंने कभी भी नहीं सोची। सहनशीलता जिस पराकाष्ठा की उनमें थी उसका जिक्र हम पिछले पृष्ठों में कर आये हैं कि दातू जी के पदाघात के जवाब में उन्होंने उसके पैर पकड़ कर कहा था आपके कोमल चरण में चोट तो नहीं लग गई। उपस्थित सिखों को यह बात बहुत बुरी लगी और लगनी भी थी क्योंकि मनुष्य स्वाभाव ही ऐसा है किन्तु गुरु अमरदास जी तो बहुत ऊँचे थे। वह तो साधारण मनुष्य स्वभाव को पार करके बहुत आगे बढ़ गये थे। जहाँ क्रोध का नाम भी न था केवल शांति विराजती थी।

स्वभाव आचरण

उत्पाती शेख और खत्रियों की विरोधता को तो अंत तक उन्होंने बरदाश्त किया हालांकि जरा भी वे शिष्यों को आज्ञा दे दे तो वे उन उत्पातियों का मिजाज ठीक कर देते किन्तु आपने सदैव शिष्यों से यही कहा हमें किसी से लडना नहीं है। उनके कामों का फल अवश्य ही उन्हें मिलेगा।

आपने एक नियम बना रखा था कि जो मुझसे मिलने को आये पहिले वह पंगति में बैठकर प्रसाद पावे। इस नियम का पालन खूब कड़ाई के साथ होता था यहाँ तक कि बादशाह अकबर को भी पहले पंगति मे बैठकर इस नियम का पालन करना पडा था। तब गुरु के दर्शन हुए। वास्तव में महापुरुषों और संस्थाओ के जीवन मे नियमों के पालने की कड़ाई भी उनके महत्व की द्योतक होती है। स्वयम गुरुजी भी उन नियमो का जो उन्होंने अपने नित के लिए बना रक्खे थे पालन बडी तत्परता से करते थे। घोर बुढ़ापे मे भी आप तारो की छाया में उठते, स्नान करते और जपुजी साहब का पाठ करते लंगर को देखते, दरबार लगाते, सारांश यह कि एक क्षण भी व्यर्थ न गंवाते। आपके इस प्रकार के जीवन को देखकर एक बार बाहर से आये हुए साधुओं ने आपसे कहा भी था कि गुरु जी इस वृद्धावस्था में तो आप इतना परिश्रम नहीं किया करें, किन्तु उन्होंने जवाब दिया। किसी को खाक छानते हीरा मिला था उस हीरे से साहूकार बन जाने पर भी उसने खाक छानना केवल इसलिए नहीं छोड़ा कि उसकी यह अच्छी हालत खाक छानने ही से तो हुई है, फिर जब यह पद मुझे सेवा और कठोर तप करने से प्राप्त हुआ है, तब उस काम को मैं कैसे छोड दूँ।

गरीबी के दुखों को देखकर तो गुरु अमरदास जी साहब का दिल उमड़ आता था। वे उनका दुख दूर करने में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ते थे। एक बार गोइन्दवाल में ताप तिजारी का बड़ा जोर हुआ लोग उससे बड़ा कष्ट पाने लगे। गुरु जी से लोगों का यह दुख न देखा गया और तिजारी ताप का स्थिर इलाज अपने हाथ में ले लिया।[1]

यह ससार दुखियों और पीड़ितों से भरा पड़ा है, इसमे कोई सहानुभूति करने वाला चाहिये फिर उसके लिये फुरसत नहीं मिल सकती, लंगड़े, लूले, बहरे और गूगे भी उनकी सेवा में आने लगे और अपने दुखों को दूर कराने लगे। चारों तरफ शोहरत यह हो रही थी कि गुरु जी मुरदों को जिला देते हैं फिर उनके लिये साधारण बीमारियों और कष्टों को दूर कर देना क्या बड़ी बात है। इसी विश्वास से लोग भगे चले आते थे और गुरु जी भी बड़े प्रेम से उनके कष्टों का निवारण करते थे।

गुरु जी के लंगर मे भारी खर्च था। धन संग्रह करने की उनकी प्रवृति न थी, फिर भी उनके पास ऐसे लोग भी पहुँच जाते जो केवल पैसे के ही स्वार्थी होते थे। गुरु जी बिना भेद भाव के उन्हे भी या तो युक्ति बताते या परम पिता परमात्मा की महान् कृपा से प्राप्त हुए अपने चमत्कार से उनको धन देकर सहायता करते। एक ब्राह्मण की कन्या के विवाह के लिये जब कहीं से कुछ नहीं मिला तो आपने ही ५००) दिये।

हमने गुरु अंगदेव जी महाराज के प्रसग मे यह बता दिया है कि उन्होंने गुरुमुखी वर्णमाला का प्रचार करके तथा गुरु नानक देव जी की वाणियों और उनके जीवन चरित को लेखबद्ध कराके शिष्य धर्म की एक सुन्दर संगठन प्रणाली खड़ी कर दी थी। गुरु अमरदास जी साहब ने भी प्रचलित गुरुओं के काम आगे बढ़ाने के लिये अपने समय मे तीन ऐसे महान् कार्य किये, जिससे संगठन की जंजीर और भी मज़बूत हुई। साथ ही उन्होंने पिछले कार्यों को भी आगे बढ़ाया, एक बार उपदेश देते हुए उन्होंने कहा था, जो समझता है कि गुरुओं का बताया हुआ रास्ता मनुष्य जीवन के लिये कल्याणकारी है, उसका कर्त्तव्य है कि गुरुमुखी पढ़े और जो पढ़े हुए हैं वह दूसरों को पढावें। गुरु वाणियों को स्वयम पाठ करे और दूसरों को करावें। उनके तीन कार्य्यों मे पहिला कार्य्य था—मजियों की स्थापना। मजी के अर्थ साधारणत छोटी खाट के होते हैं।[2] जिन्हे नानक धर्म मे दृढ़ तथा बुद्धि चतुर देखते थे, गुरुजी उन्हीं को उपदेश का अधिकार दे देते थे। इस तरह उन्होंने बाईस श्रेष्ठ शिष्यों को उपदेश का अधिकार दिया। मजीधर अपने स्थान और क्षेत्र में सिखी का प्रचार करता था।

उनके कार्य

सिख साहित्य मे गुरुओं को पातशाह या सच्चे पातशाह के नाम से याद किया है भक्तों की अन्तरात्मा ने कहा सच्चे बादशाह तो यही हैं। यह प्रेम की, तप की और मानव जीवन के कल्याण की भावनाओं से ओत प्रोत है और वह बादशाही तो खून, खच्चर, दंगा, फरेब और आतंक की बादशाही है तब इसमे राई रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि गुरु सच्चे बादशाह हैं।

किन्तु अब तक गुरुओं के लिये प्रयोग होने वाली यह बादशाही केवल भावनाओं और शब्दों पर

१ लिखा है कि गुरुजी ने तिजारी ताप को पिंजडे में बन्द कर दिया था।

२ चूंकि प्रचार के समय इन लोगों को बैठने के लिये मजियां दी जाती थीं। अत उन प्रचारकों का ही नाम मंजी पड गया।

ही निर्भर थी लेकिन गुरु अमरदास जी साहिब ने मंजियाँ कायम करके इस बादशाहत को क्रियात्मक रूप दे दिया। इन मंजियों की स्थापना से गुरुमुखी शिक्षा और शिष्य धर्म का खूब ही प्रचार हुआ। रात दिन शिष्यों की तादाद बढ़ने लगी।

एक बार मे गुरुजी ने कुरुक्षेत्र की ओर तीर्थ यात्रा की थी। वहाँ उन्होंने जो कुछ देखा उसमे संतोष नहीं हुआ। धर्म के नाम पर यात्रियों को पंडे किस प्रकार लूटते हैं और केवल स्नान से ही अपने को पवित्र हुआ मानने की लालसा मे लोग यहाँ आकर कितना कष्ट उठाते हैं। यह सब उनके ध्यान मे आया। इस यात्रा मे उन्होंने यह भी देखा था कि घाटों पर किस प्रकार भारी टैक्स गरीब लोगों को देना पड़ता है। लौटकर एक अर्से तक उन्होंने इस बात को दिमाग में रक्खा।

सम्वत १६१५ वि० मे उन्होंने एक सुविशाल बावडी जो अति पवित्र नीर से भरी रहती थी तैयार कराई। थोडे दिन मे ही यह बावडी गया जैसा तीर्थ हो गया। इसमे ८४ सीढियों पर चौरासी बार जपुजी का पाठ करने मे चौरासी लाख योनियों मे छूटने का आभास शिष्य लोगों को होने लगा। इस तरह से लाहौर और अमृतसर आदि प्रदेशों से सुदूर कुरुक्षेत्र अथवा हरिद्वार की ओर से मुडकर इस बावडी की ओर ही लोगों का प्रवाह केन्द्रीभूत होने लगा। इसका अन्तरीय प्रवाह जो हुआ वह यही कि शिष्यों की भावनायें अधिकाधिक पौराणिक धर्म की ओर से मुडकर नानक धर्म की ओर सीमाबद्ध होने लगीं। और अपने धर्म मे दृढ़ होने का शिष्य लोगों के लिये यह एक और साधन हो गया। पुराणों में हम एक निषेधात्मक उपदेश पढते हैं और वह यह कि यदि मस्त हाथी दौड़ता हुआ चला आ रहा हो तो बजाय इसके कि पास के जैन मंदिर मे घुसने से प्राण बचते हों—हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना लाख दर्जे अच्छा है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि आज भी पुराने खयाल के हजारों हिन्दू जैन मन्दिरों मे नहीं जाते हैं। हम समझते हैं कि पुराणों मे यह कड़ुवा उपदेश इसीलिये दिया गया होगा कि हिन्दू जैनियो के जाल से बचे रहे। हम कहते हैं कि पौराणिक जाल से शिष्यों को एक हद तक रोकने मे और शिष्यत्व को अडोल बनाने में इस बावडी ने बडा काम किया। इस बावड़ी के प्रभाव को उस समय के पौराणिक लोग न समझे हों ऐसी बात नहीं है। मरवाहे खत्रियों के पुरोहित ने ब्राह्मणों का एक दल ले जाकर सूबेदार के यहाँ शिकायत भी की थी।

इस बावडी के बनने के समय के साथ जो इतिहास लगा हुआ है उसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। सभी श्रद्धालु सिखों ने इस बावडी को बडे चाव और उत्साह से तैयार किया था गुरु रामदास जी ने स्वयम इसमे काम किया था। इन सब बातों ने सिखों के हृदय मे इस बावडी के प्रति स्वभावत प्रेम और श्रद्धा पैदा कर दी थी जो कि उनके वर्तमान मे धारण किये धार्मिक खयालात को और भी पुष्ट करने मे सहायक हुई। इस तरह मंजियों की तरह ही गुरु अमरदास जी का यह कार्य भी शिष्यों की वृद्धि करने और उन्हे शिष्य धर्म में दृढ़ बनाने के लिये अत्यधिक उपयोगी साबित हुआ।

सिख सगठन के लिये तीसरा काम जो गुरु अमरदास जी साहिब ने किया, वह था मेला भरने का। सिख इतिहासों में लिखा है कि बाबा बुड्ढा, बाला आदि ने एक चित्त होकर गुरु जी से प्रार्थना की कि सच्चे पातशाह कोई ऐसा ढंग निकालिये जिस मे एक दिन सब शिष्य आपस में मिलजुल लिया करें और सतसंग हो जाया करे। इससे हमारे दिमाग मे दो बातें पैदा होती हैं, एक तो यह कि इस समय तक स्थिति इतनी हो चुकी थी कि शिष्य लोग गैर शिष्यों की अपेक्षा शिष्यों को परस्पर अधिक चाहने लग गये थे और दूसरी यह कि प्रत्येक समझदार शिष्य यह चाहने लग गया था कि हमारा समाज बढ़े और

उसमें भ्रातृ भाव की वृद्धि हो, इसीलिये बुड्ढा आदि ने गुरु जी के सामने शिष्यों के परस्पर मिलने जुलने के लिये साधन निकालने को कहा। गुरु जी स्वत ही इस ओर विचार कर रहे थे। अतः उन्होंने एक मेले की नींव डाली। पहले पहल यह मेला संवत् १६२८ वि० मे जुडा। इसे जोडने के लिये सभी मंजियों और सगतों के पास चिट्ठियाँ जारी कर दी गई थीं। बडी भारी सख्या में शिष्य लोग इकट्ठे हुए जो लोग शिष्य नहीं थे, वे भी बडी सख्या मे आये। बावली में स्नान के बाद लोगों ने जपु जी का पाठ किया। संगतों ने आपस मे ज्ञानचर्चा की, कीर्तन हुआ और दरबार लगा। इस तरह इस मेले का आरम्भ हो गया।

यह मेला वास्तव मे एक धार्मिक समारोह और वार्षिक अधिवेशन था। जिससे शिष्यों को प्रति भर्ष एक नई स्फूर्ति मिलती थी। किसी समय हिन्दू तीर्थों का भी यही उद्देश्य था। जैन और बौद्ध मतों को परास्त करके जो हिन्दू धर्म बनाया गया उसे जीवित और सचेतन बनाये रखने के लिये ही तीर्थों की स्थापना की गई थी और इसी उद्देश्य से पर्व नियत किए गये थे किन्तु आगे चलकर यह तीर्थ और पर्व चन्द लोगों की जीविका का साधन बन गये और मेलों मे जाने वाले भी सही उद्देश्य को भूल गये थे। वे भी जन्म भर के पापों को केवल एक दिन मे उतारने की भावना से इन मेलों मे जाते थे। उनके सामने सगठन और समाज स्वच्छता की रक्षा का कोई खयाल और सवाल न था।

वैसाखी के मेले से शिष्यों के अन्दर सौहार्द, जान पहचान और मेल बढाने मे काफी सहायता मिली। और इस तरह से दूर २ फैले हुए सिख एक सूत्र मे आबद्ध होने लने।

मिलने जुलने का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य मे कुछ सीखता है और अपनी कमीबेशी का अनुभव करता है। साथ ही मेले जैसे मिलन मे से मनुष्य भविष्य के लिए कुछ इरादे बनाकर लाता है किन्तु उसके इरादे उस मेले की स्थिति और प्रभाव के अनुसार बनते हैं। वैसाखी के इस मेले से प्रत्येक सिख यह भावनाएँ लेकर लौटता था कि मुझे अगले साल तक इतनी बाणियाँ याद कर लेनी हैं। इतना पढ लेना है और शिष्य-शिष्य उसी प्रकार भाई हैं जिस प्रकार एक पिता की सतानें। प्रत्येक शिष्य मेले से लौटकर अपने गाँव मे, साथियों मे गुरु की महानता और मेले मे होने वाली सत वार्ताओं की चर्चा करता। इससे सहज ही सिख धर्म का प्रचार वृद्धि को प्राप्त होने लगा। इस तरह गुरु अमरदास जी साहिब के तीनों काम शिष्यो की संख्या बढाने और उनमें दृढता पैदा करने में खूब ही उपयोगी सिद्ध हो रह थे।

गुरु अमरदास जी साहिब जैसे स्वभाव के सरल और मीठे थे वैसे ही उनके उपदेश भी सरल और मीठे होते थे। उदाहरण के तौर पर एक घटना पेश करते है —एक दिन कई शिष्यों ने पूछा, सच्चे पातशाह। सिक्खी के लक्षण बताने की कृपा कीजिये। गुरु जी ने कहा, "प्रात उठकर स्नान करना, परम पिता परमात्मा का नाम लेना, यथा शक्ति सुपात्र को दान देना। मीठा बोलना, दंभ छोडना, परधन और परदारा से बचना, अपने सिद्धान्तों और कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहना, नित प्रति सत्सग करना, गुरुबाणी मे श्रद्धा रखना, किसी का दिल न दुखाना, किसी की निन्दा न करना, झूठ और फरेब से बचना, विश्वासघात न करना, आगत जनों का सत्कार करना, धर्म कीर्तन करना, सगत की टहल करना, किसी के साथ रागद्वेष न करना, गुरु महिमा को समझना, स्वयम विद्वान हो तो दूसरों को पढाना, गुरुमुखी सीखना, किसी का बुरा न चिंतना, भूखे को भोजन कराना, नंगे को वस्त्र देना, परोपकार मे मन लगाना, किसी के दोषों को न देखना, भूत

उनके उपदेश

प्रेत, देवी देवता की पूजा से दूर रहना और गुरु के बताये मार्ग पर चलना यह सिखों के लक्षण हैं।'

हम समझते हैं अत्याचार न सहना, यह एक बात और इस उपदेश में जोड़ दी जाती तो फिर क्या शेष रह जाता। जिसकी मनुष्य जीवन को सफल बनाने और इहि संसार में सन्मान पूर्वक जीने तथा परलोक प्राप्त करने के लिये अत्यंत जरूरत होती है। हमारी समझमें तो कुछ भी शेष नहीं रह जाता। इस एक बात को दसवें पात शाह गुरु गोविन्दजी ने सिख धर्म में जोड दिया था। इस तरह से यह पूर्ण मानव धर्म बन गया। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि गुरु अमरदास जी के उपदेश मनुष्य समाज की भलाई के लिए कितने ऊँचे होते थे और कितनी सरल और मीठी भाषा में। हम तो समझते हैं। महात्मा बुद्ध के बाद इतने लंबे अर्से में इस मिठासके साथ पहले पहल सिख गुरुओं ने ही उपदेश देना शुरू किया था। इस प्रकार के सरल और मधुर उपदेशों से सहज ही हजारों मनुष्य सिख धर्म में अनुप्राणित हुए थे। और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इन तीसरे पातशाह के उपायों द्वारा सिख सम्प्रदाय की नींव भी बहुत कुछ पक्की होगई थी।

कहा जाता है गुरु अमरदास जी साहिब ६२ वर्ष की अवस्था में गुरु अंगद देव जी के शिष्य हुए थे और १२ वर्ष के कठोर तप से उन्होंने गुरु गादी प्राप्त की थी इसके बाद २२ वर्ष तक उन्होंने पातशाही की और संवत १६३१ विक्रमी में मंगल के दिन भाद्रपद शुक्ल पूर्णमासी के दिन दो घड़ी रात्रि शेप रहे परमधाम को सिधार गये।

गुरुधाम की यात्रा

इस दिन गोइंदवाल में हजारों ही शिष्य मौजूद थे। दिन भर शब्द कीर्तन और जपुजी का पाठ तथा सतसंग हुआ। लोगों ने उनके बार २ दर्शन किए। इस समय सभी सेवक, मझियों के आचार्य और सगे सम्बन्धी उपस्थित थे। गुरु जी ने दरबार में सब को संबोधित करते हुए कहा कि आप लोग यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि मैं गुरुआई रामदास जी को सौंपता हूँ। जो सब तरह से इसके योग्य हैं। यह कह कर उन्होंने रामदास जी की परिक्रमा की और गुरुआई की रस्म पूरी करके माथा टेका। सब लोगों ने मत्था टेका और गुरु रामदास जी को अपना गुरु स्वीकार किया[1] किन्तु गुरु अमरदास जी के पुत्र मोहन जी और उनके दूसरे भाई रामे ने मत्था नहीं टेका और इस कार्य का विरोध भी किया। गुरु जी के दूसरे लड़के मोहरी ने बड़ी श्रद्धा के साथ रामदास जी को गुरु मान लिया और कहा जिस तरह मेरी अब तक के तीन गुरुओं में श्रद्धा रही है उसी तरह इनमें भी रहेगी। कहा जाता है पीछे गुरु अमरदास जी के समझाने बुझाने से मोहन जी और रामे जी भी मान गये।

यहां यह बता देना भी जरूरी है कि गुरु रामदास जी गुरु अमरदास जी के जमाई थे और बीबी भानी जी की शादी इनके साथ हुई थी।

जब गुरु अमरदास जी ने इस संसार से विदा होने का समय जाना तो अपने पुत्र मोहरी को बुलाकर कहा कि हमारे पीछे कोई मनमत न करना गुरुबाणी का उच्चार और शब्द कीर्तन करना कराना। शोक नहीं मनाना, चूंकि परमात्मा की आज्ञा हो चुकी है इसलिये मुझे जाना है। मेरे बाद गरुड पुराण बचवाने की भी गलती न करना न पिंड दान भरना।

इस प्रकार का उपदेश करके गुरु जी विदा हो गये। उनकी आज्ञा के अनुसार कोई शोक नहीं मनाया गया और विधिवत जैसा भी उन्होंने कहा वैसा ही कर दिया गया।[2]

१. संवत १६२१ भादवा सुदी १३। २ संवत १६३१ वि की भादों सुदी १५ को देहवसान हुआ।

कनिंघम ने गुरु अमरदास जी के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं :—

"अमरदास जी गुरु नानक देव की तरह गर्व के साथ कहते थे—"अग्नि में जिनका विनाश नहीं किन्तु अनुताप की ज्वाला से जो जले जा रहे हैं वही सच्चे संत हैं। अनुतप्त दीन मनुष्य ही ईश्वर उपासना का प्रान्म प्रसाद पाता हैं। अमरदास जी ने धीरे-धीरे कुप्रथाओं का विनाश किया। कठोर विधि-विधान न फैलाकर प्राणों के भीतर विश्वास का बीज बो दिया। लोगो को सद्व्यवहार से वशीभूत कर उन्हें दोष संशोधन की राह दिखा दी ... ऐसा कहा जाता है कि उनकी पुत्री (भानी बीबी) ने अपनी अनुपम भक्ति से उनसे यह वरदान भी प्राप्त कर लिया था कि उसकी सतति ही गुरुगादी की उत्तराधिकारिणी होगी।"

मि० फोरिस्टर, मि० मैलकम आदि और भी कई इतिहासकारों ने उनके सम्बन्ध में जनरल कनिंघम से मिलते जुलते ही विचार प्रकट किये है।

गुरु अमरदास जी की वाणियाँ

अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की तरह गुरु अमरदास जी ने भी कई राग रागनियों में अपने उद्गार प्रकट किये हैं जो श्री गुरु आदि ग्रन्थ साहब में महला तीन के शीर्षकों में दर्ज हैं। हम भी यहा पर कुछ वाणियों उद्धृत करके उनके प्रसंग को समाप्त करते हैं :—

श्रीराग— सुख सागरु हरि नामु है गुरमुखि पाइआ जाहि।
मन दिनु नामु घिआईऐ सहज नामि समाइ॥
अन्दरु रचै हरि सच सिउ रसना हरि गुण गाइ।
भाई रे जगु दुखिआ दूजै भाइ।
गुरु सरणाई सुख लहहि अनदिनुनामधिआइ। (रहाउ)
साचे मैलु न लागही मनु निरमल हरि धिआइ॥
गुर मुखि सबदु पछाणिऐ हरि अंम्रित नामि समाइ।
गुर गिआनु प्रचडु बलाइआ अगिआनु अंधेरा जाइ॥
मन मुख मैले मलु भरेहउ मैं त्रिसना विकारु।
बिनु सबदै मैलु न उतरै मरि जमहि होइ खुआरु॥
धातु स्वाजी पल चिर है नाउर वास न पान।
गुर मुखि जप तप सजमी हरि कै नामु पिआस॥
गुर मुखि सदा धिआइऐ एक नामु करतार।
नानक नामु धिआईऐ सभ जीआ का आधारु॥

माझ राग— मेरा प्रभु निरमलु अगम अपारा।
बिनु तकड़ी तोलै ससारा॥
गुर मुखि होवै सोई बूझै गुण कहि गुणी समावणिआ॥
हउ वारी जीउ वारी हरि का नामु मनि वसावणिआ।
जो सचि लागे से अन दिनु जागै दरि सचै सोभा पावणिआ॥ (रहाउ)
आपि सुणै ते आपै वेखै।
जिसनो नदरि करै सोई जन लेखे॥

आपे लाइलए सो लागै गुर सुखि सचु कमावणिआ ॥२॥
जिसु आपि भुलाए सु किथै हथु पाए ।
पूरब लिखिआ सो मेटणा न जाए ।
जिन सति गुरु मिलिआ से वड भागी पूरै करमि मिलावणिआ ॥३॥
पेईअड़ै धन अन दिनु सुती । कति विसारी अवगणि मुती ॥
अनदिनु सदा फिरै बिल लादी बिनु पिर नीदन न पावणिआ ॥४॥

राग गउडी गुआरेरी—मनुमारे धातु मरि जाइ । बिनु मूए कैसे हरि पाइ ॥
मनु मरै दारू जाणै कोई । मनु सबदि मरै बूझै जनु सोइ ॥१॥
जिस नो बखसे दे वडिआई । गुरपरसादि बसै हरि मन आई ॥ रहाउ
गुर मुखि करणी काहू कमावै । ताइसु मनकी सोझीपावै ।
मनु मै मतु मैगल सिक हारा । गुरु अकुस मारि जीवालणहारा ॥२॥
मनु असाधु साधै जनु कोइ । अचरु चरंता निरमलु होइ ॥
गुर मुखि इहु मनु लइआ सवारि । हउमै विचहुत जै विकार ॥३॥
जो धुरि राखि अनु मेलि मिलाइ । कदेन विछुडहि सबदि समाइ ॥
अपणी कला आपही जाणै । नानक गुर मुखि नामु पछाणै ॥४॥

राग आसा— हरि दरसनु पावै वडभागि । गुर कै सबदि सवै वैरागि ।
खटु दरसन बरतै वरतारा । गुर का दरसनु अगम अपारा ॥
गुर कै दरसनि मुकति गति होइ । साचा आपि वसै मनि सोइ ॥ रहाउ
गुर दरसनि उधरै ससारा । जे को लाए भाउ पिआरा ॥
भाउ पिआरा लाए विरला कोइ । गुर कै दरसनि सदा सुखु होइ ।
गुर कै दरसनि मोख दुआर । सति गुरु सेवै परवार साधार ॥
निगुरे कउ गति काई नाही । अव गुणी मुठे चोटाखाई ।
गुर कै सबदि सुखु साति सरीर । गुर मुखि ताकउ लगै न पीर ॥
जम कानु तिसु नेडिन आवै । नानक गुर मुखि साचि समावै ॥

राग बिलावलु— जग कऊआ मुख चु चि गिआनु । अतरि लोभु झूठु अभिमानु ।
बिनु नावै पाज लगुहनिदान सति गुर सेवि नामु वसै मनि चीति ।
गुरु भेटे हरि नामु चेतावै बिनु नावै होर झूठु परीति । रहाउ
गुरि कहि आसा कार कमावहु । सबद चीति सहज घरिआवहु ॥
साचे नाइ वडाई पावहु । आपनि बूझै लोक बुझावै ।
मन का अंधा अंधु कमावै । दरु घरु महलु ठौर कैसे पावै ।
हरिजीउ सेवीऐ अतरिजामी । घट घट अतरि जिसकी जोति समानी
तिसु नालि किआ चलै पहनामी । साचा नामु साचै सबदि जानै ।

आपै आपि मिलै चूकै अभिमानै। गुर मुखि नामु सदा सदा वखानै।
सत गुरि सेवऐ दूजी दूर मति जाई। अउगुण काटि पापा मति खाई।
कचन काया जोती जोति समाई। सतिगुर मिलिये वडी वडिआई॥
दुखु काटै हिरदै नामु वसाई। नामु रते सदा सुख पाई।
गुर मति मानिआ करणी सारु। गुर मति मानिआ मोख दुआरु॥
नानक गुर मति मानि आ परवारे साधारु॥

छठा अध्याय

गुरु रामदास जी के जीवन की झाँकी

गुरु रामदास जी साहिब का जन्म कार्तिक वदी २ सवत् १५८१ वि० मे रविवार के दिन चार घड़ी दिन चढ़े हरिदास जी सोढ़ी खत्री के घर माई दया कुँवरि जी के उदर से लाहौर की चूना मडी मे हुआ था। उन दिनो शेरशाह सूरी की अमलदारी थी और हुमायूँ मुगल बादशाह भागता फिर रहा था। कहा जाता है गुरु रामदास जी की माता बहुत ही छोटी उम्र का गुरु जी को छोड कर चल बसीं थी। पिता भी जब कि उनकी उम्र केवल सात वर्ष की थी, उन्हे छोड़ कर स्वर्ग सिधार गये। इसलिये उनकी नानी उन्हे बासरके मे ले गई और वहीं आपका लालन पालन हुआ। जब आप बारह वर्ष के हुए तो अपने कुछ साथियो के साथ गुरु अमरदास के दर्शन करने के लिये गोइन्दवाल आये और तभी से वहीं रह गये धर्मशाला की सफाई रखना और गुरु जी की सेवा करना, आपने अपना उद्देश्य बना लिया। आप चेहरे मुहरे और रंग रूप की दृष्टि से बहुत ही खूबसूरत थे। जो भी आपको देख लेता आपकी ओर आकर्षित हो जाता। ऊँचा ललाट और चौड़े कधे आपके पुष्ट शरीर की साक्षी देते थे।

जन्म और पहिली अवस्था

गरु अमरदास जी साहिब ने अपनी बडी पुत्री बीबी भानी के लिये जो बहुत ही योग्य और समझदार थीं, रामदासजी को सर्वथा योग्य समझा और संवत् १६१२ वि० मे उनके ही साथ शादी कर दी।

बीबी भानी जी के तीन संताने हुई (१) पृथ्वीचन्द (२) महादेव (३) अर्जुनदेव।

गरु रामदास जी साहिब के बचपन और उस समय मे उनके द्वारा गरु सेवा और जन सेवा सम्बन्धी किये गये कार्यों का वर्णन हम कर चुके है। अब गुरु होने के बाद उनके समय मे जो कुछ हुआ उस पर प्रकाश डालते है। गुरु रामदास जी साहिब ने भी कुछ लोगों को उपदेश देने का अधिकार दिया था, भाई हंदाल उन उपदेशकों मे से ही था। पहिले यह लंगर मे काम करता था किन्तु गुरु जी ने जब इसकी सच्ची भक्ति का परिचय ले लिया तो इसे संगतों को उपदेश देने के लिये मुकर्रिर कर दिया। इसने जिन्दगी भर बड़े प्रेम से अपने कर्त्तव्य को निभाया किन्तु इसकी संतान के लोगों ने गुरुओं की जो जन्म साखिया लिखीं उनमे सिद्धान्त विरोधी श्लोक रख दिये। अत उन लोगों की सिख समाज के अन्दर से कदर उठ गई।

गुरुआई मिलने के बाद

गुरु अमरदास जी की भाँति आप सच्चे भक्तों और दीन दुखियों को आशीर्वाद और धन देकर सुखी करने में भी पीछे नहीं रहते थे। हम भाई भगतू को एक प्रसिद्ध सिख सरदार के रूप में देखते हैं। कैथल राज घराने की नींव इन्हीं की सतान ने डलवाई थी और यह भी गौरव इस घराने को है कि सूरज प्रकाश जैसा महान् सिख ग्रंथ इन्हीं की संतान की दानवृत्ति और उदारता से उत्साहित होकर सिख कवियों ने बनाया था। इन भाई भगतू के पिता भाई उदयविराड एक लम्बे अर्से तक गुरु रामदास जी की सेवा मे रहे थे। विराड जाटों का वह खान्दान है जिनकी एक बडी रियासत पंजाब में फरीदकोट के नाम से मशहूर है। इसी तरह की अनेकों कथा है किन्तु स्थानाभाव से हम सब को नहीं दे रहे हैं।

परमधाम को जाने से पहले गुरु अमरदास जी ने रामदास जी साहिब के जिम्मे एक काम सौंपा था। और वह काम यह था कि तु ग, सुल्तान और गुमटाला गाँवो के बीच में जो जंगल है उसके बीच मे एक सरोवर बनानी चाहिए।

इस सुन्दर जगल की भूमि किसी एक की न थी आस पास के अनेकों जाट जमींदार उसके मालिक थे। किन्तु जब उन्होंने गुरुजी की इस इच्छा को सुना तो वह जगल उन्होंने उनके लिये बता दिया। भूमि मिलते ही गुरु रामदास जी ने वहाँ अपने कुछ शिष्यों को लेकर एक छोटा सा गाँव बसाया। जो रामदास-पुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस दिन सवत् १६२६ वि० के अषाढ महीने की ५ वीं थी।[1] यहाँ पर जो गुरु साहिब ने एक सरोवर बनवाया वह अमरसर व अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अमृतसर का सिख लोगों मे उतना ही सत्कार है जितना ईसाइया का यरूसलम और मुसलमानों का मक्के-शरीफ से है। इस समय समस्त सिख तीर्थों मे अमृतसर का दर्जा बहुत ऊँचा है।

इस सुन्दर और पवित्र सरोवर के बनने के आरम्भ में ही सवत् १६३३ मे बादशाह अकबर ने यहीं आकर गुरु जी के दर्शन किये वह देहली से लाहौर को जा रहा था। रास्ते मे उसने सुना कि गुरु अमरदास जी साहिब की गद्दी पर इस समय गुरु रामदास जी साहिब हैं उसे इस नये गुरु के दर्शनों की बडी उत्कठा हुई और गुरुजी की सेवा मे हाजिर हुआ। धर्म विषयक चर्चाओं के बाद अकबर ने माफी में कुछ गाँव गुरु जी को देने चाहे किन्तु किसी प्रकार की जागीर या माफी लेने से उन्होंने इन्कार कर दिया। फिर भी बादशाह ने कुछ भूमि आपकी सरोवर के लिये दे ही दी। अमृतसर के चारों ओर रामदासपुर थोडे ही दिनों मे बढकर एक अच्छा खासा नगर हो गया और उसमे प्राय. सभी जातियों के लोग आकर बस गये।

अमृतसर के सम्बन्ध में कई चमत्कारिक कथाओं का वर्णन है। दुनीचन्द नामी किसी विशिष्ट पुरुष की स्पष्टवक्ता एक पुत्री अपने पगु पति को यहा लेकर आई थी। इसमे स्नान करते ही उसका शरीर बिल्कुल ठीक राजकुमारों जैसा हो गया। एक काक जो पानी पीने के लिये आया उसका शरीर भी श्वेत हो गया।

एक बार बाबा श्रीचन्द जी आपसे मिलने के लिए आये। आपने और सिखो के साथ आकर बाबा जी का सत्कार किया। श्रीचंद-जी भी गुरु अमरदास जी की भक्ति और लोक सेवा के कामों मे बहुत प्रसन्न हुए और कहा मुझे तो यकीन होता है कि आपका परिवार फूलेगा फलेगा।

इसी प्रकार उनका यश सुनकर एक बार सिद्ध लोगो की भी जमात उनके दर्शन करने और ज्ञान

१. कहीं कहीं सवत् १६२७ अषाढ़ १३ लिखा।

जन्म स्थान गुरु रामदास साहिब

डेहरा गुरु अर्जुनदेव जी लाहौर
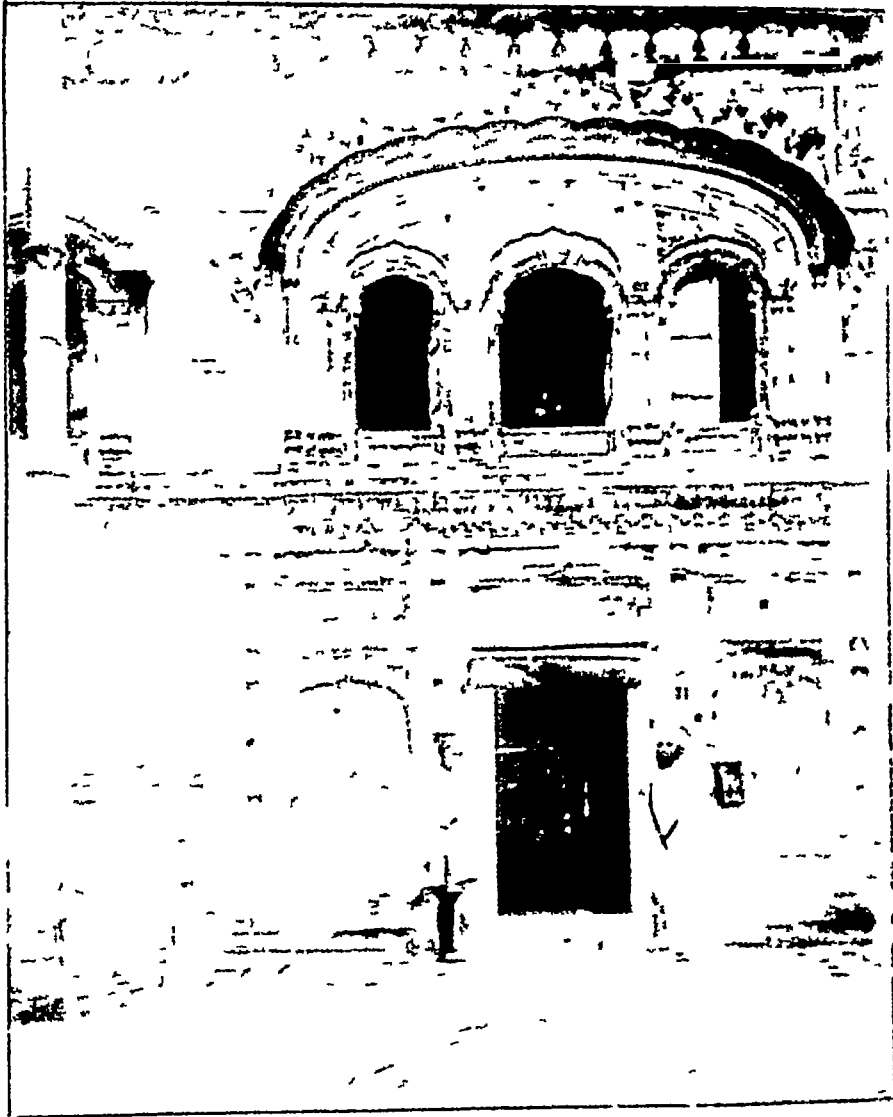
चर्चा करने के लिये आई। गुरुजी के लंगर को देखकर सिद्ध बड़े खुश हुए, उनमें से एक ने कहा, आपके यहाँ हमें एक ही कमी दिखाई देती है और वह यह कि आप अपने शिष्यों को योग नहीं सिखाते हैं। गुरु जी ने कहा आप लोग तो योग करते हैं न, बतावें परमात्मा को आप में से किसने पहचाना है ? योग के नाम पर पाखंड फैला रक्खा है आप लोगों ने। हमारे सिखों को ऐसे योग की आवश्यकता नहीं है।

हाथि कर तंत बजावै जोगी थोथा वाजै बेन।
गुर मत हरि गुन बोलहु जोगी एहु मनुआ हरिरंग भेन॥
जोगी हरि देहुमती—उपदेश
जुग जुग हरि हरि हरि एको वर्त्तै तिसु भागे हम आदेश।

एक बार आप अपनी जन्मभूमि लाहौर भी गये। आपके खानदान के सोढी लोग जब भी आपसे मिलते यही प्रार्थना करते कि सच्चे बादशाह एक दिन आकर तो आप अपनी जन्मभूमि को पवित्र कीजिये। एक बार लाहौर से शिष्य लोगों की संगति आई उसने भी यही प्रार्थना की। शिष्य लोगों की प्रार्थना को गुरुजी न टाल सके और लाहौर गये। वहाँ आपने अपनी जन्मभूमि के स्थान पर एक मकान बनवाया। कई दिन रहकर शिष्य लोगों को उपदेश दिया। लाहौर के हाकिम और अन्य रईस लोग भी गुरु के दर्शनों को आये और उपदेश ग्रहण किया। वहाँ से लौटकर आपने कोई यात्रा नहीं की। चक में ही रह कर लोगों को उपदेश देते रहे।

इस तरह करीब ७ वर्ष तक आपने गुरुआई की और अपना समय समाप्त हुआ समझ कर अपने सबसे छोटे पुत्र अर्जुनदेव जी को गुरुआई सौंप दी। अर्जुनदेव जी से दो बड़े पुत्र और थे किन्तु बीच वाले महादेव जी तो निर इच्छित थे। वे प्राय: उदास रहा करते थे। उनका किसी भी काम में जी नहीं लगता था। पृथ्वीचंद अवश्य गुरुआई चाहते थे किन्तु वे अनेक परीक्षाओं में जँचे नहीं अत: गुरु रामदास जी ने उनको गुरुआई नहीं दी।

एक बार गुरुजी ने पृथ्वीचन्द से कहा कि लाहौर के अपने कुनबे के लोगों के यहाँ विवाह है। वहाँ तुम चले जाओ। पृथ्वीचंद साफ इनकारी होगये। उन्होंने समझा कि इस तरह से मुझे यहाँ से हटा रहे हैं। और अर्जुनदेव को गद्दी देना चाहते हैं किन्तु अर्जुनदेव जी से जब कहा गया तो वे तुरन्त तैयार होगए। चलते समय गुरुजी ने उनसे कहा देखो जब तक हम बुलावें नहीं तब तक नहीं आना। इसे भी उन्होंने स्वीकार कर लिया। लाहौर में ही जहाँ वह गये थे, दिन बिताने लगे किन्तु पिता एवं गुरु के चरणों में बैठने में जिस आनन्द का अनुभव उन्हें होता था। उसके लिये रातदिन छटपटाने लगे। उन्होंने अंत में एक पत्र लिखा। एक लंबे अर्से तक भी उसका कोई जवाब न आने पर दूसरा लिखा। जब उसका भी जवाब नहीं आया तो एक पक्के विश्वासी आदमी को भेजा। उसने वह पत्र गुरु जी के ही हाथ में जाकर दिया। गुरु जी को जब यह मालूम हुआ कि उन्हें दो पत्र नहीं मिले हैं तो वे समझ गये कि यह सब कारस्तानी पृथ्वीचंद की है। पूछने पर पृथ्वीचन्द ने कह दिया मैं अर्जुनदेव के पत्रों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता किन्तु वे दोनों पत्र पृथ्वीचंद के अंगरखे की जेब में से प्राप्त होगये। इससे पृथ्वीचंद लज्जित हुआ। गुरुजी ने बाबा बुड्ढा को भेजकर लाहौर से अर्जुनदेव जी को बुला लिया और घोषणा करदी कि अर्जुनदेव ही गद्दी का अधिकारी है। वे पत्र जो अर्जुनदेव जी ने लिखे थे श्रद्धा और प्रेम से लबालब थे। तीनों पत्रों के कुछ अंश यहाँ देते हैं।

"मेरा मन लोचे गुर दर्शन ताई। बिलप करे चातक की नाईं।

तिरखा न उतरै सान्ति न आवे। विन दरसन सत पियारे जीउ ॥
हउ घोली जिउ घोलि घुमाई गुर दर्शन सत पिआरे जीउ।"

दूसरी चिट्ठी —

"तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी।
चिर होआ देखे सारिग पाणी ॥
धन्न सुदेस जहा तू वसिआ मेरे सजण मीत मुरारे जीउ।
हउ घोली हउ घोलि घुमाई गुरु सजण मीत मुरारे जीउ ॥"

तीसरी चिट्ठी के अंश —

"इक घडी न मिलते ता कलिजुगु होता।
हुण कद मिलिअ प्रिय तुधु भगवन्ता ॥
मोहि रैण न विहावै नीद न आवै।
बिनु देखे गुर दरसन जीउ ॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई।
तिसु सचे गुरु दरबारे जीउ ॥"

गुरु अर्जुनदेव की उन दिलकश चिट्ठियो का यह कविता भाग है, जो उनकी गुरुभक्ति और ईश्वर भक्ति का प्रवल प्रमाण देता है।

गुरु रामदास साहव के जीवन कार्य्यों पर एक विहंगम दृष्टि

गुरु रामदास जी ने केवल ७ वर्ष गुरुआई की। यह समय वहुत थोड़ा है किन्तु इतने थोड़े समय मे भी पहले से काफी वढे हुये सिख समाज के लिये वहुत कुछ कर गये। दिनचर्य्या विल्कुल उनकी भी अपने पूर्ववर्ती गुरुओ जैसी थी, उसी प्रकार तारों की छाया में उठते, स्नान करते, एकान्त चिन्तन करते, दरवार लगाते और उपदेश देते। वैसा ही सीधा सरल और आकर्षक स्वभाव भी था। उदारता तो यहाँ तक थी कि एक कोसने वाले भिखमंगे को आपने अपने कंकण तक दान मे दे दिये। पूर्ववर्ती गुरुओं की प्रत्येक मर्यादा का ज्यो का त्यो पालन हो सके इस वात का आप वड़ा ध्यान रखते थे।

आपके समय मे सिख समाज को और भी अधिक मजवूत वनाने का जो काम हुआ वह था अमृतसर की स्थापना। यह पवित्र तडाग और नगर ऐसे स्थान पर वसाये गये जो पंजाव का मध्य था। मांझ और मालवे मे अधिकतर जाट वीरों की आवादी थी, जो उस स्थूल पर कृषि से जीवन निर्वाह करते थे और आज भी वे उत्तम खेतिहर समझे जाते है। वैसे ता अव तक जितने भी शिष्य वने थे उनमे भी जाट ही ज्यादा थे। उनमे से कई तो वालाजी, वुड्ढाजी और भगतू जैसे विद्वान और ऊचे दर्जे के गुरुमुख थे किन्तु अमृतसर की स्थापना से जाटों के इस प्रान्त मे सिख-धर्म को वड़ी उन्नति मिली। यह कह देने मे कोई भी अत्युक्ति नहीं होगी कि जाट लोगों के लिये सिख-धर्म कोई दूर की और भयावनी चीज नहीं थी। वह उस समय भी आजाद प्रकृति के और रूढ़िवाद से स्वतत्र थे। पौराणिक धर्म की छाया उन पर नाम-मात्र को ही पड़ी थी। वे उन वैदिक आर्यों के अव भी सच्चे उत्तराधिकारी थे जो केवल एक ईश्वर के उपासक और तत्वज्ञानी थे। सिख-धर्म ने उन्हे जो कुछ दिया वह उनकी रुचि के अनुसार था। ब्राह्मण धर्म की छूत-छात और सामाजिक असमानता की रिवाजों से वे पहले से ही घवराते थे। अत. वे अधिक

से अधिक संख्या मे सिख-धर्म में दीक्षित हो गए। यह बताने में भी कोई हर्ज नहीं होगा कि करतारपुर और खंडूर तथा गोविन्दवाल के लंगरों को चलाने मे जाट-शिष्यों की उत्कट श्रद्धा भी शामिल थी।

अपनी प्रकृति के अनुकूल धर्म मे ये बड़े उत्साह और श्रद्धा से शामिल हुए।

बावली साहब के निर्माण से जिस प्रकार सुदूर तीर्थों की ओर से शिष्य लोगों की अनुरक्ति कम हुई थी, उसी प्रकार अमृतसर की स्थापना से और भी कम हुई। और अब उनके लिए बावली साहब और अमृतसर ही सच्चे तीर्थ होगये। इसीलिये हम गुरु रामदास जी के जीवन के सार्वजनिक कार्यों में सब से अधिक प्रमुखता अमृतसर की स्थापना को ही देते हैं।

कुछ 'सिख तारीखों' के पढ़ने से पता चलता है गुरु रामदास जी ने सामाजिक नियमों में भी तबदीली की थी। एक बार सिखों का समूह उनकी सेवा में हाजिर हुआ और उसने पूछा कि हमे विवाह शादियों के सम्बन्ध में कोई उपदेश दीजिये तब उन्होंने नीचे लिखी वाणी कही —

"हरि पहलडी लाव पर विरती करम द्रिडाइआ वलिराम जीउ।
बाणी ब्रहमां वेदु धर्म द्रिडहु पाप तजाइआ वलिराम जीउ॥
धरम द्रिडहु हरि नामु धिआवहु सिम्रिति नामु द्रिडाईआ।
सतिगुरु गुरु पूरा आराधहु सभ किलवेख पाप गवाइआ॥
सहज अनंदु होया वड भागी मनि हर हर मीठा लाइआ।
जन कहै नानक लाव पहिली आरम्भ काज रचाइआ॥ १॥
हरि दूसरी लाव सत गुरु पुरख मिलाइआ वलिराम जीउ।
निर भउ भै मनु होए हउमै मैल गवाइआ वलिराम जीउ॥
निरमलु भउ पाये आ हर गुण गाइआ हर वेखै राम हदूरे।
हरि आतम राम पसारिआ सुआमी सरवरहिआ भर पूरे॥
अतरि बाहरि रहि प्रभु एके मिलि हरिजन मगल गाये।
जन नानक दूजी लाव चलाई अनहद सबद वजाये॥ २॥
हरि तीजडी लाव मनि चाउ भइआ बैरागीआ वलिराम जीउ।
सत जना हरि मेलु पाइआ वड भागीआ वलिराम जीउ॥
निर मलु हरि पाइआ हरि गुण गाइआ मुखि बोली हरि बाणी।
सत जना वड भागी पाइआ हरि कथिऐ आकथ कहाणी।
हिरदै हरि हरि धुनि उपजी हरि जपिऐ मसतकि भाग जीउ।
जन नानक बलै तीजी लावै हरि उपजै मन बैराग जीउ॥ ३॥
हरि चउथडी लाव मनु सहजि भइआ हरि पाइआ वलिराम जीउ।
गुर मुख मिलिआ सुभाइ हरि मन तनि मीठा लाइआ वलिराम जीउ।
हरि मीठी लाइआ मेरे प्रभु भाइआ अन दिनु हरि लिव लाई।
मन चिन्दिआ फल पाइआ सुआमी हरि नाम वजी वधाई॥
हरि प्रभि ठाकुर काजु रचाइआ धनि हिरदै नामु विगासी।
जनु नानक बोलै चउथी लावै हरि पाइआ प्रभु अविनासी॥"

आज तक तभी से सिखों मे इन लावा को पढ़कर शादी की रस्म पूरी की जाती है।

इस तरह शिष्य समूह का आम लोगों से पृथक समाज स्थापन करने में गुरु रामदास जी साहब ने भिन्न सामाजिक प्रथा डालने की ओर कदम उठाया। हम देखते हैं-गुरु नानकदेव जी ने अपने ख्याालों का जो बिरवा रोपा था। उसे उनका प्रत्येक अनुवर्ती गुरु अपने कर्तव्य और तप का जल देकर पुष्ट करता रहा। गुरु नानक जी के सिद्धान्तों को ज्यों-ज्यों अमल मे लाया जा रहा था, त्यों ही त्यों शिष्य वर्ग एक समाज का रूप पकड़ता गया।[1] गुरु अगददेव जी ने नामकरण सस्कार के समय कड़ाह प्रसाद की प्रथा डालकर उस विधि मे कुछ संशोधन किया था। गुरु रामदास जी ने वैवाहिक क्रिया मे संशोधन कर दिया और तीर्थ स्थल स्वतन्त्र गुरु अमरदास जी महाराज ने बना ही दिये थे। धर्म ग्रन्थों का स्थान गुरु वाणिया ले रही थीं। कथा भागवत के स्थान पर गुरुओं की जन्म साखियाँ अवस्थिति हो रही थीं। इन सब बातों को जब हम बारीकी से पढते हैं तो पता चलता है कि शिष्यों का समूह शनैः शनैः एक पृथक सम्प्रदाय के रूप मे परिणित होता जा रहा था और प्रत्येक गुरु उसे बराबर आगे बढ़ाने मे अपनी सामर्थ्य को प्रदर्शित कर रहे थे। सात वर्ष के छोटे से अर्से मे गुरु रामदासजी भी सिख समाज को काफी आगे बढा गये और अपनी अनोखी प्रतिभा से एक नवीन बल और संगठन का अमृत घूंट इस समुदाय को पिला गये।

गुरु रामदास जी के अन्य कार्यों में अपने शिष्यो पर गुरु नानकदेव जी द्वारा प्रचारित धर्म को शक्ति के साथ पालन करने की ओर बार-बार ध्यान दिलाना और तीर्थों की ओर से उनका ध्यान मोड कर अपनी वैयक्तिक उन्नति करने की ओर लगाना आदि अनेकों महत्वपूर्ण कार्य हैं।

उपदेश देते समय बहुधा समयों पर गुरु रामदास जी वाणियों मे अपने भावो को प्रकट किया करते थे। जो सहज ही श्रोता के दिल पर अपना असर डालती थीं। यहाँ हम उनकी अनेकों सुमधुर वाणियों मे से कुछ नमूने के तौर पर पेश करते हैं:—

माझ— आवहु भैणे तुसी मिलहु पिआरी आ।
जो मेरा प्रीतमु दसे तिस कै हउवारिआ॥
मिलि सत सगति लधा हरि सजणु हउ सतगुरि विटहु घुमाइयाजीउ।
जह तह देखा तह तह स्वामी। तू घटि घटि रविआ अतर जामी।
गुरि पूरै हरि नालि दिखालिआ हउ सतिगुर विटहु सदवारिआजीउ॥२॥
एको पवणु माटी सम एकाजोति सवाइआ।
सभ इका जोति वरतै भिन भिन नर लई किसै दी रलाइआ॥
गुर परसादी इकु न दरीआइआ हउ सति गुर विटहु बताइआ जीउ॥३॥
जनु नानकु बोलै अम्रितु वाणी।
गुर सिखा कै मनि पिआरी भाणी॥
उपदेसु करै गुरु सति गुरु पूरा गुरु सतिगुरु पर उपकारि आजीउ॥४॥

सलोक— गुर सतगुर का जो सिख अखाये सो भलके उठि हरि नामु धिआवै।
उदम करै भल के पर भाती इसनान करे अमृतसर नावै॥

१ गुरु के लगर ने समाज में देर से चला आ रहा जाति भेद मिटाने और सिख समाज को सगठित करने में बडा काम किया था।

उपदेस गुरू हरि हरि जप जापै सभ किलविख पाप दोख लहिजावै ।
फिर चढे दिवस गुरुवाणी गावै वहदिश्रा उठदिश्रा हरिनाम धिजावै ।
जो सास गिरास धिश्रावै मेरा हरि हरि गर मिख गुरु मन भावै ।
जन नानक धूड मगे तिस गुर सिख की जो श्राप जपै श्रवरह नाम जपावै ॥

गौरी वैरागिन—

कचन नारी माई जीउ लुमतु है मोहु मीठा माइश्रा ॥
घर मदर घोडे खुसी मनु श्रन रसि लाइश्रा ॥
हरि प्रभु चितिन श्रावही किउ छूटा मेरे हरि राइश्रा ॥
मेरे राम इहि नीच करम हरि मेरे
गुणवता हरि हरि दइश्रालु करि किरपा वखसि श्रवगण सभि मेरे ।
(रहाउ) किछु रूप नहीं किछु जाति नाहीं किछु ढगुन मेरा ।
किश्रा मुहुलै वोलह गुण विहून नाम जपिश्रा तेरा ।
हम पापी सग गुर उवरे पुनु सति गुर केरा ।
समजीउ पिड मुखु नकुदी श्रावरतण कउपाणी
श्रंनु खाणा कपडु पैनणु दीश्रा रस श्राने भोगाणी
जिन दीश्रे सुचितन श्राव ही रसू हउ करि जाणी ।
सभु कीता तेरा वरतदा तूं श्रतरजामी
हम जंत विचारे किश्रा करेह सभु खेनु तुम सुश्रामी ।
जन नानकु हाटि विहा किश्रा हरि गुलम गुलामी ।"

गुरु रामदास जी साहव की इन वाणियों मे यद्यपि पंजावी भाषा का पुट है फिर भी कितनी मधुर और सरल हैं। इसी प्रकार उनकी अनेकों वाणिया है जिनका रसास्वादन आदि ग्रन्थ साहव के पाठ से प्राप्त हो सकता है।

अमृतसर के संस्थापक गुरु रामदास जी साहव अंतिम दिनों मे गोविन्दवाल ही चले गये थे। और वही इस शरीर को छोड़कर मुक्तिधाम का मार्ग लिया। वह दिन संवत १६३८ विक्रमी के श्रावण महीने का ३ शुक्रवार था। उस समय वहाँ सगत आई हुई थी। आपने देह त्यागते समय कहा था कि मेरी समाधि पर कोई स्थान न वनाना किन्तु प्रेम और श्रद्धा के वशी भूत होकर शिष्यों ने गुरु अमरदास जी के देहरे से थोड़ी दूरी पर आपका भी देहरा वना दिया। जिसे व्यास नदी गुरु जी की इच्छापूर्ति करने के लिये वहा ले गई।

परमधाम

मातवाँ अध्याय

गुरु अर्जुनदेव जी की जीवन गाथा

गुरु अर्जुनदेव जी साहब का जन्म वैसाख शुक्ला सप्तमी मंगलवार संवत १६२० विक्रमी में हुआ था यहाँ यह बताने की तो आवश्यकता रही नहीं है कि उनके मा बाप का क्या नाम था, तथा वे किस हैसियत के आदमी थे। गुरु रामदास जी साहब जैसा महापुरुप जिसका पिता हो और बीबी भानी जैसी महत्वाकांक्षाणी जिस की मां हो वह बचपन से हो कितना सुयोग्य और महान हो सकता है इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। हा, कभी अपवाद भी हो जाता है जैसाकि हम पृथ्वीचन्द जी के लिये कह सकते हैं किन्तु अपवाद अपवाद ही है। आम उसूल तो यही है कि हंस के बच्चे हंस और सिंह के सिंह ही होते हैं।

आरम्भिक परिचय

गुरु अर्जुनदेव जी के दो विवाह हुये थे। पहला संवत १६३२ वि. मे चन्दनदास खत्री की लड़की रामदेवी जी से और दूसरा इनके मरने पर १६४६ वि. मे कृष्णचन्द्र की लड़की गंगा से कृष्णचन्द्र मिलौर के पास मऊ मे रहते थे।

गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने गुरु रामदास जी साहब की सेवा केवल पिता जानकर ही नहीं की थी किन्तु साक्षात नानकदेव जी का स्वरूप जानकर की थी। कोई भी शिष्य जितना प्यार और आदर अपने गुरु के प्रति प्रदर्शित कर सकता है उसमें आपने तनक भी कसर न रक्खी थी। सेवा के अलावा गुरु वाणियो के पढने और उनके रहस्य को पूर्ण रूप जान लेने मे आपने खूब मन लगाया था। गुरु गादी मिलने से पहिले से ही आपकी विलक्षण बुद्धि थी। आपको जब आपके पिता जी ने लाहौर एक शादी मे भेज दिया और एक लबे अर्से तक नहीं बुलाया तब आपने जो पत्र अपने पिता जी को लिखा उस के साथही आपने जो वाणिया लिखी थीं, वह प्रेम मे सराबोर कर देने और मन को मोह लेनी वाली है।

आपके बालकपन की कई मनोहर कथाये हैं उनमे एक यहाँ देना उचित समझते हैं। अपने दादा गुरु अमरदास जी के समय में हँसते खेलते और किलकते हुये गुरुजी की गद्दी पर जाकर बैठ गये और उसी प्रकार पदमासन लगा लिया जैसे गुरु जी लगाते थे। गुरु अमरदास जी ने उस समय उनकी सूरत की ओर देखा तो चेहरे पर शाति और नूर की वर्षा सी होती देख पडी उन्होंने बड़े प्रेम और आह्लाद से कहा "बेटे यह स्थान तुम्हे तुम्हारे पिता के बाद प्राप्त होगा।"

सवत् १६३८ मे आपको गुरुआई मिल गई थी किन्तु पिता जी के परमधाम के बाद पृथ्वीचन्द

शहीद गुरु

श्री अर्जुनदेव जी

श्री गुरु रामदास जी

आप से मिलकर नहीं रह सके। महादेव ने तो कोई आश्चर्यजनक विरोध किया नहीं था।

इतिहास में यह तो पता नहीं चलता कि आपको शिक्षा दिलाने का क्या प्रबन्ध किया गया था? किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आप अपने समय के एक उद्भट विद्वान् थे। होनहार तो आप बालकपन से ही थे। आपकी बुद्धिमता को देखकर गुरु अमरदास जी ने कहा था—"दोहिता बाणी दा बोहिथा।" अर्थात् मेरा यह दौहित्र (धेवता) वाणी का प्रकाशक होगा। आगे चलकर हुआ भी यही। उन्होंने स्वयं वाणी की रचना की और साथ ही पिछले गुरुओं की वाणी का भी संग्रह किया। इस पर उन्होंने अपने नाना गुरु अमरदास जी के भविष्य कथन को पूरा करके दिखा दिया।

यों तो देश की हालत पिछले हजार बारह सौ साल से खराब होती चली आ रही थी किन्तु आपके समय तक और भी खराब हो चुकी थी। उस समय का सबसे बडा शासक मुगलसम्राट् बादशाह जहांगीर था। वह पहले दर्जे का शराबी और आराम पसंद आदमी था। हुकूमत का काम उसकी परम सुन्दरी ईरानी बीबी नूरजहाँ करती थी। ऐसे समय मे उन लोगों की तक लग रही थी जो शासकों के कान भरा करते हैं और दूसरों से अपने निजी वैर-भाव का बदला लेने के लिये शासकों को उभारा करते हैं।

ऐसे विकट समय मे भी आपने वह काम किये जिससे सिख धर्म का पौधा पुष्ट होकर लहर-लहर लहराने लगा। श्री गुरु ग्रंथ साहब की रचना उनके महान् कामों मे से एक सर्वोपरि काम है।

ग्रन्थ साहब के देखने से दो बातों का पता और चलता है। एक तो यह कि आपके पास देश के अच्छे-अच्छे कवियों का आवागमन और जमघट रहता था। दूसरे यह कि आपने उस समय के भारत मे प्रचलित अनेकों धर्मों का गहरा अध्ययन किया था, अथवा उन धर्मों के प्रतिनिधियों का आपके पास काफी आना-जाना होता था।

आपने हिन्दू शास्त्रों और पुराणों का भी पूरा अध्ययन किया था ऐसा आपकी वाणियों से जान पडता है क्योंकि आपके शब्दों में बलि, वामन, हरिनाकुश, मान्धता और ध्रुव, प्रह्लाद की कथाओं के अनेकों हवालों पर प्रकाश पड़ता है। हरिभजन की ओर लोगों को आकर्षित करने के लिये आपने अनेकों हरिभगतों के उद्धार का हवाला दिया है और कहा है कि जब गज, गीध, अजामिल जैसे पापी हरिभजन से तर गये तब क्या कारण है हे मनुष्य तू न तरेगा। सारांश यह है कि भक्ति की ओर प्रवृत्ति करने के लिये आपने भरसक प्रयत्न किये थे। भक्ति सम्बन्धी आपकी रचनायें हैं भी बडी ही मनोहर। वाणी रचना की आपकी प्रवृत्ति बालापन से ही थी। "बालपन का रचा आपका यह पद सिखों मे बडी श्रद्धा से पढा जाता है।

"मेरा मन लोचे गुरु दरशन ताई।"

विधि की गति को पुराने ऋषि मुनियों ने बड़ा विचित्र बताया है। अपने कथन की साक्षी मे उन्होंने कहा है। जिस जल में कमल पैदा होते हैं उसमे कीच भी होती है। अग्नि में से प्रकाश के साथ धुंआ भी होता है। समुद्र मे जहाँ मोती हैं वहाँ शंख भी हैं। गुलाब मे फूलों के साथ काँटे भी हैं। यही नीति गुरु अर्जुनदेव जी के यहाँ भी चरितार्थ थी। गुरु रामदास जी ने जहाँ गुरु अर्जुनदेव जैसे विद्वान, महामना और निस्पृह पुत्र को जन्म दिया था वहाँ उन्हीं के घर मे पृथ्वीचन्द जी जैसे मनमुख, स्वार्थ प्रिय और गृह-कलह को पसंद करने वाले पुत्र को भी जन्म मिला था। इसे चाहे पूर्व संस्कारों का योग कहें चाहे परिस्थितियों का समावेश मानें।

पृथ्वीचन्द जी शांत नहीं रहे। उन्होंने इनका विरोध करना आरम्भ कर दिया। संपत्ति के नाम पर तो उसने इनके लिये कुछ भी न छोड़ा था। किन्तु फिर भी उसे संतोष नहीं हुआ। लंगर के समय बाहर से आये हुये और परसाद चखने वालों से भेंट भी वही वसूल करता रहा। इसके बाद उसने अलग अपने शिष्य बनाने आरम्भ किये और कुछ तालाब भी खुदवाये। यह सब होता रहा किन्तु गुरु अर्जुनदेव जी अपनी ओर से चुप रहे। उन्होंने कोई प्रतिशोध नहीं किया।

पातशाही मिलने पर

कुछ समय के बाद गुरु अमरदास जी साहब के भतीजे बाबा गुरदास जी गुरु अर्जुनदेव जी के दर्शनार्थ आगरा से वापिस आये। वे लगर के प्रसाद को देखकर बड़े हैरान हुये। उन्होंने पूछा भी जिस लगर मे खीर, हलुआ और बढ़िया से बढिया पदार्थ बनते थे उसमे सूखी रोटी आज क्यों बनती है। गुरु अर्जुनदेव जी ने तो कोई जवाब नहीं दिया किन्तु भाई भानी जी ने बता दिया कि यह हालत पृथ्वीचन्द के विद्रोह से हो रही है। इस बात को सुनकर भाई गुरदास जी ने पहले गुरु अर्जुनदेव को ही इस बात के लिये तैयार करना चाहा कि वे पृथ्वीचन्द के इस विरोध का प्रबन्ध करें किन्तु उनके यह कहने पर कि गुरु नानकदेव जी का परम प्रताप आप ही कोई मार्ग निकाल देगा भाई गुरदास जी ने लगर का चार्ज खुद सभाला और उन्होंने सिखों से भी कह दिया कि भेंट मे आने वाला रुपया सदैव लंगर पर खर्च हुआ है। किसी के घर मे जमा करने के लिये नहीं। इस तरह थोडे ही समय मे गुरदासजी ने बाबा बुड्ढा की सहायता से लगर के काम को फिर वही उन्नति दे दी क्योंकि सिखों ने भी गुरदासजी की बात को गाँठ बाँध लिया था।

इस तरह एक ओर से थोडी सी फुरसत मिलने पर गुरु जी ने हरिमन्दिर बनाने का कार्य प्रारभ किया। भाई गुरदास, बुल्ला, माणा, आदि सभी प्रसिद्ध शिष्यों ने खुद अपने हाथ से काम करना आरम्भ किया। जब हरि मन्दिर बनने की चर्चा फैली तो बाहर से आकर सिख उस कार्य मे सहयोग देने लगे। इतिहास साक्षी है कि मन्दिर के बनाने मे सिखों ने इतना उत्साह प्रकट किया कि काबुल, कंधार और सिंध तक से शिष्य लोग आये और मन्दिर बनाने मे सहायता दी। मन्दिर की सुन्दर पौड़ियों का नाम भी हरि की पैड़ी रक्खा गया। अमृतसर का यह हरि मन्दिर सिखों ने उसी रूप मे अपनाया—जिस रूप मे उत्तर भारत के समस्त हिन्दू हरिद्वार को अपनाते हैं। श्री गंगा जी को महात्म्य हजारों वर्ष से दिया जा चुका था उसका स्थान अब अमृतसर (तड़ाग) ने और हरिद्वार का स्थान हरि मन्दिर ने तथा हरिद्वार के सुन्दर गङ्गा घाट के स्थान पर उसी नाम से अभिहित होने वाली यह हरि की पैड़ी थीं। यह कहना न होगा कि अमृतसर के तीर्थ ने उत्तर भारत में वही स्थान प्राप्त कर लिया जो हरिद्वार को प्राप्त था और यह महान् तीर्थ सिखों ही नहीं किन्तु पजाब के समस्त हिन्दुओं की श्रद्धा का केन्द्र बन गया।

हरि मंदिर

सिख लेखकों ने लिखा है कि इस मन्दिर के बन जाने के बाद उद्घाटनोत्सव पर गुरुजी ने इस प्रकार अपने हृदयोद्गार प्रकट किये थे।

"अविचलु नगरु गोविन्द गुरु[1] का नाम जपत सुख पाइआ राम।
मन इछे सई फल पाइ करतै आप बसाइआ राम॥
करतै आप बसाइया सरब सुख पाइआ पुतभाई सिख बिगासे।

१. यहाँ गोविन्द गुरु से अभिप्राय परमात्मा से है।—लेखक

"गुण गावहि पूरण परमेसुर कारजु आइआ रासे।
प्रभु आप सुआमी आपे राखा आपि पिता आप माइआ।
कहु नानक सतगुरु बलिहारी जिनि यहि थान सुहाइआ।।"

इसी प्रकार की और भी सुन्दर वाणियां हैं। जो श्री ग्रन्थ साहब में दर्ज हैं।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में हम यह और कहना चाहते हैं कि सिख संगठन के लिये हरि मन्दिर की रचना का आयोजन गुरु अर्जुनदेव जी साहब के कामों में उतना ही ऊंचा स्थान रखता है। जितना गुरु अमरदास जी साहब द्वारा बावली साहब और गुरु रामदास जी साहब द्वारा अमृतसर (सरोवर) की स्थापना के कार्य। इस पवित्र मन्दिर की रक्षा के लिये आगे की सदियों में सिखों ने जो आत्मोत्सर्ग किया था उसका वर्णन आगे के पृष्ठों में प्रसंगानुसार किया जायगा।

इस समय गुरु अर्जुनदेव का यश चारों ओर फैल रहा था। सभी श्रेणियों के लोग उनके चरणों में आकर मत्था टेकते थे।

सिखों की संख्या इस समय बाढ़ के पानी की तरह बढ़ रही थी किन्तु गुरु अर्जुनदेव जी उन्हें पक्का सिख बनाने की ओर से भी लापरवाह नहीं थे। किसी को सच्चा सिख और प्रचारक बनाने से पहले उसकी परीक्षा भी खूब लेते थे। इस प्रकार के परीक्षित सिखों में से भाई मंझा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जब उसने गुरु जी से सिक्खी का सार्टीफिकेट (कोई कागज नहीं किन्तु आशीर्वाद) चाहा तो गुरु जी ने कहा सिक्खी प्राप्त करना कोई योंही खेल नहीं है। वह कुछ दिन रह करके अपने गाँव चला गया। उधर लोगों में सिखधर्म की महिमा सुना कर गुरु सेवा के इरादे से फिर लौटा और कठिन से कठिन काम को खुद करने लगा। एक दिन मंझा जब लकड़ी लेकर आ रहा था तो आंधी आगई और वह एक अंधकूप में गिर पड़ा। किन्तु पानी कम होने की वजह से डूबा नहीं। सिर पर लकड़ी थीं बोझ से मंझा दबा जा रहा था किन्तु उसने गट्ठर को नहीं पटका और उस समय तक बोझ मरता रहा जब तक कि खबर मिलने पर गुरुजी और दूसरे सिखों ने उसे निकाल न लिया। निकलने से पहले उसने कहा, मेरे सिर पर लकड़ी है मैंने इन्हें इसलिये नहीं भीगने दिया है कि लंगर की चीज है। गुरु जी उसके इस प्रकार के प्रेम से बड़े खुश हुये और उसे सच्चा भक्त समझ कर सिक्खी बख्शी।

कनिंघम ने गुरु अर्जुनदेव जी के लिए लिखा है कि गुरु नानक के अभिमत को ज्यों का त्यों पालन करने-कराने पर उन्होंने बड़ा जोर दिया"। बात है भी ऐसी ही। एक दिन उनसे कुछ सिखों ने पूछा कि गुरु जी ग्रहों के सम्बन्ध में आप हमें क्या नसीहत देते हैं। इन्हें मानना चाहिये या नहीं। गुरु अर्जुनदेव जी ने बिल्कुल गुरु नानकदेव जी की भाँति जवाब दिया —

"सुख सहज आनन्द घणा हरि कीरतम गुण गाउ।
ग्रह निवारे सति गुरु दे आपण नाउ।।१।।
बलिहारी गुरु आपणे सदसद बलि जाउ।
गुरु विटहु हउ वारिआ जिस मिल सच सुआइ।।२।।
सगुन अप सगुन तिस कउ लगहि जिस चीतन आवं।
तिस जम नेडे न आवई जेहरि प्रभु भावं।।३।।
पुन्न दान जप तप जिते सब ऊपर नाम।
हरि हरि रसना जो जपं तिस पूरन काम।।४।।"

कुछ दिन के बाद गुरु अर्जुनदेव जी ने एक दूसरा सरोवर बनवाया। जो सतोपसर के नाम स मशहूर है। सतोख नाम का एक अरोडा गुरुओं का भक्त था उसने सौ मुहरें इस सरवर के बनवाने के लिये दी थीं। इसलिये उसी के नाम पर इसका नाम रखा गया। इस सतोपसर पर भी मेला लगना आरम्भ हो गया और उस इलाके की श्रद्धा को बढाने मे सहायक हुआ।

संतोपसर

सुयोग्य सिखों ने गुरु अर्जुनदेव जी की कीर्ति को दूर दूर और छोटे से छोटे आदमी से लेकर राजा और रईसों तक पहुँचाया। मडी के राजा हरिसैन ने भाई कल्याण से ही प्रथम बार गुरुजी का प्रताप सुना था इसलिये गुरुजी के दर्शन करने की उसकी इच्छा हुई और वह गुरुजी के दर्शन करने के लिये अमृतसर हाजिर हुआ।

जिस समय मडी नरेश हरिसैन गुरुजी के दर्शनों को पहुँचा उस समय वहाँ "ओंकार" का पाठ हो रहा था। पाठ समाप्त होने पर राजा गुरुजी से मिला। उसने भाग्य सम्बन्धी कुछ प्रश्न किये। जिनका गुरुजी ने सतोषजनक उत्तर दिया।

अमृतसर और सतोखसर के सरोवरों के बाद गुरुजी ने तरनतारन स्थान पर एक सरोवर और खुदाया तथा एक नगर भी बसाया। पहले उस स्थान पर कोई नगर न था। हाँ ग्राम पास थे। वहाँपर जल कष्ट भी बहुत था। लोगों ने कई बार उनकी सेवा मे हाजिर होकर अर्ज की थी। अत सवत् १६४७ के वैसाख मे बस्ती आबाद की गई और सवत् १६४८ में तालाब को पक्का करने के लिये इटें पकाई गई किन्तु उन्हे यहाँ का एक सरगना मुसलमान अमीरुद्दीन अपने मकानों के वास्ते उठवा ले गया। सिखों ने जब यह शिकायत गुरुजी से की तो उन्होंने कहा आप चिन्ता नहीं करें वह समय आरहा है जब आपके ही आदमियों से ऐसे लोगों के प्राण जायेंगे। वह दिन पंजाब मे आया भी और तालाब की इटें भी वापिस हुईं। संवत् १८३७में सरदार बुधसिंह जाट फैजुलपुरिया ने उस महल को ढहवा दिया और सारी ईंटें तरनतारन के तालाब को पक्का करने के लिये भिजवा दीं।

तरनतारन

इस पवित्र तीर्थ के लिये महाराज रणजीतसिंह और नौनिहालसिंह जी ने भी पूरी सहायता दी। यहाँ पर हर महीने बड़ा भारी मेला लगता है। यह तीर्थ एक प्रकार से सिखों का वृन्दावन है। जैसे वृन्दावन में यात्री और भक्त लोग बने ही रहते हैं तथा हर महीने की पूर्णमासी को परिक्रमा देते हैं। वैसे यहाँ भी सिखों का आवागमन बना ही रहता है।

जब से पृथ्वीचद के मोहन या मेहरवान नाम का लडका हुआ था। तब से पृथ्वीचंद इस आशा से चुप रहा कि मुझे न सही तो मेरे पुत्र को तो गुरुगद्दी मिल ही जायगी। संवत् १६४६ तक इस प्रकार गृह कलह बन्द सा रहा, सवत् १६४६ में गुरु अर्जुनदेव जी की धर्मपत्नी रामदेवी जी का स्वर्गवास हो गया। वे नि सतान ही परलोक सिधारी थीं। अब पृथ्वीचंद को और भी संतोष हुआ किन्तु जब उन्होंने माता भानी जी के आग्रह से सवत् १६४७ में दूसरा व्याह[१] कर लिया तो शनै शनै फिर गृह कलह बढ़ी। पृथ्वीचद ने स्त्री को शांत करने के लिये कहा कि अर्जुनदेव के सतान नहीं होगी और किसी दिन हमारे ही पुत्र को तो यह गुरुगद्दी मिल जायगी, किन्तु पृथ्वीचंद की यह आशा अधिक टिकाऊ न

१ गुरु अर्जुनदेव जी की शादी एक या दो हुई ? इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है।

रही और कुछ ही दिन बाद उसकी स्त्री ने गुरुपत्नी गंगादेवी जी के गर्भवती होने के समाचार अपने पति को सुना दिये।[1] उसी घड़ी से गृह-कलह बढ़ने लगी और उसने यहाँ तक भयंकर रूप धारण किया कि गुरु अर्जुनदेव जी को अमृतसर छोड़ने के लिये उनकी माता भानी जी ने जोरदार सलाह दी। और उन्होंने अमृतसर को छोड़ कर कुछ दिन के लिये तरनतारन में आवास किया।

वहाँ संवत् १६५२ के आषाढ़ महीने में उनके घर एक पुत्र रत्न हुआ जिसका शुभ नाम हरिगोविंद रक्खा गया। इस खुशी के साथ ही दूसरा खुशी का समाचार यह मिला कि वजीरखां की अदालत में जायदाद बँटवारे का जो दावा पृथ्वीचंद ने किया था वह खारिज हो गया है।

पृथ्वीचंद अपने दूषित इरादों से अभी तक बाज नहीं आ रहा था। उसने शोभा दाई को तैयार किया कि वह गुरु के साहबजादे को विष दे दे। लोभ में आकर दाई ने स्तनों में विष लगा लिया और साहबजादे को पिलाने का मौका देखने लगी किन्तु सूक्ष्म छिद्रों में होकर विष दाई के शरीर में रम गया। उसके हाथ पैर लड़खड़ाने लगे और थोड़े समय में ही मर गई। किन्तु उसके मरते मरते पृथ्वीचंद की इस करतूत का पता चल गया। यहां यह ध्यान रहे कि इन दिनों गुरु अर्जुनदेव जी अमृतसर ही रहते थे क्योंकि सिख लोग उन्हें वापिस ले आये थे।

इस प्रकार के कृत्यों से शिष्य लोग बहुत बिगड़े और पृथ्वीचंद को बहुत बुरा भला कहने लगे। परिस्थिति को एकदम अपने विरुद्ध जानकर पृथ्वीचंद अमृतसर को छोड़ गया और उसने अपनी ससुराल हेहर में जाकर अपने रहने के लिये मकान बना लिये। वहाँ उसने अमृतसर के ढंग का एक तालाब भी बनाने की कोशिश की और अपना पंथ भी चलाना चाहा किन्तु सफलता नहीं मिली।

यात्रा

संवत् १६५६ में गुरुजी ने लाहौर की यात्रा की। वहाँ के सतसंगी बहुत प्रार्थना कर रहे थे लाहौर पहुँचकर अपने उपदेशोंसे आपने हजारों आदमियों को संतुष्ट किया। उनके उपदेशसे पठान भी संतुष्ट हुए। यहाँ पर गुरुजी ने अपने एक शिष्य के रुपये से डब्बी बाजार में एक बावली बनवाई और एक धर्म स्थान भी। आठ महीने तक बराबर गुरुजी लाहौर में रहे, इन दिनों में अनेकों लोगों को अपना शिष्य बनाया।

लाहौर से चलकर गुरुजी गुरु नानकदेव की जन्मभूमि ननकाना साहब पहुँचे। वहाँ लोगों को उपदेश और दर्शन देकर रावी किनारे के मंदर नामक गाँव में जा पहुँचे जहाँ भाई गुन्दारा नामक संत ने उनकी खूब सेवा की। यहां से चलकर भँवर गाँव में जाकर विराजे। यहाँ एक खत्री साहूकार कुष्ठी था उसकी प्रार्थना पर उसे आपने बताया कि लाल चन्दन शहद मिलाकर खाने से तेरा रोग चला जायगा। दो महीने में उसका रोग चला गया। यहां से चलकर गुरुजी चूनिया में चौधरी चूहड़मल के यहाँ जाकर ठहरे। यह जाट जमींदार उस समय कई गाँवों का मालगुजार था, गुरुजी की इसने खूब आवभगत की। यहां भी अनेकों लोगों को आपने रोग निवारक उपाय बतलाये और इसी प्रकार अनेक गाँवों में उपदेश देते हुये तथा दुखियों के कष्ट दूर करते हुये संवत् १६५७ वि० वैसाख महीने में अमृतसर वापस आ गये।

कभी-कभी गुरु के शिष्यों से अन्य सम्प्रदायों के लोगों की मुठभेड़ भी हो जाती थी। किन्तु यह-

१ बाबा बुड्ढा का आशीर्वाद था कि गंगादेवी संतानवती होंगी।

विवाद में वे पूरे उतरते थे। ऐसीही एक घटना इस प्रकार है। "महेशनाथ नाम का योगी अमृतसर के इलाके में आ निकला और गरुडशकर नामक गॉव मे ढिंढोरा पिटवा दिया कि मुझे महादेवजी ने स्वप्न में कहा है कि जो कोई तेरा भक्त बनेगा उसे एक वर्ष का कैलाशवास मिलेगा। सैकड़ों लोग उसके चरनों में सिर झुकाने और भेंट चढ़ाने लगे किन्तु भाई तिलका उसके पास तक नहीं गये। और उलटा यह किया कि जब जोगी खुद ही उनके घर पर आया तो भाई जी घर मे घुस गये और किवाड़ लगा लीं। जोगी ने पूछा तू हमारे दर्शन क्यों नहीं करता है तो तिलका ने जवाब दिया तुम्हारे दर्शन मे घाटा है, लाभ नहीं। मैं वह काम कर रहा हूँ, जिससे सीधा मुक्ति धाम को चला जाऊँ और मेरे गुरु ने जो मुझे रास्ता बताया है उस पर मुझे विश्वास है। मेरा मनोरथ पूरा होगा। तुम्हारे दर्शन करने से एक वर्ष मुझे व्यर्थ ही कैलाश मे भटकना पड़ेगा, जोगी तिलका की इस प्रकार की तर्क-युक्त वार्ता सुनकर बड़ा स्तम्भित हुआ। उसने कहा अच्छा चल तू अपने उस गुरु के पास मुझे ले चल, जिसका तू चेला है। कहा जाता है कि गुरु अर्जुनदेव जी के पास जाकर और उनकी शिक्षाओं को सुनकर —जो उन्होंने अहंकार को छोड़ कर ईश-भक्ति मे लीन हो जाने के सम्बन्ध में दी थीं—जोगी बड़ा प्रभावित हुआ और शिष्य बन गया।"

अमृतसर की महिमा बराबर फैलती जा रही थी और इसके यश ने बड़े-बड़े साधु महात्माओं तक को अपनी ओर आकर्षित किया था। बाबा श्रीचंद जी भी जो उदासी वृत्ति के संत थे, संवत् १६५७ वि० में अमृतसर को देखने के लिये आये। गुरु साहब ने उनका खूब स्वागत सत्कार किया। महात्मा श्रीचंद जी अमृतसर को और वहाँ की व्यवस्था को देख कर बड़े प्रसन्न हुए।

श्रीचंदजी का प्रसंग

सहस्र गॉव में संगतों का एक बड़ा जमघट हुआ गुरु अर्जुनदेव जी भी उसे देखते हुए बारठ गॉव मे जहां कि श्री श्रीचंद जी रहते थे पहुँचे। इन दिनों गुरु अर्जुनदेव जी ने एक बहुत सुन्दर और अद्भुत रचना की थी, जो सुखमनी साहब के नाम से मशहूर है। वह आपने श्रीचंद जी को भी सुनाई जिसे सुनकर श्रीचंद जी बहुत प्रसन्न हुए।

सुखमनी सा० की रचना

गुरुजी के इन प्रवास के दिनों मे पीछे पृथ्वीचंद ने एक और ऊधम किया और वह यह कि अपने दोस्त सुलाही खां मनसबदार को अमृतसर पर चढ़ा लाया। माता गंगाजी ने जब यह हाल देखा तो वे रथ पर सवार हो गुरु जी के पास रवाना हो गईं। इससे कोई झगड़ा नहीं हुआ।

गुरु जी के यात्रा से अमृतसर मे वापस पहुँचने पर लाहौर का नायब वजीरखां उनकी सेवा मे हाज़िर हुआ। वह बड़ा धर्मप्रिय आदमी था, कहा जाता है कि लाहौर के दिल्ली दरवाजे के अन्दर जो मस्जिद है, वह इसी की बनवाई हुई है। यह गुरु रामदास जी साहब के समय से ही गुरु घराने का प्रेमी था। इस समय इसके जलोदर का रोग था। हजारों रुपये खर्च करने पर भी चंगा न हो सका तो बड़ी आशाओं के साथ बेचारा गुरु जी की सेवा में हाज़िर हुआ। गुरु अर्जुनदेव जी उस समय दु:ख भजनी नामक बेरी के पास थड़े साहिब के ऊपर बैठे हुए थे। उन्होंने वज़ीरखा के प्रेम और दु:ख से प्रभावित होकर बाबा बुड्ढे को बुलाया। कहा जाता है बाबा बुड्ढा ने उसकी पीठ पर गारे की भरी हुई टोकरी जोर से पटक दी। उसी से उसका मल छूट निकला और वह चंगा हो गया। मिट्टी से जलोदर के इलाज मे विश्वास रखने वाले लोग अवश्य ही बाबा बुड्ढा के इस चमत्कार को पढ़कर प्रसन्न होंगे। वजीरखाँ इस प्राणनाशक रोग से मुक्त होकर कई दिन अमृतसर

वजीरखाँ का प्रसंग

रहा और गुरु जी के उपदेशों से लाभ उठाता रहा। 'सुखमनी' की प्रार्थना सुनते हुए वह आनन्द विभोर हो जाता था। अत जब विदा हुआ तो गुरु जी से प्रार्थना की कि महाराज मुझे ऐसा एक शिष्य दीजिये जो मेरे पास रह कर नित मुझे 'सुखमनी जी साहब' का पाठ सुनावे और कड़ाह प्रसाद बना लिया करे। गुरुजी ने उसकी इस प्रार्थनापर भागू नामक शिष्य को वजीरखाँ के साथ भेज दिया, कहा जाता है जीवन पर्यन्त वजीरखाँ सुखमनी साहब का नित प्रात पाठ सुनता रहा।

एक ओर जहाँ गुरुओं के प्रति इस प्रकार की गाढ़ी श्रद्धा लोगों में पैदा हो रही थी, दूसरी ओर कुछ लोग जलते भी थे। एक दिन एक ब्राह्मण ने कहा था देखो कलजुग में खत्री तो पूज्य बन गया है और ब्राह्मण जो सदा से वन्दनीय चले आये हैं, उनके सामने कोई सिर भी नहीं झुकाता है। इस पर गुरु जी ने हंसते हुए कहा था, तो क्या दम्भ के आगे भी सिर झुकाना चाहिये?

राज्य का आधार, कानून और धर्म का आधार, धर्म ग्रन्थ होता है। गुरु नानकदेव जी की वाणिया गुरु अंगददेव जी संग्रह करा गये थे किन्तु अन्य गुरुओं की वाणिया अभी तक संग्रह नहीं हुई थीं और गुरु नानक जी की भी जो वाणिया संग्रह थीं। वह उनकी जीवन घटनाओं के साथ-साथ थीं। अत सभी गुरुओं की वाणियों को एक ही स्थान पर संग्रह करने और ग्रन्थाकार बना देने की बड़ी जरूरत थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने अपनी विलक्षण बुद्धि से इसी महान् कार्य को जरा सा अवकाश झगड़ों से मिलते ही आरम्भ कर दिया।

गुरु ग्रन्थ साहब की रचना

उन्होंने देश देशान्तरों के परिचित और योग्य सिखों के नाम आज्ञा पत्र जारी किये कि तुम लोगों के पास स्मृति में अथवा लेख रूप में जो भी गुरु शब्द हों वह या तो लिखकर भेज दो या यहाँ आकर लिखा जाओ। इस आज्ञा पत्र के जारी होने के बाद सैकड़ों सिख गुरु जी की सेवा में हाजिर हुए कुछ लोग लिखी हुई वाणियाँ साथ भी लाये।

इस तरह से इस आरम्भिक कार्य्य को पूरा करके गुरु अर्जुनदेव जी ने ग्रन्थ बनाना आरम्भ किया। इस पवित्र काम के लिये उन्होंने अमृतसर तीर्थ से पूर्व दिशा में एक मील के फासले पर बेरियों के उद्यान में तम्बू तनाये।[1]

सिख समाज के लिये धार्मिक ग्रन्थ की आवश्यकता से प्रेरित होकर ही तो गुरु अर्जुनदेव जी ने ग्रन्थ साहब की रचना की थी किन्तु इसके सिवा एक दूसरा कारण ऐसा था कि गुरु वाणियों का संग्रह शीघ्र ही करना आवश्यक हो गया। बात यह थी कि पृथ्वीचन्द ने समानान्तर अपना समाज खड़ा कर लिया था और उसके पुत्र तथा अनुयाई अलग से वाणियों की रचना भी कर रहे थे। जिनमें नानक नाम का ही कर्त्ता लगाते थे। गुरु अर्जुनदेव जी के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे अब तक के गुरुओं की वाणियों का एक ग्रन्थ में संग्रह करदें ताकि उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध पृथ्वीचन्द जी या अन्य किसी की वाणियों से लोग सावधान हो जावें। (पृथ्वीचन्द जी की कुछ वाणियों का संग्रह सरदार गंडासिंह जी के पास मौजूद है।)

इस प्रकार ग्रन्थ साहब की रचना करके गुरु अर्जुनदेव जी ने न केवल एक कमी को पूरा किया बल्कि गुरु सिद्धान्तों में जो खिचड़ी पृथ्वीचन्द की रचनाओं से हो जाने की आशंका थी, उसने भी सदा के लिये दूर कर दिया।

१. श्री सुखमनी साहब जी की रचना भी यहीं हुई थी।

गुरु अर्जुनदेव ने इन दिनों एक काम यह और किया कि अपने शिष्यों पर नियमित रूप से भेट बांध दी। परमार्थ के काम ज्यों ज्यों बढ़ते हैं। त्यों त्यों धन की भी आवश्यकता होती है। अत यह आवश्यक ही था कि शिष्यों पर उनकी सामर्थ्य के अनुसार कुछ भेंट मुकर्रिर की जाय। भेंट की वसूली का काम मंजियों के अधिकारियों और मसन्दों के सुपुर्द किया यह भेंट कोई कर न होकर सिखों द्वारा स्वत. निर्धारित की गई थी। और जिसे कि कोई भी मंजीधर या मसन्द अपने लिये इस्तेमाल नहीं करके गुरु जी का माल समझ कर उनके पास पहुँचा देता था। इन दिनों गुरु जी का एक नया दुश्मन चन्दू और खड़ा हो गया जिसकी लडकी का सिक्का लेकर ब्राह्मण नाई लड़का ढूंढ़ते २ अमृतसर आ पहुँचे, उन्होंने गुरु जी के भी घर वार को देखा, जब दिल्ली लौट कर गये तो उन्होंने सलाह दी कि गुरु अर्जुनदेव जी के शाहजादे श्री हरिगोविन्द सब प्रकार से आपकी लडकी के योग्य हैं। अभिमानी चन्दूशाह ने कहा "वैसे तो तुम मोरी की ईंट को चौवारे पर लगा रहे हो।" क्योंकि कहाँ मैं दिल्लीश्वर का कृपापात्र चन्दूशाह और कहाँ भीख पर गुजर करने वाला अर्जुनदेव। किन्तु खैर जाओ उसके यहाँ ही कर आओ। यह खबर दिल्ली के शिष्यों ने गुरु जी के पास भी पहुँचा दी और लिख भेजा, ऐसे अभिमानी की लड़की की शादी को गुरु जी हरगिज स्वीकार न करें। स्वाभिमानी गुरु अर्जुनदेव जी साहब ने नाई ब्राह्मणों को वापिस कर दिया।

फिर कलह

एक समय जब कि ग्रन्थ साहब की रचना हो रही थी बादशाह अकबर के पास कुछ लोगों ने शिकायत की कि अर्जुनदेव एक ऐसा ग्रन्थ रच रहे हैं जिसमें इस्लाम और हिन्दू धर्म की तौहीन है। बादशाह ने इस बात की जाँच के लिये गुरु अर्जुनदेव जी के पास आदमी भेजा कि वे ग्रन्थ साहब समेत मेरे पास पधारें। गुरु जी स्वयम तो नहीं गये किन्तु बाबा बुड्ढा और भाई गुरुदास जी को ग्रन्थ साहब लेकर भेज दिया। बादशाह ने बड़ी इज्जत के साथ उन लागों को अपने पास बिठाया और कहा आप मुझे इसे पढ़कर सुनावें। बाबा बुड्ढे ने खोल कर पढ़ना शुरू किया —

ग्रन्थ साहब की शिकायत

"खाक नूर करदन आलम दुनियां।
आसमान जिमीं दस्त आब पैदायश खुदा॥
बन्दा चश्म दीद न फना।
दुनियां मुरदार खुरदनी गाफिल हुवा॥
गयवान हयवान हराम कशतनी मुरदार बखारोहि
दिल कवज कबजा कादरो दोजख सजाइ॥
दिली नियामत बिरादरा दरबार मिलक खानाइ।
जब अजराईल, बसतनी तब चिकारे बिदाइ॥
हवाल मालूम करद पाक अलाह।
बगो नामक अरदासि पेसि दरवेश बन्दाह॥"

इस पर बादशाह ने ग्रन्थ साहब के कुछ पन्ने खुद पलट कर एक जगह उंगली रखकर कहा अच्छा यहाँ से पढ़िये। बाबा बुड्ढे ने फिर पढ़ा —

"अलह अगम खुदाई बन्दे, छोड खयाल दुनिया के धधे।
होइपै खाक फकीर मुसाफर, इहु दरवेसु कबूल दरा॥ १॥

"सचु निवाज यकीन मुसला, मन मा मारि निवारिहु आसा।
देह मसीत मनु मौलाणा कलम खुदाई पाकु खरा ॥२॥"

चुगलों को इतने पर संतोष नहीं आया और कहा हम चाहते हैं किसी आदमी से पढ़वाया जाय जो शिष्य न हो, हमारा तो अनुमान है कि इसमें इस्लाम और हिंदू धर्म की अवज्ञा के साथ ही बुत परस्ती भी है। बादशाह की आज्ञा से मुन्शी सर्वदियाल ने दो स्थलों पर पढ़ा। एक स्थल पर लिखा मिला —

"कोई बोलै राम राम कोई खुदाइ।
कोई सेवै गुसाइआ कोई अलाहि ॥
कारन करन करीम, किरपा धारि रहीम ॥

दूसरे स्थल पर पढ़ा —

"घर में ठाकुर नजर न आवें, गलमें पाहन लै लटकावें।
भरमें भूला सकित फिरता, थीर बिरलो खप खप मरता ॥
जिस पाहन को ठाकुर कहता, सो पाहन ले उसको डूबता।
गुनहगार बा लून हरामी, पाहन नाव न पार गरामी ॥
गुरु मिलि नानक ठाकुर जाता, जल थल पूरन पुरख बिधाता ॥

इन शब्दों को सुनकर बादशाह को दृढ निश्चय हो गया कि शिकायत करने वाले बिल्कुल झूठे हैं और यह ग्रंथ सतग्रन्थ है, अतः उसने ५१ अशर्फी ग्रन्थ साहब पर भेंट कीं। भाई बुड्ढे और गुरुदास को विदा किया। पंजाब से लौटते वक्त बादशाह गुरु साहब के दर्शनों को स्वयम गोइन्दवाल पहुँचा। और गुरुजी के स्वभाव और उपदेशों का उस पर ऐसा असर पड़ा कि उसने गुरुजी से साग्रह कहा कि महाराज मेरे लायक कोई खिदमत जरूर फरमाइये। इस पर गुरु जी ने कहा —हम अपने लिये तो कुछ नहीं चाहते किन्तु यहीं शाही फौजों के पड़ाव के समय वस्तुओं की अधिक खपत से लोगों की आमदनी अच्छी हो गई थी इसलिये उस पर टैक्स बढ़ा दिये गये थे। अब चूंकि शाही सेना यहाँ से जा चुकी है इसलिये उनकी आमदनी कम हो जाने के कारण बढ़ाये हुए टैक्सों को अदा कर सकने में असमर्थ हैं और जिसके कारण उन्हें दुःखों का सामना करना पड़ रहा है। यदि इन बढ़े हुए टैक्सों को हटा दिया जाय तो लोगों का दुख दूर हो सकता है। बादशाह ने उनकी दयनीय आज्ञा को स्वीकार करके आमिलों को हुक्म कर दिया कि बढ़े हुए टैक्स हटा दिये जाँय।

बादशाह अकबर के बाद उसका लड़का सलीम जहाँगीर नाम धारण करके गद्दी पर बैठा। खुसरो कई अनिवार्य कारणों से अपने बाप जहाँगीर से नाराज़ हो कर विद्रोही हो गया।[1] बादशाह जहाँगीर को जब उसकी खबर लगी तो उसने एक ओर तो पंजाब के हाकिमों और जागीरदारों को उसके विद्रोह की सूचना दी दूसरी ओर खुद भी उसका पीछा करने की तैयारी की। "तुजक जहाँगीरी" में खुद जहाँगीर ने बताया है कि मैंने अमुक तारीख को आगरा से कूच किया। अमुक तारीख को अमुक मुकाम पर पहुँचा। सन् १०१५ हिजरी की १७ वीं जीकद हजा को वह कर्नाल आ पहुंचा था। यह सन् जहांगीर सन् का पहला वर्ष था। इसी सन की २४ वीं

राजद्रोह

१. अपने लिए बादशाही का एलान किया।

फर्वरी को बादशाह के पास सूचना आई कि खुसरो लाहौर की ओर धावा करने की गर्ज से बढ रहा है। अत जहांगीर ने अपने कुछ सरदार लाहौर भेज दिये । लाहौर मे खुसरो ने हलकी सी लडाई की किन्तु उसे पता चला कि जहागीर भी यहीं आ रहा है। तब वह मय अपनी फौज के वहा से चल दिया किन्तु बाद में वह जहाँगीर के लश्कर द्वारा पकड लिया गया।

लाहौर में आकर जहाँगीर ने उसके साथियों को बुरी तरह से मरवा डाला।

जब वह लाहौर से चल रहा था उसके पास शिकायत हुई कि खुसरो को मदद देने वालों में एक अर्जुनदेव भी हैं। जो गोइन्दवाल मे रहते हैं।[1]

गुरुजी गिरफ्तार किये गये और बादशाह ने यातनाये देकर मारने का हुक्म दिया। इसके बाद वह लाहौर से चला गया। गुरुजी को जो कष्ट दिये वे बड़े रोमाचकारी हैं उनके शरीर पर उबलते हुये पानी को डाला गया। गर्म तवों पर बिठाया गया। पर उन्होंने अपने धर्म की रक्षा के लिये सब कुछ बिना आह किये बर्दाश्त किया। उनके सारे शरीर मे फफोले पड गये। यातनाये देने वाले इतने से ही संतुष्ट न हुए वे उन्हे और भी दुख देना चाहते थे अत रावी के किनारे ले जाकर उन्हे पानी मे डुबकियाँ दी गईं। जहाँ गुरु अर्जुन देव के प्राण इस शरीर को छोड़ गये।[2]

रावी के किनारे हजारों सिखों और हिन्दुओं ने गुरुजी की इस शहीदी को देखा। सबके हृदय दहल गये। गुरुजी का शव सिख लोगों ने लेकर किले के सामने सस्कार कर दिया। जहाँ उस स्मृति में आज एक विशाल गुरुद्वारा देहरासाहब के नाम से बना हुआ है।

यह समाचार बिजली की भाँति सारे पंजाब में व्याप्त हो गया। सिख तिलमिला उठे।[3]

गुरु अर्जुनदेव जी के कार्यों पर प्रकाश

सिख समाज का निर्माण बराबर होता जा रहा था और गुरु नानकदेव जी का प्रत्येक अनुवर्ती गुरु उसमें कुछ न कुछ ऐसे कार्य और साधन जोड देता था जो सिख समाज को पूर्णता का रूप देने में सहायक हो सके किन्तु अधिकांश इतिहासकारों का मत यही है कि सिख समाज का पहला निर्माता गुरु अर्जुनदेव ही था। कहने मे अशत सचाई है और वह यह कि गुरु अर्जुनदेव जी ने जो सविधान सिख-समाज की रचना के लिये बनाया, उसमे कुछ कार्य तो बहुत ही विशिष्ट श्रेणी के हैं इन पृष्ठों मे हम उन्हीं कार्यों का वर्णन करना चाहते है।

ग्रथ साहब की रचना

उनका एक अत्यन्त ही आवश्यक कार्य था ग्रंथ साहब की रचना का। भला जिस सम्प्रदाय के पास उसका धर्म ग्रन्थ न हो, वह कैसा धर्म और कैसी सम्प्रदाय। वैसे संसार मे ऐसे भी धर्म पंथ हैं, जिनके पास कोई भी धर्म पुस्तक नहीं है किन्तु उनका कोई समान आचरण भी तो नहीं है।

१. कुछ सिख इतिहासकार लिखते है कि गोइन्दवाल के मुकाम से गुजरता हुआ खुसरो गुरु जी से मिला था, और हरि मन्दिर पर कुछ रुपये भी चढ़ाये थे।

२. सवत् १६६३ जेष्ठ सुदी ४।

३ मैकालिफ ने यद्यपि उसे महकमा रेवेन्यू का अफसर बताया है किन्तु निश्चित नही कहा जाता कि वह किस पद पर था।

जयराम के साथ हुआ था। जयराम बहुत ही नेक और सहृदय व्यक्ति थे। संवत् १५४१ वि. के फागुन मे वह तलवंडी गए। वहां उन्होंने नानकदेव के प्रति पिता द्वारा किये जानेवाले कठोर वर्ताव की बातें सुनी और सांकेतिक तौर पर रायबुलार ने भी कहा अतः वह नानकदेव जी को सुलतानपुर ले गये। कहा जाता है रायबुलार ने कल्यानराय जी को भी सलाह दी थी कि नानक देव को जयराम जी के साथ सुलतानपुर भेज दिया जाय।

सुलतानपुर जाना

बहिनोई के साथ सुलतानपुर को विदा होते समय नानक देव जी राय बुलार से मिलने के लिए गये थे। चलते समय कल्यान राय ने एकान्त मे श्री नानक देव जी को कारबारी आदमी बनने के लिये बहुत समझाया। माता तृप्ता की आँखों मे आँसू डबडबा आए, माँ का हृदय होता ही कोमल है। पुत्र विछोह उनके लिए मुश्किल से बर्दास्त करने की चीज होती है किन्तु नानक देव ने माता जी को धीरज दिया और वे सुलतानपुर चले गये।

गोकि नानकदेव जी के बहन बहनोइ बड़े ही उदार और ऊंचे खयाल के आदमी थे। कल्याणराय की तरह जैराम को पैसे इकट्ठा करने की कोई भारी ख्वाहिश नहीं थी। वे दोनों ही नानकदेवजी को प्यार से रखते थे और चाहते थे कि यह मजे से नहाये धोये और आराम के साथ निश्चिन्त होकर हरि का भजन करे किन्तु नानकदेव ने यह उचित नहीं समझा कि वे बहन बहनोई के धान को इस तरह ठाली रहकर खावे। अत. उन्होंने जयरामजी से कुछ कारबार जुटा देने की इच्छा जाहिर की। आतरिक इच्छा जयराम की भी यह थी कि नाननजी किसी काम से लग जायं तो इनकी तबियत लगी रहे वरना किसी दिन मन मे आगई तो उठ निकलेंगे। किन्तु बीबी नानकी उन्हे किसी झंझट मे डालना नहीं चाहती थीं इसलिये उन्होंने बड़े प्रेम से कहा, भैया तुम आनन्द से ईश्वर का भजन करो, अपने यहाँ सब कुछ है तुम क्यों कर इस झंझट में पड़ते हो।

मोदी खाना

आखिरकार वह धंधे मे लग ही गये नवाब दौलतखाँ ने उन्हे अपना मोदी[1] बना दिया गुरु जी का भूखे लोगो और साधु संतों को खिलाने पिलाने की वही प्रथा जो तलवंडी मे थी यहाँ भी चलने लगी किन्तु कहना य चाहिये कि और भी तेजी से क्योंकि यहाँ कोई रोकटोक करने वाला तो था ही नहीं जो भी मागने जाता दिल खोलकर देते। 'तेरा ही है तेरा ही है।' देने मे यही उनका शब्द होता।

दुनियाँ मे भले बुरे सभी प्रकार के आदमी होते है कुछ लोगों को नानकजी का यह शुभ काम भी अखरा उन्होंने नवाब से शिकायत की अच्छा मोदी बनाया, सारे माल को वह तो भिखमंगो को चन्द दिन मे ही लुटा देगा।

इस समय तक भाई बाला जी भी सुल्तानपुर आ चुके थे जब उन्होंने देखा कि नानकजी तो दुकान के काम मे लग गये है तो उन्होंने भी अपने घर जाकर खेती क्यारी का काम संभालने को आज्ञा मागी. हँसते हुए गुरुजी ने कहा भाई यह काम तो थोड़े दिन का है। हमें जो काम करना है वह तो अभी बाकी पड़ा है।

गुरदासपुर जिले मे रंधावे की पक्खो एक गॉव है। वहाँ के मूलचन्द नामक चौना खत्री की लड़की के साथ गुरुजी का टीका होगया। बहिन नानकी ने तलवंडी में अपने माँ बाप के पास विवाह के

१. उस समय की शासन प्रथा में वेतन सम्बन्धी दो कायदे थे। नगद वेतन देने का और सामग्री देने का। सामग्री देने के लिए ही उस समय मोदी रक्खे जाते थे।

दूसरे स्थान पर चले जाते थे। वहीं उनकी संगति भी चल निकलती थी। पहले स्थान का कोई विशेप महत्व न रहता था। हरि मन्दिर के बनाने से गुरुओं का अमृतसर ही सबसे बड़ा गुरुद्वारा और स्थिर महास्थान बन गया। पूजा पाठ के लिये गुरु द्वारा गृहस्थ घर से अलग स्थान हो गया।

गुरु अर्जुनदेव जी का बनवाया हुआ यह हरि मन्दिर अथवा स्वर्ण मंदिर आज भारत और भारत से बाहर देशों में भी अद्भुत स्थानो में गिना जाता है।

उस समय के रामदासपुर, अमृतसर और हरि मन्दिर के वृतान्तों को पढते हुए हमे प्रजातांत्रिक लोगों की राजधानी वैशाली की याद आ जाती है। वहाँ के सात हजार, सात सौ, सात गृहपति राजा कहलाते थे। उस नगरी में कोई भी भूखा नंगा और असमान हालत मे न था। उनका एक विशाल सस्थागार था। जिसमें वे इकट्ठे होकर अपने राज्य और समाज के लिये नियम बनाते थे। उनके हास्यप्रमोद और आमोद के लिये नगर के बाहर उपवन और उद्यान थे। उस नगर में सभी लोग समृद्धिशाली सभी शिष्ट और सभी प्रसन्न चित्त वाले थे। यही सब कुछ, कुछ ही उलट फेर के बाद गुरु के चक अथवा रामदासपुरमे था। इससे सिखोंके बौद्धिक, आत्मिक और आर्थिक सभी प्रकारके विकासोंको प्रोत्साहन मिला।

इनके अलावा दो काम और भी थे जो गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा ही प्रचारित हुये और जिन्होंने सिख समाज को पुष्ट और संगठित होने मे काफी मदद दी। शिष्य लोगों पर कोई नियमित लाग न थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने आमदनी का कुछ अंश दान पुण्य मे देने के लिये सिखों को उत्साहित किया जिसे उन्होंने बडे प्रेम से स्वीकार कर लिया। यह काम मञ्जियों के प्रधानों एवं मसन्दों एव विशिष्ट शिष्यो को सौपा गया है।

इस प्रकार की सारी आमदनी उन्होंने परोपकार और दीन दुखियो की सेवा मे ही खर्च की। इस तरह इस साधन से भी सिख समाज की रचना मे कुछ कम सहायता नहीं मिली।

गुरु अर्जुनदेव जी ने शिष्यों को एक और प्रोत्साहन दिया, वह था घोड़ों आदि के व्यापार का। शिष्यों के गिरोह काबुल-कंधार तक जाकर घोड़े और दूसरी चीज खरीदते और उन्हे पंजाब दिल्ली और पटना तक बेचते। इस आयोजन से सिखों मे व्यापार करके सम्पन्न होने की तो प्रवृत्ति आई ही इसके अलावा अनेकों लाभ हुए, उनमे से कुछ प्रत्यक्ष लाभ तो हमे यह जान पड़ते हैं (१) इन लोगों ने जहाँ भी गये अपने धर्म और गुरुओं की कीर्ति को फैलाया (२) देश विदेश की यात्रा करने से राजनैतिक और सामाजिक स्थितियों से परिचित हुए (३) घोडों का व्यापार करने से अच्छे घोडों की परख आई और सवारी करना सीखे तथा घोडे की सवारी का शौक पैदा हुआ। (४) रास्ते मे डाकू और लुटेरों के भय से बचने के लिये अच्छे २ हथियार साथ रखने के कारण हथियारों के प्रति रुचि बढी।

यद्यपि यह बातें गुरु अर्जुनदेव जी के समय में काम न आ सकीं किन्तु बीज तो जम ही गया। जिसने एक शताब्दी मे वह रूप धारण किया कि अटक से कटक तक सिखों की बहादुरी से सारा देश पूरित होगया।

यह कार्य थे जिनके कारण इतिहासकार कहते हैं कि गुरु अर्जुनदेव ने सिख समाज के निर्माण की नींव डाली। हम कहेगे गुरु अर्जुनदेवजी ने सिख समाज की नींव नहीं डाली किन्तु उसकी शनैः शनैः बनती आ रही इमारत को मजबूत करने के लिये सीमेंट का आविष्कार किया।

आठवाँ अध्याय

गुरु हरिगोविन्द जी की जीवन-चर्या

गुरु हरिगोविन्द साहब का जन्म अमृतसर के नजदीक पश्चिम की ओर वडाली गाँव में सवत १६५२ विक्रम असाढ सुदी ३ आदित्यवार को आधी रात के टलने पर गुरु अर्जुनदेव जी के घर गंगा जी के उदर से हुआ था। बालकपन मे ही उन्होंने अपने पिता श्री गुरु अर्जुनदेव जी की शहीदी देखी। घर पर चढ़ाई करते हुये राज्य के आदमियों को भी देखा। इसी बालक पन में उन्होंने अपने कानों से यह भी सुना कि उनके पिता और सिक्ख सम्प्रदाय के महान गुरु अर्जुनदेव जी को नृशसता पूर्वक मार डाला गया है। इसी उम्र मे उन्होंने अनुभव किया यह जीवन संघर्षमय है। गुरुगादी के समय जब उन्हें तिलक देने लगे तो वे कमर मे दो तलवारें लटका कर आये दूसरी वस्तुएं जब आपको अर्पण की गईं तो आपने उन्हे तोशाखाना में भेज देने की आज्ञा दी और तलवारे बाधे रहे सिक्खों ने पूछा गुरुदेव यह क्या? आपने कहा मैं 'फकीरी और मीरी' एक साथ चलाना चाहता हूँ। इसलिये ये दोनों कृपाणें धारण की हैं।

बाल, किशोर और तरुणावस्था

वे प्रात. शीघ्र ही उठकर स्नान ध्यान से निवृत्त होकर अखाडे में व्यायाम करने लगे। मुग्दर फिराते और कुश्ती लड़ते दूध, मक्खन और दही खूब खाते। पांच छ' वर्ष में ही वह बहुत तगड़े हो गये। छोटी आयु में गुरु अर्जुनदेव जी ने शिक्षा के लिये हरिगोविन्द जी को बाबा बुड्ढा जी के हवाले कर दिया था। जिन्होंने उन्हें कुश्ती लडना, सवारी करना, तीरन्दाजी और तलवार आदि चलाने मे जल्दी ही निपुण कर दिया।

विवाह उन्होंने तीन किये, एक विवाह उनका गुरु अर्जुन देव जी के ही सामने कपूरथला इलाके के डला गांव के खत्री नारायणदास की सुपुत्री दामोदरी जी से सवत १६६१ वि० में हो चुका था। उसके बाद आपके दो विवाह हुये। यह विवाह उन्होंने स्वयम् किए।

श्री दामोदरी जी की कोख मे ७ वैसाख संवत १६६८ वि० मे बीबी वीरो जी अमृतसर में पैदा हुई और इन्हीं से गुरदित्ता का जन्म संवत १६७० के कार्तिक की २वीं को डरोली गाव मे हुआ। सवत १६७४ के माघ की १६वीं को अणीराय जी भी इन्हीं से पैदा हुये। इस तरह से माता दामोदरी से गुरु जी के तीन संतानें हुईं।

संतानें

माता महादेवी जी से अकेले सूरजमल जी ही पैदा हुए जिनका जन्म सवत १६७४ के कार्तिक की २२ वीं को हुआ।

माता नानकी जी से दो पुत्र पैदा हुये। अटलराय जी कार्तिक सुदी पूर्णमासी संवत १६७६ वि में और श्री तेगबहादुर जी माघ सुदी २ सवत १६७८ विक्रम मे।

इन सतानों मे से अटलरायजी और अणीरायजी का बालकपन ही मे परमधाम प्रस्थान होगया। गुरदिता जी की औलाद करतारपुरिये और सूरजमल की सतान आनन्दपुरिये सोढी के नाम मे मशहूर हुई।

सवत १६६५ वि मे गुरु जी ने अमृतसर दरबार के सामने एक बहुत ऊचा चबूतरा बनवाया जिसका नाम तख्त श्री अकाल बु गा रक्खा। इस पर बैठकर आप दोनो समय दरबार लगाते थे।

गुरु जी की इस योद्धापन की प्रकृति को देखकर मसन्दो को घबराहट हुई। उन्होंने माता श्री गगा जी के पास आकर विनती की कि गुरु जी को केवल साधु वेश मे ही रहना चाहिए। मुगल बादशाह जहाँगीर जब सुनेगा कि गुरु हरिगोविन्द जी साहब पीरी की बजाय मीरी की ओर बढ रहे है तो अवश्य ही सिख समाज और गुरु जी पर आपति आयगी। माता जी ने मसन्दों को यह कह कर सतुष्ट कर दिया कि जिनके ऊपर गुरु नानक देव जी का वरद हस्त है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

शस्त्रो का अभ्यास और सग्रह करने के अलावा गुरु जी ने शिकार खेलना भी आरम्भ कर दिया। निशानेबाजी मे सिद्ध हस्त होने और शरीर को स्फूतिवान बनाये रखने के लिये शिकार प्रत्येक क्षत्रिय के लिये परमावश्यक है। जब गुरु हरिगोविन्द जी साहब तपेश्वर के साथ ही राजेश्वर होने की प्रतिज्ञा कर चुके थे तो उनके लिये वे सभी काम करने ही चाहिये थे जो एक राजेश्वर के लिये आवश्यक है अत: शिकार खेलना इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों मे से ही एक प्रयत्न था किन्तु भोले भाले लोग इन बातों पर आश्चर्य प्रकट करते थे, एक दिन एक हिन्दू साधु ने उन्हे शिकार खेलते देखकर नाक भौं चढाते हुए टोका भी और कहा आप सत होकर जीव हत्या करते हैं, गुरु जी ने अपनी ओर से कुछ न कहते हुए गुरु नानक देव जी के इन शब्दों को पढ़ा —

आखेट कर्म

"देही अन्दरि नामु निवासी। आपे करता है अविनासी॥
ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि वेखै सबदि रजाई है॥"

गुरु जी स्वयम तो भक्ति रस की भाति ही वीर रस मे ओत प्रोत हो ही चुके थे किन्तु वे प्रत्येक सिख के हृदय मे भी वीर रस का प्रवाह जारी कर देना चाहते थे। इसलिये सांय प्रात होने वाले हरि कीर्तन के बाद मीरासी लोगों से वीर राग भी गवाया करते थे। जिन्हे सुनकर सिखों के हृदय निर्भय, धैर्यवान और तेजपुंज होते जा रहे थे। इसके अलावा उन्होंने प्रत्येक सिख से कह दिया था कि वे अस्त्र शस्त्रों का संग्रह बराबर करते रहे।

वीर रस का प्रवाह

वैसे तो गुरु अर्जुन देव जी के समय से ही विरोधी काफी शिकायत करते चले आ रहे थे। इस समय गुरु हरिगोविन्द की बढ़ती हुई जीवन प्रणाली को देखकर जहागीर के कान भरे जाने लगे। उससे कहा गया गुरु बदला लेगा। वह रात दिन शक्ति बढा रहा है। हजारों शस्त्र बन्द आदमी उसने इकट्ठे कर लिये है। अपने लिये उसने सच्चा बादशाह घोषित कर दिया है और अब पलग की बजाय तख्त पर राजसी ठाठ से बैठकर अपना दरबार लगाता है यदि उसके दमन मे देर हुई तो मुगल सल्तनत के लिये धक्का पहुँचाने वाले दल का एक सुदृढ सगठन हो जावेगा। इन शिकायतों को सुनकर बादशाह ने अचानक एक बडा दल भेज कर उन्हे गिरफ्तार करा लिया और—गवालियर के किले मे भेज दिया।

अब तक सिख समाज गुरु नानकदेव जी महाराज की जन्म साखी पर अवलंबित था किन्तु उसमे कथा भाग और उपदेश भाग दोनो सम्मिलित थे। वैसे ससार मे ऐसे भी मजहब है जिनमे कथा भाग और उपदेश भाग दोनो ही होते है। वाइविल, और कुरान ऐसे ही धर्म ग्रन्थों मे से है। जिनमे उपदेश के साथ ही उन महापुरुषो के जीवन सम्बन्धी तथा अन्य एतिहासिक कथाये भी जुड़ी हुई हैं। अपने देश मे पुराण भी इसी प्रकार के हैं। किन्तु भारत के प्राचीन धर्म पुस्तकों मे प्रत्यक्ष रूप मे कथा भाग कुछ भी नही है। और जो है भी वह उदाहरण और प्रमाण स्वरूप है। वेद और उपनिषदे ऐसे ही धार्मिक ग्रन्थ है। गुरु अर्जुनदेव साहब भी जहाँ तक हम समझते हैं—धर्म ग्रन्थ को केवल उपदेश भाग ही रहने देना चाहते थे—और यही उचित भी था। अत उन्होंने "गुरु ग्रन्थ साहब" की रचना की। रचना की बजाय यदि हम सम्पादन करना कहे तो और भी उपयुक्त होगा। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती समस्त गुरुओ की वाणियों[1] को सग्रह किया और अपनी रची हुई वाणियो को भी उसमे शामिल कर दिया।

उनके इस कार्य से सिख समाज के सामने एक निश्चित रूप मे उनका धार्मिक ग्रन्थ उपस्थित हो गया। पहले से प्रचलित प्राय सभी पौराणिक ग्रंथो से खिच कर उनका दृष्टि बिन्दु इसी पवित्र ग्रथ पर केन्द्रित होने लगा।

साथ ही समाज की पूर्णता के लिये कथावाचकों की जो आवश्यकता होती है। ग्रथ साहब के बनने से वह 'ग्रन्थी' के रूप मे प्रकट होने लगे। और आगे चलकर कुछ कम वेग उन्होंने पुरोहितों का स्थान ले लिया। दूसरा काम था उनका अमृतसर (तड़ाग) का निर्माण करना। यद्यपि इससे पहले बावली साहब का निर्माण हो चुका था किन्तु अमृतसर मे कुछ और भी विशेषताये थी। यदि बावली साहब को हम कुरुक्षेत्र और अमृतसर जी को हरिद्वार का प्रतिस्पर्धी कहे तो कोई भी हर्ज नहीं होगा।

अमृतसर के बाद तरनतारन और सतोखसर के सरोवर है। जिन्होंने सिख समुदाय मे स्वधर्म भावना को पुष्ट करने मे मदद पहुँचाई।

प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने धर्म की कोई नीव या आधार शिला बनाया करते है। जो उसे बढ़ाने मे भी सहायता देता है। इस्लाम धर्म को यदि रणबाके अरवों और पठानों की तलवार ने फैलने मे मदद दी थी और बौद्ध व ईसाई धर्म को उसके आचार्यो की बेमिसाल सहनशीलता ने बढ़ाया था और ब्राह्मण धर्म की तरक्की उनकी विलक्षण बुद्धि के कारण हुई थी तो हम कहेगे आरम्भिक काल मे सिख-धर्म परोपकार की उत्कट भावना की भित्ति पर और उत्तर काल मे महान बलिदानों के आधार पर फलाफूला था। गुरु अर्जुनदेव जी के समय तक गुरुओ की परोपकार वृति ने उसे उत्तेजन दिया। प्राय जो कुछ उनके पास आता, उसे लगर मे गरीबो की सहायता मे खर्च करना और खुद खेती कराके उससे गुजर करना तथा जगह-जगह धर्मशाला बावली और सरोवर बनवाना, उनके महान कार्यो से लोग बलात उनकी ओर आकर्षित होते थे।

गुरु अर्जुनदेव जी ने एक तीसरा काम हरि मन्दिर और अमृतसर तथा तरनतारन आदि नगर बनवाकर किया। अब तक गुरु लोग जो स्थान बनवाते थे वह धर्मशाला कहलाते थे। जिनके एक भाग मे गुरु और उनका परिवार, एक भाग मे लगर और एक भाग मे प्रमुख शिष्यों का वासगृह होता था, जो एक हद तक पूर्ण सुविधाजनक स्थान नहीं कहा जा सकता था और जहाँ एक स्थान से उठकर गुरु लोग

१. कुछ लोगो का कहना है कि समस्त वाणियो का नहीं किन्तु खास-खास वाणियो का ही सग्रह किया गया।

गुरु जी के एक लंबे अर्से तक पंजाब न पहुँचने से सिख लोगों में बेचैनी फैलने लग गई। सगतें आ आकर उनके समाचार पूछने लगीं। माता गंगाजी भी घबरा उठीं, इसलिये बाबा बुड्ढा को उन्होंने गुरु जी के समाचार लेने के लिए देहली भेजा, जहाँ से वे आगरा होते हुये गवालियर पहुँचे। गुरु जी ने उनसे कहा कि महान कार्य्य की पूर्ति के लिये महान तप की आवश्यकता होती है। इस एकान्त स्थान में बड़े ध्यान के साथ परमात्मा का चिन्तन करता हूँ। बाबा तुम वापिस लौट जाओ वहाँ माता जी तथा सिख लोगों से कहना कि मैं वहाँ बड़ी प्रसन्नता से रहता हूँ। साथ ही गुरु जी ने सगतों और माता जी के पास बाबा के हाथ एक पत्र भी भेजा, जिसमें लिखा था, आप लोग कोई भी चिन्ता न करें। वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब हम तुम्हारे पास आवेंगे।

पंजाब में बेचैनी

दबिस्तान के लेखक ने सगतों का गुरु जी से प्रेम प्रकट करते हुये लिखा है कि बहुत से सिख गवालियर जाते और अगर्चे वह गुरु जी से न मिल पाते तो भी वह बाहर से नमस्कार कर के देश को लौट आते। कुछ दिन बाद भाई जेठा जी भी दिल्ली पहुँचे। उन दिनों बादशाह जहाँगीर की तबियत कुछ खराब सी रहती थी। काफी समय के बाद वजीरखाँ ने बादशाह को समझाया कि आपने व्यर्थ ही एक ईश्वर के प्यारे को गवालियर में बन्द कर रक्खा है। इससे आपका कोई भला नहीं होना है। बादशाह ने कुछ सोच विचार के साथ गुरु जी का छोड़ना स्वीकार कर लिया और वजीरखाँ ,गवालियर पहुँचा, बादशाह की आज्ञा जब वजीरखाँ ने सुनाई तो गुरु जी ने कहा, जिस बन्दी घर में हमें तप करने के लिये बादशाह ने भेजा था। अब वह बन्दी घर तो नहीं रहना चाहिये। हमारा यहाँ से छूटना तभी शुभ है जब यहाँ के इन बन्दी राजाओं को भी छोड़ दिया जावे। कहा जाता है कि जहाँगीर पहले तो चकराया किन्तु उन बन्दीजनों के हितैषियों द्वारा वह विश्वास दिलाये जाने पर कि वे अब कभी भी आपके प्रति बगावत नहीं करेंगे, बादशाह ने उनके छोड़ने का भी हुक्म दे दिया। गुरु जी पर अहसान यह कर लिया कि मैं तो आपके ही आश्वासन पर इन्हें छोड़ रहा हूँ।

नमस्कार

इस घटना के बाद से उधर के लोग गुरु जी को 'बन्दी छोड बाबा' नाम से पुकारने लग गये।

सिख इतिहासकारों और साथ ही मि० मैकालिफ ने लिखा है कि "बादशाह ने चन्दू को उचित सजा देने के लिए उसे मय परिवार के गुरु जी के ही हवाले कर दिया था।" गुरु जी के साथ ही बादशाह भी पंजाब को आया। उसे काश्मीर में स्वास्थ्य सुधार के लिये जाना था। गुरु जी ने बादशाह को गोविन्दवाल का स्थान दिखाया। जिसे देख कर बादशाह बहुत खुश हुआ और उसकी इच्छा अमृतसर को देखने की भी हुई, इसलिये वह गुरु जी के साथ अमृतसर भी आया।

बादशाह का रुख परिवर्तन

बाबा जेठा ने अमृतसर पहुँच कर गुरु जी के आने का शुभ समाचार सुनाया। जिसे सुनकर सिखों में आनन्द की लहर दौड गई। बाबा बुड्ढा ने आगे बढ़ कर गुरु जी का स्वागत किया। बादशाह भी कड़ाह प्रसाद में शामिल हुआ। उसने हरि मन्दिर के बनवाने में सहायता देने की भी चर्चा की, किन्तु गुरु जी ने स्वीकार नहीं किया। दरबार के समय बादशाह ने पूछा आप जैसे सुन्दर नौजवान के लिये इस तरुणाई में काम पर विजय कैसे संभव है, इसको मुझे बताइये। गुरु जी ने एक प्राचीन कथा का हवाला देकर बताया था कि राजा

अमृतसर में

ने विषय वासना को केवल इस डर से छोड़ दिया था कि उसे एक महात्माने कहा था कि तेरी जिन्दगी के केवल आठ दिन और शेष हैं। भला जिसे आठ दिन तक तो जीने का आश्वासन है, वह डर कर कुकर्म को छोड़ देता है और जो यह मानते हों कि काल का पता नहीं कब मौत आ धमके, वे क्यों न सचेत रहेंगे।

सीस्तान में सन् १५५० में मुहम्मदगीर नाम का एक मुसलमान बालक पैदा हुआ था। युवावस्था में वह फकीर हो गया और मिया मीर के नाम से मशहूर हो गया। वह लाहौर के पास आकर एक जंगल रहने लग गया। फकीर अच्छा और ईश्वर-भक्त था। उसकी प्रशंसा चारों ओर फैल गई। बादशाह जहाँगीर भी उनके दर्शन करके बहुत खुश हुआ और उसने अपनी डायरी में लिखा—"मिया साहब एक बहुत अच्छे फकीर हैं, लोभ उनके पास होकर भी नहीं निकला है। पूर्ण त्यागी और तपस्वी हैं।" गुरु हरिगोविन्द जी का भी उनसे प्रेम था जब गुरुजी एक बार उनसे मिलने गये, मियामीर ने उनका आगे बढ़कर स्वागत किया और उनके पधारने पर बहुत प्रसन्नता प्रकट की। देर तक धर्म-चर्चा भी की. यह खबर जहाँगीर के पास भी पहुँची एक दिन उसने पूछा 'मिया साहब हम तो आपको सर्वोपरि फकीर मानते हैं किन्तु मैंने सुना है आपने गुरु हरिगोविन्द के प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रकट की थी। मिया मीर ने कहा-बादशाह ! गुरु हरिगोविन्द वास्तव में श्रद्धा की चीज है। वे ईश्वर के प्यारे, सत्य धर्म पर चलने वाले हैं। बादशाह चुप हो गया। गुरु हरि गोविन्द जी ने अपने मसन्दों और शिष्यों को आज्ञा दे रखी थी कि भेंट के साथ-साथ यथा संभव लोग अस्त्र-शस्त्र और घोड़े भी लाया करें।

मियामीर

ननकाना यात्रा

गुरु जी ने इन दिनों ही ननकाना साहब की यात्रा की जहाँ बाबा श्री चन्द जी के दर्शन किये। इस यात्रा में माता गंगादेवी जी भी साथ थीं।

इसके बाद गुरु जी फिरोजपुर जिले के डरोली गांवमे लाला साईंदास जी के पास पहुँचे। साईंदास के घर गुरु जी की भार्य्या दामोदरी जी की बहिन रामो ब्याही हुई थीं। साईंदास गुरु जी का बड़ा भक्त था उसने पहले से ही उनके ठहरने के लिये एक भव्य मकान बनवा रखा था। यहाँ से गुरु जी पीलीभीत जिले के नानकमता स्थान को गये। वहाँ पर अलमस्त राम का एक भक्त रहता था। इस तरह से इस यात्रा को पूरा करके लौटे।

जाते समय करतारपुर के पास उन्हें तीन पठान मिले जो नौकरी के लिये उनके पास हाजिर हुए थे। उनमें से उन्होंने पैंदे खान नामक के एक गिलजई पठान युवक को नौकर रख लिया। नानकमता स्थान पर गुरु जी का कनफटे जोगियों के साथ वादविवाद भी हुआ किन्तु वे उनके सामने ठहर न सके।

उनके अमृतसर आ जाने पर लोग बड़े प्रसन्न हुए और चारों ओर से लोग ज्ञान-चर्चा और कथा उपदेश सुनने के लिए आने लगे।

इससे पहले बादशाह के साथ काशमीर की की गई यात्रा का वर्णन इस प्रकार है कि श्री नगर में साईंदास नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह सिख हो गया, उसकी संगत और ज्ञान-चर्चा सुनकर उसकी माँ भागभरी भी गुरु जी की भक्त हो गई। उसने गुरुजी की भेंट के लिये एक सुन्दर चोला बनाया। उसके सौभाग्य से गुरु जी श्रीनगर पहुँचे और साईंदास के घर पर ही ठहरे। माई भागभरी ने भी अपने भाग्य को सराहा। वहाँ पर अनेकों काश्मीरी स्त्री पुरुषों ने गुरु जी के उपदेश सुने और सिख धर्म को ग्रहण किया। गुरु जी के श्रीनगर में रहने के

कश्मीर यात्रा

एक तुरक अफसर को जिसकी मातहती मे सात हजार फौज रहती थी। हुक्म दे दिया कि वाज के साथ ही सिखों के गुरु को भी पकड लाओ। वस लडाई का आयोजन हो गया।

लाहौर के सिखों को इस वात का पता चलते ही तुरन्त ही उन्होंने यह खवर अमृतसर मे गुरु जी के पास पहुँचा दी। अव इसके सिवा हो क्या सकता था कि सिख लडाई के लिये तैयार होते। लाहोर और अमृतसर के वीच मे अमृतसर मे लोहगढ़ नाम का एक युद्ध लायक और वचाव का स्थान था। गुरु जी ने कुछ सिखों को वहाँ शाही सेना को रोकने के लिये भेज दिया। इधर वाल वच्चों का रामसर भेज दिया। भाई मानू को इस युद्ध का सेनापति वनाया गया। जिस समय गुरु जी अमृतसर से वाहर झुवाल जाने के लिये निकले तो पता चला कि वीवी वीरो भूल से घर मे ही रह गई है। उन्हे दुवारा जाकर वावक वडी कठिनता से मुगल सिपाहियों के वीच से गुजर कर ले आये। रामसर से गुरु जी ने उन्हे झुवाल गॉव मे भेज दिया। वर पक्ष का भी खवर कर दी कि वरात अमृतसर न लाकर झुवाल मे लाओ। परिवार वालों से यह भी कह दिया। कि विवाह के वाद तुम सव गोविन्दवाल चले जाना।

लोह गढ के केवल पाच सिखों ने ही वह वीरता दिखाई कि मुगल सेना चकित हो गई। ऊपर से पत्थर और ईंटों की वर्षा से उन्होंने सैकडो मुगलों को धराशायी कर दिया। अंत मे वे पांचो भी वलिदान हो गये।

मुगल सेना ने अमृतसर मे घुसकर सवसे पहले गुरुजी के घर को घेरा सिपाहियों ने वीरो जी के व्याह के लिये वनी हुई मिठाई पर हाथ साफ किया। फिर दिन भर शहर मे घूमते रहे।

सिखों ने रात को वार करने का मौका ठीक समझकर उन पर आक्रमण कर दिया। वन्दूकों से गोलियाँ दगने लगीं। मुगल सैनिक घवरा गये और भाग निकले। अनेकों गोलियों की वोछार से जमीन पर विछने लगे। जो सवार थे वे अपने घोडों की सुधि भूल कर प्राण वचाने के लोभ से घर दौडे। मुखलिस खा ने इस गड़बड़ को देखा तो ललकार कर कहा, चन्द सिखो के डर से तुम हजारो आदमियों को भागने मे शर्म नहीं आती है। उनके गुरु को या तो जिन्दा पकड़ लो या मार दो। एक दूसरे अफसर शमसखां ने भी इसी प्रकार मुगल सैनिकों को धिक्कारा। जिससे भागने के वजाय वे मैदान मे डट गये और भाई मानू को ही गुरु हरिगोविन्द जी समझकर उन पर टूट पडे। भाई मानू ने लडाई मे वह रौद्र. रूप धारण किया कि अनवर और शमसखा नाम के दो मुगल सेनापतिओं के साथ ही सैकडों मुगलों को जमीन पर विछा दिया। इसके वाद मुहम्मदअली सैयद ने लड़ाई की कमान संभाली। सिख लड़ते २ हैरान हो चुके थे मुगल सिपाहियो के इस धावे के सामने वह टिक न सके। भाई भानू लडते लड़ते शहीद हो गये। सिखो को हटते देखकर सिख योद्धा भाई सिघा ने धर्म पर शहीद हो जाने के लिये ललकारा सिख फिर अड़ गये निहालू, तोता, अनता आदि सिख वड़ी वीरता से लडे। वीर सिंधा मुहम्मद अली को मुल्क अदम पहुचा कर खुद भी शहीद हो गया। तव गुरु जी ने पेदेखा को युद्ध का सेनानी वनाकर भेजा। और गुरु जी स्वयम भी मैदान मे आकर सनासन तीरों की वर्षा करने लगे। यह देखकर मुखलिस खान ने तमाम फौज को हमला करने की आज्ञा देदी और कहा आज इस गुरु को मैदान से वाकी नही छोडना है। दोनों ओर से घमासान लड़ाई होने लगी। गुरु जी ने तीरों की वर्षा काली वदलिया की सरसर और पडपड वूँदों की भाति इस जोर से की कि धावे मारने वाले गिरोह वीच ही मे सनके पौधों की भाति गिरने लगे। पेंदेखा ने भी तुरकों की फौज का दिल भर कर नारा किया। भाई नंदा, भीखा, विराना और भीमा घोड़ों पर चढ़कर घमासान मचाने लगे।

समय ही भागभरी स्वर्गवासिनी हो गई। गुरु जी ने वहां एक गुरुद्वारा बनवाया जिसका प्रबन्धक भाईदास को ही नियुक्त किया।

श्रीनगर से बारामूला के रास्ते गुरु जी पंजाब की ओर रास्ते में उपदेश करते हुए आये। गुजरात शहर में शाह दौला नाम के फकीर से मिले। वहाँ से वजीराबाद होते हुए हाफिजाबाद में आये। जहाँ पर कि करमचन्द नाम का एक सिख भाई रहता था। उसको गुरु जी ने जपुजी साहब के अर्थ समझाये जिन्हें सुनकर वह कृत्य कृत्य हुआ।

नडियाली गाव में भाई लंगाहा नाम के सिख ने जो लाहौर का रहने वाला था। गुरु जी के पास आकर फर्याद की, सच्चे बादशाह! तुम्हारे पिता और दादा जी ने लाहौर में एक गुरुद्वारा और कुछ पवित्र स्थान बनवाये थे, जहां पर आजकल सिख लोग मिलकर कथा-कीर्तन करते हैं। उस स्थान पर लाहौर का काजी मस्जिद बनवाने की फिक्र में है। वह नित प्रति बादशाह के कान भरा करता है किन्तु आपका मित्र वजीरखाँ अवश्य सहायक का काम देता है। गुरु जी ने उत्तर दिया भाई तुम अपने धर्म पर दृढ़ रहो निर्भयता के साथ अकाल पुरुष का चिन्तन करो। धर्मशाला और गुरुद्वारे परमात्मा के स्थान हैं। उन्हें नष्ट करने की इच्छा रखने वाले आप ही नष्ट हो जाते हैं। लंगाहा इन वचनों को सुनकर प्रसन्न होता हुआ लाहौर को चला गया।

यहां से चलकर गुरु जी गुरु नानकदेव जी की जन्मभूमि तलवंडी-ननकाना साहब पहुँचे। वहा उन सब स्थानों के दर्शन किये जो गुरु नानकदेव जी की लीलाओं की स्मृति में बने हुए थे। वहा से नदर गाँव होते हुये लाहौर जिले को पार करते हुये अमृतसर वापिस आ गए। इसके बाद बहुत दिनों तक कोई यात्रा नहीं की।

माता गंगा का देहावसान

संवत १६८८ के जेठ की प्रथमा को माता गंगा जी ने गुरु लोक को प्रस्थान किया आपने देहावसान से पहले ही गुरु जी से कहा था। पुत्र अब हमारे चलने का समय आ गया। मेरी देह को व्यास नदी के किनारे अपने पिता की भांति ही बहा देना किसी तरह का और कोई क्रिया कर्म न करना।

बाबा बुड्ढा ने गुरु जी से विनती की। अब मैं बहुत बुड्ढा हो गया हूँ। मैं चाहता हूँ कि एकान्त में जाकर हरि-भजन करूं।" गुरु जी ने उन्हें आज्ञा दे दी। आप जहां भी उचित समझें वहां हो भजन करें।

संवत १६८३ वि: में बादशाह जहांगीर इस संसार से चल बसा। उसके स्थान पर शाहजादा शाहजहां बादशाह हुआ।

एक समय बादशाह शाहजहां और गुरु हरिगोविन्द जी साहब शिकार के लिये एक ही जंगल में पहुँच गये। बादशाह के पास ईरान की सौगात का एक सुन्दर बाज था। वह उड़ता हुआ सिख डेरों में आ गया और सिखों ने उसे पकड़ लिया। इतने में उस बाज को ढूंढने वाले शाही शिकारी भी आ गये। सिखों ने उनको बाज नहीं लौटाया और शिकारियों के यह कहने पर कि इसे तुम्हारे पीर भी नहीं रख सकते। यह बाज बादशाह का है। सिखों ने उन्हें पीट भी दिया। बादशाह इस समय लाहौर लौट चुका था अतः शिकारी लाहौर पहुँचे और उन्होंने सब वृतान्त सुना दिया। सुनकर नौजवान बादशाह आग बबूला हो गया और उसने मुखलिस खान नाम के

लड़ाई का सूत्रपात

रखता था। चन्दू का पुत्र करमचद भी उन दिनो जालधर मे ही था अत रतनचंद जालन्धर को चल पडा। दूसरे दिन दोनो ने सूबेदार के कान भरे कि व्यासा के इस किनारे आकर वह एक किला बना रहे है, अगर बन गया तो अवश्य ही आपके इलाके पर कब्जा करने की कोशिश करेगे। सूबेदार यह सुनकर आग बबूला होगया और उसने लडाई की तैयारी कर दी। पाच हजार सैनिको को तीन टुकडियो मे लेकर सूबेदार ने हरि गोविन्दपुर की ओर कूंच किया। उसके लडके करीम बख्श और नबी बख्श और वह खुद इन टोलियों के नायक बने।

विरोधियों का दल

गुरु जी ने इस दल का मुकाबिला करने के लिये अपने वीरो को आदेश दिया, और अपने सैनिको को भाई जट्टू, भाई कलियाणा, भाई माना, भाई पिराना आदि के नेतृत्व मे कई जत्थों मे बाट दिया।

हरि गोविन्दपुर के निकट पहुँच कर अबदुल्ला खॉ सूबेदार ने गुरुजी के पास सन्देश भेजा कि यदि आप इस नगर का बनाना बन्द करदे तो हमारी फौज लौट जायगी। गुरुजी ने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया।

दोनो ओर के वीर अड गये। लडाई शुरु हो गई। तीरो की सनन-सनन और गोलियो की दनादन के साथ ही तलवारो की खचाखच ओर भालो की छप छप से दोनो ओर से लोथ पर लोथ गिरने लगी। भाई जट्टू ने मुहम्मदखां का मुकाबिला किया। मुहम्मदखॉ धराशायी हुआ। उसकी मदद को बैराम खॉ आया। इधर भाई जट्टू की मदद को भाई मथुरा आगया। सिख ललकार कर पडे। भाई मथुरा ने एक ही बार मे बैराम खॉ को गिरा दिया। बैराम के मरते ही बलबड खॉ सामने आया और अली बख्श उसकी मदद को आया। यह देखकर भाई कलियाना ने बलबड को एक तीर से धरती पर सुला दिया। यह देखकर पठानो के एक गोल ने भाई कल्याना पर हमला बोल दिया और वे शहीद गति को वाहि गुरुजी की फतह बोलते हुये प्राप्त हो गये।

इतने मे अलीबख्श अपने जत्थे को लेकर गुरुजी की ओर झपटा, किन्तु भाई मानो ने बीच मे अडकर उसके हमले को बेकार कर दिया। इतने मे और भी सिख आगये। अली बख्श ने क्रोध से भुनकर भाई मानो पर तलवार का वार किया। भाई मानो ने पेतरा बदल कर उस वार को चुका दिया और ऐसे जोर से तीर छोडा कि अलीबख्श मुल्के अदम को रवाना होगया। हमाम बख्स जो पास ही देख रहा था, अपने दल के साथ भाई मानो पर झपटा। भाई मानो ने तलवार निकाल कर उसके एक हाथ को काट डाला किन्तु उसने दूसरे हाथ से ऐसा वार किया कि भाई मानो शहीद होगया। मानो के बाद भाई प्रागा आगे बढ़ा। भाई जगना और कृष्णा आदि सरदार भाई प्रागा की सहायता के लिये उसके दाये बाये हुए, किन्तु मुगल सेनानियो के जोर के धावों के मुकाबिले मे वे दोनो ही शहीद होगए। तब गुरुजी की आज्ञा लेकर भाई बिधीचद प्रागा की मदद को आगे बढ़ा और उसके नेतृत्व मे जो सिख लोग आगे बढे उन्होंने ऐसे जोर का हमला किया कि मुगल सेना के पैर उखड़ गये। यह देखकर एक ओर तो अब्दुल्ला ने भागते हुए लगो को रोका, दूसरी ओर कर्मचद और रतनचन्द से कहा कि अब तुम मोर्चे पर जाकर लडो। अपने पुत्र नबीबख्श को भी आगे किया।

इस समय गुरुजी ने भी हथियार सभाल लिये, उनका तेजस्वी घोड़ा हिनहिना उठा और बिजली की भाति नंगी तलवारे कौंध उठीं। उनके तीरों की बौछार को देखकर मुगल पठान घबरा उठे। इस बीच बिधीचद से कर्मचद भिडा जिसे बिधीचद गुरुजी के सामने पकड़ लाया किन्तु गुरुजी ने उसे मारने न दिया और छुडा दिया। उसने छूटकर अब्दुल्ला को सलाह दी कि

घमासान लडाई और अनेकों मुसलमान सरदारों के मारे जाने पर जब मुखलिस खां ने देखा कि हमारी जीत होना असम्भव है तो उसने गुरु जी के पास सुलह का पैगाम भेजा। गुरु जी यह भली भांति जानते थे कि सुलह करने मे भी शांति नहीं है अत उन्होंने कह दिया। बादशाह के डर से हम नहीं झुक सकते हमारा रक्षक तो वह गुरु हैं। वे शहनशाह के भी शहनशाह हैं। इस उत्तर को सुनकर मुखलिस खा ने फिर बडे जोर से हमला कराया। किन्तु एक एक करके उसके सारे नायक खतम हो गये तब वह खुद मैदान मे आया और गुरु जी से कहा, बस सारी लडाई बन्द करो, हमारी तुम्हारी होगी। उसने गुरु जी पर वार करना शुरू कर दिया किन्तु अन्त मे गुरु जी की तलवार के एक ही वार मे समाप्त हो गया। रहे सहे मुगल सैनिक भाग गये।

लड़ाई के अन्त मे गुरु जी ने अपने प्यारे सिखों की लाशों को इकट्ठा कराया और अपने ही हाथों से उनका दाह कर्म किया। लडाई के स्थान पर स्मृतिस्वरूप एक गुरुद्वारा बना हुआ है। जहा प्रत्येक वैसाख की पूर्णिमा पर मेला लगता है।

लड़ाई से निवृत होकर झबाल मे जाकर गुरुदेव ने अपनी पुत्री बीबी वीरो का विवाह कराया। यहा से फिर गुरु जी गोविन्दवाल चले गये। जहाँ अपने सगे सम्बन्धियों को बुलाकर उनके साथ भेट की।

गोविन्दवाल मे ही गुरु जी को समाचार मिला कि कौला बीमार है। अत वे अमृतसर चले आए, इस समय तक कौला की हालत ज्यादा खराब हो गई थी, वह बोल न सकती थी, गुरु जी को देखकर हर्ष से उसकी आखो से आंसू टपक पडे। गुरु जी ने उसे बताया तू धर्मात्मा है। तैने अकाल पुरुष की शरण ली है। इस समय तू वाहिगुरु का सुमरन कर। इसके बाद आठवे पहर मे कौला का जीवात्मा इस ससार से चल बसा।[1]

कौला का देहान्त

इस युद्ध का जब यह समाचार शाहजहाँ को मिला कि मुखलिस खा अपने समस्त नायकों के साथ लडाई मे मारा गया है, तो बादशाह को बडा क्रोध हुआ किन्तु वजीर खां ने बादशाह को समझाया कि इस प्रकार अगर दूसरी गलती की गई तो सारे पंजाब मे सीधे साधे सिखों का एक लडाकू समूह बन जायगा। अभी तक गुरु जी के दिल मे भी आपके प्रति बुरे भाव नहीं है। आप यदि उन्हे राजद्रोही या बागी करार दे देंगे तो सिखों मे भी फिर आपके राज्य को नष्ट करने के लिये खामख्वाह तयार हो जावेगे।

शाहजहाँ की चुप्पी

हम देखते हैं कि बादशाह को इस समय देश की राजनैतिक हालत सभालने की भी चिन्ता लगी हुई थी। इसलिये उसने इस अप्रिय घटना को कोई अधिक महत्व न देना ही ठीक समझा।

इस अवसर मे सब से पहले उस क्षति को पूरा किया जो लडाई में हुई थी। जितने भी अच्छे २ योद्धा काम आयें थे। वैसे ही और नये भर्ती किये सैनिको की सख्या भी बढाई। बाहर से धन, हथियार, घोडे और बारूद भी अब अधिक मात्रा मे आने लगी। सिख लोग नित प्रति हथियार चलाने और घोड़ों पर चढ़ने का अभ्यास करने लगे। वे स्वत प्राय जगलों मे जाकर शिकार खेलते और भयंकर से भयंकर जगली जानवर का शिकार करते।

इस शांति के समय में

खेरड़ चौधरी के लड़के का नाम रतनचन्द था। वह जालंधर के सूबेदार अबदुल्ला खा से दोस्ती

[1] कहा जाता है कौला लाहौर के एक काजी की लड़की थी और मियामीर की मार्फत सिख धर्म में दीक्षित होकर यहां रहती थी।

एक दिन नित्यानन्द नाम का एक ब्राह्मण गुरु जी के पास ज्ञान-चर्चा करने आया और गरुड-पुराण को पढ़ कर कहने लगा कि मृत्यु के बाद स्वर्ग तक पहुँचने मे जीव को एक वर्ष लगता है। इस बात को सुनकर सिखों मे से कई बोल उठे किसीने कहा, मैं तो छ ही महीने मे पहुँच सकता हूँ। किसी ने कहा चार और किसी ने तीन महीने मे ही पहुँचने की बात कही। ब्राह्मण ने यह देख कर कि यह सिख लोग उसकी बात की मजाक उड़ाते है, गुरु जी से कहा कि देखिए आपके यह शिष्य क्या कहते है। गुरु जी ने कहा ठीक ही तो कहते है पापी लोगो के लिये ही तो इस प्रकार घिसटे और दुर्गम स्थानो मे जाना होता होगा। जो जितना ही धर्मात्मा होगा उसे ही उतना ही कम समय लगेगा और विशुद्ध आत्मा तो निमिष मात्र मे स्वर्ग में पहुँच सकती है। जो यहा सन्मार्ग पर चलता है उसके लिये वहा का मार्ग कुछ भी कठिन नहीं है। जो प्रकाश मे है वह ऊबड खाबड और भले रास्ते को पहचान सकता है और जो अन्धकार मे है उसे भटकना पडता है। प्रकाश मिलता है सत गुरु की शरण मे आने से। गुरुजी की इन बातों को सुनकर ब्राह्मण के हृदय-कपाट खुल गये और वह गुरु जी का भक्त हो गया। इसी तरह गुरु जी सत उपदेशों द्वारा लोगों को रास्ते पर लाते और उनकी आत्मा को शाति प्रदान करते।

बाबा ने भी समझ लिया कि अब गुरु लोक चलना ही है अतः अपने एक मित्र के द्वारा गुरु हरिगोविन्द साहब के पास सन्देश भेजा कि अब मेरा अन्त समय है, मुझे आकर दर्शन देने की कृपा कीजिये। आपने वायदा भी किया था कि जब भी याद करोगे मैं तुम्हे दर्शन दूगा। गुरु जी के पास सन्देश पहुँचा तो वे भाई गुरुदास जी आदि प्रसिद्ध सिखो को लेकर रामदासपुर पधारे। गुरु जी के दर्शन करके बाबा बुड्ढा बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन प्रात वाहि गुरु का जप करते हुए इस लोक से विदा हो गये। गुरु जीने अपने हाथों से बाबा का अन्त्येष्टि सस्कार किया और उनके भाग्य की सराहना की।

भाई माना की प्रार्थना पर गुरु जी ने अपनी सेना रामदासपुर ही छोड दी। कुछ सिखों को साथ लेकर सिख-तीर्थों के दर्शन को प्रस्थान किया। पहिले करतारपुर पहुँचे जहाँ कि गुरु अगददेव जी को गुरिआई मिली थी। यहा से नदी को पार करके डेरा बाबा नानक के दर्शन किये। दूसरे दिन गुरु जी उस एकान्त वन मे गये जहाँ बाबा श्रीचन्द जी तप करते थे गुरु जी ने उनके दर्शन किये। बाबा श्रीचन्द जी ने गुरु जी की युद्ध सम्बन्धी वीरता पर उन्हे बधाई दी।

प्रस्थान

अब चूकि दीवाली नजदीक आ रही थी और दीवाली पर अमृतसर मे सिखों का मेला लगता है अत यहाँ से सिखों की प्रार्थना पर अमृतसर को विदा हुये। अमृतसर पहुँच कर गोइन्दवाल से अपने बाल बच्चो को बुला लिया ;और करतारपुर खबर भेज कर पैंदेखान को भी बुला लिया। उसने गुरु जी से अर्ज की कि महाराज इस युद्ध मे मुझे याद क्यों नहीं किया किन्तु अब उसका यह गर्व जाता रहा था कि मेरे बिना सिख किसी लड़ाई को जीत नहीं सकते हैं।

एक प्रसग के समय गुरु जी को ऐसा आभास हुआ कि भाई गुरुदास जितने विद्वान हैं, उतने ही नम्र नहीं है। अत उन्होंने सोचा किसी प्रकार इनमें नम्रता भी आनी चाहिए। गुरुजी ने उन्हे काबुली घोडे खरीदने को मोहरों की थैली देकर भेज दिया। वहा से उन्होंने पाच-पाच हजार के घड़े खरीद कर गुरु जी के पास भेजे किन्तु जब तम्बू मे थैली टटोली तो उनमे कंकड दिखाई दिये। भाई जी इस पर इतने घबराये कि जाच पड़ताल किये बगैर ही तम्बू को फाड़ कर दूसरे रास्ते से निकल गये। शर्म के मारे अमृतसर भी नहीं आये। काशी पहुँच गये। बाद मे सिखों ने उन्हीं थैलियों मे से रुपया चुका

बिना जोर का हमला किये सफलता मिलनी मुश्किल है। इस सलाह को मानकर अब्दुल्ला ने सभी सैनिकों को एक साथ हमला करने की आज्ञा दे दी जिससे घमासान युद्ध मच गया। इसमे थोड़ी ही देर मे भाई धरमराय और सकतू ने नवीबख्श को मार डाला और खुद भी शहीद होगये। नवीबख्श के मारे जाने से तुरक सेना में बडा जोश पैदा हुआ क्योंकि नवीबख्श अब्दुल्ला का बेटा था, अत' उन्होंने सम्पूर्ण वेग के साथ हमला किया। करीमबख्श ने गुरुजी पर हमला किया, किन्तु गुरुजी ने बिधीचद को उससे अटका दिया और आप तुरकों की भीड पर बाण वर्षा करने लगे। विधीचद और करीम दोनों तलवारें लेकर एक दूसरे पर भूखे सिह की तरह टूट पडे किन्तु अनेक वारों को बचा कर भाई बिधीचद ने करीमबख्श को मार डाला। अपने दूसरे पुत्र को भी लडाई मे मरा देखकर अब्दुल्ला घबरा उठा और उसने रतनचद और कर्मचद को आगे करके फौजों को ललकारना शुरू किया। रतनचन्द कर्मचन्द दोनों ही गुरु जी पर टूट पडे। कर्मचन्द के नेजे की मार से गुरुजी का वही काबुली घोड़ा मारा गया जिसे उन्होंने काजी से छीन लिया था। इससे उन्हें बडा दुख हुआ 'किन्तु उन्होंने पैदल ही उतर उन्होंने बाणों की वर्षा शुरू कर दी जिससे कर्मचन्द और रतनचद के भी घोडे मारे गये वे भी पैदल लडने को विवश हुए। दोनों ही ने गुरुजी पर आक्रमण किया किन्तु गुरुजी ने दोनों ही को जमीन पर सुला दिया। यह देखकर अब्दुल्ला आपे मे न रहा और गुरुजी पर झपटा। किन्तु वह भी मारा गया। इस तरह जालन्धर के सूबेदार का और गुरुजी के द्वेषियों का खात्मा होगया।

इसके बाद हरिगोविंदपुर की शाति और अमन के साथ रचना हुई। उसे सुन्दर से सुन्दर बनाया गया, चार दरवाजे रक्खे गये। संगतों को ठहरने के लिये धर्मशाला बनाई गई सिखों के लिये गुरुद्वारा और मुसलमानों के लिये मस्जिद बनवाई गई।

घोडे, धन और आदमियों की जो हानि इस लडाई मे हुई थी उसकी पूर्ति की जाने लगी। जिन सैनिकों के पास घोड़े नहीं रहे थे उन्हे खरीद कर घोडे दिये गये।

हरि गोविन्दपुर को देखने के लिये चारो ओर से लोग आते थे। भाई सुभागा के साथ भी एक सगत आई। उसको गुरु जी ने आज्ञा दी कि समस्त गुरु स्थानों के दर्शन करने के लिये जाओ तो अच्छा होगा। सगत गोविन्दवाल खडूर आदि स्थानों के दर्शन करती हुई गुरु जी की बीड मे पहुँची जहाँ बाबा बुड्ढा और गुरुदास जी रहते थे। जब उन्होंने तुरको के साथ गुरु जी की लड़ाई और हरिगोविन्दपुर की रचना का हाल सुना तो दोनों ही अमृतसर होते हुए गुरु जी के पास पहुँचे और दर्शन किये। गुरु जी भी इन दोनों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। बाबा बुड्ढा तो गुरु जी से आज्ञा लेकर शेप जीवन रामदासपुर मे बिताने के लिये चले गये और गुरुदास जी वहीं रह गये।

दर्शनार्थियों की भीड़

सिख और हिन्दुओं के अलावा अनेकों मुसलमान भी गुरु जी के पास आकर आत्म ज्ञान की प्राप्ति करने लगे। जानी नाम का फकीर जो बहुत समय से सच्चे खुदापरस्त की तलाश मे था, वह भी गुरु जी की शरण मे आया और गुरु जी ने उसे उपदेश देने से पहले जिन-जिन कडी से कडी परीक्षाओं मे कसा वह पास हुआ। उससे कहा गया जो तू गुरु जी मे सच्ची भक्ति रखता है तो नदी मे कूद पड़ वह सुनते ही नदी की ओर चल पडा, कहा जाता है कि जानी का अटूट प्रेम गुरुजी मे ख्वाजा नाम के एक मुसलमान की सलाह से हुआ था—जिसे कि गुरु जी कश्मीर से अपना सेवक बना कर लाये थे और जा बड़ी श्रद्धा से गुरु जी की सेवा करता था।

लाहौर से अमृतसर और वहाँ से रूपचन्द के पिंड डरोली आकर इन्होंने सारी दास्तान गुरुजी और गुरु जी के सामन्तों को सुनाई। एक बार नहीं अनेक बार और बडी करुणा के साथ उनके मुँह से इस बात को सुनकर बिधीचन्द जी ने प्रण किया कि जैसे भी होगा उन घोड़ों को मैं लाहौर से लाकर गुरु जी को भेट करूँगा।

काबुल के अन्य सिख तो अपने देश को लौट गये किन्तु वे दोनो मसन्द वहीं गुरु जी की सेवा मे रह गये और जब भी मौका पाते अपने उन्हीं घोडो की चर्चा करते रहते जिनके नाम भी गुलबाग और दिलबाग थे।

बिधीचन्द घोड़ों सबन्धी अपने कार्य को पूरा करने के लिये लाहौर पहुँचे। किन्तु किले से घुसकर द्वारपालों, सईसों और हजारी सैनिकों की मौजूदगी मे घोडे कैसे प्राप्त किये जाँय। इसी चिंता मे घुलने लगे किन्तु 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' की लोकोक्ति के अनुसार उन्हे आखिर रास्ता मिल ही गया। लाहौर मे उनका पूर्व परिचित एक तिरखान सिख जीवन रहता था। उसके घर जाकर ठहरे और उससे कहा एक बढ़िया सा खुरपा घास छीलने के लिये लाओ, उसे यह भी बता दिया कि मैं यहाँ गुरु जी का काम करने को आया हुआ हूँ। दूसरे दिन प्रात जीवन ने खुरपे का प्रबन्ध कर दिया और भाई बिधीचन्द ने रावी के किनारे जाकर बढिया से बढिया घास छीला। जिसका गट्ठा बाँधकर चौक बाजार होते हुये, तथा खरीददारों को अधिक कीमत बताकर टरकाते हुए किले के द्वार पर आगया। दैवयोग से वह समय घोड़ों के दरोगे का बाहर जाकर टहलने का समय था। उस ने वह घास खरीद ली और बिधीचन्द को वहाँ ले गया, जहाँ वे दोनों काबुली तुरग बंधे हुये थे। भाई बिधीचन्द ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया क्योंकि उसे इतनी जल्दी घोड़ों तक पहुँचने की आशा न थी।

घास लेने का यह क्रम सात दिन बराबर चलता रहा। दरोगा भाई बिधीचन्द जी की उमदा और स्वच्छ घास को देखकर बहुत खुश होता था और वे घोडे भी बडी प्रसन्नता से खाते थे। अत दरोगा ने भाई बिधीचन्द जी से स्थिर नौकर हो जाने के लिये कहा, भाई जी ने बडी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। धीरे २ बिधीचन्द जी घास लाने वाले की बजाय उन घोड़ों की हिफाजत, सफाई और ढंग से रखने के इचार्ज ही हो गए। वे उनपर खुरहरा करते उन्हे साफ रखते, हाथ फेरते, पुचकारते इस प्रकार बडे अच्छे ढग से रखने लगे। कहा जाता है बादशाह शाहजहाँ ने घोड़ों का मुआयने करते वक्त बिधीचन्द की तुरग-सेवा से खुश होकर उसे इनाम दिया।

बिधीचन्द ने मीठी वाणी, हँस मुख मिजाज और अपनी नम्रता से अस्तबल और उसके अलावा अनेकों नौकरो को मोहित कर लिया था। बडी मीठी २ और हँसने हँसाने वाली बाते बनाकर उसने उन जीनों को भी देख लिया था, जो इन घोड़ों के लिये सवा सवा लाख रु० मे बनवाये थे। स्टोरकी ताली कुंजो कहाँ रहती है, यह सब कुछ भी पता लगा लिया था। इस सबसे बढ़कर चतुराई का काम उसने यह किया रात के समय किले से लगी हुई रावी मे पत्थर फैंक कर लोगो को यह समझने का आदी बना दिया कि यह धमाके यों ही होते रहते हैं यातो मच्छ-कच्छ लोर लेते है, या किले की दीवारसे पानीकी टक्कर होने से पत्थर गिरते है। इसका फल यह हुआ कि जिस दिन बिधीचद घोड़ों को रावी मे कुदा कर ले गया किसी ने बाहर निकल कर देखने की चेष्टा तक न की।

उसके इरादे को पूरा करने मे एक मदद यह भी मिली कि अस्तबल स्टोर और दरवाजे के सभी नौकर उससे दावत का तकाजा करने लगे थे। उसने एक दिन उन सबको दावत दी और सर्वोत्कृष्ट शराब

दिया। जिसमे भाई गुरुदास जी को ककडी दिखाई दी थीं।

बनारस पहुँचने पर वहा के सिखों ने गुरुदास जी की खूब आवभगत की। काशी के पंडितों और सन्यासियों से वरावर उनका विवाद चलता रहा। कुछ दिन के वाद भाई जेठा गुरु जी के हुक्म से भाई गुरुदास जो को अमृतसर ले आया। जहा भाई जी ने क्षमा मागी और फिर गुरु सेवा मे नम्रता से रहकर सेवा करने लगा।

जालधर के सूबेदार के वारिसों मे उनका एक पुत्र वलीखॉ और शेष रह गया था। वह रात दिन चिन्ता मे रहता था कि अपने पिता का वदला किस प्रकार लिया जाय। जब उसने सुना कि बादशाह शाहजहॉ दिल्ली से लाहौर आ रहे हैं तो वह उनकी सेवा मे हाजिर हुआ और घोडे भी भेंट किये। बादशाह ने जब उसके बाप और भाइयों का हाल पूछा तो उसने वादशाह से गुरु हरिगोविन्द जी की बहुत शिकायतें कीं।

जलधर की जब्ती

इन शिकायतों को सुनकर वादशाह को वडा क्रोध हुआ और उसने अपने सरदारो की ओर देखते हुए कहा, आप मे से कोन उस गुरु को पकडने के लिये तय्यार होता है? वजीरखॉ ने खडे होकर कहा, वादशाह सलामत जिसे भी आप हुक्म देंगे, वही तय्यार हो जायगा। किन्तु वलीखॉ की शिकायतें सही नहीं हैं। गुरु जी किसी भी मजहब से द्वेष नहीं रखते, उन्होंने उस नगर में मस्जिद भी वनवाई है। यह कोई बुरा काम नहीं किया है। वह राज्य को मिटाना चाहता तो उधर के इलाके से भू-कर वसूल करता, टैक्स वॉधता। यह तो कुछ नहीं कर रहा। सूबेदार ने जो भी कुछ किया नासमझी से किया उसने अभिमान मे आकर आपसे आज्ञा लेना तक उचित नहीं समझा लडाई छेड दी। यह उसका कसूर नहीं है क्या? वादशाह को वजीरखॉ की वातें जॅच गई, अत उसने वली खॉ को वहुत डॉटा।

इसके वाद गुरु जी धर्मोपदेश के लिये निकले और देवराना होते हुये डरोली पहुँचे। यहॉ बहुत दिन रहे एक दिन गुरु जी ने डरोली गॉव से चलकर भगत रूपचन्द के गॉव मे पहुँचे। इसने गुरु जी के ठहरने के लिये पहले से ही एक सुन्दर मकान बनवा लिया था। वहॉ रहकर गुरु जी ने लोगो को उपदेश दिया और रूपचन्द को वर दिया कि तुम्हारी लोगों मे मान्यता होगी। यहॉ भादों और क्वार दो महीने रहकर गुरु जी मय जमात के आगे वढे और कागड गॉव में जो रायजोधा का था पहुँचे। रायजोधा के घर मे जो स्त्री थी। उसको अपने पिता के यहॉ सिख धर्म की शिक्षा मिली थी। उसने अपने पति जोधा जी को गुरु जी के पास भेजा और पीछे से वह दर्शनोंको आगई। दोनों स्त्री पुरुषों ने गुरुजी से उपदेश सुने,रायजोधा तभीसे गुरुजीका शिष्य होगया।

धर्म प्रचार पर

रुहेले (श्री हरिगोविन्दपुर) के युद्ध मे विधीचन्दने जा सफाई दिखाई थी,उससे सिख विधीचन्दको एक वहादुर शूरमा के रूप मे देखते हैं किन्तु जब हम उसके उस कौशल का हाल पढते हैं जो उसने लाहौरके किले मे से दो घोड़ों को लाने मे दिखाया था तो उसकी बुद्धि और चतुरता पर अचभित होना पडता है। वह घटना इस प्रकार है —

भाई विधीचंद का कौशल

वखतमल और भागचन्द नामक दो मसन्द कावुल से अन्य सामान के साथ दो अमोलक घोडे गुरु जी की भेंट के लिये लेकर चले। इनके साथ और भी कुछ श्रद्धालु सिख थे। चूकि इन लोगों को यह भान था कि गुरु जी लाहौर मिलेंगे, अत यह लोग लाहौर की ही ओर चले। रास्ते मे बादशाह शाहजहॉ के अफसरों ने इनसे दोनों घोडे छीन लिये। ये लोग लाहौर पहुँचे जहॉ स्थानीय सिखों ने इनका खूब स्वागत सत्कार किया।

सवारी की और फिर बादशाह के महल के पास आकर आवाज दी। बादशाह, जिसने तुम्हारा पहला घोड़ा चुराया था। वही तुम्हारे इस दूसरे घोड़े को लिये जा रहा है। चोर का पता बता रहा हूँ। इसलिये इनामात तुम्हें देने होंगे। मेरा नाम विधीचन्द है और गुरु हरिगोविन्द जी का सेवक हूँ। घोड़ों के लिये कोई रंज न करना आपके यहाँ भी तो ये कीमत देकर नहीं आये थे। हम तो अपनी ही चीज को ले जा रहे हैं। ये घोड़े तो काबुल से गुरु जी के लिये आये थे। उनकी चीज उन्हीं के पास पहुँचाई जा रही है। इतना कह कर विधीचन्द जी ने घोड़े को किले पर से कुदाया और नीचे घोड़ा हवा हो गया।

सभी सिख सैनिकों ने भाई विधीचन्द जी की तारीफ की। वास्तव में यह काम ही तारीफ का था। प्राणों की जोखिम की कोई भी चिन्ता न करके भाई विधीचन्द जी ने इस काम को पूरा किया था। गुरु भक्ति और धार्मिक श्रद्धा इसे ही तो कहते हैं।

भाई विधीचन्द द्वारा इस प्रकार घोड़ों का अपहरण किये जाने से बादशाह विक्षुब्ध हो उठा, उसने दरबार करके लल्लाबेग पठान को घोड़ा वापिस लाने और गुरु जी को पकड़ लाने का काम सौंपा।

फिर युद्ध

लल्ला बेग के साथ उसका भाई कमर बेग तथा दोनों पुत्र कासम बेग और शम्स बेग और भतीजा काबुलीबेग भी लडाई के लिये तयार हो गये।

चूंकि इधर गुरु जी को खबर लग चुकी थी कि शाही सेनायें इधर चढ़ाई करने की तैयारी कर रही है, तो उन्होंने रायजोध की सलाह से एक ऐसे घने जंगल में जहाँ बीसियों कोस तक कहीं पानी का ठिकाना नहीं था सिर्फ एक तालाब ही था। अपने डेरे जा जमाये।

शाही फौज पहिले तो रूपचन्द के पिंड पहुँची वहाँ जब गुरु जी न मिले तो पता लगा कर उनके नये स्थान को चली। लल्लाबेग ने गुरु जी के दल का सही पता लगाने के लिये हसनबेग पठान को भेजा। उसने सिखों के दल में गुरु जी के दर्शनार्थी के बहाने से सब हाल जानना चाहा किन्तु सिख उसे ताड गये। चूंकि बातचीत के सिलसिले में उसके मुँह से निकल गया 'हमारी सेना बहुत ज्यादा है।' इस पर सिखो ने उसे पीटना शुरू किया। गुरु जी ने उसे छुड़ा दिया और प्यार से अपने पास बिठाकर शाही लश्कर की सारी बातें पूछ लीं। जब लल्लाबेग को यह पता चला कि इससे गुरु जी ने इधर का भेद ले लिया है तो उसने क्रोध के मारे हसनखां को निकाल दिया।

जगल के निकट पहुँच कर लल्लाबेग की आज्ञा से कमरबेग सात हजार का गिरोह लेकर गुरु जी को पकड़ने के लिये आगे बढ़ा। उसके मुकाबिले के लिये एक हजार सैनिकों के साथ रायजोध मैदान में आये। हसनखा ने कमरबेग और उसके साथियों के बलाबल का सब ब्यौरा गुरु जी और रायजोध को जता दिया। उस समय दिन छिप चुका था। तुरक सेना मसाले लेकर जगल में घुस रही थी, रायजोध ने अपने साथियो से कहा तुम दूर दूर तक फैल जाओ और दाये बाये और सन्मुख तीनों ओर से गोलियों की वर्षा करो। पहले ही फायरों में मसालची मारे गये अंधेरा होते ही मुगल सिपाही इधर उधर भागने लगे किन्तु जिधर भी जाते उधर से ही गोलियो की वर्षा होती बिचारे दिन भर के थके हुए रास्ते से अजान और भूख प्यास से त्रस्त घबरा गये और यहाँ तक घबराये कि दुश्मन के धोखे में आपस में भी लड बैठे। ऐसे अवसर पर रायजोध ने लपक कर कमरबेग का सामना किया और नेजे से छेद कर मार डाला। इस तरह पहला खेत सिखों के हाथ रहा। गुरु जी ने रायजोध की भूरि २ प्रशसा की।

सवेरे जब लल्लाबेग ने अपने आदमियों की लोथ पर लोथ पडी देखी तो वह गुस्से से लाल

छका कर पिलादी। यह रात उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपयोगी हुई और स्टोर से जीन निकाल गुलवाग घोड़े को लेकर भाई विधीचन्द रफू चक्कर होगये। किले से रावी मे घोड़े के कूदने का घोर धमाका हुआ किन्तु नित्य प्रति ऐसे धमाके सुनने के आदी होने के कारण किसी ने देखने का कष्ट नही किया। घोडा रातो रात लाहौर के इलाके को पार करके गुरु स्थान पर पहुँच गया। जहाँ उसे देखकर सभी-लोग वाह वाह कर उठे। काबुल के ममन्द भी खूब ही खुश हुए। भाई विधीचन्द ने लाहौर के किलों मे अपना नाम केसरा रक्खा था। इस कार्य को करके उन्होने वास्तव मे केसरीपन जता दिया था।

प्रात जब दरोगा ने एक घोडा अस्तबल मे नहीं देखा तो वह पछाड़ खाकर गिर पडा। अन्य नौकर चाकर और दरबान घबरा गये। बादशाह तक भी यह खबर पहुँची। वह भी गुस्से से आग बबूला हो गया। लाहौर के चारो ओर देख भाल की गई किन्तु वहा घोडा कहाँ रक्खा था।

भाई विधीचन्द के कौतुक की यहाँ पर समाप्ति नहीं हुई। घोर आश्चर्य तो यह है कि उन्हे दूसरे घोडे को लाने के लिये भी लाहौर जाने के लिये तैयार होना पडा क्योंकि यह अकेला घोड़ा अपने साथी बगैर चारे दाने को भी छोड़ बैठा था।

भाई विधीचन्द दुबारा लाहौर पहुँचे। अपने उपजाऊ दिमाग से दूसरी तरकीब सोची। उन्होंने नजूमियों (ज्योतिषियों) के जैसे कपडे पहिन लिये। अजीब ढग से ज्योतिषी बनकर बाजारो से गुजरते हुए और कौतुहल पूर्ण बाते करते हुए किले के द्वार पर पहुँच गये। जहाँ उनके पास शहरके लोगो की काफी भीड इकट्ठी होगई। किले के लोगो ने यह बात शाहजहाँ तक पहुँचाई कि एक प्रसिद्ध ज्योतिषी यहाँ आया हुआ है जो यह कहता है की इस धरती को तो क्या मैं तीनों लोक की बाते बता सकता हूँ।

यह आश्चर्य की बात है कि जिस दरोगा के पास भाई विधीचद महीनो रहे। वह भी उन्हे उनके इस वेश मे तनक भी नहीं पहचान सका और नजूमी समझ कर ही बादशाह के पास ले गया।

भाई विधीचन्द जी ने बादशाह के सामने बडे अच्छे और कौशल पूर्ण ढग से बाते कीं, कहा मेरे दुनियाँ मे मित्र कम और दुश्मन ज्यादा है। मैं चोरियो और डाकों का जो हाल बताता हूँ इससे वे सब मेरे दुश्मन बन जाते हैं। दुश्मनो के डर से ही मैं अपने प्रांत से इधर आया हुआ हुँ। यहाँ भी पूछने वालो ने मेरा पीछा नहीं छोडा है। आपके खोये हुए घोडे का पता मैं जरूर बता दूँगा। चोर का नाम भी बता दूगा किस रास्ते से और कहाँ ले गया है। यह सब बता दूगा किन्तु मुझे क्या दक्षिणा मिलेगी यह भी लिखित हुक्म मिलना चहिये। बादशाह ने कहा अगर तुम बिल्कुल सही बता दोगे तो बहुत रुपया इनाम दूंगा। आगे फिर भाई विधीचन्द (जो कि इस समय गणक बने हुए थे) ने कहा, बादशाह सलामत मैं घोड़े का पता देने तक का जिम्मेवार हूँ। लाने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। ला तो वही सकता है जो समर्थ हो। और हा आप चलकर मुझे वह स्थान दिखाइये जहाँ से घोड़ा खुल कर गया है। दरोगा ने 'गणक' जी को लेजाकर उस स्थान पर खड़ा कर दिया जहाँ गुलबाग खड़ा था। गणक ने कहा, बिना ही काठी जीन के घोड़े पर ले जाने वाला कैसे चढा होगा? और अगर जीन भी ले गया तो वह कैसा था? बादशाह के हुक्म से दरोगा ने उस तरह का दूसरा जीन भी लाकर गणक के सामने रख दिया। गणक ने कहा ठीक मैं अब सब बता दूगा किन्तु चूकि अब दिन छिप चुका है, इस घोड़े पर जीन तो कस दो पर बताऊगा उसी मुहूर्त मे जिस मे दूसरा घोडा चोरी गया है। जीन कस दिया गया। कहा मुझे एकान्त कोठरी बता दीजिये जिसमे बैठकर दो चार घडी मे सभी बाते सोच लाऊ।

'गणक' जी एक कोठरी मे घुस गये और दो चार घड़ी के बाद घोड़े के पास पहुँचे उस पर

कहा गुरु जी महाराज ! मेरे लड़के ने चित्रकला सीखी है, हमारे लायक कोई सेवा बताइये। विधीचन्द ने इशारा किया कि गुरु जी का ही चित्र बनाओ, लडके ने हूबहू अथवा बहुत ही भव्य चित्र बनाया, जिसे गुरु जी ने विधीचन्दजी को दे दिया किन्तु वह चित्र दुर्भाग्य से इस समय अप्राप्त है।

चित्र

इसमें कोई सन्देह नहीं गुरु जी इस पठान को बहुत चाहते थे, छोटे से को अपने पास रक्खा था। दूध पीने के लिये इसको भैंस खरीद दी थी। खाने और पहरने की जो बढ़िया चीज आती, इसे देते। ब्याह शादी भी इसके अपने ही खर्च से किये। इसके खाने पहरने पर सब सिखों से अपेक्षाकृत ज्यादा खर्च होता था। एक दिन चित्रसेन नाम का एक शिष्य एक घोडा एक बाज एक पोशाक और कुछ हथियार गुरु जी की भेंट के लिये लाया। उनमें से सिवा बाज के सब चीजें गुरुजी ने पैंदेखॉ को देदीं। और उसे आज्ञा दी हमारे दरबार में इसी पोशाक में तुम हाजिर हुआ करो, घोडे समेत पैंदे खॉ घर आया। उसके जमाई ने वस्त्र, शस्त्र और घोडे को देखकर सवाल किया कि ये चीजें मुझे दे दो। पैंदे खॉ ने पहले तो मना कर दिया किन्तु उसके यह धमकी देने पर कि अगर मुझे यह चीजें नहीं मिली तो मैं तुम्हारी लड़की को छोड दूंगा। पैंदे खॉ की स्त्री ने सब चीजें जमाई अस्मान खॉ को देदीं। दूसरे दिन अस्मान शिकार खेलने गया, वहा उसे वह बाज भी मिल गया जो चित्रसेन ने गुरु जी को भेंट किया था और जिसे गुरुदिता उडाने के लिये ले गये थे। शाम को अस्मान खॉ बाज को घर लेकर आ गया। पैंदेखॉ ने उससे बहुत कहा कि इस बाज को लौटा देना है किन्तु अस्मानखॉ राजी नहीं हुआ।

पैंदे खॉ से बिगाड

गुरु जी को इन बातों का पता लग गया। उन्होंने पैंदेखॉ को दरबार मे बुलाया, गुरु जी चाहते थे कि पैंदेखॉ उनके सामने सही बात पेश करे किन्तु पैंदेखॉ ने सरासर झूठ बोला, उसने कहा आपकी दी हुई चीजें मैंने किसी को नही दीं। आपका बाज भी मेरे यहॉ नहीं है। गुरुजी के इशारे से विधीचन्द जी पैंदे के घर जाकर सब चीजों को ले आये थे। गुरु जी ने विधीचंद जी से वह चीजें पेश कराईं और कहा, इस झूठ की यही सजा है कि इसे यहॉ से निकाल दिया जाय।

पैंदेखॉ ने घर लौट कर अस्मानखॉ को सारा किस्सा सुनाया और दोनों ने बदला लेने की प्रतिज्ञा की। आसपास के मुसलमानों को भड़का कर उसने पॉच सौ आदमियों का गिरोह इकट्ठा कर लिया। फिर जलधर के हाकिम कुतुबुद्दीन के पास पहुँचा और उससे सहायता मागी। वह पहले ही जलाभुना बैठा था पैंदेखॉ की सहायता करना स्वीकार कर लिया।

कहते हैं पेशावर का हाकिम कालेखॉ भी गुरु जी से लड़ने को तैयार हो गया।[1] अनवरखॉ का दोस्त अब्दुल्लाखॉ भी दो हजार सिपाहियों के साथ कालेखॉ के साथ हो लिया। यह लश्कर करतारपुर की ओर बढ़ा।

गुरु जी से भाई जीतमल ने कहा, महाराज ! तुर्क दल टिड्डी की नाईं चला आ रहा है। हमें तत्परता से सामना करने के लिये तैयार होना चाहिये। गुरु जी ने कहा, चिन्ता करने की कोई बात नहीं है, तुम पॉच सौ सैनिक ले जा कर नाके को घेर लो। अमीचन्द, मिहरचन्द और भाई लब्बू जीतमल के साथ हुए। अँधेरी के फैलते ही तुर्कों का एक बीस हजार का दल करतारपुर पर हमला करने को आगे बढ़ा

१. सिख इतिहास मेकालफ कृत।

किन्तु सिख सिपाहियों ने झाड़ियों में से तीर और गोलियों की वर्षा आरम्भ कर दी। कुछ सिख सिपाही मुगलों के लश्कर में भी घुस गये। रात का समय कौन किसे पहचानता है? ऐसा गड़बड़ी हुई कि मुगल सैनिक आपस में भी लड़ने लगे और इस तरह वह दल अपना ही नुकसान करने लगा। कुतुबखाँ ने चारों ओर से अपना ही दल खतम होते देखकर कालेखाँ से कहा, रात में लड़ाई छेड़ कर हमने सच में बड़ी गलती की है। इस घोर अँधेरे में कौन किसे पहचानता है। आँधी की धूल ने और भी गोलमाल कर दिया है। फौज का पिछला हिस्सा आगे बढ़ने से घबरा रहा है. हमारे आदमियों की लाश पर लाश [illegible] हैं। पैंदेखाँ ने कहा, आप सारी फौज को आज्ञा दीजिये कि करतारपुर पर चारों ओर से हमला करे. सिखों में हम लोगों के मुकाबले का है ही कौन? इस बात को सुन कर कालेखाँ कुढ़ गया और कहने लगा अगर सिख गाजर मूली ही हैं, वे लड़ना भिड़ना नहीं जानते और तुम्हारे मुकाबिले के नहीं हैं तो इतने दिन से लाहोर क्यों पड़े रहे और क्यों इतनी बड़ी फौज लाये हो और तुम खुद ही आगे क्यों नहीं बढ़ते हो। कालेखाँ के इस उलाहने से तिलमिला कर पैंदेखाँ और उनका जमाई मसाले शाह सेना लेकर अगुआ बने। कुतुबखाँ, कालेखाँ, और अनवरखाँ भी अलग-अलग जत्थे लेकर तीर की भाँति करतारपुर की ओर बढ़े। भाई बिधीचन्द, जीतमल, रायजोध और लक्खू ने उनका रास्ता रोका। तीरों और गोलियों की इस कदर वर्षा की कि तुरक दल को आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। जो भी आगे बढ़े उसे जमीन पर पटक दिया जाय। अनवरखाँ गुरु जी से बदला लेने को बहुत उतावला हो रहा था उसको बिधीचन्द ने ऐसे जोर का तीर मारा कि कलामुण्डी खा गया।

पठान, मुगल और सैयद अल्लाहो अकबर के नारे लगा कर आगे को बढ़ते थे किन्तु सिखों के व्यूह को तोड़ना उनके लिये मुश्किल हो रहा था। लड़ते [illegible] सूरज निकल आया। मुसलमान अफसरों ने देखा सेना आधे से भी कम रह गई है और सारा मैदान लोथों से भर गया तो वे बड़े चिढ़े और पैंदेखाँ से कहने लगे तू तो डींगें मारता था कि सिख लड़ना क्या जानते हैं। अब तक उनकी जानें मेरे ही सदके हुई हैं और जाते ही गुरुजी को पकड़ लाऊँगा, इन छ: घंटों की लड़ाई में तो तू कुछ भी नहीं कर सका। पैंदेखां ने कहा, मैं आगे चलता हूँ और बराबर आगे ही बढ़ता जाऊँगा. तुम पीछे से तो मेरी मदद करो। यह कहकर दोनों ससुर जमाई चल पड़े। मुगल सेना भी द्रुत गति से आगे बढ़ी। दोनों ओर के वार [illegible] गये। सिखों में क्या अब बालक और क्या बुड्ढा सभी शक्ति से अधिक जौहर दिखाने लगे। उस समय माता नानकी महल के ऊपर से युद्ध देख रही थीं। अपने अल्प वर्षीय पुत्र श्री तेग बहादुर जी के रण कौशल को देखकर चकित रह गईं। सब सिख इसी प्रकार जौहर दिखा रहे थे। कुतुबखाँ गुरु जी पर तीर छोड़ने लगा किन्तु वे उसके तीरों को काट काट कर बेकार करने लगे। गुरुजी भी इस समय तीरों की मेंह की भाँति वर्षा कर रहे थे। कुतुबखाँ ने यह देखकर गुरुजी की ओर धावा किया किन्तु भाई लक्खू ने उसे बीच से ही अटका लिया और एक सनसनाता हुआ तीर मार कर जमीन पर लिटा दिया। यह देखकर मुसलमानों के एक गिरोह ने भाई लक्खू को घेर लिया। पौने घंटे तक भाई जी अकेले [illegible] गोल में लड़ते रहे और इस प्रकार दोनों हाथों से तलवारें घुमाने लगे कि किसी का वार उनके शरीर तक नहीं पहुँचे और जो उनकी चपेट में आ जाय, उसके टुकड़े [illegible] हो जावें। इतने में कुतुबखाँ को होश आ चुका था। उसने लेटे हुए ही भाई जी के पैरों में एक तीर मारा, जिससे वे गिर पड़े। [illegible] था। कुतुबखाँ ने गिरे हुए भाई लक्खू का सिर काट लिया।

लक्खू के मारे जाने से मुसलमान अफसरों को साहस हुआ और कालेखाँ, कुतुबखाँ,

और अस्मानखॉ को साथ लेकर गुरुजी की ओर झपटा किन्तु बिधिचंद जी ने काले खॉ को और बाबा गुरदिता जी ने अस्मानखॉ को आगे बढ़ने से रोक दिया। पेंदेखॉ गुरुजी तक जा पहुँचा और कहने लगा, तुमने मेरा जो अपमान किया है आज उसका बदला ले लूंगा। गुरुजी ने कहा, पेंदेखॉ, बहादुर लोग बहुत सी बाते नहीं बनाते, जब रणभूमि मे आडटा है तो अपना वही काम कर जो इस समय करना चाहिये। यह सुनकर पेंदेखॉ भूखे बाघ की भाति गुरुजी पर टूटा किन्तु उसका वार खाली गया। फिर दूसरा वार किया। गुरु जी ने कहा पेंदेखॉ तू दिल भरकर वार कर ले। जिससे पीछे यू न कह सके कि मैं इस हथियार से और इस प्रकार वार न कर सका। पेंदेखॉ वार करता रहा और गुरुजी बचाते रहे। अंत मे गुरुजी ने कहा पेंदेखां मुझे तेरे लिये मारना न पड़े और शायद तुझे सुबुद्धि आजावे इसलिये अब तक छोडा किन्तु अब सॅभल जा। और देख वार ऐसे किया जाता है, यह कहते हुये खडे का ऐसा हाथ जमाया कि पेंदेखॉ जख्मी होकर जमीन पर गिर पड़ा। उसे जमीन पर गिरता देखकर गुरुजी को तरस आगया और उसके मुँह पर ढाल रख दी कि इसे धूप न लगे।[1]

बाबा गुरुदिता जी का एक तीर इधर पेंदे के जमाई अस्मान खा की ऑख मे लगा। जिससे वह पेंदे का साथी ही होगया। सामने से कुतुबखा तीरों की वर्षा कर रहा था, इसलिये गुरु जी ने एक तीर मारकर उसके घोडे को बेकार कर दिया। तब कुतुबखॉ तलवार लेकर गुरुजी से आ भिडा। लगभग एक घटे तक लडता रहा अत मे गुरुजी ने उसका भी खात्मा कर दिया। अब मुसलमान सेनापतियों में अकेला कालेखॉ ही रह गया था। वह भी गुरुजी के सामने आया और वीरता के साथ कितनी देर तक लडता रहा। गुरुजी को जख्मी भी किया किन्तु उनसे बेचारा फतह क्या पा सकता था। दुधारे खण्डे की वह भी भेट होगया। रहे सहे सैनिक भाग गये कुछ अपने घरों को चले गये और कुछ लाहौर जा पहुँचे।

कहते हैं उस युद्ध में मुसलमानों के तो हजारों ही आदमी मारे गये थे किन्तु सिख केवल सात सौ ही काम आये थे। यह घटना १६६१ विक्रमी के असाढ़ महीने की है।

बुड्ढनशाह पहुँचे हुए फकीर थे। उनकी उम्र सौ से ऊपर पहुँच चुकी थी। उनके पास गुरु नानकदेव जी की दूध की अमानत थी। पहली मुलाकात मे उन्होंने वह गुरदित्ता जी को सौंप दी थी। इस समय उनका शरीर किनारे पर आ पहुँचा था, अत इस युद्ध से निवृत होते ही जल्दी ही गुरुजी मय लश्कर और परिवार के बाबा बुड्ढनशाह के पास पहुँचे उन्हे दर्शन से सतुष्ट करके कीरतपुर पधारे जहॉ अपने घावोंकी मरहमपट्टी की। उनका दिलबाग घोडा भी लडाई मे काफी जख्मी होगया था अत. उसने अपने प्राण दे दिये।

बुड्ढन शाह

समस्त सिख बाबा बुड्ढनशाह के पास ही ठहरे हुए थे अत उन्होंने अपने प्राण त्याग के लिये यह शुभ अवसर समझा, दूसरे दिन गुरु जी भी कीरतपुर से बुड्ढनशाहजी के पास आगये। बुड्ढनशाह ने उनके चरण पकड़ कर प्रार्थना की सच्चे बादशाह मैं तुम्हारा दास हूँ।

सब लोग तो गुरुजी के साथ कीरतपुर गये थे किन्तु धीरमल जी अपनी माता जी समेत करतार पुर ही रह गये थे, वे चाहते थे कि भाई बिधीचद जो उन दिनों ग्रन्थ साहब जी का उतारा कर रहे थे अपना काम पूरा करने के लिये ग्रन्थ साहब जी को साथ ले जॉय किन्तु धीरमल ने न मिलने का बहाना करके उन्हे टाल दिया।

धीरमल के अकृत्य

१ शत्रु पर भी इस प्रकार के उदारतापूर्ण व्यवहार करने की चर्चा सिख गुरुओं और उनके अनुयाइयो के इतिहास में काफी मिलती है।

पीला हो गया और आज के मोरचे पर शम्सवेग को भेजा। गुरु जी ने विधीचन्द को आज्ञा दी। भाई-विधीचन्द डेढ़ हजार सैनिक लेकर शम्सवेग की सेना के मुकाबिले मे आये। दोनों ओर की सेनाये दिल भर कर लडीं, अनेको सिख सैनिक धाराशायी हुए किन्तु ज्यादा आदमी मुगलों के ही मारे गये। अत मे शम्सअली और विधीचन्द दोनों भिड गये, पहले तलवार और नेजों से और अत मे द्वन्द युद्ध करने लग पडे। विधीचन्द जी ने शम्स वेग को पछाड दिया और उसे बीच से चीर कर दो बना दिये।

शम्सवेग को मैदान मे काम आया देखकर लल्लावेग क्रोध से कापने लगा और उसने ललकार कर कहा क्या मेरी फौज मे ऐसा कोई नहीं है जो इनका बदला लेने का दम रखता हो, कासिम आगे बढा और उसने कहा आप चिन्ता न करें मैं सब देख लूंगा। इसके मुकाबिले के लिये गुरु जी की आज्ञा से भाई जेठा पाच सौ सवारों के साथ सामने आया। दोनों ओर से एक जोर की भिडन्त हुई, जिसमे कासिम जेठा जी द्वारा मारा गया।

वस अब इसके सिवा कोई चारा न था कि खुद लल्लावेग ही मैदान मे आये। इसलिये उसने समस्त शेष सेना को साथ लेकर हमला किया। भाई जेठा जी का घेरा देकर चारों ओर से तीर वर्छे और गोलियों की वर्षा होने लगी। भाई जेठा वडी वहादुरी से वार वचाते हुए, शत्रुओं का नाश करने लगे, यह देखकर लल्लावेग ने खुद आगे वढकर भाई जेठा पर वार किया और दूसरे वार मे उन्हे धरती पर सुला दिया। जेठा जी को मारने के वाद लल्लावेग का हौसला वढ़ गया, इसलिये छटे हुए तीन हजार आदमियों के साथ उसने गुरु जी की ओर धावा करना चाहा किन्तु सिंघे के वेटे जीतमल ने बीच मे ही आकर उसका रास्ता रोक लिया, पर जीतमल अधिक देर तक लल्लावेग के आक्रमण को न सहार सका। अत वह चोट खाकर वेहोश हो गया। यह देखकर गुरु जी आगे वढे और लल्लावेग से कहा आओ, हम तुम दोनों ही निपट लें किन्तु लल्लावेग दूर से ही तीर चलाता रहा, पास नहीं आया, अत में गुरु जी ने एक तीर छोडकर उसके घोडे को मार डाला और आप भी घोडे से कूद कर उसके पास जा पहुँचे। दोनों ओर से तलवार चलने लगीं। लल्लावेग के वार खाली गये। गुरु जी ने उसके सिर के दो टुकडे कर दिये।

अब केवल कावुलीवेग वाकी था। वह वड़े गुस्से के साथ आगे वढ़ा। इधर जीतमल भी होश मे आ गया था अत. वह भी तुरक सेना मे घुस पडा। रायजोध और भाई विधीचन्द भी जौहर करने लगे। अपने आदमियों का इस तरह का विनाश होते देखकर कावुलीवेग ने ऐसी तीरों की वर्षा की। जिससे ये तीनों सिख शूरमा जख्मी हो गए। यह देखकर गुरु जी फिर आगे वढ़े। कावुली वेग ने गुरु जी पर भी तीरों की ऐसी वौछार की कि उनका दिलवाग घोडा जख्मी होकर गिर पडा। घोडे के मरते ही गुरु जी ने तुरन्त कावुलीवेग के घोडे को जमीन पर पटक दिया। फिर दोनों ही तलवारें लेकर लडने लगे। वहुत देर तक गुरु जी वचाव करते रहे और कावुलीवेग वार। जव वहुत हो चुका तो गुरु जी ने एक ही हाथ ऐसा मारा कि कावुलीवेग का सिर धड से दूर जा गिरा।

समस्त सेना नायकों के मारे जाने पर मुगल सेना के रहे सहे सिपाही मैदान छोडकर भाग निकले, इधर गुरु जी ने अपने प्यारों को ढूंढा और उनका अग्नि संस्कार कराया।

रायजोध ने गुरु जी को सदैव अपने यहाँ रहने की प्रार्थना की किन्तु गुरु जी ने उससे कहा जब भी तुम चाहोगे तभी हम दर्शन दे जाया करेंगे।

अमृतसर के दो सिख एक दिन गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुए, वे दोनों पिता पुत्र थे। पिता ने

बाल गुरु

श्री हरिकृष्ण जी

किन्तु सिख सिपाहियों ने झाड़ियों में से तीर और गोलियों की वर्षा आरम्भ कर दी। कुछ सिख सिपाही मुगलों के लश्कर में भी घुस गये। रात का समय कौन किसे पहचानता है? ऐसी गडबड़ी हुई कि मुगल सैनिक आपस में भी लड़ने लगे और इस तरह यह दल अपना ही नुकसान करने लगा। कुतुबखाँ ने चारों ओर से अपना ही दल खतम होते देखकर कालेखाँ से कहा, रात में लडाई छेड कर हमने सब से बडी गलती की है। इस घोर अँधेरे में कौन किसे पहचानता है। आँधी की धूल ने और भी गोलमाल कर दिया है। फौज का पिछला हिस्सा आगे बढ़ने से घबरा रहा है, हमारे आदमियों की लोथ पर लोथ बिछ गई हैं। पैंदेखाँ ने कहा, आप सारी फौज को आज्ञा दीजिये कि करतारपुर पर चारो ओर से हमला करे, सिखों में हम लोगों के मुकाबले का है ही कौन? इस बात को सुन कर कालेखाँ कुढ़ गया और कहने लगा अगर सिख गाजर मूली ही है, वे लडना भिडना नहीं जानते और तुम्हारे मुकाबिले के नहीं है तो इतने दिन से लाहौर क्यो पड़े रहे और क्यों इतनी बडी फौज लाये हो और तुम खुद ही आगे क्यों नहीं बढते हो। कालेखाँ के इस उलाहने से तिलमिला कर पैंदेखाँ और उनका जमाई मसाले हाथ मे लेकर अगुआ बने। कुतुबखाँ, कालेखाँ, और अनवरखाँ भी अलग-अलग जत्थे लेकर तीर की भाति करतारपुर की ओर बढ़े। भाई बिधीचन्द, जीतमल, रायजोध और लब्बू ने उनका रास्ता रोका। तीरों और गोलियों की इस कदर वर्षा कीं कि तुरक दल को आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। जो भी आगे बढे वही जमीन पर पटक दिया जाय। अनवरखाँ गुरु जी से बदला लेने को बहुत उतावला हो रहा था उसके बिधीचन्द ने ऐसे जोर का तीर मारा कि कलामुण्डी खा गया।

पठान, मुगल और सैयद अल्लाहो अकबर के नारे लगा कर आगे को बढ़ते थे किन्तु सिखों के व्यूह को तोड़ना उनके लिये मुश्किल हो रहा था। लडते २ सूरज निकल आया। मुसलमान अफसरों ने देखा सेना आधे से भी कम रह गई है और सारा मैदान लोथों से भर गया तो वे बडे चिढे और पैंदेखाँ से कहने लगे तू तो डींगे मारता था कि सिख लड़ना क्या जानते हैं। अब तक उनकी जीतें मेरे ही सबब हुई हैं और जाते ही गुरुजी को पकड़ लाऊँगा, इन छ घंटो की लड़ाई में तो तू कुछ भी नहीं कर सका। पैंदेखां ने कहा, मैं आगे चलता हूँ और बराबर आगे ही बढता जाऊँगा, तुम पीछे से तो मेरी मदद करो। यह कहकर दोनों ससुर जमाई चल पडे। मुगल सेना भी द्रुत गति से आगे बढ़ी। दोनों ओर के वीर भिड गये। सिखों मे क्या अब बालक और क्या बुड्ढा सभी शक्ति से अधिक जौहर दिखाने लगे। उस समय माता नानकी महल के ऊपर से युद्ध देख रही थी। अपने अल्प वर्षीय पुत्र श्री तेग बहादुर जी के रण कौशल को देखकर चकित रह गई। सब सिख इसी प्रकार जौहर दिखा रहे थे। कुतुबखाँ गुरु जी पर तीर छोड़ने लगा किन्तु वे उसके तीरों को काट काट कर बेकार करने लगे। गुरुजी भी इस समय तीरों की मेंह की भाति वर्षा कर रहे थे। कुतुबखाँ ने यह देखकर गुरुजी की ओर धावा किया किन्तु भाई लब्बू ने उसे बीच मे ही अटका लिया और एक सनसनाता हुआ तीरमार कर जमीन पर लिटा दिया। यह देखकर मुसलमानों के एक गिरोह ने भाई लब्बू को घेर लिया। पौने घंटे तक भाई जी अकेले ही हजारों के गोल में लड़ते रहे और इस प्रकार दोनो हाथों मे तलवारें घुमाने लगे कि किसी का वार उनके शरीर तक नहीं पहुँचे और जो उनकी चपेट में आ जाय, उसके टुकडे २ हो जावें। इतने में कुतुबखाँ को होश आ चुका था। उसने लेटे हुए ही भाई जी के पैरो में एक तीर मारा, जिससे वे गिर पडे। फिर क्या था। कुतुबखाँ ने गिरे हुए भाई लब्बू का सिर काट लिया।

लब्बू के मारे जाने से मुसलमान अफसरों को साहस हुआ और कालेखाँ, कुतुबखाँ,

धीरमल के लिये गुरु जी ने बुलाने को फिर भी आदमी भेजे किन्तु वह नहीं आया। कहते है उसने यह भी कहला भेजा था, हरिराय को गुरु बना कर आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। जब उसकी माता जी ने उसे ऊँच नीच और हिताहित की बातें कह कर बहुत समझाया तो वह गुरु जी के पास गया। गुरु जी ने उसे प्यार के साथ अपने पास बिठाया। वह वहाँ रहने लगा। एक दिन आप ही ने घोषणा करदी, मैं सिखो का गुरु हूँ। इससे गुरु जी उससे बहुत नाराज हुए, तो वह यह कहता हुआ वापिस लौट गया। मैं तो अपने बल पर गुरु बनूंगा।

अपने अन्त समय को निकट जानकर उन्होंने सब सगतों के पास कीरतपुर आने के निमंत्रण पत्र भेज दिये। कीरतपुर मे उन दिनो होली का उत्सव मनाया जा रहा था, गुरु जी सिखो को मादक चीजों के त्याग पर उपदेश दे रहे थे। बाहर से आने वाली सगतों ने भी इन उपदेशों का लाभ उठाया। इस होलकोत्सव के बाद नियत किए हुए दिन एक विशाल दीवान हुआ और उसी अवसर पर हरिराय जी को गुरुआई बख्शी गई। गुरु जी ने नये गुरु जी को पिछले गुरुओं का आदर्श निभाहने के लिये उपदेश भी दिया और फिर रवाबियों ने कीर्तन किया।

सचखड प्रस्थान

इसके बाद गुरु जी सतलज के किनारे चले गये। जहाँ पहले से ही पतालपुरी नाम की एक सुन्दर कुटी बना रक्खी थी। इस एकान्त स्थान मे वाहि गुरु का स्मरण करने लगे।

एक दिन बीबी वीरो ने पतालपुरी पहुँच कर रोते हुए कहा मेरी माता मुझे छोड कर पहले चल बसी है। अब आप भी जाने की तयारी कर रहे है। पिता और माता जिसके कोई नहीं हो उसका जीवन कितने दुख का होता है। मेरा तो इस बात की कल्पना से ही हृदय फटता है। गुरु जी ने बीबी को धीरज देते हुए कहा, बेटी यह तो ससार का खेल है, पैदा होता है वह विनष्ट भी होता है, मेरे लिये कोई शोक न करना, परमात्मा का स्मरण करना।

गुरुहरि गोविन्द जी के जीवन पर एक दृष्टिपात

गुरु हरिगोविन्द जी का जमाना मुस्लिम शासकों की बदहवासी का जमाना था। जिसमे न्याय और विचार को बहुत कम स्थान था। किसी को सताने के लिये मुस्लिम शासकों को कारण जानने और ढूंढ़ने की आवश्यकता शायद महसूस न थी। वे चाहे जिस पर अत्याचार करने मे कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचते थे। पंजाब तो ऐसे अत्याचारों का केन्द्र बना हुआ था। गुरु हरिगोविन्द जी ने यह दशा देखी तो इसके प्रतिकार के लिये उन्होंने तलवार धारण की अर्थात् भक्ति के साथ ही वीरता का उपदेश देने का भी उन्होंने काम अपने हाथ मे लिया और फल यह हुआ, उनका समुदाय धर्मप्रिय के साथ ही अन्यायो और अत्याचारों का मुकाबिला करने वाला भी बन गया।

गुरु जी के सारे जीवन पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि उनका सारा जीवन सघर्ष मे बीता। उन्हे शाति से बैठने और आराम करने का कभी ही अवसर मिला हो किन्तु फिर भी वे इस बात से पूरी तरह सतर्क रहते थे कि सिखों मे कोई त्रुटि तो पैदा नहीं हो रही। भाई गुरुदास जी जैसे पुराने सिख को भी उन्होंने नम्र बनने के लिये ताडना दी। नशेबाजी को बन्द करने के लिये कडे शब्दो मे उपदेश दिया। जरा सा भी समय मिलते ही भक्तों और शिष्यों के पास पहुँचते, पेंदे खाँ की लडाई के दूसरे ही दिन बुड्ढन शाह की खबर लेने पहुँचे।

उन्होंने अपने जीवन में अच्छी से अच्छी और प्यारी से प्यारी चीज से मोह नहीं किया।

संवत् १६६५ में बाबा गुरुदित्ता जी भी इस संसार से प्रस्थान कर गये। उनके स्वर्गवास की घटना सिख इतिहासकारों ने इस प्रकार लिखी है कि एक बार उन्होंने एक मृतक को उसके अभिभावुकों के अति क्रन्दन करने के कारण दयावश होकर जिला दिया। जब गुरु जी को पता चला तो उन्होंने गुरुदित्ता जी को ताड़ना की और कहा, "करामात दिखाने के अभिप्राय. से तुमने ईश्वर की रजा के विरुद्ध कार्य किया है अत तुम ससार में रहने के योग्य नहीं।" अपने गुरु के इस वचन को पूरा करने के लिये गुरुदित्ता जी उस समय चल दिये और बुड्ढनशाह के स्थान पर जाकर वह सदैव के लिये समाधि लगा गये। इधर उनकी ढूंढ खोज हुई। खोजते २ गुरु जी बुड्ढन शाह के स्थान पर पहुँचे तो यहाँ केवल गुरुदित्ता जी का मृतक शरीर मिला।

बाबा गुरुदित्ता स्वर्ग लोक

गुरुदित्ता जी के परलोक वास के पीछे उन्होंने धीरमल जी को जोकि बाबा गुरदित्ता जी के जेठे पुत्र थे। कीरतपुर बुलाने को आदमी भेजा, साथ ही कहला भेजा कि ग्रन्थ साहब जी को भी लेते आवे। पत्र वाहक जब धीरमल के पास पहुँचा तो उन्होंने आने से साफ इन्कार कर दिया और न ग्रन्थ साहब भेजे। कह दिया पगड़ी मेरे छोटे भाई हरिराय को बधा देवे। मैं अपने धन माल को सूना नहीं छोड़ सकता। धीरमल ने सोचा था कि गुरु ग्रन्थ साहब जब मेरे ही पास हैं तो गुरु हरिगोविन्द जी के बाद सिख मुझे ही तो अपना गुरु मानेंगे।

धीरमल का अनौचित

भावी गुरु हरिराय जी

विधीचंद जी ने ग्रन्थ साहब का जितना उतारा कर लिया था उतने ही का पाठ किया गया। इस समय तक तक गुरुजी ने बाबा बुड्ढे के सुपुत्र भाना जी को भी बुला लिया था। परिवारिक जन और सम्बन्धी सभी इकट्ठे होगये थे। संगते भी आरही थीं। जब लोग रज करने लगे तो गुरुजी ने आध्यात्मिक उपदेश देकर सब को शात किया। अत में गुरुजी ने सबको सूचित किया कि धीरमल बुलाने पर नहीं आया है और न उसने ग्रन्थ साहब को भेजा है। वह माया में लिप्त होगया है, अत पगड़ी उसके छोटे भाई हरिराय जी के बांधी जानी चाहिये।

अनूपशहर से दयाराम नाम का एक सिख अपने परिवार समेत उधर की सगत के साथ गुरुजी के दर्शन के लिये आया था। उसने अपनी लड़की का विवाह हरिराय जी के साथ करने की प्रार्थना की। गुरुजी ने दयाराम के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और १० हाड सवत १६६७ मे यह शुभ विवाह होगया।

इन दिनों गुरु जी उदास रहते थे। वह कभी अपने उद्यान मे निकल जाते। कभी एकान्त मे बैठ कर चिन्तन करते। उपदेश भी इन्हीं बातों पर करते कि जो इस ससार मे आता है। उसे एक दिन जाना पडता है। इसलिये मनुष्य को जीवन भर सतर्क रहना चाहिये। कोई भी धब्बा अपने ऊपर नहीं लगने देना चाहिये।

एक दिन उनसे गुरु अमरदास जी के पडपोते मनोहर जी के पुत्र अनदराय जी गोविन्दवाल से चल कर मिलने आये तो आप उन्हें देख कर इतने प्रसन्न हुए कि उनकी पालकी के नीचे लग गये। उनका अपने महलों मे ठहरने का प्रबन्ध किया।

राजा विलासपुर — मिला। उसने समझ लिया गुरु जी अन्तर्यामी हैं। यहाँ पर उनके उपदेशों ने उसके दिल पर इतना असर डाला कि वह गुरु जी का प्रेमी बन गया।

इसी तरह कुठाह का राना भी गुरु जी के दर्शनों के लिये आया। वह बहुत दिन से बीमार था, सो थोड़े ही दिनों मे चगा हो गया।

राजा बाजबहादुर ने गुरु जी के दर्शन और उपदेशों से सतुष्ट होकर उन्हे एक हाथी भेंट किया। इसी तरह अनेकों राजे रईस गुरु जी के दर्शनों को आने लगे।

राजे रईसों की तरह ही अनेकों गरीब भी गुरु जी के दर्शनों की प्यास से आते थे। वे भी आकर अपनी श्रद्धानुसार भेंट देते थे और आत्म सतोष प्राप्त करते थे। एक दिन एक माई श्रद्धा से प्रेरित होकर रोटी घी और चीनी मे तर करके लाई और सभा मे बैठ गई। सभा के खतम होते ही गुरु जी ने आवाज लगाई, ला, माई रोटी मेरे लिये तो भूख लग रही है। माई श्रद्धा से गद्गद् हो गई उसने अपने जीवन को सफल समझा। राजा महाराजा भी जो उस समय आए थे गुरु जी की इस दयालुता को देखकर चकित रह गये।

गृहस्थियों की भांति ही साधुसंत भी उनके दर्शनो को आते थे और उनमे से अनेक तो सिख धर्म को भी धारण कर लेते थे। सवत् १७०७ मे ऐसा ही एक गिरोह गिर गुसाईं का बौध गया से आया। उसने पजाब मे ज्वालामुखी देवी के मेले मे गुरु जी के सम्बन्ध मे सुना था गुसाईं मय अपने साथियों के गुरु जी के पास हाजिर हुआ उसने दर्शनों और उपदेशों से भी लाभ उठाया।

कुछ दिन के बाद गुरु जी यात्रा पर निकले। यह यात्रा उन्होंने सवत् १७०८ मे आरम्भ की। सबसे पहले अमृतसर पहुँचे। रास्ते मे करतारपुर मे अपने भाई धीरमल से भी मिले। यहाँ दीवाली के मेले तक रहे। उस समय मे दूर २ से अनेको संगते दर्शन के लिये आई जिन्हे आपने अपने मनोहर उपदेशों और दर्शनो से सतुष्ट किया। यहाँ से फिर करतारपुर आगये और लगातार १० महीने रहे। वैसाखी कर्तारपुर मे ही हुई। यहाँ पर भी दूर दूर से सिख लोग दर्शनों को आते रहे। करतारपुर से नूरमहल आये जहाँ का दीवान गुरु जी के याद करने पर भी उनके पास नहीं गया। अपने नौकर द्वारा कहलवा दिया कि दीवान जी तो सो रहे हैं, दैवात उनका छत गिर पडा और सदा के लिये सोता ही रह गया। यहाँ नूरमहल मे भी बहुत सी सगतें गुरु जी से मिलने आईं। फतहशाह औलिया भी गुड़ की भेली और रुपयों की थैली लेकर हाजिर हुआ। गुरु जी ने उपदेश देकर उसे निहाल किया। यहा के चौधरी सूद के घर पुत्र नहीं पैदा होता था। गुरु जी के प्रसाद से जब उसका पुत्र पैदा हो गया तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। गुरु जी ने उससे इस खुशी मे वहा पर पानी का कुआँ बनवाने के लिये आज्ञा दी। उसने कुआँ बनवा दिया।

(हाशिया: यात्रा)

नूरमहल से चलकर गावों मे प्रचार करते हुए गुरु जी डलोरी गाव मे पहुँचे जहाँ पर कि गुरु हरिगोविन्द जी के नाम का एक कुआ था। उसकी मरम्मत करवाई।

मालवे की सगते भी गुरु जी से उधर चलने के लिये आग्रह कर रही थीं। अत गुरु जी सतलज को पार करके मालवे देश मे पहुचे। वहां पर धारीवाल, भूलर, कौड़े और गिल के जाट जमींदारों ने गुरुजी और उनके दल की खूब सेवा की।

भाई कालू ने एक दिन गुरु जी को प्रसन्न देख कर अपने भतीजों को उनकी सेवा मे हाजिर किया। वहा बच्चों ने पहुँच कर अपने पेट को बजाया गुरु जी के पूछने पर उसके चाचा ने कहा कि महा-

नवाँ अध्याय

गुरु हरिराय जी की जीवन यात्रा

गुरु हरिराय जी साहब का जन्म बाबा गुरुदित्ता जी के घर माता निहालकौर जी के उदर से माघ सुदी २ संवत १६८६ वि० में हुआ था। इनके पिता जी का सचखडवास इनकी बाल्य-अवस्था में ही होगया। यह गुरु हरिगोविन्द जी महाराज के पाते थे।

आपका स्वभाव बड़ा दयालु था। अत आप शिकार करने भी नहीं जाते थे। वैसे आपके यहाँ कई हजार सैनिक तैयार रहते थे किन्तु युद्ध का मोका ही नहीं आया।

सवत् १७०६ वि० मे रूम के बादशाह का वकील भारत के मुगल सम्राट् के दरबार मे आया। पजाब मे उसने सिख गुरुओ की प्रशंसा सुनी। इसलिये वह दर्शन के लिये गुरु हरिराय जी के दरबार मे भी पधारा। यहाँ उसने दीवान, कडाह प्रसाद, सिखो की धार्मिकता, गुरु जी के स्वभाव और रहन सहन सबको देखा, इससे उसके दिल पर बडा असर पडा। उसने एक प्रश्न भी किया कि महाराज —"सासारिक कष्टों से छुड़ाने मे कौनसा पैगम्बर (अवतार) मदद दे सकता है?" गुरु जी ने कहा स कष्टो से ता अपने शुभ कर्म ही छुड़ा सकते हैं। अवतार और पैगम्बर भी तो अपने कर्मों के ही फल से काई बनते है। इस यथार्थ उत्तर को सुनकर राजदूत बहुत प्रसन्न हुआ और गुरु जी की भूरि २ प्रशंसा करने लगा।

सभी यात्री

बादशाह शाहजहाँ के चार पुत्र थे। चारों ही इस दाव पेच मे थे कि बादशाह के मरने पर गद्दी हमें मिले। कहते है इसी उद्देश्य से औरगजेब ने काई जहरीली चीज दारा को खिलादी। अनेक लोगों ने उसका इलाज किया। किन्तु अच्छा ही न हो सका। वैद्य हकीमों ने आखिर में कहा यदि दस ताले वजन की हरड और एक मासे की लोग आवे तो दारा चगा हो सकता है। इस पर पीरहसन अली ने बादशाह से कहा, सभवतया ये चीज़ें गुरु हरिराय जी के औषधालय मे प्राप्त हो सकती है। बादशाह ने अपने आदमी गुरु जी के पास भेजे गुरु जी ने यह चीजे दे दी, जिनके खाने से दाराशिकोह अच्छा होगया। इस अहसान से प्रेरित होकर सवत् १७०७ मे दारा गुरु जी के दर्शनों के लिये आया।

दाराशिकोह का इलाज

बिलासपुर का राजा गुरु जी के दर्शनों के लिये आया। उसने रास्ते से ही सोचा था कि यदि जाते ही कड़ाह प्रसाद मिल जाय तो मैं गुरु जी की महान् कृपा समझूंगा। उसे जाते ही कड़ाह प्रसाद

रामराय से नाराजी रामराय जी को त्याग दिया और फिर कभी न अपनाया। बात यह थी कि एक दिन बादशाह औरंगजेब ने पूछा, गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणियों में "मिट्टी मुसलमान की पेडे पई घुमिआर। घड भाडे इटा कीआ जलती करे पुकार।" शब्द भी लिखा है क्या? रामराय जी ने उत्तर दिया। गुरु नानकदेव जी ने तो बेईमान की लिखा है। 'मुसलमान' की नहीं। यों ही यह बात ज्यों की त्यों गुरु जी के पास पहुँची। इस गुरुवाणी भंग को एक भारी धार्मिक अपराध जाना और सिखों को रामराय से कोई सम्बन्ध न रखने की आज्ञा जारी कर दी। रामराय इसके बाद इस पर कुछ अर्सा देहली ही स्थित रहे और कुछ समय बाद अपना अलहदा डेरा स्थापित कर लिया जो अब देहरादून के नाम से मशहूर है।

दया और प्रेम का श्रोत बहाते हुए गुरु जी के लिये वह समय भी आ पहुँचा जब उन्होंने अपने पूर्व-वर्ती गुरुओं की नाईं सिख संगतों के पास यह परवाने भेजे कि अब हमारे विदा होने का समय आ गया है।

गरीब, अमीर, बालक, युवा और वृद्ध सभी तरह के हजारों सिख गुरु जी के स्थान पर इकट्ठे हो गये। गुरु जी ने सबसे पहले नये गुरु की नियुक्ति की रसम को पूरा किया। नये गुरु उन्होंने अपने छोटे पुत्र श्री हरिकिशन जी को बनाया और सिखों से कहा। आप इन्हें वैसे ही मानिये जिस तरह मुझे मानते आये हो।

संवत १७१८ वि. के कार्तिक वदि नौमी को आपने स्नान ध्यान से निवृत हो श्वेतवस्त्र धारण करके दीवान किया और जपुजी का पाठ करते हुए संघ के सामने अंतरध्यान हो गये।

गुरु हरिराय जी के जीवन पर एक नजर

गुरु हरिराय जी बहुत दयालु और कोमल स्वभाव के महापुरुष थे। उनकी दयालुता की अनेकों कथायें हैं। उनका यह प्रेम किसी एक ही जाति और मजहब के लिये न होकर सभी लोगों के लिये था। यहा तक उन्होंने अपने बुजुर्गों के घातक और विरोधी की संतान दारा को भी उस हालत मे, जब कि उसके पीछे औरंगजेब की सेनायें आ रही थीं सहायता की। उसे काफी दूर भाग जाने देने के लिये उन्होंने अपनी सेनाये औरंगजेब की सेनाओं के आगे अडा दीं। इस प्रकार उसे काफी दूर निकल जाने का अवसर दिया। वे मनुष्यों पर ही दया करते हों। सोही बात नहीं है प्रत्येक जीव पर दया करते थे, यहा तक कि फूल पत्ते और वृक्षों के प्रति भी उनके कोमल हृदय मे दया मौजूद थी। एक दिन जब कि गुरु हरि-गोविन्द साहब अपने बाग मे बैठे हुए प्रकृति की छटा देख रहे थे आप भी बाग मे पहुँच गये किन्तु आपके वस्त्रों से कुछ फूल टूट पडे। इससे आपको बड़ा रंज हुआ।

दीन दुखियों के करुण क्रन्दन को तो आप बर्दास्त कर ही नहीं सकते थे। इसलिये आपने एक औषधालय भी स्थापित किया था। उसमे अलभ्य से अलभ्य ओषधियों का संग्रह रहता था। दारा शिकोह के प्राण आपके ही औषधालय की हरड से बचे थे।

आपके समय मे धन बहुत इकट्ठा हुआ था। पहाड़ी प्रदेश के कई राजा, महाराजा और जागीरदार आपके शिष्य हो गये थे। इसलिये हाथी घोडे और जवाहरात सभी प्रकार की बहुमूल्य चीजे भेंट में आती थीं।

देहाती जनता की भलाई का खयाल भी आप खूब ही रखते थे। जहाँ कहीं देखते पानी का कष्ट

राज यह अपनी भूख मिटाने के लिये आपकी सेवा में हाजिर हुये हैं, जिस पर गुरु जी ने वर दिया कि इनके घोड़े जमुना नदी में पानी पियेंगे। और इनके पास बहुत से हाथी होंगे।

जब कालू जी की चौधराइन ने यह बात सुनी तो उसने अपने बेटे को भी गुरु जी की सेवा में भेजा। उसे भी गुरु जी ने वर दिया कि तुम्हारे सतान के हाथ में जागीरें होंगी। जिससे आनन्द का जीवन बिताने से कोई कठिनाई नहीं होगी। पटियाला, नाभा, जीन्द तीनों राज्य उसी कुल के राज्य हैं और कालू जी की सतान के हाथ मे लोहगढ़ और गुमटी की जागीरे हैं।

मालवा देश का भाई भगतू गुरु अर्जुनदेव जी के समय से मसन्द था। जब उसका अन्तकाल हो गया तो उसकी जगह उसके पुत्र जीवन और गोरे को दे दी गई। गुरु हरिराय जिस समय मालवे मे विचर रहे थे। उस समय भाई भगतू का पुत्र गोरा अपने बाहुबल से भटिंडे का अधिपति बन चुका था। उनने गुरु जी को एक सुन्दर घोड़ा और ५००) भेट किये। गुरु जी जब यहा से करतारपुर के लिये रवाना हुए तो सरदार गोरा उन्हे पहुँचाने के लिने मय अपने बहादुर वैराड जाटों के करतारपुर तक गया। रास्ते मे एक पठान हाकिम ने अपने दस हजार आदमियों के साथ हमला करके गुरु जी के माल असबाब और हाथी, घोड़ों को लूटना चाहा। किन्तु गोरा के बहादुर सैनिकों ने लड़ाई मे वह हाथ दिखाये कि पठानों को भाग कर अपनी जान बचानी पड़ी। गुरु जी गोरा से बहुत प्रसन्न हुए और उसे आशीर्वाद दिया कि तेरी सतान राजपाट वाली हो। रियासत अरनौली, सिंधूवाल, झब्बा आदि की जागीरे उन्हीं के वशजों की हैं।

करतारपुर में धीरमल के पुत्र का विवाह था। गुरु जी उसी में शामिल होने के लिये आये थे। यह घटना संवत १७११ की है। उस समय वहॉ बड़ी भीड हुई। यहॉ एक ब्राह्मण का एकलौता पुत्र मर गया। ब्राह्मण उसे गुरु जी के पास जिन्दा कराने के लिये लाया और कहने लगा कि अगर उसे जिन्दा नहीं किया गया तो मैं भी मर जाऊंगा। गुरु जी ने जवाब दिया यह तो जिन्दा हो जायगा किन्तु पहले किसी को मरना पड़ेगा जो ब्राह्मण अब तक प्राण देने की धमकी दे रहा था। वह चुप हो रहा; तब भाई भगतू के पुत्र जीवन ने अपने प्राण उस लड़के की जिन्दगी के लिये विसर्जित किये और लड़का जी उठा। जीवन की विधवा को जो कि गर्भवती थी गुरु जी ने वर दिया कि तेरे पुत्र होगा और उसकी सतान इतनी वृद्धि को प्राप्त होगी कि उसके गाव बसेंगे।

करतारपुर से गुरु जी मांझे प्रदेश की यात्रा के लिये निकले और गाम-गाम में उपदेश देते हुये तथा भक्तजनों को संतुष्ट करते हुए गोइंदवाल पहुँचे। वहा सवत १७१३ मे दाराशिकोह गुरु जी की शरण मे आया। वह अपने भाइ औरंगजेब से लड़ाई हार चुका था। गुरु जी ने उसे वैराग्य का उपदेश दिया। इससे उस पर इतना असर पडा कि वह आया तो था सिख सैनिक मांगने और कहने लगा महाराज मैं तो एकान्त में जाकर ईश्वर भक्ति करना चाहता हूँ, इसलिये ऐसी कृपा कीजिये कि औरंगजेब का आया हुआ लश्कर जो मेरा पीछा कर रहा है, मुझे पकड़ न सके। दारा मुल्तान की ओर बढ़ गया और गुरु जी ने अपनी सेना को शाही सेना के आगे अड़ा दिया। इस तरह दारा को आगे निकल जाने का मौका मिल गया।

बादशाह औरंगजेब के बार २ आग्रह के कारण गुरु जी ने रामराय जी को जो कि उनके पुत्र थे देहली भेज दिया। रामराय ने देहली पहुँचकर अपने ज्ञान, बल और करामातों से बादशाह औरगजेब को खुश कर लिया था किन्तु उनसे एक गलती भी हो गई जिसके कारण गुरु जी ने

दसवाँ अध्याय

गुरु हरिकिशन जी की जीवन-लीला

श्री गुरु हरिकिशन जी साहब गुरु हरिराय जी के द्वितीय पुत्र थे। जो माता किशनकौर जी से सवत १७१२ वि. की सावन वदी दशमी बुधवार को कीरतपुर में पैदा हुये थे। जिस समय आपको गुरु आई मिली थी। उस समय आपकी अवस्था लगभग ६ वर्ष की थी।

इनके स्वभाव के सम्बन्ध में एक सिख इतिहासकार ने इस प्रकार लिखा है.—"यद्यपि यह गुरुजी अवस्था में छोटे थे किन्तु धैर्य्य, संतोष, दयालुता, उदारता और अन्तरज्ञान मे परिपूर्ण थे। इनका प्रताप भी पहिले गुरुओं की तरह स्थिर रहा। इनके समय मे भी राजे रईस दर्शनों को आते रहे और सिख धर्म का प्रचार होता रहा। आप प्रातः काल उठकर स्नान करते थे। भेट और चढ़ावे को अनाथों में बाट देते थे।"

दीन-दुखियों के दुख और वीमारी दूर करने का काम भी आपके समय में बराबर चलता रहा। एक वार जबकि आप पालकी मे वैठे हुए जा रहे थे। एक कोढी आपकी पालकी को पकड कर रोने लगा। आपने पालकी ठहरवाली और उससे उतर कर उसकी हालत देखी। उसको एक रूमाल देते हुए कहा, इसे कुष्ट के स्थानों पर लगाते रहो। लिखा है कि उस कोढ़ी का दुख शीघ्र ही दूर हो गया।

आपके दर्शनों के करने से ही अनेकों लोगों के मन को शाति मिलती थी। दूर दूर से लोग आपके दर्शनों को आते थे। और छोटी अवस्था मे ही आप जो मनोहर उपदेश देते उन्हें सुनकर सभी आपकी प्रशसा करते थे।

रामराय का विरोध

पिता द्वारा विताडित किये हुए रामराय जी ने जब देखा कि हरिकिशन जी का प्रभाव सिखों पर बरावर बढ़ रहा है और सिख उनके प्रति पूरी श्रद्धा रखते है, तो रामराय जी के हृदय का क्रोध जाग उठा और वे अपने ही छोटे भाई की कीर्ति एव महानता को न सहार सके। और उन्होंने अपने को गुरु प्रसिद्ध करके सिखों को भी जाल मे लेने की कोशिश की। दूर दूर की संगतों को चिट्ठिया लिखीं। धीरमल के साथ मिल कर देश देशान्तरों मे अपने प्रचारक भी भेजे किन्तु सभी ओर से सिखों का जवाब आया कि हम तो उसे ही अपना गुरु मानेंगे, जिनको गुरु हरिराय जी ने गुरुआई बख्शकर नियत किया है। इन प्रयत्नों मे जब रामराय पूरी तरह से निष्फल होगया तो उसने औरङ्गजेब के सामने अपना सब हाल कहा। उसने सब वातें गौर के साथ

सुनी। पहले तो औरंगजेब ने यह भी कहा कि तुम विना वात के झगड़े में क्यों पड़ते हो, तुम्हें धन दौलत चाहिये तो मैं दे सकता हूँ। किन्तु रामराय ने अधिक आग्रह किया तो बादशाह ने गुरु हरिकिशन को बुलाने के लिये अपने आदमी भेज दिये।

गुरु जी दिल्ली जाने के लिये तयार हो गये। उस समय वहाँ जितने भी सिख हाजिर थे। सबने गुरुजी के साथ चलने की इच्छा प्रकट की किन्तु उन्होंने सबको मना कर दिया। थोड़े से सेवकों को साथ ले जाना ही उचित समझा तो भी बहुत से आदमी उनके साथ हो लिये। वे अपने प्राणों से ज्यादा प्यारे गुरुजी को दिल्ली चले जाने देने में घबराते थे। उन्हें ऐसा मालूम होता था कि हम यहाँ अकेले कैसे जिन्दा रहेंगे। इसलिये गुरुजी के बार बार मना करने पर भी नहीं माने तो गुरुजी ने एक रेखा खींचदी और कडे शब्दों में कहा, जो कोई इस रेखा को पार करेगा उसे हम सिखी से खारिज कर देंगे। जो तुम हमसे सच्चा प्रेम करते हो तो वापिस लौट जाओ। इस बात को सुनकर अनिच्छा रहते हुए भी सभी सिख लौट गये।

दिल्ली यात्रा

पजाब को पार करके सबसे पहले गुरुजी कुरुक्षेत्र पहुँचे। यहाँ पर आपने डेरे लगाकर विश्राम किया। सिख इतिहासकारों यहाँ एक चमत्कारिक कथा का उल्लेख किया है वह इस प्रकार लिखी गई है —

"गुरुजी के राजसी ठाठबाट को देखकर लालजी नाम का एक पंडित कुढ कर कहने लगा, भगवान कृष्ण ने तो गीता बनाई थी। हम तो जब तुम्हारे गुरु को हरिकृष्ण समझे जब गीता के श्लोकों का अर्थ कर दे। गुरुजी ने जब यह बात सुनी तो उस पंडित को अपने पास बुलाया और कहा हम तो क्या। एक गँवार से अर्थ कराये देते हैं। चुनाचे आपने छज्जू नाम के देहाती लड़के से गीता के श्लोकों का अर्थ करा दिया। इस करामात को देख कर लालजी उसी समय गुरुजी का भक्त हो गया।"

कुरुक्षेत्र में और लोगों ने भी आकर गुरुजी के दर्शन किये और अपने को कृत्य कृत्य किया।

कुरुक्षेत्र से चल कर दिल्ली पहुँचने पर गुरु राजा जयसिंह जैपुर वाले की हवेली में ठहरे। दिल्ली की सगतों ने जब यह समाचार सुना तो उत्साह और प्रेम का उनमें दरिया उमड़ पड़ा। दल के दल गुरु जी के दर्शनों को आने लगे। गुरु जी के साथियों और गुरु जी के खान पान और रहने का सारा प्रबन्ध बादशाह की ओर से कर दिया गया।

राजा जैसिंह की रानी ने राजा से कहा कि हम गुरु जी के दर्शन करना चाहती हैं अत उन्हें भीतर लाइये। राजा ने रानियों की यह अभिलाषा गुरु जी के सामने अर्ज की। गुरु जी राजी हो गये। उधर बडी रानी ने छोटी रानियों को भी खबर देदी। वह भी सजधज कर आगईं किन्तु पटरानी ने अपने कपडे तो एक गोली (दासी) को पहना दिये और खुद दासी के कपडे पहन लिये किन्तु जब गुरु जी महल में पहुँचे तो अपनी छडी से एक-एक को छूकर कहते, यह भी नहीं, यह भी नहीं, इस तरह सादा वेश वाली पटरानी की गोद में ही जा बैठे। रानी खुशी से प्रफुलित हो गई। और गुरु जी के चरण चूमने लगी। सब रानी और दासियाँ कहने लगी आखिर तो गुरु जी सर्वज्ञ हैं। कहते हैं राजा जैसिंह के कोई सतान नहीं होती थी गुरु जी की कृपा से पटरानी के सतान हुई और उसे सेवा करने का फल मिला।

राजा जैसिंह गुरु जी की सर्वज्ञता और विद्वता तथा सरल स्वभाव की बादशाह से खूब तारीफ

किया करता था। अत. बादशाह ने अपने लड़के मुअज्जमशाह को कुछ मुसाहिबों के साथ गुरु जी के पास भेजा। शाहजादा बादशाह की दी हुई कुछ चीजे गुरु जी की भेट को भी लाया। किन्तु गुरु जी ने उनमे से एक सेली के सिवाय किसी भी चीज से हाथ नहीं लगाया। औरंगजेब ने भी वह सेली गुरु जी की परीक्षा के लिये ही भेजी थी, फिर सब लोग बाग की सैर करने गये वहाँ गुरु जी ने कुछ मेवे शहजादे को दिये। जिन्हें खाकर शाहजादा बडा प्रसन्न हुआ और आश्चर्य करने लगा कि उसने ऐसे मेवे तो अज तक नहीं खाये थे। बादशाह ने जब यह बाते सुनी तो उसे यकीन होगया कि गुरु जी करामाती हैं।

गुरु जी के दिल्ली में रहने से नगर वासी बडे प्रसन्न थे, उनको गुरु जी के आशीर्वादों से लाभ भी होता था।

होली का त्योहार गुरु जी का दिल्ली मे ही मना था। चैत भी आनन्द से बीत रहा था कि शुक्ल पक्ष की नौमी को उन्हे अचानक बुखार चढ आया। बुखार सादा न था। चेचक का बुखार था। माता जी घबरा गई। गुरु जी ने कहा घबराने की आवश्यकता नहीं है। वह तो होकर ही रहेगा, जो होना है। डेरे तम्बू जमुना किनारे ले चलने चाहिये।

दिल्ली के अच्छे से अच्छे वैद्य और हकीमों ने गुरु जी का इलाज किया गया किन्तु सफलता कुछ नहीं मिली। उन्होंने सब से स्पष्ट कहा, आप कोई इलाज न करे और न करायें वाहि गुरु जी की यही मर्जी है, संसार का हमारा काम खतम हो गया है। अब हमें निश्चित रूप से सचखड मे जाना है।

त्रियोदशी के दिन गुरु जी ने पॉच पैसे और नारियल मगा कर भाई बुड्ढे के पोते को सौंपते हुए कहा "बाबा बकाले" जिससे आपका भाव स्पष्टतया यह था कि आपके बाद होने वाले गुरु आपके पिता के चचा अर्थात् आपके बाबा (तेगबहादुर) बकाला नामी गाव में हैं।

माता किशनकौर वगैरह बहुत अधीर हो रही थीं। इसलिये गुरु जी ने उन्हे समझाया—"एक दिन सभी को वहा जाना होता है किसी को आगे किसी को पीछे। यहा तो मनुष्य अपनी उस ड्यूटी को पूरा करने आता है, जो उसके जिम्मे ईश्वर सौंपता है। काम पूरा हो चुका है। तुम वाहि गुरु मे अपना मन लगाओ। वही सबका सच्चा हितू है। सच्चा नाता तो उससे ही है। ये नाते तो सासारिक होने के कारण थोडे दिन तक ही निभते है" इस तरह के मनोहर और आध्यात्मिक उपदेशों को सुनकर माता किशनकौर को कुछ सतोष हुआ। रात भर कीर्तन होता रहा। रात के पिछले पहर मे गुरु जी ने 'वाहि गुरु का जप करते हुए, ससार छोड दिया।

दूसरे दिन सगतों ने बडी धूमधाम के साथ गुरु जी के पवित्र देह का सस्कार किया। माता जी जमात समेत कीरतपुर को चली आईं।[1]

गुरु हरिकिशन जी ने २ वर्ष तक गुरुआई की और कुल ७ वर्ष ८ महीने १८ दिन इस ससार मे रहे।[2]

दिल्ली मे आपका देहरा जमुना जी के किनारे बाला जी के नाम से मशहूर है।

संसार के महापुरुषों—अवतार और पैगम्बरों के इतिहास मे हम कहीं भी ऐसा नहीं पढते कि

१ राजा जयसिंह ने गुरु जी की समाधि भी बनवाई थी।

२. सवत् १७१८ के चैत महीने की १४ शुक्ला को ससार छोड गये।

इतनी अल्प आयु में किसी ने धार्मिक नेता के पद को ग्रहण किया हो। और अपने उपदेशों और चमत्कारों से लोगों को चकित किया हो।

सिख धर्म ऐसी ही अनेको विचित्रताओं से परिपूर्ण है। अनुशासन और नियंत्रण की जो नींव आरम्भ से ही सिखों के लिये गुरुओं डाली थी वह निरन्तर मजबूत होती गई। गुरुओं ने जो भी कुछ कह दिया सिखों ने उसे निभाया। फिर ससार मे चाहे कोई भी उनके खिलाफ रहा हो। बकाले का वावा बालक गुरु ने निश्चय कर दिया। अब भावी गुरु जी वही होंगे। यही बातसा रे सिख समाज ने मान ली। किसी ने कोई दलील न दी। सुनने और पढ़ने मे यह मामूली सी बाते है किन्तु जितना ही हम गौर से इन बातों पर विचार करेंगे उतना ही गुरुओं के महान प्रताप और उस तेज का पता चलेगा जो हर खास व आम को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था।

केवल ७ वर्ष का गुरु देहली मे जाय और राजा जैसिंह जैसे सफल संसारी लोग उसकी पूजा करे। औरंगजेब जैसा तास्सुबी बादशाह उनके प्रति प्रभावित हो, यह कम आश्चर्य की और मामूली बात नहीं है। तभी तो सिख लेखकों ने लिखा है —

"वह अत्यन्त सुन्दर, उदार, शात स्वरूप और तेजस्वी थे और जो कोई भी उनसे मिलने जाता था, वह प्रभावित हुये बिना नहीं रहता।"

एकादश अध्याय

गुरु तेगबहादुर जी और उनकी यश गाथा

गुरु हरिगोविन्दजी के पाच पुत्रहुये थे। गुरु दित्ता,अणीराय,अटलराय, सूरजमल और तेगवहादुर। तेगवहादुरजी का जन्म सम्वत्१६७८ वि०माघ सुदी २ को हुआ था। गुरु हरिकिशनजी के सचखड पयान के वाद यह समस्या खडी हुई कि गुरु कौनहो ? सिख धर्म मे जो रिवाजथा उनके अनुसार भावी गुरु का चुनाव वर्तमान गुरु करता था। अमृतसर से दिल्ली आज अवश्य ही २५–२६ घंटे का रास्ता है। पर उस समय सहज ही १५–१६ दिन लगते थे। इसलिये भावी गुरु को दिल्ली वुलाना तो एकदम मुश्किल था। क्योंकि गुरु हरिकिशन जी कुल पाच दिन तो वीमार ही रहे थे। उन्होने भावी गुरु की गैरहाजिरी मे ही घोपणा कर दी (गुरु तेगबहादुर जी रिस्ते मे गुरु हरिकिशन जी के पिता के चाचा होते थे) उन्होने शिष्टाचार के अनुसार उनका नाम न लेकर 'वावा वकाले' है। यह वाक्य कहे। वकाले मे उस समय गुरु वेश मे से सिवा श्री तेगवहादुर जी के दूसरा कोई रहता भी न था। अत उनके सिवा किसी दूसरे के लिये यह 'वकाले के वावा' शब्द लागू भी नहीं होता था किन्तु लालच वुरी वला है। करतारपुर से उठकर धीरमल भी वकाले जा बैठे और घोपित कर दिया कि गुरु मैं ही हूँ।'

जन्म और वालकाल

गुरु तेगवहादुर जी एकान्तवास को पसन्द करते थे। वह कोठरी मे बैठे जप मे लगे रहते। वहुत करते तो जगल मे निकल जाते, परमात्मा की भक्ति मे इतने तल्लीन रहते कि कभी २ तो प्रेम मग्न होकर रोने लग जाते और आखो से आसुओं की झडी लग जाती। दान-पुण्य मे उनकी रुचि ऐसी थी कि दीन दुखिया को कीमती से कीमती चीज देने मे भी कोई सकोच नहीं करते थे।

वकाले मे कई गुरुओं के पैदा होजाने से सिख बडे असमजस मे पड़े।

किन्तु न तो काठ की हाडी सदा काम देती है और न लाल कथरी मे छिपाने से छिपते है। आखिर एक चतुर सिख ने सच्चे गुरु को पहचान ही लिया। कहा जाता है कि लुकमान को यह पता चल गया कि अव मौत आने ही वाली है। उसने अपने जैसे एक दर्जन लुकमान बनाकर खड़े कर दिये। मौत बडे असमंजस मे पडी कि असली लुकमान इनमे कौनसा है। आखिर उसने भी वुद्धिमानी से काम लिया और वोली "जिस उस्ताद ने इन सवको वनाया है" उसकी जितनी भी प्रशसा कीजाय थोड़ी है किन्तु इनमे एक कसर रह ही गई। लुकमान वोल उठा वह क्या ? झट मौत ने उसका हाथ पकड़ लिया। ठीक इसी

प्रकार सिख व्यापारी मक्खनशाह ने वकाले मे से असली गुरु की खोज निकाला। वह पांच सौ मुहरें लेकर अपने देश से गुरु भेट के लिये चला था। जब वकाले मे आया तो उसे बाईस गुरु दिखाई दिये। बडा चकराया। वह किसके प्रति अपना मत्था नवावे,किसको इतनी भारी भेट दे और किससे मनोवांछित फल पावे। मोहरे उसे भेट अवश्य करनी थीं क्योंकि कठिन सकट के समय-जबकि उसका जहाज उथले जल मे अड गया था उसने यह मानता की थी कि यदि मेरा जहाज यहा से निकल गया तो अपने नफे का चौथाई अंश गुरुजी को भेट करूंगा। दैव योग से ऐसे जोर की हवा चली जिससे वह जहाज पानी की हिलौरों के वेग से चल निकला। उसे दो हजार का मुनाफा हुआ। उसमे से चौथाई पाच सौ मोहरे वह अपने घर नहीं रख सकता था। आखिर उसने अपनी बुद्धि का स्तेमाल किया। सिख गुरु अन्तर की जानने वाले और सर्वदर्शी होते हैं। यह उसका पक्का विश्वास था। इसलिये उसने उन गुरुओं मे से प्रत्येक को दो दो मुहरें देना शुरु किया क्योंकि वह समझता था कि इनमें जो असली गुरु होगा, वह मुझे पूछ ही बैठेगा कि जब यहाँ से तू पाच सौ देने के लिये लाया है। तो यहाँ दो क्यों देता है? किन्तु इन बाईस मे से किसी ने भी उससे यह बात नहीं कही,तब उसे पूर्ण रूप से निश्चय हो गया कि इनमे तो कोई सिखो का असली गुरु नहीं है। तब उसने वकाले के लोगों से पूछा कि क्या सोढ़वंश का यहाँ और आदमी रहता है। एक बुढिया ने जवाब दिया। गुरु हरगोविंद जी का पुत्र तेगबहादुर यहीं रहता है परन्तु वह किसी छल पपच मे नहीं, एकान्त मे बैठकर हरि भजन करता है। मक्खनशाह तुरन्त गुरु तेगबहादुर जी के घर मे घुस गया। जहाँ देखा कि शात स्वरूप गुरु जी हरिनाम का जप कर रहे हैं। समाधि खुली तो मक्खनशाह ने दो मुहरे निकाल कर उनके सामने रक्खीं। गुरु जी ने कहा, भाई वैसे हमे कोई लोभ नहीं है किन्तु तैंने सकल्प तो पाच सौ मुहरे भेंट करने का किया था। बाकी वापिस क्यो लेजाना चाहता है। इस बातको सुनते ही मक्खनशाह पैरों मे गिर पडा। और कोठे पर चढकर ऊँची आवज से पुकारना शुरु कर दिया, 'गुरु लाधोरे' अर्थात् मैंने गुरु को ढूंढ पाया है। श्रद्धालु सिख दर्शनों के लिये उमड पडे। इतने मे दिल्ली से माता किशनकौर भी आगयीं, जिन्होंने गुरुआई के पाच पैसे और नारियल तेगबहादुर को भेंट कर दिया।

अब बाईस गुरु किस विरते पर ठहरते, सभी अपने विस्तर बाध कर वकाले से टरक गये। किन्तु धीरमल के एक सलाहकार ने कहा, हमारे पास आदमी हैं और हम उस सब माल को गुरु तेगबहादुर से लूट लेना ठीक समझते है, जो इन्हे इन दिनों मे सिखो ने भेंट और चढावे मे दिया है। धीरमल भी राजी हो गया। अत उसके आदमियों ने गुरु जी के पास से सब माया लूट ली और गुरु जी पर बन्दूक का फायर भी किया किन्तु गोली गुरु जी के मस्तक से छूती हुई खाली गई। जब सिख लोगों ने सुना तो मक्खनशाह के नेतृत्व मे धीरमल के घर पर धावा कर दिया और लूटे हुए समस्त माल को वापिस ले आये। साथ ही ग्रन्थ साहब को भी ले आये। धीरमल ने ग्रथ साहब गुरु हरिगोविन्द जी के बार-बार मागने पर भी नहीं दिया था। जब यह सब चीजे गुरु तेगबहादुर जी के पास आई तो उन्होने सबकी सब फिर से धीरमल के ही पास यह कह कर पहुँचवा दीं कि हमे इनसे कोई मोह नहीं है।

अमृतसर की यात्रा

सेठ मक्खनशाह ने एक दिन गुरु जी के सामने प्रार्थना की महाराज, मैं अमृतसर जाने की साच रहा हूँ। गुरु जी ने कहा एक अच्छे से घोडे का प्रबन्ध हो जाय तो साथ ही साथ चले। मक्खनशाह को इससे ज्यादा क्या चाहिए था। गुरु जी के साथ यात्रा होगी। उसने एक घोडे का प्रबन्ध करा दिया।

जिस अमृतसर को गुरु अमरदासजी और रामदासजी से लेकर गुरु अर्जुनदेवजी ने इतना महत्व पूर्ण और वैकुण्ठपुरी जैसा स्थान बनाया था। जो हरि मन्दिर सभी लोगों के पूजा पाठ और दर्शनों के लिये स्थापित किया था। जहा गुरु हरिगोविन्द ने अकाल तख्त स्थापित किया था। यह कितने आश्चर्य की बात है कि उन्हीं गुरुओं के स्थानापन्न गुरु तेगबहादुर जी के लिये उसके द्वार बन्द कर दिये गये। मानो उनका कोई अधिकार नहीं है। पुजारी और मुल्ला थोडे ही दिनों के अधिकार के बाद धर्म स्थानों को अपनी बपौती समझने लग जाते हैं। यही बात अमृतसर हरि मन्दिर के पुजारियों ने भी की। उन्होंने गुरु जी को आता देख मन्दिर के ताले लगा दिये वे समझते थे कि यदि गुरु जी को स्थान दिया गया तो हमारी स्वच्छन्दता और एकाधिकार में अवश्य बाधा पडेगी। गुरु जी इस बात को पी गये और अमृतसर को छोड कर बल्ला नामक गॉव मे चले गये। यहा उनकी स्मृति में गुरुद्वारा स्थापित है।

गुरु जी का जाना सुनकर पुजारी लोग मन्दिर में आ गये। स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर मक्खन शाह जब मन्दिर में प्रसाद चढाने गया तो उसने पुजारियों को खूब डाटा और उनसे कहा मूर्खो, जिन गुरुओं के लिये राईसों के सिर झुकते हैं। जो संसार के परोपकार के लिये ईश्वर ने पैदा किये हैं। उन्हे देखकर तुम मन्दिर के ताले लगाते हो, उनके पास घाटा क्या है, जो वे तुम्हारे अधिकारों को छीनेंगे। हां अगर तुम्हारी यही गति रही तो एक दिन तुम लोगों को अपने किये का फल भुगतना पड़ेगा।

मक्खनशाह के गुरु जी के पास आ जाने पर रातभर तो गुरु जी वहीं रहे सवेरे दोनों साथ ही साथ बकाले लौट आये।

बकाले में कुछ दिन रहने के बाद मक्खनशाह ने गुरुजी से विदा होने की इजाजत मागी। गुरुजी ने कहा अच्छा हमारी भी इच्छा है कि कुछ समय के लिये यात्रा को बाहर चलें।

दूसरी यात्रा

सिख इतिहास ग्रन्थ में इस स्थान पर गुरुजी के एक चमत्कार का वर्णन है और वह यह कि जब व्यास को पार हुए तो उन्होंने एक सिख के सिर पर ग्रंथ देखा, उन्होंने उससे पूछा यह क्या है। उस सिख ने बताया कि महाराज यह ग्रथ साहब है। धीरमल के मकान की लूट के समय ग्रंथ साहब भी आगये थे। आपकी आज्ञा से बाकी चीजे तो लौटा दी गई किन्तु ग्रथ साहब अपने पास ही रख लिये। गुरुजी ने कहा धीरमल तो बडा दुखी होगा। उसने तो अपने पितामह के कहने से भी ग्रथ साहब को नहीं दिया था। उसके संतोष और प्रसन्नता के लिए यह जरूरी है कि आप मे से कोई जाकर ग्रथ साहब को उसी को दे आओ किन्तु कोई भी सिख धीरमल के पास नहीं जाना चाहता था। अत. एक ऐसे आदमी के हाथ जो करतारपुर को जा रहा था गुरुजी ने धीरमल के पास यह संदेश भेजा कि हम ग्रंथ साहब को व्यास नदी के सुपुर्द किये जाते हैं। तुम आकर यहां से ले जाना। सुन्दर वस्त्रों में लपेट कर गुरुजी ग्रंथ साहब को व्यास के किनारे एक स्थान पर रख आगे बढ़ गये। संदेश वाहक ने जब यह सन्देश धीरमल को सुनाया तो वह दरिया पर आने को तैयार होने लगा किन्तु उसके एक मुँह लगे मसंद सोहॉ ने यह कह कर उसे रोक दिया। तेगबहादुर ने तुम्हारे साथ एक मजाक किया है और तुम उसे सच मानते हो धीरमल रुक गया और इसी तरह कई दिन इरादा करके रुकता रहा, एक दिन नदिया किनारे आ ही गया। और तलाश करने पर उसे गुरु जी के बताये स्थान मे ग्रन्थ साहब मिल गये।

व्यासा को पार करके गुरुजी कीरतपुर पहुचे। जहा माता किशनकौर जी सूरजमल जी के पास रहती थीं। माता किशनकौर ने गुरुओं के वस्त्र और शस्त्र जो उनके पास थे गुरु जी की भेंट कर दिये। यहां कुछ दिन गुरु जी रहे तो सही किन्तु उनकी तबीयत नहीं लगी।

अत उन्होंने कीरतपुर से छ मील के फासले पर नैनादेवी पहाडी के पास राजा विलासपुर से जमीन खरीदी और वहीं पर एक नगर आनन्दपुर के नाम से वसाया।

जब सिखों ने सुना कि गुरु तेगवहादुर जी ने आनन्दपुर नाम का एक भव्य नगर वसा लिया है और अब स्थिर रूप से वहीं रहते है तो देश के चारों कोनों से सगते उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिये आने लगीं।

किन्तु अन्य सोढियों का यह वात वहुत वुरी लगती थी। धीरमल और सूरजमल सभी उनके खिलाफ थे। अपनी कोई भी पेश न चलती देखकर इन्होंने दिल्ली मे रामराय से वादशाह के पास शिकायत कराने की योजना की।

इसके वाद गुरुजी ने उपदेशार्थ यात्रा आरम्भ की। पहिला मुकाम उन्हे आनन्दपुर से केवल दो कोस के ही फासिले पर करना पड़ा। क्योंकि दिल्ली की ओर से दो संगते आई थीं। वे करतारपुर होकर गुरुजी के दर्शनों को आ रही थीं। संगतों के आने पर गुरुजी ने उन्हे उपदेश दिया। सगत ने भी भेट पूजा मे वहुत सी माया गुरुजी के अर्पण की। यहाँ से आप मालवे देश मे उतरे। मालवा के धनोली गाँव मे उतर कर वहाँ के लोगों को उपदेश दिया और दर्शनार्थी लोगों को कृतार्थ किया। यहा से अनेकों गाँवों और नगरों को पार करते हुए, मूलेवाल मे पहुँचे जहां गेदे ने उनको रसद का सामान देकर अपनी भक्ति प्रकट की किन्तु पानी का प्रवन्ध पूछा तो उसने कहा गुरुजी पानी तो वहुत दूर से आता है। यह सुनकर उन्होंने पास ही के खारे कुएँ के लिये कहा, जाओ इसमे से लाओ मीठा है। वास्तव मे पानी मीठा निकला यहाँ पर सन् १८८७ मे पटियाला के महाराज कर्मसिंह जी ने एक गुरुद्वारा वनवा दिया था। लिखा हुआ है कि शेखा गाँव में मलूका चौधरी ने गुरुजी की आवभगत नहीं की वह लोगों को कष्ट भी देता था। सारे गाँव ने गुरु जी के आगे उसकी फरियाद की। वुरे लोग अपनी करनी का फल पाते हैं गुरु जी का यह वचन आगे जाकर सत्य ही हुआ।

जब हठिआल गाँव मे पहुँचे तो पता चला यहा बड़े जोर का एक विशेप प्रकार का वुखार फैला हुआ है। गुरुजी ने देखा एक आदमी वुखार से पीडित जमीन पर पडा हुआ है, कभी चिल्लाता है कभी उठ वैठता है। गुरुजी ने कहा अगर इस मनुष्य को इस पास वाले गड्ढे मे स्नान कराया जाय तो चंगा हो सकता है। वह मनुष्य स्नान करते ही ठीक हो गया, और दूसरे लोगों को भी गरुजी ने इजाजत दे दी, जो भी वुखार का मारा चाहे इसमें नहाकर चगा होले। अनेकों मनुष्य ठीक हो गये। उस गड्ढे के स्थान पर आजकल वहां तालाव वना हुआ है। यहा से भूपाली, खीवा, आदि गाँवों से होते भिक्की गाँव में पहुँचे। वहां पर चहल गोत का देशराज नाम का एक जाट जमीदार था। वह एक मुसलमान फकीर का भक्त था। जव वह गुरुजी की सेवा मे हाजिर हुआ तो गुरुजी उसे उपदेश देकर ठीक रास्ते पर ले आये और उसे पान्च तीर इसलिये दिये कि इनसे तेरी दूर-दूर तक प्रभुता फैल जायगी। जितने दिन भी गुरुजी वहां रहे देशराज ने उनका स्वागत सत्कार किया। यहा से विदा होकर कुछ दिन खदाले गांव में रहकर एक ब्राह्मण को उपदेश दिया और उसी के घर निवास भी किया।

दमदमा पिंड में जाकर एक वाड़े के अन्दर गुरुजी एक जाटी के पेड़ के नीचे ठहरे। गाँव के लोगों का विश्वास था कि इस पेड पर पिशाच रहता है इसलिये उन्होंने गुरुजी को रोका भी किन्तु उन्होंने कहा—आप चिन्ता न करे अव यहाँ से पिशाच भाग जायगा। दूसरे दिन लोगों ने देखा पिशाच

तो गुरु जी का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका तो लोग उनसे प्रभावित हुये। दमदमे से एक दो गॉव मे घूम फिर कर फिर गुरु जी उस गाव में पहुँचे जो सूलीसर कहलाता है। सिख इतिहासों मे लिखा है कि एक चोर ने जो गुरु जी के घोड़े को चुरा कर चल दिया था और आधी दूर जाकर ही अंधा हो जाने के कारण पकड़ा गया था। यहां समीप वृक्ष पर से कूद कर मर गया उसने अपने अपराध का प्रायश्चित्त इसी मे समझा था। तभी से इस गांव का नाम सूलीसर हो गया है।

चतुर्मास गुरु जी ने वडे गाव मे जाकर व्यतीत किया। यहा दूर-दूर से आकर सिख लोग आपके दर्शन करके लाभ उठाते रहे। यह गाव निचान जमीन मे था जहा बरसात मे पानी भर जाता था अत उन लोगों को गुरु जी ने ऐसे स्थान पर मकान बनाने की आज्ञा दी जो ऊँचे पर हो। जहा से पानी बह जाया करे। लोगों ने उनकी आज्ञा को सिर माथे रक्खा। इससे पता चलता है कि गुरु जी लोगों के स्वास्थ्य और सफाई की ओर भी काफी अधिक ध्यान रखते थे।

कई छोटे मोटे गावों मे उपदेश करते हुए गुरुजी धमधान नगर में पहुचे। गुरुजी के साथ मीहा नाम का एक महंत लडका था। लगर का वही इतजाम करता था। बड़ा परिश्रमी था। एक दफा उसका सिर गागर से छिल गया। जिसमे जख्म हो गया। किन्तु वह बराबर पानी लाता रहा, अपने कष्ट की किसी से चर्चा तक नहीं की। एक दिन माता जी ने उसको इस कष्ट मे देख लिया उन्हे मीहा पर बडी दया आई। और कहने लगी तुझे अवश्य ही इस कठिन सेवा का फल मिलेगा। माता जी ने गुरु को सब हाल सुनाया। मीहा की इस हालत मे सेवा करने की लगन से गुरु जी बहुत खुश हुए और उसे अपने पास का दक्षिणी बैल एक नगाड़ा और एक झडा देकर धर्म प्रचार का काम सौंप दिया। मीहा इस बात से बडा प्रसन्न हुआ और वह देश देशान्तर मे सिख धर्म का प्रचार करने लगा।

धमधान से चलकर गुरु जी सरस्वती को पार करके कुरुक्षेत्र में पहुचे। यहां एक बढ़ई सिख था उसी के घर पर गुरुजी ठहरे। दूसरे दिन यहा से उस सिख को साथ लेकर कैथल मे पहुचे। उसके रिश्तेदार सिख के घर पर ठहरे। वहा दो सिख और थे उन्होंने दर्शन करके अपने भाग्य को सराहा और जो रुपया धर्मादे मे इकट्ठा कर रक्खा था गुरुजी की भेट कर दिया। कैथल गुरुद्वारा उसी बढ़ई के स्थान पर है। जहाँ गुरु जी ठहरे थे। कैथल से चलकर बारने गाव मे एक जाट सिख के घर ठहरे। चलते समय गुरु जी ने उस जाट को तमाकू पीना छोडने का भी उपदेश दिया।

इन्हीं दिनों सूर्य्य ग्रहण का मेला आ पडा, इसलिये गुरुजी फिर कुरुक्षेत्र मे आये। यहा पर अनेकों साधु संतों से आपकी ज्ञान चर्चा हुई और मेले मे आये हुए सैकडों सिखों ने आपके दर्शन किये। आपने भी गरीब लोगों को द्रव्य देकर सतुष्ट किया।

कुरुक्षेत्र से गुरु जी अपने दल बल समेत बदरपुर पहुँचे। यहा पर भी बहुत से श्रद्धालु लोग आपके दर्शनों के लिये आये और उन्होंने बहुत सा धन भेट मे दिया। गुरु जी ने यह सब वहा के एक जमींदार को बदरपुर मे एक कुआँ और बाग लगवा देने के लिये दे दिया। आगे चलकर यहा गुरुद्वारा भी बन गया।

गुरु जी के साथ कुरुक्षेत्र से सत लोगो की भीड़ बढ़ गई थी। इसलिये अब वे शिष्यों के घरों पर ठहरने की बजाय गाव के बाहर ठहरते। बदरपुर से पानीपत करनाल के जिलों से गुजरते हुए और बीच मे अनेकों गावों मे प्रचार करते हुए मथुरा में पहुचे। आज जहा गुरुद्वारा बना हुआ है। उस स्थान पर ठहरे। यहाँ जमुना मे स्नान किया और उन स्थानों को देखा जहां कृष्ण जी ने बाल-लीलायें की

थीं। मथुरा से पूर्व देश के लिये रास्ता आगरा होकर ही ठीक रहता है अत. गुरु जी आगरे मे पहुचे और माईथान मे ठहरे जहा कि आज गुरुद्वारा बना हुआ है। किसी समय यहाँ गुरु नानक देव जी भी ठहरे थे। वहां से जमुना पार करके गुरु जी पूर्व देश की ओर मुड पड़े। पूर्व मे गुरु नानकदेव जी के बहुत से लोग भक्त थे किन्तु वे सुदूर पजाब मे अपने गुरुओं के दर्शन के लिये नहीं जा सकते थे। अतः गुरु जी को यहाँ गॉव २ में लोग ठहराने लगे। उस देश मे गुरु जी के आगमन की चर्चा फैल जाने से पहिले से ही लोग उनके स्वागत की तैयारी में लग पड़ते। नगरों को सजाते थे अपने मकानों को साफ सुथरे करते थे। इस तरह से सब को सतुष्ट करते हुए गुरु जी प्रयाग मे पहुचे। वहाँ अपने ब्राह्मण भक्तों के प्रेम से उनके मुहल्ले अहियापुर मे जाकर ठहरे। अब आगे के लोगों ने उनके आगमन की चर्चा सुनी तो गरीब अमीर और राजा रईस सभी उनके दर्शनों को आये।

यहाँ के गुरुद्वारों मे निर्मले संत सेवा करते है। प्रयाग से गुरु जी मिरजापुर देखते हुए चुनार मे पहुचे जहाँ कि गुरु नानकदेव जी का एक स्थान बना हुआ है। अररोहा पहुंच कर गुरु जी ने भेंट और चढ़ावे आये हुए रुपयों से एक बाग लगवा दिया। यहां से चलकर काशी पहुँचे। वहाँ उस स्थान पर निवास किया जो कचौड़ी गली के नाम से मशहूर है। जहाँ पर कि गुरुद्वारा भी बना हुआ है यहाँ पर काशी के बडे २ विद्वान पडित और सन्यासी गुरु जी से ज्ञान चर्चा करने के लिये आये। जिन सब को ही गुरु जी ने अपने मनोहर संभाषण और आध्यात्मिक अमृत चर्चा से संतुष्ट किया। भाई गुरुदास जी यहाँ काशी मे रह रहे थे और उन्होंने रामनगर के राजा को भी धर्म शिक्षा दी थी। वह गुरु जी के दर्शनों को आया और बहुत सा धन भेंट किया तथा अपनी आत्मा को गुरु उपदेश से लभान्वित किया। जौनपुर वालों को जब पता चला तो वहाँ से भी भाई गुरुबख्शजी के नेतृत्व में सिख संगत आई। गुरुजी ने गुरुबख्श को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे घर मे एक भक्त पुत्र होगा।

काशी से प्रस्थान करके गुरु जी मुकाम करते हुए सहसराम मे पहुंचे। यहां पर चाचा फग्गू नाम का अगहरी सिख निवास करता था। उसके दिल मे गुरु दर्शन को प्रबल इच्छा थी किन्तु स्कूल कार्य होने के कारण कहीं आ जा नहीं सकता था। वह गुरु दर्शन के लिये यहां तक उत्सुक था कि अपने छोटे से घर का ऊँचा दरवाजा केवल इस उद्देश्य से बनवाया था कि गुरु जी उसमे घोड़े समेत घुस जावे। उन्हें बाहर उतरने का कष्ट न हो। गुरु जी फग्गू के घर राजसी वेश मे गये थे। अत उनको अस्त्र शस्त्र से सज्जित देखकर पहचान न सका। जब गुरु जी ने कहा कि फग्गू मैं वही तो हूँ जिसे अपने घर बुलाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा ली थी। गुरु जी का आना देखकर फग्गू हर्ष के मारे फूलने लगा। नगर मे जब वह समाचार फैला तो प्रेमी लोग दल के दल बाधकर गुरु जी के परम उपदेश सुनने के लिये आने लगे।

स्त्रियों के दल माता नानकी जीं, गुरु पत्नी गूजरी के चरनों को छूकर और उनसे उपदेश ग्रहण करके अपने भाग्य को सराहने लगीं।

यहाँ से सब लोगों से विदा लेकर बिहार की ओर चल दिये। विहार मे उन्हे सबसे पहिले गया का तीर्थ देखना था। अत उधर ही को प्रस्थान किया। जब गया मे पहुँचे तो वहाँ कई दिन उन्होंने सत्य-धर्म के उपदेश किये।

गया से चल कर गुरु जी पटने पहुँचे और भाई तेजा के घर ठहरे। यह हलवाई था और गुरु नानकदेव जी का अनुयायी था। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह कभी भी गंगा पर स्नान करने नहीं जाता था। इससे लोग समझने लगे थे कि तेजा कभी स्नान करता ही नहीं है। एक दूसरे सिख ने

एक दिन जेता से पूछा, क्या तुम सचमुच ही स्नान नहीं करते हो ? जेता ने उत्तर दिया मेरे घर पर ठहर कर देखो मैं क्या करता हूँ। उस सिख ने देखा जेता बहुत तड़के उठता है। शौच से निवृत होकर दातुन करता है और फिर स्नान करता है और गुरु नानकदेव जी की वाणियों का पाठ करता है। वह सिख जेता की इस प्रकार की धार्मिक निष्ठा को देखकर चकित रह गया।

जेता ने जब सुना कि उसको दर्शन देने के लिये गुरु तेगबहादुर जी आ रहे हैं तो दूकान के काम को छोड़कर उनकी अगवानी के लिये दौड़ा गया और पास पहुँच कर पैरों से लिपट गया।

सत्संगियों की भीड़ यहा गुरु जी के दर्शनों को आने लगी इसलिये गुरु जी ने गायघाट के जेता के मकान में डेरा लगाये किन्तु दिन पर दिन दर्शनार्थियों की संख्या बढती ही जाती थी अत उनके एक भक्त ने बेगमपुर का विशाल मकान रहने को दे दिया गुरु जी मय परिवार के उसी में रहने लगे।

यहा से आगे बढ़ने का ख्याल कर रहे थे कि जयपुर के राजा बिशनसिंह का आदमी गुरु जी की सेवा मे हाजिर होकर कहने लगा, हमारे महाराज कामरूप देश पर चढ़ाई करने जा रहे हैं। किन्तु वे इधर ही से आपके दर्शन करते हुए जावेंगे। उन्हे आपके दर्शनों की बड़ी ही लालसा है। गुरु जी ने अपना जाना राजा के आने तक के लिये स्थगित कर दिया।

ग्यारहवे दिन राजा बिशनसिंह पटना मे पहुँचा और अपने लश्कर के डेरे तम्बू शहर से बाहर लगवा कर शाम को गुरु जी की सेवा में हाजिर हुआ। दर्शन करके गुरु जी के चरणों में पड़ गया। गुरु जी ने उसे हाथ पकड़ के उठाते हुए आशीर्वाद दिया कि वाहि गुरु तेरी कामना सिद्ध करेंगे।

गुरु जी चूंकि यात्रा पर जाने ही वाले थे अत राजा के साथ हो लिये।

माता जी और अपनी धर्मपत्नी जी को अपने लौटने के समय तक के लिये वहीं रहने दिया।

गुरु जी शाही लश्कर के साथ अवश्य चल रहे थे—किन्तु रास्ते मे ठहरते थे सिख[1] लोगों के घर पर ही। रास्ते में मुंगेर के सिक्खों से मिले और उन्हे उपदेश दिया। राजमहल के सिख उनके दर्शनों से वंचित रह गये क्योंकि वे भेंट पूजा के लिये इकट्ठा करने में ही लगे रहे, तब तक गुरु जी आगे निकल गये। मालदह पहुँचने पर वहा सिक्खों की बनाई हुई धर्मशाला मे ठहरे किन्तु उस दिन मालदह से दूर कहीं मेला था। सारे सिख भी वहीं गये थे। गुरु जी ने यह समाचार सुना तो उन्होंने कहा, वे लोग काहे के सिक्ख हैं जो व्यर्थ के मेले तमाशों मे अपना समय बर्बाद करते है। एक हलवाई मेले जाने से रह गया था वह गुरु जी की सेवा में हाजिर हुआ।

ब्रह्मपुत्र के तट पर पहुचने पर गुरु जी ने राजा बिशनसिंह से कहा आपका लश्कर तो इसी किनारे पर चलेगा किन्तु हम उस पर जाकर अपने कुछ प्रेमियों को मिल आवे। ब्रह्मपुत्र को पार करके गुरु जी ढाके मे पहुँचे। यहा पर बुलाकीदास नाम का उनका एक ससम्न्द रहता था। उसकी बूढ़ी मा भी बड़ी भगतिन थी। उसे यकीन था कि एक दिन गुरु जी अवश्य ही यहां आ कर मुझे दर्शन देगे, इसलिये उसने स्वयम् कात कर बढ़िया पोशाक गुरु जी के लिये तैयार कर रक्खी थी। जब गुरु जी उसके घर पहुँचे तो वह बड़ी प्रसन्न हुई, बुलाकीदास कहीं बाहर था, जब उसे गुरु जी आने का समाचार मिला तो संगत इकट्ठी कर के वह गुरु जी की सेवा से हाजिर हुआ। गुरु जी ने सब लोगों को उपदेश देते हुए कहा, भाई हमारी इच्छा है कि यहा पर तुम एक धर्मशाला बनाओ और उसमे इकट्ठे होकर

१ उस समय सिख के मानी केवल गुरु नानक जी के उपदेशो में श्रद्धा रखने वाला ही के थे।

धर्म चर्चा करते रहा करो। गुरु-पर्वों पर खासतौर पर एकत्र होकर हरि-कीर्तन और धर्म-प्रचार किया करो।

ढाके मे नव्वा नाम का एक उदासी सत रहता था। वह बात बात मे सिखों को गाली देता था सगत ने गुरु जी से उसकी शिकायत की। गुरु जी ने नव्वा को बुलवाया। वह नमस्कार करके गुरु जी के पास बैठ गया, गुरु जी ने उससे पूछा भाई नव्वा तुम इन लोगों को गाली क्यों दिया करते हो। नव्वा ने कहा "महाराज ये लोग तो झूठा है मैंने तो इन्हे कभी गाली नहीं दी। सगत ने कहा देखिये महाराज सरासर तो हमे झूठा कह रहा है फिर कहता है गाली नहीं दी। गुरु जी ने कहा भाई यह तुम्हे ईर्षा द्वेष से गाली नहीं देता। इसकी तो आदत ही गन्दी बन गई है तुम इसे प्रेम से जीतो और सहज-सहज आदत भी छुडादो। इस तरह से गुरु जी सब को उचित सलाह और उपदेश कर संतुष्ट करते रहे। कई दिन के बाद आगे को चल पडे। यहा जिस स्थान पर गुरु जी ठहरे थे वह स्थान सगत टीला के नाम से मशहूर है।

ढाके से चल कर गुरु जी नारायनगज आये और वहा से जहाज पर सवार होकर चटगाव मे पहुँचे जहा गुरु नानकदेव जी का स्थान बना हुआ था। वहा पर ठहरे। यहा सिख लोगो ने गुरु जी को श्रद्धानुसार भेंट दी और कई दिन तक आदेश सुना। चटगाव जिले मे ही बडवा कुण्ड और सीता कुण्ड नाम के दो तीर्थ है। गुरु जी ने उनको भी देखा। और वहीं से जहाज मे सवार होकर कलकत्ते को रवाना हो गये।

कलकत्ता उस समय इतना बडा शहर न था एक मामूली गाव था और कालीकुट्ट कहलाता था। यहा पर गुरु नानकदेव जी भी अपनी यात्रा के समय आये थे, यहां अब वह स्थान जहा पर गुरु लोग ठहरे थे हरिसनरोड के गुरुद्वारे के नाम से मशहूर है।

शाही सेना इस समय तक धोवडी मे आपहुची थी, इसलिये गुरु जी कलकत्ते से ग्वाराना घाट होते हुये धोवडी मे पहुचे। गुरु जी के प्रयत्न से जब राजा विशनसिंह को इस जग मे काफी सफलता हुई और दोनो मे संधि होगई। तो उसने गुरु जी से विनती की कि महाराज इस समय मुझे कोई सेवा फर्माइये। आपने और तो कुछ न कहा किन्तु गुरु नानक जी के पुरातन स्थान पर के थडे को जरा ऊँचा कर देने की इच्छा प्रकट की। इसपर राजा के सिपाहियों ने मिट्टी की ढालें भर भर कर उस स्थान पर डालीं। जिससे वह थडा स्वत ही काफी ऊँचा होगया और अबतक गुरु जी की याद मे कायम है।

दोनो राजाओ मे सुलह हो जाने पर कामरुप के राजा ने गुरु जी को अपने महलों मे आमंत्रित किया। राजा ने गुरु जी को बहुमूल्य चीजे भेट कीं।

विदा करते समय कामरुप के राजा ने गुरु जी से प्रार्थना की, महाराज अपनी स्मृति के लिए हमे कोई चिह्न दे जाने की कृपा कीजिए। गुरु जी ने कमान पर चढाकर एक तीर सामने के वृक्ष मे मारा जिसका एक सिरा उधर पार हो गया एक इधर रह गया। गुरु जी ने कहा यही हमारा चिह्न है।

आसाम मे गौरीपुर एक छोटी सी रियासत और थी। उस समय वहा पर राजाराम नाम का राजा राज करता था, जब उसने सुना कि इस देश मे गुरु नानकदेव जी के उत्तराधिकारी गुरु तेगबहादुर जी पधारे हुए है तो वह सब रानी के गुरु जी के दर्शनो के लिये आया। उस राजा के कोई पुत्र न था राजा की इच्छा तो थी कि गुरु जी से आशीर्वाद प्राप्त करे किन्तु वह कुछ कहने मे सकुचाता था। गुरु जी ने उसके हाव भाव से उसकी मनोइच्छा को जान लिया और उन्होंने कहा जो तुम लोगों के दिलों में

गुरु नानकदेव जी के प्रति श्रद्धा है और जो तुम्हारी इच्छा है अवश्य ही पूर्ण होगी। राजा रानी इस आशीर्वाद से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने गुरु जी से प्रार्थना की, आप हमारे भी घर को चलकर पवित्र करें किन्तु गुरु जी ने उनसे कहा, हमें इस समय पच्छिम की ओर जाना है।

गुरु जी पटना को वापिस होने की तैयारी कर रहे थे कि समाचार मिला आपके घर साहबजादे उत्पन्न हुए है। इस समाचार को सुनकर राजा भी बहुत प्रसन्न हुआ। बोवडी से चलकर राजा और गुरु जी पटने मे आये। रात को शहर के बाहर ही राजा बिशनसिंह के डेरों मे ही गुरु जी ठहर रहे। दूसरे दिन गुरु जी सब राजा साहब के अपने घर पहुँचे। सिख लोग उन्हे देखते ही चरनों में लोट गये, गुरु जी ने सब को आशीर्वाद दिया।

आनन्द की सेवा

इसी समय साहबजादे गोविन्दराय (सिंह नाम पीछे पडा) का मामा उन्हे गोद मे लेकर आ गया और गुरु जी के चरनों मे सुला दिया। गुरु जी ने गोद मे लेकर प्यार किया, राजा साहब ने भी गोद मे लिया और सोने के कडे उनकी भेंट किये।

इसके बाद राजा साहब ने गुरु जी से विदा मागी क्योंकि दिल्ली से निकले हुए उसे भी बहुत दिन हो चुके थे। गुरु जी ने उचित उपदेश और सिरोपाव देकर राजा साहब को विदा किया और आप कुछ दिन पटना मे ही रहकर शिष्य लोगों को उपदेशामृत पान कराते रहे।

देहातों में जब यह पता लगा कि गुरु जी लौट कर पटना आ गये हैं, तो देहातों की सगतें भी दर्शन और उपदेशों का आनन्द लेने के लिए उमड पडीं।

कितने ही महीने पटने में रह कर गुरु जी ने पजाब आने का इरादा किया। और दस बीस सेवकों के साथ पजाब को चल पडे। रास्ते मे काशी वगैरह जो भी शहर और गाव पडे उनमें उपदेश देते हुए कीरतपुर पहुँचे। वहाँ सूरजमल जी ने आपका सत्कार किया और अनेक दिनों के बाद मिलने पर हर्ष प्रकट किया। अपने यहाँ गोविन्दराय जी के जन्म का सवाद भी सुनाया। जिसे सुनकर सूरजमल जी ने गुरु जी को बधाई दी।

वापिसी

कीरतपुर में थोडा ही वास करके आनन्दपुर पहुँचे। वहाँ आपको देखकर लोग प्रसन्नता से हरे हो गये। जिसे देखो वही श्रद्धा के साथ गुरु जी के चरणों में लोटने लगा।

आठ वर्ष की उम्र तक गुरु तेगबहादुर जी के साहबजादे पटने में ही रहे। वहाँ उन्होंने हिन्दी और सस्कृत विद्या का खूब अध्ययन इस छोटी सी उम्र में ही कर लिया था। गुरु तेगबहादुर जी पटना से चल कर धीरे २ ही पजाब मे आये थे। यहा भी उन्होंने बहुत दिनों तक वातावरण को देखा और तब गोविन्दराय जी और परिवार के लोगों को बुलाया। उस समय तक गोविन्दराय जी जो आगे चलकर गुरु गोविन्दसिंह जी के नाम से मशहूर हुए, आठ वर्ष के हो चुके थे। जब वे आनन्दपुर गये तो यहा गुरु जी ने उन्हे घोडे पर चढ़ना शस्त्र चलाना आदि युद्ध विद्या की सब बातें सिखा दीं।

आरम्भ में तो औरगजेब घरेलू झगडों में फंसा रहा अपने भाइयों का दमन किया। पिता को जेल मे डाला। कुछ देशों को को फतह कराया। इन कामों से फुरसत पाते ही वह अपने इस्लाम को फैलाने की ओर अग्रसर हुआ। उसने अपने मुसलमान सूबेदारों को इस आशय की सूचना दी "मैं चाहता हू कि सारा हिन्दुस्तान उसी मजहब के झडे के नीचे आ जावे, जो अरब की पवित्र भूमि में पैदा हुआ है और जिसने अपने जाहोजलालसे ससारको चकाचौंध कर रक्खा है। हिन्दुओंको मुसलमान बनाने के लिये साम, दाम, भय और दड जितने भी तरीके हैं काम मे लाना चाहिए। मैं इसे महान पवित्र काम समझता हूँ।"

जब बादशाह ही ऐसा करने को तैयार था तो उसके सूबेदार, नाजिमों की तो बात ही क्या थी। सारे देश मे जोर जुलम का राज्य कायम हो गया। चारों ओर मजहब की विषम ज्वाला धधक उठी। हिन्दुओं मे हा-हा-कार मच गया। चोटी और जनेऊ की रक्षा मे लाखों सिर धड़ मे अलग होने लगे। स्त्री और बच्चे भी इस प्रचड दावानल से न बचे। उन्हे भी मौत और इस्लाम का निमत्रण दिया जाने लगा। कन्याकुमारी से कश्मीर और गुजरात से आसाम तक यही गति हो गई।

काश्मीर के हाकिम ने भी अपने प्रात मे हिन्दुओं के साथ मुसलमान बनाने के लिये जोर जुलम जारी कर दिया। आरम्भ मे उसने छोटे २ देहातों मे हाथ साफ किया और फिर श्रीनगर मे वही अत्याचार शुरू किया, जो देहातों को मुसलमान बनाने मे अमल में लाया गया था। श्रीनगर प्राय: ब्राह्मणों की बस्ती थी। वे सभी घबरा गये। जब आग घर में लग जाती है, तब उससे बचना मुश्किल हो जाता है। उन्हे भी चाद तारे दिखाई देने लगे। बहुत कुछ सोचने पर उन्हे एक आशा की कोर आनन्दपुर की ओर दिखाई दी। सारे उत्तरी भारत मे गुरु तेगबहादुर ही ऐसे धन्य पुरुष थे, जिनके प्रभाव मे ज्यादा से ज्यादा समूह था। ब्राह्मणों ने काश्मीर के हाकिम से तो छ महीने का अवकाश मांगा और उनका एक प्रतिनिधि मडल आनन्दपुर की ओर चला।

कशमीरी ब्राह्मणों की पुकार

आनंदपुर मे उस स्वर्ग तुल्य नगरी मे आज भी सुख शाति की वर्षा हो रही थी। आज जहा सारा भारत भय और आतक की लपट से झुलसा जा रहा था। वहा आनंदपुर मे निर्भयता और प्रेम का राज्य हो रहा था। दरबार लग रहा था, हजारों सिख शाति के साथ बैठे हुए थे और एक सुन्दर तख्त पर बैठे हुए तत्कालीन भारत के राजऋषि श्री तेगबहादुर जी प्रवचन कर रहे थे। "अपनी आत्माओं को बलवान बनाओ। पापों से बचो। निर्भय बनो। एक परमपिता मे विश्वास रक्खो। ससार मे रहते हुए ससार की वस्तुओं से इतना मोह मत करो कि उनके लिये स्वाभिमान की भी रक्षा न करो। आपस मे कभी भी ईर्षा और द्वेष मत करो।" इसी समय काश्मीर के ब्राह्मणों का दल आया। सभा मे चुपचाप बैठ गये उन्हे अनुभव हुआ। हम उस जगह पर आ गए है, जहा भय और शोक को कोई स्थान नहीं है। उपदेश की समाप्ति पर ब्राह्मणो ने खड़े होकर कहा, हिन्दुओं के रक्षक और हम अनाथों के नाथ, हे सतगुरु हम काश्मीर के उन पीडित ब्राह्मणों के प्रतिनिधि है, जिन्हे राज का सूबेदार "मौत या इस्लाम" का निमत्रण दे चुका है। हमने खूब आख फाडकर भारत के प्रत्येक कोने की ओर देखा है, आज हमारा, हमारे धर्म का कोई भी रक्षक नहीं है। भगवन् हम आपकी शरण हैं, हमारी रक्षा कीजिये। हमें केवल छ महीने की मोहलत मिली है। सभा मे सन्नाटा हो गया। सब एक दूसरे के मुँह की ओर देखने लगे सब चुप थे। इतने मे बाहर से खेलते २ बालक श्री गोबिन्दराय जी भी आ गये, उन्होंने गुरु जी को विचार मग्न देखकर पूछा, महाराज आप किस विचार मे हैं? बडी शाति और दृढ़ता से गुरु जी ने कहा पुत्र! इस समय इन पीड़ित हिन्दुओं के धर्म को बचाने के लिए किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है, जो अपने पवित्र खून से इस धधकती हुई आग को शांत कर सके। गुरु बालक ने झट से कहा तो महाराज आपसे बड़ा और कौनसा महापुरुष है? बालक गोबिन्दराय जी की इस ओजपूर्ण बात को सुनकर सभा के सभी मनुष्य स्तब्ध रह गए। गुरु तेगबहादुर जी ने अपने प्यारे बच्चे को छाती से चिपटा लिया और बोले "ऐसा ही होगा अवश्य ही ऐसा होगा"। मैं ही अपने प्राणों की बलि इस हिन्दू जाति की रक्षा के लिए दूगा। ब्राह्मणो, जाओ बादशाह से कह दो, कि हमारे देश और प्रात के महापुरुष

निरकारी नानकदेव ही आराध्य देव हैं यदि उनके उत्तराधिकारी गुरु तेगबहादुर इस्लाम को कबूल करलें तो हम सब मुसलमान हो जावेंगे।"

"चारों ओर से आवाज आई "गुरु नानकदेवजी की जय" और गुरु तेगबहादुर की कीर्ति अमर हो।

बहुत वर्ष बीत चुके थे, सैकड़ो नहीं, हजार और अनेकों हजारों वर्ष पहले की बात है। दैत्यों ने भारत को जीत लिया था, देवता परास्त कर दिये गये थे। वे गिरि और कन्दराओं में छिप कर प्राण बचा रहे थे। इन्द्र को बताया गया, यदि राजर्षि दधीच की जघा की हड्डी का शस्त्र बनाकर युद्ध किया जाय तो दैत्यराज वृषपर्वा को मारा जा सकता है। देवता आशा और निराशा के भाव लेकर दधीचि की सेवा में हाजिर हुये और कहा हमारी रक्षा आपकी दया पर निर्भर है। आप हमें अपनी जघा की हड्डी दीजिये। दधीचि ने अपनी जघा को अपने ही हाथों से काट कर देवताओं को दे दिया।

वह समय तो दूर पड गया था, लोग कहने लग गये थे। ऐसा सतयुग मे ही होता था, यह तो कलियुग है किन्तु विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में इतिहास ने फिर उस घटना को दुहराया और सारे भारत देश ने सुना कि केवल परोपकार से प्रेरित होकर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये, गुरु तेगबहादुर ने अपना बलिदान देने को स्वत. अपने लियें अर्पित कर दिया है। कवियो की भाषा मे कहा जा सकता है कि "परमात्मा का आसन हिल गया और भारत माँ के बन्धन की एक कडी कडाक से खुल गई और उसका अभिमान से मस्तक ऊँचा हो गया।"

ब्राह्मण लोग दिल्ली पहुँचे और वही बात उन्होंने शाह के सामने पेश करदी। औरंगजेब ने भी स्वीकार कर लिया। वह स्वीकार भी क्यों न कर लेता उसका हर्ज ही क्या था। जिस शिकार को जाल मे फांसने के लिये बडे २ प्रयत्न करने पडते, दिमाग लडाने पडते और कुछ आगा पीछा भी सोचना पडता, जब वही शिकार खुद ही जाल मे आजाना चाहता है तो वह स्वीकार क्यों नहीं करता।

वर्तमान की आंधी मे भविष्य का स्वरूप किसी को भी दिखाई नहीं दिया करता है। औरंगजेब को भी नहीं दिखाई दिया। उसने गुरुजी को देहली बुलाया। उन्होंने औरंगजेब के उत्तर मे कहलवा भेजा कि हम वर्षा के समाप्त होने पर आयेंगे।

आनन्दपुर से चल कर गुरु जी सैफाबाद[1] मे वहा के मुसलमान रईस सैफुद्दीन केघर ठहरे थे। सैफुद्दीन बड़ा नेक और श्रद्धालु पठान था। वह गुरु घराने का बड़ा प्रेमी था। इसलिये गुरुजी को उसने सारी वर्षा विदा नहीं होने दिया। अपने बाग और मकान में गुरुजी के उपदेश कराता रहा, जहां २ उसके दूर के रिस्तेदार और दोस्त थे वह भी उपदेश सुनने आये।

मार्ग में

वर्षा बीत जाने पर गुरुजी सैफाबाद से चल दिये। जब सगाने के बराबर पहुँचे तो रास्ते में एक पठान मिला और उसने गुरुजी को अपने यहा ठहरने का आग्रह किया। क्योंकि यह पठान सैफाबाद में गुरुजी के उपदेश सुन चुका था। गुरुजी को अचानक इधर आया जानकर अपनी खुश किस्मती समझी। गांव के बाहर उसने उन्हे ठहरा दिया। जहा कुछ दिन रहकर गुरुजी दिल्ली चले गये।

जब बादशाह का दरबार भरा हुआ था। पठान मुगल और ईरानी मुसलमान दरबार मे डटे हुए थे। भारत में क्षत्रियों का स्थान लेने वाले और अपने को सूर्य्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाने वाले राजपूत भी बैठे हुये थे। गुरु तेगबहादुर जी को दरबार मे लाया गया। सब लोग एक दूसरे के मुंह की ओर

१. यह सैफाबाद आज के पटियाला के स्थान पर बताया जाता है।

देखने लगे, पूरी स्तब्धता थी, बादशाह भी चुप बैठा था। वह काजियों की ओर देख रहा था और काजी आपस में कानाफूसी कर रहे थे, अत. गुरुजी ने ही स्तब्धता को भग करते हुए कहा, बादशाह हमें क्यों याद किया है ?

बादशाह ने इस आशय के शब्दों में कहना शुरू किया —"मैंने खूब सोच समझ लिया है कि जो लोग एकेश्वरवादी नहीं हैं, अनेकों देवी देवताओं की उपासना करते हैं। तथा ईश्वर की मूर्तियां बनाते हैं वे अवश्य ही गलत रास्ते पर हैं और ऐसे लोगों के लिये दीन इस्लाम की पवित्र किताबों ने काफिर कहा है। कुफ्र को मिटाना प्रत्येक दीनदार का काम है।" उसने आगे फिर कहा—

"सारा हिन्दुस्तान इसी कुफ्र में फंसा हुआ है। हिन्दू जब तक इस काफिरपने से बाहर नहीं होते—तब तक वे इन्सान नहीं बन सकते हैं। अत. मैं हिन्दुओं की भलाई की दृष्टि से और कुरान शरीफ की आज्ञाओं के लिये इस काम को पूरा करने का प्रण ले चुका हूँ। सारे हिन्दुस्तान के हिन्दुओं को मुझे मुसलमान बनाना है। चाहे कोई प्रेम से बने चाहे जबर से। काश्मीर के ब्राह्मणों ने मुझे विश्वास दिलाया है कि अगर गुरु तेगबहादुर मुसलमान हो जाते हैं तो हम सब हो जावेंगे। अत. मैं चाहता हूँ कि आप दीन इस्लाम को कबूल करके मेरे पवित्र उद्देश्य में सहायता दें।"

गुरुजी ने कहा कि "कहने को तो तुम्हारी बात भली मालूम होती है किन्तु हिन्दू और मुसलमान सभी उसी ईश्वर के पुत्र हैं और उनको किसी खास रास्ते पर चलाने के लिये जब्र करना और किसी के धर्म को जोर से मिटाने का यत्न अन्याय है। जोर जुल्म के सामने झुकना ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध है। मैं एकेश्वरवादी होता हुआ इस अन्याय को न तो सहन कर सकता हूँ और न किसी जब्र के सामने झुकने को तयार हूँ। और जुल्म से पीडित लोगों के संकट हरण करने के लिये अपना जीवन अर्पण करने तक को तयार हूँ।"

कहते हैं कि बादशाह और गुरुजी के दरमियान इसी प्रकार की बातें होती रहीं किन्तु जब उसने गुरु जी को अपनी इच्छा के सामने झुकते न देखा तो उन्हें बन्दीखाने में डाल देने का हुक्म दे दिया।

गुरु जी को बन्दी खाने में डाल दिया गया। उनके साथी पहले तो बाहर रखे गये किन्तु आखिर में वे भी जेल में बन्द कर दिये। कई दिन तो गुरुजी को कुछ भी खाने को नहीं दिया गया। कुछ दिन दिल्ली के सिखों ने गुरु जी के खाने पीने का प्रबन्ध किया किन्तु वह भी बन्द कर दिया गया। इतिहास साक्षी है कि गुरु जी को जेल में घोर यन्त्रणायें दी गईं। और उन्हें बादशाह की बात मनवा कर इस्लाम कबूल करने के लिये मजबूर किया गया परन्तु वह इस जुल्म के सामने कब झुकने वाले थे।

बन्दी जीवन

गुरु जी के साथी भाई मतीदास जी सम्बन्धी बादशाह के पास बहुत सी शिकायतें इस भाव की गई कि उसने बादशाहत और राज्य को नष्ट करने तक की बातें कही हैं। इससे बादशाह आगबबूला हो गया और मतीदास को आरे से चीर कर दो टुकडे कर देने का हुक्म दिया।

परन्तु धर्म पर दृढ रहने वाले भाई ने बडी दृढता से इस कष्ट को सहन किया। और सदा के लिये धर्म पर बलिदान होने वालों में अपना नाम अमर कर गये।

इसके बाद बादशाह ने स्वयं गुरु तेगबहादुर को लोहे के पिंजरे में बन्द कर दिया। संसार का धार्मिक इतिहास बताता है कि जो संसार से अन्याय को उठाने की कोशिश करता है, उसे सबसे पहिले उस अन्याय का शिकार होना पडता है। गुरु नानकदेव जी ने संसार के बन्धनरूपी पिंजडे से छुडाने के लिये जिस मिशन की स्थापना की थी, उसी मिशन के नौवें

पिंजड़े में

परम सन्त शहीद

श्री गुरु तेगबहादुर जी

कर्मयोगी

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

अधिकारी गुरु तेगबहादुर जी को ससारी बन्धनो को अपने ढग से चालू रखने के इच्छुक औरगजेब ने लोहे के पिंजरे मे बन्द करा दिया। जिनका आत्मा जीवन्मुक्त हो चुका है, उनके शरीर को चाहे जिसमे बाधो चाहे जहा रक्खो। क्या उन्हे इसकी परवाह होती है? किन्तु माया और मोह तथा सत्ता के मद मे चूर हुये प्राणी इस रहस्य को समझ भी कब सकते है। औरंगजेब भी क्यो समझता जो कि राज मद मे अपने को भूले हुए था।

काफी दिन के बाद बादशाह औरगजेब ने गुरु जी के सामने तीन प्रस्ताव पेश करने को अपने दो आदमियों को भेजा। वह प्रस्ताव इस प्रकार थे (१) चाहे किसी भी वायदे और महत्वकाक्षा पर मुसलमान बनना स्वीकार कर लो (२) या कोई करामात दिखाओ नही तो (३) कतल होना स्वीकार करो। गुरु जी ने जवाब दिया। बादशाह से कहो कि वे किसी भी अन्याय और जब्र के सामने झुकने को तैयार नहीं। इस पर बादशाह ने उनके कत्ल करने का हुक्म दे दिया।

तीन प्रस्ताव

सारे दिल्ली शहर मे खलबली मच गई थी। सबके मुँह पर एक ही बात थी। कल गुरु तेगबहादुर को धर्म के नाम पर कत्ल कर दिया जावेगा। समय आने पर चादनीचोक वाला कत्ल का मैदान भर गया। हजारो आदमी इकट्ठे हो गये। आदमशाह गुरु जी को लेकर उपस्थित हुआ। हाथ मे चम-चमाती हुई तलवार, यमराज जैसा वेश।

बलिदान

जिस समय गुरु जी का बलिदान होने को था दैवात से आधी आ गई और जब जल्लाद की तलवार ने गुरु जी पर वार किया तो पहले से उपस्थित भाई जीवनसिंह उस अधेरी मे गुरु जी का शीश लेकर वहाँ से निकल गया। उनके धड की बाबत कहा जाता है कि दो सिख बडी सावधानी से उठा ले गये। जिसका वर्णन कई इतिहासकारो ने इस प्रकार किया है।

"दो बनजारे पिता और पुत्र रात्रि मे घटनास्थल पर पहुँचे। बैलो पर रुई लदी हुई थी। उन्हे एक किनारे खडा कर दिया। पुत्र आगे बढा। आधी अब भी चल रही थी। और भी जोर का झोका आया। पहरेदार आँखे मूँद कर बैठ गये। बजारा बढा और धड को उठा लाया और रुई मे लपेट बैल पर लाद कर चलता बना। अपने घर पहुँचा। और शाही आदमियो के सदेह से बचने के लिये अपने घर मे उस शरीर को रख कर समस्त घर को आग लगा दी। यही स्थान रकाबगज का गुरुद्वारा है।

हमने गुरु महानुभावो की जीवनचर्या की समाप्ति पर अपनी दृष्टि से कुछ न कुछ विचार अवश्य प्रकट किये है। गुरु तेगबहादुर जी के सम्बन्ध मे हम इससे ज्यादा कहने की शक्ति नहीं रखते है कि ईसाइयों के दिलो मे प्रभु ईसा के लिये जितनी महान श्रद्धा है, वैसी ही श्रद्धा गुरु तेगबहादुर जी के लिये हमारे हृदय मे है। ससार मे वही धर्म ऊँचा स्थान पासकता है। जिसमे परोपकार के लिये बलिदान करने वाले महापुरुष पैदा हुए हो। गुरु तेगबहादुर जी ने सिख धर्म को बलिदानों का धर्म बनाने की ओर अग्रसर किया। और बलिदानो का ही फल हुआ कि मृत प्राय हिन्दू जाति मे से ही पैदा होने वाले मनुष्यों का गुरु प्रताप से एक ऐसा दल तैयार हो गया, जिसने वास्तव मे अनीत पर विजय प्राप्त कर ली थी।

श्रद्धा के फूल

गुरु तेगवहादुर जी की रचनाये

यहाँ हम गुरु तेगवहादुरजा द्वारा रचित कुछ रागनिश्रों और वाणियो को उद्धृत करते है, जिनके पढने और पाठ करने से धर्म प्रिय जनों को अवश्य ही आनन्द प्राप्त होगा।

राग देव गाधारी— ये मन नेंक न कह्यौ करं ।
सीख सिखाय रह्यो अपनी सी, दुर्मति से न टरें । रहाउ
मद माया कं भयो बावरो, हरिजस नहि उचरं ॥
करि प्रपच जगत को डहकं, अपनो उदर भरं ॥१॥
श्वान पूंछ ज्यो होइ न सूधो, कह्यौ न कान धरं ।
कहु नानक भज राम नाम नित, जातं काज सरं ॥२॥

राग धनाश्री— काहे रे वन खोजन जाई ।
सर्व निवासी सदा अलोपा, तोही सग समाई ।१॥ रहाउ
पुहम मध्य ज्यो बासु बसत है, मुकर माहि जंसे छाई ।
तैसे ही हरि बसं निरतरि, घट ही खोजहु भाई ।
बाहर भीतर एको जानहु, इह गुरु ज्ञान बताई ।
जन नानक बिनु आपा चीनं, मिटं न भ्रम की काई ।

चेतना है तो चेतले, निशि दिन में प्राणी ।
राग तिलंग (काफी)— छिण छिण अवधि बिहात है, फूटे घट ज्यो पाणी ॥१॥रहाउ
हरि गुण काहे न गावही मूर्ख अज्ञाना ।
झूठे लालच लाग कं, नहि मरन पछाना ॥?
अजहूं कछु बिगरयो नहीं जो प्रभु गुण गावे ।
कहु नानक तिह भजनते निर्भय पद पावै ।

राग सारग— हरि बिनु तेरो कौन सहाई ।
काकी मातु पिता सुत वनिता, को काहूं को भाई ॥रहाउ
धन धरनी अरु सपति सगरी जो मान्यो अपनाई ।
तन छूटं कछु सग न चालं कहां ताहि लपटाई ।
दीनदयाल सदा दुख भजन ता स्यो रुचि न बढ़ाई ।
नानक कहत जगत सभ मिथ्या ज्यो सुपना रैनाई ॥

बारहवाँ अध्याय

गुरु गोविन्दसिंह जी की जीवन गाथा

दशम पातशाह जी का जन्म १७ पौष संवत १७२३ वि० में शनि और रवि के मध्य की रात्रि में डेढ़ पहर (रात्रि) शेष में हुआ था। यह पिछले पृष्ठों में बता चुके हैं कि उस समय आपकी माता अपने भाई कृपालचन्द और सासु, माता नानकी के साथ पटना में रहती थीं। पिता आपके उस समय आसाम की ओर गये हुए थे।

जन्म और बालकाल

जब गुरु जी पाँच वर्ष के हुए तो इसी अवस्था में उनका भविष्य झलकने लग गया था। 'होन हार बिरवान के होत चीकने पात' की तरह इनके खेल में, बातचीत और रङ्ग ढङ्ग सभी में संत-सिपाही का प्रकाश प्रकट दिखाई देने लग पड़ा था। बालकों को इकट्ठा करके चाँदमारी के उपक्रम, सेनाओं की उत्क्रीडा और स्वयम सेना संचालक बनना भविष्य निर्माण की छटायें सहज ही मनोवैज्ञानिकों को आकृष्ट करने वाली थीं।

इसके अलावा बोलचाल, बर्ताव सभी ऐसी बातें थीं, जो सहज ही मन को आकर्षित कर लेती थीं। प० शिवदत्त, शेख भीखनशाह आदि जैसे खुदापरस्तों को भी आपने बाल चमत्कार से मोहित कर लिया था। पटना के राजा फतहचन्द की रानी आपको देखकर जीती थी। उस बेचारी के कोई पुत्र न था। एक दिन अचानक उसकी गोद में बैठ गये और प्यार भरे स्वर में बोले 'ओ' रानी इस कर्ण मधुर शब्द को सुनकर प्रेम में विह्वल होगई और उस दिन से उन्हें बहुत प्यार करने लग पड़ी। उसके प्रेम के कारण वे 'बाला प्रीतम' की उपाधि से पटने में मशहूर हो गये थे।

बचपन में ही उन्होंने शस्त्र चलाने, घोड़े पर चढ़ने और नाव खेने जैसे भी कार्य अपनी युद्धप्रिय स्वभाव में सहज ही में सीख लिये थे।

पंजाब के बखेड़ों के कारण आपके पिता गुरु तेगबहादुर जी आपको परिवार के साथ ही पटना में ही छोड़ गये थे। इसलिये हिन्दी संस्कृत की शिक्षा आपने वहीं प्राप्त करली थी।

जिस समय पिता जी के बुलाने पर पंजाब को विदा हुये। बालक, वृद्ध, नरनारी सभी आपके वियोग से दुखी हुए। राजा फतहचन्द और रानी तो प्रेम में सिसकी भरकर रोने लग पड़े। जिनको यादगार के लिये आपने अपनी एक कटार, तलवार और पोशाक देकर संतुष्ट किया। राजा ने आपके विदा होने पर अपने घर को ही गुरुद्वारा बना दिया, जहाँ पर कि आज तक आपकी दी हुई चीजें धरी हैं और वह स्थान मैणी संगत कहलाता है।

पटना से विदा होकर दानापुर, छपरा, मिर्जापुर, काशी, सहारनपुर, अम्बाला आदि स्थानो पर विश्राम करते हुये लखनौर मे झंडू नाम मसद के घर पर ठहरे। आपने जंगल मे जाकर शिकार का अभ्यास किया। यहाँ पर पीर आरफदीन ने आपके दर्शन किये और अपनी श्रद्धा प्रकट की।

जब गोविन्दराय जी आनन्दपुर आगये तो लोगों मे बडा उत्साह फैला। उनके बाल कौतुकों को देखकर सभी सिख नरनारी प्रसन्न होते थे। एक बार लाहौर की सगत मे 'हरियश' नामके खत्रिय ने जब उनको देखा तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और गुरु तेगबहादुर जी के सामने अपनी सुपुत्री जीतो जी की शादी गोविन्दराय के साथ कर देने का प्रस्ताव पेश किया। जिसे गुरु तेगबहादुर जी ने मान लिया।

वैसे दिल्ली की ओर विदा होते समय ही श्री गुरु तेगबहादुर जी बालक गोविन्दराय को भावी गुरु बनाने की आज्ञा दे गये थे किन्तु जब वे देहली की जेल मे बन्द कर दिये गये और उन्हे आनन्दपुर लौटने की आशा न रही तो विधि को पूरी करने के लिये पांच पैसे और नारियल भी भेज दिये थे। अत वे अपनी ६ वर्ष की अल्पावस्था मे गुरु बन गये। कहते हैं कि गुरु तेगबहादुर जी ने भावी गुरु बालक गोविन्दराय जी की परीक्षा के लिये देहली की जेल से एक श्लोक लिखकर भेजा जो यह था।

> बल छुटि गयो बन्धन परे कछू न होत उपाय।
> कहु नानक अब ओट हरि गज ज्यो होय सहाय॥

इसके उत्तर मे जो पद गोविन्दराय जी ने गुरु तेगबहादुर जी को देहली मे भेजा वह इस प्रकार था—

> बल होआ बन्धन छुटें सब कछु होत उपाय।
> नानक सब किछु तुम्हरे हाथ में तुम्ही होत सहाय॥

गुरु अर्जुनदेव जी के बलिदान ने गुरु बालक गुरु हरिगोविन्द जी के हृदय मे एक तेज पैदा किया था और उसी से प्रेरित होकर उन्होंने पीरी के साथ ही मीरी अख्तियार की थी। वही स्थिति आज हमारे दशम पातशाह के सामने थी। बादशाह के न्टशस अत्याचारों और महामना पिता की उसके द्वारा की जाने वाली कुर्बानी ने उनके हृदय को अपने धार्मिक मिशन के लिये उत्तेजित कर दिया, आप ने अपने पिता की शहादत के बाद कुछ समय अध्ययन और अपने भावी महान कार्य्य के लिये आत्मिक तैयारी मे बिताया और फिर अपने शिष्यों मे एक स्पिरिट पैदा करने के लिय एलान कर दिया कि आयन्दा से सिख भेट मे उमदा उमदा हथियार और घोड़े लाया कर। इसका कुछ कारण वह घटना भी थी, जब कि एक समय बाहर से आती हुई सगते रास्ते मे लूट ली गई थी।

साथ ही दरबार मे ओजस्वनी रचनाओं के पढ़ने वाले कवि और बहादुराना गाथाये सुनाने वाले विद्वान् भी इकट्ठे किये, कुछ अपने आदमी भी काशी सस्कृत पढने को भेजे।

अब यह नियम सा हो गया था कि बरछी, कटार और तलवार के बिना कोई ही खाली नहीं आता था। व्यापार करने वाले तो सभी सिख घोडे, बछेड़े और हथियार ही भेट करते थे। इस तरह से शास्त्रागार हथियारों और घुडसाल घोडों से भर गई।

दूसरी ओर १८ और ४० वर्ष की उमर के बीच का जो भी आदमी गुरु जी की सेवा मे हाजिर होता उसे फौजी तालीम देने के लिये अपने पास रख लेते, आनन्दपुर के पास का जगल अब चादमारी के काम मे आरहा था और रात दिन सैनिकों की सख्या बढ रही थी।

जन्म-स्थान श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

पटना साहिब

गुरुद्वारा

सरोपा साहिब नाभा

आसाम देश से राजकुमार रत्नराय जो कि राजाराम का पुत्र था। गुरु जी के दर्शनों के लिये आनन्दपुर मे हाजिर हुआ। उसने गुरु जी को सामान भेट मे दिया। उसमे एक सफेद हाथी एक पंचकला शस्त्र, पांच वढिया वन्दूके थीं। इनके अलावा एक कटोरी, एक चौकी, एक कलगी, एक हार और अनेकों ढाके की मलमल के वढ़िया वस्त्र थे। हाथी वड़ा चतुर और सिखाया हुआ था। वह हथियार उठा कर अपने सवार को दे सकता था। पानी से नहला सकता था। वस्त्र से शरीर पोंछ सकता था। रात्रि के समय सूड मे मसाले लेकर रास्ता दिखा सकता था। पचकला हथियार भी विचित्र था वह भी पाच हथियारो का काम देने वाला था।

राजकुमार रत्नराय अपने मंत्री और माता समेत आया था। पाच महीने गुरु जी की सेवा मे रहा।

गुरु जी ने एक वढिया नगारा भी वनवाया। जिसकी आवाज वहुत दूर तक जाती थी और इसका नाम रणजीत नगारा रक्खा।

ऐसी ही एक वेशकीमती भेट कावुल के सिख व्यापारी लाला दुनीचन्द जी ने भेजी थी। वह था एक तम्बू। कहा जाता है कि वह ढाई लाख रुपये की कीमत का था। उस सिख ने अपने गहरे मुनाफे में से धर्मादा निकाले हुये दस हजार रुपये भी भेट किये।

इसी तरह संपत्ति, शस्त्र और घोडों की भेट से आपके पास लाखों रुपये, सैकड़ों घोडे और हजारों हथियार इकट्ठे हो गये। और उनका यह वैभव छोटे मोटे राजाओं के वैभव को मात देने वाला वन गया।

कहा जाता है कि जव घटायें उठती है तो वर्षा होना भी निश्चित सा हो जाता है और आसमान मे गर्द छाने लगते ही आधी की अगवाई जरूरी हो जाती है। जव गुरु जी के यहाँ यह युद्ध का सामान इकट्ठा हो रहा था और हजारो सिखों को युद्धकला सिखाई जारही थी तो यह तो निश्चित था कि एक दिन लड़ाई अवश्य होगी, हालांकि चाहे यह उपादान आत्मरक्षा के लिये ही हो रहे थे। ताभी लड़ाई अवश्य ही जान पड़ रही थी। किन्तु जो तयारियाँ भारत के शासकों के अत्याचारो के रोकने के लिये की जारही थीं, उनका सामना राजा विलासपुर कर वैठा।

युद्ध के उपक्रम

आनन्दपुर, विलासपुर रियासत मे अवस्थित था। एक दिन जव रणजीत नगारा वजा तो राजा भीमचन्द ने समझा कि कोई शत्रु चढ आया है, किन्तु उसके मत्री ने वताया कि यह नगारा तो आनन्दपुर मे वजा है। प्रतापी गुरु गोविन्दसिंह जी के आजकल वहुत ठाठ हो गये है।

गुरुओं का ऐसा वैभव देखने की अपनी उत्सुकता को राजा भीमचद संवरण न कर सका और वह आनन्दपुर आया। गुरु जी ने उसे उसी कावुली तम्बू मे ठहराया और उसने प्रसादी हाथी तथा पंचकला शस्त्रादि सव को ही देखा। उस वैभव से जव अपनी तुलना करने लगा तो अपने को उसने वहुत हल्का पाया। अतः विलासपुर पहुँचते ही उसने गुरु जी के पास एक आदमी भेजा, जिसे कहला भेजा, मेरे यहां शादी है, अतः शोभा वढ़ाने के लिये परसादी हाथी, रणजीत नगाड़ा, कावुली तम्बू और पंचकला शस्त्र को भेज दे।

गुरु जी भीमचद के इरादे को ताड़ गये। वह इस वहाने से इन चीजों को झॉपना चाहता है। अतः नर्म शब्दों मे कहला भेजा, सिखों की ओर से श्रद्धा-पूर्वक कीगई भेट वाहर नहीं भेजी जा सकती। इसके वाद भीमचन्द ने अपने सम्वन्धी राजा केसरीचन्द जसवालिये और ब्राह्मण पुरोहित को पुनः इसी मतलव के लिये भेजा परन्तु इस वार भी वे अपने इस कार्य में सफल न हुये। इन्हीं दिनों नाहन

के राजा मेदिनी ने गुरु जी को अपनी रियासत मे आने का निमंत्रण दिया। जिसके आकस्मिक कारण यह थे। एक तो वह श्रीनगर के राजा फतेहशाह से लड़ाई होने से डरता था। दूसरी यह बात कि राजा फतेहशाह के इलाके मे रामराय ने डेरा बना लिया था। जिससे यह भय प्रतीत हो रहा था कि रामराय और फतेहशाह की मैत्री के कारण उसके पडोसी फतेहशाह की हरकत बहुत ज्यादा न बढ़ जाय। गुरु जी ने कुछ सिखों की सलाह से यह निमत्रण स्वीकार कर लिया। और वह नाहन चले गये। वहां राजा फतेहशाह भी गुरु जी के पास आ गया। गुरु जी ने उन दोनों मे मेल करा दिया। इस मेल के होने पर जीता हुआ नाहन का हिस्सा भी फतेहशाह ने वापिस कर दिया। इससे नाहन का राजा बड़ा खुश हुआ। उसने गुरुजी को राजी करके यमुना किनारे एक रमणीक स्थान पर एक गॉव बसवा दिया और एक दुर्गाकार स्थान गुरु जी और उनके दल के लिये बनवा दिया। गुरु जी ने इस स्थान का नाम पाऊँटा रक्खा। और गुरु जी सय परिवार के यहीं रहने लगे। दूर २ से सिख सगते भी यहीं आकर दर्शन करने लगीं।

यहॉ गुरु जी जगलो मे शिकार के लिये जाते तो दोनो राजाओं को साथ ले जाते थे। जिससे उन्हे गुरु जी के बल तप और स्फूर्ति का अनुभव पूरी तरह से हो गया।

यहॉ पर गुरु जी को सढोरे का प्रसिद्ध साईं मियॉ बुद्धशाह भी मिला और ज्ञानचर्चा करके उसने अपनी आत्मा को शात किया।

गुरु जी पाउटे आ गये थे। उनका एक हल्का किला भी बन गया था. अपनी ताकत को भी बढ़ा रहे थे। किन्तु उधर राजा भीमचन्द संतुष्ट न था। उसने फतेहशाह की लड़की के साथ अपने पुत्र के विवाह के बाद ही गुरु जी से लडने की तैयारी कर दी। श्रीनगर पहुँचकर भीमचन्द ने राजा-फतेहचन्द को मजबूर किया कि वह गुरु गोविन्दसिंह जी के विरुद्ध भीमचन्द की मदद करे। और गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा दीवान नन्दचंद की मार्फत आये हुए उपहारो को वापिस करदे। फतेहशाह मजबूर होगया और जब दीवान नन्दचद श्रीनगर से लौट रहा था भीमचन्द ने उसपर हमला बोल दिया।

दोनों ओर से युद्ध की तयारियॉ होगई और पाउटा से ६ मील के फासले पर भंगाणी नाम के स्थान पर दोनो दल आ डटे। भीमचंद के साथ एक बड़ी भारी सेना थी जिसमे कटोच के राजा कृपाल, गुलेर के गोपाल, हडूर के हरिचन्द, श्रीनगर का फतेशाह और डसपाल के राजा शामिल थे इस पहाड़ी युद्ध का हाल स्वयम गुरु जी ने "विचित्र नाटक" मे इस प्रकार लिखा है —

"हरीचद कोपे कमाण सँभार, प्रथम वाजिय ताण वाण प्रहार।
द्वितीय ताक कै तीर मोको चलाय, रख्यौ दैव मै कान छ्वै कै सिधाय॥
तृतीय वाण मार्‌यो सु पेटी मझार, विधि अ चिलति अ ढाल पार पधार।
चुभि चिच चर्म कछू घाइन आय, कलं केवल जान दास बचाये॥
जबै वाण लागिओ, तबै रोस जागिनो।
कर लै कमाण, हन वाण ताण॥
सबै वीर धाए, सरोघ चलाए।
तबै ताकि वाण, हन्यो एक जुआण॥
हरीचद मारे, सुजोधा लतारे।
सुकारोड राय, वहै काल घाय॥
रण त्याग भागे, सबै त्रास पागे।

भई जीत मेरी, कृपा काल केरी ॥
रण जीत आये, जय गीत गाये ।
धन धार बरखे, सबै सूर हरखे ॥

इस युद्ध के बाद गुरु जी के साथियो को पाउंटा रहना रुचा नहीं, अत सवत १७४३ वि० जेठ मास मे फिर आनदपुर आ गये और "जो जो नर तह न भिरे दीन्हे नगर निकाल। जो तिह थोढ भले भिरे तिन्हे करी प्रतिपाला।" ऐसे कायरों के निष्कासन के बाद प्रतिदिन लोगो को धार्मिक उपदेशो के बाद सैनिक शिक्षा का काम और भी उग्र कर दिया गया। इसके अलावा लोहगढ, आनदगढ, होलगढ़ और फतहगढ़ आदि स्थानो मे किले बनवाने भी प्रारम्भ कर दिये। थोड़े ही से दिनों मे ऐसी शक्ति प्राप्त करली कि पहाडी राजाओ की हिम्मत उनसे लड़ने की जाती रही।

युद्ध पुत्रोत्सव

इन्हीं दिनो माघ सुदी ४ सवत १७४३ वि मे सुन्दरी[1] जी के उदर से गुरु जी के घर एक साहबजादे उत्पन्न हुए जिनका शुभ नाम अजीतसिंह रक्खा गया और बहुत कुछ इस अवसर पर दान पुण्य हुआ।

गुरु जी की शक्ति को बढ़ते हुए देखकर राजा घबराये लेकिन अब लड़ने की भी हिम्मत नहीं रखते थे अत उन्होंने गुरु जी की सेवा मे हाजिर होकर सधि कर ली। गुरु जी ने तलवार अत्याचारी मुगल शासन को ढीला करने के लिये ग्रहण की थी। राजपूत राजा तो मूर्खतावश उनसे भिड़ पड़े थे। इसलिये उनके सुलह करते ही गुरु जी उनके हितू हो गये। और इसी हित से प्रेरित होकर उन्होंने उनकी मदद भी की।

राजाओं की सहायता

चूकि औरंगजेब की शक्तियाँ दक्षिण मे बीजापुर गोलकुंडा के पठान राज्यो और महाराष्ट्र के मराठो के दमन में लग रही थीं। अत पंजाब के पहाडी राजाओं की ओर से लापरवाह सा हो गया। इधर इन विलासी राजाओं ने खिराज का रुपया भी न चुकाया। अत उधर से निपटते ही औरंगजेब ने खिराज वसूल करने के लिये इन पहाडी राजाओं की खबर लेनी चाही। उसने अलिफखा को सेना देकर इन राजाओं से खिराज वसूल करने और दंड देने के लिये भेजा। नदोण के मैदान मे जमकर लड़ाई हुई ये राजपूत राजा अवश्य ही हार जाते किन्तु गुरु जी ने सहायता देकर मुगल सेना को परास्त कर दिया। इस युद्ध का वर्णन गुरु जी ने विचित्र नाटक में भी किया है।

युद्ध की समाप्ति पर गुरु जी फिर आलसौन ग्राम के पठानों को ढीला करते हुए आनन्दपुर आये।

संवत १७४७ विक्रमी के चैत्र मास की सुदि सप्तमी को गुरु जी के घर मे सुन्दरी जी से दूसरे पुत्र ने जन्म लिया। जिनका नाम साहबजादा जोरावरसिंह रक्खा गया। और बहुत कुछ दान पुण्य भी किया गया।

अलिफखाँ की हार से झगडा मिट नहीं गया था। यह खबर जब लाहौर पहुँची तो वहाँ के सूबेदार ने दिलावरखाँ, रुस्तमखाँ को सेना देकर गुरु जी के दमन के लिये भेजा। क्योंकि वह समझ गया था कि यदि गुरु जी भीमचन्द की मदद नहीं करते तो अलिफखा हराया न जाता। सिख लोगों ने जब यह खबर सुनी तो गुरु जी के पास तुरन्त ही सूचना दी। गुरु जी ने रातो रात अपनी सेना सजा-

१. जीतो जी का ही नाम सुन्दरी रख लिया गया था।

कर रुस्तमखा पर धावा वोल दिया। वह सिखों के पहले हमले को भी वर्दास्त न कर सका और मैदान छोडकर भाग गया।

रुस्तमखा के भाग आने पर लाहौर से हुसैनखा के नेतृत्व मे सेना भेजी गई। हुसैनखा ने सीधी गुरु जी पर चढ़ाई न कर। राजाओं को तोड़ा फोड़ा और भयभीत किया और उनसे कहा कि यदि तुम सहज ही सीधे रास्ते पर न आओगे तो वादशाह औरगजेव तुम्हारी रियासतों को जव्त कर लेगा। कई राजा लोग उसके वश मे हो गये। जिनमे काहनगढ़ और मंडी के नाम मुख्य हैं। किन्तु गुलेर के राजा गोपालसिंह ने तुरन्त ही गुरु जी को अपनी मदद के लिये बुला लिया। यद्यपि कृपालु चन्द, हरिसिंह और हिम्मतसिह पहाड़ी राजा मुगलों की ओर हो गये तो भी गुरु जी के प्यारे सिख और गोपालसिह के सैनिक ऐसी वीरता से लड़े कि हुसैन मारा गया। उसके मारे जाते ही रुस्तम खां की हिम्मत टूट गई और वह भी भाग गया। इस विजय पर राजा गोपालसिंह ने गुरु जी को धन्यवाद दिया।

लाहौर के सूवेदार ने रुस्तमखॉ को इस तरह भाग आने पर वहुत लज्जित किया और सफदर जंग की मातहती मे एक वड़ी सेना गुरु जी से भिडने के लिये फिर भेजी। रुस्तमखां भी साथ गया। वहलान नामक स्थान पर दोनों ओर के लोग भिड़ गये। डट कर लड़ाई हुई। मैदान खून से रग गया। किन्तु रुस्तमखा को फिर भागना पड़ा क्योंकि उसके कई वहादुर अफसर और जुझारसिंह और गजसिंह नाम के राजपूत राजे भी लडाई मे मारे गए।

इसके वाद वादशाह औरंगजेव ने अपने लड़के मुअज्जम को भेजा किन्तु वह खुद तो काश्मीर की ओर चला गया और अपने एक मनसवदार को आनन्दपुर की ओर रवाना कर गया। मनसवदार ने वजाय लड़ाई करने के श्रद्धा के साथ गुरु जी के दर्शन किये।

इसके वाद ६—७ वर्ष तक गुरु जी अपने धर्म प्रचार और संगठन के काम मे लगे रहे। और अनेक लोगों को उपदेश देकर सत पर खड़ा किया। तथा अनेकों को आत्म शांति दी।

सवत १७५३ वि० के माघ मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को वाहि गुरु जी की कृपा से घर मे तीसरे पुत्र रत्न का जन्म हुआ और उनका शुभ नाम जुझारसिंह रक्खा गया। इसके दो वर्ष वाद सवत १७५५ के फागुन की एकादशी को चौथे पुत्र श्री फतहसिंह जी हुए।

गुरु जी भारत की सामान्य जातियों की अधम दशा को देखकर मालूम होता है, दिल ही दिल मे विचारते थे कि किस प्रकार वह अपने अनुयायी सिखों को एक ऐसी जमात मे वांध दे जो कि अपने जीवन मे जहॉ धर्म भावों से पूरित होते हुए सतों का जैसा जीवन व्यतीत करे, वहॉ वह देश और जाति की रक्षा के लिये अपने आपको निछावर करने के लिए भी तैयार रहे। अव तक जितने भी धर्म-प्रचारक देश मे हो गुजरे थे। वह मनुष्य की केवल मानसिकोन्नति पर ही जोर देते थे और वह भी निज की। जिसका नतीजा यह हो रहा था कि धार्मिक लोग एकान्तवासी से हो गये थे और देश और जाति के कष्टों से न तो प्रभावित ही होते थे और न उन सवालों से सम्वन्ध ही रखते थे। चूंकि सर्वसाधारण मे धार्मिक वृत्ति ज्यादा न होती थी, अत वह दूसरों के दुखको अपना दुख समझने तथा उसमें हाथ वटाने मे कोई साहस न दिखाते थे। आहिस्ता-आहिस्ता देश की अधोगति यहा तक हो गई थी कि विदेशी आक्रान्ता यहा के लोगों को भेड और वकरी की तरह हांक ले जाते थे। परन्तु वहू वेटियो की इज्जत वचाने के लिये निस्साहय लोगों से कुछ न वन पड़ रहा था। जाति पांति के भिन्न भेदों ने लोगों को इतना दूर-दूर कर रक्खा था कि आम जनता को देश में हो रहे राज्यान्दोलनों के कारण व अत्याचारों को देखते हुए भी

एक दूसरे से कोई हमदर्दी न थी, और होती भी कैसे ? जबकि अपने आपको उच्च जातिय मानने वाले प्रचारकों और राजपूत राज्यों मे धार्मिक और राज्य के कारणों से किये जा रहे दुखों से दिनोंदिन दलित किये जा रहे थे। किसी से हमदर्दी उस समय होती है जब कि वह एक दूसरे से अपने सम्बन्धों को अनुभव करें जब कि उनको एकत्र होकर एक ही उद्देश्य के लिए कार्य करने की शिक्षा दी गई हो।

जाति पाति और धर्म विवाद के कारण बिखरे हुए लोगों को एक जाति की शृंखला मे तभी आबद्ध किया जा सकता था, जब कि एक ही धर्म एक ही जाति और एक ही गुरु के अनुयायी बनाकर एक बिरादरी न बना दी जाती। इस आशा को लेकर गुरु गोविन्दसिंह के अपने सिख अनुयाइयों की एक जीवित बिरादरी बनाना चाहते थे। जो कि सत सिपाही और सिपाही संतों की एक जमात हो, इस समय तक सिख पूर्व गुरुओं की शिक्षा द्वारा एक धर्म के अनुयायी हो चुके थे। उनके खयालात मे एक परिवर्तन आ चुका था और हरिगोविन्द के समय से लेकर अब तक उनमे कुछ सैनिकता भी पैदा हो चुकी थी। अब उन्हे एक नये सांचे मे ढालकर सर्व प्रकार से पूर्ण मनुष्य और मनुष्यों की एक पूर्ण जाति बनाने का काम गुरु गोविन्दसिंह ने किया।

संवत १७५६ के चैत्र मास मे आपने तमाम सिख संगतों के नाम सूचनाऐ जारी कर दीं कि वह चैत्र के अंत मे आने वाली वैसाखी को मनाने के लिये आनन्द पुर मे एकत्रित हों। चुनाचे सिख संगतें दूर और निकट के देशों से आनन्दपुर मे आ एकत्र हुई। वैसाख की पहली तिथि को एक बड़ा भारी दीवान सजा। और प्रात. से ही आशा की वार का गायन होने लगा। दिन चढते ही जब कि उपस्थित संगतों मे गुरु दर्शन का इन्तजार हो रहा था और पलपल मे उत्कंठा बढ रही थी तो क्या देखते हैं कि यकायक गुरु गोविन्दसिंह हाथ मे नंगी तलवार लिए हुए आ उपस्थित हुए। चेहरा गजब से भरा हुआ था। और उनके मुख पर एक प्रकार की विभीषिका टपकती नजर आती थी। नगी चमकती हुई कृपाण को हिलाते हुए आपने गर्जती हुई आवाज मे ललकार कर कहा, जालिम के अत्याचार की भड़क रही अग्नि को बुझाने और धर्म रक्षा की वेदी पर बलिदान करने के लिए मुझे एक सिर की जरूरत है। है कोई शूरवीर, जिसे अपना सिर इस कृपाण की धार पर कुर्बान करना स्वीकार हो। गुरुजी के इस असाधारण प्रश्न को सुनकर दीवान मे एक सन्नाटा छा गया। कोई उनकी इस बात की गहराई को न समझ सका। सब हैरान थे कि इस बात का अन्तरीय अभिप्राय क्या है? धीमे धीमे कानाफूसिया हो रही थीं परन्तु किसी को साहस न पड़ा कि वे गुरु जी के तेज के सामने उनसे इस सम्बन्ध मे कुछ प्रश्न करें। जब किसी ओर से उत्तर मिलता प्रतीत न हुआ तो गुरु जी ने फिर से वैसी ही गर्ज से दुहराया। इतने मे एक सिंह हृदय पूर्ण-सिख भाई दयाराम खत्री अपना सीस गुरु जी की चमकती हुई कृपाण के हवाले करने के लिये उठा और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि सतगुरु इस दास का शीश आपके चरणों मे हाजिर है। आप कृपा-पूर्वक इस भेट को स्वीकार करें। गुरुजी झुंझलाये हुए मनुष्य की तरह आगे बढे और दयाराम का हाथ पकड़ कर साथ के तम्बू मे ले गये। भाई दयाराम जी का अन्दर जाना ही था कि धम से गिरती हुई तलवार की आवाज सुनाई दी और अन्दर से बहता हुआ खून एक धारा मे प्रवाहित होने लगा। इससे बाहर बैठे हुए सिख और ज्यादा हैरान हो गये। इतने मे टपकते हुए खून से सनी हुई तलवार हाथ मे लिये गुरु जी फिर बाहर आ गये और फिर ललकार कहने लगे मुझे एक और सिर की जरूरत है। इस होरही घटना को देखकर लोग कुछ दहल से गये परन्तु जब गुरु जी ने दूसरी दफे फिर वही सवाल किया तो, सिक्खी सिदक के पुतले और धर्म के परवाने भाई धर्मा जाट हस्तिनापुर निवासी ने नम्र विनती

की कि सच्चे पादशाह दास हाजिर है। गुरु जी ने कहा क्या तुम्हें मृत्यु का भय नहीं तो भाई धर्मो ने उत्तर दिया। सतगुरु जब से हमने आपकी शरण मे सिख धर्म धारण किया है। तब से ही यह शीश आपके चरणों मे अर्पण हो चुका है। फिर आपकी ही वस्तु आपको भेंट करने मे हमे क्या ऐतराज हो सकता है। मृत्यु को तो अवश्य एक दिन आना ही है उससे फिर भय कैसा ? यदि यह शीश धर्म की वेदी पर कुर्बान हो जाय तो इससे अच्छी और कौन सी बात हो सकती है।

अब की बार गुरु जी ज्यादा झुंझलाहट के साथ उनको पकड कर तंबू मे ले गये। पहली बार की तरह ही अबके भी तलवार की झटक सुनाई दी और भी ज्यादा खून बहता हुआ निकला। जिससे बाहर के लोगों को यह निश्चय सा हो गया कि गुरु जी शिष्यों को तम्बू मे लेजाकर कत्ल करते जा रहे है। गुरु जी रक्त से भीगी हुई तलवार लेकर फिर बाहर आगये और कहने लगे अब मुझे तीसरे सर की जरूरत है। यह सुनकर द्वारिका निवासी भाई मुहकम छीपा ने अपना शीश गुरु के चरनों पर जा रक्खा।

यह परीक्षा का एक ढग था और हरबार एक सिख को अन्दर लेजाना और फिर तलवार की झटक सुनाई देने के साथ ही तम्बू के बाहर रक्त की धारा का वह निकलना सिखों को भयभीत करके उनके सिदक को जांचना और ससार के सामने उनके इस आदर्श को रखना था कि सिख गुरु आज्ञा के ऊपर कहाँ तक कुर्बानी कर सकते है। आखिर वह भी गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के सिख थे। जिनके सामने गुरु अर्जुन व गुरु तेगबहादुर की कुर्बानियाँ पथ प्रदर्शक का काम दे रही थीं। इसी तरह गुरु जी ने दो बार और दीवान मे सिर के लिये सवाल किया। जिसके उत्तर मे विदर निवासी भाई साहबचद नाई और जगन्नाथ निवासी भाई हिम्मत कहार ने गुरु के सामने अपने शीस भेंट किये।

कुछ समय के लिये खामोसी सी हो गई। गुरु जी ने उन पाँचों को स्नान कराया और नये वस्त्र पहनाये और शस्त्र धारण करवाकर पाचों सिदक वान शस्त्र धारी धर्मात्माओं को साथ लेकर तम्बू से बाहर निकले।

उन पांचो को जीवित देखकर दीवान मे उपस्थिति संगते हैरान हो गईं और गुरु जी के इस निराले कौतुक को देखकर सब ओर से धन्य गुरु गोविन्दसिंह की आवाजे आने लगीं। तत्पश्चात् गुरु जी ने सर्व लोह के बाटे (पात्र) मे जल मंगवाया और वीरासन लगाकर गुरु ग्रन्थ साहब के सामने बैठगये। और यह 'पाच पियारे' हाथ जोड़कर पास खडे थे। गुरु जी जप, जापु सवैये आदि वाणियों को पढ़ते और साथ जप से दो धारा खंड फेरते जाते। इसी समय गुरु पत्नी माता साहबकौर बतासे लेकर पहुँची। यह बतासे उस जल में डाल दिये गये और गुरु जी गुरुवाणी पढ़ते और खड हिलाते रहे। जब यह अमृत तैयार हो गया तो बिना किसी भेद के पांचों को एक ही बांटे मे पिलाया गया। और उसके नामों के आगे सिह लगाकर उनके नाम भाई दयासिंह, धर्मसिंह, मुहकमसिह, साहबसिंह हिम्मतसिह रख दिये। इसके बाद गुरु जी ने उनको कहा कि अब से आप भाई भाई हो गये हैं। पिछली कुल जाति और कृत आपकी एक होगई है। अबसे आपका नया जन्म हुआ है और सब गुरुभाई एक समझे जायेगे और संतान एक ही धार्मिक माता-पिता गुरु गोविन्दसिंह और साहबकौर की। अब आप सिह बनगये है और वाहि गुरु जी का खालसा है, आपको अबसे सदैव पांच धार्मिक चिह्न धारण करने होंगे १) केश (२) कंघा (३) कपाण (४) कडा और (५) कच्छ। अबसे किसी अन्य धर्म के देवी देवताओं तथा पीरों व फकीरों की मान्यता न करनी होगी और केवल स्वायम्भुव निराकार और अयोनि परमात्मा को ही मानना होगा।

परन्तु सबसे आश्चर्यजनक बात उस समय हुई जब कि गुरु गोविन्दसिंह जी हाथ जोड़कर उन पाच प्यारों की ओर बढे और बड़ी अधीनता से प्रार्थना की खालसा जी, चूंकि अबसे हरेक सिख को खालसा बनने के लिये अमृतपान करके खालसा-रहत धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये मेरी विनती है कि आप मुझे इस पवित्र अमृत का दान बख्शे। पाचों प्यारे इस कौतुक को देख और गुरु गोविन्दसिंह की यह बाते सुनकर हैरान होगये। आजतक संसार के किसी भी धर्म-नेता ने अपने हाथों से बनाये हुये शिष्यों का अपने आपको शिष्य बनाने के लये पेश नहीं किया था। अत: यह प्यारे विचित्र दशा में यह सोच रहे थे कि वह महापुरुष गुरु गोविन्दसिंह जिसकी चरण धूलि को सर पर रखना हम अपना सौभाग्य समझते है, किस दीनता से हाथ बांधे हमारे सामने "अमृत" की याचना कर रहा है। किसी को उत्तर देने का साहस न पडता था आखिर भाई दयासिंह ने प्रार्थना की सच्चे पातशाह आप हमारे पूजनीय हैं। हमने तो आपके हाथों से अमृत लिया है और आपकी कृपा से खालसा पदवी पाई है फिर हम कैसे आपको 'अमृत' और उपदेश दे सकते हैं। यह सुनकर गुरु जी ने उत्तर में कहा "आप पाच प्यारे खालसा पंथ के शिरोमणी और पंथ का स्वरूप हैं। मैं पंथ को वाहिगुरु और गुरु का स्वरूप जानकर अपने आपको आपका दास समझता हूँ।"

तत्पश्चात् उन पाच प्यारों ने अमृत तैयार करके गुरु जी को चखाया और नियमानुसार खालसा बनाया। और उनके गोविन्दराय नाम को गोविन्दसिंह रक्खा। इसी घटना को सामने रखकर एक लेखक ने कहा है :—

तीसर पंथ चलायन 'वड्सूर' गहेला।
वाह वाह गुरु गोविन्दसिंह आपे गुरु चेला॥

इसके बाद गुरु गोविन्दसिंह ने पाच प्यारों को साथ लेकर उपस्थिति संगतो को अमृत चखाना आरम्भ किया और बाद मे अमृत चखकर तैयार हुये सिखों के पांच पाच मे जत्थे बनाकर बाहर देश में सिख संगतों को अमृत चखाने के लिये भेज दिया।

पंथ खालसा की स्थापना के बाद से दकियानूस हिन्दू समझ बैठे थे कि गुरु गोविन्दसिंह ने तो एक ऐसा पंथ खड़ा कर दिया है जो हिन्दू धर्म से भिन्न है। यह ठीक भी है खालसा पथ उस हिन्दू धर्म से बिलकुल ही भिन्न है जो रूढ़ियों का गुलाम और भेद भावो से जर्जरित एव ढकोसलों से भरा हुआ था किन्तु देश की रक्षा के लिये उनके दिल मे कितना दर्द था। उसकी दुर्दशा से कितनी टीस थी, यह पता चलता है उनकी उस वार्तालाप से जो उन्होंने शिवालक पहाड़ी प्रदेश के राजाओं से की थी।

राजाओं को उपदेश

जब नव आदर्शों और नव उत्साह मे मंडित खालसा दल बढ़ने लगा और उनकी चाल; चितवन और तेजस्विता से भारत मही सुरभित होने लगी तो पहाड़ी प्रान्त के बाईधार के राजा घबराये। उनको यह निश्चय होने लगा कि यह दल सब से पहले हमारे राज्यों को हड़प करेगा। इसलिये उनका एक डेपूटेशन राजा अजमेरचन्द जी अध्यक्षता से गुरु जी की सेवा मे हाजिर हुआ।

जिस समय दरबार लगा और गुरु जी धार्मिक कृत्य से निवृत्त हो लिये, तो राजा अजमेरचन्द ने कहा—"महाराज आपने यह क्या खालसा, नाम का पथ चलाया है। जिसमे न शिखा सूत्र है और न जाति पांति का विचार। खानदान का भी परहेज नहीं रहने दिया। सब एक ही रसोड़े का बना और चाहे जिसके हाथ का खा लेते हैं।" जब अजमेरचन्द कह चुका तो गुरु जी ने इस भाव का भाषण

किया—"हे राजा, जिसे तुम धर्म कहते हो, वह तो धर्म नहीं है। जिस धर्म मे मनुष्य, मनुष्य को नीच ऊच समझता हो, वह सब का धर्म नहीं हो सकता मैंने तो यह प्रयत्न किया है कि धर्म का ऐसा सस्कार हो जाय, जिसमे कोई किसी को ऊच नीच न समझे, मिथ्या गौरव के अभिमान से कोई किसी के साथ अमानुषी व्यवहार न करे। तुम अपने सम्बन्ध मे विचारो, किसी समय राजपूत जाति का भी तो सस्कार हुआ था। मैं भी एक ऐसे पथ की स्थापना कर रहा हूँ, जिसमे मंजे हुए और भय, रागद्वेश से खालिस वीर इकट्ठे हो जाय जो धर्म की और देश की इस गाढे समय मे रक्षा कर सके।

राजा! तुम देखते नहीं हो, इस समय देश मे क्या हो रहा है? तुम्हारे धर्म भाइयों पर क्या गुजर रही है और स्वयम् तुम लोग ही अपनी शान को किस प्रकार गंवा बैठे हो। आज तुम्हारे धन, दौलत और बहू वेटी सब पर तुर्क अपना अवाध अधिकार समझते हैं। क्या तुम्हारे अन्दर क्षात्रत्व शेष रह गया है? राजपूत आज अपनी वेटियों का डोला लेकर नवाव और वादशाहों की सेवा मे हाजिर होते हैं। इस तरह देश और धर्म पर घोर अन्याय और जुल्म हो रहा है परन्तु शोक की वात है कि देशवासी अपने मिथ्या धर्म भावों मे लम्पट हुये हुए है और किसी की रग मे देश प्रेम का खून दौडता नजर नहीं आता। क्या यही धर्म है।

इस भाषण का भी राजाओं पर कोई खास असर नहीं पड़ा। जब कि उनकी आत्मा मर चुकी थी और जात्याभिमान कूच कर चुका था।

इस डेपूटेशन के राजाओं ने विलासपुर पहुँच कर अन्य राजाओं को वुलाया और सवने मिलकर एक कमेटी की। और गुरुजी को लिख भेजा कि:—"मुसलमान वादशाह इस देश मे सैकड़ों वर्ष से राज्य कर रहे हैं। अत हमे यह वात असंभव दिखाई देती है कि हम उनकी सल्तनत को उखाड़ सकेंगे। वल-शाली मुगल हकूमत का विरोध करने से हम कोई भी लाभ नहीं देखते है।"

ऐसे उत्तर को पाकर गुरुजी ने यही कहा कि सदियों से गुलामी मे पड़े रहने से इनका पुंसत्व नष्ट होगया है। हम तो चाहते थे कि इनमे एक नया जीवन पैदा हो जाय, परन्तु यह उसी अधम गढे मे पड़ा रहना चाहते ज्ञात होते हैं।

इसके वाद उन्होंने सिखों को सम्बोधित करते हुये कहा "खालसाओ! आपकी आत्माये वाहि गुरु के ध्यान और गुरु नानकदेव जी के उपदेशों से शुद्धहो चुकी हैं। मैंने आपको अपना परिवार मान लिया है। मेरे तुम सब ही पुत्र हो। तुम्हारे हाथ मे तलवार देकर मैंने तुम्हारी कुछ जिम्मेदारिया भी वढा दी है। देश और धर्म की सेवा का भार तुम्हारे कंधों पर है।"

गुरुजी का प्रभाव तप और वीरता दोनों ही तरह का था। उनके पास आकर लोग दर्शन करने औ उपदेश सुनने मे अहोभाग्य ही समझते थे। अनेकों के तो दिल मे रोशनी उनके उपदेशों से ही हो जाती थी।

शाही अत्याचारों से दुखित हुए लोगों की निगाह गुरु जी पर ही पडती थी और वे अपने प्राण वचाने के लिये आनन्दपुर की ही शरण लेते थे। ऐसे शरणागतों मे राघोवा पेशवा की धर्म पत्नी त्र्यम्बका वाई और भाई नंदलाल मुख्य हैं।

भाई नन्दलाल जी अरवी फारसी के भारी विद्वान थे। उनकी विद्वता पर मोहित होकर औरंगजेव ने उन्हें मुसलमान वनाना चाहा था, इसलिये अपने मित्र गयासुद्दीन के साथ वे भाग कर गुरुजी की शरण मे आगये। उन्होंने गुरुजी की प्रशंसा मे एक वन्दगी नामा फारसी मे वनाया था जिसका नाम गुरु

जी ने बदल कर जिन्दगी "नामा कर दिया। इसके सिवा नन्दलाल ने और बहुत सारी शायरी की थी।[१]

वास्तव में मसन्दों का काम सिखों की ओर से स्वतः प्रवृत्त भेटों को गुरुजी तक पहुँचाना था इसको अपने इस्तेमाल में लाना अनुचित था। परन्तु शनै शनै उनमे से कुछ लोग कर्तव्य विमुख होगये। सिखों की गुरुओं के लिये दी हुई प्रेम भेट को अपने लिये वर्तने लगे। एक दिन गुरुजी की सभा में भॉड लोगों ने एक प्रहसन किया। जिसमे एक मसंद को धर्म कार्य के लिये उगाहे हुये रुपये को दुष्कृत्य मे खर्च करते दिखाया। अत गुरुजी ने सब मसंदों को बुलाया और उनमे से कई को तो कठोर दंड दिया। साथ ही इस पद को भी उडा दिया।

मसंदों को दंड

गुरुजी के सभी किले पहाड़ी राजाओं की रियासतो मे ही थे। आनन्दपुर में अब उनका समाज भी बहुत बढ़ गया था। इस बढ़ते हुये समाज से राजा लोग उत्तरोत्तर चिढ़ते जा रहे थे। वे अपने आदमियों द्वारा सिखों को जगल मे से घास और लकडी लाने से भी रोकते। गर्ज सब प्रकार उन्हे तग कराते। एक समय अजमेरचंद और बलियाचंद नाम के राजपूत जागीरदारों ने कुछ सिखो को उस समय घेर लिया जबकि वे खाने पीने का सामान एक शहर से लेकर आनंदपुर को आरहे थे। दोनों ओर से लड़ाई छिड़ गई। बन्दूकें और तलवारें भी चलीं, कई सिख जखमी हुए किन्तु बलियाचन्द जान से मारा गया।

पहाड़ी राजाओं से युद्ध

अजमेरचन्द ने बलियाचन्द के मारे जाने के बाद बाइसों राजाओं को इकट्ठा किया और उनके सामने सब हालात बताते हुए कहा कि इस संत का बढ़ना हमारे लिये खतरा होगा, यदि हम सब मिलकर इसे अभी निकाल दे तो ठीक है वरना फिर निकालना भी कठिन हो जायगा। सर्व सम्मति से गुरुजी के पास उन लोगों ने एक नोटिस आनन्दपुर को राजी-राजी से छोड देने के लिये लिखा। गुरुजी ने उस नोटिस के जवाब मे लिख भेजा कि भूमि तो परमात्मा की है। वह सभी लोगों को वर्तने के लिये है और आनन्दपुर तो हमारे पूर्व गुरु व मेरे पिता ने नकद दाम देकर खरीदा था। इस उत्तर को पढ़कर राजाओं ने फिर नोटिस दिया कि या तो राजी से खाली कर जाओ वरना हम नगर को लूट लेंगे। गुरुजी ने फिर वैसा ही सीधा किन्तु नम्र उत्तर भिजवा दिया। इस उत्तर को सुनकर राजा लोग चिढ़ गये और उन्होंने अपनी सेनाओं को तैयार होने का हुक्म दिया, साथ ही सरहिंद के हाकिम को भी मदद के लिये लिखा। सरहिंद से दीनाबेग और पैंदेखा कई हजार सैनिकों के साथ राजपूतों की मदद के लिये आगये।

उस समय गुरुजी के पास आठ हजार सिख थे। दोनों ओर से युद्ध छिड़ गया। दिन भर तो सिख लोग किले के भीतर से शत्रुओं पर वार करते और रात्रि को झाड़ियों की आड़ मे से गोलियाँ बरसाते। पैंदेखां ने अपनी फौज का इस प्रकार विनाश होते देख कर गुरु जी के पास सन्देश भेजा कि सेनाओं के कटाने से क्या लाभ? आइये हम और आप अकेले २ लडकर तय करले। गुरुजी ने उसकी बात को मान लिया। उसने गुरुजी पर दो बार तीर चलाये किन्तु खाली गये। अपने वारों को खाली जाते देखकर उसने अपने घोड़े को भगा दिया किन्तु गुरुजी ने ऐसा तीर मारा कि धड़ाम से जमीन पर गिर पडा। पैंदेखां को इस प्रकार गिरते देखकर मुगल सेना ने गुरुजी पर आक्रमण किया किन्तु सिख भी तो सावधान खड़े थे। उन्होंने भी ऐसी मारामार मचाई कि सैकड़ों को जमीन पर बिछा दिया। दीनाबेग भी घायल होगया। इस हालत मे दीनाबेग और अजमेर चन्द भाग गये। जीत सिखों की रही।

१ उनकी रचनाओं में 'फारसी नज्म' 'दीवाने गोया' 'जोति विगास' 'तोसी फो सना' और गजनामा आदि है।

किन्तु कुछ ही दिन के बाद जगतुल्ला गूजर की मदद लेकर राजाओं ने फिर आनन्दपुर पर चढाई करदी। राजपूत कसर नहीं रखना चाहते थे। किन्तु उनके दुर्भाग्य से जगतुल्ला गूजर भी तीर का निशाना बन गया और उसके साथी भाग निकले। यह देखकर राजपूत बहुत घबराये। राजा केसरीचंद की सलाह से एक मस्त हाथी को दरवाजे पर हूलने का आयोजन किया। यह खबर जब गुरु जी को लगी तो उन्होंने विचित्रसिंह को और उदयसिंह हाथी को रोकने के लिये भेजा। विचित्रसिंह ने हाथी के मस्तक मे ऐसे जोर का भाला मारा कि हाथी पीछे को भाग निकला। उसके भागने मे पहाडी फौज के सैकड़ों आदमी कुचल गये। हण्डूर का राजा भी इस चपेट मे आकर जख्मी होगया। उधर सिख लोगों ने हल्ला किया। इससे केसरीचन्द मैदान छोड़ कर भागने लगा किन्तु उदयसिंह ने दौड़ कर केसरी-चन्द का सिर काट लिया और बर्छे की नोंक पर टाग कर ले आया।

यह घटना संवत १७५८ वि॰ की है।

गुरु जी कवि लोगों की भी बडी कदर करते थे। उनके दरबार मे अनेकों बड़े २ कवि थे। जिनकी वीर रस की कवितायें सुनकर सिखों की भुजायें फडक उठती थीं। कविता का लोगों को यहाँ तक शौक हुआ कि उनके रिसाले मे भी कई आदमी अच्छे कवि हो गये।

कवि लोगों की कथा

कहा जाता है कि चन्दननाथ जोगी धनुप विद्या मे भी निपुण था, उसने गुरु जी के भारी भर-कम धनुप को देखकर कहा, महाराज यह कभी काम भी आता है, या यों ही प्रदर्शन के लिये है। यह काम आता हो तो चला कर दिखाओ गुरुजी ने धनुप को सधान कर ऐसे जोर से चलाया कि उससे छूटा हुआ तीर तीन कोस के फासले पर जाकर गिरा। चन्दननाथ ने भी तीर छोडे किन्तु उसके तीर कोस, सवा कोस से आगे नहीं गये। उस समय दरबार मे कुछ राजपूत सरदार भी बैठे थे। उन्होने भी अपने बल की परीक्षा दी किन्तु गुरुजी के बल और कौशल को भला बेचारे कहाँ पा सकते थे?

शस्त्र कौशल परीक्षा

हिन्दू धर्म और देश जाति की रक्षा के लिये तो उन्होंने अपना सब कुछ कुरबान कर ही रक्खा था। भला वे स्त्रियों की रक्षा के लिये कौनसा संकट अपने ऊपर नहीं ले सकते थे। एक दिन जबकि वे बैठे हुए थे उनके कानों मे "दुहाई है। गुरुजी की दोहाई है।" शब्द पड़े। जब जाच की गई तो पता चला कि एक ब्राह्मण जिसकी कि औरत को यवन छीन ले गये हैं। चिल्ला रहा है। उसकी मदद किसी ने भी नहीं की। गुरुजी ने उसी समय ब्राह्मण स्त्री की वापिसी के लिये अपने पुत्र अजीतसिंह को बुलाकर आज्ञा दे दी कि पुत्र अभी 'बसी' के पठान जाबरखा पर चढाई करो और उसके यहाँ से इस दीन की स्त्री को वापिस लाओ।

स्त्रियों की रक्षा

अजीतसिंह जी ने सौ सवासौ आदमियों को साथ ले जाकर सूर्योदय से पहले ही बसी पर धावा बोल दिया। नगर का फाटक तोडकर सिख पठान के महलों मे घुस गये और उसे बाध कर तथा ब्राह्मणी को लेकर आनन्दपुर आये। कुछ पठान मारे भी गये। ब्राह्मणी उसके मालिक के हवाले करदी गई।

एक दिन भयकर युद्ध मुगल बादशाह की सेनाओं से होना है। इस बात को गुरुजी खूब जानते थे और वह यह भी जानते थे कि घोर सकट भी आने वाला है। अत समय समय अपने साथियों की परीक्षा अवश्य लेते थे। खालसा पंथ स्थापित होने के बाद इस ओर से वे खूब सतर्क रहे कि कोई ऐसा आदमी हमारे दल मे शामिल न हो जाय जो समय पड़ने पर कच्चा निकले या दगा दे जाय। धर्म के मामले मे भी वे उन्हीं लोगों को पंथ खालसा में

परीक्षा

शामिल करते थे। जो पूर्णतया सिख सिद्धान्तों के पालन के योग्य दिखाई देते थे। हँसा नाम के एक प्रसिद्ध कलाकार को जिसने कपड़े पर दूसरा सूर्य बनाने की योग्यता प्रदर्शित की थी उस समय सिख बनाया जिस समय कि उसे अपनी जैन मनोवृति भूल के रूप मे मालूम हो गई।

एक बार रवालसर के मेले से होते हुए गुरु जी मंडी आए। जहाँ राजा ने बहुत आवभगत की। गुरु जी ने भी उसको एक पुस्तक दी।[1]

मंडी से आनंदपुर की ओर आते हुए कलमोठ के राजा को भी उचित दंड दिया उसने सिख लोगों से वह भेंट लूट ली थी, जिसे सिख-जन गुरु जी के पास लेजा रहे थे। गुरु जी ने पहले साहबजादे अजीतसिंह जी को कलमोठ पर फौजें देकर भेजा किन्तु ज्वालामुखी का विजय भारती कलमोठ की मदद को ५०० नागा लेकर आ गया। गुरु जी इस समाचार को सुनकर स्वयम भी कलमोठ पहुचे। राजा तो लड़ाई में हार ही गया किन्तु लौटते हुये गुरु जी ने ज्वालामुखी के विजय भारती को भी सबक दिया।

शाही सेना से युद्ध

भड़ैत भाट और कवियों ने राजपूतों को भले ही सिर पर चढ़ा दिया हो, उनकी प्रशंसा के पुल बांध दिये हों किन्तु हमे तो मुगल काल मे एक उदयपुर के राणाओं को छोड़ कर उनके कारनामे भारत की आजादी विरुद्ध ही दिखाई देते हैं। अपनी रियासतें भी जो आज दिखाई देती हैं, इन्होंने कोई शूरता के साथ नहीं बचाई थीं। कुछ ने तो अपनी लड़कियाँ देकर अपने राज्यों को बचाया कुछ ने गुलामी बजाकर कुछ रियासते प्राप्त कीं। पजाब ही नहीं सारे भारत मे ही इनकी ऐसी ही मनोवृति रही। दक्षिण मे मराठों के दबाने के लिये मुगलों ने इनका उपयोग किया। आसाम की स्वतंत्र रियासतों की स्वाधीनता अपहरण कराने ये गये। व्रज के भरतपुरिये जाटों को जो मुगलराज्य की नींव खोद रहे थे कमजोर करने यही राजपूत पहुँचे थे। गुरु गोविन्दसिंह जी जैसे धर्म-रक्षक और देश सेवक के विरोध पर भी इन्हीं ने कमर बांधी। हालांकि गुरु जी सदैव इनके दुख मे इनकी मदद करते थे और सहायता भी देते थे।

शिवालक के राजपूतों से अपने ही देश में पैदा होने वाले और अपने ही धर्म के रक्षक गुरु गोविन्दसिंह का प्रताप नहीं देखा गया और अब उन्होंने अंतिम रूप से गुरु जी को मिटवाना तय कर लिया। इसलिए उन्होंने औरंगजेब के नाम एक पत्र इस आशय का लिखा :—

माडलिकों की हैसियत से हमारा यह फर्ज है कि हम आपको उस खतरे से आगाह कर दे जो मुगल सल्तनत को बर्बाद करने के इरादे से गुरु तेगबहादुर के बागी लड़के गोविन्दसिंह ने पैदा किया है।

पंथ खालसा के नाम से उसने एक ऐसा दल तयार किया है। जो आचरणों और वेशभूषा मे हिन्दू और मुसलमान दोनों से नहीं मिलता है। गुरु गोविन्दसिंह मुसलमानी हुकूमत के विरुद्ध जोरों से प्रचार करता है। यहाँ तक कि उसकी ओर से हम भी आपको विद्रोही बनाने का प्रयत्न किया गया है।"

कहा जाता है इस पत्र का जब कोई शीघ्र ही फल नहीं निकला तो अजमेरचन्द सब राजाओं का प्रतिनिधि होकर बादशाह औरंगजेब के पास पहुँचा और जितना भी उससे हो सका बादशाह के कान भरे। बादशाह ने इस समय कहा कि वह उस ओर से असावधान न था।

बादशाह ने अमीरखाँ, सैयदखाँ और दीनाबेग आदि को आनंदपुर पर चढ़ाई करने और

१ मंडी में जहां ठहरे थे वहां एक सुन्दर स्थान यादगार में बना हुआ है।

गुरु जी को जिन्दा पकड़ लाने के लिये हुक्म दे दिया और साथ ही सरहिन्द के हाकिम को सहायता देने की सूचना दे दी।

राजाओं का यह षडयंत्र गुरु जी से भी छिपा नहीं रहा और उन्हें यह भी मालूम हो गया कि औरंगजेब ने फोज रवाना कर दी है। अत गुरु जी ने भी बड़े धैर्य के साथ सेना इकट्ठा करना शुरू किया गाँवों में पत्र भेज दिये गये।

कहा जाता है जाट चौधरियों ने जो अब खालसा जी बन गये थे। अपने गाँवों के नौजवान लडकों को ही नहीं भेजा किन्तु युद्ध की सामिग्री भी भेजी। हजारों सिख शूरमा, आनन्दपुर मे आ एकत्र हुये। उधर मुगल सेना भी सरहिन्द और राजपूतों की सेना समेत एक लाख के करीब हो चुकी थी।

आनन्दपुर के ऊपर केसरिया और मुगल सेना मे नीला झडा लहराने लगे। नगाडों पर चोट पडी। सिखों के रणजीत नगाडे की धुनि से कलरव मच गया। मुसलमान सेनाओं ने अल्लाहो अकबर के बुलद नारों से रणघोष किया। इधर सिख वीरों ने "जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल" के गगन भेदी नारे से रिपु दल को जवाब दिया।[1]

वीर सिंहनियों ने किले के कगूरो पर चढ़कर मुगलों के टिड्डी दल को देखा तो उन्हे मौत के मुँह पर आया जानकर खूब हँसी। पाच दिन तक घमासान युद्ध हुआ जो पहले के तमाम युद्धों से भयंकर था। दोनों ओर के हजारो आदमी धराशायी हो गये, किन्तु सिख मुगलों की अपेक्षा बहुत कम मारे गये इस घमासान को देखकर गुरु जी ने एक जत्थे के साथ मुगल सेना पर आक्रमण किया। शाही सेना के एक फौजदार अजीमखाँ ने गुरु जी का मुकाबिला किया किन्तु गुरु जी ने तलवार से उसके दो टुकडे कर दिये। अजीमखाँ को गिरता देखकर पैदेखाँ नामी सेनानायक आगे बढ़ा, उसे भी गुरु जी ने मुल्के-अदम पहुँचा दिया।

गुरु जी की सेना मे सैयदबेग और मामूखाँ नामक दो मुसलमान सेनापति भी थे जो गुरु जी की ओर से मुगल सेना से प्राणपण से लड़ रहे थे। उनमे सैयदबेग ने जसवालिये हरीचंद को मार गिराया। दीनाबेग शाही सेनापति को मामूखाँ ने पछाड दिया। किन्तु खुद भी मैदान में काम आ गया।

इस दिन की लडाई मे अजमेरचन्द का दीवान मारा गया और खुद अजमेरचन्द जख्मी हो गया। इससे मुगल और पर्वतो लोगों म बड़ी बेचैनी फैली और दोनों सेनायें भाग खड़ी हुईं। मैदान सिखों के हाथ रहा।

इस युद्ध के बीच मे कुछ विचित्र बाते हुईं जिन्हे यहाँ देना जरूरी है। सिखों मे एक भाई कन्हैयाजी थे वह युद्धक्षेत्र मे पानी पिलाने का काम करता था। सिखो ने गुरु जी से उनकी शिकायत की कि महाराज कन्हैया जी तो तुरक लोगों को भी पानी पिलाते है हम उन्हे जमीन पर गिराते हैं और ये उन्हे पानी पिलाकर फिर हमारे मुकाबिले को सावधान कर देते है। कन्हैया जी ने कहा "मेरा काम तो पानी पिलाना है। मैं इसमे मित्र और शत्रु सब तुर्क और अतुर्क का भेद नहीं जानता। गुरु जी कन्हैया जी की इस बात से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने भाई जी को मरहम पट्टी का भी काम सौप दिया।

मुगल सेना में सैदखाँ एक प्रसिद्ध सेनानायक था। उसने गुरु जी की बहुत भारी प्रशंसा सुनी थी। खुद भी सत-प्रकृति का आदमी था। युद्ध मे भी उसने गुरु जी को देखा था। उसने वार भी किये

१ यह लडाई फागुन सवत १७५८ वि० में हुई।

थे किन्तु उसके वार खाली गये यह भी उसे आश्चर्य था। उसकी आत्मा बोल उठी, एक धर्म वीर के साथ लड़ाई ? और साथ ही उनके दर्शन के लिये उसकी आत्मा तड़प उठी।

एक दिन गुरु जी निर्भयता के साथ उसके डेरे मे पहुँच गये। और कहा भाई जिसका तुम सिर काटना चाहते हो वह तो. हाजिर है। सैदखॉं गुरु जी के पैरों मे पड़ गया बहुत देर तक धार्मिक मसलों पर बात चीत हुई। गुरु जी जब लौटे तो मुगल सैनिकों ने उन्हे घेरना भी चाहा किन्तु वे सफल नहीं हुए। दूसरे दिन सैद खां लापता था और सदा के लिये गुरु जी की शिक्षा से प्रभावित होकर शत्रु के दल से अलग हो गया।

बादशाह औरङ्गजेब को लड़ाई के फीके समाचार मिले तो उसने लाहौर और काश्मीर के सूबों को भी लिखा कि तुम लोग आनंदपुर और गुरु को मटियामेट कर दो।

इस संयुक्त सेना ने आनंदपुर को फिर घेर लिया। सिख शूरमाओं मे से सरदार शेरसिंह और नाहरसिंह ने रात के समय इस अतुल सेना मे जब कि वह निश्चित सो रही थी। घुसकर खलबली मचा दी और फिर साफ निकल कर अपने किले मे आ गये। हड़बड़ाहट मे पहाडी लोग और तुरक आपस मे ही एक दूसरे को दुश्मन समझकर मारने लगे और इस मारकाट मे मुगल सेनापति दिलगीरखॉं मारा गया।

रात्रि मे होने वाले इस नुकसान को देखकर सरहिन्द के नवाब ने राजा अजमेरचंद और भूपचंद को बहुत डांटा। जिसका प्रभाव यह हुआ कि पर्वतीय और तुरकों ने आज पूरे जोरों से आनन्दपुर पर धावा किया। गुरु जी बुर्ज पर से शाही सेनाओं के दलों को देख रहे थे। जब सेनायें काफी नजदीक आ गई तो गुरु जी ने तोपों में बत्ती लगवादी। तोपे एक साथ धुऑं उगलने लगीं। इससे शाही सेना की अपार चति हुई। लाचार मुगल सैनिकों को भी अपने तोपखाने के पीछे जाना पड़ा।

इस प्रकार का युद्ध कई दिन रहा। तोपों के धुओं से आकाश भर जाता था। चारों ओर अंधेरा छा जाता था। ऐसे समय साहबजादे अजीतसिंह जी ने अपने छटे हुए सिंहों को साथ लेकर मुगल सेना के पीछे से धावा मारा। तोपखाना पहले से ही मुगलों ने आगे कर लिया था। पीछे से आक्रमण हुआ। एक दम मुगल सेनायें घबरा गई और मैदान छोड़कर भाग गई। हजारों आदमी खेत रह गये।

कहा जाता है सरहिन्द और लाहौर के नवाबों ने बादशाह को लिख भेजा कि गुरु के साथी बड़े कट्टर और जान पर खेलने वाले हैं, हमारी सेनायें उन्हे परास्त नहीं कर सकतीं। वे तो लडाई मे मरने के ही उद्देश्य से शामिल हुए हैं। कोई वेतन भोगी तो है नहीं। "साधना या मौत" उनका यही उद्देश्य है। इसलिये उनका जैसा उत्साह हमारी सेना मे नहीं है।

हॉं आप अपार सेना समूह भेजे तो मुमकिन है कि इन लोगों को परास्त किया जा सके। इनके परास्त करने के मानी भगाने के नहीं हैं। ये भागे तो कभी नहीं। हॉं, दम रहने तक लड़ते हैं।

औरंगजेब का कोई जवाब आ नहीं पाया था कि पंजाब के समस्त मुस्लिम हाकिम और पर्वतदेश के हिन्दू राजा संयुक्त बल के साथ संवत् १७६१ वि० के चैत मास मे आनंदपुर पर फिर चढ़ आये। और आनंदपुर को इसी भांति घेर लिया। जिस भांति कि जल को काई घेर लेती है।

भीषण युद्ध

जिस समय संयुक्तदलने आनन्दपुरको घेरा, लड़ाई शुरू होगई। दुश्मनों ने तोपोंके मुंह आनन्दपुर की ओर कर दिये। सिखों ने भी तोपों का मोरचा लगाया।[1] और बड़ी बुद्धिमानी से ऐसी गोलदाजी

१. उस समय तोपों का कोई अच्छा विकास नहीं हुआ था।

की जिससे शाही तोपखाने का काम निकम्मा साबित हो गया और उसे पीछे हटाना पड़ा।

तीरदाजी मे गुरु जी और उनके साथी बहुत ही सिद्धहस्त थे। इसलिये मीलों तक वे किले पर से तीर फेंकते थे। इस तरह हजारो ही मनुष्यों का नित खातमा करते किन्तु तुरक सेना लाखों की संख्या में थी। लडाई चलते २ दो सप्ताह हो गये। अब तुरक सेना ने भी लडने की अपेक्षा घेरा डाले रहना ही अधिक उपयोगी समझा और बाहर का प्रबन्ध इतना जबर्दस्त किया कि परिन्दा भी आनन्दपुर से न बाहर जा सके और न बाहर से भीतर ही आ सके। इसका फल यह हुआ कि सिख लोग किले मे रसद के खतम हो जाने के कारण भूखो मरने लगे। इसलिये उन्होंने गुरु जी से कहा कि हमें इजाजत दीजिये कि हम एक साथ हमला करें और बश चल जाय तो बाहर निकल जॉय और शक्ति संग्रह करके फिर धावा करें। किन्तु गुरु जी चाहते थे कि कुछ समय धीरज धरें। इस तरह की जल्दी ठीक नहीं। दूसरी ओर जब शाही फौजी अफसरों और राजाओं ने गुरु जी को युद्ध मे परास्त कर सकना मुमकिन न देखा तो उन्होंने चालाकी और धोखे से काम लेना चाहा, उन्हे बादशाह औरङ्गजेब का डर दिल ही दिल में खा रहा था। और वे डरते थे कि यदि इस समय भी गुरु जी के विरुद्ध सफलता प्राप्त न कर सके तो बादशाह के कोप का मुकाबिला करना मुश्किल हो जायगा और विपत्ति का मुँह देखना पड़ेगा। इसलिये उन्होंने गुरु जी को कुरान और गौ की सौगन्ध खाकर यह यह सन्देश भेजा कि यदि गुरु जी आनन्दपुर को छोडकर कुछ दिनों के लिये और स्थान पर चले जावे तो शाही सेना और पहाड़ी राजे अपनी २ सेनायें लेकर चुपके से लौट जावेंगे और इस तरह वह बादशाह के सामने भी सुर्खरू हो सकेंगे। साथ ही उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया कि गुरु जी के आनन्दपुर से निकलने पर वह किसी किस्म का उनको और उनकी सेना को कष्ट नहीं पहुँचायेंगे।

सिखों ने गुरुजी से कहा यह मौका अच्छा है। किन्तु वे स्पष्ट देख रहे थे कि दुश्मनों के दिल में दगा है। इसलिये उन्होंने अपने सिखो को धैर्य रखने के लिये कहा, परन्तु किसी ओरसे खाने पीनेका सामान न पहुँचने के कारण आनन्दपुर के अन्दर भूख से कष्ट बढ़ रहा था। जिससे एक प्रकार की घबराहट सी हो गई और कुछ कच्चे दिल वाले आदमियों ने गुरु जी से प्रार्थना की कि जब ये लोग कुरान और गौ की कसमें खा रहे हैं तो इन पर विश्वास कर ही लेना चाहिये। गुरु जी के धैर्य देने पर भी जब कई एक ने जिद की तो उन्होंने कहा, मैं इसको स्वीकार करने के विरुद्ध हूँ, परन्तु जो इस समय मेरी आज्ञा का उलंघन करके चला जाना चाहते है, वे मुझे एक पत्र पर यह लिख दे जॉय कि वे मेरे सिख नहीं। कहते हैं कि इस समय चालीस के करीब आदमियों ने इस प्रकार का बेदावा लिखा और आनन्दपुर को छोड गये।

कुछ समय घेरा और पड़ा रहा। सिखों ने कष्ट बढ़ता देखकर आपसे फिर कहा इस पर उन्होंने आनन्दपुर को छोडने का इरादा कर लिया।

आधी रात गुजर जाने के बाद गुरु जी अपने परिवार और साथियों सहित किले से निकले। बीच मे स्त्रियाँ थी, गुरु जी ने एक व्यूह बना लिया। जिसके आगे के रक्षक आप और पीछे के साहबजादे अजीतसिंह जी थे। दाये बांये भाई मनीसिंह और उदयसिंह जी थे। तुरक और राजपूत सेना ने गुरु जी के किले से निकलने की खबर सुनते ही अपनी तमाम कसमों और वायदों को तत्क्षण ही भुला दिया और धावा बोल दिया। साहब अजीतसिंह पीछे से वैरी दल को रोकते हुये शनैः शनैः पीछे की ओर अपने आदमियों को बढ़ाते रहे। इस प्रकार शत्रु का मुकाबिला करते हुये और पीछे को हटते हुये सरसा नदी तक अपने साथियों को ले पहुँचे। उस समय सरसा नदी बड़े जोरों पर थी। दूसरी ओर

तख़त केसगढ़ साहिब आनन्दपुर

दमदमा साहिब साबो की तलवडी

शत्रुगण गुरु जी और उनके साथियों को पकड़ने के लिये हल्ले पर हल्ला बोल रहे थे, नदी के दूसरे किनारे पर रोपड़ आदि ग्रामों के मुसलमान राजपूत और राघड़ गुरु जी को घेरने के लिये मौजूद थे। इस गड़बड़ की हालत मे गुरु जी ने अपनी धर्म पत्नियों को भाई मनीसिंह जी के साथ देहली की ओर चले जाने की आज्ञा कर दी। और जब सरसा के पार उतरे तो दोनों ओर से हो रहे शत्रु के हल्लों के कारण सब एक स्थान पर इकट्ठे न रह सके। गुरु जी कुछ सिखों और दो बड़े साहबजादों के साथ एक ओर को पड़ गये और गुरु जी की माता और छोटे साहबजादे उनसे अलग हो गये। किनके साथ क्या बीती यह हृदय द्रावक वर्णन आगे के पृष्ठों मे दिया जायगा। यह घटना सम्वत १७६१ वि० की है। मय साथियों के गुरु जी उसी दिशा में चमकौर नाम के एक ग्राम मे पहुँचे। जहाँ के एक जागीरदार ने आपको अपनी हवेली में रहने के लिये स्थान दिया।

चमकौर का युद्ध संसार के युद्धों मे एक विचित्र युद्ध है। शाही सेना और इर्दगिर्द के ग्रामीण जिनका कोई पार नहीं और जो गुरु जी के पीछे पडे आ रहे थे ने लाखों की तादाद मे एक छोटे से गॉव को घेर लिया, और उधर गुरु जी के साथ केवल चालीस सिख थे। किन्तु कोई घबराहट नहीं, कोई चिन्ता नहीं। सभी हथेली पर सिर लिये तैयार खड़े है। गुरु जी ने ८ सिखों को हवेली के पार्श्व की रक्षा के लिये नियत किया जिससे कोई ऊपर न चढ़ आये। भाई कोठासिंह और मदनसिंह को दरवाजे और आत्मासिंह और मानसिंह को पहरे पर। गुरु जी स्वयम दोनों साहबजादों और भाई दयासिंह और संतसिंह समेत हवेली पर से तीर बरसाने लगे।

चमकौर युद्ध

मुगलों का एक दस्ता हवेली पर हल्ला करने के लिये बढ़ा, किन्तु हवेली पर से वह सनसनाते तीर आये कि बीच मे ही मुगल सन के पौने से बिछ गये। दूसरा आया, तीसरा आया, और फिर दिन भर यही हालत लाश पर लाश पड़ गई।

जब कि दोपहर ढलने को था, मुगल नायकों ने मीटिंग की और तय किया कि अब की बार चुने हुए शूरमाओं का दस्ता हवेली पर आक्रमण करे इसलिये खिजाखॉ, गुलेरखॉ और नाहरखॉ आदि वीर आगे बढ़े। नाहरखाँ जो पौड़ी लगाकर हवेली पर चढ़ जाना चाहता था। उसके माथे मे गुरु जी ने हवेली पर से ऐसा तीर मारा कि वहीं छटपटा कर प्राण दे बैठा। यही गति उसके अनुयायी गैरतखॉ की हुई। ख्वाजा मरदूद दीवार की आड़ मे छिप गया।

गो कि बाहर हजारों लाशें मुगलों की पड़ी थीं किन्तु सिख भी पूरे चालीस ही बचे रहे हों सो बात नही, अब तो उनमें से भी केवल बीस ही बाकी रह गये थे। सिख हवेली पर से ही वार करते थे। यह बात नहीं है वे चार चार और पाच पाच के दल बनाकर नीचे उतरते और शत्रुओं के गोल पर इस प्रकार झपटते, जिस प्रकार बाज चिड़ियों पर झपटता है। अकेले भाई मुहकमसिंह ने हजारों मुगलों को धराशायी कर दिया था, यही हालत प्रत्येक योद्धा करता था। जिस समय हवेली मे से वाहि गुरु जी की फतह कहकर और चमचमाती तलवार लेकर सिख मुगल सेना मे तैरता था। एक हड़बड़ी सी मच जाती थी। प्रत्येक सिख के ऊपर तीर बर्छे और तलवारों के वार होते थे, किन्तु वह वीर तब तक लड़ता था जब तक उसके शरीर की चिट्टी चिट्टी न उड़ जाती थी।

इस प्रकार की भयकर और अनुपम मार काट मचाकर जब गुरुजी के बीस सिख शहीद हो गये।[1]

---

१. इनमे भाई कोठासिंह, मदनसिंह पहले जत्थे को लेकर बाहर गये थे। इनके पीछे खजानसिंह, दानसिंह, ध्यानसिंह

तब बड़े साहबजादे अजीतसिंह जी ने अपने पिता से नीचे उतरने की आज्ञा मागी। गुरु जी ने अपने पुत्र को अपने ही हाथों से अस्त्र शस्त्र से उसी प्रकार सज्जित किया जैसे कोई पिता व्याह के अवसर पर अपने पुत्र को सजाता है। इस पर अजीतसिंह जी ने कहा मेरा नाम अजीतसिंह है। आपकी कृपा से किसी से जीता न जाऊँगा और यदि जीता गया तो फिर लौट जीता न आऊँगा।

पांच सिखों आलमसिंह, जवाहरसिंह, ध्यानसिंह, सुक्रपालसिंह, और वीरसिंह के साथ अजीतसिंह जी हवेली के बाहर आये। और वहीं से आते ही मेघों की घटा में जैसे बिजली चमकती है, उसी प्रकार सनसनाते तीरो से शत्रुओ पर उन्होने वार किया। फिर तीरों के निपटने पर और शत्रु के निकट पहुँचने पर कराल काल की जिह्वा की तरह से लपलपाती हुई उनकी तलवार शत्रुओं का रक्त पीने लगी। शत्रु संभलने भी न पाता था कि उसका सिर गेंद की तरह जमीन पर दिखाई देता था। दोनों हाथों से दो तलवारे इस फुर्ती से चला रहे थे कि शत्रुओ को यह देखने का भी मौका नहीं लगता कि हम किस स्थान पर वार करें। नीले बादलों मे जिस प्रकार बिजली की चमक की लहर दिखाई देती है। वही हालत अजीतसिंह जी की तलवारे कर रही थीं। देखने वालों को ऐसा मालूम होता था मानो अनेकों तलवारें घूम रही हैं। जिधर-जिधर भी उनपर मुगल दल पिल कर पडता उधर ही मैदान साफ हो जाता था।

भारत के इतिहास मे जो जौहर अभिमन्यु ने कौरव दल मे दिखाये थे। वही जौहर तुर्क दल मे आज अजीतसिंह दिखा रहे थे। एक ही घटे मे जब हजारो लाशे बिछ गई तो मुगलों के चुने हुए सरदारों ने घोड़ों का व्यूह बना कर साहबजादे को घेर लिया। और एक ही साथ तीरों और बर्छों की इतनी वर्षा की जिससे अठारह वर्ष का वह बहादुर नौजवान ढँक गया। फिर भी उसने जोरों का एक अट्टहास करके नारा लगाया "वाहि गुरु जी का खालसा और वाहि गुरु जी की फतह।

हवेली के ऊपर अपने वीर भाई के जौहरों को देख कर साहबजादे जुझारसिंह जी का भी खून उबल रहा था और छाती फूल रही थी। भाई को शहीद होते देखकर वे भी तुरन्त ही बोले, गुरु मुझे भी आज्ञा दीजिए ताकि मैं भी भाई की भांति शहीद बनूं। गुरु जी ने अपने हाथों से उन्हे सजाकर सामने दिखाई देनेवाली साक्षात मृत्यु के मुकाबिले भेज दिया। बालक जुझार हवेली से खटखट उतर गया। साथ मे केवल पाच सिख, अपार शत्रु समूह मे फूल सा साहबजादा। पीठ पर तरकश कमर में तलवारें और हाथों मे धनुष। शत्रु उसे तमाशे के रूप मे देख ही रहे थे कि उनपर तीरो की वर्षा होने लगी। अनेक लोथे मिनटों मे ही बिछ गई। मुगलों के कई दस्ते जुझारसिंह पर टूटे। झट-पट दोनो तलवारे निकाल लीं। देखते ही देखते कितनों के धड़ सिर से अलग करता हुआ वह वीर सिंह-शावक की तरह झपट्टे मारता हुआ आगे बढ़ने लगा।

अकेला जुझार और हजारों मुगल आगे बढ़े। घेरा डालकर बीच मे दे लिया और चारों ओर से पकड़ लो पकड लो की ललकार सुनाई देने लगी। शत्रु चाहते थे, किसी प्रकार यह बालक जिन्दा उनके हाथ पड़ जाय परन्तु शहादत के लिये मैदान में आया जुझारसिह हर तरफ लपक-लपक कर पडता था। जिससे शत्रू का बहुत नुकसान होने लगा। यह देख चारों ओर से एक साथ बर्छे, तीर, तलवारों की उन पर

और मुहर्नसिह थे। दूसरे जत्थे में जिसका कि नायकत्व हिम्मतसिंह करते थे। ईश्वरसिंह और देवसिंह आदि थे। मुहरसिंह, करतारसिंह, आनन्दसिंह, लालसिंह, केसरसिंह और अमोलकसिंह के जत्थे ने मुगलो के उस हमले का सामना करते हुए शहीदी पाई थी। जो एक भारी वेग से हुआ था।

झड़ी लग गई। कधे, मस्तक, जंघा और सीने पर खचाखच वार हुए। इधर पुत्र के तलवार और वर्छों के नीचे टुकडे-टुकडे हो रहे थे। उधर पिता गुरु गोविन्दसिंह हवेली पर से उसे धर्म के लिये शहीद होते देख कर वाहि गुरु का धन्यवाद कर रहे थे। पुत्रो ने रणभूमि मे खिडे माथे जान दी। इतने मे सन्ध्या हो चुकी थी, अंधेरा होने से लड़ाई न चल सकी। मुगल नायक अगले दिन के लिये जाशीला प्रोग्राम बनाने की फिकर मे क.फी रात तक जागते रहे किन्तु ठंडी-ठंडी हवा के झोंके लगने से सेना सारी सो गई। इधर सिख लोगों ने जो तादाद मे केवल पॉच ही वचे थे। गुरुजी से कहा, हम अपने लिये नहीं और आपके लिये भी नही। किन्तु अपने देश और धर्म के नाम पर प्रार्थना करते हैं कि इसी रात मे आप यहॉ से निकल जाये। आप जिन्दा रहे तो हमारा कुछ भी नहीं बिगडा है और यदि आप काम आ गये तो आपके कार्य को पूर्ण सफलता तक पहुँचाना मुश्किल हो जायेगा। भाई सतसिंह जी ने कहा महाराज मैं आपके कपड़े पहन कर यहॉ रहता हूँ। आपसे वहुत कुछ मेरे चेहरे के मिलने की वजह से तुर्क सेनापति यह जान भी न सकेगे कि गुरु चला गया।

चूँकि यह सर्व सम्मत प्रार्थना थी। इसलिये गुरु जी मान गये और भाई दयासिंह, धर्मसिंह और मानसिंह के साथ हवेली के पिछले भाग से उतर कर निकल गये। 'जाको राखे साइयां वाल न बाका होइ' के अनुसार किसी ने उन्हे टोका भी नहीं। किन्तु चूँकि गुरु जी इस प्रकार चुपके से निकल जाना मुनासिव नहीं समझते थे। अत. लश्कर के उस पार जाकर गुरु जी के साथियों ने ही आवाज लगाई कि सिखों का गुरु निकला जा रहा है। इस आवाज को सुनकर मुगल सेना मे खलवली मच गई किंतु गुरु जी सहज ही वहॉ से निकल गये। इधर हवेली में जो भाई संगतसिंह और संतसिह नाम के सिख वाकी रह गये थे। उन्होंने धौंसा वजा दिया, इससे मुगल सेना मे हल्ला मच गया कि वाहर से सिख दल आ गये हैं। फौजों मे जब हड़वड़ी मचती है तो रात मे वह आपस मे ही लड़ मरती है। कमवख्ती के मारे मुगल सैनिक भी आपस में ही लडने लगे। जरा प्रकाश होने पर पता चला कि अपने आदमी आपस ही में लड़ मरे हैं। कुछ ही दिन चढ़े, मुगलो ने हवेलो पर फिर धावा किया। वाकी के दोनों खालसे कटारें लेकर वाहर निकल पड़े और मुगलों के छक्के छुडा कर शहीद हो गये। इनमें भाई सतसिंह को देखकर मुगलों को यह समझ कर वड़ी खुशी हुई कि हम अपने उद्योग मे सफल हुए उनका सिर काटकर चाव से वे अपनी छावनी मे भी ले गये किन्तु जब पहाड़ी राजाओं ने यह कहा कि यह तो कोई दूसरा सिख है तो वडे निराश हुए और कुछ सैनिक इधर उधर दौड़ाये। लेकिन गुरु जी का कुछ भी पता नहीं चला कि कहा चले गये। निराश होकर मुगल अफसरों ने सेना को वहा से आगे वढ़ने की इजाजत दी।

कहते हैं चमकौर में एक वहादुर जाट की नौ जवान लड़की बीबी सरनकौर थी। उसने समस्त सिखों की लाशों को रात मे इकट्ठा करके और उन्हे एक चिता मे रख कर आग लगा दी। आग का प्रकाश देख कर मुगल सैनिकों ने वहॉ आकर देखा तो उस लड़की पर इतने क्रोधित हुए कि दुष्टों ने उसे भालों की नोकों पर उठा कर जलती आग मे पटक दिया।

उधर चमकौर की हवेली से निकल कर जब गुरु जी फौजों को पार कर चुके थे और जब पीछे से कुछ मुगलों ने हल्ला किया था उस समय उनके तीनों साथी भी पिछड़ गये। चमकौर से निकलते समय जूते भी भूल आये थे। नंगे ही पैरों मीलों उन्हे चलना पड रहा था।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि आनन्दपुर से निकलने के वाद गुरु जी का सारा परिवार तितर-वितर हो गया था। माता गूजरी को उनका ब्राह्मण रसोइया अपने गांव सहेडी में ले गया। गुरु जी

के दो छोटे पुत्र जोरावरसिंह और फतेहसिंह जी भी माता जी के ही साथ थे।

महान बलिदान कभी कभी ऐसा होता है कि जिन लोगों के साथ हम काफी उपकार करते हैं स्वार्थवश वही हमारे प्राणों के गाहक हो जाते है। यही बात गंगाराम रसोइये ने भी की। उसने देखा माता जी के पास जवाहरात की एक पोटली है। झट रात के समय गायब कर दी और चोर चोर चिल्लाने लगा। चोर इस समय कहा से आये बताओ? पहिले कहीं रख कर भूल तो नहीं गये। परन्तु उसकी नीयत ही खराब थी इस पर नाराज होकर कहने लगा मैंने ही तो आपको अपने घर शरण दी और मुझी पर यह इल्जाम लगाती हो, माता जी उसके बदले हुए रुख को ताड़ गई, इसलिये उन्होंने कहा, भाई गगू मैंने तुम से यह सहज ही कहा था।

यह भी एक स्वत सिद्ध नियम है कि मनुष्य को एक पाप को छिपाने के लिये अनेक पाप करने पड़ते हैं। दुष्ट गगू ने सोचा अब मेरी इन लोगों से बिगड तो गई है, इससे क्यों न ऐसा करूं कि सरहिन्द के नवाब के पास जाकर इनके अपने यहा ठहरने की इतला कर दू ताकि एक तरफ तो यह कांटे मेरी राह से निकल जायगे दूसरी ओर इनके पकडवाने की एवज मे इनाम भी मिलेगा।

हृदयहीन गगू ने अपने गांव के नजदीक मोरडा मे जाकर पठानो को इतला कर दी कि गोविन्दसिंह की मा मय अपने दो पोतों के भाग कर मेरे यहाँ चली आई है।

मोरडा के हाकिम जानीखा और मानीखा दोनों साहबजादो को माता जी समेत पकड कर सरहिन्द ले गये और कडाकेदार शीत के दिनों मे ठडे बुरज मे उन्हे कैद कर दिया।

माता गूजरी ने वीर सिंहनी का हृदय पाया था। उन्होंने अपनी उमर मे बडे उतार चढ़ाव देखे थे। अपने पति (श्री तेगबहादुर जी) के कत्ल का दुख उन्होंने सहा था। अपने पुत्र गुरु गोविन्दसिंह के भी वैभव और पराभव के दिन देखे थे। वह आपतियो से कभी घबराती न थीं किन्तु उनसे अपने नन्हे और सुकुमार पौत्रों का ठण्ड में सिसकना न सहा गया, आँखों से आसू टपक पड़े किन्तु कड़ा हृदय कर के दोनों बच्चो को चादर ओढा कर अपने आगे बिठा लिया। और परम पिता परमात्मा से इस सकट को दूर कर देने की रात भर प्रार्थना करती रहीं।

सुबह होते ही एक पठान आया और उसने माता जी से कहा, माई इन बच्चो को मेरे साथ भेज दो दरबार मे नवाब साहब याद करते हैं। माता जी सब हाल समझ गई। उनका दिल उमड़ आया किन्तु आसुओं को रोकते हुए उन्होंने दोनो बच्चों को छाती से लगाया, चूमा और सिर पर हाथ फेर कर कहा, मेरे बेटे जाओ, वाहि गुरु की मरजी को पूरा करो, देखो कहीं धर्म को लाज न लग जाय।

दोनों भोले भाले बच्चे जिनकी उम्र केवल ९ और ६ वर्ष की थी। दरबार की ओर चल दिये। वजीरखा दरबार मे बैठा था। और भी अनेकों हिन्दू मुसलमान बैठे थे। बच्चो के अपूर्व कान्तिमान चेहरों को देखकर सब सहम गये। जिनके हृदय मे तनक भी इन्सानियत थी उनका हृदय भीतर ही भीतर रोने लगा। किन्तु वे बच्चे दोनों—राम लक्ष्मण की जोड़ी—शात औरचुप चाप खडे थे। दीवान सुच्चानन्द ने जो एक खत्री ही था कहा, बच्चो ये सामने नवाब साहब बैठे हैं, इन्हे सलाम करो।

जोरावरसिंह ने कहा, गुरु घराना केवल अकाल पुरुष के सामने सिर झुकाता है। इस उत्तर से वजीरखा मन मे बडा नाराज हुआ, कहने लगा गुरु गोविन्दसिंह तो लडाई मे काम आ गये। तुम्हारा अब कोई वारिस नहीं है, अत तुम मुसलमान हो जाओ मुसलमान होने पर तुम्हे सब प्रकार के सुख मिलेगे। नवाब कहता रहा किन्तु बच्चे कुछ न बोले। उसने फिर कहना आरम्भ किया, यदि तुम

मुसलमान बनना स्वीकार नहीं करोगे तो नाहक तुम्हारी जान जायगी। ससार मे जो बहुत सारे सुख है, तुम कुछ भी न भोग सकोगे। बच्चे फिर भी चुप रहे। नवाब ने फिर पूछा बोलो तुम्हे मुसलमान बनना मजूर है।

जोरावरसिंह ने जवाब दिया। हमे अपने धर्म से प्रेम करना जन्मघुट्टी के साथ पिलाया गया है। धर्म के ऊपर हमारे दादा ने सर कटाया। धर्म की खातिर हमारे पिता तमाम कष्ट झेल रहे है। जुल्म और अन्याय से डर कर हम अपने धर्म को हर्गिज नहीं छोड़ सकते है। सारा दरबार एक छोटे से बच्चे के मुँह से इस प्रकार की निर्भयता पूर्ण बातें सुनकर स्तभित रह गया। वजीरखा ने उन्हे फिर ठण्डे बुर्ज भेज दिया क्योकि उसका खयाल था। डराने धमकाने और कष्ट देने और फुसलाने मेरी बात को कबूल कर लेगे किन्तु दूसरे दिन जब उन्हे पुन दरबारमे बुलाकर पूछा गया तो वही जवाब मिला।

शेर मुहम्मदखॉ मालेर कोटले के सरदार की ओर मुखातिब होकर नवाब ने कहा, खान साहब आपके पिता को इन लडको के पिता ने लडाई मे मारा था और चमकौर मे तुम्हारा भाई नाहरखॉ भी मार दिया है। अब इनसे सम्बन्धियोंका बदला लेना चाहो तो ले लो। मुहम्मदखॉ बोला, मेरे बाप और भाई गोविन्दसिंह के हाथ मरे है। मैं उनका बदला गुरु गोविन्दसिंह से लड़ाई मे लूँगा। बाप के कर्तव्यों का बदला उनके दुध मुँह बच्चों से नहीं लेना चाहता यह बात इस्लाम धर्म के भी विरुद्ध है। अत मैं यह काम नहीं कर सकता। यह कह कर शेर मुहम्मदखॉ ने ठंडा सॉस और एक गहरी आह भरी। साथ ही मासूम बच्चों पर होरहे इस अत्याचार को न देखता हुआ दरबार से उठ गया। यह देख सुनकर वजीरखॉ का दिल कुछ नर्म होने लगा। किन्तु इसी समय दीवान सुच्चानद ने जो पास ही बैठा था कहा, "अफईरा कुस्तन वा बच्चाश रा निगाह दास्तन् कारे खिरद मन्दानीस्त।" चिरा के अकवत गुर्ग-जादा गुर्ग शवद अर्थात—सॉप को मारना और उसके बच्चो का पालना बुद्धिमानों का काम नहीं क्योंकि अन्त भेड़िये के बच्चे भेडिये ही होते है। यह बात सुनकर वजीरखॉ गुस्से से लाल पीला हो गया और उसने आज्ञा दी कि इन बच्चों को जिन्दा चिनवा दिया जाय। उसी समय ईटे और गारा मंगवा लिया गया और सामने के सहन मे बच्चो को खडा करके उनके इर्दगिर्द मीनार चुनना आरम्भ करा दिया। ज्यो २ रद्देया रद्दा चढ़ाता उन्हे फिर २ कर इस्लाम कबूल करने को कहा जाता परन्तु उनकी तरफ से केवल एक ही उत्तर मिलता। हम किसी भी हालत मे धर्म का त्याग नहीं सकते जब चढ़ता जा रहा यह मीनार गर्दनों तक पहुँचा तो साहब जादे जरा बेहोश से हो गये। और दैवात् तब ही वह मीनार धड़धड़ाता हुआ फट पड़ा और बेहोश साहबजादे जमीनपर गिर गये। उस समय तमाम उपस्थित आदमी काप उठे। वजीरखॉ की आज्ञा से बच्चों को उठाकर फिर ठंडे बुर्ज मे भेज दिया गया। जहॉ उन्हे मिठाई और दूध आदि देकर होश मे लाया गया[1]।

वजीरखॉ ने दूसरे दिन उन पर कुछ आदमियों को इस खयाल से नियत किया कि शायद इस प्रकार के डराने धमकाने से यह उनकी बात मान जाय किन्तु वे अपने धर्म पर अटल थे और कोई भी दहशत और लालच उन्हे सिख धर्म से न डिगा सका। एक इतिहासकार ने लिखा है कि साहबजादों को कष्टों से डराकर इस्लाम कबूल करने के वास्ते मनाने के लिये उनकी अगुलियों मे पलीते रखकर आग लगादी गई।

१. यह मत डाक्टर गडासिंह का है आम धारणा यह है कि बच्चे दीवारो में चुन दिये गये।

अन्त मे १३ पौष का खूनी दिवस आगया इस दिन बच्चों को दरबार में बुलाकर और बातों के साथ वजीरखॉ ने पूछा बच्चो तुम्हें छोड दिया जाय तो तुम क्या करोगे ? जोरावरसिंह ने जवाब दिया कि हम खालसा की फौजे एकत्रित करके तुम्हारे साथ लडेंगे। तुम्हे मारेंगे या खुद मर जायेंगे। वजीरखॉ ने फिर पूछा भला यदि युद्ध हार जाओ तो फिर क्या करोगे साहबजादे ने फिर जवाब दिया। वही फौजें इकट्ठी करना, तुमसे लडना। यह बात सुनकर दीवान सुच्चानन्द बोल उठा हजूर मैंने तो पहले ही अर्ज की थी कि भेड़ियों के बच्चे आखिर भेड़िये ही होते हैं। अभी तो यह दूध पीते बच्चे हैं। इस तरह जवाब देते हैं। जब बडे होंगे तो राज्य की ईंट से ईंट बजा देंगे। जल भुन तो वजीरखाँ जोरावर सिंह के उत्तरों से ही रहा था। परन्तु सुच्चानन्द के इन शब्दो ने जलती आग पर आहुति का काम दिया। उसको रोष चढ गया और गुस्से मे पुकारा, है कोई जो इन की गर्दन उडादे। यह सुनकर सबकी गर्दने झुकगई और जब किसी ओर से कोई उत्तर न मिला तो नौकरी से हटाये हुये दो जल्लादों ने अर्ज की अगर हमारे अपराध क्षमा कर दिये जाय तो हम यह कार्य करने को तैयार हैं वजीरखॉ ने यह बात कबूल करली। बस फिर क्या देर थी। जल्लादों ने उन मासूम बच्चों को जमीन पर गिराकर घुटनों के नीचे दबा लिया और बडी बेरहमी से तलवार से जिबह कर डाला।

माता गूजरी को जब यह समाचार मिले तो बुर्ज से गिर कर प्राण त्याग दिये। देहात मे टोडा-मल नामक एक प्रेमी सिख था, उसने आकर तीनों की लाशें प्राप्त कीं और उनका विधि पूर्वक सत्कार करा दिया।

रात भर चलने के बाद जब गुरु जी माछीवाडे के इलाके मे पहुँचे तो एक बाग में कुएं पर पानी पिया और वहीं एक ईंट का सिरहाना लगाकर सो रहे। कई दिन के थके हुए थे. दिन भर सोये। शाम को नित्य नेम करके फिर सो गये। सवेरे देखा तो बिछडे हुए तीनों सिख भी आ रहे हैं। बाग का मालिक भी एक सिख ही था उसे पता चला तो वह सबको घर लेगया और वहॉ उसने उनका खूब सत्कार किया। यहॉ उन्हे गनीखॉ और नबीखॉ नामके दो पठान मिले जो गुरु जी से काफी परिचित थे और उन मे श्रद्धा भी रखते थे। उन्होंने खबर दी कि आपकी खोज चारों तरफ हो रही है। इसलिये अच्छा हो कि आप फकीरों का जैसा बाना पहर ले। हम आपको यहॉ से ऐसी सूरत में अपना "उच्च का पीर" कह कर निकाल ले चलेंगे। गुरु जी ने इस बात को स्वीकार कर लिया। उस समय की प्रचलित प्रथा के अनु-सार वे पठान और गुरु जी के साथी सिख जिन्होंने कि फकीरी वेश ही बना लिया था। वहॉ से गुरु जी को पलग पर बिठाकर निकाल ले गये। जहॉ भी कोई पूछता गनीखॉ और नबीखॉ कह देते, ये उच्च के पीर हैं। किंतु लाल नानक गाम के दिलेरखॉ ने उन्हे रोक लिया और कहा कि मैं कैसे विश्वास करूँ कि ये उच्च के पीर है। हा, हमारे साथ खाना खाले तो यकीन कर सकते है। साथी सिखों ने कहा पीर जी तो एक ही बार जौ का दलिया खाते हैं। किन्तु हम तुम्हारे साथ जो कि उनके मुरीद हैं। खाना खालेंगे भला भाई भाई के साथ क्यों न खाना खायेगा ? इस पर दिलेरखॉ को भी यकीन हो गया और उन्हें चले जाने दिया। इस तरह चलते चलते जगराम नामक गाम मे पहुँचे। यहां का चौधरी राय कल्ला मुसलमान होते हुये भी गुरु जी मे बडी श्रद्धा रखता था। वह उनका आना जानकर बड़ा प्रसन्न हुआ और गुरु जी की बडी खातिरदारी की। दोनो खान भाई हेहर गाव से ही वापिस अपने गाव को चले गये। क्योंकि रास्ते में गुरु जी हेहर मे उदासी सत कृपाल के यहा कई दिन तक ठहरे थे।

यहॉ जगराम मे एक दिन गुरु जी बगीचे में बैठे हुए मन बहलाव के लिये कृपाण की नोंक से

घास के एक बूटे की जड़ खोद रहे थे। जड़ खुद ही चुकी थी कि उनको सरहिन्द में साहवजादों की शहीदी का हाल सुनाया गया। राव कल्लहा सुनते ही रो पड़ा और लोगों की आंखे भी झड़ने लगीं। गुरु जी ने नेत्र बन्द करके एक घड़ी परमात्मा का चिन्तन किया और फिर—"उस समय वहां पर जो अनेकों जन उपस्थित थे, उन्हें सम्बोधित करते हुये कहा "ईश्वर की अमानत अदा हो गई मेरे लिये वही चार पुत्र न थे किन्तु यह सब मेरे ही पुत्र हैं।" "इन पुत्रन के शीश पर वारि दिये सुत चार चार गये तो क्या हुआ यह जीयत कई हजार।"

जगराम से विदा होकर गुरु जी दीनागाव में पहुँचे। यहाँ एक सिख ने उन्हें एक बढ़िया घोड़ा भेंट किया। यहाँ पर शमीरे, लखमीरे के घर गुरु जी ने अपने डेरे लगाये थे। यहीं पर उनके पास औरङ्गजेब का एक पत्र भी आया था, इसके उत्तर में गुरु जी ने जो पत्र लिखा था वह जफरनामे के नाम से मशहूर है। यह पत्र सिख साहित्य में बड़े महत्व की चीज समझा जाता है।

यह पत्र गुरु जी ने भाई दयासिंह और ओर धर्मसिंह के हाथ भेजा था। उस समय औरङ्गजेब दक्षिण में था। यह पत्र उसे अहमदनगर में मिला।

सरहिन्द के नवाब वजीरखाँ को किसी से पता लगा कि गुरु जी 'दीना' में शमीरे के घर ठहरे हुए हैं तो, उसने शमीरा को पत्र लिखा कि गुरु को गिरफ्तार करके हमारे पास भेज दो। उसके बदले में तुम्हारी भलाई का भी ख्याल किया जायगा किन्तु शमीरे ने लिखा हमने जिस महापुरुष को ठहरा रक्खा है वह हमारा हादी है किसी का कुछ बिगाडता नहीं है। हम और तुम उनकी सेवा के लिये हर प्रकार से तत्पर हैं। शमीरे ने तो ऐसा बहादुरी का जवाब दे दिया किन्तु गुरु जी ने उस गाँव को कोई हानि न पहुँच जाय इस इरादे से वहाँ से प्रस्थान कर दिया और एक दूसरे गाव 'डिलवा', में पहुँचे जो जगलों में था। इतने समय में कुछ सिख भी गुरु जी के पास आ एकत्र हुए थे। जिनकी बढ़ती हुई तादाद की रिपोर्ट जिस समय वजीरखाँ को पहुँची तो उसने एक बड़ी भारी सेना गुरु जी के विरुद्ध भेज दी।

मुक्त सर की कथा

अब तक गुरु जी खिदराने पहुँच गये थे। और वहां पर अपना डेरा लगा दिया वह स्थान अब मुक्तसर के नाम से प्रसिद्ध है। जब शाही फौजे गुरु जी को ढूँढ़ती फिर रही थीं तो इनकी मुठभेड़ माझे से वापिस आये हुये उन सिखों से हो गई जो कि गुरु जी को आनंदपुर में बेदावा लिखकर दे गये थे। यहां इस तरह हुआ कि जब यह लोग बेदावा लिखने के बाद आनन्दपुर छोड़ कर अपने २ नगरों में पहुँचे तो वहां उनकी मा, बहिन और स्त्रियों ने इन्हें मुँह लगाने से इनकार कर दिया तथा गुरु जी को पीठ दे आने पर बहुत शर्मिन्दा किया। यहां तक कि चभाल नगर की एक वीर सिख स्त्री माई भागो ने गुरु जी के नाम का झंडा उठाकर स्वयम मैदान में जाने की तैयारी करली। जिस पर यह लोग फिर एकत्र होकर माई भागो के साथ गुरु जी की सेवा में पहुँचने के लिये तलाश में निकले कि खिदराने के निकट ही शाही सेना को देख कर उन्होंने इसे रोकने के लिए उस पर तीन ओर से गोलियों की वर्षा करनी शुरू कर दी। परन्तु शाही सेना का बहुत देर तक मुकाबिला करना थोड़े से आदमियों के लिये संभव न था। इससे तमाम के तमाम रणभूमि में घायल हो गिरे और अपने प्राण गुरु जी की सेवा में लगा दिये।

जग खत्म हो जाने और शाही सेना के वहाँ से चले जाने पर जब गुरु जी घटनास्थल पर पहुँचे तो आपने सिसकते हुओं में महासिंह जी को देखा गुरु जी ने उसके जख्मों को धोया और जब उसे कुछ होश आया तो उससे कहा तुमने अपना मुख उज्ज्वल कर लिया है। क्या इस समय

तुम्हारी कोई इच्छा है ? भाई महासिंह जी ने बडी नम्रता से विनती की कि सतगुरु मेरी केवल एक ही इच्छा है और वह यह कि आप हमारा लिखा हुआ बेदावा फाड दे । गुरुजी इस माग पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने वह पत्र अपनी जेब से निकाल कर उसकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये टुकडे २ कर दिया ।

मुक्तसर से चलकर देहातों मे प्रचार व उपदेश करते हुये गुरु जी लक्खी जगल मे पहुँचे । जगल में पहुचने से पहिले बैराडों के गाव छतियाना मे उन्हे उपदेश दिया । वे लोग गुरु जी को देखकर बडे खुश हुए । गुरु जी के निवास करने से लक्खी जगल मे मगल होने लग गया । उनके पास शिष्यों और प्रेमियों के दल आने लगे । कथा कीर्तन होने लग गया । इस जगल मे सैयद इब्राहीम नाम का एक मुसलमान फकीर रहता था । जब उसने सुना कि इसी जगल मे गोविन्दसिंह जी भी ठहर रहे हैं तो, वह गुरुजी की सेवा मे हाजिर हुआ और कई दिन तक ज्ञान चर्चा करता रहा । अत मे उसके दिल पर ऐसा असर पडा कि वह सिख धर्म मे दीक्षित हो गया, और सैयद इब्राहीम की जगह बाबा अजमेरासिंह कहलाने लगा ।

लक्खी जगल में

लक्खी जगल को पार करने के बाद गुरु जी ने साबो की तलवंडी मे जो कि एक गहन जगल से घिरा हुआ गॉव था डेरे डाले ।[1] इस स्थान से गुरु जी बडे प्रसन्न हुए और उसे आनंदपुर के दमदमे से मिसाल दी बस तभी से वह स्थान दमदमा के नाम से मशहूर हो गया ।

तलवडी मे डल्ला नाम का जाट जमीदार था एक प्रकार से वह २०-२० कोस तक राजा था । उसके यहा भी हथियार बन्दो का बडा गिरोह रहता था । वह गुरु जी की सेवा मे बराबर आता रहता था । कभी २ वह यह भी कहता महाराज हमे जग के समय याद करते तो मैं भी अपने आदमियो को लेकर कुछ सेवा करता । गुरु जी ने कहा अच्छा डल्ला, आगे समय आने पर देखा जायगा ।

एक दिन की बात है कि गुरु जी के पास एक सिख बन्दूक लेकर आया । उन्होंने उस बन्दूक को भर कर कहा, डल्ला तुम अपने किसी आदमी को कहो कि वह मरने के लिये सामने खडा हो । जब उसका कोई भी आदमी तैयार होता नजर न आया तो आपने कहा सिखो के पास कोई आदमी भेजो जो उन्हे निशाना बनने को बुला लाये । नजदीक ही सामने दो सिख खड़े पगडियॉ बाध रहे थे । जब उन्होंने गुरु जी की इच्छा को सुना तो वह उसी तरह आधी पगड़ियां लटकाये गुरु जी की ओर भागे और हरेक यह कहने लगा कि पहले मैं मरूंगा । मुझ पर निशाना अजमाइये । यह देखकर डल्ला चकित रह गया ।

यहॉ गुरु जी ने गुरु ग्रन्थ साहब मे गुरु तेगबहादुर जी की वाणियां को जोड़ देने के इरादे से धीरमल जी करतारपुर से ग्रन्थ साहब को लाने के लिये आदमी भेजा । किन्तु धीरमल नट गया और कहला भेजा, वह तो स्वयं महान गुरु है । अपने आप ही बिना देखे-क्यो नही ग्रन्थ साहब तैयार कर लेते ।

जिस प्रकार गुरु अर्जुन देव जी ने भाई गुरुदास जी को बोल २ कर ग्रन्थ साहब लिखाया था उसी प्रकार आपने एक सुन्दर खेमे के अन्दर बैठकर भाई मनीसिंह जी को सम्पूर्ण ग्रन्थ साहब लिखा, दिये । यह ग्रन्थ साहब दमदमा वाली बीड कहलाते हैं ।

चूंकि जफरनामा लेकर देहली गये अब तक भाई दयासिंह जी को बहुत लबा समय बीत चुका था । न तो भाई दयासिंह ही वापिस आये थे और न औरङ्गजेब की ओर से उनके जफरनामे का कोई उत्तर आया था । यह भी पता न चल सका था कि आया भाई दयासिंह औरङ्गजेब तक पहुँच भी सके हैं

[1] यह गाँव पटियाला राज्य में भटिंडा से पूर्वोत्तर ११ मील के फासले पर है ।

या नहीं। इस समय औरङ्गजेब बीमारी में भी ग्रस्त था। इसलिये गुरु जी ने दक्षिण जाकर बादशाह से भेंट करने का इरादा किया और उधर की ओर चल पड़े। अभी आप राजपूताने में बघोर के स्थान पर ही पहुँचे थे कि आपको दक्षिण मे बादशाह औरङ्गजेब के मरने के समाचार मिल गया। चूंकि दक्षिण जाने में और तो कोई आपका मतलब था नहीं इसलिये आप वहीं से पंजाब की ओर लौट पड़े। शाहजहानाबाद के नजदीक आये थे कि औरङ्गजेब के बड़े पुत्र शाहजादा मुअज्जम की ओर से भाई नन्दलाल जी पैगाम लेकर पहुँचे।

इस समय उसके छोटे भाई आजम ने दक्षिण में खुद बादशाह बनने की घोषणा कर दी थी। और वह बादशाही तख्त को सभालने के लिये राजधानी की ओर बढ़ रहा था। मुअज्जम उसके मुकाबिले की तैयारी कर रहा था और युद्ध में सहायता के लिये गुरु जी से, उसने याचना की थी। गुरु गोविन्दसिंह जाती दुश्मनियो से बहुत ऊँचे पहुचे हुए थे। हालाकि औरङ्गजेब ही दादा गुरु अर्जुन देव के प्राणों का गाहक हुआ था। उसके शाहजहादे की फौजों ने गुरु हरिगोविन्द जी को कष्ट देने के काफी यत्न किये थे। स्वयम औरङ्गजेब ने गुरु गोविंदसिह जी के पिता को शहीद किया था। उसके हुक्म से सरहिंद आदि सूबो और पहाड़ी राजाओं ने गुरु गोविन्दसिह पर आक्रमण किये थे। उसके एक सूबेदार ने गुरु गोविंद सिंह के बच्चों को जिवह करवा डाला था परन्तु अब जबकि उसका पुत्र अपने हक की रक्षा के लिये सहायता चाहता है तो गुरु गोविंदसिह ने अपने पास कोई बडी सेना न होते हुये भी उसके पिता पितामह की पुरानी सब बातों को भुलाकर हकदार का हक दिलाने के लिये सहायता करना स्वीकार कर लिया और अपने कुछ आदमी जाजऊ की रण भूमि मे उसकी सहायता के लिये भेज दिये। इस युद्ध में आजम मारा गया और मुअज्जम को विजय प्राप्त हुई।

इस युद्ध के बाद मुअज्जम बहादुरशाह के लकब से बादशाह बनकर आगरे को चला गया।

जौलाई सन १७०७ ई० के अत में गुरु गोविन्दसिंह जबकि आगरे के नजदीक विचर रहे थे शाही खान्दान से भेंट हुई। बहादुरशाह ने गुरुजी को दर्शन देने के लिये आमंत्रित किया ४ जमादी-उल अव्वल १११८ हिजरी २ अगस्त सन १७०७ को गुरु गोविन्दसिंह बादशाह से मिले उस समय उसने गुरुजी की सेवा मे एक जडाऊ दुपट्टा एक धुक धुकी एक जिगा जिन का मूल्य साठ हजार रुपया था अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये भेंट किये। प्रथम कार्तिक १७६४ विक्रमी को गुरु गोविन्दसिंह जी के धौलकी सिख संगत के नाम लिखे गये पत्र से प्रतीत होता है कि वह कार्य्य जो कि गुरुजी को पंजाब से इस तरफ लाये थे। उनके पूरे होने के आसार दिखाई न दे रहे थे और गुरु जी शीघ्र ही पंजाब को लौटने की आशा रखते थे। साथ ही इस पत्र में उन्होंने यह भी लिखा था कि जब वह कहलूर पहुँचे तो सर्वत्र खालसा हथियार बाध कर उनके पास पहुँचे।

इस पत्र के होते हुए उन इतिहासकारों की कल्पनाये स्वत कट जाती है जिन्होंने यह लिखा है कि गुरुजी पंजाब के सिखों से निराश होकर दक्षिण की ओर आये थे ताकि यहाँ राजपूतों और मराठों को अपने साथ मिलाकर अपने मिशन की सफलता के लिये यत्न करें। हमने ऊपर देखा है कि जिस समय औरंगजेब की मृत्यु हुई तो उस समय आप राजपूताने के मध्य में मौजूद थे इस समय पुराना बादशाह मर चुका था। और नया बादशाह अभी तक बना नहीं था राजगद्दी के लिये भाइयों मे लड़ाई की तैयारियां हो रही थीं अगर गुरु गोविन्दसिंह जी का मिशन राजपूतों व मराठों को अपने साथ मिलाकर कुछ करने का था तो इससे अच्छा मौका उन्हे और कौनसा मिलता परन्तु राजपूताने के देश में विचरते हुये

भी वे किसी राजपूत नरेश से मिलते दिखाई नहीं देते और ज्योंही बादशाह की मृत्यु की सूचना उनके पास पहुँचती है वे इस ओर अपना और कोई मन्तव्य न देखते हुए वापिस पजाब की ओर लौट पड़ते हैं।

प्रतीत होता है कि वह कार्य्य जो कि देश मे अमन कायम करने के यत्नों के सिवा—बादशाह के साथ—और कुछ नहीं हो सकता सिरे नहीं चढ़ा था और आपके पजाब की ओर लौटने का समय नहीं बन सका था कि बहादुरशाह को जयपुर की ओर बढ़ना पडा। जिसका कारण यह था कि बादशाह का खजाना खाली हो चुकने के कारण वह अपने उन सहायकों को इनामे और जागीरें देकर प्रसन्न नहीं कर सकता था। जिन्होंने कि उसे राज्य प्राप्ति मे सहायता दी थी। इस समय खानेखान ने तजवीज की की कि जयपुर पर धावा बोलकर कछवाहों के इलाके को जप्त कर लिया जाय। इस तरह से एक तो वह कछवाहों के काटे को सदैव के लिये राज्य की कुर्सी से निकाल सकेगा और दूसरे अपने सहायकों को उस इलाके को जागीरों के तौर पर बाट कर सतुष्ट कर सकेगा। परन्तु बादशाह जयपुर में जाकर इस कार्य्य को अपनी इच्छानुसार पूर्ण न कर सका था कि दक्षिण से समाचार आने लगे कि वहाँ कामबख्श ने बगावत खड़ी कर दी है। इसलिये तत्क्षण बादशाह को वहा से दक्षिण की ओर चला जाना पडा।

गुरु जी अपनी बातचीत के सम्बन्ध मे इस समय बादशाह के साथ २ ही आ रहे थे और इधर से दक्षिण की ओर साथ ही चल पडे। रास्ते मे वह हर समय बादशाही कैम्प के साथ नहीं रहते थे किन्तु कई २ दिन के लिये संगतों को उपदेश करने और शिकार आदि के लिये अलग हो जाते थे और कभी फिर कैम्प के साथ आ मिलते थे। इस समय उनकी बादशाह से बातचीत कोई खास फल न ला सकी। बुरहानपुर से आगे चलकर जब बादशाह हैदराबाद की ओर जाने के लिये नदेड़ की तरफ बढ़ा तो ऐसा प्रतीत होता है कि गुरुजी को बादशाह से होती चली आ रही बातचीत के मनोइच्छित फल लाती नजर न आई, इसलिये नदेड़ के मुकाम पर पहुँच कर गुरु जी ने अपने कैम्प को सदा के लिये बादशाही कैम्प से अलहदा कर लिया और अपने तरीके से अपने कार्य को पूर्ण करने के लिये साधन जुटाने का आयोजन करने लगे।

जिस समय गुरुजी जयपुर राज्य मे से गुजर रहे थे तो आपको नारायन के नजदीक दादूद्वारे मे जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। वहा के महंत जेतराम (चेतराम) ने आपका बहुत आदर सत्कार किया था और वहा से चलते समय आपको यह चेतावनी दी थी कि महाराज आप दक्षिण की ओर जा रहे हैं यदि कहीं आपको नदेड़ के स्थान पर जाना हो जाय तो आप वहा के वैरागी साधु के स्थान पर न जाय चूंकि वह नाटकी चेटकी साधु अपनी अदृष्ट शक्तियों से दूसरे साधु संतों का अपमान करके प्रसन्न होता है और इसमे अपनी बड़ाई समझता है।

अब जबकि गुरुजी नन्देड़ आ पहुँचे तो उन्हे माधवदास वैरागी का खयाल आया। वह किसी के नाटक चेटक से घबराने वाले तो थे ही नहीं। वे तो उन गुरु नानकदेव के धर्मावलंबी और उत्तराधिकारी थे जो सज्जन जैसे ठगों और कोडा जैसे राक्षसों और नूरशाजी जैसी जादूगरनी आदि को सीधे रास्ते पर लाने के लिये दूर से पहुँच पड़ते थे। गुरुजी दूसरे दिन प्रात ही (दिसम्बर सन १७०८ के अतिम सप्ताह मे) माधव वैरागी के स्थान पर पहुँचे। वह उस समय वहा पर मौजूद न था। गुरुजी उसका इंतजार करने के लिये उसके स्थान पर (एक ही) पड़े पलंग पर विराजमान हो गये और उनके सिख लगर

तैयार करने में लग पड़े। जिसमें कि उन्होंने मांस के देग भी चढ़ा दिये। वैरागी के निरामिष भोजी वैष्णव चेले घबरा उठे और अपने महंत को इस अजीब मेहमान के आने की सूचना देने के लिये उठ भागे। वैरागी चेलों की बातचीत सुनकर गुस्से से लाल-पीला होगया। शायद उसने इस अभ्यागत के हाथों अपनी महंती की महत्ता में हस्तक्षेप समझा हो या अपने वैष्णव स्थान में मांस-पकाने को अधार्मिक कृत्य. उसने अपनी अदृष्ट शक्तियों अथवा तंत्र मंत्र की पूर्ण ताक लगा दी गुरुजी को पलंग से गिराने के व्यर्थ प्रयत्न में। किन्तु गुरुजी की मनः शक्ति उससे कहीं अधिक थी इससे उसके तमाम प्रयत्न व्यर्थ रहे।

इस तरह भौंचक एवं लज्जित वैरागी अभ्यागत पर अपना गुस्सा निकालने और उससे बदला लेने के लिये अपने स्थान की ओर उठ दौड़ा। किन्तु जिसे वह जीतने आया था। उसके दर्शन करते ही स्वयं द्रवित हो गया। गुरु जी के सामने पहुँचा। इस समय का वार्तालाप अहमदशाह बटालिये की पुस्तक "जिक्रि गुरुआं वा इब्तिदाये सिंह व मजहबे ईशां" में इस प्रकार दर्ज है—

माधवदास—आप कौन हैं?

गुरु गोविन्दसिंह—वह जिसे तुम जानते हो।

माधवदास—मैं क्या जानता हूँ।

गुरु गोविन्दसिंह—अपने मन में जरा गौर से ध्यान करो।

माधवदास—(थोड़ा ठहर कर) तो आप गुरु गोविन्दसिंह हैं।

गुरु गोविन्दसिंह—हाँ

माधवदास—तो आप यहां किस आशा से आये हैं?

गुरु गोविन्दसिंह—मैं आया हूँ तुम्हें अपने धर्म में दीक्षित करके अपना सिख बनाने के लिये।

माधव—स्वागत मुझे स्वीकार है, मैं आपका बन्दा हूँ।

इस समय तक का बड़ा अभिमानी और अजित वैरागी माधवदास बड़ी नम्रता से गुरु जी के चरणों में गिर पड़ा और एक भी शब्द कहे बिना और गुरु जी के पंथ में दीक्षित होकर गुरु जी का सेवक बनना स्वीकार कर लिया।

वास्तव में तो वह गुरु जी के प्रथम दर्शनों को करते ही वह उनका हो गया था परन्तु अब उनके चरण स्पर्श से पारस का काम किया और वैरागी की कच्ची धातु से गुरु जी ने वैरागी के मर्म लोहे पर चोट लगा कर उस एक शस्त्र के काम में ढालने के लिये सिख धर्म की भट्टी में डाल दिया। उन्होंने उसे फ़ौरन एक शस्त्र धारी सिख का वेश धारण करा दिया और खालसा धर्म का अमृत चखा कर उसे पूर्ण रीति से नियमानुसार सिख धर्म में प्रविष्ट कर लिया तथा उसके अपने लिये कहे हुए उसी के शब्द अनुसार उसका नाम बन्दासिंह रख दिया। मुसलमानी इतिहासों और उनके आधार पर लिखे गये अन्य इतिहासों में जिस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह को गुरु गोविन्द या केवल गोविन्द करके लिखा है बन्दासिंह के नाम को भी प्रायः बन्दा करके लिखा है।

गुरु जी का देहावसान

बन्दासिंह के सिखधर्म में दीक्षित होने के दिनों में ही नदेड़ के मुकाम पर दो पठानों के आनि-ताता वार से गुरु जी सख्त घायल हो गये। आगरा के स्थान पर गुरु गोविन्दसिंह जी की बादशाह बहादुरशाह से मुलाकात और बादशाह की ओर से उनको एक बड़ी कीमत भेंट दिये जाने के

समाचार सरहिन्द मे पहुँचे तो वहा का हाकिम वजीरखॉ दिल ही दिल मे डरा कि बादशाह और गुरु जी के बीच जारी हो रही बातचीत की सफलता पर उसे गुरु के बच्चों का कातिल होने की वजह से सब से ज्यादा नुकसान पहुँचेगा इसलिये उसने गुरु जी को किसी तरकीब से खतम कर देने की विधि सोची और उनको कत्ल कर देने के लिये दो पठानों को नियत करके उनके पीछे भेज दिया। 'चतुर्युगी' ग्रन्थ से पता चलता है कि यह पठान पहले दिल्ली मे पहुँचे और वहा से गुरु पत्नी माता सुन्दरी से पता लगा कर दक्षिण को चल दिये। वह पहले से ही गुरुजी और उनके परिवार के जानकार प्रतीत होते है। इसीलिए ही उन पर न तो कोई शक माता सुन्दरी जी ने किया और नाहीं नदेड के स्थान पर गुरु जी के कैम्प मे पहुँचने पर वहाँ उन पर कोई शक हुआ। वह लगातार दो-चार दिन गुरु जी के पास आते जाते रहे परन्तु उनका दाव न लग सका। एक दिन शाम को जब कि गुरुजी के पास कोई ज्यादा सिख उपस्थित न थे और एक ही सेवादार जो वहा था ऊँघने लगा और स्वय गुरु जी की भी जरा झपकी लग गई तो, उनमे से एक पठान ने जमधर के वार से गुरु जी को घायल कर दिया। असल मे उसका निशाना गुरु जी का दिल था ताकि एक ही वार मे उनका काम तमाम हो जाय। परन्तु जमधर का निशाने पर न बैठने के कारण उसकी इच्छा तत्क्षण ही पूरी न हो सकी। इससे पेश्तर कि वह दूसरा वार करता गुरुजी ने पास ही पडी हुई कृपाण से उसको वहीं रख दिया। गुरु जी के आवाज देने पर जब सिख भागे हुए आये तो उसका दूसरा साथी भागता हुआ, सिखों की कृपाण का शिकार हुआ। जल्दी ही आपके घाव धोने और सीने का प्रबन्ध किया गया। दो ही चार दिन मे जख्म बाहर से पुरता हुआ सा प्रतीत होने लगा किन्तु इन दिनो बाहर से आई हुई एक मजबूत कमान किसी ने गुरु जी को दिखलाई और कहा कि इस पर चिल्ला मुश्किल से भी नहीं चढ़ाया जा सकता। जब गुरु जी ने कमान को जोर से खींच कर चिल्ला चढाया तो जोर अधिक लग जाने के कारण उनके घाव के टांके खुल गये और अतत कातिक सुदी ५ की रात्रि को इस असार ससार से प्रस्थान कर गये।

इन थोडे से दिनो मे ही बन्दासिंह ने सिख गुरुओं की शहीदियो और सरहिन्द मे गुरु जी के मासूम बच्चों के कत्ल और मुगलों के अनर्थ और सिखो को मिले हुये कष्टो के हाल गुरुजी से सुन लिये थे इससे उसका खून खोलने लग गया था।

परन्तु अब सरहिन्द की ओर से आये हुये पठानो के हाथो जब गुरु जी पर कातिलाना वार होता हुआ उसने खुद अपनी आखो से देखा तो उससे खामोश रहा न गया। उसने गुरुजी से पजाब मे जाकर जालिम हाकिमों के अत्याचारों को जमीन के साथ मिला देने और उनको सजा देने के लिये आज्ञा चाही। यहाँ यह कह देना भी प्रसग से बाहर न होगा कि अगर गुरुजी घाव लगने के कारण शारीरिक तौर पर अस्वस्थ न होते तो वे अवश्य ही स्वयम पजाब को चल पडते। जैसा कि उन्होंने अपने प्रथम कातिक सवत १७६४ वि के हुक्मनामे मे लोगों को लिखा था। बिलाशक अगर बहादुरशाह से हो रही बातचीत उनको दक्षिण की ओर न ले आती तो उन्हे आगरे से ही लौट पडना था। इसलिए अब मौजूदा हालत मे उन्होंने बन्दासिंह की विनती को स्वीकार कर लिया और सिखों की फौजी कमान भी उसके हवाले कर दी।

केवल सत और महात्मा ही नहीं हैं जिनसे कि मनुष्य को इस ससार मे वास्ता पडता है यहा वे लोग भी है जो धार्मिक तौर पर खुश्क, खुद पसन्द और जालिम होते है। उनका मन जुल्म और अन्याय के कार्य्यों को अबाधगति से करते रहने के कारण मलिन हो जाता है। स्वार्थपरता और पक्षपात से उनके

तखत श्री अविचल नगर हज़ूर साहिब
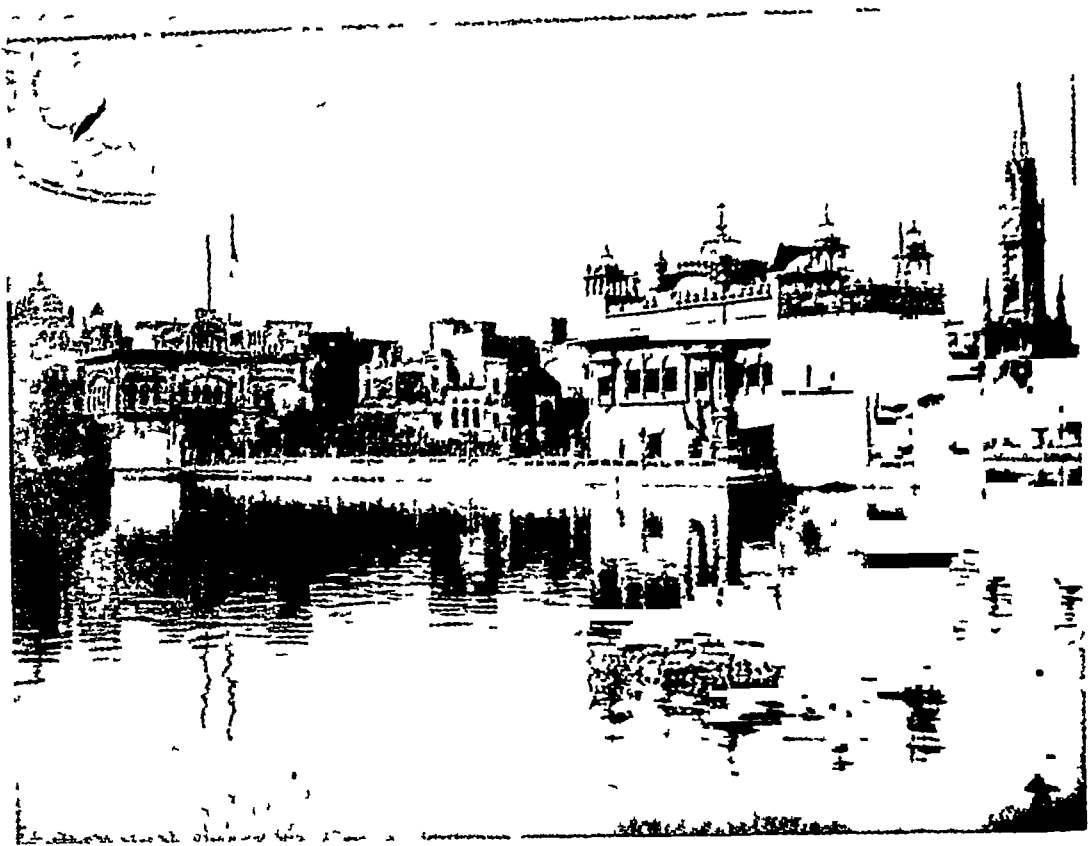
श्री हरिमन्दिर अमृतसर

ज्ञानचक्षु धुंधले हो जाते हैं जिसके कारण किसी शिक्षा ज्ञान, और शांति के सदेशो का उन पर कोई असर नहीं होता केवल कृपाण ही इस तमाम मल को दूर कर सकती है यही हालत १७वीं और १८वीं सदी के हाकिमों की थी। यही कारण था जिससे मुगलों और सिखों के सम्बन्ध में गुरु जी की ओर से अख्तयार किए हुये तमाम धार्मिक तरीके और अमन के लिये बात चीत के प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। अब केवल तलवार ही अंतिम साधन शेष था जिसको वर्तने का काम बन्दासिंह के नायकत्व मे खालसों को करना पड़ा।

गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन और सिद्धान्तों की झांकी

समय की जिस आवश्यकता ने गुरु गोविन्द सिंह जी को भेजा था। स्वयम गुरु जी ने ही अपने शब्दों मे और अपनी कृति विचित्र नाटक मे उस पर इस प्रकार प्रकाश डाला है।

"मैं अपना सुत तोहि निवाजो, पथ प्रचुर करवे को साजो ॥
जहा तहा तुम धर्म बिथारो। दुष्ट दोखियन पकड पछाडो ॥
याही काज धरा हम जनम। समझ लेंहु साधु सब मनम ॥
धर्म चलावन सत उबारन। दुष्ट सवन को मूल उपारन ॥
मैं हो नरम पुरख को दासा, देखन आयो जगत तमाशा ॥
जो मोको परमेसर उचर हैं। ते सब नरक कुण्ड में पर है ॥
मोको दास तवन का जानो। या में भेद न रच पछानो ॥"

यह कहने मे कोई अत्युक्ति नहीं कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से सिख गुरु नानकदेव और गोविन्द-सिंह के पहले पिछले दो हजार वर्ष मे तो समिष्ट रूप से कोई भी प्रयत्न नहीं हुआ था। धार्मिक दृष्टि से ईसवी सन् से ३००-४०० वर्ष पहिले जैन, बौद्धों ने सघ बनाये थे किन्तु फिर अठारहवीं सदी तक समाज की काया पलटने के लिये कोई भी सघ नहीं बने। गुरु तेगबहादुरजी के बलिदान के बाद गुरु गोविन्दसिंहजी ने ही खालसासघ की स्थापना की। आज हम ऐसे बहुत से सघ ससार मे देखते है। जिनके सदस्य कम्यूनिस्ट, नाजी, फासिस्ट, खुदाई खिदमतगार आदि कहलाते है। हम देखते है कि इन सबके कोई चिह्न (निशान) भी होते हैं। एक निश्चित वेश भूषा भी होती है। जैसे लाल पोशाक कम्यूनिस्टो की और सफेद टोपी कांग्रेसियो की है। यह बात इस युग में ही होती है सो नहीं। प्राचीन समय में भी ऐसा होता था। अनार्यों से अपने को पृथक रखने के लिये आर्यों ने जनेऊ का विधान रक्खा था। दक्षिण के राक्षस काली पोशाक पहनते थे। और वानर लोग कमर में एक लूम (रस्सा जैसा) बाधे रहते थे।

राष्ट्रीयता

गुरु जी ने भी जो भारतीय राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए सेना खडी की उसकी भी एक यूनीफार्म और डिसिप्लिन (वेशभूषा और रहन सहन) निश्चित की।

वेशभूषा का शरीर पर बड़ा असर पड़ता है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। देश के ढीले ढाले पहनावे में सैनिकता की बू भी शेष नहीं रह गई थी। मुगल और पठानों की विदेशी हुकूमत में अनेको वर्ष से रहने के कारण एक तो लोग वैसे ही निर्वीर्य हो रहे थे। दूसरे उन्होने अपना पहनावा ऐसे ढग का बना रक्खा था जिसमे रहने वाला आदमी युद्ध के तो किसी काम का हो ही नहीं सकता था। अत गुरु जी ने कच्छ धारण करने का हुक्म दिया।

पंजाब के आम लोग उस समय हाथो और पैरों मे चादी के कडे पहनाते थे। पजाब से लगे हुए राजपूताने की कई रियासतो मे अब भी लोग हाथ पैरो मे कडे पहनते हैं किन्तु इनकी रक्षा का कोई भी

साधन इनके पास न था अत गुरु जी ने लोह का कडा अपने खालसा लोगों के हाथ मे डलवा दिया। जिससे वे सदैव यह याद रक्खे कि अन्याय और अत्याचारों से लोहा लेने मे ही खैरियत है। प्रत्येक पराजित देश को शत्रुओं की ओर निरस्त्र किया जाता है। हारे हुए लोगों से सबसे पहिले हथियार रखवाये जाते हैं। अत गुरु जी ने अपने खालसाओं को विजयीभाव बनाये रखने के लिए एक कृपाण सदैव पास रखने का आदेश दिया।

ये उपरोक्त तीन चीजें क्षात्र धर्म से सम्बन्ध रखने वाली हैं किन्तु चूकि उनका संघ धर्मप्रधान सघ था, अत केश रखने की भी इजाजत दी। चूकि आरम्भ से ही गुरु लोग अपने केशों को रखाते चले आ रहे थे। प्राचीन भारत के तो प्राय सभी ऋषि मुनि केश रखाते थे अत केशोंको निर्मल रखने वाले कघे को भी खालसा चिह्नों मे शामिल कर दिया। केश, जहाँ धर्म प्रधान चिह्न था, वहाँ उससे राजनैतिक सफलता भी प्राप्त हुई। काबुल कधार से जो पठान आते थे। वह लबी डाढ़ियों से कुछ तगडे से मालूम देते थे। उनका सही जवाब दाढी और सिर दोनों ही जटाधारी अर्थात सेर का जवाब सवा सेर यह सिखों के केश साबित हुए। आज कच्छ सिलवार और पाजामे के नीचे, कृपाण कोट की जेब मे तथा कडा लबी आस्तीन मे छुप जाता है किन्तु केश ही है जो साक्षी देते हैं कि यह सज्जन खालसा जी हैं।

यह तो हुई उनकी राष्ट्रीय वेशभूषा की बात। इसके सिवा उन्होंने इस सेना के हृदय मे एक महान भाव पैदा करने की जो बात कही थी वह उनसे पहिले शायद ही किसी राष्ट्र-विधाता ने कही हो, उन्होंने कहा था, खालसाओ! अब तुम सब भाई भाई हो, तुम्हारे ऊपर मेरा सर्वाधिकार है। और मैं वह हूँ जिसे करतार ने अपने देश की सेवा करने, मर्यादाये स्थापित करने और दुष्टता को मार भगाने के लिए भेजा है।[1] अब तुम मेरी सतान हो और मैं तुम्हारा पिता हूँ। उनके इन शब्दों के ठीक माने यही है कि अब तुम राष्ट्र की सम्पति हो और समाज के हित के कामों मे मैं तुम्हारा उपयोग उसी अधिकार के साथ कर सकता हूँ जिसके साथ कि पिता।

किसी राष्ट्र का पतन तभी होता है जब उसके व्यक्ति चरित्रभ्रष्ट, स्वार्थी और निर्वीर्य हो जाते हैं। और जब पतन हो जाता है तो वह राष्ट्र पराधीन और परामुखापेक्षी हो जाता है। गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने जिन दिनों जन्म धारण किया था। उस समय देश राजनैतिक और धार्मिक दोनों प्रकार की सत्ताओं द्वारा पीसा और चूसा जा रहा था। उन्होंने जहाँ राजनैतिक दासता से मुक्त करने के लिए खालसा संघ को कृपाण और कच्छ से सुसज्जित किया। वहाँ उन्होंने यह भी कोशिश की कि देश के निवासी धार्मिक अन्ध विश्वासों से भी मुक्त हो जावे। इसीलिए उन्होंने अपने शिष्यों पर कुछ पाबन्दियां भी लगाई। हम यह कह रहे थे कि राष्ट्र व्यक्तियों के बिगडने से ही बिगडता है, और व्यक्तियों के ही बनने से बनता है। गुरु जी ने राष्ट्र निर्माण को दृष्टि मे रखकर व्यक्ति निर्माण पर भी खूब जोर दिया। उन्होंने मनुष्य के आचरण को एक नये साचे मे ढालने की कोशिश की। उन्होंने बन्दासिंह से कहा था कि "लूट के माल को सब मे बाट देना और लगोट का पक्का रहना। राज खालसा का स्थापन करना" इसी प्रकार जब लडाई मे सिख एक डोले को उठा लाए तो आपने पूछा आप लोगों ने इसमे बैठने वाली को पर्दा उठाकर तो नहीं देखा है। यदि ऐसा किसी ने किया होगा तो उसे खालसापन से

१ धर्म चलावन सत उबारन। दुष्ट सबन को मूल उपारन। (विचित्र नाटक)

खारिज कर दिया जायगा। सब ने विश्वास दिलाया हमे यह भी पता नहीं कि इसमे कौन है ? गुरु जी ने उसी समय उस डोले को मुस्लिम सेना में भिजवा दिया।

उनकी शिक्षाओं का खालसा वीरों पर ऐसा असर पडा था और वे इतने ऊँचे आचरण के व्यक्ति हो गये थे कि उनके विरोधियों को भी उनके आचरण की प्रशसा करनी पड़ती थी। मुसलमान इतिहासकार नासिरुद्दीन बिल्लोच ने लिखा है। "सिखों मे पर-त्रिया गमन का दोप नहीं है, वे झूठ नहीं बोलते, गरीब, बुड्ढे और स्त्री पर शस्त्र नहीं चलाते।"

वे देश की काया बदलने की उत्कट इच्छा रखते थे। पहाड़ी राजाओं से उन्होंने कहा था। आप लोग यदि गौरवपूर्ण पद प्राप्त करना चाहते है तो नूतनता अपनानी ही पडेगी, उन विचारों और खयालातों को हटा ही देना पड़ेगा। जिनके कारण हमारे देश का ह्रास हुआ है। इस सम्पूर्ण देश पर तुम्हारे ही बापदादे राज्य करते थे। आज तुम दूसरों के सहारे जीते हो। यदि अब भी आप संभल जाय और खालसा पंथ मे शामिल होजाय तो यहा से अन्याय और अत्याचार सहज ही मे मिटाये जा सकते हैं।

यद्यपि वे एक धर्माचार्य्य थे और स्वभावत धर्माचारी एक तन्त्र के समर्थक होते हैं किन्तु वे अपने देश मे प्रजातन्त्रीय भावनाओं को जागृत करना चाहते थे। अपने पाच प्यारों को खालसा सघ मे दाखिल करने के बाद आप स्वयम भी उनके सामने हाथ जोडकर खड़े हो गए कि अब आप मुझे भी इस पथ (सघ) मे शामिल करिये।

प्रजातन्त्र

आनन्दपुर मे जिस समय मुगल सेनाओं ने आपको घेरे मे दे लिया तो सिखों ने आप पर वहाँ से निकल चलने के लिये जोर डाला चूंकि आप समझते थे कि एक तो निरापद भाग चलना मुश्किल है दूसरे भागकर कोई लाभ नहीं होना है। फिर भी जब आपने देखा कि बहुमत निकलने के पक्ष मे है और वह अनुशासन को भी मानने को तयार नहीं है तो आप वहाँ से चल दिये। अगरचे इसका फल यह हुआ कि उनके चारों पुत्रों और मा को भी इस ससार से सदा के लिए विदा होना पडा किन्तु इतने पर भी उन्होंने इसी बात पर जोर दिया कि खालसा पथ जो करे वही मान्य है। बाबा बन्दासिह को अन्य आदेशों के साथ एक यह भी आदेश आपने दिया था कि जो भी कार्य करे उसमे खालसाओं की राय अवश्य ले लेना। उनकी मर्जी के विरुद्ध कुछ भी कार्य्य न करना।

वे इस प्रजातान्त्रिक खालसा संघ (पथ) मे विश्वास भी अपूर्व रखते ने उन्होंने औरंगजेब को जो पत्र लिखा था उसमे लिखा है —

"चिह मर्दी कि अखगर खामोश कुनी।
कि आतश दमीरा फिरोजा कुनी॥"

अर्थात "मेरे पुत्रों और अनेकों सिखों के मारे जाने से तू अपनी बहादुरी पर फूलता होगा किन्तु वे तो चिनगारियाँ थीं। बुझ गई तो क्या हुआ आग की भट्टी तो अभी धधक ही रही है।" कहने का साराश यह है कि खालसा (सघ) पथ तो नहीं मिट गया। जिसमे अजीतसिह, जुझारसिंह आदि जैसे खालसे ढाले गये हैं।

धार्मिक इतिहास मे यह भी आश्चर्य की बात है कि गुरु जी ने इस सघ को ही गुरु का पद भी दे दिया। ऐसा किसी भी देश के इतिहास मे हमारे पढ़ने मे नहीं आया किसी पीर पैगम्बर व धर्माचार्य्य ने अपने ही बनाये हुये शिष्यों के आधीन अपने को कर दिया हो और उनके सघ को गुरु पद भी बख्श दिया हो।

उनके भक्तों ने पूछा था, हे ! गुरु देव। जब आप किसी भी व्यक्ति को गुरु स्थापित नहीं कर रहे हैं तो हम गुरु-दर्शन कहाँ से कर सकेंगे। आपने कहा, "जो चाहे कि दर्शन करें तो वह जहाँ पर खालसा लोग इकट्ठे हो रहे हों अर्थात पंचायत जुड़ रही हो वहाँ जाकर अदब के साथ उनके दर्शन करे, उन्हीं मे गुरु को व्यापक माने।

"खालसा मेरो रूप हैं खास।
खालसे माँहि हौं करों निवास।
खालसा मेरो मुख से अग।
खालसे के हौं सदा सद् सग॥
खालसा मेरा इष्ट सुहृद।
खालसा मेरी कहियत विर्द॥
खालसा मेरी जात और पत।
खालसा सो मेरी उत्पत।
खालसा मेरो पिंड प्राण।
खालसा मेरी जान को जान॥
खालसा मेरा कई निर्वाह।
खालसा मेरो देह और साह॥
खालसा मेरो धर्म और कर्म।
खालसा मेरा भेद निज वर्म॥
खालसा मेरो सत् गुर तूरा।
खालसा मेरो सज्जन शूरा॥
खालसा मेरी बुद्धि अरु ज्ञान।
खालसा का हो धरो ध्यान॥
उपमा खालसे जात न कही।
जिह्वा एक पार न लही॥

× × × ×

या में रंच न मिथ्या भाखी।
पार ब्रह्म गुरु नानक साखी॥

(सर्वलोह)

इतना महत्व देते थे, वे अपने खालसा सघ को। इस खालसा मे जिसकी वे इतनी इज्जत करते थे और जिसकी वजह से मुगल हुकूमत चकनाचूर हो गई थी। जिनके खालसा सदस्यो ने रणजीतसिंह का जैसा बड़ा साम्राज्य स्थापित किया था, आखिर व कौन थे। स्वर्ग मे से बुलाये हुए देव, दानव नहीं किन्तु यहीं की भूमि में से और उन्हीं लागों मे छाँटे हुये लोग थे। जिन्हे पुराणवादिया ने अध.पतन के गर्त मे व्रात्य, शूद्र आदि कह कर गिरा दिया था। और जाकि खालसा बनने के पूर्व अपने घर घाट और स्त्री बच्चां का हिफाजत करन के काबिल भी न थे।

ऊपर के शार्षकों मे हमने जा कुछ लिखा है, उससे यह खयाल नहीं लगाया जा सकता कि वे

केवल राष्ट्र विधाता और राजनीतिज्ञ ही थे। वे समाज संशोधक और धर्माचार्य भी उतने ही थे, जितने कि पिछले गुरु साहिवान उन्होंने अमृतवेला मे उठकर नित्यकर्म करने, दरवार लगाने

धार्मिकता

और कथा कीर्तन करने कराने के कार्य को महान से महान अपत्ति मे घिरे रहते हुए भी निभाया। आनन्दपुर से निकलकर सरसा नदी के किनारे पहुँचे और यह पता चल गया कि अव अमृत वेला का समय है तो वहीं नित्य नियम करने लग पड़े। हालांकि शत्रु हजारों की संख्या मे आपके पीछे चले आरहे थे।

इतनी लडाई हुई। झगड़े रहे फिर भी आपने 'अकाल स्तुति' 'शव्द हजारे' और 'जापु जी' जैसी मनोहर और आत्मतुष्टि करने वाली रचनाये करलीं। यह काम उनके उत्कट ईश्वर-प्रेम का परिचायक है।

गुरु जी ने लड़ाइयो मे अपने पैने वाणों खगों से हजारों अन्याइयो को ही इस संसार से विदा किया। योद्धा लोग प्राय. सभी निठुर होते है किन्तु गुरु जी महान् योद्धा होते हुए भी अपूर्व दयालु भी थे। आनन्दपुर की लड़ाई मे भाई कन्हैया जी अपनी सेना मे पानी पिलाने की ड्यूटी पर थे, किन्तु वे उन शत्रुओं के पास भी पानी पिलाने पहुँच जाते थे जिन्हे सिख परेशान करके अथवा जख्मी करके जमीन पर पटक देते थे। इस तरह स्वस्थ होते ही वे फिर सिखो से लड़ने लग जाते। इसकी शिकायत सिखों ने गुरु जी से की। कन्हैया जी ने जवाव दिया गुरुदेव सेवा धर्म मे अपने पराये को स्थान नहीं है। गुरु जी वड़े प्रसन्न हुए और कन्हैया जी को हुक्म दिया कि घायल शत्रुओं की मरहम पट्टी भी कर दिया करो। दुनियाँ के इतिहास मे वड़े २ योद्धाओं और धार्मिक नेताओ मे ऐसे कितने मिलेंगे, जिन्होंने अपने शत्रुओं के साथ इस प्रकार की उदारता की हो।

त्याग और कुर्वानी की कहानी तो गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज की लासानी कहानी है। दो पुत्रों को अपने हाथ से सजा २ कर रणभूमि मे विदा कर दिया और दो जल्लादों के छुरे से जिवह हो गये। जव माता सुन्दरी ने दमदमे मे आकर रोते हुए पूछा नाथ! मेरे लाल कहाँ हैं तो आपने सगति के ओर इशारा करके कहा था।

"इन पुत्रनके शीश पर वारि दिये सुत चार।
चार गये तो क्या हुआ जीवत कई हजार॥"

किसी भी धर्म और समाज को कठिनाइयो से ऊपर उठा ले जाने मे सवसे जरूरी चीज जो होती है, वह अनुशासन है जहाँ अनुशासन नहीं। नियमों की पावन्दी सख्ती के साथ नहीं, वहा धर्म और समाज जीवित अवस्था मे भी मरे के समान होते हैं। हमने ऐसे अनेकों धर्मों का

अनुशासन

इतिहास पढ़ा है जिसमे मुरीदो ने पीरों की आज्ञाओं को आख मूंद कर माना है और पीर-पादरियो अथवा आचार्यों की आज्ञा से वे आग में जलकर, पहाड़ से कूद कर मर भी गये है। यह वात भी उन धर्मों के लिये कम गौरव की वात नहीं है किन्तु ससार के इतिहास मे यह कहीं भी नहीं दीख पडता, जिस भाँति चेलों और मुरीदों से नियमों का कठोरता के साथ पालन कराया जाता था वैसा ही पीर और पैगम्वरों ने भी किया। यह वात हमने सिख गुरु गोविन्दसिंह जी मे ही देखी। उन्होंने अपने शिष्यों को आदेश दे रक्खा था कि किसी भी पीर, पैगम्वर और देवता की समाधि व मूर्ति की पूजा मत करो। एक दिन गुरु जी ने केवल परीक्षा के लिये महात्मा दादू जी की समाधि के आगे तीर झुका दिया। सिखों ने फौरन जवाव तलव किया। कहा जाता है कि उन पर इसवात के लिये पथ की ओर से जो दड लगाया गया वह उन्होंने खिडे माथ स्वीकार करते हुये कहा कि "आपकी

आज्ञा मुझे परवान है। मैंने यह जो कुछ किया था केवल अपने पंथ की परीक्षा के लिये किया था।"

संसार का इतिहास युद्धों की कहानियों से भरा पड़ा है। जिसमें बहुधा युद्ध केवल जर, जोरू और जमीन के लिये किये गये हैं और युद्धों के अन्त पर वैरी के देश को रौंद डाला गया और उनकी द्रव्य सम्पति लूटी गई तथा स्त्री बच्चों को तबाह कर दिया गया, उन्हें गुलाम बना लिया गया। परन्तु जब हम गुरु गोविन्दसिंह के युद्धों पर नजर डालते हैं तो हमें इनमें से कोई भी बात नजर नहीं आती। उनके तमाम के तमाम युद्ध दीनों और दुखियों की रक्षा और आत्मरक्षा के लिये किये गये हैं। यही नहीं किन्तु आज जिससे उन्हें किसी कारण से लड़ना पड़ा है कल को उसकी रक्षा के लिये अपनी जान तक कुर्बान करने को तैयार हो जाते हैं। जैसा कि हम पहाड़ी राजाओं के विरुद्ध और उनकी सहायता के लिये किये गये युद्धों में देखते हैं। यहीं नहीं बल्कि उस औरङ्गजेब के पुत्र बहादुरशाह के हक की रक्षा के लिये जाजऊ के मैदान में अपने सैनिक भेज देते हैं। जिसकी आज्ञा और कारण से स्वयम गुरु गोविन्दसिंह जी के पिता माता और चारों बच्चे और हजारों श्रद्धालु सिक्ख शहीद हो चुके थे। आपने कोई चौदह लड़ाइयाँ लड़ीं और बहुधा आप विजयी हुए परन्तु इन लड़ाइयों के अंत पर क्या मजाल कि आपने पहाड़ी राजाओं, मुगलशासकों और सूबेदारों की जमीन के एक इंच पर भी दखल जमाया हो अथवा किसी का घर घाट उजाड़ा हो। या किसी को कैद किया हो या गुलाम बनाया हो।

भारत के सम्राट उसके सूबेदारों की फौजें और पड़ौसी राजाओं की सेनायें और उनके हितैषी लाखों की संख्या में उन पर टूट पड़ते हैं और घेरा डालकर महीनों तक सब खाना दाना उनके पास पहुँचना बन्द कर देते हैं और आपके अनगणित सिख तथा चारों पुत्र और माता कुर्बान हो जाते हैं परिवार बिखर जाता है परन्तु आपका मन फिर भी अडोल तथा ईश्वर की इच्छा में प्रसन्न दिखाई देता है और किसी किस्म की उदासीनता आपके किसी कर्तव्य में प्रतीत नहीं होती। सैनिक दृष्टिकोण से भी जब हम देखते हैं तो भी आप बहुत ऊंचे दिखाई देते हैं। भंगाणी, निर्मोह नदोण, आनन्दपुर आदि की लड़ाइयां हम देखते हैं कि उनके विरोधियों की सेना एक प्रकार टिड्डीदल की भाँति असख्य हुआ करती थी। परन्तु आप अल्प संख्यक सेना के साथ भी उनको परास्त कर मैदान छोड़ने को मजबूर कर देते थे। यद्यपि इतिहास में आपके युद्ध सम्बन्धी ढंगों का कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सविस्तार वर्णन नहीं मिलता फिर भी हम यह कह सकते हैं कि उनका युद्ध सम्बन्धी ढंग अपने समय में बड़ा निराला, अच्छा और वैज्ञानिक था। तभी तो आप मुगल सूबेदारों फौजदारों और बाईसधार के राजाओं तथा इर्दगिर्द से इकट्ठे हुये देशवासियों की सम्मिलित सेनाओं को समय समय पर नीचा दिखा सके।

विद्या प्रेम

जितनी रुचि उनकी शस्त्र विद्या सीखने सिखाने में थी उतनी ही विद्या पढ़ने और पढ़ाने में भी थी। स्वयम् तो संस्कृत, हिन्दी और फारसी के विद्वान थे ही किन्तु सिखों में विद्या का प्रचार करने के उद्देश्य से उन्होंने चार विद्यार्थी काशी में संस्कृत पढ़ने के लिये, कुछ विद्यार्थी ईरान में फारसी पढ़ने के लिये भी भेजे थे। आप स्वयम् नित महाभारत, गीता और पुराणादि तथा फारसी साहित्य की कथायें सुना करते थे। उनमें जो त्रुटियां होती थीं उनका भी अनुभव करते थे।

किसी भी देश की समुन्नति में कला कौशल का बड़ा हाथ होता है, गुरुजी भी कला कौशल को उन्नत करने के हार्दिक इच्छुक थे। ऐसे लोगों को भी आपने अपने यहाँ रक्खा था जो चित्रकारी करने और सुन्दर वस्तुएं निर्माण करने में होशियार थे। हँसा नाम का चित्रकार तो उस समय

कला कौशल का एक प्रसिद्ध कलाकार (आर्टिस्ट) था जिसने कपड़े पर चमकते सूर्य्य की तस्वीर बनाकर अपनी कला का परिचय दिया था।

यद्यपि राष्ट्र के किसी हिस्से पर उन्हें शासन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु आनन्दपुर और सिख समाज मे उनके शासन की व्यवस्था बडी ही सुन्दर थी। आमदनी का हिसाब किताब ठीक रखने के लिये उन्होंने एक दीवान रख छोड़ा था। नगर और समाज के अस्वस्थ लोगों को बीमारी मे सहायता पहुँचाने के लिये भी प्रबन्ध था। सिखों के आपसी झगड़ों को मिटाने के लिये यह नियम बना दिया था कि पाच खालसा इकट्ठे होकर निर्णय कर दिया करें।

अपराधियों को दड देने की भी व्यवस्था थी। वह अपने समाज में कोई भी खराबी नहीं पैदा होने देना चाहते थे। एक बार जब एक मसद की शिकायत सुनी तो उसे गव्हे पर चढ़ाकर नगर मे घुमाया। और फिर बाद मे मसद प्रथा को ही तोड़ दिया।

गुरु गोविंदसिह जी कवि और साहित्यिक भी बहुत ऊँचे दर्जे के थे। उनके दरबार में अनेकों कवि और लेखक रहते थे। वे स्वयम् भी कविता करते थे और खूब करते थे। कहा जाता है कि राजा भोज के राज्य मे गड़रिये भी सस्कृत जानते थे। यह बात हम गुरु जी के सम्बन्ध मे इस प्रकार कह सकते हैं कि उनके घोडो के तबेले के लोग भी कविता करना जानते थे। उन्होंने अपने सघर्ष के जीवन मे भी अनेकों किताब लिखी थीं। इतिहास मे लिखा है कि आपने जिस समय आनन्दपुर छोड़ा तो वह साहित्य जिसे आपने स्वयम् या आपके दरबारी कविओं लेखकों ने तैयार किया था और जिसका कि वजन नौ मन के करीब था सरसा नदी मे नष्ट होगया। उसमे से जो लूट खसोट और तितर बितर होने से बच रहा अपने साथ लाए। किन्तु वह आपकी निज की रचनाये ये हैं।

काव्य व साहित्य-प्रेम

१—'जापजी' इसमे ईश्वर के गुणवाचक नामों की महिमा वर्णन की गई है। सिख लोग प्रात उठकर इसका पाठ करते है।

२—"अकाल स्तुति" इसमे अकाल पुरुष की महानता और उसे ढूंढ़ने वाले की भूलों का वर्णन है।

३—'विचित्र नाटक' इस ग्रन्थ मे गुरु जी ने अपना पूर्व जन्म का परिचय देते हुये अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया है।

४-५—'चन्डी चरित्र' और 'चन्डी की वार' यह वीर रस की कविता मे चडी का कथानक है।

६—'ज्ञान प्रबोध' ईश्वरीय ज्ञान का भडार है।

७—'अवतार' इसमे हिन्दुओ के २४ अवतारों का विवेचनात्मक वर्णन है।

८—'शब्द हजारे' सहस्रनामों की भाति का ग्रन्थ है।

९—'३३ सवैये'—इसमे वेद, पुराण और कुरान की शिक्षाओं की आलोचना है।

१०—'शस्त्रनाम माला' धनुर्वेद के ढग की पुस्तक है।

११—'पख्याने त्रिया चरित्र' सहस्र रजनी चरित्र से भी बढ़कर और चित्ताकर्षक ४०५ स्त्रियो के चरित्रों की पुस्तक है।

१२—'जफर नामा' वह पत्र जो औरंगजेब को उसके विश्वासघातों की याद दिलाने के लिये लिखा गया था फारसी नज्म मे है।

१३—'हिकायत नामा' यह भी फारसी नज्म मे है।

१४—'सर्व लोह प्रकाश' यह विशाल ग्रन्थ है किन्तु अभी तक छपा नहीं।

एक से १३ तक के ग्रन्थ एक स्थान पर संग्रह करके छाप दिये गये हैं जो गुरुमुखी लिपि मे है। और दशम पातशाही के रचे होने से ये 'दशम ग्रन्थ' के नाम से मशहूर हैं।

यह संग्रह गुरुजी के चालस वर्ष बाद भाई मनीसिंह जी आदि के उद्योग से सवत १८०४ वि मे हुआ था।

अब हम यहाँ उनके प्रत्येक ग्रन्थ के काव्य की कुछ रचनाये देते है—

जापुसाहब

इसे चरपट आदि अनेको छदों मे गुरु जी ने पूर्ण किया है और प्रत्येक छंद मे काव्य सौष्टव कूट-कूट कर भर दिया है यथा—

भुजंगप्रयात छंद—

नमस्त अकाले। नमस्त कृपाले॥
नमस्त अरूपे। नमस्त अनूपे॥

× × × × ×

नमो सर्व सोख। नमो सर्व पोख
नमो सर्व करता। नमो सर्व हरता।

चाचरी छंद—

अरूप है। अनूप है॥
अजू है। अभू है॥
अलेख है। अमेख है॥
अनाम है। अमान है॥

मधुमार छद—

गुन गन उदार। महिमा अपार॥
आसन अभग। उपमा अनग॥
अनभउ प्रकाश। निस दिन अनास॥
आजानु वाहु। साहन साहु।

छप्पय छद—

चक्र चिह्न अरु वरन जाति अरु पात नहिन जिह।
रूप रग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह॥
अचल मूरति अनभउ प्रकाश अमितोज कहिज्जं।
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि साहाणि गणिज्जै॥
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत वन त्रिण कहत।
त्व सर्व नाम कथै कवन करम नाम बरणत सुमत॥

अकाल स्तुति

इस ग्रन्थ मे भी चौपाई सवैये और कवित्त आदि अनेकों छन्द है। जो सबके सब मन मोहने और अन्तरात्मा को झकृत करने वाले हैं। भक्तिरस इनमे से प्रस्फुटित होता है।

चौपई छन्द—

सभ को काल सभन को करता।
रोग सोग दोखन को हरता॥

एक चित्त जिह इक छिन ध्यायो ।
काल फास के बीच न आयो ॥

कवित्त— कहूँ जच्छ गन्धर्व उरग कहूँ विद्याधर
कहूँ भये किन्नर पिशाच कहूँ प्रेत हो ।
कहूँ हुइकै हिन्दुआ गायत्री को गुप्त जप्यो,
कहूँ हुइकै तुरका पुकारे बाग देते हो ॥
कहूँ कोक काव के पुरान को पढत मत,
कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो ।
कहूँ वेद रीत कहूँ तासिउ विपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गन समेत हो ।

तोमर छन्द— हरि जन्म मरण विहीन । दस चार चार प्रवीन ॥
अकलंक रूप अपार । अन छिज्ज तेज उदार ॥

नाराच छन्द— जिमी जमान के विखै समस्त एक जोत है ।
न घाट है न वाढ है न घाट वाढ होत है ॥
न हान है न वान है समान रूप जानिऐ ।
मकीन औ मकान प्रमान तेज मानिऐ ॥

चंडी चरित्र

मारकण्डेय पुराण की दुर्गा सप्तशती में शंभु निशंभु के साथ जिस युद्ध का वर्णन आया है गुरु गोविन्दसिंह जी ने चंडी चरित्र में उसी का भावानुवाद किया है। इस काव्य ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति में भुजदंडों को फडकाने वाला वीर रस भरा हुआ है यथा —

कवित्त— दौर सभै इक वार ही दैत्य,
आये हैं चण्डिके सामुहे कारे ।
लै कर बान कमानन तान
घने अरि कोप सों सिंह प्रहारे ।
चंडि सम्भार तवै कर वार,
पचार के शत्रु समूह निवारे ।
खाडव जारन को अगनि तिहि,
पारथ ने मनु मेघ विडारे ॥
वीर बली सरदार दईत सु,
क्रोध के म्यान ते खग्ग निकार्‌यो ।
एक दयो तन चंडि प्रचंड कै,
दूसर केहर के सिर भार्‌यो ॥
चंडि सम्भार तवै वलधार,
लयो गहि नारि धरा पर मार्‌यो ।

ज्यो धुविश्रा सरिता तट जाइकै,
ले पट को पट साथ पछार्यो ।

× × × ×

दौर दई अरिके मुख में
कट ओठ दये जिम लोह की छैनी ।
दात गगा, जमुना तन श्याम,
सु लोहू वह्यो तिह माहि त्रिवेनी ।
वाजत डक परी धुनि कान,
सु सक पुरन्धर मूदत पौरे ।
सूर में नाहि रही दुति देखकै,
युद्ध को दैत्य भये इक ठौरे ।
कांप समुद्र उठे सिगरे
वहु वार भई धरनी गति औरे ।
मेरु हल्यौ दहल्यो सुर लोक,
जवै दल सुम्भ निसुम्भ के दौरे ॥
भूमि को भार उतारन को,
जगदीश विचार कै युद्ध ठटा ।
गर्जे मद मत करी वदरा,
वग पन्ति लमै जनु दन्ति गटा ॥
पहिरे तनत्रान फिरै तहि वीर,
लिये कर विज्जु छटा ।
दल दैत्यन को अरि देवन पै,
उमड्यौ मनु घोर घुमड घटा ॥
वान लगे लख सुम्भ दईत,
धसे रन ले करवारन को ।
रण-भूमि में शत्रु गिराय दये,
वहु श्रोण वह्यो असुरानन को ॥
प्रगटे गन जम्वुक गिद्ध पिशाच
सु यो रन भाति पुकारन को ।
सु मनो भट सार सुती तट नात है,
पूरव पाप उतारन को ॥
वार सिवार भये तहि ठौर ।
सु फेन ज्यो छत्र फिरे तरता ।
कर अगुल का सफरी तलफै ।
भुज काट भुयग करे करता ।

इय नक ध्वजा द्रुम श्रोणत नीर में।
चक्र ज्यो चक्र फिरं गरता।
तब सुम्भ निसुम्भ दोऊ मिलि दानव,
मार करी रण में सरता।

चंडी की वार

चंडी चरित्र की भांति ही चण्डी की वार है और यह सारी की सारी एक ही प्रकार के छन्द मे हैं यह छंद शिखंडी छंद है और इसकी भाषा पंजाबी है। नमूना इस प्रकार है.—

"चोट पई दमामे दला मुकावला।
देवी दमत नचाई सीहणि सार दी।
पेट मलदे लाई महखे देत नू।
गुर्दे आंदा खाई नाले रुकडे।
जेही दिल विच आई कही सुणाय के,
चोटी जाए दिखाई तारे धूमकेत।

अर्थात्—लडाई के धौंसे बजे, दोनों दलों का मुकावला हुआ, दुर्गे ने लौह-सिहनी अर्थात तलवार हाथों में सम्भाली और महिपासुर दैत्य के पेट पर जमा दी, जिससे उसकी आंते इस प्रकार निकल पड़ीं जिस प्रकार कि आकाश से धूम्रकेतु तारा टूटता है।

'दुहां कधारां मुंहि जुडे अणि आरा चोईआ।
धूह किरपाण तिखिआं नाल लोहू धोईआं॥
हूरा स्रणवत बीज नू घत घेर खलोइआ।
लाडा वेखण लाडिया चो गिरदे होईआ॥

अर्थात्—दोनों दलो की भिडन्त हुई तीरों की तीक्ष्ण नोकों और म्यान से निकाली हुई तलवारों की धारों से योद्धाओं के शरीरों से रक्त वहने लगा, जिसे देख कर अपसरायें उन्हे ऐसे घेर कर खड़ी हो गई जिस प्रकार दूल्हे को नवयुवतियाँ घेर लेती हैं।

× × × × × ×

लै के बरछी दुर्गा साह बहु दानें मारे।
चढ रथ गज घोड़ई मार भुईं ते डारे।
जाण हलवाई सीख नाल बिन्ह बडे उतारे॥

अर्थात्—दुर्गा ने वर्छी मे अनेकों दैत्यों को जो हाथी घोड़े आदि पर सवार थे। छेद कर इस प्रकार भूमि पर पटक दिये। जिस प्रकार चतुर हलवाई लौह कील से कढ़ाही में से वड़े उतारता है।

ज्ञान प्रबोध

इसमें संस्कृत पुस्तकों के आधार पर कुछ मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक सामिग्री है। उसकी बानगी इस प्रकार है—

छत्र धारी छत्रीपति छैल रूप छित नाथ
छोणी कर छायावर छत्रीपति गाइये।

विसुनाथ विश्वम्भर वेदनाथ वाला कर,
बाजीगर बान धारी वधन वताइये।
न्योली कर्म दूधाधारी विद्याधर ब्रह्मचारी,
ध्यान को लगावै नैक ध्यान हू न पाइये।
राजन के राजा महाराजन के महाराजा,
ऐसो राज छोड और दूजो, कौन ध्याइये।।
युद्ध के जितैया रग भूमि के भवइया।
भार भूमि के मिटइया नाथ तीन लोक गाइए।
काहू के तनैय्या है न मैया जाके भैया कोऊ,
छौनीहू के छैय्या छोड कासो प्रीत लाइए।
साधना सिधइया धूवधानी के धुजइया,
धोम धार के धरैया ध्यान ताको सदा लाइए।
आउ के वढइया, एक नाम के जपइया।
और काम के करइया छोड और कौन ध्या ए।।

चौवीस अवतार

गुरु जी महाराज ने अपनी मधुर कविता मे चौवीस अवतारों का वड़ा सुन्दर वर्णन किया है किन्तु इसके माने केवल चरित्र चित्रण से हैं नकि यह कि गुरु जी अवतारवाद को मानने वाले थे।

रामावतार की कथा मे से यहां हम लंका युद्ध की कुछ पंक्तिया देते हैं-जोकि, विजया छंद में हैं।

जुट्टे वीर। छुट्टे तीर।। ढुक्की ढाल। कोहे काल।।
ढके ढोल। वके वोल।। कच्छे शस्त्र। अच्छे अस्त्र।।
क्रोध गलित। वोध दलित।। गज्जे वीर। तज्जे तीर।।
रत्ते नैण। मत्ते वैण।। लुज्झे सूर। सुज्झे हूर।।
लग्गें तीर। भग्गें वीर।। रोस रुज्झे। अस्त्र जुज्झे।।
झुम्में सूर। घुम्मे हूर।। चक्के चार। वक्कें मार।।

लंका प्रवेश

अलका छन्द—

चटपट सैण खटपट भाजे, झटपट जुझ्यो लख रण राजे।
सटपट भाजे अटपट सूर, झटपट विसरी घट पट हूर।।
चटपट पैठे खट पट लंक, रण तज सूर सर धर वंक।
झलहल वार नरवर वैण, धकधक उचरे भकभक वैण।।
नरवर राम वरनर मारो, झटपट वाहू कट कट डारो।
तब सभ भाजे रख रख प्राण, खटपट मारे झटपट वाण।।
चटपट रानी सटपट धाई, रटपट रोवत अटपट आई।
चटपट लागी अटपट पाय, नरवर निरखे रघुवर राय।।
चटपट लोटें अटपट धरनी, कसि कसि रोवें बरना वरणी।

पटपट डारें अटपट केस, बटहर सूकै बटहर वेंम ॥
चटपट चीर झटपट पारें, घर कर धूर सरवर डारें।
सटपट लोटें खटपट भूम। झटपट झूरें घर हर धूम ॥"

'अवतार चरित्र' मे गुरु जी ने कृष्णावतार की रास लीला, युद्धों आदि का भागवत के दसम स्कध के आधार पर वर्णन किया है उन्होंने कृष्ण की वासुरी के सम्बन्ध मे बड़ी श्लेषपूर्ण कविता की है यथा.—

"बाजत बसत अरु भैरव हिंडोल राग,
बाजत है ललिता के साथ ह्वै धनासरी।
मालवा कल्यान अरु मालकौंस मारू राग,
बन में बजावै कान्ह मगल निवासरी ॥
सुरी अरु आसुरी अरु पन्नगी जे हुती तहाँ,
धुनि के सुनत पै न रही सुधिजासरी।
कहै इयो दासरी सु एली बाजी बासुरी,
सु मेरे जाने यामें सब राग को निवासरी ॥
करुणा निधान बेद कहत बखान याको,
बीच तीन लोक फैल रही है सुबासरी।
देवन की कन्या ताकी सुनि धुनि श्रोनन में,
धाई धाई आवें तजि के सुरगवासरी ॥
है करि प्रसन्न रूप राग को निहार कह्यो,
रच्यो है विधाता यामें रागन को बासरी।
रीझे सभगन उडगन भे मगन,
जब बन उपवन में बजाई कान्ह बासुरी ॥"

× × × ×

चन्द्रावलि के प्रति अधिक स्नेह को देख कर राधा जी कृष्ण से नाराज़ हो गई थीं और जब वे राधा के पास पहुँचे तो.—

"रासहिं क्यो तज चन्द्र भगा, चनकै हमरे यह क्यों कह्यो आयो।
क्यों यह ग्वारिन की सिख मानिके, आपन हि उठि कै सखि धायो ॥
जानति थी कि बडो ठग है, इह बातन ते अब ही लखि पायो।
क्यो हमरे पाहि आयो कह्यो, हम तो तुमको नहिं बोल पठायो ॥"

इसका उत्तर —

"यो सुनि उत्तर देत भयो, नहिरी तुहि ग्वारिन बोलि पठायो।
नैनन के करि भाव घने, मरसो हमरो मनुआ मृग घायो ॥
ता विरहागनि सो सुनिए बलि, अग जर्‌यो सु गयो न बचायो।
तेरो बुलायो न आयो होरी, तिह ठौर कहु सेकन आयो ॥"

जब राधे मन गई तब —

"दोऊ जो हँसि बातन मग ढरे, तु हुलास बिलास बढे सगरे।
हँसि कठ लगाइ लई ललना, गहि गाढे अनग ते अक भरे॥
तरकी हैं तनी दरकी अगिया, गर मालते टूटि के लाल परे।
पिय के मिलिए त्रिय के हिय के, अगरा बिरहागिन के निकरे॥"

दत्तात्रेयावतार के विषय में —

"देश विदेश नरेसन जीत, अनेस बढे अवनेस सहारे।
आठोई सिद्ध सर्वं नव निद्ध, समृद्धन सरव भरे ठह सारे॥
चन्द्रमुखी वनिता बहुतं घरि, माल भरे नहि जात सभारे।
नाम विहीन अधीन भये जय, अत को नागेहि पाइ सिधारे॥
रावन के महि रावन के, मनु के नल के चलते न चली गउ।
भोज दिलीपत कौरवि कै, नहीं साथ दियो रघुनाथ बली फउं॥
सग चली अबलों नहि काहु कै, साचक हो अघ अउघ दली सउं।
चेतरे चेत अचेत महा पसु काउके सग चलो न टली हुउं॥"

विचित्र नाटक

इस ग्रन्थ को हम गुरु जी का आत्म-चरित कह सकते हैं। इसमें उन्होंने अपने पूर्व जन्म से लेकर इस जन्म तक की मुख्य २ घटनाओं का काव्य-मय वर्णन किया है। उदाहरणार्थ—

"अब मैं अपनी कथा बखानो, तप साध तजिह विधि मुहि आनों।
हेम कूट परवत है जहाँ, सपत भृङ्ग सोभत है तहाँ॥१॥
सपत भृङ्ग तह नाम कहावा, पडराज जिह जोग कमावा।
ताहि हम अधिक तपसि आ साधी। महाँ कालु कालका आराधी॥२॥
इह विधि करत तपसिआ भयो। द्वैते एक रूप होय गयो॥
तात मात सुर अलख अराधा। बहु विधि जोग साधना साधा॥३॥
नित जो करी अलख की सेवा। ताते भये प्रसन्न गुरुदेवा॥
तिन प्रभु जब आइस मुहि दीआ। तब हम जनम कलू महि लीआ॥४॥
चितन भयो हमरो आवन कहि। चुभी रही स्रुति प्रभ चरनन महि॥
जिउ तिउ प्रभु हम कउ समझायो। इम कहिके इहलोक पठायो॥५॥

अकाल पुरुषवाच

"जब पहिले हम स्रिसट बनाई। दैत सुरचे दुसट दुख दाई॥
ते भुजबल बवरे ह्वै गये। पूज तप रम पुरख कहि गये॥६॥
तेह मत मकि तन्क मो खावे। तिनकी ठवर देवता थापे॥
तेभी बल पूजा उरझाये। आपन ही परमेसर कहाये॥७॥
महादेव अच्चुत कहवायो। बिसन आप ही कउ ठहिरायो॥
ब्रह्म आप पारब्रह्म बखाना। प्रभ को प्रभू न किनहूँ जाना॥८॥"

तब साखी प्रभ असट बनाए। साख नमित देवेद ठहराए।
ते कहैं करो हमारी पूजा। हम बिन ठाकुर अवर न दूजा ॥६॥
परम तत को जिन न पछाना। तिन ईसर तिनहीं कउ माना ॥
केते सूर चन्द कउ मानै। अगनहोत्र कई पवन प्रमानैं ॥१०॥
किनहूँ प्रभ पाहन पहिचाना। तात किते जल करत विधाना ॥
केतक करम करत डरिपाना। धरम को धरम पछाना ॥११॥
जे प्रभ साख नमित ठहराये। तेहो आइ प्रभू कहिवाये ॥
ताकी बाति बिसरि जाती भी। अपुनी अपुनी परत सोभ भी ॥१२॥
जब प्रभ को न तिनै पहिचाना। तब हरि इन मनु छठ हिराना ॥
ते भी मभ ममता हुइ गए। परमेसर पाहन ठहराए ॥१३॥
तब हरि सिध साधनह राए। तिन भी परम पुरुष नहिं पाए ॥
जे कोई होत भयो जग सिगाना। तिन तिन अपनो पथ चलाना ॥१४॥
परम पुरुष किनहू नहि पायो। बैर बाहु अहंकार बढायो ॥
पेट पाद आपन तेज लै। प्रभ कै पथ न कोऊ चलै ॥१५॥
जिन जिन तनक सिधि को पायो, तिन तिन अपनो राह चलायो ॥
परमेसर नहिं किनहू पछाना, मम उचार ते भये दिवाना ॥१६॥
परम तत किनहू न पछाना। आप आप भीतर उरझाना ॥
तब जे जे रिखराज बनाये। तिन पुन आपन सिम्रित चलाये ॥१७॥
जे सिम्रित के भये अनुरागी। तिन तिन क्रिया ब्रह्म की त्यागी ॥
जिन मन हरि चरनन ठहिरायो। सो सिम्रित के राहन आयो ॥१८॥
ब्रह्मे चार ही वेद बनाये। सरब लोक तिह करम चलाये ॥
जिनकी लिव हरि चरनन लागी। ते बेदन ते भये त्यागी ॥१९॥
जिन मत वेद कतेब न त्यागी। पार ब्रह्म के भये अनुरागी ॥
जिनके गूढ मत जे चल ही। भाति अनेक दूखन सो दल ही ॥२०॥

× × × ×

इह कारण प्रभ मोहि पठायो। तब मैं जगल जगम धरि आयो ॥
जिम तिन कही इनै तिम कहिहो, और किसू ते बैर न गहिहो ॥३१॥
मैं हो परम पुरख को दासा। देखन आयो जगत तमासा ॥
जो प्रभ जगत कहा सो कहिहो म्रित लोक ते मौन गहिहों ॥३२॥

हजारे के शब्द

हजारे के शब्दों की रचना गुरु जी ने कई रागों मे की है। मसलन रामकली, राग सोरठ, राग कल्याण, राग तिलग, राग काफी और राग बिलावल आदि। यहाँ हम उनके हजारे के शब्दोंमे से राग सोरठ का नमूना पेश करते हैं—

"प्रभु जू तो कह लाज हमारी।
नील कठ नरहरि नारायण नील बसन बनवारी ॥ रहाउ

परम पुरख परमेश्वर स्वामी पावन पउन अहारी ॥
माधव महा जोति मधु मरदन मान मुकन्द मुरारी ॥१॥
निर्विकार निरजुर निन्द्रा विन निर्विख नरक निवारी ॥
कृपासिंधु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी ॥२॥
धनुर पान वृत मान धराधर अनिविकार असिधारी ॥
हौं मति मन्द चरन शरनागति कर गहि लेहु उबारी ॥३॥

३३ सवैये

उनके ३३ सवैयों में से भी एक दो सवैया यहां इतिहास के रसिकों के लिये देना उचित समझते हैं—

"जागति जोति जपै निसवासर, एक बिना मन नैक न आनै ।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै व्रत, गोर मढी मट भूल न मानै ।
तीरथ दान दया तप संजम, एक बिना नहिं एक पछानै ॥
पूरन जोति जगै घट में तब खालस ताहि निखालस जानै ॥

× × × ×

आदि अभेख अछेद सदा प्रभु, वेद कतेबनि भेद न पायो ।
दीनदयालु कृपाल कृपानिधि, सत्त सदैव सर्व घट छायो ।
सेस सुरेस गणेस महेसुर गाहि फिरैं श्रुति थाह न पायो ॥
रे मन मूढ अगूढ इसो प्रभु, तैं किहि काज कहो बिसरायो ।

× × × ×

काहू लै टोक बधे उर ठाकुर, काहू महेस को एस बखान्यो ।
काहू कह्यो हरि मन्दिर में, हरि काहू मसीत के बीच प्रमान्यो ।
काहू ने राम कह्यो कृष्ण काहु, काहू मनै अवतारन मान्यो ।
फोकट धर्म बिसार सबै, करतार ही कउ करता जिय जान्यो ।

यह हम पिछले पृष्ठों में लिख चुके हैं कि गुरु गोविन्दसिंह जी दशम बादशाह के दरबार में अनेकों विद्वान रहते थे उनमें ५२ तो कवि ही थे । यह कवि सब ही रसों में और प्रत्येक विषय पर कविता किया करते थे इन सब कविताओं का संग्रह गुरु जी ने करा दिया था। उस ग्रन्थ का नाम "विद्याधर" रक्खा था। वह कितना बड़ा होगा, उसका अन्दाज इसी से लगाया जासकता है कि पुराने जमाने के कागज पर उसमें ६ मन बोझ था। आनन्दपुर युद्ध में अन्य सामान के साथ यह भी लूट और सरसा नदी के डूबने से जो बचा कहा जाता है उसके ६७ पृष्ठ कवि सतोखसिंह के हाथ लग गये थे उनमें से कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

दरबारी कवि

"पूरन परख अवतार आन लीन आप,
जाके दरबार मन चित्तवै सो पाइयै ।
घटि घटि वासी अविनासी नाम जाको जग,
करता करनहार सोई दिखराइयै ॥
नौमें गुरु नन्द जग वन्द तेग त्याग पूरो,
'मंगल' सु कवि कहि मगल सुथाइयै ॥

आनन्द को दाता गुरु साहिब गोविन्दराइ,

चाहे जो आनन्द तौ आनन्दपुर आइयें।

यह छन्द कवि मगल जी का है वे जैसी कविता व्रजभाषा मे करते थे वैसी ही पजाबी में भी कर लेते थे। उन्होंने महाभारत के शल्य पर्व का भाषानुवाद भी किया था। जो संवत १७५३ वैसाख त्र्योदशी मंगलवार को समाप्त हुआ।

कवि आलमशाह जी ने जो कि एक मुसलमान कवि थे। किन्तु कविता प्राय हिन्दी जवान में ही करते थे गुरु जी के सम्बन्ध में अपनी काव्य धारा को इस प्रकार बहाया है—

"शोभा हूं के सागर नवल नेह नागर है,

वल भीम सम सील कहालों गिनाइयें।

भूमि के विभूखन जू दुखन के दूखन,

समूह सुख हूँ के मुख देखे ते अघाइयें॥

हिम्मत निधान आन दान को बखाने ?

जानें 'आलम' तमाम जाम आठो गुन गाइयें।

प्रवल प्रतापी पातशाह गुरु गोविन्दसिंह जी,

भोज की सी मौज तेरे रोज रोज आइयें।

कवि हंसराम ने महाभारत के कर्ण पर्व को संस्कृत से भाषा मे किया था। अनुवाद इतना सुन्दर था। कि गुरुजी ने प्रसन्न होकर इस काम के उपहार मे उसे साठ हजार टके इनाम में दिये थे। गुरुजी की प्रशंसा में उसने लिखा था।

"चारों चक्क सेवे गुरु गोविन्द तिहारे पाइ,

मेरे जाने आज तुही दूजो करतार है॥

प्रवल प्रचड खड खंड महि मडल में।

साचो पातसाहु ताको साचो सिर भार है।

कामना के दान वान जाकी हंसराम कहै,

परम धरम देखें विबध विचार है।

परम उदार पर पीर को हरनहार,

कौन जानें कौन भांति लीनों तवतार है।

कविवर सेनापति जी भी गुरु गोविन्दसिंह जी के दरबारी कवि थे। उन्होंने चाणक्य नीति का अनुवाद किया था। गुरु जी ने उसे इतना पसन्द किया कि प्रत्येक छंद पर पांच-पांच अशर्फी सेनापति जी को इनाम मे दीं। 'गुरु शोभा' नामक पुस्तक मे सेनापति ने गुरुजी के सम्बन्ध में लिखा था—

काहू कै मात पिता सुत है अरु

काहू कै भ्रात महा बलकारी।

काहू के मीत सखा हित साजन,

काहू के गेह विराजत नारी॥

काहू के धाम माहि निधि राजत

आपस मों करि है हित भारी।

होहु दयाल दया करि के प्रभु,
गोबिन्द जी मोहि टेक तिहारी।

कवि 'हीर' ने गुरुजी के दरबार में स्थान पाने और कुछ तत्काल धन प्राप्त करने के लिये निम्न छद कहा था —

पास ठाडो झगरत भृकुति दरेरे मोहि,
बातन करन पाऊ महा वली वीरसों।
ऐसो अरि विकट निकट वसे निसदिन,
निपट निशक सच घेरे फेरि मीर सौं।
दारिद कपूत तेरो मरन बन्यो है आज।
करके सलाम विदा हूजे कवि 'हीर' सौं।
नातरु गोविन्दसिंह विकल करैगो तोहि,
टूक टूक ह्वे है गाढे दाननि के तीर सौं॥

कहा जाता है गुरुजी ने हीर के इस छद को सुनकर उसके दरिद्र को दूर कर दिया और दरबार में भरती कर लिया।

एक और प्रसिद्ध कवि सुन्दर जी भी उनके दरबारी थे। उन्होंने गुरुजी के सम्बन्ध में इस प्रकार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

"वेदन माँहि श्याम सुनो, सिन्धु मरजादा
मेरु मडल मही में गुरुआई गुन गाये हो।
सरम के सागर सपूतन के शिरमौर,
'सुन्दर' सुधाधर से सुन्दर गनाये हो।
रचन में दान वानि बानी हरिचन्द की सी।
विदत विनय वडे बंस चलि आये हो।
तेज को तरनि तरवार को परसराम,
गुरन माँहि ऐसे गुरु गोविन्द कहाए हो।

इसी कवि की दूसरी चासनी —

"चढत ही बाजी, चढयो गाढे गढ चाहिबे को,
दाहिने को दुस रीझे वर ज्यों भवानी को,
आवत ही दाढी, छाती दाढी छितपालन की,
रज्ज कौ करैया उन्हीं की रजधानी को।
महाबाहु गुरुजी गोबिन्दसिंह पारथ ज्यो।
मारन को जीत लेत वसुधा बिरानी को।
पागहू कौ बाधिवो कछुक दिन पाछे सीख्यो,
पहिले ही सुसीख्यो सिंह बाधवो कृपानी कौ॥

वे अपने कवियों का उत्साह बढाने के लिये खूब ही दान देते थे, इसी से तो खुश होकर एक कवि ने कहा था —

"जोलो धरन अकाश गिर, चन्द सूर सुर इन्द।
तौलों चिर जीवैं जगत, साहिब गुरु गोविन्द॥

गुरुजी के दरबारी कवियो के नाम एक सिख लेखक ने इस प्रकार गिनाये है —

१ अणीराय २ अमृतराय ३ अचलदास ४ अलीहुसेन ५ अल्लू ६ आलमशाह ७ आसासिंह ८ ईश्वरदास ९ उदयराय १० कलुआ ११ कुवरेश १२ खान चंद १३ गुणिया १४ गुरुदास १५ गोपाल १६ चन्द १७ चन्दन १८ जमाल १९ टहकन २० ध्यानसिंह २१ धर्मचन्द २२ धर्मसिंह २३ धन्नासिंह २४ ध्यान-सिंह २५ नन्दलाल २६ नन्दसिंह २७ नानू २८ निश्चलदास २९ निहालचंद ३० पिंडीमल ३१ वल्लभराम ३२ वल्लू ३३ विधीचंद ३४ बृपा ३५ ब्रजलाल ३६ बुलंद ३७ मथुरादास ३८ मदनगिरि ३९ मदनसिंह ४० हीर ४१ हंसराम ४२ मानचंद ४३ मानदास ४४ मालासिंह ४५ मङ्गल ४६ रामचंद ४७ रावल ४८ रोशन-सिंह ४९ लक्खासिंह ५० सुक्खासिंह ५१ सुन्दर और ५२ सेनापति।

एक प्रश्न होता है कि आखिर इतनी कुर्बानी और जाति की सेवा करने वाले गुरु गोविन्दसिंह जी को हिन्दुओ ने उतना ही ऊंचा स्थान क्यों नहीं दिया जितना कि सिख देते है। हम जहां तक इस सम्बन्ध मे जानते हैं। इसमे आम हिन्दुओ का कोई दोष नहीं, दोष है हिन्दुओं के पुरोहित समाज का और सिख विद्वानों का।

हिन्दुओ की बागडोर पिछली कई सदियों से ब्राह्मण पुरोहितों के हाथो मे थी और इस वर्ग ने खुद अज्ञानान्धकार मे लिप्त रहने के कारण अपने स्वार्थ साधन के निमित्त समस्त हिन्दू जाति को वाहियात रस्म रिवाज और धर्म ढकोसलो मे फँसा रक्खा था। गुरु गोविन्दसिंह जी ने राष्ट्र के हित की दृष्टि से और सत्य स्थापना की भावना मे ब्राह्मणो के इन ढकोसलो का वहिष्कार कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि ईश्वर न तो मूर्तियों मे है और न उसे तर्पण श्राद्ध करके पाया जा सकता है। अपने कर्मों को सुधारो। इस जाल से बचो। गुरु जी के इन उपदेशो से पुरोहित वर्ग को धक्का लगा। अत. उन्होंने गुरु जी और उनके संजीवन सिद्धान्तो का सदैव विरोध किया। जिससे आम हिन्दुओ मे गुरु गोविन्दसिंह जी के तप त्याग और वलिदानों की स्मृति बराबर धुंधली होती गई।

सिख विद्वानों का खोट इस ओर हम इसलिए मानते है कि उन्होंने कभी भी उस भाषा मे जो हिन्दुओं की आम भाषा है और देवनागरी के नाम से मशहूर है। गुरु लोगों के पवित्र जीवनो और सिद्धान्तो को हिन्दू जनता के सामने पेश ही नहीं किया। जितना भी इस समय हिन्दू सिख-धर्म और गुरुओं के सम्बन्ध मे जानते है। वह उनके निज के प्रयत्नों का फल है। उन्होंने गुरुमुखी और अंग्रेजी ग्रन्थो की सहायता से अपनी मातृभाषा मे गुरुओ के जीवन उद्धृत किये हैं और ज्यो-ज्यो हिन्दी मे सिख धर्म और गुरुओं के जीवन की खूबिया छपती जाती है। हिन्दुओं मे उनके प्रति प्रेम और श्रद्धा बढ़ती जा रही है।

अभी थोड़े दिनों पहले (सन् १९२९ मे) महात्मा गाधी जी ने लिखा था —

"जेल मे अवकाश मिलने पर मैंने अग्रेजी मे अनुवादित गुरु ग्रन्थ साहब और गुरुओं के इतिहास का भली प्रकार अध्ययन किया। गुरुओ के देश और धर्म के हित किये गये वलिदानों को पढ़कर मैं मन्त्र मुग्ध सा हो गया। अपने वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन का कार्यक्रम मैंने अधिकतर गुरुओं के उस त्यागमय जीवन से सीखा है। और मेरा दृढ़ विश्वास है कि तलवार उठाने के बिना उस समय देश और धर्म की रक्षा हो ही नहीं सकती थी।

(यग इडिया २८ दि० १९२९)

इससे बहुत पहिले आर्य्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने भी अपने एक लेक्चर में कहा था—"आर्य समाज के प्रचार में जितनी सफलता मुझे पंजाब में हुई है उतनी अन्य किसी प्रांत में नहीं हुई। इसका कारण यह है कि इस देश में पहले से ही सिख गुरुओं की कृपा से अनेकों भ्रम जनता में से उड चुके हैं।

एक अंग्रेज इतिहासकार जनरल कनिंघम ने अपने सिख इतिहास में उनकी महानता के प्रति सम्मान प्रकट करने वाले यह शब्द कहे थे—"उन्होंने हिन्दू जाति में पुनर्जीवन का संचार करके उसे अभेद्य रक्षा का कवच पहनाया और उसके कुसंस्कार को दूर करके उसे परमार्जित करने में भी कोई कमी नहीं छोडी। वास्तव में वे उन महापुरुषों में से थे। जिन्हें पाकर किसी भी देश की जातियाँ गहरे गर्त से निकल कर समुन्नत हो जाती हैं।"

चूंकि गुरु जी का वंश सूर्य्यवंश से मिलता है और इस बात को गुरु जी ने विचित्र नाटक में लिखा भी है। इसलिये हम उस वंश का कुर्सीनामा जितना कि हमें प्राप्त हो सका है। यहां देना उचित समझते हैं।

१ मनु	२ इक्ष्वाकु	३ विकुक्षि
४ पुरजय	५ अनयना	६. पृथु
७ विश्वगव	८ चन्द्र	९ युवनाश्व
१० श्रावस्त	११. बृहदश्व	१२. कुवलयाश्व
१३ दृढाश्व	१४. हर्यश्व	१५ निकुम्भ
१६. सहिंताश्व	१७. कृशाश्व	१८ प्रसेनजित
१९ युवनाश्व	२० मान्धाता	२१ पुरुकुत्स
२२ त्रसदस्यु	२३ सभूति	२४ अनरण्य
२५ हर्यश्व	२६ वसुमना	२७ त्रिधन्वा
२८ त्रियारुण	२९. सत्यव्रत	३० हरिचन्द्र
३१ रोहित	३२. हरिताश्व	३३. हरित
३४. चम्बु	३५. विजय	३६. रुरुक
३७ वृक	३८ बाहुक	३९. सगर
४०. असमंजस	४१ अशुमान	४२. दिलीप
४३. भागीरथ	४४ सुश्रत	४५. नाभाग
४६ अम्बरीष	४७ सिंधुद्वीप	४८. अयुताश्व
४९ ऋतुपर्ण	५० सर्वकाम	५१. सुदाम
५२ मित्रसह	५३. अश्मक	५४. मूलक
५५. दशरथ (१)	५६. इल्विल	५७ विश्वसह
५८ खटवाग	५९. दीर्घबाहु	६० रघु
६१ अज	६२. दशरथ	६३. राम
६४ लव कुश	६५. अतिथ	६६. निषध
६७ नल	६८. नभ	६९. पुण्डरीक

७०. क्षेमधन्वा
७१ देवानीक
७२. अहिनर
७३. रुरु
७४ पारियात्र
७५ दल
७६. शिच्छल
७७ उक्थ
७८. वज्रनाम
७९. शंखनाभ
८०. व्यस्थताश्व
८१. विश्वमह
८२. हिरण्यनाभ
८३. पुष्य
८४. ध्रुवसंधि
८५. सुदर्शन
८६. अग्निवर्मा
८७. शीघ्र
८८. मरु
८९ प्रसुश्रुत
९०. सुगापि
९१. अमर्ष
९२. महस्वान
९३. विहतवान
९४. वहद्वल
९५. वृहत्क्षण
९६. गुरुक्षेप
९७. वत्स
९८. वत्सव्यूह
९९. प्रतिव्योम
१००. दिवाकर
१०१. महदेव
१०२. वृहदस्य
१०३ भानुरथ
१०४. सुप्रतीक
१०५. मरुदेव
१०६. सुनक्षत्र
१०७. किन्नर
१०८ अंतरिक्ष
१०९. सुवर्ण
११०. अभिवर्जित
१११. वृहद्राज
११२ धर्मी
११३. कृतंजय
११४. रणंजय
११५ संजय
११६. शाक्य
११७. शुद्धोधन
११८. गौतम
११९. राहुल
१२०. प्रसेनजित
१२१. क्षुद्रक
१२२. कुण्डक
१२३. सुरथ
१२४. सुमित्र

नोट—पुराणों में सुमित्र से आगे कुछ पता नहीं चलता किन्तु उदयपुर में एक प्रशस्ति में कुछ पीढ़ियों का और पता चल जाता है। वैसे राजपूताने के भाटों की वनाई हुई और भी वशावलियाँ हैं किन्तु उन्हें हम प्रामाणिक नहीं मानते।

विचित्र नाटक में गुरु जी ने लव को लाहौर का राजा और कुश को कुशावती का राजा वताया है। इनका समर्थन पुराण भी करते हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी ने जिस प्रकार अपने वंश का वर्णन किया है वह हम पिछले अध्याय में दे चुके हैं। न तो लवकुश से आगे क्रमवद्ध रूप में कालकेतु और कालराय जी की पीढ़ियों तक का पता चलता है और न सोढ़ीराय से आगे गुरु रामदासजीके पिता तक की पीढ़ियों का, गुरु रामदास जी से गुरु गोविन्दसिंह जी के साहवजादों तक का वर्णन इस ग्रंथ में है ही।

तेरहवाँ अध्याय

बलिदान-कथा

यह ठीक है कि संसार के अन्य बड़े २ धर्मों की अपेक्षा सिख धर्म को स्थापित हुये अभी लगभग साढ़े चार सौ वर्ष का ही समय हुआ है किन्तु इतने ही अल्प समय मे भारत और भारत के बाहर भी उसने जो स्थान प्राप्त कर लिया है। उसे देखते हुये यह बात कम गौरव की नहीं है।

किन्तु सिख धर्म को यह गौरव और इतना ऊंचा स्थान कुछ यों ही नहीं मिल गया है, इसके पीछे एक इतिहास है और उस इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ भरा पडा है उन हुतात्माओं की करुण और हृदय हिला देने वाली कथाओं से जिन्होंने अपने प्यारे धर्म का माथा ऊंचा करने के लिये हँसते २ अपने को बलिदान कर दिया था।

सिख धर्म मे बलिदान का यह सिलसिला पाचवे पातशाह गुरु अर्जुनदेव जी से आरम्भ होता है।

अर्जुनदेव जी का बलिदान

इसी इतिहास के सातवे अध्याय मे हम गुरु अर्जुनदेव जी के विशद जीवन और पवित्र बलिदान पर काफी प्रकाश डाल चुके है। इसलिये यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं समझते।

बादशाह जहाँगीर आपसे बहुत चिढता था उसने अपने आत्म-चरित (तुजक जहाँगीरी) मे लिखा है कि बहुत दिनो से मेरे मन मे प्रबल आकाक्षा थी कि या तो सिख गुरु के काम (धर्म प्रचार) को बन्द करदूं या उसे इस्लाम धर्म मे दाखिल करूं।

पजाब मे पैदा हुये इस सिख धर्म के विरोधियो की कमी न थी। जिनमे हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। जिन्होंने एक से अधिक बार, गुरु जी के धर्म प्रचार के विरुद्ध शिकायते की थीं। इनके साथ ही चन्दूशाह भी शामिल हो गया। जिसकी लडकी की सगाई गुरुजी ने अपने पुत्र से नही की थी। और वह बदला लेने का मौका देख रहा था।

खुशरो की बगावत के समय शिकायत का बहाना मिल जाने पर चन्दूशाह ने बादशाह को खूब ही भड़काया। जिससे चिढ कर बादशाह ने गुरुजी को लाहौर मे बुलाकर बन्दीगृह मे डाल दिया। जहा उन्हे असह यन्त्रणायें दी गई। जिनका कि विस्तार वर्णन पीछे के पृष्ठों मे किया जा चुका है।

काफी कष्ट देने के बाद हाकिमो को सतोष नहीं हुआ तो तजवीज यह की कि "अब इस गुरु को रावी के पानी मे डुबकी दी जाय, जिससे शायद जख्मो पर पानी लगने की पीडा से तड़फ कर अपने पन

से डिग जाय और इसके बाद भी अडिग रहे तो गाय की कच्ची खाल मे मढवा दिया जाय।"

राबी मे डुबकी देने पर उनका प्राण इस नश्वर शरीर को छोड़ गया।

उन दिनों रावी लाहौर के किले से टक्कर लेती थी। अब तो दूर चली गई है। सिखों ने रावी के किनारे पर गुरु जी की स्मृति मे एक देहरा बनवा दिया, जो देहरा साहब के नाम से मशहूर है। यह स्थान बडा सुन्दर है। प्रति वर्ष जेठ सुदी ४ को बडा भारी मेला लगता है। जिसमे लाखों सिख इकट्ठे होते हैं।

वहीं महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि भी बनी हुई है। इस पवित्र स्थान की मैंने भी यात्रा की है। खेद है कि अब यह स्थान पाकिस्तान मे चला गया है।

दीवान मतिराम

नवें पातशाह श्री गुरु तेगबहादुर जी के साथ पॉच सिख देहली गये थे और वे पॉचों भी गुरु जी के साथ ही जेल मे डाल दिये गये। दीवान मतिराम और भाई दयालदास उन्हीं पॉचों सिखों मे थे।

जेल मे भूख प्यास और अनेक यन्त्रणाओं के कारण सिख बहुत दुखी थे। किन्तु जब यह देखते कि गुरु तेगबहादुर जी भी तो उन्हीं की भॉति कष्ट पा रहे हैं। जो कल तक राजा महाराजाओं के जैसे आनन्द मे थे। यह सोचकर विचारे अपने कष्टों को भी भूल जाते थे, किन्तु प्रसुप्त ज्वालामुखी भी एक न एक दिन तो भड़क उठता ही है, सहनशीलता की भी हद होती है। आखिर एक दिन दीवान मतिराम ने गुरु जी से कहा, मुझे ऐसा आता है कि दिल्ली का पाट से पाट मिला दूं। मुगल सल्तनत का नाम निशान तक न रहने दूं। सिख वीर का हृदय जो था। सदैव से स्वाभिमानी वायुमंडल मे रहा था। भावुकता मे जो भी मन में आया मतिराम ने कहा।

जब यह बाते काजी तक पहुँची तो उसने फिर उनपर रगत चढाकर बादशाह औरंगजेब के पास जाकर कह दीं। बादशाह सुनते ही लाल-पीला होगया और उसने पॉचों बन्दियों को मय गुरु जी के, दरबार मे बुलाया।

दरबार मे बादशाह ने मतिराम को संबोधित करते हुए कहा कि मैं तुम्हे मुसलमान बनाना चाहता हूँ और तुम मुसलमान नहीं बनते हो तो फिर देखता हूँ। तुम जो शेखी जेल मे मुगल सल्तनत को तहस-नहस करने और मुझे मजा चखाने की मार रहे थे, उसे पूरी करते हो या नहीं।

भाई मतिराम ने इस आशय का जवाब दिया, मैं मुसलमान प्राण रहते कभी भी नहीं बन सकता हूँ। जो दबाव और लोभ लालच से मुसलमान बनता है उसे क्या ईमानदार कहा जा सकेगा? यदि इस प्रकार का कोई मुसलमान है तो, मैं कहूँगा वह बेईमान है।

रही शेखी मारने की बात, वह शेखी नहीं है जिनके हृदय मे बल है और जो सचाई पर आरूढ़ है, वे एक मुगल सल्तनत क्या हजारों सल्तनत का उलटफेर कर सकते हैं। इस समय मुगल शासन अत्याचारी शासन है। इसे नष्ट करने के लिये सबको जिसके कि दिल मे दीन और दुखियो के प्रति प्रेम है। यही वाक्य कहने चाहिये।

वह बादशाह भाई मतिराम जी के इन शब्दों को भला कब बर्दास्त कर सकता था? जिसका राज्य केवल आतंक पर ही निर्भर था और चूंकि इन शब्दों मे आतक को उड़ा देने की शक्ति थी। अत उसने तुरन्त दिया कि इसी समय जल्लादों को बुलाकर आरे से चीरकर इसके दो टुकड़े कर दिये जॉय। यह काम हुक्म अवाम के सामने हो और यहीं हो जिससे यहा बैठे हुये लोग देखले कि औरङ्गजेब के सामने जबान न संभालकर बोलने वाले की क्या दशा होती है।

मनुष्य वैसे राक्षस और शैतान हो सकता है किन्तु इतिहास साक्षी देता है कि यह मनुष्य ही शैतान और राक्षस है। भाई मतिराम के सिर पर आरा चलने लगा। वहाँ जो शैतान थे वह खुश हो रहे थे और जिनमें इन्सानियत थी वे मुँह फेर कर आँखों से आँसू बहा रहे थे।

आरा चलने लगा। लहू की धारा बहने लगी। किन्तु भाई मतिराम अचल और गंभीर किन्तु प्रसन्न मनसे जप रहे थे—हे अकाल पुरुष मैं तो क्या हूँ, सब कुछ तो तूही है।"

जिस समय दीवान मतिराम जी को आरे से चीरा जारहा था। भाई दयालदास जी से नहीं रहा गया और उन्होंने ओजस्वी शब्दों में बादशाह को सबोधित करते हुए कहा, "इस समय औरङ्गजेब तेरा यह आरा भाई मतिराम के सिर पर नहीं किन्तु तैमूरिया खान्दान की सल्तनत के सिर पर चल रहा है। तू इस तरह के जुल्म से अपना ही नहीं अपनी भावी सतान का अहित कर रहा है।

भाई दयालसिंह

अपने आतक को इस प्रकार भग होते देखकर औरङ्गजेब ने कहा, इसे तेल के गर्म कडाहे मे पटक देने की इजाजत देता हूँ। जल्लादों ने दौड़ कर भाई दयालसिह जी की भी मुश्कें कसलीं।

लाल भट्टी को जिस पर खौलते हुए कड़ाहे से उडने वाली लपटे दस दस कदम तक मनुष्यो के शरीर को झुलसाती थीं, देखकर भाई जी ने अकाल पुरुष की अस्तुति आरंभ की। इसके बीच मे ही उन्हे जल्लादो ने कड़ाह मे फेंक दिया।

गुरु तेगबहादुर जी के साथ जो अन्य सिख थे। वह अपने साथियों की नृशस मृत्यु देखकर निहायत रन्जीदा हुये किन्तु फिर उन्होंने यह कहकर अपने को सभाला कि वाहि गुरु जी की मर्जी के सामने आनन्दित रहनेवालों के मन सदा अटल और अडोल रहते हैं।

गुरु तेगबहादुर

बन्दी दशा मे भी गुरु तेगबहादुर जी जेल के लोगों को उपदेश दिया करते थे। उनका साराश इस प्रकार है :—

(१) मनुष्यों का ईश्वर ही सबसे बड़ा हितू और सहायक है अत उसी के चरणों मे हर समय मन लगाये रखना चाहिये।

(२) मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ पाप की ओर जाती हैं। अत महात्मा लोगों के सत्सग द्वारा इन्हे उस पथ से मोडने का प्रयत्न करना चाहिए।

(३) अपने विश्वास पर से विचलित होनेसे तो मरजाना कहीं अधिक अच्छा है। आपके बलिदान की पूरी कथा पिछले पृष्ठों (ग्यारहवे अध्याय) मे दी हुई है।

इनका भी विस्तृत वर्णन पिछले अध्याय मे कर चुके है। यहाँ तो केवल उनके उन वाक्यो के आशय को रख रहे हैं, जो पजाबी भाषा के एक लेखक ने लिखे हैं। जब वजीरखॉ ने उनके सामने मुसलमान होने का प्रस्ताव रक्खा तो बच्चों ने कहा —

जोरावरसिंह, फतहसिंह

"मौत तो उहु डरे जो सिरजनहार थो विहुडिया होय।
जिन्हन दे हिरदे विच परमेश्वर दा प्यार है ॥
उन्नान लई मौत सच्चा जन्म है।"

अर्थात्—जिसने सिरजनहार परमात्मा को छोड़ दिया है मरने से उसे ही डरना चाहिए। जिसके हृदय मे ईश्वर का प्रेम है। उसके लिये तो मरना नया जन्म है।

नवाब ने इन दोनो सुकुमारों को अमानुषी यत्रणायें देने के बाद जल्लादो से जिबह करा दिया था।

स बीबी को पठानों ने बरछों पर टागकर जलती हुई अग्नि शिखा में पटक दिया था। इनका कसूर केवल इतना था कि चमकौर में जो सिख लडाई में मारे गये थे। उन सबकी लाशों को इकट्ठा करके और उनपर अपने घर से काठ लगाकर सस्कारार्थ अग्नि लगा दी थी। अपने सहधर्मियों के साथ इतनी हमदर्दी तो हर किसी के दिल में होनी ही चाहिए। किन्तु आततायी पठान इसे भी वर्दास्त न कर सके और एक अबला पर बीसियों बर्छिया एक साथ झुक गई? और उन्हे बर्छी पर टागकर उसी जलती हुई चिता में फेंक दिया।

बीबी सरनकौर

यह बीबी सरनकौर वहीं के एक जमींदार की लडकी थीं।

महावीर बन्दासिंह जी की वीरता तथा बलिदान

महावीर बन्दासिंह जी का जन्म काश्मीर के अन्तर्गत पूछ रियासत के राजोड़ी नामक गॉव में हुआ था। आप राजपूत थे। आपकी जन्म तिथि कार्तिक शुक्ला त्रियोदशी सवत १७२७ विक्रमी बताई जाती है। बालकपन का नाम आपका लक्ष्मणदेव था और पिता का नाम रामदेव था।

पिता ने आपको कुलाचार के अनुसार बाल अवस्था से ही शस्त्र सचालन, घोडे की सवारी और मृगया आदि क्षत्रियोचित गुणों में पूरी तरह शिक्षित व दीक्षित कर दिया था।

ऐसा बहुत बार देखा गया है कि मनुष्य के जीवन में आकस्मिक घटनाओं में एकदम ऐसा परिवर्तन हुआ है कि जिसकी पहले से कोई भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। ऐसी ही एक घटना ने लक्ष्मणदेव को वैरागी बना दिया। उन्होंने जब कि वे शिकार खेल रहे थे, एक हिरणी को जख्मी किया वह हिरनी गर्भवती थी, उसके पेट में बच्चे निकल पडे और लक्ष्मणदेव ने उन्हे तडप तडप कर मरते देखा तो बस उसी समय उनमें परिवर्तन होगया और ससार से घृणा हो गई। उन्होंने अपने हथियार खूंटी पर टाग दिये। जब कि वह रात दिन उसी दिन की घटना को लेकर चिन्ता किया करते थे। उन्हे जानकी-प्रसाद नामी एक साधु मिला और उसके उपदेश से १६ वर्ष की उम्र में वह घर छोडकर निकल पडे। राजौडी की बजाय कसूर के पास रामथम्मन गाव के एक डेरे[1] में रहने लगे।

एक बार साधुओं की मडली ने नासिक की यात्रा करने का विचार किया। माधवदास भी उनके साथ गये। नासिक से जब वह मडली उस स्थान पर आई जो पचवटी कहलाता है तो माधवदास ने उस सुन्दर वन में ही रह कर तप करना निश्चय किया और वह अपनी मडली के साथ न लौट कर वहीं तप करने लगे। कहा जाता है कि यहॉ पर आपने १४-१५ वर्ष तक घोर तप किया। यहॉ एक औघड-नाथ जोगी था, बीमारी के समय में माधवदास ने उनकी बहुत सेवा की। औघड अच्छा तो न होसका किन्तु अपनी जंत्र मत्र और योग सम्बन्धी सारी विद्या और पुस्तके सत माधवदास को दे गया।

एक स्थान पर इतने दिनों रहने के कारण सत माधवदास जी के मन में दूसरी जगह चलने की आई और वह गोदावरी के किनारे नदेड नामक स्थान के पास एक जगल में रहने लगे। यहॉ उनकी इतनी प्रसिद्ध हुई कि हजारों ही मनुष्य उनके शिष्य हो गये और उनसे ज्ञान चर्चा सुनने लगे। उनके जादू टोने के कारण लोग उन्हे जबर्दस्त चमत्कारी भी मानने लगे थे।

१ पजाब में सतलोगो के रहने के स्थान को प्राय डेरा कहते है। यहा रामदास नामी वैरागी के चेला होगये और अब नाम बजाय लक्ष्मणदेव के माधवदास होगया।

यह हम अध्याय बारह मे बता चुके हैं कि बादशाह बहादुरशाह का साथ छोड़ कर गुरु गोविन्द-सिंह जब नदेड़ मे पहुँचे तो वहा सत माधवदास जी से मिले थे, गुरुजी के उपदेश ने उनके जीवन प्रवाह को एक दम फेर दिया और वह गुरु जी से पाहिल लेकर बन्दासिंह बन गये।

श्री राधामोहन गोकुल जी ने उनका यही नाम लिखा है हालाकि दूसरे लेखक उन्हे बन्दा बहादुर और गुरुबख्शसिंह लिखते आ रहे हैं। हम भी उनका सिख बनने के बाद का नाम बन्दासिंह[1] ही ठीक मानते हैं। राधामोहन गोकुलजी ने 'गुरु गोविन्दसिंह जी" नामक पुस्तक मे जो आज से पैंतीस वर्ष पहले सन् १६१८ ई० मे छपी है। बन्दा की जगह बन्दासिंह लिखा है।

बन्दासिंह जिस समय दक्षिण से रवाना हुआ तो गुरु जी ने उसे एक नगारा एक निशान और पाच तीर दिये। साथ मे उन्होंने अपने पाच प्यारे बाबा विनोदसिंह, काहनसिंह, बाजसिंह, दयासिंह और रामसिंह जी को भी कर दिया। इसके अलावा २० आदमी और दिये इस प्रकार वह खालसा के एक कमान्डर के रूप मे पजाब को रवाना हुआ। साथ उस हुक्मनामे के जो गुरु जी ने उसे सिखो के नाम लिखकर दिया था।

कुछ ही महीनो मे बन्दासिंह अब अपने साथियो के साथ देहली प्रान्त की सीमा पर पहुँच गये। यहाँ उन्होंने अपनी कूच करने की रफ्तार को जरा ढीला कर दिया। क्योंकि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे धन की आवश्यकता थी। अत वह कुछ समय के लिये सेहड़ी और खोदा गावों के निकट ठहर गया जो कि परगना खरखोदा मे है। वहाँ बैठ कर उसने गुरु जी के दिये हुये पत्र की नकल आस पास के सिखों के पास भेजी। जिसके द्वारा उसने सिखो से अपील की थी कि वे मुगल हुकूमत और वजीर खॉ फौजदार सरहिन्द तथा सुच्चानन्द जैसे लोगो के अत्याचार को मिटाने मे उसे सहयोग दे और आकर उसके पास सगठित हों। उसने उन पत्रो मे गुरुओं साहबजादो की नृशंसता पूर्वक की गई कुर्बानी और हजारों सिखों पर किये जाने वाले अमानुषी जुल्मो की ओर भी संकेत किया था।

बन्दासिंह के इन पत्रों को पाकर हजारो ही सिख और अनेको सरदार उसके पास इकट्ठे हो गये। भगतू खान्दान के भाई फतहसिंह, भाई रूपा के वशज कर्मसिंह और धर्मसिंह तथा निधासिंह और चूहरसिंह सब से पहले प्रमुख सरदार थे, जो बन्दासिंह से आकर मिले, धन और जन दोनो चीजें जुटाई। इनके अलावा आलीसिंह और मालीसिंह आदि भी अनेको वीर सिख आ शामिल हुए। यद्यपि स्वयम् न आ सके परन्तु फूल के वशज चौधरी रामसिंह और तिलोकसिंह ने खुले दिल से जन और धन की सहायता की।

इस प्रकार कुछ महीने तक बन्दासिंह अपनी शक्ति को बढाने मे लगा रहा। जब काफी शक्ति हो गई तो समाना पर चढाई करने के लिये कूच कर दिया। यहाँ का हाकिम सैयद जलालुद्दीन था। उसने गुरु तेगबहादुर को कत्ल कराने मे खूब कोशिश की थी। और गुरु बालकों के पीडक खासलबेग और बासलबेग यहीं के थे।

सन् १७०६ ई० की २६ नौम्बर के प्रात काल ही बन्दासिंह और उसके साथियों ने समाना पर धावा किया। और जाते ही कामयाबी हासिल की। इस मैदान मे दस हजार जानें गईं और यहाँ

१ सुरेन्द्र शर्मा के 'गुरु गोविन्दसिंह' नामक पुस्तक में भी बन्दासिंह ही नाम लिखा है। पथ प्रकाश पाचवां सस्करण पृ० ८५, ८६

पर सरकारी खजाने में से बहुत सा माल सिखों के हाथ लगा। शाही इमारतें तोड़ फोड़ डाली गईं। सैकड़ों पठान मारे गये। सैकड़ों प्राण लेकर भाग गये।

समाना से सीधे घुड़ाम, ठसका, तासका, शहाबाद और मुस्तफाबाद को लूटता हुआ बन्दासिंह का दल कपूरी पहुँचा। यह स्थान उसे बिना दिक्कत के विजय हो गये थे कपूरी में कदमुद्दीन नाम का फौजदार था, जो बड़ा कठोर और तासुबी था। उसने अनेकों हिन्दू-स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट किया था। शायद ही कोई नवविवाहित उससे बचती थी और उसके घुड़सवार हिन्दू बरात में हिन्दू स्त्री को घूरने और दुलहिनों को छीन लेजाने के लिये इधर उधर चक्कर लगाते रहते थे और कदमुद्दीन इस प्रकार इलाके गैर मुस्लिमों के लिये आतंकवादी बन रहा था। बन्दासिंह के पास उसकी शिकायत पहुँच चुकी थी। इस तरह की हालत को एक सिख कब तक बर्दाश्त कर सकता था। अत. बन्दासिंह ने उस समय तक कुछ और न करने का फैसला कर लिया जब तक कि वह कदमुद्दीन को पूरी सजा न देले। उसने कपूरी पर हमला किया। कदमुद्दीन के दुराचार के केन्द्र महलों में आग लगा दी गई और उसके अत्याचार से संग्रह किये हुये धन को लूट लिया गया।

इसके बाद साढोरा पर हमला किया गया। यहाँ उस्मानखां हाकिम था। यह बड़ा अन्याचार कर रहा था। यहाँ तक कि हिन्दुओं को अपने मुर्दे जलाने की भी आज्ञा न थी। मुस्लिम मत सैयद बदरुद्दीनशाह को केवल इस कारण मरवा डाला था कि उसने भंगानी की लड़ाई में गुरु गोविन्दसिंह की सहायता की थी। अभी तक के उसके किये का फल चखाने के बाद बन्दासिंह की फौज दुआबे और माझा की तरफ बढ़ी।

इस समय बन्दासिंह एक टेढा रास्ता अख्तयार कर रहा था ताकि माझा और दुआबा के सिख-जिनका कि रास्ता सतजल पर शेर मुहम्मद मलेर कोटले ने रोक रक्खा था उसकी फौज में मिलकर सरहिन्द के हमले में शामिल हो सके। जब उसने छत पर अपना कब्जा किया तो उधर से आ रहे सिख मलेर कोटलियों को रोपड़ के नजदीक शिकस्त देकर खरड़ और बनूर के दरम्यान उसकी सेना से आ मिले।

"इसी संवत १७६७ के फागुन में सरहिन्द पर चढ़ाई कर देनी है। आप अपने मेलजोल के और परिचित लोगों के पास खबर भेजकर बहुत सारे आदमी बुला लीजिये। इस पवित्र काम में सभी का फर्ज है कि हमारा साथ दे।" बन्दासिंह जी की यह आज्ञा बिजली की भांति सारे इलाके में फैल गई। सिख सज सज कर और हथियारों से लैस होकर उनके पास आने लगे। इधर नवाब वजीरखा को भी पता लग गया था। उसने भी तैयारी करनी शुरू कर दी थी। पेशकार सुच्चानद का भतीजा सरहिन्द अफसर किन्हीं कारणों से रुष्ट होकर दस हजार आदमियों के साथ बन्दासिंह के पास उनकी ओर से लड़ने के लिये हाजिर हुआ। जिसे बन्दासिंह ने रख लिया। हालाकि उसका मतलब सिखों को धोखा देने वाला खेल खेलना था।

२२ मई सन् १७१० ई० में सिख फौजों ने सरहिन्द की ओर कूच किया। सरहिन्द केवल एक ही मंजिल रह गया था कि नवाब भी अपनी सेनायें लेकर सामना करने को किले से निकल आया। सरहिन्द से दो कोस के फासले पर चप्पडचिड़ी के पास लड़ाई हुई। बहुत दिनों से आम रिवाज यही हो रहा था कि मुसलमान लोग ही आक्रमण किया करते थे। यह पहला मौका था। जब बन्दासिंह उनके ऊपर चढ़कर जा रहा था। इससे पठानों के दिल दहल गये थे। दूसरे उन्होंने यह भी सुन रक्खा था कि मुसलमानों के हार जाने पर भी उनकी खैर नहीं होगी। बन्दासिंह उन्हे बुरी तरह से लुटवा लेगा। इन सब बातों को सोच कर वे बडे डट कर लड़े। दोपहर तक बड़े जोरों की लड़ाई हुई। खून से जमीन तर हो गई। लाशों के ढेर

लग गये। सिख लोग जल्दी ही मामला साफ करने के इरादे से बड़े वेग के साथ लड़ रहे थे। इसलिये लड़ते-लड़ते उनके हाथ फूलने लगे। बाबा विनोदसिंह ने देखा कि सरहिन्द से आये हिन्दू सैनिकों के भागने से सिखों के पैर कच्चे पड़ जाने का डर है उन्होंने कहा, आप भागने के लिये नहीं आये। हमारे सामने गुरु गोविन्दसिंह के छोटे २ बच्चों की चिताये जलती दिखाई दे रही है। हमारे लिये यह धर्म है। इतने मे पीछे के हिस्से से वन्दासिह आगे आये और उन्होंने ललकार कर कहा आओ वीरो आगे बढ़ो। तुमने सिंहिनियो का दूध पिया है, इन कायरो पर एक साथ हल्ला क्यों नहीं बोल देते ? सिख एक हुंकारा भर कर पिल पड़े। वन्दासिह जी ने भी उन पठान सेनापतियों पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी जो फौज का संचालन कर रहे थे। एक दो तीन इस तरह सैकड़ो को जमीन पर बिछा दिया। अब क्या था पठान सेना भाग निकली। भाई फतहसिह ने वजीरखा को अपनी तलवार के घाट उतार दिया। वजीरखां के गिरते ही सारी पठान सेना भाग गई। सत श्री अकाल के नारों से आसमान गूज उठा और सिखो ने शहर मे प्रवेश किया। यह घटना सन् १७१० की २४ मई की है।

पठान सैनिक लड़ाई से तो भागे ही थे सरहिन्द नगर से भी भागने लगे। वन्दासिंह जी का आतंक ही ऐसा था।

सिख सेनाऐ सरहिन्द मे घुसी। लूट आरम्भ हो गई। बराबर तीन दिन तक लूट होती रही। जिन घरों के अड़ियल दरवाजे थे। उनमें सिखो ने आग लगा दी।

गुडानी के रामराय मसन्द को भी दड दिया गया क्योंकि उसने गुरु गोविन्दसिंह जी के रागी बुलाकासिंह की तौहीन की थी।

सन् १७०४ ई० मे शेरमुहम्मद हाकिम मालेर कोटला बीबी अनूपकौर नाम की एक हिन्दू स्त्री को सिरसा नदी की गडबड़ मे अपहरण कर लाया था किन्तु उसने अपने सतीत्वकी रक्षा करने के लिये अपने जिगर मे कटार घोंपली थी। शेर मुहम्मद ने उसे कब्र मे दफनवा दिया था। वन्दासिंह के बहादुर सिखों ने उस कब्र को खोद कर बीबी अनूपकौर का सस्कार कर दिया। उन्होंने मालेर कोटला के नवाब को तो इसलिये दंड देने से छोड़ दिया कि उसने सरहिन्द मे गुरु बालकों के वध के समय इन्सानियत प्रकट करते हुये, उन्हे खुद मारने से इनकार कर दिया था और 'हाय' का नारा मारते हुये उस अत्याचारी दरबार से उठ आया था। इसी कृतज्ञता के प्रकाशन के लिये सिखो ने मालेर कोटला को छोड़ दिया।

यहाँ से एक मंजिल पर जगरॉव नाम का नगर था। यहाँ कल्यानराय नाम का खत्री हाकिम था। वह डरके मारे अपने आप ही महावीर वन्दासिह जी की सेवा मे हाजिर हुआ और पाच हजार रुपये भेट मे दिये।

रायकोट और दूसरे कई शहरो ने मुकाबिला कर सकने की ताकत न होने के कारण वन्दासिह जी की अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह सरहिन्द का कुल इलाका वन्दासिह के हाथ मे आ गया।

चूंकि अब तक काफी मुल्क महावीर वन्दासिह के कब्जे मे आ चुका था। अत. उसने उस विजित प्रदेश का मजबूत प्रबन्ध भी किया। बाजसिह को जो कि नदेड़ से ही उसके साथ आया था। सरहिन्द का सूबेदार मुकर्रिर किया। अलीसिंह को उसका नायक बनाया। फतहसिह को समाना मे नियुक्त कर दिया। रामसिह और विनोदसिंह को थानेश्वर और उससे सम्बन्धित इलाके का सयुक्त चार्ज दिया।

इन समस्त परगनो पर सिखो का एकाधिकार हो गया था। जो सिखों के पंथ द्वारा शासित समझा जाता था।

हस्तलिखित पुस्तकों के आधार पर विनायक अर्विन अपनी पुस्तक 'लेटर मुगल' में लिखता है— "सिखों के अधिकार मे आये हुये परगनों में देर से चली आ रही, पुरानी रस्मों का बिल्कुल ही उलट दिया। एक नीच जाति के भगी या चमार को जिसे कि हिन्दू लोग बहुत ही अधम समझते हैं। केवल घर छोडकर गुरु की शरण मे आकर सिख धर्म मे दीक्षित ही होना होता था कि वन्दासिंह की ओर से उसे अपने ही इलाके का हाकिम बनाकर वापिस भेज दिया जाता था। जब वह अपने इलाके की हद मे दाखिल होता तो वडे २ अमीर और अच्छे घरानों में उत्पन्न हुये कुलीन उसकी आवभगत करने के लिये और हाथ जोडकर उससे हुक्म चाहते थे। किसी को हौसला न पडता था कि उसकी आज्ञा का उलंघन कर सके और वह लोग जो रणभूमि मे शत्रु के मुकाबिले पर डट जाने के लिये तैयार हो जाते थे। इतने साहसहीन हो गये कि वह जवान हिलाने से भी डरने लगे।

इस तरह अनेकों स्थानों की विजय और शासन व्यवस्था के साथ ही वन्दासिंह ने सिख समाज को बढाने का कार्य्य भी जारी रक्खा। वह हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही सिख बनाता था। हिन्दू तो धडाधड सिख बन रहे थे। किन्तु उसने अनेकों मुसलमानों को भी सिख धर्म की दीक्षा दी। सिख होने वाले लोगो के नामान्त में वह सिंह लगाता। दीनदारखा को सिख बनाकर उसका नाम दीनदारसिंह रक्खा इसी प्रकार सरहिन्द के खबरनवीस नासिरुद्दीन के सिख बनाने पर उसका नाम मीर नासिरसिंह रख दिया। उसके समय मे अनेको मुसलमानों ने सिख धर्म को स्वीकार किया। (इस्नार-उल-इस्ना छठी और रुकात-ई अमीनुद्दोला ४वीं जिल्द)।

इस समय वन्दासिंह की शक्ति काफी बढ गई थी और इलाका भी बहुतेरा उसके हाथ आ चुका था जिससे अच्छा खासा राज्य बन गया था।

उसने मुखलिस के पुराने किले को जो कि साढोरा के पास है। नये सिरे मे मरम्मत कराया और उसका नाम लोहगढ रक्खा और इसे अपनी राजधानी का रूप दिया। यहीं से समस्त प्रदेश का प्रवन्ध वन्दासिंह करने लगा। यहाँ पर एक बडी सेना और साथ ही युद्ध की सामग्री भी रक्खी जाने लगी।

इस प्रकार राजधानी के कायम हो जाने पर वन्दासिंह ने गुरु नानक और गोविन्दसिंह के नाम का सिक्का भी चलाया। जिस पर पारसी भाषा में "सिक्का जद बर हर दो आलम तेगे नानक वाहिब अस्त। फतह गोविन्द सिंह शाह शाहान फजल सच्चा साहब अस्त।"

इसमें तमाम धन सम्पति का दाता गुरु नानक। ईश्वर कृपा से और सर्व विजय का प्रदानकर्ता गुरु गोविन्दसिंह जी को बताया गया है।

इसी तरह उसने अपने हुक्मनामो या फर्मानों पर मुहर आदि लगाने के लिये एक मुहर भी जारी की थी। उस मुहर पर यह शब्द लिखे रहते थे।

"देग तेग व फतह व नसरत वेद रग।
यापत अज नानक गुरु गोविन्दसिंह।"

अर्थात—गरीब लोगो के लिये देग और निवलो की रक्षा के लिये तेग और सर्व प्रकार की विजय और कामयाबी सदैव चिरजीव रहे। जोकि गुरु नानकदेव और गुरु गोविन्दसिंह से प्राप्त हुई है।

इसके सिवा वन्दासिंह ने मुगल साम्राज्य के उन क्षीण दिनों मे एक संवत का प्रचलन किया जो कि सरहिन्द की विजय के दिन से आरम्भ होता था।

इन दिनो सिख वन्दासिंह मे अटूट स्नेह करने लग गये थे। वे उसे गुरु गोविन्दसिंह की एक

तेरहवाँ अध्याय

बलिदान-कथा

यह ठीक है कि संसार के अन्य बड़े २ धर्मों की अपेक्षा सिख धर्म को स्थापित हुये अभी लगभग साढ़े चार सौ वर्ष का ही समय हुआ है किन्तु इतने ही अल्प समय मे भारत और भारत के बाहर भी उसने जो स्थान प्राप्त कर लिया है। उसे देखते हुये यह बात कम गौरव की नहीं है।

किन्तु सिख धर्म को यह गौरव और इतना ऊंचा स्थान कुछ यों ही नहीं मिल गया है, इसके पीछे एक इतिहास है और उस इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ भरा पड़ा है उन हुतात्माओं की करुण और हृदय हिला देने वाली कथाओं से जिन्होंने अपने प्यारे धर्म का माथा ऊंचा करने के लिये हँसते २ अपने को बलिदान कर दिया था।

सिख धर्म मे बलिदान का यह सिलसिला पाचवे पातशाह गुरु अर्जुनदेव जी से आरम्भ होता है।

अर्जुनदेव जी का बलिदान

इसी इतिहास के सातवें अध्याय में हम गुरु अर्जुनदेव जी के विशद जीवन और पवित्र बलिदान पर काफी प्रकाश डाल चुके है। इसलिये यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं समझते।

बादशाह जहाँगीर आपसे बहुत चिढ़ता था उसने अपने आत्म-चरित (तुजक जहाँगीरी) मे लिखा है कि बहुत दिनो से मेरे मन मे प्रबल आकाक्षा थी कि या तो सिख गुरु के काम (धर्म प्रचार) को बन्द करदूं या उसे इस्लाम धर्म मे दाखिल करूं।

पंजाब में पैदा हुये इस सिख धर्म के विरोधियों की कमी न थी। जिनमे हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। जिन्होंने एक से अधिक बार, गुरु जी के धर्म प्रचार के विरुद्ध शिकायतें की थीं। इनके साथ ही चन्दूशाह भी शामिल हो गया। जिसकी लड़की की सगाई गुरुजी ने अपने पुत्र से नहीं की थी। और वह बदला लेने का मौका देख रहा था।

खुसरो की बगावत के समय शिकायत का बहाना मिल जाने पर चन्दूशाह ने बादशाह को खूब ही भड़काया। जिससे चिढ़ कर बादशाह ने गुरुजी को लाहौर में बुलाकर बन्दीगृह मे डाल दिया। जहा उन्हें असह्य यंत्रणायें दी गईं। जिनका कि विस्तार वर्णन पीछे के पृष्ठों मे किया जा चुका है।

काफी कष्ट देने के बाद हाकिमों को सतोष नहीं हुआ तो तजवीज यह की कि "अब इस गुरु को रावी के पानी मे डुबकी दी जाय, जिससे शायद जख्मों पर पानी लगने की पीड़ा से तड़फ कर अपने पन

से डिग जाय और इसके बाद भी अडिग रहे तो गाय की कच्ची खाल में मढ़वा दिया जाय।"

रावी में डुबकी देने पर उनका प्राण इस नश्वर शरीर को छोड़ गया।

उन दिनों रावी लाहौर के किले से टक्कर लेती थी। अब तो दूर चली गई है। सिखों ने रावी के किनारे पर गुरु जी की स्मृति में एक देहरा बनवा दिया, जो देहरा साहब के नाम से मशहूर है। यह स्थान बड़ा सुन्दर है। प्रति वर्ष जेठ सुदी ४ को बड़ा भारी मेला लगता है। जिसमें लाखों सिख इकट्ठे होते हैं।

वहीं महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि भी बनी हुई है। इस पवित्र स्थान की मैंने भी यात्रा की है। खेद है कि अब यह स्थान पाकिस्तान में चला गया है।

नवे पातशाह श्री गुरु तेगबहादुर जी के साथ पाँच सिख देहली गये थे और वे पाँचों भी गुरु जी के साथ ही जेल में डाल दिये गये। दीवान मतिराम और भाई दयालदास उन्हीं पाँचों सिखों में थे।

दीवान मतिराम

जेल में भूख प्यास और अनेक यंत्रणाओं के कारण सिख बहुत दुखी थे। किन्तु जब यह देखते कि गुरु तेगबहादुर जी भी तो उन्हीं की भाँति कष्ट पा रहे हैं। जो कल तक राजा महाराजाओं के जैसे आनन्द में थे। यह सोचकर विचारे अपने कष्टों को भी भूल जाते थे, किन्तु प्रसुप्त ज्वालामुखी भी एक न एक दिन तो भड़क उठता ही है, सहनशीलता की भी हद होती है। आखिर एक दिन दीवान मतिराम ने गुरु जी से कहा, मुझे ऐसा आता है कि दिल्ली का पाट से पाट मिला दूं। मुगल सल्तनत का नाम निशान तक न रहने दूं। सिख वीर का हृदय जो था। सदैव से स्वाभिमानी वायुमंडल में रहा था। भावुकता में जो भी मन में आया मतिराम ने कहा।

जब यह बाते काजी तक पहुँची तो उसने फिर उनपर रगत चढाकर बादशाह औरंगजेब के पास जाकर कह दीं। बादशाह सुनते ही लाल-पीला होगया और उसने पाँचों बन्दियों को मय गुरु जी के, दरबार में बुलाया।

दरबार में बादशाह ने मतिराम को सबोधित करते हुए कहा कि मैं तुम्हे मुसलमान बनाना चाहता हूँ और तुम मुसलमान नहीं बनते हो तो फिर देखता हूँ। तुम जो शेखी जेल में मुगल सल्तनत को तहस-नहस करने और मुझे मजा चखाने की मार रहे थे, उसे पूरी करते हो या नहीं।

भाई मतिराम ने इस आशय का जवाब दिया, मैं मुसलमान प्राण रहते कभी भी नहीं बन सकता हूँ। जो दबाव और लोभ लालच से मुसलमान बनता है उसे क्या ईमानदार कहा जा सकेगा? यदि इस प्रकार का कोई मुसलमान है तो, मैं कहूँगा वह बेईमान है।

रही शेखी मारने की बात, वह शेखी नहीं है जिनके हृदय में बल है और जो सचाई पर आरूढ़ है, वे एक मुगल सल्तनत क्या हजारों सल्तनत का उलटफेर कर सकते है। इस समय मुगल शासन अत्याचारी शासन है। इसे नष्ट करने के लिये सबको जिसके कि दिल में दीन और दुखियों के प्रति प्रेम है। यही वाक्य कहने चाहिये।

वह बादशाह भाई मतिराम जी के इन शब्दों को भला कब बर्दास्त कर सकता था? जिसका राज्य केवल आतक पर ही निर्भर था और चूं कि इन शब्दों में आतक को उडा देने की शक्ति थी। अत उसने तुरन्त दिया कि इसी समय जल्लादों को बुलाकर आरे से चीरकर इसके दो टुकडे कर दिये जॉय। यह काम हुक्म अवाम के सामने हो और यहीं हो जिससे यहा बैठे हुये लोग देखले कि औरङ्गजेब के सामने जबान न संभालकर बोलने वाले की क्या दशा होती है।

मनुष्य वैसे राक्षस और शैतान हो सकता है किन्तु इतिहास साक्षी देता है कि यह मनुष्य ही शैतान और राक्षस है। भाई मतिराम के सिर पर आरा चलने लगा। वहाँ जो शैतान थे वह खुश हो रहे थे और जिनमे इन्सानियत थी वे मुँह फेर कर आँखों से आँसू बहा रहे थे।

आरा चलने लगा। लहू की धारा बहने लगी। किन्तु भाई मतिराम अचल और गंभीर किन्तु प्रसन्न मनसे जप रहे थे—हे अकाल पुरुष मैं तो क्या हूँ, सब कुछ तो तूही है।"

जिस समय दीवान मतिराम जी को आरे से चीरा जारहा था। भाई दयालदास जी से नहीं रहा गया और उन्होंने ओजस्वी शब्दों मे बादशाह को संबोधित करते हुए कहा, "इस समय औरङ्गजेब

भाई दयालसिंह

तेरा यह आरा भाई मतिराम के सिर पर नहीं किन्तु तैमूरिया खान्दान की सल्तनत के सिर पर चल रहा है। तू इस तरह के जुल्म से अपना ही नहीं अपनी भावी सतान का अहित कर रहा है।

अपने आतक को इस प्रकार भंग होते देखकर औरङ्गजेब ने कहा, इसे तेल के गर्म कड़ाहों मे पटक देने की इजाजत देता हूँ। जल्लादों ने दौड कर भाई दयालसिंह जी की भी मुश्कें कसलीं।

लाल भट्टी को जिस पर खौलते हुए कड़ाहों से उडने वाली लपटें दस दस कदम तक मनुष्यो के शरीर को झुलसाती थीं, देखकर भाई जी ने अकाल पुरुष की अस्तुति आरभ की। इसके बीच मे ही उन्हे जल्लादों ने कड़ाह मे फेंक दिया।

गुरु तेगबहादुर जी के साथ जो अन्य सिक्ख थे। वह अपने साथियों की नृशस मृत्यु देखकर

गुरु तेगबहादुर

निहायत रन्जीदा हुये किन्तु फिर उन्होंने यह कहकर अपने को संभाला कि वाहि गुरु जी की मर्जी के सामने आनन्दित रहनेवालो के मन सदा अटल और अडोल रहते हैं।

वन्दी दशा मे भी गुरु तेगबहादुर जी जेल के लोगो को उपदेश दिया करते थे। उनका साराश इस प्रकार है :—

(१) मनुष्यों का ईश्वर ही सबसे बडा हितू और सहायक है अत उसी के चरणों मे हर समय मन लगाये रखना चाहिये।

(२) मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ पाप की ओर जाती हैं। अत महात्मा लोगों के सत्सग द्वारा इन्हे उस पथ से मोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

(३) अपने विश्वास पर से विचलित होनेसे तो मरजाना कहीं अधिक अच्छा है। आपके बलिदान की पूरी कथा पिछले पृष्ठों (ग्यारहवे अध्याय) मे दी हुई है।

इनका भी विस्तृत वर्णन पिछले अध्याय मे कर चुके है। यहाँ तो केवल उनके उन वाक्यों के

जोरावरसिंह, फतहसिंह

आशय को रख रहे हैं, जो पजाबी भाषा के एक लेखक ने लिखे हैं। जब वजीरखाँ ने उनके सामने मुसलमान होने का प्रस्ताव रक्खा तो बच्चों ने कहा —

"मौत तो उह डरे जो सिरजनहार थो विहडिया होय।
जिन्हन दे हिरदे विच परमेश्वर दा प्यार है॥
उन्नान लई मौत सच्चा जन्म है।"

अर्थात्—जिसने सिरजनहार परमात्मा को छोड दिया है मरने से उसे ही डरना चाहिए। जिसके हृदय मे ईश्वर का प्रेम है। उसके लिये तो मरना नया जन्म है।

नवाब ने इन दोनों सुकुमारों को अमानुषी यंत्रणायें देने के बाद जल्लादो से जिबह करा दिया था।

स बीबी को पठानों ने बरछों पर टागकर जलती हुई अग्नि शिखा मे पटक दिया था। इनका कसूर केवल इतना था कि चमकौर मे जो सिख लड़ाई मे मारे गये थे। उन सबकी लाशों को इकट्ठा करके और उनपर अपने घर से काठ लगाकर संस्कारार्थ अग्नि लगा दी थी। अपने सहधर्मियों के साथ इतनी हमदर्दी तो हर किसी के दिल मे होनी ही चाहिए। किन्तु आततायी पठान इसे भी बर्दास्त न कर सके और एक अबला पर बीसियो बर्छिया एक साथ झुक गई? और उन्हे बर्छी पर टागकर उसी जलती हुई चिता मे फेंक दिया।

बीबी सरनकौर

यह बीबी सरनकोर वहीं के एक जमीदार की लड़की थीं।

महावीर बन्दासिंह जी की वीरता तथा बलिदान

महावीर बन्दासिंह जी का जन्म काश्मीर के अन्तर्गत पूंछ रियासत के राजोड़ी नामक गॉव मे हुआ था। आप राजपूत थे। आपकी जन्म तिथि कार्तिक शुक्ला त्रियोदशी संवत १७२७ विक्रमी बताई जाती है। बालकपन का नाम आपका लक्ष्मणदेव था और पिता का नाम रामदेव था।

पिता ने आपको कुलाचार के अनुसार बाल अवस्था से ही शस्त्र सचालन, घोडे की सवारी और मृगया आदि क्षत्रियोचित गुणों मे पूरी तरह शिक्षित व दीक्षित कर दिया था।

ऐसा बहुत बार देखा गया है कि मनुष्य के जीवन मे आकस्मिक घटनाओ से एकदम ऐसा परिवर्तन हुआ है कि जिसकी पहले से कोई भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। ऐसी ही एक घटना ने लक्ष्मणदेव को बैरागी बना दिया। उन्होंने जब कि वे शिकार खेल रहे थे, एक हिरणी को जख्मी किया वह हिरनी गर्भवती थी, उसके पेट से बच्चे निकल पडे और लक्ष्मणदेव ने उन्हे तडप तडप कर मरते देखा तो बस उसी समय उनमे परिवर्तन होगया और ससार से घृणा हो गई। उन्होंने अपने हथियार खूंटी पर टाग दिये। जब कि वह रात दिन उसी दिन की घटना को लेकर चिन्ता किया करते थे। उन्हे जानकी-प्रसाद नामी एक साधु मिला और उसके उपदेश से १६ वर्ष की उम्र मे वह घर छोडकर निकल पडे। राजौडी की बजाय कसूर के पास रामथम्मन गाव के एक डेरे[1] मे रहने लगे।

एक बार साधुओ की मडली ने नासिक की यात्रा करने का विचार किया। माधवदास भी उनके साथ गये। नासिक से जब वह मडली उस स्थान पर आई जो पचवटी कहलाता है तो माधवदास ने उस सुन्दर वन मे ही रह कर तप करना निश्चय किया और वह अपनी मडली के साथ न लौट कर वहीं तप करने लगे। कहा जाता है कि यहॉ पर आपने १४-१५ वर्ष तक घोर तप किया। यहॉ एक औघड-नाथ जोगी था, बीमारी के समय मे माधवदास ने उनकी बहुत सेवा की। औघड अच्छा तो न होसका किन्तु अपनी जत्र मत्र और योग सम्बन्धी सारी विद्या और पुस्तके सत माधवदास को दे गया।

एक स्थान पर इतने दिनों रहने के कारण सत माधवदास जी के मन मे दूसरी जगह चलने की आई और वह गोदावरी के किनारे नदेड नामक स्थान के पास एक जगल मे रहने लगे। यहॉ उनकी इतनी प्रसिद्ध हुई कि हजारों ही मनुष्य उनके शिष्य हो गये और उनसे ज्ञान चर्चा सुनने लगे। उनके जादू टोने के कारण लोग उन्हे जबर्दस्त चमत्कारी भी मानने लगे थे।

१ पजाब में सतलोगो के रहने के स्थान को प्राय डेरा कहते है। यहा रामदास नामी वैरागी के चेला होगये और अब नाम बजाय लक्ष्मणदेव के माधवदास होगया।

यह हम अध्याय बारह में बता चुके हैं कि बादशाह बहादुरशाह का साथ छोड कर गुरु गोविन्द-सिंह जब नदेड में पहुँचे तो वहा सत माधवदास जी से मिले थे, गुरुजी के उपदेश ने उनके जीवन प्रवाह को एक दम फेर दिया और वह गुरु जी से पाहिल लेकर वन्दासिंह बन गये।

श्री राधामोहन गोकुल जी ने उनका यही नाम लिखा है हालाकि दूसरे लेखक उन्हे वन्दा बहादुर और गुरुबख्शसिंह लिखते आ रहे हैं। हम भी उनका सिख बनने के बाद का नाम वन्दासिंह[1] ही ठीक मानते हैं। राधामोहन गोकुलजी ने "गुरु गोविन्दसिह जी" नामक पुस्तक मे जो आज से पैंतीस वर्ष पहले सन् १६१८ ई० में छपी है। वन्दा की जगह वन्दासिंह लिखा है।

वन्दासिंह जिस समय दक्षिण से रवाना हुआ ता गुरु जी ने उसे एक नगारा एक निशान और पाच तीर दिये। साथ मे उन्होने अपने पाच प्यारे बाबा विनोदसिंह, काहनसिंह, बाजसिंह, दयासिंह और रामसिंह जी को भी कर दिया। इसके अलावा २० आदमी और दिये इस प्रकार वह खालसा के एक कमान्डर के रूप मे पजाब को रवाना हुआ। साथ उस हुक्मनामे के जो गुरु जी ने उसे सिखों के नाम लिखकर दिया था।

कुछ ही महीनों मे वन्दासिंह अब अपने साथियों के साथ देहली प्रान्त की सीमा पर पहुँच गये। यहाँ उन्होने अपनी कूच करने की रफ्तार को जरा ढीला कर दिया। क्योंकि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे धन की आवश्यकता थी। अत वह कुछ समय के लिये सेहडी और खोदा गावो के निकट ठहर गया जो कि परगना खरखोदा मे है। वहाँ बैठ कर उसने गुरु जी के दिये हुये पत्र की नकल आस पास के सिखों के पास भेजी। जिसके द्वारा उसने सिखो मे अपील की थी कि वे मुगल हुकूमत और वजीर खॉ फौजदार सरहिन्द तथा सुच्चानन्द जैसे लोगों के अत्याचार को मिटाने मे उसे सहयोग दे और आकर उसके पास सगठित हो। उसने उन पत्रो मे गुरुओं साहबजादों की नृशंसता पूर्वक की गई कुर्बानी और हजारों सिखों पर किये जाने वाले अमानुषी जुल्मो की ओर भी सकेत किया था।

वन्दासिंह के इन पत्रो को पाकर हजारो ही सिख और अनेकों सरदार उसके पास इकट्ठे हो गये। भगतू खान्दान के भाई फतहसिंह, भाई रूपा के वशज कर्मसिंह और धर्मसिंह तथा निधासिंह और चूहरसिंह सब से पहले प्रमुख सरदार थे, जो वन्दासिंह से आकर मिले, धन और जन दोनों चीजे जुटाई। इनके अलावा आलीसिंह और मालीसिंह आदि भी अनेकों वीर सिख आ शामिल हुए। यद्यपि स्वयम् न आ सके परन्तु फूल के वशज चौधरी रामसिंह और तिलोकसिंह ने खुले दिल से जन और धन की सहायता की।

इस प्रकार कुछ महीने तक वन्दासिंह अपनी शक्ति को बढाने मे लगा रहा। जब काफी शक्ति हो गई तो समाना पर चढाई करने के लिये कूच कर दिया। यहॉ का हाकिम सैयद जलालुद्दीन था। उसने गुरु तेगबहादुर को कत्ल कराने में खूब कोशिश की थी। और गुरु बालकों के पीड़क खासलबेग और बासलबेग यहीं के थे।

सन् १७०६ ई० की २६ नोम्बर के प्रात काल ही वन्दासिंह और उसके साथियों ने समाना पर धावा किया। और जाते ही कामयाबी हासिल की। इस मैदान में दस हजार जानें गई और यहाँ

१. सुरेन्द्र शर्मा के 'गुरु गोविन्दसिंह' नामक पुस्तक में भी वन्दासिंह ही नाम लिखा है। पथ प्रकाश पाचवां सस्करण पृ० ८५, ८६

पर सरकारी खजाने मे से वहुत सा माल सिखों के हाथ लगा। शाही इमारते तोड़ फोड डाली गईं। सैकड़ों पठान मारे गये। सैकड़ों प्राण लेकर भाग गये।

समाना से सीधे घुडाम, उसका, तासका, शहावाद और मुस्तफावाद को लूटता हुआ वन्दासिंह का दल कपूरी पहुँचा। यह स्थान उसे विना दिक्कत के विजय हो गये थे कपूरी मे कदमुद्दीन नाम का फौजदार था, जो वड़ा कठोर और तासुवी था। उसने अनेकों हिन्दू-स्त्रियो के सतीत्व को नष्ट किया था। शायद ही कोई नवविवाहित उससे वचती थी और उसके घुडसवार हिन्दू वरात मे हिन्दू स्त्री को घूरने और दुलहिनों को छीन लेजाने के लिये इधर उधर चक्कर लगाते रहते थे और कदमुद्दीन इस प्रकार इलाके गैर मुस्लिमों के लिये आतकवादी वन रहा था। वन्दासिंह के पास उसकी शिकायत पहुँच चुकी थी। इस तरह की हालत को एक सिख कव तक वर्दास्त कर सकता था। अत वन्दासिंह ने उस समय तक कुछ और न करने का फैसला कर लिया जव तक कि वह कदमुद्दीन को पूरी सजा न देले। उसने कपूरी पर हमला किया। कदमुद्दीन के दुराचार के केन्द्र महलों मे आग लगा दी गई और उसके अत्याचार से सग्रह किये हुये धन को लूट लिया गया।

इसके वाद साढोरा पर हमला किया गया। यहाँ उस्मानखा हाकिम था। यह वडा अत्याचार कर रहा था। यहाँ तक कि हिन्दुओं को अपने मुर्दे जलाने की भी आज्ञा न थी। मुस्लिम संत सैयद वदरुद्दीनशाह को केवल इस कारण मरवा डाला था कि उसने भंगानी की लडाई में गुरु गोविन्दसिंह की सहायता की थी। अभी तक के उसके किये का फल चखाने के वाद वन्दासिंह की फौज दुआवे और माझा की तरफ वढ़ी।

इस समय वन्दासिंह एक टेढा रास्ता अख्तयार कर रहा था ताकि माझा और दुआवा के सिख-जिनका कि रास्ता सतजल पर शेर मुहम्मद मलेर कोटले ने रोक रक्खा था उसकी फौज मे मिलकर सर हिन्द के हमले मे शामिल हो सके। जव उसने छत पर अपना कब्जा किया तो उधर से आ रहे सिख मलेर कोटलियों को रोपड के नजदीक शिकस्त देकर खरड और वनूर के दरम्यान उसकी सेना से आ मिले।

"इसी सवत १७६७ के फागुन मे सरहिन्द पर चढ़ाई कर देनी है। आप अपने मेलजोल के और परिचित लोगों के पास खवर भेजकर वहुत सारे आदमी वुला लीजिये। इस पवित्र काम मे सभी का फर्ज है कि हमारा साथ दें।" वन्दासिंह जी की यह आज्ञा विजली की भांति सारे इलाके मे फैल गई। सिख सज सज कर और हथियारों से लैस होकर उनके पास आने लगे। इधर नवाव वजीरखा को भी पता लग गया था। उसने भी तैयारी करनी शुरू कर दी थी। पेशकार सुच्चानन्द का भतीजा सरहिन्द अफसर किन्हीं कारणों से रूष्ट होकर दस हजार आदमियों के साथ वन्दासिंह के पास उनकी ओर से लड़ने के लिये हाजिर हुआ। जिसे वन्दासिंह ने रख लिया। हालाकि उसका मतलव सिखों को धोखा देने वाला खेल खेलना था।

२२ मई सन् १७१० ई० मे सिख फौजों ने सरहिन्द की ओर कूच किया। सरहिन्द केवल एक ही मजिल रह गया था कि नवाव भी अपनी सेनायें लेकर सामना करने को किले से निकल आया। सरहिन्द से दो कोस के फासले पर चप्पडचिडी के पास लड़ाई हुई। वहुत दिनों से आम रिवाज यही हो रहा था कि मुसलमान लोग ही आक्रमण किया करते थे। यह पहला मौका था। जव वन्दासिंह उनके ऊपर चढ़कर जा रहा था। इससे पठानों के दिल दहल गये थे। दूसरे उन्होंने यह भी सुन रक्खा था कि मुसलमानो के हार जाने पर भी उनकी खैर नहीं होगी। वन्दासिंह उन्हे वुरी तरह से लुटवा लेगा। इन सव वातों को सोच कर वे वडे डट कर लडे। दोपहर तक वड़े जोरों की लड़ाई हुई। खून से जमीन तर हो गई। लाशों के ढेर

लग गये। सिख लोग जल्दी ही मामला साफ करने के इरादे से बड़े वेग के साथ लड़ रहे थे। इसलिये लड़ते-लड़ते उनके हाथ फूलने लगे। बाबा विनोदसिंह ने देखा कि सरहिन्द से आये हिन्दू सैनिको के भागने से सिखों के पैर कच्चे पड़ जाने का डर है उन्होंने कहा, आप भागने के लिये नहीं आये। हमारे सामने गुरु गोविन्दसिंह के छोटे २ बच्चों की चिताये जलती दिखाई दे रही हैं। हमारे लिये यह धर्म है। इतने मे पीछे के हिस्से से बन्दासिह आगे आये और उन्होंने ललकार कर कहा आओ वीरो आगे बढ़ो। तुमने सिहिनियो का दूध पिया है, इन कायरों पर एक साथ हल्ला क्यों नहीं बोल देते ? सिख एक हुँकारा भर कर पिल पड़े। बन्दासिंह जी ने भी उन पठान सेनापतियों पर बाणो की वर्षा आरम्भ कर दी जो फौज का सचालन कर रहे थे। एक दो तीन इस तरह सैकड़ों को जमीन पर बिछा दिया। अब क्या था पठान सेना भाग निकली। भाई फतहसिह ने वजीरखा को अपनी तलवार के घाट उतार दिया। वजीरखां के गिरते ही सारी पठान सेना भाग गई। सत श्री अकाल के नारों से आसमान गूंज उठा और सिखो ने शहर मे प्रवेश किया। यह घटना सन् १७१० की २४ मई की है।

पठान सैनिक लड़ाई से तो भागे ही थे सरहिन्द नगर से भी भागने लगे। बन्दासिह जी का आतंक ही ऐसा था।

सिख सेनाऐं सरहिन्द मे घुसीं। लूट आरम्भ हो गई। बराबर तीन दिन तक लूट होती रही। जिन घरो के अड़ियल दरवाजे थे। उनमे सिखो ने आग लगा दी।

गुड़ानी के रामराय मसन्द को भी दंड दिया गया क्योंकि उसने गुरु गोविन्दसिंह जी के रागी बुलाकासिंह की तौहीन की थी।

सन् १७०४ ई० मे शेरमुहम्मद हाकिम मालेर कोटला बीबी अनूपकौर नाम की एक हिन्दू स्त्री को सिरसा नदी की गड़बड़ मे अपहरण कर लाया था किन्तु उसने अपने सतीत्वकी रक्षा करने के लिये अपने जिगर में कटार घोंपली थी। शेर मुहम्मद ने उसे कब्र मे दफनवा दिया था। बन्दासिंह के बहादुर सिखो ने उस कब्र को खोद कर बीबी अनूपकौर का संस्कार कर दिया। उन्होंने मालेर कोटला के नवाब को तो इसलिये दंड देने से छोड़ दिया कि उसने सरहिन्द मे गुरु बालकों के वध के समय इन्सानियत प्रकट करते हुये, उन्हे खुद मारने से इनकार कर दिया था और 'हाय' का नारा मारते हुये उस अत्याचारी दरबार से उठ आया था। इसी कृतज्ञता के प्रकाशन के लिये सिखों ने मालेर कोटला को छोड़ दिया।

यहाँ से एक मंजिल पर जगरॉव नाम का नगर था। यहाँ कल्यानराय नाम का खत्री हाकिम था। वह डरके मारे अपने आप ही महावीर बन्दासिह जी की सेवा मे हाजिर हुआ और पांच हजार रुपये भेट मे दिये।

रायकोट और दूसरे कई शहरों ने मुकाबिला कर सकने की ताकत न होने के कारण बन्दासिह जी की अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह सरहिन्द का कुल इलाका बन्दासिंह के हाथ मे आ गया।

चूंकि अब तक काफी मुल्क महावीर बन्दासिंह के कब्जे मे आ चुका था। अत. उसने उस विजित प्रदेश का मजबूत प्रबन्ध भी किया। बाजसिंह को जो कि नदेड़ से ही उसके साथ आया था। सरहिन्द का सूबेदार मुकर्रिर किया। अलीसिंह को उसका नायक बनाया। फतहसिंह को समाना मे नियुक्त कर दिया। रामसिह और विनोदसिंह को थानेश्वर और उससे सम्बन्धित इलाके का संयुक्त चार्ज दिया।

इन समस्त परगनों पर सिखो का एकाधिकार हो गया था। जो सिखो के पंथ द्वारा शासित समझा जाता था।

हस्तलिखित पुस्तकों के आधार पर विनायक अर्विन अपनी पुस्तक 'लैटर मुगल' मे लिखता है— "सिखों के अधिकार मे आये हुये परगनों मे देर से चली आ रही, पुरानी रस्मों को बिल्कुल ही उलट दिया। एक नीच जाति के भगी या चमार को जिसे कि हिन्दू लोग बहुत ही अधम समझते है। केवल घर छोडकर गुरु की शरण मे आकर सिख धर्म मे दीक्षित ही होना होता था कि बन्दासिंह की ओर से उसे अपने ही इलाके का हाकिम बनाकर वापिस भेज दिया जाता था। जब वह अपने इलाके की हद मे दाखिल होता तो बडे २ अमीर और अच्छे घरानों में उत्पन्न हुये कुलीन उसकी आवभगत करने के लिये और हाथ जोडकर उससे हुक्म चाहते थे। किसी को हौंसला न पड़ता था कि उसकी आज्ञा का उलंघन कर सके और वह लोग जो रणभूमि मे शत्रु के मुकाबिले पर डट जाने के लिये तैयार हो जाते थे। इतने साहसहीन हो गये कि वह जवान हिलाने से भी डरने लगे।

इस तरह अनेकों स्थानों की विजय और शासन व्यवस्था के साथ ही बन्दासिंह ने सिख समाज को बढाने का कार्य्य भी जारी रक्खा। वह हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही सिख बनाता था। हिन्दू तो धडाधड सिख बन रहे थे। किन्तु उसने अनेको मुसलमानों को भी सिख धर्म की दीक्षा दी। सिख होने वाले लोगो के नामान्त मे वह सिंह लगाता। दीनदारखा को सिख बनाकर उसका नाम दीनदारसिंह रक्खा इसी प्रकार सरहिन्द के खबरनवीस नासिरुद्दीन के सिख बनाने पर उसका नाम मीर नासिरसिंह रख दिया। उसके समय से अनेको मुसलमानो ने सिख धर्म को स्वीकार किया। (दस्तार-उल-इन्शा ६ठी और रुकात-ई अमीनुद्दौला ५वीं जिल्द)।

इस समय बन्दासिंह की शक्ति काफी बढ़ गई थी और इलाका भी बहुतेरा उसके हाथ आ चुका था जिससे अच्छा खासा राज्य बन गया था।

उसने मुखलिस के पुराने किले को जो कि साढोरा के पास है। नये सिरे से मरम्मत कराया और उसका नाम लोहगढ़ रक्खा और इसे अपनी राजधानी का रूप दिया। यहीं से समस्त प्रदेश का प्रबन्ध बन्दासिंह करने लगा। यहाँ पर एक बडी सेना और साथ ही युद्ध की सामग्री भी रक्खे जाने लगी।

इस प्रकार राजधानी के कायम हो जाने पर बन्दासिंह ने गुरु नानक और गोविन्दसिंह के नाम का सिक्का भी चलाया। जिस पर पारसी भाषा मे "सिक्का जद बर हर दो आलम तेगे नानक वाहिब अस्त। फतह गोविन्द सिंह शाह शाहान फजल सच्चा साहब अस्त।"

इसमे तमाम धन सम्पति का दाता गुरु नानक। ईश्वर कृपा से और सर्व विजय का प्रदानकर्ता गुरु गोविन्दसिंह जी को बताया गया है।

इसी तरह उसने अपने हुक्मनामों या फर्मानो पर मुहर आदि लगाने के लिये एक मुहर भी जारी की थी। उस मुहर पर यह शब्द लिखे रहते थे।

"देग तेग व फ़तह व नसरत वेद रग।
यापत अज नानक गुरु गोविन्दसिंह।"

अर्थात—गरीब लोगों के लिये देग और निबलों की रक्षा के लिये तेग और सर्व प्रकार की विजय और कामयाबी सदैव चिरजीव रहे। जोकि गुरु नानकदेव और गुरु गोविन्दसिंह से प्राप्त हुई है।

इसके सिवा बन्दासिंह ने मुगल साम्राज्य के उन क्षीण दिनों मे एक संवत का प्रचलन किया जो कि सरहिन्द की विजय के दिन से आरम्भ होता था।

इन दिनों सिख बन्दासिंह मे अटूट स्नेह करने लग गये थे। वे उसे गुरु गोविन्दसिंह की एक

बड़ी देन समझने लग गये थे। वन्दासिंह के जारी किये हुये सिक्के और मुहरें गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के लिये उसके दिल में भरी हुई अटल श्रद्धा की जीती जागती यादगारें हैं। जिनको कि वह डंग तेग और वेखटक फतह का भंडार समझता था।

विजय और धर्म प्रचार के इरादे से महावीर वन्दासिंह और उसके साथियों ने जमुना पार करके सहारनपुर पर धावा किया था।

दल के साथ जब सहारनपुर में आए तो इधर के एक प्रतिष्ठित मुसलमान रईस पीरजादा मुहम्मद खां ने आसपास और सुदूर के मुसलमानों को इकट्ठाकर लिया। महावीर वन्दा के पास इस समय थोड़े आदमी बताए जाते हैं और मुसलमान इकट्ठे हो चुके थे कई हजार। इस पूरी सेना का सचालक था अमीनाबेग। वैसे मुसलमानों ने सहारनपुर के रईस को ही हाकिम बनाना चाहा था किन्तु वह परिवार समेत दिल्ली को खिसक गया था।

पहले गालिबखा ने एक बडे जत्थे के साथ महावीर वन्दा के छटे हुए जवानो पर हमला किया, परन्तु महावीर वन्दासिंह जी के तीरों की मार से वह भाग खड़ा हुआ, इससे सिखों की और भी हिम्मत बढ़ गई और उन्होंने फौज के उस हिस्से पर हमला किया जो निश्चिंतता से खड़ा था। अचानक के हमले और बहादुर वन्दासिंह के तीरो की होश भुला देने वाली वर्षा से सारा ही कटक भाग खड़ा हुआ। सहारनपुर की विजय सन् १७१० ई. जौलाई में हुई।

इसके बाद इस दल ने नानौता की ओर कूच किया। यहाँ के नानक पथी गूजरों ने सिखो की सेना में शामिल होकर शेखजादों से अपने पुराने बदले निकाले। कहते हैं कि मुहम्मद के आगन मे ३०० शेखजादे उनके हाथ से मारे गये। उस समय से इस स्थान का नाम ही फूटाशहर पड़ गया। जिसे आज भी फूटाशहर ही कहते हैं।

यहां से जलालाबाद पर हमला किया गया जहाँ कि जलालखा नाम का फौजदार था। जमाल खां और पीर खाँ उसके सहयोगी थे। परन्तु वन्दासिंह उत्तर की ओर बहुत जल्द लौट जाना था अत वह यहाँ से सुल्तानपुर और जालंधर के परगनों का संशोधन करने चल पड़ा।

इन लड़ाइयों और विजयों के बाद वन्दासिंह का दल पजाब की ओर मुड़ा।

चंद दिन के विराम के बाद ही वन्दासिंह के विजयी सैनिक माझा के रहे-सहे इलाकों की विजय के लिये निकले। अमृतसर जाकर उन्होंने अपने धार्मिक कृत्य किये और यहाँ गुरमता करके पंजाब के विभिन्न हिस्सों को जीतने के लिये तैयार हुए। कारण कि इस समय तक खालसा की शक्ति बहुत बढ़ गई थी अत. और भी अधिक प्रदेशों पर विजय करने के इरादे से उतरोत्तर बढ़ रहे थे। कलानौर और बटाला को लेने के बाद वह एक ओर लाहौर की दीवारों तक पहुँच गये। दूसरी ओर सियाला और बुलाने के एक जत्थे ने पठानकोट के परगना और शहर पर कब्जा कर लिया।

लाहौर में उस समय अस्लाम खाँ सूबेदार था। खुद तो उसमें सिखो से मुकाबिला करने की हिम्मत थी नहीं अत उसने मुल्लाओं को इस बात के लिये तैयार किया कि वे मुसलमानों को हैदरी झडे के नीचे एकत्र होकर सिखों से जिहाद करने के लिये अपील करें।

इस समय सिख किला भगवंत राय और कोटला बेगम से पीछे रिपाड़की की ओर हट गये। जहा उन्होंने भीलोंवाल के मुकाम पर जहादी गाजियो को ऐसी शिकस्त दी कि वह जान बचाकर भाग निकले और माझा और रिपाड़की का कुल इलाका सिखो के हाथ आगया।

सरहिन्द के इलाके के निकट ही जालंधर का दुआवा होने के कारण उस इलाके के लोगों में आजादी की एक लहर दौड़ गई थी। दक्षिण में अपने भाइयों की सफलता को देखकर इस इलाके के सिखों ने भी मुगल अफसरों को निकाल बाहर किया और उन स्थानों पर अपने थानेदार बिठा दिये।

अपनी कामयाबियों से अब उनका दिल बढ़ गया था। इसलिये उन्होंने फौजदार शम्सखां के नाम एक परवाना इस आशय का जारी किया कि वह अधीनता स्वीकार करे। किन्तु शम्स एक बड़ी भारी सेना जिसमें मुसलमान जहादियों के एक बड़े दल के साथ अधिकतया जुलाहे शामिल हुये थे सिखों का मुकाबिला करने के लिये निकला। सिख राहून के किले में दाखिल हो गये। जिस पर उन्होंने पहले से कब्जा जमा लिया था। किले का कई दिनों तक जहादियों ने घेरा डाले रक्खा। चूंकि जहादियों की संख्या बहुत ज्यादा थी और सिखों के अन्दर से किये गये धावों से उन्हें भगाया नहीं जा सका था। इसलिये उन्होंने किले से बाहर निकल कर धावा करने का विचार किया और रात के अन्धेरे में किले से निकल गये। दूसरे दिन प्रात जबकि शम्स खान किले में अपने आदमी छोड़कर राहून को जा रहा था एक हजार सिखों ने अचानक शम्सखां के आदमियों पर धावा आ बोला और उनको बाहर निकाल कर स्वयम् काबिज होगये। यह बात १२ अक्तूबर सन १७१० ई० की है।

इन दिनों तक सिख दल की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि जमना के पूर्व और सतलज के ऊपर उनका अधिकार हो चुका था। सन १७१० के सितम्बर के मध्य में माछीवाड़ा से कर्नाल तक सिख पता का फहरा चुकी थी। और इरादतखां की लिखत के अनुसार देहली में कोई ऐसा अमीर न था जो कि सिखों के विरुद्ध आने का हौसला करे। मालकम ने लिखा है कि यदि कुछ दिन भी बादशाह बहादुरशाह दक्षिण में और रह जाता तो उत्तरी हिन्द में सिखों की हकूमत होती।

बहादुरशाह ने पंजाब में सिखों की इस प्रकार की बढ़ती हुई शक्ति के समाचार सुनकर फौरन तैयारी की और देहली और अवध के सूबेदारों, मुरादाबाद और इलाहाबाद के फौजदारों और नाजिमों, बारहा के सैयदों को मय सेनाओं के पंजाब की ओर कूच करने के लिये बुलाया। ४ दिसम्बर सन १७१० को बादशाह अपने बेटे और शाही और सूबी सेनाओं समेत साढोरे के मुकाम पर पहुँचा।

इस टिड्डी दल ने लोहगढ़ को इस प्रकार घेर लिया कि बाहर से खाने पीने की कोई भी सामग्री भीतर न जा सकती थी। जब तक भीतर खाद्य पदार्थ रहे। सिख डट कर लड़े किन्तु कई दिन जब भूखे हो गये तो उन्होंने मरना या विजय पाने का इरादा करके शाही सेना पर टूट पड़ना ही निश्चय किया।

गुलाबसिंह नाम के एक हिन्दू सैनिक ने जो कि बन्दासिंह से सूरत शक्ल में मिलता-जुलता था उसके कपड़े खुद पहन लिये और बन्दासिंह को सुरक्षित निकल जाने की सलाह दी।

१०-११ दिसम्बर की मध्य की रात को बन्दासिंह मुगल सेना को चीरता अपने साथियों समेत नाहन की पहाड़ियों में चला गया। गुलाबसिंह और उसके कुछ साथी गिरफ्तार हुये।

किले में से निकलने के बाद तीन जत्थे बनाये थे। एक बाबा दीपसिंह जी के नेतृत्व में। एक बाज-सिंह के और एक भाई जोधसिंह के नेतृत्व थे। किले के किवाड़ खोल कर यह जत्थे 'वाहि गुरु' की फतह' कहकर मुसलमानी दल पर टूट पड़े और सारे दल को तीन धाराओं में चीरते हुए साफ निकल गये। किन्तु इस साफ के मानी यह नहीं है कि सिखों का इसमें कोई नुकसान नहीं हुआ। आधे से अधिक आदमी मैदान में काम आगये। बन्दासिंह जी का एक लड़का अजीतसिंह भी मारा गया और दूसरा जोरावरसिंह पकड़ा गया। बचे हुए लोग भागकर पहाड़ों में चले गये।

वादशाही फौज लौट गई और प्रसिद्ध सिखों के सिरों को भी उठा ले गई। वादशाह वहादुर-शाह वड़ा प्रसन्न हुआ और इनाम भी वांटा। कहा जाता है कि मुसलमान सेनापतियो ने वादशाह को विश्वास दिलाया था कि वन्दासिंह भी इसी लड़ाई मे काम आगया है किन्तु उसके सिर को मालूम होता है, भागे हुए सिख उड़ा ले गये हैं।

वन्दासिंह ने जव अपने पुत्रों की इस प्रकार की दुर्गति का समाचार सुना तो कहा, जो लड़ाई मे काम आगया है। उसने वाहि गुरु की मर्जी को पूरा कर दिया।

वादशाह वन्दासिंह को इस तरह अपने हाथ से निकला हुआ देखकर वहुत घवराया और लोहे के उस पिंजरे मे जोकि वन्दासिंह को वद करने के लिये लाया गया था। उसमे नाहन के राजा भूपप्रकाश और वख्शी गुलावसिंह को गिरफ्तार करके देहली भेज दिया और खुद लाहौर की ओर चल दिया। अफसोस कि वहीं पर दिसम्वर १७१२ ई० को मर गया।

वादशाह वहादुरशाह की मरने की वजह से राज्य के सम्वन्ध मे काफी गड़वड़ी मची हुई थी। इधर वन्दासिंह फिर अपने संगठन मे लग पड़े और उनके वहादुर सिख फिर अपनी वही शक्ति वढ़ाने लगे। और इस गड़वड़ घोटाले के समय मे उन्होंने फिर से अपनी पुरानी ताकत हासिल करली और कई एक दूसरे इलाकों पर भी अपना कब्जा जमा लिया।

वन्दासिंह ने गुरदासपुर से आगे वढ़कर पठानकोट के परगने मे रामपुर और वहरामपुर के नजदीक एक युद्ध मे शम्स खान को मार गिराया और उसके भतीजे वायजीदखा को घायल कर दिया।

इसी समय उन्होंने पहाड़ी राज्यों को अपना माडालिक वना लिया और अपना शासन अच्छी प्रकार जमा लिया। खंडोरा और लोहगढ़ फिर से उसके हाथ आगये परन्तु खेद है कि यह कुछ वहुत देर के लिये स्थायत्व न पा सके।

२२ फरवरी सन् १७१३ ई० को अब्दुल समदखॉ दिलेरजंग लाहौर का सूवेदार नियत हो चुका था। परन्तु वह अपने दो साल के शासन मे सिखों की वढ़ती हुई ताकत को रोकने मे सफल न हो सका।

२० मार्च सन् १७१५ को वादशाह फरूखसियर ने उसको एक ताड़ना की चिट्ठी लिखी और कमरुद्दीनखा, वेटा मुहम्मद अमीनखॉ, अफरासियावखां, मुनव्वरखां, राजा गोपालसिंह भदौरिया, उदितसिंह वुन्देला और कई एक हिन्दू और मुसलमान सरदारों और जमीदारों को उसकी सहायता के लिये भेजा।

देहली की शाही सेना पंजाव सूवे की अपनी सेना तथा जमीदारों और फौजदारों की सेना और अपनी सहायता के लिए इकट्ठे हुए सहायकों को लेकर दिलेरजंग ने वन्दासिंह और उसके सिख साथियों को गुरदासपुर के नजदीक गुरदासनंगल गांव मे घेर लिया यहॉ कोई वड़ा अच्छा किला तो था नहीं। इसलिए गुरदासपुर के सिखों को भाई दुनीचन्द की हवेली के अहाते में पनाह लेनी पड़ी। यह घेरा अप्रैल सन् १७१५ मे शुरू हुआ और कई महीने तक जारी रहा। इस अर्से मे गांव के अन्दर तमाम खाना दाना खतम हो गया और सिखों को भारी मुश्किल का सामना करना पड़ा। सिख कई दफा हल्ला करके शाही सेना की पंक्तियों पर टूट पड़ते और उसके वाजार से सीरनी और दूसरी खाने पीने की चीजें लूट ले जाते सिखों की इस दिलेरी पर शाही सैनिक वहुत हैरान होते और उन्हे गिरफ्तार करने के तमाम प्रयत्न विफल होते। शाही सैनिकों को हर समय यह खतरा लगा रहता था कि सिख किसी भी समय इकट्ठे हमले करके यहां से निकल जायेंगे। साथ ही उनको यह भी भ्रम हो गया कि वन्दासिंह मे कोई जादू की शक्ति

है जिससे कि वह कुत्ते और विल्लियों आदि की शक्लें धारण कर सकता है। इसलिए जब कभी भी वे किसी जानवर को अन्दर से वाहर आता देखते तो वह उसी पर टूट पड़ते और उसे मारे विना दम न लेते।

आहिस्ता-आहिस्ता शाही सेना ने घेरा तग करना आरम्भ कर दिया। यहां तक कि कोई परन्द-चरन्द भी वाहर न फटकने पाता था। और अभी तक वहादुर सिखों ने भी मुसलिम सैनिकों को अन्दर दाखिल होने के लिये किये जाने वाले प्रत्येक यत्न को वेकार किया हुआ था। किन्तु चूंकि घेरा पड़े हुए आठ महीने गुजर चुके थे और अन्दर खाने पीने की वस्तुएं एकदम खतम हो चुकी थीं इस प्रकार सिख भूख और प्यास से तडपने लगे।

इस समय वन्दासिंह और विनोदसिंह के दर्मियान थोड़ा सा मतभेद हो गया। वावा विनोदसिंह चाहता था कि एक जोरदार हल्ला करके किले से निकल जाना चाहिए। दूसरी ओर वन्दासिंह का खयाल कुछ दिन और अन्दर वैठकर मुकाविला करने का था, शायद इस खयाल से कि जाडे की वर्षा से शत्रु-दल निस्साहस सा हो जायेगा। वात ही वात मे दोनों मे विरोध वढ गया और उनके हाथ तलवारों तक पहुँच गये लेकिन विनोदसिंह के पुत्र कानसिह ने वीच मे पड कर झगडा रोक दिया और यह फैसला हुआ कि यदि विनोदसिंह निकल जाना चाहे तो निकल जाय। इस पर विनोदसिंह अपने हाथ मे तलवार लेकर घोड़े पर सवार हो हवेली से वाहर निकला और शत्रु दल को चीरता हुआ निकल गया।

खाने पीने की दिक्कत ने सिखों को इस हद तक तग कर दिया कि उन्हे हवेली के अन्दर के जान-वर आदि खाने पर मजबूर होना पड़ा। वाद में उन्होंने घास और दरख्तों की छाल और सूखी हुई टहनियों को कूट-कूट कर आटे की जगह फाकना शुरू किया। कुछ लेखक यह भी कहते हैं कि उन्होंने उनको अपनी-अपनी जांघों के गोस्त को काट कर भूनते और खाते देखा है।

कम्वरखॉं कहता है कि इन तमाम विपत्तियों के होते हुए भी वह सिख सरदार और उनके साथी आठ महीने के लम्वे अर्से तक उस तमाम फौजी ताकत का मुकाविला करते रहे जो कि मुस्लिम शक्ति उनके विरुद्ध इकट्ठी कर सकी थी।' परन्तु यह कव तक हो सकता था। कभी न खतम होने वाली भूख के कारण अभक्ष्य वस्तुओं के खाने ने उनके शरीरों को जर्जर कर दिया। इस जोर से उनको पेचिश लगी कि खून के दस्त जारी हो गये जिससे वह सैकड़ों और हजारों की गिनती मे मरने लगे इसके सिवा मुर्दों के सड रहे जिस्मो से पैदा हो रही वदवू ने उस स्थान को रहने के नाकाविल वना दिया। जो वच रहे थे वह नीम हड्डियां और इतने अशक्त हो गये कि वन्दूकें भी न चला सकते थे। जिससे अधिक देर तक मुकाविला कर सकना उनके लिये असभव हो गया।

आखिर १७ दिसम्बर सन् १७१५ ई० को गुरदास नगल का अहाता जिसे कई इतिहासकारों ने गुरदास नगल का किला लिखा है खाली करने को सिखों को विवश होना पड़ा। हालाकि सिख जिस्मानी तौर पर हिलने तक के नाकाविल थे परन्तु उनका शत्रु के दिल पर इतना डर वैठा हुआ था कि कोई भी अहाते के अन्दर दाखिल होने का हौसला न करता था। अब्दुलसमद खा ने इनके लिये वादशाह से माफी दिला देने का वायदा किया लेकिन जब दरवाजे खोले गये तो वन्दासिंह और उनके साथियों को पकड कर कैदी वना लिया गया और शाही सैनिक भूखे भेड़ियों की तरह नीम मुर्दा सिखों पर टूट पडे। अब्दुलसमद खॉं ने उनमे से दो तीन सौ को हाथ पाव वांध कर मुगल और पठान सिपाहियों के हवाले कर दिया। जिन्होंने उन्हे तलवार के घाट उतार दिया और एक वड़ा खुला मैदान एक तस्तरी की तरह खून

शहीद बन्दा बहादुर
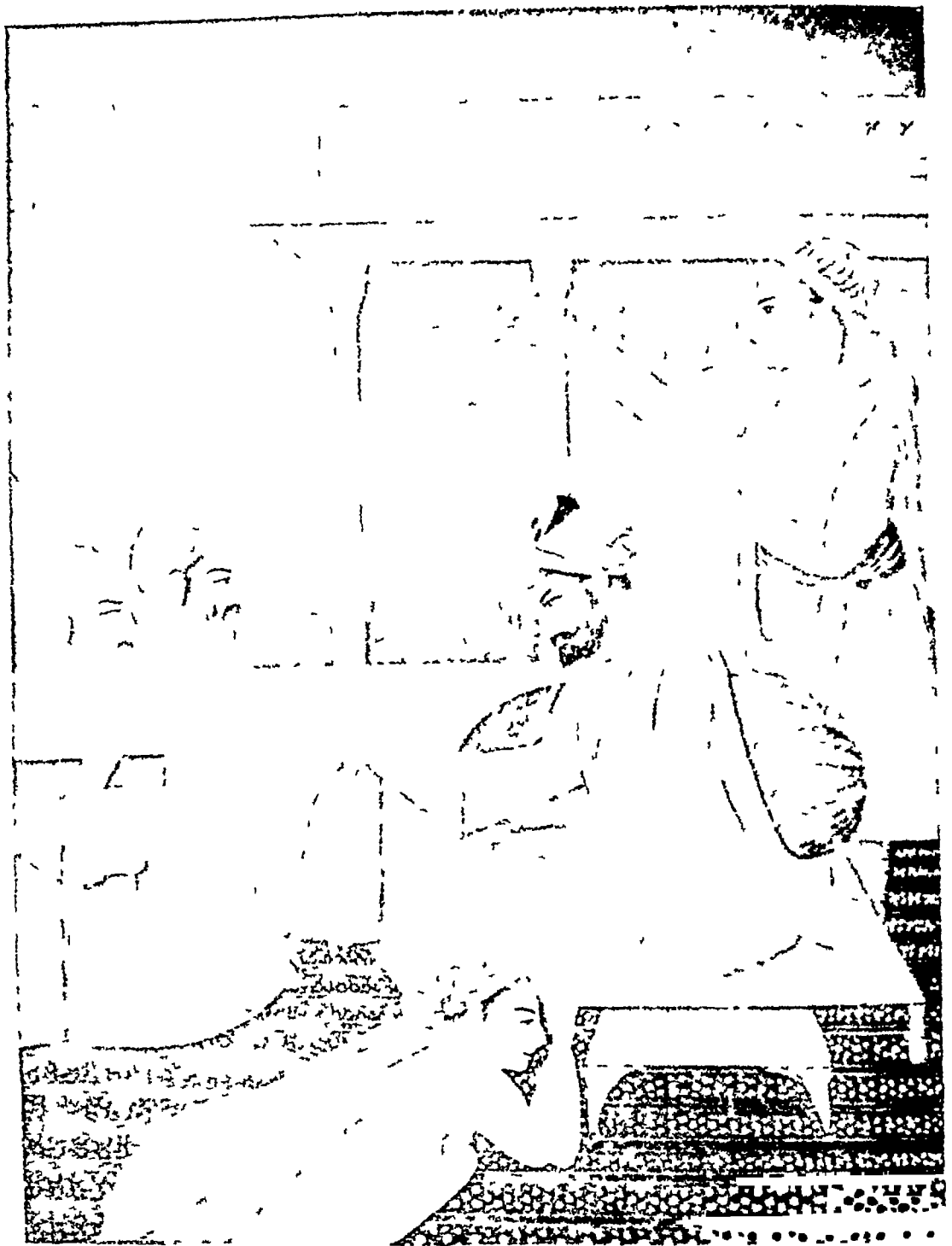
गुरु-कालीन चित्र-कला का एक आकर्षक दृश्य

से भर गया। मुर्दा सिखों के पेट यह देखने के लिये फाड़ डाले गये कि शायद उन्होंने सोने की मुहरें निगल लीं हैं। और उनके सिर काट कर तथा भूसा भर कर नेजों पर टाग दिये गये। गुरदासनंगल गाव तोपों के गोलों से उड़ा कर मिट्टी मे मिला दिया गया। जिसके कि निशान अवतक मौजूदा नये वसे गुरदास नंगल गांव से एक मील पच्छिम की वन्देवालीथेह के नाम से मशहूर है।

यह खवर २? दिसम्वर सन् १७१५ ई० को उस समय देहली पहुँची जव कि वादशाह फरुख-शियर जहाँ पर अपनी फतह का उत्सव मना रहा था।

गुरदासनंगल से वन्दासिंह और उनके साथियों को लाहौर ले जाया गया। अगर्चे उनको वाध कर कैदी वना लिया गया था फिर भी अदृष्ट शक्तियो से भागजाने का भय शत्रुओं पर इस कदर वैठा हुआ था कि हर समय उन्हे यह आशका थी कि वह रास्ते मे भाग न जाय। इसके लिये एक मुगल अफसर ने अपनी सेवा पेश करते हुए कहा कि मुझे इसके साथ वांध दिया जाय। यदि यह उड़ने की कोशिश करेगा तो मैं अपना खंजर इसके पेट मे भोंक दूँगा। पाव मे वेडिया गले मे जंजीर डालकर उन्हे लकड़ी की हतौ-डियों से कस रक्खा था। इस प्रकार वन्दासिंह को जकड़ कर एक लोहे के पिंजरे मे चार स्थानों पर वाध कर डाला हुआ था। दो मुगल अफसर उसके एक-एक तरफ उसी हाथी पर साथ थे। जिससे कि यह भाग न जाय।

वदा के अफसरों और खास-खास आदमियो को जजीर से जकड़ कर लगड़े लूले गधों और ऊँटो पर चढ़ाया हुआ था और उनके सिरो पर कागज की टोपियां डाली हुई थीं।

इस तरह उनका जुलूस वनाकर ढोल और वैंड वजाने वाले उनके आगे २ चल रहे थे और उनके साथ मुगल सिपाही सिखों के कटे हुए सिर नेजों पर उठाए जा रहे थे। कैदियों के पीछे शाही अफसर नवाव और राजा अपनी २ फौजे लिये हुये मार्च कर रहे थे। इस प्रकार का जुलूस वनाकर अवदुलसमदखा लाहौर मे दाखिल हुआ।

वहाँ से इन सिखो को अपने वेटे जकरियाखान के साथ देहली भेज दिया। रास्ते मे तरह २ की विपत्तियां सहता हुआ यह जुलूस २५ फर्वरी सन् १७१६ ई० को अगरावाद पहुँचा और २७ फर्वरी को उन्हे देहली शहर मे दाखिल किया गया। इस समय सिख कैदियों को उसी तरीके से जुलूस वनाकर देहली शहर मे से गुजारा गया। जिस तरह कि मराठा सरदार शभाजी को। सवसे पहले वांसों पर टंगे हुये सिखो के कटे हुये और धूल से भरे हुये सिर थे जिनके कि लवे केश हवा मे भूल रहे थे। उनके साथ २ एक वांस पर एक मरी हुई विल्ली टंगी हुई थी जिससे उनका यह जाहिर करने का अभिप्राय था कि गुरदास नंगल मे अव कुत्ते और विल्ली भी जिन्दा नहीं रहने दिये है। इसके आगे हाथी पर वन्दासिंह का पिंजरा था। जिसमे वह कसूमे रंग की वनात का कपड़ा और सिर पर एक लालसुनहरी जडाऊ पगड़ी पहने हुये था। उसके पीछे हाथी पर नंगी तलवारे लिए हुए एक तूरानी मुगल अफसर खड़ा था। हाथी के पीछे ७४० सिख कैदी दोदो करके वे पलान ऊँटों पर कसे हुए थे। उनके सिरों पर लंवी तिकोनी भेड़ों की खाल की टोपिया थीं जिन पर कि शीशे लटकाये हुये थे उनका एक हाथ दो लकड़ियो के दरम्यान उनके गले के साथ कसा हुआ था।

कुछ खास २ सिख वन्दासिंह के हाथी के साथ घोड़ों पर सवार चल रहे थे जिनको कि भेड़ों की खालें पहनाई हुई थीं। जिनकी कि वालों वाली तरफ वाहर होने के कारण वह दर्शकों को रीछों के मानिंद जान पड़ते थे। जुलूस के अंत मे तीन शाही अमीर नवाव मुहम्मदखां चीन वहादुर, उसका वेटा

कमरुद्दीन खानबहादुर और उसका दामाद जकरिया खान बहादुर (बेटा अब्दुसमदखां) आ रहे थे।

अगराबाद से लोहारी दरवाजे तक सडक पर मीलो दूर तक फौजे और असख्य दर्शक खडे थे। जो कि बन्दासिंह और उनके सिखों की सूरतों को देखकर मजाक उडा रहे थे। मिर्जा मुहम्मद हारिमी जो इस समय सिखों का तमाशा देखने के लिए गया हुआ था। और नमक मडी मे लेकर बादशाही किले तक इस जुलूस के साथ २ था कहता है—"शायद ही शहर मे कोई होगा जो इस समय यह तमाशा देखने बाहर न गया हो। इतना बडा लोगों का जमघट शायद ही कभी देखने में आया हो, मुसलमान खुशी मे फूले न समाते थे परन्तु वह अभागे सिख जिनको कि इस दुर्दशा को पहुँचाया गया था बिल्कुल प्रसन्न मुख और अपनी किस्मत पर शाकिर थे। उनके चेहरों से घबराहट या निराशा के कोई निशान नजर नहीं आते थे। असल बात यह है कि जब वह ऊटों पर गुजर रहे थे तो वह प्रसन्न प्रतीत होते थे। क्योंकि वह आनन्द मे आये हुये अपनी धर्म मे पुस्तक के शब्द गा रहे थे। बाजार या कूचों मे से जब किसी ने उनको इस दशा पर कुछ कहा तो वह फौरन उत्तर देते यह जो कुछ हो रहा है। वह सब ईश्वर की इच्छा से हो रहा है। मगर कोई कहता कि तुम्हे कत्ल कर दिया जायगा तो वे कहते हमे बेशक कत्ल कर दो। हम मरने से क्या डरते हैं। अगर हम डरते होते तो तुम्हारे साथ इतनी लड़ाइया कैसे करते। पर केवल भूख के कारण से यह हुआ है कि हम तुम्हारे हाथों पड़ गये है। वरना तुम स्वयम् ही जानते हो कि हम क्या कुछ करके दिखा सकते है।

'तब्सिरुतुन्नाजरीन' का कर्ता सैयदमुहम्मद भी इस समय वहां उपस्थित था। वह कहता है कि मैंने उनमें से एक को इशारे से कहा कि यह तुम्हारी करतूतों का नतीजा है तो उसने अपना हाथ माथे पर रखते हुये जाहिर किया कि यह सब कुछ ईश्वरेच्छा से हो रहा है। वह तमाम अपमान और उपहास आदि की बाते गुरु गोविन्दसिंह के बहादुर सिखो को अपनी दृढ़ता से विचलित न कर सकीं वे बिना किसी तरह की घबराहट के शहीदी पाने के लिये आगे बढ़ते चले गये।

जब जुलूस किले के पास पहुँचा तो फरूख सियर के हुक्म से बन्दासिंह, बाजसिंह भाई फतहसिंह और दूसरे कुछ सरदार त्रिपोलिया जेल मे डाल देने के लिये इब्राहीम कोतवाल के हवाले कर दिये गये. बन्दासिंह की स्त्री और उसका चार वर्षीय पुत्र अजयसिंह तथा उसकी दाया को हरम के नाजिर दरबारखां के हवाले कर दिया और बाकी सिखों को सरबराखान के हाथ कत्ल कर देने के लिये सौप दिया।

बादशाह के हुक्म से ५ मार्च सन १७१६ को चादनी चौक मे चबूतरा कोतवाली के सामने सिखों का कत्ल आरम्भ हुआ। प्रतिदिन एक सौ सिखों को जेल से निकाल कर कत्लगाह मे कतारें लगाकर बिठा दिया जाता और सिकलीगर जल्लादों की तलवारो को तेज करने के लिये भी उनके पास खडे कर दिये जाते। वहॉ हरेक को यह कहा जाता कि यदि वह सिख धर्म को छोडकर इस्लाम कबूल करले तो छोड़ दिया जायगा। परन्तु स्टीफिन्सन की लिखत के अनुसार आखिर दम तक कोई भी ऐसा सिख न देखा गया था। जिसने कि अपने धर्म को त्यागना कबूल किया हो, वे खिडे माथे मृत्यु को आ देते और वाहि गुरु-वाहि गुरु कहते हुये अपनी गर्दने जल्लादों के सामने झुका देते। कई दफा वे एक दूसरे से पहले कत्ल होने के लिये आग्रह करते। पूरा सप्ताह यह कत्ल जारी रहा और इस तरह यह तमाम के तमाम सिख मार दिये गये। कत्ल के बाद उनके धड एक ढेर मे फेंक दिये जाते और रात को गाड़ियों पर लादकर सडको पर लेजाकर दरख्तों पर टाग दिये जाते। मिर्जा मुहम्मद हारिसी लिखता है कि "जब मैं कत्ल आरम्भ होने के दूसरे दिन यह तमाशा देखने गया तो क्या देखता हूँ कि उस दिन के

कटे हुये धड़ काफी दिन चढ़े तक खून और धूल मे लथपथ धूप में बाहर पड़े थे।"

खाफी खान कहता है —"कि इस समय सिखों के खुशी से कत्ल होने की बे शुमार कहानिया दिल्ली मे सुनी जाती थीं परन्तु उसने अपनी ऑखों देखी एक घटना का वर्णन इस प्रकार किया है। इन सिखों मे एक छोटी उम्र का सिख नौजवान था, जो कि एक विधवा का एकलौता पुत्र था तथा जिसकी शादी हुये कुछ ही दिन हुये थे। दीवान रतनचंद के कथनानुसार उस माता ने बादशाह के हुजूर मे अर्ज की कि उसका पुत्र सिख नहीं है। अत उसे छोड़ दिया जाय। सैयद अब्दुल्ला खा आदि के कहने पर बादशाह ने उसकी रिहाई का हुक्म दे दिया उसकी मां परवाना लेकर कत्ल गाह मे पहुँची। उस समय दैवात उसके बच्चे की गर्दन पर तलवार चलने वाली थी जब शाही परवाना कोतवाल को पहुँचा तो उसने उस युवक को बाहर निकालकर कहा तुम्हे छोड़ दिया गया है परन्तु उस बच्चे ने जाने से इन्कार कर दिया और जोर २ से रोना शुरू कर दिया और कहने लगा मेरी मॉ झूठ बोलती है। मैं दिल और जान से अपने गुरु के श्रद्धालुओं और सेवकों मे से हूॅ। मुझे जल्दी ही वहॉ पहुँचाया जाय जहॉ मेरे गुरुभाई गये हैं। बूढ़ी मॉ के चीख और पुकार सरकारी अफसरों के समझाने बुझाने का उस सिख बच्चे पर कोई असर नहीं हुआ और वह अपने धर्म पर अटल रहा। दर्शकों की हैरानी उस समय और भी बढ़ गई। जबकि वह बहादुर बच्चा जल्लाद कत्लगाह की ओर बढ़ा और शहादत पाने के लिये बड़े धैर्य्य के साथ अपनी गर्दन जल्लाद के सामने झुकादी। एक ही क्षण मे जल्लाद की तलवार उठी और उस बच्चे की पतली सी गर्दन पर गिरती हुई उसे सिख धर्म के पैदा किये हुये शहीदों मे अमर कर गई।"

जिस समय यह कत्ल हो रहे थे। उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक डेपूटेशन फरुखसियर की कचहरी मे आया हुआ था। उसने यह खूनी नजारे अपनी ऑखों देखे और अपनी १७ मार्च की चिट्ठी मे फोर्ट विलयम के गवर्नर को इसका हाल लिखा था.—

इस पत्र के अतिम फिकरे मे उसने लिखा था "यह बात कोई कम ध्यान करने वाली नहीं है कि सिख किस सब्र और हिम्मत के साथ ईश्वर-इच्छा को कबूल करते है और आखिर तक यह नहीं देखा गया कि इन कत्ल होने वालों मे से किसी एक ने भी अपने धर्म को त्यागा हो।"

इन कत्लों के बाद तीन महीने तक उन तमाम लोगो के पता निकालने की कोशिश की गई जिन्होंने बन्दासिह को उसके युद्धो और अन्य कार्य्यों मे सहायता दी थी। आखिर १६ जून १७१६ इतवार-जबकि आसमान पर तीन नीजे सूर्य्य चढ़ा था बन्दासिंह व उसके पुत्र अजयसिंह, सरदार बाजसिंह रामसिह, भाई फतहसिंह, आलीसिंह, बख्शी गुलाबसिंह और दूसरे कुछ साथियों को जो कि देहली के किले मे कैद थे किले से निकाला गया और जजीरों मे जकड़े हुये उसे हाथी पर चढ़ा कर शहर के बाजारों मे से फिराते हुये ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काफी के मजार पर जो कि कुतुबमीनार के पास है, ले गये। यहॉ उसे बहादुरशाह की कब्र के इर्द गिर्द परिक्रमा कराई गई।

जब बन्दासिह को हाथी से उतारा गया तो उसे इस्लाम कबूल करने के लिये कहा गया। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह का यह अनन्य भक्त धर्म को छोड़ने को कैसे तयार हो सकता था? इस पर उसका चार साला मासूम बच्चा उसके सामने लाया गया और उसे कहा गया कि वह उस बच्चे को छुरी से कत्ल करे। परन्तु क्या कभी कोई पिता भी अपने बच्चे को कत्ल करने के लिये तैयार हो सकता है। जल्लाद ने एक लंबे छुरे से बच्चे के टुकड़े टुकड़े कर दिये और उसका तड़पता हुआ दिल निकाल कर बन्दासिह के

मुँह मे ठूंस दिया परन्तु वह ईश्वरेच्छा मे मग्न अडोल उसी तरह खड़ा रहा।

शीयरनुल-मुताखरीन मे लिखा है कि इस समय एतमादुद्दोला मुहम्मद अमीनखॉ मौका पाकर आगे बढ़ा और बन्दा के चेहरे से टपक रही महानता देखकर उसने कहा यह हैरानी की बात है कि वह आदमी जिसके चेहरे से इस तरहकी उच्चता और महानता प्रतीत होती है। उसने लोगों पर इस तरह की सख्ती की हो। बडे धैर्य के साथ बन्दासिंह ने उत्तर दिया मैं आपको बतलाता हूँ जब भी कभी मनुष्य शुभ कर्मा के रास्ते से हटकर शैतानी तरीके अख्तियार करने और तरह तरह के अत्याचार करने लग पडते है तो ईश्वर मेरे जैसो को इस किस्म के लोगों को सजा देने के लिये नियत करता है। परन्तु जब दड का पैमाना पूरा हो जाता है तो वह तुम जैसो को खडा कर देता है ताकि उसकी सजा उसे मिल जाय।

इसके बाद उसकी अपनी बारी आई सबसे पहले उसकी दाई आँख निकाली गई और फिर बाईं, उसके बाद उसका दायॉ पैर काटा गया और उसके दोनों हाथ शरीर से जुदा कर दिये। इसके बाद लाल २ गर्म लोहे की चिमटियों से उसकी बोटियॉ नोंची गई और फिर उसका सिर काट कर उसके टुकडे-टुकडे कर दिये गये। बन्दासिंह इन तमाम कष्टो मे शाति रहा और भगवान से कहता रहा, प्रभु ऐसा न हो कि आपका यह दास इस कठिन परीक्षा मे फेल हो जाय।

इसके बाद दूसरे सिखो को भी कत्ल कर दिय गया। बाजसिंह सम्बन्धी इस समय की एक घटना इस प्रकार वर्णन की गई है कहते हैं इस समय बादशाह के भाई खदियर ने शेष सिखों को अपने सामने बुलाकर कहा, मैंने सुना है कि एक सिख बाजसिंह नामी बहुत बड़ा बहादुर है और गुरु की उसपर बडी रहमत है। बाजसिंह ने इसपर आगे बढ़कर कहा मैं हूँ गुरु जी का सेवक बाजसिंह। बादशाह ने कहा, ओह तुमतो बडे बहादुर आदमी थे। परन्तु अब कुछ नहीं कर सकते। बाजसिंह ने कहा, अगर तुम मेरी बेडियॉ उतार दो तो मैं अब भी तुम्हे कुछ तमाशा दिखा सकता हूँ। बादशाह ने उसकी बेडियॉ निकाल देने का हुक्म दे दिया और जब बाजसिंह जरा आजाद हुआ तो वह बाज की तरह बादशाह के आदमियों पर झपट पडा और दो तीन को अपने हाथो मे पड़ी हुई हथकड़ियों से मार गिराया। इसके बाद वह एक अमीर की तरफ लपका परन्तु बादशाह के नौकरो ने उसे झपट कर पकड लिया और कत्ल कर दिया।

बन्दासिंह और उसके साथियों को देहली मे कत्ल कर देने के बाद मुगलों ने उनकी राजसी ताकत को तोडने के लिये ही नहीं किन्तु तमाम की तमाम सिख कौम को मिटा देने के यत्न आरम्भ कर दिये। मुशी दानेश्वर ने लिखा है कि "एक शाही हुक्म जारी किया गया कि सिख जाति के लोग जहाँ कहीं भी मिले उनको बिना पूछ ताछ के ही कत्ल कर दिया जाय।" मैलकम साहब कहते है—इस हुक्म को असली जामा पहनाने के लिये हरेक सिख के सिर की कीमत लगा दी गई।

डाक्टर ग्रेजर की लिखत से पता चलता है कि सिखो के लिये यह एक बड़ी कठिनाई का समय था। सिखों से दूसरे लोगों को पहचान सकने के लिये पजाब के सब हिन्दुओं के नाम आदेश जारी किये गये कि वह अपनी दाढियॉ और बाल मुडवा डाले नहीं तो उन्हे मौत की सजा दी जायगी। जो कोई आदमी दाढ़ी और केश रखते हुये कहीं मिलता उसे फौरन कत्ल कर दिया जाता। इस समय अब्दुसमदखान ने शाही हुक्म की पालना मे सिखों को मिटा देने के लिये फौजी दस्ते जिन्हे कि गश्ती फौज के नाम से पुकारा जाता था, सिखों को ढूढ़ कर नेस्तनाबूद कर देने के लिये चारों ओर भेज दिये। जोकि सिखों का जगली जानवरों की तरह शिकार करते। जले भुने बैठे मुसलमानों और निस्साहस

हिन्दुओं की ओर से उनको सहायता तो क्या मिलती थी। उलटे वह उनकी जान के गाहक हो गये। इस तरह एक बड़ी भारी गिनती सिखों की पकड़ पकड़ कर कत्ल कर दी गई। कुछ सिख तो शिवालिक पहाड़ियों मे जा घुसे और कुछ उत्तर पच्छिमी पहाड़ी देश पडौल और कठुए की ओर, कुछ सुदूर जंगलों मे जा छिपे।

सन् १७१८ ई० मे अब्दुलसमदखां का ध्यान दूसरे राजसी विद्रोहने खींच लिया और उसने शाहदाद खां ख्वेसगी को ईसाखान मझ की बगावत को दवाने के लिये भेजा। इस तरह ढील के समय कुछ सिख आहिस्ता-आहिस्ता जंगलों और पहाडो से निकल कर अपने घरो मे आ, आवाद होने लगे। अब तक अब्दुलसमदखान का जोश भी कुछ ठंडा हो चुका था। और उसकी सख्ती केवल उन आदमियों तक ही रहने लगी। जिन पर कि वन्दासिंह के नेतृत्व मे सिखों की सहायता करने का शक होता था। सिखों के घरो की ओर वापिस आ जाने पर कुदरती तौर पर गुरुद्वारों की आमदनी भी वढ़ने लगी और खास कर दरवार अमृतसर मे संगतों को आवाजाई काफी हो गई, दिसम्बर सन १७०४ मे लूटे खसोटे जाने के वाद आनन्दपुर कभी अपनी पुरानी महानता को हासिल नहीं कर सका। इसके तवाह हो जाने के साथ ही यह पंजाव मे सिख आवादीवाले इलाकों से वहुत दूर था। दूसरी ओर दरवार साहव अमृतसर पजाव मे होने के कारण ज्यादा निकट था। इसलिये आनन्दपुर का स्थान भी उसी ने ले लिया। दरवार साहव की वढ़ रही पूजा के धन ने कुछ लालचियो की आखों को चुधियाना आरम्भ कर दिया और उन्होंने आमदनी को वाटने के लिये झगडा करना आरम्भ कर दिया। खालसा गुरु के नाम पर अर्पण की हुई संपति को अपने निज के कामों मे प्रयोग करने के पक्ष मे न था वह इसे धर्म-विरोध समझता था। इस खींचातानी मे दो पार्टिया सी वन गईं। इन पार्टियों मे एक ओर वावा विनोदसिंह थे जो कि गुरदासनंगल के घेरे मे से वन्दासिंह के साथ मतभेद के कारण निकल आये थे, उनके साथियों ने कुछ दूसरे आदमियो को वन्दई-वन्दई पुकारना आरम्भ कर दिया और स्वयम् को 'तत खालसा' होना या कहे जा रहे वन्दई भी चाहते थे कि उनको भी दरवार साहव की आमदनी मे से आधा हिस्सा मिलना चाहिए। जिनको कि तत खालसा एक फूटी कौड़ी भी नहीं देना चाहते थे। गुरुओं के जीते जी यह आमदनी गुरु की सेवा मे भेज दी जाती थी। परन्तु दशमेशजी के वाद माता सुन्दरी जी ने यह आज्ञा की थी कि यह सव वहीं गुरु के लंगर मे खर्च कर दी जाय। और माता सुन्दरी ने सवत् १७७८ के आरम्भ मे भाई मनीसिंह जी को देहली से अमृतसर दरवार साहव का प्रवन्ध करने के लिये भेज दिया। वैसाखी आने वाली थी उसको मनाने के लिये वडे जोरों से तैयारियाँ हो रही थीं। दोनों पार्टियां जरूरत पड़ने पर अपनी ताकत को आजमाने के लिये वहुसंख्या मे एकत्र होने लगीं ततखालसों ने अकाल वुङ्गा मे अपने डेरे जमा लिये और वन्दई खालसों ने मौजूदा झडा वुङ्गा के स्थान पर दर्शनी ड्योढ़ी के नजदीक। मेला वड़े जोरों से भरा और चढ़ावा भी खूव आया। खतरा था कि चढ़ाये की वाट पर तलवार न चल जाय इसलिये भाई मनीसिह ने पर्चिया डाल कर इसका फैसला कर लेने की सलाह दी और जव पर्चियां डाली गईं तो वन्दई खालसों की पर्ची डूव गई। जिससे कि फैसला ततखालसों के हक मे हो गया। वहुत से वन्दई खालसों ने तो इस फैसले को मान लिया परन्तु उनके लीडर खेमकरन निवासी महन्तसिह ने मानने से इनकार कर दिया। और वात ही वात मे झगड़ा वढ़ जाने पर ततखालसे वन्दईयों पर टूट पड़े और उनको ज्यादा गिनती के सामने कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। महन्तसिंह सम्वधी आगे कुछ पता नहीं चलता कि क्या हुआ। इसके वाद

ततखालसों का जोर बढ़ गया। और आहिस्ता-आहिस्ता बन्दई खालसों की गिनती कम होती गई। आजकल बन्दासिंह की स्मृति में स्थापित हुआ एक गुरुद्वारा डेरे बन्दासिंह के नाम से रियासत जम्बू के परगना रियासी में भम्भर ग्राम के नजदीक दरियाये चित्रक के किनारे पर है।

इस बीच में दिल्ली के तख्त पर मुहम्मदशाह आ चुका था और जल्दी ही वहा उसे घरेलू झगडे की आशका न थी अत उसने पजाब में इस आग को सुलगते देख कर तुरन्त ही उपाय करना चाहा।

फिर दमन

मुल्तान के हाकिम को लाहौर में लाहौर के हाकिम को मुल्तान में बदल कर लाहौर के नये हाकिम जकरियाखा को आज्ञा दी कि शीघ्र ही इन सिर उठाने वाले सिखों का इलाज करो।

बडे मिया सो बड़े मिया छोटे मिया सुभानअल्लाह के अनुसार जकरियाखा स्वभाव से ही पिचाच था उसने लाहौर का चार्ज लेते ही गांवों में फौज भेज दीं और सिखों को नेस्तनाबूद करने का हुक्म दे दिया। यह फौज गाव-गांव घूमकर सिखों को दण्ड देने लगी। जहा भी जाती सिखों को लूटती और उन्हे कत्ल करती। इसका फल यह हुआ कि सिखों को एक स्थान पर बसना मुश्किल हो गया, वे जब सुनते कि फौज आरही है तो जगलों को भाग जाते किन्तु घरों में जो बूढे बच्चे रह जाते। यह लश्कर उनकी भी खूब दुर्गति करता। इसके साथ ही गावों के चौधरियों के नाम हुक्मनामे जारी किये गये कि जिस किसी भी गाव मे सिखों को शरण दी जायगी। उस गांव को दंड दिया जायगा। इस तरह सिखों को विवश होकर खानाबदोश होना पडा। कैसा होगा वह विषम समय जब सिख परिवार जगलों मे, खादरों और पहाडों में भटकते फिरते होंगे और उनकी तलाश में फिरते होंगे फौजी दस्ते। इस समय तो उस आपत्ति की कल्पना करते ही रोंगटे खडे हो जाते हैं। जो लोग पकडे जाते उनका नाजिम के हाथो वध होता और जो भाग जाते वह भूखे प्यासे भटकते।

राजपूताने के इतिहास में हम राना प्रताप को और उसके बच्चों को घास की रोटी खाते पढ़कर रो उठते है किन्तु पजाब में हजारों सिख परिवार घास और पत्तियों पर गुजर कर रहे थे। उन दिनों पजाब में आज का जैसा पानी का भी सुपास न था। कहीं कहीं तो दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह कोस तक पानी प्राप्त न होता था। नदियों के किनारे दबाये हुए थे, नहरे थी नही। किन्तु बेचारे इन सब कष्टों को बर्दाश्त कर रहे थे। केवल धर्म की रक्षा के लिये।

धर्म के लिये उनके दिलों में कैसा प्रेम था। वह इस बात से प्रकाश में आजाता है कि जो घर किसी प्रकार देहातों मे ही पड़े थे। वह अपनी कमाई को कौम के काम मे लगाते थे। बहुत सारी रोटियॉ उनके घरों मे बनाई जातीं और अपने पास के जगलों मे अपने सहधर्मियों के खाने के लिये भेजते किन्तु यह प्रयत्न थे, ऐसे ही जैसे आटे में नमक। जगलों मे फैले हुए लोगों को प्राय भूखा और अधभूखा ही रहना पडता और वे जगली फलों और पत्तियों पर कई २ दिन तक गुजर करते रहते।

इस प्रकार का प्रयत्न करने वालों मे एक भाई तारासिंह जी थे। जिनका लगर हर समय चलता रहता था। अपनी कमाई तो वे उसमे लगाते ही थे किन्तु कई एक बार उनको दूसरे भाई भी इस काम में मदद दे देते थे। उनके इस काम से सिखों मे उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। यहॉ तक कि नुसहिरा गॉव के चौधरियो के घोडों को चुराकर बेचने से दो सिख डाकुओं को जो रकम मिली, वह उन्होंने भाई तारासिह जी के लगर में ही भेज दी। बात यह थी कि नौशहरे का चौधरी साहिबराय वहॉ के सिखों के खेतों में नित अपने घोडे छोड़ दिया करता था। जब वह समझाने से भी न माना तो वहॉ के सिखों ने बघेल-

सिंह और अमरसिंह नामी सिखों से अपनी कठिनाई कही। वे उस रात उस चौधरी के घोड़ों को चुरा ले गये और सरदार आसासिंह जी के हाथ वेच आये। जो मूल्य मिला वह सब भाई तारासिंह जी के लगर को दे दिया।

अमृतसर जिले के वाहिग्राम मे भाई तारासिंह जी रहते थे। उन्होंने रहने के लिये एक छोटी सी कच्ची गढ़ी वना रक्खी थी। वे एक शांत स्वभाव और धर्म प्रिय सिख थे। उनका लंगर हर समय चलता रहता था। अपनी कमाई का सारा हिस्सा दान पुण्य मे ही खतम करते थे। घर की हालत भी चंगी थी। गाये भैंसें और घोडे सभी कुछ उनके था किन्तु वे एक धर्मात्मा पुरुप की तरह अपना जीवन विताते। नेक कमाई करते और हरि का नाम जपते। अपने भाइयों की अन्न, धन और रुपये-पैसे से मदद करते। यही उनका स्वभाव था।

भाई तारासिंह की शहीदी

एक दिन जव कि भाई तारासिंह के यहाँ धर्म चर्चा होरही थी। साहिवराय थानेदार को लेकर पहुँचा और भाई जी से कहा कि आपके यहाँ हमारी घोड़ियाँ आई हैं, तलाशी लेंगे। भाई जी ने सहज स्वभाव से उत्तर दिया। तलाशी चोरों की ली जाती है, मैं कहता हूँ तुम्हारे घोड़े यहां नहीं आये। इस पर साहिवराय ने कटु शब्द कहना शुरू कर दिया। वातों से वढ़कर मामला मार पीट पर आ गया। थानेदार मारा गया और साहिवराय की जूतो से पिटाई हुई।

साहिवराय ने जाकर पट्टी के हाकिम जफरवेग से शिकायत की और यह भी वता दिया कि थानेदार को उन लोगों ने मुल्केअदम पहुँचा दिया है। जफरवेग ने उसी समय ५०० आदमी तारासिंह जी की गिरफ्तारी के लिये तैयार किये और गढ़ी पर चढ़ाई करदी। उस समय वहां लगभग १०० सिख मौजूद थे। ५०० आदमियों को इन रण वांकुरो ने ऐसा परेशान किया कि वह अपने अनेकों साथियों की वलि देकर भाग निकले जफरवेग भी भाग गया। किन्तु उसका भाई मारा गया।

जफरवेग ने तारासिंह द्वारा सिखों की सेवा और पन्थ की सहायता आदि सव वातों पर प्रकाश डालते हुए सूवा लाहौर को वताया कि मै उसे दंड देने के लिये ५०० आदमियों के साथ गया, किन्तु निष्फल रहा अत. एक भारी सेना तारासिंह को पकड़ने के लिये भेजी जानी चाहिये। इसलिये उसने एक वड़ी सेना तारासिंह जी की गिरफ्तारी के लिये रवाना करदी।

उस समय भी गढ़ी मे जो सिख मौजूद थे। भाई जी ने उन्हे उत्साहित किया और वे अल्प संख्या मे होते हुए भी इस भारी सेना से भिड़ गये। सिखों ने खूव हाथ दिखाये। सैकड़ों नहीं हजारों को जमीन पर विछा दिया।

इतने वहुसंख्यक सैनिकों के साथ चन्द सिखों का भिड़जाना उनकी दिलेरी का ही द्योतक है। भाई तारासिंह जी यद्यपि वृद्ध थे, किन्तु जवानों की तरह लड़े और लड़ते हुए उन्होंने सिखों को शूरताई की वातें कहकर उत्साहित भी किया। लड़ते-लड़ते शत्रुओं के तीर और वर्छों से उनका शरीर छलनी हो गया था। किन्तु जव तक भी वह अपने शरीर को सभाल सके डटकर लड़े और अन्त मे 'वाहि गुरु जी की फतह' का नारा लगाते हुए। अपने धर्म की आन पर शहीद हो गए।

वालक हकीकतसिंह की कुर्वानी भी एक खास स्थान सिख शहीदियो मे रखती है। हकीकतराय का जन्म वाघमल खत्री के घर माता कौरा के उदर से स्यालकोट में हुआ था। ७ वर्ष की उम्र में वह पढ़ने विठा दिया गया, दस वर्ष की उम्र में उसकी शादी वटाले के सिख खत्रियों में

हकीकतसिंह धर्मी हुई। तुलसिंह, मलासिंह और कृपालसिंह बटाले में तीन भाई थे। हकीकतराय की शादी इन्हीं के यहा हुई थी।

शादी के बाद भी हकीकत का पढ़ना जारी रहा। एक दिन जब कि मुल्ला मकतब में नहीं था। तुरक लडके हकीकत से लड़ पड़े। गाली गलोज और ईंट पत्थर भी दोनों ओर से फेंके गये। जब मुल्ला वापिस आया तो मुसलमान लडकों ने उससे शिकायत की इस हकीकत ने पैगम्बर साहब की साहबजादी को गालिया बकी है। हकीकत से मुल्ला ने जब पूछा तो हकीकत ने सच सच बात कह दी। उसने कहा, इन्होने मुझे चिढाने की गर्ज मे उस देवी की निन्दा की जिसको सारे हिन्दू मानते हैं और पहाडो मे है तथा जिसने महिषासुर जैसे राक्षसो को मारा है। गाली गलोज और मारपीट की पहल इन लड़कों ने ही की है। मैंने जो कुछ कहा है वह बाद मे कहा है। तास्सुब में पले हुए मुल्ला ने हकीकत की इस सचाई को सहन नहीं किया और वह उसे पकड कर काजी के पास ले गया। काजियों ने शरह की रू में हकीकत का अपराध अक्षम्य बताया। मकतब के लडके आ गये और वे उसे सोटों से पीटने लगे। कोई उसके कान मरोड़ने लगा, कोई लात घूंसे लगाने लगा। जब शोर मचा तो शहर के आदमी इकट्ठे होगये और किसी ने हकीकत के मा बाप के पास भी खबर भेजी।

मामला अमीनबेग के पास गया। वह न्याय पसन्द आदमी था, किन्तु काजी और मुल्लाओं ने इस अपराध को अक्षम्य बताया। अत उसने यह मामला किसी और तरह निबटता न देखकर लाहौर के सूबेदार के पास भेज देना उचित समझा क्योंकि वह इस बात पर राजी था कि बालक हकीकत को क्षमा किया जाय।

हकीकत के घर मे शोक के बादल छा गये। मां कौरा बाप बाघमल और उनकी नववधू सभी विलाप करने लगे। उन्होंने काजी को बहुत कुछ द्रव्य देकर भी राजी करना चाहा किन्तु काजी न माना हकीकत को बहली मे डालकर काजी लाहौर को चल दिया। पुत्र विछोह मे दुखी हुये मात-पिता और पारिवारिक आदमी भी उनके साथ चले। उस समय रूपचद चौधरी एमनाबाद व दीवान जसपतराय ने भी काजी से बहुत कुछ कहा किन्तु वह अपने शरह हुक्म की दुहाई देकर हकीकत को छोडने पर राजी नहीं हुआ। आखिर मजिल हकीकत को लेकर काजी लाहोर मे पहुँचा।

लाहौर मे दीवान लखपतराय और जगतसिंह दोनो ने काजी को समझाया किन्तु उसने हकीकत को छोडना मजूर नहीं किया। पॉच दिन के बाद खान बहादुर (जकरियाखॉ) ने कचहरी मे हकीकत और काजी को बुलाया उस समय दरबार मे लखपतराय, सूरतसिंह और जगतसिंह भी बुला लिये गये थे। काजियों और मुल्लों ने सर्व सम्मत से हकीकत के कत्ल या मुसलमान होने का फैसला दिया। उस दिन नवाब ने कचहरी बर्खास्त करदी दूसरे दिन हकीकत से उसने कहा, बच्चे तू मुसलमान होजा मैं तुम्हे हाथी घोडे और जागीर दूंगा। अपने बेटे का जैसा व्यवहार करूंगा। तैने बीबी फातिमाका अपमान करके बडा भारी गुनाह किया है किन्तु मुसलमान होने पर तुझे क्षमा तो कर ही दिया जायगा, और समस्त सुख भी तुम्हें मिलेगे, लेकिन बालक हकीकत ने हर बार स्पष्ट शब्दों मे अपना धर्म छोडने से इन्कार कर दिया।

अत मे माता उसके गले से लिपटी और फूट फूटकर रोती हुई कहने लगी। मेरे बेटे तुम मुसलमान हो जाओ मैं तुम्हारा यह मुखडा तो देखती रहूँगी। हकीकत ने मा से भी कह दिया, चन्द दिन की जिन्दगी के लिये मा, मैं अपने प्यारे धर्म को नहीं छोड़ सकता हूँ।

जगतसिंह शाही दीवान ने एक बार फिर शिफारिस की किन्तु काजी की जिद के आगे एक न

चली। अन्त मे माता कौरा ने हिम्मत बांध कर कह दिया। अच्छा वेटे जाओ। हो जाओ धर्मपर वलिदान। नवाव के हुक्म से जल्लाद हकीकत को दरवाजे के वाहर पूर्व ओर नरवास वाजार की कत्लगाह मे ले आये जो कि अब गुरुद्वारा शहीदगज के नाम से मशहूर है। सारा शहर हकीकत के दर्शनों को उमड पड़ा। हजारों नरनारियों के आखों से आसू वह रहे थे। जल्लाद ने तलवार निकाली। हकीकत ने सतगुरु, सतगुरु कहकर अपनी गर्दन भुकादी।

'अगर' नाम के एक कवि जिसने कि हकीकत से केवल ४६ वर्ष वाद उसका काव्य-मय जीवन लिखा है, लिखता है कि उस दिन सारे लाहौर मे हड़ताल हुई और सव ने रावी के किनारे हकीकत के शव का संस्कार किया जिसमे जगतसिंह, सूरतसिंह और लखपतराय जैसे शाही दीवान भी थे।

मुसलमान हाकिमों ने जितना ही सिखों को दमन करना चाहा उतने ही वे भी प्राणों पर खेलने लगे, कहावत है कि अति रगड़ से चन्दन मे भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है। वे भी यत्रतत्र और सर्वत्र जहाँ भी मौका देखते जा धावा करते और फिर पहाड़ियों में निकल जाते, गस्ती सेना का भी अव प्रभाव धीरे धीरे कम होने लगा। कभी २ वह मैदान मे सामने आकर भी मुकाविला कर जाते वरना दुश्मन को हैरान करने के लिये छापा उनका एक अमोघ साधन था।

चन्दन से आग

जव पंजाव के मुसलमान हाकिमों ने देखा कि हम इस प्रकार भी सिखों को नहीं दवा सके हैं तो उन्होंने एक हृदय हिला देने वाली घोषणा की वह इस प्रकार थी—"जो कोई सिखों की प्रगतियों की मुखविरी करेगा उसे १०) और जो किसी सिख को पकड़ेगा उसे २५) गिरफ्तार करके थाने में पहुँचाने वाले को ५०) और सिर काट कर लाने वाले को सौ रुपये दिये जावेगे सिखों की वर्वादी मे पूरी सहायता देने वालों को जागीरे दी जावेगी।" यह एक सम्मिलित घोषणा थी जो जालधर लाहौर और सरहिंद के मुसलमान हाकिमों ने की थी।

रोमाचकारी घोषणा

लोभ वहुत वुरी वला है, इस कुकृत्य मे चद हिन्दुओं ने भी कलंक कालिमा का टीका अपने माथे लगाया और मुसलमानो ने तो इसे रोजगार समझ लिया। नित सिखों की हत्याये, गिरफ्तारिया और मुखवरी होने लगीं।

खजाने की लूट

यह छापे केवल मुसलमानी रईसों और परगना अफसर पर ही मारे जाते थे एक वार उन्होंने उस शाही खजाने को भी तरनतारन मे लूट लिया। जिसे दो हजार आदमी लाहौर से दिल्ली ले जारहे थे।

इस संघर्ष के समय में जो कुछ लोग मुसलमान हो जाते थे उन्हें अमृत पिलाकर अपने धर्म और समुदाय में मिलाने से भी सिख नहीं चूकते थे। जव दिल्ली से ३८ हजार सैनिक सिखो को वर्वाद करने के लिये भेजे गये तो लड़ाकू और छापा मारने वाले सभी सिख पहाड़ों मे चले गये किन्तु उन फौजियों ने गाँवों मे रहे-सहे लोगों को वहुत तग किया। तंगी यहां तक की गई कि सिर के लंवे वाल और डाढ़ी वाले हिन्दुओं तक को मारा पीटा और कत्ल किया गया। पहाड़ों मे जव यह खवर पहुँची तो सिखों ने गुरमता किया और तय कर लिया कि उनमे से जो भी सिख वनना चाहे शुद्ध कर लिया जावे। इस प्रकार अनेको लोगो को मुसलमानी धर्म से वापिस करके सिख वना लिया गया।

धर्म-संस्कार

सिखों को वल से न दवते देखकर मुल्क मे अपनी हुकूमत को कामयाव वनाने के लिये उनको जागीरे आदि देकर शात करना चाहा। इस मतलव के लिये लाहौर के हाकिम ने भाई सुवेगसिंह को नवावी खिल्लत देकर अमृतसर भेजा जहाँ कि सिख एकत्रित हुए थे। पहले तो सिखों ने नवाव से किसी भी प्रकार का सम्वन्ध रखने से इन्कार कर दिया परन्तु जव सुवेगसिंह जी ने कहा कि इस प्रकार एक तरफ तो वह सूवेदार की तरफ से वेखटके हो जावेगे दूसरी ओर वह आहिस्ता २ अमन के समय मे अपनी ताकत वढ़ा सकेंगे और यह समय तो खिल्लत परवान करलेने का है,यह खयाल पास होगया परन्तु इसे लेने के लिये कोई भी सरदार तैयार न होता था जिस किसी को कहते वही इनकार कर देता अन्त मे सवने इसे भाई कपूरसिंह जी को जो कि उस समय सगत मे पखा झलने की सेवा कर रहे थे देने का फैसला कर दिया। कपूरसिह जी ने यह कहकर स्वीकार कर लिया कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ। इस शाति के समय मे सिखों ने आपस मे मेल मिलाप से रहने और सिख धर्म के प्रसार के लिये प्रयत्न करना शुरु कर दिया। आपसी झगडों को निपटाने के लिये, भाई मनीसिह, सरदार कपूरसिह, वावा विनोद हरीसिंह, जस्सासिह और रामसिंह जी आदि को नियत किया गया।

पथ के प्रमुखों ने इस समय जत्थे वनाकर गॉवों मे प्रचार के लिये भी भेजे हुए थे जो सिख धर्म का प्रचार भी करते थे और भेट पूजा भी लाते थे।

लेकिन यह सिलसिला थोडे ही दिन चालू रहा, मुस्लिम शासक समझ गये कि जागीरों और इनामों की आमदनी से तो सिख अपनी ताकत वढ़ाते है। इसलिये उन्होंने जागीर व इनामों की जव्ती शुरु कर दी।

जागीर वाले सिख अपनी आमदनी का एक वड़ा हिस्सा पथ को देते थे और अमृतसर मे चढ़ावे और पूजा मे भी अच्छा धन आजाता था।

जागीरों के इस प्रकार जव्त किये जाने पर सिखों ने समझ लिया कि मुस्लिम शासकों ने अपने सुलहनामे को खुद ही तोड दिया है अत. वे भी अव स्वतन्त्रता से उसी रास्ते पर चल निकले जो महावीर वन्दासिंह ने प्रशस्त किया था और कांटेदार होते हुए भी शक्ति वर्द्धक था और जो उत्थान की ओर लेजाने वाला था। जत्थे वनाने और छापे मारने का काम फिर से चालू होगया इस वीच मे जो भी मुसलमान इनामदार, जागीरदार और रईस सिर-चढे होगये थे उनकी अच्छी तरह से शोध की।

फिर वही वाते

अपने २ जत्थे लेकर सिख लोग समस्त पजाव मे फैल गये। नवाव कपूरसिंह जी भी मालवा देश को चले गए। वहा उन्होंने अपना अच्छा सगठन किया। उनके देश में पहुँचते ही चारों ओर के सिख उनके पास हाजिर हुए और उन्हे सम्मान मे उन्हे काफी भेटे दीं। भारी संग्रह किया।

लोग कपूरसिंह जी से इतने प्रभावित थे कि उनके वहाँ पहुँचते ही हजारों जाट जमींदार सिख वन गये। यही क्यों पटियाला के राजा श्री आलासिंह जी ने भी मय अपने परिवार के सिखी धारण करली।

सिखों के इस प्रकार के ढर्रे पर उतर आने के कारण नवाव लाहौर ने अमृतसर पर कव्जा करने की सोची। कई हजार सैनिक अमृतसर की ओर रवाना किये और वहाँ परजो सिख थे। उन्हे हटा दिया। सिखों का एक और जत्था अमृतसर के दर्शन के लिए आ रहा था। उसके साथ भी मुस्लिम सेना की भिड़न्त हुई और उस सिख जत्थे को लौटना पडा।

अमृतसर पर कव्जा

मुसलमान अफसरों ने अमृतसर के सरोवर को देखकर विचार किया कि यथा सभव इस तालाव के पानी को पीकर ही सिखों मे इतना जोश आ जाता है। अत. अच्छा हो इनका यहाँ आना जाना ही वन्द कर दिया जाय। वस ऐसा ही किया गया जो भी सिख वहाँ आ जाता उसके साथ वुरा सलूक किया जाता। अमृतसर मे से सव सिखों को हटा दिया गया। सिर्फ एक भाई मनीसिंह जी ही ऐसे आदमी थे जिन्होंने अमृतसर को नहीं छोडा वास्तव मे वे इस प्रकार के मीठे स्वभाव के थे कि उनसे हिन्दू मुसलमान सव ही खुश रहते थे।

भाई मनीसिंह की शहीदी

भाई मनीसिह जी एक शात पुरुप और देवता स्वभाव के आदमी थे। आपका जन्म मालवा प्रदेश के कियोवाल नामक गाँव मे जाट जमीदार चौधरी भीकाजी के घर हुआ था। आप पांच भाई थे। जिनमे सवसे वड़े आप ही थे। एक वार चौधरी भीकाजी गुरु गोविन्दसिंह जी के दर्शनों के लिए गए। वालक मनीसिह भी उनके साथ थे। कई दिन तक दोनों वाप वेटों ने उपदेश सुने। उस समय आपकी अवस्था केवल दस वर्ष की थी। गुरु जी मनीसिंह जी की चेष्टाओं और हाव भावों को देखकर खुश थे। अत उन्होंने भीकाजी से मनीसिह को वहीं छोड़ जाने के लिये कहा।

पिता का खयाल था कि कुछ दिनों के वाद उनका पुत्र घर पहुँच जायगा किन्तु ऐसा हुआ नहीं वह तो गुरुचरणों मे ही रम गये। अपनी प्रतिभाशाली बुद्धि से उन्होंने सिख धर्म को पूरी तरह से हृदयगम किया था। शिक्षा भी ऊचे दर्जे की प्राप्त कर ली थी। गुरु जी उनसे प्रसन्न थे। अत. उन्हे योग्य वनने मे कोई कठिनाई नहीं पड़ी।

सवसे अधिक महत्व का काम आपका यह था कि आप जन्म भर ब्रह्मचारी रहे। शादी नहीं की। सिख लोगों पर आपका वड़ा असर था। हजारों ही लोगों ने उनसे सिख धर्म की दीक्षा ली थी।

आप जितने विद्वान थे। उतने ही धैर्यवान भी थे। आनन्दपुर से निकलने पर गुरु पत्नियों को सुरक्षा के साथ दिल्ली मे आपने ही पहुँचाया था।

दमदमा मे वैठकर जिस समय गुरु ग्रन्थसाहव की दशम पातशाह ने नई वीड़ तैयार की तो उनके लेखक आपही वने थे। हमारे सामने जो दशम ग्रन्थ है उसका संकलन भी आप ही ने अनेक सिख विद्वानों के साथ मिलकर किया था।

यह भी कहा जाता है कि 'श्री आदि गुरु ग्रन्थसाहव' जिस रूप मे आज कल हैं। वह रूप आपने तैयार किया था। पहिले ग्रन्थ साहव का रचना क्रम गुरु क्रम से था किन्तु आपने राग क्रम से कर दिया। इस प्रकार यह कठिनाई अवश्य हो गई कि प्रत्येक गुरु की वाणियों को सहज ही नहीं ढूढ़ा जा सकता किन्तु फिर भी आपने यह सहूलियत रक्खी कि रागनियों और वाणियों मे पहचान करने के लिये कि वह अमुक गुरु जी की है महला नम्वर दे दिये हैं। उदाहरणार्थ जहाँ २ जिन जिन वाणियों के आदि मे महला १ लिखा हो। वह सव प्रथम गुरु श्री नानकदेव जी महाराज की है। यह भी कहा जाता है कि सिख लोग आपके इस कार्य से असंतुष्ट हुये थे किन्तु आपने क्षमा मांगली।

पंथ के प्रमुख लोगों मे आपकी गिनती होती थी। इसके सिवा अनेको मुसलमान भी आपकी विद्वता और वोलचाल की मिठास और सद्व्यवहार पर मुग्ध थे। आपके चारों ओर धर्म जिज्ञासुओं की भीड़ लगी रहती थी। आप सवके प्रश्नों का उतर देते और सव ही का समाधान करते।

अमृतसर के दर्शन के लिये आने जाने वाले सिखों को तग किया जाता था और वे निराश लौट

जाते थे। इससे भाई मनीसिंह जी के हृदय पर बडी चोट पहुचती। वे यह भी अनुभव करते थे कि जहा चन्द दिनों पहले हजारों सिख बने रहते थे। और साथ २ हरि मन्दिर मे भजन पाठ करते थे। आज यह पवित्र स्थान सुनसान हो गया है।

इन्हीं सब बातों के ख्याल करके वे बहुत दुखी भी होते थे। अत मे उन्होंने अमृतसर मे रहने वाले अफसर से प्रार्थना की कि कम से कम एक साल मे तो सभी सिखों को यहाँ दर्शन, कर लेने के लिये आने दिया जाया करे। अमृतसर के अफसर ने उनसे कहा हम तो ऐसी इजाजत नहीं दे सकते, हा आप लाहौर से इजाजत हासिल करलें तो हमें कोई एतराज नहीं होगा।

भाई मनीसिंह जी ने आखिर लाहौर के हाकिम के पास ही दिवाली पर मेला भरने की इजाजत के लिये लिखा।

लाहौर के हाकिम ने अपने सलाहकारों से मत्रणा करके भाई जी के पास उत्तर भेजा कि अमृतसर मे दिवाली पर पूर्ववत मेला भरने की इजाजत यो ही नहीं दी जा सकती। यदि पाच हजार रुपया महसूल के देना मजूर करो तो मेला भरने की इजाजत दी जा सकती है।

भाई मनीसिंह जी ने सोचा कि मेले मे बे शुमार सिख आयेंगे। अत पाच हजार रुपया दे देना कोई भी कठिन न होगा और इस मेले से जो लाभ होंगे वे खालसा के लिये बहुत काम के साबित होंगे। क्योंकि वह मिलकर भविष्य का प्रोग्राम बना सकेंगे। इसलिये उन्होंने स्वीकार कर लिया और मेले का आयोजन करने लगे। प्रत्येक गाम और नगर मे खबर कर दी गई कि दिवाली पर सिख लोग आकर अपने पवित्र मेले को भरें और हरि मन्दिर जी के दर्शन करे।

इधर नवाब लाहौर ने सोचा कि यह मौका भी खूब हाथ आया है। इस समय अपनी फौजे भी अमृतसर भेज देनी चाहिए, जो मेले मे आये हुये सिखों का एक ही बार मे खातमा करदे।

फौजों के अमृतसर पहुँचते ही भाई मनीसिंह जी घबरा गये। वे समझ गये कि नवाब की नीयत मे फर्क है।

यह देखकर भाई मनीसिह जी ने सिखों की ओर आदमी दौडा दिये। ताकि इस बिछ रहे जाल से उन्हे सूचित कर दिया जावे। इससे सिख मेले की ओर आते हुये जहा भी थे वहीं रुक गये और जिससे नवाब की सिखों को तबाह करने की तजवीज सफल न हो सकी। इससे जकरियाखान बहुत भुनभुनाया और भाई मनीसिंह जी को गिरफ्तार कराके लाहौर बुला लिया।

रुपये का सवाल नवाब की तरफ से होने पर भाई मनीसिंह ने कहा, मेला लगता। चढ़ावा आता। तो मैं अवश्य रुपये देता। परन्तु आपकी फौजों के अमृतसर के निकट पहुच जाने के कारण मेला नहीं लग सका। इसलिये मेला न लग सकने का कारण आप हैं। इसलिये अपने ही कारण से मेला रुक जाने से और कुछ भी रकम न आने के कारण आपका रुपया मागना उचित नहीं और ना ही मेरे पास रुपया है कि मैं दे सकूँ।

परन्तु वहाँ सचाई और न्याय की तो बात ही नहीं थी। अपनी चाल न चल सकने के कारण गुस्से से नवाब ने भाई मनीसिंह के अग प्रत्यग जुदा कर देने का हुक्म दिया।

काजियों ने उनके सामने यह प्रस्ताव भी रखा कि यदि आप इस्लाम कबूल करले तो आपकी जान बख्शी जा सकती है।

भाई मनीसिंह जी ने जवाब दिया। मैं देखता हूँ कि मौत सबके लिये आती है। यदि आज मैं

मौत के डर से इस्लाम कबूल करलूँ तब भी मौत तो आयेगी ही। इसलिये जब मौत रुक नहीं सकती तो मुझे अपने ही पवित्र धर्म में रहते हुए मरने में ही आनन्द मालूम होता है।

रहा यह सवाल कि मेरे शरीर का अंग प्रत्यंग काटा जायगा सो इसके लिये तो इतना ही कहना काफी है कि जो गर्दन कटाने को राजी हो जायगा। वह पैरों के टुकड़े कटाने से ही क्यों हिचकेगा।

लाहौर शहर मे यह खबर विजली की भांति फैल गई। शहर में जो सिख रहते थे। वह तिलमिला गये और घरों के वासन, वर्तन, स्त्रियों के गहने पाते वेचकर भी उन्होंने पांच हजार रुपये इकट्ठे किये और भाई जी को छुड़ाने चले।

किन्तु भाई मनीसिंह जी को जव इस वात का पता चला तो उन्होंने उन सिखों से कहा—मैं रुपया देकर अपने आपको छुड़ाना नहीं चाहता।

जल्लादों ने भाई जी को वध स्थल पर ले जाकर जो कि आज शहीदगज के नाम से काफी मशहूर हो गया है। उनके अंग के प्रत्येक हिस्से को जुदा कर दिया। यह घटना माघ सुदी ५ संवत् १७६४ की है।

भाई मनीसिंहजी की शहीदी ने सिखों मे आग सी लगा दी। जिसको बुझाने के लिए जकरियाखान ने फिर से अपनी गस्ती सेनायें इलाके मे भेज दीं ताकि सिख किसी जगह एकत्र न हो सके।

इसी समय नादिरशाह दुर्रानी हिन्दुस्तान को लूट खसूट कर अपने देश को वापिस जा रहा था। अपने घर वार से निकाल दिये जाने के कारण सिख भूख प्यास से दिन गुजार रहे थे। शहरों में उनको वसेरा न था। ग्रामो में से गस्ती फौजे ने उन्हे जगलों को निकल जाने के लिए मजबूर कर रखा था और जब वे जंगलों मे पहुँचते तो वहा आग लगा दी जाती थी। ऐसी विपत्ति के समय में सिखो के लिये जीवन निर्वाह कर सकना अति कठिन हो रहा था। इसलिये उनके पास इसके सिवा कोई चारा ही न था कि जिन लोगों ने उन्हे वेघर वार का किया था। उन पर आक्रमण करके उनसे अपनी अपहृत वस्तुओं को वापिस कर ले या अत्याचारी शासकों पर छापा मार के अपने निर्वाह का वसीला वना सके। लौटता हुआ नादिरशाह जव शिवालक की पहाडियों मे से गुजर रहा था। तो सिखों ने उस पर छापा मारने आरम्भ कर दिये और भारत की लूट से लदे हुए माल का वहुत सा वोझ हल्का कर दिया।

ईरान, अफगानिस्तान और हिन्दुस्तान का विजयी नादिर घर घाट से निर्वासित किये हुए अध नंगे सिखों की मार से घवरा उठा। और जव लाहौर का हाकिम जकरियाखान उससे मिलने आया, नादिरशाह ने पहला सवाल जो उससे किया था यह था यह कौन और किस प्रकार के लोग है कि जिन्होंने देहली की लूट से लदी हुई मेरी फौज के पीछे के हिस्से को लूट मारा है और जिनके भय से कूच के समय मेरी फौज की तरतीव टूटी जा रही है। इनका सरदार और मुल्क कहा है? इनका पता वताओ ताकि उसे खाक मे मिला कर इनका नामो-निशान मिटा दू। जकरियाखॉ ने उत्तर मे कहा यह एक हिन्दू और मुसलमानों से निराले ही सक (सिख) धर्म के अनुयायी है। नगल इनका देश है और घोड़ों की पीठ इनके घर। यह खड़े-खड़े ही सोते हैं। और चलते जा रहे ही खाते हैं। घी और नमक का स्वाद नहीं जानते। न असाढ़ मे पानी ढूढते हैं और न सरदी में सेकने को आग। हम इनको मार-मार कर थक गये हैं किन्तु वह उसमें ही सुख मानते हैं और वड़े फूले जा रहे हैं। पीसा हुआ अनाज नहीं खाते और भूखे-प्यासे मरते जाते हुए भी वड़ी सख्त लड़ाई करते हैं। अकेला-अकेला सैकड़ों से लड़ने को तैयार हो जाता है और मृत्यु से भय नहीं खाता। नादिरशाह ने यह वात सुनकर पूछा कि यह उम्मत किस पीर की है। जकरियाखान ने सिखों की उत्पति का हाल वताते हुए कहा कि इनका मुर्शिद वावा नानक है जो कि एक

करामाती फकीर हुआ है। इनके पाचवे और नौवे गुरुओं को मुगल बादशाहो ने धार्मिक और राजसी शरारतों से मरवा दिया था। इनके दसवे पीर, गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्र तो लड़ाई में मारे गये और दो सूबा सरहिन्द ने जिबह करवा दिये थे। इनके एक बडे सरदार को देहली में फरुखसियर ने मरवा दिया था और अनेकों को हमने मारा है। किन्तु यह बढते ही चले जा रहे हैं। यह सुन कर नादिरशाह मुस्करा पडा और कहने लगा, "तो फिर इनसे डरना चाहिये वह समय नजदीक ही है कि जब यह सिर निकालेंगे और इस देश के बालिये बन जायेंगे।"

जकरियाखान मित्र तो सिखों का पहले से ही न था परन्तु नादिरशाह के कहने से उसे बहुत नामोशी आई और चिढ गया। अत उसने एक सिरे से ही सिखों का कत्ल आम करने का हुक्म दिया। यह दूसरा कत्लेआम था जो सवत १७९६ से १८०२ विक्रम तक रहा।

इस प्रकार के कत्लेआम के बाद हाकिमों ने यह रिपोर्ट कर दी कि अब कोई सिख शेष नहीं रहा और सब खत्म कर दिये गये हैं। इन्हीं दिनों में भाई बोतासिंह और उनके एक और सिख साथी को जो तरनतारन के निकट जगल में रहा करते थे। एक दिन दो जमींदारों ने उन्हे देखा। उनमे से एक ने अपने दूसरे साथी से पूछा क्या यह कोई सिंह जा रहा है, उत्तर में दूसरे साथी ने कहा नहीं, सिंह कहा हो सकता है? यह कोई गीदड होगा जो छिप कर फिर रहा है। सिंह तो खतम कर दिये गये। यह बात भाई बोतासिंह को लग गई और उन्होने दिल में सोचा कि हमे अब जाहिर करना होगा कि सिंह अभी तक मौजूद हैं खत्म नहीं हुए। इसलिये यह उसी वक्त वहा से निकल कर शाही सडक पर सराय नूरुदीन के निकट बैठ गया और आते-जाते मुसाफिरों से फी छकडा एक आना और फी गधा एक पैसा वसूल करना आरम्भ कर दिया कुछ समय ऐसे ही चलता रहा और किसी ने उससे पूछा ताछ न की। परन्तु केवल कर वसूल कर लेना तो भाई बोतासिंह का लक्ष्य न था वह तो शाही शासकों को यह बात जता देना चाहता था कि सिख समाप्त नहीं हुए किन्तु जिन्दा हैं। इसलिये उसने जकरियाखान को इस प्रकार चिट्ठी लिखा था—

चिट्ठी लिक्खें सिंह बोता। हथ्थ है सोटा।
आना लाया गडे नू। तै पैसा लाया खोता॥
आखो भाभी खानो नू। यों आखें सिंह बोता॥

बोतासिंह का इस प्रकार का पत्र जब लाहौर के सूबेदार जकरियाखान पर पहुँचा तो उसने जलाउद्दीन नामी एक फौजी अफसर को सेना देकर बोतासिंह को गिरफ्तार करने के लिये भेजा भाई बोतासिंह अपने साथी समेत लडने को तैयार हो गये। एक तरफ हाथों में केवल सोटा लिये दो सिख, और दूसरी तरफ सूबेदार लाहौर का एक सौ सैनिकों का फौजी दस्ता। इन दोनों ने हथेली पर सर रक्खे हुए अपनी पीठें जोड ली और घूम-घूम कर सैनिकों के वारों को रोकने लगे। जब तक उनमे जान रही किसी को अपने शरीर से हाथ लगाने का मौका नहीं दिया। आखिर दो आदमी सौ सैनिकों का कहा तक मुकाबला कर सकते थे। उनके बहुत से आदमियो को जख्मी कर के अन्तत शहीद हो गये।

मस्साखान ने हरिमन्दिर मे अपनी चारपाई डाल ली थी और उस पर बैठा हुआ हुक्का गुडगुड़ाया करता था। और दरबार साहब को निविधि दुराचारों का स्थान बना दिया था।

बुलाकासिंह नामी एक सिख ने जब यह हाल अपनी आँखों से देखा तो वह अपने साथियों को सूचना देने के लिये निकल पडा। वह उसी समय बीकानेर की ओर चल पड़ा, क्योंकि सिख उधर ही

चले गये थे। एक तो उधर वालू के टीवे और दूसरे पानी का अभाव इसलिये मुसलमान सेनाये उधर वहुत ही कम पहुँची थीं।

यह जिस समय सिखों के उस टोल मे पहुँचा जो वीकानेर राज्य में रहता था उस समय वहाँ पर उनका दीवान लग रहा था। इसने दरवार की वेइज्जती और मस्साखा के दुराचारों का किस्सा कह सुनाया, जिसे सुन कर क्रोध से सिखों की मुट्ठियां वॅध गई। उनमे से कई ने तो कहा वुलाकासिंह तू उस हालत को वर्दास्त कर सका, हमे तो यही आश्चर्य है। अपने धर्म स्थान की रक्षा के लिये तैने अपना सीस क्यों नहीं दिया। वुलाकासिंह लज्जित हो गया।

उन सिखों मे वुड्ढासिंह जी नामी एक वूढ़े और उत्साही सिख ने उपस्थिति सिखो को सवोधित करते हुए कहा—"सिंहो! आप मे है कोई ऐसा शेर नर जो अमृतसर जाकर मस्सेखाँ रंघड़ का सिर उतार लावे। इन जोशीले वाक्यों को सुन कर भाई महतावसिंह मंडीकंवो वाले और सुक्खासिंह जी मीराकोटये नाम के दो सिह खड़े हुए और तलवार को उठाते हुए कहा, यह सेवा हमे वख्सी जानी चाहिए। चारो ओर से 'वाहि गुरु जी का खालसा' की ध्वनि हुई।

आप दोनों ही मीराकोट के जाट जमीदार थे और इनके वाप गुरु गोविन्दसिंह जी से पाहिल लेकर सिख धर्म मे दीक्षित हुए थे।

जव यह दोनों वीर अमृतसर के निकट पहुँचे तो मुसलमानों का वेश धारण किया और एक थैले मे पैसे भरे।

अमृतसर पहुँचकर पहरेदारों से कहा कि हम अपने इलाके का लगान अदा करने के लिये आये है और जल्दी ही लौट जाना है। घोड़ों को वृक्षों से वांध कर भीतर हरि मन्दिर मे घुस गये। दोपहरी का का समय और अंधड़ का चलना। ढाटा वॉधे हुये दो नौजवानों के प्रवेश से मस्से खॉ चौंका नहीं क्योंकि अंधड़ के समय मे पंजाव मे सभी लोग ढाटा वांध लेते हैं।[1] वह पूछना ही चाहता था कि आप लोग किसकी इजाजत से भीतर आये हैं कि उन्होंने पैसो का थैला उसके सामने रख दिया। ज्योंही वह नीचे गर्दन करके थैले को देखने लगा। भाई महतावसिंह ने तलवार के एक ही हाथ मे उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। भाई महतावसिंह जितनी देर मे मस्से खां के सिर को थैले मे रक्खे उतनी देर मे सुखानसिंह ने अपनी तलवार से उन लोगों का सफाया कर दिया जो वहाँ नाच रंग के मजे मे शामिल हो रहे थे। दोनों वीर तुरन्त ही वाहर आये और घोड़ों पर सवार होकर यह गये वह गये।

मस्से खा के साथियों को जव तक पता चले और वह पकड़ने के लिये तैयार हों, तवतक तो वे कई कोस निकल गये। और पीछा करने वाले शत्रुओं के काफी जोर लगा लेने पर भी हाथ नहीं आये। उत्साह से उनका दिल उमंगे ले रहा था और हवा से उनके घोड़े वात कर रहे थे।

हमारा अनुभव ऐसा है कि जिन कौमो का निर्माण शाति के समय मे होता है, उन मे तात्विक लोग भले ही पैदा हो ले किन्तु शूरमाओं की वेहद कमी होती है और जिन कौमों का निर्माण सघर्ष के समय मे होता है। उनमे शूरमाओं का घाटा नहीं रहता। शांति के समय की वनी कौमे तूफान मे मिट भी शीघ्र ही जाती हैं। वौद्ध लोगो का उदाहरण हमारे सामने शांति के समय की वनी कौमों मे से

१ मुँह को ढकते हुए जो कपड़ा ठोडी के नीचे होते हुये कानों के पास से सिर पर बांधा जाता है, उसे ढाटा कहते है।

है। अफगानिस्तान से लेकर बंगाल तक जहाँ एक दिन सारा ही देश बौद्ध था। आज दस या सौ भी बौद्ध दिखाई नहीं देते। ज्योंही ब्राह्मणों ने उन्हे नष्ट कर देने के लिये राजपूतों को जन्म दिया। त्योंही उनका लोप हो गया। खालसा जाति का निर्माण हुआ था तलवारों की चमक मे। अत तलवार से मिटाना उन्हे एक दम ही असभव होगया। जहाँगीर के समय से उन्हे मिटाने का कार्य आरम्भ हुआ था और अब दिल्ली मे छठी बादशाहत चल रही थी किन्तु वे नहीं मिट सके। मिटते भी कैसे जबकि वे सघर्ष के समय पैदा हुए थे और सघर्षशील जातियों मे जा योग्यता और गुण होते हैं वे सब उनमे पूरी मात्रा मे थे।

जिस समय गश्ती फौजे उनकी टोह मे होती थीं। उस समय वे लापता होते थे। भूख और प्यास को बर्दाश्त करते थे। उस समय उनकी स्त्रियाँ चर्खे कातकर और पशु पाल कर अपना और अपने बच्चो का गुजारा करती थीं किन्तु जगलों मे भटकने वालों की सहायता के लिये भी रकम इकट्ठी करती थीं। और जरूरत होने पर वे तलवारे लेकर निकल पडती थीं।

और जो भाई देहातों मे रह जाते थे वे भी अपनी कमाई को खुद ही खाकर संतुष्ट नहीं होते थे, लगर खालकर, पथ मे देकर अनेक प्रकार से वह अपने धन को अपने भाइयों की मदद मे लगाते थे। इसके बदले मे कभी-कभी एक नहीं ऐसे अनेकों ही भाइयों को प्राण दड की वह भी नृशंसता के साथ दी गई सजा भी भुगतनी पडती थी।

माझा देश के पूला नामक गाँव मे रहने वाले भाई तारूसिह जी भी ऐसे ही सत पुरुषो मे से थे। जिन्हे अपने भाइयों की सेवा के उपलक्ष मे प्राणों से हाथ धोने पडे और उन्होंने इस भयंकर दड को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। आप जाट सिख थे और अपनी विधवा माँ, तथा फुफेरी बहिन के साथ खेती का काम करके अपना जीवन निर्वाह करते थे। जिन दिनों की हम बात कह रहे हैं। उन दिनो आपकी अवस्था कुल पच्चीस वर्ष की थी। यद्यपि वे मालदार आदमी नहीं थे किन्तु धार्मिक श्रद्धा और कौमी मुहब्बत उनके हृदय मे कूट कूट कर भरी हुई थी। खेती और श्रम से जो भी,वह पैदा करते अपनी सिख बिरादरी के परोपकारी कामों मे लगा देते थे।

भाई तारूसिंह

धार्मिक श्रद्धा उनके हृदय मे इतनी थी कि चाहे वह खाये बगैर रह सकते थे किन्तु धार्मिक वाणियो का पाठ किये बगैर नहा रह सकते थे। जिस दिन उनके घर पर कोई खालसा भाई नहीं आते थे। उस दिन को वह मनहूस दिन समझते थे।

उनका हृदय पवित्र, स्वभाव सरल और चेहरा सोन्दर्य पूर्ण था। चरित्र के वह पूर्णिमा की चादनी की भाति निर्मल थे। उनके ऐसे चरित्र और स्वभाव की सभी लोगों पर छाप थी और सिख भाई उन्हे प्रेम की निगाह से देखते थे।

ऐसे तरुण देवता को मुसलमानी हाकिमों की क्रूर आँखें भला कब बर्दाश्त कर सकती थीं। ज्योंही सूबेदार के पास उनकी शिकायत पहुँची कि तारूसिह पंथ की मदद करता है। त्योंही और तुरन्त ही बिना किसी हिचकिचाहट के हुक्म हुआ तारूसिंह को पकड़ लाओ और हमारे सामने पेश करो।

सूबेदार ने कुछ आदमियों का एक जत्था भाई तारूसिंह जी को गिरफ्तार करने के लिये रवाना कर दिया। जब यह लोग भाई तारूसिंह जी के घर पर पहुँचे तो तारूसिंह जी ने बड़ी शांति के साथ अपने को गिरफ्तार करा दिया।

रास्ते मे वे जब जा रहे थे तो कुछ सिख आ गये क्योकि वह इस बात को बर्दाश्त नहीं करना

चाहते थे कि उनके आगे तारूसिंह जैसे पवित्र आदमी को कोई गिरफ्तार करके ले जाय। भाई तारूसिंह जी उनका अभिप्राय समझ गये और उन्होंने उनसे कहा, आप ऐसा काम मुझे बचाने के लिये करना चाहते हैं। किन्तु आपने यह खयाल नहीं किया कि फिर मुझे कब अपने धर्म पर बलिदान होने का मौका मिलेगा।

दूसरे दिन शाम को लाहौर पहुंचे। रात भर हवालात मे रखने के बाद सूबेदार के सामने भाई जी को पेश किया गया, उन पर सूबेदार ने चार्ज लगाया। "तुम भागे हुए सिखों की मदद करते हो, खाना खिलाकर रुपये पैसे देकर अपने घर ठहरा कर। तुम्हारा यह कार्य बादशाह के दुश्मनों को मदद पहुँचाने वाले जुर्म मे शामिल होता है। और इस जुर्म की सजा भी निश्चयत कठोर होती है।" भाई तारूसिंह जी ने उत्तर दिया मैं जिन्हे खाना खिलाता हूँ। या मदद देता हूँ वे खालसा हैं। मैं भी खालसा हूँ। इस तरह वे मेरे भाई है। भाइयों को मदद देने मे मैं अपना कोई अपराध नहीं समझता।

बादशाह के दुश्मन नहीं हैं वे तो उन अन्यायों और अत्याचारों के दुश्मन है। जो शाही आदमियों द्वारा निरपराधों पर किये जाते हैं।

सूबेदार भाई तारूसिंह जी की इस प्रकार की खरी और निर्भयता पूर्वक कही हुई बाता से खुश नहीं हुआ। उसने कहा तारूसिह हमारी निगाह मे यह कृत्य अपराध है। इसलिए मैं तुम्हें चर्खी पर चढ़ाकर हड्डियां तोड़ने की सजा देता हूँ। चुनांचे भाई तारूसिंह जी को तीन दफा चर्खी पर चढ़ाकर उनको तरह-तरह की तकलीफे दीं। परन्तु उनके मुँह से हर बार अकाल-अकाल ही निकलता रहा। तीसरी दफा चर्खी से उतरवा कर नवाब ने कहा कि तुम अपने केशों को कटवाकर इस्लाम स्वीकार करलो। भाई तारूसिंह जी ने कहा केश मेरे प्राणों के साथ जायेगे और अपने धर्म को किसी भी जब्र और भय से नहीं त्याग सकता हूँ।

सूबेदार इस बात को सुनकर आग बबूला हो गया और उसने कहा अच्छा मैं देखता हूँ। तुम्हारे केश प्राणों के साथ कैसे जाते हैं। यह कहते हुए उसने जल्लादों को हुक्म दिया कि लोहे की रांपी से इसकी खोपड़ी छील दो और इसके बाल उतार लो।

भाई तारूसिंह जी को जल्लादों ने पकड़ लिया और रापी से उनके सर को छील दिया। इस प्रकार दी हुई तकलीफों से शारीरिक तौर पर मुर्दा प्राय. हो गये थे। इस पर उनको उठाकर फेक दिया गया। जहा से वे एक धर्मशाला मे ले जाए गए और पहली श्रावण संवत १८०२ विक्रमी १ जौलाई सन् १७४५ को अपने धर्म पर जान कुर्बान कर गए। भाई तारूसिंह जी के पाच सात घंटे बाद ही नवाब जकरियाखान भी मर गया। इसके बाद उसका पुत्र याहियाखान हाकिम हुआ।

धर्म के लिए कुर्बानी का सिलसिला सिखों मे भाई तारूसिह जी पर ही समाप्त नहीं हो जाता। भला जिनकी शहीदी के कारण शहीदगंज बन गया हो। उस गंज मे तो अनेकों भाईयो के सिरो के ढेर होगे।

भाई सुबेगसिंह और शाहबाजसिंह

भाई सुबेगसिह और शाहबाजसिह जी भी उन शहीदों मे अपना नाम अमर कर गए हैं। इतिहासकारों ने लिखा है कि भाई सुबेगसिह जी लाहौर जिले के जम्बर गाव के जाट घराने मे पैदा हुए थे। सिखधर्म उनके दादा ने ग्रहण किया था। आपका घराना ऐसा था, जिसमे पढ़ने लिखने का शौक था। इससे कई पीढ़ियों से आपके यहाँ राज की नौकरी का भी रिवाज सा ही पड़ गया था। आप भी लाहौर के सूबे में मुलाजिम थे। शिक्षा आपने फारसी मे पाई थी किन्तु धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के लिए आपने गुरुमुखी

भी सीख ली थी। अपने धर्म के आप कट्टर थे किन्तु दूसरे धर्मों के प्रति भी आपके सहनशीलता के भाव थे। अपनी ड्यूटी पूरी करने में आप कुशल थे।

भाई सुबेगसिंह जी के एक पुत्र था उसका नाम था शाहवाजसिंह। शाहवाजसिंह ने भी अरबी फारसी की ऊँची शिक्षा प्राप्त की थी। गुरुमुखी के अलावा इन भाषाओं का पढ़ना उसकी महत्वाकाक्षाओं का प्रतीक है। वह भी अपनी योग्यता से अपने वाप का जैसा ओहदा प्राप्त करना चाहता था। किन्तु "करता के मन कछु और है और मेरे मन कछु और" की कहावत उनके ऊपर आयद हो गई।

दुर्भाग्य से एक दिन शाहवाजसिंह की एक मौलवी से धार्मिक चर्चा चल पड़ी। जिसमें शावाहज-सिंह ने कहा—"ईश्वरीय आज्ञाओं और नियमों के अधिक नजदीक सिख धर्म है। यह ऐसा धर्म है जिसका पालन सर्व साधारण कर सकता है।' मौलवी को यह वात चाट गई और उसने काजियों को साथ ले जाकर नवाव से शाहवाजसिंह को इस गुस्ताखी की शिकायत की। वैसे काजी लोग तो इस नये नवाव के अभिषिक्त होने के समय से शाहवाजसिंह और उनके पिता सुवेगसिंह के खिलाफ कान भरा करते थे।

नवाव ने दोनो वाप वेटों को गिरफ्तार करने का हुक्म दे दिया। जिस समय दोनों पिता पुत्र वन्दी की हालत मे दरवार में लाये गये तो काजी ने सूवेदार की ओर से कहा—"भाई सुवेगसिंह जी तुम्हारे पुत्र ने इस्लाम की तौहीन की है। तुम्हारी हरकतों को भी हम लोग वरावर देखते रहते है कि तुम सिखो को छिपे-छिपे मदद देते हो। इस्लाम की तौहीन का प्रायश्चित इसी प्रकार हो सकता है कि तुम दोनो वाप वेटे इस्लाम को कवूल करलो। वरना शरह के हुक्म के अनुसार तुम्हे चर्खी पर चढ़ाकर अजाव से मार दिया जावेगा।

इसके उत्तर में भाई सुवेगसिंह ने कहा कि हम किसी भी हालत मे धर्म छोड़ने के लिए तैयार नहीं और यदि ईश्वरेच्छा यही है कि हमारा तुच्छ शरीर धर्म पर कुर्वान होना है तो इससे अधिक क्या सौभाग्य होगा। मृत्यु को तो एक दिन आना ही है तो आज क्या और दस दिन पीछे क्या ? अत. आप जो भी चाहे करलें। हमे सव कुछ परवाण है।

चुनाचे वाप वेटे को अलहदा-अलहदा, चर्खियो पर चढ़ाकर अजाव देने शुरू किए परन्तु यह सव कुछ उन्होंने अपने ऊपर सहन किया। अंत में वाप वेटे ने चर्खी पर समस्त तकलीफे झेलने के वाद अपने आपको कुर्वान कर दिया।

इस जागृति को दवाने मे कोई कसर की जा रही हो, ऐसी वात नहीं है। चारों ओर फौजी दस्ते गस्त लगाते थे और गावों मे मुखविर नियुक्त कर रक्खे थे। फौजियों से अधिक मुखविर थे। क्योंकि

महतावसिंह जी की शहीदी

जिन भाई महतावसिंह जी को फौजी दस्ते ढूंढ़ते ढूंढ़ते हैरान हो रहे थे। उन्हे जडियाले के एक खत्री मुखविर ने ही पकड़ा दिया। भाई महतावसिंह जी की वहादुरी का थोड़ा सा हाल हम पिछले पृष्ठों मे लिख आये है। अमृतसर के हरि मन्दिर मे जाकर मस्से का सिर इन्होंने ही काटा था। पठानी सैनिकों के कई जत्थे आपकी तलास मे फिरते थे। आपकी गिरफ्तारी के लिये मोटे इनाम का एलान हो चुका था। अंत में जडियाले मे आप पकड़े गये और गिरफ्तार करके लाहौर लाये गये। नवाव इनकी सूरत को देखते ही जल गया और उसने इनके वध का तुरन्त ही हुक्म दे दिया।

उसी चर्खी पर चढ़ाकर आपको जिवह कर दिया गया।

इन सिख शहीदों के लिये किसी ने सच ही कहा है—

"डरदे सी न तेग तीर तों न बरछीं हो सूरे।
करदे उहो जो मुहों कहिंदे जती मत सन पूरे।
मारन बढन टुकन शत्रु करदे चूरा चूरे।
लुटन पुटन तुरों का ताईं हिम्मत कर कर मूरे।
सहिंदे कष्ट घरम दे कारन बली होन बलकारी।
होन शहीद उह नाल हौसले करदे जुध तिआरी।
जिडदे कथा दे विच पैवन हुठीएं ढिडी सुभारी।
उनां जही न कोकी हिम्मत दग रहित नरनारी।
पलविच धरनी सूही करदें नाल लहू दे प्यारे।
इक इक सिख सौ शत्रु ताईं पल विच जाने मारे।
जितकर जुध पलक विच मारन सति अकाली नारे।
आज मर मर ताइव। सीते लखा जग उपकारे।

इन दिनों लाहौर का सूबेदार याहियाखाँ था। लखपतराय के उभाड़ने से वह सिखों का जानी दुश्मन बना हुआ था। इसके समय में कई हजार सिख लाहौर में लाकर कत्ल किये गये। तारीख'मखजन' के लेखक ने एक घटना का इस प्रकार वर्णन किया है :—

"संवत १८०३ मे दीवान लखपतराय फौज लेकर सिखों के सिर पर पहुँच गया, किन्तु वे भागकर जम्मू की ओर निकल गये थे। वहाँ भी उनका पीछा किया गया। इस लड़ाई में से वह दो हजार सिखों को कैद करके लाया और उन सबको नखास चौक मे कत्ल करा दिया।"

हमें अफसोस होता है कि दीवान लखपतराय जैसे हिन्दू भी सिखों के इस प्रकार के दुश्मन बने हुए थे। उसे सोचना तो यों चाहिये था कि खत्री कुल में पैदा होने के कारण मुझे गुरुओं के पंथ की मदद करनी चाहिए किन्तु जितने भी चाकर पन्थी खत्री अरोडे और ब्राह्मणादि थे, उन्होंने कभी भी इन भारत सपूतों की ओर सहानुभूति के साथ नहीं देखा।

नवम्बर सन् १७४६ को जकरियाखान का दूसरा बेटा मिर्जा हयातउल्ला (फिलौरीखान) जिसने नादिरशाह की ओर से शाहनवाजखा का खिताब हासिल किया था। अपने भाई याहियाखान से अपने पिता की जायदाद का हिस्सा मांगने के लिये लाहौर आ पहुँचा। बातचीत मे ही झगडा बढ गया और लड़ाई तक की नौबत पहुँच गई, किन्तु याहियाखां ही लाहौर का हाकिम रहा। शाहनवाज के जमाने मे ही अहमदशाह अब्दाली हिन्दुस्थान पर आक्रमण करने के लिये आ पहुँचा। शाहनवाजखां के भाग निकलने पर अहमदशाह ने लाहौर पर कब्जा कर लिया और देहली की ओर बढ़ा। लुधियाने जिले में सं० १८०३ में माणपुर के स्थान पर मुहम्मदशाह बादशाह के बेटे अहमदशाह मिर्जा से दुर्रानी की मुठभेड़ हो पड़ी परन्तु उसे परास्त होकर वापिस अपने देश को लौट जाना पड़ा। इस समम मिर्जा अहमद ने वजीर कमरुद्दीन के बेटे मुईनउल्मुक को जो मीरमन्नू के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है लाहौर का हाकिम बना दिया।

सिखों के ऊपर होने वाले जुल्मों मे मीरमन्नू के जुल्म एक खास स्थान रखते हैं। उसने उनके सिरों को इकट्ठा करने के लिये ही खास तौर से एक जगह मुकर्रिर करदी और हुक्म जारी कर दिये कि उनके जितने भी सिर लाये जासके। लाए जॉय। सैय्यद मुहम्मद लतीफ ने अपनी लिखी "तारीख पंजाब"

मे इसके जुल्मों की कहानी इस प्रकार लिखी है —

"मीरमन्नू ने सिखों की गोशमाली और सरकोवी के लिये हिम्मत से कमर वांधी। हजारो सिखो को कत्ल किया। अपना रौव व हैवत सिखो के सिर पर ऐसी विठाई कि वे उसके नाम से घवराने लगे। मीरमन्नू ने हुक्म दिया कि जो सिख मिले उसके सिर और दाढ़ी के वाल मुंड़वा दो। इससे सिख घवरा कर पहाड़ों मे जा छिपे। मीरमन्नू ने यहां भी उनका पीछा नहीं छोडा। सैकडों सिखों को पहाडो मे से जजीरों मे वधवा कर मगा लिया और नखास खान मे उनकी गर्दने उतरवा दीं।"

तहकीकात चिस्ती के लेखक मौलवी नूरमुहम्मद ने मीरमन्नू के अत्याचारो को इस प्रकार लेखवद्ध किया है —

"नवाव मीरमन्नू की साहिवी मे सिखों की मुसीवत वहुत वढ़ गई थी। इस शख्स ने हजारो सिखो को कत्ल कराया था। हुक्म था कि मुलाजिम सरकारी को जहा भी कोई सिख मिले उसका सिर उतार ले। चुनाचे जिस कदर, सिख आते थे, तुरन्त कत्ल किये जाते थे।"

इसी लेखक ने अपनी पुस्तक मे एक दूसरा जगह लिखा है। "शहीद गज की समाधि के वनने का कारण यह है कि मीरमन्नू के समय मे जोकि सिखो का कातिल था। एक ईद पर ग्यारह सौ सिखो को कत्ल किया गया और सवके सव एक ही जगह इस मुकाम पर दफना दिये गये।"

हम समझते है कि सिखो की शहीदी की गाथा वहुत वडी है और वड़ी ही करुणाजनक भी है। किन्तु आश्चर्य यह है कि एक की शहीदी के वाद दूसरा घवराता नहीं किन्तु, उत्साहित होता है। यह वात पुरुषो ने ही की हो सो वात नहीं किन्तु सिखों की वहिन और गृहणिया भी जव परीक्षा का समय आया, पीछे नहीं रहीं। सरदार करतारसिंह जी ज्ञानी ने 'जौहर-खालसा' मे जो लिखा है, उसका सार यह है —

सिख वहनों की शहीदी

"मीरमन्नू के समय मे जव सिखो पर जुल्म हो रहे थे तो वे घरो को छोडकर जंगलों मे निकल जाते थे। मीरमन्नू ने चिढ़कर यूसफखा की कमान मे सिख स्त्रियो और वच्चो को पकड़ लाने के लिये फौज भेजी। उसने लगभग २०० स्त्री और वच्चो को गिरफ्तार करके लाहौर पहुँचा दिया। कड़ाके की गर्मी के दिन थे फिर भी उन वेचारियों को मय वाल वच्चों के वजार नखास की काल कोठरी मे वन्द कर दिया और सवा सवा मन उन्हे पीसने को दिया गया। खाने के लिये आधी रोटी और पीने के लिये भरपेट पानी भी नहीं। दो ही दिन मे सुकुमार वच्चे कुम्हला गये, वे भूख प्यास से तडपने लगे। उन्हे मीरमन्नू की ओर से मुसलमानी धर्म स्वीकार करने के लिये कहा गया किन्तु सभी सिंहनियो ने फटकार कर कह दिया कि हम भी उन्हीं धर्मवीरों की वहिन वेटी तो है जो हजारो की तादाद मे विना'सी सिकारा' किये धर्म पर कुर्वान हो गये है। इस पर जल्लादों ने उनकी गोदों से छोटे २ वच्चो को लेकर उन्हीं के आगे टुकडे २ कर दिया। और फिर पूछा क्या अव भी तुम मुसलमान नहीं वनोगी। इसपर भी उन्होंने गर्जकर कहा कि अरे दुष्टो यह तो इतने सौभाग्य शाली निकले कि इतनी छोटी उम्र मे ही इन्हे धर्म पर कुर्वान होने का मौका मिल गया। दूसरे दिन फिर जल्लाद आये और उन्होंने उन सिंहिनियो के वच्चों की आते इकट्ठी करके माला की तरह उन वेचारियों के गले मे डाल दी किन्तु वे किसी भी कष्ट से डरकर धर्म छोड़ने पर राजी नहीं हुई।

इन्हीं दिनों मे मन्नू को किसी ने खवर दी कि सिखों का एक दल मलापुर के ईख के खेतों में छिपा हुआ है। इस खवर को सुनते ही मीर अपना एक दल लेकर मलापुर पहुँच गया और उस खेत

सन्त-समागम

तपस्वी बाबा श्रीचन्द और विनय मूर्ति गुरु हरिगोबिन्द जी

शहीद वीर

बाबा दीपसिंह जी

को चारों ओर से घेर लिया। जिसमे सिखों का एक समूह वैठा था। प्राणों पर वनती देख कर उन्होंने भी अपनी वन्दूके संभाल लीं। दोनों ओर से गोलिया चलने लगीं दैवात मन्नू का घोड़ा विदक गया और दो पैरों से सीधा खड़ा हो गया। मन्नू घोड़े को पीठ पर से खिसक पड़ा किन्तु उसका एक पांव रकाव मे उलझ गया। घोड़ा लाहौर की ओर भाग खड़ा हुआ। मीरमन्नू घिसटता हुआ मर गया। उसके साथी भी भाग खड़े हुये। उधर शहर मे जाकर सेना ने मीरमन्नू की लाश कब्जे मे करली। वह चाहती थी कि जव तक हमारा कई महीनों का वेतन न चुका दिया जायगा। हम मन्नू की लाश को दफनाने न देंगे। सिख जिन्हे कि इस गड़वड़ में मौका मिल गया नखास वाजार पहुँच कर कालकोठरी से समस्त सिंहिनियों को छुड़ा लाये।

एक लेखक ने उन तकलीफों की तालिका दी है। जो शहीदों को दी जाती थीं। वास्तव मे वह तालिका ही रोमाच पैदा-कर देने वाली है। धन्य और हजार वार धन्य उन वीरों को है जिन्होंने इन तकलीफों को वर्दास्त किया किन्तु अपने धर्म को नहीं छोड़ा।

(१) चरखी पर चढ़ा कर हड्डियों को तोड़ना मरोड़ना।
(२) सूली जिसमें मलद्वार से लेकर सिर तक लंवी कील पार करदी जाती है।
(३) सगमार—पेड़ से वांध कर ईंटों से सर फोड़ना व हाथ पाव तोड़ना।
(४) तसमेकसी—चमड़े मे वांध कर रस्सी कस्सी की तरह इधर उधर से खींचकर हड्डी पसलियों को तोड़ देना।
(५) जम्वूरा से (चिमटा) के मास नोंचनी।
(६) मोंगरी से मूंज की तरह कूटना।
(७) जमीन मे गाड़ कर चांदमारी करना।
(८) खोपड़ी उतारना। (९) वन्ध खोलना।

अहमदशाह दुर्रानी के एक हमले के समय वालूहीजहान खां अमृतसर मे सिखों के धर्म मन्दिर का अपमान करने की इच्छा से आ पहुचा! जव इधर के यह समाचार मालवे और मांझे मे पहुचे तो शिष्यों को वड़ा क्रोध आया। तलवंडी (दमदमा) मे वावा दीपसिंह जी नामक एक प्रसिद्ध सिख थे। उनकी छोटी सी गढ़ी मे हर समय सैकड़ों सिंह इकट्ठे रहते थे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं अपना यह सिर दरवार साहव के ही भेट करता हूँ—भाई हीरासिंह, नत्थासिंह और गुरुवख्ससिंह जी आदि अनेको सिख उनके साथ हो लिये।

अमृतसर से वाहर तुरक फौजों से उनका मुकाविला हुआ। वड़ा घमासान युद्ध हुआ। सिखों ने इस जोर से तलवार चलाई कि जहानखां की सेना घवराहट मे पड़ गई। वड़े जोरों के साथ पठानों ने हल्ला वोला—जिसमें वावा दीपसिंह जी का सिर एक पठान की तलवार से कट गया। पास मे खड़े हुए एक सिख ने कहा, वावा आप तो यह प्रतिज्ञा करके आए थे कि यह सिर श्री दरवार साहव के चरणों मे ही समर्पण करना है। इस वात को सुनते ही वावा दीपसिंह जी ने सिर को उठाकर हथेली पर रख लिया और एक हाथ से तलवार चलाते हुए आगे वढ़े। जहानखां यह कौतुक देख रहा था। उसको भी वावा को रोकना मुश्किल हो गया और हरि मन्दिर मे पहुँच कर अपना शीस भेट कर दिया।

जहाँ इन धर्मवीरों के सिर रक्खे गये थे वह स्थान भी शहीदगंज कहलाता है। और हरिमन्दिर के साथ गुरु के वाग मे है।

चौदहवाँ अध्याय

मिसल राज्यों की स्थापना

गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने खालसा संघ की स्थापना से वास्तव मे एक पंचायती राज्य की नींव डाल दी थी। सिखों का राज्य तो भारत मे कायम हुआ। किन्तु वह पचायती राज्य कायम नहीं हुआ। व्यक्तियों का हुआ। और यही कारण है कि रणजीतसिंह जी का जैसा विशाल राज्य भी व्यक्ति राज्य होने के कारण उनके मरने के बाद सहज ही नष्ट हो गया।

फिर भी गुरुजी ने जो मार्ग प्रशस्त किया था, उस पर चलकर सिखों ने एक दिन प्रभुता स्थापित कर ही ली। इस प्रभुता की नींव मे कष्टों और कठिनाइयों की बड़ी दर्द भरी कहानी है। बीसियों हजारों सिखों की कुर्बानी हो चुकने पर यह प्रभुता हासिल हुई थी। उन्हीं हजारों बलिदानों में से कुछ एक का वर्णन हमने पिछले अध्याय मे किया है। जो बहुत ही संक्षिप्त और सादी भाषा मे है। वरना उन बलिदानों की कहानी तो बहुत बड़ी और हृदय हिला देने वाली है।

मुसलमान शासकों के अत्याचारों ने जहाँ उन्हे बर्बाद किया, वहां उनमे शक्ति और आत्मबल पैदा करने का माद्दा भी दिया। अत्याचारों ने ही उनके संगठन को मजबूत किया। इन संगठनों का नतीजा ही सिखों की बारह मिसल हैं।

उन भयानक दिनों मे सौ-सौ, दो-दो सौ की टोलियों में जो वीर सिख जंगलों और पहाड़ियों मे अपने बुरे दिनों का सामना करने के लिये फिरा करते थे। वे जत्थे कहलाते थे और जिस शख्श के अनुशासन मे जत्था रहता था। वह जत्थेदार कहलाता था।

खान बहादुर जकरियाखान के समय मे जबकि सिख शहरों और गांवों को छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में निकले हुये थे। प्राय कभी लक्खी जंगलों मे, कभी शिवालक आदि पहाड़ियों में दिन काटते थे। उस समय एक बड़ी सख्या का एक ही स्थान पर रह सकना और उन सबके लिये जीविका का प्रबन्ध करना दुश्वार हो रहा था। इसलिये नवाब कपूरसिंह जी के विचारानुसार खालसा ने अपने आपको दो दलों मे बाट लिया। कुछ पुराने और वृद्धसिंह तो नवाब कपूरसिंह जी के साथ रहे। वह 'बुड्ढा दल' के नाम से प्रसिद्ध हुये। दूसरे नवयुवक जो बड़ी तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक चल निकलते थे। उनके दल का नाम 'तरुण दल' पड़ गया। कुछ समय बाद इन दलों की वृद्धि के कारण इनके और भी विभाग होगये और आरंभ में पांच जत्थे बन गये।

मीरमन्नू की मृत्यु के वाद सिख फिर वाहर से आ-आकर (पजाव मे) अपने-अपने गॉवों मे आ बसे। किन्तु उन्होंने अपने शत्रुओं को शोधन करने के लिये फिर तैयारी की और जत्थेदारों ने अपने २ गॉवों के निकट अपना अपना इलाका वनाना शुरु कर दिया। इस समय जो सरदार ज्यादा रसूख रखने वाले थे, उन्होंने अपने साथियों को मिलाकर अपने २ जत्थे मजवूत कर लिये और यह जत्थे बाद में मिसलों के नाम से प्रसिद्ध हुये।

मिसल शब्द जैसे प्रयोग मे आया वह इस तरह है कि जब खालसा जत्थेदार दीवाली और वैसाखी के समय पर एकत्रित होते तो सब दलों के जत्थेदार सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया के पास आकर अपने किये हुये कब्जे के इलाकों का पता देते। वह अलहदा-अलहदा सरदारों के पतरे अर्थात मिसले वनाकर उन पर उनके कब्जे मे आये हुये इलाकों के नाम दर्ज करते जाते, ताकि वाद में कोई झझट न हो। परन्तु कई वार ऐसा भी हो जाता कि किसी गॉव को पहले एक अपनी मिसल मे लिखवा गया है, उसी गॉव को वाद मे दूसरे सरदार ने अपने इलाके मे शामिल किया हुआ वताया है, उस समय सरदार जस्सासिह अहलूवालिये जो कि अपनी आयु के लगभग १२ वर्ष अपनी मॉ के साथ देहली मे माता सुन्दरी की सेवा मे रहने के कारण प्राय उर्दू भाषा वोलते थे—कह देते यह गॉव तो पहले अमुक सरदार की मिसल में दर्ज हो चुके है। इस तरह यह शब्द आरम्भ मे सरदारों के जत्थों के लिये प्रयोग मे आना आरम्भ हो गया और वाद मे जत्थों और इलाकों दोनों के लिये वर्ता जाने लगा।

सिखों में भगी मिसल एक प्रसिद्ध मिसल हुई है। चूकि इसके सरदार भंग का प्रयोग अधिक करते थे। इसलिये यह मिसल भगी मिसल के नाम से पुकारी जाती थी। वैसे यह जाट सिखों की मिसल थी किन्तु इससे यह भी न समझना चाहिए कि और दूसरे लोग इसमे शामिल न थे। चौधरी छज्जासिंह[1] और भीमासिंह ने इस मिसल को खडा किया। चौधरी भीमासिहजी के वाद उसका पुत्र हरीसिंह इस मिसल का मालिक वना। जो होना गाव जोकि मालवे परगना वधनी मे है का रहने वाला था किन्तु मुसलमानी अत्याचारों का मुकाविला करने के लायक उस स्थान को न समझ कर झग के जिले मे नत्थू गाव मे आ वसा था।

भगी मिसल

सिख धर्म की दीक्षा तो चौधरी भीमासिंह जी ही गुरु गोविन्दसिह जी से ले चुके थे। अत आप जन्म से ही सिख थे और अमृत आपने वावा दीपसिह के हाथ से चखा था।

सरदार हरीसिंह जी खुद जमामर्द और वहादुर आदमी थे इससे उनकी मिसल वहादुरी और दया के लिहाज से सब मिसलों मे अग्रणी समझी जाती थी। सख्या भी इस मिसल की पन्द्रह हजार थी।

आरम्भ मे यह जत्थे अथवा मिसले केवल आत्म-रक्षा का काम करती थीं। जहां भी कहीं अपने भाइयों पर अत्याचार होता वहीं ये जत्थे पहुँच कर उनकी मदद करते। किन्तु चूंकि वे शहर और गॉवों से निकाले जाने के कारण कष्ट की जिन्दगी व्यतीत कर रहे थे। जहॉ कि खाने-पीने का गुजारा मुश्किल

१ अनेक इतिसहाकारो ने इस मिसल का सस्थापक अमृतसर के पास के पजवार गांव के चौधरी छज्जासिंह (जाट) को बताया है और लिखा है कि भोमासिह या भीमासिह भगई को जो कि उसका रिस्तेदार था, अपना उत्तराधिकारी बनाया। भीमसिह को कसूर का रहने वाला बताया गया है। साथ ही यह भी लिखा है कि उसने नि सतान होने के कारण अपने भाई भूपसिह जो कि बधनी के परगने में पटोह नामक गांव में रहता था के लडके हरीसिह को 'गोद ले लिया था।

था। अत. वे मुगल शासको पर छापा मारते थे। ज्यों-ज्यों इनकी शक्ति बढ़ने लगी और मुसलमान हुकूमत की ताकत घटने लगी, इनकी भावनाये भी प्रवल हुई और छोटे-मोटे नये वने मुसलमान हाकिमों को मार भगा कर उनके अधीनस्थ प्रदेशों को अपने कब्जे मे करना शुरू कर दिया। यही उपक्रम राज्य कायम करने मे भी आगे के दिनों में काम आया।

तंग आये हुए लोग इन जत्थेदारों के पास आकर शिकायते करते और यह भी अर्ज करते कि हमारे इलाके की स्थायी तौर से रक्षा करने की आपका दल गारंटी ले ले। हम उस रकम को जो लगान और मालगुजारी के नाम पर मुसलमान हाकिमों का देते हैं आप ही को देने लगेंगे। सरदार हरीसिंह ने ऐसे मौकों से खूब लाभ उठाया। जहाँ भी और जब भी कोई आप से सहायता चाहता, आप तुरंत सहायता देते और अपना राज्य कायम करने के लिये भी कोशिश करते।

सरदार हरीसिंह के साथियों मे जस्सासिंह, मींहासिंह, नत्थासिंह, जगतसिंह, गुलाबसिंह, गुरु वख्शसिंह[1] अघड़सिंह, शामलसिंह, ठाकुरसिंह, गूजरसिंह और लहनासिंह आदि अनेक प्रसिद्ध लड़ाके वीर थे। इन लोगों के साथ हरीसिंह ने सारे पूर्वी पंजाव और राजपूताने के एक भाग को रौंद डाला था। शाही सैनिकों का मुकाविला करने मे यह लोग सव से आगे रहते थे।

जव खालसा (संघ) ने सारे पंजाव को वारह मिसलों मे वॉट दिया तो सरदार हरीसिंह जी ने गुजरात, चानोर, झग, अमृतसर और लाहौर के नजदीकी इलाके पर कब्जा कर लिया और अमृतसर को अपनी राजधानी वनाया।

सरदार हरीसिंह जहाँ उत्कट योद्धा था। वहा उदात्त अक्लमंद भी था। संवत १८०३ मे इसने अमृतसर मे अपने नाम पर एक कटड़ा भी आवाद किया था। जत्थे में आदमी भी प्राय. जवान और सूरत शक्ल के अच्छे और स्फूर्तिवान रखता था। उन जवानों के वल पर सौ-सौ मील के धावे मारने की हिम्मत वह रखता था। घोड़े भी जहां तक रखता, छटे हुए ही संग्रह करता था। लाहौर के हाकिमों के दिलों मे यह सदा खटका। क्योंकि उनके अच्छे २ योद्धाओं के इसने छक्के छुड़ाये थे। अब्दुलसमदखां जैसे चुस्त चालाक सूवेदार से भी इस वीर ने मैगजीन छीन ली थी। जिस अब्दुलसमदखां ने महावीर बन्दासिंह जी जैसे योद्धा का अपनी कूटनीति से गिरफ्तार कर लिया था। वही समदखा और उसका वेटा जकरियाखा हरीसिंह का कुछ भी न विगाड़ सके।

मुल्तान मे भी लाहौर की भांति एक सूवा रहता था। सरदार हरीसिह ने मुल्तान पर चढ़ाई करके उसे अपने राज्य मे मिला लिया। स्यालकोट वटियाला, मैंसेवाल और झग आदि के मालिये से इसकी आमदनी काफी वढ़गई थी।

सरदार हीरासिंह जी ने कसूर को विजय कर लिया। यह पहला ही मौका था। जव एक वडे अर्से के वाद कसूर फतह हुआ और सिखों की आधीनता मे आया।

१ गुरुवख्शसिंह ने लहनासिंह को गोद ले लिया। लहनासिंह का पितामह, सडावला का गरीव जाट था। इसलिये उसका लड़का दरगाहसिंह करतारपुर के पास मातीपुर में एक वढ़ई के पास रहा। यहीं लहनासिंह का जन्म हुआ। सयाना होने पर लहनासिंह अटारी के पास रोरानवाला गाव में गुरुवख्शसिंह के पास पहुँचा। गुरु वख्शसिंह के धेवते का नाम गूजरसिंह था। आगे चल कर गूजरसिंह और लहनासिंह ने भी एक अलग जत्था बना लिया। संवत १७६५ वि० में इन्होने लाहौर पर भी कब्जा कर लिया था।

कहा जाता है शोध और लूट करने के लिये इन्होंने दिल्ल हारनपुर,च न्दौसी, खुरजा और उत्तर में डेराजात तक हमला किये थे।

वास्तव मे राज्य कायम करने का श्रीगणेश इसी भंगी मिसल ने किया था और इसके सरदार हरीसिंह ने सदैव बुद्धिमानी से काम लिया। महाराजा जवाहरसिंह जी भरतपुर ने जब अपने पिता का बदला लेने के लिये दिल्ली पर चढ़ाई की थी तो यह पेतीस हजार सिखों का दल लेकर उनकी सहायता को पहुँचा था।

सरदार हरीसिंह जी ने दो विवाह किये थे। पहली सरदारनी पंजवड़ की थीं। जिनसे गंडासिंह और झंडासिंह नाम के दो पुत्र पैदा हुए थे और दूसरी सिंहनी से चरतसिंह, दीवानसिंह और देसूसिंह नामक लड़के पैदा हुये थे। इसमे झंडासिंह जी बड़े योग्य और होनहार थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद यही मिसल के सरदार बने क्योंकि सभी लोग इन्हें चाहते थे।

जिस समय अहमदशाह अब्दाली के हमले के वक्त महाराजा आलासिंह जाकर उसके साथ मिल गये और उस की दी हुई राजगी की पदवी प्रवान करली तो सिख सरदार दल लेकर आलासिंह को एक मुसलमान शत्रु के सामने झुक जाने का दड देने के लिये पहुँचे। इस समय 'लाग चलायले' ग्रामों के नजदीक दोनों फौजों की लड़ाई के आरम्भ मे गोली लग जाने के कारण सरदार हरीसिंह चल बसे। इस लड़ाई को जस्साासिंह अहलूवालिये ने महाराज आलासिंह के क्षमा माग लेने पर बन्द कर दिया।

नवयुवक झंडासिंह जी भी अपने पिता की भाति ही महत्वाकाक्षी था। उसने अपने व्यवहार और बुद्धिमानी से अपने दल के सभी लोगों को मोहित कर लिया था। आक्रमण करने और युद्ध मे जौहर दिखाने मे इसे भी खूब आनन्द आता था। इसी महत्वाकांक्षा के कारण झंडासिंह ने अनेकों बडे २ शहरों पर चढ़ाई की तथा उन्हे लूटा।

मुल्तान पर सरदार हरीसिंह चढ़ाई कर चुके थे और काजी नूरमुहम्मद के जगनामे के अनुसार भंगी सरदार सन् १७६४ मे डेरों के इलाके तक सिंघ को पार करके जा पहुँचे थे।

झंडासिंह ने भी अनेकों चुने हुए सिख योद्धाओ को लेकर मुल्तान पर चढ़ाई की। मुल्तान का सूबेदार डर गया और वह पचास हजार रुपया लेकर सुलह के लिये हाजिर हुआ किन्तु झंडासिंह तो मुल्तान को कतई रूप से अपने राज्य मे मिलाने के इरादे से आया था। दूसरे वहां की प्रजा की भी हाकिम के खिलाफ काफी शिकायते थीं। इसलिये झंडासिंह ने हाकिम को कैद करने का हुक्म दे दिया और मुल्तान के खजाने पर धावा बोल दिया। जब उस हाकिम ने बहुत ज्यादा मिन्नत की तो उसे उत्तर ओर के इलाके मे कुछ हिस्सा देकर रिहा कर दिया और वहां का प्रबंध सरदार जमीअतसिंह और दीवानसिंह के सुपुर्द कर दिया।

कहा जाता है कि अहमदाबाद के नवाब अहमदखा ने भी सरदार झंडासिंह को बीस हजार रुपये भेट दिये थे।

हिंदुओं को जब पता चला कि झंडासिंह भी अपने पिता हरीसिंह की तरह ही पीड़ितों की आवाज सुनता है और दुष्टों के दड देने के लिये हर समय तैयार रहता है तो अनेकों मुसलमान हाकिमों की प्रजा के हिन्दू उसके पास आकर शिकायत करने लगे। डेराजात की ओर भी उसे इसी हेतु जाना पडा और भावलपुर के प्रजाजनों की शिकायत बहुत दिनों से आने के कारण झंडासिंह ने बीस हजार जवानों के साथ भावलपुर पर भी चढ़ाई की। नवाब झंडासिंह का आना सुनकर घबरा गया और उसने सधि का

प्रस्ताव आगे बढ़कर किया। नजराना लेकर उसकी प्रार्थना पर झंडासिंह ने नवाबें से संधि करली।

इन मुहिमों को फतह करके जब झंडासिंह अमृतसर लौटा तो हरिमंदिर पर बहुत सा धन चढ़ाया और दीवाली मेले की शोभा को दुचंद किया।

अहमदशाह के उत्तराधिकारी अमीर तैमूरशाह ने जब सुना कि मुल्तान को सिखों ने अपने राज्य मे मिला लिया है तो उसने मुल्तान पर चढ़ाई कर दी और सहज मे ही उस पर कब्जा भी कर लिया, क्योंकि उस समय यहाँ सिखों की कोई तगड़ी सेना न थी। मुजफ्फरखां को वहां का हाकिम बनाकर तैमूरशाह अफगानिस्तान को लौट गया।

मुल्तान से फिरे हुए सिखों ने जब यह समाचार झंडासिंह को सुनाया तो वह तुरन्त मुल्तान पर चढ़ाई करने को तैयार होगया। मुल्तान फिर जीत लिया और गंडासिंह को जोकि झंडासिंह का छोटा भाई था, यहां का हाकिम मुकर्रिर करके यह विजयी दल रास्ते मे छापा मारता हुआ, वापिस अमृतसर आगया।

लगभग एक साल झंडासिंह चुप रहा और फिर दल को लेकर काश्मीर की ओर प्रस्थान किया। उस समय जम्मू का राजा रंजीत था। उसने इन दोनों सिख सेनाओं का मुकाबिला किया। किन्तु उसे जीत के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये। इसलिये एक लाख रुपया सालाना नजराना देने के वायदे पर संधि कर ली और अपने प्राण बचाये।

हमीदखां की सराय मे जहानखां नामी पठान हाकिम रहता था। जमजमा नाम की एक तोप और इसके अलावा बहुत कुछ शस्त्रास्त्र उसके पास थे। झंडासिंह ने उस पर भी हमला किया और कुल सामान उससे अपने कब्जे में कर लिया।

लगातार के आक्रमण और फतहयाबियों से झंडासिंह के पास काफी धन हो गया था। इसलिये उसने अमृतसर मे एक गढ़ बनाने की नींव डाली। शस्त्र और खजाना अब इसी गढ़ मे जमा होने लगा। अब तक कई लाख रुपये उसके पास जमा हो गये थे।

किले के बनजाने के बाद झंडासिंह ने मय सेना के कसूर पर पुन चढ़ाई की और उसे विजय करके बहुत सा धन हासिल किया और फिर उस इलाके मे जितने भी छोटे मोटे मुसलमान हाकिम थे। सभी को अधीन किया और उन पर टैक्स बांधा।

जम्मू के राजा रणजीतदेव और उसके पुत्र ब्रजराजदेव मे जब झगड़ा हो गया। रणजीतदेव ने झंडासिंह को सहायता के लिये बुलाया और ब्रजराज ने सुकरचकिया मिसल से सहायता ली। खूब डटकर लड़ाई हुई। सुकरचकियों का सरदार चड़तसिंह मारा गया।

अपने जीवन भर युद्ध और आक्रमण मे लगे रहने वाले इस वीर बहादुर झंडासिंह का समय भी एक दिन आ गया। जब कि वह जंगल मे शिकार खेल रहा था किसी दुश्मन ने अचानक उस पर वार करके घायल कर दिया और वही वार उसकी मौत का कारण हुआ। लड़ाई अभी चालू थी, जम्मू राज्य के दोनों बाप बेटे लड़ रहे थे।

भंगियों ने झंडासिंह के बाद उसके भाई गंडासिंह को अपना सरदार चुना और वे फिर उसी उत्साह से अपने कर्त्तव्य में जुट पड़े।

इस लड़ाई में वास्तव में सिखों की शक्ति कम हो रही थी। इसलिये कुछ समझदार सिखों ने दोनों ओर सुलह की कोशिश की। किन्तु गंडासिंह भाई का बदला लेना चाहता था। उसका अनुमान था कि

कन्हैया ने झंडासिंह को मारा है। जस्सासिंह के साथ मिलकर उसने कन्हैया वालों पर चढाई की और उसके इलाके के बहुत से भाग को दोनों ने अपने कब्जे मे कर लिया।

पठानकोट के मैदान मे कन्हैया और भगी दोनों भिड़ गये। लगभग १४ दिन तक लडाई होती रही। इसमे दोनों ओर से सिखों को ही नुकसान हुआ। गडासिंह इस युद्ध मे मारा गया और इस समय से भगी मिसल की शक्ति क्षीण होने लग पड़ी।

इन्हीं दिनों सुकरचकिया मिसल के सरदार महासिह और चड़तसिंह भंगी मे युद्ध होगया। महासिंह ने चड़तसिंह को लडाई मे खतम कर दिया और भगियों के बहुत से इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया।

चड़तसिंह के बाद भगियो की सरदारी देसूसिंह के हाथ मे आई। किन्तु यह उतना योग्य नहीं था जितने योग आदमी की रहनुमाई की इस समय भगी मिसल वालों को आवश्यकता थी। इसके समय मे उस इलाकों मे से बहुत सा भाग निकल गया जो पिछले दिनों प्राप्त किया था।

केवल स्यालकोट और चैन्योट के इलाके रह गये। जिनसे पचास हजार के लगभग बडी मुश्किल से वसूल होता था और खर्च भी करीब २ इतना ही हर साल का था। सरदार महासिंह बराबर भगी मिसल के पीछे पडा हुआ था। हर वर्ष कोई न कोई झगड़ा हो जाता था। आखिर देसूसिंह भी मारा गया।

सरदार कर्मसिह भंगियों मे एक सर्वप्रिय आदमी था। उसे लोग प्यार से दूला सरदार कहते थे। देसूसिंह के बाद भंगियों का भाग्य उसी के हाथ मे आया। इसने अपने नाम से अमृतसर मे एक कटडा बसाया। इसकी बुद्धिमानी और अग्रसोची स्वभाव की प्रशसा सभी सिख करते थे। किन्तु जितना यह बुद्धिमान था। उतना योग्य सैनिक न था और यही कारण था कि यह भी महासिंह सुकरचकिया के युद्ध मे मारा गया। दूला सरदार का लड़का जस्सासिंह इस समय चान्योट मे था। अत पास मे होने के कारण देसूसिंह का लड़का गुलाबसिंह इस मिसल की गद्दी पर बैठ गया। परन्तु यह योग्य आदमी न था इस समय तो एक अद्भुत वीर और बुद्धिमान आदमी की भंगी मिसल को जरूरत थी। वह गुलाबसिंह से पूरी नहीं हो सकी। इसलिये सियालकोट का इलाका भी हाथ से निकल गया और अमृतसर शहर और उसके पास के कस्बों व गावों के सिवा कुछ भी शेष नहीं रहा। जहा जो सरदार मुकर्रिर था। इसकी कमजोरी से लाभ उठाकर वहाँ का वहीं मालिक बन बैठा।

अब महासिंह का लड़का रणजीत सिंह सुकरचकियों का मालिक हो चुका था। यह वह रणजीतसिंह थे। जो आगे पजाब केसरी की उपाधि से प्रसिद्ध हुए।

रणजीतसिह जी ने जब लाहौर पर कब्जा कर लिया तो गुलाबसिंह को यह बात अखरी इसलिये उसने सवत १८५६ विक्रमी मे महाराजा रणजीतसिंह पर चढ़ाई करदी। भसीन के मुकाम पर दोनों ओर से पडाव पड़ गये। गुलाबसिंह सदैव के लिये इस युद्ध मे सो गया। उसकी सेना भाग गई।

गुलाबसिंह ने एक दस वर्ष का लड़का गुरदित्तसिंह नाम का अपना वारिस छोडा था। उसे नाबालिग समझकर उसी के नौकरों ने कोहाती इलाके पर कब्जा कर लिया और कहला भेजा कि यह हमारी तनख्वाहों मे गया समझिये।

अब केवल शहर अमृतसर भंगी मिसल के उतराधिकारी के पास रह गया किन्तु गुरदित्तसिंह की माँ सुखा जरा होशियार थीं। इसलिये उसी की आमदनी से अपना कारबार चलाती रहीं।

महाराजा रणजीतसिंह ने सुखां के पास कहला भेजा कि जमजमा तोप तुम्हारे किस काम की है उसे मुझे दे दो किन्तु सुखां राजी नहीं हुई और लड़ने को तयार हो गई। महाराजा रणजीतसिंह के सामने बेचारी का क्या वश चलता। चार घंटे की लड़ाई के बाद रणजीतसिंह ने अमृतसर के किले पर अधिकार कर लिया और सरदारनी जी अमृतसर से रामगढ़ के किले में जोकि रामगढ़िया के हाथों मे था चली गई।

इस समय रामगढ़िया मिसल का सरदार जोधसिंह था। उसने सुखां और उसके लड़के गुरदित्त-सिंह को अपने यहाँ बड़े सनमान से रक्खा क्योंकि इन दोनों मिसलों में मुद्दत से मेल-मिलाप चला आता था। जब गुरदित्तसिंह सयाना होगया तो जोधसिंह और अन्य कई प्रमुख सिख सरदारों ने महाराजा रण-जीतसिंह जी से सिफारिश करके गुरदित्तसिंह को सहीवाल का इलाका जागीर मे दिला दिया। किन्तु गुरदित्तसिंह का मन जागीर के संभालने मे न लगा। इसलिये उसकी कीमत लेकर अपनी ससुराल मे आगया और वहीं चल बसा। इसके बाद इसके दोनों लड़के अजीतसिंह (अंधा) और मूलसिंह अपने पुराने खेड़े पंजवड़ मे आगये।

अजीतसिंह के दो पुत्र एक ठाकुरसिंह दूसरे हुक्मसिंह हुए। अंग्रेज सरकार का जब जमाना आया तो इन्हे थोड़ी सी माफी जमीन मिल गई। इस तरह यह दो हजार बीघे जमीन से अपना कारोबार चलाते रहे।

सरदार झंडासिंह जी के बनाये हुये इनके पास अति सुन्दर और मजबूत मकान हैं।

इस प्रकार भंगी मिसल का खातमा होगया और उसका प्रभुत्व सुकरचकिया में लीन होगया।

इसमें कोई सन्देह कि नहीं सरदार हीरासिंह और उसका बेटा झंडासिंह जैसे ही बहादुर शूरमे और बुद्धिमान नेता इस मिसल को मिलते रहते तो यह सहज ही सारे पंजाब की मालिक होजाती किन्तु सितारा तो महाराजा रणजीतसिंह का चमकना था।

रामगढ़िया मिसल इस मिस्ल के बानी सरदार नदसिंह मौजा सांगणिया के जाट जमींदार थे। एक समय जबकि सिख सेनायें बाहर जंग-युद्धों के लिये गई हुई थीं तो सरदार नंदसिंह अमृतसर मे रामगढ़ नामी किले की रक्षा लिये के यहाँ छोड़े गये थे। तब से सरदार नंदसिंह रामगढ़ वाले अथवा रामगढ़िया नाम से प्रसिद्ध होगये। नंदसिंह की मृत्यु के बाद सरदार जस्सासिंह जो कि उनके अनुयायी थे। इस मिसल के सरदार हुये। इनके बुजुर्ग बढ़ई या तिरखाना का काम करते थे जिसके कारण कई एक इतिहासकारों ने इन्हे जस्सासिंह तिरखान या ठोकर के नाम से याद किया है। इनके पिता भगवानसिंह गुरदासपुर के जिले में ईचोगिल नामीग्राम में रहा करते थे जिस समय सिख सरदारों ने जत्थे बनाकर मुल्कगीरी आरम्भ की तो यह बहुत हद तक मशहूर हो चुके थे और सरदार नंदसिंह की मिसल मे शामिल होकर उनके कृपापात्र बन चुके थे।

भगवानसिंह के चार लड़के थे। जस्सासिंह, मालीसिंह, खुशहालसिंह और तारासिंह।

जस्सासिंह एक चतुर आदमी था और उसने जालंधर के सूबे के हाकिम अदीनाबेग की नौकरी में काफी इज्जत पैदा करली थो और जब १७४८ ई० के अंत में मीरमन्नू की आज्ञा पर अदीनाबेग ने अमृतसर में नव स्थापित रामरौनी नामी गढ़ी पर हमला किया तो जस्सासिंह अपने सिख साथियों के साथ उसकी सेना में उपस्थित था। रामरौनी का घेरा बहुत दिनों तक पड़ा रहने के कारण जब अन्दर के सिखों ने शहीदियाँ प्राप्त करने का अरदासा सोध कर बाहर निकलने की तैयारी के लिये अन्दर से सत

श्री अकाल के जयकारे लगाये। जस्सासिंह से उसके साथियों ने कहा कि अन्दर तो खालसा अंत समय शहीदियाँ प्राप्त करने के लिए कमर कस्से कर रहा है। अब हम वैरियों के साथ मिलकर अपने भाइयों पर गोलियां नहीं चला सकते। इससे जस्सासिंह का दिल पसीज गया और उसने कहा, मैं कब खालसे से टूटना चाहता हूँ। खालसा टूटी गाँठनेवाला है मैं भी खालसे के साथ ही मिलूँगा। तब जस्सासिंह ने एक तीर के साथ अपना विनय पत्र बांधकर रामरौनी के अन्दर फेंका कि यदि खालसा मुझ पर मेरे गृह मे लडकी मारे जाने के लगे हुये अपराध को क्षमा करदे तो मैं आपकी शरण मे आने को तयार हूँ। खालसा ने उसको क्षमा करके तीर के रास्ते पत्र बाहर भेज दिया। जिस पर वह अदीनाबेग से अलग होकर खालसे से जा मिला। थोडे ही दिनों मे अहमदशाह अब्दाली की दूसरे आक्रमण की खबरें पाकर और मुल्तान में शाहनवाज का कत्ल हो जाने पर दीवान कोडामल की तजवीज के अनुसार रामरौनी का घेरा उठा लिया गया।

अहमदशाह के साथ जितनी भिडन्त सिखों ने की, जस्सासिंह प्राय सभी मे शामिल रहा और भंगी मिसल के सरदारों के साथ मिलकर तो इसने उनकी बहुत सी लडाइयों मे मदद भी की। इसकी कमान मे एक समय लगभग तीस हजार पैदल और सवार सैनिक हो गये थे। जिन्हें लेकर इसने पंजाब के विभिन्न स्थानों पर छापा मारा और बहुत सारा धन इकट्ठा किया।

अहमदशाह दुर्रानी के मरने के बाद इसने बटाला, कलानौर और श्री हरिगोविन्दपुर के बीच के कुल इलाके पर कब्जा कर लिया। इस इलाके से सात लाख प्रति वर्ष की आमदनी इसको होती थी।

सरहिन्द की मुस्लिम शक्ति के बर्बाद हो जाने पर सरदार जस्सासिंह ने द्वाबे मे जालंधर के आगे पीछे उस कुल इलाके पर अपना कब्जा कर लिया जिसकी कि आमदनी दस लाख होती बताई जाती है।

इस समय तक जस्सासिंह के अधिकार मे बहुत परगने आ चुके थे। पहाड़ी इलाकों को फतह करते समय इसे दो लाख रुपया लूट मे भी मिल गया था।

रावी के किनारे जस्सासिंह ने हलवारा नामक गाँव मे एक छोटा सा किला बनवाया और अपने भाई मालीसिंह को उधर का हाकिम बनाकर वहाँ छोड दिया। इसी तरह दूसरे स्थानों पर जागीर देकर अपने शेष दो छोटे भाइयों को भी बिठा दिया।

थोडे ही दिनों मे जस्सासिंह ने अपनी राम गढिया मिसल को खूब तरक्की दी।

चूकि आप रामरौनी के युद्ध के बाद फिर अदीनाबेग से जा मिले थे और १८४७ मे उन्होंने आनन्दपुर मे सिखों के एक धार्मिक मेले के होला महल्ला के समय अदीनाबेग की फौज के साथ हल्ला कर दिया था और जिससे समस्त सिखों को बहुत दुख प्रतीत हुआ। इसके कुछ देर बाद उसके भाइयों ने जस्सासिंह अहलूवालिये को गिरफ्तार कर लिया था। जब कि वह अचल के मेले की तरफ जा रहे थे। इन बातों ने कन्हैया, सुकरचकिया और अहलूवालिया मिसलदारों के दिल मे उसके विरुद्ध एक प्रकार का गुस्सा सा पैदा कर दिया था। जिसके कारण आपस मे एक दो बार लडाई तक नौबत पहुँच गई। और जस्सासिंह को अपने इलाके से निकल जाने पर मजबूर होना पडा और आप मालवा के इलाके मे महाराजा अमरसिंह पटियाला वाले के देश मे जा रहे। यहाँ आपने कई एक समय पर पटियाला की सहायता की और अपनी विजय से अपने लिये थोडा सा इलाका भी प्राप्त कर लिया था। इससे अतिरिक्त आप सरदार बघेलसिंह और दूसरे सरदारों से मिलकर नवाब अवध के इलाके तक हमलों मे शामिल होते रहे।

जब सरदार महासिंह की जयसिंह कन्हैया से कुछ अनबन हो गई तो उसने जस्सासिंह रामगढ़िया को वापिस पंजाब मे बुला लिया और एक लड़ाई के बाद उसका इलाका उसे वापिस दिला दिया।

आपने बड़ी आयु पाई और महाराजा रणजीतसिंह जी के जमाने तक जिन्दा रहे। आपके बाद आपका लड़का जोधसिंह मिसल का सरदार बना।

जोधसिंह भी अपने बाप की तरह ही बुद्धिमान और शूरमा था। इसने राजा संसारचन्द से मित्रता निबाहने मे कोई कसर नहीं रक्खी। यह भी किसी से नहीं डरता था। इसलिए ऐसे कुल मनुष्यों को जगह देता था। जिन्हे कहीं से खतरनाक बताकर निकाल दिया जाता था।

मोहरसिंह, हजारासिंह और ठाकुरसिंह को फतहसिंह अहलूवालिये ने अपने यहाँ से निकाल दिया और इसने उन्हे रख लिया। फगवाड़ा की रानी लक्ष्मी जो कि महाराजा रणजीतसिंह जी से लड़ाई से परास्त हो गई थी। उसे भी इसने शरण मे रख लिया।

जब महाराजा रणजीतसिंह अमृतसर आये तो उन्होंने जोधसिंह को बुलाया। जोधसिंह ने अब के महाराजा से प्रतिज्ञा करली कि मैं अब सदैव आपकी मदद किया करूँगा और कभी भी आपके दुश्मनों को शरण न दूँगा।

आगे दोनों की यह मित्रता वफादारी के साथ निभी भी। जोधसिंह ने मुल्तान, कसूर और अन्य सभी स्थानों पर रणजीतसिंह जी का साथ दिया और बड़ी बहादुरी के साथ दुश्मनों से लड़ा। इन वफादारियों से खुश होकर रणजीतसिंह जी ने भी इसको लगभग चालीस हजार का इलाका दो बार में पुरुस्कार स्वरूप दिया।

संवत १८७३ मे जोधसिंह का भी इंतकाल हो गया। किन्तु इसके मरने के बाद इसके भाइयों मे जागीर और जायदाद के लिये बखेड़ा खड़ा हो गया। महाराजा रणजीतसिंह ने इन्हे तलब किया और उन्होंने एक फैसला भी किया। जिसे इन लोगों ने नहीं माना, अत. तीनों भाई दीवानसिंह, वीरसिंह और महताबसिंह को बन्द कर दिया। अत मे चन्दासिंह सरदार की सिफारिस पर महाराजा ने इन्हे छोड़ दिया और पेंतीस हजार की जागीर भी देनी चाही। किन्तु दीवानसिंह ने अस्वीकार कर दिया और सारा मामला खटाई मे पड़ गया। दीवानसिंह पटियाले जाकर रहने लगा। महाराजा रणजीतसिह को यह बात बुरी लगी, अत. उन्होंने देसासिंह मजीठिया के द्वारा दीवानसिंह को बुलवा लिया और अपनी फौज का एक बड़ा अफसर बना दिया। इससे दीवानसिंह खुश हो गया।

बारामूला (काशमीर) पर चढ़ाई करने के लिये जो सेना भेजी गई, उसका सेनापति भी दीवान सिंह बना था। जो बड़ी बहादुरी के साथ लड़ता हुआ संवत १८९१ वि० मे स्वर्गवास कर गया। महाराज ने उसके लड़के मगलसिंह को जो कि फौज मे एक अफसरी का दर्जा पा चुका था और बड़ी उमदगी से काम करता था। उसको ६००० की जागीर बख्शी।

पेशावर कोहिस्तान आदि की अनेकों लड़ाइयों में इसने महाराजा रणजीतसिह की ओर से खूब बहादुरी दिखाई।

महाराजा रणजीतसिह जी के स्वर्गवासी होने पर यह अंग्रेजों का मददगार हो गया और इसने अंग्रेजों की कई मोर्चों पर अच्छी-मदद की। इससे अंग्रेजों ने भी इसे कुछ जागीर दी।

संवत १९३३ विक्रमी मे इसका देहात हो गया। इसी वर्ष अंग्रेज सरकार की ओर से इसे सितारे हिन्द का खिताब भी मिला था।

इसने अपने पीछे तीन लड़के छोड़े थे। एक गुरदत्तसिंह जिसने अवध और दूसरे जिलों मे हवलदार तथा पुलिस इन्सपेक्टर के ओहदों पर काम करके अंग्रेज सरकार की सेवा की और वृद्धावस्था में १२००) सालाना की पेन्शन मंजूर कराकर शेष दिन आराम से गुजारे।

दूसरा सुचेतसिंह। यह भी अग्रेजी सरकार की सेवा मे ही नियुक्त हुआ और मुनसिफी के ओहदे पर काम करता हुआ अल्पायु मे ही संवत १६३६ वि० मे चल बसा। इसके लड़के का नाम बिशनसिंह था।

तीसरा लड़का शेरसिंह अग्रेजी पुलिस मे नौकर हो गया था और संवत १६४५ मे मर गया। इसके दो लडके संतसिंह और सुन्दरसिंह हुए जिनमे संतसिंह ने बी० ए० तक की तालीम पाई थी। किन्तु बाप के कुछ ही दिन बाद मर गया। दूसरा सुन्दरसिंह आनरेरी मजिस्ट्रेट बन गया।

अग्रेज सरकार की ओर से तीन हजार सालाना की आमदनी की भूमि इन्हे माफी मे मिली हुई थी जो बराबर इनके पास है।

इस मिसल का संस्थापक सरदार जयसिंह था, जोकि जिला लाहौर के कान्हगांव का रहने वाला सिन्धू जाट जमीदार था। कान्ह के निवासी होने से यह कन्हैया नाम से मशहूर हुए और इसलिये मिसल का नाम भी कन्हैयामिसल हो गया। चौधरी खुशहालसिंहजी साधारण स्थिति के जमीदार थे वे दुनिया

कन्हैया मिसल

के झगड़ों को पसंद भी बहुत कम करते थे। अपने काम से मतलब रखने में ही उन्हे आनंद आता था किन्तु उनका बेटा जयसिंह एक उद्दण्ड प्रकृति का वीर आदमी था उसने सरदार कपूरसिंह जी के पास जाकर सिखी धारण की। और बहुत से अपने भाई बान्धवों को सिख बनवा कर अपना एक जत्था खड़ा किया। जिसमे हकीकतसिंह, महताबसिंह और तारासिंह के नाम उल्लेखनीय है। तुर्कों को दंड देने और वीरता पूर्ण कार्य करने के कारण धीरे-धीरे इसके पास ४०० आदमी एक से एक बढ़ कर वीर स्वभाव के इकट्ठे हो गये थे।

अमृतसर से नौ कोस के फासले पर सोहिया गाव मे इसका विवाह हुआ था। वहीं इसने अपना मुकाम भी बना लिया।

इसका भाई झंडासिंह भी बड़ा बहादुर था। उसने कई लड़ाइयो मे नाम पाया था और कई गावों पर जिनके कि नाम नागमुकेटियॉ, हाजीपुर, दातारपुर आदि हैं। कब्जा कर लिया था। वह स्यालकोट की लडाई मे निधानसिंह रंधावा के साथ लडता हुआ मारा गया। सरदार जयसिंह ने अपनी भाभी के साथ नाता कर लिया। जिससे उसके पास यह गांव भी आ गये। इससे भी इसकी शक्ति बढ़ी। कुछ दिन बाद इसके एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम गुरुबख्शसिंह रक्खा गया। सदाकौर इसी लड़के के साथ व्याही गई थी जो आगे चल कर पंजाब के शेर रणजीतसिंह की सासु बनी थीं।

जयसिंह ने धीरे-धीरे अपने बाहुबल से पठानकोट, हाजीपुर, सुजानपुर और दीनानगर आदि बहुत से इलाकों को अपने कब्जे मे कर लिया।

सरहिन्द की लडाइयों मे सदैव ही इसने अपनी कौम का ही साथ दिया।

एक समय इसने जम्मू के राजकुमार ब्रजराजदेव की मदद की। उस लड़ाई में कुछ सिख मिसलें रजीतदेव के साथ थीं अत यहॉ से इनका भी भगी मिसल से मनमुटाव सा हो गया। रामगढिया मिसल वालों के साथ पहले तो मित्रता थी, किन्तु आनन्दपुर पर आक्रमण करने के कारण कसूर की लडाई मे जस्सासिंह का शत्रुओं की मदद करने की बात इन्हें नहीं रुची और इसी पर गहरी शत्रुता हो गई। इन्होंने भी एक बार ता जस्सासिंह को पंजाब से निकाल कर ही दम लिया था।

जयसिंह के साथियों मे हकीकतसिंह भी बड़ा मरद था। पहाड़ी राजाओं की निगरानी के लिये जयसिंह ने इसी को नियत कर रक्खा था। वह उनसे खिराज भी वसूल करता था।

जब जम्मू का राजा राणा ब्रजराज गद्दी पर बैठा। ब्रजराज ने चाहा कि मेरे राज्य का जो हिस्सा भंगी मिसल वालों ने पिछली लड़ाइयों के एवज मे मेरे पिता से ले लिया है, वह वापिस मिल जाय। इसलिये उसने हकीकतसिंह से मदद चाही। हकीकतसिंह ने कोशिश करके चौंतीस हजार रुपये मे उसका इलाका वापिस करा दिया। किन्तु बाद मे ब्रजराज अपने वायदे से फिसल गया। इसलिये गूजरसिंह भंगी और भागसिंह अहलूवालिया को साथ लेकर हकीकतसिंह ने पहले तो उसके कड़ीआले वाले इलाके पर कब्जा किया और फिर जम्मू पर भी चढ़ाई कर दी। इस दल को देख कर ब्रजराज ने हकीकतसिंह के सामने आकर सुलह कर ली और थोड़े ही दिनों में तीस हजार रुपया पहुँचा देने का वायदा किया किन्तु ब्रजराज फिर भी वायदे का पक्का न निकला। अत. हकीकतसिंह ने अब की बार सुकरचकिया की मदद लेकर जम्मू पर चढ़ाई कर दी। इस बार राजा ने जम्मू छोड़ देने की होशियारी की इसलिये सिखों को विवश होकर नगर में घुसना पड़ा और नगरवासियों के अशिष्ट व्यवहार पर उन्होंने नगर निवासियों को दड भी दिया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद हकीकतसिंह मर गया। जयसिंह ने उनके पुत्र जैमलसिंह को अपने पास बुला कर धैर्य दिया और उसे सब प्रकार की सहायता देने का भी आश्वासन दिया।

जयसिंह योद्धा था। समझदार भी था किन्तु वह कभी-कभी साथियों के कहने मे आकर गलती भी कर बैठता था। राजा ब्रजराज ने भी ऐसे ही उसे चग पर चढ़ाया और वह महासिंह सुकरचकिया का विरोधी होगया। बहुत सारी फौज लेकर महासिंह के इलाके मे घुस गया और मंडियाला और रसूलपुरा आदि गांवों पर हाथ साफ करते हुए नकईसिंह के इलाके मे जो कि महासिंह का ही एक रिस्तेदार और मिसलपति था, जा पहुँचा।

महासिंह ने इन बातों को जानकर भी धैर्य से काम लिया और उसने दीपावलि के मेले पर जयसिंह को बहुत समझाया कि हमे आपस मे ही नहीं लड़ना चाहिये किन्तु जयसिंह की समझ मे कुछ न आया।

इस पर महासिंह ने भी जयसिंह को पाठ पढ़ाना निश्चय कर लिया और जस्सासिंह रामगढ़िया को जो कि जैसिंह का पक्का विरोधी था। पंजाब मे वापिस बुला भेजा। कटोच राजा संसारचद भी महासिंह ने अपनी ओर मिला लिया और लड़ाई की तैयारी कर दी।

बटाले के पास लड़ाई हुई। जयसिंह का लड़का गुरुबक्शसिंह इस लड़ाई मे मारा गया। जयसिंह को उसने सुलह का रास्ता निकाला। बड़ी सोच विचार के साथ अपनी पौत्री (गुरुबख्शसिंह की पुत्री) महताबकौर की शादी महासिंह के लड़के रणजीतसिंह के साथ करके इस विरोध को मिटाया।

यह विरोध अवश्य मिट गया किन्तु दिन प्रति दिन इस मिसल की अवनति ही होती गई।

इस विवाह को करा देने के थोड़े ही समय बाद संवत १८५७ विक्रमी मे जयसिंह इस ससार से प्रस्थान कर गया। इसके निधानसिंह और भागसिंह दो पुत्र और थे। किन्तु मिसल का नेतृत्व गुरु बख्शसिंह की बेवा सदाकौर ने ही संभाला। उधर महासिंह जी के मर जाने के बाद रणजीतसिंह की गार्जियन शिप भी सदाकौर ने ही की। सरदारनी सदाकौर बड़ी ही हिम्मत की स्त्री थीं। बुद्धिमानी मे बहुत बढ़ी चढ़ी थीं। दोनो मिसलों की फौजों की संयुक्त शक्ति से उन्होंने बहुत लाभ उठाया। कई नये इलाके जीत कर अपने आधीन किये।

अपने पति का बदला लेने के लिये इस बहादुर सिंहनी ने दोनों मिसलों की फौज को लेकर जस्सासिंह रामगढ़िया पर चढ़ाई कर दी और उसे किले में घेर लिया किन्तु वर्षा के दिन होने के कारण व्यास नदी मे बाढ़ आ गई। इससे इसे वापिस लौटना पड़ा। लेकिन दूसरे ही साल फिर जस्सासिंह पर चढ़ाई कर दी। उसकी शक्ति को कम करके उसके राज्य के बटाला कलानौर और कादिआं आदि स्थानों को अपने आधीन कर लिया।

चूँकि अब महाराजा रणजीतसिंह अपनी सास से स्वतन्त्र हो चुके थे और उन्होंने दूसरी शादियाँ करना भी शुरू कर दिया था। इसलिये सदाकौर ने अपने दौहित्र शेरसिंह और तारासिंह को अटलगढ का किला और परगना अपनी रियासत में से प्रदान कर दिये।

कुछ दिनो बाद यह बहादुर सिंहनी इस ससार से कूच कर गई।

अपनी सास सदाकौर के स्वर्गवास के बाद महाराजा रणजीतसिंह जी ने कन्हैया मिसल का कुल इलाका अपने राज्य मे शामिल कर लिया। हॉ, हेमसिंह को जो कि जयसिंह का भतीजा था। चालीस हजार का इलाका अवश्य दे दिया। इसके बाद जब महाराज ने कसूर को फतह किया तो हेमसिंह को दस हजार का इलाका और दे दिया।

हेमसिंह भी थोड़े ही वर्षों बाद चल बसा। अतः उसका लड़का अमरसिंह उस जागीर का मालिक हुआ था। महाराजा रणजीतसिंह जी की आज्ञा से यह मुलतान और काश्मीर की लड़ाइयों में भी शामिल हुआ। अमरसिंह भी मर गया।

अमरसिंह के तीन लड़के थे। सरूपसिंह, अनूपसिंह और अतरसिंह। इनको अपने बाप के बाद तीस हजार की जागीर मिली।

सवत १८६१ मे सरूपसिंह मर गया। उसके मरने के बाद लाहौर की सरकार ने उसकी जागीर जब्त करली उसकी औलाद के पास केवल एक गॉव रूखांवाला रह गया।

अंग्रेजी राज्य के पंजाब मे आने पर यह सब लोग उसकी बड़ी २ नौकरियों मे लगने की कोशिश करने लगे।

अतरसिंह के लडके मेघसिंह ने अंग्रेजी फौज मे नौकरी करके जो वफादारी दिखाई उसके बदले मे उसकी ओलाद को दो गॉव ६००)सालाना आमदनी के माफी मे मिले।

इस खानदान मे पिछले दिनों जगतसिह जी के पास ११२५ एकड़ जमीन का इलाका था। और वह बड़ी खुशहाली से अपना जीवन बिताते थे।

लाहौर सूबे के बहड़वाल गॉव परगना चूनिया मे जाट चौधरी हेमराज रहते थे। उन्हीं के लडके हीरासिंह ने इस मिसल की स्थापना की थी। चूकि इस इलाके को नका का इलाका कहते थे। इसलिये सरदार हीरासिंह नकई करके मशहूर हुये और इनके साथ ही उनके जत्थे तथा मिसल के लिये भी यही नाम मशहूर हो गया। सरदार हीरासिह का जन्म संवत १७६३ विक्रमी मे हुआ था। युवा होने पर सिख धर्म ग्रहण करके कौम और देश की सेवा मे जुट गये। उस समय देश व जाति की सेवा का प्रमुख अर्थ सैनिक दल मे भर्ती होना था। आप भी एक जत्थे में शामिल होकर धावे और अत्याचारियों को दंड देने के काम मे शामिल हो गए। सरहिंद और कसूर की लडाइयों के बीच आपने बड़ी बहादुरी दिखाई। इससे सैकड़ों जवान सिख रूपासिंह, नत्थासिंह, कमरसिह, लालसिंह और सदासिंह आदि जो कि बड़े तगड़े जवान थे, आपकी ओर आ मिले।

नकई मिसल

आरम्भ मे हीरासिंह नकई ने आस पास के छोटे मोटे मुसलमान रईसों को वश में किया तव फिर आगे को पैर फैलाए।

शनैः शनैः इतनी शक्ति वढ़ाली कि आठ हजार जवान हीरासिंह की सेना में भर्ती हो गये।

थोड़े ही समय में मांगा, जमेरमंदर, फरीदावाद, देवसाल, शेरगढ़, मुस्तफावाद, खुडिआं, जेठपुर, कंगनपुर, दीपालपुर और चूनियां, के इलाके कब्जे में कर लिये। जिनकी सालाना आमदनी दसियों लाख रुपये थी। किसी २ ने तो ४५ लाख तक लिखी है।

उन दिनों पाकपट्टन मे शेख सुभानखां हुकूमत करता था। वह वड़ा तास्सुवी मुसलमान था। गौ-हत्या के लिये मुसलमानों को खासतौर से उकसाया करता था। वहा की हिन्दू प्रजा उससे वहुत दुखित थी। इसलिये कई वार सरदार हीरासिंह नकई के पास पुकार लेकर गई। हीरासिंह ने शेख को कई वार चेतावनी भी दी किन्तु उसने एक न सुनी।

जव उसने हीरासिंह की वात की कतई परवाह न की तो हीरासिंह को उस पर आखिर चढ़ाई ही करनी पड़ी। उधर शेख ने भी वहुत सारे मुसलमान इकट्ठे कर लिये थे। हीरासिंह अपनी सेना की नाके वन्दी करा रहा था कि उधर किले की ओर से अचानक एक गोली हीरसिंह के माथे मे लगी। जिससे वह चल वसा। फौज भी विना सरदार के कव लड़ती है। इसलिये वह भी लौट आई।

हीरासिंह का लड़का दसूसिंह उन दिनों छोटा था। अत उसका भाई नाहरसिंह गद्दी का मालिक वना। नाहरसिंह तपैदिक की वीमारी में ग्रस्त था। कुछ ही महीनों मे मर गया। अत उसका छोटा भाई रनसिंह मिसल का अधिपति वनाया गया। रनसिंह चतुर और मिलनसार आदमी था इसके समय मे मिसल की काफी तरक्की हुई। इलाके के वड़े वड़े स्वस्थ और सुन्दर नौजवान इसने भर्ती कर लिये और इस तरह सैनिकों की संख्या भी वढ़ाकर वीस हजार के लगभग करली। अच्छे-अच्छे शस्त्रों का संग्रह भी किया।

चंद दिनों मे ही कोटकमालिया, खरल, और कुछ भाग सरकपुर का भी इसने अपने अधीन कर लिया। इसके सिवा सैयदवाले के कपूरसिंह से भी उसका इलाका छीन लिया।

वहादुर रनसिंह वास्तव मे रनसिंह निकला और लगभग वारह वर्ष अपनी वहादुरी के चमत्कार दिखाकर इस संसार से कूच कर गया।

इसके तीन लड़के भगवानसिंह, खजानसिह और ज्ञानसिंह थे। भगवानसिंह अपने वाप का उत्तराधिकारी वना। किन्तु इतनी वड़ी जायदाद को सभालने की इसमे योग्यता न थी। अतः कंवरसिंह के भाई वजीरसिह ने इसके वहुत से इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया। इस समय भगवानसिंह की वुद्धिमानी भी इसी मे थी कि वह किसी जवर्दस्त सरदार की आड़ लेकर अपने इलाका की रक्षा करता। उसने किया भी यही अपनी वहिन की शादी महासिंह सुकरचकिया के लड़के रणजीतसिंह जी के साथ करदी। शादी के वाद महाराजा रणजीतसिंह ने उसका वह सारा इलाका वापिस दिलवा दिया जो वजीर-सिंह ने दवा लिया था।

इन महासिंह पर भी एक आपत्ति आ रही थी। और वह यह कि जैसिंह कन्हैया विरोधी वन गया था और वह व्रजराजदेव जम्मू के वहकावे में आकर महासिंह के इलाकों पर छापा मारने लग गया था। अतः महासिंह ने अमृतसर आकर भगवानसिंह और वजीरसिंह को समझा वुझाकर मित्र वना दिया और दोनों ही को जयसिंह कन्हैया के खिलाफ खड़ा कर दिया।

पांच छ महीने तो वजीरसिंह और भगवानसिह मे मेल रहा किन्तु फिर झगड़ा हो गया और आपसी लड़ाई मे भगवानसिंह मारा गया।

भगवानसिंह के बाद उसका छोटा भाई ज्ञानसिंह मिस्ल का सरदार बना।

इन्हीं दिनों वजीरसिह के नौकरों ने मिसल के संस्थापक हीरासिह के लड़के दलसिंह को मार डाला। इस प्रकार हीरासिह का वंश कतई समाप्त हो गया।

ज्ञानसिह भी मर गया। तब उसके लड़के काहनसिंह को महाराजा रणजीतसिंह ने १५ गॉवों का जिसमे भड़वाल भी शामिल था। जागीरदार बना दिया। शेष इलाका पहले ही रणजीतसिंह जी ने अपने राज्य में मिला लिया था। ज्ञानसिंह के भाई खजानसिंह को नानकोट का इलाका मिला।

काहनसिह के अतरसिंह नाम का एक लड़का था। वह मुलतान की लड़ाई के समय दुश्मनो से जा मिला। अत उसकी सब जागीर जब्त करली गई किन्तु काहनसिंह के बुढ़ापे का खयाल करके बारह हजार की जागीर इस शर्त पर रहने दी गई, कि उसके मरते ही यह जब्त करली जायगी।

चतरसिह जो कि काहनसिंह का दूसरा लडका था। कुछ दिन बाद मर गया और बूढ़ा काहन सिह भी उससे कुछ वर्ष बाद मे मर गया। मोंटगोमरी मे रहने वाले रणजोधसिंह ने विरासत का अपने को हकदार घोषित किया किन्तु बाद मुकदमे के तत्कालीन सरकार ने रणजोधसिह को दो हजार की जायदाद और सरसिंह को बारह सौ रुपये की। इसी तरह अतरसिंह, तथा बेवाओं को भी बाकी जायदाद बाट दी।

अतरसिह के एक लड़के का नाम लाभसिंह था और अपने बाप के बाद अपने पास दो हजार बीघा जमीन उसने करली थी। सरकार ने भी उसे जेलदार बना दिया था।

इस खानदान के दो आदमी ईसरसिंह और लहणासिह के बाबत लिखा गया है कि उन्होंने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया सभव है ऐसा हो गया हो किन्तु हमने इस ओर जांच पड़ताल नहीं की।

इस मिसल का संस्थापक गुलाबसिंह खत्री था। जो सुल्तानपुर के पास डल्लेवाली गॉव के सरधाराम खत्री दूकानदार का लड़का था। गुलाबसिंह ने बहुत पहले सिख धर्म ग्रहण किया था। लडाकू सिख जत्थों मे शामिल होकर गुलाबसिंह ने अपने को भी इस योग्य बना लिया कि वह भी एक स्वतन्त्र जत्थेदार बन गया।

डल्ले वाली मिसल

जबान मे मिठास और कार्य्य मे स्फूर्ति इसके ऐसे गुण थे। जिससे प्राय सभी साथी इससे खुश रहते थे। हिम्मत वाला भी ऊचे दर्जे का था। एक समय केवल डेढ़ सौ आदमियों को लेकर जालधर पर चढ़ दौड़ा और शहर मे घुसकर धावा करता हुआ करतारपुर की ओर निकला जहॉ कि और भी सिख जत्थे पड़े हुए थे।

इसकी वीरता और उन्नति के समाचार सुनकर इसके दूसरे बिरादरी भाई जिनमे हरदयालसिंह, जैपालसिंह और गुरदयालसिह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, सिख धर्म मे दीक्षित होगए।

एमनाबाद पर जो छापा मारा गया और जिससे जसपतराय दीवान नाराज होगया था उस छापे का मारने वाला यही गुलाबसिंह था। रोडी साहब के मुकाम पर जब जसपतराय ने आकर सिखों को घेरा था तो उसे गोली से इसी गुलाबसिंह ने इस ससार से उठा दिया था।

सरदार करोडासिंह चक्के के साथ दोस्ती करके गुलाबसिंह ने अपनी शक्ति को और भी बढा लिया था। दोनों मे पूरा मेल था और उस मेल से अपनी मातृभूमि की सेवा करने का लाभ उठाते थे।

दोनों ने मिलकर हरद्वार की ओर कूच किया। वहां से आगे चलकर नजीबाबाद पर चढ़ाई करदी। नवाब नजीबखा लड़ा तो हिम्मत के साथ किन्तु, उसे आखीर मे भागकर अपने प्राण बचाने पड़े। फिर मेरठ मुजफ्फरनगर, देववन्द, मीरपुर के मुसलमान हाकिमों को शोधते हुए सहारनपुर पहुँचे और यहा से अपने देश पंजाब को लौट आये।

जबकि अहमदशाह युक्तप्रात के धावे करके वापिस हो रहा था और हजारों हिन्दू स्त्रियों को भी दासी बनाने के लिये ले जा रहा था। तब चिनाव के किनारे सिखो ने उस पर जबर्दस्त हमला किया था। और उन सभी स्त्रियों को उनसे छिना लिया था। उस हमले मे भी वे दोनों वीर शामिल थे। और बड़ी बहादुरी के अपने फर्ज को इन्होंने पूरा किया था।

इसी साल सिखों ने उस शाही खजाने पर भी हमला किया था। जो रावलपिन्डी और रोहतास के इलाके से वसूल होकर लाहौर आरहा था। उस हमले में इन दोनों ने बड़ी बहादुरी दिखाई थी। यह उस समय डेरा बाब नानक मे थे किन्तु इस खबर सुनते ही बिजली की तरह दौड़कर जेहलम के किनारे पहुँच गये और शाही खजाने पर धावा किया। यह खजाना सभी सिख जत्थों में बाट दिया जो कि उस समय मौजूद थे।

धीरे-धीरे इसके पास छ हजार सैनिक इकट्ठे होगये और पथ मे इसकी अच्छी खासी इज्जत होने लग पड़ी।

जब कलानौर की लड़ाई चली यह बहादुर उसमे लड़ता हुआ, खतम होगया और चूंकि इसके दोनों लड़के जैपालसिंह और हरदयालसिंह पहले ही बसौली की लड़ाई में खत्म हो चुके थे अत इसके एक अच्छे साथी हरदयालसिंह को मिसल का सरदार बनाया गया।

किन्तु हरदयालसिंह दूसरे ही वर्ष दुआवे की एक लड़ाई में काम आगया। इसलिये तारासिंह[1] को मिसलपति चुना गया।

तारासिंह आरम्भ मे एक साधारण सिख था और ताडॉवाली मे रहा करता था। लड़कपन मे अपने पशुओं को चराता और मौज करता। जब जवान हुआ तो सिखों के दलों मे शामिल होगया। और गुलाबसिंह का साथी बन गया। चू कि इसने लड़ाइयों मे बड़ी २ बहादुरी दिखाई थी और साथियों के साथ बड़े प्रेम का वर्ताव था। इन सब अच्छाइयों ने इसे डल्ले वाली मिसल का ही अधिपति बना दिया।[1]

मिसल पति होने के बाद इसने अपनी बुद्धिमानी और बहादुरी से अपने सैनिकों और इलाके सब की तरक्की करली। भंगी सरदार हरीसिंह को इसने कसूर के जीतने मे भी मदद दी थी और वहॉ के रईस अदीनाबेग के दीवान विश्वम्भर को इसने अपने कब्जे मे कर लिया।

इसने अपने दल को बढ़ाने के लिये अपनी बिरादरी के सैकडों लोगों को सिख बनाया।

इसकी कौमी सेवाओं और सच्ची धर्मप्रियता को देखकर गॉव के सारे ही चौधरी मय अपने मुखिया चौधरी गौहरदास के सिख बन गये थे। और उस गॉव के सभी तरुण इसके जत्थे में शामिल होगये थे। तारासिंह की इस प्रकार की सरगर्मियों का नतीजा यह हुआ कि उसके पास लगभग दस हजार सैनिक होगये।

सरहिन्द की लड़ाई से लौटकर इसने घुंगराला, बंदोवाल, दखनी आदि स्थानों पर कब्जा कर

१ अधिकाश इतिहासकारों का मत यह है कि डल्लेवाली मिसल के सस्थापक तारासिंह गैवा ही थे।

लिया और कस्वा राहू को अपना सदर मुकाम वनाया। इस तरह लगभग आठ लाख का इलाका इसके कब्जे मे होगया।

थानेसर, रोपड सिआलिवा खेड़ी और खमानों के रईसों ने इसकी अधीनता स्वीकार करली। इससे भी तारासिंह की ताकत खूब वढ़ने लगी। तारासिंह खुद इस स्वभाव का आदमी न था कि सिख आपस में भी लड़े किन्तु एक वार इसे भी जोधसिंह रामगढ़िया के साथ लड़ना पड़ा। वात यह हुई कि राजा ससारचद ने जोधसिंह के कान तारासिंह के खिलाफ भर दिये और जोधसिंह ने दखनी किले पर हमला कर दिया। लगातार दोनों ओर से २० दिन तक लड़ाई हुई। दोनों ओर का काफी नुकसान हुआ। आखिर जोधसिंह को निराश होकर लौटना पड़ा। तारासिंह से विजय नहीं हुआ।

तारासिंह जैसा वहादुर था वैसा ही दानी और उदार भी था। अपनी रियासत के कई वड़े २ गाँवों मे इसने लगर भी जारी करा दिये थे। जिनसे गरीव लोग लाभ उठाते थे।

प्रजा से कभी भी तग करके मालगुजारी नहीं ली। जितना भी राजी से लोग दे देते उतने ही पर सतोष कर लेता। इससे प्रजा के लोग भी इससे खुश थे और संकट पड़ने पर मदद भी कर देते थे।

एक वार तारासिंह ने अचानक ही थोड़े से आदमियों के साथ दारापुर पर हमला कर दिया। और वहाँ के हाकिमों को सदैव के लिये रणखेत मे सुला दिया।

तारासिंह के तीन लडके थे। गूजरसिंह, दसौधासिंह और झंडासिंह। वाप ने मरने से पहिले ही तीनों ही को अलग २ किले और इलाके वाट दिये। गूजरसिंह ने घुगराला और धरमकोट पर कब्जा किया। दसौधासिंह के हाथ दखनी और वंदोवाल के इलाके आये और झंडासिंह को नकोदर, माम्पुर और वल्लोकी मिले, जोकि जालधर के इलाके मे हैं। यह तीनों इलाके तीस-तीस हजार की आमदनी के थे और वाकी रियासत अपने पास रक्खी। जिसे करीव पांच लाख की वताया जाता है।

सरदार तारासिंह इस संसार से प्रस्थान कर गया। उसका शोक मनाने के लिये महाराजा रणजीतसिंह भी आये। वेवा सरदारनी ने उन्हे वहुत सारी कीमती चीजे भेट दीं जिसमे पांच वढ़िया घोड़े हाथी की जजीर और छ लाख रुपये भी थे। कुछ दिन वाद महारजा रणजीतसिंह ने सरदारनी को दो गाँव गुजारे के लिये दिये और सात गाँव मालपुरा, निकोदर, आदि झंडासिंह को देकर वाकी इलाका अपने राज्य मे मिला लिया।

तारासिंह के पुत्रों के पास जो इलाके थे। वे भी महाराजा रणजीतसिंह जी ने उस दौरे मे जब्त कर लिये जो कि मालवे की शोध के लिये किया था।

गूजरसिंह को महाराज ने उन गावों मे से आधे दिला दिये जो उन्होंने गुरदत्तसिंह डल्लेवाले को दे दिये थे। और यह गाँव भी वह थे, जो तारासिंह ने उदासियों को वता रक्खे थे।

वाद मे महाराजा रणजीतसिंह जी ने रतनकौर को दो हजार रुपये सालाना की पेन्शन करदी जो उसे आजन्म मिली। उसके वाद मे २००) मासिक नारलसिंह को मिलते रहे। विलोकी और मरकपुर मे लगभग २८०) सालाना की माफी नारलसिंह और वख्तावरसिंह को दे दी गई थी।

अंग्रेजी हकूमत आने पर नारलसिंह सेना में सूवेदार होगया और उसे ४८५) सालाना की पेन्शन भी मिल गई। नारलसिंह का पुत्र अपने वाप का वारिस हुआ।

कुछ भी हो मिसल तो तारासिंह के वाद ही टूट गई थी और वहीं तक उसका गौरव पूर्ण इतिहास है।

इस मिसल के वास्तविक जन्मदाता तो शामसिंह और करमसिंह पंजगढ़ वाले जाट चौधरी थे। पीछे किरोड़ासिंह वरकिआवाले के नेतृत्व में आने के कारण इसका नाम भी उसी के नाम पर मशहूर हो गया। क्योंकि वह आदमी था भी मशहूर होने लायक। उसने अपनी वहादुरी और चतुराई से लगभग दस लाख का तो इलाका इस मिसल के कब्जे मे कर लिया और वारह हजार वीर सदैव उसके पास तैयार रहते थे।

किरोड़ियॉ मिसल

जिस समय नादिरशाह दुर्रानी लूट का माल लेकर पंजाव से गुजर रहा था। शामसिंह ने अपने साथियों को लेकर उस पर हमला कर दिया और उसी लड़ाई मे मारा गया। करमसिंह ने भी अपने समय मे वड़ी वड़ी वहादुरी के काम किये। जिस समय जालंधर के अदीनावेग पर सिखो ने चढ़ाई की तो उसके सेनापति खैरसाह का सिर इसी सरदार ने काटा था और इस प्रकार का घनघोर और वुद्धिमता पूर्ण रण कौशल दिखाया कि मुसलमानों के छक्के छूट गये। सवसे पहले किले में इसी का जत्था गया था।

करमसिंह के वाद ही किरोड़ासिंह इस मिसल का सरदार वना जो इतना भाग्यशाली था कि इसके समय मे मिसल की अपूर्व उन्नति हुई।

सवसे अधिक महत्वपूर्ण वात यह है कि भरतपुर के महाराजा सूरजमल जी के साथ इसने कितने ही युद्धों मे सहयोग दिया। फरूखावाद तक के इलाके उनके साथ मिलकर इसने शोधे।

एक वार इसने समस्त हरियाने का दौरा किया और जहॉ जहॉ भी मुसलमान रईसों को देखा उनको वर्वाद कर दिया।

वटाले में जव कि वुलंदखॉ से सिखों का युद्ध हुआ उसमे भी किरोड़ासिंह शामिल हुआ और उन्हें इतना खदेड़ा कि वे वेचारे अपना खजाना तक न लेजा सके। सव इसी के हाथ आगया। साम चौरसी के सारे इलाके पर भी इसने कव्जा कर लिया था।

अंत मे नवाव गुलामकादिरखां से तरावड़ी के मैदान मे लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हो गया। इसके वाद सरदार वघेलसिंह जी धारीवाल जाट इस मिसल के अधिपति हुए। इन्होंने भी अपने समय मे मिसल की काफी तरक्की की। वुरदीन, केवरी, छलोदी, जमीअतगढ़ आदि स्थानों पर कव्जा करके इन्होंने अपनी आमदनी मे कई लाख की वृद्धि करली और छलोदी मे जोकि जिला कर्नाल मे है। अपना केन्द्र कायम किया।

दुआवा मे जालधर और होशियारपुर के जिलों मे वहुतसा भूभाग अपने अधीन इन्होंने कर लिया हालांकि कुछ पहले भी हो चुका था।

एक वार इसने एक वड़ा सैन्यदल इकट्ठा करके पूर्व की ओर कूच कर दिया। पहले जलालावाद पर धावा किया। यहॉ का हाकिम मुहम्मदहसन था। जिसने जवरन एक ब्राह्मणी को घर मे डाल लिया था। जलालावाद से खुरजा, चदौसी, अलीगढ़ और हाथरस पहुँच कर इन शहरों के मुसलमानों को परास्त किया। इसके वाद फरूखावाद पहुँचे जहॉ का हाकिम ईसाखां वड़ी वहादुरी के साथ मैदान मे आया। तीन दिन तक डटकर लड़ाई हुई किन्तु अन्त मे ईसाखां भाग गया। उधर से मुड़कर, मुरादावाद अनूपशहर विजनौर, वुलंदशहर आदि शहरों को लूटते हुए पजाव मे वापिस लौटे। इस विजय यात्रा मे हजारों सिख मारे गये।

तलवन गांव जालंधर के इलाके मे मियां मुहम्मदखां नामक एक मुसलमान रईस था। यह किरोड़ासिंह के समय में ही मातहत होगया था, किन्तु इसने खिराज देना वन्द कर दिया था। अतः

पूर्व से वापिस आने पर इस पर चढ़ाई की और इलाके को जब्त करके यहा अपना एक छोटा मा किला बनवाया। इसी तरह नूरमहल के दीवानसिह का इलाका भी जब्त कर लिया।

एक बार सरदार बघेलसिह को पटियाला पर भी चढ़ाई करनी पडी क्योंकि महाराज अमरसिह जी पटियाला नरेश इस इलाके पर हाथ साफ करने लग पड़े थे।

घडाम के मुकाम पर दोनो ओर से सामना हुआ किन्तु विना ही रक्तपात किये दोनों ओर से सोच समझ कर आपस मे सुलह होगई। महाराज ने अपने राजकुमार साहबसिह जी को बघेलसिह से अमृतपान कराकर सदैव के लिये पक्की मित्रता कायम करली। इससे बघेलसिह ने सदैव पटियाला नरेश को मदद दी।

दिल्ली के वजीर आजम नवाब अबदुलअहमदखा शाहजादा फरखंदाबख्त के साथ अनगिनती सेना पजाब मे इस आशय से लेकर आया कि सिख लोगो से उन इलाकों को वापिस लेले। जो उन्होंने अब तक की अराजकता के समय मे दबा लिये है।

यह सेना दल सब से पहले बघेलसिंह के ही इलाके से होकर गुजरा क्योंकि वही प्रथम रास्ते मे पडता था। बघेल बडा दूरन्देश आदमी था। उसने बिना किसी उत्पात के इस दल को आगे बढ जाने दिया और जब यह दल पटियाला पहुचा तो पीछे अपना सारा दल लेकर कूच कर दिया। उधर महाराजा पटियाला के पास खबर भेज दी कि आप मजबूत रहे। और सिख मिसलों को भी बुलावा भेज दिया। प्राय सभी सिख मिसले भी अपनी-अपनी सेनाये लेकर उमड पडीं। फरखन्दाबख्त चारो ओर से सेनाओं के बीच घिर गया। अब तो वह घबराने लगा। उसने सुलह की बातचीत भी बघेलसिंह द्वारा ही चलाई। बघेलसिह ने कहा —इस समय लगभग पचास हजार सिख इकट्ठे हो रहे हैं। वह तो उसी हालत मे आपको सुरक्षित जाने दे सकते हैं। जब कि आप इनके हर्जे का रुपया दे सके। शाहजादा अपनी जान बचाना चाहता था। अत उसने सिखों से सुलह की और फिर कभी भी सिखों के दमन का इरादा नहीं किया।

एक बार इसी प्रकार मराठों की फौज लूट मार करने के इरादे से पंजाब मे घुस आई। बघेलसिंह ने उसे भी अपने इलाके मे से मजे से गुजर जाने दिया किन्तु ज्योंही मराठे बीच पजाब मे पहुच गये। उन्हे भी सिखों से घिरवा दिया। जिससे वह बडे चक्कर मे पडे, आये थे लूटने किन्तु खुद लुट चले।

बघेलसिह जहाँ बुद्धिमान दूरन्देश और बहादुर आदमी था। वहाँ महत्वाकाक्षी भी था। वह देख रहा था कि दिल्ली की मुगल हुकूमत रात दिन कमजोर होती जारही है। नाम मात्र की बादशाही रह गई है। दिल्ली से चारों ओर हर तीसवें कोस पर लोग बागी हो रहे हैं। अच्छा हो ऐसे समय मे सिख लोग मिलकर दिल्ली पर धावा करे और अपना आधिपत्य कायम कर ले।

इसी ऊँचे उद्देश्य से उसने पजाब के तमाम मिसलपतियों अथवा जत्थादारों को पत्र लिखे और उन्हे बताया यह अवसर बहुत ही अनुकूल है।

सिखों की चालीस हजार सेना ने दिल्ली को घेर लिया। मजनू के टीले पर समस्त सिख मिसलपति इकट्ठे हो गए। अजमेरी दरवाजे से घुसकर मुगलपुरा तक के सारे हिस्से पर सिख शूरमाओं के पहरे लगा दिये और बढ़ते हुए किले तक पहुच गये।

इस बीच मिरजा अलीगौहरशाह ने वजीर आजम से सलाह मशविरा करके मामले को बढने-

से और मुगल सल्तनत को नष्ट होने से बचा लिया। सिमरू बेगम को बीच मे डालकर सिखों के साथ निम्न शर्तों पर सुलह हो गई।

(१) खालसा सेनाओं को तीन लाख रुपया हर्जाने के दिये जावेगे।

(२) शहर की कोतवाली और चुंगी का अफसर सरदार बघेलसिंह को बनाया जायगा।

(३) जब तक सिखों द्वारा मनोनीत गुरुद्वारे न बन जावेंगे। तब तक बघेलसिंह अपने साथ ४००० सिख सैनिक रख सकेंगे।

इस सुलह के बाद सिख सेनाये अपने मुल्क को लौट गईं।

सरदार बघेलसिंह जी ने गुरुद्वारों का निर्माण आरम्भ कर दिया। सब से पहले तेलीवाड़े मे जहा कि माता सुन्दरी जी और साहब देवजी रही थीं। उस स्थान पर एक गुरुद्वारा बनाया गया। इसके बाद जैपुरे महल्ले मे गुरुद्वारा बंगला साहब का निर्माण कराया गया। गुरु हरिकिशन जी साहब इसी स्थान पर ठहरे थे। जमना किनारे भी गुरु हरिकिशन और माता सुन्दरी जी व साहब देवे जी की स्मृति मे स्थान निर्माण कराया। जहा कि उनके अंतिम सस्कार हुये। रकाबगज मे जहा किसी गुरु तेग बहादुर जी के शरीर का भस्मात सस्कार लक्खो नाम के सिख ने किया था। वहां गुरुद्वारा रकाबगंज बनवाया गया।

इसके बाद उस स्थान पर जहा कि गुरु तेगबहादुर जी साहब का शीश उतारा गया था गुरुद्वारा शीसगंज बनवाया किन्तु इस गुरुद्वारे के बनने के समय मुसलमान और सिखों मे तलवारे खिंच गईं कारण कि उस स्थान के पास मस्जिद बन चुकी थी। बघेलसिह जी ने उसी से सटा कर गुरुद्वारा बनवाना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार गुरुद्वारों का निर्माण करा कर सरदार बघेलसिंह अपने मुल्क को रवाना हो गये। रवानगी के समय वजीरआजम ने आपको पॉच घोडे, हाथी की जजीर और सिरोपाव भेंट किया। साथ ही सिखों की वीरता की प्रशंसा भी की। आजम ने हॅसते हुए यह भी पूछा सरदार जी, सिखों की वीरता तो मशहूर है। हिन्दुस्तान की सारी रियाया उनका जोहर मानती है। ये आपस मे जत्था बनाकर भी रहते हैं। पंथ की आज्ञाओं का पालन भी करते हैं किन्तु फिर यह कभी-कभी आपस मे भी क्यों लड़ पड़ते हैं? सरदार बघेलसिंह ने जवाब दिया। इन्होंने अमृत पिया है। इसलिये यह अपमान को बर्दास्त नहीं कर सकते हैं। वह चाहे अपनों की ओर से हो और चाहे दूसरों की ओर से। बस स्वाभिमान की रक्षा के हेतु ही यह आपस मे लड़ पड़ते हैं किन्तु यह याद रखनेकी बात है कि यह दूसरोंके लिये हमेशा एक है।

सिख इतिहासकारों ने लिखा है कि—"बादशाह ने बघेलसिंह को कड़ाह प्रसाद के लिये ५०००) नकद दिया और दिल्ली की चुंगी का चौथा हिस्सा उस समय तक बघेलसिंह के पास छालोदी भेजता रहा जब तक कि बघेलसिंह जिन्दा रहा।"

इसके बहुत दिन बाद बघेलसिंह ने अमृतसर की यात्रा की और सर मे स्नान किया तथा हरि मन्दिर के दर्शन किये। वहीं सरदार गुलाबसिंह की मृत्यु का समाचार सुना और उसके ठिकाने मे जाकर उसकी जागीर का प्रबन्ध किया।

आखिर इस दूरंदेश और बहादुर सिख का देहान्त हो गया। इसकी स्मृति मे हरियाना जिला होशियारपुर में एक समाधि बनी हुई है। इसके पीछे इसकी दो पत्नियाँ थीं। एक रामकौर दूसरी रतनकौर। दोनों ने दो इलाकों पर क़ब्जा कर लिया।

रामकौर ने जिला होशियारपुर में दो लाख के इलाके पर कब्जा कर लिया। और रतनकौर ने छलोदी वाले इलाके पर अपना तख्त जमा लिया।

चार पॉच वर्ष तक दोनों सरदारनियां अपने-अपने इलाके का काम भली प्रकार चलाती रहीं।

आगे महाराजा रणजीतसिंह जी ने दोनों के इलाके छीन कर अपने सहयोगियों को दे दिये। रतनकौर वाला इलाका—खुरदीन वाला हिस्सा—कलसिया के सरदार जोधसिंह को और—वहलेपुर वाला हिस्सा—वीरभान को दे दिया।

इस मिसल के संस्थापक प्रसिद्ध धर्मवीर बाबा दीपसिंह जी थे। जिनका संक्षिप्त वर्णन हम बलिदान-कथा मे कर चुके हैं। आपके प्रसिद्ध साथियों मे भाई गुरु बख्शसिंह, सुधासिंह, बुद्धासिंह, प्रेमसिंह शेरसिंह और हीरासिंह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

शहीदोंवाली मिसल गुरु गोविन्दसिंह जी के दक्षिण की ओर चले जाने के बाद बाबा दीपसिंह जी दमदमा मे रहने लग गये थे। और वहीं पर अपना जत्था खड़ा किया था। दमदमे मे आपका बनाया हुआ कूप और बुद्धा (बुड्ढा) सिंह जी के लगाये हुये बेर वृक्ष अब तक मौजूद हैं।

१७६५ विक्रमी मे गुरु गोविन्दसिंह द्वारा भेजे हुए महावीर बन्दासिंह जी का साथ बाबा दीपसिह जी के जत्थे ने आदि से अंत तक दिया। युद्धों के समय यही दल अग्रणी रहता था और हर समय धर्म के लिये शहीदी तक प्राप्त करने की इच्छा से ओत-प्रोत रहने के कारण लोग इन्हे शहीद के नाम से पुकारते थे।

यह गौरव इसी मिसल को प्राप्त है कि इसके संस्थापक बाबा दीपसिंह जी ने श्री ग्रन्थ साहबजी के चार उतारे करवाये थे। और वे चारों तख्तों पर भेजे गये थे।

जालंधर के हाकिम अदीनाबेग के मरणोपरान्त बाबा दीपसिंह जी ने सिख जत्थों की सहायता से जालधर को अपने कब्जे मे किया और फिर उसे अपने साथी दयालसिंह और नत्थासिंह जी शहीद को जागीर के रूप मे दे दिया। ये सरदार सालाना उस इलाके से भेट स्वरूप मिसल को दिया करते थे। किन्तु गुलाबसिंह ने जो कि इनके वंशजों का उत्तराधिकारी था। मिसल को भेट देना बन्द कर दिया इससे मिसल पति ने नाराज होकर गुलाबसिंह से यह जागीर छीन ली और 'दरबार बेर बाबा नानक साहब' से लगा दी।

बाबा दीपसिंह जी जहाँ उत्कट योद्धा थे। ये वहां ऊँचे दर्जे के विद्वान और धार्मिक पुरुष भी थे।

यह हम पहले लिख आये है कि जहानखा दुर्रानी ने अमृतसर मे बैठकर दरबार साहब का अपमान करना शुरू कर दिया था। इस खबर को सुनकर बाबा दीपसिंहजी ने पाच हजार शहीदी के इच्छुक सिखों को लेकर गिलजई पठानों पर अमृतसर मे चढ़ाई की थी। आपने प्रतिज्ञा की थी कि अपना सिर दरबार साहब की सेवा मे ही चढ़ेगा किन्तु मुसलमानी सेना अमृतसर से ६ कोस के फासले पर आ गई। इस तरह बाबा और उनके साथियों को इतने जोर का युद्ध करना पड़ा जिससे अमृतसर तक लाश पर लाश पट गई। उनकी इस मार काट से गिलजई पठान तिलमिला उठे और शाह जमाल नाम के पंजहजारी सेनापति ने बाबा दीपसिंह जी पर हमला किया। बाबा ने शाह जमाल को तो मार गिराया किन्तु सिर उनका भी कट गया। फिर भी वे सिर को हथेली पर रखकर बराबर उस समय तक लड़े जब तक कि दरबार साहब के पास न पहुँच गये।

बाबा दीपसिंह के साथ लडाई मे सरदार रामसिंह, सज्जनसिंह, बहादुरसिंह, अक्खडसिंह

और हीरासिंह भी थे, जो हजारों गिलजइयों को दोजख पहुँचा कर शहीद होगये। इन सब महावीरों के स्मृति स्थान अमृतसर में बने हुए हैं।

जिस समय बाबा दीपसिंह जी इस पवित्र शहीदी के लिये चले थे। सरदार नत्थासिंह जी को मिसल का अधिपति घोषित कर गये थे।

जिस समय बाबा दीपसिंह जी और उनके उपरोक्त साथी शहीद हुए थे। उस समय भाई गुरुबख्शसिंह और दुर्गासिंह आनन्दपुर में थे। इस खबर को सुनते ही मय दो हजार सिख सैनिकों के आ पहुचे। उधर तैमूरशाह ने भी काबुल से कुछ सेना अमृतसर के गिलजइयों की मदद के वास्ते भेज दी थी। इन काबुली पठानों के साथ-साथ मुलतान और रोहतास आदि के भी पठान मिल गये। इस तरह मुसलमानों का दल बीस हजार सैनिकों से भी ज्यादा हो गया। इस दल के आने के पूर्व ही भाई गुरुबख्शसिंह ने अपने सैनिकों को खालसा दलों के साथ मिलकर दुर्रानियों के मुकाबिले पर भेज दिया और खुद ३० आदमियों के साथ अकाल बुङ्गा मे ठहर गये। जब यह पता लगा कि दुर्रानी दल अमृतसर की ओर बढ़ा चला आ रहा है तो आपने अपने धर्म स्थानों की रक्षा के लिये अपने आपको शहीद होने का अरदासा सोधा और तैयार हो बैठे। ज्योंही दुर्रानी दरबार साहब के नजदीक पहुँचे। भाई गुरुबख्शसिंह और उनके तीस साथियों ने दुर्रानियों पर हल्ला कर दिया। काजी नूरमुहम्मद ने जो इस समय दुर्रानी दल के साथ था। अपनी पुस्तक "जंगनामा" मे लिखा है कि, "यह तीस सिख गुरु पर कुर्बान होने के लिये बिना किसी खौफ और खतरे के दुर्रानियों पर आ टूटे और अपनी जानें कुरबान कर गये।"

भाई गुरुबख्शसिंह की यादगार मे बना हुआ शहीदगंज अमृतसर में गुरुद्वारा अकाल बुंगा की पिछली ओर है।

शहीदों की मिसल के इन बहादुरों के बाद सुधसिंह, सूबासिंह और प्रेमसिंह ने क्रमशः बाबा दीपसिंह, गुरुबख्शसिंह और बसन्तसिंह के रिक्त स्थानों की पूर्ति की।

चूकि सुधसिंह ने बाबा दीपसिंह जी का स्थान ग्रहण किया था। इसलिये यह बिल्कुल सम्भव था कि वे उनके पद चिह्नों का अनुकरण करते। हुआ भी यही वे भी पठानों से युद्ध करते हुए शहीद हो गए। इनकी जगह मर्दानागॉव जिला लाहौर के जाट चौधरी बीरसिंह के पुत्र करमसिंह ने ग्रहण की।

करमसिंह एक होनहार और योग्य सरदार था। वह समस्त शहीदी जत्थों का सरदार बन गया और प्राय. मिसल पति भी वही बन गया। अपनी बहादुरी से उसने शाहजादपुर, माजरी और केसरी के इलाके अपने कब्जे मे कर लिये। केसरी को अपना निवास स्थान बनाया और शाहजादपुर अपने भाई धर्मसिंह के सुपुर्द कर दिया। कुछ वर्ष के बाद जब धर्मसिंह गुजर गया तो कर्मसिंह शाहजादपुर मे आ गया और अपने भाई की बेवा माई देसा को बड़ा गॉव रहने को बता दिया। चन्द दिन के बाद देसा भी चल बसी। इस तरह कुल इलाका कर्मसिंह के ही अधिकार मे अविच्छिन्न रूप से आ गया और इस तरह से उसकी एक लाख प्रति वर्ष की आमदनी हो गई।

दमदमा साहब के पास रानिया में एक नौ मुस्लिम राजपूत जाबताखां नामी हाकिम था। सिखों के साथ सदैव ही उसकी खटपट रहती थी। सरदार कर्मसिंह के नेतृत्व मे सिखों ने उस पर चढ़ाई कर दी। जाबिता खां घबरा गया, और उसने बारह गांव[1] दादू, धर्मपुरा, रामपुरा, तिलोकेवाला, केवल

१. यह गांव कालावाली स्टेशन के इर्दगिर्द थे।

तेहुना, पक्का आदि कखर गुरुद्वारे के लिये इस शर्त पर दे दिये कि आपके सिख उसकी हुकूमत के गाँवों में कोई हमला न करेंगे। इन गाँवों मे से सात गाँव अब तक गुरुद्वारे से माफी मे लगे हुए हैं। जिनकी आमदनी, छत्तीस सौ रुपया सालाना के करीब थी।

जलालाबाद लुहारी का नवाब बड़ा दुष्ट आदमी था उसने एक ब्राह्मण स्त्री को जबरन अपने घर मे डाल लिया था। सिखों के पास जब ब्राह्मण पुकारा तो उनके दल के दल जलालाबाद पर चढ़ दौडे। इन आक्रातात्रों ने सरदार कर्मसिंह को ही अपना नेता चुना। इस लडाई मे कर्मसिंह ने अपनी वह योग्यता दिखाई कि जलालाबाद पर विजय प्राप्त हो गई।

इसने अपनी बहादुरी और चतुराई से रनखंडी और बडवा जमई के इलाके पर भी जो कि सहारनपुर के जिले मे थे, कब्जा कर लिया था। इन इलाकों से करीब एक लाख सालाना की आमदनी होती थी और यह इलाके लगभग ३० वर्ष तक इसके अधीन रहे।

जितने भी दिनों यह बहादुर सरदार जिया, योग्यता और बहादुरी से अपनी जाति की तरक्की की और धर्म स्थानों को उन्नत किया। उनसे जागीरें लगवाई इस प्रकार एक लबे अर्से तक देश और धर्म की सेवा करके यह सरदार इस संसार से प्रस्थान कर गया।

सरदार कर्मसिंह के बाद उसका बेटा गुलाबसिंह मिसल का अधिपति बना किन्तु गुलाबसिंह कतई अयोग्य आदमी निकला। वह आलस पूर्ण जीवन बिताता रहा। इसका फल यह हुआ कि जब अंग्रेजों ने मालवे की ओर अपनी भूमि का बन्दोबस्त कराया तो बिना ही खून खराबी के इसके इलाके को भी अपने राज्य में मिला लिया। और इसे चन्द गाँवों का जागीरदार मान लिया।

संवत १६०१ वि० मे गुलाबसिंह का देहांत हो गया और उसका लड़का शिवकृपालसिंह जागीर का मालिक बना। इसने पूरी वफादारी के साथ हर समय अंग्रेजों का साथ दिया। सवत १८३६ की सतलज की लड़ाई और संवत १८१४ के गदर सबमे अंग्रेजों का पक्ष लेकर इसने वफादारी का तगमा हासिल किया।

संवत् १६२८ मे शिवकृपालसिंह मर गया और उसका लडका जीवनसिह वारिस बना। जीवन सिंह भाग्य का बली था। उसकी शादी पटियाले के महाराज महेन्द्रसिंह जी की लडकी बिचित्र कौर के साथ हो गई, जिससे उसे बीस लाख के करीब का माल मिला।

अंग्रेजी हुकूमत के आने पर भी इनके अधिकृत इलाके का एक बड़ा भाग इनके पास रहा जो जागीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस मिसल के सस्थापक सरदार कपूरसिंह जी जाट जमीदार थे जोकि फैजुल्लापुर के रहने वाले थे। जिस समय कपूरसिंह जी ने उन्नतावस्था प्राप्त की, उस समय आपने अपने नगर के नाम को बदल कर सिंहपुर रख दिया। इसी कारण से यह मिसल फैजुल्लापुरिया और सिंहपुरिया दोनों नामों से मशहूर है।

सिंहपुरिया मिसल

सरदार कपूरसिंह ने अपने भाई दीवानसिंह समेत अमृतसर जाकर सिख धर्म की दीक्षा ली थी। इस दीक्षा मे और भी अनेकों जाट जमीदार शामिल हुए थे।

आपने सिख धर्म मे दीक्षित होकर दीवान दरबारासिंह के साथ मिलकर एक मिसल की स्थापना की और फिर मुसलमानों का प्रतिशोध करने पर कमर कस ली। सरदार कपूरसिंह की बहादुरी के लिये कहा जाता है कि वह रणक्षेत्र मे मस्त हाथी की तरह विचरते थे। तलवार और तीरों के जख्मों से

उनका सारा शरीर छलनी होगया था। उन्हें इस वात पर गौरव भी था। उनकी वरावर और किसी के शरीर पर इतने घाव नहीं आये थे। न तो उन्होंने कभी अपनी जान की परवाह ही की और न कभी रण से कदम ही हटाया।

धर्म-प्रेम और वर्म-प्रचार की भी उनके अन्दर भारी मात्रा और लगन थी। हजारों ही आदमियों को विना किसी भेद भाव के उन्होंने अपने हाथ से अमृत चखा के सिख वनाया।

इस प्रकार की धर्म लगन और वीरता के कारण सिखों के हृदय पर उनकी गहरी छाप लगी थी। उनके जमाने के सभी सिख उन्हें इज्जत की निगाह से देखते थे। वे यह निस्संकोच स्वीकार करते थे कि वल, पौरुष और धर्मशीलता में कपूरसिंह सर्व सिखों के अग्रणी हैं। और यही कारण था कि लाहौर के नवाव ने सन्धि स्वरूप सिखों के सर्व सम्मत नेता को एक लाख की जागीर और नवाव का खिताव देना मंजूर किया तो सर्व सिखों ने कपूरसिंह को ही वह खिताव और जागीर दिलाई।

जागीर और खिताव के मिलने के वाद नवाव कपूरसिंह जी की इज्जत और भी वुलद हुई। पटियाला के संस्थापक राजा आलासिंह जैसे प्रतिष्ठित लोगों ने भी कपूरसिंह से ही सिख धर्म की दीक्षा ली।

पिंड ठीकरी मे जहा पर कि नवाव कपूरसिह ने अपना निवास स्थान वनाया था। राजा आलासिंह जी ने कपूर-कूप की स्थापना की थी।

यद्यपि कपूरसिंह जी अपने पास केवल तीन ही हजार सवार सैनिक रखते थे और यह सैनिक कई सिख मिसलों के सैनिकों से वहुत कम थे किन्तु फिर भी वहादुरी और, शूरता मे कभी भी वे पीछे नहीं रहे।

सतलज के चढ़ाव के ओर से इतने इलाके पर कपूरसिंह जी ने कब्जा कर लिया था जिसकी आमदनी छ. लाख प्रति वर्ष होती थी। उन्होंने दिल्ली और सतलज के वीच के अनेकों मुसलमान हाकिमो को उनके अत्याचारों के कारण दंड दिया था।

शूरवीर की अपेक्षा नवाव कपूरसिंह धार्मिक पुरुष अधिक थे। इसी कारण वे अपना अमूल्य समय यों ही न विताकर अधिकतर सिख धर्म के प्रचार मे खर्च करते थे। यह सही है कि इस प्रकार की वृत्ति रखने के कारण धन दौलत और रियासत कई वातों मे आपकी मिसल कई मिसलों से छोटी थी किन्तु आपकी इज्जत फिर भी प्रत्येक मिसलपति से अधिक थी। यह वात नहीं कि केवल साधारण सिख आपको अपना अग्रणी समझते हों किन्तु जत्थेदार और मिसलों के अधिपति भी आपको वुजुर्ग समझते थे।

एक मुसलमान लेखक[१] ने नवाव कपूरसिंह के सम्वन्ध मे अपने खयालात इस प्रकार जाहिर किये हैं:—"नवाव कपूरसिंह ऊंचे कद, चौड़ी छाती वाला, स्वस्थ, सुन्दर और तेजस्वी सिख है। दानी भी प्रथम श्रेणी का है, उसका अखंड लगर चलता है। जिसमें गरीवों को हर समय प्रसाद मिलता है। रण में सदैव ही उसे विजय प्राप्त हुई हैं।"

इस तरह से लगभग ३४ साल वहादुरी और धार्मिकता का जीवन व्यतीत करके नवाव कपूरसिंह संसार से प्रस्थान कर गये। उन्होंने अपनी मृत्यु से पहले अपनी सरदारनी और इलाके को अपने छोटे भाई खुशालसिंह को जिसे कि उन्होंने दत्तक पुत्र मान लिया था। सुपुर्द किया और धार्मिक नेतागिरी अपने शागिर्द सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया को प्रदान की।

१. मौलवी वूड्ढनशाह।

कपूरथले के महाराजा रणजीतसिंह जी ने समयान्तर मे नवाब कपूरसिंह जी की एक समाधि भी वावा अटल के पास निर्माण करा दी थी। जो कि अकाली आन्दोलन मे वहाँ से उठा दी गई।

नवाब कपूरसिंह के वाद उनके भाई खुशहालसिह ने भी अपनी शक्ति भर गरीवों के हित, धर्म-प्रचार मे कोई वात उठा नहीं रक्खी। अत्याचारियों को सजा देने मे भी खुशहालसिंह कभी पीछे नहीं रहे। अनेकों लोगों को सिख धर्म की दीक्षा भी दी।

अपना इलाका वढ़ाने के मौकों से भी खुशहालसिंह ने वरावर लाभ उठाया। एक वार हमला कर सिखों ने सरहिन्द के हाकिम जैनखा को मार डाला और उसके ५२ लाख के इलाके पर कब्जा कर वैठे तो खुशहालसिह ने भी उसमे से कटोला, घनोली और भरतगढ आदि डेढ़ लाख के इलाकों पर कब्जा कर लिया।

इसी प्रकार सरदार खुशहालसिंह ने जालंधर के नवाव शेख निजामुद्दीन को हराकर जालधर पर कब्जा कर लिया और उसी को अपनी राजधानी वनाया। वलंदगढ, हैवतपुर, पट्टी और वहरामपुर आदि इलाके उस समय जालंधर से सवंधित थे। जिनकी सालाना आमदनी लगभग तीन लाख रुपये थी। इन सभी पर खुशहालसिह का अधिकार होगया।

इसके वाद महाराजा पटियाला की मदद से भी वनूध और जसत आदि नगरों पर भी कब्जा कर लिया इन नगरों पर उस समय रायकोट का रईस काविज था।

सारांश यह है कि खुशहालसिंह ने अपने भाई से पाये हुये वैभव को कम नहीं होने दिया अपितु वढ़ाया ही। इस प्रकार राज्य और धन का सग्रह तथा धर्म का प्रचार करते हुये खुशहालसिंह इस ससार से प्रस्थान कर गये।

कहा जाता है उनका देहावासान किला लमडे के भीतर हुआ था।

खुशहालसिह के वाद उनका लड़का वुधसिह उनका उत्तराधिकारी हुआ।

गुरु अर्जुनदेव जी के जीवन चरित मे हम इस वात का जिक्र कर चुके हैं कि तरनतारन में वनवाने के लिये गुरु जी ने जो ईंटे तैयार कराई थीं। वे नूरुद्दीन नाम के मुसलमान हाकिम ने उठवा कर अपनी हवेली मे लगवा ली थीं। सरदार वुधसिंह ने अपने हाथ मे शक्ति आते ही नूरुदीन के मकानों को गिरवा कर उसकी सभी ईंटे तरनतारन के निर्माण के लिये उठवा लीं।

उसने महाराजा रणजीतसिंह जी की उन सभी लड़ाइयों मे सहायता की जो उन्होंने मुल्तान और कसूर को अपने राज्य में मिलाने के लिये लडी थीं। किन्तु खेद है कि कुछ वातों को लेकर महाराजा रणजीतसिह और सरदार वुधसिंह मे मतभेद खड़ा होगया। जिसके कारण वह लाहौर को सदैव के लिये नमस्कार करके सतलज के इस पार आगये।

अपने पिता के वाद उन्हीं के पद चिह्नों पर चलते हुये २१ वर्ष के पश्चात सरदार वुधसिंह जी भी इस ससार से विदा होगये।

सरदार वुधासिंह जी के सात वेटे थे, वे सभी आपस मे मुहव्वत रखनेवाले और समझदार थे, महाराजा रणजीतसिह जी ने केवल डेढ़ लाख का इलाका उनके लिये रहने दिया था, वाकी का सव जव्त कर लिया था। उसे उन सवने प्रेम पूर्वक वाट लिया। ताकि परस्पर कोई झगड़ा न हो। भरतगढ़ का इलाका सव से वड़े लड़के अमरसिंह ने अपने पास रक्खा और घनोली भूपालसिंह को मनोली गोपालसिंह को वगा लालसिंह को वेला हरदयालसिंह को अटलगढ़ गुरदियालसिंह को कन्टोला दयालसिंह को

दे दिया। इस प्रकार परगनों के बट जाने से सब अपनी-अपनी जागीर में रहने लगे।

कुछ साल बाद अमरसिंह भी संवत १६०४ विक्रमी में मानेश्वर के पास इस दुनिया से विदा हो गये। अंतिम समय में अमरसिंह बहुत सुस्त रहने लग गये थे। उन्हे दुनिया बिल्कुल नीरस जान पड़ने लगी थी। कारण कि उनके एकलौते पुत्र कृपालसिंह का उनके ही आगे देहान्त हो गया था।

अमरसिंह के संतान हीन मरने के कारण उनकी जागीर पर आपस मे झगड़ा हुआ। सरदारी मनोली के अधिपति जयसिंह जी को मिल गई और आगे के लिये तय हुआ कि यदि इस खान्दान का कोई रईस लावलद मरे तो एक हजार सालाना तो उसकी वेवा को उस जागीर मे से खर्च दिया जाव। वाकी मे से आधा उत्तराधिकारी को, आधा शेप हिस्सेदारों को बांट दिया जावे।

आगे चल कर इनकी अटलगढ़, बंगा और वेला की रियासतों का भी इसी नियम के अनुसार बटवारा हो गया।

संवत १६३४ वि० में मनोली के सरदार जयसिंह जी का भी स्वर्गवास हो गया। उनके वाद उनका अन्यपुत्र अवतारसिंह अपनी रियासत का मालिक बना और लगभग १६ वर्ष तक इस संसार मे दिन गुजरान करके संवत् १६५३ मे वह भी चलाना कर गया।

अवतारसिह के लड़के के पास बाग-बगीचे जमीन और व्याज आदि से लगभग अस्सी हजार सालाना की आमदनी थी।

घनोली में जो वारिस बनाया गया था। उसके उत्तराधिकारी सरदार उत्तमसिंह प्रतापसिंह के पास भी १७-१८ हजार की आमदनी की जागीर शेप रह गई थी। कंदोले के सरदारों फूलासिंह, हरवंशसिंह और शमसेरसिंह के पास छ-छ हजार की जागीरें रह गई थीं।

मनसूर नामक गॉव में चौधरी साहबराय जी रहते थे। उनके दसौंदासिंह और संगतसिंह[1] नाम के दो पुत्र थे। जब वे दोनों जवान हुए और उन्होंने देखा कि मुसलमान हाकिमों के अन्यायऔर अत्याचार से चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है और अन्याय का शोध सिखों के जत्थे कर रहे हैं तो दोनों भाइयों के हृदय में सिख जाति और सिख धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। और दोनों ही भाई दीवान दरबारासिंह से अमृतपान करके सिख बन गये। इनके साथ ही कैरों गॉव का जयसिंह और ढंडकसेल (परगना तरनतारन) के कौरसिंह मानसिंह भी सिख धर्म मे दीक्षित हो गये थे। यह सब सम्बन्धी तथा मित्र थे, और देशभक्ति की लगन हृदय मे रखते थे।

निशानवाली मिसल

दसौंदासिह और संगतसिह ने आरम्भ में अपना एक छोटा-सा जत्था बनाया था किन्तु धीरे-धीरे इनकी शक्ति बढ़ती ही गई।

जहॉ कहीं सिख सेनायें आक्रमण करने जाती थीं। वहां इनका दल झंडा लेकर चलता था। उर्दू भाषा में झंडे को निशान कहते हैं, अतः पंजाब मे निशान वाले के नाम से इनकी मिसल निशानवालिया के नाम से मशहूर हुई।

सैनिकों की संख्या बढ़ाने मे इन्होंने सब से ज्यादा ध्यान दिया और यहॉ तक बढ़ाई कि इनके अंतिम दिनों में इस मिसल में बारह हजार के लगभग सैनिक हो गये थे।

जहाँ भी सिख मिसलें इन्हें मदद को बुलातीं, वहींप हुँचते। यहां तक सरहिन्द, मेरठ और कसूर

१. संगतसिह का गांव जिला अम्बाले में है ऐसा नारंग ने लिखा है।

के मुहासरों मे भी इन्होंने भाग लिया और अपनी ताकत के जोहर दिखाये। इन्हें बुलाया भी प्राय सभी मुहासरों में जाता था। अपनी योग्यता और वहादुरी से इन्होंने अपनी एक अच्छी रियासत भी कायम करली थी। जिसमे सिघावाला, साहनेवाल, सरायलश्करीखॉ, दोराहा, सौटी, अलमोह, जीरा, लिद्दड, अम्वाला और शहावाद आदि इलाके शामिल थे। इस रियासत की राजधानी इन्होंने अम्वाला मे रक्खी थी।

जावित खा से लड़ते हुए इस मिसल का अधिपति सरदार दसौंगसिंह मारा गया। इसलिये मिसल का अधिपति उसका छोटा भाई संगतसिह हुआ।

सगतसिंह ने अपनी राजधानी अम्वाला शहर के चारों ओर कोट वनवाना शुरू किया क्योंकि सगतसिंह जानता था कि यदि मजवूत गढ़ वन गया तो राज भी मजवूत हो जायगा। किन्तु अम्वाला में रहने से इसका स्वास्थ्य विगड गया। वहां की आवहवा अनुकूल न पड़ी। इसलिये संगतसिंह को अम्वाला छोड कर अपने लिये जीरे के पास सिन्घावाला मे जगह वनवानी पड़ी किन्तु राज के प्रवध के लिये भी आवश्यक था कि अम्वाले मे कुछ फौज और कोई विश्वस्त सरदार रहता इसलिये सगतसिंह ने अपने सम्वन्धी गुरुवख्शसिंह और लालसिंह को वुला कर अम्वाला का प्रवन्ध उनके सुपुर्द कर दिया।

सगतसिंह का स्वास्थ्य सिन्घावाले में भी कुछ अधिक न सुधरा और इसका फल यह हुआ कि वह भी अपने भाई के केवल ६ वर्ष ही वाद इस ससार से विदा हो गया।

गोकि सगतसिह के तीन लडके थे किन्तु तीनों ही नावालिग थे। इसलिये संगतसिंह के ससुर निधानसिंह ने आकर रियासतका प्रवध संभाला। निधानसिंह खुसरपुरा का रहनेवाला प्रतिष्ठित सिख था।

संगतसिंह के तीनों लड़कों के नाम कपूरसिंह, मेहरसिंह और अनूपसिंह थे। उनके नाना निधानसिंह के आने से वे अपनी रियासत के छिन जाने के भय से भी मुक्त हो गये थे। निधानसिंह भी चतुर आदमी था। वह सिंघावाले की वजाय अम्वाले मे ही रह कर कुल रियासत का प्रवंध करने लगा। गुरुख्वशसिंह को ध्यानसिंह के हाथ मे रियासत रहने से कोई प्रसन्नता न थी। वह संगतसिंह के लड़कों से भी प्रसन्न नहीं रहता था। सिंहावाले मे लडकों की देख रेख और माल जायदाद की निगरानी के लिये जयसिंह को मुकर्रिर कर दिया गया था।

ध्यानसिंह ने मेहरसिह को रियासत के कुल अधिकार सौप दिये। क्योंकि इस समय वह वालिग हो चुका था। अधिकार प्राप्त होने पर मेहरसिंह भी अम्वाले मे रहने लगा और ध्यानसिंह सिंघावाल मे आ गया।

राज्य का लोभ वुरा होता है। सगे भाइयों मे इसके ऊपर तलवारें चल जाती हैं। फिर गुरुवख्शसिंह तो केवल रिश्तेदार ही था। संगतसिंह ने उसे वढ़ाया था और निधानसिंह ने उसे घटाया। अव मेहरसिंह के अधिकारी हो जाने पर तो एक वड़े नौकर से ज्यादा उसकी हैसियत नहीं थी।

मेहरसिह मार डाला गया। जव यह समाचार निधानसिंह के पास पहुँचे तो वह आगवबूला हो गया और सिखों का एक वड़ा दल लेकर गुरुवख्शसिंह को दण्ड देने के लिये अम्वाले पर चढ़ाई कर दी। किन्तु चूकि उधर भी तो सिख ही थे और अम्वाला का परकोटा भी खड़ा था। इसलिये निधानसिंह गुरुवख्शसिह को हरा नहीं सका और उसे निराश होकर सिंघावाले को लौटना पडा। गुरुवख्शसिंह अम्वाले के इर्द-गिर्द के इलाके का स्वतन्त्र मालिक वन वैठा।

संगतसिंह का दूसरा लड़का कपूरसिंह मय अपने लड़के फतेसिंह व दयालसिंह के साथ लड़ता हुआ मारा जा चुका था। तीसरा लड़का सराय लश्करीखॉ के इलाके पर कब्जा किये बैठा था और वह उसे ही अपने लिये बहुत समझता था। इसलिये गुरुवख्शसिंह को उससे भी कोई खटका नहीं था।

अनूपसिंह के पास सराय लश्करवाली ग्यारह हजार सालाना आमदनी की रियासत थी। वह आगे उसकी स्त्री दयाकौर के हाथ मे आ गई क्योंकि अनूपसिंह ने मरते समय कोई संतान नहीं छोड़ी थी। दयाकौर आठ नौ वर्ष तक अपने इलाके का प्रवन्ध भली प्रकार चलाती रही। किन्तु आगे महाराजा रणजीतसिंह जी ने उसके गुजारे का प्रवन्ध करके कुल इलाके को अपने राज्य में मिला लिया।

इस समय तक गुरुवख्शसिंह मर चुका था और दयाकौर ही उस के इलाके पर काविज थी। इसलिये अम्बाले का इलाका भी महाराजा ने अपनी सल्तनत मे मिला लिया और वहां का प्रवन्ध दीवान मुहकमचंद के द्वारा होने लगा।

यह वही भाग्यशाली मिसल है। जिसमे आगे चलकर पंजाव केसरी महाराजा रणजीतसिंह जी का जन्म हुआ था।

सुकरचकिया मिसल

इस मिसल का संस्थापक चौधरी भागू का लड़का बुद्धा (बुड्ढा) सिंह था। युवावस्था में गुरु गोविन्दसिंह से अमृतपान करके इसने सिख धर्म की दीक्षा ली थी। बुड्ढासिंह ने शस्त्र संचालन भी गुरु गोविन्दसिंह जी से ही सीखा था। जिन दिनों महावीर वन्दासिंह पंजाव मे आये तो यह भी उनके दल में शामिल हो गया।

बुड्ढासिंह के पास वढ़िया घोड़ी थी। जिसका नाम देसी या देसू था। यह घोड़ी दिन में सौ सवा सौ कोस की मंजिल वड़ी आसानी से तय कर सकती थी। इस प्रकार के तुरंग के मालिक सरदार बुड्ढासिंह को भी लोग 'बुड्ढासिंह देसी वाला' कहने लग गये थे।

सरदार बुड्ढासिंह के दो पुत्र थे। नौधसिंह और चन्दासिंह। दोनों वहादुरी और अक्लमन्दी मे अपने पिता से कम नहीं थे। ऐसा मालूम होता था कि एक ही सिंहनी ने दो शेर पैदा किये हैं।

वहॉ जाकर इन्होंने अपने पुराने गॉव को जो अव तक वरवाद हो चुका था। नये सिरे से वसाया और उसका नाम सुकरचक रक्खा कि आगे इसी कारण इनकी मिसल का नाम भी सुकरचकिया होगया।

धीरे धीरे इन लोगों ने सुकरचक के आसपास के इलाके पर अपना कब्जा कर लिया।

आगे सरदार बुद्धासिंह मजीठे गॉव के निकट पठानों से लड़ता हुआ मारा गया। साथ मे वड़ा लड़का नौधसिंह भी इसी लड़ाई में शहीद होगया।

नौधसिंह के एक लड़का था। नौधसिंह के मरने के समय उसकी उम्र २३ साल की थी। नाम था उसका चड़तसिंह।

चड़तसिंह वचपन से ही योद्धा प्रकृति का पुरुष था। उसने सोलह वर्ष की उम्र से ही लड़ाइयों मे अपने जौहर दिखाना शुरू कर दिया था।

जवानी मे पिता के स्वर्गवास के वाद अपने चाचा के साथ मिलकर इसने अपना दल वढ़ाया और थोड़े ही समय मे ३०० सैनिक अपने जत्थे मे भरती कर लिये।

सरदार चड़तसिंह ने गुजरांवाला के मुसलमान हाकिम पर चढ़ाई कर दी और उसे निकालकर पर अपना अधिकार जमा लिया।

चड़तसिंह ने गुजरांवाला में एक किले का भी निर्माण कराया। क्योंकि अव वह सदैव के

लिये इस स्थान को वह अपने कब्जे में रखना चाहता था। मातृभूमि का मोह ही ऐसा होता है।

इन्हीं दिनों चड़तसिंह ने अन्य सिख मिसलों से सहायता लेकर लाहौर पर चढ़ाई की। उस समय लाहौर में उवेदुल्लखॉ सूबेदारी करता था। वह सिखों की मार न सह सका और हार गया।

लाहौर की शोध करके चड़तसिंह ने स्यालकोट की ओर मुँह फेरा। यहाँ नूरुद्दीन नाम का मुसलमान हाकिम था। चड़तसिंह की चढ़ाई की खबर सुनते ही वह स्यालकोट को छोड़ कर जम्मू की ओर भाग गया। यहाँ की शोध करके चडतसिंह ने यहाँ का प्रबंध सरदार दलसिंह के सुपुर्द कर दिया और आप गुजरांवाला लौट आया। अब उसके पास एक हजार सवारों का रिसाला होगया था।

नूरुद्दीन पजाब से भागकर कावुल मे तैमूरशाह के पास पहुँचा था। अमीर तैमूर ने उसे बीस हजार सेना और १२ तोपे देकर गुजरान वाले पर कब्जा कर लेने के लिये भेजा। नूरुद्दीन ने इस विशाल सेना के साथ गुजरावाला को चारों ओर से घेर लिया।

सरदार चड़तसिंह ने कई महीने तक किले के भीतर वैठकर शत्रुओं का मुकाविला किया, किन्तु जव शत्रु के हटने के कोई आसार नहीं दीखे तो सरदार झंडासिंह भगी और जस्सासिंह अहलूवालिया के पास सहायता का संदेश भेजकर उन्हे बुला लिया। जव वे सिख सेनाये आगई तो दुश्मन को वीच में घेर कर ऐसा किया कि दुश्मन भागते ही वना और उसका लड़ाई का वहुत सारा सामान सिखों के हाथ लग गया। कहा जाता है। इस लड़ लड़ाई मे तीन हजार मुसलमान मारे गये। और कई तोप हाथी और घोड़े वह छोड़ भागे जो महासिंह के कब्जे मे आ गये।

इस विजय के वाद सरदार चड़तसिंह का साहस दुगणित हो गया और थोडे दिन ही पश्चात् उसने वजीरावाद को फतह करके अपने सोहरा सरदार गुरुबख्शसिंह के सुपुर्द कर दिया। दूसरे वर्ष रोहतास पर चढ़ाई की। यहाँ इन दिनों सर बुलंदखॉ सूवेदार था। विजय चड़तसिंह की हुई। वुलदखॉ किला छोड़कर भाग गया।

यह किला बड़ा विस्तृत और मजबूत था। इसे शेरशाह ने हुमायू को भगा देने के वाद वनवाया था। तीन वर्ग मील में इसका पक्का परकोटा था।

इसके वाद सरदार चड़तसिंह मे धनी चकवाल, जलालपुर, पिंड दाननखां, और कोट राया आदि स्थानों पर कब्जा कर लिया। इसी समय लूण, मियाणी अलीपुर का इलाका जीतकर अपने जातीय भाई दलसिंह को दे दिया। पिंड दादनखॉ मे एक किला वलवाने की आज्ञा देकर निधानसिंह और कपूरसिंह को वहाँ का प्रवन्धक नियत कर दिया।

बुधसिंह और गोरसिंह नामके दो सरदारों को भी पिंड दादनखॉ में ही किला वनाने के काम मे मदद देने के लिये छोड़ दिया।

लूण मियानी की खानों से लून निकलता था। उसे खपाने के लिये सरदार चड़तसिह ने रामनगर में एक मंडी की स्थापना की।

इस प्रकार से चड़तसिंह का प्रभाव दिनों दिन वढ़ता जाता था। और अपने वढ़ते हुये प्रभाव से चड़तसिंह भी लाभ उठाने में कमी नहीं चूकता था। उसने देखा कि ऐमनावाद के नवाव को भी इस समय जीत लेना अच्छा ही होगा। इसलिये उस पर भी चढ़ाई करदी और हाकिम को हराकर उसे भी अपने राज्य में मिला लिया।

उन दिनों जम्मू मे रनजीतदेव राज्य करता था, किन्तु उसके घर में कलह थी। वह अपने छोटे

लड़के दलेलचन्द को राज देना चाहता था। बड़ा लड़का ब्रजराजदेव इसे अपने प्रति अन्याय समझता था। इसीलिये सरदार चड़तसिंह और सरदार हकीकतसिंह, जयसिंह कन्हैया से मदद मागी। सरदार चड़तसिंह उनकी मदद के मय कन्हैया सरदारों के जम्मू पर चढ़ दौड़े। रणजीतदेव ने अपने को इस प्रकार आफत मे फंसा देखकर भंगी सरदार झंडासिंह को अपनी मदद के लिये वुला भेजा। जफरवाल के पास चक ऊदो के मैदान मे घनघोर युद्ध हुआ। लड़ाई चल रही थी कि गर्म होजाने के कारण सरदार चड़तसिंह की वन्दूक फट गई। जिससे वह सख्त घायल हुए और इस ससार से चल वसे।

सरदार चड़तसिंह के मारे जाने पर भी लड़ाई वरावर चालू रही। सरदार झंडासिंह भी किसी की गोली से मारा गया। राजा रंजीतदेव झंडासिंह के मारे जाने से घवरा गया और उसने वेटे ब्रजराज को राजी कर लिया। वापवेटे दोनों ने अपने २ सहायकों को हर्जाने का रुपया देना स्वीकार करके वापिस लौटा दिया।

सरदार चडतसिंह के दो लड़के और एक लड़की थी। जिनके नाम महासिंह, सहजसिंह और राजकौर थे। राजकौर की शादी भंगी सरदार गूजरसिंह के साथ और महासिंह की शादी जीन्द नरेश गजपतिसिह की पुत्री के साथ हुई थी। पिता की मृत्यु के समय महासिंह की उम्र केवल १२ वर्ष की थी। इसलिये उनकी रियासत की सरपरस्ती सरदार जयसिह कन्हैया ने की, जोकि चड़तसिंह का पक्का दोस्त था।

महासिंह अपने पिता की भॉति ही वहादुर आदमी था। उसने समर्थ होते ही भंगी मिसल के साथ मुल्तान पर चढ़ाई की और वहॉ से लौटकर रास्ते मे अहमदावाद के निकट धारापिंड मे अहमदखॉ से युद्ध किया। अहमदखॉ के पास एक वढ़िया तोप थी, जो अहमदशाह की तोप के नाम से मशहूर थी। उससे छीन लिया।

इसके वाद सरदार महासिंह ने भट्टियों की पिंडी, साहीवाल, ईसाखेल और मूसाखेल नामक स्थानों पर कब्जा कर लिया।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि महासिह की वहिन वीवी राजकौर का विवाह गूजरसिंह के साथ हुआ था। यह विवाह महासिंह ने अपने ही हाथों से किया था। इस विवाह के वाद महासिंह की शक्ति और वढ़ गई। गूजरसिंह के इलाके लाहौर के ऊचाई का तीसरा हिस्सा और गुजरात का पूरा इलाका था।

महासिंह की शक्ति से यथासंभव लाभ उठाया। रोहतास लोहारा की कोटली और रामदासपुर आदि के रईसों को जीतकर उनसे भेंट हासिल की। जिसने अधीनता स्वीकार नहीं की उसीके इलाके को अपने अधीन कर लिया। इस तरह कई महीने तक का धावा रहा।

रसूलनगर में पीर मुहम्मद नाम का एक मुसलमान हाकिम था। वह दिखावटी तौर पर महासिंह से मेल रखता था किन्तु था मुसलमानों का पक्षपाती। महासिंह उस पर विश्वास रखता था। इसी विश्वास के आधार पर अहमदावाद से जीती हुई तोप भी उसने पीर मुहम्मद के यहॉ अमानत के तौर पर रख दी थी किन्तु जव तोप की आवश्यकता हुई तो पीरमुहम्मद तोप देने से नट गया। महासिंह को उस पर वड़ा गुस्सा आया और उसने उस पर चढ़ाई करके तोप ही नहीं हासिल की किन्तु रसूल-नगर को भी कावू मे कर लिया।

रसूलनगर की इस लड़ाई मे महासिंह को तीन महीने लग गये थे। यहीं पर उसे अपने घर पुत्र होने का समाचार मिला। यही पुत्र आगे रणजीतसिंह के नाम से जगद् विख्यात हुआ। रणजीतसिंह के जन्म की तिथि सवत १८३७ के माघ मास की वताई जाती है।

पीर मुहम्मद को उसकी रियासत से महासिंह ने कतई खारिज कर दिया और रसूलनगर का नाम भी बदल कर राम-नगर रख दिया। उसके दूसरे नगर अलीपुर का नाम अकालगढ़ रख कर इस कुल इलाके को अपने राज्य मे मिला लिया और यहाँ का प्रवन्धक दलसिंह को मुकर्रिर किया।

आगे के दिनों मे सरदार महासिंह ने जम्मू को भी फतह कर लिया था। यह लडाई सरदार हकीकतसिंह कन्हैया के बुलाने पर महासिंह को लड़नी पडी थी। कारण यह था कि जब व्रजराज जम्मू की गद्दी पर बैठा था तो उसने हकीकतसिंह से वायदा किया था कि मैं तीस हजार सलाना कर स्वरूप तुम्हे देता रहूँगा किन्तु उसने दो वर्ष तक एक पाई भी नहीं दी। मागने पर साफ इनकार कर दिया। हकीकतसिंह को व्रजराज की इस वायदा खिलाफी पर गुस्सा आया और उसने महासिंह को लिख भेजा कि मैं जम्मू पर चढ़ाई कर रहा हूँ। तुम आकर मेरी मदद करो। जब व्रजराज ने देखा कि महासिंह भी चढ़ कर आया है तो वह जम्मू से भाग गया। इधर शहर के लोगों ने महासिंह की फौज के साथ गुस्ताखी की। इससे विगड कर महासिंह ने नगर पर हमला कर दिया। साथ ही उसे अपने कब्जे में भी ले लिया और अपने एक सरदार को वहाँ छोड दिया।

महासिंह लौट कर गुजरांवाला आ गया किन्तु उसे इस वात पर रंज हुआ कि जयसिंह खुद जम्बू पर चढ़ाई करते समय नहीं गया।

इस रंज की माया यहाँ तक वनी कि एक वार दिवाली पर अमृतसर के मेले मे दोनों ओर से कहा सुनी हो गई और मजीठे गॉव के पास एक हल्की सी, झडप भी हो गई।

महासिंह ने जस्सासिंह रामगढ़िया को पंजाव मे वुला लिया और वटाले के पास एक युद्ध मे जव जयसिंह का पुत्र गुरुवख्शसिंह मारा गया तो उसने निराश होकर हथियार डाल दिये।

इन दिनों के वीच मे व्रजराज देव पुन जम्मू आ गया था और वहाँ से सिख सवारों को निकाल कर शहर को रोनक दे रहा था। जव यह खवर महासिंह को मिली तो उसने फिर जम्बू पर चढ़ाई की। और वहुत सारा सामान राजा का अपने कब्जे मे किया।

सरदार गूजरसिंह के मर जाने के वाद महासिंह ने उसके इलाके को अपने कब्जे मे करने के लिये उसके किले पर चढाई कर दी। उस समय गूजरसिंह का लडका साहवसिंह लाहौर गया हुआ था। किले के अन्दर की फौज काफी हिम्मत के साथ लड़ रही थी। अत सहज ही फतह नहीं हुई। इसी वीच मे महासिंह वीमार हो गया और गुजरानवाले को लौट पडा किन्तु रणजीतसिंह और दलसिंह किले का घेरा डाले ही पडे रहे। इधर जस्सासिंह रामगढिया ने मौका पाकर रणजीतसिंह की फोज पर हमला करने की तैयारी कर दी। रणजीतसिंह वालकपन मे भी कितना समझदार था। यह इस वात से पता चल जाता है कि इस खवर को सुनते ही उसने तुरन्त घेरा उठा लिया और रास्ते मे पहुँच कर अचानक जस्सासिंह की फौज पर ऐसा हमला किया कि वह भाग खड़ी हुई।

इन्हीं दिनों रणजीतसिंह जी को खवर मिली कि तुम्हारे पिता का देहान्त हो गया है। इस खवर को सुनते ही वह वापिस गुजरांवाला आ गये और अपने पिता का संस्कार किया।

महासिंह के वाद रणजीतसिंह जी अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए।

रणजीतसिंह जी ने अपने समय मे जो भी कुछ किया, वह एक स्वतंत्र गाथा है। इसलिये अव उनका हाल आगे दूसरे अध्याय में लिखेगे। वे नराधिपति नहीं उत्तर भारत के राष्ट्रपति वन गये थे। इसलिये सुकरचकिया मिसल का हाल मिसल के रूप मे यहीं समाप्त हो जाता है।

पिता की मृत्यु के समय रणजीतसिंह जी की अवस्था छोटी थी। इसलिये उनकी परिवारिश उनकी सासु सदाकौर को सरपरस्ती मे हुई थी। जब तक कि वह वालिग होकर स्वतंत्र नहीं हो गये थे। तब तक सुकरचकिया मिसल का भी प्राय (एक प्रकार से) उनकी सासु के हाथ मे ही नेतृत्व रहा था और उसने बडी बुद्धिमानी के साथ कन्हैया और सुकरचकिया दोनों मिसलो की सयुक्त शक्ति से अपने वैभव को बढ़ा लिया था।

यह वह मिसल है जिसके उत्तराधिकारियों के पास सन् १९४८ तक पटियाला, नाभा और जीन्द जैसे गौरवशाली राज्य मौजूद रहे है। इन रियासतों के अधीश्वर अपने को यादव के वंशज मानते है और यह भी कहते है कि एक समय जैसलमेर के भाटी और हमारे बुजुर्ग एक ही थे। इस विपय मे तो पूरा प्रकाश आगे के अध्यायों में डालेगे यहा तो केवल मिसल फूल का ही वर्णन करना चाहते हैं।

फुलकिया मिसल

इस मिसल के सस्थापकों के पूर्वज चौधरी फूल मोहन के वेटे रूपा के सुपुत्र थे। पंजाव के जाटों मे सिद्धू एक प्रसिद्ध गोत्र है आप उसी गोत्र मे संवत् १६८८ वि० मे पैदा हुए थे। आपकी माता जी का नाम शिवो था जो कि जटियाना गोत्र की थीं।

चौधरी फूल के पिता मेहराज नामक प्रसिद्ध वस्ती में रहते थे। पिता के मर जाने के वाद उनके चाचा कालू ने उनकी सरपरस्ती की। यह जमाना गुरु हरिराय जी का था। जव गुरु जी मालवा मे पधारे थे तो जिस समय वे मेहराज में ठहरे हुए थे। गुरु जी ने फूल और उनके छोटे भाई को वरदान दिया था कि तुम्हारी संतान राजपाट वाली वनेगी।

फूल वचपन से ही सियाने और होनहार थे। वे साधु सतों मे अच्छी श्रद्धा रखते थे।

ऐसे होनहार वालक को उनका चाचा कालू भी खूव प्यार करता था। जव उसने एक वस्ती मेहराज से अलग आवाद की तो उसका नाम भी अपने भतीजे के ही नाम पर रक्खा। पिंड फूल आवादी का नाम था। इस समय तक फूल की अवस्था पन्द्रह वर्ष की हो चुकी थी। अव वे अपने घर के धधों मे खूव दिलचस्पी लेने लगे थे। अपने गाव के चौधरी और करवाहक वे खुद ही थे सूवेदार ने उन्हे अपना कार्य वाहक स्वीकार कर लिया था इससे चौधरी फूल की आर्थिक हालत खूव ही अच्छी हो गई।

चौधरी फूल ने दो शादियां की थीं। एक ढिलवां के गॉव के चौधरी जीते का लड़की वाली और दूसरी साधना जाटों की लड़की राजो थी। वाली के उदर से तिलोका, रामा, रघु, नाम के तीन लडके उत्पन्न हुए थे। राजो से केवल तीन पुत्र हुए जिनके नाम चेते, झंडा और तख्तमल थे।

राजो की संतान के लोग गुमटी मे रहते है और लोड़घरिया नाम से याद किये जाते है।

वड़ी चौधराइन वाली के पुत्रों मे से तिलोका के वंशज रियासत नाभा और जीन्द के धनी है। रामा की सतान के हाथ मे पटियाला का राज्य है और कुछ वडोर, मलोदा, रामपुर और कोटरूनी आदि मे आवाद हैं। रघु की संतान जीवक मे वास करती है।

चौधरी फूल ने अपनी सपत्ति से पचासों घोड़े और सैंकड़ों हथियार खरीद कर सौ सवा सौ आदमियों की एक सैनिक टुकड़ी वना ली थी। उसी से उसने मुक्तसर के पास के फखरसर थोड़ी के रईस हयातखॉ नौमुस्लिम भट्टी राजपूत को शिकस्त दी, वह भटनेर की ओर भाग गया जो उसका सदर मुकाम था।

कोट ईसा के रईस ईसाखॉ ने जव यह ससाचार सुना तो वह चौधरी फूल के गॉव पर एक वड़े गिरोह के साथ चढ़ आया। चौधरी फूल को अपना गॉव छोड़ना पड़ा। गॉव के छूट जाने के कारण कई

महीने तक चौधरी फूल को इधर-उधर भटकना पड़ा किन्तु अन्त मे जाट लोगों का एक बड़ा गिरोह बना कर उसने अपने गॉव को पुन अपने अधिकार मे कर लिया। और एक वर्ष तक चुप रह कर दूसरे वर्ष फिर फखरसर थेडी पर हमला किया। इस बार जम कर लडाई हुई। जिसमे हयातखॉ के दो लडके मुहब्बत खॉ और महबूब खॉ मारे गये। हयातखॉ भटनेर को भाग गया। ईसाखॉ भी चुप रहा।

इस विजय से चौधरी फूल की कीर्ति चारों ओर फैल गई और चौधरी ने भी उस सारे इलाके पर अपना अधिकार जमा लिया और साथ ही सैनिकों की संख्या भी बढ़ानी शुरू कर दी।

जब कुछ अच्छी शक्ति बढ़ गई तो मालगुजारी देने से भी उन्होंने इनकार कर दिया। इन इलाकों का हाकिम जगरांव का रईस था।

चौधरी फूल की इस प्रकार की उत्तरोत्तर शक्ति के बढाव को मुसलमान हाकिम भला कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। जगराव के हाकिम ने पिंड फूल पर आक्रमण किया किन्तु वह इस आक्रमण में विफल हुआ और चौधरी फूल ने उसे कैद कर लिया।

यह समाचार विद्युत वेग की तरह चारों ओर फैल गया। सरहिन्द के नवाब को चौधरी फूल का यह हौसला बर्दाश्त नहीं हुआ उसने चलाकी से काम लिया और चौधरी फूल को धोखे से सरहिन्द बुला लिया और फिर कैद मे डाल दिया। उसने चौधरी फूल को धोखा देने के लिये खबर भेजी थी।

"उधर के परगनों का ताल्लुकेदार आपको बनाना चाहता हूँ। इसलिये यहाँ आकर सनद ले जाओ।"

नवाब सरहिन्द ने चौधरी फूल को अपने जेल मे डालकर उन्हे नहीं छोड़ा। हालाकि वे पिछला बकाया देने पर भी राजी हो गये थे। अत मे जेल मे ही यह मर गये।

उनके शरीर त्याग के सम्बन्ध मे एक कौतुहल वर्द्धक यह गाथा प्रसिद्ध है कि वे मरे नहीं थे किन्तु चूंकि उन्होंने बचपन मे एक योगी से प्राण विद्या सीख ली थी। इसलिये उन्होंने प्राणों को ब्रह्माड मे चढ़ा लिया। नवाब ने उन्हे मृतक समझ कर परिवार वालों के हाथ सौंप दिया। परिवार वालों ने उन्हे समाधिस्थ कर दिया।"

यह भी कहा जाता है कि उनकी बड़ी चौधराइन होती तो वह उन्हे समाधिस्थ नहीं करने देती क्योंकि वह तो उनके योग सम्बन्धी कौतुकों से परिचित थी। किन्तु वह उस समय अपने मायके मे थी और उसे उस समय पता चला, जब उनकी समाधि पर स्थान का निर्माण भी हो चुका था। जब छोटी को यह सारा भेद मालूम हुआ तो उसे बड़ी लज्जा आई और वह फूल गॉव का ही छोडकर अपने एक रिश्तेदार सुक्खा बैराड़ के गॉव चली गई।

चौधरी फूल के बाद उनका बड़ा लड़का तिलोका अपने गॉवों का चौधरी और मालगुजार मुकर्रिर हुआ।

अपने दादा रूपा के गॉव को फिर से आबाद किया। यह गॉव गुरुगोविन्दसिंह साहब के समय मे और उन्हीं के आदेश के अनुसार बसाया गया था। किन्तु चौधरी फूल के पिंड फूल मे आजाने के कारण रूपे गॉव की आबादी भी इधर उधर हो गई थी। तिलोका और भाई रामा दोनों ही अपने पिता की तरह बहादुर आदमी थे। इनकी बहादुरी से गुरु गोविन्दसिंह जी भी बड़े प्रसन्न थे और इन्हे गुरु गोविन्दसिंह जी ने अजमेरचन्द के साथ होने वाली लड़ाई मे अपनी तरफ से लड़ने के लिये बुलाया भी था। उस निमन्त्रण पत्र की नकल इस प्रकार है—"सत गुरु सहाय। भाई तिलोका भाई रामा, संगत गुरु

रक्खेगा। तुसी असवार लैकर आउण हजूर साडे जरूर जमीअत लैके आउणा तुसां ऊपर साडी खुशी महरवानगी है। इक जोड़ा भेजा है रखावना, तुसा आवनां। २ भाद्वे संवत १७५३ वि०"

कहा जाता है आगे चल करके किसी कारण वश तिलोका और रामा दोनों भाइयों मे अनवन हो गई। इससे रामा चन्द सवार अपने साथ लेकर पिंड रूपा से दूसरी जगह चले गये।

अपने भाई से अलग होने के वाद सव से पहले उन्होंने हसनखां भाटी मुसलमान को दंड दिया। यह अपने गिरोह के साथ घूम कर हिन्दुओं को लूटा करता था। जव कि वह समाज के इलाके को लूटकर लौट रहा था, चौधरी रामा ने उसे झंडू गाँव के पास घेर लिया और इस प्रकार झपट हुई कि हसनखा और उसके साथी लूट के तमाम माल असवाव और पशुओं को छोड़कर भाग गये। भाई रामा ने पशु तो उन लोगों को वापिस कर दिये जिनके वे थे और धन दौलत अपने पास रक्खी तथा साथियों को वॉट दी। इसके वाद और भी आदमी भर्ती किये और अच्छा खासा दल हो जाने पर ईसाकोट पर हमला किया। ईसा खां भी मुकाविले पर आकर खूब लड़ा खूब ही हाथ दिखाये किन्तु ईसा खा की हार हुई और उसे कोट से वाहर भाग जाना पड़ा। चोधरी रामा ने कोट की लूट कराली और वहॉ भी जो पशु मवेशी डाके मे लाये हुये थे। सव को खुलवाकर देहातों में भिजवा दिया।

चौधरी रामा की इन वहादुरियों और गरीव परस्ती से लोगों के दिलों मे उसकी इज्जत वैठ गई और सैकड़ों नौजवान उसके हो गये।

इसके वाद चौधरी रामा ने अपनी ससुराल ढिआली को अपना निवास स्थान वनाया। उनका ससुर नानूसिंह भी एक प्रतिष्ठित और हिम्मत का आदमी था। वह पहले तो घनस नामक गॉव मे रहता था। ढिआली पर तो उसने कब्जा किया था। उसकी एक लड़की साहवकौर थी। यही चौधरी रामा को व्याही थी।

ससुराल मे रहकर चौधरी रामा ने आरम्भिक दिनों मे यही काम किया कि जो भी डाकू लोग कहीं से भी किसी का माल चुराकर लाते। रामा उन पर हमला करता और फिर उनसे लूटे हुये माल को असल मालिकों को वापिस कर देता। उसके इस काम से रात दिन उसकी कीर्ति और शक्ति दोनों वढ़ रही थी।

चौधरी रामा के छ लड़के थे। दुनासिंह, सम्भासिंह, आलासिंह, वख्तावरसिंह, लद्धासिह और वुड्ढासिंह उनके नाम थे।

इनमे आलासिंह वड़े प्रतापी और ऐश्वर्य्यवान हुये। इनका जन्म सवत् १७४८ विक्रमी मे हुआ था और २३ साल की अवस्था मे इन्होंने अपने पिता के जत्थे का स्वामित्व ग्रहण कर लिया। भगतू खान्दान के सरदारों की मित्रता से आलासिंह जी ने खूव लाभ उठाया। उन्हे अनेकों लड़ाइयों मे भी साथ रक्खा।

संवत् १७८६ मे जव कि पंथ खालसा मालवे मे दौरा कर रहा था तो नवाव कपूरसिंह से जो कि एक सजातीय प्रसिद्ध सिख थे आलासिंहजी ने सिख धर्म की दीक्षा ली और अमृत चखकर सिंह वन गये।

सरदार आलासिंह जी ने एक लंगर भी जारी कर दिया और उन समस्त गॉवों को फिर से आवाद करना शुरू कर दिया, जो मुसलमान भाटियों के जुल्म से वर्वाद हो गये थे।

सरदार आलासिह ने अपने पिता का वदला भी चैनसिंह के लड़कों से लेने में ढिलाई नहीं की। गुमटी गॉव मे जहॉ कि वे व्याह मे आये थे। हमला कर दिया इसमे चैनसिंह के दो लड़के वीरू और

कमला मारे गये। उग्रसैन पहाड़ों की ओर भाग गया। इनके गाँव को भी आलासिंह ने उजाड़ दिया।

इसके बाद सरदार आलासिंह ने सघेड़ा का अपने अधीन किया। यहाँ का हाकिम नया-नया मुसलमान था। वह चाहता था कि मेरे इलाके के सारे हिन्दू मुसलमान हो जावे। थोड़े ही दिन में उसने अपने इलाके मे त्राहि-त्राहि मचा दी। हिन्दू भागकर सरदार आलासिंह के पास आये। सरदार आलासिंह ने पचास सवारों को भेजकर उस हाकिम को तो निकाल दिया और निगाहीसिंह को वहाँ का थानेदार बना दिया। रायकोट के हाकिम राय कल्हा को यह बात बुरी लगी। उसने एक तगड़ा सैनिक दल लेकर आलासिंह द्वारा नियुक्त थाने पर हमला किया किन्तु इस बीच सरदार आलासिंह भी एक सैनिक जत्था लेकर आ पहुँचे। दोनों ओर से तीन चार घटे डटकर लडाई हुई। इस लडाई में राय कल्हा का सेनापति गोसमुहम्मद मारा गया और सघेड़ा आलासिंह के ही कब्जे मे रहा।

पधौड़ नाम का कस्बा भी जो कि एक पुरानी आबादी था। आलासिंह ने जीत लिया और अपने बडे भाई दुनासिंह को सौंप दिया।

बरनाला पजाब की एक पुरानी वस्ती है। वह आलासिंह के समय मे उजाड पडी थी। सवत १७७५ मे आलासिंह ने उसे आबाद किया और अपनी राजधानी भी वहीं स्थापित करली। इसके पास के लोगोवाल, उभयवाल और नमेल आदि गाँवों को भी अपनी रियासत मे मिला लिया। इस प्रकार आलासिंह के पास अब एक छोटी सी और स्वतन्त्र रियासत वन गई थी। जिसकी आमदनी लगभग एक लाख रुपये की थी।

इस प्रकार एक दिन वह आया। जिसमे उसे भारत विजेता अहमदशाह और मुगल सम्राट मुहम्मदशाह दोनों की ही ओर से किन्तु अलग २ इरादो से राजा का खिताब मिल गया और इसी भाति उधर जीन्द और नाभे की भूमि पर भी चौधरी फूल के दूसरे वंशज रियासतें स्थापित करने मे समर्थ हो रहे थे। इस प्रकार फुलकियाँ अब मिसल से आगे रियासतों के रूप मे बदल रही थी। अत यहीं पर इस मिसल का वर्णन समाप्त करते है और आगे के अध्यायों मे फुलकियन स्टेट्स पर प्रकाश डालेंगे।

इस खानदान का वह सरदार जो सिख उरूज के समय चमका सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया था। आरम्भ मे सरदार जस्सासिंह ने सिंहपुरिया मिसल के जाट सिखों के साथ मिलकर अपने को विकसित किया था। नवाब कपूरसिंह की सेवा मे रहकर जस्सासिह एक बुद्धिमान और योद्धा सरदार बन गया था। नवाब कपूरसिंह ने अतिम समय मे पथ की धार्मिक बागडोर जस्सासिंह को सौंपी। सरदार जस्सासिंह अपने मामा बागसिंह के उस गिरोह के भी अधिपति हो गये। जो उसने हल्लोवालिया सिखों का बना लिया था और अपने स्वतन्त्र जत्थे को भी उसमे मिला दिया। इस प्रकार यह मिसल अहलूवालिया कहलाने लगी।[1]

अहलूवालिया

नवाब कपूरसिंह जस्सासिंह पर भर पूर स्नेह करते थे। उन्होंने अस्त्र शस्त्र विद्या मे जस्सासिंह को खूब निपुण किया था। जस्सासिंह भी कपूरसिंह जी की बड़ी श्रद्धा से सेवा करता था। एक बार वर्षा की रात में जब नवाब कपूरसिंह ने पूछा कि पहरे पर कौन है ? यही उत्तर मिला "जस्सासिंह।" इस प्रकार

१ सरदार जस्सासिंह के पूर्वज आहलू गाँव के रहने वाले थे। इसलिये आहलू-वाले या अहलूवालिये कहलाये और इनके बुजुर्ग पेशा से कलाल थे। किन्तु अब तमाम कलाल अहलूवालिया शब्द की प्रसिद्ध के कारण अपने आपको अहलूवालिया कहलाते है।

की कर्तव्यनिष्ठा देख कर नवाव कपूरसिंह जस्सासिंह से वड़े प्रसन्न हुए। नवाव कपूरसिंह ने जस्सासिंह को घोड़ों का दाना वॉटने पर नियत कर रक्खा था, चूंकि वचपन से जस्सासिंह लगभग १२ वर्ष देहली मे माता सुन्दरी जी के पास रहे थे और यहीं पढ़े लिखे थे। अत. उनकी वोली ही उर्दू हो गई थी। और इस कारण से आपको आदमी 'हमको' 'तुमको' को सुन कर वहुत चिढ़ाया करते थे। एक दिन इस तरह से तग किये जाने पर आप नवाव कपूरसिंह के पास रोते-रोते आये और कहने लगे महाराज मुझसे इन लोगों के घोड़ों को दाना-वांट नहीं हो सकता। इस पर नवाव साहव ने मुस्करा कर कहा। गुरु गोविन्दसिंह के पथ मे तो सेवा से ही मेवा मिलता है। मुझे तो इन्होंने पखा झलने की सेवा करते-करते उठाकर नवाव वना दिया है। आपको शायद वादशाह ही वना दें।

मिसलपति वनने के वाद थोड़े ही समय मे जस्सासिंह ने अपनी वहादुरी, कौमी प्यार और भले स्वभाव के कारण समस्त प्रतिष्ठित सिखों मे ऊंचा दर्जा प्राप्त कर लिया। नवाव कपूरसिंह के वाद मे जस्सासिंह का पद गिना जाने लगा।

शरीर की लम्वाई चौड़ाई और खुराक मे जस्सासिंह शायद सव से आगे थे। सिख इतिहासकारो ने लिखा है कि आधे वकरे के मास को अकेला ही खा जाता था। जैसी उसकी खुराक थी। पौरुप भी वैसा ही था। लड़ाई के समय मे उसका घोडा दुश्मनो के गोल मे ही दिखाई देता था। जव नादिरशाह दिल्ली मथुरा और वृन्दावन आदि को लूट कर वापिस जा रहा था। इसी जस्सासिंह ने सिख दलों को आवाहन किया और उस पर हमला करके उसका वहुत सा वोझ हल्का कर दिया। इस प्रकार भारत की संपत्ति को भारत में ही रखा।

रोड़ी साहव के मुकाम पर सिख दलो पर हमला करनेवाले जसपतराय के सिखों द्वारा मारे जाने के वाद नवाव अदीनावेग, दीवान लखपतराय और लाहौर के सूवेदार मीर मन्नू ने सिखों को वर्वाद करने पर कमर वॉध ली थी। उस समय भी सरदार जस्सासिंह ने वुद्धिमानी और वहादुरी के काम किये। अदीना-वेग से काफी टक्करें लेने के सिवा अमृतसर के सारे इलाके पर अधिकार कर लिया। उसने दीवान कोड़ामल को भी मदद दी।

सरदार जस्सासिंह ने फतिहावाद मे अपनी दूसरी शादी की। फिर जीन्द और पटियाला के राजाओं की अनुमति लेकर झज्जर, रोहतक, वेरी, नारनौल को कब्जे मे कर लिया। कुछ इलाका मालेर कोटला के पठानों से भी छीन लिया।

इसके वाद जस्सासिंह ने फिर पूरव की ओर धावा के लिये मुंह फेरा और जलालावाद, मेरठ, चंदौसी, अलीगढ़ आदि से वहुत सा धन लूटमार कर लाए।

कन्हैयालाल ने 'तारीख पजाव' मे लिखा है कि जव मथुरा वृन्दावन के मन्दिरों को ढाने और कत्ले आम के वाद अहमदशाह अव्दाली वहॉ से २२ हजार स्त्री वच्चो को गुलाम वनाने के लिये कावुल की ओर ले जा रहा था और किसी को उससे मुकाविला करके इन वन्दियों को छुड़ाने का साहस न हुआ और जव उनके वारिसों ने अमृतसर अकाल तख्त के सामने खालसा जी के एक दीवान में पुकार की तो जस्सासिंह ने उनको छुड़ाने के लिये एक दल के साथ दुर्रानियों पर धावा वोला और उन स्त्री वच्चों को छुड़ा कर और अपने खर्च पर उनके घरों को भिजवा दिया।

करतारपुर के गुरुद्वारे को नासिरअलीखॉ नाम के मुसलमान अफसर ने ढाह दिया था। सरदार जस्सासिंह ने जव कि अदीनावेग हार, झक मार कर उनका दोस्त वन गया था। करतारपुर गुरुद्वारे की

मरम्मत करादी और कुछ जागीर भी अदीनावेग के इलाके मे से ही लगवादी।

जब कि अहमदशाह ने हिन्दुस्तान पर हमला किया था और अलीगढ़, हाथरस वगैरह को लूटकर काबुल को जारहा था। उस पर सरदार जस्सासिंह ने सिख जत्थों की मदद से हमला किया था।

सन १७५३ मे नवाब कपूरसिंह का स्वर्गवास होगया। अमृतसर मे सभी जत्थेदार इकट्ठे हुए और उन सभी ने पंथ की जत्थेदारी का दस्तार सरदार जस्सासिंह को ही सौंपा, इससे भी उसकी काफी इज्जत वढ़ी।

इसके वाद फीरोजपुर जिले के डोगरा और भट्टियों के इलाके मुलावाला और मुक्खो पर कब्जा करके उन स्थानों पर किले वनवा दिये। कोट ईसाखॉ को भी जोकि इसी इलाके मे है, फतह किया। नारायणगढ़ की ओर प्रस्थान करके उसे भी जीता और पश्चात् कपूरथला के जागीरदार इब्राहीम से खिराज वसूल किया और फिर इसी साल दुर्रानिओं को अमृतसर से निकालने मे सिख दलों की अगुवाई की।

जिस समय अहमदशाह दुर्रानी देहली से फिरता हुआ लाहौर मे अपने पुत्र तैमूरशाह को छोड-गया और वख्शी जहानखान को सहायक बना गया तो उसका और अदीनावेग हाकिम जालधर का वैमनस्य होगया। तैमूरशाह ने अदीनावेग के इलाके को अपने मातहतों के अधीन करने के लिये एक सेना दुआवे मे भेजदी। अदीनावेग इस समय भागकर शिवालक की पहाड़ियों मे पहुँचा और वहाँ सोडी वडभागसिंह द्वारा सिखों से सहायता की याचना की। जस्सासिंह अहलूवालिया ने खालसा दलो को शामिल होकर तैमूरशाह के हाकिम को जालंधर के नजदीक परास्त करके भगा दिया। इसी समय अदीनावेग ने मराठों को भी अपनी सहायता के लिये बुला लिया था।

जब लाहौर पर सिखों ने कब्जा कर लिया तो जस्सासिंह को "सुल्तानउलकौम" व वादशाह के लकब से पुकारने लगे। इसपर यहाँ के कुछ मौलवियोंने अहमदशाह के गुस्से को सिखों के विरुद्ध भड़काने के लिये कुछ ऐसे सिक्के ढ़लवाये। जिन पर फारसी मे यह शव्द लिखे थे।

"सिक्कजद दर जहाँ व फजले अकाल।
मुल्के अहमद गिरफ्त जस्सा कलाल।।"

सन १७६१ मे दुर्रानी पजाव पर चढ़ आया और पानीपत की लड़ाई मे मराठों को परास्त करके उत्तरी भारत से निकाल दिया। इस समय अव्दाली ने सिखों को कुछ न कहा, किन्तु अगले साल वह फिर पजाव की ओर चढ़ आया। इस समय सिख अपने स्थायी शत्रुओं को शोधने के प्रयत्नों में संलग्न थे और जदियाले को घेर रक्खा था। दुर्रानी ने लाहौर पहुँचकर एक वड़ा लंबा चक्र लगाया। ताकि जदियाले पर घेरा डाले हुये सिखों को घेर सके। परन्तु जव सिखों को उसका पता लगा तो उन्होंने यह समझ कर कि दुर्रानी उसके वाल वच्चों और वृद्धों की टोह पाकर लक्खी जंगल की ओर वढ़ रहा है जदियाला का घेरा उठा लिया और लक्खी जगल की ओर इस आशा से चल दिये कि यहा से अपने स्त्री वच्चों और वृद्धों को निकाल कर आनन्दपुर की पहाडियों मे पहुँचा आये। और फिर निश्चिन्त होकर दुर्रानियों का मुकाबिला करें। परन्तु लक्खी जगल से स्त्री वच्चों को निकालकर कुप और कहीडा नामी ग्रामों के पास से गुजर रहे थे तो खवर पाकर दुर्रानियों ने इन पर धावा बोल दिया। सिख सैनिकों की गिनती केवल दो अढाई हजार थी। और वाकी वीस बाईस हजार की संख्या मे सिख स्त्रियां और वालक वच्चे थे।

सैनिकों ने इनकी रक्षा के लिये व्यूह बना लिया। परन्तु इन बीस बाईस हजार स्त्री, बच्चों और वृद्धों के इर्द गिर्द दो ढाई हजार सैनिक कोई दृढ़ घेरा न बना सके थे। इससे यह इनकी रक्षा न कर सके। शत्रुओं की तीस बत्तीस हजार से ज्यादा सेना व मुलखइयों ने जब इन पर हमला किया तो सिखों का यह नाम मात्र का व्यूह स्वतः ही टूट गया और शत्रुओं ने स्त्री बच्चों और वृद्धों का कत्ले आम शुरू कर दिया। जिसमे कि कोई बीस हजार से ज्यादा जानें गाईं और सिखों की खून की नदियाँ वह निकलीं। सिख कौम के लिये यह इतना बड़ा भीषण घमासान था कि इतिहास मे यह घलुघारे के नाम से प्रसिद्ध है।

सिख सैनिकों के अधिपति इस समय सरदार जस्सासिंह ही थे। लड़ते २ जब दोनों ओर से सैनिक थक गये गये दोनों ही एक जोहड़ पर पानी पीने के लिये ठहर गये। इस समय सरदार सुकरचकिया सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया के पास पहुँचा और कहने लगा जिनकी रक्षा के लिये हम यत्न कर रहे थे। वह तो अब चल बसे, अब हमे पीछे हटने से क्या फायदा है। इस पर जस्सासिंह ने एकदम शत्रु पर हमला करने का आदेश दे दिया। झुझलाये हुये सिखों ने शत्रुओं पर इस प्रकार हमला किया कि वे सिखों को मार न सके और उनके पॉव उखड़ गये। अहमदशाह ने अपने दल को पीछे हटा लिया और शीघ्र चेत होजाने के कारण अपने दल को बचा ले गया। बावजूद इसके कि इस घलुघारे में सिखों की बीस हजार से ज्यादा जाने गई और कई खानदान तबाह होगये। परन्तु सिखों पर इसका निराशा जनक असर न पड़ा और उन्होंने जल्दी ही शक्ति संचय करके इसका प्रतिशोध करने के लिये सरहिन्द के हाकिम जैनखॉ पर धावा बोल दिया। क्योंकि घलुघार की बहुत कुछ जिम्मेदारी इसी के सिर पर थी। जिसने कि दुर्रानियों के साथ होकर सिखों पर हमला कराया था। जैनखॉ इस लड़ाई मे मारा गया। उसकी सेना मैदान छोड़कर भाग गईं। समस्त सूबा सिखों के हाथ लग गया। जिसे कि उन्होंने परस्पर बॉट लिया। कहते हैं कि जिस समय सिख सरहिन्द मे दाखिल हुये तो किसी ने कह दिया कि सरहिन्द सम्बन्धी गुरु जी का यह भविष्य है कि यहाँ गधो के हल चलाये जायेंगे, चुनाचे सिख सरदारों और गुस्से से भरे हुये सैनिक सिखों ने गुरु गोविन्दसिंह के मासूम बच्चों के कत्ल भूमि सरहिन्द को उजाड़ दिया और सिख सरदारों ने हलों मे गधे जोड़कर उस कथित भविष्यवाणी को पूरा किया।

सरदार बघेलसिंह आदि ने जिस समय देहली के कुछ हिस्सों पर कब्जा कर लिया था तो आप ही उनके लीडर थे।

इस समय तक जस्सासिंह की राजधानी कपूरथले मे जा चुकी थी क्योंकि पिछले वर्षो मे कपूरथला पठानों से छीन कर अपने राज्य मे शामिल कर चुके थे। कपूरथला मे राजधानी ले जाने से उसकी शक्ति मे और भी वृद्धि हुई थी, क्योंकि कपूरथला पहले से ही मशहूर शहर और सुदृढ़ गढ़ था।

सवत् १८४० में पेट के दर्द से वह चल बसा। चल बसा जरूर किन्तु अपने पीछे वह अपनी उदारता, वीरता और दानशीलता की कहानी भी छोड़ गया। जिसके कारण उसे आज तक याद किया जाता है और बराबर उस समय तक उसका नाम अमर रहेगा। जब तक कपूरथला जैसा प्रसिद्ध नगर मौजूद है।

सर्दार जस्सासिंह के कोई पुत्र न था। एक पुत्र संपत हुआ था किन्तु वह छः महीने का होकर ही मर गया था। दो लड़कियाँ थीं। जिनमे से एक तो फतहाबाद के मोहनसिंह के साथ ब्याही गई थी। और दूसरी का तुंग के अमरसिंह के साथ विवाह हुआ था। इस समय उसके सम्बन्धियों मे सरदार

भागसिंह ही ऐसा योग्य आदमी था। जो रियासत के काम को सभाल सकता था। वैसे वह हकदार भी था, क्योंकि रिस्ते मे जस्सासिंह का भतीजा होता था। इसलिये जस्सासिंह ने उसे अपने जीवन से ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था।

भागसिंह ने भी उत्तराधिकार पाकर अपनी रियासत को तरक्की ही दी और सैन्य दल को भी वढ़ाया। राज्य के सुप्रबन्ध के लिये उसने दो दीवान भी मुकर्रिर किये। जिनमे एक हिन्दू—वुद्धामल—और दूसरा मुसलमान—करीमदीन—था।

भागसिंह ने आरम्भ मे कुछ गलतियाँ भी कीं। फगवाडा और नूरमहल के इलाकेदारों से भेंट लेकर उसने गुरुवख्शसिंह को वेदखल किया और उसके वाद निकाई मिसल के सरदारों से सरकपुर का इलाका दवा लिया। वाद मे डल्लेवाली मिस्ल के हाथ से चमकौर को निकलवा कर वेदी खत्रियों को दिला दिया। इसके वाद ही गुलावसिंह भंगी से केवल इस वहाने पर कि उसके आदमियों ने हमारे नौकर को मार डाला है। तरनतारन और जडियाले को हथिया लिया।

सवत् १८५६ और १८५७ मे एक वार भागसिंह ने मय अपने वेटे फतहसिंह के सतलज की दक्षिणी पूर्वी पार आकर रामकोट, सहेड, खानपुर, हसनपुर, मजहेली, अलीपुर रुडकी, रुरहाली और खोजापुरी आदि की विजय की। जिससे वहुत सा सामान और धन प्राप्त किया।

यद्यपि पहले दो वार रामगढियों से लड़ाई लड़ी जा चुकी थी। फिर भी संवत् १८५८ मे उन पर चढ़ाई करदी। किन्तु कहा जाता है इस वार खोट रामगढ़ियों का ही था। उन्होंने इसके दुआवे वाले इलाके पर लूट पाट मचा दी थी। भागसिंह ने फगगड़ा के समीप रामगढ़ियों को घेर लिया किन्तु दैव उसके विपरीत रहा। पैर मे एक ऐसी गोली लगी, जिससे उसे वापिस कपूरथले आना पड़ा और चन्द दिन मे ही उसका देहान्त हो गया। इसके पीछे उसका लड़का फतहसिंह गद्दी का मालिक हुआ।

अपने पिता भागसिंह की मृत्यु के समय फतहसिंह की आयु केवल १६ वर्ष की थी। इसलिये रामगढियों ने यह सोचकर कि यह हमारा विगाड़ ही क्या सकेगा। उसके राज्य के जमीदारों को भड़का दिया। सठाला, वेताला के जमीदारों ने वगावत आरम्भ कर दी। किन्तु फतहसिंह कोई सुस्त लड़का न था इसलिये उसने अपनी सेना लेकर पहले तो रामगढियों के ही एक थाने चकदिता पर कब्जा किया फिर उन वागी जमीदारों को दड दिया।

इसके वाद तो फतहसिंह के भाग्य ने ऐसा जोर मारा कि वह हमेशा के लिये, दुश्मनों से सुरक्षित होगया। महाराजा रणजीतसिंह जी सरदार भागसिंह का शोक मनाने के लिये इसकी रियासत मे आये इसने उनके ठहरने का प्रवन्ध फतहावाद में कर दिया। इसकी आवभगत से महाराज वड़े प्रसन्न हुए और इसे पगड़ी पलटा दोस्त वना लिया।

महाराजा रणजीतसिंह का दोस्त वन जाने के वाद प्राय उनके साथ प्रत्येक लड़ाई मे शामिल रहा। उनकी मदद से सरहाली और चीमा के जमीदारो को भी दवाया।

जव महाराजा रणजीतसिंह ने कसूर पर चढ़ाई की थी तो वहाँ भी फतहसिंह था।

कसूर के इलाके को फतह करके महाराजा ने अमरसिंह मजीठिया को वहाँ का थानेदार मुकर्रिर किया था। यहीं से फतहसिंह ने चलकर झंग पर कब्जा किया और फगवाड़े के हाकिम से फगवाड़े को छीन लिया।

इस प्रकार कुछ ही दिनों मे पंज लासा और नारायण गढ़ पर भी कब्जा कर लिया और अपना

इलाका बढ़ाया। इसी बीच रामगढ़ियों ने राजा संसारचंद के साथ मिलकर फतहसिंह पर हमला किया किन्तु वे हार खाकर भाग गये।

होलकर और लार्ड लेक के बीच महाराजा रणजीतसिंह जी ने जो सुलह कराई थी। उसमे भी आपने सहयोग दिया। जिससे प्रसन्न होकर लार्ड लेक ने इकरार किया था। कि हम आप के राज्य मे कोई दखल न देंगे।

संवत् १८७५ मे आपके एक सुपुत्र पैदा हुये—जिनका नाम निहालसिंह रक्खा गया। यही कपूरथला के पहले सरदार थे। जिन्हे राजा का खिताब अंग्रेजो की ओर से मिला था। और तब से जत्थेदार और मिसल पति के बजाय यह खानदान राजवंश मे परिणित हो गया।

चूंकि आगे के किसी स्वतन्त्र अध्याय मे हमे रियासत कपूरथला का विस्तृत वर्णन करना है। अतः मिसल अहलूवालिया का वर्णन यहीं समाप्त करते हैं।

मिसलों के इतिहास का कुछ विवेचन

मिसले वास्तव मे मुस्लिम शासकों के उन रोमाचकारी अत्याचारों की प्रतिक्रियाये थीं। जो उन्होंने बन्दासिंह के मारे जाने के बाद सिखों पर किये थे। बन्दासिंह के साथ देने मे हजारों सिख अपने धर्म पर बलिदान हो चुके थे। इस समय उनका सैनिक दल नष्ट हो चुका था। फिर भी उन पर इतने भयानक अत्याचार हुए, जिनके याद आने मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मालूम ऐसा होता था कि मुसलमान हाकिमों ने उनका बीज-नाश करने की कसम खाली थी।[1] जैसा उन्हे गिरफ्तार करने, बर्बाद करने और सिर काट लेने के आम हुक्म जारी किये जा चुके थे। संसार के इतिहास मे एक भी मिसाल नहीं मिलती कि सिखों की तरह किसी तमाम कौम को कत्लेआम के हुक्म जारी हुये हों। और लगातार ४० साल से भी अधिक उसे इन मुसीबतों का सामना करना पड़ा हो। परन्तु यह आश्चर्यजनक बात है कि इतने लम्बे अर्से तलवारों के नीचे रहते हुये भी वह जीवित रहे। और तमाम सिख इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं जब किसी एक सिख ने भी लालच और दबाव से अपनी जान बचाने के लिये धर्म त्यागना स्वीकार किया हो। हालांकि—आम लोगों को यह हुक्म दे दिया गया था कि उनका सिर काटने, उन्हे गिरफ्तार करने वाले से हकूमत प्रसन्न होगी और उसे इनाम भी देगी। इससे भी सतोष न होने पर फौजों के दस्ते उन्हे मिटा देने के लिये गॉवो मे भेज दिये गये। इन परिस्थितियों ने उन्हे गॉव छोड़कर जंगलों और पहाड़ों मे भागे फिरने और जान बचाने के लिये मजबूर कर दिया किन्तु जंगलों और पहाड़ों मे भी अकेले-अकेले छिपने से काम नहीं चलता था। वरना इस प्रकार हर कोई उनका सिर काट लेता। अत. छिपने के लिये उन्हे जत्थे बना कर रहना पड़ा। दूसरे जगलों और पहाड़ों मे कोई खाने का तो प्रबन्ध था नहीं। खाने का सामान लेने के लिये भी उन्हे गॉवों मे ही आना पड़ता था। और उसे प्राप्त करने के लिये मजबूरन प्राय. छापे ही मारने पड़ते थे। इसलिये भी उन्हे जत्थे बनाने पड़े।

और प्राण तो उनके सुरक्षित रहे ही नहीं थे। इसलिये उन्हें यह भी निश्चय करना पड़ा कि जब प्राण तो एक दिन इन मुगल पठानों के हाथ जाने ही है। तब इनसे डरा भी क्यों जाय? जहाँ तक बने इनका शोध क्यों नहीं किया जाय। अत. वे कई २ जत्थे मिलकर आरम्भ मे छोटे २ पुन बड़े-बड़े भी मुसलमान रईसों और हाकिमों पर छापा मारने लगे और लूट के उस माल से अपने जत्थों को बढ़ाने लगे।

१ जैसा कि उन्होंने कई बार इस भाव की रिपोर्टें भी कर दी थीं कि पजाब से सब सिख खतम कर दिये गये है।

बस मुसलमानी' अत्याचारों का यह परिणाम हुआ कि सिखों मे जत्थे बन्दी की और साथ ही आक्रमण की स्प्रिट पैदा हो गई। और इसी स्प्रिट ने बलवती होने पर पंजाव से अत्याचारी मुसलमान राज्य को उखाड कर फेक दिया।

आरम्भ मे अनेकों छोटे २ जत्थे बने। किन्तु ज्यों २ वे संगठन के महत्व को समझते गये। त्यों ही त्यों कई-कई जत्थे मिलते गये और एक समय आया कि इनकी सख्या १२ रह गई।

सिखों पर होने वाले अत्याचारों ने जहाॅ पंजाव के सिखों की आत्मा मे तिलमिलाहट पैदा की थी। वहाॅ जत्थों की स्थापना और उनके द्वारा लिये जाने वाले प्रतिशोध ने पजावी हिन्दू नौजवानों की आत्माओ मे एक जागृति और सिख धर्म के प्रति एक आकर्षक श्रद्धा पैदा कर दी, जिसका फल यह हुआ कि हजारों हिन्दू नौजवान खास तौर से जाट वड़े वेग से सिख धर्म मे दीक्षित होने लगे और थोडे ही समय मे उतने से कई गुनी सख्या सिखों की हो गई। जितनी कि वन्दासिंह के पंजाव मे आने से पहले थी।

भय और अपमान सहन की जो आदत कई सदियों से हिन्दुओं मे घर किये हुए थी। वह उन अत्याचारों की लपट मे स्वाहा हो गई और आत्मविश्वास और निर्भयता इस जत्थे वन्दी की प्रथा मे आरोहण होने लग गई।

ज्यों ही अत्याचार दवने लगा और कार्य मे कुछ सफलता प्राप्त होने लगी, इन जत्थों के सचालकों और सदस्यों के हृदय मे स्व-सत्ता स्थापना की भावना प्रदीप्त होने लगी और जातीय स्वाधीनता पाने की उत्कट अभिलाषा से वह लोग उन्मत्त हो उठे। पहले जहाॅ उनके मन मे अनिश्चित भाव का डेरा था। इस समय वह दृढ़ निश्चय और अदम्य उत्साह मे वदल गया।

मुगल और पठान शासकों के जुल्मों से जहाॅ यह प्रतिक्रिया हुई। वहाॅ वह स्वयम भी जर्जर होने लग गये थे। इस समय ससार का सबसे वड़ा साम्राज्य मुगल साम्राज्य अन्त कलह और अन्तर्विप्लव से अध पतन की ओर वरावर जा रहा था। अविश्वासी मत्री और धर्मान्ध काजी उसे और भी खोखला वना रहे थे। मुगल साम्राज्य का यह अन्तर्दाह उन भग्न प्राण सिखों के लिये वहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ जिनकी शात आत्मा एक दम विद्रोही हो उठी थी।

इस जत्थे बन्दी की भावना ने उन्हे इतना दुस्साहसिक वना दिया था कि दिल्ली को धूल मे मिला देने वाले नादिरशाह और मराठा शक्ति को पानीपत मे भस्मसात करने वाले अहमदशाह को भी इन्होंने नाक चने चवा दिये थे। जो सीधे सादे और शांत जाट कल तक खेती करते थे। अव अपने मे आगे बने हुये सिखो से अमृत पान करके और जत्थो मे शामिल होकर चिड़ी द्वारा वाज को मरोड देने की गुरु गोविन्दसिंह जी की उक्ति को पूरा कर रहे थे। यह गुरु नानक आदि से गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रचारित सिख धर्म का चमत्कार था।

अमृतसर मे वार-वार नया प्रवंध मुसलमान शासक करते थे किन्तु ये जत्थे वार-वार ही वहाॅ आकर जग करते और प्रवधक को मार कर या भगा कर ही दम लेते। जव भी जी मे आता दस वीस और पचास के गिरोह मे आते और हरि मन्दिर मे पूजा करने लग जाते। तालाव में स्नान करते। इसके वदले मे कुछ कैद होते, कुछ मारे जाते। किन्तु सवक क्या लेते यह नहीं कि वहाॅ जाने पर जान का खतरा है वल्कि यह कि वहाॅ मरने से शहादत प्राप्त होगी।

शहीदी तो एक वाजी की चीज वन गई थी। कौन आगे रहे शहीदी के लिये इन जत्थों मे यह होड-सी रहती थी। वावा दीपसिंह के तो दल का ही नाम शहीदों की मिसल पड़ गया था। कैसा

था यह अद्भुत धर्म-प्रेम ? और कैसा था विचित्र जौहर ? यदि गुरु के बाग और जैतो की घटनायें हमारे सामने नहीं होती तो शायद इस प्रकार की सीमा से बाहर की शहादत की अद्भुत गाथाओं पर लोग विश्वास भी नहीं करते. किन्तु ऐसा होता है और भविष्य मे हो सकेगा बशर्ते कि किसी कौम मे सिखों जैसा ही धर्म प्रेम और वैसा ही दुस्साहस हो। साथ ही वैसी ही जत्थे बन्दी।

जत्थे बन्दी और आक्रान्ता ढंग की जत्थे बन्दी ने उन्हें योग्य सैनिक और शौर्यवान योद्धा भी बना दिया। भाग कर दुश्मनों पर बाज की तरह टूटने और सिंह की तरह छलाग मार कर उनके दलों से पार होजाने के लिये उनके हृदयों में अच्छे घुड़सवार बनने की धुनि पैदा हुई। एक समय आया कि एक-एक जत्थे में दो हजार से लेकर दस हजार तक घोड़े हो गये।

छापे मे धन हाथ आने और अच्छे घोड़ों के जमघट ने उन जत्थों के जत्थेदारों के हृदय मे जो कि आरम्भ मे केवल प्रतिशोध के लिये ही खड़े हुये थे। राज्य स्थापन की भावनाये भी पैदा करदीं। यह स्वाभाविक बात है। मध्यकाल के ऐसे हजारों लुटेरे दल ही आज के भारत के अनेकों देशी राज्यों के अधि-पतियों के पूर्वज थे।

बाद मे स्थापित हुए रणजीतसिंह जी के विशाल साम्राज्य और अन्य सिख राज्यों का आदि रूप यह मिसलें ही थीं।

सब से ज्यादा मजे की बात यह है कि यह मिसले अंतिम समय मे राजनैतिक मामलों मे स्वतत्र थीं, वहाँ धार्मिक मामलों मे पंथ के आधीन थीं। पथ उनके आपसी झगड़े मिटाने की भी कोशिश करता था।

वैसाखी के मेलों पर प्राय सभी मिसले एकत्रित होती थीं और धार्मिक उन्नति के लिये मिसल पति पंथ के आदेशों को सुनते थे।

जत्थों में प्राय. जत्थेदार की जाति के ही लोग अधिक होते थे। फिर भी कोई भी और किसी भी जाति का आदमी उनमे शामिल हो सकता था।

यद्यपि जमीन और संपति के लिये अथवा मानपमान के मामलों में कहीं वे आपस मे लड़ भी पड़ते थे किन्तु जिस समय दिवाली और वैसाखी के मौकों पर अकालतख्त के सामने गुरु ग्रन्थ साहब की हुजूरी मे एकत्र होते, तो तमाम झगडे उनके दिलों से निकल जाते और केवल धर्म-प्रेम मे रगे हुए पंथ के सांझे काम के लिये सम्मिलित होकर अपना खून तक बहाने के लिये तैयार हो जाते। और एक जत्थेदार की जत्थेदारी की परवा न करके उसकी कमान मे हर प्रकार उसकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करते।

महान अच्छाइयों के साथ मिसलों मे कई अन्दरूनी कमजोरियॉ भी थीं। और वे कमजोरियॉ ज्यों-ज्यों मिसलों की शक्ति बढ़ती गई त्यों ही त्यों बढ़ती गईं। आरम्भ मे मिसल के जत्थेदार के मरने पर किसी भी योग्य आदमी को जत्थेदार और मिसलपति बना लिया जाता था। किन्तु जब कुछ गॉव और धन दौलत मिसलों के अधिकार मे आने लगी तो जत्थेदार की गद्दी मौरूसी अथवा वंशानुगत हो गई। इसका नतीजा यह हुआ कि कोई-कोई मिसल तो केवल अयोग्य जत्थेदार मिलने के कारण ही नष्ट हो गई।

जत्थेदारों की राजनीति के बारे मे यह सहज ही कहा जा सकता है कि जितना उन्हे नये इलाके जीतने का शोक था। उतने जीते हुए इलाकों को स्थायी तौर से अपने कब्जे में बनाये रखने की चिन्ता

नहीं थी। उन्होंने सहारनपुर, मेरठ और अलीगढ़ तक विजय की। किन्तु उन्हे अपने अधिकार मे बनाये रखने के लिये कोई अधिक प्रयत्न नहीं किया।

पथ खालसा को जिस भाति धार्मिक महत्ता प्राप्त थी, यदि उसी प्रकार उसे राजनैतिक महत्ता भी दे दी जाती और मिसलों के जत्थेदारों के प्रतिनिधियों से निर्माण किये हुये एक सब-राज्य की स्थापना कर दी जाती तो ससार की कोई भी ताकत सिख साम्राज्य को ध्वस न कर सकती थी।

फिर भी यह हम कह सकते हैं कि मिसलों के सगठन से देश और धर्म सभी को भारी लाभ हुआ। पजाब मे से मुसलिम आतक सदैव के लिये उठ गया। और फुलकियन स्टेटस तथा रणजीतसिंह जी का जैसा बड़ा साम्राज्य इन्हीं मिसलों के विकसित रूप थे।

जत्थेदारी की वह प्रथा पजाब के सिखों में अब भी मौजूद है। जिसका जन्म कि मिसलों के रूप मे हुआ था। आज भी गॉवों मे जत्थेदार और उनके जत्थे हैं। जो धार्मिक स्थानों की रक्षा के लिये हर समय तैयार रहते है। गुरु के बाग और जैतो के जैसे लोक प्रसिद्ध आन्दोलन इन जत्थों के बल पर ही हुये थे। और इन्हीं के बल पर सिख सगठन और सिख शक्ति का अभी पिछले वर्षों मे संसार को बोध हुआ है।

सिखों की यह स्वयम् सेवक प्रथा मुसलिम काल मे जहॉ अत्याचारी राज्य को नष्ट करने, और नये आक्रान्ताओं को रोकने मे सफल हुई थी। वहॉ अब सिखों के जीवित कौम घोषित और साबित करने मे काम आती है। अत कुछ त्रुटियों का दर्शन कराते हुये भी हम मिसलों की महान सफलता के लिये उनके प्रशसक है।

दीपसिंह, गुरुबख्शसिंह, चड़तसिंह, जयसिंह, नवाब कपूरसिंह, हरीसिंह, हीरासिंह जस्सासिंह अहलूवालिया और फिर राजा आलासिंह तथा महाराजा रणजीतसिंह जैसे योद्धाओं और शूरवीरों को इन मिसलों ने ही तो पैदा किया था। जिनकी बहादुरी की गाथाओं से भारत का सिर आज भी ऊचा है।

बाल शहीद

जोरावरसिंह फतेहसिंह

पंजाब केसरी

महाराजा रणजीतसिह जी

पन्द्रहवाँ अध्याय

महाराजा रणजीतसिंह और उनका साम्राज्य

अनेक इतिहासकारों ने महाराजा रणजीतसिंह का पूर्व पुरुष राजा शालिवाहन को माना है। परन्तु यह निश्चय कोई भी नहीं कर सका कि यह शालिवाहन कौन था? पुराण, बृहद्कथा, कथा सरित सागर आदि संस्कृत ग्रन्थो और नवीन काल के अनेक अंग्रेजी हिन्दी इतिहासों और पुरातत्व अन्वेषी लेखकों के लेखों के आधार पर हम भारत में कम से कम चार शालिवाहन पाते हैं। (१) आन्ध्र लोगों का शालिवाहन (२) शाके सवत् का प्रवर्तक शाका शालिवाहन (३) भट्टियों के पूर्वज गज का लड़का शालिवाहन (४) पूरनमल और रसालू का पिता शालिवाहन।

पूर्वजों का परिचय

कनिंघम ने गज के लड़के को ही रणजीतसिंह का पूर्वज माना है। किन्तु जब हम महाराजा रणजीतसिंह के पिता का विवाह सम्बन्ध फुलकियाँ घराने मे होते देखते है तो इस बात पर विश्वास नहीं होता कि भट्टी साहसी दोनों का पूर्वज हजार बारह सौ अथवा पांच सौ छः सौ वर्ष पूर्व एक ही रहा होगा।

इस तरह हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि रणजीतसिंह का पूर्वज गज का पुत्र शालिवाहन था। दूसरे भाटियों की वंशावली में हम गज पुत्र शालिवाहन के पुत्रों मे जौनधर को भी नहीं पाते हैं जो रणजीतसिंह जी का पूर्वज था।

हाँ, यह सही हो सकता है कि गन्धर्व सेन के पुत्र विक्रमादित्य के बाद अपना संवत् चलाने वाला शालिवाहन और पूरन का पिता शालिवाहन एक ही थे और भट्टियों का पूर्वज शालिवाहन अलग था। जो सातवीं सदी में हुआ है। शाके संवत् का चलानेवाला शालिवान वही हो सकता है। जो हजरत ईसा का समकालीन था और हजरत ईसा विक्रम के आस पास ही हुए थे। दोनों के सम्वतो में केवल ५७ वर्ष का ही तो अन्तर है। यह भी सम्भव हो सकता है कि विक्रमाजीत ईसा से भी पीछे तक जिन्दा रहे हों। क्योंकि किम्वदन्तियाँ विक्रमादित्य की जिसे कि वीर विक्रमाजीत के नाम से याद किया जाता है। ३०० वर्ष तक जिन्दा रहने की बात कहती है।

ईसा की आरम्भिक सदी में कोई शालिवाहन था भी या नहीं? इसके लिये हम भविष्य पुराण का यह हवाला पेश करते हैं।

"एकदातु शकाधीशो हिम तु ग समाययो।

हूण देशस्य मध्ये वै गिरस्थ पुरुष शुभम् ।
ददर्श वलवान राजा गोराग श्वेत वस्त्रकम् ॥२२॥
को भवानी तित प्राहस हो वाच मदान्वित ।
ईश पुत्रच मा बिद्ध कुमारी गर्भ संभवम् ॥२३॥

(भविष्य पुराण प्र० सर्ग ३ खड ३)

अर्थात—एक वार शक पति शालिवाहन हिमालय के पार हूण देश के मध्य में पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्वेत वस्त्राधारी सुन्दर पुरुष को देखा। पूछने पर उसने वताया मैं कुंवारी कन्या से ईश पुत्र हूँ। इस श्लोक से ईसा और शालिवाहन शाके समकालीन हो जाते है। साथ ही इससे यह भी सिद्ध हो जाता है। कि शाका सवत का चलानेवाला और उत्तर का विजेता एक ही पुरुष था।

विक्रम सवत से शाका सवत १३५ वर्ष पीछे चलता है।[1] इतिहास ऐसा कहते हैं। कि विक्रम ने शक लोगों को हराने के वाद अपना संवत चलाया था। उस समय अवश्य ही विक्रम की अवस्था लगभग २५ वर्ष की रही होगी और जिस समय शाका सवत विजय उत्सव मनाने ने की खुशी मे शालिवाहन ने चलाया। उस समय वे (२५+१३५) एक सौ साठ वर्ष के रहे होंगे।

अब देखना यह है कि क्या सचमुच ही वे अपना (विक्रम) सवत चलाने के वाद इतनी लम्वी उम्र तक जिन्दा रहे। इसके लिये हमे एक प्रमाण फारसी तारीख पज हजार रिसाला मे मिलता है। जिस समय विक्रम संवत चला था। उस समय युधिष्ठिरी सवत ३०४४ था।[2] और देहली के राजा महानपाल को विक्रमादित्य ने युधिष्ठिरी सवत् ३१०५ मे जीता था और फिर ९३ वर्ष तक दिल्ली पर उनका अधिकार रहा। इस प्रकार दिल्ली उन्होंने अपने संवत् चलाने के ६१ वर्ष वाद विजय की और विजय के वाद भी ९३ वर्ष और जिन्दा रहे।[3]

इन उदाहरणों से यह सिद्ध है कि विक्रमादित्य को के बाद अपने शाका संवत का प्रचारक शालि वाहन ही था और वह शाक कहलाता था।

संवत चलाने का उनका मौका क्यो पड़ा? और उससे पहले वे कहाँ रहते थे? पंजाव मे ही या पैठन मे? इसका उत्तर यह है। विक्रमादित्य ने जिस भांति शकों को मालवे से निकाल दिया था। उसी भाति शालिवाहन को भी किसी आक्रान्ता से लड़ना पड़ा होगा। दूसरे यह कि वे पंजाव के थे या पैठन के। तो हम कहेगे वे पंजाब के ही थे हालाकि इन्हीं दिनों पैठन मे भी एक शातवाहन या शालिवाहन अथवा शातिकर्ण नाम का राजा था। इन दोनो शालवाहनों मे उनकी आगे की वंश परंपरा विभेद कर देती थी। आन्ध्रों के शालिवाहन के आगे के उत्तराधिकारियों के वही नाम नहीं हैं जो पंजाव शालिवाहन के उत्तराधिकारी है। विक्रमादित्य से भी युद्ध उज्जैन मे नहीं किन्तु दिल्ली और पंजाव के वीच कहीं हुआ था और विक्रमादित्य ने भी जिस शक नृपति को हराया था। वह भी कुमायूं गढ़वाल के आस पास ही हराया था और संभवतय वह शुकवंत था। यह नहीं कह सकते कि शुकवन्त से शालिवाहन का क्या सम्बन्ध था।

१ अव विक्रम २०१० और शाका १८७५ है।
२ आजकल युधिष्ठिर सवत ५०३८ है और ई० १९५३ है।
३ देखो हरिश्चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका (नाथद्वारा मेवाड़ द्वारा प्रकाशित)

प्रश्न यह उठता है कि क्या संवत् प्रवर्तक शालिवाहन शक थे ? मनुस्मृति के अनुसार शक वे आर्य क्षत्रिय थे। जो ब्राह्मणों की शिक्षाओं से वंचित रह कर जनेऊ आदि से खाली रह गये थे। कुछ विदेशी इतिहासकारों ने शकों को ईरान का आदि निवासी मानकर उन्हे इंडोसिथियन के नाम से याद किया है। उनके खयाल से शकों की मातृभूमि ईरान थी। किन्तु बात यह नहीं ईरान तो उनका उपनिवेश (कौलोनी) था हिन्दुस्तानी इतिहास लेखकों ने भी अंग्रेज लेखकों की तरह गलती खाई है। महाराजा कनिष्क और महाराजा शालिवाहन जैसे लोगों को उन्होंने सिथियन माना है। वास्तव मे वे नस्ल से आर्य थे। और एक समय महाभारत और प्रभास क्षेत्र के युद्धों के बाद उनके पूर्वज ईरान (सिदिया) तुर्किस्तान आदि सुदूर देशों मे फैल गये थे। महाराजा कनिष्क शिवि लोगों की उस शाखा मे से थे। जो काश्मीर को पार करके तिब्बत मे पहुँच गई और शिवि की बजाय तिब्बती भाषा मे श्यूची पुकारे जाने लगी और उधर से मुड़कर ईरान मे आने पर श्यूची या केवल यूची के नाम से मशहूर हुई। फारसी भाषा में स का अभाव है। अत. श्यूची से यूची कहलाई। यूची लोगों का ईरान से भारत को मुड़ने मे काफी विस्तार हो गया था। राज्य भी उनका एक समय समस्त उत्तरी भारत जिसमे आज के यू० पी०, सी० पी० मध्य भारत, राजपूताना, पंजाब, सिंध और काश्मीर शामिल थे, हो गया था। इसके सिवा अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान सभी उनके अधिकार में थे। शिवि लोग जिनकी शाखा श्यूची व यूची थे कौन थे ? इसके लिये पुराणों ने उत्तर दिया है कि वैदिक ऋचाओं के द्रष्टा राजा उशीनर के पाच पुत्रों मे शिवि एक थे। शिवि राजा के दान की बड़ी महिमा आज तक प्रचलित है। इन्हीं शिवियों की उस शाखा मे से जो तिब्बत ईरान आदि मे घूमती हुई कई पीढ़ियों के बाद श्यूची और यूची नाम लेकर लौटी महाराज कनिष्क थे। और कनिष्क के बाद उनका साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया।

राजा शालिवाहन के लिये हम कह सकते हैं कि वे भी महाराज कनिष्क के ही खानदान मे से रहे होंगे। प्रो० कालिकारंजन कानूनगो ने "हिस्ट्री आफ जाट्स" मे महाराजा कनिष्क को जाट ही लिखा है। क्योंकि स्यालकोट मे भी एक समय कनिष्क का आधिपत्य था। और कनिष्क और शालिवाहन मुश्किल से २००-१५० वर्ष का अंतर है। महाराज कनिष्क बौद्ध थे और राजा विक्रमादित्य शैव था। इसलिये बौद्ध विरोधी हिन्दू धर्माचार्यों ने उसे कनिष्क के उत्तराधिकारियों के नष्ट करने के लिये भड़काया होगा और केवल देहली मालवा से शकों को विताड़ित कर देने के कारण उसे शकारि भी कहा होगा शायद शालिवाहन ने इसका बदला ले लिया और अपना उत्तर में संवत भी चला दिया।

हमने पिछले पृष्ठों मे लिखा है कि भाटी लोगों से और इस राजा शालिवाहन से कोई सम्बन्ध नहीं है। भाटियों का शालिवाहन दूसरा है। इस बात की सचाई के प्रमाण मे हमे एक दूसरा उदाहरण भी मिलता है। वह यह कि शालिवाहन के लड़के साल की लड़की के साथ मे अटक के भट्टी राजा होड़ी का विवाह हुआ था।

इस तरह से यह तय हो गया कि सालवाहन जिसके वंश मे कई शताब्दियो बाद रणजीतसिंह जैसा प्रसिद्ध महाराजा हुआ। भट्टी सालिवाहन नहीं किन्तु शाके सालिवाहन थे और वे महाराजा कनिष्क के ही वंशजों मे से थे। और राजा कनिष्क शिवि थे। भागवत में शिवि लोगों की वंशावली इस प्रकार दी गई हैं।

चन्द्र के पुरुरवा, पुरुरवा के आयु, आयु के नहुप, नहुप के ययाति, ययाति के पांच पुत्र यदु, पुरु, अनु, तुर्वसु और द्रुह्यु हुये। अनु के सभानर, समानर के कालनर, कालनर के सृञ्जय, सृञ्जय के

जन्मेजय, जन्मेजय के महाशील, महाशील के महामना, महामना के दो पुत्र—तितक्ष और उशीनर हुए। उशीनर के राजा शिवि हुए।

स्यालकोट जिसमे कि राजा शालिवाहन ने अपनी राजधानी स्थापित की थी। बहुत प्राचीन नगर है। महाभारत मे इसे शाकल्य नगर के नाम से याद किया गया है। कुछ लोग इसे शल्य का बसाया हुआ भी मानते है। राजा शल्य मद्र थे और पाण्डु के साले थे किन्तु महाभारत के समय यहाँ पर जरत् लोग राज्य करते थे। बौद्धकाल मे इस प्रदेश पर अराट्ट लोगों का कब्जा हो गया था।

महाराज शालिवाहन के समय में इसका नाम सालिवाहनपुर हो गया था। उनके वंश के बाद मे यह हूण लोगों के हाथ मे चला गया और इसके बाद स्याल लोगों के अधिकार मे चला गया और स्यालकोट के नाम से मशहूर हो गया।[1] इस प्रकार स्यालकोट भी पंजाब का एक ऐतिहासिक नगर है।

राजा शालिवाहन के कई लडके बताये जाते है किन्तु पूरन, रसाल और युगन्धर बहुत प्रसिद्ध हुये है। इस के दो रानिया थी, एक इन्दुमती जिसके पेट से पूर्ण और दूसरी कुसम से रसाल और युगन्धर आदि पैदा हुए थे। युगन्धर जिसे कि सिख तारीखो मे जौनधर कहा गया है—के वंश मे ही महाराजा रणजीतसिह हुए थे।

गद्दी पर तो रसालू बैठे थे किन्तु वे परोपकारी होने के कारण बहुत ही कम राजधानी मे रहते थे। अत सारा काम युगन्धर को ही सभालना पड़ता था। यह भी कहा जाता है कि युगन्धर ने भातियाना पर भी कब्जा कर लिया था। यह समय ईसा की तीसरी सदी का था। इसके बाद दो सदियों के इतिहास का सिलसिला नहीं मिलता। सन ५०० के आस पास तोरमान हूण ने पंजाब पर चढाई की और उसके लडके मिहिरकुल ने स्यालकोट पर कब्जा कर लिया और सोहान्द को जोकि युगन्धर का वशज था स्यालकोट से निकाल दिया। हूणों के सम्बन्ध मे कहा जाता है वे वड़े निर्दयी थे। मनुष्यो के साथ वह जानवरो का जैसा व्यवहार करते थे। सोहाद की रानी भी भाग निकली, और पजाब से एक दम बाहर चली गई। कहा जाता है कि उन्होने एक सॉसी की शरण ली और वहीं उनके एक बच्चा पैदा हुआ। सोहान्द भी मारे-मारे फिरते रहे।

सन् ५२८ ई० मे फिर इनका भाग्य फिरा और मन्दसोर के प्रसिद्ध जाट नरेश यशोधर्मा ने गुप्त राजाओं की मदद से कहरुर के मुकाम पर हूणों को परास्त कर दिया। इस तरह पजाब मे फिर कुछ शॉति हो गई और सोहान्द ने भी अपनी रानी को लेकर रामसर (वर्तमान अमृतसर) के पास एक नगर बसाया। सांसी के घर पालित होने के कारण उन्होंने अपने लडके का नाम भी सासीराय रक्खा और गॉव का नाम राजा सासी रक्खा।

यह मत सिख इतिहासकारो का है किन्तु हम यह मानते है कि रानी भाग कर सिन्ध मे पहुँची थी और वहॉ जो प्रथम साहसीराय मौर्य जाट राज्य करता था[2] उसके यहॉ लड़के का पालन पोषण हुआ और सोहद भी वहीं पहुँच गया। पंजाब मे शाति होने पर यह लोग लौट आये और अपने पुत्र का नाम भी साहसीराय रक्खा। आगे कई पीढ़ियों तक यह साहसी के नाम से ही मशहूर रहे। वैसे अपने गॉव भी आबाद किये किन्तु कहा नहीं जा सकता कब और कौनसा गॉव आबाद किया? समय

१. हीर जो राझे जाट की प्रेमिका थी इसी स्यालकोट की थी।

२ चच ने द्वितीय साहसीराय से राज्यं छीना था।

अराजकता का आगया था। मुसलमान बराबर पंजाब में बढ़ रहे थे। अत. पूरे एक हजार वर्ष का इतिहास इस वंश का अंधकार में पड़ गया और सत्रहवीं शताब्दी से पुन. इन्होंने जोर पकड़ा।

एक इतिहास में साहसीराय के बाद की पीढ़िया इस प्रकार दी हैं।

१. साहसी, २ लखनपाल, ३ धर, ४. उदयरथ, ५ जात्रि, ६. पातु, ७. उगर, ८ कीर्ति, ६ बीरू, १०. बाघ, ११. भागमल, १२. कालू, १३. जोंबोमन, १४. जालिब, १५ बीतू, १६ राजदेव, १७ बाप्जा, १८. प्यारा, १६. बूढ़ासिंह, २०. चड़तसिंह, २१. महासिंह, २२ रणजीतसिंह,

संवत् १०११ में कीर्तिसेन उर्फ किरतू ने अपने पूर्वज साहसी के नाम पर बसाये गये गॉव साहसी का पुनरुद्धार किया। किन्तु चूंकि पंजाब में मुसलमान बड़ी भारी तादाद में आ चुके थे। अत. उसे साहसी गॉव को छोड़ देना पड़ा और वेईन पेईन नाम के गॉव अपने लड़के वीरसैन उर्फ वीरू और प्रवर सैन उर्फ पेमू के नाम से आबाद किये। यहॉ पर यह लोग अपने गॉवो के खुद ही मालिक थे। क्योंकि इन जंगलों और रेट के टीलों से परिवेष्टित भूमि की ओर अभी तक मुसलमानों का मुंह नहीं उठा था।

आगे भागमल ने शाहजहॉ बादशाह के पास जाकर तरनतारन के इलाके मे यूसुफपुर आदि कई गॉवों का पट्टा अपने नाम करा लिया और उन गॉवों पर बतौर तहसीलदार के नियुक्त हुआ।

इन दिनों गुरु हरिगोविन्दसिंह जी के यश की सुगंधि चारों ओर फैल रही थी। भागमल ने भी गुरु जी की सेवा मे कई बार जाकर उपदेश ग्रहण किये और अपनी आत्मा को आनन्द प्राप्त किया।

समयान्तर में इसी खानदान मे बुड्ढासिंह नाम का एक भाग्यशाली शख्श पैदा हुआ। इसने बन्दासिंह के साथ रह कर उन बहादुरियों मे भाग लिया। जो मुसलमानों के जुल्म खतम करने के लिये और उनके राज्य की जड़ को उखाड़ फेंकने के लिये, महावीर बन्दासिंह ने लड़ाइयों और आक्रमणों द्वारा दिखाई थीं।

बन्दासिंह के बध किये जाने के बाद इसने एक स्वतन्त्र जत्था सिखों का बना लिया। यही जत्था आगे चलकर सुकरचकिया मिसल के नाम से मशहूर हुआ। क्योंकि इस मिसल के संस्थापक सुकरचकिया गॉव मे रहते थे।

संक्षेप रूप मे महाराजा रणजीतसिह जी से पूर्व का यही संक्षिप्त हाल है। मिसल का वर्णन हम पीछे कर ही चुके हैं। इसलिये उसे दुहराना यहॉ व्यर्थ है।

याददास्त के लिये इस बात को फिर दुहरा देना चाहते है कि महाराजा रणजीतसिंह जी चन्द्रवंश की शिवि शाखा के उन क्षत्रियों मे से थे। जो तिब्बत और ईरान मे रहने के कारण श्यूची, यूची और शकों के नाम से पुकारी जाने लगी थी और जिसमे कि कनिष्क, हविष्क तथा शालिवाहन जैसे प्रतापी सम्राट हुए थे।

कनिंघम ने सांकेतिक तौर पर हमारे ही कथन की पुष्टि अपने सिख इतिहास मे की है और वह सही भी है।

अब हम महाराजा रणजीतसिंह जी के जीवन पर प्रकाश डालना चाहते है। जहॉ पर सुकरचकिया मिसल का इतिहास दिया है। वहॉ पर उनके पिता तक का इतिहास तो दे दिया गया है। अत. यहॉ

महाराजा रणजीतसिंह

उन्हीं से-आगे का वर्णन आरम्भ करते हैं। जिस समय उनके पिता महासिंह की मृत्यु हुई थी। रणजीतसिंह की उम्र केवल १० साल की थी। इनकी मां ने दीवान लखपति राय को इनके सलाहकार के तौर पर नियुक्त किया और इनकी सासु रानी

सदाकौर इन्हे हर कार्य मे मदद देती थीं। सदाकौर दिलेर और बुद्धिमान स्त्री थीं। जो कि कन्हैया मिसल की अधिपति थीं। रानी सदाकौर ने दोनों सेनाओं के बल पर पहले तो उन लोगों को ठीक किया। जो इन दोनों मिसलों के दुश्मन थे। उसने रामगढ़ियों पर भी चढ़ाई की थी। रणजीतसिंह जी प्रत्येक लड़ाई में अपनी सास के साथ रहते थे। युद्ध विद्या मे तो वे बड़े प्रवीण बालकपन से ही हो गये थे। किन्तु उनकी पढ़ाई-लिखाई के प्रबन्ध का सिलसिला टूट गया।[1]

जब कि वे १५ वर्ष के होंगे नकई मिसल के सरदार रामसिंह ने भी अपनी लड़की की शादी रणजीतसिंह जी के साथ करदी। इस प्रकार बचपन मे ही उनकी दो शादियाँ हो गई। १७ वर्ष के होने पर उन्होंने अपने इलाकों का प्रबन्ध और सेना का संचालन स्वयं करना आरम्भ कर दिया।

इन दिनों काबुल मे शाहजमान राज्य करता था। उसने हिन्दुस्तान पर लगातार तीन आक्रमण किये। सन् १७९७ मे तो लाहौर मे आकर बैठ गया। इधर उसने रणजीतसिंह की बहादुरी की बडी प्रशसा सुनी। जब वह अपने देश को ईरानियों से बचाने के लिये जिन्होंने कि उसके गैरहाजिर होने के कारण काबुल पर चढाई कर दी थी। गया तो झेलम मे उसकी १२ तोपे रह गईं। कारण कि उस समय बडे जोरों की बाढ़ आई हुई थी। शाहजमान ने काबुल पहुँचकर रणजीतसिंह जी को लिखा कि अगर तुम मेरी तोपें झेलम में से निकाल कर मेरे पास भिजवा दो तो मैं लाहौर शहर और उसके आस पास का इलाका तुम्हे दे दूंगा। साथ ही राजा का खिताब भी तुम्हे दूंगा। रणजीतसिंह जी ने ८ तोपे निकलवा कर उसके पास भेज दीं। शाहजमान ने भी अपने वचन को पूरा करने के लिये लाहौर के परगने और शहर की सनद तथा राजा का खिताब रणजीतसिंह जी के पास भेज दिया।

महाराजा रणजीतसिंह जी जब कि झेलम से अपने इलाके को लौट रहे थे तो, छत्ता रईस हशमत खा ने एक दिन शिकार मे उन्हे अकेले मे घेर लिया और यकायक हमला कर दिया। वह पहला वार कर गया। जिससे घोड़ी की लगाम के दो टुकड़े हो गये। वह दूसरा वार करना ही चाहता था कि महाराजा रणजीतसिह जी ने उसका सिर उतार लिया। हशमत खां के मारे जाने के बाद उसके इलाके को भी अपने कब्जे में कर लिया। इस तरह से बिना ही अधिक दिक्कत उठाये और खून खराबी किये छत्ते का इलाका उनके हाथ मे आ गया।

पट्टे के रूप मे तो रणजीतसिह जी को लाहौर की सूबेदारी मिल गई किन्तु दखल उन्हे अपनी तलवार से ही करना पडा। उस समय वहाँ पर चेतसिंह, जौहरसिंह और साहबसिंह तीन शासक बने हुए थे। यह वैसे सिख ही थे किन्तु महत्वाकाक्षी न थे। इनमे साहबसिंह तो कुछ अच्छा था। बाकी दोनों परले सिरे के लम्पट और शराबी, व्यभिचारी थे। दिन भर शराब पीकर औंधे मुँह पड़े रहते थे। चेतसिंह ने शहर के प्रमुख मुसलमानों को नाराज कर लिया था। लाहौर मे मुसलमानों के आशिक मुहम्मद

१ आरम्भ में उनके पिता ने उन्हे गुजरावाले के भाई भागूसिंह धर्मशालिया के पास पढने बिठाया। परन्तु उन्हे जल्दी ही दूसरी ओर प्रवृत्त होना पडा। यह दिवस फौजी चढाइयो के थे और हर नवयुवक को अपने घरघाट की हिफाजत के लिये बन्दूक कन्धे पर उठानी पडती थी। इसलिये रणजीतसिंह जी ज्यादा देर तक अक्षरों की शिक्षा में न लग सके। उन्हे बन्दूक आदि की शिक्षा के लिये अमीरसिंह के पास भेजा गया। और इन दिनो में सरदार महासिंह के साथ युद्धो पर भी जाया करते थे। जिनकी निगरानी में उन्होने ऊँचे दर्जे की युद्ध सम्बन्धी योग्यता हासिल करली थी।

और मुहकमदीन जो दो बड़े चौधरी थे। उनके दामाद बदरुद्दीन को चेतसिंह ने खत्रियों की शिकायत पर गिरफ्तार करा लिया और अनेकों मुसलमानों की माग पर भी न छोड़ा। तब लाहौर के मुसलमानों ने महाराजा रणजीतसिंह जी के पास आदमी भेजा कि आप लाहौर के राजा बने यथा सम्भव हम आपकी मदद करेंगे। महाराजा रणजीतसिंह जी तो मौके की तलाश मे थे। अपना आदमी लाहौर भेजकर उन्होंने सारे समाचार जॉच पाये और फिर सन् १७९९ मे लाहौर पर चढ़ाई कर दी। किलेदार भी चेतसिंह से नाराज था। अत. उसने दरवाजा खोल दिया। इस प्रकार महाराजा का लाहौर पर कब्जा हो गया। चेतसिंह गिरफ्तार कर लिया गया। उसके शेष दो साथी भाग गये। किले पर कब्जा करते ही महाराजा ने शहर मे डुग्गी पिटवा दी कि नागरिक जन कोई चिन्ता न करें। शहर मे कोई उपद्रव न होगा न किसी प्रकार की लूट पाट होगी। अब से लाहौर के हम राजा हो गये हैं। सभी लोग हमे सहयोग दे हम भी तुम्हारी रक्षा करेंगे।

इस घोषणा से नगरवासी महाराज के प्रति आदर से गद्‌गद् हो गये। क्योंकि प्रत्येक नये शासक के आते ही उनको लुटना पड़ता था। इस बार उनकी रक्षा का भी भार नये शासक रणजीतसिंह जी ने ले लिया।

महाराजा रणजीतसिंह जी जिस समय लाहौर के शासक हुए उनकी अवस्था सिर्फ २० वर्ष की थी। इतनी सी छोटी उम्र मे उनकी बढ़ती हुई रियासत, होती हुई विजय और चमकती हुई तकदीर ने यों तो पहले ही पंजाब के सिख, हिन्दू और मुसलमान रईसों के कान खड़े कर दिये थे। किन्तु लाहौर के उनके हाथ मे आने और राजा की उपाधि मिलने के दिन से तो इन लोगों के पेट मे चूहे ही कूदने लगे। वास्तव में लाहौर पंजाब की राजधानी थी। हर कोई राजा रईस यही चाहता था कि लाहौर पर हमारा झंडा फहराये। इसीलिये वे मन ही मन महाराजा रणजीतसिंह जी से ईर्षाद्वेष भी रखने लगे। कुछ दिन बाद जस्सासिंह रामगढ़िया और निजामुद्दीन कसूर वाले ने गुलाबसिंह भंगई अमृतसर, साहबसिंह भगई गुजरात और जोधासिंह वजीराबाद को अमृतसर मे बुलाकर षडयंत्र रचा और १८०० ई० के आरम्भ में ही सबने मिलकर लाहौर विजय के लिये कूच कर दिया। महाराजा रणजीतसिंह जी भी अपनी सेनायें लेकर किले से बाहर निकल पड़े और भसइन के मुकाम पर दोनों ओर से फौजें डट गई। बराबर दो महीने तक लश्कर एक दूसरे के सामने पड़े रहे। अत में उन लोगों ने एक चाल चलना चाहा। रणजीत सिंह जी के पास खबर भेजी कि अगर वे हम से भेट कर जावे तो आपस की सफाई हो जाय और हम वापिस अपने २ इलाके को चले जावें। महाराजा रणजीतसिंह जी चाल को तो समझ गये। फिर भी मिलने के लिये गये किन्तु सारी फौज को तैयार कर गये। उधर बहुत सारे छटे हुये सैनिक लेकर उनसे मिलने के लिये चले गये। जिस खेमे में बातचीत होनी थी। उसके चारों ओर उनके सैनिक छा गये। इस प्रकार वे कोई भी दगा न कर सके और बाद मुलाकात के अपने वायदे को पूरा करने की गर्ज से सब अपने २ इलाके को वापिस लौट गये। दूसरे यह कि गुलाबसिंह का शराब के नशे मे देहान्त हो गया।

महाराजा रणजीतसिंह जी को यह बखूबी मालूम हो गया था कि क़सूर का नवाब और रामगढ़ियों ने यह संगठन किया था। अत. इसी वर्ष उन्होंने कसूर पर चढ़ाई करदी। किन्तु निजामुद्दीन एक झटके को भी न झेल सका और तुरन्त पैरों पर आ गिरा और अपने को लाहौर का खिराजगुजार स्वीकार कर लिया। साथ ही नजराना भी अदा किया। इसके बाद ही उन्होंने नारूवाली, भेरोंवाल और जस्सरवाल होते हुये जम्मू राज्य को जा दबाया। अभी वे जम्मू से चार कोस इधर ही डेरे डाले पड़े थे कि जम्मू का राजा २०

हजार नकद और एक हाथी लेकर सेवा मे हाजिर हुआ और प्रतिवर्ष नजराना पहुँचाने का वायदा किया। इसके बाद महाराज स्यालकोट की ओर लौटे जहाँ पर कि, एक मुसलमान रईस का अधिकार था। वह एक चपेट भी बर्दास्त न कर सका। स्यालकोट जीत लिया गया। उन दिनों दिलावरगढ़ मे सोढ़ी केसरसिंह राज्य करता था। रास्ते मे होने के कारण उसे भी विजय किया और फिर वहाँ से सीधे लाहौर आ गये।

लाहौर मे सन् १८०१ ई० मे उन्होंने एक बड़ा भारी दरबार किया और 'महाराजा' की उपाधि धारण की। इस दरबार मे पंजाब के प्राय सभी सिख सरदार शामिल हुये थे। पुरोहित ने राजतिलक किया। कवियों ने प्रशंसा सूचक कवितायें पढीं। बुजुर्गों ने अशीर्वाद और सैनिकों ने सलामी दी। महाराज की ओर से यह भी घोषणा हुई कि लाहौर राज्य को लाहौर सरकार लिखा जाया करे और अब से उनके नाम का सिक्का चालू होगा। टकसाल कायम की जा रही है। न्याय विभाग स्थापित किया जा रहा है। जिसके सचिव फकरुद्दीन होंगे। शहर के प्रबधके लिये इमामबख्श को शहर कोतवाल बनाया जाता है किले की मरम्मत के लिये एक लाख रुपया मंजूर किया जाता है। इस घोषणा से प्रजा बड़ी प्रसन्न हुई और महाराज ने सिंह की तरह अपने को महाराजा और सरकार घोषित किया।

इन्हीं दिनों महाराजा को पता चला कि साहबसिंह के इशारे पर अकालगढ़ का रईस दिलसिंह फौजे इकट्ठी कर रहा है। महाराजा ने उसको मित्रतापूर्ण खत लिखकर लाहौर बुला लिया। उसे समझाया भी किन्तु जब उसकी नीयत मे अन्तर देखा तो उसे तो नजरबन्द करा दिया और उसके अकालगढ पर कब्जा करने के लिये थोडी सी सेना लेकर रवाना होगये किन्तु वहा पर दिलसिंह की सरदारनी तेजो लडाई पर आमदा हो गई। इसलिये महाराज वहाँ से आगे बढ़ गये ताकि पहले उन लोगों को सजा दी जा सके जो दिलसिंह को उभाड़ रहे थे। उन्होंने पहले तो वजीराबाद के जोधासिंह को अपने काबू मे किया और उसे मित्र बनाकर साहबसिंह पर चढ़ाई की किन्तु उसने अधीनता स्वीकार करली। अत. लाहौर लौटकर दिलसिंह को भी छोड दिया। जहाँ जाकर वह कुछ ही दिनों बाद मर गया। महाराज यह जानते थे कि एक मजबूत राज्य बनाने के लिये यह छोटे २ राज्य मिटाने ही पड़ेगे। अत उन्होंने दिलसिंह के मरने पर अकालगढ़ को अपने कब्जे मे ले लिया और तेजो को दो गाँव उसके गुजारे के लिये दे दिये।

महाराज यह चाहते थे कि इन छोटे २ सरदारों को कुचलने का उद्योग जोर से होना चाहिये। अत उन्होंने सन् १८०२ ई० मे जब तरनतारन की यात्रा की तो कपूरथला के रईस फतहसिंह अहलूवालिया को अपना पगड़ी पलटा दोस्त बना लिया। जिसने प्रत्येक लड़ाई मे अपने जीवन भर महाराजा रणजीतसिंह जी के उद्देश्य को पूरा करने के लिये लड़ाइयों मे जाकर अपने फर्ज को अदा किया।

सबसे पहले महाराजा ने अमृतसर पर जमजमा तोप के लिये चढाई की भगी सरदारों की बेवा रानी सुक्खा ने बडी बहादुरी से मुकाबिला किया। किन्तु दो पुरुप सिंहों-रणजीत और फतहसिंह का कहाँ तक मुकाबिला करती। आखिर रानी भागकर रामगढियों के पास चली गई।

अमृतसर को अपने राज्य मे मिलाने की खुशी मे महाराजा हरिमंदिर मे गये और वहाँ खूब दान-पुण्य किया।

अमृतसर से महाराजा ने राजा ससारचन्द के इलाके पर हमला किया। राजा हार गया और उसकी चार तापे और लाहौर की ओर का कुछ इलाका महाराजा के हाथ आ गया। वापिस होते हुए लाहौर से ४०० घोड़े प्राप्त किये।

अगले साल उन्हे सूचना मिली कि खत्री चूहड़मल को विधवा फगवाड़े में अपना स्वतंत्र राज्य

कायम कराना चाहती है। महाराज ने फगवाड़ा पर हमला करके उसे भी जीत लिया और विधवा को हरिद्वार में भेज दिया जहाँ जनम भर उसे खर्च मिलता रहा। इस बीच मे संसारचन्द ने हुशियारपुर और वैजवाड़े को अपने अधिकार में लेने के लिये चढ़ाई कर दी थी। अतः महाराज उसका मुकाविले करने के लिये उधर पहुँचे किन्तु संसारचन्द कांगड़े की ओर भाग गया। अत. महाराज अपने इलाकों मे लौट पड़े। दूसरे वर्ष जव कि संसारचन्द पूरी तैयारी के साथ महाराज का सामना करने के लिये इधर को आ रहा था। उसके राज्य पर गोरखों ने हमला कर दिया। अत. उसे वापिस लौट जाना पड़ा।

सन १८७६ ई० में महाराज पटियाला और नाभा को ओर उनके आपसी झगड़ों को मिटाने के लिये गये। क्योंकि दोनों ने आपही को पंच मुकर्रिर किया था। कुछ मुठभेड़ के वाद उनमे सन्धि करा दी और जंडियाला रायकोट, जगराम और तलवडी पर अपना अधिकार करके वहाँ अपने विश्वस्त आदमियों को जागीरदार के रूप मे मुकर्रिर कर दिया। लुधियाना इस समय रायकोट के मरहूम रईस इलियासखाँ की दो विधवाओं के अधिकार में था। महाराजा ने उन्हे वेदखल करके उस पर भी अपना अधिकार कर लिया। इसी समय राजा संसारचन्द की ओर से महाराज के पास खवर आई कि सारे मत-भेद भुलाकर गोरखों से मेरी रक्षा करो।

महाराज ने कांगड़ा पहुँचकर गोरखों के विरुद्ध राजा संसारचन्द की मदद की। गोरखों के सरदार अमरसिंह ने महाराज के पास यह खवर भिजवाई कि आप अगर चुप हो जाय तो हम आपको उससे दुगुनी रकम दे सकेंगे जितनी कि राजा संसारचन्द भेंट करेगा। महाराज ने गोरखों के इस संदेशे को अस्वीकार कर दिया और संसारचन्द को मदद दी। चूंकि महाराज के साथ फतहसिंह अहलूवालिये भी थे। इसलिये इस लड़ाई का हम पूरा वर्णन फतहसिंह के हाल मे दे चुके हैं।

कसूर को विजय करके जव महाराज वहाँ से विदा हो आये थे तो उसके कुछ ही समय वाद निजामुद्दीन के साले कुतुवुद्दीन ने उसे कत्ल कर दिया और कसुर पर अपना अधिकार जमा लिया। इसलिये महाराज को पुन. कसूर पर चढ़ाई करनी पड़ी किन्तु कुतुवुद्दीन ने भी तंग आकर उनकी अधीनता स्वीकार करली। वहुत सा नजराना भी पेश किया।

संसारचन्द की सहायता करने के वदले मे कांगड़ा उन्हे मिल गया था। अत. महाराज ने सन् १८०२ ई० मे कागड़ा मे देसासिंह मजीठिया को कमान्डर और सारी पहाड़ी रियासतों का नाजिम वनाकर मुकर्रिर कर दिया। ज्वालामुखी के दर्शन करके महाराज ने दान पुण्य भी किये और उससे भी अधिक उन्होंने मुकेत, कुलू आदि के राजाओं से नजराने वसूल किये। उसी समय रास्ते मे उन्होंने सरदार वघेलसिंह की विधवाओं से उन्होंने हरियाने के इलाकों को भी जव्त कर लिया। इसी दौरे मे वे फैजलपुरिया धूपसिंह को भी—उसके इलाके को जव्त करके गिरफ्तार कर लाये। यह याद रहे कांगड़े के किले पर पूर्णाधिकार राजा संसारचन्द की वेईमानी को देखकर ही किया गया था और यह घटना २४ अगस्त सन् १८०२ ई० की है जव कि वे कुतुवुद्दीन को दवा कर इधर लौटे थे।

कुतुवुद्दीन की आन्तरिक इच्छा थी कि वह महाराजा रणजीतसिंह जी के आधीन नहीं रहे। इसीलिये उसने उनके पीठ फेरते ही ताकत वढ़ाना आरम्भ कर दिया था। महाराज को जव उसकी करतूतों की खवर मिली तो वे पुन. कसूर पर चढ़कर आये और फिर उससे किसी भी शर्त पर समझौता नहीं किया। सिखों ने किले में घुसकर अपना झंडा उस पर गाड़ दिया।

महाराजा रणजीतसिंह जी की नीयत स्पष्ट थी। वे एक मजवूत और सुसंगठित राज्य कायम करना

चाहते थे और ये छोटे नवाव या सरदार उनके इस उद्देश्य मे वाधक होते थे। अत उन्होंने सन् १८०८ तक पजाव के अनेको छोटे २ मुसलमान रईसों और सिख सरदारों को अपने काबू मे कर लिया। कुछ उनमें से भागकर सतलज के उस पार हो गये। जो सहज ही उनकी वात को मान लेता था। उसे वह गुजारे लायक जमीन, जायदाद या जागीर दे भी देते थे। वह अपने सच्चे दोस्तों को भी जागीर, जायदाद देते थे। सन् १८०८ मे जब वे पटियाला और नाभा के झगडों को निवटा कर लौटे थे तो उन्होने नारायण को जीत कर अपने दोस्त फतहसिंह अहलूवालिया को दे दिया था।

महराजा रणजीतसिंह जी ने अपनी सेना के अधिक मजवूत हो जाने पर कुछ अलग जत्थे बना दिये थे। जिसमे एक जत्थे का लेकर दीवान मुहकमचंद सतलज उतर कर लाहौर राज्य के लिये परगनों को जीतने और सरदारो से नजराने वसूल करता फिरता था। वादनी इलाके को दीवान मुहकमचंद ने ही जीत कर लाहौर राज्य मे मिलाया था।

सन् १८०८ ई० मे महाराज के घर खुशी की यह वात हुई कि रानी महतावकौर जी से शेरसिंह और तारासिंह नाम के दो जुडवॉ लडके पैदा हुए।

सतलज पार की फूल और भगतू रियासतों के कुछ इलाके महाराज ने अपने अधीन कर लिये थे, तथा कुछ इलाके उनके अपने सरदारों को भी जागीर मे दे दिये थे। नाभा-पटियाला झगडा, और पटियाला के राजा-रानी का झगड़ा इन दोनों को निपटाने के लिये उन्हे दो वार इन राज्यों मे जाना पड़ा था। दोनों वार मे उन्होने सतलज पार की समस्त रियासतों से जर्वदस्ती और मन चाहा नजराना वसूल किया। इससे वे रियासते डर गईं और उनके रईसों ने समाना मे इकट्ठे होकर यही तय किया कि यदि रणजीतसिंह जो से वचना चाहते हो तो अंग्रेजों की शरण लो। इस पर १८०८ मे उन्होंने यही किया। वे दिल्ली मे जाकर गर्वनर जनरल के सामने अपना कच्चा चिट्ठा पेश कर आये किन्तु चूंकि उस समय अंग्रेजों ने अपनी संकटापन्न हालत के कारण उनकी रक्षा सम्बन्धी कोई गारन्टी न दी थी। इसलिये ऊपरी तौर से महाराजा रणजीतसिंह की भी आवभगत करते रहे और यह वताते रहे कि हम तो आपके अपने ही आदमी है।

अंग्रेजों को इस समय नेपोलियन वोनापार्ट, रूस और अफगानिस्तान सभी का डर लगा हुआ था। वे परमात्मा से यही दुआ करते थे कि किसी भी प्रकार यह स्वर्णभूमि भारत हमारे ही लिये सुरक्षित रहे, इसलिये वे चाहते थे कि किसी भी प्रकार हमारी महाराजा रणजीतसिंह जी से सन्धि हो जाय। इसी हेतु से उन्होंने महाराज के पीछे कपूरथला और नाभा के रईसों को इस वात के लिये लगा रक्खा था कि वे अपनी दोस्ती और नातेदारो का प्रभाव काम में लाकर महाराजा रणजीतसिंह को अंग्रेजों से सन्धि करने के लिये तैयार करे। इनके अलावा कुछ और लोग भी इसी काम के लिये अंग्रेजो ने रणजीतसिंह के पीछे लगा रक्खे थे।

महाराजा रणजीतसिंह जी के कुछ साथी ऐसे भी थे। जो यह चाहते थे कि अंग्रेजो से कोई दोस्ती न हो किन्तु कुछ तो महाराज ने अंग्रेजी सेना के युद्ध कौशल की चर्चा सुनी थी कुछ ऐसे मौके आ गये जिससे उन्हे यह भान हो गया कि लड़ाई के हुनरों मे अंग्रेजी सेनाये हमारी सेनाओं से वहुत ज्यादा तेज और होशियार हैं। मुहर्रम के दिनो की वात है मि० मेटकाफ़ अमृतसर मे ठहरे हुए थे। उनके मुसलमान सिपाहियों ने ताजिया निकाला। जव वह अकालियों के मुहल्ले में होकर निकले तो फूलासिंह अकाली ने उन पर हमला कर दिया। उनसे अकालियों को मुठभेड़ लेने मे कठिनाई पड़ी। महाराज उसी

समय गोविन्दगढ़ से वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने झगड़े को तो शांत कर दिया किन्तु असर उनके दिल पर यही पड़ा कि फूलासिंह जैसे बहादुर के आगे यह अंग्रेज सैनिक जम गये। यह अवश्य ही कवायद और परेट की हुशियारी से ऐसा हुआ है। उनके दिल पर इस घटना का ऐसा असर पड़ा कि उसी समय उन्होंने अंगेजों से और उन्हीं के प्रस्तावानुसार संधि करली। हालाकि इनकी आत्मा इस सधि से खुश न थी। क्योंकि इससे पहले उन्होंने बड़ी शीघ्रता के साथ इलाका बढ़ाना शुरू कर दिया था। इस घटना से पहले मेटकाफ पहुँचा था तो महाराज उसे वहीं छोड़ कर कसूर चले गये थे। इससे मेटकाफ के दिल पर यही असर पड़ा था कि महाराज की इच्छा अंग्रेजों से सन्धि करने की है नहीं। इससे पहले ही दीवान मुहकमचन्द ने महाराज से कहा था। इस सन्धि मे यह तय कराना चाहते हैं कि इस समय तक जिसका जहाँ तक राज्य है। वह वहीं पर रुक जाय। और सन्धि करने से पहले २ आप वाहर रहकर सतलज पार के सारे पंजाव को जहाँ तक भी संभव हो अपने राज्य मे मिलालें। अगेज तो वड़े चालाक होते हैं। मेटकाफ ने भी लाहौर मे महाराज के वापिस आने की वाट नहीं देखी। वह भी लाहौर से कसूर को चल दिया वह अपने हाथ मे महाराज को भेंट करने के लिये घोड़ो की जोड़ी एक अंग्रेजी गाड़ी और तीन हाथी मय सुनहरी हौदे के लिये फिरता था। महाराज ने मेटकाफ के साथ अजीजुद्दीन को करके वापिस लाहौर भेज दिया और आपने मालेर कोटला पहुंच कर एक लाख नजराना वसूल किया। उनके एक सरदार करमचंद ने फरीदकोट पर अपना कव्जा कर लिया। मेटकाफ ने महाराज को पत्र लिख कर इस कार्य को अन्यायपूर्ण कहा, इस पर महाराज ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा था जहाँ तक सिख आवाद हैं। वहाँ तक हमें अधिकार होना चाहिये। हम उनके साथ जाहे जैसा व्यवहार करें। इसके वाद मेटकाफ तो फतेहवाद ठहरा रहा और महाराज अम्वाला जा पहुँचे। गुरुवख्शसिंह की विधवा दयाकौर से उसका इलाका नाभा, कैथल लेकर गंडासिह को अम्वाले मे हाकिम मुकर्रिर किया। साहनीवा, चाँदपुर, झंदा, धारी और वहरामपुर आदि पर कव्जा करके वहाँ पर दीवान मुहकमचंद को नियुक्त किया। रहीमावाद कानातरी कोट वगैरह मे अपने दूसरे सरदारों को मुकर्रिर किया। शहावाद और थानेसर के सरदारों से कर वसूल किया। पटियाला के राजा साहवसिंह को पगड़ी पलटा दोस्त वनाकर ७ दिसम्वर को फतेहावाद आ गये और मेटकाफ से वार्तालाप आरम्भ किया। मेटकाफ ने स्पष्ट तौर से कहा कि महाराज इस वीच मे आपने जितने भी इलाके जीते हैं उन्हें वापिस करिये और अपने राज्य की सरहद सतलज नियत कीजिये। उधर के लोगों को इस वात पर छोड़िये कि वे मरजी चाहे लाहौर दरवार से सम्बन्ध रक्खे और चाहे अंग्रेज सरकार से। महाराज इस वात पर राजी नहीं हुए और अन्दर ही अन्दर मौके का मुकविला करने की भी तैयारी करने लगे। किन्तु अमृतसर मे फूलासिंह अकाली जैसे प्रचंड वीर को जव चंद अङ्गरेजी सैनिकों के वारों से पीछे हटते सुना तो उनके दिल मे यह वात पूरी तौर से वैठ गई कि हमारी सेना अङ्गरेजों से भिड़ने मे शायद ही जीतेगी। दूसरे उन्हे यह खवर लगी कि अङ्गरेजी फौज के एक दस्ते ने अम्वाला से गंडासिंह को हटा कर फिर से रानी दयाकौर का प्रवन्ध करा दिया है। और अन्दरुनी तौर से पटियाला, जीन्द, फरीदकोट और कपूरथला अङ्गरेजों की ओर झुकाव रखते हैं तो उन्होंने मेटकाफ की पेश की हुई शर्तों पर ही १८०६ ई० को २५ अप्रैल को दस्तखत कर दिये। जिसके अनुसार सतलज पार की सव रियासतों पर से उन्हें अपना अधिकार हटा लेना पड़ा। इसके वाद महाराज ने आजन्म इस शर्त को निभाया। ६ मई १८०६ को इस सन्धिपत्र पर अङ्गरेज सरकार के भारत-स्थित प्रतिनिधि (गवर्नर-जनरल) की भी सही हो गई। अङ्गरेज सेना ने इस सन्धि से पहले ही लुधियाने मे छावनी वना ली थी।

महाराज की ओर से वटाले के वख्शी नंदनसिंह को और अङ्गरेजों की ओर से खुशवख्तराय को एक दूसरे के कैम्पों मे रखने के लिये मुकर्रिर किया। जोकि प्राय वकील या एजन्ट का काम करते थे।

कावुल मे जाकर मि० एल फिस्टन ने वहॉ के अमीर से इस प्रकार सन्धि कर ली कि रूस और नेपोलियन के आक्रमण के समय एक दूसरे के दोस्त रहेंगे। वह सन्धि शाहशुजा से हुई थी किन्तु कुछ दिन वाद महमूदशाह ने जो कि शाहशुजा का भाई था कैद से भाग कर वरकजई पठानों की मदद से शाहशुजा को गद्दी से हटा दिया। इस प्रकार सन् १८१० ई० मे अफगान अङ्गरेज सन्धि का खात्मा हो गया। महमूदशाह जव काश्मीर के अपने सूवेदार को दड देने के लिए भारत आया तो महाराज ने उससे दोस्ती कर ली।

सन् १८११ ई० मे शाहशुजा भी महाराज के पास आया। उसको उम्मेद थी कि कावुल की गद्दी दिलाने मे अंग्रेज मेरी मदद करेंगे किन्तु उसे निराशा रही। इसलिये वह महाराज के पास पहुँचा। महाराज ने उसे वड़ी इज्जत के साथ ठहराया। उसके खाने-पीने और खर्चने का कुल प्रवन्ध अपनी ओर से कर दिया। कुछ दिन के वाद महाराज शाहशुजा से कोहनूर माग वैठे। शाहशुजा और उसकी स्त्री ने वहाने वना कर इस माग को खटाई मे डालना चाहा। महाराज इस वात से नाराज हो गये। अत उन्होंने उसके साथ सख्ती करना आरम्भ कर दिया। जव उसने देखा कि कोहनूर दिये वगैर काम नहीं चलेगा तो उसने उसे महाराज को सौंप दिया। इसके वाद महाराज ने उसके गुजारे के लिये एक जागीर मुकर्रिर कर दी और विश्वास दिलाया कि हम कावुल वापिस दिलाने मे उसकी भरपूर मदद करेंगे किन्तु वह ऐसा घवरा गया कि एक रात को चुपके ही दोनों स्त्री पुरुप लाहौर से निकल गये। वर्षों इधर-उधर भटकने के वाद सन् १८१६ मे उसने पुन. अपने को अंग्रेजों के हाथ सौंप दिया।

वजीरावाद के सरदार जोधसिंह के मरने पर उसके वेटे गगासिह ने सन् १८०६ मे ही अधीनता स्वीकार कर ली थी और एक लाख रुपया भी नजराना मे दे दिया था। सन् १८११ के आरम्भ मे ही गुजरात पर उसके एक सेनापति अजीजनुद्दीन ने कब्जा कर लिया था। अत महाराज ने खुश होकर वहॉ का का सूवेदार उसके वेटे नूरुद्दीन को वना दिया था। वहा का असली मालिक साहवसिह मारा-मारा फिर रहा था। इसी वर्प यानी सन १८११ मे महाराज ने दीनानगर पहुँच कर पहाड़ी राजाओं से कर वसूल किये। नूरपुर के राजा ने चालीस हजार महाराज की भेट किये। सुकेत, मण्डी और कुल्लू से उनके सेनापति मुहक्मचद ने नजराने वसूल किये। नूरपुर को तो कुछ समय वाद महाराज ने अपने राज्य मे ही मिला लिया। वहॉ का राजा वीरसिंह भागकर अंग्रेजों के पास जा पहुँचा किन्तु वे उसको कोई मदद न दे सके। इस अपराध मे महाराज ने उसके ससुर ज्वालासिंह की जागीर भी जव्त कर ली। वास्तव मे पहाडी राजा व्यर्थ की चीज थे। न तो यह धर्म के लिये कोई कुर्वानी कर सकते थे ओर न अपनी प्रजा की लुटेरों से रक्षा। इसलिये महाराज इन सवको ही जव्त करने की फिक्र मे थे। ज्वालासिह भी भाग कर अंग्रेजों के पास ही चला गया।

इस वर्प महाराज ने माधौपुर आकर दशहरा मनाया। उस दशहरे की शान का सही वर्णन वही कर सकता है। जिसने किसी स्वतत्र राजा को धार्मिक उत्सव मनाते देखा होगा। इस दशहरे मे महाराज ने अपनी ओर से सेनापतियों को इनाम और जागीरें भी दीं। दीवान मुहकमचंद को उसकी उन सेवाओं के वदले मे जो उसने पिछले वर्ष यानी १८१० मे माझे के इलाके को विजय करके लाहौर राज्य मे मिलाने और इसके सिवा जालन्धर, हेतपुर, फुलोर पर भी महाराज का दखल विठाने मे की थी। महाराज ने

बड़ी खुशी के साथ मुहकमचन्द को दीवान का दर्जा और सुनहरी हौदे वाला एक हाथी और एक सुनहरी मूठ की तलवार पुरस्कार मे दिये। इस प्रकार अन्य सरदारों को भी उनकी सेवाओं के अनुपात से वहुत कुछ दिया।

उन्होंने अपनी सासु के सामने वटाला जाकर प्रस्ताव रक्खा था कि क्योंकि वह लावल्द है। इस लिये अपनी जागीर के मालिक अपने नवासो शेरसिंह तारासिंह को बनाये किन्तु वह राजी नहीं होती थीं और छिपे-छिपे अंग्रेजों से भी पत्र व्यवहार रखती थीं—इसलिये अपने दीवान को इजाजत देकर उसे तो नजरवन्द कराया और जागीर अपने दोनों लडकों—शेरसिंह, तारासिंह—के नाम करदी।

जब से महाराजा रणजीतसिंह ने अमृतसर पर कब्जा कर लिया था। तब से अब तक उनकी ताकत वहुत वढ़ गई थी। हर समय उनकी इच्छा खजाने मे अतुल धन राशि संचय करने की रहती थी। जहा भी जिधर भी कोई खिराज भेजने मे ढिलाई करता। उसे ही जा दवाते थे। स्यालकोट के रईस अहमद खॉ को इसी अपराध मे जा दवाया। विचारे ने ६० हजार साल वक्त के वक्त पहुँचाने का वायदा किया। करता भी क्यों न जब कि उसकी फौज केवल दो ही दिन की लड़ाई मे तिड़ुविड़ु हो गई। उसके सामान और संचित कोप को तो महाराज ने लूट ही लिया। इसके सिवा इसी चक्कर मे ऊच, शाहीवाल और गढ़ के मुसलमान रईसों से भी तगड़े नजराने वसूल किये। शाहीवाल के रईस फतहखॉ को तो उन्होंने जंजीरों से वधवा दिया था क्योंकि उसने अपने वायदे के अनुसार खिराज अदा नहीं किया था। मुल्तान का मुजफ्फरखॉ भी कावू से वाहर होता जारहा था। उसका भी दमन किया, और उसके दमन का फल यह हुआ कि लैमा और भक्खर के मुसलमान सरदारों ने उन्हे एक लाख वीस हजार रुपया नजराना देकर अपने प्राण वचाये। भावलपुर के रईस सद्दीक मुहम्मद से एक लाख से भी ऊपर वसूल किया।

यहॉ यह वताने मे कोई हर्ज नहीं होगा कि मुल्तान पर महाराज का कब्जा नहीं हो पाया था उधर दीवान मुहकमचन्द शुजावाद मे असफल रहा था। इन घटनाओं का महाराज के दिल पर ऐसा असर पड़ा कि उन्होंने लाहौर लौटते ही फौजों को यूरोपियन ढग से शिक्षा दिलाना शुरू किया। कई फ्रासीसी और जर्मनों को सैनिक शिक्षा के लिये भरती किया। इसका फल भी यह हुआ कि अगले साल उन्हीं सैनिकों ने पहिले की अपेक्षा लड़ाई मे कहीं अधिक चमत्कार दिखलाये।

दूसरे वर्ष महाराज ने मुल्तान पर फिर चढ़ाई की। इस वक्त तक मुजफ्फरअहमद अंग्रेजों के पास अपनी रक्षा के लिये फिर चुका था। जब वहॉ भी उसे कोई आश्वासन नहीं मिला, तो उसने वेगमों के दिल्ली मे जेवर वेचे और मुल्तान आकर महाराजा रणजीतसिंह जी को पचास हजार नजराना पेश करके अपने प्राण वचाए। दिलसिंह ने इन दिनों तक कोट कमालिया पर अधिकार कर लिया था। महाराज लाहौर लौट आये।

सन १८१४ ई० मे राजकुमार खड्गसिंह जी की शादी कन्हैया सरदार जेहलसिंह की पुत्री चन्दकौर के साथ की। जिसमे नाभा, जीन्द आदि के सब रईस शामिल हुए। महाराज ने आक्टरलोनी को भी निमंत्रण दिया था। हालांकि दीवान मुहकमचन्द इस वात के खिलाफ था। क्योंकि वह समझता था कि आखिर अंग्रेज यहॉ आकर हमारी वहुत सी वातों का भेद ले ही जायगा।

सन १८१५ ई० में महाराज ने फिर विजय यात्रा आरम्भ की। पाकपट्टन होते हुये, भावलपुर के नवाव से ८० हजार नजराना वसूल किया और ४० हजार सालाना खिराज देना स्वीकार करा

लिया। वहाँ से महाराज हडप्पा पहुँचे और मिश्र दीवानचन्द के तोपखाने की मदद से अहमदाबाद को फतह किया।

मुल्तान से महाराज को खिराज मिल रहा था किन्तु फिर भी वे इस बात से संतुष्ट होना चाहते थे कि मुल्तान कतई रूप से उनके राज्य में मिल जाय। उधर मुजफ्फर अहमद भी जानता था कि एक न एक दिन घोर युद्ध होना है। इसलिये वह पूरी तरह से सावधान रहता था। महाराजा रणजीतसिंह ने सन् १८१७ ई० में दीवान मोतीराम, भवानीदास, हरीसिंह नलुआ और दीवानचन्द को मुल्तान विजय के लिये भेजा। खूब डट कर लड़ाई हुई किन्तु सिख काफी जोर लगाकर भी किले में प्रवेश न पा सके। उधर रसद भी बीत चुकी थी। इसलिये वापिस लौट आये।

इस पराजय से महाराज बड़े नाराज हुये और उन्होंने सभी सरदारों को बहुत ही लताड़ा। जब सबने ही भवानीदास पर कसूर थोप दिया, तो महाराज ने भवानीदास को कैद कर लिया। अगले साल २५ हजार सिखों की सेना मिश्र दीवानचन्द के नेतृत्व में मुल्तान को जीतने के लिये भेजी। रसद बराबर पहुँचती रहे इसका इन्तजाम चुनाव के जलमार्ग से कर दिया। सेनाओं के चले जाने के बाद ख्याल आया कि कहीं धर्मयुद्ध के नामपर मुजफ्फरअहमद सारे मुसलमान सरदारों को न इकट्ठा करले। इसलिये महाराज ने अहमदखाँ स्याल को जेल से रिहा कर दिया और उसे एक जागीर भी देदी। ताकि मुसलमानों में कुछ संतोष फैले। महाराज ने जो सोचा था वही हुआ। मुजफ्फर अहमद ने समस्त मुसलान रईसों और जागीरदारों को दीन के नाम पर भड़काया। उसकी अपील को सुनकर बहुत से मुसलमान मुल्तान के किले में इकट्ठे भी होगये। दीवान मोतीराम ने किले का चारों ओर से घेरा डलवा दिया और बाहर से जाने वालों को रोक दिया गया। किले की दीवारों को तोड़ने के लिये जमजमा तोप का भी प्रयोग किया। बराबर तोप के गोलों की बौछार से किले की दीवार में छेद होगया। मुजफ्फर यद्यपि बड़े उत्साह और बहादुरी से लड़ रहा था किन्तु उसके साथियों का बराबर साहस छूटता जाता था। दो हजार आदमियों में से जब केवल दो सौ ही रह गये तो कुछ लोग हथियार भी डालने लगे। इसी समय साधू-सिंह नाम का एक सिख अफसर अपने साथियों समेत किले में दाखिल होगया। दाखिल होते ही बिजली की तरह वह मुजफ्फरखाँ के आदमियो पर टूटे। मुजफ्फरअहमद और उसके बेटों ने भी हथेली पर प्राण रखकर मुकाबिला किया। खिजरी दरवाजे से मकबरे तक बराबर वह मुकाबिला किया और उस समय तक लड़े जब तक कि सिखों की लपलपाती तलवारों ने उनके सिर धड़ से अलग कर दिये। नवाब अपने पाँचों बेटों समेत मारा गया।

विजयोन्माद में सिख सैनिकों ने किले के भीतर के लगभग पाँच सौ मकानों को ध्वंस कर दिया। मुसलमान स्त्रियों पर ऐसी दहशत गालिब हुई कि कुछ तो पानी के हौजों में कूद पड़ीं। नवाब का सारा सामान जिसमें जवाहिरात, हीरे, पन्ने और मोती भी शामिल थे। सिखों के हाथ आया। खजाना भी लूट लिया गया। सैनिकों ने शहर को भी लूटना चाहा किन्तु उन्हें रोक दिया गया। मुल्तान विजय के बाद सैनिकों ने लौटते हुये शुजाबाद को भी लूट लिया।

मुल्तान विजय के समाचार जब लाहौर पहुँचे तो महाराज बड़े खुश हुए और उन्होंने विजयोत्सव मनाने की आज्ञा देदी। अमृतसर और लाहौर दोनों जगह बराबर आठ दिन तक रोशनी की गई। लाहौर की गलियों में घूम-घूम कर महाराजा ने रुपये बाँटे। इस विजय से करीब पांच लाख का माल महाराज के हाथ लगा था और सिख, हिन्दू और मुसलमान सभी पर उनका रोब गालिब होगया। सुखदयाल को

महाराज ने मुल्तान का सूवेदार नयुक्त किया।

इन्हीं दिनों कावुल मे एक गृह कलह फैल गया। वात यह हुई कि कावुल के अमीर ने वजीर फतहखॉ को उनकी ईरान विजय पर दावत दी। दावत के मौके पर ही अमीर (शाहमहमूद) के वेटे फतहखां को मारडाला। इससे फतहखां का कवीला विगड़ गया और कावुल मे आन्तरिक कलह वढ़ गया। महाराजा रणजीतसिंह जी ने पेशावर को जीतने का यह स्वर्ण अवसर समझा और उन्होंने लगातार १५ दिन तक अपनी फौज की कवायद परेट देखकर फूलासिंह अकाली और दूसरे सरदारों के साथ पेशावर विजय के लिये फौजें रवाना कर दीं, पीछे से आप भी चल दिये। इन फौजों ने रास्ते मे खटक पठानों को परास्त करते हुए खैराबाद और नौशहरा पर भी कब्जा कर लिया। पेशावर मे उन दिनों यार-मुहम्मदखा सूवेदार था। उसने मुल्तान की कहानी सुनी थी। इसलिये सिख दल को देखकर उसने भागना ही उचित समझा। जहॉदादखॉं महाराज की सेवा में हाजिर हुआ और उसने पच्चीस हजार नजराना और चौदह तोपे भेंट करके अधीनता स्वीकार करली। महाराज ने उसे सूवेदार नियुक्त कर दिया और लाहौर की ओर लौट पड़े। जव कि वे अटक के पास थे। दोस्तमुहम्मदखां के एजेन्ट दामोदरमल और हाफिज उल्ला महाराज के पास पहुँचे। उन्होंने महाराज के सामने एक लाख रुपया इसलिये पेश करने की वात कही कि पेशावर दोस्तमुहम्मद को दे दिया जाय। महाराज राजी होगये। एजेंट लोग रुपया लेने के लिये कावुल की ओर चले गये किन्तु इसी वीच वरकजई लोगों ने जहांदादखां को पेशावर से निकाल दिया। महाराज ने तुरन्त ही दिलसिंह की मातहती मे वारह हजार सवार फिर पेशावर की ओर भेजे किन्तु इधर कावुल से पचास हजार नकद और कुछ वढ़िया घोड़े आ जाने के कारण अपनी सेना को वापस वुला लिया। कटक का स्नान करते हुए महाराज लाहौर को लौट आए। उधर दिलसिंह को शाहशुजा से भी एक भिड़न्त लेनी पड़ी क्योंकि वह पेशावर पर अपना कब्जा करनें जा रहा था। अन्त मे वह निराश होकर खैवर की ओर भाग गया।

इसके वाद महाराज ने अपने राजकुमार शेरसिंह और तारासिंह को फौजे देकर देश जात और हजारे के इलाके को विजय करने के लिये भेजा। यहॉ के इलाकेदार मुहम्मदखान की अपील पर हजारों मुसलमान उसके इलाके की रक्षा के लिये इकट्ठे हो गये। किन्तु लड़ाई में मुहम्मदखां मारा गया। उसके वेटे ने निराश होकर पिचहतर हजार रुपया नजराने के देकर सन्धि कर ली और अपने को लाहौर दरवार का खिराज गुजार स्वीकार कर लिया। दोनों राजकुमार मय सेना के लाहौर लौट आये।

मुलतान की कर वसूली का ठेका महाराज ने श्यामसिंह पेशावरिया को साढ़े छः लाख सालाना पर दे रक्खा था। फौजी प्रवन्ध महाराज के सेनापति ही करते थे। पेशावरिया ने लोगों को एक ही वार की उगाही में इतना तंग किया कि वहॉ की प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। सन् १८१७ में जव महाराज मुलतान पधारे हुये थे, तो उनके सामने शिकायतें आईं। महाराज ने पेशावरिया को तो कैद कर लिया और भाई वदनहजारी को वहॉ का सूवेदार नियुक्त करके खत्री सावनमल को माल अफसर वना दिया। इसी साल जमादार रामदयालसिंह ने डेरागाजीखां को भी जो कि अमीर कावुल की मातहती मे था। विजय कर लिया।

मुलतान में ही महाराज को खवर मिली कि उनकी दो रानियों से दो वच्चे पैदा हुये हैं। उनके नाम मुलतानसिंह और काश्मीरासिंह रखे गये। क्योंकि मुलतान और काश्मीर की विजय के उन दिनों कार्य चल रहे थे। मुलतान विजय हो चुका था। काश्मीर करना था। यहाँ यह भी खवर मिली कि

हजारा, तिलखी, घतूड़ा और तिखला के मुसलमानों ने भाई मक्खनसिंह को विद्रोह करके कत्ल कर दिया है। महाराज ने इस विद्रोह को दबाने के लिये दीवान रामदयाल और श्यामसिंह अटारीवाले को राजकुमार शेरसिंह को साथ देकर भेजा। इनके सिवा अहलूवालिया सरदार फतेसिंह और रानी सदाकौर भी साथ थे। रानी सदाकौर ने उद्दडता को देखकर कवीले वालों को एक दम तबाह करने का हुक्म सिख सैनिकों को दिया। इस हुक्म के मिलते ही कत्लेआम आरम्भ हुआ जिसमें हजारों मुसलमान काम आये। आखिर तिखला और यूसफजई आदि अनेकों कवीलेवाले इकट्ठे हो गये। दीवान रामदयाल ने उन्हें खदेडना चाहा। सारे दिन लड़ाई हुई जिसमे दोनों तरफ के काफी आदमी मारे गये। दीवान रामदयाल बड़ी बहादुरी से लडाई की शाम को लडाई स्थगित हो जाने पर फौजों के लौटते समय हजारों मुसलमान दीवान रामदयाल पर टूट पडे। जिन सबसे जूझता हुआ वह काम आ गया।

रामदयाल के मारे जाने से महाराज को बड़ा रन्ज हुआ और उसके पिता दीवान मोतीराम को तो इतना रन्ज हुआ कि वह काश्मीर की सूबेदारी को छोड़कर काशी को चला गया। उधर रामदियाल के मारे जाने पर सिख सेनाओं ने भी इतना कोप किया और इतने पठानों को जमीं दोज किया जिसके भय से उन्होंने खिराज देना स्वीकार कर लिया।

सन् १८२० ई० मे महाराज ने झेलम पार करके रावलपिंडी को जा दबाया और वहाँ के सरदार सन्दसिंह को खारिज करके दफ्तरी नानकचन्द को वहा का अफसर नियुक्त किया।

सन् १८२१ ई० के फरवरी महीने मे महाराज के युवराज खडगसिंह जी के पुत्र जन्म हुआ। जिनका नाम नौनिहालसिंह रक्खा गया। इससे बड़ी खुशियाँ मनाई गई। इसी वर्ष कम्तवाड और फतहकोट को विजय करके अपने राज्य मं मिलाया। सरदार हरीसिंह नलुआ, मिश्र दीवानचन्द को महाराज ने मक्खर विजय के लिये भेजा। सरदार दिलसिह और जमादार खुशालसिह डेराइस्माईलखां की ओर गये। वहाँ के अफसर नानकराय को गिरफ्तार करके खान गिरान, लैया, पजगढ़, पर कब्जा करते हुए मुनकेरा पर घेरा डाला। नवाब हाफिजरहमत २४ दिन तक लड़ा हालांकि उसके यहाँ पानी का बड़ा कष्ट था। ऊटों पर लादकर दूर से उसके यहाँ पानी लाया जाता था। इस लड़ाई मे महाराज भी पहुँच गये थे। नवाब ने हार मान कर सधि कर ली। इस लडाई से २४ तोप और दस लाख का इलाका महाराज के हाथ आया। डेराइस्माईलखाँ नवाब रहमत खा के ही हाथ रहा।

काबुल के मुहम्मद नजीम की कार्यवाहियों को महाराज बड़ी सतर्कता से देख रहे थे। इसलिये उन्होने उसे दड देने के लिये यही निश्चय किया कि भारत मे उसका जितना हिस्सा है। उसे जीत लिया, जाय। सन १८२३ ई० मे रोहतास मे उन्होंने अपनी सारी फौजे इकट्ठी कीं। आपने तो रावलपिन्डी की ओर कूच किया और फकीर अजीजुद्दीन को पेशावर यारमुहम्मदखा से खिराज वसूल करने के लिये भेजा। मुहम्मदयारखा ने नजराना दे दिया। अजीम को यह बात बहुत बुरी लगी और उसने अपने भाई से पेशावर छीन लेने के लिये इधर को भारी सेना के साथ कदम बढ़ाया। महाराज भी उससे निपट लेना चाहते थे। इसलिये उन्होंने शेरसिंह, हरीसिंह नलुआ और दीवान कृपाराम की मातहती मे एक बड़ा लश्कर पेशावर की ओर भेजा। इस सेना दल ने रास्ते मे जहाँगीराबाद को सबसे पहले कब्जे मे किया। मुहम्मद अजीम ने पठानों को धर्म युद्ध के नाम पर भड़काया। सीमांत के सभी प्रसिद्ध कवीले लडाई के लिये मैदान मे आ गये और नौशहरा में इकट्ठे हो गये। महाराज ने दूसरी फौज खडगसिंह और दीवान चन्द की मातहती मे पहली फौज को मदद के लिये रवाना की। फिर खुद भी चल पड़े। मुहम्मद अजीम

खां, दोस्तमुहम्मद, जवरखां भी नौशहरा में आ पहुँचे। १२ मार्च को १५ हजार सवारों के साथ महाराज ने दरियाये अटक को पार किया। उस समय अटक वड़े जोरों पर थी। आप यह कह कर अपने घोड़े को पानी मे घुसा ले गये "सवै भूमि गोपाल की यामे अटक कहाँ" वस आपके साहस करते ही सारे सवार घुस पड़े और वह लश्कर पार हो गया। नदी मे इतना जोर था कि कई आदमी वह भी गये। तोपे हाथियों पर रखकर पार की गई। उधर पठान भी वीस हजार से ज्यादा इकट्ठे हो चुके थे। दोनों ओर से जमकर युद्ध हुआ।

युद्ध आरम्भ हुआ। पठानों ने सिख जनरल सतगुरसहाय और महासिंह को गोली का निशाना वना दिया। सिख पठानों की मार से पहाड़ी के नीचे उतरने लगे। इस पर फूलासिंह अकाली ने अपने साथियों को ललकारा और वह भूखे भेड़ियों की भाति पठानों के गोल मे घुस गया। उसने अपने दोनों ही हाथों से काम लिया किन्तु गाजियों के दल मे चारों ओर से घिर जाने के कारण वह मारा गया। फूलासिंह के मारे जाने के वाद महाराज ने खुद युद्ध का सचालन किया। मिश्र दीवानचन्द ने तोपखाने को सभाला शाम तक वरावर रक्तपात होता रहा। आधे से अधिक गाजी मारे गये किन्तु वे अपने स्थान से तिल भर भी न हटे। इसके वाद गोरखों की पलटन को महाराज ने आगे वढ़ाया और उनके पीछे सिखों का एक रिसाला खड़ा कर दिया। ताकि वे पीछे न हटे। पठान इस प्रकार की मार को न सह सके और वे भाग निकलें। मुहम्मद अजीम इससे पहले ही गायव हो गया था। महाराज ने सेनाओं को आगे वढ़ाकर हस्तनगर पर कव्जा कर लिया और १७ मार्च को पेशावर पर अधिकार जमा लिया। पठान इस युद्ध मे वुरी तरह वर्वाद हो गये थे। इससे सिखों ने अलग २ सैनिक दल वनाकर पेशावर के चारों ओर लूट खसोट आरम्भ कर दी। वे मारते पीटते खैवर तक पहुँचे।

पेशावर को विजय करने के वाद महाराज ने नीतमता पूर्वक यारमुहम्मद और दोस्तमुहम्मद को ही सवा लाख सालाना के नजराने पर दे दिया। उन्होंने उस समय महाराज को दो जोड़ी वढ़िया घोड़े नजर किये। जिन्हें पाकर महाराज वड़े खुश हुए।

२६ अप्रैल को महाराज वापिस लाहौर आ गये और इस विजय की खुशियाँ मनाई। लाहौर और अमृतसर में खूव रोशनी की गई। इन्हीं दिनों तैमूरशाह का लड़का इब्राहीम लाहौर आया। जिसे महाराज ने वड़े सत्कार के साथ रक्खा।

सदा की आदत के अनुसार इसी वर्ष मे पिलखी और धमतूर के कवीले विगड़ गये। हरीसिंह नलवा ने जाकर उसका दमन किया और दमन भी भयकर। उसने इनके गॉव के गॉव जला दिये। जिससे आज तक भी अफगान उसे नहीं भूले हैं। इसके दूसरे ही वर्ष सन् १८२४ मे हजारा के जमीदार भी वागी हो गये और महाराज के किलेदार अव्वासखॉ खटक को उन्होंने कैद कर लिया। हरीसिंह ने उनके मिजाज को भी दुरस्त किया और अव्वासखॉ को जेल से छुड़ा कर उसकी जगह पर वहाल किया। इसी वर्ष वहावलपुर और मुनकेरा के नवाव मर गये। इसलिये महाराज ने २५-२५ हजार के नजराने लेकर उनके लड़कों को वारिस वना दिया।

काश्मीर की विजय मुल्तान और पेशावर से भी कहीं अधिक महत्व रखती है। उसके लिये लगातार वारह वर्ष तक उद्योग होते रहे तव कहीं काश्मीर जीता गया। इसलिये हम उसका स्वतन्त्र रूप से और एक स्थान पर यहॉ वर्णन करते हैं। इसीलिये वीच मे उसके लिये होने वाले प्रयत्नों और युद्धो का वर्णन नहीं किया है। जिस तरह से काश्मीर महाराज के हाथ मे आया और उसे प्राप्त करने के लिये जितनी लड़ाइयॉ

लड़नी पड़ीं पाठकों की सुविधा के लिये उनका संग्रह हमने इस स्थल पर कर दिया है।

जिन दिनों काश्मीर काबुल के अधीन था। उस समय वहाँ अतामुहम्मद सूबेदार था। अतामुहम्मद ने सन् १८१० ई० में शुजा की मदद करके उसके विरोधी भाई मुहम्मदशाह को हराया था। उसी साल दीवान मुहकमचद ने भम्मर और राजौर पर हमला किया। भम्मर के सुल्तानखाँ ने हारने पर लाहौर दरबार की अधीनता स्वीकार कर ली और ४० हजार नजराना दे कर मुहकमचद से पीछा छुड़ाया। दूसरी ओर महाराज ने कैटाल मे गगा का किला जीत लिया। उधर चूँकि मुहम्मदशाह फौज लेकर काश्मीर की ओर आ रहा था। इसलिये महाराज ने काश्मीर से अपनी फौजे हटा लीं और मुहम्मदशाह से दोस्ती कर ली।

भम्मर मे मुहकमचद ने सुल्तानखाँ की बजाय इस्माईल को नियुक्त किया था। किन्तु मुहकमचद के पीठ फेरते ही उसने इस्माईल को निकाल दिया। महाराज को जब यह समाचार प्राप्त हुए तो उन्होंने कुँवर खड्गसिंह और भाई रामसिंह के साथ एक सेना भम्मर की ओर भेजी। पीछे से मुहकमचद को भी रवाना किया। सुल्तान खॉ ने सिखों के पहले दल से तो ऐसी टक्कर ली कि उसे पीछे लौटना पड़ा किन्तु मुहकमचद के आने का समाचार सुनकर उसकी हिम्मत टूट गई और उसने सन्धि का प्रस्ताव पेश किया। मुहकमचद उसे लाहौर ले आया जहाँ उसे कैद करके भम्मर के इलाके को लाहौर दरबार के आधीन कर लिया गया।

सन् १८१२ ई० मे इस्माईलखाँ ने राजौरी के हाकिम अजीजखाँ के साथ मिल कर बगावत खड़ी कर दी। जिसे दबाने के लिये महाराज को खुद वहाँ जाना पड़ा। महाराज का इरादा था कि इस चक्कर मे काश्मीर को विजय कर ले किन्तु उन्हे खबर मिली कि लाहौर मे शाहशुजा आया हुआ है। इसलिये वे लाहौर वापिस आ गये।

इसी वर्ष काबुल का वजीर फतहखाँ अतामुहम्मद और उसके भाई जहाँदाद को सजा देने के लिये काश्मीर जा रहा था। उसे यह खयाल आया कि शायद महाराजा रणजीतसिंह की फौज काश्मीर के पहाड़ी रास्ता से भली प्रकार परिचित होगी। इसलिये लाहौर पहुँच कर उसने महाराज से फौज मागी महाराज उसके साथ फौज भेजने के लिये इस शर्त पर तैयार हो गये कि लूट का तीसरा हिस्सा वह सिखों को देगा। दीवान मुहकमचद के साथ बारह हजार सैनिक देकर उसके साथ मदद के लिए भेज दिया। दोनों फौजे पृथक-पृथक रास्तों से काश्मीर पहुँची। अतामुहम्मद भाग गया वजीर फतहखाँ ने शाहमहमूद के नाम पर काश्मीर पर कब्जा कर लिया और सिखों को एक कौड़ी भी न दी। दीवान मुहकमचद खाली हाथ लौट गया।

महाराज फतहखाँ की इस धोखेबाजी से इतने नाराज हुये कि उन्होंने उसी समय अटक के हाकिम जहाँदाद को एक पत्र लिखा कि राजी से किला खाली कर जाओगे तो सुरक्षित बाल बच्चों और अपने सामान के साथ जा सकोगे। वरना बिना राजी के भी अटक पर तो कब्जा किया ही जायगा। फकीर अजीजुद्दीन और दीवान देवीदास अटक का चार्ज लेने के लिये गये। बेचारा जहाँदाद घबरा गया और उसने किला खाली कर दिया। इतने ही समय मे वजीर फतहखाँ काश्मीर का चार्ज अपने भाई अजीज खाँ के सुपुर्द करके अटक की ओर आ पहुँचा। अटक के पास ही खुजूर के मुकाम पर दोनों ओर से लड़ाई हुई किन्तु तब तक मुहकमचन्द भी मदद के लिये आ पहुँचा था। वजीर और उसका भाई दोस्तमुहमद दोनों बड़ी बहादुरी के साथ लड़े किन्तु मुहकमचन्द के आगे उनकी पेश न गई। पठान सेनायें भाग निकलीं। पठानों पर सिखों की यह प्रथम शानदार विजय थी। यह घटना सन् १८१३

के जौलाई मास की है। इस जीत का उत्सव लाहौर मे मनाया गया। महीने भर वरावर प्रमोद जारी रहे।

इसी साल के अक्टूबर मे महाराज ने फिर काश्मीर पर चढ़ाई की तैयारी की। पहाड़ी राजाओं से खिराज वसूल करते हुये गुजरात के रास्ते से उनकी सेनायें काश्मीर में घुसीं। जव सेनाये भम्भर और राजौरी से गुजरती हुई ठढा मे पहुँची तो पता चला वहरामगिला का पुल मुसलमानों ने तोड़ दिया है और वर्षा की वजह से विना पुल के पार होना एक दम असंभव था। क्योंकि नदी की सतह समतल थोड़े ही थी। उन्होंने राजौरी के सरदार से पूछकर दूसरे रास्ते से वहराम के किले पर तो कव्जा कर लिया किन्तु वर्षा की अधिकता से आगे नहीं वढ़े और वापिस लाहौर चले आये।

सन् १८१४ ई० मे महाराज ने फिर काश्मीर पर विजय पाने की इच्छा से तैयारी की और स्यालकोट मे सारी सेनाओं को इकट्ठा किया। दीवान मुहकमचन्द की राय यह थी कि पहले राजौरी में रसद का काफी सामान इकट्ठा कर लिया जाय। तव काश्मीर पर हमला किया जाय। किन्तु उसकी राय पर ध्यान नहीं दिया गया। वह उस समय वीमार था। इसलिये उसने अपने लड़के रामदयाल को भेज दिया। राजौरी के हाकिम अगरखाॅ ने महाराज को पूछ के गलत रास्ते पर डाल दिया। सेना का दूसरा भाग रामदयाल और दूसरे सरदारों के अधीन था। जिनमे हरीसिंह नलवा और श्यामसिंह अटारीवाले भी थे, आगे भी रवाना हुआ। पीरपचाल को पार करते हुये यह दल महापुर जा पहुँचा। यहाॅ अजीमखाॅ ने सामना किया किन्तु वह हार कर लौट गया। और अगले मुकाम शोपाम मे सिख फौज का आगे वढ़ने से रोक दिया। रामदयाल ने श्रीनगर के पास हट कर एक गाॅव मे महाराज के आने की प्रतीक्षा मे डेरा डाल दिये। उधर महाराज की फौज श्रीनगर की वजाय पूंछ जा पहुँची। वर्षा भी आ चुकी थी और रास्ता भी न मिला, अत. महाराज फिर लाहौर लौट आये। लाहौर लौट कर कुछ फौज भाई रामसिंह को देकर रामदयाल की सहायता को भेजा किन्तु वह भी वहरामगिल मे चक्कर खाता रहा। उसे रास्ता मिला ही नहीं।

रामदयाल को जव यकीन हो गया कि विना महाराज के आये ही अव तो लड़ना पड़ेगा तो वह और उसके साथी इस प्रकार वहादुरी के साथ लड़े कि दो हजार पठानों को ठिकाने लगा दिया। रहीमखाॅ को लाचार होकर सुलह करनी पड़ी और उसने महाराज की भेट के लिये वहुत सा सामान दिया, जिसे लेकर रामदयाल वापिस लाहौर लौट आया। अव महाराज को दीवान मुहकमचंद की वात को न मानने पर पछताना पड़ा। यदि राजौरी में रसद का सामान इकट्ठा किया हुआ होता तो इसी वर्ष में काश्मीर पर कव्जा हो जाता। इसके कुछ दिनों वाद खवर मिली कि राजौरी और भम्भर के इलाकेदार भी वगावत पर उतर आये हैं। महाराज ने खुद अपने साथियों के साथ उस ओर का कूच किया। दीवान रामदयाल और सरदार दिलसिंह ने तुरन्त ही उन इलाकों में पहुँच कर विद्रोह को दवाया और राजोरी और कोटली पर अपना कव्जा कर लिया। उसके पास लगने वाला रामगढ़ियों का सारा इलाका भी इन सरदारों ने अपने कव्जे मे कर लिया। यह समाचार कावुल पहुँच चुका था कि महाराजा रणजीतसिंह काश्मीर को विजय करने के लिये चल पड़े हैं। अत. वजीर फतहखाॅ अजीमखाॅ की मदद के लिये एक भारी सेना लेकर हिन्दुस्तान मे आ गया। महाराज ने उसे अटकाये रखने के लिये दीवान रामदयाल को आज्ञा दी कि वह सराय काला पर अपना डेरा जमा दे और फतहखाॅ को इधर न वढ़ने दे। महाराज इस आशका से लाहौर लौट आये कि कहीं पठान इधर विजित प्रदेशों मे उपद्रव न कर दे।

इधर महाराज लाहौर से पच्छिम के प्रदेशों को जीतने और जीते हुए लोगों से नजराना वसूल

करने मे अपनी शक्ति लगाते रहे। खजाने मे भी इन दिनों मे वीसियों लाख रुपया इकट्ठा किया।

अंग्रेज महाराज के वढ़ते हुए प्रभाव को वडी सतर्कता के देख रहे थे किन्तु वे उनके मार्ग में कोई रुकावट पैदा नहीं कर सकते थे। उन्हे भी अपनी स्थिति का आखिर खयाल था।

सन् १८१८ ई० मे लाहौर के नये सूवेदार जवरखा और उसके हिन्दू वजीर वीरधर मे झगडा हो गया। वीरधर उसी वर्ष लाहौर मे महाराजा साहव के पास आगया और उसने महाराज को काश्मीर विजय के तमाम तरीके वता दिये। महाराज ने इस वार अपने सैन्य दल को तीन भागो मे विभक्त किया। मिश्र दीवान, कुँवर खडगसिंह और महाराज खुद एक-एक भाग के सेनापति वने। दीवानचन्द ने सव से पहले राजौरी किले को अपने हाथ मे लेना उचित समझा। क्योंकि काश्मीर की राजधानी पर कब्जा करने से पहले वह राजधानी के पास ही मजवूत स्थान को अपने वश मे करना उचित समझता था। राजौरी का हाकिम अजीतखां तो भाग गया। उसके लड़के रहीमखॉ ने सन् १८१६ के मार्च मे किले की चावी दीवान चन्द के सुपुर्द कर दी।

राजौरी पर कब्जा करने के वाद दीवानचन्द ने पूंछ पर हमला किया। यहॉ के हाकिम जवर्दस्तखा ने आधीनता स्वीकार करली। यहां से पीर पचाल होते हुए दीवानचद ने श्रीनगर की ओर प्रस्थान किया। तारीख १६ जून को सरायअली मे वारह हजार सिख इकट्ठे होगये। तारीख ५ जौलाई को शोपिन के मुकाम पर जवरखॉ ने आकर सिखों का मुकाविला किया। डटकर लडाई हुई। इतने मे कुँवर खडगसिंह और महाराजा रणजीतसिंह दोनों के दल आगये। पठान इन्हे देखकर मैदान छोड़कर भाग गये। जवरखॉ खुद भी वहुत जख्मी हुआ। सिख सेनाओं ने वढ़कर राजधानी पर कब्जा कर लिया। सिपाही चाहते थे कि कि शहर को लूट ले किन्तु सेनापतियों ने इजाजत नहीं दी।

काश्मीर विजय के उपलक्ष मे लाहौर लौटकर महाराज ने विजयोत्सव मनाया। तीन दिन तक लाहौर और अमृतसर मे खूब समारोह रहा। इसी अवसर पर काश्मीर प्रवन्ध के लिये महाराज ने दीवान मुहकमचन्द के लडके मोतीराम को काश्मीर का सूवेदार नियुक्त किया और प० वीरधर को ५३ लाख रुपया सालाना मे लगान उगाही का ठेका दे दिया। जवाहरमल को दस लाख रुपये सालाना पर शाल वनाने का भी इसी समय ठेका दिया। मोतीराम ने काश्मीर की सूवेदारी अधिक समय तक नहीं की। वह काशी जी को चला गया। अत. महाराज ने सरदार हरीसिंह नलुआ को जिन्होंने कि पिछले ही वर्ष दुर्वन्ध को फतह किया था। काश्मीर के प्रवन्ध के लिये मुकर्रर किया। सरदार हरीसिंह जितने वहादुर थे। उतने योग्य शासक नहीं थे। दीवान मोतीराम भी काशी से लौट आया था। अत. महाराज ने फिर मोतीराम को ही काश्मीर भेजा जिसने कि सन् १८२६ तक वहॉ का इन्तजाम खूवसूरती के साथ किया।

दीवान मोतीराम का सारा ही परिवार खालसा राज मे अच्छे ओहदों पर मुकर्रर था। उनका वड़ा लड़का जालन्धर पर और छोटा गुजरात पर गर्वनरी करता था। ध्यानसिंह इनसे जलता था। इसलिये उसने इन तीनों ही के खिलाफ महाराज के कान भरे और इन्हे नुकसान भी पहुँचवाया।

काश्मीर मे महाराजा रणजीतसिंह जी के स्वर्गवास तक नौ हाकिमों ने हाकिमी की। विजय के वाद ही मिश्र दीवानचन्द के हाथ ही प्रवन्ध रहा था। जो कुछ ही महीने वाद वदल दिया गया। दीवान मोतीराम ने दोनों वार मिलाकर तीन साल तक प्रवन्ध किया। हरीसिंह नलवा ने दो वर्ष, दीवान चुन्नीलाल ने तीन वर्ष दस माह, भीमासिंह ने एक साल, कुँवर शेरसिंह ने दो साल दो माह और कर्नल मिहासिंह ने सात साल चार दिन काश्मीर की हाकिमी की। इस २७ साला सिखों की काश्मीरी हकूमत के लिये मुहम्मद

दीन फौक ने अनेक मुसलमान तारीख लेखको के आधार इस प्रकार वर्णन किया है :—

"सिख सिपाहियों ने काश्मीर मे ऊधम मचाना शुरू कर दिया था। दीवान देवीदास ने महाराज के पास शिकायत भेजी कि काश्मीर का इंतजाम निहायत खराब है। झगड़े-फिसाद जारी हैं और सिख परेशान हैं। महाराजा रणजीतसिंह जी ने हुक्म दिया कि दीवानचन्द लाहौर आ जाय और दीवान मोतीराम काश्मीर जाकर प्रबन्ध करे। दीवानचन्द महाराज को खुश करने के लिये काश्मीर मे पचास लाख रुपया नकद सैंकड़ों घोड़े ले गया। जो उसने जमीदारों से लिये थे। महाराजा रणजीतसिंह समझते थे कि दीवानचन्द एक बहादुर आदमी है शासक नहीं" इसलिये उन्होंने इतनी भेंट के बाद भी दीवानचन्द को काश्मीर की हाकिमी तो न दी किन्तु उसे 'जफरजंग बहादुर' का खिताब अवश्य दिया।

दीवान मोतीराम ने काश्मीर का चार्ज संभाला। वह एक मिलनसार और मेल पसन्द आदमी था किन्तु वीरधर उसके किए कराए पर पानी फेरता रहता था। 'फौक' लिखता है। "वीरधर ने मुसलमानों को बहुत तंग किया। वह पठानों से भी कठोर साबित हुआ। उसने मस्जिदों के दरवाजे बन्द करा दिये। अजा देना और गौकशी करना उसने कतई बन्द कर दिया। बहुत सी मस्जिदें खालसा मे शामिल होगईं। एक संग दिल सिख फौलादसिंह नाम खानकाह मुहल्ला के अनहदाम पर भी आमादा होगया। किन्तु वीरधर ने झगड़े की आशका से उसे रोक दिया। .. जामा मसजिद के दरवाजे भी वीरधर के हुक्म से बन्द करा दिये गये। इन्हीं हालात की मौजूदगी मे दीवान देवदास कश्मीर से लाहौर आया और वहा की कैफियत बयान की। " ' 'महाराज ने मोतीराम को वहां से बुलवा लिया और सरदार हरीसिंह को प्रबन्ध के लिये काश्मीर भेजा।"

प० वीरधर के सम्बन्ध की यह शिकायत कहां तक झूठी है इस पर तो हमें कुछ नहीं कहना किन्तु वह सालियाना वसूल करने में बड़ा होशियार था। यह हम अवश्य जानते हैं। इसीसे खुश होकर महाराज ने उसे सन् १८२२ ई० मे दशहरा के अवसर पर एक खिलअत—चोगा, कलगी, माला, कमखाब का दुशाला और सोने का कड़ा देकर सम्मानित भी किया था।

सरदार हरीसिंह ने काश्मीर पहुँचकर सबसे पहले तो सिर फिरे लोगों को ठीक किया। इसके साथ इर्दगिर्द के इलाकों पर भी अधिकार जमाया। बारामूला के मुसलमान जमीदारों के साथ उसे लड़ाई भी लड़नी पड़ी। क्योंकि वे मालियाना देने से कतई बरी रहना चाहते थे। उसने खल्ला और बीमा के गुलामअली को भी काबू मे कर लिया जोकि एक बड़ा उद्दंड मुसलमान जागीरदार था। इसके बाद हरीसिह ने पखली और धमतोर के इलाके भी कब्जे मे कर लिये पूंछ और राजौरी के हाकिम खिराज नहीं देते थे। उन्हे भी हरीसिंह ने खालसा राज्य मे मिला लिया। इन खबरों को सुनकर महाराजा रणजीतसिह बड़े खुश हुये।

'वीरधर' की फिर भी शिकायतें जारी थीं। इसलिये महाराज ने उसे हिसाब दिखाने के लिये लाहौर बुलाया। उसका हिसाब निहायत साफ निकला। इससे महाराज बड़े खुश हुये और वीरधर को उन्होंने एक हाथी मय जंजीर के और बहुत सा इनाम दिया। उसका ओहदा भी बढ़ाने का इरादा जाहिर किया किन्तु कुछ ही दिनों मे उसके ऐसे पत्र पकड़े गये जो वह पहाड़ी राजाओं को उभारने के लिये लिखा करता था। अत. महाराज ने उसे उस स्थान से अलग कर दिया। सरदार हरीसिंह से काश्मीर के मुसलमान एक दम से नाराज हो गये और उन्होंने कुछ हिन्दुओं को भी अपने साथ मिलाकर सरदार हरीसिह की शिकायत कराई। इसलिये महाराज ने फिर उस जगह मोतीराम को ही भेज दिया और हरीसिह को वापिस बुला

लिया। मोतीराम का कुछ ही समय बाद लड़कामर गया। अतः वह काश्मीर से वापिस आगया।

मोतीराम की वापिसी पर महाराज ने कश्मीरी की सूबेदारी दीवान चुन्नीलाल को सौंपी और किलेदारी और तहसीलदारी सरदार गुरमुखसिंह को बख्शी। लेकिन थोडे ही दिनों बाद यह आपस मे ही तनातनी में लग पडे। इससे इतजाम और वसूली दोनों को हानि पहुँची। इनके दो वर्ष के प्रवन्ध मे खराबी ही खराबी पैदा हुई। इसलिये महाराज ने इन दोनों को मोकूफ कर दिया और लाहौर बुला लिया।

दीवान चुन्नीलाल के बाद महाराज ने कृपाराम को जोकि मोतीराम का ही लड़का था। काश्मीर मे प्रबंध के लिये मुकर्रिर किया। कृपाराम ने वहाँ के मुसलमानों को भी वना लिया। वसूलयावी मे गुलामउद्दीन नाम के एक शख्श से मदद लेता। इससे मुसलमान नाराज नहीं हुए। कृपाराम ने श्रीनगर को तरक्की देने के काम भी किये। भूकम्प के समय उसने मालगुजारी माफ कराई। गरीबों को मदद पहुंचाई। कई बाग और बगीचे लगवाये जिनमे रामवाग काफी मशहूर है।

राजा ध्यानसिंह की साजिशे कृपाराम के खिलाफ वरावर चल रही थीं। महाराज ध्यानसिंह की बातों पर ध्यान भी देते थे। कुछ कृपाराम से भी गलतियाँ हुई। इसलिये उन्होंने कृपाराम को काश्मीर से हटा लिया और भीमासिंह को मुकर्रिर किया।

सरदार भीमासिह जिन दिनों काश्मीर पहुँचे। वहाँ काफी उपद्रव उठ खडे हुए थे। जवरदस्तखाँ ने कई जागीरदारों को भड़का रक्खा था। भीमासिंह ने महाराज को लिख कर सहायता मगाई और पहले तो ऐसे लोगों को ठीक किया। फिर बाद मे शाति स्थापना के कार्य किये किन्तु मुसलमान जमीदार उससे राजी न रह सके। उन्होंने काफी शिकायते भीमासिंह की महाराज के पास भेजीं। समय पर रुपया भी लाहौर नहीं पहुँचा। इसलिये महाराज ने भीमासिंह को विवश होकर काश्मीर से हटा लिया और कुंवर शेरसिंह को वहाँ भेजना पड़ा।

कुंवर शेरसिंह के लिये 'फौक' ने लिखा है। "कुंवर शेरसिंह चाहे कितने ही अच्छे और वहादुर हों पर आखिर राजकुमार थे और वह काश्मीर की मस्ती मे भूल गये"। उन्होंने अपने अधिकार विशाखासिंह को सौप दिये और आप रगरेलियों मे डूब गये। विशाखासिंह ने मालगुजारी वसूल करने मे सख्ती से काम लिया। लोगों को लगान न देने की आदत तो काफी थी। विशाखासिह की सख्तियों से वह एक दम उसके दुश्मन हो गये। वीरधर के भाई गनेश पडित ने भी मुसलमान जमीदारो की तरह सरदार विशाखासिंह की महाराज से बुराइया की। इससे महाराज ने नाराज होकर विशाखासिंह को हटा दिया और जमादार खुशालसिंह को शेरसिंह का सहयोग देने के लिये मुकर्रिर कर दिया और आप भी कुछ दिन राजौरी आदि इलाकों का दौरा करते रहे।

अत में काश्मीर का कुल प्रवन्ध मिहासिंह कुमेदान को सौपा गया। जिसने वड़ी खूवी से लगातार सात साल तक प्रवन्ध किया। उसने बड़ी-बड़ी रकमे मालिकाने और खिराज की वसूल करके ठीक समय महाराज के पास भेजीं। मिहासिह जी के अच्छे शासन के सम्बन्ध मे वहाँ पर अनेकों कहावते और दत कथाये अब तक सुनी जाती हैं। उनमे से दिलचस्प होने के कारण दो कथाये हम यहाँ देते है। (१) वढई लोगों ने एक पेड़ का काटना शुरू किया। उस पर कौवे का घोंसला था। कौवा काव-काव करता हुआ सरदार मिंहासिह के महल के पास पहुँच गया। उसकी काव-कांव की तरज से सरदार मिंहासिंह ने अनुभव किया कि इसको किसी ने सताया है। उन्होंने एक सरदार को हुक्म दिया कि जाओ इस कौवे के पीछे-पीछे जाकर जगल में देखो, इसे किसने सताया है। कौवा उड गया। सवार भी उसे देखता हुआ जगल मे

पहुँचा। वहा जाकर देखा कि कौवा एक पेड़ पर बैठ कर चिल्लाने लगा जिसे कि बढ़ई काट रहे थे। सवार ने पेड़ काटना बन्द कर दिया। (२) दो रईस थे पड़ौसी-पड़ौसी। दोनों के एक-एक घोड़ी थी। एक की घोड़ी ने बछेड़ा दिया। वह दोनों घोड़ियों के नीचे जाकर उनके स्तन चूसता रहता। प्रकृति के नियमानुसार दूसरी घोडी के भी दूध उतरने लगा। बछेड़ा अच्छा था। अब तो उस रईस की नियत बिगड़ गई। यह कहने लगा बछेड़ा मेरी ही घोड़ी का है। मामला बढ़ते-बढ़ते सरदार मिंहासिंह के पास पहुँचा। दोनों ने कहा मेरी घोड़ी इसे पिलाती है और इसीलिये पिलाती है कि मेरी घोड़ी ने इसे जन्म दिया है। सरदार मिंहासिंह उन्हे नदी किनारे ले गये। घोड़ियों को तो किनारे पर खड़ा कर दिया और बछेड़े को नाव मे चढ़ा दिया। बछेड़ा नदी के बीच मे पहुँच कर घबराहट से हिनाहिनाया। किनारे पर खड़ी हुई घोड़ियों मे से एक तो किनारे पर ही हिनहिनाती रह गई और एक पानी को चीरती हुई बछेड़े के पास पहुँच गई। फैसला हो गया। सभी लोगों ने सरदार मिंहासिंह के इन्साफ की प्रशसा की।

गर्ज यह कि जनरल मिंहासिंह जी का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध रहा। जैसा पिछली कई सदियों से काश्मीर निवासियों को देखने मे नहीं आया था।

काबुल का अमीर दोस्तमुहम्मद इस बात के लिये प्राणपण से चेष्टा कर रहा था कि शाहशुजा की हुकूमत फिर से काबुल मे न जमने पाये। एक ओर उसका यह प्रयत्न था। तो दूसरी ओर वह यह भी चाहता था कि पेशावर सिख साम्राज्य में न रह कर काबुल के नीचे आ जाय। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह सरहद के मुसलमान रईसों मे सिखों के खिलाफ प्रचार भी करा रहा था। इसका फल यह हुआ कि सन् १८३४ ई० मे दिलासाखा ने बन्नू के इलाके मे उपद्रव खड़ा कर दिया। दिलासाखां को उम्मीद भी थी कि दोस्तमुहम्मद उसकी मदद करेगा और वह खड़ा भी दोस्तमुहम्मद के सकेत पर ही हुआ था। उसके विद्रोह को दबाने के लिये सरदार शामसिंह और बख्शी तारासिंह ने तैयारी की और गढ़ी नामक स्थान पर उसे जा दबाया। दिन के मुहासरे के बाद रात के समय जब कि सिख सेना सो रही थी। पठानों ने हमला कर दिया। जिसमे कई सौ आदमी मारे गये। इस नुकसान के कारण शामसिंह और तारासिंह ने हट जाने की तैयारी की किन्तु इसी समय मे राजा सुचेतसिंह सिख सेनाओं को लेकर पहुँच गये। दिलासाखा के हौसले पस्त होगये और उसने अपने अपराध की माफी मांग ली।

पेशावर

अब तक पेशावर और उसके आस पास के इलाके महाराजा रणजीतसिंह जी के माडलिक थे। वहीं के पठान वहाँ के स्थानीय हाकिम थे किन्तु इस घटना के बाद महाराजा साहब ने पेशावर और उसके पास के उन समस्त इलाकों पर कब्जा कर लेना निश्चय कर लिया जो कि भारत के अन्दर और अफगानिस्तान की सीमा से इधर की ओर थे। ऐसा किये बिना इस बात का अन्देशा हर समय रहता था कि न जाने कब इन प्रदेशों के हाकिम काबुल से अपना सम्बन्ध जोड़ ले।

इन दिनों सरदार हरीसिंह नलवा यूसफजई इलाके मे थे। उन्हे महाराज ने आज्ञा पत्र भेजा कि कुँवर नौनिहालसिंह के साथ मिलकर पेशावर पर कतई कब्जा कर लो। अप्रैल के महीने मे यह सेनाये पेशावर पहुँच गई। इतने सिख दल को देखकर पेशावर का हाकिम घबरा गया। वह अब तक के बाकी खिराज का बहुत सा अंश और अनेक प्रकार के तोहफे लेकर कुंवर नौनिहालसिंह की सेवा मे हाजिर हुआ। कुंवर नौनिहालसिंह ने खिराज की रकम तो रख ली किन्तु भेट मे आये हुये घोडे और सारा सामान वापिस कर दिया। इस रवैये को देखकर सुलतान महमूद हाकिम पेशावर और अन्य पठान सरदार

घबरा गये। उन्होंने समझ लिया कि हमारा झुलावा अब अधिक काम नहीं दे सकता है। अत' उन्होंने अपने स्त्री बच्चों को मय जरूरी और कीमती सामानों के काबुल की ओर रवाना कर दिया।

सरदार हरीसिंह ने भी पठानों की तरह ही एक चाल चली उन्होंने महमूद के पास खबर भेजी कि कुंवर नौनिहालसिंह कल सवेरे भीतर घुस कर सैर करना चाहते है। हाकिम वास्तविक बात को पहले ही समझ गया था। अत रात को ही अपने प्राण लेकर पहाड़ों मे भाग गया। प्रात. सिख सेनाओ ने क़िले पर अपना अधिकार कर लिया।

पेशावर पर सिखों का कब्जा हो गया किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जी निश्चित नहीं हुये। वे बराबर पेशावर की ओर फौजे भेजते रहे क्योकि वे खूब जानते थे। जब भी और किसी भी तरह पठानों का मौका लगेगा, पेशावर पर आक्रमण करेंगे। पेशावर तब तक सुरक्षित नहीं है। जब तक कि पठानों की शक्ति क्षीण न हो जाय और उन्हे लड़ाई मे एक भारी जन-धन का घाटा न उठा लेना पड़े। बहुत कुछ सैनिक दल भेजने के बाद उन्होंने कुछ ही दिनो बाद खुद भी पेशावर की ओर कूच कर दिया।

उधर दोस्तमुहम्मद रईस काबुल को जब यह खबर लगी तो बड़ा चिन्तित हुआ। उसने अंग्रेजों को लिखा कि आप अपना प्रभाव डालकर महाराजा रणजीतसिंह जी से पेशावर उसके हाकिम सुलतान महमूद को वापिस करा दीजिये। अंग्रेज दिल मे तो यह नहीं चाहते थे। कि महाराजा रणजीतसिंह जी का प्रभाव बढ़ जाय किन्तु उस समय इतनी शक्ति भी नहीं रखते थे कि उस सधि के वे खिलाफ कुछ कर सके। जो महाराज को उत्तर पच्छिम मे राज्य बढ़ाने की इजाजत देती थी। अंग्रेजो के यहाँ से सहायता देने मे असमर्थता के जवाब से दोस्तमुहम्मद को दुख अवश्य हुआ किन्तु वह निराश नहीं हुआ। उसने जबरखा को ईरान के बादशाह के पास भेजा कि वहाँ से एक बड़ी सेना लाओ। इधर उसने अपनी सेनाओं को तैयार किया और जलालाबाद आ पहुँचा। जलालाबाद से फौजे लेकर उसने पेशावर की ओर कूच किया। इस समय ईद आ चुकी थी। इसलिये 'अली बागान' मुकाम पर उसने ईद मनाई और घुटने टेक कर खुदा से दुआ की "ऐ परविरदगार मुझ मक्खी की इस सिख हाथी से रक्षा कर।" रास्ते मे उसने मजहब के नाम पर पठानों को उभाड कर और भी लोग बढ़ा लिये। खैबर को पार करके उसने सिक्खान नामक स्थान पर डेरा डाले और अपनी सेनाओं का निरीक्षण किया तथा उचित हिदायते भी दीं।

उधर महाराजा रणजीतसिंह जी भी पेशावर आ पहुँचे थे किन्तु न तो वे अभी तक अपनी सेना के मोरचे बाध सके थे और न उचित हिदायते ही दे सके थे। इसलिये दोस्तमुहम्मद को दस पाच दिन अटकाये रखने के लिये उसके साथ महाराज ने सुलह के पैगाम भेजना और जवाबों पर विचार करना शुरू कर दिया।

दोस्तमुहम्मद चकमे मे आ गया और वह अपने बल पर अभिमान भी करने लगा। इस प्रकार वह असावधान रहा और जो लडाई के लिये उसे करना चाहिये था। उससे लापरवाह हो गया।

महाराज ने अपनी सेनाओं का अर्द्ध व्यूह बनाया। उन्हे पाच भागों मे विभाजित करके इस प्रकार से लगाया कि सेनाओं का अर्द्ध चन्द्र बन गया। दोनों बाजुओं पर सामने रिसाला इनके पीछे पैदल और फिर रिसाला। बाजुओं से शत्रु पर सवार आक्रमण करे और उनके स्थान पर पैदल पहुँचकर तैयार रहे। सामने के सवार उसे आगे बढ़ने से रोके। दाये बाये बाजुओं के सेनापति फक़ीर अजीजुद्दीन और मि० हारसैन को मुकर्रिर किया।

जब दोस्तमुहम्मद ने इस प्रकार अपने को घिरा देखा तो वह घबरा गया। उसे पूरा निश्चय

हो गया कि मेरी जीत असंभव है। अत: उसने भी एक चाल चली। अपने भाई सुलतान महमूद के जरिये फकीर अजीजुद्दीन और हारमैन को सन्धि सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें तय करने के बहाने से बुला लिया। जिनसे कि पेशावर पर बिना ही रक्तपात के सर्वतन्त्र महाराजा रणजीतसिंह जी का मान लिया जाता। ये दोनों ही सेनापति उसकी चाल में आकर उसके डेरे मे चले गये जहाँ उन्हे कैद कर लिया। दोस्तमुहम्मद उन्हे अपने भाई सुलतान महमूद के हवाले करके खुद भाग गया। उसने चलते समय फकीर अजीजुद्दीन से कहा था काफिर के साथ दगा करना मैं धर्म समझता हूँ। तुम एक गैर मुस्लिम की मदद करते हो, इसलिये काफिर ही हो।

सिख सेना ने जब देखा कि यह दगा हुई तो वह बाज की तरह झपट कर अमीर के डेरों पर पड़ी। पठानों की लाश पर लाश बिछाकर सेनाओं ने अपने नायकों को छुड़ा लिया।

काबुल मे जब यह खबर दोस्तमुहम्मद को लगी कि वे दोनों सेनापति उसके भाई से छुड़ा लिये गये हैं तो उसे बड़ा रन्ज हुआ और हाथ मल कर रह गया। किन्तु बेचारा अब कर क्या सकता था।

दोस्तमुहम्मद के भाग जाने पर महाराज ने पेशावर किले की मरम्मत कराई और वहाँ का प्रबध सरदार हरीसिंह नलुआ के हाथ छोड़कर आप लाहौर चले आये।

कहा जाता है कि महाराजा रणजीतसिंह जी के एक सेनापति सरदार जोरावरसिंह ने सन् १८३४ के मध्य में लद्दाख और तिब्बत के प्रदेशों तक धावा किया था। जोरावरसिंह ने महाराजा साहब को यह भी कहा था कि यदि आप आज्ञा दे तो मैं चीन तक धावा मार सकता हूँ किन्तु महाराज ने उसे हँसकर ऐसा करने से रोक दिया।

पेशावर मे रहते हुये सन् १८३७ ई० की सर्दियों मे सरदार हरीसिंह जी ने जमरूद को भी जीत लिया और वहाँ पर अपने पोषक पुत्र महासिंह को मुकर्रिर कर दिया। जमरूद के सिखराज्य में मिल जाने से पठानों को बड़ा दुख हुआ। दोस्तमुहम्मदखाँ तो इतना दुखी हुआ कि उसने इश्तहार निकलवा दिया कि हमारा दीन सिखों की वजह से खतरे मे है। हमे इनका संयुक्त मोर्चे से मुकाबला करना चाहिये। हाजी अब्दुलरजाक दस हजार मुलखे पठान लेकर जमरूद पर चढ़ आया। दोनों ओर से काफी लड़ाई हुई। जिसमे सिख भी काफी काम आये क्योंकि रात के समय उन पर पठानों ने अचानक छापा मारा। फिर भी वे लोग हरीसिंह के सामने ठहर न सके और भाग गये। सरदार हरीसिंह पेशावर लौट आये। जमरूद मे उनके लड़के की कमान मे ही एक सेना उसके प्रबन्ध के लिये छोड़ दी गई थी।

सरदार हरीसिंह तो लौट कर पेशावर चले गये किन्तु इतने ही समय मे दोस्तमुहम्मद खैबर दर्रे को पार करके आगया और उसने जमरूद का घेरा दे लिया। महासिंह भी हिम्मत के साथ लड़ता रहा। उसने अपने पिता के पास पेशावर भी इस अमर की सूचना देदी। अमीर काबुल ने महासिंह से किला खाली करने को बहुत कहा किन्तु महासिंह ने किला हर्गिज खाली नहीं किया। हालांकि रसद का सामान किले मे बीत चुका था। पानी का भी बड़ा घाटा था किन्तु वह घबराया नहीं। आखिर दोस्त मुहम्मद ने अपनी अपनी सारी शक्ति लगा कर किले की एक दीवार को तोड़ दिया। पठान फिर भी किले मे घुसने से हिचकने लगे। महासिंह ने भी अपनी सारी ताकत उधर ही लगा दी। ज्योंही पठान उधर से आगे बढ़े। महासिंह के सैनिकों ने बन्दूकों और तोपों से उनके सीनों पर गोले गोलियों की ऐसी वर्षा की कि पठानों का दल वापिस लौट पड़ा। उन्हे भारी हानि उठानी पड़ी। दोस्तमुहम्मदखाँ इस बात से भी खुश था कि चलो किले की दीवार तोड़ तो दी गई है। प्रवेश आज न सही कल हो जायगा।

किन्तु इतने मे ही सरदार हरीसिंह अपने दल बल सहित आ गया। अब दोनों ओर से जान हथेली पर रख कर युद्ध हुआ। आखिर पठानों के पॉव उखड़ गये। सरदार शेरसिंह ने उनका पीछा किया और अली मस्जिद तक उन्हे खदेड़ा। पठानों की १४ तोपे और बहुत सारा सामान उनके हाथ लगा। इस लडाई मे सरदार हरीसिंह सख्त जख्मी हुये। उनके साथी उन्हे हाथी पर विठा कर जमरूद ले आये।

उनके बेटे महासिंह ने इस समय भी बडी चतुराई से कार्य लिया। उसने लाहौर तो खबर भिजवा दी कि सरदार हरीसिंह का अत्यधिक गहरे घावों के कारण देहान्त हो गया किन्तु अपने सैनिकों को इस बात का उस समय तक पता नहीं चलने दिया जब तक कि लाहौर से सेना और सेनापति न आ गये। क्योंकि वह समझता था सैनिकों का साहस टूट जायगा और इलाके मे यह खबर फैल गई तो पठान टिड्डी दल की भॉति जमरूद को घेर लेंगे।

महाराजा रणजीतसिंह जी ने जब वह समाचार सुना तो वे स्तब्ध रह गये और एक दम उनकी ऑखों से ऑसू निकल पडे। वास्तव मे सरदार हरीसिंह एक अनुपम वीर थे और साथ ही स्वामि भक्त भी वे पूरे थे।

सरदार हरीसिंह का बड़ा धूमधाम से अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। जिसमे सिख दरबार के सभी सरदार शामिल हुए। इसके बाद महाराज के हुक्म से राजा दयालसिंह की देख रेख मे जमरूद के इलाके मे एक और किला बनाया गया। इस किले के बनाने मे समस्त सिख सेना और सरदारों ने अपने हाथ से मिहनत की। इस किले का नाम फतहगढ रक्खा गया।

जमरूद का प्रबंध राजा गुलाबसिह और जनरल व्टेवल साहब को सौंपकर महाराज लाहोर वापिस आ गये। जहॉ उन्होने नैपाल दरबार से आये हुये तोहफे स्वीकार किये।

इसी साल भादों के महीने मे खबर मिली कि मुल्तान मे पठान विद्रोह करने की तैयारी कर रहे है। रजियाला नाम के गॉव मे विद्रोही इकट्ठे हो रहे है। बैरामखां मजारी इनका नेता बना हुआ है। महाराज ने सावनमल को लिखा कि यह विद्रोह तुम्हारी ही लापरवाही से होगा। अत इसे इसी समय न दबाया गया तो इसके जिम्मेवार तुम होगे। सावनमल इस हुक्म के पहुँचते ही सेनाये लेकर संदिग्ध इलाके मे पहुँचा। और विद्रोह को दबा दिया। इस उपलक्ष मे महाराज ने उसे बहादुर का खिताब दिया। सावनमल ने मजारियों के रोजान और कान नामक स्थानो पर भी कब्जा कर लिया। यह घटना सन् १८३६ ई० की है।

सन् १८३७ ई० मे ईरान का बादशाह मर गया। काबुल के अमीर दोस्तमुहम्मद को उससे हर समय मदद की आशा रहती थी। उसने देखा कि अब बिना रूस से दोस्ती किये काम नहीं चलेगा। आखिर कोई भी तो मददगार चाहिये ही। उसका ऐसा भी खयाल था कि रूस से दोस्ती जोड कर सिखों को दबाया भी जा सकेगा। अत: उसने रूस के साथ पत्र व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। अंग्रेज इस बात को कतई पसंद नहीं करते थे कि हमारे सिवा अन्य किसी भी यूरोपियन शक्ति का प्रभाव भारत की ओर बढे। इसलिये वे यह भी पसंद नहीं करते थे कि भारत का पड़ौसी अफगानिस्तान रूस से दोस्ती पैदा करे।

शाहशुजा को सहायता

पहले तो उन्होंने दोस्तमुहम्मद को समझाया किन्तु मामला बनता न देखकर उन्होने दोस्तमुहम्मद को काबुल की गद्दी से हटा देना ही मुनासिब समझा किन्तु अकेले उन्हे यह काम कठिन दिखाई देता था अत महाराजा रणजीतसिंह जी के पास मि० मैकनाटन वारनिस को इस सम्बन्ध मे बातचीत करने के

नये भेजा। जिसने महाराजा के सामने काबुल की गद्दी से दोस्तमुहम्मद को हराकर शाहशुजा को बैठाने का प्रस्ताव रक्खा। राजा ध्यानसिंह इस पक्ष में नहीं था कि काबुल पर चढ़ाई करने मे हम लोग अंग्रेजों का साथ दे किन्तु महाराज राजी हो गये। सिख सरदारों ने महाराज के सामने यह बात रक्खी के काबुल पर चढ़ाई तो की जाय किन्तु अंग्रेजों की कोई मदद न ली जाय। लेकिन बात महाराज की रही।

इधर महाराज ने शाहशुजा के साथ बातचीत करना शुरू किया। उसने लिखा कि मैं दो लाख रुपया और पचास घोड़े[1] सालाना महाराज को इस एहसान के एवज मे अपनी जिन्दगी भर देता हूँगा। यह बात अंग्रेजों की मर्जी के विरुद्ध थी क्योंकि वे सिर्फ जलालाबाद महाराज को दिलाना चाहते थे। किन्तु अब इस तरह समझौता हो जाने पर वे कर भी क्या सकते थे। नवम्बर मे अंग्रेजी सेनायें फीरोजपुर मे इकट्ठी हुई। महाराजा रणजीतसिंह और जनरल आकलेण्ड की यहीं मुलाकात हुई।

शाहशुजा, अंग्रेज और सिखों की लगभग अठारह हजार संयुक्त सेना ने अफगानिस्तान की भूमि पर ज्यों ही कदम रक्खा। दोस्तमुहम्मद काबुल को छोड़कर भाग गया। दुर्दान्त पठानों के मुल्क मे इस प्रकार सिखों का सहज ही दबदबा बैठ गया। कहा जाता है शाहशुजा बराबर महाराज के पास निश्चित भेट भेजता रहा।

सन् १८३९ ई० मे महाराजा रणजीतसिंहजी का अंतिम समय आगया। लकवे से उनका शरीर सुन्न होगया। हालत यह हुई कि उन्हे बोलने चालने मे भी कठिनाई होने लगी। इशारों से राज्य कार्य मे सहायता देने लगे। बहुत इलाज कराया गया किन्तु जब आराम होने की कोई सूरत दिखाई नहीं दी तो उन्होंने अंतिम समय जान कर बड़ा दान पुण्य करना आरम्भ कर दिया। हजारों रुपये प्रति दिन कंगालों को बाटे जाने लगे। पच्चीस लाख रुपये की सम्पति और बाईस लाख नकद साधु, फकीरों, धर्मशालाओं, गुरुद्वारा और अन्य धार्मिक संस्थाओं को दिये गये। कहा जाता है। इस प्रकार एक करोड़ रुपये का दान पुण्य हुआ। महाराज की इच्छा थी कि कोहनूर हीरे को भी अमृतसर के हरिमंदिर जी के लिये दान कर दें किन्तु तोशाखाने के अधिकारी बेलीराम ने अड़गा डाल कर इस इच्छा को पूरा नहीं होने दिया।

अंतिम समय

१८३९ ई० की २७ वीं जून को महाराज इस संसार से प्रस्थान कर गये। उनके शव को पलंग से उतारने के लिये दस हजार रुपयों का एक चबूतरा बनाया और दस हजार के शाल उन रुपयो पर बिछाये गये। उन पर महाराज के शव को रख कर जनता को उनके अतिम दर्शन कराये गये। सारा लाहौर उनके शव-दर्शन को उमड़ पड़ा। शोक और मातम की घटाये छा गई।

किले के बाहर रावी के तट पर[2] उनका संस्कार किया गया। उनके साथ उनकी कई रानिया सती भी हुई।

आज कल वह समाधि जो महाराजा साहब की भस्मी के फूल चुन कर बनाई गई थी महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि के नाम से मशहूर है। जो विशाल गुरुद्वारे की चहार दीवारी के भीतर है। जहाँ अनेकों दर्शनार्थी प्रति वर्ष पहुँच कर उस समाधि पर अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं।

१ इसके अलावा सात फार्सी टट्टू, ग्यारह फारसी तलवार, पच्चीस अच्छे खच्चर, एक सौ एक फारसी कालीन फल, मेवा, साटन के थान आदि भी उसने प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया था।

२. उन दिनों रावी वहीं तक हिलोरें लेती थी।

महाराजा रणजीतसिंह पर एक सरसरी दृष्टि

महाराजा रणजीतसिंह जी एक अनवरत योद्धा थे। बालकपन से ही उन्हे लड़ाइयों में उतरना पड़ा और जीवन के अन्तिम वर्ष तक उन्हे लड़ना पड़ा। भारत मे उनका वही स्थान है जो यूरोप मे नैपोलियन और सिकन्दर महान का है। एक साधारण स्थिति के सरदार के घर मे जन्म लेकर वे राजा ही नहीं महाराजा बन गये। उनके प्रताप की धाक भारत से बाहर फ्रांस, रूस और इंगलैंड तक पहुँच चुकी थी। उनके नेतृत्व मे सिखों ने वह बात करके दिखाई थी, जो पिछले एक हजार वर्ष के बाद किसी ने नहीं दिखाई थी। काबुल तक दुर्दान्त पठानों को उनके ही समय मे खदेड़ने की भारत देश ने शक्ति प्राप्त की थी। एक दिन था कि काबुल का ताज उनके हाथ मे था जिसे वे चाहते, बादशाह बनाते। महाराजा कनिष्क के बाद भारत के इतने बड़े भू-भाग पर महाराजा रणजीतसिंह का ही प्रभुत्व रहा था।

बुद्धि उनकी विलक्षण थी। कब किसका किस प्रकार उपयोग करना है? इस बात को वे खूब जानते थे। राज्य के बढ़ाने और अनेक सहायक पैदा करने के लिये उन्होंने किसी मौके को नहीं चूका। उन्होंने अपने राज्य को बढ़ाने के लिये अनेकों छोटी-मोटी रियासतों को अपने अपने राज्यमे मिलाया और अनेकों से दोस्ती भी की। फतहसिंह अहलूवालिया को दोस्त बनाकर उस समय की स्थिति के अनुसार उन्होंने काफी लाभ उठाया था। रामगढ़िया और भंगी दोनों ही उनके विरुद्ध थे। कन्हैया लोगों के साथ उनका रिस्ता था अहलूवालियों से दोस्ती करली। इस प्रकार उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाकर अपने शत्रुओं का सहज ही मान मर्दन किया था। जो उनकी तीव्र बुद्धि का परिचायक है।

यद्यपि उनकी एक आँख चेचक मे जाती रही थी किन्तु उनके चेहरे पर अपूर्व तेज था। अंग्रेज लार्ड के यह पूछने पर कि महाराज किस आंख से काने हैं? फकीर अजीजुद्दीन ने कहा था। "हम यह नहीं कह सकते। हमारी तो उनके प्रचंड तेजस्वी चेहरे की ओर देखने की भी हिम्मत नहीं होती है।' वास्तव मे उनका रौब ऐसा ही था। बड़े से बड़े खूंखार भी जब उनके सामने आते थे तो दहल जाते थे।

उनका ऐसा रौब था कि लोग उनसे थर-थर कांपते थे। राजा ध्यानसिंह, गुलाबसिंह आदि वजीर उनके सामने बैठने में भी डरते थे, खड़े होकर बाते करते थे। किन्तु महाराजा रणजीतसिंह स्वयम पंथ के सामने अपने को बहुत ही छोटा आदमी समझते थे।

दान पुण्य करने में भी महाराज उतने ही उदार थे जितने सम्पत्ति संग्रह करने मे उत्सुक। इतने दिन बीत जाने पर भी काशी, लाहौर, ज्वालामुखी और अमृतसर आदि में आज तक उनके दान की महिमा बखानी जाती है।

अपने समय मे भारत मे वे अद्वितीय बहादुर और तेजस्वी राजा थे। अंग्रेज उनसे डरते थे और अफगान उनके भय से थर-थर कांपते थे।

उनके समय खालसा राज्य की परिधि बहुत बढ़ गई थी। किन्तु कहना तो यह चाहिये कि उत्तरी भारत का प्राय: सारा ही उपजाऊ प्रदेश उनके और उनके सहधर्मी सिख सरदारों के हाथ मे था। उस विशाल राज्य की सीमाये जो महाराजा रणजीतसिंह जी के अधिकार मे था। उत्तर और ईशान कोण की ओर हिन्दुकुश और तिब्बत की पर्वत माला तक विस्तीर्ण होगई थी। नैऋत्य कोण मे उसमां खेल, खैबर और सुलेमान की पर्वत मालाओं को उनके राज्य की सीमा छूती थी। मिट्ठन कोट से अमरकोट तक सिन्धु नदी उनके राज्य की सीमा बनाती थी। अग्निकोण की ओर सतलज उसकी राज्य-रेखा थी। वैसे सतलज के पार भी उनके ४५ तालुके थे। उत्तर मे उनके राज्य की जहाँ तक सीमा बढ़ी थी। इससे पूर्व

कनिष्क और अशोक के राज्यों की सीमा भले ही रही हो।

मुगल पठान, गोरखा और राजपूत सभी ने उनके राज्य-वर्द्धन के कार्य मे रुकावट डाली थी और सभी ने उनसे बल आजमाई की थी। किन्तु अखिर मे सभी को उनका लोहा मानना पड़ा था।

यह बाते हम संकोच से कहते हैं। वरना जितना हम लिख रहे हैं। महाराजा रणजीतसिंह जी उससे कहीं बहुत अधिक महान थे। जिन अंग्रेजों ने उनके बाद उनका राज्य हड़पा वे आज भी उन्हे 'पंजाब का शेर' नाम से ही याद करते हैं। उनकी जिन्दगी के समय मे तो उनकी दोस्ती के लिये भारत के भीतर और बाहर सभी स्थानों के शासक इच्छुक रहते थे। समय समय पर वे अनेक प्रकार की भेंट और तोहफे भी उनके वास्ते भेजते थे।

उनका सम्मान

भारत मे निजाम हैदराबाद क्लात (बिलोचिस्तान) और सिन्ध के अमीरों ने जहाॅ दोस्ती करने के लिये उनके पास अपने एजेन्ट भेजे। वहाॅ उनके वास्ते विदेशोंने बहुमूल्य वस्तुयें भेजीं। भारत के बाहर इंगलेड के बादशाह विलियम ने एक गाड़ी और पाच बढ़िया घोड़े मि० वरञ्ज वरीनस के साथ मय दोस्ती के पैगाम भेजे थे। सन् १८३५ मे एलार्ड नामका फ्रेंच फ्रास के बादशाह की ओर से तोहफा लेकर हाजिर हुआ और महाराज की प्रशंसा मे अपने बादशाह की ओर से एक पद्य भी सुनाया। इसी वर्ष तिब्बत के राजा का भाई भीम काल भी अच्छी २ भेंट लेकर आया। देश में नैपाल, जयपुर आदि सभी राजाओं ने अपने वकील भेजकर यह जाहिर किया कि हम आपके बढ़ते हुये वैभव से प्रसन्न हैं और पारस्परिक सहयोग के इच्छुक हैं।'

इसके अलावा उनके समय मे अनेकों विदेशी यात्रियों ने आकर उनके राज्य प्रबन्ध और शासन व्यवस्था को देखा,कारण कि उनकी कीर्ति सुदूर देशो तक फैल रही थी। ऐसे यात्रियों में फ्रास के चित्रकार मि० 'पिकर जैकमो, जर्मनी के डाक्टर हांनिग वरगर अमरीका के लेखक मि० मैक् गिरगर के नाम विशेष उल्लेखनीय है। जिनसे महाराज ने उनके देशों के सम्बन्ध मे सेना, प्रबन्ध, सभ्यता और धर्म सम्बन्धी अनेकों प्रश्न करके अनेक प्रकार की जानकारी हासिल की थी। इन यात्रियों ने महाराजा के शासन और सेना के सम्बन्ध मे काफी प्रकाश डाला है।

बहादुरी और प्राण देने मे निर्भीक, इस दृष्टि से उनके सैनिक ससार भर में प्रथम श्रेणी के थे किन्तु नये ढग से सैनिक शिक्षा भारत के बहुत कम रजवाड़ों मे दी जाती थी। महाराजा रणजीतसिह जी ने अपनी सेना को इस बात मे भी सर्वश्रेष्ठ बनाने की कोशिश की उन्होंने फ्रांसीसी युद्ध-विशारदों को अपने यहाॅ रखकर सेना को आधुनिक ढग से ट्रेनिङ्ग दिलाई। जनरल वेन्चरा और मि० एलार्ड के नाम इस प्रकार के युद्ध विद्या शिक्षकों मे उल्लेखनीय हैं[1] घोड़े की सवारी मे प्रत्येक सिख सवार दक्ष होता था। सिख सैनिकों की मजबूती तो इसी से जानी जा सकती है कि वह कन्धे पर दस सेर वजन की बन्दूक और पीठ पर आठ दिन तक रासन बांध कर बीस मील तक का धावा कर सकते थे।

सेना और सेनापति

महाराज खुद भी सैनिक जैसा ही परिश्रम करते थे। उन्होंने घोड़े की सवारी, निशानेबाजी और तलवार चलाने में पहले दर्जे की योग्यता हासिल की थी। ये सरपट दौड़ते हुए घोड़े पर से जमीन की

१ यूरोपियन अफसरो की सख्या ४० से ऊपर बताई जाती है। जितमें से कई को तो तीन हजार से ऊपर तक वेतन मिलता था।

चीज को बर्छे की नोक से उठा सकते थे।

सन् १८३८ ई० मे जो उनकी सेना थी। उसकी सख्या इस प्रकार दी है। २६६१७ पैदल १०७६५ सवार १८८ तोप २८० जम्बूरे आदि। एलार्ड साहब कवायद परेड कराते थे। इसके सिवा मातहत जागीरदारों के यहाँ हजारों पैदल और सवार किसी भी समय काम मे लेने को तैयार रहते हैं।

यह संख्या सन् १८३८ ई० की है। इसके बाद तो महाराज ने और भी सेना बढ़ा ली थी और वह बढ़ी हुई सेना समेत दुगने से ऊपर थी। जिसमे अपने राष्ट्र की रक्षा के लिये सदैव प्राणों की बाजी लगाने वाले खालसा वीर ही अधिक थे। इन सैनिकों को नियत वेतन मिलता था। युद्ध के समय उन्हें राशन और इनाम अलग से मिलते थे। पद वृद्धि के साथ वेतन के अलावा कभी-कभी जमीन भी दी जाती थी। जागीरी सेनाओं के वेतन के लिये यह नियम था कि जागीरदार के पास जो जमीन होती थी उसमें से जागीरदार के खर्च और सैनिकों की खर्च की रकम पृथक २ मुकर्रिर की जाती थी। पिछले पृष्ठों में कई स्थानों पर इस प्रकार हम वर्णन भी कर चुके हैं। महाराजा रणजीतसिंह जी ने खुद भी राज्य में से एक जागीर अपने निजो खर्चों के लिये मुकर्रिर कर ली थी। यही बात उन्होंने अपने परिवार के अन्य लोगों के लिये कर रक्खी थी। कुँवर शेरसिंह जी के लिये उन्होंने अपनी सास सदाकौर वाली जागीर दे दी थी।

सेनापतियों में उनके यहाँ दो किस्म के लोग थे। एक तो वे जो किन्हीं भू-भागों पर अधिकार रखते थे। और उन भू-भागों की रक्षा के लिये उन्होंने महाराज की अधीनता राजी या युद्ध के बाद स्वीकार कर ली थी और वफादारी में युद्ध मे जाते थे। इस प्रकार के लोगों का उनकी स्थिति और शक्ति के अनुसार सेना मे पद भी निश्चित हो जाता था। दूसरे वे लोग थे, जो साधारण सिपाहियों में भरती होकर अपनी प्रतिभा से ऊंचे उठ गये थे। सेनापतियों मे से कई तो इतने विश्वस्त थे कि वे मन्त्रिमंडल मे भी स्थान पाते थे।

एक विशेष बात जो अंग्रेज सैनिकों से भी बाजी मार जाती है। वह थी आचरण की। अंग्रेज अपने गोरे सिपाहियों को इस हद के अन्दर रखते हैं कि वे विजित देशों की स्त्रियों के साथ कोई नैतिक दुर्व्यवहार न करे। किन्तु सिख सैनिक तो अन्त करण से पाक थे। वे कभी शत्रुओं की स्त्रियों को बे इज्जत करने का खयाल तक नहीं लाते थे। काश्मीर मे वे रहे। हजारा मे उनका दल रहा जहाँ कि स्त्रिया सौन्दर्य की प्रति मूर्ति होती हैं किन्तु कहीं भी उन्होंने अपने ऊंचे आचरण को न गिरने दिया। स्त्री और बच्चों के साथ सभी शत्रु देशों मे उनका भलमनसाहत का व्यवहार रहा।

यद्यपि उन दिनों प्रजा से अधिक छीन लेने की भावना किसी भी राजा की नहीं थी। फिर भी इतना बडा उनका राज्य था जितना भारत मे किसी भी एक राजा या नवाब के पास न था। उनके राज्य मे कश्मीर का स्वर्ग था। पंचनद की स्वर्ण भूमि थी फिर भी भला कहाँ तक कम आमदनी होती। भूमिर से १४८८१५००) नमक कर से ४४०००००) शाल के ठेके से ६७५०८००) के लगभग आमदनी होती थी। और १८६२८०००) आमदनी का इलाका उन्होंने जागीरदारों को दे रक्खा था।

राजस्व

उनके समय मे भूमि कर दो प्रकार से बसूल होता था। कहीं तो पूरे गाँव पर गाँव के प्रमुखों की राय के अनुसार एक निश्चित रकम बाँध दी थी। जिसे गाँव के चौधरी वसूल करके दे आते थे।

रावी नदी के किनारे लाहौर किले के पार्श्व मे महाराजा रणजीतसिंह के दरबार का एक दृश्य
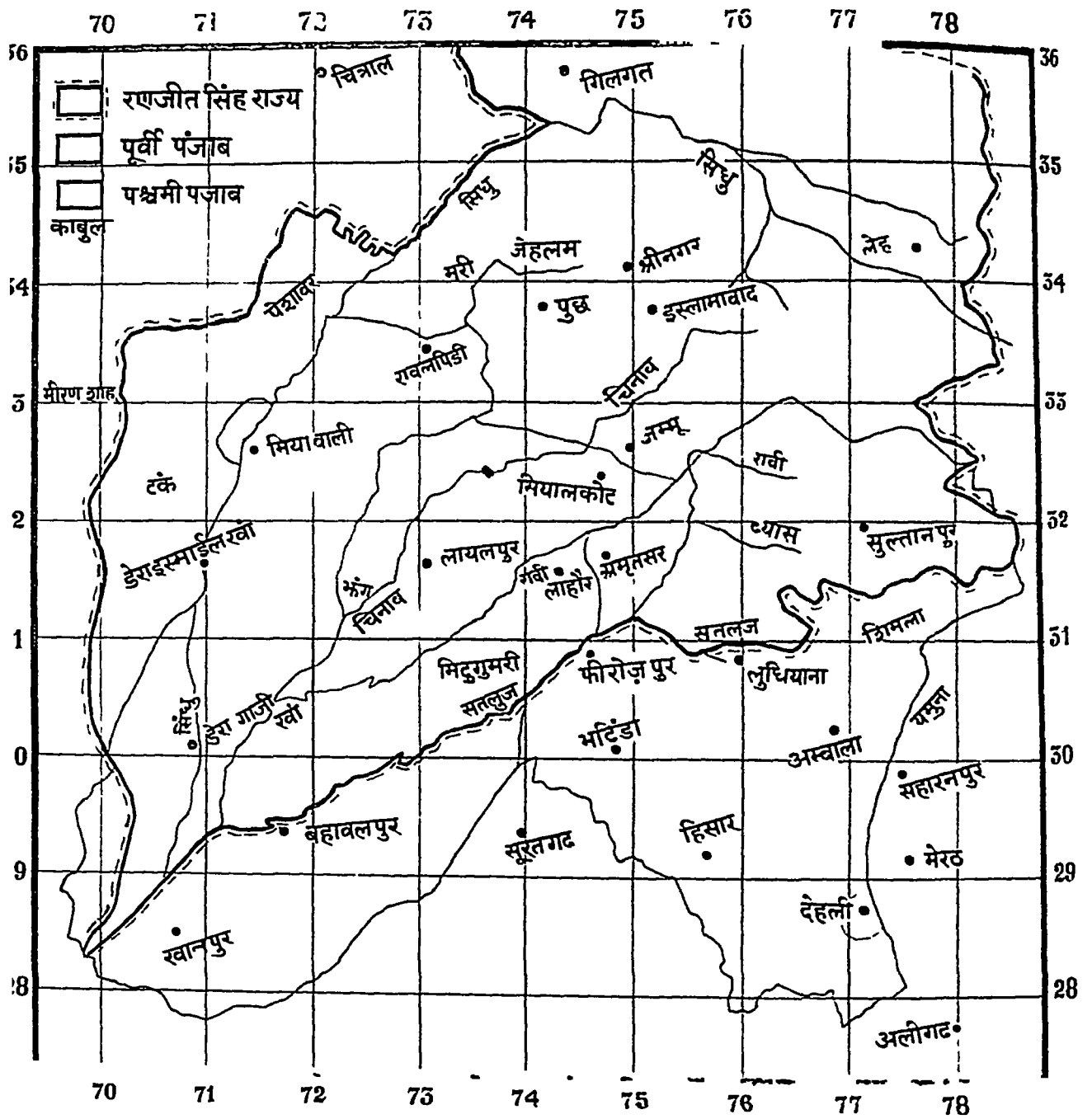
महाराजा रणजीतसिंह के राज्य का नक्शा

दूसरी प्रणाली बटाई की थी।[१] बटाई में उपज का छटे से दसवॉ हिस्सा तक लिया जाता था। फसल के समय पर यह बाँट गॉव के मोदी के यहॉ जिसे तौला भी कहा जाता है जमा होती थी। पंजाब में मोदियों की इस प्रकार एक जाति ही बन गई है। हमें ऐसे मौके याद नहीं आते जब लगान वसूली में कोई सख्ती की गई हो।

अकाल के समय में यह लगान तो माफ कर ही दिये जाते थे। अपितु राज्य की ओर से सहायता भी दी जाती थी। काश्मीर के भयंकर अकाल मे दीवान मोतीराम ने महंगा गल्ला[२] मंगा कर सस्ते भाव पर काश्मीर निवासियों को दिया। इस का जिक्र हम पहले कर चुके हैं।

कुछ टैक्स व्यापारियों पर भी था। सिन्ध नदी मे नावों द्वारा व्यापार करने वाले विशेष अवसरों पर सौगातें भेजते थे।

आदि से अंत तक लड़ाइयों में उलझे रहने के कारण महाराजा रणजीतसिंह जी कोई शासन-विधान तो तैयार नहीं करा सके। परन्तु इतने बड़े राज्य को संभालने के लिये उन्होंने जो भी प्रबन्ध किया वह तत्कालीन राजाओं से काफी अच्छा था। वे जिस प्रदेश को जीतते थे। उस पर दो हाकिम मुकर्रिर करते थे। एक फौजी अफसर और दूसरा रेवेन्यू अफसर। बगावत को दबाने और आक्रमणकारियों से प्रदेश की रक्षा करने का काम फौजी अफसर के जिम्मे होता था। और मालगुजारी वसूली रेवेन्यू अफसर करता था। काश्मीर, मुलतान और पेशावर में ऐसे ही प्रबन्ध किये गये थे। सरदार हरीसिंह और मोतीराम जिन दिनों काश्मीर के सूबेदार थे। पं० वीरधर रेवेन्यू अफसर था।[३]

शासन-व्यवस्था

उस समय अपराधों की सूची भी बहुत लम्बी नहीं थी और हरेक आदमी की सीधे महाराज तक पहुँच भी थी अत. न्याय विभाग कोई स्वतन्त्र महकमा नहीं था। ये दोनों अफसर ही न्यायाधीश का भी काम करते थे, जो अपराध माल सम्बन्धी होते थे। उनका फैसला माल अफसर के यहां और जो फौजदारी के मामले होते थे, उनका निर्णय सूबेदार कर देता था।[४]

उस समय ग्राम पंचायतों को वही अधिकार प्राप्त थे, जो प्राचीन काल से चले आते थे। ग्रामों के झगड़ों को निपटाने मे ग्राम पंचायतें और बिरादरिया पूर्णतया स्वतन्त्र थीं। हॉ, यदि कोई किसी के माल का जबरन अपहरण करता था, या स्त्रियों को उड़ा ले जाता था तो फरियाद करने पर सूबेदार उचित कार्यवाही करता था और वह कार्यवाही सीधा अपराधी को दण्ड देना, माल की वापिसी, आदि ही होता था। न्याय को व्यापार का रूप प्राप्त न था। इसीलिये वकील और कोर्ट फीस का कोई सिस्टम न था।

१. फौजी गजट मई सन् १८३०

२ लाहौर में महाराज अपने समस्त राज्य को अकाल के समय अपने सरकारी अन्न भंडारों को प्रजाजन के लिये खोल देते थे।

३. फौक लिखित काश्मीर 'अहदे सिखान ।

४. लाहौर में दरवाजों पर प्रजा की शिकायती दरख्वास्तों के लेने के लिये बक्स रखवा दिये थे। जिनकी चाबियां महाराज और कुंवर खडगसिंह जी के पास रहती थीं। एक यह भी रिवाज था कि जब महाराज बाहर निकलते थे तो लोग पल्ला हिला देते थे। जिसका अभिप्राय यह होता था कि वह कोई शिकायत करना चाहता है। महाराज रुक जाते थे और उसकी पुकार सुनते थे।

हाँ, गाँवों की सब तरह की खबरे लाने के लिये कुछ आदमी जरूर मुकर्रिर रहते थे। जिनसे सही घटनाओं का पता चल जाता था। ये खबर देने वाले लोग दुश्मनों के हल्कों की भी खबर लाते थे। इनकी खबरें नोट भी की जाती थीं। जो खैर-सल्ला की डाक के साथ केन्द्र मे महाराज के पास—भेज दी जाती थीं।

डाक का काम साडिनी सवारों से लिया जाता था। यह लोग सरकारी सूचनाओं को देहातों मे और मातहत अफसरों तथा कर्मचारियों तक पहुँचा देते थे।

प्रबन्ध के लिये राज्य मुख्यत सूबो मे बटा हुआ था। सूबों के मातहत किलेदार और परगनेदार होते थे। जहाँ तक हम जानते है। महाराजा रणजीतसिंह जी का राज्य चार सूबों मे बटा हुआ था। पेशावर, मुल्तान, लाहौर और काश्मीर। इन सूबो के नीचे ३४ किलेदार थे। इनके नीचे भी छोटे-छोटे किलेदार थे। यह फौजी प्रबन्ध था। जिसकी मजबूती ५६ छावनियों द्वारा होती थी। प्रत्येक किले मे किलेदार के अलावा एक मालगुजार अथवा करवाहक और एक शस्त्रागार का निरीक्षक और एक खाद्य-सामग्री का प्रबधक रहता था। एक रहता था खबरों का इतजाम करने वाला। किलेदारों का फर्ज होता था कि देहातो में सैनिक भेज कर अमन-अमान कायम रक्खे और लोगों को निर्भयतापूर्वक अपने धधे करने की गारन्टी दे।

महाराज ने खुद अपनी ओर से एलान करा रक्खा था कि जिस किसी को मेरे अफसरों नौकरों और दूसरे लोगों की कोई शिकायत हो वे दरवाजे के बाहर रक्खे हुए सन्दूक मे लिखवा कर डाल दिया करे [1] और उन्हे अपने पास बुलाकर सब शिकायते सुनूंगा। मेरा बल प्रजा ही है। मैं प्राण देकर प्रजा की भलाई करूंगा।"

शहरों मे कोतवाल भी थे। वैसे स्वतन्त्र पुलिस न थी। यही कारण है कि उस समय रिश्वत का नाम निशान भी न था। प्रजा आनन्द से थी।

जहाँ तक भी सभव होता महाराजा रणजीतसिह जी राज्य की नौकरियों मे योग्य आदमियों को भर्ती करते। इस सम्बन्ध मे हिन्दू मुसलमान का वे खयाल नहीं करते थे। उनके मंत्रीमडल तक मे गैर सिख और गैर हिन्दू मौजूद थे।

प्रजा को सतानेवालों के साथ उन्होंने कभी रियायत नहीं की। अपने प्यारे से प्यारे आदमियों को भी दड देने से नहीं चूके। जमादार खुशालसिंह को जिसे कि वे बहुत चाहते थे दो महीने तक सामने नहीं आने दिया। बल्कि यह कह दिया कि मैं ऐसे आदमी का मुँह भी नही देखना चाहता। जिसने प्रजा के दिल को दुखाया है। काश्मीर की मुसलमान प्रजा ने जब सरदार हरीसिंह नलवा की शिकायते की तो महाराज ने उसे वहाँ से तुरन्त ही बदल दिया।

"महाराजा रणजीतसिंह का राज प्रबन्ध" शीर्षक मे मुल्की प्रबध के लिये महाराज के यहाँ बारह दफ्तर बताये है। (१) जमाखर्च (२) आबकारी (३) नजराना (४) जब्ती (५) वजूहात मुकर्रिरी (६) चौकीआत (७) ताहवीलात (८) मवाजिब (९) जनानखाना (१०) तोशाखाना (११) खिलअत (१२) रोजनामचा आदि उन दफ्तरों के नाम बताये है। किन्तु प्रमाण कुछ भी नहीं दिये। फिर भी इतना मानना ही पड़ता है। काम नियम और खातेवार होते थे।

जमीन का बंटवारा और बन्दोबस्त उनके समय मे नहीं हुआ था और जमीदारो को भी इसकी आवश्यकता महसूस नहीं होती थी। इसलिए भूमिकर ऐसा न था। जिसे प्रजा बर्दास्त न कर सके। यही

१ पजाब केसरी प० नन्दकुमार लिखित पृष्ठ २२४

कारण था कि प्रजा ने उनके राज्य में एक संतोष की सांस ली थी। चूंकि अब किसी की हिम्मत उसे लूटने की तो पड़ ही नहीं सकती थी। अतः प्रजा बराबर खेती और व्यवसाय से सम्पन्न होती जा रही थी कि पैंतीस करोड़ रुपया खालसे के खजाने में था। इसके सिवा तीस लाख अशर्फियों की कीमत का कोहनूर हीरा था। इसके अलावा लाखों के हीरे मोती और जवाहरात थे।"

खजाने के बाहर उनके पास फीलखाना और अस्तबल था। फीलखाने में हजारों हाथी थे जिनमें एक सौ एक तो महाराज की ही सवारी के लिये नियत थे जिनमें 'इन्द्रराज' और 'सरदार जी' नाम के दो हाथी बहुत मशहूर थे। तबेले में एक हजार से ऊपर तो बढ़िया नस्लों के घोड़े थे। बाकी साधारण थे। इनमें लैली घोड़ी की कीमत तो पचास हजार कही जाती है।

लाहौर के किले में आज भी उनके समय के कुछ हथियारों को देखने के लिये रख छोड़ा गया है। जिनमें बन्दूक, बर्छे, तलवारें, जिरहबख्तर, तोप, कृपाण आदि सब प्रकार के हथियार हैं। उस समय महाराज के पास ३८४ बड़ी तोपें ४०० शुतरी गुब्बारे थे। उनके तोपखाने की प्रशंसा 'आजबर्नज' आदि कई यूरोपियन लेखकों ने की है। प्रसिद्ध भंगी तोप भी महाराज के ही तोपखाने में थी। उन्होंने भारत के सिवा ईरान और फ्रांस तक से हथियार इकट्ठे किये थे।

शस्त्रागार

लाहौर में बारूद का कारखाना बड़े पैमाने पर खोलने के लिये उन्होंने पक्का इरादा कर लिया था। वे अपने इस एक लाख पैंतीस हजार वर्ग मील के साम्राज्य को और भी अधिकाधिक बढ़ाने के इच्छुक थे। इसीलिये प्रतिवर्ष कुछ न कुछ हथियार इकट्ठे कर लेते थे और अच्छे से अच्छे सिपाही बढ़ा लेते थे और उनके सिपाही और वे खुद प्रत्येक प्रकार की युद्ध विद्या सीखने में दिलचस्पी रखते थे। यही कारण था कि उन्होंने अपने समय तक बनने वाले सभी प्रकार के हथियार इकट्ठे किये थे।

यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि वे नमूने के योद्धा, विजेता और शासक थे। यह उन्हीं का पराक्रम था कि पिछली आठ सदियों से बराबर चली आ रही मुस्लिम हुकूमत को उन्होंने पंजाब में से जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया। और जिन पठानों का राजपूतों को बार-बार परास्त करने के कारण सिर आसमान पर चढ़ गया था। उनसे भेंट और नजराने लिये। यही क्यों, उन्हीं के देश यूसफजई, जमरूद और खैबर में जाकर उन्हें परास्त किया था, अपनी हुकूमत कायम की। जो काबुल कई सौ वर्ष से भारत से खिराज लेता था। उसे अपना खिराजगुजार बनाया।

व्यक्तित्व और रहन सहन

उनमें बहादुरी के साथ ही तेज बुद्धि भी थी। काम से वे थकते न थे। रात के समय भी जब कोई उन्हें खास बात सूझती तो फौरन नोट करा देते थे।

जब वे बातें करते थे तो उनका एक हाथ दाढ़ी पर रहता था। कुर्सी पर पालथी मार कर बैठते थे। कहा जाता है उनका स्वभाव विनोदी था। वे सिख सरदारों के साथ मिलकर खूब मनोरंजन करते थे। उन्होंने दरबार में भी कुछ ऐसे लोग रख छोड़े थे जो उनकी तबियत को प्रसन्न करते थे।

श्री गुरु ग्रन्थ साहब को वे नियम पूर्वक नित्य प्रति सुनते थे।

वे दरबार में मोतियों से जड़ा हुआ सिर पेंच सिर पर बांध कर बैठते थे। अंगरखे मलमली या रेशमी और छींट के ऋतुओं के अनुसार पहनते थे। लड़ाइयों में वे जिरहबख्तर आदि फौजी लिबास पहनते थे। और कठिन मौकों पर युद्ध का भी संचालन करते थे। काबुल के मेवे उन्हें बहुत पसन्द

थे। काश्मीरी फल भी काफी मंगाते थे।

उनका व्यवहार प्रेम-पूर्ण और सहृदयता का होता था।

रणजीतसिंह जी का दरबार कैसा था ? इसका उत्तर तो लाहौर के किले के भीतर की बारहदरियाँ ही देती हैं। मुगल सम्राट बादशाह अकबर के दरबार की जो शान-शौकत किसी समय रही होगी वही सिख सम्राट महाराजा रणजीतसिंह जी के दरबार की थी। जिन्होंने देहली किले की बारहदरी और अकबर के आम, खास (दरबार) देखे हैं और जिसने लाहौर के किले की भी सैर की है। वह हमारे कथन का अवश्य समर्थन करेगा। यदि हिन्दू, मुसलमान और सिख के भेद को एक ओर हटा कर हम देखे तो महाराजा रणजीतसिंह, पृथ्वीराज चौहान जैसे योद्धा और बादशाह अकबर जैसे प्रतापी और भाग्यशील राजा थे। तीनों ही लड़ाकू सरदारों के पुत्र थे। तीनों ही ने अपने बाहुबल और योग्यता से अपने को ऊंचा उठाया था। तीनों के दरबार में एक से एक वीर योद्धा और बुद्धिमान आदमी थे। तीनों के घरों मे अनेक रानियाँ थीं। तीनों को ही विकट शत्रुओं से पाला पड़ा था। अंतर इतना है कि पृथ्वीराज को उसके शत्रु मुहम्मद गौरी ने उसके जीवन में ही नष्ट कर दिया। अकबर राणा प्रताप से नष्ट तो न हो सका किन्तु उसका विजयी मस्तक नत अवश्य होगया। महाराजा रणजीतसिंह के सामने उनका दुश्मन ब्रटिशसिंह सदैव किनारा काटता रहा। इस तरह हम कुछ अंशों मे महाराजा रणजीतसिंह जी को अकबर और पृथ्वीराज दोनों से महान ही पाते हैं किन्तु सतर्कता और साहस में जो चीज हमे महाराजा रणजीतसिंह जी मे दिखाई देती है। वह उन दो मे नहीं।

दरबार और सरदार

महाराजा रणजीतसिंह अपने सिख अकीदे के अनुसार प्रात. ५ बजे जग कर नित्य कर्म करते और फिर फौजों की परेड देखने मैदान मे जाते। थोड़ा सा जलपान करके ६ बजे दरबार मे पधारते। जहाँ आये हुये पत्रों और समाचारों को सुनते। उनके उत्तर लिखवाते अपने हुक्म जारी करवाते। हिसाब-किताब देखते। दोपहर मे दरबार समाप्त हो जाता और वे महलों मे आराम के लिये चले जाते। तीसरे पहर फिर दरबार मे आते और उपस्थित विषयों पर विचार करते।

दरबार मे उनके पीछे दायें बाये वजीरों की कुर्सियाँ होती थीं। जो आवश्यकतानुसार उनके सामने जाकर खड़े हो जाते और सब हुक्मों को सुनते। जिस किसी को अपनी ओर से कुछ अर्ज करनी होती वह भी सामने आ जाता।

उनके दरबारियों मे से निम्नलिखित सरदारों के नाम उल्लेखनीय हैं :—

(१) राजा ध्यानसिंह—यह डोगरा राजपूत था और एक अबतर हालत मे महाराज की सेवा में हाजिर हुआ था। आरम्भ मे सेना में इसे स्थान दिया गया। फिर शनै-शनै. अपनी सेवा और स्वभाव की भलाई से तरक्की पा गया और यहाँ तक महाराज को खुश कर लिया कि राजा का खिताब भी पा लिया। महाराज के जीवन भर उनका सच्चा वफादार भी रहा। बुद्धि का तेज, जाहिरा तौर पर मालिक के प्रति भक्ति ये उसके गुण थे। अपनी नम्रता से उसने समस्त सिखों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। इसके दो भाई और थे। गुलाबसिंह और सुचेतसिंह। काश्मीर मे एक विद्रोह को दबाने में बहादुरी दिखाने के उपलक्ष में महाराज ने गुलाबसिंह को काश्मीर में एक जागीर प्रदान की थी। सुचेत-सिंह सदैव दरबारी ही रहा।

ध्यानसिंह का एक लड़का था हीरासिंह बड़ा सुन्दर और चतुर। महाराज उसे अपने बेटों की ही

तरह प्यार करते थे। ध्यानसिंह की इच्छा के अनुसार महाराज ने राजा संसारचन्द की लड़की के साथ उसकी शादी की कोशिश भी की थी किन्तु हो न सकी। महाराज के मरने के बाद इन चारों ही ने अपने स्वार्थ के कारण अनेक खेल खेले जो सिख साम्राज्य के लिये घातक ही सिद्ध हुये।

(२) दीवान मुहकमचन्द—महाराज के मशहूर जनरलों में से था। शूरवीर होने के सिवा मुहकमचंद शासन प्रबन्ध में भी काफी निपुण था। यह महाराज के पिता सरदार महासिंह के समय से ही दीवान के पद पर मुकर्रिर था। निष्कपट स्वभाव और ईमानदारी के कारण यह विश्वासपात्र बन गया था। इसने महाराज का राज्य बढ़ाने के लिये अनेक स्थानों मे लड़ाइयॉ लड़ी, बहुत सारे प्रदेश विजय किये। महाराज ने भी प्रसन्न होकर इसे फ्लोर का इलाका जागीर मे और एक हाथी मय सुनहरी हौदे के इनाम में दिया था। सन् १८११ ई० मे इसने राजौरी के हाकिम राजा सुलतानखां को गिरफ्तार करके महाराज के सामने पेश किया। सन् १८१३ ई० मे हजारा के मुकाम पर अटक की विजय हेतु पठानों को परास्त किया। इस प्रकार इसकी अनेकों बहादुरियॉ हैं। सन् १८१५ ई० मे इसका देहान्त हो गया।

(३) मोतीराम रामदयाल-महाराज ने सन् १८१५ में मोतीराम को अपना दीवान बनाया। दीवान रामदयाल भी एक अच्छा सेनापति था। वह महाराज के लिये लड़ता हुआ ही काम आया था। रामदयाल मोतीराम का लड़का था। इन दोनों ही बाप बेटों ने युद्ध और प्रबन्ध द्वारा सिख दरबार की अच्छी सेवायें कीं। मोतीराम को तो काश्मीर की गवर्नरी भी प्रदान की गई। महाराज भी बराबर इनका मान बढ़ाते रहे। रामदयाल हजारा की लड़ाई मे लड़ता हुआ मारा गया था। अपने पुत्र के शोक से दीवान मोतीराम इतने दुखी हुये कि वे विरक्त होकर काशी चले गये। महाराज ने मोतीराम के दूसरे लड़के कृपाराम को पहले जालधर का हाकिम बनाया था। कृपाराम ने भी अपनी बहादुरियों और सेवाओं से नाराज हुये महाराज को प्रसन्न कर लिया और काश्मीर की सूबेदारी तक हासिल करली। इस प्रकार इस परिवार ने सिख दरबार की अच्छी ही सेवायें कीं।

(४) मिश्र दीवानचन्द—भी एक प्रसिद्ध सेनापति था। यह आरम्भ मे तोपखाने मे आकर भर्ती हुआ। जाति का ब्राह्मण होते हुये भी अद्वितीय योद्धाओं मे से था। इसने प्रत्येक लड़ाई मे बढ़कर काम किया। निशानेबाजी मे इतनी योग्यता रखता था कि इसका निशाना कभी चूकता ही नहीं था। लंबे चौड़े और सुन्दर शरीर का नौजवान थोड़े ही समय मे तरक्की कर गया। और तोपखाने का आला अफसर बन गया। महाराज ने इसे जफरजंग की पदवी दी थी। सन् १८१८ ई० मे इसने मुलतान विजय मे अपूर्व चतुराई और वीरता दिखाई। काश्मीर और नौशहरा की विजय करने मे इसका साहस सबसे अधिक बताया जाता है। सन् १८२४ ई० मे लकवा की बीमारी मे इसका देहान्त हो गया। महाराज ने चन्दन चिता में इसका संस्कार कराया और बड़े रन्जीदा हुये।

(५) फकीर बन्धु—महाराज के यहां फकीर नूरुद्दीन और अजीजुद्दीन उसी प्रकार दो चतुर मुसलमान दरबारी थे। जिस प्रकार अकबर के दरबार मे बीरबल और टोडरमल थे। ये दोनों ही वफादार आदमी थे। लाहौर पर अधिकार करते ही महाराज ने इन्हें अपने यहॉ रख लिया था। मरते समय तक यह महाराज के शुभचिंतक रहे। फकीर नूरुदीन एक चतुर हकीम था। महाराज का वही राजवैद्य था। सन् १८७५ ई० में महाराज ने उसे गुजरात का हाकिम बना दिया। अंग्रेज हाकिमों से मिलने जुलने के लिये महाराज फकीर अजीजुद्दीन को ही भेजते थे। वह भी वहॉ महाराज की मान मर्यादा को बढ़ाकर ही पेश करता था। ये दोनों भाई मजहबी पक्षपात से बिल्कुल बरी थे। अटक, मुलतान आदि की लड़ाइयों मे

महाराज की ओर से मुसलमानों से खूब डट कर लड़े। पेशावर के युद्ध में जब कि काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद से मुकाबिला था। इन दोनों भाइयों ने बड़ी चतुरता दिखाई। महाराज भी इन्हें सिखों की तरह ही प्यार करते थे।

(६) *भवानीदास*—महाराजा रणजीतसिंह जी की सेवा में आने से पहले यह काबुल में शाहशुजा का दीवान था। सन् १८०८ ई० में लाहौर आया। महाराज ने भी इसे दीवान ही बना दिया। भवानी-दास जहाँ माल अफसरी के काम में होशियार था। वहाँ लड़ाई के इल्म में भी शौक रखता था। जम्बू विजय में उसने खूब बहादुरी दिखाई थी।

(७) *गंगाराम*—महादाजी सिंधिया के साथ रहकर इसने राजनीति की शिक्षा पाई थी। रहने वाला दिल्ली का था। महाराज ने इसे अपने यहाँ बुला लिया और सरकारी मुहर उसके सुपुर्द कर दी। महकमा आबकारी का प्रबन्ध इसने बहुत ही अच्छा किया।

(८) *प० दीनानाथ*—गंगाराम के मर जाने पर यह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके कुल काम इसे सुपुर्द किये गये। सन् १८२४ ई० में भवानीदास के मर जाने पर महक्मा माल भी इसके ही हाथ आ गया। मुलतान का हिसाब भी इसने ही दुरुस्त किया। तनख्वाह इसे ६००) माहवार मिलती थी। महाराज ने कई स्थानों पर जागीर में इसे जमीन भी दी थी।

(९) *सरदार हरीसिंह नलुआ*[१]—यह वीर गुजरानवाला में पैदा हुआ था। लड़कपन में महाराज के साथ खेला करता था। महाराज की इससे बचपन की ही मुहब्बत थी। जवान होने पर महाराज की सेना में ही भर्ती हो गया। अपनी बुद्धिमानी और बहादुरी से काफी तरक्की की। सन् १८०५ ई० में ८०० प्यादों का अफसर बना और फिर तो काश्मीर और पेशावर का सूबेदार भी। प्रबन्ध की बजाय सरदार हरीसिंह को लड़ने-भिड़ने में अधिक मजा आता था। यूसफजई के दुर्दान्त पठानों को काबू में करना और हजारा को विजय करना सरदार हरीसिंह का ही काम था। अटक, दुरबन्द, जहाँगीरा, खबर और पेशावर जहाँ भी पठान उसके सामने आये, सभी जगह उसने उनके छक्के छुड़ाये। सन् १८३७ ई० में जमरूद की लड़ाई में सख्त घायल होने के कारण उसका देहान्त हो गया। उसका साहस अनुपम था। खैबर की घाटी के उस पार भी उसके नाम से पठान कांपते थे। आज भी पठान प्रदेशों में मातायें बच्चों को 'हरी आया' कह कर डराया करती है। चिड़ियों से बाज लड़ाने की गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज की उक्ति को सरदार हरीसिंह जी ने सोलह आना चरितार्थ कर दिया।

महाराज ने सरदार हरीसिंह नलुआ से प्रसन्न होकर बहुत सारा इलाका जागीर में दिया था। फौज में उनका भारी मान था। हरीसिंह फारसी और गुरुमुखी खूब अच्छी तरह जानते थे।

सरदार हरीसिंह जी की ताकत का पता इस बात से लग जाता है कि जमरूद में जब उन पर शेर ने हमला किया तो उन्होंने उसके जबड़े पकड़ कर उसे चीर डाला।

(१०) *सरदार लहनासिंह मजीठिया*—यह गोलन्दाजी के काम में बड़े हुशियार थे। अमृतसर में

१. हरीसिंह का जन्म १७९१ ई० में हुआ था। इनके बाप का नाम गुरुदयालसिंह और दादा का नाम हरदयालसिंह था। इनके बाप और दादा सुकरचकिया मिसल के स्वामी खोखर गोत के स्वामी के नौकर थे। नलवा की पदवी इसको बहादुरियों से मिली थी। सरदार हरीसिंह ने एक शेर को बिना हथियार के मार डाला था। तभी उसे व्याघ्र अर्थात नलवा की पदवी मिली।

तोपें ढालने का काम भी इन्होंने किया था। यह काफी पढ़े लिखे और कई भाषाओं के जानकार बताये जाते हैं। ज्योतिष विद्या में भी इनका ज्ञान अच्छा था।[1] महाराज ने अमृतसर के इलाके का प्रबन्ध भी इन्हें सौंपा था। महाराज के देहान्त के बाद यह भी घरेलू झगड़ों में फंस गये। सिख अंग्रेज युद्ध के समय यह बनारस चले गये।

(११) तेजासिंह—यह जात का ब्राह्मण था। महाराज के समय इसने कई स्थानों पर अच्छी बहादुरी दिखाई किन्तु महाराज की मृत्यु के बाद इसने खालसा सेना को बुरी तरह हरवाया। यह अंग्रेजों के साथ मिल गया और सेना का सर्वनाश कराता रहा। यदि यह दगाबाजी न करता तो आज पंजाब दूसरा ही होता।

(१२) फूलासिंह जी अकाली—इनका मान सिख जगत में बहुत था। पंथ में इनका आदर था। पंथ मे पेश होने वाले मामले प्राय. इनके ही सभापतित्व में निर्णय होते थे। महाराज की बात उलट सकती थी किन्तु फूलसिंह अकाली की बात को लौटाना मुश्किल था। एक बार महाराज के साथ उनकी अनबन भी हो गई थी किन्तु फिर भी महाराज को उनके बिना चैन नहीं पड़ा। सिख धर्म का प्रेम भी अटूट मात्रा मे बाबा फूलासिंह जी मे था। बहादुरी मे, साहस मे और निर्भयता मे फूलासिंह अकाली सरदार हरीसिंह नलुआ दोनों ही लौह पुरुष थे। आपका जन्म जाट जमीदारों के घर हुआ था। जब तक आप सिख दरबार में नहीं आये थे। हमेशा निर्बलों की मदद करते थे। बाबा की खूब इच्छा थी कि अंग्रेजों के साथ युद्ध किया जाय किन्तु उनके जीवन मे उनकी यह साध पूरी नहीं हुई।

(१३) सरदार शामसिंह अटारी वाला—सन् १८०३ ई० मे यह सरदार महाराज के पास आकर सेना मे भर्ती हुए। मुल्तान और काश्मीर के युद्धों मे इन्होंने खूब वीरता दिखाई। महाराज के पोते कुँवर नौनिहालसिंह जी की शादी आपकी ही पुत्री से हुई थी। आपका खानदान पहले से ही सम्पन्न खान्दान था। उस शादी मे आपने पन्द्रह लाख रुपया खर्च किया। महाराजा के बाद भी आपने बड़ी वफादारी के साथ सिख दरबार की सेवा की। अंग्रेजों से लड़ाई छिड़ने या महारानी जिन्दा की आज्ञानुसार आप मैदान मे आये और सुबराव के मैदान में १० फरवरी १८४६ में बहादुरी के साथ लड़ते हुए शहीद हुए। आपकी सरदारनी ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने आपकी लाश मगवाई और सती हो गई। अपने महाराज के प्रति इस खानदान ने आरम्भ से ही बलिदान किये थे। आपके बुजुर्ग सरदार निहालसिंह जी के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उन्होंने एक बार महाराजा रणजीतसिंह जी के बीमार पड़ने पर ईश्वर से प्रार्थना की थी कि महाराज चगे हो जांय और परमात्मन् मुझे उठा लो। दैवात् ऐसा ही हुआ।

(१४) जनरल वेन्तूरा—इटली का रहने वाला था और किसी समय नेपोलियन की फौज मे रह चुका था। महाराज ने इसे ढाई हजार रुपया माहवार की तनख्वाह पर रख लिया। इसने और इसके अन्य यूरोपियन साथियों ने न ये ढग से महाराज की फौज को कवायद परेड सिखाई। आरम्भ मे महाराज के सिपाही नया लिबास पहनने और नये ढंग पर कदम उठाने मे हिचकते थे। इसलिये महाराज ने आरम्भ मे खुद नयी फौजी पोशाके पहनी और परेड भी करने लगे। कहा जाता है महाराज ने इन यूरोपियन सरदारों मे तीन प्रतिज्ञायें ली थीं। गाय का गोस्त नहीं खायेंगे। तम्बाकू नहीं पियेंगे। दाढ़ी, केश रखेंगे। वेन्तूरा की तरह एलार्ड, कोर्तलान्त अवीता सेल नाम के यूरोपियन अफसर भी फौजी मामलों मे काफी होशियार थे।

१. अमृतसर में दरबार साहब के पास जो धूप घडी है इन्हीं की बनाई हुई है।

इन लोगों ने लगभग पचास हजार सैनिकों को पच्छिमी ढंग पर तैयार किया था। इस तरह महाराज की सेना का एक वड़ा हिस्सा ऐसा था जो किसी भी सभ्य देश की सेना से मुकाविला कर सकता था।

राज्य के आतरिक मामलों मे सलाह के लिये राजा ध्यानसिंह, फकीर अजीजुद्दीन, सरदार निहालसिंह, दीवान मुहकमचद और राजकुमार खड्गसिंह जी से ही प्रायः सलाह ली जाती थी। सेना और युद्ध के सम्बन्ध मे उपरोक्त सभी दरवारी बुलाये जाते थे।

इन सरदारों के अलावा विशेष दरवारों मे राजा साहव जीन्द, फतहसिंह अहलूवालिया और समस्त जागीरदार भाग लेते थे।

अपने दरवार मे यथा समय महाराज ने उस समय के पजाव के चुने हुये दिमाग इकट्ठे कर लिये थे। जिनमे से कई प्रथम श्रेणी के योद्धा और कई रेवेन्यू के काम मे अच्छी योग्यता रखने वाले थे।

यही कारण था कि निरन्तर लड़ाइया होने पर भी उनका खजाना शायद ही कभी खाली रहा हो।

यह तो कोई अविदित बात नहीं कि उस समय देश मे शिक्षा का प्रचार वहुत कम था किन्तु महाराजा रणजीतसिह जी ने सस्कृत और फारसी की लाहौर मे जो पाठशालाये मकतव थे उन सव को सहायता दी। महकमा सदावर्त से इस काम से मदद दी जाती थी। पजाव में जहा भी कहीं गुरुद्वारे थे वहां गुरुमुखी अक्षरों का वरावर ज्ञान कराया जाता था।[1]

शिक्षा और व्यवसाय और उद्योग धधे

उनके समय मे सिंध और काश्मीर के वीच व्यापार होता था। कुछ माल रूस चीन और काबुल तक भी जाता था। पंजाव से सिंध के लिये नावों द्वारा माल लाते ले जाते थे। तुर्क और ईरानी लोग घोड़ों का व्यापार करते थे। सिख भी इस धधे को करते थे। ये व्यापारी विशेष अवसरों पर अच्छी २ सौगाते महाराज को भेट करते रहते थे। काश्मीर के शालों का निर्यात सुदूर तक होता था।

बाहरी लोग ईरान और दूसरे देशों से हथियार लाकर यहां से खूव रुपया कमाते थे। सिख लोग और रजवाडों से इस व्यापार मे खूव आमदनी होती थी। पठान लोग हींग और मेवा घोड़ों पर लाद कर मध्य पजाब मे उतरते थे और यहां से बढ़िया कपास और गेहूँ टूटा-फूटा लोहा, कासा ले जाकर दूसरे देशों में भेज देते थे।

महाराज की इच्छा लाहौर या अमृतसर मे बढ़िया कपड़ो के कारखाने खुलवाने की थी। इसके लिये उन्होंने विदेशी यात्रियों से बहुत-सी जानकारी हासिल की थी।

सक्षेप से इतना कह सकते है कि उनके राज्य मे प्रजा शनै. शनै: उन्नति की ओर ही अग्रसर थी।

१ महाराज की इच्छा लाहौर में अग्रेजी का एक स्कूल खोलने की भी थी। उन्होने जे० सी० लौरी से जो लुधियाना में ईसाई मिशनरी हो कर आए थे। बुलाकर यह कहा था कि तुम लाहौर में अग्रेजी-शिक्षा का स्कूल खोल लो सारा खर्च हम देगे किन्तु शर्त यह है कि केवल अग्रेजी पढाओगे। किन्तु लौरी क्रिश्चिनटी की तालीम भी देने को वाध्य थे। इसलिये यह काम सफल न हो सका।

सोलहवाँ अध्याय

सिख साम्राज्य का अधःपतन

महाराजा खड्गसिंह जी का जन्म माई नकैन के उदर से सन् १८०७ ई० में हुआ था। महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही समस्त सिख सरदारों के सामने यह घोषित कर दिया था कि मेरे बाद गद्दी के हकदार खड्गसिंह होंगे। नियमानुसार उन्हें युवराज का अभिषेक भी कर दिया गया था। कहा जाता है कि महाराज यह भी कह गये थे कि राजा ध्यानसिंह को मेरे बाद अपने नये महाराज का वजीर बनाना।

महाराज खड़गसिंह

महाराज खड्गसिंह जी बालकपन में बड़े लाड़ प्यार से पाले गये थे। क्योंकि रानी दातारकौर जी प्राय. सदैव ही महाराज के साथ रहती थीं। खड्गसिंह जी की शादी भी बड़े धूम-धाम से की गई थी। इस विवाह में पंजाब के राजा रईसों और अंग्रेज अफसरों ने तवेल (न्यौते) मे जो रकम दी थी उसी से पता चल जाता है कि इनका विवाह कितनी धूम-धाम के साथ हुआ था। वह रकम इस प्रकार है। ५०००) अंग्रेज़ों ने ११००८), भीन्द नरेश ने, ११०००) कैथल नरेश ने, ११०००) नाभा नरेश ने, ४०००) फकीर अजीजुद्दीन ने, १७०००) दीवान देवीदास ने, ६०००) दीवान भवानीदास ने, ६०००) सरदार हुक्मसिंह अटारी वाले, ६०००) निहालसिंह अटारी वाला, ६०००) दीवान हुक्मसिंह बघारी, ४०००) हुक्मसिंह चिमनी, ५०००) खानआदमसिंह, ५०००) सितसिंह भतानिया, ४०००) राजा नूरपुर, ६०००) चम्पा नरेश, ४०००) जसरोटा नरेश, २१०००) कपूर्थला नरेश, २१०००) दलसिंह रामगढ़िया, ७०००) राजा संसारचद, १००००) अहमदखां स्याल, ५०००) बसोली नरेश, ४०००) हरिपुरा नरेश, ४०००) सकटोई नरेश, १००००) कुतुबखा रईस कसूर, २००००) नवाब हुक्मदौला मुहम्मद सादिकखां, ११५००) नवाब सर बुलंदखा, ५०००) नवाब मुल्तान ने दिये। इसके अलावा लाहौर के कई जौहरी और सराफों ने ५००-५०० सौ रुपये दिये।

महाराजा रणजीतसिंह जी ने भी दिल खोल कर इस शादी मे खर्च किया।

यह शादी फतहगढ़ जिला गुरदासपुर के कन्हैया सरदार जैमलसिंह की पुत्री चन्द्कौर के साथ हुई थी। किन्तु शादी की रस्म लाहौर मे अदा हुई थी।

खड्गसिंह जी प्रायः सभी लड़ाइयों मे फौज के साथ रहते थे। जब सयाने हो गये। तब तो उन्होंने स्वतंत्र रूप से भी कई स्थानों पर चढ़ाइया कीं। भिम्बर, मुल्तान और पेशावर की लड़ाइयों में वे बराबर साथ रहे।

अपने पिता के मरने पर जब वे गद्दी पर बैठे तो राजा ध्यानसिंह उनके मंत्री हुए। किन्तु महाराजा खड्गसिंह और ध्यानसिंह के बीच में सद्भावनाओं की कमी थी। ऐसा जान पड़ता है कि महाराज रणजीतसिंह जी के समय मे राजा ध्यानसिंह ने खड्गसिंह जी के साथ वैसा अच्छा आदर का व्यवहार नहीं किया था। जैसा कि युवराजों के साथ दरबारियों को करना चाहिये। हम देखते हैं। जहा तक भी राजकाज सीखने से सम्बन्ध है। खड्गसिंह जी को दूर ही रक्खा गया और इस दूर रखने मे राजा ध्यानसिंह का हाथ जरूर था। जैसे वह अपने पुत्र हीरासिंह को बराबर बढ़ा रहा था और महाराज के सम्पर्क मे भी रखता था। वैसे खड्गसिंह जी को भी तो मौका दे सकता था। अगर ध्यानसिंह का युवराज अवस्था मे महाराज खड्गसिंह जी के साथ प्रेम और आदर का व्यवहार रहा होता। यदि कोई आशंका उन्हे राजा ध्यानसिंह की ओर से न होती तो वे कुछ ही दिन के बाद ध्यानसिंह की बजाय चेतसिंह को मंत्री न बना लेते।

महाराज खड्गसिंह के लिये हम यह कह सकते है कि वे अपने पिता की तरह रौबवाले और बुद्धिमान नहीं थे। किन्तु यह नहीं कह सकते कि वे राज्य कार्य को उत्तमता से न चला सकते थे। किन्तु राजा ध्यानसिंह ने जब देखा कि उनकी वजीरी छिन गई है तो वह महाराजा खड्गसिंह का दुश्मन हो गया। उसने सिखों मे फैलाया कि महाराज खड्गसिंह ने चेतसिंह को अंग्रेजों की मर्जी से वजीर बनाया है। चेतसिंह ने अंग्रेजों से वायदा किया है कि मैं महाराज खड्गसिंह को अंग्रेज सरकार की अधीनता स्वीकार करा दूंगा और यह भी उड़ाया कि महाराज खड्गसिंह भी रुपये मे छ: आना खिराज देना अंग्रेजों से स्वीकार कर चुके हैं। बहादुर सिख सब कुछ बर्दाश्त कर सकते थे। किन्तु उन्हे उस समय गुलामी किसी भी तरह स्वीकार नहीं थी। वे भड़क उठे और सिख सेनापतियों ने ध्यानसिंह से इस बात के प्रमाण मागे। ध्यानसिंह काफी चतुर आदमी था। उसने कुछ जाली चिट्ठियां खालसा के सामने पेश करदीं। जिनकी बाबत कहा गया कि यह शिमला भेजी जाने वाली थीं। कुछ ऐसे लोगों ने जो चेतसिह के आदमी कहे जाते थे लोभ मे पडकर कह दिया कि हा, हमें इन चिट्ठियों को शिमला ले जाने काम चेतसिंह ने सौपा था।

कई सिख सरदार किले में घुस गये। चेतसिह को जब पता चला तो वह दूसरे कमरे मे चले गये। किन्तु वे उसे वहा से भी पकड़ लाये और वहीं कत्ल कर दिया।

चेतसिंह को मरवाने के बाद ध्यानसिंह फिर वजारत का काम करने लगा। महाराज खड्गसिंह नाम मात्र के राजा थे इस समय सर्वेसर्वा! ध्यानसिंह बना हुआ था। महाराज किले को छोड़कर शहर के महल मे चले गये और वहीं रहने लगे किन्तु वे या तो मानसिक कष्ट से या ध्यानसिंह की करामात से अधिक जिन्दा न रह सके उन्होंने सवा-डेढ़ ही वर्ष राज्य किया।

इसमे सन्देह नहीं कि नौनिहालसिंह बहुत योग्य थे और समय मिलता तो वह पंजाब के लिये दूसरे रणजीतसिंह सिद्ध होते। उन्होने राज-काज अपने पिता की बीमारीके बाद से ही बड़ी कुशलता से संभाल लिया था। उनकी इस प्रकार की योग्यता को देखकर ध्यानसिंह और भी शंकित हुआ। उसने क्लार्क साहब के दिमाग मे अपने सहायकों द्वारा यह बात बिठवा दी कि कुॅवर नौनिहालसिंह ने ऐसे आदमी मुकर्रर किये हैं जो अफगान-प्रजा को अंग्रेजों के खिलाफ भड़कावेगे। अंग्रेज अधिकारियों ने उनसे इस सम्बन्ध में पूछताछ भी की किन्तु भला निराधार बात सिद्ध कहां से होती।

जिन दिनों महाराजा खड्गसिंह जी निहायत बीमार थे उन्होंने कुॅवर साहब को मिलने के लिये

बुलाया'। ध्यानसिंह ने संदेश लाने वालों को उल्टा पढ़ा दिया और उन्होंने कुँवर साहब के पास जाकर कहा 'आपके पिता हालांकि मरने वाले हैं किन्तु आपको बराबर कोसते हैं।' इस प्रकार दोनों पिता पुत्रों को अंतिम समय तक एक न होने दिया।

महाराज खड्गसिंह जब मर गये तब उन्हें खबर होने दी।

जिस दिन महाराज खड्गसिंह जी का देहान्त हुआ वह सन् १८४० ई० की ५ वीं नौंबर थी। दो घण्टे बाद नौनिहालसिंह जी अपने पिता के पास पहुँचे। रावी के किनारे उनका अत्येष्टि सस्कार कराया। उनके साथ उनकी दो सुन्दर रानियां सती हो गई। स्मिथ साहब ने लिखा है कि रानी की अवस्था तो अभी कुल बाईस वर्ष की ही थी और सुन्दरता में भी वह लाजवाब थी।

नौनिहालसिंह

नौनिहालसिंह जब अपने पिता की अत्येष्टि से लौट रहे थे तो उनके ऊपर दरवाजा गिर पडा। जिससे उन्हें चोट आई और बेहोश हो गये। उनके साथ ही गुलाबसिंह का लड़का ऊधमसिंह भी था वह उसी समय मर गया।

लतीफ की तारीख पंजाब इस बात की कुछ इस प्रकार साची देती है कि कुँवर नौनिहालसिंह के ऊपर दरवाजा गिरने में राजा ध्यानसिंह का षडयन्त्र था। यदि उसका मन साफ होता तो वह कुँवर साहब की माँ रानी चन्दकौर को उनके पास आने से क्यों रोकता और क्यों अन्य सिख सरदारों को उनके पास आने से वंचित रखता। बल्कि जब रानी चन्दकौर अपने पुत्र के पास पहुँची। तब उन्हें बताया कि कुँवर साहब मर चुके हैं। फिर भी उन पर दबाव डाला कि अगर वे चुप रहेंगी तो राज्य की मालिक उन्हें ही बना दिया जायगा।

ऐसा करने के कुछ कारण भी उपस्थित हो गये थे। कुंवर नौनिहालसिंह राजा ध्यानसिंह से सतुष्ट नहीं थे। वे कुल अधिकारों को अपने हाथ में लेते जा रहे थे। राजा ध्यानसिंह ने काश्मीर का प्रबंध गुलाबसिंह को सौंपने की बात कही थी किन्तु कुंवरसाहब ने उसे अस्वीकार कर दिया था।

सिखों के वर्तमान ख्यातनामा हिस्टोरियन सरदार गडासिंह जी ने "डोगरा गरदी के गुम्भे भेद" शीर्षक से फुलवाड़ी की छठी जिल्द के अंक २, ३ मे राजा ध्यानसिंह और उसके भाइयों के समस्त कारनामों पर प्रकाश डाला है।

विजयसिंह नामी डोगरा सरदार को जोकि राजा गुलाबसिंह का खास आदमी था। इस काम के लिये मुकर्रिर किया गया था कि जब कुंवरसाहब हजूरी बाग की डयोढी के दरवजे पर से गुजरे, उनके ऊपर दरवाजे के छज्जे गिरा दिये जावे।

उम्मेद ऐसी थी कि कुंवरसाहब बच जाते क्योंकि वे पत्थरों के पड़नेसे एकबार जमीन पर गिर पड़ने पर भी उठ खड़े हुए थे किन्तु राजा ध्यानसिंह ने उन्हे अपने प्रबध मे लेकर उनका तुरंत ही डाक्टरी इलाज नहीं कराया। वह तो कराता भी क्यों? उसने कुंवर साहब की रानियों सिंधान वाले सरदारों और खास मा तक को भी तो पास नहीं जाने दिया।

इस सब से बढकर षडयत्र उसने यह किया था कि समस्त परदेशी अफसरों चाहे वे सेनापति थे चाहे डाक्टर अपनी ओर मिला लिया था।

जब रानी चन्दकौर को अपने प्यारे पुत्र की मृत्यु का पता लग गया तो उनसे कहा, अब पुत्र तो तुम्हारे हाथ से गयाही राज्य को भी क्यों खोती हो। मैं आपको राज्य की शासक बनाने का प्रबंध करता

हूँ। तब तक आप चुप रहें। यह भी जाहिर न करे कि कुंवर नौनिहालसिंह अब इस ससार में नहीं हैं। वरना विघ्न पड़ने की सभावना है।

हमारा तो ख्याल है और इस ख्याल की पुष्टी कर्नल गाडनर, मुन्शी देवीप्रसाद और मुहम्मद लतीफ आदि के लेख भी करते है कि महाराज नौनिहालसिंह को भीतर ले जाकर मार डाला।

इसके लिये हम समस्त सिखों को भी दोष दिये विना नहीं रह सकते। जिन्हें यह मालूम हो चुका था कि महाराज के ऊपर दरवाजा गिर पड़ा है फिर भी वे समूह के समूह उन्हें देखने के लिये नहीं उमड़े। चंद डोगरों ने हजारों सिखों को धोखा दे दिया यह भी एक महान आश्चर्य है।

कुछ भी हो महाराजा खड्गसिंह और महाराज नौनिहालसिंह जी दोनों ही वाप वेटे डोगरा षडयन्त्र के शिकार हो गये।[1]

तीसरे दिन वटाला से महाराज शेरसिंह अपने दल सहित आगये।

महाराजा रणजीतसिंह जी के दूसरे पुत्र महाराज शेरसिंह जी थे और अपनी नानी की रियासत के मालिक थे।

कुंवर नौनिहालसिंह जी के मारे जाने के वाद ध्यानसिंह ने शेरसिंह जी को लाहौर वुला भेजा किन्तु रानी चन्दकौर इस वात पर विगड़ पड़ीं। उनके साथ ही सिंधान वाले भी मिल गये। क्योंकि उन्होंने कहा कि जो गद्दी मेरे पति को मिल चुकी और उसके वाद उस पर मेरा पुत्र वैठने वाला था। उसके दो ही हकदार हो सकते है। या तो मैं या मेरी पुत्र वधू जो कि गर्भवती है। अटारी वाले सरदार भी रानी साहिवा के ही समर्थक थे। अत ध्यानसिंह असमंजस मे पड़ गया।

ध्यानसिंह ने सिखों को समझाने की चेष्टा की किन्तु वे उस समय तैयार नहीं हुए। अत मे तय यह हुआ कि महारानी अधीश्वर और शेरसिंह जी उनके प्रतिनिधि के तौर पर रहे। उन्हे प्रधान मन्त्री के भी अधिकार रहेंगे। ध्यानसिंह खुद महाराज शेरसिंह के सलाहकार व मंत्री रहेंगे। किन्तु यह प्रवन्ध वहुत ही थोड़े दिनों चला। ध्यानसिंह जम्मू चला गया और शेरसिंह भी वटाले लौट गये। अव सिन्धान वाले महारानी चन्द कौर की ओर से मुखिया वनकर शासन करने लगे। एक कौंसिल भी वनाई गई। ध्यानसिंह का भाई गुलावसिंह इस कौंसिल का मेम्वर वन गया। देखने को यह मालूम होता था कि गुलावसिंह रानी चन्द कौर के हितैषी है और ध्यानसिंह शेरसिंह के मित्र किन्तु वास्तव मे वे सिख शक्ति को नष्ट करके अपना एकाधिकार जमाने की चालें चल रहे थे।

महाराज शेरसिंह की ओर से ज्वालासिंह नाम का एक चतुर सिख सिख-सेना मे अपना प्रचार कर रहा था। कुछ एजन्ट ध्यानसिंह के भी सिखों को फोडने मे लगे हुए थे। आखिर जव वायुमडल अनुकूल हो गया तो महाराज शेरसिंह कुछ आदमियों के साथ लाहौर पर चढ आये। अनेकों सिख नायकों ने शालीमार वाग मे जाकर उन्हें अपना राजा मान लिया। सुचेतसिंह और जनरल वेन्तूरा भी शेरसिंह जी से जा मिले। लगातार पॉच दिन की लड़ाई के वाद शेरसिंह जी का लाहौर पर प्रभुत्व हो गया। ध्यानसिंह और गुलावसिंह ने वीच में पड़कर महारानी चन्दकौर और शेरसिंह जी के वीच सन्धि करा दी। इसके अनुसार महारानी जी को जम्मू में नौ लाख रुपये की जागीर मिली। इस घरेलू युद्ध मे ४७८६ सैनिक ६१० घोडे और पाच लाख रुपये खालसा राज्य के नष्ट हो गये। सिन्धान वाले सरदार अतरसिंह व अजीत

१. नौनिहालसिंह जी का जन्म ११ फर्वरी १८२० को हुआ और मृत्यु सन १८४० के ५ नवम्बर को हुई थी।

महाराजा शेरसिंह जी

अकाली वीर

वावा फूला सिह् जी

सिंह भाग गये और लहनासिंह पकड़े गये। जिन्हे महाराज शेरसिंह ने अपना विरोधी समझकर जेल में डाल दिया।

महाराज शेरसिंह जी को खालसा राज्य के अधिपति घोषित कर दिये गये और राजा ध्यानसिंह प्रधान मन्त्री।

महाराज शेरसिंह शरीर से स्वस्थ और सुन्दर सरदार थे। राजकाज मे भी दिलचस्पी लेते थे। किन्तु शराब की उन्हे काफी आदत थी। फिर भी वे ऐसे अयोग्य नहीं थे कि यदि शांति रहती तो वे राज-काज को न संभाल लेते।

उनकी यह भी इच्छा थी कि महारानी चन्दकौर के साथ उनका मेल हो जाय। उन्होंने कहा था कि यदि वे राजी हों तो मैं उनके साथ नाता कर सकता हूँ। पटरानी भी उन्हे ही बना दिया जायगा। आरम्भ में तो वे राजी न थी चूकि उन्हे उम्मेद थी कि कुंवर नौनिहालसिंह जी की रानी नानकी जी के उदर से जो कि अटारीवालों की कन्या थी। अवश्य ही लड़का पैदा होगा किन्तु उनकी यह आशा पूरी नहीं हुई। बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ। कुछ दिन के बाद वे राजी भी हो गई थीं। इसलिये अपनी जागीर से लाहौर आ गई। किन्तु गुलाबसिंह ने आकर बाधा डाल दी। उनकी टहल के लिये जो बांदियां रक्खी गई। उन्होंने महाराज शेरसिंह से जाकर कहा, रानी चन्दकौर तो आपको गाली देती हैं इधर रानी चन्दकौर से कहतीं कि महाराज तो तुम्हे ठगने की फिक्र मे हैं। नाता करने के बाद में तुम्हे बांदी बनाकर रखना चाहते हैं। दोनों ओर से तनाव पड़ गया। महाराज शेरसिंह जब कि जलालाबाद थे। बांदियों ने महारानी चन्दकौर का सिर ईंटों से फोड़कर उन्हे मार डाला। कहा जाता है महाराज शेरसिंह को खुश करने के इरादे से ही बादियों ने ऐसा किया था। चालाक ध्यानसिंह ने बांदियों को कोतवाली पर मृत्यु का दंड देकर सिखों की सहानुभूति प्राप्त करली।

इस समय देश मे अराजकता फैलने लगी क्योंकि सैनिकों को समय पर तनख्वाह का प्रबन्ध न था। प्रबन्ध भी कहाँ से होता सूबों से कोई रकम आ नहीं रही थी। यत्र तत्र उपद्रव भी हो रहे थे। वे सिख भी महाराज शेरसिंह से नाराज हो रहे थे। जिन्हे कि महाराज ने आरम्भ के दिनों मे बड़ी इनामे देने को कहा था। डोगरों ने इस मौके से भी लाभ उठाया; उन्होंने महाराज को उनके अनन्य भक्त ज्वाला-सिंह से भी नाराज कर दिया।

सिंधानवाले सरदार भाग कर शिमला और दिल्ली मे अंग्रेजों के साथ बाते करने लगे और अपने सम्बन्ध में शिफारसे भी कराई। भाई रामसिंह जी ने कह सुन कर सरदार लहनासिंह जी सिंधान वाला को जेल से छुटकारा दिला दिया। लहनासिंह ने थोड़े दिनों मे महाराज को खुश कर लिया और अजीतसिंह और अतरसिंह भी महाराज ने वापिस बुला लिये। महाराज और सिन्धान वाले एक ही वृक्ष की शाखायें थे। उनके पूर्वज भी एक ही थे। संभव था कि वे आपस की पिछली कड़वी बातों को भूल जाते किन्तु राजा ध्यानसिंह इसे उचित न समझता था।[1] वह अब शेरसिंह की बजाय महाराजा रणजीत सिंह के छोटे राजकुमार दिलीपसिंह जी की ओर आकर्षित हुआ। सिंधान वाले ध्यानसिंह और शेरसिंह दोनों ही से प्रसन्न न थे वे चाहते थे। कि इन दोनों का खात्मा किया जाय।

१. और वह किसी न किसी तरह से इस खानदान को नष्ट कर देना चाहता था। खड्गसिंह और नौनिहालसिंह तो खत्म कर दिये थे। अब शेरसिंह को मिटाने की फिकर में था।

राजा ध्यानसिंह ने सिंधान वालों को उभाड़ा, उसने कहा जानते हो, महाराज आजकल तुम्हारे ऊपर इतने क्यों खुश हैं। उनकी ओर से आप लोग ज्योंही असावधान हुये तुम्हे वे मरवा डालेंगे। कहते हैं ध्यानसिंह ने उन्हे यह भी कहा कि मेरी तुम्हारे साथ सहानुभूति है और महाराज के खिलाफ जो भी तुम करोगे उसमें मैं सहायता दूंगा।[1] सिंधानवालों ने इस मौके पर लाभ उठा लेने की बात सोची। उन्होंने महाराज के पास जाकर कहा, ध्यानसिंह तो आपकी भी जान का दुश्मन बना हुआ है किन्तु वह हथियार हमें बनाना चाहता है। महाराज ने अपनी तलवार सिंधानवालों के हाथ मे दे दी और कहा कि आप मुझे मार सकते है किन्तु वह छोडेगा आपको भी नहीं। सिधानवालों ने कहा तब क्या यह उचित नहीं होगा कि इसका ही खात्मा कर दिया जाय आप इजाजत दे तो हम यह काम कर सकते हैं। महाराज ने अपने भोलेपन से उन्हे लिखित आज्ञा दे दी। कहा जाता है सिंधानवालों ने उस आज्ञा को ध्यानसिंह को दिखाकर उससे भी महाराज के मारने की आज्ञा लिखाली।

इस तरह के आज्ञापत्र पाकर प्रतिहिंसा से भरे हुये सिंधानवाले एक दिन पाच सौ सवारों के साथ लाहौर मे आ गये। अपने आदमियों को इधर उधर लगा दिया। महाराज उस दिन लाहौर से शाह बिलावल के मकबरे के पास बाहर कुस्तियाॅ देखकर इनाम बांट रहे थे। अजीतसिह ने उनके सामने जाकर एक बन्दूक दिखाई और कहा, महाराज मैंने यह नई बन्दूक खरीदी है। आप देखिये तो, महाराज ने ज्यों ही बन्दूक लेने को हाथ बढ़ाया कि उसने घोड़ा दबा दिया। गोलियाॅ छाती मे पार हो गईं। महाराज इतना ही कह पाये थे की दगा। लहनासिंह उधर प्रतापसिंह के पास जा पहुॅचा था। उस बेचारे बालक को भी मार डाला।

सिख साम्राज्य का विनाशक आज तक जहाॅ एक डोगरा परिवार ही था। वहाॅ अब सिन्धान वाला भी बन गया। ध्यानसिंह के दिमाग मे यह बात घुस गई थी कि अपने पुत्र हीरासिंह को सिखराज का अधीश्वर बनाना चाहिए। इसके लिये रास्ता भी साफ कर रहा था।

दोनों बाप बेटों को मार कर सिंधानवाले राजा ध्यानसिंह के पास आये और उसे बड़ी खुशी २ के साथ सारा हाल सुना दिया। इसके बाद पूछा अब क्या करना है? ध्यानसिंह ने बिना ही परिस्थिति को देखे हुये कहा, करना यही है कि दिलीपसिंह जी को महाराज बनाया जाय और मुझे वजीर। अजीत-सिंह ने भीषणता की हसी हॅसते हुये कहा, "ठीक है" दिलीप तो महाराज हो जायगे और आप बन जायेंगे मंत्री। बस इतना कह कर उसे (ध्यानसिंह) भी खत्म कर दिया। सरदार लहनासिंह की दृष्टि में अजीतसिंह का यह कार्य जल्दबाजी का रहा। क्योंकि वह चाहता था कि जब सारा ही डोगरा परिवार इकट्ठा हो तब यह काम किया जाय। यदि सचमुच ही ऐसा होता तो सिख साम्राज्य के लिये एक हद तक अच्छा ही रहता। ताकि इनके दुष्कृत्यों से सिख राज्य बचा रहता।

हीरासिह ने जब अपने पिता के कत्ल का समाचार सुना तो वह बेहोश हो गया। किन्तु उसके परिवार के लोगों ने उसे उलाहना देकर बदला लेने पर उत्साहित किया। हीरासिंह के हृदय मे प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठी।

उधर सिखों ने जब सुना कि सिंधानवालों ने महाराजा शेरसिंह और उसके नि:अपराध पुत्र को मारडाला है। तो वह भड़क उठे उधर हीरासिंह ने जाकर उभाड़ा। हालाकि सिंधान वालों ने हीरासिंह

१ सिखों का उत्थान पतन पृष्ठ १७६

के सामने यह सफाई पेश की कि उनके पिता को एक मुसलमान ने मारा है कि जिसे कि हमने मौके पर बदले मे कत्ल कर दिया है। किन्तु उनकी इस बात पर विश्वास नहीं किया गया। सिखों का क्रोध शात करने के लिये उन्होंने महाराजा दिलीपसिंह को लेकर गद्दी पर बैठा दिया और अजीतसिंह को मत्री घोषित किया। फिर भी सिख शांत नहीं हुये। सिंधानवालों पर उन्हे यह भी शक होने लगा कि कहीं वे महाराजा दिलीप का भी खात्मा न कर दे और हीरासिंह भी यही कहकर उन्हे भड़काता था। सिंधानवालों की ओर से एक बात और फैलाई गई कि वे कहते है "हमने जो कुछ किया है अपनी भुजाओं के बल पर किया है।"

यह बात छावनी के सिखों को बरछी की तरह लगी, वे हीरासिंह की कमान मे चालीस हजार की तादाद मे इकट्ठे होगये। और मे वे अपने ही किले पर गोला बारी करने लगे। रात भर तोपे दगीं। मारे लगे। गोलियों की बौछार हुई। अजीतसिंह और उसके बहादुर सैनिक दीवार को पार करके सेना को चीर कर निकल जाने के इरादे से—उतर रहे थे कि अजीतसिंह मार दिया गया। थोड़ी देर बाद लहनासिंह भी मारे गये। अमरसिंह उस समय बाहर होने की वजह से भागकर अंग्रेजो के इलाके मे चले गये। हीरासिंह की मुराद पूरी हुई।

उसने नये सिरे से महाराज दिलीपसिंह का राजतिलक किया। सिखों की आखो मे धूल झौंकने की चेष्टा से उसने महाराज के पैर चूमे। बहादुर किन्तु भोले सिखों ने हीरासिंह को ही महाराज का मंत्री बनाया।

उस समय महाराज दिलीपसिंह जी की अवस्था कुल पाच वर्ष की थी। कई अंग्रेज इतिहासकारों ने लिखा है कि वे छोटे थे। किन्तु बुद्धि उनकी बड़ी विलक्षण थी। यदि उन्हे राज्य करने का अवसर मिलता तो निश्चय ही वे बड़े पराक्रमी और चतुर शासक साबित होते। महारानी जिन्दाकौर जोकि माई जिन्दा के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी मा थीं। वेही अभिभावुक नियुक्त हुईं। वे राजकाज में पूरा सहयोग देती थीं। अपने भाई सरदार जवाहरसिंह के साथ कभी फौजों में महाराज को भेजतीं और कभी हाथी पर चढ़ाकर शहर मे। ताकि सेना और प्रजा की उनमें भक्ति बढ़ती रहे।

महाराज दिलीपसिंह

हीरासिंह का सलाहकार जल्ला नामका एक तात्रिक ब्राह्मण था। वह बड़ा चलता पुर्जा था। उसकी सलाह से हीरासिंह शासन को चलाने में कामयाब हो रहा था। किन्तु उन्हें महारानी के भाई सरदार जवाहरसिंह की तरफ से खटका था। इसलिये उन्होंने सेना मे फैलाया कि जवाहरसिंह तो महाराज को अंग्रेजों के यहाँ ले जाना चाहता है। इधर जवाहरसिंह ने भी हीरासिंह के ताऊ सुचेतसिंह को मंत्री बनाने का प्रलोभन देकर फोड़ लिया। किन्तु जवाहरसिंह को यह पता न था कि खालसा मे उसके खिलाफ अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध रखने की बात हीरासिंह की ओर से फैलाई जा चुकी है। इसलिये एक दिन जब कि वह महाराजा को मय सुचेतसिंह के खालसा के पास ले गया था। हीरासिंह की शिकायत करते हुये केवल धमकी के तौर पर यह बात कह डाली कि "हीरासिंह महाराज को बहुत तकलीफ देता है। अगर आप महाराज की रक्षा न करेंगे तो मे उन्हें लेकर अंग्रेजों के पास चला जाऊँगा। जवाहरसिंह अपने ही तीर से बिंध गया। खालसा ने उसे और सुचेतसिंह समेत गिरफ्तार कर लिया। महाराजा को भी रात भर सेना में ही रक्खा। दूसरे दिन प्रात महाराज को तो हीरासिंह के हाथ सौंप दिया और जवाहरसिंह को जेल भिजवा दिया। हीरासिंह ने सुचेतसिंह के साथ भी कठोरता करनी चाही किन्तु उसे

गुलावसिंह जम्मू लेगया । हम तो समझते हैं । जवाहरसिंह को कैद करने मे डोगरों की चालाकी थी।

जल्ला पडित ने महारानी जिन्दा के लिये भी बुरे भाव सिखों मे फैलाना शुरू किया। सिख इस बात से नाराज हुये । उधर जम्मू मे गुलावसिंह भी शांति से न बैठा रहा । उसने लाहौर दरवार के पास एक पत्र भिजवाया कि काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह, अतरसिंह के साथ मिलकर सिख राज्य को हड़पने की कोशिश मे हैं । हीरासिंह ने उनके दमन के लिये गुलावसिंह के पास पत्र लिख दिया और एक सेना भी भेज दी। इस बात को सुनकर हजारों सिख सैनिक हीरासिंह से नाराज होगये और उन्होंने हीरासिंह और जल्ला पंडित को उसी की हवेली में कैद कर लिया । हीरासिंह ने इस काम से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हुए विश्वास दिलाया कि मैं राजकुमारों के साथ कोई दुर्व्यवहार न होने दूंगा और जल्ला पडित को अव राज काज से अलग कर दिया जायगा ।

उधर गुलावसिंह की सेनाओं के हाथ जव दोनों राजकुमार जोकि अपनी जागीर को भी छोड़कर भाग गये थे न आये तो गुलावसिंह ने उन्हे धोके से वुलाकर कैद कर लिया । यह थी डोगरों की वफादारी ?

इधर कुछ दिनों से वेतन रुका हुआ था । उधर काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह गिरफ्तार कर लिये गये । इन कारणों से खालसा सेना एक वार फिर विगड़ी उसने सुचेतसिंह को कहलवा भेजा कि तुम लाहौर आजाओ । मत्री वना दिया जायगा । सुचेतसिंह लाहौर की ओर ४०० सैनिकों के साथ चला आया । किन्तु हीरासिंह ने अपनी चालाकी से पुन सिख सेना को सतुष्ट कर लिया । आरजू, मिन्नत करने के अलावा उसने पुरुस्कार वाटने की भी घोपणा की और अपने ताऊ सुचेतसिंह की सेना पर हमला कर दिया । सुचेतसिंह इस लड़ाई मे मारा गया । कहा जाता है । सुचेतसिंह की मृत्यु से हीरासिंह को वहुत दु ख हुआ ।

जवाहरसिंह जिसे कि नावालिग महाराज की इच्छा के अनुसार हीरासिंह ने मुक्त कर दिया था। सुचेतसिंह के मारे जाने के कारण लाहौर छोड़कर अमृतसर चला गया । वहाँ उसने भाई और वावा सिंहों के सामने हीरासिंह की चालबाजियाँ पेश कीं, वे सव लोग जवाहरसिंह के पत्त मे होगये ।

माझे मे में बावा वीरसिंह रहते थे । जव उनके पास लाहौर के दिल दहला देने वाले पड्यन्त्रों के समाचार पहुचे तो वे वडे दुखी हुये । उन्होंने घूम २ कर देहाती सिखों से कहा "लाहौर का राज्य गुरुओं के कृपा पर कायम हुआ राज्य है । इसकी रत्ता के लिये प्रत्येक सिख को कमर कसनी चाहिये । उनके प्रभाव से लगभग १५०० सिख उनके पास जमा होगये । अतरसिंह सिंधानवाला, कुँवर पिशोरासिंह और काश्मीरासिंह भी वावा के पास पहुच गये ।

जव हीरासिंह को यह खवर लगी तो उसने एक वड़ा दल इन्हे दमन के लिये भेजा । वावा जी ने वहुत प्रयत्न किया कि रक्त पात न हो । किन्तु लड़ाई हो ही गई । इसमे वावा वीरसिंह, सरदार अतरसिंह और काश्मीरासिंह अनेकों सिखों के साथ मारे गये । कुँवर पिशोरासिंह एक दिन पहले लाहौर चले आये थे वे वच रहे । उनके साथ हीरासिंह ने काफी वनावटी प्रेम दिखाया । उनकी आवभगत भी अच्छी की।

खालसा सेना बावा वीरसिंह के प्राण तो ले आई। किन्तु उसे वड़ी ग्लानि हुई। उसका हृदय हीरासिंह से जल उठा । हीरासिंह ने बहुत कोशिष असतोष को दवाने की की। किन्तु जव पाप का घड़ा भर जाता है तव फूट कर ही रहता है । इन्हीं दिनों अफवाह उड़ी कि हीरासिंह और जल्ला पंडित महारानी और महाराज के साथ कठोरता का वर्ताव करते हैं । फिर क्या था अग्नि पर घी की आहुति

पड़ गई। वीर सिख उन्मत्त हो उठे। चारों ओर से किले को घेर लिया गया। अब हीरासिंह ने समझ लिया कि उसके प्राणों की रक्षा भागकर ही हो सकती है। प्रात काल के समय जल्ला पंडित के साथ वह भाग निकला। किन्तु सिखों ने उसे पकड़ लिया। दोनों के शिर काट लिये गये। जल्ला की लाश कुत्तों के सामने पटक दी गई। हीरासिंह और उसके चचेरे भाई सोहनसिंह के जोकि गुलावसिंह का लड़का था सिर शहर के वाहर दरवाजों पर टॉग दिये गये।

जवाहरसिंह की इच्छायें पूरी हुईं और उसे खालसा ने मंत्री वनाया। जवाहरसिंह ने सेना मे पुरस्कार वांटा। इस प्रकार उसने सेना को खुश कर लिया। लालसिंह ने पिछले दिन सरदार जवाहरसिंह का साथ दिया था। यह जल्ला पंडित और हीरासिंह से जलने लग गया था। जवाहरसिंह के मंत्री होने से उसकी पूछ और भी वढ़ गई।

किन्तु खजाना खाली था। मुल्तान और जम्मू तथा पेशावर के सूवेदार पैसा न भेज रहे थे। जम्मूके प्रवन्धक गुलावसिंह की ओर तीस करोड़ रुपये निकलते थे। अत. जवाहरसिंहने पहले उसीपर चढ़ाई करने को सेना भेजी। गुलावसिंह डर गया। उसने तीन लाख रुपया तो सेना को भेंट किया और खुद लाहौर हाजिर हुआ। महारानी जिन्दा ने उसे क्षमा कर दिया। केवल ६ लाख ८० हजार जुर्माना उस पर किया और कुछ इलाके छीन लिये।

गुलावसिंह ने जम्मू पहुंचकर महारानी और उसके भाई जवाहरसिंह से वदला लेने की सोची। उसने पिशोरासिंह को भड़काया और उससे ऐलान करा दिया कि मेरे होते हुए दिलीपसिंह को गद्दी देकर मेरे साथ न्याय नहीं हुआ है। इधर गुलावसिंह ने अपने सलाहकार जवाहरमल नाम के आदमी को लाहौर भेज दिया कि वह खालसा सेना को पिशोरासिंह का साथ देने को तैयार करे। खालसा सेना ने पिशोरासिंह के लाहौर आने पर उससे यह कहकर मदद देने से इन्कार कर दिया कि दिलीप और आप दोनों महाराज रणजीतसिंह के पुत्र हो'हम किसी की कोई मदद नहीं करेंगे। तुम्हारे गिरफ्तार करने का हमें जवाहरसिंह की ओर से जव हुक्म मिला तो उसे भी हमने यही जवाव दे दिया है। पिशोरासिंह लाहौर से चला गया और अटक पहुंच गया। कहा जाता है कि वहाँ उसे फतहसिंह ने धोखे से मार दिया।

सिख सेना जवाहरसिंह से भी नाराज थी पेशावरासिंह के मारे जाने के वाद यह नाराजगी और भी वढ़ी। उन्होंने जवकि जवाहरसिंह सेना मे कार्यवशात गया था। उसे मार डाला।

महारानी जिन्दा सेना से उसकी इस हरकत पर वहुत नाराज हुई। वह अपने भाई की लाश से लिपट गई और फिर फोड़ने लगीं। जिम्मेवार सिख सेनापतियों ने महारानी को विश्वास दिलाया कि हम लोगों से विना ही पूछे यह काम जल्दी मे हुआ है। अपराधी जवाहरमल को जो कि गुलावसिंह का आदमी था अन्य साथियों सहित महारानी जिन्दा के सुपुर्द कर दिया।

विवश होकर रानी ने संतोप किया। उन्होंने शासन करने के लिये एक कौंसिल कायम की। जिसमे दीवान दीनानाथ, भाई रामसिंह और मिश्र लालसिंह सदस्य थे। लालसिंह ने जवाहरसिंह का साथ दिया थां इसलिये रानी अपना आदमी समझती थीं।[1]

१. तेजसिंह और गुलावसिंह के नाम की पर्चिया मंत्री पद के लिये डाली गई और दैवयोग से लालसिंह की पर्ची निकल आई और वह मंत्री हो गया।

इस प्रकार से गृह कलह और रात दिन की खून खराबियों मे छ वर्ष वीत चुके थे। अब सन १८४५ चल रहा था। महाराज की आयु भी ६-७ साल की हो चुकी थी। अब उम्मेद भी थी कि आगे कोई फिसाद न उठेगा। किन्तु खजाने खाली थे और सेना का वेतन चढ़ा हुआ था। भूखी सेनाएं राजा की दुश्मन होती है। अत. सैनिको मे असतोष की लहर दौड रही थी। अब तो एक ही उपाय हो सकता था कि कोई चतुर और वफादार सेनापति इस विशाल सेना से विजय यात्रा करा देता। किन्तु इस सेना के जो इस समय अफसर वने हुए थे। वे सिख राज्य के ही नहीं किन्तु सिख धर्म के भी दुश्मन थे। हालाकि उन्होने सिखों का जैसा वेश वना रखा था। किन्तु उन मे वह माद्दा न था जो गुरु के लाडले खालसाओं में था।

जब खालसा राज्य मे इस प्रकार धाधली मची हुई थी। अंग्रेजों ने इस अवसर से लाभ उठाना आरभ कर दिया। खालसा दरवार के विद्रोहियों को वड़ी प्रसन्नता से शरण देने लग ही गये थे। किन्तु शेरसिंह के पजाव का महाराजा वनते ही अंग्रेजों ने उन्हे लिखा कि हम खालसा सेना की उद्दडता को दूर कर सकते है किन्तु वदले मे तुम्हारे सतलज के दक्षिण के प्रदेश और चालीस लाख रुपया देना होगा। किन्तु शेरसिंह ने इस सहायता के लिये इनकार कर दिया। इससे भी अंग्रेज निराश नहीं हुए। अफगान स्थित कर्नल एवट ने उन्हीं दिनों घोषणा की कि सिख दरवार से की हुई हमारी सन्धि भंग होगई है।

सन् १८०६ ई० की सधि के अनुसार सिख साम्राज्य के निकट वे छावनी नहीं वना सकते थे किन्तु उन्होंने इस प्रतिज्ञा को तोड़ दिया। लुधियाना और फीरोजपुर मे छावनियॉ कायम कर लीं। लुधियाने को रानी लक्ष्मनकौर से जब्त ही इसीलिये किया गया। फीरोजपुर एक प्रकार से लाहौर दरवार का एक रक्षित राज्य था। इसके सिवा अम्वाला और अन्य पड़ोसी पहाड़ी इलाकों मे भी उन्होंने अपने सैनिक कैम्प खोल दिये। सीमाप्रान्त में आरम्भ मे केवल ढाई हजार अंग्रेजी सेना के आदमी रहते थे किन्तु धीरे २ वतीस हजार इकट्ठे कर लिये। यह सब तैयारियॉ सिखों से लड़ने के लिये ही कही जा सकती है। चाहे उस समय अंग्रेज सरकार ने कारण कुछ भी वताये हों।

सिख साम्राज्य के तीन ओर अंग्रेजी सेनाये वढ़ाई जा चुकी थीं। जम्मू की ओर गुलावसिंह को मिलाने की कोशिशे चल रही थीं। फिर भी सतलज नदी अंग्रेजों को अपने मार्ग मे कांटा दिखाई देती थी उसे वह सिख राज्य की रक्षा में खास चीज समझते थे। अत उस पर मजवूत पुल वनवाने के लिये वम्बई मे सामान तैयार किया जाने लगा। सिखों को यह खवर लग गई।

लडाई के लिये अंग्रेज तैयार थे। वे कोई वहाना चाहते थे। वहाना सिखों के भड़कने से ही मिलता अत जिस ब्राडफुट के प्रति सिखों की शिकायते थीं। उसे ही अंग्रेज अधिकारियों ने अपना राजदूत वना कर लाहौर दरवार मे भेजा। सिख अव भी चुपचाप थे। वे सव वातों को सह रहे थे। लेकिन ब्राडफुट यह तो नहीं चाहता था कि सिख वर्दास्त करते रहे। उसका तो मंशा ही यह था कि वे किसीतरह भड़क उठें जिससे हमे लड़ने का वहाना मिले।

हालांकि सन् १८०६ ई० की सन्धि के अनुसार वे फीरोजपुर के पास से सतलज पार कर सकते थे। उलटा उन पर इल्जाम यह लगाया कि ब्रिटिश इलाके में सिख सैनिक विना इजाजत लिये घुसे। उसने सतलज में जहाज चलवाये और उन्हे सिखों की सीमा में खूब घुमाया। ब्रिटिश सैनिकों का सतलज मे प्रदर्शन कराया। वह जो. भी कुछ उभाड़ने के लिये कर सकता था सब किया। कनिंघम-ने लिखा है कि मेजर ब्राडफुट के एजन्ट वनने के ही कारण सिख युद्ध शीघ्र संभावित हुआ।

बात यहीं तक रहती तब भी शायद सिख बर्दाश्त कर लेते। ब्राडफुट ने तो उस मूलराज का भी पक्ष लिया जिसने वर्षों से मुलतान सूबे की मालगुजारी लाहौर के खजाने मे दाखिल नहीं कराई थी और अब अपने को स्वतन्त्र शासक समझने लगा था। ब्राडफुट ने सिन्ध विजेता नैपियर साहब को लिखा। मूलराज अंग्रेजों की सहायता चाहता है। सिख सेना उससे लड़ने गई है। अगर वह जीत गई तो उसका हौंसला बढ़ जायगा और वह अंग्रेजों के लिये भी फिर जायगी। नैपियर खुद ही ब्राडफुट से सिखों से द्वेष रखने में आगे था। उसने सिन्ध मे उन सिख सिपाहियों के ऊपर हमला करा दिया था जो (सन् १८४५) डाकुओं का पीछा करते हुये उसके कैम्प के ईर्द गिर्द तक पहुँच गये थे। हालांकि कानूनी रूप से उस समय तक सिन्ध मे कोई सीमाये निश्चित नहीं हुई थीं। नैपियर और ब्राडफुट दोनों ही चिल्लाते थे कि 'सिखों से युद्ध होना है।" अंग्रेजो का अखबार भी ऐसी ही खबरें छापता था। इसके अलावा ब्राडफुट ने लुधियाने में दो सिख जागीरें जब्त कर लीं जो कि सन्धि के नियमों से बिल्कुल बाहर की बात थी।

इन सब घटनाओं के कारण सिखों का खून उबल उठा। उबलता भी क्यों न जब कि न तो उनकी भुजाये निर्बल थीं और न उनके हथियारों मे ही मोरचा लगा था। आम सिख सैनिकों और सिख सरदारों की भावना को देखकर वे लोग भी लड़ाई के लिये तैयार हो गये जो अन्तकरण से खालसा सेना से संतुष्ट न थे उन्होंने भी इस समय लड़ाई को उचित ही समझा वे खालसा की शक्ति के कमजोर होने मे ही अपना हित समझते थे। उनका वश चलता तो इससे भी पहले खालसा सेना को लड़ाई मे पटक देते किन्तु चूंकि गोला बारुद की कमी थी, इसलिए वे समय को टालते रहे।

सन् १८४५ ई० के नवम्बर से घरू शत्रु भी सेना को उत्तेजित करने लगे। कभी कहा जाता अंग्रेजी सेना सतलज पार कर रही है कभी अंग्रेजों को धमकी की जाली चिट्ठी दिखाई जाती। हम कहना चाहते हैं कि जहाँ अंग्रेजों ने सन्धि भंग करके सिखो को उभाड़ने के लिये आग जलाई वहाँ घरू दुश्मनों ने उसमे आहुतियाँ दीं।

लालसिंह ने खालसा सरदारों और समस्त सिख पंचायतों का एक संयुक्त अधिवेशन किया। शालामार बाग सिखों से खचाखच भरा हुआ था। दीवान दीनानाथ ने खड़े होकर कुछ पत्र सुनाये। जिनका सारांश था सतलज के इस पार के कुछ इलाके पर अंग्रेजों ने अपना दखल देना शुरू कर दिया है। वे सिख प्रजा से कर मांगते हैं। पेशावर पर शीघ्र ही अंग्रेज अफगानों का अधिकार करा देना चाहते हैं। काश्मीर और मुलतान के सूबे बिगड़ गये हैं। अंग्रेज शह देते हैं। खजाने में राजस्व के नाम पर कुछ नहीं आ रहा है। इन पत्रों को पढ़ने के बाद उसने महारानी जिन्दा की ओर से बोलते हुये कहा, "खालसा जी, जिस राज्य को स्वर्गवासी महाराज ने कायम किया था और जो समस्त सिखों की शान है आज उस पर विपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। दुश्मन उसे नष्ट कर देना चाहते हैं। बोलो इस समय आपका क्या कर्तव्य है। चारों ओर से हजारों कठों से आवाज आई। "हम अपने हृदय का भी रक्त बहा कर अपने राज्य की रक्षा करेंगे।"

जब कि सिख सेना मे ऐसी प्रबल युद्ध आकांक्षा जागृत हो रही थी। उस समय गवर्नर जनरल ने बृटिश राज्य की सीमा पर जहाँ से कि सिख राज्य निकट ही था डेरे आ जमाये। फिर क्या था? सिखों ने समझ लिया कि अब देर करने में अपनी ही हानि होगी। इसलिये वे अंग्रेजों की ओर से तैयारियों को देखकर उनकी तरफ के खतरे से अपने देश को बचाने के लिये सतलज की दक्षिण मे अपने इलाके में अपनी फौज को पहुँचा देने का फैसला कर दिया। लाहौर युद्ध की प्रति ध्वनि से गूंज उठा। सिख लोग

महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि पर इकट्ठे हुए। खालसा के समस्त सरदारों और पंचों ने गुरु ग्रन्थ साहब को स्पर्श करके प्रतिज्ञा की कि महाराज दिलीपसिंह जी के प्रति राजभक्त रहेंगे।

अंग्रेजों की ओर से हो रही ज्यातियों और तैयारियों को इन चार बातों में लाहौर दरबार की ओर से बताया गया।

(१) लड़ाई करने की पहल अंग्रेजों की ओर से हो चुकी है। उनकी कुछ सेनाये सतलज को पार कर आई है। (२) फीरोजपुर के खजाने मे राजा सुचेतसिंह का जो अठारह लाख रुपया जमा है। उसे सिख दरबार के मांगने पर भी अंग्रेजों ने नहीं दिया है। (३) मृत राजा सुचेतसिंह की समस्त संपति पर उनके बाद सिख दरबार का अधिकार है अंग्रेज कर्मचारी इसे स्वीकार नहीं करते (४) सतलज के दक्षिण लाहौर दरबार के जो इलाके है उनमे हमारे सैनिकों को आने जाने से अंग्रेजों ने रोक दिया है। अतः हम समझते है कि अंग्रेज न केवल सधियो को ही भंग कर रहे हैं किन्तु वे खालसा राज्य के कार्य्यों मे भी बाधा डालते हैं।

दोनों ओर से लड़ाई की तैयारी होने लगी। फ्रासीसी नैपोलियन को कैद कर लेने भारतीय मरहठों को मटियामेट कर देने और राजपूत रज्जू का बल निकाल देने के बाद से फौजी अंग्रेजों के दिमाग अभिमान से अस्मान पर चढ़ गये थे। क्योंकि उनसे पठान कापते थे बिलोच घबराते थे। अब बाकी थे तो केवल गुरु के लाडले, रणजीतसिंह के शूर, जननी के सपूत और खालसा के वीर सिपाही सिख। अंग्रेज सिख सैनिकों के बल को नापना चाहते थे। उनके दिलो मे बहुत दिनों से ख्वाहिश थी। वे मौके की लाश मे थे। उन्होंने मौका भी पैदा कर लिया। इधर सिख वीरों के मन मे गोरे सैनिकों से दो-दो हाथ कर लेने की लगी हुई थी। क्योंकि उनकी भुजाओं मे भी वह बल था जिसका लोहा मानकर राजपूत उनके महाराज पर चंवर करते थे। गोरखा गुफाओं से बाहर न निकलते थे और पठान थकान महसूस कर रहे थे। उन्हे अंग्रेजों से तनकभी भय न था क्योकि वे काबुल मे उनके साथ रह कर देख चुके थे। भरतपुर में उनकी जो गति हुई थी उसकी चर्चा सुन चुके थे। जब दोनों ही ओर से लड़ने का चाव हो फिर चाहे वह प्रतिहिंसा से ही क्यों न हो तब भला युद्ध क्यों न होता।

अंग्रेजों के सैकडो भेदिये लाहौर मे लगे हुए थे ज्योंही सिख सेनाओं ने कूंच किया और उन्हे पता चला त्योंही अम्बाला, लुधियाना और फिरोजपुर से अंग्रेजी सेनाये सामना करने के लिये तैयार हो गई।

युद्ध

सिखों की रणवाहिनी ११ दिसम्बर सन् १८४५ को सतलुज पार उतर आई। १६ वीं दिसम्बर को सिख सेनापतियों ने अपने आगमन की सूचना दे दी। कहा जाता है इस समय अंग्रेजों ने भी युद्ध की घोषणा कर दी और उनमें युद्ध के लिये तैयार होने का सारा दोष अंग्रेजों ने सिखों के सिर मढ़ा। यह ठीक है कि घोषणा अंग्रेजों ने सिखों से पीछे की किन्तु तैयारी उन्होंने सिखों से भी पहले की थी। अम्बाले से सतलज तक ३२४७६ सैनिक पहले से ही उन्होंने जाल की भाति पूर रक्खे थे। फिर भी उन्होंने घोषणा मे यही कहा कि सिखों ने अकारण ही हमारे इलाके पर हमला किया है। अत' अब हम सतलज के बाईं ओर के लाहौर दरबार के इलाके पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करते है।

अंग्रेज इतिहासकारों ने सिखों की २५, २६ हजार सेना बतलाई है और अंग्रेजों की केवल १७ हजार थी, किन्तु कनिंघम ने इस बारे मे एक सच्ची बात कही है वह यह कि "शत्रु की सेना को अपने से अधिक बताने में लड़ने वाले अपनी प्रशंसा समझते हैं।"

हम लोग आजकल जापान या अमरिका के उन देशभक्तों की वड़ी प्रशंसा किया करते हैं जो किसी भी छोटे से छोटे काम को करने मे हिचकते नहीं किन्तु आज से पचास वर्ष पहले सिखों मे अपने देश और राज्य के लिये जो मुहब्वत थी वह संसार मे भारत का सिर ऊंचा उठा देने वाली है। लड़ाई का विगुल वजते ही कुलियों के अभाव में उन्होंने गाड़ियों मे अपना सामान लादा। खिच्चर कम होने की हालत में गाड़ियों को भी खींचा और नावों को सतलज मे अपने ही हाथों से धकेल कर पार लगाया वे इस युद्ध मे उसी प्रसन्नता से प्रत्येक कार्य को करते थे। जितनी प्रसन्नता से धनी लोग व्याह-शादियां करते है। अपने देश की आजादी को अटल वनाये रखने के लिये वे प्राण देने जा रहे थे। किन्तु किसी भी चेहरे पर न चिन्ता थी और न घवराहट। ऐसा शायद ही कहीं होता हो।

इस प्रकार के उत्साह और देश प्रेम से ओतप्रोत खालसा सेना को भी अंग्रेज उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे थे उनका अनुमान था कि सिख जितना घमंडी है उतना वीर नहीं। वह हमारे ट्रेन्ड सिपाहियों के सामने कितनी देर ठहरेगा। जिस समय हमारी तोपें आकाश के हृदय को विदीर्ण करने वाली गर्जन से धुंआ उगलेगी वह भाग खड़ा होगा। फिर उनका कोई योग्य सेनापति भी तो नहीं। हम युद्ध की कला जानते हैं। सिख तो केवल मजवूती पर वावले वने हुए है। ड्यूक आफ विलिंगटन का भी यही खयाल था उसने नेपोलियन को हराया था इसलिये लार्ड गफ ने जो कि अंग्रेजी सेना का जनरल था यही युद्ध संचालक नियुक्त हुआ।

युद्ध का वर्णन करने से पहले हमे सिख सेना के सेनापतियों के वारे में कुछ कह देना जरूरी है ताकि युद्ध में सिखों की हार-जीत के मामले को समझने मे पाठकों को सुविधा हो।

सिख जिस उत्साह और " न पलायनम न, दैन्यम " की जिन प्रतिज्ञाओं को लेकर रण में उतरे थे, वह वातें उनके सेनापतियों मे न थीं। लालसिंह और तेजासिंह दोनों ही विजय की आकांक्षा से नहीं आये थे किन्तु खालसा की शक्ति को क्षीण कराने को आये थे। वे अंग्रेजों के हाथ में खेल रहे थे पंजाव से उन्हें कोई प्यार नहीं था क्योंकि वे यहां से दूर के रहने वाले थे।

वहादुर सिखों का उद्देश्य अपना सर्वस्व गंवा कर भी अपने राज्य की रक्षा करना था और उनके सेनापतियों का उद्देश्य उनकी शक्ति को क्षीण कराना था। इस स्थिति में सिख वीरों ने जो वहादुरी दिखाई वह तव तक अमर रहेगी जव तक कि संसार मे एक भी आदमी वीरता की कद्र करने वाला मौजूद रहेगा।

सतलज के इस पार आते ही लालसिंह ने अंग्रेज ऐजेंट मि० निकलसन को एक पत्र लिखा—"आप जानते होंगे मैं अंग्रेजों का मित्र हूँ। मैं सिख सेना समेत सतलज पार उतर आया हूँ। अव कहिये मुझे क्या करना चाहिये।" निकलसन ने इसके उत्तर में लाल सिंह को सलाह दी कि यदि आप सचमुच अंग्रेजों के हितैपी हैं तो सिख सेना को फीरोजपुर पर आक्रमण करने से रोकते रहिये,। जितने दिन भी हो सके सेना को लड़ाई से रोके रहिये। और किसी भी तरह उसे गवरनर जनरल की सेना के सामने ले जाइये। लालसिंह ने खरीदे हुए गुलाम की भांति निकलसन को इस आज्ञा को माना। वार-वार सिख सैनिकों के फीरोजपुर पर आक्रमण करने के इरादे को टालता रहा। यदि वह वह उस समय सैनिकों को इजाजत दे देता तो फीरोजपुर सिखों के हाथ आ जाता और वहां से उन्हे इतना धन और हथियार हाथलगते कि अंग्रेजों को हराना उन्हें कुछ भी मुशकिल न होता। फीरोजपुर पर वे अवश्य ही कब्जा कर सकते थे। कारण कि उस समय वहां वहुत कम सैनिक थे। इसके वाद लुधियाने और अम्वाला पर एक ही साथ

आक्रमण किया जाता तो अंग्रेजों को लेने के देने ही नहीं पड़ जाते किन्तु पंजाब से उन्हे निश्चय ही भागना पड़ता।

जब-जब भी सिख सैनिक आक्रमण की बात कहते, लालसिंह कहता "इस तरह तुम अपनी शक्ति नष्ट न करो। अंग्रेजों के प्रधान सेनापति को आने दो। हमें तो उसे पकड़ना है। इसमें तुम्हारीकीर्ति भी बढ़ जायगी।" वे लालसिंह के भुलावे मे आगये और शत्रु को मजबूत होने का मौका देते रहे। लालसिंह उन्हे मुदकी के मैदान मे ले पहुचा उधर से विशाल अंग्रेजी दल भी आगया।

१८वीं दिसम्बर सन् १८४५ मुदकी के मैदान को रक्तरंजित होने के लिये दैव ने घटना कारूप दिया। ग्यारह हजार अंग्रेजी सैनिक थे। लालसिंह ने उसके मुकावले केवल तीन हजार सवार और पैदल सिखों से भिडा दिया। और खुद सेना के पिछले भाग पहुँचकर जो मैदान से काफी पीछे छोड दिया गया था लौट गया। यह अल्प सैन्य भी सेनापति विहीन रह गया। फिर भी रण-बाकुरे सिख "वाहि गुरु जी का खालसा, और वाहिगुरु जी की फतह के नारे लगा कर अंग्रेजी सेना पर वन केसारियों की भांति टूट पडे। जिधर वे पिल पड़ते, मैदान साफ हो जाता। सिखों के इस प्रकार भीम-विक्रम को देखकर अंग्रेजी सेना का प्रधान सेनापति गफ आश्चर्य मे पड गया। उन्हे कोई मार्ग दर्शक नहीं है न आर्डर देने वाला। फिर भी वे इस प्रकार से लड़ रहे हैं मानो कोई उनका सचालन कर रहा है। उन्होंने घटों उनके युद्ध कौशल को देखा और साथ ही देखा कि वे अंग्रेजी सेना का भारी नुकसान कर रहे हैं। अपनी सेना की तरफ गौर से देखने पर उन्हे ऐसा लगा मानो सिखों की विकट मार से घवराहट मे आकर सेना के कुछ हिस्से के लोग आपस मे ही लड़ रहे हैं। वे अपनों पर ही गोली चला रहे है। आखिर उन्होंने दोपहर बाद अपनी सेना को आर्डर दिया कि गोलिया चलाना वंद करके संगीनोंसे एकसाथ सिखो पर हमला किया जाय। आगेकी टुकड़ियां पीछे कर दी गई और पीछे की ताजा टुकड़ियां आगे आ गई।

सिखों की वही टुकड़ियां थीं जो सवेरे से बराबर बढ़ रही थीं। सिखों ने सोचा अपनी पिछली सेना के पास पहुँचना चाहिये किन्तु पीठ दिखा कर नहीं। वे बराबर लड़ते रहे और धीरे धीरे उलटे पैरों वापिस भी होते रहे। अंत मे दिन छिप गया और लड़ाई स्थगित हो गई। इस लड़ाई मे अंग्रेजों के ८७२ आदमी काम आये और हजारों घायल हो गये किन्तु उनके हाथ सिखों की १७ तोपें लग गई। रावर्टसन और सेनापति मैकेसकिल नाम के दो प्रसिद्ध युद्ध सचालक भी अंग्रेजो के काम आए। इस लड़ाई मे सिखों की सेना के सैनिक अंग्रेजी सेना की अपेक्षा कम काम आये किन्तु अंग्रेजों ने विजय अपनी ही समझी।

रातको अंग्रेज युद्धसचालकों की कौसिल बैठी और उसमे लिटलर साहव की सेना को भी जोकि फीरोजपुर मे आठ हजार की सख्या मे थी अगले दिन की लड़ाई मे शामिल कर लेना तय हुआ।

मुदकी के बाद फीरोजपुर मे रणचंडी का तांडव नृत्य हुआ। पिछली कठिनाई और हानि का खयाल करके अंग्रेजों ने सेना को बढ़ा लिया। सैनिकों का उत्साह बढ़ाने के लिये गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिङ्ग भी लड़ाई मे उतर पडे। उन्होंने गफ को अपनी सेवायें सौंप दीं। अठारह हजार सैनिक और ६५ तोपों के साथ २१ वीं दिसम्बर सन् १८४५ को दोनों सेनाये भिड़ गई।

सिख वीर भी अदम्य उत्साह से आज के युद्ध में सम्मिलित हुये। विजय प्राप्त करना अथवा समर क्षेत्र में रणचंडी को आत्म बलि देना उनका उद्देश्य था। इसलिये उन्होंने कठिन व्यूह की रचना की। अंग्रेजी सेना ने विद्युत गति से सिख व्यूह पर हमला किया। जिस समय अंग्रेजी तोपों ने भीषण अग्नि वर्षा की वह समय बडा भयावना था। इससे भी भयावना दृश्य चारों ओर से अंग्रेजी सेनाओं का सिख

व्यूह पर धावा करना था। किन्तु बार-बार के सर्व-ग्रासी धावों के बाद अंग्रेजी सेना सिखों के व्यूह को न तोड़ सकी। प्रत्येक हमले में अंग्रेजी सेना को हानि उठानी पड़ी। अंग्रेजी सेना को इससे पहले किसी भी एशियाई लड़ाई में इतना लज्जित न होना पड़ा था।

इधर सिख गोलन्दाज भी अंग्रेजों की इस प्रकार की अग्नि वर्षा से भभक उठे। उन्होंने अपनी तोपों का मुंह अंग्रेजी तोपखाने की ओर फेर दिया। जिसमें केवल तोपों को ही नष्ट नहीं किया किन्तु रसद की भरी हुई गाड़ियों को भी ध्वंस कर दिया। इससे बढ़ कर उन्होंने अंग्रेजों के बारूद खाने में गोला फेंक कर आग लगा दी। बारूदखाने में आग लगने से अंग्रेजी सेना में हाहाकार मच गया किन्तु सेनापतियों की दृढ़ता के कारण सेना भागने से रुकी रही। सेना भागी नहीं सही किन्तु अंग्रेज सेनापतियों को यह अनुभव हो गया कि आज तक उन्हें ऐसे संकट का सामना किसी भी लड़ाई में नहीं करना पड़ा था। सेना भेड़ों की तरह इकट्ठी होने लगी।

उस समय एक विचित्र घबराहट अंग्रेजी सेना में थी। सिपाही गोलियां चलाते थे किन्तु उन्हें यह होश न था कि लक्ष्य किसे बना रहे हैं। गोलन्दाजों की निशाने पर गोला मारने की शक्ति कुंठित हो रही थी। सेनापति हुक्म देना चाहता है किन्तु वह किसे हुक्म दे और कौन हुक्म की तामील करेगा यह यह निश्चय करना उन्हें मुश्किल हो रहा था। कारण कि उनका बनाया हुआ व्यूह छिन्न हो चुका था। इसी अरसे में रात्रि आगई किन्तु लड़ाई कैसे बन्द हो। मामला सारा अस्तव्यस्त था। सिखों के इस अंधेरे में भी एक धावा मारा अंग्रेजी सेना का बाया भाग तोड़ दिया। मि० लिटलर उस भाग पर थे। वे फौज को बचाने की गर्ज से भाग निकले।[1] वालस साहब की अध्यक्षता में जो दो पलटनें लड़ रही थीं वे भाग कर गिलबर्ट की सेना के व्यूह के पीछे हो गई। लार्ड हार्डिंग और लार्ड गफ ने देखा सिखों की एक तोप इतनी अग्नि वर्षा कर रही है कि उससे अंग्रेजी सेना भुनी जाती है उन्होंने भारी गोलाबारी कराकर उस तोप को बन्द कर दिया।

सिखों ने इस समय लालसिंह से जो पीछे के भाग में खड़ा था कहा आप अपनी इस ताजी सेना को अंग्रेजों पर हमला करने की इजाजत दीजिये। आज का मैदान हमारे हाथ रहेगा। किन्तु लालसिंह ने यह बहाना बना दिया कि अंग्रेजों की एक ताजी सेना इस पर हमला करने वाली है।

घना अन्धकार होने पर लड़ाई खतम हो गई। दोनों सेनाये अपने-अपने कैम्पों को चली गई।[2]

दूसरे दिन बड़े तड़के ही दोनों ओर से फिर मारकाट की ध्वनि व्याप्त हो गई। अंग्रेजी सेना ने लालसिंह की सेना पर भी आक्रमण कर दिया जिसे कि वह पीछे लिये खड़ा था। क्योंकि उन्हें भय था कि यह सेना अगली सेना को मदद न दे बैठे। इस हमले से उस सेना की बड़ी दुर्गति हुई क्योंकि वह लड़ने के लिये तो व्यूह बना कर थोड़े ही खड़ी थी। उस सेना की रक्षा तेजसिंह की अध्यक्षता में खड़ी सेना ने की। हालांकि तेजसिंह ने उसे उस समय तक आज्ञा नहीं दी जब तक कि दुबारा अंग्रेजी सेना

१. लार्ड हार्डिङ्ग की उस सूचना का सार जो उन्होंने इगलैंड भेजी थी।

२ रोबर्ट ने २२ दिसम्बर को अपने रोजनामचे में लिखा है कि २१ दिसम्बर को अंग्रेजी धावा नाकामयाब रहा और हालात इतने खराब थे कि सरकारी कागजात जला देने का खयाल हो रहा था। इसके साथ ही हम सिखों के सामने बिना शर्त हथियार डाल देने की तैयारियां कर रहे थे जो कि मुझे निहायत दुख की बात प्रतीत हो रही थी।

उन पर भी आक्रमण नहीं किया। दोनों सिख सेनाये जब लड़ाई मे सामिल हो गई तो अंग्रेजी सेना घबरा गई। अंग्रेजी सेना के कई दल भाग निकले। विजयलक्ष्मी सिखों को ही प्राप्त होने वाली थी कि विश्वासघाती तेजसिंह मैदान से निकल भागा और साथ ही अपने आदमियों को भी भागने का इशारा कर दिया। अंग्रेज सेना का हौसला बढ़ गया और सिख असमंजस में पड गये। इस प्रकार भागने की हालत तक पहुची हुई अंग्रेजी सेना की विजय हो गई। मि० कनिंघम साहब ने इस युद्ध का हृदय द्रावक वर्णन इस प्रकार किया है "यह घटना ऐसी थी कि जिससे सच्चे हृदय के मनुष्य को युद्ध करने का उत्साह बढ़ता पर विश्वासघाती सिख सेनापति तेजसिंह के ऊपर इसका उल्टा असर हुआ। उन्होंने तोपें बन्द करवा दीं। और अपने घोडे को मोड़कर सतलज की ओर जितना ही जल्दी हो सका उतनी ही जल्दी भागे। यह उन्होंने ऐसे समय मे किया जब उन्हे विजय होने वाली थी। क्योंकि उस समय बृटिश सेना का कुछ भाग फीरोजपुर से पीछे हट रहा था।[१]

इस युद्ध मे अंग्रेजों की विजय तो हुई किन्तु उन्हे यह पडी बहुत महगी। इनकी कीमत मे उन्हें अपने ढाई हजार सैनिकों और अनेक योग्य अंग्रेज अफसरों को स्वाहा करना पड़ा। इस भारी नुकसान से अंग्रेज सेनापति तिलमिला उठे। वह बड़ी शीघ्रता से लडाई का सामान और सैनिक बढ़ाने लगे और उस समय तक के लिये उन्होंने लडाई स्थगित कर दी।

इस लडाई के सम्बन्ध में 'सिख और सिख युद्ध' के वे लेखक आर्थर डी इनस और चार्लस गफ ने लिखा है —

"भारत मे आज तक जितने प्रकार के सैनिको का सामना करना पडा है सिख उनमें सबसे अधिक बढ़कर दक्ष, भीषण और दुर्जय प्रतीत हुये।" इसमे सन्देह भी नहीं यदि सिखों के सेनापति योग्य और विश्वासपत्र होते तो इस युद्ध का फल ही कुछ और होता।

अंग्रेजों की शिथिलता को देखकर सिख पुन: सतलज के इस पार आगये और उन्होंने कई मोरचे बना लिए। तथा कुछ दल अंग्रेजी सेना की रसद के सामान को लूटने के लिये मुकर्रिर होगये। यह सब काम सिख सैनिक खुद ही उसी प्रकार कर रहे थे। जिस प्रकार स्वयं सेवक अपनी ड्यूटी खुद चुन लेता है।

फिरोजपुर की लडाई के बाद एक पासा और पलटा वह यह कि सतलज के आस पास के प्रदेश मे जितने सिख जागीरदार और राजा रईस थे और जिन्हे कि अंग्रेजों ने उनके गृह-कलह से लाभ उठाकर कलम की एक रगड़ से अपने मातहत कर लिया था। सब हृदय से सिखों को ओर होरहे थे। अंग्रेजो को उनसे बड़ी २ उम्मीदे थीं। वे समझते थे रसद के तो यह लोग ढेर लगा देंगे। किन्तु वैसा न हो रहा था। कपूरथला की सेना ने कतई इनकार अंग्रेजों की ओर से लड़ने का कर दिया था। गढ़मुक्तेश्वर और धर्मकोट के जैसे छोटे २ किलेदार भी अब सिखों की ओर ही मिलने को उत्सुक हो रहे थे। सरदार रणजोधसिंह मजीठिया जिसे कि अंग्रेजों ने मार भगाया उनकी डावांडोल स्थिति समझकर मैदान मे आगया और उसने बद्दोवाल पर कब्जा कर लिया। यही क्यों उसने लुधियाने की अंग्रेजी छावनी मे आग भी लगा दी।

फीरोजपुर मे जो सिख सरदार अंग्रेजों की रक्षा और मदद के लिये इकट्ठे हुये थे। अंग्रेज उनसे भी शंकित थे।

१ The Sikhs and the Sikh wars by आर्थर डी इन्स M A.

वद्दोवाल पर रणजोधसिंह का कब्जा हो जाने से अब अंग्रेजों की दृष्टि मे यही लड़ाई का मैदान बनना था। वे रसद की प्रतीक्षा कर रहे थे और रसद सही सलामत आ पहुचे, इसके लिये उन्होंने प्रबन्ध भी खूब किये। १७ जनवरी सन् १८४६ को हैरीस्मिथ ने कुछ सेना लेकर धर्मकोट को जा घेरा क्योंकि अंग्रेजों का खयाल था कि सिख धर्मकोट की रक्षा में लग जायेगे और तब तक रसद फीरोजपुर पहुँच जायगी। किन्तु सिखो ने इससे उलटा किया। उन्होंने लुधियाने पर एक बड़ा दल भेज दिया। ताकि अंग्रेजों का ध्यान उधर आकर्षित हो जावे। हुआ भी वही। हैरीस्मिथ भी धर्मकोट से तुरन्त ही लुधियाने की ओर बढ़ा क्योंकि उसे विश्वास था कि समस्त सिख ताकत उधर ही है। उस समय वद्दोवाल मे दस हजार सिख सैनिक थे। हैरीस्मिथ वद्दोवाल से ६ कोस लुधियाने की ओर डेरा डाले और रसद को अपने दाहिनी ओर करके लुधियाने को रवाना किया। सिखों ने भी इस समय बुद्धिमानी से काम लिया। उन्होंने रसद और हैरिस्मिथ के दल के बीच से पीठ पीछे तक तोपखाना लगा दिया और रसद के बाईं ओर से हमला कर दिया। इधर हैरी के साथ भी छेड़छाड़ कर दी। हैरीस्मिथ को रसद तक पहुंचने के लिये मुश्किल होगई। अगर वे रसद की ओर मुड़ते तो पीछे सिखो की तोपे थीं और रसद तक पहुँच भी जाते तो वे सिख सेना के बीच मे दो ओर से घिर जाते। इस प्रकार की चतुराई से सिखवीरों ने अंग्रेजों की रसद और गोला-बारूद का सामान लूट लिया। अंग्रेज सेना रसद गोले और तोपों की रक्षा के मोह को छोड़कर लुधियाने की ओर भाग निकली। किन्तु इस समय सिख नायक रणजोधसिंह ने एक गलती की और वह यह कि सिखों को भागती सेना का पीछा नहीं करने दिया। वरना और सामान हाथ लगता और उनकी एक अच्छी शक्ति नष्ट हो जाती। साथ ही कुछ सामान दिल्ली से तोप आदि जो आ रहा था। उसे भी लूटने को सिखों को न जाने दिया। इस प्रकार अंग्रेज एक बड़ी आफत से बच गये।

वद्दोवाल युद्ध के बाद सिख सेना २२ जनवरी १८४६ ई० को वहाँ से रातों रात चलकर लुधियाने ३५ मील सतलज की ओर हट गई। कुछ ने लिखा है कि अंग्रेजों को इस समय इतनी अधिक सेना इकट्ठी होगई थी कि वहाँ ठहरने में सिखों की हानि अधिक ही होती। स्मिथ ने इस मौके पर भी लाभ उठाया और सिखों के छोड़े हुये स्थानों पर कब्जा कर लिया और ग्यारह हजार सेना लेकर सिखोंपर हमला करने की तैयारी कर दी। उधर सिख सेना ने भूदड़ी और अलीवाल नामक गाँवों पर कब्जा कर लिया।

चौथा मोर्चा अंग्रेज और सिखों का अलीवाल मे जमा। इस समय रणजोधसिंह के पास काफी सेना न थी वह इधर उधर बटी हुई थी। फिर सिख लोग बड़ी बहादुरी के साथ मैदान में जम गये। किसी ने 'साधयाम या पातयाम' के सिद्धान्त के अनुसार एक भी आदमी के रहते मैदान से हटने का नाम नहीं लिया। ग्यारह हजार के सामने पचास सौ आदमी भला क्या कर सकते थे। फिर भी लड़ाई चली और उस समय तक चली जब तक एक आदमी भी रहा। वह बराबर अपनी तोप से आग उगल रहा था। जब उसे चारों ओर से घेर लिया। तो उसने कहा, "तुम मेरी तोप को लेजाने का इरादा दूर रख दो मैं प्राणों के रहते तुम्हें नहीं दूंगा।" यह कह कर वह तोप से चिपट गया। कहा जाता है अंग्रेज सैनिकों ने उसके टुकड़े २ कर दिये।

अलीवाल मे सिखों की इस हार मे भी एक रहस्य बताया जाता है। वह यह कि तोपों को लगाने वाले यूरोपियन अफसर मि० पीटर ने तोपों के मुंह कुछ ऊँचे कर दिये थे। जिससे उनके गोले आगे जाकर पड़ते थे।[1]

१. सिखयुद्ध पृष्ठ ६७ चक्रवर्ती द्वारा लिखित।

अलीवाल युद्ध की हार से सिख तिलमिला उठे। वे अपना सर्वस्व अर्पण करके भी अंग्रेजों को परास्त करना चाहते थे। उन्होंने राजा गुलाबसिंह से पंजाब का मंत्रित्व करने की अपील की वे समझते थे कि गुलाबसिंह की योग्यता से लाभ उठावें। किन्तु यह उनकी एक और गलती थी। गुलाबसिंह ने मंत्री होते हुये ही अंग्रेजों से एक गुप्त संधि कर ली। जिसके अनुसार सिखों को वर्बाद करके अंग्रेजों के मार्ग को साफ करना और अन्त मे अपना स्वार्थ साधना गुलाबसिंह का अभीष्ट था।

सर्दार श्यामासिंह जी अटारीवाले जो कुंवर नौनिहालसिंह जी के ससुर थे। इन सारी धोखे-बाजियों से गर्म हो गये। उन्होंने सिखों की सेना मे खड़े होकर कहा। वीरो, गुरु के लाड़ले खालसा वीरो, आओ, मातृभूमि की रक्षा के लिये अपने गर्म-गर्म लहू की आहुति देकर स्वर्ग मे बैठे अपने महाराजा रणजीतसिंह की आत्मा को तृप्त करें। गुरुओं के गौरव को ऊंचा करें। मैं अपनी पवित्र गुरुवाणियों को साक्षी करके कहता हूँ कि मैं रणक्षेत्र से टुकडे २ होने पर भी पीछे कदम न हटाऊँगा। खालसा को श्यामसिंह जी की यह मार्मिक अपील काम कर गई। वे सिंहनाद से गर्जे और सबने भीम गर्जन के साथ 'वाहि गुरुजी की फतह' के नारे लगाये।

वीर सिखों ने सुबरॉव पर दखल करके अपना सेना व्यूह बनाया। ६७ तोपों के साथ १५ हजार सिख मरमिटने या शत्रुओं को मिटा देने के लिये अंग्रेज सेना के आने की प्रतीक्षा करने लगे। इधर तो सिख इस तरह की तैयारी कर रहे थे। उधर विश्वासघाती लालसिंह ने यहाँ के कुल समाचार अंग्रेजी कैम्प मे लिख भेजे। उसने जो कुछ लिखा उसका सार था :—

"इस युद्ध का जनरल तेजसिंह है। जो अंग्रेजों के हित की ही चेष्टा करेगा। मेरे संचालन में घुड़सवार सेना है जिसे मैंने तितर-बितर कर रक्खा है। सिख सेना व्यूह का दक्षिण पार्श्व कमजोर है।"[1]

आखिर अंग्रेजों ने ऐसा ही किया। सर राबर्ट डिक ने अपनी सेना को दक्षिण पार्श्व पर हमला करने को दौड़ाया। यह घटना ६ फर्वरी सन् १८४६ ई० की रात की है।

इस आक्रमण से पहले अंग्रेजों ने बहुत सारा प्रबन्ध कर लिया था। दो हजार सैनिक फीरोजपुर की रक्षा के लिये छोड दिये थे और अपनी सेना का व्यूह भी सुदृढ बना लिया था। सोलह हजार राजपूत और गोरे सैनिको के साथ अंग्रेजों ने यह हमला किया। एक सैनिक दल उन्होंने लालसिंह की निगरानी के लिये भी छोड़ दिया।

यकायक और रात मे हमला होने से सिख घबराये नहीं। रणभेरी बजाई गई और चारों ओर सिख छातियाँ तान कर खड़े हो गये। अंग्रेजों के १३० तोपों ने ज्योंही धुआँ उगलना शुरू किया। सूर्य भगवान भी निकलनेको उद्यत हो गये।

अंग्रेजों की तोपें सिखों के तोपखाने और बालू से बनी दीवारों पर गोले फेंक रही थीं। १२० तोपों से धांय धांय होते समय भी वे बडी बड़ी बहादुरी से लड रहे थे। उनकी ६५ तोपें भी बन्द न थीं। दोनों ओर से ताकत आजमाई हो रही थी। अंग्रेज सेनापति बड़ी बुद्धिमानी से अपनी फौजों को सभालते थे। किन्तु सिख उनके प्रत्येक आक्रमण का बड़ी फुर्ती से जवाब देते हुये प्रतिक्षण अंग्रेजी सेना मे हाहाकार मचा देते थे।

ज्यों २ सूर्य भगवान ऊपर को चढ़ने लगे युद्ध की भयंकरता बढ़ने लगी। अंग्रेजों ने समझा था

[1] सिख हिस्ट्री। लेखक मि० एडवर्ड।

कि गोलावारी से हम सहज ही सिखों को भगा सकेंगे। किन्तु उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई। तव उन्होंने गोलंदाजी को कुछ देर के लिये वन्द करके एक प्रवल शक्ति के साथ दक्षिण पार्श्व पर हमला किया। किन्तु सिखों ने प्राणों पर खेलकर उधर ऐसा छापा अंग्रेजी सेना पर मारा जिससे सैनिक पीछे लौट पड़े और डिक साहव सख्त घायल हुए। यह देखकर पीछे से गिलवर्ट ने अपनी सेना को आगे वढ़ाया। डिक की भागती सेना भी रुक गई। दोनों अंग्रेजी सेनाओं ने फिर हमला किया। किन्तु सिख गोलन्दाजों ने इतनी फुर्ती से गोले दागे कि दोनों सेनाओं को हटना पड़ा। तीसरी वार हेरी स्मिथ ने अपने दल को भी मिला दिया और एक जोर का हमला तीनों सेनाओं ने किया। सिख लाशों पर लाश विछ जाने पर भी एक गज भी पीछे न हटे। उन्होंने तीनों ही वार आते और लौटते समय अंग्रेज सैनिकों को जमीन पर सुलाया।

यद्यपि अंग्रेज अभी तक पराजित हो रहे थे। किन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। अंग्रेज का यही गुण ऐसा है। जिसने उसे संसार का वादशाह वना दिया है। वह तो कर्म करना जानता है। निराश होना उसने सीखा ही नहीं। उन्होंने अपनी इस हार से भी सवक लिया। पुन आक्रमण के लिये वे फिर वल संचय करने लगे। सेनापति लड़ाई का नक्शा तैयार कर रहे थे और सेना स्वास्थ्य प्राप्त कर रही थी। उधर सिख सेना की ओर देखिये। सैनिक ही टूटी हुई दीवारों को संभाल रहे थे और वही लाशों को उठाकर अलग कर रहे थे। न तो उनके लिये कोई रसद की चिन्ता करने वाला था और न उन्हे लड़ाई के दांव वताने वाला। उनके गैर सिख सेनापति कैम्पों में पड़े मौज कर रहे थे।

पुन. युद्ध छिड़ा। सिख सेना ने वांये और मध्य भाग को मजवूत वनाने मे दाहिने भाग को फिर कमजोर रहने दिया। डिक सेना ने फिर उसी भाग पर हमला किया गिलवर्ट और हैरी स्मिथ भी तैयार थे। कुछ सेनाये अंग्रेजों ने वाम भाग की ओर भी अड़ा दीं। इस समय सिख सेना [ने लालसिंह से अपनी घुड़सवार सेना को अंग्रेजों पर अक्रमण करने को कहा किन्तु वह वहाना कर गया। अंग्रेजी तोपों ने मध्य भाग पर और सेना ने दक्षिण भाग पर गोले गोलियाँ वरसाना आरम्भ कर दिया और तीनों सेनाओं ने वड़े वेग से दक्षिण पार्श्व से हमला कर दिया। सिखों ने वहुत संभाला। वे अड़ गये। किन्तु अड़कर होना तो यही था कि वे खतम होते उनकी लोथों पर होकर अंग्रेजी सेना उनके वीच मे घुस गई। तोपखाना हाथ से निकल गया। सरदार श्यामसिंह ने अपने घोड़े को चारों ओर दौड़ाकर नेतृत्व करना शुरू किया। वे तो प्रतिज्ञा करके आये थे। युद्ध से पीछे पैर न रक्खूंगा। युद्ध में हीं समाप्त हो गये। सिखों ने गोली वारूद के अभाव मे तलवार और सगीनों से काम लेना शुरू किया। इस समय तक उनकी वनाई हुई दीवारें भी ध्वंश हो गई थीं। चारों ओर से अंग्रेजी सेना ने सिख सेना को वीच मे घेर लिया। नमकहराम तेजसिंह अपने एक दल के साथ भाग गया और उसने सतलज का पुल भी तुड़वा दिया। जिससे वचे हुये लोग पार न आ सके। अव इसके सिवा सिखों के पास क्या चारा था कि जन्म भूमि के हित डट कर लड़ें और लड़ते-लड़ते ही प्राणों को उत्सर्ग करदे। किन्तु लड़ने के साधन भी तो उनके नष्ट किये जा चुके थे। वे आपस मे ही विना सेना पति के एक दूसरे का आश्वासन देने लगे। सिंहिनियों के सपूतो अमृत छके की लाज रखना। गुरु के सिहो गीदड़ों से घवरा न जाना। प्रत्येक सिख को हथियार चलाने के साथ ही एक पैतरा वदलना पड़ता था। जिससे वे घिराव से निकल कर सामने आ जाय। सामने और वॉये दॉये वे हथियार चलाते थे और उलटे कदमों पीछे को हटते थे। उनके इस प्रकार के करते-करते सतलज आगई। पुल नदारद था। फिर भी वे सतलज में भी उलटे ही वढ़े, अंग्रेज

सवारों ने उन पर हमला किया। सतलज उनके खून से रंग गई। उसके इस तरह से लड़ने पर अंग्रेजों का दिल विस्मय से भर गया। इस तरह से जीवन से निराश होने पर भी उनमे से एक भी सिख ने अंग्रेजों के सामने हथियार नहीं डाला।

इस भीषण युद्ध मे उनके आठ हजार आदमी खेत रहे और अंग्रेजों के दो हजार तिरासी। यह भारी क्षति उनकी सोरॉव से सतलज पार करते समय तक हुई। अंग्रेजों की विजय हुई। किन्तु उनके दिल जानते थे, यह विजय उनकी बहादुरी के साथ मिली या ब्राह्मण तेजसिंह की गद्दारी की बदौलत।

सुबराओं का युद्ध सिख साम्राज्य के लिये वैसा ही साबित हुआ जैसा मराठों के लिये पानीपत। पानीपत के बाद मराठों का सूर्य अस्ताचल की ओर ढल गया था और सोराव के बाद सिख साम्राज्य को हड़पना अंग्रेजों को सहज दिखाई देने लगा।

सुबरांओं युद्ध के बाद विश्वासघाती लोगों ने समझा चलो अच्छा हुआ। पन्द्रह सोलह हजार सिख इन लड़ाइयों मे मारे गये। अब उनकी शक्ति कम हो गई। हम आनन्द से अपनी इच्छाओं के अनुसार राज्य का सचालन करेंगे किन्तु उनकी आखे खुल गई जब उन्होंने १८४६ ई० की २० फर्वरी को अंग्रेजों की इस घोषणा को सुना —"अंग्रेजों का विचार खालसा राज्य को अपने राज्य मे मिलाने का तो नहीं है किन्तु सिखों ने जो सन्धि तोडी है उसकी सजा तो देनी ही होगी। युद्ध के खर्चा को वसूल किया ही जायगा। किन्तु भविष्य मे कोई शान्ति भग का कार्य न हो, इसलिये राज्य का प्रबधक मडल भी अंग्रेज सरकार के द्वारा स्थित किया जायगा। यद्यपि अपराध तो लाहौर दरबार का संगीन है किन्तु लाट साहब लाहौर दरबार को और उसके सरदारो को अपने सुधार का मौका देना चाहते है। यदि फिर भी कोई उत्पात होगा तो अंग्रेज उस पर नए सिरे से विचार कर सकेंगे।

सिख साम्राज्य छिन्न भिन्न

इस घोषणा के साथ ही अंग्रेज सेनायें सतलज के इस पार आ गई। लालसिंह, गुलाबसिंह और तेजसिंह सबकी अब आखे खुलीं। गुलाबसिह महाराज को लेकर लाट साहब के पास पहुँचे। उन्होने अपनी वफादारी की बात भी कही कि यदि मैं लड़ाई मे शामिल हो जाता तो अस्सी हजार सिख स्थिति ही दूसरी कर देते किन्तु लाट साहब अपने निश्चय से न डिगे।

इस समय तक अंग्रेजी सेना कसूर तक आ पहुँची थी। दूसरे दिन अंग्रेजों की कुछ चुनी हुई सेनाएं लार्ड हार्डिग और उसके प्रमुख सेनापतियो के साथ लाहौर जा पहुँचीं।

महाराज दिलीप का पुन राज्याभिषेक किया गया। इसके माने ये थे कि अब यह राज्य अंग्रेजों का दिया हुआ है। पजाब अब कल का पजाब नहीं रहा है।

इसे लार्ड हार्डिग की उदरता नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने पजाब को एकदम जब्त नहीं किया अभी सिख कतई निर्वीर्य नहीं हुए थे। उनकी बीस हजार सेना अब भी अमृतसर की ओर पड़ी बाट देख रही थी कि कोई उसका नेतृत्व करे किन्तु निज के स्वार्थों ने उनके सेनापतियों को साप की तरह सूंघ लिया था।

लाट साहब ने घोषित किया—'लाहौर दरबार अब २० हजार पैदल और १२ हजार सवार से अधिक सेना न रख सकेगा। बाकी सेना को वेतन चुकाकर अलग कर देना होगा। ३० तोप लाहौर दरबार के पास रहेगी। व्यास और सतलज के दक्षिण के सम्पूर्ण देश अब अंग्रेजों के हाथ रहेंगे। युद्ध डेढ़ करोड़ रुपया तत्काल न देने के कारण काश्मीर और हजारा सहित व्यास और सिंध के बीच के प्रदेश

अंग्रेजों के प्रबंध मे रहेगे। शांति बनाए रखने के लिये लाहौर में एक साल तक अंग्रेज सेना रहेगी।"
इस सधि का नाम लुधियाना सधि था। चूंकि इसका मस्विदा लुधियाना गाव मे पूर्व ही बना लिया गया था।
इसके अलावा लाहौर दरबार के आधीन सब राज्यों से सहायता प्राप्त करके लाख रुपया और दिये क्योंकि
उपरोक्त प्रदेश की कीमत अंग्रेजों ने एक करोड़ की लगाई थी।

जिस राज्य को महाराजा रणजीतसिंह ने इतनी ऊची इज्जत पर पहुंचाया था, उसे देश-द्रोहियों
ने अंग्रेजों का रक्षित राज्य तो बना दिया किन्तु संतोष इतने पर भी नहीं हुआ। बाद मे यह भी प्रबंध
कर लिया गया जब तक महाराज बालिग हों, अंग्रेजी सेना लाहौर मे रहे और कुछ ऐसा भी प्रबंध किया
जाय जिससे लाटसाहब के द्वारा किये गये प्रबंध को कोई भंग करने की हिम्मत न कर सके।

तारीख ११ मार्च की सन्धि—मे कुछ और हेर-फेर हुआ क्योंकि इस समय तक उन्होंने लाहौर
दरबार की प्रत्येक बात को जान लिया था। इसके अनुसार लालसिंह को प्रधान मंत्री बनाया गया और
गुलाबसिंह को काश्मीर का सूबा ७५ लाख पर बेच कर उसे वहां का स्वतन्त्र राजा बना दिया। तेजसिंह
को राजा का खिताब दिया। इस प्रकार प्रकार प्रत्येक विश्वासघाती को अंग्रेजों ने उनकी देश द्रोहिता का
पुरुस्कार दे दिया।

लालसिंह अब निश्चिन्त था। खालसा की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। लाहौर मे एक अंग्रेजी
फौज उनकी इच्छा के अनुसार रहती ही थी। अब वह निडर होकर विलास मे फंस गया। मदिरा और
मृगनयनी उसके जीवन के अग हो गये। शहर के धनियों से रुपया वसूल करना और रास रंग मे
उड़ाना उसकी आदत बन गये। उसने समझ लिया था कि बस अब तक जो हो चुका है वह हो गया।
जब अंग्रेजों ने उसे प्रधान मन्त्री बनाया है तब अब कौन उसे इस पद से हटा सकता है।

काश्मीर के राजा गुलाबसिंह के खिलाफ इमामुद्दीन नाम के एक मुसलसान ने बहुत से आदमी
इकट्ठे करके बगावत खड़ी कर दी। बगावत तो दबा दी गई किन्तु अंग्रेजों ने बगावत खड़ी करने का
दोष थोपा लालसिंह के सिर और उसे पंजाब के प्रधान मन्त्रित्व की गद्दी से हटाकर दो हजार मासिक की
पेन्शन देकर आगरा भेज दिया। जहां वह अपने अन्तिम दिनों को गुजारता हुआ पिछले कर्मों पर आंसू
बहाता रहा।

लालसिंह को देश निकाला देने के बाद सन् १८४६ ई० की १६ वीं दिसम्बर को गवर्नर जनरल
लार्ड हार्डिङ्ग ने भैरवाल नामक स्थान पर सिख दरबार से एक और सन्धि की जिसके अनुसार अंग्रेजी
रेजीडेन्ट की मातहती मे एक कौंसिल बनाना तय हुआ और उस रेजीडेन्ट को एडमिन्स्टेटर के कुल अधि-
कार दे दिये गये। जो सिख सेना में कमी बेशी करवा सकता है। वक्त पर किसी भी किले को अंग्रेजी सेना
के लिये खाली करवा सकता है। चाहे जिसे हटा सकता है और चाहे जिसे रख सकता है किन्तु यह प्रबंध
महाराज के बालिग होने (४ दिसम्बर १८५४) तक के लिये किया गया।

इस प्रबन्ध के अनुसार जो कौंसिल बनी, उसमे राजा तेजसिंह, सरदार शेरसिंह अटारीवाला,
दीवान दीनानाथ, फकीर नूरुद्दीन भाई निधानसिंह, अतरसिंह और शमशेरसिंह को सदस्य नियुक्त किया
गया। और सर हेनरी लारेंस रेजीडेन्ट मुकर्रिर हुए।

महारानी जिन्दा को शासन कार्य से कतई अलग कर दिया गया और उन्हें और उन की सहे-

१. इतिहास तिमिर नाशक द्वितीय भाग।

लियों के खर्च के लिये डेढ़ लाख रुपया सालाना की पेन्शन कर दी गई। .

हैनरी लारेंस ने रेजीडेन्ट होते ही अंग्रेजी कायदे कानूनों का प्रचलन शुरू कर दिया। अदालतें कायम की गईं। शिक्षा, स्वास्थ्य के महकमे स्थापित किये। जिससे एक ओर प्रजा का असंतोष कम हो।

इसके बाद लाट साहब ने समय-समय पर कौंसिल के नाम पत्र भेज कर बता दिया कि यह खयाल न किया जाय कि सिख राज स्वतन्त्र है और न कौंसिल के लोग ही ऐसा खयाल करें कि वे रेजीडेन्ट के मातहत नहीं हैं।

महारानी जिन्दा राज काज से अलग कर दी गई थीं फिर भी सिख सरदार तो उन्हें अपना मालिक ही समझते थे। सैकड़ों आदमी उनके यहा नित्य प्रति मिलने जुलने जाते। उन्हें सान्त्वना देते।

महारानी जिन्दा को निर्वासन

महारानी अपनी धार्मिक श्रद्धा के कारण नित्य प्रति सैकड़ों भूखे नंगों को दान पुण्य भी करतीं। रेजीडेन्ट सर हैनरी लारेंस ने इन वातों का यही अर्थ लिया कि महारानी को एक इस आशय का पत्र लिखा कि—"भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार आप राज-काज के मामलों मे दखल देने से कतई वंचित कर दी गई हैं। आप अब अपने अन्तिम दिनों को डेढ़ लाख वार्षिक पेन्शन के आनन्द से व्यतीत करें। दान पुण्य के भी कोई खास दिन मुकर्रिर कर लें। कभी-कभी चार छ सरदारों से मुलाकात कर लिया करें। सो भी पर्दे के आड़ से। नैपाल और जोधपुर आदि की महारानी जिस प्रकार पर्दे में रहती हैं उसी रिवाज को आप भी अपनायें।"

अब को महारानी ने भी इस पत्र का उत्तर दिया था जिसका सार यह है कि 'मैं अपने सरदारों से मिलती हूँ तो कोई भी वात उनसे ऐसी नहीं होती जो अंग्रेजों की मित्रता में शका उत्पन्न करने वाली हो, दान पुण्य मे भी मैं वही करती हू जो मेरा धर्म इजाजत देता है। मैं तो अब तक यही समझती थी कि महाराज की माता होने के कारण मैं अपने राज्य की मालिक हूँ। पर्दे मे मैं नहीं रह सकती क्योंकि मैंने राज-काज मे भाग लिया है और न हमारे यहाँ उसका कोई रिवाज है।

सर हैनरी लारेन्स उनकी प्रत्येक गति विधि पर नजर रखने लगा। एक समय मुल्तान से उनकी सखी सफेद गन्ने लेकर आई थी। हैनरी ने इसका यह अर्थ लगाया। महारानी मूलराज के साथ कोई षडयंत्र कर रही हैं।

७ वीं अगस्त सन् १८४७ ई० को सर हेनरी ने एक दरवार किया। उस दिन तेजसिंह को राजा की उपाधि देनी थी। महाराज दिलीपसिंह से टीका करने को कहा गया। उन्होंने इनकार कर दिया। इससे हेनरी ने यही समझा कि महारानी जिन्दा ने ही महाराज को वहकाया है।

अत मे अंग्रेज सरकार ने महारानी जिन्दा के सम्बन्ध मे यह आखरी निश्चय कर लिया कि उन्हें लाहौर से हटा दिया जाय और महाराज को उनके प्रभाव से मुक्त कर लिया जाय।

महारानी जिन्दा लाहौर से गोरी सेना के पहरे मे निकाल दी गईं और उन्हें शेखपूरा के किले मे नजरवन्द कर दिया गया। पेन्शन भी केवल ४८ हजार सालाना की रहने दी। जिस समय महारानी को महलों से निकाला जा रहा था। उनके बालक बच्चे को मिलने भी नहीं दिया गया, किन्तु उन्हें शालामार बाग में भेज दिया गया।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि मुल्तान मे मूलराज (सावनमल का बेटा) दीवान था उसने सिखों के गृह कलह के समय अपने को स्वतन्त्र शासक होने की भी कोशिश की थी किन्तु फिर वह दब गया था। तेजसिंह ने सिख युद्ध के बाद मन्त्री होते ही उस पर चढ़ाई कर दी किन्तु

मुल्तान-विद्रोह हनरी लारेन्स ने मध्यस्त वन कर सममौता करा दिया था। जिसके अनुसार उसके दीवानी फौजदारी के कुछ अधिकार और भंग का इलाका तो हाथ ने निकल गये किन्तु खिराज की रकम वढ़ गई। अत उसने लाहौर आकर अपना स्ती का पेश कर दिया और पिछली सेवाओं के वदले मे कुछ जागीर मागी। हेनरी लारेन्स ने उसे यों ही समभा-बुमा कर अटका रक्खा।

किन्तु थोड़े ही दिन वाद पजाव का रेजीडेन्ट और भारत का लार्ड दोनों ही वदल गये और मि० फेडरिक करी तो पजाव के रेजीडेन्ट हुए और डलहौजी भारत के गवर्नर जनरल होकर आये।

उधर उस समय इगलेंड मे इस प्रकार का आन्दोलन हो रहा था कि पजाव को अवतक पूर्णत अंग्रेजी राज्य मे क्यों नहीं मिलाया गया है। डलहोजो इसी नीति को लेकर आया था।

मूलराज को जागीर देने की वात तो अलग रही। करी साहव ने उससे पिछला दस वर्ष का हिसाव और चाहा। मूलराज अन्शत. हिसाव देने को राजी हो गया। सरदार काहनसिंह को करी ने मुल्तान का सूवेदार वनाकर भेज दिया। उसकी मदद के लिये एक पलटन ६ तोपे और मि० वेंन्ज अगन्यू और अन्डरसन को भी भेजा।

मूलराज ने इनके मुल्तान पहुँचने पर खूव स्वागत सत्कार किया। हिसाव के कागज पत्र भी दिखाये। कागज पत्रों को देखते समय दोनों ओर से कुछ कहा-सुनी भी हुई किन्तु मामला शान्त हो गया। तीसरे दिन जव ये दोनों साहव किले से अपने कैम्प को आ रहे थे तो मूलराज इन्हे विदा करने भी आया। किन्तु वाहर निकलते ही वारी २ से दोनों अग्रेजों पर किन्हीं लोगों ने आक्रमण किया। यह सभव भी था क्योंकि मुल्तान के जिले मे अंग्रेजों ने गोरखा फौज घुमा दी थी। सिखों का यह घोर अपमान था पहले तो मूलराज का इरादा शायद ढिल मिल रहा हो किन्तु अव उसे विद्रोहियों मे शामिल हो जाना पडा क्योंकि विद्रोहियों ने उसके साले को भी इस अपराध में मारडाला कि वह मूलराज को अंग्रेजों की शरण मे लेजाने के लिये तैयार कर रहा था।

इस प्रकार मुल्तान मे विद्रोह की चिन्गारी भभक उठी। अन्डरसन और अगन्यू के साथ की फौज के जो सिख सिपाही थे वे भी विद्रोहियों में मिल गये। मूलराज के नेता वनते ही उनमे और भी उत्साह वढ़ गया। उधर वन्नू से मेजर एडवर्ड वारह सौ पैदल ३५० घुड़सवार और दो तोपे लेकर अडरसन वगैरह भी मदद के लिये दौडे किन्तु उन के आने से पहले इन अग्रेजों का विद्रोही खात्मा कर चुके थे।

मेजर एडवर्ड ने मुलतान की ओर रवाना होने से पहले ही लाहौर मे रेजिडेंट करी को भी इस वात की सूचना दे दी थी कि मुलतान मे विद्रोह हो रहा है मैं उधर जाता हूं। आप भी सेना भेजें। जव उस का यह पत्र करी के पास पहुचा तो उसे कौंसिल के पेश किया गया। कौंसिल के सिख मेम्वरों ने कहा कि अग्रेजी सेना की टुकड़ी भेज दे। सिख सेना के भेजने मे खतरा है कि सभवतया वह विद्रोहियों मे मिल जाय। अभी तक सिख सुवराओं के युद्ध को भूले नहीं है। करी ने अंग्रेजी सेना नहीं भेजी और गवर्नर जनरल को भी उसने मुलतान में अंग्रेजी सेना न भेजने का ही परामर्श दिया। इसमे करी का स्पष्ट भाव विद्रोह को और भी भयंकर रुप देना था। वह चाहता था कि जितना यह अधिक वढ़ेगा उतना ही हम को सिख राज्य को अपने तहत मे ले आना सरल हो जायगा। एक अग्रेज लेखक ने "हिस्ट्री आफ इन्डिया" की प्रथम जिल्द के पृष्ठ १२५ पर लार्ड डलहोजी और करी फैड्रिक की इस भावना को निहायत गन्दी और कलंकित वताया है।

एडवर्ड और डेरागाजीखां का अंग्रेज सेनानायक कोर्तलान्त दोनों विद्रोह को दवाने की कोशिश

करते रहे और भावलपुर के नवाब से रुपये और सेना दोनों प्रकार की सहायता ली। विद्रोहियों के हाथ लगे छोटे २ किलों पर भी उन्होंने अधिकार कर लिया। कनेरी के घाट पर विद्रोहियों से उनकी एक कठिन लडाई भी हुई।

अव तक एडवर्ड ने १८ तोपे और २२ हजार आदमी इकटठे कर लिये थे। जिन में ८ तोपे तो सिखों से ही प्राप्त की थीं।

मुलतान के पास ही मूलराज और एडवर्ड की सेनाओ मे मुकाविला हुआ। उस समय मूलराज के पास ११ हजार सेना और १० तोपे' थीं। फिर भी इतनी वहादुरी से लड़ा कि अंग्रेज सेनाये' भागने लगीं किन्तु इसी समय उनके हाथी के ऊपर गोला गिरने से वह नीचे गिर पड़ा और उसकी फौज उसे मरा जानकर भाग गई। किन्तु वह घोड़े पर सवार हुआ और २५० आदमियो के संरक्षण मे मुलतान के किले मे घुस गया।

यह युद्ध सन् १८४८ की पहली जुलाई को हुआ था। अव मुलतान को जीतना एडवर्ड के वस की वात न थी पर वह इधर-उधर घूम कर विद्रोह को दवाने की चेष्टा करता रहा।

प्राय मुलतान का उपद्रव ठंडा हो रहा था किन्तु १४ जून सन् १८४८ ई० को अग्रेजों ने महारानी जिन्दा को शेखूपुरा से भी वनारस भेज दिया और उन्हे कहा गया कि आप पंजाव मे रहकर शाति भग करने के लिये सिखों को भड़काती है और वारवार मना करने पर भी अग्रेज विरोधी प्रवृतियों को उभाडती है। उनके वकील गंगाराम को मुलतान विद्रोह मे भाग लेने के कारण फासी भी दे दी गई।

महारानी को वनारस पहुचा दिया गया और उनकी पेन्शन भी केवल एक हजार रुपये कर दी गई। इससे सिख सैनिकों मे वडी उत्तेजना फैली। शेरसिंह ने जो कि हजारा के हाकिम सरदार चतुरसिंह के लडके और लाहौर कौंसिल के मेम्बर थे रेजीडैंट केरी को लिखा कि सिखों मे महारानी जी के निर्वासन से वड़ा असतोप फैला है। किन्तु अग्रेजी रेजिडैंट और लार्ड डलहोजी ने इन वातों पर कोई ध्यान नहीं दिया।

हजारा का सिख परिवार अग्रेजों का हमदरद ही था। मुलतान के विद्रोह को दवाने के लिये शेरसिंह सेना लेकर मेजर एडवर्ड के पास पहुच गया। दूसरा भाई गुलावसिंह भी नेकनीयती के साथ कौंसिल मे अग्रेज पक्ष को ही रखता था। अपनी अंग्रेज भक्ति के आवेश में इन दोनों भाइयों ने महारानी जिंदा के पन्जाव से वाहर भेजने के कागजों पर भी मुहर कर दी थी।

हजारा विद्रोह

शेरसिंह की वहिन की सगाई महाराज दिलीप सिंह के साथ हो गई थी। इससे यह सोचते थे कि महाराज के स्याने होने तक और उनकी भलाई के लिये हमे अग्रेजों की खुशामद भी करनी पडे तो तव भी हम कोई बुरा काम नहीं करेंगे। किन्तु अग्रेजों ने इस परिवार के साथ भी मक्कारी की। कोई अच्छा सलूक नहीं किया।

सरदार चतुरसिंह वहुत बुड्ढे हो चले थे और वे चाहते थे कि उनकी पुत्री का विवाह उनके ही सामने हो जावे। उन्होंने अपने पुत्र शेरसिंह को लिखा कि रेजीडेन्ट साहब से पूछो वे इस शुभ काम के लिये कौन-सा समय उपयुक्त समझते हैं। शेरसिंह ने एडवर्ड के जरिये रेजीडेन्ट को पत्र भिजवाया। साहव ने भी अपनी सिफारिस लिख दी। साथ ही शेरसिंह की अंग्रेजभक्ति की भी प्रशसा लिखी। किन्तु रेजीडेन्ट मि० करी ने ऐसा रूखा जवाब दिया जिससे यह स्पष्ट होता था कि विवाह करने मे महाराज

और सरदार चतुरसिंह स्वतंत्र नहीं हैं जब भी अंग्रेज सरकार उचित समझेगी तब विवाह कर दिया जायगा। इस प्रकार के जवाब से सरदार चतुरसिंह और शेरसिंह दोनों ही के दिल को चोट पहुँची।

इसके भी अलावा उनके इलाके मे पठानों ने बगावत खड़ी कर दी और यह बगावत खडी कराई एवट नाम के अंग्रेजी ने जिसे कि रेजीडेन्ट ने प्रवन्ध मे सहायता देने के लिये भेजा था। यह अंग्रेज बड़ा वहमी था। रेजीडेन्ट करी भी खूब जानता था उसने इसकी गवर्नर जनरल को एक दो बार शिकायत भी की थी किन्तु मजा यह है कि जब सरदार चतुरसिंह ने उसकी शिकायत की तो मि० करी ने कोई ध्यान नहीं दिया अपितु उन्हीं बातों को सही माना जो एवट के पृष्ठ पोषक निकलसन ने पेश की।

पठान-विद्रोह मे कनोरा नाम के एक विलायती गोलन्दाज की मृत्यु हो गई थी। कनोरा ने सरदार चतुरसिंह की आज्ञा का उलघन करके तोप पर अपना कब्जा कर लिया था और दो सिखों को भी जान से मार डाला। एक सिख ने कनोरा के प्राण लेकर अपने दल की रक्षा की थी। यही सरदार चतुरसिंह का अपराध था। कैरी ने पहले तो चतुरसिंह जी को निर्दोष ही माना किन्तु निकलसन की सलाह पर उनकी जागीर भी जब्त कर ली। बुड्ढा सरदार इस अपमान को बर्दास्त न कर सका उसका खून उबल पड़ा। और वह स्वयं रेजीडेन्ट से बात करने के लिये लाहौर की ओर चल पड़ा। एवट ने इसे बगावत का नाम देकर उसका रास्ता रोकने की कोशिश की और उसे तग किया। एक दो छोटी-मोटी झड़पे भी हुई और सरदार चतुरसिंह हजारे से लाहौर की ओर को निकल पडे। सिख समुदाय महाराजी जिन्दा के निर्वासन से क्रुद्ध हो ही रहा था। दल के दल सिख सरदार चतुरसिंह के पास इकट्ठे होने लगे। यही हजारा विद्रोह की भूमिका है।

मूलराज ने शेरसिंह को मुल्तान सूबे मे पहुँचते ही समझाने की चेष्टा की किन्तु शेरसिह ने मूलराज के एलचियों की बात सुनना तो दूर उनका अपमान तक किया। वह बराबर अंग्रेजो की ओर से लड़ता रहा। और उस समय तक लडा जब तक कि उसकी जागीर न छीन ली गई और उसकी बहिन की शादी का मामला खटाई मे न पड़ गया।

अपनी जागीर छिन जाने के समाचार ने शेरसिंह के हृदय को बहुत चोट पहुँचाई और यह भी बागियों मे शामिल हो गया।

शेरसिंह विद्रोहियों के दल में शामिल हो गया उसने मूलराज को पत्र लिखा कि मैं आपके साथ मिलकर अंग्रेजों से लड़ने को तैयार हूँ किन्तु मूलराज को विश्वास नहीं हुआ क्योंकि पहले शेरसिंह उसके प्रस्ताव को ठुकरा चुका था। शेरसिंह और मूलराज मिले भी किन्तु फिर सरदार शेरसिंह के भी मन मे यही जंचा कि अपने पिता के पास चलना उचित होगा। उसके साथ चार हजार सिख हो लिये। अब अंग्रेजी सेना की हिम्मत सहज ही मुल्तान पर हमला करने की न रही। इतने समय मे मूलराज ने और भी सेना बढ़ा ली उसने काबुल के दोस्तमुहम्मद से भी कुछ सहायता मंगा ली।

कहाँ तो विद्रोह के आरम्भिक दिनों में मि० करी अंग्रेजी सेनाये मुल्तान मे भेजना नहीं चाहते वहाँ अब उन्होंने बम्बई, कलकत्ता सब ओर से फौजे बुलाना शुरू कर दिया। वास्तव मे अब उनकी इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। सिख साम्राज्य को कतई तड़पने लायक स्थिति बनाने का उन्हे मौका मिल चुका था।

बहादुर मूलराज अंग्रेजों से ४ नवम्बर (सन् १८४८) से लगाकर ३० दिसम्बर (सन् १८४८) तक लगातार लड़ा। यों तो उसे लड़ते हुए पूरा साल हो चुका था।

अंग्रेजों की ओर से तमाम सिख जागीरदार वहावलपुर के नवाव और पंजाव के कई रईसों के दल लड़ रहे थे किन्तु मूलराज सब से टक्कर ले रहा था उसकी सेना और किले पर गोले वरसाये गये संगीनों से हमले किये गये किन्तु उसने हरवार अंग्रेजी सेना के दांत खट्टे किये।

२३ दिसम्बर को बम्बई से अंग्रेजों की नयी सेनायें भी आ गईं। २७ दिसम्बर को १५६४८ पैदल ३०१२ सवार और ६१ तोपों से अंग्रेजी सेना ने मूलराज के सैनिकों पर हमला किया। तीन दिन तक बराबर धुआँधार लडाई हुई। किले की दीवारें टूट जाने पर जब अंग्रेजो सेनायें किले में घुसीं तो 'वाहि गुरुजी की फतह' के साथ दो हजार सिखो ने अपने प्राण देकर अंग्रेजों के हौसले ढीले कर दिये।

ता० ३० दिसम्बर को भाग्य ने मूलराज के साथ दगा की। उसके बारूद खाने में जहाँ पचास मन बारूद भरी थी। गोला गिरा जिससे पाँच सौ आदमी एक दम लापता होगये और भारी क्षति हुई।

सन् १८४६ की २७ वीं जनवरी तक इस हालत में भी मूलराज ने लडाई जारी रक्खी। उसकी सेना ने कदम-कदम पर अपना खून बहाकर अंग्रेजी सेना को आगे बढ़ने दिया। आखिर मूलराज हजारों दुश्मनों के बीच में घिर गया और गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ लोगों ने लिखा है कि मूलराज ने अपनी स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा की मेजर एडवर्ड से गारंटी मिलने पर खुद ही आत्म-समर्पण कर दिया था।

कुछ भी हो मूलराज ने अपने अंतिम जीवन को सार्थक कर दिया। अंग्रेजी कोर्ट ने उसे फांसी की सजा दी और फिर बदल कर उसे काले पानी में परिवर्तित कर दिया।

मूलराज जिस समय अपनी जन्मभूमि से दूर जहाज में बैठ कर काले पानी को जा रहा था। बीच ही में इस शरीर को छोड गया।

मुलतान से चलकर सरदार शेरसिंह अपने पिता से मिलने को उत्तर की ओर गुजरात पहुँचने के लिये बढ रहे थे कि अंग्रेजी सेना ने उनका पीछा करना शुरू कर दिया।

सन् १८४८ ई० की २२वीं नवम्बर को इस दूसरे सिख युद्ध का श्रीगणेश हुआ। रामनगर के पास कोलिन, केम्वल और क्योरटन नाम के अंग्रेजों की अध्यक्षता में अंग्रेजी सेना ने सिखों पर हमला किया।

रामनगर युद्ध

सिख यहाँ पूरी तैयारी से थे। अंग्रेजी तोपों ने गोले वर्षाये किन्तु सिख तोपों के ऊंचे स्थान पर लगे रहने के कारण उनका मुकाबिला न कर सकीं। सिख सिपाहियों ने भी वह जौहर दिखाया कि अंग्रेजी सेना को विवश होकर भागना पड़ा। इस प्रकार रामनगर में सिखों को एक छोटी सी विजय हुई और सिखों के हाथ अंग्रेजों को दो तोपें और कुछ रसद के छकडे हाथ लगे।

रामनगर के मैदान से जब अंग्रेजी सेना भाग रही थी तो सिखोंने उसका पीछा किया और लडने के लिये ललकारा। इस ललकार को सुनकर जो सैनिक ठहरे वे सिखो द्वारा तलवार के घाट उतार दिये। उनमें विलियम हैवल और उसके कई साथी अंग्रेज भी काम आये। कुल मिलाकर २३० सैनिक और अफसर अंग्रेजों के इस लड़ाई में मारे गये। कुछ अंग्रेज कैद भी हुये जिन्हें सरदार शेरसिंह ने अपनी उदारतावश छोड़ दिया।

रामनगर युद्ध के बाद अंग्रेज सेनापति गफ एक सप्ताह तक चुप रहे। इस बीच में शक्ति बढाकर उन्होंने रामनगर से ६६ मील की दूरी पर छावनी लगाई। दूसरी दिसम्बर को सरदार शेरसिंह पर आक्रमण करने को मेजर थैकवेल सात हजार सैनिक लेकर बाईं ओर से बढे और

सादुल्लापुर युद्ध

गफ साहब खुद सामने से किन्तु सरदार शेरसिंह पहले ही सचेत होगये थे। इसलिये उन्होंने थैकवेल की ओर कूच कर दिया। जिससे वे अकेले थैकवेल को हराकर फिर गफ की ओर झपटें।

सादुल्लापुर के पास लड़ाई हुई। वैसे थैकवेल ने भागने की भी चेष्टा की। किन्तु सिख सेना जब छाती पर ही आगई तो वे एक ईख के खेत में छिप कर लड़ाई का सचालन करते रहे। पूरे दिन भर लड़ाई हुई। इस प्रकार थैकवेल की सेना को हानि पहुँचाकर सरदार शेरसिंह जेहलम के दक्षिण की ओर बढ़ गये। यद्यपि थैकवेल को सादुल्लापुर के युद्ध में से प्राण बचाकर भागना पड़ा था। किन्तु उन्होंने विजय अपनी ही घोषित की लेकिन सही बात मि० मार्शमेन के इस लेख से मालूम हो जाती है। "इस युद्ध में फायदा शेरसिंह को ही रहा। क्योंकि वह अंग्रेजों के इरादों पर पानी फेर कर सुभीते के स्थान पर पहुँच गया।"

एक महीने तक सेनापति गफ साहब का लड़ाई से दूर रहना भी इसी बात को साबित करता है कि विजय थैकवेल की नहीं हुई और इन दोनों हारों का उनके दिल पर असर पड़ा। १२ वीं जनवरी को

चेलियाँवाला युद्ध

लार्ड गफ ने डिंघा नामक स्थान पर एक सुदृढ़ छावनी तैयार कराई। वह शेरसिंह जी की सेना का कैम्प भी वहाँ से कुल ८ मील की दूरी पर था। सिख-छावनी के पीछे जेहलम की ओर आगे एक छोटा-सा जंगल था। वहाँ पर दांये बांये भी सिखों ने अच्छा प्रबंध कर लिया था।

१३ जनवरी को कूच करके अंग्रेजी सेना ने १४ जनवरी को बाईं ओर से हमला किया। कौलिन केम्बल आज के युद्ध के सचालक थे। उन्होंने सेना के दो भाग कर रक्खे थे। दो घटे की गोलेबारी से कोई फायदा न निकलते देखकर अंग्रेज सेनापति ने सेना को जोर का हमला करने की आज्ञा दी। इस हमले में सैकड़ों अंग्रेजी सिपाही जमीन पर बिछ गये। किन्तु कुछ आदमी सिखों की तोपों तक पहुँच गये। उन्होंने कई तोपों के मुँह भी बन्द कर दिये। किन्तु सिख क्या कम थे। उन्होंने तोपों के मुँह बन्द करने वालों को काट कर टुकड़े कर दिया और मुँह खोल दिये। कैम्बल पर भी एक सिख सैनिक ने हमला किया और उसे जख्मी कर दिया।

एक हिस्से में जिधर केम्बल साहब थे। दूसरे हिस्से में मि० पैनीकुइक पाँच सौ आदमियों के साथ मारे गये और अंग्रेजी झंडा सिखों के हाथ आया। मध्य भाग में गिलबर्ट पर सिखों ने साघातिक हमला किया। किन्तु दूसरे दल के आजाने से वे घिर गये और ३ तोपें उनकी गिलबर्ट के हाथ लग गईं। किसी मोर्चे पर अंग्रेज जीत रहे तो किसी पर सिख। किन्तु रणभूमि लाशों से पट रही थी। खून से जमीन लाल हो रही है।

आज की लड़ाई में १६ अंग्रेज अफसर और उनके सौ सिपाही काम आये।

मेजर थैकवेल ने सिखों की घुड़सवार सेना के अध्यक्ष तारासिंह की सेना पर आक्रमण किया। यूनेट साहब इस आक्रमण का नेता बना। यूनेट ने सिख व्यूह को तोड़ना चाहा। किन्तु सिखों का मुकाबिला कम न था। यूनेट अपने उद्देश्य की पूर्ति में विफल रहा। उसके कितने ही सैनिक काम आये और वह खुद भी मारा गया। सिखों ने इस समय अद्वितीय पराक्रम दिखाया। शत्रु सेना का उन्होंने बदहवास कर दिया। थैकवेल साहब ने इस लड़ाई के हालात में खुद लिखा है। "मुझे मालूम हुआ कि मेरी सेना में एक भी मनुष्य जिन्दा नहीं।"

थैकवेल को इस प्रकार मुसीवत मे देखकर जनरल गफ ने लेफ्टीनेंट कर्नल पोप को घुडसवारों की ४ रजमेंट देकर दाहिनी ओर से सिख घुडसवारों के ऊपर हमला करने के लिये भेजा। अंग्रेजों के इन घुड़सवारों मे भाला धारी सैनिक ही अधिक थे। सिखों की पैदल पल्टन ने उन्हे रोका। ढालों पर वर्छों की चोट वचाते हुये उन्होंने नीचे से ही लड़कर अंग्रेजी घुड़सवारों के छक्के छुड़ा दिये। थैकवेल ने खुद लिखा है। "सिख पैदल अपनी जान पर खेल गये और उनमे से एक-एक ने तीन-तीन घुडसवारों के प्राण लिये। लेफ्टीनेट कर्नल पोप पर भी उन्होंने दृढता से हमला किया और उसके प्राण लेकर रहे। उन्मत्तता के साथ अंग्रेज और उनके सैनिकों को खतम किया। इस भयॅकर युद्ध मे अंग्रेजी सेना के पॉव उखड गये। मेजर क्रिस्टी जो अपनी तोप को सुरक्षित ले जाने की फिक्र मे थे। मारे गये। कुछ गोरे सैनिक अपने गोलन्दाज की मदद को दौडे। सिखो ने उन पर भूखे भेड़ियो की तरह हमला किया और थोडी ही देर मे जमीन पर सुला दिया।

गफ को भी उनके साथियो ने सलाह दी कि इस समय भागना ही ठीक होगा। किन्तु वे एक अच्छे दल के वीच मे खड़े हो गये और पास की तोपों से धुआधार गोले छुड़वा कर अपनी रक्षा कर ली। रात हो जाने के कारण सिख सेनाये जोभी उन्हे अंग्रेजो का सामान हाथ लगा लूट कर पीछे को लौट गई।

मजे की बात यह है कि इस चेलिआवाले युद्ध मे अंग्रेजों की भारी क्षति हुई। सेना भी उन्हीं की भागी। किन्तु फिर भी जनरल गफ ने विजय के नगाडे वजवाये और तोपों की सलामी ली। यह सब कुछ केवल जनता पर आतक जमाने के लिये उन्होने किया। वरना उनकी इस हार के समाचार से विलायत तक मे हैरानी छागई और गफ को लड़ाई से हटा कर दूसरे फौजी जनरल नेपियर को भारत भेजने तक की तैयारी होगई।

इस लड़ाई मे सरदार अतरसिंह ने वडी वीरता का प्रदर्शन किया था। चालाक व्राइन्ड को भी उन्होंने भली प्रकार छकाया था।

इस चेलिआवाले युद्ध के सम्वन्ध मे 'कलकत्ता रिव्यू' नामक अंग्रेजी अखवार ने लिखा था। "भारत मे अंग्रेजों ने जितने भी युद्ध किये हैं। उनमे चेलिया का युद्ध सवसे अधिक भयॅकर हुआ।" सिपाही युद्ध का इतिहास नामक पुस्तक मे के (Ke) साहव ने लिखा है। "चेलिआवाले मे वृटिश लोगों की तोपे सिखों ने छीन लीं। अंग्रेजी पताका को छीन कर अपने गौरव को वढ़ाया और अंग्रेजी फौज उनके सामने से बुरी तरह भाग निकली।" सरलेविल गिफिन ने भी चेलिआवाला युद्ध के लिये वहुत खतरनाक वताया है।

चेलिआवाला लडाई के वाद गफ ने २५ दिन तक लडाई वन्द रक्खी इस अवसर मे राजा चेतसिंह भी शेरसिंह के पास आगये। उन्होंने मेजर लारेन्स, लेफ्टीनेन्ट हर्वर्ट आदि कई अंग्रेज अफसरों को कैद कर लिया था। सरदार शेरसिंह ने इन्हें छोड़ दिया। इससे सिख सेना को नुकसान ही हुआ। क्योंकि इन्होंने वहुत सारी इधर की वाते अंग्रेजों को वतादी। इससे भी वडी गलती शेरसिंह ने यह की कि सन्धि वार्ता भी इन्हीं के द्वारा होने लगी। यह लोग वे रोक-टोक चाहे जव आजा सकते थे। इस प्रकार की छूट दे दी गई।

सन्धि के चक्कर मे पड़कर सरदार शेरसिंह ने पच्चीस दिन व्यर्थ ही गॅवाये और उधर इन दिनों मे अंग्रेजों ने अपनी सेना को और भी मजवूत कर लिया। उन्हे यह भी भेद लग चुका था कि सिख तोप का नाम सुनकर अवश्य कुछ भय मानते है वरना उन्हे हराना टेढ़ी खीर है।

जब 'सन्धि करना अभी मजूर नहीं' इस प्रकार का उत्तर आया तो सरदार शेरसिंह बड़े घबराये। किन्तु उन्होंने इस समय एक ही उपाय सोचा और वह यह कि किसी प्रकार हमे लाहौर पर कब्जा करना चाहिये। इसी खयाल से वे ६० तोपों और लगभग चार हजार सैनिकों के साथ लाहौर की ओर चल पड़े।

१८४६ ई० की ६ठी फरवरी को इधर अंग्रेजों ने रसूल पर धावा किया। क्योंकि उन्हे सिख फौजों के वहीं होने का पता था। रसूल एक सुदृढ़ स्थान था। उसे सहज ही खाली पाकर अंग्रेज खुश हुये किन्तु जब उन्हें पता चला कि विद्रोहियो का लाहौर पर कब्जा करने जा रहा है। तो बहुत घबराये, और तुरन्त पीछा किया।

चूंकि अग्रेजों को पता लग चुका था कि सिखों के पास बढ़िया तोपों की कमी है। अत. गुजरात के मैदान मे सिखों से मुठभेड़ होते ही उन्होंने तोपों का इस्तैमाल किया। सन् १८४६ ई० के १४ फरवरी का दिन बड़ा ही भयंकर थीं। जोकि इस युद्ध मे चतुरसिंह जी के पास ३६०० बढ़िया सैनिक थे, ५६ तोपे भी थी, इसके अलावा दोस्तमुहम्मद के १५०० पठान सैनिक भी थे। किन्तु चारों ओर से तोपों की गोलों की मार को ये आदमी कहाँ तक सहते।

गुजरात युद्ध

उधर मुल्तान का विद्रोह खतम होने के बाद तोपों और बारह हजार सैनिकों को लेकर एक दूसरे अफसर गफ की सहायता के लिये आ पहुँचे थे।

ता० २१ फरवरी तक लड़ाई चलती रही, किन्तु यही दिन था। जब कि अग्रेजो की लगभग ७०० तोपें सिखों पर आग उगल रहीं थीं। आखिर सिखों की तोपों ने जवाब दे दिया। क्योंकि अंग्रेजी तोपों के गोले बराबर उन्हे नष्ट कर रहे थे। अब सिखों के लिये एक ही मार्ग था, यातो वे भागे या तलवार खींच कर साथ ही आँख मूदकर, शत्रु पर टूट पड़े।

'सत श्री अकाल' और 'वाहि गुरु जी का फतह' का गगन भेदी नारा लगाकर वे ठीक बाज की तरह अग्रेज सेना पर झपटे। कितने मरे इनकी कुछ भी उन्हे चिन्ता न थी। वे मारते थे और मरते थे। किन्तु बराबर बढ़ते जा रहे थे। उनका एक गिरोह जनरल गफ की ओर ही बढ़ा क्योंकि वह बड़े उत्साह से तोपों से आग उगलवा रहा था। वे बढ़े और खूब बढ़े कि जनरल गफ के पास पहुँचने मे कुछ ही फासला था। इतने मे मेजर थैकवेल ने दो पलटने उनके मार्ग मे अड़ा दीं और एक साथ दस तोपे खिचवा कर उनके पीछे। आगे उनकी छाती पर संगीनें, पीठ पर गोले पड़ने लगे। पर वे बराबर आगे बढ़ते ही जाते थे। उनका इरादा था कि कोई अकेला रह जाय वह भी आगे बढ़े। इधर यह आत्म बलिदान हो रहा था। कि उधर तोपों की मार से घबरा कर दोस्तमुहम्मद के पठान भाग खड़े हुए। कुछ सिखों ने उनका अनुकरण किया कुछ सिख तोपों की मार से बचने के लिये पेड़ों पर चढ़कर कुछ उपाय सोचने लगे। किन्तु अंग्रेजी सवारों ने गोलियों से भून डाला।

कैसा था वह स्वतत्रता का युद्ध। उसका वर्णन भला कलम कर सकती है। एक दो नहीं किन्तु तीन हजार से ऊपर माई के लालों ने एक ही दिन मे अपनी जननी-जन्मभूमि को फिरंगियों से मुक्त करने के लिये अपनी बलि देदी।

सिख नेताओं ने अब भागना उचित न समझा वे भागते भी किस के लिये। आज उनके पास बचा ही क्या था। वे सब बन्दी बना दिये गये। राजा चतुरसिंह, सरदार शेरसिंह और अतरसिंह आदि आज कैदी थे।

तलवार रखते हुये सरदार शेरसिंह ने मेजर गिलवर्ट की दाहिनी ओर खड़े होकर कहा "अंग्रेजों के अनेक अत्याचारों से ऊब कर हमने युद्ध किया था। अब हमारी यह दुर्दशा हो गई है और हमारी सेना के बॉके सिपाही सदैव के लिये हम से अलग हो गये है। हमारी तोपें, हमारे हथियार हाथ से निकल चुके है। इस समय हम विल्कुल युद्ध के साधनों से हीन है। हमने जो कुछ भी किया है उसके लिये हमें कोई पश्चाताप नहीं। और जो आज किया है शक्ति होने पर उसे ही कल भी कर सकते हैं।"

गिरफ्तार लोगो से अंग्रेज हथियार रखवा रहे थे। हथियार रखते समय अनेकों सिखों के हृदय फट पड़े और उनकी ऑखों से ऑसू वहने लगे। आज सिंहों के वच्चे इतने विवश हैं। यह वात उनके मन को मसोसने लगी। महाराजसिंह और रिछपालसिंह नाम के दो नोजवानो ने तो कह भी दियाकि हम राजी से हथियार नहीं रक्खेगे। वलात छिनाओ और हमारे आगे आओ कौन हथियार छिनाता है।

सरदार शेरसिंह जी ने वन्दी अंग्रेजों को कई वार छोडने की शिष्टता दिखाई थी किन्तु नृशस अंग्रेज फौजी अफसरों ने उन्हे छोड़ना तो दूर किन्तु पजाव से भी वाहर कलकत्ते मे सजा पाने के लिये भेज दिया।

यह दूसरा सिख युद्ध समाप्त हो गया। विद्रोह दव गया। अंग्रेजों ने कोने-कोने से विद्रोह को दवा दिया। किसी को सजा देकर और किसी को लोभ लालच देकर सारे पजाव मे शाति कर दी। भीतर असतोष की भट्टी चाहे भले ही धधकती रही थी किन्तु सन्नाटा सारे पजाव मे हो गया।

अब अंग्रेज निश्चिन्त थे। उन्हे पक्का विश्वास हो गया कि अव उनका मुकाविला करने लायक कोई भी सगठन सिखों का पजाव मे शेष नहीं है। सारे सूवों मे उनकी छावनियॉ पडी हुई हैं। कोई भी मजवूत किला ऐसा नहीं जहॉ उनका प्रवन्ध नहीं है। तव उन्होंने एक वड़ा काम हाथ मे लिया जिसे पूरा करने की उनकी बीसियों वर्ष से साध थी।

इस वात को सभी अंग्रेज इतिहास लेखकों ने भी स्वीकार किया है कि विद्रोह से लाहौर दरवार का कोई सम्वन्ध न था। सरदार शेरसिंह जो लाहौर दरवार की प्रतिनिधि सभा के सदस्य थे। निज की प्रतिहिंसा से विद्रोही हुए थे। सरदार रणजोधसिंह पर भी अंग्रेजों ने विद्रोहियों को सहायता देना वताया है। वह भी व्यक्तिगत ही रहा होगा। और सही वात तो यह है कि उस समय शासन के प्रवन्धक और शाति के लिये उत्तरदायी भी तो अंग्रेज ही थे। महाराज तो नावालिग थे ही।[1] रानी जिन्दा परदेश मे पडी थीं। तव पजाव को जव्त करने के लिये कोई भी कारण न था।

पंजाब हरण

जिस समय एलेथिक साहव ने तेजसिह और दीवान दीनानाथ के सामने यह वात जाहिर की कि पजाव तो अव अंग्रेजी राज्य मे मिलाया जायगा किन्तु क्या यह उचित नहीं होगा कि कौंसिल के लोगो की स्वीकृत भी इस पर ले ली जाय। थोड़ी देर तक दीनानाथ ने मूल प्रस्ताव का विरोध किया किन्तु जव उन्हे धमकी दी गई तो वह चुप हो गये।

२६ मार्च सन् १८४८ को प्रात काल महाराजा रणजीतसिंह जी के राजभवन मे दरवार लगा। वस यही आखिरी दरवार था जव कि सिख वादशाही खतम हो रही थी और यही दिन था जव कि

१ १६ दिसम्वर १८४६ की सन्धि के अनुसार पजाव में अमन-अमान कायम रखने का उत्तरदायित्व अंग्रेजो पर ही था। जिसके लिये कि सिख दरवार को उन्हें २२ लाख रुपया सालाना देना नियत था।

महाराजा दिलीपसिंह पंजाब के राजसिंहासन पर आखिरी बार बैठ रहे थे। आज दरबार था, किन्तु कहीं भी प्रसन्नता दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। सभी के चेहरे मुरझाये हुये थे। सबके दिल क्षोभ और बेचसी से फटे जा रहे थे। ठीक समय पर मि० इलियट, सर हेनरी लारेन्स और रेजीडेन्सी अनेक यूरोपियन कर्मचारी दरबार में पहुँचे। जिनके साथ गोरे और काले लोगों के अनेक शस्त्रधारी बाडीगार्ड थे।

महाराजा दिलीप अभी नाबालिग थे किन्तु अपने अनिष्ट की आशंका से आज उनका भी चेहरा उतरा हुआ था। वह गंभीरता के साथ नीचा मुंह किये सिंहासन पर बैठे थे। उनके बाईं ओर उनके दरबारी और दाहिनी ओर अंग्रेज अधिकारी और उनके पीछे गोरे सैनिक, शहर के और भी हजारों आदमी आज की वज्र घोषणा को सुनने के लिये दुखी मन से मौजूद थे।

नियत समय पर इलियट साहब ने आज जो कुछ करना था उसकी घोषणा की जिसका अनुवाद प्रांतिक भाषा में एक द्विभाषिये ने इस प्रकार किया—

"अंग्रेज सरकार पंजाब के बाशिन्दों की बहतरी के लिये उचित समझती है कि अब पंजाब का शासन भार वह कतई रूप से अपने हाथ में ले ले। अत. अब से महाराजा दिलीपसिंह पंजाब के महाराज नहीं रहेंगे किन्तु उनके आराम और सन्मान का खयाल सरकार सदैव रक्खेगी। इसका फैसला हो चुका है और लाहौर-दरबार के साथ सन्धि हो चुकी है जिसके अनुसार आपका दरबार महाराजा रणजीतसिंह जी के कुल राज्य को स्वेच्छा से अंग्रेजों को सौंपता है। उस सन्धि की शर्तें इस प्रकार हैं। (१) महाराजा दिलीपसिंह और उनके वारिसान पंजाब-राज्य-सम्बन्धी समस्त स्वत्व, दावा, और क्षमता परित्याग करते हैं। (२) लाहौर-दरबार की जो सम्पत्ति है उस पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार होगा। (३) महाराजा रणजीतसिंह जी ने शाहशुजा से जो कोहनूर हीरा प्राप्त किया था उसे अब महाराजा दिलीपसिंह महारानी विक्टोरिया को भेट कर देंगे। (४) ईस्ट इंडिया कम्पनी महाराजा दिलीपसिंह और उनके परिवार तथा नौकरों के गुजारे के लिये ४-५ लाख रुपया वार्षिक की पेन्शन देगी। (५) महाराजा दिलीपसिंह जी के साथ सन्मान का व्यवहार किया जायगा। उनकी पदवी 'महाराजा दिलीपसिंह बहादुर' रहेगी। उनके रहने के लिये गवर्नर जनरल जहाँ उचित समझेंगे प्रबन्ध कर देंगे। महाराजा को यावज्जीवन बृटिश गवर्नमेंट के अधीन रहने में ऊपर लिखी पेन्शन बराबर मिलती रहेगी।"

जब इस प्रकार की घोषणा पढ़कर सुनाई गई तो समस्त लोगों के मुंह स्याह पड़ गये। दीवान दीनानाथ ने आँखों से आंसू पोंछते हुये कहा, "मैं ईस्ट इंडिया कम्पनी से दरख्वास्त करता हूँ कि वह बालक महाराजा के साथ दया का व्यवहार करे।" कहा जाता है इलियट ने दीनानाथ को यह कहते हुये डांट देकर बिठा दिया कि "अगर चुप नहीं रहे तो काले पानी भेज दिये जाओगे।"

अंग्रेजों के इस कार्य की प्रत्येक हृदयवान व्यक्ति ने निन्दा की। लार्ड 'ले' ने लिखा था—"हम अंग्रेज चौड़े में दिलीपसिंह के रक्षक थे। दिलीपसिंह सन् १८५४ ई० में बालिग होते। हमने १८४८ की १६वीं नवम्बर को उनके राज्य की रक्षा की गारण्टी के लिये कदम बढ़ाया था। इसलिये विद्रोहियों को दंड देने और शासन सभा के प्रति होने वाले बखेड़े को दबाना हमारा फर्ज था। किन्तु पांच महीने में ही हम इतने बदल गये कि हमने दिलीपसिंह का राज्य जब्त कर लिया। यह हमने खूब विलक्षण रक्षा की।"

सर हेनरी लारेन्स ने कतई रूप से इस जब्ती का विरोध किया था, किन्तु उसकी कुछ चल न सकी। पंजाब का शासन सर हेनरी लारेन्स के भाई जौन लारेन्स को सौंपा गया।

महाराजा दिलीपसिंह जी के लिये एक अंग्रेज अभिभावुक नियत कर दिया जिसका नाम

डाक्टर लगन था और जिसे कि १२००) महीना वेतन दिया जाता था। महाराज दिलीपसिंह जी फारसी तो कुछ जानते थे, डाक्टर लोगन से वे अंग्रेजी सीखने लगे। उनकी बुद्धि बड़ी तेज थी और इस बारह वर्ष की उम्र मे भी वे बड़ी समझदारी की बाते लोगन से किया करते थे। बाज रखने का, चित्रकारी सीखने का भी उन्हें शौक था। उनके पास ऐसे आदमियों का आना वर्जित था जो उन्हे कोई ऐसी बात कहे जिससे उन्हे यह पता चल जाय कि उन्हे अब कभी भी लाहौर का राज्य नहीं मिलेगा। डाक्टर लोगन भी उनसे ऐसी ही बातें कहते यदि आप अंग्रेजों के भक्त रहेंगे तो लाभ ही होगा। डाक्टर लोगन महाराज के परिवार के अन्य व्यक्तियों की देख-भाल भी करते थे। जिनमे महाराजा रणजीतसिंह, महाराज खड्गसिंह, शेरसिंह, नौनिहालसिंह आदि की रानियाँ आदि और शेरसिंह के पुत्र सहदेवसिंह भी थे।

सरदार महासिंह से लेकर महाराजा रणजीतसिंह के समय तक जो भी अमूल्य वस्तुये उन्हें पजाब के राज्य घरानों से भेंट और जीत मे मिली थीं। वे सब और कोहनूर हीरा थोड़े दिन के बाद खजाने से निकाल कर विलायत पहुँचा दिये गये। जिनमे स्वर्ण-सिंहासन और रत्नजटित काश्मीरी शाल बे-जोड वस्तुएं थीं।

सन् १८४६ ई० की चौथी सितम्बर को महाराजा दिलीपसिंह जी की वर्षगाठ थी। उसी समय डाक्टर लोगन ने उन्हे बहुमूल्य वस्त्र और मोती जवाहरातों की मालाये पहनाई, बालक महाराज ने डाक्टर लोगन से कहा, "कोहनूर हीरा अब की मेरी बाह पर क्यों नहीं बाँधते।" पर अब वह हीरा था कहाँ ?

सन्-१८४६ ई० के सितम्बर महीने में लार्ड डलहौजी लाहौर आये। महाराज ने डाक्टर लोगन के सिखाये शब्दों में उनका स्वागत किया। १५ दिन तक उन्होंने लाहौर की और सिखों की मनोदशा और शाति का अध्ययन किया। इसके बाद वे लौट गये।

पंजाव विद्रोह

११ वीं दिसम्बर को उन्होंने डाक्टर लोगिन को लिखा—"महाराज दिलीपसिंह और महाराज शेरसिंह के पुत्र सहदेवसिंह के लिये फतहगढ मे रहने का प्रबन्ध कर दिया गया है। आप उन्हें लेकर वहाँ चले जायँ। आपके वेतन का आधा भाग महाराज की पेन्शन मे से दिया जाया करेगा।"

२१ वीं दिसम्बर को प्रात ६ बजे डाक्टर लोगन महाराज और सहदेवसिंह तथा सहदेवसिंह की माता को लेकर लाहौर से फतहगढ़ के लिये चल पडे।

चलते समय महाराज की आँखों से अपनी जन्मभूमि को छोड़ने के दु:ख मे आँसू झरने लगे किन्तु तब भी उन्हे ऐसा विश्वास न था कि वे फिर यहाँ लौटकर न आ सकेंगे। कई दिन के बाद सिख जनता को यह समाचार सुनाई पड़ा किन्तु अब किया क्या जा सकता था।

फतहगढ़ मे उनके रहने के लिये मकान बनवा दिये गये थे। जो शहर और छावनी के बीच मे थे और सिपाहियों का जिन पर बराबर पहरा रहता था।

लोगन साहब यथा सम्भव महाराज को खुश रखने का उपाय करते थे किन्तु लाट साहब को यह बात मजूर न थी। उन्होंने लोगन को लिखा भी था—"तुमने महाराज दिलिपसिंह के लिये बाग लगवाया है किन्तु यह तो याद रखना है कि उनका जीवन अब बादशाहों का नहीं गुजरना है। अत कोई भी फिजूलखर्ची न की जाय।"

कहा जाता है महाराज दिलीपसिंह पढ़ने-लिखने में दिलचस्पी लेते थे और वे अंग्रेजी का ज्ञान बराबर प्राप्त कर रहे थे, किन्तु अंग्रेजों को परिवार मे रखकर और रात-दिन उनकी ही सभ्यता व संस्कृति

की बात सुनकर उन पर पश्चिमी सभ्यता का विष भी असर डालता जा रहा था। वे अब अंग्रेज लड़कों की जैसी वेश-भूषा को पसन्द करने लगे। किन्तु महाराज शेरसिंह की रानी को यह बातें पसन्द न थीं। वे जब भी जितना भी समझा सकतीं अपने सिख धर्म की बातें महाराज को समझातीं।

लार्ड डलहौजी ने न मालूम क्या सोचकर सहदेवसिंह की माँ (रानी शेरसिंह) को एक धमकी का पत्र लिखा—"आप अपने दिमाग से इस बात को निकाल दीजिये कि पंजाब अब सिखों का राज्य है और भविष्य में आपके पुत्र या और किसी को वहाँ का राजा बनाया जायगा।" बेचारी महारानी चुप हो रहीं और वे कुछ दिन के लिये अपने पिता के घर जाने के लिये विचार बाँधने लगीं।

सन् १८५२ ई० में महाराज ने भारत के विभिन्न स्थानों की सैर की। अंग्रेजों ने उनका इस सैर का इस प्रकार प्रबन्ध किया कि किसी को पता नहीं चल सका। हाँ, हरिद्वार में अवश्य हजारों सिखों ने उन्हें पहचान लिया, जो कि पर्व का स्नान करने आये थे। महाराज हाथी पर बैठे सैर कर रहे थे। सिख उनके इर्द गिर्द इकट्ठे हो गये और उनकी जय बोलने लगे। किन्तु महाराज केवल आँखों में आँसू भर लाने के सिवा उनसे कुछ भी न कह सके। इस वर्ष की वर्षा उनकी मंसूरीमें बिताई गई। जहाँ कि वे अंग्रेज बालक-बालिकाओं के साथ खेलते-कूदते और मनोरंजन करते रहे।

महाराज को बराबर कोशिश करके इस बात के लिये तैयार किया गया कि सन् १८५३ की ८ वीं मार्च को महाराज ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया—जिसकी कि लार्ड डलहौजी ने भी स्वीकृति दे दी। भला डलहौजी क्यों न दे देता जब कि वह समझता था कि महाराज के ईसाई हो जाने पर सिखों के दिलों में जो उनके प्रति प्रेम है वह नष्ट हो जायगा।

५ अप्रैल को डलहौजी ने महाराज को जो पत्र लिखा था उसमें बायबिल भेजते हुये उनके ईसाई हो जाने पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी।

ईसाई किये जाने के बाद महाराज को विलायत ले जाने की तैयारी की गई। लार्ड डलहौजी इस बात से भी प्रसन्न हुआ और उसने पुन. बायबिल की एक प्रति उनके पास भेजी।

सहदेव की माँ ने इस बात का विरोध किया और कहा—"सहदेवसिंह को तो मैं विलायत हर्गिज भेजने को तैयार नहीं हूं किन्तु मैं महाराज के विलायत जाने का भी विरोध करती हूं। मैं तो इसे ठीक समझती हू कि हरिद्वार मे उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया जाय।"

लार्ड डलहौजी ने सहदेवसिंह को विलायत न भेजना तो मंजूर कर लिया किन्तु वह इस बात से राजी नहीं हुआ कि महाराज को भी विलायत जाने से रोका जाय। यह बाते सहज ही बतलाती हैं कि महाराज को ईसाई बनाने उन्हे और विलायत ले जाने मे उनकी अन्तर सहमति थी।

सन् १८५४ ई० की गर्मियों मे महाराज काशी, लखनऊ आदि स्थानों को देखते हुये कलकत्ता पहुँच गये। रास्ते मे अनेकों स्थानों को देखते हुये वे जून १८५४ ई० में लन्दन पहुँच गये। वहाँ उनके लिये कोर्ट आफ वार्ड्स के डायरेक्टरों ने रहने को मकान बनवा दिया था। वे लोग महाराज के सौजन्य-पूर्ण व्यवहार से बड़े प्रसन्न हुये थे। महारानी विक्टोरिया ने भी उन्हे अपने महल मे बुलाकर उनके साथ मुलाकात की।

कहा नहीं जा सकता महाराज को कितने दिन तो विलायती वेश-भूषा से प्रेम रहा और कितने दिनों उन्हे बाइबिल की बाते भाईं किन्तु इतना तो हम जानते हैं कि ज्यों-ज्यों महाराज का विलायत में अधिक रहते समय बीतने लगा त्यों-त्यों उनके दिल से विलायत की सभ्यता और रहन-सहन का रङ्ग रफू

होने लगा। उन्होंने हैट-कोट पहनना छोड़ दिया और ये शनै.-शनै. सिख पोशाक पर आ गये। उनके रहन-सहन और आचार-व्यवहार मे भी परिवर्तन हो गया।

इतना होने पर भी वे बराबर अपने मन के भावों को दबाये रखते और किसी भी प्रकार की टिप्पणी किसी विषय पर नहीं करते। डाक्टर लोगन और उनकी स्त्री के प्रति उन्होंने वही प्रेमपूर्ण व्यवहार निभाया।

आपके मनोभावों को जानने की बड़ी कोशिश की जाती थी। एक बार महारानी विक्टोरिया ने लेडी लोगन से पूछा—"महाराज दिलीप कोहनूर के सम्बन्ध मे तो कुछ चर्चा नहीं करते हैं।" जब लेडी लोगिन महाराज के पास आई तो उन्होंने कोहनूर की चर्चा छेड दी हालाँकि महाराज अब उस प्रसंग को भूल जाना चाहते थे जो उनके दिल को दुखी करता। न मालूम क्यों आज यकायक कोहनूर की चर्चा से उनका दिल भारी हो गया और उन्होंने कहा—"क्या आप मुझे एक बार कोहनूर हीरा दिखवा देंगी।" लेडी साहिबा ने पूछा—"लेकिन आप उसे देखकर क्या करेंगे।" महाराज ने अपने मन के भाव दबाते हुए कहा—"एक तो मैंने उसे बचपन मे देखा था इसलिये अब भले प्रकार देखना चाहता हूँ और दूसरे तब मेरी अजानकारी में वह यहाँ लाया गया अब मैं अपने हाथ से साम्राज्ञी को भेट कर दूं।"

लेडी लोगन के कहने पर महारानी विक्टोरिया ने कोहनूर दिखाना मंजूर कर लिया। उन्होंने कोहनूर दिलीपसिंह के हाथ मे देते हुये पूछा—"अच्छा बताओ यह अब सुन्दर है या तब सुन्दर था जब लाहौर में था।" इस समय महाराज ने अपने चेहरे के भावों को विगड़ने नहीं दिया। उन्होंने सहज भाव से कहा—"कटने छटने से कुछ सुन्दर तो अवश्य हो गया है किन्तु हल्का भी हो गया है।" यह कहते हुये उन्होंने हीरे को महारानी को लौटा दिया।

महारानी विक्टोरिया को महाराज दिलीपसिंह के सम्बन्ध मे काफी जानकारी हासिल करने की इच्छा थी। इसलिये उन्होंने लेडी लोगिन से महाराज के सम्बन्ध की एक तवारीख ही लिखने को कहा। प्रिन्स अलबर्ट (विक्टोरिया के पति महाशय) ने महाराज के मनोगत भावों को जानने की इच्छा से उन्हे कई बार अपने पास प्रेमपूर्वक बुलाया।

कहा जाता है महारानी विक्टोरिया उनके प्रति प्रेम का व्यवहार करती थीं। लार्ड हार्डिङ्ग ने उन्हें अपने यहाँ कई दिन निमन्त्रित किया था। किन्तु हम जहाँ तक भी समझ सकते हैं महाराज को बहलाने और उनके अन्तर की बातें जानने के लिये वह सब किया जाता था। वरना उन्हे यूनिवर्सिटी की परीक्षा मे न बैठने देकर पेन्शन की रकम मे उत्तरोत्तर कमी करके जो मानसिक और आर्थिक कष्ट दिये जाते थे वह बृटिश राजनीतिज्ञों की सहृदयता के द्योतक नहीं थे।

भैरववाल की सन्धि के अनुसार उन्हे १८५४ ई० में बालिग मान लेना चाहिये था, किन्तु १६ वर्ष की उम्र मे उन्हे बालिग माना गया सो भी इतने के लिये भी महाराज को काफी लिखा-पढ़ी करनी पडी थी।

इस बीच मे एक बार उन्होंने लेडी लोगन के साथ कई यूरोपियन देशों की सैर भी की।

उन्हे अखबार पढ़ने का बड़ा शौक था। वे अखबारों में सबसे पहले हिन्दुस्तान की खबर पढ़ने की चेष्टा करते थे। एक बार उन्होंने पढ़ा, अवध जब्त हो गया और उसके नवाब की पच्चीस लाख की पेन्शन हो गई। महाराज को खयाल आया कि अवध के नवाब से हमारा दर्जा कुछ कम नहीं। फिर हमारे सारे परिवार को केवल चार लाख वार्षिक ही। महाराज ने लिखा-पढ़ी भी की किन्तु उन्हे इसके

लिये निराश ही होना पड़ा।

सन् १८५७ में फ्रांस के बादशाह और उनकी रानी इंगलैंड गये। महाराज से मिलने की उन्होंने इच्छा प्रकट की। जब महाराज मिले तो दोनों राजा-रानी महाराज से बहुत खुश हुये, किन्तु कोई खुश हो या नाराज, महाराज के भाग्य पर इन बातों का क्या असर पड़ता। वे तो उनके शाही कैदी थे। शुक्र इतना था कि व्यवहार उनके साथ मेहमानदारी का होता था।

सन् १८५६ ई० में उन पर एक इल्जाम भी लगाया गया और वह यह कि उन्होंने अपनी माँ जिन्दा महारानी के पास एक गुप्त-पत्र उन्हे यूरोप की ओर चले आने के लिये लिखा है। कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने जांच कराई।

इसके बाद उन्होंने अपनी माता महारानी जिन्दा के पास नेमी गोरा के हाथ एक पत्र भेजा और उसमे लिखा कि आपको नैपाल मे ही रहकर शांति से शेष जीवन विताना चाहिये।

कुँवर सहदेवसिंह जी और इनकी माता की इधर भारत मे पेन्शन बन्द हो गई थी। इस समाचार को सुनकर महाराज को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की मार्फत हिन्दुस्तान के वायसराय के साथ लिखा-पढ़ी की। तब बड़ी मुश्किल के बाद उन दोनों के लिये पॉच हजार वार्षिक की पेन्शन हुई।

सन् १८५६ ई० की २० मई को लार्ड स्टेनले ने महाराज को सूचना दी कि अब आप बालिग हो गये और आपको २५००० पौंड सालाना पेन्शन मिलेगी। महाराज को अंग्रेजों के वर्ताव से अब शनैः-शनैः खेद बढ़ता ही जाता था और सन्देह तो भारी मात्रा मे। इसलिए उन्होंने सरकार से पूछा "यह पेन्शन मेरे ही जीवन तक है या मेरे वारिसों को भी मिलेगी।" इसके उत्तर मे उन्हे बताया गया-आपको १५००० पौंड मिलेंगे, तीन हजार आपकी स्त्री को, शेष आपकी संतान को सुरक्षित रहेगा और संतान न होने की हालत मे मय व्याज के अंतिम दिनों मे आपको ही दे दिया जायगा।"

अब दिनों दिन महाराज के हृदय मे अपने देश के प्रति प्रेम उमड़ता जाता था। ज्यों-ज्यों वे सयाने होते जाते थे। त्यों-त्यों ही उन्हे अपनी दशा पर क्षोभ होता था। उन्होंने सरकार को लिखा—"मेरी बची हुई संपत्ति पंजाब मे अगर शिक्षा पर खर्च की जाय तो मुझे बड़ा संतोष होगा।" किन्तु इन बातों पर भला ध्यान दिया जा सकता था।

ग़दर के समय मे विद्रोहियों ने फतहगढ़ में महाराज के मकान की भी लूट कर ली थी। उसमे उनका बड़ा नुकसान हुआ था। इसके लिये महाराज ने सरकार से हरजाना मॉगा, क्योंकि उनका वह सामान सरकार के संरक्षण मे ही तो था। सरकार ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया। महाराज की इन बातों से अधीरता बढ़ने लगी। इधर उनकी पेन्शन का उन्हे पूरा रुपया नहीं मिलता था इससे वे खर्च से भी कुछ-कुछ तग रहने लगे। सर चार्लेस बुड ने महाराज को मुलाकात के लिये बुलाया और उनकी सारी बातें सुनकर उसने महाराज से इस प्रकार का एक इकरारनामा लिखवाया—"मैं अपने खर्च के लिये पच्चीस हजार पौंड वार्षिक चाहता हूँ और मृत्यु के बाद अपने वारिसों के लिये बीस हजार पौंड की प्रार्थना करता हूँ। यदि मेरे कोई वारिस न हो तो यह मेरी संचित पूँजी हिन्दुस्तान की भलाई के कामों में खर्च कर दी जाय। इससे अधिक हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सरकार पर उनका दावा नहीं है।" यह घटना २० जनवरी सन् १८६० ई० की है।

इसके दो महीने बाद ही महाराज को कार्ट आफ वार्डस ने एक पत्र के उत्तर मे लिखा कि

"सन् १८४९ ई० की सन्धि के अनुसार उनके परिवार के लिये जो पाँच लाख सालाना की पेन्शन मुकर्रिर हुई थी उसमे से किसे कितना दिया गया यह मालूम करने का महाराज को अधिकार नहीं है। हाँ, हम इतना बता देना चाहते है कि डेढ़ दो हजार पौंड पिछली रकमों से जमा है।" महाराज ने इसका उत्तर कुछ गुस्से के साथ इस प्रकार दिया कि "जब तक मुझे यह बात नहीं बताई जायगी तब तक मैं उस इकरारनामे को भी बेकार ही समझता हूँ। जो चार्लस ने लिखाया है।"

महाराज को अपनी माँ से मिलने और अपनी मातृ भूमि के दर्शनों की भारी उत्कंठा थी। इसलिये उन्होंने भारत जाने की इच्छा प्रकट की। गवर्नर जनरल ने उनको लिखा कि "महाराज पंजाब नहीं जा सकेंगे शेष भारत मे उनकी जहाँ इच्छा है जा सकेंगे। महारानी जिन्दा यद्यपि चुनार मे भागकर नैपाल पहुँची है, किन्तु वे भारत मे वापिस लौटें तो उनके साथ अच्छा ही व्यवहार होगा।"

महाराज सन् १८६१ के जनवरी मास में बड़े आह्लाद के साथ कलकत्ता आ गये। उधर महारानी भी रानीगंज (बंगाल) मे आ गई। जहाँ दोनों माँ बेटों का मिलाप हुआ। बहुत दिन के बिछुड़े माँ-बेटे जब मिले उस समय उनकी क्या दशा होती है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पहले दोनों गले मिल कर रोये और फिर अपनी-अपनी विपत्तियों की कहानियाँ कहकर दिल हल्के किये।

अंग्रेज अधिकारियों का ऐसा खयाल था कि महाराज दिलीपसिंह के ईसाई हो जाने के समाचारों से सिख उनके साथ कोई हमदर्दी नहीं रक्खेंगे किन्तु जब यह समाचार मिला तो अनेकों सिख कलकत्ते मे उनसे मिलने पहुँचे। जो सिख सैनिक चीन से वापस लौटे थे उन्होंने भी महाराज से मिलने की इच्छा प्रकट की। इस बात को देख कर लार्ड केनिंग चिन्तित हुए और उन्होंने महाराज को वापिस विलायत भेज दिया। कहा यह गया कि महाराज को यहाँ की आबहवा अनुकूल नहीं जँची इससे वह लौट गये हैं। महाराज शेर के शिकार का इरादा करके आये थे किन्तु इसके लिये भी उन्हें अवकाश नहीं मिला।

महारानी जिन्दा भी पुत्र-प्रेम से विलायत जाने को तैयार हो गईं। उन्हें उनके चुनार मे छोड़े हुए जेवर दे दिये गये, क्योकि अंग्रेज अधिकारी उनके विलायत जाने से खुश थे।

किन्तु खेद है कि महारानी जिन्दा को विलायत मे भी उनके प्यारे पुत्र से अलग कर दिया गया। उन पर यह इल्जाम लगाया गया कि वे महाराज को ईसाई-धर्म से विचलित करती हैं। जब से वे आई है, महाराज ने गिरिजो मे जाना भी बन्द कर दिया है। इस दुःख से और अब तक की विपत्तियों से उन प्राणों की शक्ति काफी क्षीण हो चुकी थी। अतः केवल दो ही वर्ष के बाद सन् १८६३ के सितम्बर मे उनका देहान्त हो गया।

भारत माँ की सुपुत्री, खालसा राज्य की अधिष्ठात्री और महाराजा रणजीतसिंह की महारानी की इस दुःखद मृत्यु से किस सहृदय का दिल न रो उठेगा। उसने सात समुन्दर पार उस श्वेत देश मे मरते समय एक ही याचना की और वह यह कि उसका अन्त्येष्टि संस्कार उसके अपने भारत देश मे ही हो। कहा जाता है, उनका शव मसालों से सींचकर रख दिया गया और सन् १८६४ ई० मे महाराज दिलीपसिंह बम्बई के रास्ते आकर नर्मदा-तट पर उनका संस्कार करके वापिस चले गये। इन्हीं दिनो डाक्टर लोगिन का भी स्वर्गवास हो गया। अब वे दुखी रहने लगे। अँग्रेजो ने उनसे किसी कुलीन रमणी के साथ ब्याह कर लेने की बात कही। किन्तु उन्हें अपना भविष्य अंधकारपूर्ण दिखाई देता था। इसलिये वे एक गरीब कन्या से शादी करके दिल को बहलाने की चेष्टा करने लगे। यह महिला इजिप्ट की रहने वाली और बम्बा नाम की थी। महाराज ने इसे शिक्षा दिलाकर योग्य बनाया।

महाराजा दिलीप सिंह जी

फूल-वंश-संस्थापक
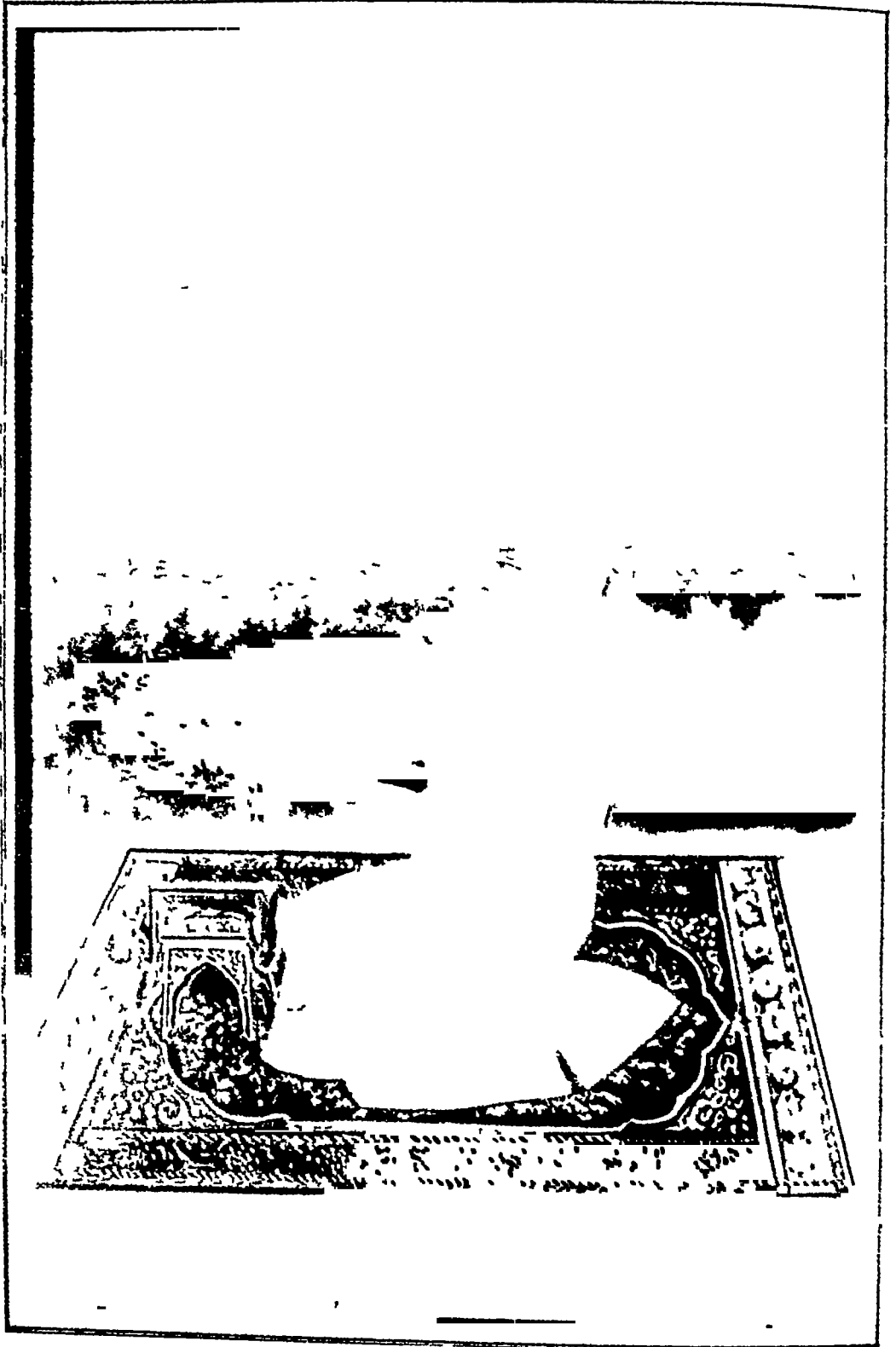
वावा फूल

सन् १८६३ ई० मे ब्रिटिश सरकार ने महाराज को 'सितारेहिन्द' की भी उपाधि दी। वलिहारी इस अंग्रेज जीव की। एक ओर तो उनके पत्रों का जवाव डेढ़-डेढ़ वर्ष तक नहीं दिया जाता है दूसरी ओर उन्हें उपाधि देकर प्रसन्न करने की कोशिश की जाती है।

जव महाराज-अंग्रेज शासकों से काफी लिखा पढ़ी करके निराश हो गये और उन्होंने अपने को अधिक से अधिक वेवसी मे अनुभव किया तो उन्होंने आखिर इंगलेड की जनता के सामने अपना केस रक्खा। लंदन के प्रसिद्ध पत्र 'टाइम्स'से उन्होंने अपनी समस्त कठिनाइयों एवं उचित मार्गो और अंग्रेज अधिकारियों के रुख पर प्रकाश डालते हुये इंगलैंड के सुसभ्य समाज से अपील की कि वे इसमे उनका साथ दें।

वास्तव मे महाराज दिलीपसिंह का उन लोगों को साथ देना चाहिये था, क्योंकि उनकी नागरिकता भी स्वीकार की जा चुकी थी। किन्तु उनकी यह अपील भी वेकार हो गई। इसके तीन वर्ष वाद उन्हे जो जवाव मिला वह पिछले जवावों से भी अधिक निराशाजनक था। इस जवाव के अनुसार उनकी सन्तान के लिये कुछ भी सहायता देने से अधिकारियों ने इन्कार कर दिया। अव फिर वे इंगलैंड रहते भी क्यों। इसलिये उन्होंने वहाँ की अपनी जमींदारी और जायदाद वेच डाली और भारत आने की तैयारी करने लगे। उनके इस इरादे से सरकार कुछ भयभीत हुई और उन्हे कहा गया कि यदि आप यहीं रहेंगे तो उनके दावे के लिये उन्हे पचास हजार पौंड दिया जायगा और भारत गये तो उन्हे पंजाव मे तो जाने ही नहीं दिया जायगा, किन्तु दूसरे स्थान मे भी प्राय वह सरकार के ही प्रवन्ध मे रहेंगे, स्वतन्त्र नहीं।

यह सव वाते सुनने पर भी महाराज ने भारत पहुँचने का ही अपना निश्चय पक्का रक्खा और उन्होंने अपने देशवासियों के नाम एक पत्र लिखा; जो कि १७ अप्रैल १८८६ शनिवार को 'ट्रिब्यून' अखवार मे प्रकाशित हुआ था, उनके शव्द यह हैं :—

"मेरे प्यारे देशवासियो !

मेरी हिन्दुस्तान लौटने की कभी कोई इच्छा नहीं थी। परन्तु सतगुरु ने, जो कि सवके भाग्यों का मालिक है और अपने गलती करने वाले (अपने कृत्य) से अधिक शक्तिवान है, ऐसे हालात पैदा कर दिये हैं कि मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध इंगलैंड छोड़ने पर वाध्य होगया हूँ। ताकि भारतवर्ष मे एक मामूली मनुष्य की जिन्दगी गुजारू। मैं यह समझता हुआ कि जो कुछ नियमति है वही होगा। ईश्वरेच्छा के सामने सिर नवाता हूँ।

अव मैं पवित्रात्मा खालसा जी ! इसलिये आपसे क्षमा चाहता हूँ कि मैंने अपने वुजुर्गों के धर्म को एक विदेशी धर्म के लिये त्यागा किन्तु उस समय, जव कि मैंने ईसाई मत को धारण किया, मैं वच्चा था।

यह मेरी तीव्र इच्छा है कि वम्बई पहुचने पर फिर पाहुल लूँ अर्थात् सिख धर्म की दीक्षा लूँ और आपसे हार्दिक उम्मीद है कि आप उस पवित्र अवसर पर सतगुरु के हुजूर अरदास करेंगे।

मैं आपको लिखने पर मजवूर हुआ हूं, क्योंकि मुझे पंजाव मे आपसे में मिलने की आज्ञा नहीं है। जैसी कि मेरी वहुत इच्छा थी।

हिन्दुस्तान की मल्का के लिये अटल भक्ति का क्या ही अच्छा परिणाम है। परन्तु होगा वही जो वाहिगुरु को मंजूर है।

वाहि गुरु जी की फतह वुलाता हुआ मैं हूँ

मेरे प्रिय देशवासियो आपका ही मास और हाड़—दिलीपसिंह"

महाराज अदन तक आ पहुँचे थे। उन्हें वहीं रोक दिया गया और कहा गया कि "भारत के गवर्नर जनरल आपका भारत पहुँचना शांति के लिये खतरनाक समझते हैं।" वास्तव मे उनका हिन्दुस्तान आना अंग्रेज अधिकारियों के लिये खतरनाक ही साबित होता। क्योंकि सिखों के अन्दर से उनकी भक्ति कम नहीं हुई थी और सारा पंजाब बड़ी खुशी से उस दिन की बाट देख रहा था।

अंतिम दिन

विलायत लौटने के लिये उन्हें विवश किया गया। किन्तु वहाँ पहुँचकर वे खिन्न रहने लगे और उनकी वह गम्भीरता भी नष्ट होगई। घण्टों बैठे वे अपनी दशा पर विचार करते और कभी-कभी तो बड-बडा भी उठते। एक समय वे महारानी विक्टोरिया को कोहनूर को धारण किये हुये देखकर कह उठे—"यह मेरे बाप की चीज है। महारानी विक्टोरिया का इस पर कोई अधिकार नहीं है।" विक्टोरिया उसकी मनोदशा को समझकर चुप हो रहीं। किन्तु तब से उनका महलों मे जाना बन्द ही हो गया। उनकी उत्ते-जना दिन पर दिन बढ़ने लगी और उन्होंने वह पेंशन लेना बन्द कर दिया। वह स्पष्ट कहने लगे—"सन् १८४६ की वह सन्धि जिसके अनुसार पजाब जब्त कर लिया भला कोई सन्धि कही जा सकती है।"

अंत मे उन्होंने फ्रांस की यात्रा की और वहाँ के बादशाह से कहा कि मुझे पांडेचरी भेज दो। वहाँ जाकर मैं अपने राज्य को लेने की कोशिश करूँगा। फ्रास मे उनकी बात तो ध्यान से सुनी गई किन्तु दूसरे की बला को अपने गले में कौन डालता है। इसके बाद वे जर्मनी पहुचे। जर्मनी से रूस की तैयारी की। वहाँ वे सर्व प्रथम 'मास्को गजट' के सम्पादक मौ० केटकफेक के यहाँ ठहरे और बादशाह एलेगजेण्डर से बातचीत की।

सन् १८५२ के अक्तूबर महीने मे उन्होंने अखबारों मे प्रकाशित कर दिया कि मैं उस सन्धि को कतई नहीं मानता हू, जो मेरी नाबालिगी मे हुई है।

इन्हीं दिनों उन्होंने महारानी चम्पा की मृत्यु का समाचार सुना जिससे वे बड़े दुखी हुये और रुस से लौटकर पैरिस में आकर बीमार हो गये। लन्दन से उनके बेटे विक्टर दिलीप ने आकर उनकी काफी सेवा की। किन्तु वे अच्छे न हो सके और अपने समस्त भावों को साथ लेकर सन् १८५३ मे इस ससार से चल बसे।

भारत के सिंहों का बादशाह इस प्रकार नि.सहाय और मानसिक यंत्रणाओं मे अपनी जन्मभूमि से बहुत दूर प्राण-विसर्जन करेगा, पजाब के शेर रणजीतसिंह के पुत्र की यह दयनीय दशा होगी, ऐसी संभावना किसे थी।

कहा जाता है महाराजा ने तीन पुत्र और तीन लड़कियाँ अपने पीछे छोड़े।

सत्रहवाँ अध्याय

कपूर्थला राज-वंश

कपूर्थला राज्य दो भागो मे बटा हुआ है। एक भाग उसका पंजाब मे है और दूसरा अवध मे। पंजाब का राज्य सरदार जस्सासिंह और उनके वंशजो ने बाहुबल से अर्जित किया था और अवध का भाग महाराजा रणधीरसिंह जी को उनकी उन खिदमात के बदले मे मिला था जो उन्होंने विदेश मे आये भाग्यशाली अंग्रेज विजेताओं के लिये स्वदेश के किन्हीं हिस्सों को जीतते समय युद्धों मे की थीं। 'तारीख कपूर्थला' के लेखक दीवान रामजस साहब ने लिखा है कि अवध-स्थित भू-भाग कपूर्थला को सन १८५७ के गदर के बाद महाराज रणधीरसिंह जी की खैरख्वाही के एवज मे दिया गया था।

पंजाब में जो भू-भाग राज्य कपूर्थला के नाम से मशहूर है वह ४८७ वर्ग मील मे फैला हुआ है उसकी लंबाई ३० मील और चौड़ाई ७ से २० मील तक है। अधिकांश मे वह व्यास के किनारे-किनारे आबाद है। इसके उत्तर मे जिला होशियारपुर, दक्षिण मे सतलज नदी, पूर्व मे जिला जालन्धर और पश्चिम में व्यास नदी बहती है।

साढ़े तीन लाख के करीब इसकी जन-संख्या और पन्द्रह लाख के करीब सालाना आमदनी है। इसके ग्राम और नगरों की संख्या सात सौ से ऊपर है।

रियासत के प्रसिद्ध नगरो मे कपूर्थला राज्य की राजधानी और मुख्य शहर है। इसे ग्यारहवीं सदी मे कपूर नाम के अहलूवाल सरदार ने बसाया था। १७५० ई० मे भट्टी मुस्लिम राजपूत इब्राहीम ने इस पर कब्जा किया और उसे तरक्की दी। सन् १७८० ई० या संवत् १८३७ वि० मे सरदार जस्सासिंह ने मुसलमान हाकिम से छीनकर अपनी राजधानी बनाया। तब से बराबर उन्हीं के वंशजों के हाथ मे चला आ रहा है। वेई नदी के किनारे बसे होने की वजह से इसकी सुन्दरता मे कोई कमी नहीं है। बाग-बगीचो की हरियाली से यह और भी अच्छा लगता है। यहाँ पर ठाकुरद्वारा, कला मन्दिर देखने लायक है। यहाँ का कचहरीघर भी बढ़िया है। शिक्षा के लिये एक कालेज 'रणधीर कालेज' के नाम से बना हुआ है। वर्तमान प्रणाली के ढग का अस्पताल भी है।

कपूर्थला से ढाई मील दक्षिण मे शेखू पुरा नाम का कसबा भी उम्दा है। यहाँ पर पुराने जमाने का एक किला बना हुआ है। इसके बाद सुलतानपुर का कस्बा भी अच्छा है। गुरु नानकदेव जी यहीं के नवाब के मोदी रहे थे। यह वेई नदी के किनारे पर बसा हुआ है। आरंभ मे इसका नाम श्रीमानपुर

था। १४ वीं सदी मे नासिरुद्दीन के मामाजाद भाई सुल्तान खॉ ने इस पर कब्जा कर लिया। किसी समय इसमे ३२ बाजार और साढ़े पाच हजार दूकाने थीं। प्रत्येक पेशे के लोग बसते थे। कला और दस्तकारी मे बहुत उन्नत था। इसमे बारह दरवाजे थे और चालीस हजार मनुष्य बसते थे। ८ मील के घेरे मे आबादी थी।

इसके पास ही मे दूसरी काली नदी बहती है इस पर उसी जमाने के दो पुल बन्धे हुए हैं। दो लाख रुपया इन पुलों पर खर्च हुआ था। यहॉ का किला भी बड़ा मजबूत है जिसे मुसलमान नवाबों ने एक लाख रुपये से ऊपर खर्च करके बनवाया था।

महाराज फतहसिंह बरसात के समय मे कपूर्थला की बजाय सुलतानपुर मे ही रहते थे इसलिये उन्होंने यहा की बारहदरी की मरम्मत नये सिरे से करा दी थी।

इसके सिवा सुल्तानपुर के पुराने मकबरे अब्दुल लतीफ का हौज आदि भी देखने लायक हैं।

यहा पर गुरू नानकदेव जी की स्मृति मे भी कई उम्दा स्थान हैं। वेईं नदी का संत घाट, वेर साहब, कोठरी साहब आदि उनके नाम है।

फगवाड़ा कस्वा भी इस राज्य का एक पुराना कस्बा है। यहॉ पर अहलूवाल राजाओं ने एक किला भी बनवाया था। इसके अलावा और भी कई अच्छे कस्बे हैं।

अवध मे इस रियासत का जो भू-भाग था वह इस प्रकार है—बहरा व बारावंकी के जिलों में वोंडही। भटोली ये इलाके सरयू नदी के किनारे पर अवस्थित है। अकोना और दुरगापुर बहराइच के दक्षिण-पच्छिम मे है। खेरी जिले मे देहर दरा का इलाका है।

इस भू-भाग के प्रबंध के लिये कुछ अधिकारी रियासत की ओर से मुकर्रिर हैं। वास्तव में यह भू-भाग बतौर जागीर के है। और सारे इलाकों मे लगभग ६०० गॉव और तीस हजार के करीब आवादी है। ७०० मील के लगभग इस इलाके का क्षेत्रफल है। इन इलाकों मे शिक्षा और स्वास्थ्य का भी राज्य की ओर से प्रबन्ध है। करीब-करीब २०० सैनिक मय तोपों, हथियारों और दीगर रक्षा के सामान के शांति बनाये रखने के लिये इन इलाकों मे रहते थे।

इस इलाके मे कई धर्म स्थान है। देरह दरा मे तुलसीदास जी ने बैठकर रामायण लिखी थी और सीता धमार मे भगवान् राम ने अपना अंतिम यज्ञ किया था। ऐसा वहॉ के लोगों का विश्वास है। इस इलाके की वार्षिक आमदनी १६ लाख से ऊपर है।

कपूर्थला के मौजूदा राज-वश के प्रसिद्ध पुरुष जिनसे कि इस वश को इतना उरूज मिला है। सरदार जस्सासिंह जी अहलू वालिया थे। यह राज-वश अपने लिये पटियाला, नाभा, जीन्द की भॉति ही जयसलमेर के भट्टियों से ही अपना निकास बतलाता रहा है और राजा सालिवाहन को उन्हीं की भॉति अपना बुजुर्ग मानता रहा है। यह हम महाराजा रणजीतसिंह जी के पूर्वजों के वर्णन मे लिख चुके हैं कि शाका सालिवाहन और गजवशीय सालिवाहन दो अलग-अलग व्यक्ति थे। कपूर्थला वाले इसी गजवशीय सालिवाहन के वंशज बनते हैं। उनका यह दावा अनुचित नहीं है। प्रत्येक बड़ा खान्दान अपने को बड़ों का ही वशज मानता है। जयपुर के कछवाहे और बीकानेर के राठौर जब अपनी वंशावली भगवान् राम से जोड़ने की व्यर्थ चेष्टा करते हैं तो यह हक सभी को है कि वह अपने कुल का सम्बन्ध भारत के प्राचीन किसी भी महापुरुष से स्थापित कर ले। इससे उस कुल की अनेक सामाजिक कठिनाइयॉ हल हो जाती हैं।

कपूर्थला के पूर्वज

म० जस्सा सिंह अहलुवालिया

गुरुद्वारा साहिब

कपूर्थला

जैसलमेर से अपना कुल सम्बन्ध जोड़ने वाला कपूर्थला-राज्य का दावा इस प्रकार है —"महाराज जस्सासिंह की लड़ी जैसलमेर के राजपूत-खानदान से मिलती है और उसका वर्णन यों है कि जो राजा ढोसाज का बेटा जैसल नामी पैदा हुआ, उसने अपनी राजधानी जैसलमेर मे कायम की और उसका लकब यही मशहूर हुआ। राजा जैसल से राना हेला उर्फ महारावल और शालिवाहन आदि पुत्र हुये। हेला से चन्द्र, चन्द्र से ओजल, ओजल से जगपाल, जगपाल से धर्म,धर्म से पदमरथ, पदमरथ से कपूर। राजा धर्म का राज्य तो पूर्ण ऐश्वर्यवान रहा। परन्तु इस समय में भटिंडे के राजा जयपाल ने पदमरथ के राज्य का कुछ भाग दवा लिया। इन्ही दिनों महमूद गजनवी भारत मे चढ़ाई कर रहा था। पदमरथ ने कपूर को गजनवी की खिदमत में रख दिया। अच्छी खिदमते करने की वजह से महमूद ने कपूर को व्यास नदी के पास का इलाका बता दिया वहीं पर उसने कपूरथला नामक नगर बसाया। किन्तु गजनवी आँधी के बाद जयपाल ने तुरन्त ही कपूर्थला कपूर से छीन लिया। जेसलमेर मे उस समय उनका बडा भाई राजगद्दी का मालिक बन चुका था वहाँ कपूर को जागीर मिली। बाद मे कपूर से भूनी, भूनी से हरपाल, हरपाल से उधरन, उधरन से चन्द्रपाल, चन्द्रपाल से तुलसी इस समय तक जागीर कायम रही। बादशाह अकबर के इशारे से हरराय रावल ने जागीर छीन ली। तुलसी से रूप उससे ककड उससे मगराज, उससे सलो, उससे सेतासिह राऊ उससे बुद्धसिंह, उससे गंडासिह, उससे सुदावसिंह,

सुदावसिंह ने हाकिम लाहौर से रकवा लेकर आहलू, हलू,साहदू, हूर और चक नामक पाँच गाँव आवाद किये। अपनी रिहायश आहलू गाँव मे रक्खी इससे अब इनका वंश अहलूवालिया के नाम से मशहूर हो गया।

यह तो साबित हो गया कि यह खानदान ऊचा और चन्द्रवशी कृष्ण से मिलता है और जैसलमेर की शाखा है। परन्तु कलाल लोगों के साथ कैसे सम्बन्ध हो गया अब यही बताना शेष है। 'इस खानदान के लोग जैसलमेर से सुदूर पंजाब में आकर बसे तो पहाड़ी राजपूतों से तो कुछ परिचय था नहीं और राजपूताने को आने-जाने के मार्ग सरल नहीं थे। अत. कलालों के साथ ही शादी-व्यवहार करने लग गये और राजपूत से कलाल बन गये। अब यातायात के साधन सुगम होने की वजह से यह उचित समझा गया कि पुन' अपनी राजपूत बिरादरी मे भी शामिल हुआ जाय। कोशिश और प्रचार से यह मौका आया कि महाराज जगजीतसिंह (आहलू वालिया) का रिश्ता खान्दान गुलेर के ठाकुर रनजीतसिंह की बहिन के साथ होगया। रनजीतसिंह की एक बहिन राजा चम्पा से व्याही गई थी। इस प्रकार आहलूवालिया पुन अपनी पुरानी राजपूत बिरादरी मे शामिल हो गये।"

हम समझते है कि सिख होने पर भी यदि किसी को यह खयाल रहता है कि अमुक बिरादरी हमारे से ऊँची है तो हम कहेंगे कि उन्होंने सिख धर्म के आदर्श को हृदयंगम नहीं किया। कलाल खुद कोई नीची जाति नहीं है। उनका पेशा नीचा जरूर है शराब निकालने और इसे बेचने वाले लोग कलाल कहलाने लग गये थे। वास्तव मे वे उन हैहयवंशी क्षत्रियों में से हैं, जिनका परशुराम काल मे ब्राह्मणों से सघर्ष हुआ था और जिनके पूर्वज सहस्रबाहु जैसे योद्धा के राजहीन होने पर उनके दल महिपमती नगरी व उस प्रदेश को छोडकर देश के विभिन्न भागों मे फैल गये। अफगानिस्तान मे भी वे हाहज नाम से अनेकों वर्ष राज्य करते रहे। अरब विजेताओ के अफगानिस्तान पर हमला होने के समय पजाब में आ गये और यहाँ हैहय से हैहयवाले अहहवाले या आहलूवाले कहलाने लग गये। अफगानिस्तान में अगूरों का रस पीते या दाखों का रस (शराब) पीने और बेचने मे लग पड़े थे। चूंकि वैष्णव धर्म मे

शराब का बड़ा निषेध है अत वैष्णव प्रवृत्ति के लोग उन हैहय अथवा आहलू लोगों को कुछ हीन समझने लगे। वास्तव मे वे रक्त से क्षत्रिय ही थे। मध्यप्रान्त मे अब भी हजारों हैहय क्षत्रिय हैं।

जैसलमेर से ही सिजरा मिलाने का कारण यह है कि जैसलमेर के लोग भी अफगानिस्तान मे ही लौटकर आये थे और सम्भव है कि वे भी हैहय वशी ही हों और भारत मे लौट कर उन्होंने वातियाना प्रदेश मे जिसे सस्कृत ग्रन्थों मे वाति भय के नाम से याद किया गया है और सिंध से मिला हुआ बताया गया है, शक्ति प्राप्त करली और वैष्णव धर्म को ग्रहण करके राजपूत कहलाने लग गये हों।

हम खूब जानते है कि महाराज श्रीकृष्ण की सन्तान के लोग गजनी नहीं गये थे और न उनके किसी लडके का नाम गज था ही। उनके पुत्र का नाम वज्र था जो वज्रपुर (साइबेरिया) और पुन जदूका दूग मे बसा था। काबुल गजनी मे हैहय लोग ही पहुँचे थे और यह हैहय भी यदुओं की ही एक शाखा थे। इसलिये इन्हे या जैसलमेर वालों को यदुवशी तो कहा जा सकता है और सालिवाहन का वशज भी माना जा सकता है किन्तु कृष्ण से उनका सीधा सम्बन्ध कठिनता से जुडता है। किन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं वे क्षत्रिय है और चन्द्रवशी क्षत्रिय है। किन्तु हैं हैहयवशी। हैहय से हैहयलू वाले और अहयलूवाले तथा अहलूवाले सहज ही बन जाते है।

भाटों ने जो वशावली और तर्ज इस खान्दान को बताई वह स्वाभिमान को गिराने वाली है। और उससे केवल इतना ही हो सकता है कि कपूर्थला का राजघर तो राजपूतो मे मिल सकता है किन्तु अन्य सारी बिरादरी उनकी जहाँ की तहाँ ही रही जाती है जिसके बल पर सरदार जस्सासिंह ने उन्नति की थी और उन्नति का फल आज का कपूर्थला राजवश है। वास्तवमे उनकी सारी ही बिरादरी क्षत्रिय है आज से नहीं लाखों वर्ष से वह किसी भी कलारिन के साथ शादी करने से कलार नहीं कहलाई किन्तु आपत्ति-काल मे शराब बेचने का धन्धा करने के कारण कलाल कहलाई और जब उसने तलवार पकड ली अमृत चख कर सिंह बन गई तब फिर वही उसका पुराना क्षात्र तेज चमक उठा और क्षत्रिय नाम से अभिहित होने के अधिकार को प्राप्त कर गई।

भाटों की पोथियों और सिजरों पर अविश्वास के कई कारण होते हैं उनमे एक यह भी है कि उन्होंने जो नामों की सूची दी है, वह इस बात को साबित नहीं करती कि जिस समय का वे उस नाम को बता रहे है। उस समय ऐसानाम रक्खा भी जाता था क्या ?

उदाहरणार्थ शालिवाहन के लड़कों मे धर्म,जगपाल, अजल, चन्द्र, बीजलजी, कालनजी, चाचूजी आदि नामों को देखिये। जगपाल जैन पद्धित का नाम है और ऐसे नाम दसवीं सदी मे बहुत रक्खे जाते थे। चन्द्र सस्कृत नाम है ऐसे नामों का रिवाज प्राचीनकाल मे बहुत था। बीजलजी कालनजी ये ठेठ मारवाड़ी नाम हैं। चाचू जी भी मारवाड़ी है किन्तु बिल्कुल गँवार ढग का। यह सहज ही बता देते हैं कि सब मनगढ़न्त नाम हैं। कहाँ शालिवाहन जैसा शुद्ध नाम और कहाँ उसके साथ चाचू जैसे गँवार नाम।

पटियाला, नाभा, जीन्द और फरीदकोट के पूर्वजों के सैकडों नामो की इसी प्रकार मनगढ़न्त की गई है। जयपुर, उदयपुर के पुरुषाओ के नामों मे भी यही तमाशा है। इसीलिये अब ऐतिहासिक विद्वान भाटों की वशावलियों पर बहुत ही कम विश्वास करते हैं और वे इतिहास को भी विज्ञान की कसौटी पर ही कस कर आगे बढ़ते हैं।

हमने जो स्थापना आहलूवालियों के लिये की है वह वैज्ञानिक है और सचाई के बहुत पास है।

खैर कुछ भी हो सरदार जस्सासिंह के इस वंश ने खूब उन्नति की और अपना एक स्थान बना लिया।

चूंकि इस मिसल के इतिहास मे सरदार जस्सासिंह जी का हम काफी वर्णन कर चुके है। इसलिये उनके इति-वृत को दुहराना अब उचित नहीं समझते। अत उनसे आगे का वर्णन यहॉ पर अंकित करते हैं।

सर लेपिलग्रिफिन ने पजावी रियासतों का इतिहास लिखा था। उनके बाद कुछ और अंग्रेज लेखकों ने भी लिखा। कपूर्थला राज्य के भी उन्होंने उस इतिहास का काफी वर्णन किया है जो प्राय सारा उस इतिहास के आधार पर है जो कपूर्थला के दीवान श्री रामजसजी साहब ने लिखा था। हमारे सामने लेपिलग्रिफिन और रामजसजी दोनों के इतिहास है ही साथ ही सिख इतिहासकारों के लिखे विवरण भी मौजूद हैं। उन सब तथा अन्य इतिहासो के आधार पर ही हम यह इतिहास लिख रहे हैं।

सरदार भागसिंह जी का थोड़ा सा वर्णन तो हमने इस मिसल के इतिहास मे कर दिया है किंतु विस्तार से उनका परिचय देना चाहते हैं॥ जस्सासिंह जी के बाद आप उनके उत्तराधिकारी हुए। आपने इस अवसर पर सिख संस्थाओं को बहुत कुछ दान दिया।

सरदार भाग सिंह

भागसिंह जी के आरम्भिक समय मे उनका बहुत सा इलाका उनके हाथ से निकल गया क्योंकि सरदार जस्सासिंह जी की बहादुरी से जो लोग डरते थे। अब वह निडर हो गये। नकई सरदारों ने भी कुछ इलाके पर कब्जा कर लिया। भागसिंह लगभग एक वर्ष तक चुप रहे क्योंकि शोक के दिनो मे वे कोई बखेड़ा नहीं उठाना चाहते थे।

कहा जाता है भागसिंह जी बड़े दयावान और उदार थे। वे किसी को भी तकलीफ नहीं देना चाहते थे। कीड़े-मकोड़ों पर भी दया करते थे। दुश्मनों ने उनके इस स्वभाव से भी लाभ उठाया। अनेकों मातहत मालगुजारों और मांडलिकों ने मालगुजारी व खिराज देना बन्द कर दिया। लाचार भागसिंह जी को कमर कसनी पड़ी पहले तो उन्होंने नकई सरदारों से अपने दबाये हुये इलाके को वापिस किया फिर गुरुबख्शसिंह को जीता तथा उसका इलाका जब्त कर लिया किन्तु उससे सुलह होगई और उसका इलाका वापिस कर दिया।

इसके बाद मलूवाल और बाजीदपुरा पहुँचे। और यहां से कसूर पर जयसिंह कन्हैया के साथ चढ़ाई की और कसूर को जीतने मे जयसिंह की मदद की। इसी साल मुल्तान पर चढ़ाई की जिसमें मुल्तान के नवाब मुजफ्फरखॉ का चाचा मारा गया। नवाब ने अधीनता स्वीकार करली और प्रतिवर्ष नजराना देने का भी इकरार किया। मुल्तान से वापिस होकर रास्ते के बागियों को ठीक करते हुये लहनासिंह भंगई से मिले। फतिहाबाद आकर उन्होने बुद्धामल दीवान की शिकायतों पर ध्यान दिया और उनको निकाल कर नया दीवान रखने का विचार किया।

सम्वत् १८४२ मे सुकरचक सरदार महासिंह और भगई लोगों मे लडाई हुई। आपने मौके पर पहुँच कर महासिंह की मदद की और भंगैयों को हराया। इसी साल राजा संसारचन्द्र को अपने मित्र कन्हैया जैसिंह के उस इलाके से निकाला, जिस पर कि वह पिछली लड़ाई मे काबिज हो गया था। किन्तु भगी सरदार गुलाबसिंह ने इस मौके पर भागसिंहजी के कुछ इलाके को दबा लिया। इसलिये गुलाबसिंह से भी लड़ना पड़ा, जिसमें जीत इन्हें ही मिली।

संवत् १८४६ में कांगड़े के राजा ससारचन्द और कन्हैया लोगों मे लड़ाई हुई। इस लड़ाई मे

रामगढ़िया लोग संसारचन्द के साथ मिल गये। भागसिंह जी को यह वात वुरी लगी और उन्होंने कन्हैया मिसल की मदद की। ससारचन्द का भाई मानचन्द लड़ाई से भाग गया और इस प्रकार मैदान कन्हैया लोगों के हाथ मे रहा। यहाँ से मालेरकोटला, नाभा, जीन्द, पटियाला होते हुए आप आनन्दपुर पहुँचे, जहाँ वेदियों ने उनसे चमकौर वगैरह के उन इलाकों को वापिस दिला देने की प्रार्थना की जो डल्लेवाली मिसल के वहादुर लोगों ने अपने कब्जे मे कर लिये थे। इन दिनो दीवान वुद्धासिंह भी वहुत खिलाफ हो गया था उसने एक जमात इकट्ठी करली थी। भागसिंहजी ने उसे निकाल दिया और सरदार दीवानसिंह को उसकी जगह पर मुकर्रिर किया।

सम्वत् १८४८ मे भागसिंहजी के सुपुत्र फतहसिंह जी के चेचक निकली और इस जोर से निकली कि उनकी जान मुश्किल से वची। इसलिये इस वार कहीं भी नहीं गये।

सम्वत् १८४६ वि० मे ज्वालादेवी के दर्शनों के लिये पधारे और वहा पर राजा ससारचन्द से भेट की। राजा संसारचन्द वड़ा चलता पुरजा शख्स था। इसलिये उसने इन्हे अपना पगडीपलट दोस्त वना लिया। कागडा मे कुछ दिन रहकर अन्य पहाडी रईसो से मुलाकात की। यहीं पर जसवान के राजा ने मुलाकात मे आपको बढिया-बढ़िया घोडे भेट किये थे। सरदार तारासिंह और लालसिंह जिनमे आपस मे वैमनस्य था—यहाँ आपसे मिलने आये। आपने सवसे पहले उनका यह काम किया कि उन दोनों मे सुलह करा दी।

सवत् १८५० मे भागसिंहजी ने माझा प्रदेश का दौरा किया जडियाल मे उन्हे दीवान अमरदास विश्वम्भरदास ने घोडे भेट किये।

तरनतारन मे पहुँच कर गुलावसिंह भंगई से उन आदमियो को अपने कब्जे मे लिया जिन्होंने बघेलसिंह के मुख्तार को मौजा चवाल मे मार डाला था। कहा जाता है वघेलसिंह ने आपसे पुकार की थी और इसीलिये आपको तरनतारन पर चढ़ाई करनी पडी थी।

खोलर के किले पर जो कि रामसिंह हिन्डोरिया का था वुधसिंह सिंहपुरिया ने आकर कब्जा कर लिया था। राजा ससारचन्द ने अवसर पाकर वुधसिंह पर इसी वर्ष चढ़ाई करदी। भागसिंहजी ने वुधसिंह की मदद की। एक गहरी लडाई के वाद राजपूत सरदारों ने आपसे सुलह की प्रार्थना की। आप भी सुलह चाहते थे इसलिये इस वायदे पर कि आधा-आधा इलाका दोनो पक्षों को दे दिया जावे और सिंहपुरिया अपना दूसरा किला बना ले। सुलह हो गई। इस लडाई से वुधसिंह को वहुत नुकसान हुआ था। उसके दो लडके धर्मसिंह और अमृतसिंह मारे गये किन्तु ज्यादती भी उन्हीं की थी क्योंकि उन्होंने हिन्डोरिया के इलाके पर कब्जा कर लिया था।

सवत् १८५१ मे जव कि सरदार भागसिंह जी अमृतसर मे ठहरे हुए थे शाहजमान अमीर काबुल ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय जो भी सिख अमृतसर मे थे वे छिपने के लिये चले गये किन्तु भागसिंह डटे रहे। परन्तु शाहजमान हसन अब्दाल से ही लौट गया। इस वर्ष अमृतसर के आस-पास के इलाके मे बडा अकाल पड़ा। मवेशी और आदमी सभी पानी के लिये तरसने लगे। आपने सर्वसाधारण के लाभ के लिये देवी द्वारे के पास एक तालाव बनवा दिया। दूसरे वर्ष आप आनन्दपुर गये और वहाँ से लौटकर अपने लड़के फतहसिंह को साधुसिंह अकालवुंगा से पाहुल दिलाई।

आपके हृदय मे अपने धर्म के प्रति बडी श्रद्धा थी। अमृतसर की रक्षा के लिये आप सदैव तैयार रहते थे यही कारण है कि सवत् १८५३ मे भी आप शाहजमान का मुकाविला करने और अमृतसर

की रक्षा करने के लिये मय फौज तैयार रहे। शाहजमान के लाहौर से ही लौट जाने के बाद आपने बड़ी धूम-धाम से इसी वर्ष अपने लड़के की शादी की।

मियानी जिसे कि सरदार जस्सासिंह ने विजय किया था। अब उस पर पठान काबिज हो गये थे संवत् १८५४ मे भागसिंहजी ने उस पर चढ़ाई की किन्तु मौसम अनुकूल न होने से विजय प्राप्त नहीं हुई। इसी बीच रामगढ़ियों से लड़ना पड़ा। वर्षा के बीतने पर मियानी पर चढ़ाई की और पठानों को मार भगाया।

इस साल दीवान लाहौरीमल से भी झगड़ा हो गया। दीवान तबेले से एक घोडा लेगया था। उसे टिक्का फतहसिंह भी चाहते थे। मांगने पर लाहौरीमल ने यह कह कर देने से इनकार कर दिया कि यह मैंने लड़के के लिये लिया है।

फतहसिंह जी को लाहौरीमल की यह बात बहुत अखरी और दूसरे दिन जबकि लाहौरीमल दरबार में आया उसे गिरफ्तार करा के उसकी बड़ी बेइज्जती कराई और उसकी जागीर के गॉव भी छीन लिये तथा उसे मंसूरवाले के किले मे कैद कर दिया। कोई दुश्मन उसे उड़ा न ले जाय इसलिये फतहसिंह ने अपना कैम्प भी मंसूरवाला ही में लगा लिया।

टिक्का फतहसिंह वास्तव में बड़े कड़े मिजाज के थे। वे किसी के अभिमान को भी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। बल्कि यह कह सकते हैं कि वे खुद अभिमानी थे। सवन् १८५५ मे जब कि वे अपने इलाके में दौरा पर गये और फतिहाबाद मे ठहरे हुए थे। मिलने के लिये आने वाले जमीदार और इलाकेदार आपके बराबर और उसी चारपाई पर बैठते रहे जिस पर कि फतहसिंह बैठे थे। इससे वे चिढ़ गये और दूसरे दिन उन्हे खेमे मे बुलाकर गिरफ्तार करा लिया। और उन्हे बांधकर कपूर्थला ले आये।

यह गिरफ्तारी भी बड़ी धोखे से कराई थी बड़ी इज्जत से सबको बुलाया और फिर नाच कराया। जबकि सब लोग देखने में मस्त थे। आपने बाहर निकाल कर खेमे की रस्सिया काट दीं।

यह गिरफ्तारी केवल इन्होंने अपना रौब डाटने के लिये कराई थीं। और हुआ भी ऐसा ही लाहौरीमल की बेइज्जती और इलाकेदारों की गिरफ्तारी से उनका रौब समस्त रियासत में बैठ गया।

सम्वत् १८५६ वि० मे युवराज फतहसिंहजी समेत महाराज ने सतलज पार रायकोट की तरफ जाकर वहॉ के रईस और जागीरदारों से कर वसूल किया जिन्होंने कि कई वर्ष से कर देने के नाम पर चुप्पी साध ली थी। इसी साल नागोके गॉव को भी वहॉ के रईस गुलाबसिंह से छीनकर खालसे मे मिला लिया। यह नागोके रामगढ़िया के इशारे पर यहॉ के नायकों के शरारत करने पर खेड़ा के गुलाबसिंह के सुपुर्द कर दिया गया था, किन्तु गुलाबसिंह ने भी काबुल की ओर से शाहजमान अमीर की आमद का हाल सुनकर कर चुकाने मे ढिलाई की थी। इसीसे गुलाबसिंह से यह गॉव छीना गया और इस इलाके को काबू मे रखने के लिये यहॉ एक गढ़ भी बनवाया।

वह जमाना ही शरारत और अराजकता का था। एक दो गॉव नहीं किन्तु अनेकों गॉव विद्रोही हो जाते थे सतलज के पार के इलाके मे ऐसे अनेकों गॉवों को काबू में करना था इसलिये दूसरे वर्ष सवत १८५७ मे युवराज फतहसिंह को महाराज ने सहोड़, खानपुर, हसनपुर, मझोली, सरसोहाग, रुडकी और सकरल्ला-पुर आदि के लोगों को दबाने के लिये भेजा। सरदार रणसिंह के साथ फतहसिंह जी ने इन सभी इलाकों के लोगों को काबू मे करके मालगुजारी वसूल की। थोड़े दिनों बाद उन्होंने तलवंडी के चौधरी कादिर, बख्श को मुलाजिम रख लिया जो मालगुजारी वसूल करने के मामलों मे काफी चतुर था। कादिरबख्श के साथ

व्यास नदी की ओर के अपने इलाकों में जाकर फतहसिंह जी ने फिसादी लोगों को ठीक भी किया। लेकिन अभी तक माम्ह के इलाके में वही बदअमनी चल रही थी। डकैतियों का भी खूब जोर था। अत महाराज और युवराज फतहसिंह जी लाहौर होते हुए संगतपुर पहुँचे और वहाँ एक किले की नींव डाली। सरहाली के डाकू प्रसिद्ध थे। सारे प्रदेश की लूट का माल सरहाली ही इकट्ठा होता था। फतहसिंहजी ने सरहाली को लूटने की तैयारी की और वे इस काम में सफल भी हुए। सरहाली की लूट से उन्हें बहुत-सा धन हाथ लगा। साथ ही लुटेरों को भी सबक मिल गया। इसके बाद फतहाबाद होते हुए गोइन्दवाल पहुँचे। जहाँ प्रसिद्ध डाकू सुजानसिंह निहंग को मारा जो दैवात गोइन्दवाल के जंगलों में मिल गया था।

अगले साल जबकि महाराज करतारपुर में थे। कांगडा के राजा ससारचन्द ने अपनी ओर के उस इलाके पर हाथ साफ करना शुरू कर दिया जो कि कपूर्थला के मातहत था। अत महाराज ने सरदार हम्मीरसिंह को ससारचन्द का सामना करने के लिये भेजा किन्तु हम्मीरसिंह जख्मी होकर वापिस लौट आया। इसलिये महाराज और युवराज दोनों ने लडाई के लिये तय्यारी की किन्तु फगवाडा के मुकाम पर अचानक महाराज के पैर में फोडा निकल आया। इसलिये वापिस कपूर्थला लौट आये और वहीं संवत १८५८ के आषाढ मास की २८ वीं तिथि को स्वर्गवास हो गया। कहा जाता है कि उनके मृत्यु-दिवस तक नित उनके पास वाहिगुरु का कीर्तन हुआ करता था और नित ही सैकडों आदमियोंको भोजन कराया जाता था।

महाराज साहब संत प्रकृति और दयालु पुरुष थे। अधिक समय वे वाहिगुरु की याद में लगाते थे। दान पुण्य भी वे नियमित रूप से करते थे। नित एक जाप करने का उनका सकल्प था। नये आये हुए ब्राह्मण, साधु और सिख संतों का आतिथ्य भी उनकी भोजन शाला में होता था। प्रजाजनों की दरख्वास्तों पर खुद ही गौर करते और जहाँ तक भी होता इन्साफ भी खुद ही करते थे।

साधु-संतों और पडितों के सत्सग में नित शामिल होते और लाभ उठाते। गर्ज यह कि वे हर प्रकार से धार्मिक जीवन वितानेवाले राजा थे।

महाराज भागसिंह जी के बाद उनके सुयोग्य पुत्र श्री फतहसिंह अपने पिता की गद्दी पर बैठे। उनकी गद्दी नशीनी की रस्म का उत्सव संवत १८५८ के सावन महीने में हुआ। जिसमें महाराज की ओर से सरदारों को खिल्लतें बख्शी गईं और दूसरी रियासतों और जागीरों की ओर से भेंट स्वीकार की गई।

महाराजा फतहसिंह

दूसरे वर्ष बन्डाला के बागी जमींदारों को वश में किया। और उसी वर्ष महाराजा रणजीतसिंहजी के स्वागत में फतहाबाद में उत्सव मनाया गया। कहा जाता है कि महाराजा रणजीतसिंह इनसे इतने खुश हुए कि उन्होंने इन्हें अपना पगडी-पलट दोस्त बना लिया और इसकी रस्म अमृतसर में जाकर पूरी की गई।

सरहाली कस्बा इन दिनों फिर हाथ से निकल चुका था। उन लोगों ने भंगी सरदारों से दोस्ती गाठ ली थी। इसलिये फतहसिंह जी को अमृतसर से लौटकर सरहाली पर आक्रमण करना पडा। सरहाली का नेता अमरदास मारा गया और कस्बा पुन कब्जे अहलूवालियान में आ गया। सरहाली का अभी प्रबन्ध किया ही जा रहा था और वहाँ किला बन रहा था कि महाराजा रणजीतसिंह का सदेश जामकीपुर में पहुँच कर मदद देने के लिये आ गया। रावी को पार करके आप वहाँ पहुँचे और जामकीपुर को जीतने में मदद की। यहाँ पर अन्य भी अनेकों रईस और जागीरदार जिनमें गुजरात और पठानकोट के भी रईस थे आकर हाजिर हुये और फतहसिंह जी ने उन सबको रणजीतसिंह जी की अधीनता स्वीकार

कराकर अभयदान दिला दिया। इसके बाद अमृतसर की होली मनाते हुए कपूर्थला लौटे और यहाँ आकर खड्डरगाँव, लखनपुर और कटोटा पर दखल किया जोकि गुलाबसिंह गन्दे, संसारचन्द कांगडिये और बुधसिंह नकरिये के कब्जे मे पहुँच चुके थे। इसके बाद जमालपुर, चम्पा और सुजानपुर पर भी अधिकार जमाया।

सम्वत् १८६० वि० मे कसूर को विजय कराने मे महाराजा रणजीतसिंह जी की सहायता के लिये फतहसिंह जी कसूर पहुँचे। यहाँ से कोट ईसाखा पर चढ़ाई की जहा पर कि भंगासिह और सरदार रामसिह का कब्जा हो चुका था। किन्तु फतहसिह जी का आना सुनकर उनके अनेक साथी उनका साथ छोड़कर फतहसिंह जी से आ मिले। इस हालत को देखकर भगासिह ने खुद हाजिर होकर अधीनता स्वीकार कर ली और कुछ रकम भी भेट की।

भंगी सरदार सदैव ही महाराजा रणजीतसिंह की मुखालिफित किया करते थे। अत फतहसिह ने यह उचित समझा कि अपने पड़ोस के भंगी इलाके कब्जे मे कर लिये जावे। इसलिये सम्वत् १८६१ वि० मे उन्होंने लखनपुर, सगतपुर, फाखड़याना आदि इलाके रामगढियों से अपने कब्जे मे करते हुए उनके कई किलों पर कब्जा कर लिया। जिनमे किला गूजरसिंह और खुसरो भी थे। यह किले उन्होंने रणजीतसिंह जी को दे दिये। इसी वर्ष झंग की लड़ाई मे महाराजा रणजीतसिंह जी का साथ दिया और यहाँ की फतह मे से एक तोप आपने पसंद की। इधर संसारचन्द ने जोधसिंह रामगढ़ियों को साथ लेकर फिर ऊधम मचाना शुरू कर दिया था। इसलिये डरोली के मुकाम पर उसके भी होश ठीक किये किन्तु राजा संसार-चन्द सहज ही मानने वाला आदमी थोड़े ही था। चन्द दिन मे ही फिर चढ़ आया। महाराज ने चौधरी कादिरबख्श को भेजकर रणजीतसिंह जी को बुलावा लिया। विजवाड़े के मुकाम पर लडाई हुई। खूब जोरो की हुई, इसमे महाराज फतहसिंह जी एक गोली से बाल-बाल बचे। दो दिन तक लडाई चलती रही। ससारचन्द की फौज रात्रि के समय भाग गई और उसका बचा सामान फतहसिंह जी ने अपने अधिकार मे ले लिया। कहा जाता है इस लड़ाई में कई सिख जत्थेदार ससारचन्द के साथ थे किन्तु जहाँ रणजीतसिंह और फतहसिंह दोनों साथ हों। वहा कौनसी शक्ति थी जो हार खाकर न जाती।

फतहसिंह जी शिकारी भी अव्वल दर्जे के थे। इसी साल महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ जब विजवाड़ा की दुबारा मुहीम से आनन्दपुर लौट रहे थे तो रास्ते में किसी ने खबर दी कि इस जंगल मे दो खौफनाक शेर रहते हैं। आप चन्द सवार लेकर शेरों की खोज में जंगल मे घुस गये। एक शेर मिल गया जो झपटकर आपके ऊपर आया। बीच ही मे उसके गोली लग गई। जिससे उसने गुस्से के मारे हाथी मे ऐसे जोर का थप्पड़ मारा कि हाथी बैठ गया। आप हाथी पर से कूद पड़े और तलवार लेकर शेर पर टूट पड़े और जमीन पर मारकर गिरा दिया। फिर घोड़े पर चढ़ कर दूसरे शेर की तलाश मे चले हालाकि दिन छिप चुका था और साथ के सरदार भी मना करते थे। पर आप न माने। आगे जाकर देखा कि शेर एक सवार को मार कर गुर्राता हुआ जा रहा है। आपने उस पर गोली छोड़ी। गोली के लगते ही वह चिंघाड़ कर पीछे को लौटा। उसकी चिंघाड़ को सुनकर घोड़ा भाग निकला उसे आपने मुश्किल से रोका और फिर एक निशान लगाया। इस तरह उस शेर को भी मार डाला। आपकी इस प्रकार की बहादुरी से महाराजा रणजीतसिंह जी बड़े प्रसन्न हुए।

दूसरे वर्ष आपने ज्वाला जी के पास के जंगलों में शेर का शिकार किया। इस वर्ष भी महाराज रणजीतसिंह जी साथ थे। क्योंकि दोनों ही पटियाला आदि रियासतों को देखने के इरादे से निकले थे और

फिर वहाँ से ज्वाला जी के दर्शनार्थ इधर आ निकले थे। रास्ते में विलासपुर हुशियारपुर आदि स्थानों को भी देखा-भाला था। यहाँ से लौटकर दोनों राजाओं ने झंग पर चढ़ाई की और फिर चूहड़चक और कमाल-गढ़ वगैरह को कब्ज़े मे किया।

इसी साल जसवन्तराय होलकर महाराजा रणजीतसिंह से मिलने और अंग्रेजों के विरुद्ध मदद मांगने आया, जिसमें फतहसिंह जी ने यही सलाह दी कि अभी हम लोगों की तो ताकत ही बढी है और आन्तरिक शांति ही अपने यहाँ है। ऐसी हालत मे किसी बखेडे मे पडना कतई ठीक नहीं होगा।

लार्ड लेक होलकर का पीछा करता हुआ व्यास के किनारे पड़ा था। आप उसके पास भी पहुँचे और सब प्रकार की रसद आदि की उसे सुविधायें भी कर दीं। लार्ड लेक फतहसिंह जी पर बहुत खुश हुआ और उसने इच्छा प्रकट की कि वे रणजीतसिंह जी के साथ भी हमारी मुलाकात और दोस्ती करादें।

फतहसिंह ने अमृतसर के मुकाम पर दोनों दलों का परिचय करा दिया और वहीं पर एक चणिक सन्धि भी रणजीतसिंह और कम्पनी सरकार के बीच करा दी। यह घटना संवत् १८६२ वि० तदनुसार सन् १८०५ ई० २४ दिसम्बर की है। अहदनामे का सार इस प्रकार था —

"होलकर के साथ हमारा दोनों का कोई सम्बन्ध न होगा और उसे अपने राज्यों मे भी अंग्रेजों के विरुद्ध शरण न देंगे। कम्पनी की ओर से विश्वास दिलाया गया था कि यह भी उनके इलाकों की ओर न बढ़ेगी और न होलकर को आने देगी। इस सुलह के बाद दोनों ओर से कुछ तोहफे एक दूसरे को दिये गये और अंग्रेज अफसरों ने महाराज फतहसिंह जी का बहुत अहसान माना।

कहा जाता है महाराजा रणजीतसिंह जी भी फतहसिंह जी की चालाकी पूर्ण चतुराई से बहुत खुश हुए। इसके बाद दोनों अपनी २ राजधानियों को वापिस लौट आये। कपूर्थला आकर आपने कुछ व्यवस्था-सम्बन्धी कार्य्यों का निरीक्षण किया।

सवत् १८०६ मे चाहली का प्रबन्ध किया। वहाँ पर दसौंधासिंह को थानेदार नियुक्त किया। इसके बाद महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ कसूर की लूट मे शामिल हुए। जोधसिंह रामगढ़िया के इलाके को भी लूटा। वह बेचारा गोविन्दपुर की ओर भाग गया। इस वर्ष के हमले मे कसूर के कुतुबुद्दीन ने अधीनता स्वीकार करली और कसूर को महाराजा रणजीतसिंह जी के सुपुर्द कर दिया। उसे गुजारे के लिये ममदूट का इलाका मिल गया। कसूर की विजय के बाद आप रणजीतसिंह जी से अलग होकर अपने इलाके के उन स्थानों का दौरा करने लगे जहाँ से कर वसूल नहीं हो रहा था। इसी सिलसिले मे जगराव को मुख्ताररायं से छीन कर अपने कब्जे मे कर लिया। उसकी रानी को गुजारे के लिये कस्बा कोटराय दिया। इन्हीं दिनों रणजीतसिंह जी के साथ झग पर लडाई मे जाना पड़ा। वहाँ से लौट कर तलवडी को सोढियों के सुपुर्द किया जो कि २०-२५ वर्ष से झग के सिखों ने अपने कब्जे मे कर लिया था। यहाँ से आगे मासूमपुरा को बेदियों से छीन कर डलासिंह को वापिस किया। वहाँ से फिल्लौर लुधियाना होते हुए पायल मे पहुँचे जहाँ कर्मसिंह निर्मले और महताबसिंह भगई के झगडे को तय किया और कर्मसिंह का इलाका सरायदोराहा उसे वापिस दिलाया। अनन्तर मालवा के जमींदारों से कर वसूल करते हुए और उन सभों के मिजाजों को ठीक करते हुए जो सिर फिरे हो गये थे वापिस कपूर्थला आये।

सवत् १८६४ वि० मे महाराज रणजीतसिंह जी के साथ आप पटियाला गये। वहाँ से नारायनगढ़ को जोकि इस समय सिरमौर के कब्जे में चला गया था बाद लडाई के वापिस लिया। डक और पजलासा मे चौकियाँ कायम कीं। यहाँ से मय रणजीतसिंह जी के कपूर्थला मे आये जहाँ महाराजा

रणजीतसिंह जी का स्वागत सत्कार किया। तथा राज्य के बडे-बडे स्थान दिखाये। इनमें लुधियाना जगरांव के नाम उल्लेखनीय हैं। अपने राज्य की सैर कराने के बाद नाभा, पटियाला और नाहन राज्यों मे रणजीतसिंह जी को सैर कराई और फिर नारायनगढ़ पर चढ़ाई की। क्योंकि इस अर्से में वह हाथ से फिर निकल चुका था। अब की बार उसका गढ़ विसमार कर दिया। वहाँ से दौलतमड़हाया पर चढ़ाई की जहाँ धर्मसिह अमृतसरिया इलाकेदार था किन्तु वह खिदमत में हाजिर नहीं हुआ। वहाँ से हुशियार-पुर अन्तबोटा होते हुए वापिस राज्य में आगये। रास्ते मे ज्वालामुखी के भी दर्शन किये, जहाँ रणजीतसिंह जी ने सोने का कलस चढ़ाया।

संवत् १८६५ वि० मे सर मेटकाफ साहब अमृतसर होते हुए कपूर्थला पधारे। जिनका राज्य की ओर से खूब स्वागत सत्कार हुआ। मेटकाफ साहब ने दूसरे दिन महाराज को अपने डेरे पर बुलाकर सत्कार किया तथा भेंट भी दी। यह खुशियाँ उस खुशी के उपलक्ष मे मनाई गईं जो फतहसिंह जी ने महाराजा रणजीतसिंह जी से एक अहदनामा करा कर अंग्रेजों के लिये पैदा की थीं। इस सन्धि के होने से पहले चार्लस, मेटकाफ आदि सारे ऊँचे दर्जे के अंग्रेज बड़े चिन्तित थे। उन्होंने कसूर के मुकाम पर फतहसिंह जी को बुला कर इस बात की कोशिश की थी कि किसी भी तरह रणजीतसिंह जी के साथ एक प्रमाणिक सन्धि हो जावे क्योंकि उस समय उन्हे नैपोलियन, रूस और काबुल सभी का खतरा था। फतहसिंह जी ने जब संधि करादी तो अंग्रेज बड़े खुश हुए और उसी की वजह से मेटकाफ कपूर्थला पधारे थे। कपूर्थला से वापिस दिल्ली जाकर भी उन्होंने कृतज्ञता-ज्ञापन के लिये एक पत्र लिखा जिसका सार यही है कि—आपने इस महत्वपूर्ण कार्य में हमारी जो मदद की उसके लिये हम सदैव कृतज्ञ रहेंगे। रणजीतसिंह के अयोग्य दोस्त उन्हे बहकाकर जो गलती कर रहे थे उसे आपने सुधार लिया।"

यद्यपि राजा संसारचन्द कागड़े वाला सदैव ही कपूर्थला राज्य को नुकसान पहुँचाने की चेष्टा में रहा किन्तु महाराज फतहसिंह जी ने उसकी मदद करने से इन्कार नहीं किया। सवत् १८६६ वि० मे जबकि उसके देश पर गोरखे चढ़ आये और काँगड़ा शहर पर कब्जा कर लिया। सिर्फ किला ही लेना बाकी था, फतहसिंह जी महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ काँगड़ा की रक्षा के लिये पहुँच गये और उसकी सहायता की अपील को स्वीकार किया। ज्वाला जी के मन्दिर मे बैठकर तय हुआ कि ससारचन्द के राज्य से गोरखों को निकाल देने के उपलक्ष्य में काँगड़ा का किला रणजीतसिंह जी को सौप दिया जायगा। संसारचन्द ने स्वीकार कर लिया। उन दिनों मानगंगा चढ़ी हुई थी। फतहसिंह जी अपनी सेना को हाथियों का पुल बना कर पार उतार ले गये। दूसरे दिन महाराजा रणजीतसिंह जी भी पहुँच गये। तीसरे दिन गोरखों से लड़ाई हुई। इस लड़ाई का नेतृत्व फतहसिंह जी ही ने किया पहाडी सेनाये गोरखों के नाम से ही घबराती थीं किन्तु सिखों के सामने वे ठहर न सकीं और कर्मसिंह थापा की सारी बहादुरी मिट्टी मे मिल गई। उसको विवश होकर पीछे हटना पड़ा। आध मील के फासले पर मारगढ़ के किले मे जाकर गोरखों ने पनाह ली। मारगढ़ पर हमला किया गया। गोरखे घबरा गये और उन्होंने प्राण-रक्षा का वचन लेकर किला खाली कर दिया। इसके बाद सब ज्वाला जी पर चले गये। यहाँ से पास ही रेहाना का किला था उसे भी फतहसिंहजी ने जाकर जीत लिया। महाराजा रणजीतसिंह जी ने बहुत चाहा कि इस किले पर फतहसिंह जी ही अपना अधिकार रक्खें किन्तु उन्होंने कह दिया यह समस्त विजय आपके नाम पर हो रही है। अत. यह सब आप ही का है।

सवत् १८६८ वि० में बुधसिंह फैजलपुरिया का इलाका महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपने राज्य

में मिला लिया। जिसमें से जालन्धर रणजीतसिंह जी ने अपने राज्य में रक्खा और तेहाड़ा व मल्हियाँ कपूर्थला को दे दिये। महाराज फतहसिंह जी चाहते थे यह कि बुधसिंह का सारा ही इलाका कपूर्थला के पास रहे किन्तु वे अपने मित्र को नाराज किसी भी बात पर न करना चाहते थे। इसी वर्ष आप के एक पुत्र रत्न भी हुआ जिसका नाम तेजसिंह रक्खा गया।

संवत् १८६६ वि० मे कोटलहर को पूर्णतया राजा ससार चन्द को आपने छोड़ दिया और महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ वेर साहब के दर्शन किये। तथा चढ़ावा चढाया। यहाँ से उन्हें अपने साथ कपूर्थला भी ले आये और आदर सत्कार से उन्हें कई दिन बतौर महमान के रक्खा। इन दिनों के बीच मे आपको राजौरी के इलाकेदार को काबू करने के लिये भी जाना पडा क्योंकि उसने बगावत मचाना शुरू कर दिया था। इतने दिनों रणजीतसिंह भी कपूर्थला मे ही ठहरे।

सम्वत् १८७० वि० मे जब कि कुंवर खडगसिंह और दीवान मुहकमचन्द अटक की रक्षा के लिये गये, आप भी उनके साथ गये। फतहखान नाम के एक मुसलमान सरदार ने अटक पर उसे रणजीतसिंह जी के अधिकार से निकाल लेने के इरादे से चढ़ाई की थी। फतहखान को फतहसिंह जी ने भगा दिया। वह उनके सामने न ठहर सका वहाँ से लौट कर आपने जडियाला का नया प्रबन्ध किया। विश्वम्भरदास को हटाकर कादिरबख्श के भाई गुलामगोस को इलाकेदार मुकर्रिर किया। विश्वम्भरदास जमीदारों को सताता था इसीलिये उसे हटाया गया। लेकिन इसी वर्ष फतहखा दुबारा भारी तैयारी के साथ फिर अटक पर चढ़ आया तो आपको पुन उससे लड़ने के लिये जाना पड़ा। हसन अब्दाल मे आगे बुरहानपुर मे खान से भिडन्त हो गई। उसके कुछ सिपाही गार में छिपे बैठे थे महाराज फतहसिंह ने उन गारों के मुँह पर तोपे लगा दीं जिनकी धुआधार मार से घबरा कर पठान भाग निकले। यह लड़ाई पाच रोज तक रही और इसमे सैंकडों आदमी फतहसिंह जी के भी काम आये किन्तु मैदान सिखों के ही हाथ रहा। इस जीत के उपलक्ष मे आपने सैनिकों को दिल भर कर इनाम बाटा और लूट मे जो जिसके हाथ लगा उसके ही पास रहने दिया।

सवत् १८७० और १८७१ के दोनो वर्ष फतहसिह जी ने अपने राज्य की आन्तरिक दशा के सुधार मे लगाये क्योंकि अभी तक लोग मालगुजारी और लगान देने मे आंखमिचौनी खेल जाते थे। भम्मर और राजोरी के राजाओं को भी वस मे किया और उन पर खिराज की रकम निश्चित कर दी।

अगले साल संवत् १८७२ वि० में बहावलपुर के इलाके मे मय लश्कर के गये। अब तक का जो मुआमला रुका हुआ था उसे वसूल किया। इस समय तक जोधसिंह फैजलपुरिया मर चुका था। उसका रहा-सहा इलाका जिसमे ओड मडतान्डह और विजैपुर वगैरह के इलाके थे अपने राज्य मे मिला लिये। धोट के इलाकेदार महासिंह की बहुत शिकायते थीं। अम्बाला से अक्टरलोनी ने भी उसकी शिकायत भेजी। अत. एक लड़ाई के बाद धोट को भी कब्जे में किया गया। इसके सिवा सलोदी, वंडाला, जस्सू माजरिया के इलाकेदारों से भी लड़ाई हुई किन्तु सब को वस मे कर लिया गया। अन्त मे फडोग को भी कब्जे मे कर लिया। इस प्रकार राज्य के एक बड़े भाग की अशाति को काबू मे किया गया। इसी वर्ष टिक्का निहालसिंह जी का जन्म हुआ जिसकी खुशी मे रणजीतसिंह जी भी कपूर्थला पधारे। सवत् १८७४ में फतहसिंह ने मुल्तान की लड़ाई में भाग लिया और तिलवा में अपना थाना कायम किया।

सवत् १८७६ में भूचरियों से दाइयान और भवानीपुर जब्त कर लिये। ये गांव उन्हें नौकरी देने के एवज मे दिये हुए थे। उनको अब नकद नौकरी तय कर दी। इस साल एक पुत्र का जन्म और

हुआ। नाम खुशालसिंह रखा गया किन्तु वह ६ माह का ही होकर चल वसा। इस वर्ष के अन्त में गन्द गढ पर चढ़ाई की। गन्दगढ़ कावू में तो आ गया किन्तु दीवान रामदयाल इस लडाई मे मारा गया। मंगेरा के नवाव को भी ठीक किया और उससे खिराज वसूल किया।

सवत १८७८ में एक पुत्र रत्न का और लाभ हुआ उसका नाम अमरसिंह रक्खा गया। इन वर्ष आप किसी लडाई मे शामिल नहीं हुए वल्कि महाराजा रणजीतसिंह जी के अटक की ओर अजीम खान से लड़ने के लिये चले जाने के कारण आपने लाहौर हुकूमत की देखभाल की। अगले वर्ष भी शान्ति से रहे।

संवत् १८८२ वि० मे किन्हीं खास वातों को लेकर आपके वीच और महाराजा रणजीतसिंह जी के वीच मन-मुटाव हो गया। फतहसिंह जी नाराज होकर जगरॉव आगये। लुधियाने और अम्वाला मे जो अंग्रेज अफसर थे। उन्होंने फतहसिंहजी को धैर्य तो वहुत दिलाया किन्तु वे कोई क्रियात्मक सहायता न कर सके। इधर रणजीतसिंहजी ने सारे राज्य को हडप करने का इरादा कर लिया किन्तु कुछ सोच समझ कर उन्होंने फतहसिंहजी को राजी करना ही उचित समझा और अमृतसर वुलाकर उनका राज्य उन्हे लौटा दिया और शपथ खाकर आगे उचित सम्मान करने का वायदा किया किन्तु कहा जाता है कि लगभग एक तिहाई इलाका तो फिर भी रणजीतसिंह जी ने कपूर्थले का दवा ही लिया। तवारीख कपूर्थला के लेखक ने वताया है कि ८८ इलाकों मे से ३६ इलाके रणजीतसिंह जी ने दवा लिये और ७०० सवारों की नौकरी दिलाना फतहसिंह जी से मंजूर करा लिया। इस तरह से कपूर्थला को रणजीतसिंह जी ने अव एक मित्र-राज्य के वजाय माडलिक-राज्य वना लिया। यह घटनाये सम्वत् १८८४ और १८८५ विक्रम की हैं।

हमें ऐसा जान पड़ता है फतहसिंह जी महाराजा रणजीतसिंह जी के इस न्याय से भी राजी ही हुए थे क्योंकि इसी वर्ष उन्होंने टिक्का निहालसिंह जी की शादी की जिसमे कि महाराजा रणजीतसिंह जी की ओर से उनके कुंवर नौनिहालसिंह और सरदार राजा ध्यानसिंह जी शामिल हुए थे। और इसी वर्ष दोनों महाराज पहाड़ों मे शिकार खेलने के लिये भी गये थे। दूसरे वर्ष सवत् १८८६ में उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी को भेंट में एक वहुत ही कीमती घोड़ा भेजा था जिसे पाकर महाराजा रणजीतसिंह उतने ही खुश हुए थे जितने कि मुल्तान की विजय से हुए थे। इससे अगले वर्ष महाराजा रणजीतसिंह को कपूर्थला वुलाकर फतहसिंह जी ने उनका शाही स्वागत किया जिसे देखकर लार्ड हार्डिङ्ग भी हैरान हो गया क्योंकि वह भी कपूर्थला आया हुआ था इन सव वातों से यही सिद्ध होता है कि महाराजा रणजीत-सिंह और फतहसिंह मे उस घटना के वाद भी वही प्रेम रहा। असल मे तो फतहसिंह जी ने जीवन भर कभी भी यह खयाल ही नहीं किया था कि रणजीतसिंह उनके वड़े भाई के सिवा कोई गैर हैं क्या?

सवत् १८८८ में टिक्का निहालसिंह को अमृतसर ले गये जहॉ महाराजा रणजीतसिंह से भी उनकी मुलाकात कराई।

संवत् १८६० वि० में पटियाला के साथ कुछ चख-चख हुई इसमे दोष पटियाले के ही अहलकारों का सावित हुआ। अम्वाला में जो स्कूल अंग्रेजों ने स्थापित किया था उसमे भी फतहसिंहजी ने पांच हजार रुपया सहायता स्वरूप दिया। इसी वर्ष कपूर्थला की चहारदीवारी की मरम्मत कराई तथा जहॉ-जहॉ मुनासिव समझा वहॉ किले वनवाये और जहॉ के किलों को अनावश्यक समझा मिसमार करा दिया। इसलिये टिक्का निहालसिंह ही महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ लड़ाइयों मे जाने लग गये थे। महाराजा

रणजीतसिंह जी ने उन्हे काश्मीर मे एक जागीर भी दे दी थी। सम्वत् १८७३ की पेशावर की लडाई में भी निहालसिंह जी शामिल हुए। इस समय फतहसिह जी ने रियासत के आन्तरिक प्रवन्ध मे बहुत सुधार किया। रियासत की हदवन्दी भी करालो। हदवन्दी के सिलसिले मे रियासत नाभा से खटकने के आसार पैदा हुए थे किन्तु परमात्मा की कृपा से सव काम हदवन्दी का विना किसी झगड़े के समाप्त हो गया।

हम यह कह सकते हैं कि महाराज फतहसिंह जी निहायत बुद्धिमान और वहादुर आदमी थे। उनके पिता के समय उनके राज्य की दशा निहायत डॉवाडोल होगई थी। सभी इलाके सिरफिरे हो गये थे। फतहसिंहजी ने उन सभी को धीरे २ अपने कावू मे किया और राज्य की हालत को सुधारा उनके समय राज्य वढ़ा ही, घटा नहीं। महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ दोस्ती करने मे भी उन्हें लाभ ही रहा। वरना उनकी रियासत मे जो विद्रोही खड़े हो रहे थे उन्हे रणजीतसिंह जी से मदद लेने का मौका मिल जाता। सम्भव था कि दो शेरों की लडाई मे राज्य की दशा और भी खराव हो जाती। उनकी बुद्धिमानी और साहस की और भी अनेको कहानियाँ हैं। उन्होंने अपने समय में कोई गलती की थी तो यह कि मल्हार-राव होलकर की रणजीतसिंह जी को मदद नहीं करने दी वरना सम्भव था कि हिन्दुस्तान का नक्शा आज दूसरा ही होता।

इस तरह के योग्य और शूरमा राजा फतहसिंह जी का सम्वत् १८९३ वि० के क्वार महीने मे शुक्ल पक्ष की एकादशी को स्वर्गवास हो गया।

उनके समय मे कपूर्थला शहर में काफी तरक्की हुई। कई अच्छे २ राजभवन वने। वाग-वगीचे भी लगवाये गये। पुराने स्थानों की मरम्मत हुई।

अपने राज्य के कई कस्वों को उन्नतिशील वनाया। कपूर्थला मे आपके समय से अमन अमान और आपकी सर्व-मिलनसारी से तिजारत का काम भी खूब चेता था।

आपके वाद मे आपके सुपुत्र कुँवर निहालसिह जी गद्दी नशीन हुए। महाराजा रणजीतसिंह जी ने चार लाख रु० भेंट लेकर उन्हे कपूर्थला का राजा स्वीकार कर लिया किन्तु नौकरी सात सौ सवार की वजाय बारह सौ सवार की मजूर करालो। एक राजा की अनेक सन्तानों मे जो झगड़ा-फसाद होता है वह आपके साथ भी हुआ। सवत् १८९४ में जवकि आप वरसात करतारपुर और अमृतसर में विता कर कपूर्थला आये। आपके भाई अमरसिंह के साथियों ने आपको हवेली मे घेर लिया और कातिलाना हमला कर दिया।

महाराजा निहालसिंह

आपकी रक्षा करते हुए आपके दो साथी जान से मारे गये। आपसे लिखा लिया गया कि इलाका ठट्ठा, विट्ठा और सुल्तानपुर कुवर अमरसिंह जी को जागीर मे दिया गया और अमरसिंह जी सुल्तानपुर मे रहे। निहालसिंह जी ने इस घटना की महाराजा रणजीतसिंह जी के पास शिकायत की किन्तु उन्होंने यह कह कर सतोष कर लिया। एक ही बाप की संतान हैं। मैं किसका पक्ष लूं। आपस मे ही सुलझ ले और अव जो हो गया है सो ठीक ही है।

महाराज निहालसिह जी ने अवसर मिलते ही उन सब लोगों को दण्ड दिया जिन्होंने उनके साथ गुस्ताखी की थी। अमरसिंह ने महाराज रणजीतसिह के पूछने पर वताया था कि निहालसिंह जी का वर्ताव मेरे साथ भाई-जैसा नहीं है। मेरे गुजारे का उन्होंने कोई प्रवन्ध नहीं किया है। महाराजा रणजीतसिंह जी ने दोनों भाईयों में मुहव्वत करा दी और अमरसिंह के गुजारे का भी प्रवन्ध करा दिया।

जिस प्रकार फतहसिंह जी महाराज रणजीतसिंह के साथ हर समय और हर लड़ाई में रहते थे।

इसी प्रकार निहालसिंह जी भी रहने लगे। सम्वत् १८६५ में जब लार्ड आकलेंड से महाराजा रणजीतसिंह जी ने फीरोजपुर जिले में वाडे के मुकाम पर मुलाकात की तो आप भी उसमे शामिल हुए। इसके अलावा आपने मक्खो गॉव मे भी लाट से भेट की।

संवत् १८६६ मे इन भेटों का महाराज निहालसिंह को फल भी मिल गया। इस वर्ष महाराजा रणजीतसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। महाराज खड्गसिंह गद्दी पर बैठे। उनके सूबेदार मिश्र रूपलाल ने जोकि द्वावा जालंधर में मुकर्रिर था। कपूर्थला के कुछ हिस्सों को दवाना शुरू किया। दोनो ओर से लड़ाई भी हुई जिसमें रुपलाल हार गया। इस अमर की शिकायत महाराज निहालसिंह जी ने अम्बाला के अंग्रेज अधिकारी क्लारक साहब से की। उन्होंने विश्वास दिलाया कि उनके राज्य पर अगर रणजीत-सिंह के उत्तराधिकारियों ने हाथ डाला तो हम पूरी मदद तुम्हारी करेगे।

रणजीतसिंह जी के बाद निहालसिंह जी के लाहौर दरबार के प्रति पहले जैसे भाव नहीं रहे और रहते भी किसके साथ। वहॉ तो घर-घर के ही चिराग से जल रहा था। सवत् १८६७ मे महाराज खड्गसिंह और कुॅवर नौनिहालसिंह दोनो ही मर गये। निहालसिंह जी ने यह सूचना क्लारक साहब को दी। वहॉ से परामर्श आया कि ध्यानसिंह शेरसिंह को राजा बनाना चाहता है आप उसे मदद दें। इस परामर्श का पालन करने के लिये महाराज निहालसिंह जी लाहौर को रवाना हुये किन्तु वहॉ गद्दी पर रानी चन्द-कौर ने कब्जा कर लिया था इसलिये आप वापिस कपूर्थला आ गये। उधर थोड़े ही दिन बाद रानी चन्द-कौर गिरफ्तार कर ली गई और शेरसिंह राजा बन गये।

इसी साल कुॅवर अमरसिंह का भी इतकाल हो गया वह राजा शेरसिंह जी के साथ रावी नदी मे नाव पर बैठा हुआ सैर कर रहा था कि नाव डूब गई। शेरसिंह जी वगैरह तो बच गये किन्तु अमरसिंह न बच सके इस तरह निहालसिंह जी के रास्ते का एक काटा आप ही नष्ट हो गया। इन दिनों क्लारक साहब भी कपूर्थला तशरीफ लाये और सिखों के सारे हाल-चाल महाराज निहालसिंह जी से दरियाफ्त किये।

सवत् १८६८ मे महाराज निहालसिंह जी ने अमरसिंह जी को दिये हुए इलाके पर भी कब्जा कर लिया और उनके स्त्री बच्चों को कपूर्थला लाकर उनके गुजारे के लिये माकूल इतजाम कर दिया। अमरसिंह के लड़के का नाम केसरसिंह था। उसके ऊपर महाराज की निगाह-महरबानी बराबर बनी रहती थी।

अंग्रेजों ने अपनी दोस्ती का लाभ उठाना महाराजा निहालसिंह जी से उसी प्रकार शुरू कर दिया जिस प्रकार कि रणजीतसिंह किया करते थे। काबुल मे जनरल पोलक अफगानों से भिड़ रहे थे उनकी मदद के लिये कपूर्थला की एक फौज मांग ली। जिसे महाराज ने खुशी के साथ हैदरअलीखा की मातहती मे काबुल भेज दिया।

अपनी कठिनाइयों के कारण महाराज निहालसिंह दिन-ब-दिन अंग्रेजों के सहायक और आश्रित होते जा रहे थे। अंग्रेज लाहौर दरबार की भीतरी और सही जानकारी भी उन्हीं से प्राप्त करने लग गये थे। लाहौर में तो एक प्रकार की अराजकता फैली हुई थी। महाराजा शेरसिंह भी मार डाले गये और उनकी जगह कुॅवर दलीपसिंह गद्दी के मालिक बने उधर खालसा सेनाये भड़क उठीं। अंग्रेजों ने यह मौका अपने अनुकूल देखा और पंजाब के सिख-साम्राज्य को खतम कर देने की तैयारी कर दी। उन्होंने महाराज निहालसिंह जी कपूर्थला नरेश को भी लिखा कि आप पांच दिन के अन्दर ही अन्दर अपनी फौजें लेकर आजाइये।

निहालसिंह जी की फौज मे भी तो सिख ही थे उन्हे यह वात वहुत वुरी लगी और सारी सेना विगड़ गई उसने पहले तो वजीर साहव मौलवी गुलाममुहम्मदजान का सफाया किया और फिर महाराज को घेर लिया। और रनजोधसिंह को अपना नायक मुकर्रिर करके फौजे लाहौर दरवार की सहायता को चल पड़ीं। महाराज ने अपना पीछा छुडाकर अपने विश्वस्त आदमियों द्वारा अंग्रेज अफसरों को इस अमर की सूचना दी और अपनी वफादारी जगरॉव का किला अंग्रेजी फौजो को रहने को देकर तथा रसद आदि की मदद देकर प्रकट की। इतने पर भी राज्य कपूर्थला को वहुत नुकसान उठाना पड़ा। खैरियत यही हुई कि कपूर्थला राज्य अंग्रेजों ने जव्त नहीं किया किन्तु उसके कुछ इलाके तथा समुचित खिराज वॉध कर ही उसे वख्श दिया।

लड़ाई के वाद अंग्रेज हाकिमों ने महाराजा निहालसिंह पर वड़े सख्त इल्जाम लगाये। जिनमे कहा गया कि न तो तुमने हमे लाहौर की पूरी-पूरी और सही खवरे दीं। और न हमारे लश्कर के लिये रसद दी। केवल ५४५ मन गल्ला दिया। हॉ, लड़ाई के खतम होने पर सव कुछ किया। लड़ाई मे तुम्हारी फौजे हमारी फौजो से डटकर लड़ीं और उन्होने हमारा कुछ सामान भी लूट लिया। तुम और तुम्हारे लडके अपनी फौजो के साथ रहे अगर फौजे विगड़ गई थीं तो तुम अकेले ही हमारे साथ आ सकते थे। तुम्हारे राज्य की रक्षा तो हमारी ही वदौलत हुई थी। हमने तुम्हारे राज्य की गारंटी भी दी थी।" इन अपराधों मे तुम्हारा गुजरात का इलाका जव्त किया जाता है। और अमुक-अमुक इलाका भी लिया जाता है। महाराज निहालसिहजी ने काफी सफाई दी किन्तु अंग्रेज तो जव जिस वात पर तुल जाते है उसे करके ही छोड़ते है। हालांकि वे सिखो के स्वभाव से परिचित थे। वे जिस वात को अनुचित समझते हैं किसी के समझाने पर कावू नहीं हो सकते। लाहौर की खालसा सेना का उदाहरण उनके सामने था। महाराज निहालसिह यदि अपनी फौज के सामने जरा भी अकड़ते तो न मालूम वह क्या कर वैठती। अंग्रेजो ने कपूर्थला से लगभग १३ इलाके जिनमे करीव ५२० गॉव थे हडप लिये। वाकी जितने वचे उनमे महाराज निहालसिंह जी ने वड़ी योग्यता से प्रवन्ध किया। संवत् १६०५ मे उन्होंने फौजदारी और दीवानी की अदालते भी अंग्रेजी ढग की कायम करलीं। इसी वर्ष कुंवर रनधीरसिंह और विक्रमसिंह की शादी कालागॉव मे हुई। अंग्रेजी सरकार ने एक परगना नूरमहल का और ले लिया जिसके वदले मे सात हजार रुपया सालाना का खिराज कम कर दिया अर्थात् एक लाख अड़तीस हजार की वजाय एक लाख एकतीस हजार सालाना का खिराज रह गया।

इसी अर्से मे मूलराज और सरदार चरनसिंह ने पजाव मे अंग्रेज सरकार के विरुद्ध वगावत का झंडा खडा कर दिया। महाराज ने इस समय स्त्री-वच्चों को तो गंगा के किनारे भेज दिया और आप तैयार मौके के लिये हो गये। इस वार वे किसी भी हालत में अंग्रेजों का साथ नहीं छोड़ते। उन्होंने अपना इरादा चिट्ठी-पत्री से जान लारेंस पर प्रकट भी कर दिया और लडाई के समय रसद की पूरी मदद दी जिससे मुल्तान-विजय के वाद अंग्रेज सरकार ने उन्हे राजा की सनद दे दी। अभी तक अंग्रेज उन्हे एक सरदार समझते थे और चिट्ठी-पत्री मे भी उन्हे सरदार ही लिखते थे।

राजा की सनद के साथ ही वह इलाका जो जालधर की छावनी के नीचे आ गया था महाराज निहालसिंह को वापिस कर दिया। इस इलाके का नाम ऊंचा था और इसमे दोकोहा और सूरजपुर अगई नगर शामिल थे।

इस समय महाराज निहालसिहजी को यकीन हो गया कि अव उनकी रियासत सुरक्षित है और

कम्पनी के भारतीय अंग्रेज अफसर उससे प्रसन्न हैं।

दूसरे वर्ष लार्ड डलहौजी कपूर्थला में पधारे जिनका महाराज निहालसिंह जी ने धूमधाम से स्वागत सत्कार किया। इसी वर्ष टिक्का साहब रनधीरसिंह के पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम खड्गसिंह रक्खा गया। दूसरे वर्ष दूसरे पुत्र विक्रमासिंह जी के भी पुत्र हुआ। इसी वर्ष महाराज साहब के घर पुत्री का जन्म हुआ।

महाराज ने अजायबुलनिहाल और गुराइबुलनिहाल नाम की किताबें लन्दन के अजायबघर के वास्ते अपने दीवान द्वारा लिखाकर कर्नल लारेंस को भेंट कीं।

सवत् १६०८ वि० मे महाराज ने निश्चिन्त होकर ज्वाला जी के दर्शन किये और जहाँ दान-पुण्य किया। वहाँ से कुछ पहाडी राजाओं के यहाँ जाकर आतिथ्य स्वीकार किया। राजा नादून ने आपका जोरदार स्वागत किया। इस वर्ष टिक्का रनधीरसिंह जी के एक पुत्र और हुआ। उसका नाम हरनाम-सिंह रक्खा गया और महाराज के द्वितीय पुत्र विक्रमासिंह का देहान्त हो गया।

अपने समय मे महाराज निहालसिंह जी ने भी कपूर्थला शहर को रौनक दी। कचहरियों की नई इमारतें बनीं। नये बाजार भी बने।

संवत् १६०६ वि० के भाद्रपद मास की अमावस को आपका स्वर्गवास होगया। आपका जीवन प्राय कठिनाइयों का सामना करने मे ही गुजरा। अपने पिता के स्वर्गवास के बाद महाराजा रणजीतसिंह जी को खुश रखना और उनके इरादों को पूरा करने की दिक्कते आपको बर्दाश्त करनी ही पड़ीं। बाद में अंग्रेज अफसरों को अपनी नेकनीयती और वफादारी का परिचय देने के लिये बहुत सारा समय खर्च करना पडा। बात दरअसल यह थी कि आपका राज्य दो खतरों के बीच मे था। एक तरफ सिखों का साम्राज्य लगा हुआ था और दूसरी तरफ अंग्रेजों की हकूमत थी। इसलिये आपको प्रत्येक कदम बडी होशियारी से रखना पड़ता था।

महाराज निहालसिंह जी के दो रानियाँ थीं उनसे तीन लड़के जन्मे थे। रनधीरसिंह, विक्रमसिंह और सुचेतसिंह। उन्होंने मरते समय एक वसीयत लिखी थी। जिसे बोर्ड आफ मिनस्ट्रेशन के पास भेज दिया था। उसका सार यह था कि "मेरे बाद मेरे तीनों लड़कों मे झगड़ा न हो इसलिये विक्रमसिंह और सुचेतसिंह को एक-एक लाख रुपये की जागीर बिना किसी रकम के मुकर्रिर किये दे दी जावे और रनधीर-सिंह शेप रियासत का मालिक रहे। दोनों जागीरों के फोजदारी दीवानी के अधिकार भी रनधीरसिंह के हाथ ही रहे।"

जिस समय निहालसिंह जी की मृत्यु हुई थी। रियासत की कुल आमदनी पाँच लाख सत्तर हजार सात सौ तिरेसठ रुपया सालना को थी। दो लाख की जागीर निकाल देने के बाद जो रियासत रह जाती थी उसमे से भी अंग्रेज सरकार का खिराज, फौज पुलिस और अदालतों का खर्चा निकाल देने के बाद राजा के खर्च के लिये केवल बीस बाईस हजार साल की बचत रहती किन्तु रनधीरसिंह जी बड़े चतुर थे। उन्होंने अपने दोनों भाईयों से निहालसिंह जी की मृत्यु के बाद दरख्वास्त दिलादी कि हम रियासत का बंटवारा नहीं चाहते हैं और अपने बड़े भाई के साथ हिलमिल कर ही रहना ठीक समझते हैं। अतः गवर्नमेंट ने उस समय कोई दखल नहीं दिया।

सम्वत् १८१० वि० मे जालधर के कमिश्नर ने आकर टिक्का रनधीरसिंह जी को गद्दीनशीन बनाया और उन्हे खिलअत दी। महाराज रनधीरसिंह जी ने बुद्धिमानी पूर्वक अपने भाईयों को अपनी

राजा रनधीरसिह

ओर मिलाकर राज्य को एक खतरे से बचा लिया था। वरना बहुत सभव था। राज्य के तीनों भाग जागीरदार करार दे दिये जाते और राजगी के अधिकार छीन लिये जाते। क्योंकि वोर्ड के कुछ मेम्बरों की यही राय थी। फगवाडे के इलाके ले लेने की सलाह थी। किन्तु हिलमिल कर रहने की व्यवस्था अधिक दिन तक नहीं चली। कुँवर सुचेतसिंह ने थोडे ही दिनों बाद सुप्रीम गवर्नमेंट के पास अपने हिस्से के बँटवारे के लिये दरख्वास्त भेजी। जालधर के कमिश्नर को सरकार ने इस कार्य के निवाहने का काम सोपा। संवत् १६११ में कमिश्नर साहब ने जॉच-पडताल के बाद वसीअत की मंशा को लगभग पूरा करने के इरादे से भोंगा का इलाका सुचेतसिंह को दिला दिया। किन्तु थोडे ही दिनों बाद कुँवर सुचेतसिंह ने सरकार के पास दरख्वास्त भेजी कि मैं एक लाख के बजाय पचास हजार का ही इलाका चाहता हूँ। जिससे मेरे भाई के साथ स्नेह का सम्बन्ध बना रहे। कर्नल लेक उस समय जालधर के कमिश्नर थे उन्होंने भी इस दरख्वास्त पर सिफारिश लिख दी। इस बीच गदर हो गया था और उसमे राजा रनधीरसिंह जी ने सरकार को काफी मदद दी थी। इसलिये सरकार ने भी सुचेतसिंह जी की बात को मान लिया और सम्वत् १६१७ मे मजूरी दे दी।

ख्याल था कि अब कोई झगडा भाइयों मे नहीं होगा। किन्तु सम्वत् १६२३ मे विक्रमासिंह खडे होगये और उन्होंने भी गवर्नमेंट को लिखा कि नौवत यहाँ तक आ गई है कि हम भाई २ शामिल नहीं रह सकते। वसीयत के अनुसार हमारा हक दिला दिया जाय। इस समय तक गवर्नमेंट की इनके बाहमी झगडों से वह दिलचस्पी नहीं रही थी जो आरम्भ मे थी। इसलिये विक्रमासिंह को सरकार की ओर से कोरा जवाब मिला कि हम तुम्हारे आपस के झगडे मे ज्यादा समय खर्च करना ठीक नहीं समझते जब हमने पहले बार-बार तुम्हे लिखा था तब बँटवारा क्यों नहीं कराया। विक्रमासिंह इस जवाब मे चुप नहीं हुआ उसने सुचेतसिंह को अपनी ओर मिलाया और फिर दरख्वास्त दी। इस पर पजाब सरकार ने इनका मामला भारत सरकार के पास भेज दिया। जहाँ से विक्रमासिंह के पक्ष मे फैसला हुआ। महाराज रणधीरसिंह जी ने फैसले के विरुद्ध लिखा पढ़ी की किन्तु बँटवारा कर ही दिया गया और लिखा गया कि अगर हिस्सेदारों मे से कोई लावल्द मरेगा तो उसका हिस्सा महाराज रनधीरसिंह को ही मिल जायगा।

महाराज रनधीरसिंह जी ने इस फैसले की अपील विलायत मे की। वहाँ से फैसला महाराज साहब के पक्ष मे हुआ। जिसमे कहा गया कि गदर की सेवाओं के उपलक्ष मे जो विश्वास महाराज रनधीरसिंह जी को उनकी रियासत की स्थिरता और संरक्षा का दिलाया गया है। उसके अनुसार रियासत के टुकडे नहीं हो सकते।

इस मुकद्दमे को जीतने के उपलक्ष मे महाराज ने अपने वकील मथुरादास को उनके साथ जाने वाले आदमियों को बहुत-कुछ इनाम इकराम दिये।

अत मे भारत सरकार के परामर्श के अनुसार और प्रिवी कौंसिल के फैसले की नीयत को पूरा करने के लिये दोनो भाइयों से इलाके वापिस ले लिये और उनको साठ-साठ हजार रुपया सालाना का वजीफा कर दिया गया। जो छ -छः महीने के बाद किस्तों मे उन्हे मिलता रहा। कहा जाता है कि यह मुकदमा लगभग १६ वर्ष चला था और इसने महाराजा साहब को बहुत परेशान रक्खा था। महाराज ने मथुरादास को भी दो हजार रुपये सालाना की जागीर सुल्तानपुर जिले मे रामपुरा और शाहजहानपुर गाँवों में दी। इस प्रकार का इनाम देने के लिये उन्होंने एक दरबार किया था। जिसमे आस-पास के जिलों के प्रतिष्ठित जन और यूरोपियन अफसर भी पधारे थे।

गवर्नमेंट ने भी राजा साहब की गदर सम्बन्धी सहायता का धन्यवाद करते हुए उन्हें पन्द्रह हजार की खिलअत दी और खिराज में से पच्चीस हजार सालाना कम कर दिया। साथ ही एक साल का खिराज कतई माफ कर दिया। ग्यारह तोपों की सलामी भी बख्शी। 'फरजन्दे दिल बन्दरा सख उल-एतकाद" का खिताब भी महाराज को अंग्रेज सरकार ने दिया। उनके भाई विक्रमासिंह जी को दस हजार का खिलअत और बहादुर का खिताब मिला।

इसके बाद संवत् १६१५ मे अंग्रेज सरकार ने अवध को कब्जे मे करने के लिये लड़ाई छेड दी। महाराज रनधीरसिंह मय अपनी फौज और भाई विक्रमासिंह के अंग्रेजो की मदद के लिये अवध पहुँचे। वहाँ जी जान लड़ा कर आपने बड़ा परिश्रम किया। हर मोरचे पर बहादुरी दिखाई। लड़ाई मे दुश्मन की ६ तोपे भी छीन लीं। अंग्रेजों की जीत हुई और सारा अवध उनके अधिकार मे आगया। इस लडाई मे सहयोग देने के बदले मे अंग्रेज सरकार ने अवध मे महाराज रनधीरसिंह को बोडी और भटोली के ताल्लुके जागीर मे उन सारे अख्तियारों के साथ दिये जो वहाँ के तालुक्केदारों को थे। इन इलाको की सालाना आमदनी चार लाख बत्तीस हजार रुपया थी। इसके सिवा दो लाख रुपया फौज खर्च के और ५०००) की खिलअत और महाराज को मिली।

सरदार विक्रमासिंह जी को भी सरकार ने इकतर, मलका, इकोना के परगने जिनकी कि आमदनी सालाना २५०००) रुपया थी जागीर मे दिये। यह इलाका जिला बहराइच मे है। इसके सिवा महाराज साहब के कुछ अन्य फौजी सरदारों को भी इस जिले की जागीरो की खिलअत अंग्रेज सरकार ने दीं।

सम्वत् १६१६ वि० मे महाराज रनधीरसिंह ने सरदार विक्रमासिंह जी से अकोना का इलाका और खरीद लिया और सरदार साहब ने साढ़े पॉच लाख का इलाका जिला लखीमपुर मे खरीद लिया। कहा जाता है उस इलाके से उन्हें साढ़े तीन लाख के करीब आमदनी होती थी जिसमे से एक लाख ३२ हजार वे सरकार को देते थे।

अम्बाला जिला के नारायनगढ़ में कपूर्थला राज्य का जो बाग था उसे अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था वह भी गदर के बाद महाराज रनधीरसिंह को मिल गया।

सवत् १६२० विक्रमी में अंग्रेज सरकार ने अन्य राज्यों की भाति ही कपूर्थला नरेशों को भी पुत्रहीन न होने की हालत मे बिरादरी के रिवाज के अनुसार गोद लेने के अधिकार की सनद दे दी। इस प्रकार की सनदे महारानी विक्टोरिया के उस हुक्मनामे की सार्थकता को कायम रखने के लिये बॉटी गई थीं जो उन्होंने भविष्य मे भारत के वर्तमान सभी रजवाड़ों को सुरक्षित बनाये रखने के विश्वास दिलाने के लिये की थी।

महाराज रनधीरसिंह जी ने अवसर पाकर इलाका आहलू को भी जो कि सिखों की पहली लड़ाई के बाद सरकार ने जब्त कर लिया था पुन वापिस दिये जाने की दरख्वास्त सरकार से की। सरकार ने यह दरख्वास्त भी मंजूर कर ली और वह इलाका बतौर जागीर के महाराज को वापिस कर दिया। दीवानी फौजदारी के कुल अख्तियारात उस इलाके पर अंग्रेज सरकार के ही रहे। इस इलाके के १८ गॉव जिला लाहौर मे, ७१ गॉव जिला अमृतसर मे और एक बाग मुल्तान मे था। सवत् १८०६ वि० मे इस इलाके की आमदनी लारेंस साहब ने ६६३००) सालाना की अन्दाजी थी।

सम्वत् १६२१ वि० मे वायसराय ने महाराजा रनधीरसिंह जी को लाहौर के दरबार मे सितारे

हिन्द का खिताब दिया और उनकी उन समस्त सेवाओं की चर्चा की जो उन्होंने अंग्रेज सरकार की गदर और अवध की लडाइयों मे की थी। महाराज ने भी वायसराय महोदय की रहनुमाई और महरबानियों के लिये धन्यवाद दिया। इस दरबार में पंजाब के सभी राजा रईस शामिल हुए थे।

सवत् १६२७ वि० मे महाराज रनधीरसिंह जी का स्वर्गवास अदन बन्दरगाह पर हो गया। आप विलायत सैर करने जा रहे थे कि बम्बई मे आपकी तबीयत खराब हुई। कुछ मित्रो ने समझाया भी किन्तु आप चल ही पडे अदन मे तो यह हालत हो गई कि, डाक्टरों ने साफ कह दिया इन्हे वापिस ले जाओ। जहाज के बदलते समय ही आप स्वर्ग सिधार गये। आपका शव बम्बई लाया गया जहाँ कि उनके युवराज खड्गसिह और रियासत के अनेक गएयमान्य सरदार पहुँच गये थे। नासिक में ले जाकर दाह-सस्कार किया गया।

युवराज खड्गसिह जी वायसराय की आज्ञा प्राप्त करके अपने बाप की गद्दी के हकदार हुए। वायसराय ने खड्गसिंह जी को उनके पिता की मृत्यु पर समवेदना सूचक एक पत्र भी लिखा था जिसमे महाराज रनधीरसिंह के स्वर्गवास पर खेद ओर उनकी अग्रेज सरकार के प्रति की जाने वाली वफादारियो का जिक्र था।

विलायत से महारानी विक्टोरिया और वजीर आलम ने भी महाराजा रनधीरसिंह जी की मृत्यु पर शोक समवेदनाये महाराज खड्गसिंह जी के पास भेजी थीं। कहा जाता है इससे पहले अन्य किसी भी राजा की मृत्यु पर महारानी विक्टोरिया अथवा प्रधान मत्री ने शोक-सूचक पत्र उसके उत्तराधिकारी के पास नही भेजे थे।

महाराज खड्गसिंह जी की गद्दीनशीनी का उत्सव खूब समारोह के साथ हुआ। उसमे उच्च अग्रेज अधिकारियों के सिवा पजाब के प्राय सभी राजा रईस शामिल हुये। अग्रेज प्रतिनिधि मि० बान्स ने महाराज को खिलअत दी और ली। राजा लोगों की ओर से रस्म अदा हुई। एक लाख बीस हजार रुपया महाराज को अन्य रईसों की ओर से स्वर्गीय महाराज की यादगार बनाने के लिये भेट किया गया। महाराज खड्गसिंह ने एक लाख रुपया अपनी ओर से इसमे मिला दिया और रनधीर कालेज तथा रनधीर शफाखाना की नींव डाली। पच्चीस हजार रुपये मे तो दोनों की इमारते बनवा दीं बाकी दो लाख के प्रोमेसरी नोट खरीद लिये जिनके व्याज से १००००) सालाना की जो आमदनी होती है वह इन दोनों सस्थाओं के चलाने के ही काम मे खर्च होती है। २५०००) रुपया महाराज ने पजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर डोनलफ मेकलैएड की यादगार ताजा बनाये रखने के लिये देना चाहा किन्तु गवर्नर महोदय ने इस बात को स्वीकार न करके यह तजवीज पेश की कि इस धन के व्याज से उन लेखको का उत्साह बढाया जाय जो पदार्थ विद्या पर अच्छी पुस्तके लिखे।

दस वर्ष तक महाराज खड्गसिंह जी ने बडे अच्छे ढग से राज्य किया। प्रजा के सुख और शांति के उपायों को सोचा। आगे और कुछ अच्छा ही करते किन्तु सम्वत् १६३१ वि० मे उनका दिमाग खराब हो गया। साथियों ने अच्छे-अच्छे वैद्य डाक्टरों से इलाज कराया किन्तु कोई इलाज लाभ न पहुँचा सका।

राज्य प्रबन्ध खराब न हो जाय इस विचार से अग्रेज सरकार ने राज्य प्रबन्ध एक कौंसिल के सुपुर्द कर दिया। जिसके मेम्बर दीवान रामजस जी, दीवान बैजनाथ जी और गुलाम जीलानी बनाये गये। तीन साल तक कौसिल ने सारा राज्य प्रबन्ध किया। सवत् १६३४ वि० मे अग्रेज सरकार ने राज्य का नया प्रबन्ध किया और सर लेपिलग्रिफिन को राज्य का सुपरिन्टेन्डेन्ट मुकर्रिर किया।

इसी वर्ष ३ साल के लगातार कष्ट के बाद महाराज खड्गसिंह जी का भागम् के मुकाम पर स्वर्ग-वास हो गया और उनके पुत्र युवराज जगजीतसिंह जी को जिनकी उम्र इस समय केवल पॉच वर्ष की थी गद्दी पर विठाया गया।

जगजीतसिंह की गद्दीनशीनी की यह रस्म सवत् १६३४ वि० के मघर महीने मे हुई थी जिसमे पजाव के तत्कालीन लेफ्टीनेन्ट गवर्नर अजर्टन खुद पधारे थे। पंजाव के अन्य अनेकों राजा रईस भी शामिल हुये थे पहले गवर्नर की ओर से खिलअत पेश हुई और फिर अन्य रईसों की ओर से। कहा जाता है कि गद्दी नशीनी की रस्म पूरी हो जाने पर आपने कहा था। "मैं अंग्रेज सरकार और उसके गवर्नर साहव को मुझे गद्दी पर विठाने के लिये धन्यवाद देता हूँ। आपके वाल-मुँह से यह वात सुनकर गवर्नर वड़ा प्रसन्न हुआ। उसने विदा होते समय दीवान जसमतराय से उनकी सावधानी के साथ शिक्षा-दीक्षा करने-कराने के लिये चेतावनी दी थी।

जगजीतसिंह

नावालिगी के समय मे अंग्रेज सरकार द्वारा नियुक्त विभिन्न सुपरिण्टेन्डेन्टों ने कपूर्थला का शासन-प्रवन्ध संभाला था जिनमे सर लेपिलग्रिफन, मि० रीवार, मि० कनेहम, मि० आरे, मि० सेमी आदि सभी अंग्रेज थे। १८ वर्ष की अवस्था होने पर संवत् १६४७ में महाराज जगजीतसिंह जी को अधिकार वख्शे गये और यह अधिकार-प्रदान की रस्म सर जेम्स लायल तत्कालीन गवर्नर पजाव ने खुद कपूर्थला जाकर अदा की थी।

महाराज जगजीतसिंह जी ने राज्याधिकारी होते ही शासन का कुल प्रवन्ध अपने हाथ मे ले लिया। योग्य नौकरों की तनख्वाहों मे वृद्धि की और राज्य के मुख्य शहरों मे घूम कर वहाँ की हालत जानी और उसी के अनुसार सुधार किये।

सिखों की तरक्की के कामों मे आपने हमेशा दिल खोल कर मदद की। खालसा कालेज के लिये भी एक लाख रुपये का दान आपने दिया।

इसके दो ही वर्ष वाद संवत् १६४६ के ज्येष्ठ मास मे आपके एक पुत्र रत्न हुआ और दूसरे दिन महाराज पटियाला कपूर्थला पधारे। इससे दुगुनी खुशी का कपूर्थला मे उत्सव मनाया गया।

महाराज जगजीतसिंह जी ने अपने समय में राज्य मे अनेक सुन्दर मकान वनवाये हैं। दरवार हाल, महल, कचहरी और गुरुद्वारे आदि जो आपके समय मे वने है, वे निहायत सुन्दर हैं।

महाराज पंजावी, अंग्रेजी हिन्दी और फ्रेंच भाषा के अच्छे विद्वान हैं। स्वयम विद्वान् होने के कारण राज्य के महकमो मे भी आपने योग्य आदमियों को ही नियुक्त किया है।

आपने विदेशों की सैर वहुत अधिक की है और इस वात मे भारत के कुछ ही राजा महाराजा आपकी वरावरी कर सकते है।

प्राणदंड के अधिकार सरकार द्वारा आपके प्रवन्ध की योग्यता को देख कर आपको दे दिये गये हैं। एक लाख इकत्तीस हजार सालाना राज्य को जो खिराज गवर्नमेन्ट को देना पड़ता था वह भी आपने लिखा-पढी कराके माफ करा लिया है।

महाराज के राजकुमारों के नाम इस प्रकार हैं—(१) युवराज धर्मजीतसिंह जी जिनका कि जन्म सन् १८६२ ई० की १६ वीं मई को हुआ था। (२) महीजीतसिंह जी (३) अमरजीतसिंहजी (४) कर्मजीत-सिंह जी और (५) जीतसिंह जी है।

सन् १६३८ ई० मे आपने अपनी प्रजा को शासन मे भाग लेने के लिये कुछ अधिकार

भी बख्शी थे।

आपने खेती की उन्नति के लिये अपने राज्य में नहरें भी निकाली।

आपको अंग्रेज सरकार की ओर से जो खिताब मिले थे। उनकी सूची इस प्रकार है—

जी. सी. एस. आई., जी सी. आई ई., जी.बी ई।

फौज में आपको कर्नल का मान है। सन् १६४८ में यह राज्य पेप्सू संघ में शामिल कर दिया गया है।

अठारहवाँ अध्याय

नाभा राज्य का इतिहास

यह राज्य भी फुलकियां स्टेटों मे गिना जाता है बल्कि खानदान भी वही है। जो पटियाला का है। सन १७६३ तक पटियाला और नाभा का इतिहास एक ही है। सरहिन्द की विजय के बाद फुलकियाँ राज्य अलग-अलग बँट गया। नाभा राज्य का विस्तार प्राय ६६६ वर्ग मील मे है। इस राज्य का एक भाग राजपूताने मे भी है जिसका बाबुल सदर मुकाम है और जो निजामत कहलाता है। इस राज्य में ४ बड़े नगर और लगभग ५०० ग्राम हैं। आबादी तीन लाख के करीब है। इनमे ज्यादातर हिन्दू हैं। जाट सिख उनसे कम हैं और उनसे कम मुसलमान हैं। बाबुल निजामत मे राजपूत और अहीर ज्यादा हैं। इस समय आमदनी लगभग १७ लाख रुपये सालाना है। महाराज रिपुदमनसिंह जी (अब निर्वासित) एक कौंसिल की सहायता से राज्य करते थे जो 'इजलासे आलिया' कहलाती थी। शासन के चार भाग किये हुए थे जिनके प्रधान मीर मुंशी, बख्शी, हाकिम अदालत सदर, और दीवानेमाल सदर कहलाते थे। वैदेशिक मामलात मीरमुंशी के सुपुर्द थे और सेना, पुलिस बख्शी की अध्यक्षता मे, हाकिम-अदालत-सदर न्याय विभाग के और दीवानेमाल-सदर माल विभाग के प्रधान थे। महाराज इजलास आलिया मे खुद बैठकर भी न्याय करते थे।

नाभा जोकि इस राज्य की राजधानी है। भटिंडा राजपुरा रेलवे लाइन पर राजपुरा से ३२ मील के फासले पर है। शहर एक कच्चे परकोटे से घिरा हुआ है। शहर मे ६ दरवाजे हैं। परकोटा के चारों ओर भरतपुर की जैसी पक्की सड़क है। शहर के पास बागों के होने से वह अच्छा लगता है। रुई कपास के कुछ पेच (कारखाने) हैं। अम्लोह, गोविन्द गढ़, फूल, बनोला, जैतों और बावल राज्य के बड़े नगर हैं। जिनमें कुछ निजामत का सदर मुकाम होने और कुछ मंडी होने के कारण रौनक पर हैं।

फुलकियां मिसल मे इस वंश का पूर्व का बहुत-कुछ इतिहास आ चुका है। यहां हम चौधरी फूल के बड़े बेटे त्रिलोकसिंह से आरम्भ करते हैं जो नाभा राज-खान्दान का वह पुरखा था जिसपर पटियाला से अलग शाख छट जाती है। चौधरी त्रिलोकसिंह जी को दिल्ली की ओर से भी चौधरी का खिताब मिल चुका था। इनका जन्म सवत् १७१६ वि० मे हुआ था। चौधरी त्रिलोकसिंह जी ने गुरु गोविन्दसिंह जी का भी कई लड़ाइयों मे साथ दिया था। सम्वत् १७५३ वि० मे गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपनी कुछ वस्तुएँ इनके यहाँ सुरक्षित रखने के लिये भी भेजी थीं जो अब तक नाभे मे मौजूद हैं। कहा जाता है कि सर-

हिन्द मे से गुरू जी के साहबजादो के मृत शरीरों को लाकर इन्हीं के भाई रामा ने उनका सस्कार किया था। जिससे सरहिन्द का सूबेदार चौधरी त्रिलोकसिंह जी से बहुत बिगड़ गया किन्तु उन्होंने उसकी कुछ भी परवाह नहीं की।

चौधरी त्रिलोकसिंह जी का विवाह रोडी गांव मे चौधरी मैदासिंह की पुत्री बखता से हुआ था। जिसके उदर से गुरुदित्त और सुखचैन नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। जीन्द राज्य के संस्थापक सुखचैन ही थे।

सवत् १७८६ वि० मे चौधरी त्रिलोकसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। अत उनकी रियासत के मालिक उनके बड़े पुत्र गुरुदित्तसिंह जी हुए। गुरुदित्तसिंह जी का विवाह मौडके गाव मे चौधरी शदूल की पुत्री राजकौर के साथ हुआ। जिससे एक पुत्र सूरतसिंह संवत १७६६ वि० मे पैदा हुआ। कहा जाता है सम्वत १८०६ वि० मे गुरुदित्तसिंह को धनोले के पास खडहरो मे एक खजाना मिला। जिससे उन्होने एक गाव वहीं पर आबाद किया। अगले वर्ष सगरूर नामक स्थान आबाद किया। जो अब जीन्द के कब्जे मे है। मुगल शासन की डांवाडोल की हालत मे गुरुदित्तसिंह ने आस-पास के अनेको गावों पर अपना कब्जा कर लिया था किन्तु दोनों भाइयों मे सदैव ही खटपट बनी रहती थी। संवत् १८०६ वि० मे उनका बडा लड़का सूरतसिंह भी मर गया। कुछ दिनों बाद सुखचैनसिंह भी मर गया। उसकी विधवा पत्नी अपने मायके चली गई। अत गुरुदित्तसिंह ने कस्बा फूल भी जो कि सुखचैनसिंह के कब्जे मे था अपने अधीन कर लिया।

गुरुदित्तसिंह

सूरतसिंह ने अपने पीछे दो पुत्र छोडे थे (१) हमीरसिंह और (२) कपूरसिंह। सवत् १८१३ वि० मे गुरुदित्तसिंह जी का भी स्वर्गवास हो गया। इसलिये उनका उत्तराधिकारी उनका बडा पोता हमीरसिंह हुआ। इन दोनों भाइयों ने सरदार आलासिंह जी के साथ रहकर खूब तरक्की की। उनके साथ हमलों मे रहने से लडाई के हर दाव-पेच से दोनो भाई जानकार होगये। उन्होंने सरदार आलासिंह की मदद से लाहोवाल गॉव को भी अपने कब्जे मे कर लिया। सवत् १८१६ वि० मे भानीअन और भसदी के बीच के स्थान पर एक किले की नींव डाली और उसका नाम नाभा रक्खा।

कपूरसिंह की शादी सुजानकुँवर मानसिहिया की लड़की के साथ हुई थी। यह भी अपने पति के मरने के बाद हमीरसिंह जी की घर वाली हो गई थी। इससे हमीरसिह के पास कपूरगढ़ पक्खू और बुडियाला भी आ गये थे। इस सरदारनी से ही कुंवर जसवतसिंह जी का जन्म हुआ था। इसके अलावा भी हमीरसिंह जी ने तीन शादिया और की थीं। एक तो नत्थासिंह वनगरिया की लडकी के साथ दूसरी लखनसिंह रोडीवाला की लड़की के साथ, जिससे कि सदाकुवरि और शोभाकुंवरि दो लडकियां पैदा हुई थीं। तीसरी शादी धन्नासिंह कुरतान वाला की लड़की के साथ हुई थी। इससे कोई सतान नहीं हुई। सरदार हमीरसिंह बड़े बुद्धिमान और शक्तिशाली व्यक्ति थे। नाभा राज्य का विस्तार इनके बाहुबल पर हुआ था। नाभा शहर के आबाद हो जाने पर उन्होंने भादसौ पर अधिकार कर लिया।

संवत् १८२६ वि० मे हमीरसिंह जी ने रोडी पर हमला कर दिया। हासी का हाकिम रहीमदाद मुकाबिले के लिये आया किन्तु हार कर भाग गया। इससे रोडी का इलाका हमीरसिह जी के कब्जे मे आ गया जो कि सिरसा से लगा हुआ है।

कहा जाता है सवत् १८३२ मे जीन्द मे गजपतसिंह ने हमीरसिंह को बुलाकर कैद कर लिया।

क्योंकि एक तो उनके फल गाँव पर उन्होंने कब्जा कर लिया था। दूसरे लड़की की शादी के समय घास के मामले पर कुछ झगडा हो गया था। बाद मे पटियाला के बीच में पड़ने से और सगरूर का इलाका व जीन्द को दे देने के वायदे पर हमीरसिंहजी को छोड़ दिया गया। कहा जाता है, इस बीच सारे इलाके का प्रवन्ध और रक्षा हमीरसिंहजी की रानियों ने बड़ी बहादुरी के साथ की थी। संगरूर पर गजपतिसिंह के हमला करने पर अपने पति की गैरहाजिरी मे भी उन्होंने बड़ी बहादुरी मे उसकी रक्षा कर ली थी। पटियाला को भी बीच मे रानियों ने ही डाला था।

जीन्द से वापिस आकर हमीरसिंह जी ने अपने दामाद साहबसिंह जी (इसके साथ शोभाकुवरि व्याही थी) की मदद से भावसू और अमलोह के इलाकों को जोकि इस बीच हाथ से निकल गये थे पुन प्राप्त किया। हमीरसिंह जी की इच्छा थी कि सगरूर को भी वापिस ले ले किन्तु "मेरे मन कछु और है साई के कछु और" के अनुसार सवत् १८४० में उनका देहान्त हो गया। इससे सगरूर फिर कभी भी नाभा के हाथ मे नहीं आया। आपकी मृत्यु के बाद आपका पुत्र जसवंतसिंह गद्दी पर बैठा जिसका कि जन्म संवत् १८३३ में हुआ था और जोकि इस समय ७ वर्ष का ही बच्चा था किन्तु जसवन्तसिंह जी की विमाता रानी देसू ने उनकी सरपरस्ती का काम किया।

रानी ने सात साल तक बड़ी योग्यता से राज्य-कार्य को चलाया। फौज का संचालन उसके दोनों जॅवाई साहबसिंह गुजरात और जैसिंह कन्हैया करते थे किसी की भी मजाल न थी जो इन दो सरदारों के मुकाबिले पर नाभा राज्य को नुकसान पहुँचाने आता। सवत् १८४६ वि० मे रानी देसू का भी स्वर्गवास हो गया। राज-खालसा के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह ने लिखा है कि "राजा जसवन्तसिंह ने ही उनको रत्नसिंह और खड्गसिंह की सलाह से मरवाया था। कुछ भी हो रानी साहिबा मर गई और उनके पीछे राजा जसवत-सिंह जी ने राज्य की बागडोर पूर्णतया अपने हाथ में ले ली। अपने मुसाहिबों की सलाह से राज्य-कार्य करने लगे। उन्होंने अपने सरदारों के कहने मे आकर एक और भी गलती की वह यह कि पटियाला राज्य के बहालू और करमना गावों पर हमला कर दिया। जिसमे उन्हे नुकसान ही उठाना पड़ा।

जवान होने पर महाराजा जसवतसिंहजी ने प्रत्येक कार्य को बुद्धिमानी के साथ निभाया। महा-राज रणजीतसिंह जी के साथ सदैव ही अच्छे खयाल रखे। इन्हीं दिनों होलकर पजाव मे घूम रहा था और उसके पीछे-पीछे लार्ड लेक फिर रहा था। टमकलोटा स्थान पर पजाब के सभी रईसों ने अंग्रेज अफसरों से वायदा किया था कि वे मराठों का साथ न देंगे। उस समय आपने भी अपना प्रतिनिधि वहाँ भेज दिया। दैवात् जसवतराव होलकर सबसे पहले आपके ही पास मदद के लिये आया जिसे आपने साफ जवाव दे दिया कि हमारी अंग्रेजों से मित्रता हो चुकी है। इन रियासतों के सस्थापकों के वशज ऐसी बातों पर अभिमान कर सकते हैं कि उन्होंने भारत भूमि को विदेशियों से मुक्त करने की इच्छा रखने वाले वीर होलकर को मदद न देकर अंग्रेजों के प्रति वफादारी जाहिर की किन्तु हमे तो यह लज्जा की ही बात जान पड़ती है।

लार्ड लेक भी होलकर के बाद नाभा आया और उसने महाराज को धन्यवाद दिया तथा विश्वास दिलाया कि उनकी रियासत सुरक्षित रहेगी। साथ ही किसी भी प्रकार का उनसे खिराज भी न लिया जायगा।

सवत् १८६३ वि० मे हुलकी के झगड़े की वजह से महाराज रणजीतसिंहजी को पचास हजार रुपये देना करके पटियाले पर चढ़ाई करने के लिये बुलाया। महाराजा रणजीतसिंह जी इस प्रकार के मौकों को

को सरकार ने उनके दावे की जॉच के लिये मुकर्रिर किया। जॉच मे मालूम हुआ कि "लाधडा, अमलोह, सोनटी, दुहाड़ा शाहबाद आदि इलाके निशानवालिआ मिसल के प्रमुख सरदार सगतसिंह, दसौंदसिंह, जयसिंह और मोहरसिंह ने सरहिन्द विनाश के बाद अपने अधिकार मे किये थे। तब से इन पर उन्हीं के वंशजों का अधिकार चला आता है किन्तु महाराजा रणजीतसिंह जी पजाबकेशरी के भय से अपनी २ भूमि की रक्षा करने के लिये किसी न किसी बड़े रईस की इन इलाकेदारों को शरण लेनी पड़ी थी। लाधडां के रईसों ने नाभा की शरण ली थी और उसी के एवज मे उन्होंने नौकरी देना स्वीकार किया था। सोनटी के इलाके नाभा के रईस ने उस समय कब्जा कर लिया जबकि उसके रईस एक मुहीम पर जमानशाह से लडने गये थे। पीछे बहुत समय के बाद ही सोनटी का इलाका उन्हे अधीनता स्वीकार करने पर ही मिला था।"

पोलिटीकल एजन्ट अम्बाला ने इस मामले मे सलाह दी थी कि "यह बात आवश्यक और न्यायपूर्ण है कि यह सरदार राजा नाभा की खिदमत करने के वास्ते बदस्तूर सवार देते रहे किन्तु यदि राजा साहब उन पर सख्ती करे तो इसकी शिकायत सरकार के पास करनी चाहिये" किन्तु रेजीडेन्ट देहली ने इस बात को स्वीकार नहीं किया और इस प्रकार निर्णय दिया। "लधरा और सोनटी के सिख सरदार नाभा के अधीन समझे जॉय। अग्रेज सरकार इस मामले मे हस्तक्षेप न करे। इससे राजा साहब नाभा के प्रबन्ध और रौब मे अतर आता है।" परन्तु अतिम फैसला सवन् १८६३ वि० मे इस प्रकार हुआ। "जब राजा साहब नाभा के यहॉ कुॅवर उत्पन्न हो, या किसी लड़के लडकी का विवाह हो या किसी रईस की मृत्यु का अवसर हो या इत्तिफाक से कोई लड़ाई पेश आये। केवल उस वक्त इन सरदारों से सेवाये ली जावे। हर समय नहीं।"

महाराज की उम्र इस समय काफी हो चुकी थी और वे बीमार भी रहने लगे थे। साथ ही उनका सारा जीवन क्लेशों मे ही समाप्त हुआ था। आखिर उनका रोग बढ़ गया और संवत् १८६७ मे जब कि उनकी उम्र ६६ वर्ष की हो चुकी थी देहावसान हो गया। उनके पुत्र देवेन्द्रसिंह ने बड़ी धूम-धाम से उनका अन्त्येष्टि सस्कार किया। यह ठीक है कि उनका जीवन झगड़ों मे ही बीता किन्तु प्रजा के लिये सुख पहुॅचाने मे उन्होंने शक्ति भर प्रयत्न किया।

इस समय कुॅवर देवेन्द्रसिंह जी १८ वर्ष के थे अत. वे ही गद्दी पर बिठाये गये और कुल अधिकार राज्य-सचालन के उनके हाथ सौंप दिये गये। सिख इतिहासकारों की राजा जसवंतसिंह जी के विरुद्ध एक शिकायत है और वह यह कि इस राजा ने कई मन्दिर बनवाये और उनसे जागीरे भी लगवाईं। किन्तु सिख धर्म का कोई गुरुद्वारा नहीं बनवाया और न जागीर ही दी। वास्तव मे यदि उन्होंने ऐसा किया तो गलती ही की थी। उस समय तो जो भी तरक्की उनकी हुई थी। सिख-संस्कारों के ही बल पर हुई थी। राजा जसवन्तसिंह जी मे हिन्दू संस्कार अधिक थे। उन्होंने गया मे जाकर पिंड भरवाये थे। और सवा लाख का दान-पुण्य भी किया था। राज्य मे ठाकुरद्वारों पर जो जागीरे हैं वह बीस हजार के लगभग की है। कहा जाता है। गया जी जाते हुए पटना मे वहॉ सिख गुरुद्वारे (पटना साहब) को केवल १२५) दिये और सदैव के लिये कोई रकम मुकर्रिर नहीं की।

राजा जसवतसिंह जी की रानियों मे ढिलवा वाली रानी चन्द्रकौर बड़ी समझदार थीं। फूल देपालपुरा की जागीर मुद्दत तक उनके पास रही और उन्होंने उसका काम भी बडी अच्छी तरह चलाया।

राजा देवेन्द्रसिंह जी की गद्दी व अधिकार प्रदान का उत्सव धूम-धाम से मनाया गया। जिसमे

अम्बाले के एजेन्ट गवर्नर जनरल भी उपस्थित थे। सतलज पार के अन्य राजागण भी मौजूद थे।

एजेन्ट महोदय ने एक हाथी जरदोजी की झूलवाला, एक घोड़ा चाँदी की जीन वाला, १५१ कपड़े और एक तलवार खिलअत में दिये।

राजा देवेन्द्रसिंह

राजा देवेन्द्रसिंह जी लाड़-प्यार में पाले जाने के कारण राजकीय दाँव-पेचों और मुसाहिबों की चालबाजियों से नातजुर्बेकार रह गये। इसका फल यह हुआ कि वे उन लोगों द्वारा घिर गये जो अच्छी से अच्छी खुशामदाना बातें बनाकर आपको प्रसन्न रखते थे। कहा जाता है कुछ ब्राह्मण मुसाहिब आप की तारीफ में अतिशयोक्ति पूर्ण श्लोक सुनाकर खूब बनाते रहते थे। दरबार में प्रणाम का ढग पहले से आदाब करना जारी था आपने दण्डवत करने की प्रथा चला दी और संस्कृत पढ़ने के लिये एक स्कूल भी खोला। यह सब काम ब्राह्मण मुसाहिबों की मर्जी से होते थे। जो बुरे नहीं थे। हाँ, सिख सरदारों की सलाह की उपेक्षा की जाती यही बुराई थी। आपने संगरूर पर भी चढ़ाई कर दी और वहाँ के राजा को भगा दिया किन्तु आपके सलाहकार आपको संगरूर से वापिस नाभा ले आये और अंग्रेज सरकार से संगरूर पर अपना अधिकार स्वीकार किये जाने की लिखा-पढ़ी शुरू करादी।

कहा जाता है राजा स्वरूपसिंह जी ने जीन्द नरेश गजपतिसिंह के मरने पर आपसे यह वायदा कर दिया था कि संगरूर आपको ही वापिस दे दूंगा। बशर्ते कि मैं जीन्द का अधिकारी स्वीकार कर लिया जाऊँ। अंग्रेज सरकार ने पटियाला की सिफारिश पर सरूपसिंह को जीन्द का राजा स्वीकार कर लिया। राजा गजपतिसिंह नि.सतान मरे थे। इसीलिये यह बखेड़ा खडा हुआ था। संगरूर पहले नाभे का ही था। राजा गजपतिसिंह ने ही उसे अपने अधिकार में कर लिया था। देवेन्द्रसिंह का उसे वापिस मांगना इसीलिये न्याय था।

राज खालसा के सिख लेखक ने लिखा है कि महाराज देवेन्द्रसिंह बुरी तरह से साधुओं के फन्दे में फँस गये थे। कठी तिलक सब धारण करने लगे थे और उन्होंने उन लोगों के बहकावे में आकर संवत् १६०५ वि० में एक अश्वमेध यज्ञ भी पटियाला दरवाजे के बाहर किया था, कारण कि उन्हें समझाया गया था। अश्वमेघ यज्ञ करने से तुम चक्रवर्ती हो जाओगे। बराबर तीन महीने तक यज्ञ हुआ। इस यज्ञ में बहुत खर्च हुआ। पचास हजार के तो यज्ञ पात्र ही बनवाये थे। जिन सबको यज्ञ कराने वाले ले गये। इसके अलावा एक हाथी भी दान दिया। और भी बहुत खर्च हुआ।" आगे फिर लिखा है —"नाभे के गिरद कोट को नये सिरे से बनवाते समय उसके बीचमें आने वाले पीपलों को कटवाने के लिये प्रति पीपल एक सोने की कुल्हाड़ी बनवाई जो ब्राह्मणों को दान दे दी गई। इस प्रकार सारा सचित धन ब्राह्मण चाट गये।

महाराज देवेन्द्रसिंह जी के हृदय में भी अपने पिता की तरह पटियाला से कोई प्रेम-भाव नहीं रहा। आप सदैव अपने लिये बड़ा मानते रहे। अंग्रेज सरकार ने पटियाला को महाराज का खिताब दिया था। आपने अपने मुसाहिबों को इतला दे दी थी कि हमारे यहाँ उसे सब राजा ही कहें। राजा सरूपसिंह को केवल सरूपसिंह कहा जावे।

पटियाला जीन्द से तो झगड़ा था ही। महाराजा देवेन्द्रसिंह का झगड़ा लाहौर के सिख सरदार से भी हो गया। बात यह हुई महाराज जसवन्तसिंह जी के समय मोडा गाँव का एक सिख मलसिंह का लड़का धनसिंह महाराजा रणजीतसिंह की सेना में जाकर भर्ती हो गया। वह महाराजा रणजीतसिंह की निगाह में चढ़ गया और उसे खुश होकर जागीर देने का वचन दिया। धनसिंह ने अर्ज की कि मेरा

गाँव मोडां ही जागीर में दिला दिया जाय। महाराज रणजीतसिंह जी ने महाराजा जसवंतसिंह को सूचना दे दी। मोडा गाँव हमने धनसिंह को जागीर में दे दिया है। राजा जसवन्तसिंह जी भला महाराजा रणजीतसिंह का विरोध कैसे कर सकते थे और जब कि महाराजा रणजीतसिंह जी ने महाराज जसवंतसिंह जी की बहिन सभाकौर के विवाह मे अपना एक गाँव मनोखा दहेज मे दे दिया तो जसवंतसिंह जी सतुष्ट हो गये। किन्तु रणजीतसिह जी के बाद खड्गसिंह जी ने वह गाँव जब्त कर लिया। इस पर देवेन्द्र-सिंह जी को गुस्सा आया और उन्होंने भी धनसिंह के लडके हुक्मसिंह को कहला भेजा कि मोडा गाँव को खाली कर दो। उसके न मानने पर आपने अपनी सेना भेजकर उस पर कब्जा कर लिया। उस समय लाहौर मे महाराज शेरसिंह जी की हुकूमत हो चुकी थी। उन्होंने अंग्रेज सरकार से इस बात की शिकायत की।

सरकार अंग्रेजी ने इसकी तहकीकात की और 'बन्दर बाट' न्याय से मोडां को न तो लाहौर दरबार को दिया और न नाभा के पास रहने दिया जब्त करके अपने अधीन कर लिया। इस न्याय का दोनों ओर बुरा असर पडा। यद्यपि इस समय लाहौर मे नाबालिग महाराज दलीपसिंह का राज्य था फिर भी सिखों ने यह तो अनुभव किया ही कि सन्धि के प्रतिकूल अंग्रेज हमारे राज्य पर हाथ डालने लग गये और उधर नाभा महाराज देवेन्द्रसिंह जी भी नाराज हो गये।

इन्हीं दिनों परिस्थितियां ऐसी पैदा हो गईं कि लाहौर दरबार और अंग्रेज सरकार मे जग छिड गई। अंग्रेजों ने देवेन्द्रसिंह को लिखा कि हमे ज्यादा से ज्यादा रसद दीजिये। राजा साहब कुछ नाराज तो थे ही लापरवाही कर गये। इससे अंग्रेजों का दिमाग बिगडा, इन्हीं दिनों एक और घटना हुई सरदार रामसिंह जोकि लाहौर दरबार की सेना मे एक उच्च अफसर थे नाभा पधारे। वहाँ एक दो दिन ठहरे भी। महाराज की इच्छा तो यह थी कि दोनों ओर से तटस्थ रहे किन्तु अंग्रेज भला इस बात को कब बर्दाश्त करते, मेजर ब्राडफूट ने लिखा आप लुधियाना पहुँच कर अपनी मैत्री का सबूत दे और ज्यादा से ज्यादा रसद भेजे। आपने लिख भेजा रसद का प्रबन्ध हो रहा है किन्तु प्रबन्ध कुछ भी नहीं हो रहा था।

लड़ाई खतम हो गई अंग्रेज जीत गये। तब उन्होंने महाराज देवेन्द्रसिंह जी पर कोप किया। पहले तो जो जीत की खुशी मे लुधियाने मे दरबार किया। उसमे उनको बुलाया नहीं। दूसरे उनको स्पष्ट शब्दों मे लाहौर दरबार का सहायक साबित कर दिया और उन्हे गद्दी छोड़ देने के लिये हुक्म दे दिया। तीसरे राज्य का चौथा हिस्सा जब्त कर लिया। उनके बडे बेटे को जिसकी कि अवस्था अभी केवल आठ वर्ष की थी गद्दी पर बैठाया और उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध राज्य के तीन अधिकारी सरदार गुरुबख्श-सिह, सरदार फतहसिह और ला० बहालीमल के सुपुर्द किया। इन्हीं की एक कौंसिल नाबालिगी मे राज्य का प्रबन्ध सौतेली दादी चन्द्रकौर के परामर्श से करने के लिये बना दी गई।

महाराज देवेन्द्रसिह जी के लिये पचास हजार रुपया सालाना की पेंशन मुकर्रिर कर दी और उनके लिये तय किया गया कि देहली मेरठ के बीच कहीं भी रह सकते है। राज्य का यह सारा प्रबन्ध मिस्टर मैक्सन ने सवत् १९०४ वि० में खुद नाभा जाकर किया था। कुंवर भरपूरसिंह जी की गद्दी-नशीनी की रसम भी उस समय मामूली ढंग से ही हुई थी।

यह बात नहीं कि महाराज देवेन्द्रसिंह जी ने अपने निर्दोष होने के लिये कोई सफाई नहीं दी थी। उन्होंने सभी इल्जामों का जवाब दिया था। उन्होंने सरदार रामसिंह जी के सम्बन्ध मे कहा था कि वे मुझे भड़काने नही आये किन्तु इसलिये आये थे कि अगर लाहौर दरबार से उनकी अनबन हो जावे तो नाभा

आकर उन्हें रहने को जगह मिल जाय। मुलाकात केवल शिष्टाचार के लिये हुई थी। महाराजा साहब ने यह भी कहा था कि हमारा कोई भी गुप्त पत्र-व्यवहार लाहौर दरबार से न था।

राज्य से निर्वासित होने पर देवेन्द्रसिंह जी ने मथुरा में रहना पसन्द किया किन्तु दान और उदारतापूर्वक किये जाने वाले खर्चों के लिये उनका काम पचास हजार सालाना में चलना मुश्किल था। इसलिये वे कर्जा लेकर काम चलाने लगे। इस खबर को पाकर गवर्नमेंट ने उन्हें लाहौर भेज दिया जहाँ वे राजा खड्गसिंह की हवेली में रख दिये गये। वे मथुरा में लगभग आठ साल तक रहे थे और वहाँ उन्होंने अपना अधिकांश धन ब्राह्मण और साधुओं को खिलाने में खर्च किया था। यहां यह बता देना भी उचित होगा कि महाराज देवेन्द्रसिंह जी ने भी चार शादियां की थीं, जिनमें रानी मानकौर से दो पुत्र जन्मे थे एक भरपूरसिंह दूसरे भगवानसिंह।

महाराज के निर्वासित हो जाने के बाद शासन-कार्य के लिये एक कौंसिल बनाई गई थी। यह तो हम पहले ही लिख चुके है। इस कौंसिल के प्रेसीडेन्ट सरदार गुरुबख्शसिंह जी बनाये गये थे। इस कौंसिल का काम तीन वर्ष तक तो अमन से चला किन्तु फिर बखेड़ा खड़ा हो गया। बखेड़ा खडा करने वाला मुंशी साहबसिंह था। मि० मैक्सन ने तो इसे भी निर्वासित कर दिया था। इस पर इल्जाम यह लगाया गया कि इसने महाराज को कभी नेक सलाह नहीं दी। उन्हें सदा गुमराह ही किया। किन्तु दादी चन्द्रकौर इस पर महरबान थी। इससे यह नाभा में आ गया और इसने सरदार गुरुबख्शसिंह की पोल गवर्नमेंट के पास लिख भेजी कि राज्य की तमाम नौकरियों में गुरुबख्शसिंह ने अपने आदमी भर लिये हैं और साथ ही राज्य का धन भी खूब लूटा है। अंग्रेज सरकार की ओर से जांच हुई तो मामला सही निकला। गुरुबख्शसिंह कौंसिल से अलग कर दिये गये। उनके सारे रिश्तेदार भी नौकरियों में हटा दिये गये। मुंशी साहबसिंह ने इधर यह भी हिम्मत का काम किया कि कौंसिल का प्रेसीडेन्ट भी खुद ही बिना गवर्नमेंट की मंजूरी लिये बन गया।

अपने पिता के निर्वासित होने के कारण गद्दी पर जब बैठे थे कुल उम्र ८ साल थी। इसलिये इनकी दादी चन्द्रकौर ने इनकी देखरेख की ? रानी चन्द्रकौर बड़ी हुशियार थीं। वे शासन कार्यों की देखरेख भी रखती थीं। गुरुबख्शसिंह लुब्धक को उन्होंने ही हटवाया था और साहिबसिंह को दीवान मुकर्रिर किया था। हालाकि यह काम गवर्नमेंटकी मजूरी से होना चाहिये था किन्तु चूंकि आप अपने को राज्य शासन की जिम्मेदार समझती थीं। अत साहिबसिंह को रखने मे कोई हिचक नहीं की।

राजा भरपूरसिंह

इन दिनों तक महाराज भरपूर सिंह भी सयाने हो चुके थे कि सवत् १६१४ वि० मे भारत व्यापी विद्रोह अंग्रेजों को उखाड़ फेकने के लिये उठ खड़ा हुआ। इस विद्रोह मे महाराजा भरपूरसिंह जी ने अग्रेज सरकार की भरपूर मदद की। रसद पहुँचाने व आदमी देने की किसी बात में कमी नहीं की। आपको लुधियाने की छावनी पर मुकर्रिर किया गया जहाँ छ महीने तक रहकर आपने विद्रोहियों का आक्रमणों के समय मुकाबिल किया। उस समय आपके पास दो तोपखाने ३५० सवार और ४५० पैदल सिपाही थे। नाभे की फौज ने हर मौके पर अंग्रेजों की मदद की। दिल्ली और फज़ोर सब नाकों पर जहाँ भी उन्हे भेजा गया, पहुँचे। और बडी बहादुरी से लड़े। राजा भरपूरसिंह जी मय अपने भाई राजा भगवानसिंह के लुधियाने मे सतर्कता के साथ रहे। उन्होंने सरकार से यह भी इच्छा प्रकट की कि दिल्ली के मुहासिरे पर हमे भेजा जाय किन्तु चूंकि आप नाबालिग थे अत सरकार ने आपको पंजाब मे ही रक्खा। इस सकट

समय मे राजा भरपूरसिंह ने २॥ लाख रुपया भी सरकार को दिया क्योंकि रुपये की भी सख्त जरूरत आ पड़ी थी। नाभे का प्रबन्ध उस समय मुन्शी साहिबसिंह और सरदार निहालसिंह के हाथ था। उन्होंने भी नाभे से निकलने वाले विद्रोहियो को महाराज की आज्ञा के अनुसार पकड़ कर कैद कर लिया।

इन सब सेवाओ के बदले मे युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेज सरकार ने राजा भरपूरसिंह को भी अन्य राजाओं की भाति इनामात दिये। जिला झज्झर मे से परगना बाबुल एव काटी के परगने जिनकी कि आमदनी एक लाख छ. हजार से ऊपर सालाना थी—दिये। और जब्त किये हुए इलाके भी वापिस कर दिये। खिलअत ७ की जगह १५ कपडों की और सलामी ११ तोपों की स्वीकार की गई। "फरजन्दे आरज-मंद अकीदत पैवन्द दौलत इगलिशिया बैराड वश सरमौर मालवेन्द्र बहादुर"का खिताब मिला। आगे कुछ समय बाद सितारेहिन्द का भी खिताब सरकार ने दिया।

संवत् १९१७ मे लार्ड कैनिंग ने अम्वाला मे जो दरबार किया। उसमे राजा भरपूरसिंह जी को भी बुलाया गया। उसमे वायसराय ने राजा नाभा की सेनाओ को बहादुरी की खूब प्रशंसा की और कहा कि आपको सरकार ने जो भी इलाका दिया है। उस पर आपकी सतान का पीढ़ी दर पीढ़ी अधिकार रहेगा। आपको भी अन्य राजाओं की तरह नि सतान होने पर गोद लेने का अधिकार है। पटियाला, जीन्द की तरह फॉसी तक के अधिकार की आपको भी सनद प्राप्त होगई।

आपको सरकार की ओर से जो सनद हासिल हुई उसकी कुछ धाराये इस आशय की थीं।

(१) नये दिये हुये इलाकों पर भी महाराजगान नाभा को वही अधिकार होंगे जो उनके पुराने राज्य मे है।

(२) राज्य के आन्तरिक शासन मे वे स्वतंत्र होंगे सरकार कोई दस्तदाजी न करेगी।

(३) नाभा राज्य को अपने राज्य से सती प्रथा और कन्या वध की बुरी रस्मे उठा देनी होंगी।

(४) नाभा दरबार ब्रिटिश दोस्ती का सदैव नेकनीयती से पालन करेंगे।

(५) अंग्रेजो के दुश्मनो को अपना दुश्मन समझेंगे और रसद व सेना आदि से हर ऐसे मौके पर अंग्रेजों की मदद करेंगे।

(६) अंग्रेज सरकार नाभा राज्य के जागीरदार और माफीदारो की शिकायतों पर ध्यान न देगी। उन्हे रियासत ही निबटायेगी।

(७) रेल और सड़कों के लिये जो जमीन सरकार लेगी उसका उचित मुआविज देगी।

(८) नाभा दरबार की इज्जत और मान रक्षा को बनाये रखने मे सरकार सदैव साथ देगी। आदि आदि।

सवत् १९२२ मे लाहौर मे निर्वासन के दिन विताते हुए महाराज देवेन्द्रसिंह जी की मृत्यु होगई। इधर राजा साहब भरपूरसिंह जी को राज्य शासन के कुल अधिकार मिल गये थे। वे राज्य के काम को सुचारु रूप से चलाने लगे। उन्होंने २॥ लाख रुपया तो सरकार को गदर के समय ही दिया था। इसके सिवा सात लाख पहिले दिये जा चुके थे। महाराज भरपूरसिंह जी ने यह मालूम होने पर कि सरकार कानोड और बुडवाने के परगने नहीं रखना चाहती है। उन्होंने अपने कर्जे मे २० वर्ष के लिये कानोड़ का पट्टा करा लिया। इससे उन्हे वह रुपये भी वसूल होगये और भी कोई कठिनाई न पडी।

नावालगी के समय में राज्य मे कई अहलकार ऐसे घुस गये थे जो राजा प्रजा किसी के भी शुभ चिन्तक न थे। उनकी भी अम्वाला के एजेन्ट ने जॉच की और ऐसे लोगों को निकाल दिया। महाराजा

भरपूरसिंह जी की यह आदत थी कि राज्य के प्रत्येक संगीन मामले मे अम्वाला के कमिश्नर और पटियाला के महाराज की सलाह ले लेते थे। उन्होंने अपने पिता और दादा की भांति पटियाला से द्वेष नहीं रक्खा। किन्तु मेल मिलाप वढ़ा लिया था। हालांकि कुछ लोगों ने उन्हे भड़काना भी चाहा किन्तु वे सावधान रहे।

महाराज भरपूरसिंह चालचलन के अच्छे थे। उनके अन्दर कोई भी ऐसा ऐव नहीं था। जो राजे रईसों मे होता है सर लेपिलग्रिफन ने भी लिखा था कि "देशी रियासतों के रईसो मे छोटी उम्र मे जो खरावियॉ होती हैं · · उनसे महाराज भरपूरसिंह वचे हुए हैं।" महाराज हिन्दी, गुरुमुखी और फारसी मे अच्छी योग्यता रखते थे। कविता करने का भी आपको शौक था। आप समझते थे कि अग्रेजो के शासन मे अग्रेजी सीखना भी जरूरी है इसलिये समय निकाल कर अग्रेजी सीखते थे। रियासत मे माल, दिवानी और फौजदारी के कानून भी आपने ही कायम कराये। आप सारा समय राज काज मे ही विताते थे। दफ्तरों में जाकर अहलकारों के काम की देखभाल भी करते और जिलेदार तथा जागीरदारों से मुलाकातें भी करते।

सम्वत् १९१६ वि० मे आपने अम्वाला कमिश्नर की मार्फत गवर्नर जनरल से मिलने का अपना नम्बर भी निश्चित कराया क्योंकि पहले आपका ही पहला नम्वर था किन्तु जीन्द वालों ने कोशिश करके अपना नम्वर आगे रखा लिया था कमिश्नर ने आपकी वात पर ध्यान दिया। जीन्द को और आपको एक ही नम्वर मे रख दिया।

राजा भरपूरसिंह जी अपने प्रतिदिन के कार्य को यथा सभव नोट कर लेते थे। इस काम के लिये वे डायरी रखते थे। गरज यह कि उन्हे इस वात की पूरी चिन्ता रहती थी कि उनके द्वारा जितना भी हो सके, राज्य का भला हो और राज्य उन तमाम संकटों से वचता रहे, जिनमे होकर उसे अव तक गुजरना पड़ा है। आप हिन्दू और सिख सभी प्रकार के विद्वानों की कदर करते थे किन्तु सिख धर्म मे आपकी आस्था थी।

राजा भरपूरसिंह का घर के लोगों से भी प्रेम का ही व्यवहार रहता था वे अपने भाई को तो पुत्र के तुल्य ही प्यार करते थे। सौतेली माताओं और दादियों से भी उनका सलूक श्रद्धा का था। यही वजह थी कि रानी चन्द्रकौर ने जिसके पास फूल और दयालपुरा की जागीर थी। इनको राजी से ही छोड़ दी। क्योंकि उन्हे विश्वास था कि वे जव तक जिन्दा रहेगी भरपूरसिंह उनका अच्छे से अच्छा खाने ठहरने और अन्य खर्चों का प्रवन्ध करेगा। कहा जाता है रानी चन्द्रकौर ने सरदार उत्तमसिंह का लालन पालन किया था। जमड़ वाले को विश्वेदारी वख्शी थी। जो उनके पास वरावर रही।

संवत् १९२० वि० मे लार्ड एलगन ने आपको सूचित किया कि सरकार ने आपको अपनी कानून वनाने वाली कौंसिल का मेवर वना लिया है। आप इसे स्वीकार करेंगे। यह वात उस समय काफी इज्जत की समझी जाती थी। उन्हे प्रसन्नता हुई। वे इस वात के वहुत इच्छुक थे कि उस कौंसिल मे भाग लेने के लिये कलकत्ता जावें किन्तु दैवात इसी वर्ष गर्मियों मे वे वीमार हो गये। मियादी वुखार ने धर दवाया। दो महीने तक काफी उपचार हुआ किन्तु वीमारी वढ़ती गई और वह दिन आ पहुॅचा जव कि वे इस संसार को छोड़ कर परलोक के लिये विदा हो गये।

विमान निकाल कर उनके शव का वड़ी धूमधाम से उनके भाई भगवानसिंह ने अन्त्येष्टि सस्कार किया और सारे राज्य ने उनके परलोक गमन पर शोक मनाया।

महाराजा भरपूरसिंह जी के वाद उनके छोटे भाई भगवानसिंहजी रियासत नाभा के मालिक

हुए, कारण कि भरपूरसिंह जी ने कोई सन्तान न छोड़ी थी। और किसी दूसरे का इतना नजदीकी रिश्ता न था। सरकार ने महाराजा पटियाला और जीन्द से सलाह ली तो उन्होंने भी भगवानसिंह जी का ही हक सावित किया। अतः राजा भगवानसिंह ही राज्य के मालिक बने।

राजा भगवानसिंह

संवत् १६२१ विक्रमी के जेष्ठ महीने में आपकी गद्दी नशीनी की रस्म अदा हुई। जिसमे अम्बाले का एजन्ट गवर्नर एवर्ट, जीन्द पटियाले के महाराज तथा अन्य अग्रेज अफ़सर और सतलज पार के रईस शामिल हुए। सरकार की ओर से खिलअत मे १५ कपड़े ३ जवाहरात १ हाथी और १ घोडा मिले। रस्म के अनुसार राजा रईसों ने भी तोहफे दिये।

महाराज भगवानसिंह जी खुद नेक आदमी थे फिर भी उनका राज्यकाल सकट का ही रहा। गद्दी पर बैठते ही उन्हे आपत्तियों का सामना करना पड़ा। राज्य के अधिकारी और कर्मचारियों मे धडा-बन्दी हो जाने के कारण यह अफवाह फैल गई कि महाराज भरपूरसिंह जी को जहर देकर मरवाया गया है। यदि यह बात सही भी हो तो भी राजा भगवानसिंह जी का उसमे कोई हाथ न था। यह गुल खिला-रघड़ वाले की सरदारनी महताबकौर के कत्ल पर। राज खालसा के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने महताव कौर के कत्ल का हाल इस प्रकार लिखा है—"राजा भरपूरसिंह जी बड़े सुन्दर, सजीले और आकर्षक जवान थे। उनमें जहा अनेकों गुण थे। वहां सुन्दरियों के देखने का एक व्यसन भी था। अच्छी २ स्त्रियों के चित्र भी खींचा करते थे। राजा साहब के लाजवाब सौन्दर्य को देख कर स्त्रिया भी उनके पास खिंची चली आती थीं। महताबकौर जो इनकी रिश्ते मे भाभी होती थी। वह भी इन पर रीझ गई और राजा साहब भी उसके भरे हुये गुलाबी चेहरे पर अपने को निछावर कर बैठे। स्त्री का स्वभाव है कि वह एकाधिकार चाहती है। महताबकौर ने देखा कि राजा साहब का किशनकौर नाम की एक युवती से भी प्रगाढ़ प्रेम है तो वह इनसे नाराज हो गई। नाराजी भी यहाँ तक बढ़ी कि जानी दुश्मन बन गई। महाराज को उसके बेटे के विवाह मे अपनी माता के आग्रह से शामिल होना पड़ा। यहीं से वे बीमार होकर आये। और अत मे मर गये। सरदार गुरुबख्शसिंह जो कि महाराज भरपूरसिंह का दोस्त था। उसे राजा भरपूरसिंह के कहने से यही शक हो गया कि महताबकौर ने राजा साहब को जहर दिया। गुरुबख्श सिंह ने बड़ी कोशिशे करके भगवानसिंह जी को राजा बनवाया और फिर भगवानसिंह जी की लिखित अनुमति लेकर महताबकौर को कत्ल करा दिया। कत्ल करने वालों ने शराब के नशे मे सारा किस्सा जैतों के थानेदार के सामने ब्यान कर दिया फिर क्या था मुकद्दमा चल निकला। सरकारी कमीशन बैठा। राजा जीन्द और पटियाला के सामने कमीशन ने जाच की। जिसमे राजा भगवानसिंह जी निर्दोष सावित हुए गुरुबख्शसिंहजी को दो महीने की सजा और कत्ल करने वालों को आजन्म काला पानी हुआ।

इस केस के समाप्त होने पर भी महाराज भगवानसिंह जी के लिये शांति के दिन नहीं आये। प्रजा में तो कानाफूसी चलती ही रही। लधडा और सोनटी के जागीरदार भी अपने केसों को लेकर उठ खडे हुए। यद्यपि सवत् १८६५ वि० मे उनके झगड़ों का फैसला हो चुका था किन्तु सोनटी वाले उससे रजामन्द नहीं थे। अत. पुन उन्होंने नये सिरे से अपने मामले को चला दिया। लार्ड कैनिंग की आज्ञा से अम्बाला के तत्कालीन कमिश्नर ने जांच की और महाराजा जींद और पटियाला की राय लेकर यह तय किया कि सोनटी के सरदारों को बिना किसी तरह की सेवा किये पांच हजार सालाना राज्य से पेन्शन स्वरूप मिला करे। सोनटी के सरदार इस फैसले से राजी नहीं हुए। उन्होंने प्रिवी कौंसिल मे अपील करदी।

वहां से फिर नये सिरे से जाच करने का हुक्म हुआ और मि० टेलर के सुपुर्द यह काम हुआ। उन्होंने काफी जाच पड़ताल के बाद तय किया कि सोनटी कुल चौतीस हजार पाच सौ के लगभग आमदनी की है। इसमें से निम्न प्रकार नाभा को मिलना चाहिये—

८३६८॥=) बावत जब्ती लावारिस सवारों का हिस्सा

५०७१॥) बावत ६० सवारों की नौकरी व हाजिरी सात रुपया मासिक प्रति सवार के हिसाव से

८०६१॥) बावत जब्ती इलाका नाभा चौथे की बा हिसाव छटे हिस्से।

अर्थात् कुल २१५०१॥=) रियासत नाभा को मिले और १२६६७।=) सोनटी के सरदारों के पास रहे.

इस फैसले को सब लोगों ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार इस झगड़े से भी छुटकारा हुआ यह याद रहे लाधरा वाले इस फैसलें से मुक्त थे।

इसके बाद भी रियासत मे शाति नहीं रही। नाभे का जो वकील अब्दुल रहीम खां नाम का अम्बाले मे रहता था उसने कमिश्नर टेलर को हत्थे पर चढ़ा लिया और उससे महाराजा भगवानसिंह जी पर दबाव डलवाया कि अब्दुल रहीम के बाप नूरखां के नाभा के प्राय सभी प्रतिष्ठित सरदार इस बात के खिलाफ थे जिनमे सरदार लालसिंह, हजूरासिंह, शेरसिंह और दयालसिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। रहीमखां ने सबको अम्बाले बुलाकर कैद करा दिया। इल्जाम यह लगाया कि यह लोग महाराज को बहका कर राज्य को बर्बाद करना चाहते हैं। मि० टेलर ने महाराजा साहिब की इच्छा के विरुद्ध एक कौंसिल बनवा दी। जिसमे नूरखां को प्रेसीडेन्ट और बख्तावर सिंह और हाकिम राय को मेम्बर बनाया गया। रहीम खां को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ वह तो अपने बाप को रियासत का सर्वेसर्वा बनाना चाहता था उसने हाकिमराय, प्रभुदयाल, मीरमुन्शी और फरीदुद्दीन को अम्बाला बुलाकर कैद मे डलवा दिया। और महाराज को एक हजार मासिक का खर्च मुकर्रिर करा दिया। हम नहीं समझते मि० टेलर किस स्वार्थ से रहीम बटलर के इशारे पर नाचते थे। राजा साहब कहां तक बर्दाश्त करते। उन्होंने भारत सरकार को साफ २ लिख दिया कि हमारी रियासत का सम्बन्ध सीधा लाहौर से हो नकि अम्बाला के कमिश्नर से। इस बात को मनवाने के लिये उन्हे लगभग एक लाख रुपया खर्च करना पड़ा। उनका सम्बन्ध लाहौर से तय हो गया। इसके बाद उन्होंने कौंसिल तोड़ दी और अपनी इच्छा के अनुसार नया प्रबन्ध किया। ऐसे सभी लोगों को निकाल दिया जो राज्य के कार्य्यो मे विघ्न डालते थे। साहिबसिंह भी बनारस की ओर भाग गया और वहीं मर गया।

महाराज भगवानसिंह जी हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी सभी जानते थे और स्वभाव के भी अच्छे थे वे राज्य मे सुधार भी करते किन्तु काल ने उन्हे अधिक दिन दुनिया मे नहीं रहने दिया। उन्हे तपेदिक हो गया और उसी मे बीमार रहकर संवत् १७२७ वि० के जेष्ठ वदी १२ को इस ससार से प्रस्थान कर गये।

उन्होंने अपने सामने ही अपनी भाभियों के खर्च के लिये रकम मंजूर करदी थी जो उनके पीछे भी उसी हिसाव से मिलती रही। उनके खुद के तीन रानियाँ थीं। इनमे से किसी के भी सतान नहीं हुई। दीवान हाकिमराय ने मुन्शी प्रभूदयाल के लिखे "नाभा [राज्य वंश" के कुर्सी नामे के अनुसार बडरुखां के रईस सरदार हीरासिंह जी को राज्य का हकदार समझा और उन्हीं के लिये सरकार मे लिखा पढी शुरू की। सर लेपिलग्रिफन इस जॉच के लिये मुकर्रिर हुए। उन्होंने पटियाला, जींद के महाराजों की राय लेकर हीरासिंह का ही हकदार होना गवर्नमेंट को लिख भेजा। जिसे गवर्नमेंट ने भी स्वीकार कर लिया।

नामा राज्य के अनेकों सरदार और अहलकार भी इस चुनाव के पक्ष में थे।

सवत् १६२८ वि० के भादों महीने की बदी अष्टमी को महाराजा हीरासिंह जी को गद्दी पर बैठाया गया। और वडी धूम धाम के साथ उनका राजतिलक हुआ। जिसमे पूर्व प्रथा के अनुसार राजा रईस और कई अंग्रेज अधिकारी भी शामिल हुए। राजा हीरासिंह जी गुरुमुखी और हिन्दी मे अच्छी योग्यता रखते थे। अंग्रेजी नहीं जानते थे। फिर राजनीति और शासन प्रबध की योग्यता मे वे अनेकों अंग्रेजी जानने वाले रईसों से आगे थे। आपने सरदार सेवासिंह जी को अपना मत्री बनाया जोकि राजा प्रजा का सच्चा शुभचिंतक सरदार था।

राजा हीरासिह

कूका आन्दोलन इन्हीं के समय मे हुआ था। जिसे दवाने मे आप को भी गवर्नमेंट की मदद करनी पड़ी। कूका सिखो को नामधारी भी कहते हैं। धार्मिक भावावेश मे कसाइयों को नेस्तो नाबूद करने के लिये कुछ नामधारी सिख बिखर पड़े थे। फौजी सहायता भी भेजी।

सवत् १६३५ वि० मे काबुल के अमीर और अंग्रेजों के बीच लड़ाई छिड़ गई। महाराज हीरासिंह जी ने अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिये अपने ७०० सैनिक काबुल भेज दिये। जिन्होंने वहाँ बहादुरी दिखाई। कई अंग्रेज अधिकारियों द्वारा महाराज हीरासिंह की फौज की बहादुरी का जिक्र किया। इसी समय अंग्रेजों ने कुछ कर्जा लिया। उसमे भी महाराज ने चार लाख रुपया कर्ज अंग्रेजों को दिया। जिसका ब्याज नाभा राज्य को बराबर मिलता रहा। अन्य स्थानो पर भी जहाँ कहीं अंग्रेजो को दुश्मनों से लड़ना पड़ा। महाराज ने खैरख्वाही दिखाने के लिये अपनी ओर से सहायता देने की इच्छा प्रगट की।

सवत् १६४१ वि० मे जब अमीर काबुल भारत मे आये। उनके स्वागत के समय रावलपिंडी मे आपकी फौज के प्रदर्शन की बड़ी प्रशंसा हुई।

महाराजा हीरासिंह जी ने रियासत मे कई तरक्की के काम किये। सबसे पहले तो लुटेरो का दमन किया। राज्य मे सडके, धर्मशाला, अन्न क्षेत्र, छात्रालय, स्कूल और औषधालय स्थापित करके प्रजा सुधार की नींव डाली। चार लाख रुपये से आपने सैनिको के रहने के लिये एक पक्की छावनी बनवाई। नाभा शहर मे इन्टरमीजियेट कालेज की स्थापना की। अंग्रेजी ढग के डाकखानों का प्रबन्ध किया। पन्द्रह लाख रुपये खर्च करके सिंचाई के लिये नहर निकलवाई। राज्य मे रेल निकलवाने मे स्टेशनो का खर्च आपने बर्दाश्त किया। एक हस्पताल बनवाया। बाग मे पचास हजार की एक कोठी प्रतिष्ठित महमानों के लिये बनवाई। दूसरे बाग मे एक कोठी दो लाख रुपये की लागत से अपने लिये बनवाई। शहर की सारी नालियों को पक्का करा दिया। भावसू के मुकाम पर नदी का पुल बनवाकर वर्षा मे होने वाले प्रजा के कष्ट को दूर किया। नाभे से मालेरकोटला, और पटियाला तक लगभग ४० मील लंबी पक्की सडके बनवाईं। बावल मे एक गढ़ बनवाया। अमलोह मे एक पक्की सराय और बाजार बनवाया। फूल मे बाग और मडी जैतो मे बाजार और धनोला मे सराय बनवाई। इसके सिवा जेल, छावनी, बोर्डिङ्ग हाऊस, तालाब, महल और कई धर्मशालायें भी बनवाईं। कहने का मतलब यह कि प्रजा को आपसे काफी लाभ पहुँचा और रियासत का प्रबन्ध कानूनी तरीका पर होने लगा। पंजाब मे आपका शासन नमूने का रहा। जिसकी तारीफ कई अंग्रेज अफसरों ने भी की।

राज्य का कार्य भली प्रकार करने वाले अफसरो और अहलकारों का महाराज सदैव ध्यान रखते थे और तरक्की देकर उनका हौसला भी बढ़ाते थे। सरदार सेवासिंह जी ने जो आपके वजीर थे। राज्य को उन्नत बनाने में आपकी बड़ी मदद की। उन्हे इन सेवाओं के बदले मे राज्य की ओर से १२ हजार की

ज़ागीर और तीन गाँवों की विस्वेदारी वख्शी गई। एक लंबे अर्से तक सरदार सेवासिंह जी ने राज्य की सेवा की। जब उनका स्वर्गवास होगया तो महाराज ने उनके योग्य पुत्र सरदार प्रतापसिंह जी को अपना वजीर नियुक्त किया। जिन्होंने राज्य का काम संभालने में अपने पिता का पूरा अनुकरण किया।

महाराजा हीरासिंह जी ने चार विवाह किये थे। (१) सरदार अनोखासिंह जी लोंगेवाले की सुपुत्री मीरकौर के साथ। (२) सरदार प्रेमसिंह जी रल्लेवाला की सुपुत्री प्रेमकौर के साथ। (३) कर्मगढ़ के सरदार वसावासिंह जी की सुकन्या हरनामकौर के साथ। (४) सरदार संतोषसिंह की सुपुत्री ईसरकौर के साथ। जिनमें से वड़ी महारानी मीरकौर जी के उदर से कुँवर रिपुदमनसिंह जी का सवत १९३९ में जन्म हुआ और प्रेमकौर से एक वीवी जी उत्पन्न हुई।

महाराज हीरासिंह जी को अपने युवराज साहव की शिक्षा-दीक्षा का वड़ा खयाल था। इसलिये उन्होंने उनकी सरक्षा और शिक्षा के लिये स्वनाम धन्य भाई काहनसिंह जी और किशनदास जी को—गुरुमुखी, सस्कृत और अंग्रेजी के लिये--शिक्षक नियुक्त किया। महाराज हीरासिंह जी चाहते थे कि उनका उत्तराधिकारी पंजावी राजाओं में शिक्षा और वृद्धिमानी में सवसे श्रेष्ठ हो।

महाराजा हीरासिंह जी ने लगभग ४० वर्ष राज्य किया। इस अर्से में सरकार की ओर से आपको जी० सी० एस० आई, जी० सी० आई० ई० की उपाधियाँ मिली थीं। संवत् १९६८ की शरद ऋतु में आपका देहान्त होगया। उस समय आपके राजकुमार की अवस्था २९ वर्ष की हो चुकी थी। संवत १९६९ वि० के आरम्भ में पिता के स्वर्गवास से लगभग एक माह वाद आपको सिंहासनारूढ़ कराके सरकार अंग्रेज के प्रतिनिधि ने नाभा जाकर अधिकार प्रदान की रस्म अदा की। आप पिता की मृत्यु के समय यूरोप में थे। इसलिये एक महीना गद्दी नशीनी होने में लग गया। आपने अपने समय में राज्य का प्रवन्ध शान के साथ किया। राजसी ठाठ भी खूव वढ़ाये। आपने अपने १२ साल के शासन काल में क्षत्रियोचित ढंग से राज्य किया। संवत् १९८० में पटियाला में और आपमें जो झगड़ा चल रहा था। उनका लाभ उठाकर अंग्रेज सरकार ने आपको गद्दी से अलग कर दिया।

महाराज रिपुदमनसिंह

अलग करने के सरकार अंग्रेज ने चाहे जो भी कारण वताये हों किन्तु भारतीय लोकमत ने उनमें स्वाभिमान और कौम परस्ती के कारण भी समझे थे। वास्तव में महाराज रिपुदमनसिंह जी स्वाभिमानी थे ही। पंजाव में राजतिलक के समय ताज पहनाने की प्रथा यह चल पड़ी थी कि अंग्रेजी एजेन्ट सिर पर ताज रखा करते थे। किन्तु आपने एजेन्ट महोदय से यह कह कर कि आप कष्ट न करें। यह तो मेरे घर की चीज है मैं खुद ही पहन लूंगा। अपने हाथों ही पहन लिया। इसके अर्थ यह समझे जा सकते थे कि महाराज किसी के वनाये हुये राजा अपने को अनुभव नहीं करते थे। प्रजा की सुविधा के लिये उन्होंने तहसीलें वढ़ाईं। क्योंकि मालगुजारी वसूल करने के लिये जमींदारों को वीसियों मील हैरान होना पड़ता था। इन्साफ पाने के लिये हाईकोर्ट की स्थापना की। राज्य में आपसे पहले पढ़े लिखों की कुल सख्या आठ हजार के करीव थी। आपने विद्या प्रचार के लिये प्राइमरी तक की शिक्षा मुफ्त कर दी और अनेकों स्थानों पर स्कूल खुलवाये। पडित मदनमोहन मालवीय जी को उनके नाभा पधारने पर हिन्दू यूनीवर्सिटी के लिये एक लाख रुपये प्रदान किये।

राज्य की प्रजा में स्वायत शासन उपयोग की योग्यता और लालसा वढ़े इस दृष्टिकोण से आपने डिस्ट्रिक्ट वोर्ड और एडवाइजरी कमेटियों की स्थापना की। डिस्ट्रिक्ट कमेटियों का निर्माण चुनाव-पद्धति

से होता था। जो राज्य के मामलों मे एडवाइजरी कमेटी को सलाह देती थी। वे बहुत ही सादे लिबास से रहते थे। कभी-कभी तो प्रजा के अनेकों मनुष्य उन्हे राज्य का कोई सरदार मात्र ही—इस सादगी के कारण—समझ लेते थे। सादा वेश में ही राज्य के गॉवों मे भी निकल जाते और प्रजा-जनों से उनकी दिक्कतों और तकलीफों की जानकारी प्राप्त करते।

एक पंजाबी लेखक ने महाराज की देश भक्ति के सम्बन्ध में लिखा था उनकी मि० गोखले और पंडित मदनमोहन मालवीय से दोस्ती थी। उन्होंने तिलक फंड मे भी रुपया दिया था। वे राज्य की नौकरियों मे भी प्राय सभी स्थानों पर देशियों को ही रखते थे योरोपियन लोगों को उन्होंने राज्य के ऊँचे ओहदों पर नहीं भरा। जग योरोप के समय भी उन्होंने अपनी प्रजा से कोई चन्दा नहीं मॉगा। न अपनी ओर से सेना देने की इच्छा ही प्रकट की। प्रजा को कोई कष्ट सरकारी आदमियों या उनकी वदौलत न पहुँचे इस बात की वे पूरी चिन्ता रखते थे। पंजाब के गवर्नर लूईडैन जब वापिस विलायत जा रहे थे तो उन्होंने पंजाब की रियासतों मे दौरा किया। महाराजा रिपुदमनसिंह जी ने उन्हे लिख भेजा खेद है कि मैं स्वयम इस समय दौरे पर हूँ, आपका सत्कार किसी उचित समय पर करूँगा।"

ननकाने के काण्ड को सारी दुनिया जानती है। महाराज की सहानुभूति अपनी कौम की ओर इस मामले मे रही। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवन्धक कमेटी के आदेशानुसार आपने भी अपने राज्य मे शहीदी दिवस मनाया। उस दिन राज्यकीय विभागों की छुट्टी करदी। जो सिख अकाली पोशाक पहन कर ननकाना साहब जाते थे। उनके लिये महाराज नाभा ने कोई रोक टोक नहीं की। यह उनकी कौमपरस्ती की छोटी छोटी घटनाये है। जो अंग्रेज सरकार की नौकरशाही को कब वर्दाश्त हो सकती थी।

नाभे पटियाले का कई पीढ़ियों से मन मुटाव चला आरहा था। यह बात हम पूर्व लिख चुके हैं। महाराज रिपुदमनसिंह अपनी ओर से तो चाहते भी न थे कि यह झगड़ा सदैव रहे। इसीलिये भाई साहब भाई अरजनसिंह जी बागड़िया के बीच मे पडने से उन्होंने महाराजा पटियाला से शिमला मे मुलाकात भी की किन्तु सन् १९२१ ई० तदनुसार संवत् १९७८ मे फिर गड़बड़ होनी शुरू हो गई। एक चोरी का अपराधी भाग कर पटियाला पहुँच गया। महाराजा नाभा ने पटियाला से उसे मागा किन्तु पोलीटिकल एजेन्ट ने पटियाला को मना कर दिया कि मुलजिम को नाभे के हवाले मत करो। पता नहीं उन्होंने किस कानूनी पाइंट से ऐसी सलाह महाराजा पटियाला को दी थी। नाभे को मुलजिम नहीं सौंपा गया। इसके कुछ ही अरसे बाद पटियाला का एक सब इन्सपेक्टर अब्दुल अजीज व्यभिचार के मामले मे और एक कानिस्टेबिल मुहम्मद याकूब डाके के अपराध मे राज्य नाभा मे पकड़े गये और उन्हे सजा भी दी गई। पटियाला ने इसमे अपनी तौहीन समझी उसने पोलीटिकल डिपार्टमेन्ट को नाभे की शिकायत की। पोलीटिकल डिपार्टमेन्ट तो मौके की तलाश मे था ही उसने तो बीच मे ही कई बार महाराज रिपुदमनसिंह को गद्दी से हटाने के इरादे किये थे किंतु अवसर अनुकूल न समझ कर चुप्पी साध ली गई।

पटियाले के लगाये गये इलजामों की जाच के लिये सरकार ने इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज स्टूअर्ट को मुकर्रिर किया। निर्णय के लिये आठ मुकदमे जज महोदय के सामने पेश हुये।

पहला यह कि नाभे की ईसरी नाम की जनानी कुछ गहने और टूम नाभे के जमाई के साथ लेकर लाहौर भाग गई और फिर पटियाला चली गई। नाभे के पुलिस अफसरों ने उसे पटियाला जा पकडा किंतु पटियाला राज्य ने उन्हे नाभे के सुपुर्द नहीं किया। दूसरा यह कि सबइन्सपेक्टर अब्दुल अजीज ने एक स्त्री का सत भंग किया और मौके पर पकड़ा गया। पटियाला ने कहा वह एक डाकू की

तलाश से नाभा गया था। तीसरा यह कि याकूब ने डकैती की और उसने खुद स्वीकार किया कि इन्सपेक्टर जनरल पटियाला के हुक्म से ही मैंने ऐसा किया था। पटियाला ने इसका जवाब दिया कि नाभा अकालियों का मददगार है और यह सिपाही पटियाले ने अकालियों की देखभाल के लिये मुकर्रिर किया था। अकालियों से मिलकर इस पर झूठा मामला चलाया गया है।

चौथा यह कि, जब याकूब को पकड़ कर नाभा पुलिस हमारे राज्य में जो कि उसके रास्ते में पड़ता था लेजा रही थी तो रास्ते में हमारी पुलिस पर गोली चलाई। नाभा का कहना था यह बिलकुल बनावटी बात है। पांचवां यह कि—जब नाभा पुलिस मुलजिम को पकड़ ला रही थी पटियाला ने उसमें हस्तक्षेप किया—पटियाला ने इससे इन्कार किया। छटा यह कि नाभे जनानी को उड़ाने के षडयंत्र रचे जिसे कि पुलिस कब्जे में रख रही थी। इसमें पटियाला ने नाभा के एक मुसलमान डाक्टर को अपने पक्ष में कर लिया था जिसकी कि बहुत सी जायदाद पटियाला में थी। सातवां मुकदमा नं० ३-४ से ही संबंध रखता था। वह पैंधनी गॉव की स्थिति बताकर दायर हुआ था। आठवां यह कि रियासत पटियाले के एक भागे हुए घोड़े को नाभे ने नीलाम कर दिया।

कहना न होगा कि पटियाला ने अपनी चतुराई से अपने पक्ष को पूरी चालाकी से पेश किया और उसकी मदद पर पोलीटिकल एजेन्ट भी था। नाभे के अनेकों नौकरों को मिला लिया गया और उन्होंने नाभे के विरुद्ध गवाहियां दीं। मुकदमे में दोनों ओर से रुपया बहाया गया। मदरास तक के नामी-नामी कानून दां अपने पक्ष के साबित करने के लिये दोनों ओर से बुलाये गये।

मुकदमे के दौरान में नाभे के अनेकों कर्मचारियों ने पूरी नमक हरामी दिखाई। नित-प्रति कोई नाभा छोड़ कर भागता तो कोई पटियाले के अफसरों से जा मिलता। कोई कागज उडा ले जाता तो कोई छिप जाता। जिन अफसरों की रक्षा के लिये महाराज ने मुकदमा अपने ऊपर लिया था वे ही उन्हें दगा देने लगे।

अंत में यह हालत पैदा हो गई कि महाराज बेचैनी में पड़ गये और वजीर, सैक्रेटरी सबने उन पर जोर डाल कर इस आशय की चिट्ठी वायसराय के नाम लिखवादी कि मैं गद्दी छोडने को तयार हूँ। तीन लाख सालाना पर देहरादून या मसूरी रह कर गुजर कर लूँगा। पटियाला के हरजाने को भी रियासत नाभा पूरा कर देगी।

पंजाब के सारे पत्रों में यह खबरें प्रकाशित हो गई थीं कि महाराज नाभा गद्दी से उतारे जा रहे हैं। इसलिये संत तेजासिंह और भाई दीदारसिंह उनसे मिलने नाभा गये। जहाँ उन्हें मुश्किल से मिलने दिया गया। उन्होंने जो ब्यान लौट कर दिया उसका सार है कि महाराजा नाभा और पटियाला के बीच इस प्रकार का वैमनस्य कुछ स्वार्थी अफसरों ने फैलाया था और उन्होंने अन्त समय तक दोनों ओर राजीनामा भी नहीं होने दिया। राजी से गद्दी त्याग की चिट्ठी भी उनकी बेचैनी में लाभ उठाकर पोलीटिकल एजेन्ट के दबाव में आकर उनके सलाहकारों ने ही लिखा ली थी। और जब महाराज ने चाहा कि मेरी चिट्ठी वापिस मगा दी जाय। लोगों ने टालमटोल ही कर दी और वह समय ला दिया जब कि महाराज को राज्य छोड़ने का सरकार की ओर से हुक्म आ गया।

महाराज रिपुदमनसिंह को गद्दी से हटाये जाने का समाचार सारे भारत के सिखों के लिये वज्रपात सा लगा। बम्बई कलकत्ता से लेकर सारे पंजाब में सरकार के इस कार्य पर रोष प्रकट किया गया। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने इस मामले को हाथ में ले लिया और जैतो पर सत्याग्रह रोप दिया।

तमाम हिन्दुस्तानी अखबारो ने भी सरकार के इस कार्य की निन्दा की किन्तु सरकार टस-से-मस नहीं हुई। और महाराज साहब को गद्दी छोड़ देनी पड़ी वे देहरादून भेज दिये गये। जहाँ से दक्षिण भारत मद्रास के किसी जिले मे नजरबन्द कर दिये गये। उनका खर्च भी काफी कम कर दिया गया। कहा गया कि वह अपने खर्चे से से बहुत कुछ अपने पक्ष के आन्दोलन पर खर्च करते है।

महाराज ने निर्वासन मे इस बात की काफी कोशिश की कि एक बार उन्हे फिर से रियासत का प्रबन्ध सौंप दिया जाय किन्तु उनकी यह बात कतई नहीं सुनी गई।

उनके सम्बन्ध में कई बार ऐसम्बली मे भी प्रश्न किये गये किन्तु सरकार ने कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिये।

उनके राजकुमार साहब की शिक्षा का सरकार ने उचित प्रबन्ध किया उन्हे विलायत मे भी शिक्षा दिलाई। अगले वर्ष उनको शासनाधिकार दे दिये गये। उनका शुभ नाम श्री प्रतापसिंह जी है।

प्रतापसिंह

महाराजा रिपुदमनसिंह जी ने तीन चार वर्ष बाद अपना नाम गुरुशरणसिंह जी रख लिया था।

उनके समय के बाद राज्य मे शासन-सम्बन्धी कई हेर-फेर हुए हैं कुछ उन्नतशील कार्य भी हुए हैं। महाराज प्रतापसिंह जी ने शासनाधिकार हाथ मे आने पर राज्य मे कई सुधार किये। उनका विवाह नरेन्द्र मंडल के वायसचांसलर महाराजा धौलपुर की सुपुत्री के साथ हुआ है।

सन् १९४८ मे अन्य राज्यों की भांति यह राज्य भी पेप्सू यूनियन मे शामिल हो गया है।

उन्नीसवाँ अध्याय

कैथल का भाई खान्दान

कैथल भी जाट सिखों की एक रियासत थी। उस समय उसकी भी अच्छी इज्जत थी। समय पाकर सरकार अंग्रेज ने उसे जब्त कर लिया। 'सैरे पंजाब' के लेखक ने कैथल का वर्णन इस प्रकार किया है —"गुरु अमरदास जी ने गुरु रामदास जी को गद्दी देते समय कहा था कि तुम्हें एक कार्य करना है और वह कार्य एक पवित्र कार्य है। तु ग, सुल्ताना और गुमराला गाँवों के बीच में कई कोस का एक जगल था उस जगल में एक बहुत पुराना तालाब था किन्तु वह मिट्टी से भरा हुआ था। गुरु अमरदास जी उसे खुदवा कर फिर से जलाशय बनवाना चाहते थे। बस यही वह कार्य था जिसे पूरा करने के लिये गुरु अमरदास जी ने अपने परम आज्ञाकारी शिष्य रामदास जी से कहा था गुरुजी ने अपने योग्य शिष्य को एक बार वह स्थान दिखा भी दिया था। उस जगल की वह भूमि आस-पास के गाँवों के जाट जमींदारों की सम्मिलित भूमि थी। इसलिये गुरुजी ने उस इलाके के प्रमुख-प्रमुख चौधरियों को बुलाकर उस स्थान पर जलाशय खुदवाने का अपना पवित्र सकल्प प्रकट किया। जाट इस बात को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वह भूमि बड़ी खुशी के साथ गुरुजी को सौंप दी। जगह मिलने पर सम्वत् १८२९ वि० में आषाढ़ के महीने में गुरु रामदास जी ने उस स्थान पर एक नगर और सरोवर की नींव डाली।

उस समय गुरु लोगों के पास साम्पतिक शक्ति बहुत ज्यादा न थी। वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति से उपदेशों द्वारा लोगों पर प्रभाव पैदा किया करते थे। गुरु रामदासजी के उस इलाके में अनेकों हिन्दू उनमें भी विशेषतया जाट शिष्य हो गये। इन्हीं जाट शिष्यों में एक भाई भगतू जी थे।

भगतू जी भी नाभा और फरीदकोट की तरह विराड़ वंशी जाट थे। इनके पिता का नाम ओमजी था। भगतू जी इतने ईश्वर-भक्त और गुरु-भक्त थे कि लोग उनके असली नाम को भूल गये और वे भगतू के नाम से ही मशहूर हो गये। गुरु रामदास जी इस चिन्ता में थे कि तालाब किस भांति से खुदे। उनके पास कोई साधन न था। इधर ओमजी भी कोई सम्पन्न व्यक्ति न थे किन्तु उनके अन्दर श्रद्धा थी इसलिये वह खुद तालाब खोदने में लग गये। आस-पास के गाँवों के अन्य आदमियों ने भी अवैतनिक रूप में तालाब में खुदाई करना आरम्भ कर दिया। गुरु रामदास जी ओमजी से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे एक प्रतापी पुत्र होगा। दैवयोग से यही हुआ। ओमजी के सुपुत्र भगतू जी के नाम से आज सारा पजाब परिचित है।

गुरु रामदास जी के देहावसान के पश्चात् गुरु अर्जुन देव जी गद्दी पर विराजे। भगतू जी ने सिख लोगों की और गुरु जी की बहुत सेवायें कीं। अतः सिख भी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। भगतू जी करामाती भी पूरे होगये थे। उनके सम्बन्ध में अनेकों विचित्र बातें कही जाती हैं। जिनमें से एक गुरु हरिरायजी के समय की है। गुरु हरिराय जी ने उनसे कहा, भगतू मैं चाहता हूँ कि तुम अपना शरीर मेरे ही आगे छोड़ दो। भाई भगतू ने गुरुजी की यह बात मान ली और जालंधर जिले के

करतारपुर मे जाकर पृथ्वी में समा गये। कुछ समय वाद गुरु हरिराय जी जब उधर से गुजरे तो उन्होंने भगतू की समाधि के पास जाकर कहा, ऐ सिख धर्म के सच्चे अनुयायी प्रकट होकर हमें दीक्षा भगतू गुरु जी की इस वात को सुनकर समाधि मे से जिन्दा निकल आये। योगियों के लिये असम्भव नहीं। गुरुजी से कुछ देर वाते करके फिर समाधि मे समा गये। गुरुजी ने आशीर्वाद दिया कि तुम वशजों के घर मे राज्यश्री विराजेगी।

यह भी कहा जाता है कि गुरु अर्जुनदेव जी ने इन्हे प्रेम से भाई की उपाधी दी थी। इस कारण उनका खान्दान भाई के नाम से भी प्रसिद्ध है। भाई भगतू जी के दो वेटे हुए ।जीवनसिंह और गोरासिंह उनके नाम रखे गये किन्तु जीवनसिंह सत लोगों की वडे प्रेम से सेवा करते थे इसलिये लोग उन्हें सतदास के नाम से भी पुकारने लगे। जीवनसिह जी की औलाद के लोग भटिंडा की ओर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने एक इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया। गोरासिंह की सतान के लोगों ने कैथल और पूनोली पर अपना आधिपत्य जमाया। अवसर पाकर उन्होंने अपने लिये राजा की उपाधि से विभूपित किया। गोरासिह के महासिंह, किशनसिंह, माईदास और दयालसिंह नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें महासिह और किशनसिंह की सतान के लोग भी भटिडा की ओर चले गये। माईदास निस्संतान मर गये। भाई दयालसिह के छ पुत्र उत्पन्न हुए। सुक्खासिंह, धनसिह, गुरुदाससिंह, देसूसिंह, वुद्धासिंह और वख्तसिह नाम रक्खे गये। सुक्खासिंह के दो पुत्र हुए विसावासिंह और गुरुदत्तसिंह। धनसिंह के कर्मसिंह और चढ़तसिंह नाम के पुत्र हुए। देसूसिंह के लालसिंह, सुजानसिह और वख्तसिंह के दालसिंह नाम का पुत्र हुआ, वुद्धासिंह जी नि सतान रहे।

कैथल पर अधिकार देसूसिंह की सतान का था। लालसिंह उनका वड़ा पुत्र कैथल का राजा वन गया था। कैथल राज्य की आमदनी चार लाख सालाना की थी। सुक्खासिंह के पुत्र विसावासिंह के पास भी वीस गाम थे। राजा लालसिंह जी के दो पुत्र हुए, उदयसिह और प्रतापसिंह ये दोनों ही नि संतान मर गये। सवत् १६०३ वि० मे राजा लालसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। इस समय तक भारत के नेपोलियन महाराजा रणजीतसिंह जी का स्वर्गवास हो चुका था और लाहौर के राज्य सिंहासन पर एक आज तो दूसरा कल आ जा रहे थे। रानी महतावकौर जो कि उदेसिंह की रानी थी, उदेसिंह के वाद गद्दी की मालिक हुई। रानी महताव कौर स्वाभिमानिनी और वीर प्रकृति की थी, अंग्रेजों से लड वैठीं। अंग्रेजो की शक्ति के मुकावले वेचारी क्या कर सकती थीं। हार निश्चित थी। सेना तितर-वितर हो गई। फिर भी आपके दिल मे आशा थी। अत आप मैदान भागीं और सेना सचय करने मे लग पडीं। अंग्रेजी सेना ने आपको गिरफ्तार कर लिया और आपका राज्य जब्त कर लिया गया। राजा उदेसिंह ने अपने चचेरे भाई विसावासिंह जी को दत्तक वना लिया था। सरकार ने उसको चौवीस हजार सालाना का इलाका छोड़ दिया और रानी साहिवा को वीस हजार सालाना की पेशन कर दी। इसी वीस हजार मे से उन्हे अपने भानजे चूहड़सिंह को भी खर्च देना पड़ता था। पोदा नाम के गांव मे उदेसिंह जी ने अपने प्रवास के लिए एक कोठी वनवाई थी। सरकार ने महारानी महतावकौर को उसी कोठी मे रहने के लिए आज्ञा दी। वाद के समय मे यह स्थान भी इलाका अंग्रेजी मे ले लिया गया। विसावासिंह और उसके पुत्र अरनौली मे रहने लगे। सगतसिंह और उनकी संतान के लोग इलाका मिहूवाल के अधिकारी रहे। कैथल एक अच्छा राज्य था और उसकी निज की टकसाल भी थी। सरकार ने कैथली रुपये की कीमत ।।।-) स्थिर की थी।

बीसवाँ अध्याय

रियासत जीन्द

पटियाला नाभा और जीन्द सब एक ही फुलकियाँ वंश की रियासतें हैं। चौधरी फूल के पुत्र तिलोकसिंह के दो पुत्र थे। गुरदित्तसिंह और सुखचैनसिंह। गुरदित्तसिंह के वंशज नाभा के और सुखचैन सिंह के वंशज जीन्द राज्य के संस्थापक व अधिकारी हुए। इन्हीं की एक शाखा बडरूखा व बाजेदपुर की मालिक हुई।

संवत् १८०८ वि से चौधरी सुखचैनसिंह का स्वर्गवास हो गया। उसने अपनी जिंदगी में ही अपने इलाके को अपने तीनों पुत्रों में बाँट दिया था। आलमसिंह को पिंड वाली बुलाकीसिंह को पिंड सुखचैन और गजपतिसिंह को फूल दिया। खुद गजपतिसिंह के साथ ही रहता था। लगभग ६० गाँवों का मालगुजार वह बादशाह की ओर से स्वीकृत हो चुका था।

चौधरी सुखचैनसिंह का बड़ा लडका आजमसिंह बड़ा जवाँमर्द आदमी था दहशत उसको छू तक नहीं गई थी वह लड़ाइयों में शाही सेनाओं से टक्कर लेने लग गया था। सरहिंद की विजय के बाद इसने बहुत सारे खाली पड़े हुए इलाकों पर कब्जा कर लिया था। जिन दिनों यह सरहिंद की लडाइयों में था इसके छोटे भाई के स्थान फूल गाँव पर महाराजा नाभा ने अधिकार कर लिया क्योंकि इसकी माँ अकेले होने के कारण गजपतिसिंह को लेकर अपने मायके चली गई थीं। संवत् १८२१ वि० में अचानक घोड़े से गिर पड़ने के कारण आलमसिंह की मृत्यु हो गई। आलमसिंह ने अपने पीछे कोई सन्तान नहीं छोड़ी थी। इससे इनकी सरदारनी ने अपने देवर गजपतिसिंह के साथ अपना नाता (सम्बन्ध) कर लिया। इस तरह गजपतिसिंह को राज और रानी दोनों ही मिल गये। और बालीयावाली से जितना भी इलाका आलमसिंह जी का लगता था। सब के मालिक हो गये।

गजपतिसिंह भी अपने भाई के समान बहादुर थे उन्होंने भी रोहतक पानीपत तक धावा किया और बहुत सारा धन लूट कर लाये।

गजपतिसिंह जी ने कब्जे में किये हुए इलाके का खिराज दिल्ली के बादशाह को देना बराबर जारी रक्खा किन्तु संवत् १८२४ में किन्हीं कारणों से खिराज न जा सका। कुछ पहला भी बाकी था। इस अपराध में वजीर नजीबखाँ ने इनपर चढ़ाई कर दी और गिरफ्तार करके देहली ले गया किन्तु बादशाह मुहम्मद शाह इनकी बुद्धिमानी और निर्भीक बातों से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने इनके पठन-

पाठन का भी प्रबन्ध कर दिया। बादशाह ने इन्हे वापिस इलाके में भेज दिया । कहा जाता है खिराज के एवज में चुकने तक के समय तक के लिए ये अपने लडके भूपसिंह को दिल्ली छोड़ आये थे। कुछ ही दिनों बाद खिराज का रुपया भेज दिया और भूपसिंह को वापस बुला लिया।

सवत् १८२७ वि० मे दिल्ली के नये बादशाह शाह आलम ने इन्हे राजा का खिताब और मरातिब भेजा।

संवत् १८३२ वि० में गजपतिसिंह ने सगरूर पर भी जोकि नाभे के अधिकार में था—कब्जा कर लिया। इस कस्बे पर देर से इनका मन था क्योंकि वह बड़रूखां के पास ही था। गजपतिसिंह ने अपने नाम का सिक्का भी चला दिया।

इन्होंने अपनी भाभी से नाता किया था उससे एक लड़की पैदा हुई। पजाब के रईसों की तरह और भी एक विवाह कर लिया। जिससे तीन लड़के और एक लडकी पैदा हुए। लड़कों का नाम मेहरसिंह, बाघसिंह और भूपसिह थे। लड़की का नाम राजकौर था। यह वही राजकौर थी जो सुकरचकिया मिसल के बहादुर सरदार महासिंह जी से व्याही गई थीं और जिनसे कि महाराजा 'शेरे पजाब' रणजीतसिंह पैदा हुए थे।

खिराज की टालमटूल देखकर बादशाहकी आज्ञा से रहीमखॉ हॉसी के हाकिम ने सवत् १८२६वि० मे राजा गजपतिसिंह जी पर चढ़ाई कर दी। राजा गजपतिसिंह बडे चतुर थे। उन्होंने पटियाला और कैथल सभी से मेल बना रखा था। अत. सभी ने उन्हे सहायता दी। इस लड़ाई मे रहीमखॉ की हार ही नहीं हुई अपितु खुद भी लड़ाई मे मारा गया। इसके कुछ समय बाद राजा गजपतिसिंह जी ने पटियाला और अपनी संयुक्त सेना लेकर रोहतक पर चढ़ाई कर दी। नजीबुद्दोला का लड़का जाब्ताखॉ और गुलाम कादिर ने आकर मुकाबिला किया। दोनों ओर से डट कर लड़ाई हुई अत मे सुलह हो गई। फिर भी इस लड़ाई से पटियाला और जीन्द दोनों को लाभ रहा। जीन्द को गुहाने का कुछ इलाका मिल गया। पटियाला को रोहतक, हिसार मे कुछ गॉव मिल गये।

समय की आवश्यकता के अनुसार राजा गजपतिसिंह ने जीन्द मे पक्का गढ़ बनवाने और अच्छे २ महल तिवारे बनवाने का भी आयोजन किया और वे अपने इस काम मे सफल हुए।

राजा गजपतिसिंह जी मे एक गुण यह भी था। वे अपने पड़ौसी और शक्तिशाली पटियाला राज्य से सदैव मेल रखते थे। उन्होंने पटियाला के साथ लड़ाइयों मे भाग लिया। उसके आन्तरिक झगडों को सुलझाने और दबाने मे भी सहयोग दिया। पटियाला के लिये वे सदैव उसी भाति शुभचिन्तक रहे जिस भांति कि महाराजा रणजीतसिंह जी के लिये कपूर्थला के राजा साहिब फतहसिंह शुभचिन्तक रहे थे और हर काम मे मदद और सलाह मशविरा भी देते रहते थे।

महाराज गजपतिसिंह ने अपने बडे लडके मोहरसिंह को सफेदूँ का इलाक दे रखा था। वह वहीं पर संवत् १८३७ मे स्वर्गवास कर गया। उसके पीछे उसका एक मात्र लड़का हरीसिंह भी अपने बाप से दो वर्ष बाद ही कोठे से गिर कर मर गया। हरीसिंह की एक लड़की चन्द्रकौर थी। जिसका विवाह थानेसर के सरदार बहगासिंह के पुत्र फतहसिंह के साथ हुआ था। वह भी बेचारी विधवा हो गई। और विधवा होने पर बड़ी बुद्धिमानी के साथ अपने राज्य को संभालती रही। पजाब राज्य हरण के बाद अग्रेजों ने लावारसी मे इस इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया। इसी प्रकार हरीसिंहजी की सिंहनी दयाकौर जोकि अपने बाप दयासिंहजी के इलाके बलेवाल की स्वामिनी थीं उनका भी इलाका सरकार ने जब्त कर लिया।

राजा गजपतिसिंह जी ने जहाँ पटियाला के साथ मेल निभाया वहाँ नाभा के साथ शत्रुता भी पूरी निवाही थी। नाभे के राजा हमीरसिंह जी को जिसके नौकरों ने राजकौर की शादी के समय घास काटने पर मिहमानों का अपमान किया था। बदला लेने के लिये अपने बीमार होने का बहाना करके अपने यहाँ बुलाकर कैद कर लिया था। यह काम इनका ऐसा था। जिसकी किसी ने भी प्रशसा नहीं की। हमीरसिंह को कैद करने के बाद आपने उसके इलाके पर चढ़ाई भी की। किन्तु उसकी रानी ने बराबर चार महीने तक सामना किया। सगर भी उसी समय कब्जे मे किया गया था।

मेरठ की ओर जब महाराजा पटियाला ने चढ़ाई की तो आपने उसमे पटियाला की सहायता की। मिर्जा सफीबेग के साथ लड़ाई हुई। विजय सिखों के साथ न रही। राजा गजपतिसिंह को गिरफ्तार भी होना पड़ा। किन्तु बाद मे समझौता हो जाने पर छोड़ दिये गये।

आपने अपने समय मे दर्जनों लड़ाइयाँ लड़ीं और बड़ी बहादुरी के साथ जीवन बिताया। अत मे जीवन लीला भी लड़ाई के समय ही बुखार आजाने से समाप्त हुई। संवत १८४६मे आपका स्वर्गवास हो गया। चारों ओर आपका शोक मनाया गया।

आपकी साहसिकता और बुद्धिमानी का ही प्रभाव था। कि आपके समय मे जीन्द जैसे राज्य की स्थापना और वृद्धि काफी तौर से हुई।

राजा गजपतिसिंह जी के बाद उनकी रियासत दो हिस्सों मे बट गई। भूपसिंह जी को बडरूखाँ का इलाका मिला और भागसिंह को इलाका जीन्द व सफेदूं का। चूकि भागसिंह भूपसिंह से बड़े थे। अत राज्य का अधिक भाग और राजा का खिताब उन्हे ही मिला। उनकी उम्र इस समय २१ वर्ष की थी।

राजा भागसिंह

राजा भागसिंह जी का इतिहास पटियाले से बहुत ताल्लुक रखता है। क्योंकि वे अधिकांश लड़ाइयों मे पटियाला के मददगार रहे थे। संवत १८४३ मे गोहाना और खरदोदा उन्होंने बादशाह शाह-आलम से बतौर जागीर के हासिल किये थे। सवत् १८५१ वि० मे जो फौज बीबी साहिबकौर के अधिपत्य मे अम्बाराव व लक्ष्मनराव मरहट्टों से लड़ने के लिये राजगढ़ पर गई थी। उसमें राजा भागसिंह शामिल थे। उस समय सारी सिख सेना का नायकत्व राजा गुलाबसिंह जी कर रहे थे। इसमे भागसिंह जी ने बड़ी बहादुरी दिखाई और विजय सिखों की ही हुई। दूसरे साल कर्नाल राजा के हाथ मे निकल गया। जिसे मरहट्टों ने विजय करके टामसन साहब को सौप दिया। कारण कि सिखों को पीछे हटाने मे टामसन ने मरहटों को खूब मदद दी थी। जार्ज टामसन ने अगले वर्ष जीन्द और सफेदू पर भी हमला किया। किन्तु यहाँ भागसिंह ने बड़ी बहादुरी के साथ मरहटों को भगा दिया। टामसन पर जिस समय सिखों ने संयुक्त धावा किया था। उसमे भी राजा भागसिंह जी मौजूद थे और इस लड़ाई मे सिखों ने टामसन के ऐसे लत्ते लिये कि उसे हाँसी से भी भागकर अंग्रेजी इलाके मे दम लेने की फुरसत मिली।

सवत् १८६२ मे राजा भागसिंह ने कैथल के राजा लालसिंह को साथ लेकर लार्डलेक की मदद मरहटों को पंजाब से भगाने के लिये की। सहारनपुर के इलाके की मरहटो से रक्षा भी की। लगभग ४ महीने इन्होंने लार्डलेक का साथ दिया। फिर लार्डलेक के आदेशानुसार राजा भागसिंह जी को जोकि इनके भानजे होते थे इस बात के लिये तयार किया कि मराठों की अपेक्षा अंग्रेज और महाराजा रणजीतसिंह जी मे सन्धि कराने के उपलक्ष मे अग्रेजों ने भागसिंहजी को इलाका बुवाना जो जिला पानीपत की तरफ है मिला।

राजा भागसिंह जी अपनी बुद्धिमानी से दोनों तरफ से हाथ साफ कर रहे थे। पटियाला और नाभा के तथा राजा रानी पटियाला के झगड़ों को सुलझाने के लिये जब महाराज रणजीतसिंहजी पटियाला आये तो भागसिंह जी भी शामिल हुये और अपने भानजे से उन्होंने लुधियाना में २४ गॉव प्राप्त किये जिनकी आमदनी १५३८०) सालना थी। जंडियाले २४ गॉव ४३७०) रुपये सालाना की आमदनी के और जगरांव के २ गॉव २०००) सालना आमद के तथा कोट के २ गॉव २३७०) वार्षिक आय वाले भी प्राप्त किये। दूसरे वर्ष महाराजा रणजीतसिंह ने जो गॉव रामपुर वाले गूजरसिंह से छीने थे और २७ गाँव धर्मसिंह के बेटे से लिये थे वे भी भागसिंह जी को दे दिये। जिनकी आमदनी १६२५५) सालाना की थी। इस प्रकार लगभग पचास हजार सालाना का इलाका बढ़ा लिया।

संवत् १८६४ वि० मे जब राज्य की पैमायश लेफ्टिनेट एफ वायफ ने की तो उनमे आपने सर्व प्रकार मदद दी कोई विघ्न नहीं डाला।

अगले वर्ष आपने हरिद्वार जाने की तयारी की और अपने सरदार महॉसिंह लाम्बा और बिशनसिंह को देहली मे इस बात की इजाजत लेने के लिये भेजा। महाराज के लिये हरिद्वार मे निहायत उमदा प्रबन्ध किया गया था। ३०० आदमी उनकी खिदमत के ही लिये नियुक्त किये गये थे। इसी अवसर पर महाराज को किसी ने इस आशय का समाचार दिया कि महासिंह बाघसिंह उनको धोखा दे रहे हैं। और अपने समस्त रुपयो को देहली में हुण्डियो और अंग्रेजी नोटों मे बदलवा रहे हैं। उनकी यह सूचना भी विश्वीसनीय नहीं थीं कि हरिद्वार जाने मे महाराज को कोई खटका नहीं है।

महाराजा साहिब को यह भी राय दी गई कि इतनी सारी सेना के साथ यात्रा न की जाय। यद्यपि यह खबर भ्रम ही पैदा करने वाली थी। किन्तु अशतः सचाई भी रखती थी। दो वर्ष के बाद ही महासिंह का बिना आज्ञा लिये जीन्द से बनारस चला जाना भेद से खाली नहीं था।

राजा भागसिंह जी हरिद्वार का मेला देखने गये और फिर वहीं से सीधे लाहौर को चले गये। जहॉ वह अपने भानजे महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ ही ठहरे। सवत् १८६५ वि० मे महाराजा रणजीतसिंह जी सतलज के पार आये उस समय भी आप उनके साथ ही रहे। इसी वर्ष के आरम्भ मे लालसिंह और पटियाला की फौजों ने धोधराना पर हमला किया। एक अर्से तक लड़ाई होती रही। महाराजा रणजीतसिंह जी ने बीच मे पडकर लडाई को खतम कर दिया। किन्तु इस तरह भी किले के मालिक गूजरसिंह को तो हानि ही उठानी पडी उसके लिये तो सापराज और नागराज मे कोई फर्क नहीं रहा। महाराजा रणजीतसिंह ने किले को खाली कर लिया और अपने एक प्रेमी सरदार कर्मसिह के सुपुर्द कर दिया।

कर्मसिह ने अपने मामा राजा भागसिंह को दिये गये इलाके भी मागे कहा, वह भी उसेही दे दिये जॉय किन्तु महाराजा रणजीतसिंह दिये हुए इलाकों को वापिस करना उचित नहीं समझते थे। इस तरह निराश होने पर कर्मसिंह ने भागसिंह जी के साथ कई बार खटपट भी की। लड़ाई और खून खराबी हुई।

महाराजा रणजीतसिंह जी पंजाब के रहे सहे रईसों से मनोइच्छित भेट चाहे जब तलब करने की शक्ति रखते थे। उन्होंने सवत् १८६५ वि० मे मालेरकोटला से एक लाख रुपया तलब किये। उसने २७०००) तो दे दिये। बाकी के लिये नाभा, जीन्द, कैथल आदि को जामिन बना दिया। आगे इन सब की प्रार्थना पर शेष रकम माफ कर दी।

महाराजा रणजीतसिंह जी की इस सख्ती से ये सभी सिख राजे लौट गये और इन्होंने भीतर ही

भीतर अपनी रक्षा के लिये अंग्रेजों से लिखा-पढ़ी आरम्भ कर दी। अत मे स्पष्टत. अंग्रेजों से यह इच्छा जाहिर की कि अपनी शरण में हमारे अस्तित्व को बनाये रखें। भागसिंह जी इन मामले मे अग्रणी रहे, उन्होंने सरकार पर इस बात को भी प्रकट कर दिया कि हम लोग नीति के तौर पर रणजीतसिंह से मिलते-जुलते हैं वरना हमारा सच्चा सम्बन्ध तो आप ही के साथ है।

भागसिंह अपनी मित्रता की गॉठ को और भी मजबूत करने के लिये देहली को भी रवाना हुये किन्तु मार्ग मे ही अक्टरलोनी की फौजें पंजाब की ओर आती हुईं मिल गईं जिनके साथ भागसिंह जी, को लौटना आवश्यक सा हो गया। इसी वर्ष की १८ वीं फरवरी को फौजे लुधियाना पहुच गईं। यहॉ पर दो वर्ष से जींद का अधिकार था। अपने मित्र के राज्य मे छावनी कायम करने मे अंग्रेजो को हिचक भी क्यों होती। भागसिंह भी मित्रता का सबूत देने के लिये चुप हो रहे किन्तु छावनी पड़ जाने के बाद और लुधियाना को अंग्रेज राज्य मे शामिल किये जाने के बाद भागसिंह जी ने इसके बदले मे पानीपत करनाल के इलाके मॉगे। अक्टरलोनी ने भी इसका समर्थन कर दिया किंतु गवर्नर जनरल ने यह दरख्वास्त ना मंजूर कर दी। दरख्वास्त नामंजूर करते समय कहा गया था कि आवश्यकता के न रहने पर छावनी लुधियाने से हटा ली जायगी। इस प्रकार एक सरसब्ज इलाके के हाथ से निकल जाने के कारण भागसिंह को भारी मानसिक कष्ट हुआ।

राजा भागसिंह के तीन स्त्रियॉ थीं। बड़ी से फतहसिंह जी पैदा हुए थे और छोटियों से क्रमश प्रतापसिंह और महताबसिंह। बीच की रानी पर अधिक प्यार होने के कारण राजा भागसिंह जी चाहते थे कि राज प्रतापसिंह को ही मिले। सवत् १८७० वि० मे राजा भागसिंह पर लकवे का आघात हुआ। आधा शरीर कतई बेकार हो गया। कहा जाता है कि आपको शराब पीने की भारी आदत थी। उससे अपना पिंड कई बार इरादा करने पर भी नहीं छुड़ा सके। जब जिन्दगी की उन्हे कोई आशा नहीं रही तो पौलिटीकल ऐजेन्ट के पास सरकार से मंजूर करा देने के लिये एक वसीयत भेजी। जिसमे राजगद्दी बीच के लड़के प्रतापसिंह को देने का जिक्र था और फतहसिंह को संगरूर और बसियान की जागीर देने की बात लिखी गई थी। गवर्नर जनरल ने इस वसीहत को भारतीय रस्म रिवाज के खिलाफ बताकर ना मजूर कर दिया और सम्बन्धित अफसरों को सूचना दे दी कि ठीक समय पर जाकर फतहसिंह को गद्दी पर बिठा दिया जाय। भागसिंह जी को इससे भी बड़ी मानसिक वेदना हुई।

किन्तु इस समय राज्य का कोई उचित प्रबन्ध नहीं था। राजा साहब किसी काम को नहीं सम्भाल सकते थे। फतहसिंह से वे और भी चिढ़ गये। प्रतापसिंह को प्रबन्ध सौंपने से वे अंग्रेजी के डर से डरते थे। फतहसिंह की माताजी से भी उन्हे कोई प्रेम न था। आखिरकार वजीर और दूसरे लोगों की यह सलाह हुई कि महताबसिंह की मॉ रानी समराई को राज्य का प्रबन्ध सौंप दिया जाय। सर्व सम्मति से उन्हें राज्य की बागडोर सौंप दी गई। उन्होंने भी वचन दिया कि मैं जो भी कुछ करूॅगी इंसाफ के साथ और निष्पक्ष होकर करूॅगी।

रानी महताबकौर के हाथ प्रबन्ध आते ही प्रतापसिंह जी को अब पूरा निश्चय हो गया कि अब तेरे हाथ राज्य नहीं पड़ने का अत. उन्होंने षडयन्त्र रचना शुरू किया। रानी समराई ने सरकार को लिखकर भेजा कि प्रतापसिंह की वजह से हमारी जान खतरे मे है वह खुल्लम-खुल्ला बगावत करना चाहता है। सरकार की ओर से प्रतापसिंह को चेतावनी भी दी गई कि इस प्रकार उनके हाथ से वह सौभाग्य भी निकल जायगा जो उनके लिये उचित प्रबन्ध करके सरकार बख्शना चाहती है।

सरकार की इस चेतावनी का प्रतापसिंह पर कोई असर नहीं पड़ा और उन्होंने संवत १८७१ वि० के आषाढ़ महीने मे हमला करके रानी समराई और उनके मुंशी जैशिव तथा और भी कितने ही व्यक्तियों को मार कर जींद पर कब्जा कर लिया। रेजीडेण्ट को ज्योंही यह समाचार मिला। उन्हे उसने दिल्ली को खबर दी तथा करनाल और हॉसी के फौजी अफसरों को हुक्म की प्रतीक्षा मे फौरन तय्यार रहने की आज्ञा दी। सरकार ने प्रतापसिंह को गिरफ्तार करके दिल्ली भेजने और राज्य का प्रबन्ध फतहसिंह जी के हाथ सौंप देने के फर्मान जारी किये। अंग्रेजी फौजे जींद राज्य मे घुस पड़ीं। जब प्रतापसिंह को यह खबर लगी तो उसका दिमाग ठंडा हो गया और वह जींद को छोड़ कर किला कालानवाली जो भटिंडे की ओर था भाग गया किन्तु जब वहाँ भी अंग्रेजी फौज के जत्थे जा पहुँचे तो सारा माल मता लेकर और अपने चालीस साथियों समेत भागता फिरता फूलासिंह अकाली के साथ जा मिला। फूलासिंह वह व्यक्ति था जो महाराजा रणजीतसिंह जी से झगडा करके लाहौर छोड कर चला गया था और नन्दपुर साखूवाल पर कब्जा करके इधर-उधर की लूट पर अपना गुजर कर रहा था। उसके पास ६०० सवार और दो तोपे थीं। प्रताप सिंह इसके पास दो महीने तक रहा। फूलासिंह बड़ा निर्भीक जवान था उसके जोड के पंजाब में बहुत ही थोडे आदमी थे। वह प्रतापसिंह की मदद भी करना चाहता था। यह समाचार पाकर पंजाब के रेजीडेंट ने नाभा और मालेरकोटला के रईसों को फूलासिंह पर हमला करने की इजाजत दी। प्रतापसिंह किले में अकेला घेर लिया गया। वह वहाँ से भी भागकर लाहौर पहुंचा। इस प्रकार के हत्याकारी काम करने के कारण महाराजा रणजीतसिंह ने भी उसे शरण नहीं दी और वह बेचारा पकड़ा जाकर दिल्ली भेजा गया। जहाँ नजर बंदी मे ही संवत् १८७३ मे उसकी मृत्यु हो गई। उधर फूलासिंह भी निहालसिंह अटारी वालों के हाथ पराजित किया जा चुका था।

इधर कुछ ही महीने पहले महताबसिंह का भी देहान्त हो चुका था। प्रतापसिंह के दो स्त्रियां थीं किन्तु सन्तान किसी के भी न थी। राज्य का प्रबन्ध अपने बाप के नाम पर कुँवर फतहसिंह ही चला रहे थे।

संवत् १८७६ वि० मे राजा भगतसिंह जी की भी मृत्यु हो गई। कहना न होगा कि अंतिम समय मे उन्हे एक से एक बढ़कर मानसिक कष्ट उठाने पडे थे। दो बेटों की मृत्यु से और राज्य मे होने वाले रक्तपात से उन्हे निश्चय ही बड़ा दुख हुआ था।

राजा भागसिंह जी के अपने परिवार एवं युवराज फतहसिंह जी के सिवा नीचे लिखे व्यक्ति थे। उनकी तीन रानियाँ जिनमे एक बडी पिण्डी के सरदार बख्शासिंह की पुत्री दयाकौर। फतहसिंह जी इन्हीं से पैदा हुये थे दूसरी पाखरसिंह जोधपुर वालों की पुत्री सदाकौर। प्रतापसिंह जी की आपही माँ थीं किन्तु राजा साहब से पहले ही मर गई थीं। तीसरी समराई महताबसिंह जी की मा थीं। राजा साहब के प्यारे पुत्र प्रतापसिंह ने दो विवाह किये थे (१) कृपालसिंह शामगढ़ वाले की पुत्री भागभरी के साथ (२) सुन्दरसिंह काकड फलोर वालों की लड़की रतनकौर के साथ। तीसरे लड़के महतावसिंह के भी दो स्त्रियां थीं। (१) जलकौर राजा वल्लभगढ़ की राजकुमारी (२) मुदकी वाले सरदार की लड़की रामकौर। युवराज फतहसिंह के भी दो रानियाँ थीं (१) रानी खेमकौर सरदार दीदारसिंह की लड़की (२) वहमणा के सरदार खुशाल सिंह की लडकी रानी साहबकौर से एक लड़का उत्पन्न हुआ। जिसका नाम संगतसिंह रक्खा गया। बड़ी रानी के कोई संतान न थी। प्रतापसिंह और महतावसिंह की रानियों से भी कोई सन्तान नहीं हुई थी।

इस प्रकार का अपना कुटुम्ब छोडकर राजा भागसिंह जी शोक और चिन्ताओं से तप्त हृदय को

लेकर सवत् १८७६ मे इस संसार को छोड़ गये।

राजा फतसिंह जी ने वड़ी बुद्धिमानी से अपनी रियासत का काम सभाला किन्तु खेद है कि वह अपने पिता के वाद अधिक दिनों तक जिन्दा न रह सके। इन्होंने अपनी जिन्दगी मे दो वार लाहौर की यात्रा भी की। महाराजा रणजीतसिंह जी ने स्वागत सत्कार भी काफी किया था।

राजा फतहसिंह जी

मुदकी वाले सरदारों ने सात हजार की आमदनी के सानावाल, तलवडी और हलवारा नाम के गॉव आपको दिये थे। जिनकी सनद नाभे मे रक्खी वताई जाती है। आपके पिता के तीन वर्ष पीछे सम्वत् १८७६ मे ३२ वर्ष की अवस्था मे आपका स्वर्गवास हो गया उस समय आपने अपने पीछे एक राजकुमार संगतसिंह राज्य के उत्तराधिकारी छोड़े जिनका कि संवत् १८६७ मे जन्म हुआ था।

अपने पिता के देहावसान के वाद आप उनके उत्तराधिकारी वने। कुलरीति के अनुसार गद्दी नशीनी की रस्म जीन्द में अदा हुई। संवत् १८८७ वि० में आपका विवाह शाहावाद के रईस सरदार रणजीतसिंह जी की पुत्री शोभाकौर के साथ वड़ी धूम से हुआ।

राजा सगतसिंह जी

महाराज संगतसिंह जी तो नावालिग थे ही किन्तु अंग्रेज सरकार ने भी राज्य प्रवन्ध की कोई उचित व्यवस्था नहीं की किसी के प्रति खास जिम्मेवारी न होने के कारण सभी अधिकारी और कर्मचारी मन मौज हो जाते हैं। जींद मे भी यही हाल हुआ। दिन पर दिन प्रवन्ध सम्वन्धी ढिलाई से प्रजा मे असन्तोष वढ़ने लगा।

संवत् १८८३ वि० मे राजा सगतसिंह जी महाराजा रणजीतसिंह जी की मुलाकात के लिये लाहौर गये और होली का त्यौहार वहीं मनाया। महाराजा रणजीतसिंह जी ने अपने सरदारो और अफसरों से उन्हे भेटे भी दिलाई। इसके वाद महाराजा रणजीतसिंह जी ज्वालामुखी की यात्रा के लिये गये और राजा साहव को भी ले गये जो उनके साथ दीनानगर तक गये और फिर वहॉ से महाराज के साथ ही लौट आये।

सवत् १८८४ वि० मे राजा साहव संगतसिंह ने फिर महाराजा रणजीतसिह जी से मुलाकात करने के लिये लाहौर की ओर कूच किया। वास्तव मे वात यह थी कि राजा साहव महाराजा से विशेष प्रेम करते थे। महाराज भी उन्हें कुछ न कुछ देते ही रहते थे। इस समय भी उन्होंने मौजा अनयाना को सरदार रामसिंह से छीनकर उन्हें दे दिया। राजा साहव ने अपना फौजी जत्था लेजाकर उस पर अपना दखल जमा दिया। सरदार रामसिंह ने एजेन्ट गवर्नर से लिखा पढ़ी की। सरकार ने जोकि राजा संगतसिंह से इस वात पर चिढ़ती भी थी कि वे महाराजा रणजीतसिंह से इतना घनिष्ट सम्वन्ध रखते हैं। राजा साहव से जवाव तलव किया कि उन्होंने रामसिंह के गॉव पर कब्जा क्यों कर लिया है। राजा साहव ने साफ उत्तर दिया कि यह गॉव और इसके अलावा दो गॉव और भी मुझे महाराजा रणजीतसिंह जी ने वतौर जागीर के दिये हैं जिनकी मेरे पास सनद मौजूद है। इस जवाव के वाद चाहिये तो यह था कि अग्रेज सरकार महाराजा रणजीतसिंह जी से पूछती कि उन्होंने यह अनाधिकार चेष्टा क्यों की है? किन्तु भला उनसे पूछने की हिम्मत थी। राजा साहव से ही कहा "चूंकि अनियाना गॉव पर उनका अधिकार न था अत. वह गॉव आप नहीं रख सकेंगे। राजा साहव ने गॉव अनियाना रामसिंह को लौटा दिया। गवर्नमेंट इतने से भी चुप न हुई उसने एक एलान जारी किया कि विना सरकार की इजाजत के वे किसी भी राजा या सरकार के साथ साधारण रस्म रिवाज की अदायगी के वह कोई गहरा सम्वन्ध

स्थापित न करे। राजा साहब मे चाहे अन्य कई अवगुण थे किन्तु उनके अन्दर यह गुण अवश्य था कि वे सहज ही डर नहीं जाते थे। इसलिये उन्होने महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ जो दोस्ताना किया था उसे तोडा नहीं। वे बराबर उनके साथ चिट्ठी पत्री करते रहते थे। उनके कुछ गावों का ठेका लेने का भी विचार कर रहे थे ताकि सबन्ध शिथिल न हो किन्तु अंग्रेजों को यह भी न भाया।

राजा साहिब राजधानी से दूर गॉव बसिया मे रहते थे। कुछ चालचलन भी उन्होंने विगाड लिया था। असल मे स्वतन्त्र किन्तु छोटी उम्र के राजाओं को उनके सरदार और मुसाहिब अपने स्वार्थ के कारण कुमार्ग पर डाल ही देते हैं। जब राजा रईस ऐश आराम मे गर्क हो जाते हैं तब वे अपना उल्लू सीधा करते हैं। जीन्द मे यही बात हो रही थी। एक ओर राज कर्मचारी प्रजा को तवाह कर रहे थे दूसरी ओर डाकुओं के दल उठ खडे हुए थे। विवश होकर प्रजा को भी एजन्ट के पास कुप्रवंध की शिकायते करनी पड़ीं। इससे सरकार को और भी कई एक हथियार हाथ लग गये। सवत् १८६० वि० मे लेफ्टीनेण्ट एलवर्ट को सरकार ने डाकुओं का दमन करने के लिये जींद के इलाके मे भेजा। डाकू इतने उद्दड हो चुके थे कि उन्होने एलवर्ट के सैनिकों पर हमला कर दिया। जिससे कई सिपाही घायल हुए और पलटन को काफी नुकसान उठाना पडा। राजा साहिब ने माली नुकसान को तो पूरा कर दिया फिर भी डाकुओ को दबाने मे कामयावी हासिल न हो सकी।

सवत् १८७१ मे महाराजा रणजीतसिंह ने राजा साहिब को लाहौर मे एक जरूरी काम से बुलाया। सरकार को यह पता चला तो उन्हे मौखिक धमकी दी गई कि वे यदि लाहौर गये तो उनके हक मे अच्छा न होगा। इससे राजा साहिब के दिल पर बडी चोट लगी। राजा साहब चलने की तयारी करने लगे, हालांकि पहले से ही गवर्नमेंट उन पर इल्जाम लगा रही थी कि वे महाराजा रणजीतसिंह के साथ मिलकर अग्रेजो के खिलाफ कोई षडयन्त्र रच रहे है।

जब कि लाहौर जाने की राजा साहब तयारी कर रहे थे अचानक बीमार हो गये। हाला कि रात्रि के समय वे मजे मे शराब पीकर सोये थे किन्तु प्रात ही उनकी तबीयत खराब होगई। बराबर दशा गिरती ही गई। उनके साथियों ने उन्हे सगरूर ले जाने की तयारी की पालकी मे विठाकर थोडी ही दूर चले थे कि उनके प्राण पखेरू उड़ गये। इस प्रकार वह दैवात् ही और सदा के लिये महाराजा रणजीतसिह जी के मिलने से रुक गये।

सर लेपिलग्रिफिन ने अपनी पुस्तक 'पंजाब राजाज' मे महाराजा सगतसिंह जी का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके बाप ने खजाने मे वहुत सारा रुपया छोड़ा था किंतु सगतसिंह ने सबको पानी की तरह वहा दिया और उस खर्च का बहुत सारा भाग लाहौर की ओर को जाने वाली यात्राओं मे हुआ। लाहौर मे वे केवल राजनैतिक कारणों से जाते थे और वह कारण अग्रेजों के विरुद्ध ही हो सकते है।" हम समझते हैं ग्रिफिन का यह केवल इल्जाम है। इसमे सचाई बहुत कम है। फिजूलखर्ची कितनी उन्होंने की और उन्हे राज सभालते समय कितना खजाने मे मिला था इसके ग्रिफिन साहब ने कोई आकडे तो दिये ही नहीं है। खैर यह मानते हैं कि उन्होंने फिजूल खर्ची की लेकिन लाहौर की यात्राओं से नुकसान हुआ यह तो सही नहीं है। लाहौर के जाने से तो उन्हे हर बार लाभ ही हुआ। महाराजा रणजीतसिंह जी ने उन्हे काफी जागीरे दीं। अपने सरदारों से भेटें भी दिलाईं।

मृत्यु के समय राजा साहब की औरत केवल २३ वर्ष की थी अभी तक उसके कोई संतान भी नहीं थी। हाला कि शादी उन्होंने तीन जगह की थी। बड़ी रानी शोभा कुंवरि शाहावाद के रईस की

लड़की थी दूसरी सरदार जीवनसिंह धारीवाल की लड़की और तीसरी सरदार दूलासिंह टिव्वा वाले की लड़की थी। राज खालसा के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह ने एक चुटकी ली है कि "इन वेचारियों ने महाराज का मुँह भी न देखा था फिर संतान कहां से होती" दरअसल बात तो यह है कि अभी तो उनकी उम्र ही ब्याह लायक हुई थी किन्तु स्वार्थी लोगों ने उन्हें वचपन मे ही शराव और बुरी आदतों की ओर डाल दिया था। यदि राजा संगतसिंह मे शराव पीने और अच्छी अच्छी स्त्रियों के साथ मुहब्बत करने की कुटेव न होती तो वे अपना नाम अपनी हिम्मत और दृढ़ता की वदौलत जरूर कर जाते।

राजा सगतसिंह जी की मृत्यु के वाद सरकार ने जीन्द का प्रवन्ध उस समय तक के लिये जव तक कि राज्य का कोई वारिस सावित न हो जाय। कोर्ट आफ वार्डस के अधीन कर दिया। भला राज्य के लिये वारिसों की क्या कमी रह सकती थी। अव्वल तो महाराजा फतहसिंह की विधवाओं ने दावा पेश किया। किन्तु उनके खिलाफ संगतसिंह की रानियों ने अपने हकदार होने का दावा पेश कर दिया। वडरूखाँ और वाजेदपुर के सरदारों ने भी जोकि राजा गजपतिसिंह के छोटे लड़के भूपसिंह के वंशजों मे से थे। अपने हकदार होने के दावा किये। नाभे के तत्कालीन महाराज ने भी मौके को न चूका। नाभे का दावा तो यह कहकर नामजूर कर दिया कि चौधरी सुखचैन के वाद ही वह तो काफी दूर अलग हो चुका है। उससे अधिक नजदीकी भी मौजूद हैं। संगतसिंह की नवयुवती स्त्रियाँ इतने वड़े राज्य का नहीं सभाल सकतीं इस आधार पर अधिकार से वंचित कर दिया गया। मुख्यत. दावे सरदार सरूपसिंह जी वाजेदपुर और सरदार सुखसिंह वडरूखाँ के थे। इसलिये इनके इतिहास पर थोड़ा सा प्रकाश डालना उचित ही होगा। राजा गजपतिसिंह जी के तीसरे लड़के का नाम भूपसिंह था। राजा गजपतिसिंह के वाद भूपसिंह को वडरूखाँ और वाजेदपुर के परगने जागीर मे मिले थे। उसने वड़े संतोष और वहादुरी के साथ अपने परगनों की तरक्की की। भूपसिंह जी के दो पुत्र थे कर्मसिंह और वसावासिंह। कर्मसिंह ने अपने पिता से झगड़ा करके वडरूखाँ को अपने कब्जे में कर लिया। इस पर भूपसिंह ने दूसरे फूल सरदारों की मदद लेकर वेटे को दंड दिया और उसे केवल मटमूदपुर गाँव दिया। कर्मसिंह फिर भी काबू मे न रहा और उसने वाजेदपुर पर कब्जा कर लिया। किन्तु जव उसे वाजेदपुर छिनता दिखाई दिया तो वह भागकर लाहौर महाराजा रणजीतसिंह जी के पास चला गया। जव भूपसिंह जी की मृत्यु हो गई तव फूल सरदारों ने उसकी कुल जागीर दोनों वेटों कर्मसिंह और विसावासिंह मे वाँट दी। वटवारे मे कर्मसिंह को वड़ा होने पर भी छोटा हिस्सा दिया। क्योंकि वह संतोष से न रहा था। पिता से भी वगावत की थी। वडरूखाँ का इलाका वसावासिंह को और वाजेदपुर कर्मसिंह को मिला। कर्मसिंह के ही लड़के का नाम सरूपसिंह था और वसावासिंह के लड़के का नाम सुखासिंह। चूंकि भूपसिंह के वड़े लड़के की औलाद होने के कारण सरूपसिंह ही जीन्द के लिये अपना दावा पेश कर सकता था। किन्तु सुखासिंह ने इस दलील पर दावा पेश किया कि कर्मसिंह को उसके वागी होने के कारण उसके पिता (भूपसिंह) ने अधिकार-च्युत कर दिया था। अत. चूंकि मेरा पिता उनकी जागीर का उचित अधिकारी था अत मैं ही जीन्द की गद्दी का अधिकारी हो सकता हूँ। सरकार अंग्रेज ने सुखासिंह का दावा खारिज कर दिया और सरूपसिंह को जीन्द का राजा वनाया।

चूंकि सरूपसिंह इस आधार पर जीन्द का राजा वना था कि मैं जीन्द के राजा गजपतिसिंह के पुत्र का पोता हूँ। अत. सरकार अंग्रेज ने भी इस आधार से लाभ उठा लिया वह यह कि राजा गजपति-सिंह के समय मे जो इलाका उनके पास था। उसी पर सरूपसिंह को मालिकी मिली। वाकी का जो महाराजा

रणजीतसिंह जी की जोर से जागीरों के बतौर दिया गया था। वह उन्हे वापिस कर दिया गया और इलाका लुधियाना अपने कब्जे मे कर लिया। संवत १८६६ के अहदनामे के बाद से प्राप्त हुए सारे इलाके जीन्द के हाथ से निकल गये। सरूपसिंह जी ने इसी पर संतोष किया। अनेकों दावेदारों को हटाकर उन्हे राजा बनाया जा रहा था। यह तो उनके लिये बहुत था।

सवत् १८६४ मे गवर्नर जनरल ने राजा स्वरूपसिंह के अधिकारी होने की घोषणा जारी कर दी। और वह लिस्ट भी प्रकाशित कर दी। जिसके अनुसार उन्हे इलाका मिलने थे।

सर लेपिलग्रिफिन ने उन इलाकों की तालिका जो राजा सरूपसिंह जो को मिलने मजूर हुए थे। 'तारीख राजगान पजाव' मे इस प्रकार दी है।

नाम परगना	ग्रामों की सख्या	मामले की रकम
जीन्द खास	१४०	१३००००
सफेदूं	२५	४२००)
आसन्ध	२६	४२००)
सालोन	८	४२००)
वालावाली	१०८	२०००)
जञ्चेवाला	१	४००)
भोके	१	४००)
लहू	१	४००)
मामला	१	४००)
	३११	२६२०००)

ग्रिफिन साहब ने रकमों का ब्यौरा क्लार्क साहब की सवत् १८६२ और ६१ की रिपोर्टों के आधार पर दिया है। सालोन के परगने के आठ गॉवो की रकम ४२००) बहुत ज्यादा मालूम होती है। वालावाली के १०८ गॉवो की आमदनी केवल बीस हजार कुछ कम जान पडती है। पर भूले रकमों मे अवश्य है। किन्तु कुल इलाका लगभग सवा दो लाख का था। यह अन्दाज सही है।

कोर्ट आफ डाईरेक्टस के डाइरेक्टर ने एक और सलाह दी थी वह यह कि जो इलाका न तो रणजीतसिंह जी ने दिया है और न सरकार अंग्रेज ने ही और वह चला आता है महाराज गजपतिसिंह के समय से ही उस इलाके को भी सरूपसिंह जी को दे देने मे कोई हर्ज नहीं है। किन्तु डाइरेक्टर की इस बात का कोई असर फैसले पर नहीं हुआ। और सन् १८०८ के अहदनामे मे पहिले के गजपतिसिंह जी के अधिकार मे रहे इलाकों के अनुसार फहरिस्त पर चढाये हुये इलाके ही सरूपसिंह के जीन्द राज्य का क्षेत्र-फल रहे।

इस फैसले को सुनकर फतहसिंह की माताओ और रानियो मे सख्त नाराजगी फैली। उन्होंने कई दलीलों के साथ सरकार के फैसले को अपने साथ अन्याय बताया। किन्तु उनकी कुछ भी सुनवाई नहीं हुई।

सवत् १८६४ के बसत मे फूल खानदान के तमाम रईसों और सरकार अंग्रेज के प्रतिनिधि की उपस्थिति मे राजा स्वरूपसिंह जी का गद्दीनशीनी उत्सव हुआ और वे जीन्द राजा के अधीश्वर बन गये।

राजा स्वरूपसिंह

प्रतापसिंह की रानी भी एक बहादुर औरत थी। उसने देखा कि सरकार अंग्रेज दरख्वास्तों पर कोई ध्यान नहीं देती है। उसने परगना, वालावाली के बहादुर लोगों को भड़का

दिया और उनकी सरदार खुद वन गई। हालांकि यह रानी का भोलापन था। वह वेचारी कर क्या सकती थी। अंग्रेजों की शक्ति के आगे उस समय उसका यह साहस धृष्टता ही कहा जा सकता था। वालानवाली का सरदार गुलावसिंह जीन्द की फौज में रिसालदार था अनेकों सिपाहियों को लेकर वागियों मे मिल गया। वालानवाली के किले और थाने पर वागियों ने कब्जा कर लिया। किन्तु उनके पास कोई भारी शक्ति नहीं थी। फौजों ने आकर वालानवाली को घेर लिया। वागियों की हार हुई। इसमे दिलसिंह लक्खासिंह और प्रतापसिंह की विधवा रानी कैद कर लिये गये। गुलावसिंह वहादुरी के साथ लड़ता हुआ मारा गया। देवासिंह को फौज पकड़ना ही चाहती थी कि उसने खुद गोली मार ली। गिरफ्तार किये हुए लोगों को अम्वाला भेज दिया गया और फौज का एक दस्ता वालानवाली में ही मुकर्रिर कर दिया गया ताकि फिर कोई वगावत उठ खड़ी न हो। वालानवाली के इलाके से राज्य को वैसे भी भय था। ये लोग निडर और उद्दण्ड प्रकृति के थे। इनके ही वल पर प्रतापसिंह वागी वना था। हालाकि उस वगावत मे भी उन्हें काफी नुकसान उठाना पड़ा था। किन्तु प्रतापसिंह की रानी के साथ इस वार भी खडे हो गये। अत फौज का वालानवाली मे रखना उचित ही जंचा था। सफेदूं रियासत जीन्द का एक खास परगना था। सफेदूं में ही स्वर्गीय राजाओं की समाधें वनाई जाती थीं। सवत् १६०० मे सफेदूं इलाके को राजा सरूपसिंह जी से अंग्रेज सरकार ने माग लिया और उसके वदले मे उन्हें कैथल राज्य को परगना माहलान और धावदान दिये। चूकि संवत् १६०० में कैथल का राज्य सरकार ने लावारसी में जव्त कर लिया था। इलाके सफेदूं मे ३८ गॉव थे और इन नये परगनों मे २३ गॉव। किन्तु कसवा सफेदूं को सरकार ने जीन्द के ही पास छोड़ दिया। क्योंकि उसके अन्दर स्वर्गीय महाराजाओं की समाधे थी।

संवत् १६०२ मे सरकार अंग्रेज ने महाराजा रणजीतसिंह के उत्तराधिकारियों के साथ विगाड़ कर लिया। अंग्रेज वहुत दिन से उसे लेना चाहते थे उनके दिल मे रणजीतसिंह का राज खटकता था किन्तु उस समय उनकी हिम्मत न पड़ती थी। अव रणजीतसिंह के वाद पड़ गई। इस समय अंग्रेजों ने महाराजा जीन्द से अपनी सहायता के लिए १५० ऊट अम्वाला छावनी के लिए मांगे। राजा साहव यह सहायता समय पर न पहुँचा सके। इस वात से नाराज हो कर मेजर व्राडफुट साहव रेजीडेन्ट ने दस हजार रुपया जुर्माना यह अपराध लगा कर कर दिया कि समय पर ऊॅट न मिलने से सरकारी फौजों को वड़ी तकलीफ उठानी पड़ी है। इसके वाद ही राजा साहव का इकट्ठा किया हुआ रसद का सामान और फौजी दस्ते भी अम्वाले पहुॅच गये। जीन्द की फौज ने वड़ी वहादुरी से लड़ाई में अंग्रेजों का हाथ वटाया। इसके वाद ही एक दस्ता फौज का काश्मीर मे गुलावसिंह की मदद करने के लिए सरकार की आज्ञानुसार भेजा उसने भी वहॉ अपनी ड्यूटी को वड़ी सफलता से निभाया। इस प्रकार सरूपसिंह द्वारा दी हुई सहायता से गवर्नर जनरल वहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने जुर्माने की रकम माफ कर दी। साथही तीन हजार रुपये की एक जागीर भी दी। काश्मीर जाने वाली फौज को उतने दिनों का दुगना वेतन दिया।

लाहौर के सिख राज्य को जीत लेने के वाद सरकार ने राज्य जीन्द से उस महसूल की प्रथा को मिटा दिया जो वाहर से आने वाले माल पर लिया जाता था। और खिराज माफ कर दिया। इसके अलावा एक हजार रुपये सालाना की जागीर और दी। दूसरे पूना के राजाओं की तरह एक सनद भी इस वात की अदा की कि उनकी रियासत सदैव सुरक्षित रहेगी। इसके वदले मे जीन्द के अधिकारियों को सरकार का खैरख्वाह रहना पड़ेगा।

पंजाब की जब्ती के बाद सरकार ने राजा जीन्द को भी दूसरे राजाओं की तरह फासी देने तक के अधिकार दिये।

महाराजा स्वरूपसिंह जी ने अवकाश मिलते ही अपने राज्य के प्रबन्ध को यथा सभव अंग्रेजी तौर तरीके पर सुधारने की कोशिश की किन्तु उनके इस ख्याल से दकियानूसी खयाल के अहलकारों ने सहमति प्रकट नहीं की किन्तु कुछ लोग तो नाराज भी हुए। अहलकारों के सिवा देहाती लोगों को भी अधिक बन्धन पसन्द नहीं आये। जब एक तहसीलदार जबे वाला गांव की ओर पैमायश करने गया तो वहा के जमीदारों ने उसे पैमायश करने से रोका। जब वह नहीं माना तो जान से मार डाला। पैमायश प्रथा का विरोध करने के लिये वे बागी होगये उनका कहना था जमीन हमारी है। हमारे गॉव पर जो रकम राज्य को हम अमन अमान बनाए रखने के लिये देते है। वह उसे सदैव देगे किन्तु जमीन नपवाने से राजा को क्या मतलब। उधर के कई गाव इस बगावत से सहमति रखते थे। महाराज स्वरूप सिंह जी ने अपनी कुल फौज लेकर उन गावों को दबाने के लिये चढ़ाई की किन्तु मारकाट शुरू करने से पहले उन्होने एक इश्तहार जारी किया कि जो लोग घरो को छोड़ कर बाहर निकल गये हैं अगर वे वापिस घरो पर आ जाय और बागीपने को छोड दे तो सरकार सब को माफ कर देगी। साथही यह भी समझाया गया कि जमीन को नाप कर भी सरकार उस पर अधिकार तुम्हारा ही रक्खेगी बल्कि फायदा तुम्हे यह होगा कि इस समय जिसके पास जितनी जमीन है वह उतनी का मालिक मान लिया जायगा। इस प्रकार जमीन का बटवारा भी हो जायगा। अब जहा सारी जमीन का मालिक गॉव है वहा अलग २ व्यक्तियों की मालिकी भी हो जायगी। लोग वापिस लौट आये और बगावत खतम हो गई।

गदर के समय मे हिन्दुस्तान के सभी राजाओं ने भारत को गुलाम बनाने वाले अंग्रेजों को मदद दी थी। महाराजा सरूपसिंह जी उस काम मे पीछे नहीं रहे उन्होंने भी अंग्रेजों की खूब मदद की। गदर की खबर सुनते ही सगरूर से मय सेना के कबीले जा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर शहर और छावनी की रक्षा का भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। यदि उनकी निज की सेना मे कुल आठ सौ आदमी थे। परन्तु चू कि उन्होंने उसे भी कवायद आदि अंग्रेजी ढग से सिखाई थी। अत. उसने बडी मुस्तैदी से कर्नाल की रक्षा की। एक दस्ता फौज का उन्होंने बागपत की रक्षा के लिये भी भेजा। बागपत के पास एक दल था विद्रोही उसे तोड़ देना चाहते थे ताकि इधर की अंग्रेजी सेनाये मेरठ मे न पहुँचने पाये। सरूपसिंह जी के सैनिको ने उसकी रक्षा कर ली जिससे बनार्ड साहब की पल्टन की सहायता के लिये मेरठ की कुछ फौज पानीपत पहुँच गई और पानीपत को विद्रोहियों की लूट से बचा लिया था। जीन्द की फौज ने सबमे अधिक बहादुरी का काम यह किया कि अंग्रेजी फौज के आगे आगे चलकर सम्हाल का और रार को काबू मे करके सडकों पर कब्जा कर लिया। और अंग्रेजी फौज के लिये रसद जमा की। राजा स्वरूपसिंह स्वय एक दस्ते के साथ थे और वे सातवीं जून को अलीपुर मे पहुँच कर अंग्रेजी फौज के सहायक हो गये। कमान्डर इन-चीफ राजा साहब से बहुत खुश हुआ और उसने जीती हुई तोपों मे एक राजा साहब को भेंट दी। १६ वीं जून को जीन्द के एक दस्ते ने नसीराबाद मे बागियों का मुकाबला किया और २१वीं जून को दूसरे दस्ते ने बागपत के पुल का जो कि इस बीच मे बागियों ने तोड दिया था तीन ही दिन मे तैयार करा दिया। याद रहे यह पुल नावों से बनाया हुआ था। इधर विद्रोहियों ने उस बने हुए पुल से फायदा उठाने के लिये उसे इस्तेमाल करना चाहा वे राजा स्वरूपसिंह की इस दौड धूप का बदला देना चाहते थे। इसलिये बना हुआ पुल भी तोड़ देना पड़ा। राजा साहब तो उधर

विद्रोहियों को नष्ट करने और अंग्रेजों की मदद करने में लगे हुये थे इधर रियासत के लोग हासी, हिसार और रोहतक के आस पास के इलाके के विद्रोहियों को मदद दे रहे थे जब राजा साहब को यह समाचार मिला तो राजा साहिब को राज मे वापिस आना पडा। और उस तूफान को दबाया जो राज्य मे ही खडा हो जाने वाला था। बड़ी बड़ी रकमों पर रियासत में से घोड़े खरीद लिये और बड़ी बडी तनख्वाहों पर लोगों को भर्ती किया और ये भरती किये हुए सैनिक तथा खरीदे हुए घोड़े अग्रेजों के सुपर्द कर दिये। इसके बाद दिल्ली के मुहासिरे के समय राजा साहब खुद भी उसमे शामिल हुए। इस समय अग्रेजों ने एक होशियारी की और वह यह कि राजा सरूपसिंह को रोहतक मे बिठा दिया और देहात के मुखियाओं और जमींदारों को इत्तला दे दी कि वह अपनी मालगुजारी व लगान की रकम राजा सरूपसिंह जी के पास जमा करावे। इससे रोहतक के जाट जो पूरी तरह से विद्रोह में भाग लेना चाहते थे। दब गये। देहली के हाथ मे आ जाने और कुछ शान्ति हो जाने के बाद सरकार ने राजा साहिब को इजाजत दी कि वे अब कुछ दिन सफेदू मे रहे और उनकी फौज के २५ आदमी हरसौली मे तथा कुछ देहली मे विद्रोहियों के मुकाबिले के लिये अग्रेजी सैनिकों के साथ मुकर्रिर किये। ५०० आदमी जनरल वानकोर्ट के साथ हासी को भेजे और ११० आदमी सरदार कान्हासिंह जी की अध्यक्षता मे भम्भर को रवाना किये। इसी प्रकार २५० रोहतक मे और ५० गुनाहा मे मुकर्रिर किये। इन विवरणों के पढ़ने से सहज ही पता चल जाता है कि रोहतक, हिसार, हासी, कर्नाल, पानीपत और बागपत सब स्थानों पर विद्रोह को दबाने मे जीन्द राज्य की सेना और राजा साहिब सरूपसिंह जी ने जी तोड़ कर और सम्पूर्ण श्रद्धा विश्वास के साथ सरकार अग्रेज का साथ दिया। कहा जाता है कि पटियाला, नाभा, कपूर्थला और दूसरी सभी सिख और गैर सिख हिन्दू रियासतों ने इसी प्रकार की सहायता सरकार अग्रेज की अथवा कम्पनी राज्य की की थी। इन सहायताओं और सेवाओं से अग्रेजों की जान ही नहीं बचीं अपितु भारत के इस सिरे से उस सिरे तक लगी हुई आग को बुझाने में भी बड़ी अच्छी तरह से सफल हुए।

विद्रोह के समाप्त हो जाने पर राजा सरूपसिंह जी की इन सेवाओं के बदले मे जनरल विल्सन साहब ने सरकार को राजा साहब की बड़ी तारीफ लिखी राबर्टसन ने तो लिखा था। "अगर ठीक समय पर राजा सरूपसिंह जी की मदद न मिलती तो हमे बडी कठिनाई का सामना करना पड़ता। यही नहीं कि राजा साहब ने केवल रसद और फौज से ही हमारी मदद की हो किन्तु देहली के हमले मे तो वे खुद भी शामिल हुए।" सम्वत् १६१४ वि० की ५ नवम्बर को गवर्नर जनरल ने राजा साहब सरूपसिंह जी की सहायताओं के सम्बन्ध मे खुद लिखा था। "राजा साहब द्वारा इस नाजुक मौके पर की गई सेवाओं के लिये गवर्नमेंट उनकी हृदय से कृतज्ञ है।"

इस प्रकार प्रशंसा और बधाइयाँ देकर ही सरकार चुप न रह गई उसने राजा साहब को जागीरे भी दीं। दादरी का एक लाख का इलाका जो कि वहाँ के नवाब से जब्त किया गया था। राजा साहब जीन्द को दिया गया। परगना कुलाडा के १३ गाँव जो कि सगरूर से मिले हुये थे और जिनकी वार्षिक आय १३८१३) थी जिनके कि नाम मधापुर, आलमपुर, बल्लबगढ़, कलाड़ा, रोड बड़ा, टोटली, रोग लोर्ड, धर्मगढ़, बजुरगा, धीमोद, मोदी, ककराला और शाहपुर थे दिये। इन जागीरों के अलावा देहली मे ६०००) की कीमत की एक हवेली शाहजादा मिर्जा अबूबकर वाली महाराज सरूपसिंह जी के लिये और दी। तोपो की सलामी की संख्या ग्यारह कर दी गई। खिलअत की सख्या भी ग्यारह से १५ मुकर्रिर की गई। इन सब के अलावा राजा साहब को फरजन्द दिल बन्द रास उलएतकाद का खिताब मिला।

धन्यवाद, बधाई, जागीर और खितावों को उदारता पूर्वक देने से निश्चय ही अंग्रेज सरकार ने राजा साहब को और भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

महाराज सरूपसिंह जी की ख्वाहिश थी कि वडरुखा और भीमवदी आदि इलाके सरकार की मातहती मे है। वह फिर से हमारी मातहती मे आने चाहियें। इस समय उन्होंने अपनी इच्छा को पूरा कराने के लिये उपयुक्त मौका समझा। अतः सरकार के पास इन इलाकों को लेने की दरख्वास्त भेजी। सरकार ने १२८७०) रुपया लेकर यह इलाके इन्हे दे दिये। और वडरुखॉ के सरदार जीन्द के मातहत बना दिये गये।

इसके बाद प्रवन्ध की सहूलियत के लिये सरकार ने राजा सरूपसिंह जी से कुछ गाव भी वदल लिये जो कि जग, वावल, बगला, नौरगावाद, भंड, रगोली, ऊन, वास, रनीला, सोफल, वरानी, चग, रोला, वजना और चावाह नाम से मशहूर थे। इनके वदले मे सरकार ने चटकली, नंदा, तवाली, धवाला, पचोंचा खुर्द और कला दोनो और टोडी जिनकी कि आमदनी सालाना १०८५०) थी राजा साहव को दिये। इसी प्रकार सम्वत् १६१८ मे भोरी, खेड़ा, वधाना खेड़ा, पनहारी, ढाड, सरसाना, सोधना, चडलाना, खड़क, योनियां, जियान कपट्ट, खट खोरी जीन्द राज्य के गॉव जो कि जिला हिसार मे थे लेकर नगरी, चपकी मडावाला धनोरा, असमानपुर, सपर होडी, मरोडी, मरदा जहेडी, मडलावाली, कनहरा, वदले मे जीन्द को दे दिये। इन गॉवों की वदला वदली से जमीन के वन्दोवस्त और अपने अपने इलाके के प्रवन्ध मे काफी सहूलियते हुई। जीन्द के वे गॉव जो सरकार ने लिये थे अंग्रेजी इलाके मे फैले हुये थे उनके वदले मे जीन्द के समीप ही महाराज सरूपसिंह को गॉव मिल गये। जिन्हे कि उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

राजा सरूपसिंह जी को उनके राज्य के आन्तरिक मामलो मे पूर्ण स्वतन्त्रता देने और गवर्नमेंट के साथ सम्बन्ध जाहिर करने वाली एक सनद भी दी गई जिसका सार इस प्रकार है—

(१) राजा साहिब और उनके उत्तराधिकारी अपने राज्य के इलाकों पर जिनकी कि सूची साथ है शासक के अधिकार रक्खेंगे। प्रजा का कर्त्तव्य होगा कि इनके हुक्म की पावन्दी करे। नवीन मिले हुये इलाकों पर इन्हें वही अधिकार होगे जो पुरानों पर।

(२) राज्य से किसी प्रकार का खिराज सरकार न लेगी।

(३) जीन्द के राजाओं को गोद लेने का उसी प्रकार अधिकार होगा जिस प्रकार कि अन्य फुलकियन स्टेट्स को।

(४) राज्य से सती प्रथा, कन्या वध, और गुलामो का क्रय-विक्रय कानूनन वन्द करेंगे।

(५) किसी शत्रु का सामना करते समय रियासत जीन्द सरकार अंग्रेजी की इस इलाके मे रसद और सेना से मदद करने के लिये हर समय तैयार रहेगी।

(६) बृटिश राज्य की रियासत शुभचिन्तक रहेगी।

(७) गवर्नमेंट रियासत की प्रजा की शिकायतों पर कोई ध्यान न देगी। उनका निपटारा रियासत ही करेगी।

(८) राजा साहिब तथा अन्य राज पुरुषों को अंग्रेज लोग इज्जत की निगाह से देखेंगे और घरू मामलात मे कोई हस्तक्षेप न करेंगे।

(९) रेलवे लाईन और सड़कों के वास्ते राजा साहव खास तौर से सामान और सहायता देंगे।

(१०) जब तक राजा साहिब और उनके उत्तराधिकारी अंग्रेज सरकार के वफादार रहेंगे गवर्नमेंट उनके अस्तित्व को कायम रक्खेगी।

(१) परगना जीन्द (२) परगना सफेदू (३) परगना लजवाना (४) वालावाल (५) परगना संगरूर (६) परगना बाजीदपुर (७) पिंड भाई भूपा की फहरिस्त इस सनद के साथ शामिल थी जिस पर कि राजा साहब का अधिकार घोषित करके उन्हे उपरोक्त अख्तयारात प्रदान किये गये थे।

इस सनद के बाद भी कुछ परगने राजा सरूपसिंहजी को मिले थे। जिनका ब्योरा इस प्रकार है.—पिंड दोलमवाला (जो रानी जीन्द के इलाके मे शामिल था) पिंड बसीना, पिंड बटाला, परगना दादरी १४ गॉव परगना कलारा मे।

महाराजा सरूपसिंह की कुछ दिनों बाद सुखॉ और दयालपुर की जागीरें जब्त करलीं। जिनकी अपीले भी सरकार मे हुई। किन्तु सरकार ने सवत् १९१७ की दी हुई सनद के अनुसार हस्तक्षेप करना उचित न समझा।

सवत् १९१८ मे गवर्नर जनरल ने झज्झर के उस हिस्से के जो जीन्द राज्य को छूता था १९ गॉव ३७००००) मे कुल अख्तयारात के साथ और सदैव के लिए जीन्द को दे दिये। इनको सालाना आमदनी १८५२०) थी। सरकार मे जीन्द को तीसरी कुर्सी नियत की गई थी। पहली पटियाला और दूसरी नाभा को राजा सरूपसिंह जी ने इसके लिये भी लिखा पढ़ी की। सरकार ने उनका दर्जा दूसरा कर दिया। इस प्रकार राजा सरूपसिंह जी ने जहॉ अपने समय मे अंग्रेज सरकार को लाभ पहुँचाया वहॉ खुद भी उसमे लाभ उठाने मे कसर बाकी नहीं रखी।

संवत् १९२१ मे महाराज साहब को रोग ने घेर लिया उन्हे पेचिश हो गई। उस समय वे बाजीदपुर मे रह रहे थे। उन्होंने अंग्रेज डाक्टरों से भी इलाज कराया। कहा जाता है कि उन्होंने एक फकीर से तांबे का जोस दिया पानी पीलिया। जिससे उनकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उनकी ५? वर्ष की अवस्था थी।

राजा सरूपसिंह जी अवसरवादी थे उन्होने अवसर के अनुसार ही अंग्रेजो को सहायता दी। उनकी सुन्दरता और तन्दुरस्ती का पता सर लेपिलग्रिफिन की इन लाइनों से लगता है —"जिस समय वह जिरह बख्तर पहन कर सैनिक वेश मे फौज के आगे खड़े होते थे तो उनकी सानी का कोई दूसरा रईस नहीं दिखाई देता था।" सरकार की ओर से उन्हे "सितारे हिन्द' का तमगा भी मिलना निश्चय हो गया था। किन्तु अम्बाला पहुँच कर उसे हासिल करने के सौभाग्य से—बीमारी के कारण वंचित रह गये।

राजा सरूपसिंह जी ने अपने समय मे काफी दान पुण्य किये थे। धर्म पूजा के लिये स्थापित होने वाले निरमली अखाड़े के लिये आपने बीस हजार नकद और दो गॉव मंडलावाला तथा वल्लभगढ़ जिनकी कि आमदनी १३००) सालाना थी, दिये।

राजा साहब ने भी दो शादियॉ की थीं। (१) किशनकौर जी से जो कि सरदार तारासिंह जी मानशाहिये की लड़की थीं। (२) हॉसी के सरदार काहनसिंह की बहिन सदाकौर से। बड़ी रानी साहिबा से कुॅवर रघुवीरसिंह जी का (संवत् १८९६ के कार्तिक मे) जन्म हुआ था। छोटी रानी से १८९७ मे कुॅवर रनधीरसिंह जी का जन्म हुआ था।

वह १८ साल की उम्र मे ही संवत् १९०५ मे स्वर्ग पधार गये थे। राजा सरूपसिंह जी के बाद कुॅवर रघुवीरसिह जी राज्य के मालिक हुये। संवत् १९२१ वि० की शरद ऋतु मे उनका गद्दीनशीनी का

समारोह हुआ जिसमे अंग्रेज प्रतिनिधि और फूल सरदारों ने भाग लेकर पूर्वानुसार खिलअतें बख्शीं।

राजा रघुवीरसिंह

राजा रघुवीरसिंह जी ने अभी राज प्रवन्ध संभाला ही था वहुत दिन नहीं हुये थे कि इलाका दादरी मे वगावत हो गई क्या कारण था ? इस पर प्रकाश डालने की लेखकों ने शायद आवश्यकता अनुभव नहीं की। किन्तु वात यही थी कि राजा सरूपसिंह के समय मे जमींदारों पर मालगुजारी अदा करने की पावन्दी सी होगई थी। इससे पहले तो योंही धींगागर्दी चलती थी। राजा सरूपसिंह के मर जाने के वाद उधर के जमींदारों ने देखा कि यह नौजवान राजा उन्हे दवाने मे शायद ही सफल होगा। इसलिए उन्होंने खरीफ का मालियाना अदा नहीं किया और जो अफसर उगाही करने गये उन्हे पीटकर निकाल दिया। साथ ही वह सामूहिक वगावत के लिये आमादा हो गये। लगभग दो हजार आदमी चर्खी के मुकाम पर इकट्ठे हो गये। राजा साहव ने इस खवर को पाते ही तोप खाने के समेत चढाई कर दी। मौजा झूम, और मानिकवास पर वागियो ने अपना झडा खड़ा कर दिया, लडाई हुई लड़ाई मे तोपो का प्रयोग भी हुआ। दोनों ओर से आदमी मारे गये। कुछ वागी राजपूताने की ओर भाग गये। किन्तु शाति हो जाने पर राजा रघुवीरसिंह जी ने लोगों के साथ वदले की भावना से कोई सख्ती नहीं की। जिससे आगे उनके जीवन मे फिर कोई झगड़ा नहीं उठा।

राजा साहव रघुवीरसिंह ने तीन शादियाँ की थी। पहिली दादरी के चौधरी जवाहरसिंह जी की सुपुत्री प्रतापकौर से। दूसरी ध्यानसिह जी गलमाजरियाँ की पुत्री इन्द्रकौर से और तीसरी रायपुर के सरदार लहनासिंह जी की लड़की अमीरकौर से। वड़ी रानी से टिक्का वलवीरसिंह और एक लडकी उत्पन्न हुए।

राजा रघुवीरसिंह जो ने सगरूर को अपनी राजधानी वनाया। फिर भी सारी रियासत पर सावधानी से ध्यान रक्खा। शिकार और फौजीपन के शौक के अलावा राज्य का व्यापार वढ़ाने की ओर भी आपकी काफी रुचि थी। सवत् १६२२ मे सगरूर के वाजारो को चौडे और साफ सुथरे वनाने का आयोजन किया। सगरूर मे, वारहदरी, दीवानखाना और तालाव भी वनवाये। सफेदूं मे लालक्षेत्र नाम का एक सुन्दर मकान वनवाया। अमृतसर मे जो ढाई परिक्रमा विना वने पड़ी थी। उसे भी काफी धन खर्च के पूरा करा दिया। उसमे आपने सगमरमर और संगमूसा लगवाये जो सवत् १६३६ से सवत १६४४ तक पाँच वर्ष मे वन पाई।

राजा रघुवीरसिंह जी अपनी उम्र मे एक ऐसा काम कर गये है जो उन्हे सदैव अमर रक्खेगा। वह काम है दिल्ली मे गुरुद्वारा शीसगंज का निर्माण कराना। दिल्ली मे गदर दवाने मे सहायता करने के उपलक्ष मे जो मकान राजा सरूपसिंह जी को मिला था वह वही मकान था जहाँ गुरु श्री तेगवहादुर जी ने धर्म हेत अपना शीस दिया था। उस स्थान पर मस्जिद भी वनी हुई थी राजा साहव ने वह भी मागली और वहाँ गुरुद्वारा वना दिया। गदर के कई वर्ष वाद मुसलमानों ने सरकार से दरख्वास्त की कि मस्जिद की जगह जहा कि गुरुद्वारा वना लिया है हमे मिलनी चाहिये, सरकार ने दे दी। राजा रघुवीरसिह ने इसके विरुद्ध स्टेट सेक्रेटरी को विलायत मे लिखा पढी की वहाँ से फैसला राजा रघुवीरसिह जी के पक्ष हुआ। उन्होंने मसजिद को जो कि मुसलमानों ने गुरुद्वारे के स्थान पर वनाली थी तुड़वा दिया और गुरुद्वारा वनवा दिया। साथ ही खर्चे के लिये एक गाँव भी गुरुद्वारा शीसगज से लगा दिया।

सम्वत् १६५३ मे राजा साहव को सरकार ने जी० सी० ऐस० आई० का खिताव दिया। इसके

दो वर्ष बाद राजा साहब ने ज्वालामुखी की यात्रा की। इससे अगले वर्ष काबुल और अंग्रेजों में लड़ाई छिड़ गई उसमें आपने ५०० पैदल २०० सवार और दो तोपें सहायता के लिये दीं। इसके बदले में सरकार ने राजा साहब को राजाये राजगान का खिताब दिया।

संगरूर में बराबर रौनक पैदा करने की ओर आपका ध्यान था। सम्वत् १६३४ में एक वर्कशाप भी बनवाने का डौल डाल दिया। जिसमें आटे पीसने, वर्फ बनाने और पानी निकालने आदि की मशीनें लगवाईं।

प्रबन्ध करने में राजा साहब का स्वभाव कुछ लेखकों ने सख्त बताया है। आरम्भ में राज्य की आमदनी ६ लाख रुपये थी उसे भी आपने अपने समय में तेरह लाख कर लिया। इंसाफ करने में सदा ही उनका यह ध्यान रहा कि किसी के साथ रियायत और अन्याय न हो जाय। इस प्रकार उनका प्रजा और अहलकार सबों पर रोब भी गालिब था। उन्होंने भी तीन विवाह किये (१) बरेली के राजा शिवदेवसिंह की लड़की के साथ जो छोटी ही आयु में गुजर गईं। (२) शहजादपुर के रईस कृपालसिंह जी की लड़की से (३) राजीयाना के सरदार दीदारसिंह की लड़की से। इनमें मझली रानी से टिक्का बलबीरसिंह जी और दो लड़कियां पैदा हुईं। जिनमें से एक छिछरोली ब्याही गई और दूसरी वृन्दावन के लोक विख्यात राजा महेन्द्रप्रतापसिंह जी के साथ ब्याही गई। टिक्का बलबीरसिंह जी का जन्म सम्वत् १६१३ में हुआ जो कि भरी जवानी में इस संसार से कूच कर गये। इस दुखदाई मृत्यु का राजा रघुवीरसिंह जी पर घातक असर जरूर पड़ा। वे उसी समय से खिन्न रहने लगे जिसका नतीजा यह हुआ कि वे भी सम्वत् १६४४ में स्वर्ग सिधार गये।

सर जेम्स लायल साहब ने राज्य के प्रबन्ध के लिये जीन्द जाकर एक कौंसिल उस समय तक के लिये बनादी, जब तक कि युवराज रणवीरसिंह बालिग न हो जांय। उसके प्रधान सरदार रतनसिंह बनाये गये और मुन्शी हरस्वरूप और रहीमबख्श मेंबर नियुक्त किये गये।

राजा रणवीरसिंह को राजा रघुवीरसिंह की मृत्यु के कुछ दिन बाद ही सिंहासनारूढ़ कर दिये गये। अभी उनकी उम्र सिर्फ नौ साल की ही थी। गद्दीनशीनी के समय सर जेम्स लायल अंग्रेज प्रतिनिधि और महाराजा पटियाला और नाभा भी पधारे थे।

राजा रणवीरसिंह

राजा रणवीरसिंह ने दो विवाह किये। उनमें से एक सरदार जीवनसिंह की पुत्री के साथ संवत् १६५१ वि० दूसरा जनरल हीरासिंह की लड़की के साथ संवत् १६५२ वि० में। राजा साहब को फारसी, गुरुमुखी और अंग्रेजी की शिक्षा दिलाने को सरकार के आदेशानुसार अच्छा प्रबन्ध किया गया था।

बारह वर्ष तक कौंसिल ने राज्य कार्य्य को संभाला इस समय में उसने खालसा कालेज को ७५०००) रुपया भी दान दिया। संवत् १६५६ वि० में महाराज रणवीरसिंह जी को राज्य के कुल अधिकार प्राप्त हो गये। जब से आपके हाथ में शासन की बागडोर आई थी आपने यथा सम्भव प्रजा के हित पर ध्यान दिया। स्वास्थ्य और तालीम के लिये भी आपने प्रबन्ध किया। सरकार की ओर से आपको जी० सी० आई० ई० और के० सी० एस० आई० की उपाधियां भी मिलीं। आपके दो राजकुमार हैं जिनमें से टिक्काराज वीरसिंह जी का संवत् १६७५ में और कुंवर जगतवीरसिंह जी का सम्वत् १६८० में जन्म हुआ है। महाराज ने प्रजा की दशा देखने के लिये राज्य के कई दौरे भी किये हैं। आप भी संगरूर ही में रहते हैं। लेकिन नियम वह बना रक्खा है कि चार मास संगरूर में चार मास जीन्द में और चार

मास चरखी दादरी मे रहे। आपको सरकार द्वारा १५ तोपों की सलामी दी हुई थी।

राज्य का रकवा इस समय १३३२ वर्ग मील, जन संख्या ३२४००० और सालाना आमदनी बीस लाख के लगभग थी, ५० स्कूल हैं। सेना मे इम्पीरियल सर्विस और राज्य दोनों प्रकार के लगभग १२०० पैदल २५० सवार और ४० गोलन्दाज हैं।

महाराज ने अपने समय में अनेक सुधार करने का प्रयत्न किया। किन्तु सफलता नहीं मिली।

सन् १९४८ मे जब पेप्सू यूनियन बना। उसमे यह राज्य भी शामिल हो गया।

इक्कीसवाँ अध्याय

फरीदकोट राज्य का इतिहास

विराडवंश—वर्णन

फरीदकोट राज्य का विस्तार ६४३ वर्ग मील जनसंख्या १५०६४१ वार्षिक आमदनी १५ लाख के लगभग थी।

इस राज्य के संस्थापदक वराडवशी सिद्धू गोत्र के जाट थे जिन्होंने कि आगे चलकर सिख धर्म ग्रहण कर लिया था। पटियाला और नाभा की तरह इनका भी यही विश्वास भाटों की दन्त कथाओं के आधार पर बन गया था कि राव खेवा ने सबसे पहले अपने को भाटी-राजपूतों से अलग किया था और अलग होने का कारण वतलाते हैं राव खेवा का किसी जाट कन्या के साथ शादी कर लेना। यह एक बेहूदी बात जातियों के क्रान्तकारी परिवर्तनों से अजान रहने वाले भाटों और फिर उन्हीं के आधार पर चलने वाले इतिहासकारों की फैलाई हुई हैं। जहाँ तक भी इतिहास साक्षी देता है उससे यह तो सावित होता है कि अनेक जाट घरानों ने अपने को राजपूतों मे शामिल कर दिया कारण कि जाट शब्द और जाति का पृथक अस्तित्व राजपूत शब्द और जाति से कई सदी पहले का है। कुछ सामाजिक रस्म-रिवाज और राजनैतिक कारणों से जाट, गूजर, अहीर कुछ राजवंशी ब्राह्मण प्रभृति राजघराने और समूह ही एक दिन राजपूत शब्द से अभिहित हुए थे सम्भव है रावखेवा के अन्य साथी भाटियों ने सभी अपने पुराने रस्म-रिवाज और राजनैतिक उसूलों को छोड़ कर राजपूत शब्द धारण कर लिया हो। या इससे पहले। जिस प्रकार चन्द धार्मिक उसूलों और रस्म-रिवाज के भेद से आज सिखों का एक समूह शेष हिन्दुओं के बराबर अलग बनता जा रहा है उसी भाँति बुद्ध काल के बाद पुराने साथियों जाट, गूजर, अहीर, मराठा आदि में से चन्द नये उसूलों और रस्म रिवाजों को लेकर राजपूत समाज बना था।

भाटियों में से राव खेवा और उनके ही जैसे खयालात के लोगों ने अपने पुराने सामाजिक रीति रिवाजों और उसूलों का उसी भाँति पालन किया जिस प्रकार कि कई शताब्दियों से उनके पुरखे करते आ रहे थे। जो लोग उन उसूलों और रस्म रिवाजों में हेर-फेर करके राजपूत-समाज में मिल गए वे राजपूत कहलाने लग गये। यही राजपूत भट्टी और जाट भट्टी के अलग होने का संक्षेपत कारण है। यहाँ यह बता देने मे कोई हर्ज नहीं होगा कि सिन्ध मालवा और यौधयो के बीच का देश भातियाना व बतियाना कहलाता था। शब्द भातियाना वातियाना का अपभ्रंश था और वातियाना भी पुराणों

के बाति-भय का रूपान्तर था। इसी देश के लोग भतियाने या भटियाने अथवा भाटी कहलाते थे। भाटिया और भाटी मे कोई अन्तर है तो केवल यही कि भाटिया वैश्य हैं और भाटी या भट्टी क्षत्रिय है। सिंध की भापा (जिसे पश्चिमी हिन्दी कहा जा सकता है) में त के स्थान पर बहुधा ट का प्रयोग होता है अत भाती से भाटी पुकारा गया और पजावी में भट्टी। जो लोग भातियाना में रहते थे वही भट्टी या भाटी थे। भाट ग्रथों मे कहा गया है कि यदुवश के एक राजकुमार ने देवी की भट्टी में अपने शिर की बलि दी थी इससे देवी ने उसे भट्टीराव का खिताव दिया। आज इस प्रकार की बेहूदा बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अस्तु,

फरीदकोट राज्य को सुव्यवस्थिति रूप मे लाने वाले कपूरसिंह जी थे जिनकी राजधानी कोट कपूरा थी। इस राज्य को भट्टी राजपूतो और भट्टी मुसलमानो मे बड़ी हानि पहुँची उन्होंने बडी मुश्किल से इस राज्य को पनपने दिया।

हम चाहते हैं कि इस राज्य के सस्थापकों के पूर्वजों के इतिहास पर भी यहाँ प्रकाश डाले जिससे प्रेमी पाठको को कुछ सामग्री मिल जाय। जिस समय मध्य भारत मे बहमनी मुसलमानों का राज्य था उस समय पजाव मे राव सिद्धू नाम के साधारण से रईस थे जो अपनी ईश्वर भक्ति के लिये अधिक प्रसिद्ध थे शमशुद्दीन बहमनी के इस वाक्य—चनी गुस्त सिद्धू व व फीरोज खाने। दरेग अज तू माले व जान। वकूशम कि औरग के खुश खी। वह फर्र कलाह तू गिरद व कवी। अर्थात् नियत समय में सिद्धू ने बहमनी फीरोज खाँ की मदद की—से मालूम होता है सिद्धू व उसके बुजुर्ग मध्य भारत मे चले गये थे क्योंकि 'बहमनी' मे सिद्धू को सागर का शासक लिखा है। सिद्धू के छ लडके बताये जाते हैं। (१) रावभूर (२) डाहड (३) सूरा के नाम उल्लेखनीय हैं। शेष के नाम रूपा, महा, वाप्या थे। पजाब में सिद्धू गोत के जाटो की बड़ी भारी तादाद है।

राव सिद्धू

इनका अस्तित्व पजाब में ही पाया जाता है। इन्होंने भट्टियों से कई बार लडाई लड़ी। लूट मार करके कुछ इलाके भी हथियाये किन्तु उनके पास ज्यादा इलाके ठहर नहीं सके। इनके लडके का नाम भय्यासिंह था। जो बडा साहसी था। उसने अपनी बहादुरियों से थोडे ही दिनों मे वीर का पद पा लिया था वीर के दो पुत्र हुए (१) तिलक राव और (२) सतराव। तिलक राव साधु सगति मे पडकर वैरागी हो गया। संतराव ने जंगली लोगो का सगठन करके भट्टियो से बदला लेना शुरू किया। किन्तु वह एक लड़ाई मे मारा गया। इसके बाद भट्टियों ने सिद्धू जाटो को तग करने पर कमर बाधी, उन्होंने सत राव को भी कत्ल कर दिया, जिसकी समाधि फरीदकोट के महसा गॉव मे बनी हुई है—और वहाँ साल भर मे एक वार मेला लगता है। सतराव के लडके का नाम गोलसिंह व चडहटा था। उसने भी तलवार सम्भाली और जिंदगी भर भट्टियों से लडता रहा। गोलसिंह के लड़के का नाम महाचे था। महाचे के लड़कों में बडे का नाम हमीरसिंह था। राव बराड इन्हीं हमीरसिंह के बड़े लड़के थे जिनके कि नाम पर सिद्धुओं का यह समूह बराड़ के नाम से मशहूर हुआ है। राव बराड ने अनेक लडाइयाँ लडीं उन्होंने फक्करसर, लहडी और कोट लद्धू को भी अपने कब्जे मे कर लिया था।

राव भूर और भय्या सिंह

राव बराड़ के दो पुत्र थे (१) राव दुल (२) राव पौड। फरीदकोट के राजाओ का वश राव दुल से और पटियाला, नाभा, जींद, का राव पौड से चला बताया जाता है। पिता के राज्य पर दोनों भाइयों

राव दुल

में झगड़ा हुआ किन्तु फतह रावदुल की हुई और राव पौड़ दक्षिण पश्चिम की ओर चले गये और कई पीढ़ी तक उनकी संतान की आर्थिक हालत भी शोचनीय रही। मगर सोलहवीं सदी में चौधरी मघर और डेरम ने कुछ शक्ति पकडी और उनका फल पटियाला नाभा और जींद जैसे राज्य हैं।

राव दुलसिंह को भटियों से कई बार लड़ना पडा किंतु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। उनके चार पुत्र हुये। विनयपाल (२) सहनपाल (३) लखनपाल (४) रतनपाल। विनयपाल अपने बाप के इलाके के मालिक हुए। एक बार हिम्मत करके इन्होंने भटिंडा पर कब्जा कर लिया किन्तु भट्टियो ने फिर छीन लिया। विनयपाल के लड़के अजीतसिंह थे जिन्हे अपनी सारी जिंदगी भट्टियों से लड़ने में ही बितानी पड़ी। अजीतसिंह के चार पुत्र हुए (१) बड़े पुत्र मानिकसिंह को अपने बाप से अच्छा इलाका मिला था जो सतलज घग्घर के बीच में था किन्तु यह उसकी रक्षा नहीं कर सके। इनके सात लड़के थे। (१) टेडासिंह (२) खूखर (३) खंखी (४) पक्खू (५) सीलू (६) वाहिला और (७) कन्हैया। अपने बाप के बाद जायदाद के मालिक टेडासिंह हुये जिनके कि पॉच लड़के थे (१) आसीसिंह (२) वासीसिंह (३) इन्द्र (४)मुद्र (५) कृपाल। आसीसिंह ने अपने समय में लड़ाई झगड़ों में काफी ताकत दिखाई किन्तु हालत यह हो गई कि कहीं बैठने को भी जगह नहीं रही। इनके लड़के वीरसेन थे जिनके कि फत्तू, काला, मुल्क तीन पुत्र हुए। फत्तू ने अपने समय में भाटियों के मुकाबिले में पठानो का पक्ष लिया। जिससे उसने पुन अपने कुछ इलाके पर अधिकार कर लिया।

फत्तू के संगर, लंघर, सहनू और लहनू चार लड़के हुए। सगर ने जब उत्तराधिकार संभाला था उस समय हिन्दुस्तान में बाबर बादशाह आ चुका था। संगर का इलाका चक्कर (कोटकपूरा) के आस-पास था। जिसमे संगर अपने लिये हजारों मवेशी रखता था। एक समय बादशाह बाबर भूख-प्यास से भटका हुआ इसी जंगल में आ निकला। सगर ने उसका खूब सत्कार किया। बादशाह बड़ा खुश हुआ। हुमायूँ और शेरशाह की लड़ाई के समय सगर ने अपने समस्त साथियों को लेकर हुमायूँ की मदद की थी जिससे यह अपने इलाके के बेखटके मालिक बने रहे। इनके दो स्त्रियॉ थीं जिनके चौदह लड़के हुए। जिनमे से कई लड़ाइयों में मारे गये। सगर के बाद भुल्लनसिंह अपने इलाके का मालिक हुआ। इस समय बादशाह अकबर का जमाना आ चुका था। एक मही राजपूत ने अपनी लड़की अकबर को भेट कर दी और खुद मुसलमान हो गया। इसका नाम मन्सूर खॉ था। इस प्रकार इनके इलाके पर अब फिर आपत्ति आ गई। भुल्लन और मन्सूर दोनों ही अकबर के पास फैसला कराने गये। अकबर ने कहा किसी समय तुम्हारे इलाकों की हदबन्दी करा दी जावेगी। बादशाह ने उनके लिये पगड़ी दी जिसे दोनों-दोनों सिरों की तरफ से बॉधने लगे। बादशाह ने कहा बस जिसने जितनी पगडी बाधली है। वह उतने ही इलाके का मालिक रहे। कहा जाता है कि इसके बाद ये दोनों अपने देश में लौट आये किन्तु शाति नहीं हुई। फिर लड़ाइयां हुईं। जिनमें बराड़ जीत गये और मन्सूर खॉ जिसके कि दोनों लड़के लड़ाई में काम आ गये थे रानियॉ की ओर भाग गया। इसके बाद बराड़ो ने मन्सूर के साले राजा पर आक्रमण किया और टामक, घोड़े, सांग और ऊँटो पर कब्जा कर लिया। कुछ दिनों के बाद जबकि मन्सूर खॉ ने बराड़ो पर शक्ति-संग्रह करके हमला किया मारा गया।

बराड़ों ने खूब ताकत बढ़ाली थी। उनके पास हजार बारह सौ आदमियो का दल रहने लग गया था, मुहीम, धनोरा और प्लूगन तक धावे मारकर वह लूट मार कर ले जाते थे। इन बराड़ों में एक राव

दुल के लड़के रतनपाल थे। उन पर एक राठौर राजपूतनी राज्य बीकानेर की जोकि विधवा थी आसक्त हो गई। रतनपालसिंह जी ने उससे शादी करली। जिससे हरीसिह नाम का लड़का पैदा हुआ वह वड़ी वहादुरी के साथ बराडों की लड़ाइयों मे जाता था। भुल्लनसिंह ने इन सभी प्रदेशों पर कब्जा कर लिया था जो आज इलाका कोटकपूरा, इलाका फरीदकोट, इलाका मुरकी और इलाका साडी के नाम से मशहूर है। भुल्लनसिंह ने लंवी उम्र पाई थी और वादशाह अकवर से लगाकर वादशाह शाहजहां के समय तक को उन्होंने देखा था। वे अपने इलाके की आमदनी का कुछ हिस्सा वादशाहों के पास भेट स्वरूप पहुँचाते रहते थे। बुन्देलखड में वादशाह शाहजहां की सहायता करते हुये अपने भाई लालसिंह समेत नि सतान मारे गये। उनके छोटे भाई के पुत्र कपूरसिंह जायदाद के मालिक हुए। जिनकी कि कुल उम्र उस समय ७ वर्प की थी। इलाका कई भागों मे वॅट गया। परिवार और पड़ौसी किसी ने भी इनके साथ सहायता का सम्बन्ध न रक्खा। फिर माता और ताई ने कुछ धन माल की रक्षा की और इन्हे भी वड़े जतन से पाल पोस कर बडा किया।

माता और ताई ने मवेशी काफी पाल रक्खे थे कपूरसिंह जी ने सयाना होते ही शिकार खेलने और शस्त्र विद्या सीखने मे समय विताया। गुरु हरिराय जी जब पजराई पधारे तो वे इनके ही घर पर ठहरे। इनकी नाबालिगी का सारा शाही टैक्स रुका हुआ था। इन्होंने सवसे पहले तो चौधरायत प्राप्त की और फिर शाही आदमियों की मदद लेकर पिछला सब टैक्स चुका दिया और वापिस गये सभी इलाकों पर अधिकार कर लिया। कोट ईसा खा के सूवेदार ने भी इनकी मदद की। चौधरी कपूरसिह जी को गहवर लोगों की एक वड़ी सम्पत्ति हाथ लग गई जो उन्होंने भट्टियों से लडते समय कपूरसिंह जी को सौंप दी थी। इनसे भी कपूरसिंह के उत्थान मे वड़ी सहायता मिली। उन्होंने कई गढ़िया भी वनवाईं।

कपूरसिह

इधर उधर के झमटों से मुक्त होने पर उन्होंने भाई भगतू की सलाह से कोटकपूरा नाम का एक नगर आवाद किया और अपने महल और कोट भी तैयार कराया। इस सम्पन्न अवस्था के समय गुरु गोविंदसिंह जी भी कोटकपूरा पधारे थे। कहा जाता है कि कपूरसिंह ने गुरुजी के लिये जब कि वे मुसलमानों से लड रहे थे यह सुदृढ कोट देने से इकार कर दिया। थोड़े ही दिनों वाद कोट ईसा खा के मुसलमान सूवेदार से अनवन हो गई किन्तु आप उसके धोखे मे आगये और उसकी दावत का निमंत्रण स्वीकार करके उसके यहा चले गये। जहां उन्हे जान से मार डाला गया।

कपूरसिंह जी के तीन लडके थे। शेखासिह, मेखासिंह और सेनासिंह। इन तीनों ही भाइयो ने शपथ ली कि जब तक हम ईसा खा से वदला न ले लेगे सुख से न सोयेगे। आये वर्प फौज इकट्ठी करते और ईसा खां पर हमला करते। पूरे वारह वर्ष तक लड़ते रहे अत मे हिसार और लाहौर के सूवेदारों को ईसा खां के खिलाफ भडकाया और इस मिशन मे वे सफल हुये। ईसा खा हाथी पर चढ़कर मैदान मे आया। सेनासिह ने अपना घोड़ा कुदा कर उसके होदे मे अड़ा दिया और उसका सिर काट लिया। इस लड़ाई मे वराड इस उत्साह से लडे थे कि मुकलावा की हुई औरतों से सुहाग रात मनाना भी छोड़ कर मैदान मे चले गये थे।

ईसा खा से वदला लेकर शेखासिंह गद्दी पर बैठा उसने भी आवादी वसाना शुरू किया। कोट सेखा के नाम से एक नगर भी वसाया।

सेखासिंह के दो रानिया थीं। वडी से जोधासिंह और छोटी से हमीरसिंह और वीरसिंह का

जन्म हुआ। नियमानुसार अपने बाप के बाद कोटकपूरा की गद्दी जोधसिंह को मिली। तीनों भाई प्रेम से रहते थे किन्तु दरबारियों ने उनमें फूट डाल दी। और फल हुआ कि वीरसिंह को जोधसिंह ने अपने प्राणों की रक्षा के लिये कैद में डाल दिया और हमीरसिंह को दिन भर दरबार में हाजिर रहने और रात को मौजा हरी में चले जाने का आर्डर दे दिया।

जोधसिंह

जोधसिंह ने भाइयों को दबा दिया। शायद इसी से उन्हें कुछ अभिमान सा हो गया। वे अपने आगे पटियाला के राजा आलासिंह को भी हेय समझने लगे। उन्होंने अपने घोड़ा घोड़ियों के नाम आला और फत्तो भी रख लिये। इस अभिमान के साथ ही जोधसिंह प्रजा की ओर से भी लापरवाह हो गये। उनके सरदार भी आपस में लड़ने झगड़ने लगे। इन सब बातों का फल यह हुआ है कि कुछ सरदार और प्रजा के प्रमुख लोगों ने हमीरसिंह को राजा बनाने का षडयंत्र रच डाला। और बृहस्पति के दिन जब कि फरीदकोट का इंचार्ज मेले में आकर चौसर खेल रहा था। हमीरसिंह को उनके साथियों ने फरीदकोट का किला सुपुर्द कर दिया। इधर जोधसिंह को पता चला तो कुछ फौज किला खाली कराने को भेजी किन्तु वह नाकामयाब रही। इस पर जोधसिंह चुप हो रहा। कहा कोई हर्ज नहीं अपना ही भाई तो है। जब खर्च से तंग आ जायगा तो उसका मिजाज ठीक हो जायगा किन्तु ऐसा हुआ नहीं। हमीरसिंह अपनी ताकत बढ़ाने में लग गया और सूबा सरहिंद से फरीदकोट के मालिक होने की सनद भी प्राप्त कर ली। इस पर कोटकपूरा और फरीदकोट दो राज्य घर की फूट से बन गये।

हमीरसिंह के सम्बन्ध में यह यकीन हो जाने पर भी कि वह अब सहज ही ठीक नहीं होगा। जोधसिंह ने खुद फरीदकोट पर चढ़ाई की। किन्तु इधर पटियाले वाले इलाके में लूटमार करने लगे इसलिये जोधसिंह को शीघ्र ही लौटना पड़ा। कोटकपूरा लौटकर जोधसिंह ने उन सब लोगों को कैद कर लिया। जिनके कि वारिस हमीरसिंह के साथ मिलकर फरीदकोट चले गये थे। हमीरसिंह के भाई और बच्चे भी कैद कर लिये गये। इससे हमीरसिंह के साथी घबराये किन्तु उपाय यह सोचा गया कि जेलर को अपनी ओर मिला कर कैदियों को छुड़ा दिया जाय। जेलर मिट्ठा हमीरसिंह से मिल गया और उसने बहुत सारे कैदियों को जिनकी कि हमीरसिंह को जरूरत थी निकाल दिया। लेकिन कुछ दुर्भाग्य से रह ही गये जिन्हें फांसी और कठोर सजा दी गई।

इसके बाद हमीरसिंह निशानवालिया और फैजलपुरिया मिसल से सहायता लेकर कोटकपूरा पर चढ़ गया। सिंघवां गांव पर दोनों ओर से लड़ाई हुई। जिसमें दोनों भाइयों के आदमियों का खूब खून-खच्चर हुआ। दिन भर की लड़ाई के बाद जब जोधसिंह की सेनायें शाम को किले में घुस गईं तो हमीरसिंह के साथियों ने सिन्धुवा को जो एक सम्पन्न गॉव था लूट लिया।

जोधसिंह फिर किले से बाहर निकल कर लड़ने को न आया। हमीरसिंह भी वापिस लौट गया। मिसलवालों की फौजें अपना भरपूर किराया लेकर अपने देश को चली गईं। इसके बाद हमीरसिंह ने नये गढ़ बनवाने और कुछ पुरानों को मिसमार कराने का काम शुरू कर दिया। कोट करोड़ को तुड़वाने में उसे ३५ तोप और कुछ खजाना भी हाथ लगा। बहुत से इलाके अपने कब्जे में कर लिये। जिनमें झोक, मर और धर्मकोट के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कब्जा किये हुये इलाकों में आबादी बढ़ाना भी जारी रक्खा। इधर वीरसिंह जेल से छूट कर माड़ी में जमकर रहने लगे थे वहाँ उन्हें लोगों ने भड़का दिया कि मांडी के आस पास के इलाकों पर वह अपना कब्जा करले। निदान वह भी ऐसा ही करने लगा। अब

जोधसिंह तीन दुश्मनों के बीच में अकेले फँस गये। दो तरफ उसके भाई थे एक तरफ पटियाला का राजा। यह तीनों हीं जोधसिंह को तबाह कर देना चाहते थे किन्तु जोधसिंह ने भी घबराने की बजाय सबका मुकाबिला करते रहना ही ठीक समझा।

कुछ ही दिनों में जोधसिंह की शक्ति इतनी घट गई कि उसके पास कोटकपूरा के अलावा केवल पाच गॉव और रह गये। लेपिलग्रिफिन ने लिखा है कि मिसलवाले आकर राज्य को तीन हिस्सों मे बाट गये थे उन्होंने तीनों को सिखधर्म की दीक्षा भी दी थी। हमीरसिंह निरन्तर की कोशिशों से सबसे बडे इलाके को दबा बैठा था।

मौजा सेखा मे फिर लडाई हुई किन्तु जोधसिंह को हार कर ही लौटना पड़ा। इसके कुछ ही दिन बाद जोधसिंह के साथी जोन्दा को हमीरसिंह के आदमी पकड लेगये और सिर काट कर फरीदकोट के बाजारों मे घुमाया गया।

भाइयों की आपस की लडाई से लाभ उठाने और जोधसिंह को इस बात की सजा देने के लिये कि उसने अपने घोडे का नाम आला रख लिया था आलासिंह के उत्तराधिकारी अमरसिंह हमीरसिह और वीरसिंह दोनों भाइयों को साथ लेकर कोटकपूरा पर चढ़ाई करदी। दुर्भाग्य से उस समय जोधसिंह अपने लड़के रणजीतसिंह के साथ हवाखोरी के लिये निकला हुआ था। दुश्मनों ने उन्हे घेर लिया और मार डाला। हमीरसिंह उसका संस्कार करके वापिस लौट आये। जोधसिंह के दो और भी लड़के थे (१) टेकसिंह और (२) अमरीकसिंह। बाप के बाद टेकसिंह कोटकपूरा का राजा बना। उसके दिल मे अपने पिता का बदला लेने की आग जल रही थी किन्तु इतनी बड़ी ताकतों से सुलझता कैसे। अत उसने अपने चाचाओं से तो मेल किया किन्तु पटियाला के उन नौ मुस्लिम राजपूतों को दण्ड देने का पक्का इरादा कर लिया जिन्होंने जोधसिंह को घेर कर मार डाला था। चचा हमीरसिंह को फुसलाकर वह उन नौ मुस्लिमों के गाव जलालकिया पर चढ़ाकर ले गया और उन्हे भारी नुकसान पहुँचाया। इसके बाद चचा भतीजे खूब मेल से रहने लगे। टेकसिंह प्राय फरीदकोट ही बना रहता। हमीरसिंह के मुसाहिबों को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने हमीरसिंह से कहा जिसके पिता को तुमने मरवाया है उससे इतना प्रेम, एक दिन दगा भी दे सकता है। हमीरसिंह बातों मे आगया और उसने टेकसिंह को गिरफ्तार करा लिया जब यह समाचार कोटकपूरा पहुँचा तो अमरीकसिंह लडाई की तयारी करने लगा। हमीरसिह ने उसे भी दंड देने के लिये कोटकपूरा पर चढ़ाई की किन्तु सफलता नहीं मिली और वापिस लौटना पडा। अन्त मे कुछ फूल सरदारों के बीच मे पड़ने से उसने टेकसिंह को छोड दिया। इधर प्रजा मे काफी बदअमनी फैल चुकी थी। दुश्मन उसके गॉवों को लूट कर बर्बाद कर रहे थे। सबसे दुखदायी घटना यह हुई कि टेकसिंह के ही बेटे ने एक दिन उसके मकान मे आग लगा दी जिसमे वह जल कर मर गया। यह घटना १८०६ ई० की है।

पिता की हत्या करने के बाद जगतसिंह कोटकपूरा का मालिक बना किन्तु उसी का हकीकी भाई कर्मसिंह उसके इस कृत्य से नाराज होकर रणजीतसिंह की फौज चढ़ा लाया जिसने कोटकपूरा जब्त कर लिया और जलालकिया नाभा को दे दिया। जगतसिंह ने एक बार फिर कोटकपूरा पर कब्जा कर लिया किन्तु अधिक देर तक संभाल न सका। अत उसने हार कर महाराज रणजीतसिंह के लड़के शेरसिंह को अपनी लडकी का रिस्ता देकर सुलह करली। लेकिन जगतसिंह अधिक दिन जिन्दा न रहे सन् १८२५ ई० मे उनकी मृत्यु होगई। नि संतान होने के कारण महाराज रणजीतसिंह ने उसके राज्य को जब्त कर लिया

उधर वीरसिंह भी नि.सन्तान ही मरा। इसलिये उसके राज्य को अंग्रेजों ने जब्त कर लिया और फीरोजपुर में मिला दिया।

हमीरसिंह के दो लड़के थे (१) मुहरसिंह और दिलसिंह इनमे दिलसिंह चुस्त चालाक और चलते पुर्जा था। निशाने बाजी में इतना होशियार था कि अपने बाप की चारपाई के पाये में निशाना लगा दिया था। जब मुहरसिंह से कहा गया तो उसने कहा निशाना दुश्मन पर लगाया जाता है मा बाप पर नहीं। हमीरसिंह ने दिलसिंह की ओर से सशंकित होकर उसे ढोढ़ी में रहने की इजाजत दे दी। बाप के मरने पर मुहरसिंह राज्य का मालिक हुआ। मुहरसिंह ने दो विवाह किये। पहली रानी से एक बच्चा था जिसका कि नाम चड़हतसिंह था। पहली मर गई तब दूसरी शादी जानी गोत के जाटों में की, किन्तु उससे कोई सन्तान पैदा नहीं हुई।

दिलसिंह मुहरसिंह का पहिले से ही दुश्मन बना हुआ था वह मुहरसिंह के राजा हो जाने से बडा चिढ़ा किन्तु पेश न जाने के कारण चुप रहा और मिसलवालों को धीरे-धीरे मुहरसिंह के खिलाफ लड़ने को तैयार करने लगा। यह देखकर मुहरसिंह ने उसके गाव ढोढ़ी पर चढाई की किन्तु वहाँ मिसलवालों की फौज इकट्ठी हो रही थी इसलिये उसे वापिस लौटना पड़ा।

कई इतिहासकारों ने लिखा है मुहरसिंह ऐश पसन्द आदमी था। प्रजा की भलाई और राज की भलाई तथा राज की देखभाल की ओर से वह कतई लापरवाह था। अबोहरा, कडमा, भक और बोद उसकी लापरवाही से फरीदकोट के नीचे से निकल गये। उसने अपने ऐश के लिये रावल राजपूतों की एक सुन्दर स्त्री पजी को छीनकर अपने महल में रख लिया। इस औरत ने मुहरसिंह को उसी भाति अपने वश कर लिया जिस भांति संयुक्ता ने पृथ्वीराज को कर लिया था। यह औरत राज काज के मामलों में भी दखल देती थी और इसके उदर से पैदा होने वाला लड़का भूपसिंह भी इस बात का इच्छुक था कि राज उसी के हाथ रहे। राज के असली वारिस चड़हतसिंह की रीझ बूझ न थी। पजी दरबार में बैठती, इंसाफ करती और राज काज की प्रत्येक बात की देख भाल करती। उसका रौब ऐसा था कि अहलकार बिना कान पूँछ हिलाये चुपचाप अपने काम में लगे रहते थे। पजी ने अपने भाई बन्धुओं को भी राज्य में भर लिया। उसने अपने लड़के भूपसिंह की शादी तीन जगह जाटों में ही कराई। पजी उन लोगों को तनक भी पसन्द नहीं करती थी जो सर उठाना चाहते थे। वह खुद फौज लेकर चढ़ जाती थी। अपने कठोर स्वभाव से उसने प्रजा, और राज के कर्मचारी सबका ध्यान चड़हतसिंहकी ओर कर दिया। यह प्रायः अपनी ननसाल रहता था। एक समय मुहरसिंह महिला और मलोद गॉव के झगडे निपटाने को कई दिन के लिये बाहर चला गया। राज कर्मचारियों को मौका मिल गया उन्होंने तुरन्त चडहतसिंह को ननसाल से बुलाकर गद्दी पर बिठा दिया। पजी को मार डाला और उसके भाई, बन्धुओं को भगा दिया। भूपसिंह भी भाग गया। जब मुहरसिंह ने यह खबर सुनी तो फरीदकोट पर चढाई की किन्तु उसमें सफल न हुए। इसके बाद भी हमले किये फिर भी सफलता न मिली तब एक रात में मोरी दरवाजे में होकर किले में भीतर घुस गये। भारी खून खराबी हुई। फिर भी उनकी मंशा पूरी न हुई और लौटकर पक्खा नायक गॉव में रहने लगे।

तंग आकर चड़हतसिंह ने बहुत सारी सेना इकट्ठी करके और कुछ नाभा से किराये पर मगाकर बाप के ऊपर आक्रमण किया। पम्पा गॉव में दोनों ओर से लड़ाई हुई। इस लड़ाई से प्राण बचाकर मुहरसिंह राज्य के बाहर मुदकी की ओर भाग गया। वहाँ से कुछ दिन बाद मुदकी के रईस की मदद

से फिर फरीदकोट पर चढ़ाई की किन्तु सफलता नहीं मिली। इसके वाद चढ़हतसिंह ने मुहरसिंह को पकडवा कर ससुर की देखभाल मे मौजा शेरसिंहवाल में नजरबन्द कर दिया। जहाँ पर कि सन् १७६८ में उसका देहान्त हो गया।

चडहतसिंह अब भी सुरक्षित नहीं था पंजी का लड़का भूपसिंह उसके विरुद्ध तैयारियाँ करता फिरता था। वह मुदकी के रईस महासिंह के पास पहुँचा। मुहरसिंह के कुल साथी भूपसिंह के पास पहुँच गये। महासिंह ने इनकी वातों में आकर फरीदकोट पर फिर चढ़ाई की। मौजा चकवाजा मे दोनों ओर से जम कर लड़ाई हुई। महासिह ने अपनी फौज को व्यर्थ कटाना ठीक नहीं समझा। दोनों ओर की सेनाये दिन भर की लडाई के वाद अपने अपने स्थानों पर लौट गई। भूपसिंह अव भी चुप नहीं रहा। कोटकपूरा के सरदार से जाकर मेल किया और कुछ ही दिन वाद उसे चढ़ा लाया। भूपसिंह खुद वडी बहादुरी से लड रहा था किन्तु फरीदकोट की सेना के मशहूर निशानेवाज कर्मसिंह ने उसे गोली का निशाना वना दिया। भूपसिंह के गिरते ही कोटकपूरा की फौजें भाग गई। भूपसिंह से पीछा छूटा ही था कि दिलसिंह को फरीदकोट के स्वार्थी महाजनों ने भड़का दिया और उसे फरीदकोट की सारी खबरें नित्य देते रहते। एक दिन ऐसे मोके पर जव कि चड़हतसिंह एक जनाने महल मे अकेला ही था। दिलसिंह ने हमला कर दिया और कत्ल कर दिया।

दरवारी लोग इससे वड़े नाराज हुए। क्योंकि चड़हतसिंह का व्यवहार उनके दिलों मे घर किये हुये था। दिलसिंह की धृष्टता ने उनके दिलों मे घृणा पैदा कर दी। परन्तु प्रकट में उन्होंने कोई विरोध नहीं किया।

चडहतसिह ने अपने पीछे चार रानियाँ और चार पुत्र छोड़े थे। वड़ी रानी सिन्धू जाटो की लडकी मौजा शेरसिंहवाला की थी इससे तीन लड़के (१) गुलावसिंह (२) पहाड़सिंह और (३) साहवसिंह हुये थे। दूसरी मौजा गोलेवाला की मानसाहियों की लड़की थी। जिससे महतावसिंह का जन्म हुआ था तीसरी चौथी की अभी कोई सन्तान नहीं थी। यह क्रमश कोट करोड़ के खूमा जाट और पक्का पथराला की थीं।

दिलसिंह के खिलाफ दरबारी मौके की तलाश मे थे किन्तु दिलसिंह को इसका कुछ भी पता न था। अभी उसे फरीदकोट लिये केवल दो ही हफ्ते हुये थे कि डरोली गुरुद्वारे मे जाने की तैयारी करने लगा। दरवारियों ने इसी मौके पर अपना काम वनाना ठीक समझा। उन्होंने मोजा शेरसिंहवाला मे वड़ी रानी के पास खवर भेज दी कि डरोली के मेले से एक दिन पहले गुलावसिंह जी को साथ लेकर चुपके से पास के गाँव मे आ ठहरे। दिलसिंह के तमाम साथी भग पी-पी कर गुरुद्वारा डरोली को चले गये दिलसिंह भी तैयारी करने लगा। वस उसी समय मुहरसिंह और भोगसिंह नाम के दो जवानों ने उन्हे कत्ल कर दिया।

रानी को वुलाकर गुलावसिंह को गद्दी पर विठा दिया गया। उधर डरोली के मेले मे दिलसिह के साथियों को यह खबर मिली तो वे सव ढोढी को चले गये। इधर फरीदकोट से दिलसिंह की लास भी वहीं पहुँचा दी गई। दिलसिंह ने कुल २६ दिन फरीदकोट का राज्य भुगता।

गुलाबसिंह (सन् १८०४ मे) जिस समय फरीदकोट की गद्दी पर वठे उनकी उम्र उस समय केवल सात वर्ष की थी इसलिये राज और राज परिवार की देख भाल का काम उनके मामा फैजूसिंह के हाथ में रहा। फैजूसिंह से प्रजा और दरवारी सभी प्रसन्न रहते थे। रानी भी निश्चिन्त

गुलाबसिंह थीं क्योंकि फैजूसिंह उनका सगा भाई ही तो था। गुलाबसिंह ने गुरुमुखी पढ़ने और अस्त्र शस्त्र चलाने में योग्यता हासिल करली थी।

फैजूसिंह ने सबसे पहले राज की सीमा बाँधने का काम किया। उसने सीमा पर अपनी चौकियाँ और गढ़ियाँ स्थापित करना शुरू किया। इस काम के करने में इन्हें फीरोजपुर की रानी लछमनकौर और खुडिया के पठानों से लड़ना पड़ा। कहने का मतलब यह है कि फैजूसिंह बड़ी योग्यता और वफादारी के साथ राज्य का काम चला रहा था।

उधर महाराज रणजीतसिंह जी का दीवान मुहकमचन्द धीरे-धीरे बराड राज्यों के कुछ हिस्से हड़प कर रहा था। उसने जोरा, बूडा, मुदकी, कोटकपूरा और माड़ी को अबतक जीत कर रणजीतसिंह के साम्राज्य में मिला दिया था। सन् १८०६ में मुहकमचन्द ने फरीदकोट पर भी चढ़ाई कर दी किन्तु पानी की कमी से उसे घेरा उठा लेना पड़ा। फैजूसिंह ने एक घोड़ा और कुछ नकद देकर उसे वापिस कर दिया किन्तु महाराज रणजीतसिंह जी तो यह चाहते थे कि अधिक से अधिक देश उनके हाथ आ जाय इसलिये कुछ समय के बाद कर्मसिंह के नायकत्व में फिर सेना भेजी। फैजूसिंह ने विवश होकर किले की चाबियाँ कर्मसिंह के हाथ सौंप दीं। उस समय महाराजा रणजीतसिंह फीरोजपुर में थे। उन्होंने फरीदकोट पहुँच कर खजाने को अपने कब्जे में कर लिया और गुलाबसिंह तथा उसके परिवार को गुजारे के लिये कुछ गाँव देकर राज्य से बेदखल कर दिया किन्तु सन् १८०७ में उन्होंने फरीदकोट को गुलाबसिंह को ही वापिस दे दिया। कारण कि अंग्रेजों से जो मैत्री हुई थी उसके अनुसार सतलज इस पार के इलाकों को वह अपने पास नहीं रख सकते थे। इस पार के सारे राजा रईस मिल कर अंग्रेजों की शरण में अपनी रक्षा की खातिर रणजीतसिंह जी के विरुद्ध जा चुके थे। यह भी महाराज रणजीतसिंह को पता चल गया था।

रियासत के वापिस आते ही फैजूसिंह ने पूर्ववत कार्य आरम्भ कर दिया चूंकि रियासत का सम्बन्ध अंग्रेजों से हो गया था अत: बाहरी आक्रमण का तो डर था ही नहीं। फैजूसिंह ने हदबन्दी का अधूरा काम फिर शुरू किया जहाँ-जहाँ झगड़े खडे हुये पोलिटिकल एजेन्ट ने बीच में पड कर फैसला करा दिया। इसलिये खून खराबी की भी नौबत नहीं आई। फरीदकोट की ओर से फैजूसिंह ने मुहकमसिंह को वकील बनाकर अम्बाले में एजेन्ट के पास भेज दिया। फैजूसिंह ने राज्य की आमदनी बढ़ाने का भी कार्य किया।

गुलाबसिंह ज्यों-ज्यों सयाने होते जाते थे राज काज में भी भाग लेते थे। जवान होने पर तो वे पूरा दखल देने लगे। अब तक राज्य का मजा फैजू ने अकेले लिया था अब उसे चिन्ता हुई कि गुलाबसिंह को अधिकार मिलने ही वाले हैं। तब मेरी कदर घट जायगी। इसलिये उसने साहब-सिंह के साथ मिलकर षडयन्त्र किया और एक दिन जब कि गुलाबसिंह सैर सपाटे से लौट कर आ रहे थे फैजू और साहबसिंह के आदमियों ने उन्हें मार डाला। गुलाबसिंह एक छोटा लड़का—अतरसिंह नाम का पीछे छोड़गया।

अम्बाले में जब पोलीटिकल एजेन्ट को यह खबर लगी तो वे जाँच करने के लिये फरीदकोट आये। गुलाबसिंह की रानी ने साफ कहा कि उनको साहबसिंह और फैजू ने मारा है किन्तु फैजू ने अपनी पुरानी सेवाओं को याद दिलाकर एजेन्ट के दिल से इस ख्याल को दूर कर दिया। एजेन्ट साहब साहबसिंह को नजरबन्द बना कर अम्बाला ले गये किन्तु सबूतों के अभाव में उन्होंने साहबसिंह को

भी छोड़ दिया। यह सारी घटनायें सन् १८२६ ईस्वी की है। जब कत्ल का मामला शात हो गया तो साहबसिंह और पहाड़सिंह राज्य पाने के लिये कोशिश करने लगे। उन्हे फैजू को भी अपनी ओर मिलाने की कोशिश की। परन्तु फैजू नाबालिगी-शासन को ही पसन्द करता था जिसमें कि उसकी आम मुख्तारी चलती थी अत उसने चुपके-चुपके कोशिश करके गुलाबसिंह के लड़के अतरसिंह के लिये—राज्य का मालिक होने के—हुक्म सरकार से मगा लिये।

फैजू दरबार मे नाबालिग राजा अतरसिंह को बैठा लेता था और खुद राज शासन चलाता था। साहबसिंह और पहाड़सिंह फौजू की इस चालाकी से बड़े कुढ़ते थे। अचानक ही—कुछ ही दिनों बाद—अतरसिंह का देहान्त हो गया। फैजूसिंह ने सरकार को लिखा कि इस मौत मे साहबसिंह का हाथ है। साहबसिंह ने भी एक संगीन आरोप लगाकर फैजू की शिकायत की। फैजू उस समय फरीदकोट से हटकर कहीं बाहर चला गया। गद्दी के लिये साहबसिंह, पहाड़सिंह, और महताबसिंह तीनों भाई कोशिश करने लगे। पोलिटिकल एजेन्ट की शिफारिस से सरकार ने पहाड़सिंह को राज्य का उत्तराधिकारी मान लिया। और साहबसिंह के लिये वचन दे दिया कि उनके गुजारे का प्रबन्ध सरकार महाराज फरीदकोट से जरूर कराएगी वे कोई उपद्रव नहीं करे।

सन् १८२७ ई० मे पहाड़सिंह जी को गद्दी पर बिठा दिया गया। राजा पहाड़सिंह जी गद्दी पर बैठ तो गये किन्तु उन्हे फैजूसिंह और साहबसिंह दोनों ही की ओर से खतरा रहा। इसलिये फैजूसिंह को तो हुक्म दिया कि दिनभर तो तुम दरबार में हाजिर रहा करो और शाम को मौजा नूआ मे चले जाया करो। साहबसिंह और महताबसिंह के लिये उन्होंने भरसक अच्छे गुजारे का प्रबन्ध करा दिया। यहाँ तक कि बेवा भौजाइयों को भी गुजारे के प्रबन्ध से खाली नहीं छोड़ा। फैजूसिंह बड़ा मक्कार था उसने साहबसिंह को आधा राज्य बटा लेने के लिये भडका दिया।

राजा पहाड़सिंह

राजा पहाड़सिंह जी ने इस अमर की सूचना अम्बाले मे पोलीटिकल एजेन्ट को दे दी उसने साहबसिंह को अम्बाला बुलाकर समझाया किन्तु वह नहीं माना और फौज इकट्ठी करने लगा। पहाड़सिंह ने जीन्द से कुछ फौजी सहायता लेकर उस पर और उसके इकट्ठे किये हुए आदमियों पर हमला करा दिया। इसके बाद साहबसिंह अचानक बीमार हुआ और अम्बाला से लौटता हुआ समाप्त हो गया।

उन दिनों भारत के मुल्की लाट लार्ड एम्हर्स्ट थे। उन्होंने राजा रईसों की इस प्रकार की खून खराबी को देखकर एक ऐलान निकाला कि राजा रईस जमीन के लिये न तो आपस मे लड़ें और न खून खराबी करे। सरकार जो फैसला करदे उस पर दृढ रहे। अपने राज्यों की हदबन्दी सही तरीके से कराकर उसकी पुख्तगी सरकार से करालें।

राजा पहाड़सिंह जी ने पोलीटिकल एजेन्ट की मदद से अपने राज्य की पूरी तरह से हदबन्दी कराना आरम्भ कर दिया। उनके घरू झगड़े तो प्राय खतम से थे किन्तु फैजू से यह नि शंक नहीं थे अत. उन्होंने उसे निकालना ही तय किया। उस पर सरकारी रुपया गबन करने का इल्जाम लगाया पर चूँकि उस समय हिसाब चलते ही बेढगे-से ढंग से थे कोई रसीद वौचर आदि तो रक्खे ही नहीं जाते थे। तलाशी में भी उसके घर कुछ नहीं निकला। अत में राजा पहाड़सिंह ने पोलीटिकल एजेन्ट जो कि अभी नये ही नियुक्त हुये थे और जिनका कि नाम मि० रसूल क्लार्क था—सलाह लेकर उसे नौकरी से अलग कर दिया।

—

सन् १८३८ में अफगानिस्तान अंग्रेज युद्ध के समय राजा साहब पहाड़सिंह जी ने ऊँट घोड़े, बैलगाड़ी, खलासी जो कुछ भी अंग्रेजों ने मागा दिया। उन्होंने अपनी ओर से किसी भी किस्म की कमी सहायता देने में न रहने दी।

इसके सात साल बाद जब अंग्रेजों और खालसा वीरों की लड़ाई हुई तो आपने अंग्रेजों का पक्ष लिया और फीरोजपुर में घिरे हुये मि० लिटलर को बचाने में आपने अपनी बुद्धि का परिचय दिया। रसद आदमी और रुपये पैसे से सब प्रकार अंग्रेजों की मदद की। यही नहीं वे खुद भी लड़ाई में काम आये। उनके बड़े लड़के वजीरसिंह भी इस लड़ाई में अंग्रेजों के साथ रहे। इन सेवाओं से खुश होकर लड़ाई की समाप्ति पर अंग्रेज सरकार ने महाराज वजीरसिंह को एक सनद दी जिसके अनुसार फरीदकोट के सरदारों को राजा का खिताब और खिलअतें भी बख्शी गई थीं। यह सनद २४ मार्च सन १८४६ को दी गई थीं। इसके सिवा इलाका मुकसर भी मिला।

राजा पहाड़सिंह जी के चार रानियां थीं। बड़ी से वजीरसिंह पैदा हुए थे और दूसरी रानी से दीपसिंह और अनोखासिंह। शेप दो के कोई सतान न थी। राजा साहब ने अपने यहां से कन्या वध और सती की प्रथा कानूनन बद करा दी थी। अवसर मिलने पर कुछ आबादी भी की थी।

अपने पिता के मरने के बाद वजीरसिंह जी गद्दी पर बैठे। उन्होंने आरम्भ मे प्रजा की भलाई के कामों में अपना समय खर्च किया। बस्तियां आबाद कराई। खेती को उजाडने वाले पशुओं का दमन

वजीरसिंह

कराया। घमण्डीसिंह को जिसने कि युद्ध मे अंग्रेजों के पक्ष मे बडी बहादुरी दिखाई थी फरीदकोट का बख्शी बना दिया किन्तु यह आदमी लुटेरों से मेल रखता था। जब महाराज वजीरसिंह को मालूम हुआ तो इसे हिरासत मे ले लिया। कुछ दिन बाद उसे छोड दिया गया और वह फिर राज्य से भाग गया। महाराज और उनके सच्चे साथी लोग राज्य की आबादी और आमदनी बढ़ाने तथा बेकार भूमि को खेती योग्य बनवाने मे लग गये।

इधर सन् १८५७ आ गया और सारे देश मे मारो-मारो और निकालो-निकालो की ध्वनि छा गई। उस समय महाराज वजीरसिंह जी ने अंग्रेजों की खूब मदद की। नाभा राज्य का एक सामदास नाम का आदमी विद्रोहियों मे मिल गया था और उसने हजारों सिखों को साथ मिला लिया था। वजीरसिंह ने उनका दमन करके पंजाब की आग को बहुत कुछ ठंडा कर दिया राज्य से गल्ला देकर अंग्रेज सिपाहियों के प्राण भी बचाये। इस तरह पूरे एक साल तक गदर को दबाने मे महाराज वजीरसिंह जी ने अंग्रेजों का साथ दिया।

गदर के शांति हो जाने पर जब अंग्रेजों की जान मे जान आई तो अन्य सहायकों की तरह महाराज फरीदकोट को भी उन्होंने याद किया। उनके जिम्मे की सवारों की सेना माफ की गई। खिलअत भी बढ़ाई गई। अलकाब 'बराड वंश बहादुर राजा साहब' का कर दिया गया। यह बात १२ जौलाई सन् १८५८ की है इसके दो वर्ष बाद गवर्नर जनरल के हुक्म से सेक्रेटरी गवर्नमेंट पजाब ने ११ मई सन् १८६० को ग्यारह तोप की सलामी का अधिकार सदैव के लिये दिया।

झगड़ों से निवृत्त होने पर महाराज ने सन् १८६१ मे फरीदकोट राज्य की जमीन का बन्दोबस्त कराया। महकमा पुलिस की स्थापना की। अपराधों के नियम बनाये। मालगुजारी की शरह मुकर्रिर की। तहसीलें कायम कीं। इसके ६ वर्ष बाद सन् १८६५ मे कोर्ट स्टाम्प का परिचलन किया और धीरे-धीरे अंग्रेजी ढग पर महकमों का निर्माण करना आरम्भ कर दिया।

यह बता देना उचित होगा कि सन् १८४३ की सनद के अनुसार कोटकपूरा व मौजे सुल्तान-खानवाला भी उन्हें मिल चुके थे। इस सनद के द्वारा इस समस्त राज्य पर उनका हक मौरूसी कबूल कर लिया गया था। उनके आन्तरिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप न करने की बात भी कबूल करली गई थी। गोद-नशीनी का हक भी दे दिया गया था।

महाराज वजीरसिंह ने खजाना रखने का पुराना ढंग बदल दिया। पहले महाजन के यहां रुपया जमा होता था। अब वह किले में रखने लगे और हिसाब के बाकायदा कागज रक्खे जाने लगे।

सन् १८७४ में आपने थानेश्वर-कुरुक्षेत्र की यात्रा की किन्तु यह यात्रा आपके लिये दुखदाई साबित हुई और उधर से लौटते ही आप इस संसार से चल बसे।

महाराज वजीरसिंह जी के बाद उनके सुयोग्य पुत्र विक्रमसिंह अपने राज्य के मालिक हुए। उनकी गद्दीनशीनी की रस्म बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुई। उस समय आपकी अवस्था बीस साल की थी। इस उत्सव में कई बड़े बड़े अंग्रेज अफसरों के अलावा पटियाला के महाराज महेन्द्रसिंह जी पधारे थे। आपने उर्दू अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया था।

विक्रमसिंह

राज्य की बागडोर हाथ में आते ही आपने सबसे पहले खजाने का हिसाब देखा क्योंकि बख्शी गौरसिंह पर आपका विश्वास कम था। इसके बाद दीवानी और फौजदारी की अलग-अलग अदालतें कायम कीं। मालगुजारी वसूल करने के कायदे बनाये। इन महकमों में उन लोगों को नौकर रक्खा जो इस किस्म का काम अंग्रेजी इलाके में कर चुके थे। खुद भी शासन के मामलों में खूब दिलचस्पी लेते थे और इतने होशियार हो गये थे कि पंजाब का लेफ्टीनेंट सर हेनरी डेविस भी चन्द मामलात में आपकी सलाह लेता था क्योंकि वह भारतीय रिवाजों से अनभिज्ञ था।

पंजाब को जब अहाता बनाने के लिये सरकार को रुपये की जरूरत हुई थी तो महाराज विक्रमसिंह जी ने बिना ही ब्याज के सरकार को छः लाख रुपया उधार दिया था।

सन् १८७८ ई० में अंग्रेज सरकार ने जब अफगानिस्तान के साथ युद्ध किया तो महाराज विक्रमसिंह ने अपना तोपों का रिसाला मदद को भेजा। वहां आपकी सेना ने खूब नामवरी हासिल की। सन् १८७९ की पहली जनवरी को सरकार ने इस सहायता के बदले में महाराज को 'फरजन्द शाहात निशात हजरत कैसरे हिन्द' का खिताब दिया जिसे महाराज ने दरबार करके स्वीकार किया।

महाराज विक्रमसिंह ने राज्य और प्रजा की उन्नति करने के अलावा अपने धर्म की उन्नति में भी खूब दिलचस्पी ली। आपने अपने ही खर्चे से गुरुग्रन्थ साहब की सरल टीका कराई। इस काम को सम्पन्न करने के लिये १० वर्ष तक ज्ञानी लोग लगे रहे और इस काम पर एक लाख रुपया खर्च हुआ। इसके सिवा अमृतसर के गुरुद्वारे पर आपने बिजली का प्रबन्ध कराया। प्रजा में किसी प्रकार का झगड़ा फिसाद न हो। इस बात का वे खूब ध्यान रखते थे। खजाने में रुपया हो जाने और राज्य में पूरी तरह अमन कायम हो जाने पर आपने फरीदकोट को नये सिरे से बसाना शुरू किया। नये ही ढंग के बाजार, हाट, गली और कूचे बने। बाग बगीचे, कोठी, मन्दिर धर्मशाला स्कूल और सफाखानों के बन जाने से फरीदकोट की काया ही बदल गई। पहले से उसकी शोभा कई गुनी हो गई। राज्य में कई सड़कें बनाकर प्रजा के लिये आराम पैदा कर दिया।

महाराज विक्रमसिंह के समय में एक नहर भी निकाली गई जिससे राज्य के एक भू-भाग की सिंचाई होने से प्रजा को बड़ा लाभ हुआ।

आपके तीन औलाद हुई। दो राजकुमार और एक राजकुमारी (१) राजकुमार बलवीरसिंह और (२) कुँ० राजेन्द्रसिंह दो पुत्र थे। इनमे युवराज बलवीरसिंह का सन् १८६६ ई० मे जन्म हुआ था। आपके छोटे भाई आप से दस वर्ष छोटे थे। और वहिन सात वर्ष छोटी जो कि मुरसान के राजा साहब को व्याही गई। युवराज बलवीरसिंह जी का विवाह रियासत मनी (जिला अम्बाला) के रईस भगवानसिंहजी की पुत्री के साथ हुआ।

महाराज विक्रमसिंह जी ने फरीदकोट और थानेसर मे सदावर्त भी जारी किये जहाँ गरीबों को भोजन वस्त्र दिया जाता था।

कहा जाता है किन्हीं कारणों को लेकर महाराज और राजकुमार बलवीरसिंह जी मे गहरी अनबन हो गई थी और अन्त समय तक रही। सन् १८६८ के अगस्त महीने मे महाराज का स्वर्गवास हो गया। राजकुमार बलवीरसिंह जी उस समय शिमला मे थे। वहाँ से उन्हे तार देकर बुलाया गया।

जालन्धर के कमिश्नर मि० सिलकाक की उपस्थिति मे बलवीरसिंह जी को राजतिलक किया गया। इसके बाद अच्छे मुहूर्त मे महाराज ने राजतिलक के उपलक्ष्य मे लोगो को भोज दिया। जिसमे पटियाला के महाराज सर राजेन्द्रसिंह और धौलपुर के महाराज राणा श्री निहालसिंह जी भी पधारे थे। इस समय महाराज बलवीरसिंह जी की अवस्था इक्कीस साल की थी। कमिश्नर जालधर ने प्रसन्नता के साथ आपकी कमर मे किरच बाँधी थी और सभी राजाओं ने तोहफे भेट किये थे। सरकार की ओर से खिलअत प्राप्त हुई।

महाराज बलवीरसिंह

आपने गुरुमुखी, उर्दू और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की थी। चार साल अजमेर के मेयो कालेज मे भी आप रहे थे। छोटे भाई राजेन्द्रसिंह जी की शिक्षा के लिये आपने एक अंग्रेज ट्यूटर रख छोडा था। जिसे छ. हजार सालाना वेतन देते थे। किन्तु शोक है कि राजेन्द्रसिंह जी की बीस साल की अवस्था मे ही मृत्यु होगई। इससे महाराज बलवीरसिंह जी को बड़ा दु ख हुआ।

महाराज ने राज्य के ओहदों पर परखे हुए लोगों को ही नियुक्त किया। क्योंकि राज्य फरीदकोट मे ओहदेदार और अहलकारों ने भी काफी खून-खराबियाँ करवाई थीं। जो लोग पिछले समय मे आपसी झगड़ों या कुशासन के भय से राज्य छोड़कर भाग गये थे। उन सबको बुलाकर आपने राज्य मे बसाया और जो नौकरी करना चाहते थे। उन्हे नौकरियाँ दीं। सन् १८६६ ई० मे अफ्रीका के युद्ध मे कुछ घोड़े देकर भी महाराज ने सरकार की सहायता की। जिसके बदले मे उन्हे धन्यवाद मिला।

महाराज बलवीरसिंह जी को प्रजा की उन्नति की बडी चिन्ता रहती थी। उन्होंने कई तालाब और बावड़ी भी बनवाये थे और जब राज्य मे लगातार पाँच वर्ष का अकाल पड़ा तो मालगुजारी तो आपने माफ की ही किन्तु राज्य के खर्चो से नाज भी बाँटा। बिना व्याज के कर्ज बाँटा।

सन् १६०० की ३० अक्टूबर को आपने एक दरबार मे निम्न घोषणाये कीं।

(१) स्कूल मिडिल को बढ़ाकर मैट्रिक तक कर दिया जावेगा।

(२) मेला मवेशी फरीदकोट की तरह कोटकपूरा मे भी लगा करेगा।

(३) अदालतों के कायदे कानूनों मे सुधार किये जावेगे और अदालतो के लिये मकान भी बनवाये जावेगे।

(४) मुसाफिरों के लाभ के लिये रेलवे स्टेशन के सामने एक वेटिंग रूम बनवाया जावेगा।

इस दरबार मे प्रजाजनों ने महाराज से राज्य का दौरा करने की प्रार्थना की, जिसे महाराज ने

स्वीकार करके राज्य का दौरा किया और देखा कि प्रजाजनों को क्या २ असुविधाये हैं।

महाराज को चित्रकारी से बडा शौक था। मकानात के नक्शे भी अक्सर वे ही तैयार करके कारीगरों को देते थे।

सन् १६०८ ई० मे ऐसे योग्य महाराज का स्वर्गवास हो गया। आपने कोई राजकुमार न छोडा था। इसलिये उनके छोटे भाई राजेन्द्रसिंह जी के लड़के ब्रजेन्द्रसिंह जी गद्दी पर बिठाये गये।

गद्दी पर बैठने के समय महाराज ब्रजेन्द्रसिंह नाबालिग थे। अतः राज्य का प्रबन्ध करने के लिये रेजेंसी कौंसिल की स्थापना की गई। महाराज को चीफस् कालेज में शिक्षा पाने के लिये भेज दिया गया।

महाराज ब्रजेन्द्रसिंह

शिक्षा प्राप्त करने के बाद से वह फरीदकोट में ही रहने लगे। २० वर्ष की अवस्था होने पर सरकार ने सन् १६१६ के २४ नवम्बर को आपको राज्य के कुल अधिकार सौंप दिये। उन दिनों अंग्रेजों और जर्मनों मे युद्ध हो रहा था। महाराज ने अंग्रेजों को इस युद्ध मे धन-जन से पूर्ण सहायता दी। इसलिये सरकार ने उनको मेजर की उपाधि से विभूषित किया। आपने अपने समय शिक्षा की उन्नति के लिये ब्रजेन्द्र हाईस्कूल की स्थापना की और स्त्रियो के स्वास्थ्य की हित दृष्टि से जनाना अस्पताल बनवाया। आपही के समय मे राज्य मे वाटरवर्क्स, टेलीफून और बिजलीघर की स्थापना हुई। जिससे फरीदकोट की रौनक दुचन्द होगई।

महाराज ब्रजेन्द्रसिंह की इच्छा थी कि राज्य को अंग्रेजी इलाके की तरह सुसम्पन्न और उन्नतशील बनावे। किन्तु उनकी जिन्दगी ने उनका साथ नहीं दिया और केवल दो ही वर्ष राज्य करके २३ दिसम्बर सन् १६१८ ई० को केवल २२ वर्ष की अवस्था मे इस संसार से प्रस्थान कर गये। प्रजा को आपके वियोग से बडा कष्ट हुआ। चूंकि आपकी बहिन श्रीमती राजेन्द्रकौर जी भरतपुर के यशस्वी महाराज श्री कृष्णसिंह जी के साथ व्याही गई थीं। जब यह समाचार भरतपुर पहुँचा तो वहाँ भी सारे राज्य मे शोक मनाया गया।

महाराज ब्रजेन्द्रसिंह जी के स्वर्गवास के बाद उनके सुपुत्र श्री हीरेन्द्रसिंह जी गद्दी पर बिठाये गये। उस समय उनकी अवस्था कुल तीन वर्ष की थी। अत राज्य का प्रबन्ध कौंसिल के सुपुर्द हुआ।

महाराज हीरेन्द्रसिंह

आपका जन्म २८ जनवरी सन् १६१५ ई० मे हुआ था। आप अपने पिता के दो पुत्र हैं। छोटे राजकु वर का नाम मनजितेन्द्रसिंह है। सन् १६२५ ई० में दोनो भाई चीफस् कालेज में भर्ती हुये। महाराज श्री हीरेन्द्रसिंह जी पढ़ने लिखने में बड़े तीव्र थे। सन् १६३२ ई० मे डिप्लोमा की परीक्षा आपने बड़ी सफलता के साथ पास की। अंग्रेजी के मजमून मे सर्वश्रेष्ठ रहने के कारण आपको गाडले मैडिल मिला। इतिहास और भूगोल के निबन्ध मे भी आप प्रथम रहे थे।

सन् १६३७ के आरम्भ मे आपको राज्याधिकार प्राप्त हो गये। राज्याधिकार समारोह मे धौलपुर और पजाबी राज्यो के कई महाराजगण पधारे थे। आपने प्रजा-सुधार के कार्य गद्दी पर बैठते ही आरम्भ कर दिये थे। रिश्वत को मिटाने के लिये भी आपने घोषणा की थी। प्रजा को आपसे बड़ी आशाये थी। आप नरेन्द्र मण्डल के भी सदस्य थे। सन् १६४८ मे फरीदकोट पेप्सू मे मिला दिया गया।

बाईसवाँ अध्याय

पटियाला राज्य का इतिहास

काश्मीर को छोड़कर पटियाला पंजाब की सबसे बड़ी रियासत है और जहां तक हम समझते है। राजा का खिताब भी पजाब की सिख रियासतों मे सबसे पहिले इसी रियासत के संस्थापक आलासिंह जी को मिला था। पटियाला राज्य का क्षेत्रफल ५९३२ वर्ग मील और जनसख्या १४९९७३९ थी। मालाना आमदनी (१६३०००००) बताई जाती थी। यह राज्य तीन भागो मे विभक्त है जिनमे सबसे बड़ा हिस्सा दक्षिणी किनारे पर है। दूसरा शिमला के पर्वतीय प्रदेश मे और तीसरा नारनौल का परगना है। जो राजधानी से १८० मील दूर है। इस राज्य की स्थापना १८ वीं शताब्दी मे सरदार आलासिंह जी द्वारा हुई थी।

पटियाला का खान्दान फुलकियां मलोई कहलाता है। फुलकियां चौधरी फूल के नाम पर और मलोई मालवा (पंजाब-स्थित) मे रहने के कारण नाम पड़ा।

प्रभास क्षेत्र मे यादवों के सर्व-संहारकारी युद्ध के बाद यादवों के अनेक कबीले काठियावाड़ (द्वारिका) को छोड़कर इधर उधर फैल गये। उनमे से कुछ गजनी की ओर, कुछ जदू का डूंग (पंजाब) मे और कुछ गुजरात, सिन्ध, पंजाब और राजपूताने में फैल गये। सिंध और जैसलमेर के मध्य का और पंजाब के पश्चिम दक्षिण का भाग जिसका कि केन्द्र वर्तमान भटिंडा है। भतियाना कहलाता था जिसकी एक नोंक सिन्ध की प्राचीन राजधानी अलोर तक चली गई थी। इसके पड़ोसी इलाके चोलिस्तान, माझ, और मालवा के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। गजनी से लौटने के बाद यहा इस भाटी समुदाय ने एक नई लहर देखी और वह लहर थी बौद्ध धर्म के विरुद्ध हिन्दू धर्म की। हिन्दू धर्म ने पुराने क्षत्रियों के लिये घोषणा कर दी थी कि कलियुग मे क्षत्रिय वर्ण ही नहीं है। इसका अर्थ यही था कि पुराने क्षत्रिय प्राय. बौद्ध हो गये हैं और वे लड़ने-भिड़ने से उदासीन हो गये हैं। अत' उनका क्षत्रियत्व नष्ट हो गया है। ब्राह्मणों का ऐसा कहने का एक दूसरा कारण भी था। वह यह कि बौद्ध धर्म वर्ण प्रथा को महत्त्व नहीं देता था हालाकि वर्ण प्रथा को उसने नष्ट भी नहीं किया था। जैन लोगों ने खुल्लमखुल्ला घोषणा कर दी कि वर्ण तीन ही हैं। क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। बौद्ध और जैन दोनों ही धर्म क्षत्रिय राजकुमारों द्वारा चलाये गये थे, अत. क्षत्रियों का उस ओर झुकाव भी खूब हुआ था। इस हेतु भी ब्राह्मण धर्म को जो कि बौद्धों-जैनों के विरोध मे खड़ा हुआ था यह घोषणा करनी पड़ी कि कलियुग मे क्षत्रिय वर्ण नहीं।

ऐसा उन्होंने कह तो दिया किन्तु बिना क्षत्रियों के काम चलना मुश्किल था। अत. उन्होंने राजपुत्रों की सृष्टि की। गजनी से लौटे हुए अनेकों भाटियों ने उस नई लहर का साथ दिया और वे ब्राह्मण धर्म मे दीक्षित होकर राजपूत बन गये। राजपूत हो जाने के बाद स्त्रियों को पर्दे मे रखना, पुनर्विवाह न करना, त्यौहारों पर माँ दुर्गे को सतुष्ट करने के लिये बलि देना, विधवा स्त्रियों को सती कर देना, गऊ, ब्राह्मण और देवता को छोड़ किसी को सर न झुकाना।[1] आदि चन्द रिवाजों को कठोरता के साथ पालन करना पड़ता। इस प्रकार भाटियों के दो दल हो गये। एक वह जो नये संस्कारों से मुण्डित होकर राजपूत कहलाने लगा, दूसरा वह जो कि अपने पुराने सामाजिक नियमों पर दृढ़ रहा। जिसने न पर्दा प्रथा को ग्रहण किया और न देवर विवाह प्रथा का परित्याग। वह वर्ग जाट ही कहलाता रहा। पटियाला, नाभा, जीन्द और फरीदकोट आदि रियासते ऐसे ही भाटी क्षत्रियों की है जिन्होंने पुरातन प्रथाओं को बडी मजबूती के साथ पकड़े रक्खा था और जो नयी लहर मे चले गये थे वे जैसलमेर के राजपूत भट्टी कहलाते है।

अब हम इस बात को यहीं समाप्त करते हुये पटियाला राज्य के मुख्य इतिहास पर आते है। इस वंश मे फूल एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। नाभा, पटियाला और जीन्द फूल के ही वंशज हैं। फूल के बेटो मे एक चौधरी रामा थे। चौधरी रामा के आलासिंह हुए जो कि एक प्रसिद्ध योद्धा हुए हैं। बहादुरी, रण-कुशलता और बुद्धिमानी मे वे दूसरे रणजीतसिंह थे।

पटियाला जैसी सुप्रसिद्ध और विस्तृत रियासत की स्थापना करने वाले और फुलकियाँ खान्दान को विश्वविदित होने योग्य बनाने वाले सरदार आलासिंह जी का जन्म १६६५ ई० मे मौजा फूल मे हुआ था। आपके नामी पिता की जिस समय शत्रुओं के हाथ से मृत्यु हुई थी आप २३ साल के थे। दो वर्ष के बाद ही आपने शत्रुओं से अपने पिता का बदला ले लिया। अपने शत्रु कमला और वीरसिंह को जोकि पिंड मानू सीमा के रहने वाले थे। मारते समय इनके चेहरे पर बर्छे का घाव आया था।

सरदार आलासिंह

इसके बाद आपने रायकोट के मुसलमान रईस गौसमुहम्मद को लड़ाई मे मार कर सघेरा अथवा सिंहगढ़ पर कब्जा कर लिया। यह गौसमुहम्मद नौ-मुस्लिम राजपूत था जो हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाने का काम कर रहा था। सघेरा के जमीदारो की पुकार पर ही आलासिंह जी ने सघेरा पर अपना थाना बिठाया और गौसमुहम्मद से लड़ाई की। १७१२ ई० मे आपने बरनाला को आबाद किया जो पीछे से अनहदगढ के नाम से मशहूर हुआ। इसके पास ही कस्बा पथौड था। उसे जीतकर आपने अपने भाई दूनासिंह को दे दिया। इन्हीं दिनों आपने लोंगेवाला नमेल और उभवाल आदि ६ गाँवों को और आबाद किया। यह गाँव मुसलमानों के अत्याचारों से बर्बाद हो गये थे।

सन् १७२५ ई० मे दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह ने आबाद किये हुये गाँवों पर आलासिंह का अधिकार स्वीकार कर लिया और राजा का खिताब देने का आश्वासन दिया। बादशाह ने राजा का खिताब देने की एक शर्त भी लगाई थी और वह यह कि वे सरहिन्द मे जाकर प्रबन्ध करे। इस शाही फरमान के आने के बाद सबसे पहले उन्होने भाटी नौ-मुस्लिमों को ठीक करना उचित समझा जो सदैव से इनके पूर्वजों के शत्रु रहे थे और जिन्होंने सिद्धू बराड़ लोगों को काफी तंग किया था। अल्लादादखाँ

१ कन्या वध को इसी मनोवृति ने जन्म दिया।

पटियाला-राज्य-संस्थापक

बाबा आला सिंह

महान् सेनापति

सरदार हरिसिंह नलुवा

बूहावाले, इनायतखाँ विलायतखाँ बूलाडावाले और वाकिरखाँ हरियाऊवाले सब पर चढ़ाई की। जो लगातार मौका व मौका १२ वर्ष तक चली। सन् १७४१ ई० मे अलीमुहम्मदखाँ सरहिंद का हाकिम होकर आया कुछ दिनों तक आलासिंह जी ने मिलकर उसके साथ काम किया। कोट और जगरवाँ की लड़ाइयों मे भी दोनों साथ-साथ रहे। आगे चलकर आलासिंह को मालूम हुआ कि अलीमुहम्मद उन्हें माण्डलिक समझता है। अतः वे उससे स्वतंत्र होने की तैयारी करने लगे। अलीमुहम्मद को भी इस तैयारी का पता चल गया। इसलिये उसने सरदार आलासिंह जी को कैद कर लिया। सरदार आलासिंह जी का करमा नाम का एक नौकर बड़ा होशियार था। उसने सरदार आलासिंह को सुनाम के क़िले[1] से ठीक उसी प्रकार निकाल दिया। जिस प्रकार कि महाराज शिवाजी को उनके राजभक्त सरदार हीरा जी ने निकाल दिया था। वह उनकी जगह सो गया और सरदार आलासिंह उसके कपडे पहन कर निकल गये। बाहर उनके अनेकों साथी तैयार ही थे। इस प्रकार रिहा होकर सरदार आलासिंह जी बरनाला आ गये और कर्मा को सीमा नाम का गाँव जागीर मे दिया तथा उसके ओहदे में भी तरक्की करदी। इसके कुछ ही दिन बाद अलीमुहम्मद को बादशाह ने हटा दिया और अबुलसमदखाँ को सरहिन्द का हाकिम बनाकर भेजा। अलीमुहम्मद यू० पी० मे चला गया और उसकी संतान आजकल रामपुर के नवाब कहलाते है।

अलीमुहम्मद अगर बदल न जाता तो सरदार आलासिंह अवश्य ही उससे बदला लेते। अब ये अपना राज्य बढ़ाने मे लग पड़े। भटिंडा के सरदार जोधसिंह को उसके हित के लिये सदैव मदद देते रहे।

सन् १७४७ ई० मे मौजा ढहूदान मे एक किला बनाने की उन्होंने तैयारी की। इस मुकाम के पास काकड़े मे फरीदखाँ नाम का एक मुस्लिम राजपूत थोडे से इलाके को दबाये बैठा था। फरीदखाँ ने आलासिंह को अपना काटा समझ कर समाना के हाकिम से सहायता की याचना की। उसके पास सहायता आये इससे पहिले आलासिंह जी के कुछ आदमियों ने अमरसिंह के नेतृत्व मे फरीदखाँ के इलाके पर कब्जा कर लिया। फरीदखाँ इस मुठभेड़ मे काम आगया।

सरदार आलासिंह के इस प्रकार के बढ़ते हुए शौर्य और प्रताप को देखकर परगना सनौर के जमीदार जिनके कि ४८ गाँव थे। स्वेच्छा से आलासिंह जी की मातहती मे आ गये। इस परगने की हिफाजत के लिये सरदार आलासिंह ने अपने साले गुरुबख्शसिंह को मुकर्रिर किया और एक मजबूत किला बनाया। यही किला और नगर आज पटियाला जिसके कि माने आलाका पट होते हैं—कहलाता है।

भटिंडा के सरदार से आलासिंह का मेल था। किन्तु वह मेल इस बात पर टूट गया कि भटिंडा के सरदार जोधसिंह ने आलासिंह के साले गुरुबख्शसिंह की मंगनी को अपने लिये स्वीकार कर लिया। शादी भी करली। सरदार आलासिंह ने कुछ मिसल-पतियों को अपनी सहायता के लिये बुलाकर भटिंडा पर चढ़ाई कर दी। जोधसिंह हार गया और भटिंडा आलासिंह जी के अधिकार मे आगया। इसके बाद भोलेड़ा और बूहा के मुस्लिम राजपूतों को परास्त करके उनके भी इलाके अपने राज्य मे मिला लिये। भोलेडा अपने साले को दे दिया।

सन् १७५७ तक उन्होने नौ-मुस्लिम भट्टियों मे मूनक, टोहाना, जमालपुर, धार सूल और सिकरपुरा को अपने कब्जे मे कर लिया। पड़ौस मे मालेरकोटला पर हाथ साफ किया और उसके इलाके के शेरपुर और पहोड़ नामक कस्बों पर अपना अधिकार जमा लिया। मालेरकोटला के नवाब जमालखाँ के बेटे

१ अली मुहम्मद ने लाकर यहीं उन्हें बन्द कर रक्खा था।

भीखम के पास एक बढिया तलवार थी उसे भी आलासिंह जी के पौत्र हिम्मतसिंह ने छीन लिया। लड़ाइयो मे उनके पुत्र लालसिंह और पौत्र हिम्मतसिंह भी बराबर शामिल होते थे।

इन दिनों भारत पर अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण होने आरभ हो गये थे। वह अपने जीते हुए प्रदेशों पर अपने हाकिम मुकर्रिर करके देश के जनमत को अपने कब्जे मे करने की कोशिश कर रहा था। नवाब मालेरकोटला ने अहमदशाह के पास सरदार आलासिंह जी की शिकायत भेजी।

जिस समय बरनाला पर अहमदशाह ने चढ़ाई की उस समय किले मे रानी साहिबा फतो ही थीं। रानी फतहकुंवरि बडी बुद्धिमान थीं उन्होंने अपने चार सरदारों को अहमदशाह के कैम्प मे इसलिये भेजा कि वे उसके साथ सुलह की बातचीत करे और आप अपने पौत्र अमरसिंह के साथ मूनक की ओर निकल गई। सरदार आलासिंह जी के पास जब यह समाचार पहुँचा तो उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी के साथ अहमदशाह को खुश कर लिया कुछ धन दौलत भी भेट किया। अहमदशाह उनसे खुश हो गया और उन्हे अपना माडलिक बनाकर सरहिन्द के हाकिम के नाम इस आशय का पत्र लिख गया कि "आलासिंह के अधिकृत इलाके को अपने से अलग समझो।" उस समय ७२६ गॉव और कस्बे आलासिंह जी के कब्जे मे थे सिख लोग जो मिसल वाले थे, वे सरदार आलासिंह से इस बात पर नाराज भी हुए कि उस लुटेरे से क्या सन्धि करनी थी। किन्तु आलासिंह जी ने अपनी स्थित समझा कर सब को सतुष्ट कर दिया और फिर उनके साथ सरहिन्द पर चढाई भी की जिसमे अहमदशाह का नियुक्त हाकिम जीन खॉ मारा गया। सिखों ने सरहिन्द की ईंट से ईंट बजादी, उसे लूट लिया और उसके अधीनस्थ इलाके को मिसल-पतियों ने आपस मे बॉट लिया। आलासिंह ने तोपां और अपने नजदीक के इलाके पर कब्जा किया। कहा जाता है सरहिन्द की लूट के धन से पटियाला का मजबूत गढ बनाया गया और शहर को रौनक दी गई। सरहिन्द विजय की घटना सन् १७६२ ई० की है।

जीनखॉ के मारे जाने व सरहिंद बर्बाद किये जाने का समाचार जब अहमदशाह को मिला तो वह बडा नाराज हुआ और एक बड़ा लश्कर लेकर पजाब मे घुस पडा। सिख जत्थे पहाड़ों और झाडियों मे चले गये और उसे रास्ते मे कई बार छापे मारकर तग किया। सरदार आलासिंह उसके पास पहुँचे और उसके दिमाग मे यह बात भली प्रकार बिठा दी कि आज सिखों की ताकत इतनी प्रबल है कि उनके विरुद्ध सग्राम जारी रखके अपनी हुकूमत को पजाब मे कोई भी स्थिर नहीं रख सकता है। प्रत्येक हाकिम की वही दशा होगी जो जीनखॉ की हुई है। अहमदशाह ने आखिरकार समझ सोच कर साढे तीन लाख सालाना के खिराज पर सरहिन्द का सारा बचा हुआ इलाका आलासिंह को दे दिया और साथ ही उन्हे राजा का खिताब भी बख्शा।

राजा आलासिंह जी के तीन पुत्र थे (१) कुॅवर शार्दूलसिंह (२) भूमियानसिंह (३) लालसिंह। एक लड़की प्रधान नाम की थी। ये तीनों ही भाई प्रत्येक लड़ाई मे अपने बहादुर पिता के साथ रहते थे। यह बडे होनहार और बहादुर थे किन्तु वे अपने पिता से भी पहले वीरों की भॉति युद्ध भूमियों मे इस ससार से चल बसे। इनमे कुॅवर शार्दूलसिंह ने अपने पीछे अमरसिंह और हिम्मतसिंह नाम के दो राजकुमार छोड़े। शार्दूलसिंह जी के दो रानिया थीं। एक तो हुक्मकौर थीं जो विवाहित थीं। दूसरी रेसा या रेशमकौर उनके चेचरे भाई जोधसिंह की बेवा थीं। जिससे कि उन्होंने आनन्द पढा लिया था।

सन् १७६५ ई० की २०वीं अगस्त को बुखार मे प्रतापी राजा आलासिंह जी का स्वर्गवास होगया।

महाराज आलासिंह जी ईश्वर भक्त और धर्मप्रिय सरदार थे। सिख धर्म की दीक्षा लेने के लिये

आप नवाब कपूरसिंह को अपने यहाँ लेगये थे और बड़ी धूमधाम के साथ आपने सिख धर्म की दीक्षा ली थी। इनके एक ही रानी थी वे भी बड़े पवित्र थे एकबार अचानक ही भूल से इनकी निगाह एक नंगी नौजवान—लड़की पर गई। इसके लिये उन्होंने प्रायश्चित किया और बड़े दु.खी हुए। अहमदशाह ने जिन लोगों को कैद कर लिया था। आपने उससे कह सुन कर उनमे अधिकाश को छुडा दिया था। इसलिये लोग आपको वन्दीछोड़ भी कहने लग पड़े थे। इनकी रानी फतहकौर भी एक बुद्धिमान और बहादुर महिला थीं। विपत्ति के प्रत्येक अवसर पर वह धैर्य मे काम लेती थीं। वह सलिक्यान जाट रईसों की लडकी थीं।

महाराज आलासिह ने जहाँ अपने समय में अनेकों वस्तियाँ आवाद कीं, लड़ाइयाँ लड़ीं, इलाके जीते। वहाँ गरीवों के लिये उन्होंने एक लंगर भी जारी कराया। जिससे गरीव उन्हे दिल भर कर दुआयें देते थे। गर्ज कि वह सब प्रकार से एक अच्छे राजा थे।

राजा आलासिंह जी के वाद उनके पौत्र अमरसिंह जी पटियाला की गद्दी पर बैठे। आपने गद्दी पर बैठते ही राज्य को बनाये रखने तथा भीतरी और वाहरी आक्रमणों की ओट के लिये सबसे पहले सरहदी इन्तजाम की ओर ध्यान दिया। अपने विश्वस्त सरदारों को सरहद्दों पर मुकर्रिर कर दिया। इसके वाद दूसरे वर्ष मालेरकोटला के पठानों मे पायल नामक नगर को छीन लिया।

राजा अमरसिंह

इन दिनों सरदार जस्सासिंह अहलूवालिया एक जबर्दस्त सरदार था अमरसिंह जी ने उससे भी लाभ उठाया उसे बुलाकर मालेरकोटला के इलाकों पर धावा कर दिया और इसरड्ड को छीनकर अपने राज्य में मिला लिया।

सन् १७६७ मे अहमदशाह ने हिन्दुस्तान की ओर फिर कदम बढ़ाया आपने कड़ा और वाना के मुकाम पर उसका स्वागत किया और उसके खिराज का बहुत कुछ हिस्सा अदा किया। जिससे खुश होकर अहमदशाह ने आपको "राजा राजगान" का खिताब और सिक्का प्रचलित करने की भी इजाजत देदी। अहमदशाह के लौटते ही आपने मालेरकोटला के पठानों पर फिर चढ़ाई की। रईस अताउल्लाशाह ने वार-वार की लड़ाईयों को खतम करने के लिये अधीनता स्वीकार कर ली। इसके वाद ही आपने सजोर और मतीम जुरये के रईस और अधिकारी गरीबदास के इलाके वख्शी लखना के द्वारा जितवाकर अपने राज्य मे मिला लिये। सिरमौर का राजा कीर्ति प्रकाश इस वात से बड़ा खुश हुआ। क्योंकि गरीबदास उसे बहुत तंग करता था। इस खुशी मे आकर उसने महाराज अमरसिह जी से पगडी-वदल दोस्ती करली। इससे उसे यह भी डर जाता रहा कि उसके राज्य पर भी आच न पहुँचे।

इन वाहरी झगड़ों से अवकाश पाते ही अमरसिंह जी ने अपने भाई हिम्मतसिंह पर जोकि ढूँढान में रहते थे चढ़ाई कर दी। 'सैरे पजाव' के लेखक ने लिखा है कि "ढहोदा समेत हिम्मतसिंह के पास २०० गॉव थे। अमरसिंह जी ने सारे जब्त कर लिये किन्तु रानी फतहकुँवरि को यह वात अच्छी नहीं लगी वे अपने पोतों को इस प्रकार लड़ते देख कर दुखी हुई और उन्होंने दोनों मे मेल करा कर हिम्मत-सिंह के गॉव वापिस करा दिये।" कहा जाता है हिम्मतसिंह अमरसिंह जी के विरुद्ध वगावत की तैयारी कर रहा था। सर लेपिल ग्रिफिन ने इसका कारण वताया है कि राज्य का अधिकारी बड़ा होने कारण हिम्मतसिह ही था परन्तु तारीख पटियाला के लेखक ने इस वात को गलत वताया है। वात कुछ भी हो एक वार तो फत्तो या फतहकौर ने इस झगड़े को शांत कर ही दिया।

कोटकपूरा का सरदार जोधसिंह अभिमान से अपनी घोडी को फत्तो और घोड़े को आला कहा करता था। अमरसिंह ने मौका मिलते ही उसे इस बात का दण्ड देने के लिये उसी के दूसरे भाई की मांग पर अपने सैनिक भेज दिये जो उसे और उसके लडके को—सैर करते हुये—घेर कर मार आये।

इसके बाद ही उन्हे दो लड़ाइयाँ और लडनी पडी एक तो भट्टियो के अहरवाँ और सिहा नामक गाँवों पर कब्जा करते समय, जिसमे बहुत से आदमियों का नुकसान हुआ क्योंकि दस हजार भाटियो ने सयुक्त रूप से आपकी सेना पर हमला कर दिया। इसके बाद भटिंडा पर। उन दिनो भटिंडा साबू गोत के जाट सुखचैनसिंह के हाथ था। उसने गूजरसिंह और जैतसिंह नाम के लोगों की स्त्री गौरा का सिर कटवा लिया था। उन दोनों ने महाराज अमरसिंह जी से सहायता मागी। एक साल तक पटियाले की फौजे घेरा डाले पडी रहीं। भटिंडा जीता न जा सका। आखिर रसद की कमी होने पर सुखचैनसिंह ने अपने लडके कपूरसिंह को अमानत मे देकर वापिस कर दिया और खुद भी चार महीने बाद हाजिर हो गया। महाराज ने उसे गिरफ्तार कर लिया और उसके लड़के को वापिस भटिंडा चाबियाँ सौंप देने को वापिस कर दिया। कपूरसिंह ने पिता को छुडाने के लिये चाबियाँ वापिस कर दीं। भटिंडा को पटियाला राज्य में मिला लिया गया और सुखचैन और कपूरसिंह के गुजारे के लिये केवल १२ गॉव छोड दिये गये।

भटिंडा की विजय के बाद महाराज ने अपनी दादी फत्तोरानी का खजाना भटिंडा के किले मे भिजवा दिया। पूछने पर उन्हे बताया कि वहा रुपया पैसा सुरक्षित रहेगा। इससे फत्तोरानी अमरसिह से नाराज हो गई। इसके अलावा सेनापति सुखदाससिह को भी महाराज ने नाराज कर दिया। इन बातो का नतीजा यह हुआ कि जब वे भटिंडा का प्रवेश-मुहूर्त करने भटिंडा पधारे हुए थे तो सेनापति और बूढी रानी ने हिम्मतसिंह को बुलाकर पटियाला का राजा बना दिया। अमरसिह जी को जब यह खबर लगी तो वे वापिस पटियाला आ गये और किले को घेर लिया। नाभा, जींद और सिरमौर से भी सहायतार्थ सेनाये बुलाई। उधर हिम्मतसिह ने माझ के सिख बुला लिये। कई महीने तक लडाई होती रही। आखिर हिम्मतसिंह जी से समझौता हो गया। उन्हे २५ गाव डहरवा के परगने मे देकर वापिस कर दिया और किले पर अपना अधिकार कर लिया। सहायको ने भी खूब रुपये दोनों से लिये। इसके दो ही वर्ष बाद हिम्मतसिंह मर गये। उनकी विधवा से महाराज अमरसिंह जी ने अपनी जातीय-प्रथा के अनुसार नाता कर लिया। इस प्रकार गृह-कलह सदा को समाप्त कर दिया। सिमरू भारतीय इतिहास मे एक प्रसिद्ध फ्रासीसी विजेता हुआ है। उसने पजाब मे आकर जींद के राजा गजपतिसिंह पर चढाई कर दी। महाराज अमरसिह जी का गजपतिसिह से मेल था। अत उन्होंने अपने सेनापति सुखदाससिह जिससे कि अब मेल हो गया था—की कमान मे गजपतिसिंह की सहायता के लिए सेना भेजी। पानीपत के मैदान मे दोनों राज्यों की सम्मिलित सेना के सामने सिमरू के पैर न टिक सके और वह वापिस देहली की ओर चला गया।

इसके दूसरे वर्ष फत्तोरानी का स्वर्गवास हो गया। महाराज ने उनके कारज (नुकते) में दो लाख रुपये खर्च किये। बड़ी धूम से उनका मौसर किया गया। इसी वर्ष मे आपके एक राजकुमार पैदा हुए जिनका नाम साहबसिह रक्खा गया। पटियाला के पास ही सैफाबाद नाम का एक कस्बा है उन दिनों वह गुलबेग के अधिकार मे था। महाराज ने राजा कीर्तिप्रकाश सिरमौर को सकेत कर दिया और दोनों को लडा कर आपने सैफाबाद को अपने कब्जे मे कर लिया।

भट्टी लोगों के हालांकि पटियाला, नाभा, जींद और फरीदकोट ने अब तक काफी प्रदेश दबा लिए थे किन्तु उनका लूटमार और आक्रमण करना अभी तक भी बराबर जारी था, इसलिये महाराज कर्मसिंह जी ने सन् १८६६ ई० में भटियाना को विजय करने के लिये चढाई कर दी। भगीडान नामक स्थान पर भट्टियों ने भी पूरी तादाद में इकट्ठे होकर मुकाबिला किया। कई दिन की घमासान लडाई के बाद भट्टी भाग गये। इस लड़ाई में उनके १४०० आदमी काम आये। पटियाला को भी बहुत हानि उठानी पड़ी। कई सौ आदमी पटियाला के भी मारे गये। सरसा और फतेहाबाद पर इस भारी दल से महाराज ने कब्जा कर लिया। भट्टियों का एक सरदार मुहम्मद अमीनखां भाग कर 'रानियाँ' के किले में जा छिपा था। विजित प्रदेशों पर दखल जमाते हुए महाराज ने 'रानिया' पर भी चढ़ाई कर दी। बीकानेर मे उस समय गजसिंह नाम का राठौर राजा राज करता था। उसने भयभीत होकर कर्मसिंह जी से पगड़ी-पलट दोस्ती करली। रानियां पर अभी युद्ध जारी था कि इधर जींद के राजा गजपतिसिंह की खबर आई कि उसके राज्य पर हॉसी के हाकिम मुल्ला रहीमदादखां ने चढाई कर दी है। अत. महाराज कर्मसिंह 'रानिया' का घेरा सुखदासिंह को सुपुर्द करके वापिस लौट पड़े और फतेहाबाद पहुॅच कर अपने दीवान नानूमल को ५००० सवार देकर जीन्द के राजा साहब की सहायता के लिये रवाना किया। जींद और पटियाले की संयुक्त सेनाओं के सामने रहीमदादखॉ की सेनाये ठहर न सकीं और रहीम-दादखॉ लड़ाई में खेत रहा। दीवान नानूमल ने महाराज जींद की रजामन्दी से उसके अधिकृत प्रदेश हांसी, हिसार, रोहतक, तोसाम और मुहिम पर कब्जा करके पटियाले के राज्य मे मिला लिया। रोहतक और गोहाना के कुछ भाग राजा साहब जींद को दे दिये। इस लड़ाई मे रहीमदादखां के कई हाथी, घोड़े और लड़ाई का दूसरा सामान भी हाथ लगा। यह घटना १७७८ ई० की ही है। इसके चार महीने बाद ही खबर मिली की रानियॉ का किला भी जीत लिया गया है। भाटियों ने सुलह करली जिसके अनुसार वे भटनेर के किले मे चले गये और सरसा का कुल इलाका उन्होंने पटियाला के लिये छोड़ दिया।

रहीमदादखॉ के मारे जाने और उसका इलाका पटियाला द्वारा दबाये जाने की यह खबर जब देहली पहुँची तो वजीर नजफखां ने अलीखां की मातहती में एक बडी सेना इस बात का पता लेने के लिये पंजाब को रवाना की। किन्तु फुलकिया सरदारों ने लड़ाई की बजाय सुलह करली। जिसके अनुसार हासी, हिसार, रोहतक और मुहिम के कुल इलाके बादशाह देहली को वापिस कर दिये और गुहाना आदि सात गाव जींद के लिए रख लिये और भाटियों के विजित प्रदेश पर पटियाला का अधिकार स्वीकार कर लिया।

जिस समय कि अमरसिंह जी नये-नये देश जीतने मे लग रहे थे पंजोर के इलाके पर गरीबदास और हरीसिंह ने पुन. कब्जा कर लिया। महाराज कर्मसिंहजी ने महासिंह और पाखरसिंह नाम के सेना-पतियों की अध्यक्षता मे गरीबदास को दण्ड देने के लिये भेजा। गरीबदास तो थोड़ी सी लड़ाई के बाद ही हिम्मत हार कर अमरसिंह जी की शरण मे आ गया। किन्तु हरीसिंह ने जस्सासिंह रामगढिया, कर्म-सिंह शहजादपुरिया और गुरुबख्शसिंह अम्बाला वालों को अपनी सहायता के लिये बुला लिया। इस प्रकार की भयंकर लड़ाई हुई जिसमे बख्शी लखना मारा गया। नानूमल दीवान जख्मी हुआ और ३००० सैनिक खेत रहे। झण्डूसिंह और महासिंह दुश्मनों ने गिरफ्तार कर लिये। महाराज अमरसिंह इस समा-चार से बडे चिन्तित हुए किन्तु हिम्मत करके वह पुन. सेना इकट्ठी करने लगे। उन्होंने जींद के राजा गज-पतिसिंह, नाभा के रईस हमीरसिंह, कैथल के सरदार भाई धन्नासिंह, भदौड़ के मालिक सरदार चोडहट-

सिंह, मलोद के सरदार दलेलसिंह और फगवाडे से बहिन राजेन्द्रकौर तथा राहून से सरदार तारासिंह जी आदि को मय फौज रिसाले के अपनी सहायता को बुला लिया। यह सयुक्त सेना लगभग चालीस हजार थी। माझ के सिख जो कि हरीसिंह के मददगार थे छोटी २ लड़ाइयों द्वारा इस दल को छकाते रहे अन्त मे महाराज अमरसिह के साथियों ने उनको कुछ ले दे कर हरीसिंह से अलग कर दिया। हरीसिंह इस कौतुक को देखकर एक दम हक्का-बक्का हो गया और लाचार होकर एक घोडा भेट का लेकर अमरसिंह जी की सेवा मे हाजिर हुआ। महाराज ने उस समय तो उसे माफ कर दिया किन्तु कुछ ही दिनों बाद उसके इलाके स्यालवा को अपने राज्य मे मिला लिया। कारण यह बताया कि हरीसिंह से जो युद्ध हुआ था उसमे हमारा दस लाख रुपया बर्बाद हुआ है। और जो आदमी मारे गये वह अलग रहे।

हरीसिह को दबाने से पटियाला के दस लाख खर्च हो गये होंगे पर फिर भी उनके खजाने मे अटुल धन राशि थी। उनके पास जितना इलाका था, उससे काफी आमदनी होती थी। हरेक लडाई मे काफी लूट होती थी। राजा आलासिह के समय से बराबर खजाना बढ ही रहा था। उनकी अपार धनराशि का पता तो इससे चलता है कि उन्होंने अपनी बहिन चद्रकौर और साहबकौर की शादियों मे बारह लाख रुपये खर्च किये थे। कई लाख रुपये मॉझ के सिखों को इस बात के लिये दिये थे कि वे पटियाला के इलाकों को न लूटें।

राज्य बढ़ाने, धन-सग्रह करने और पड़ोसी मित्र राजाओं की मदद करने आदि के जहॉ उनमें अनेकों गुण थे—वहॉ शराब पीने का एक दुर्गुण भी था जो बहुत ज्यादा मात्रा मे था। अन्तिम दिनों मे आप इतनी शराब पीने लगे कि उसके ही कारण केवल ३४ वर्ष की अवस्था मे आपका देहावसान हो गया।

अपने पिता के स्वर्गवास पर साहबसिंह गद्दी के मालिक हुए, उस समय (सन् १७८१ ई० में) आपकी अवस्था केवल ७ वर्ष की थी। अतः राज-काज दीवान नानूमल की देख-रेख में चलने लगा।

महाराज साहबसिंह

नाबालिगी से फायदा उठाने की हर किसी को इच्छा रहती है सभी यह चाहते हैं कि मेरा ही हुक्म चले। इसी प्रकार के कारणों को लेकर कुछ सिख सरदार दीवान नानूमल से नाराज रहने लगे। सरदार महासिह जो कि रानी देसू के भाई और भवानीगढ़ के रईस थे बागी होगये। उन्होंने भवानीगढ़ को स्वतन्त्र होने की घोपणा कर दी। नानूमल ने महासिंह को दबाने के लिये भवानीगढ़ पर चढ़ाई की। लगभग चार महीने के युद्ध के बाद महासिंह काबू मे आया। उससे दीवान नानूमल ने चार लाख रुपया जुर्माने का वसूल किया। यह विद्रोह अभी भली प्रकार दबा भी न था कि कोटसमेर के रईस बख्शसिंह सालू की विधवा राजकौर जो कि भटिडा के रईस सरदार सुखचैनसिंह जी की पुत्री थी विद्रोही हो गई। दीवान नानूमल ने जैसे-तैसे इस सरदारनी को भी दबाया। इसके बाद भिक्खी के विद्रोह को दबाने के लिये नानूमल ने भिक्खी पर चढ़ाई की। यहॉ पर राजा अमरसिंह की रानी खेमकोर के भाई पाखरियासिंह और आसासिह ने यहॉ के हाकिम भम्मासिह बहालीवाला को निकाल कर कब्जा कर लिया था। इस चढ़ाई मे रानी हुक्मा ने सेनापतित्व सभाला। आसासिह भिक्खी को छोड़कर तलवंडी की ओर भाग गया जहॉ उसे रानी की फौज ने गिरफ्तार कर लिया। अन्त मे तीन लाख का जुर्माना वसूल किया। लेकिन उनके गुजारे के लिये कुछ गॉव राज्य की ओर से उसे दे दिये गये। रानी हुक्मा राजा साहबसिंह जी की मॉ थीं सन् १७८३ ई० मे पटियाला राज्य मे बडा दुर्भिक्ष पडा उसमें लोगों के खाने-दाने को कुछ भी पैदा

नहीं हुआ जिसका फल यह हुआ कि राज्य मे हर जगह लूटमार होने लगी और कुछ लोग राज्य को छोड़कर भागने लगे। ऐसे समय में भी रानी साहिबा ने बडे धैर्य के माथ राज्य का प्रबन्ध किया।

रानी खेमकौर का एक सम्बन्धी मूलेपुरवाला शार्दूलसिंह भी था वह भी बागी हो गया। इस-लिये नानूमल ने उसपर भी चढ़ाई की। २१ दिन तक उसके साथ लड़ाई रही। इस लड़ाई मे शार्दूलसिंह के नौकर खुर्रमबेग की तलवार से नानूमल को बहुत गहरी चोट आई। खुर्रमबेग को तो मार डाला गया किन्तु दीवान नानूमल को लड़ाई से हटना ही पड़ा। रानी हुक्मा भी इस लड़ाई मे मौजूद थीं। जब उन्होंने दीवान के इस प्रकार जख्मी होने की खबर सुनी तो पटियाले के भविष्य को अन्धकार-मय समझ कर वे बेहोश हो गईं और उसी बेहोशी मे उनके प्राण पखेरू उड़ गये। इस मौके से बीबी प्रधान और रानी खेमकौर के सम्बन्धियों ने दीवान नानूमल को कैद कर लिया और राज्य मे काफी गड़बड़ मचाने लगे किन्तु ज्योंही यह खबर फगवाड़े मे बीबी राजेन्द्रकौर को लगी वे अपनी फौज लेकर पटियाला आ पहुँचीं[1] और सबसे पहले उन्होंने दीवान नानूमल को कैद से छुटाया। राज काज मे सहायता देने के लिये भी पटियाला ही रहने लगीं। दीवान नानूमल राज्य का शुभचिंतक था किन्तु दुर्गुण उसमे भी था वह दरबार मे भी हुक्का पीता रहता था और सिखों की सलाम का जवाब हुक्के की नय से देने लग पड़ा था। भला सिख उसकी इस गुस्ताखी को कब बर्दाश्त कर सकते थे किन्तु नाबालिग महाराज के समझाने से वे चुप रहे। नानूमल की तरह उसके लडके भी अभिमान मे आ रहे थे।

नानूमल ने बगावतें दबाने में कोई कसर नहीं रखी। बनेड़ के बागी खुशहालसिंह को भी जा दबाया और धम्मनसिंह को जिसकी ओर से अन्देशा था जेल मे डालकर राज्य का दौरा शुरू किया। मौलूपुरे जाकर शार्दूलसिंह के घातक हमीरसिंह से किला कब्जे मे किया और वहाँ जितना भी रुपया खजाने मे था पटियाला रवाना कर दिया। यहाँ से कोटकपूरा जाकर वहाँ के रईस से २० हजार नजराना वसूल किया और बराड़ लोगों से अपने राज्य की सरहद अलग करने के उद्देश्य से कोटकपूरा के पास ही एक किला बनवाया। भट्टियों के गाँव जो विद्रोही हो गये थे कोटकपूरा से लौट कर उन्हे भी ठीक किया।

इसके बाद पटियाला मे आकर महाराज साहबसिंह का विवाह भंगई मिसल के सरदार गंडासिंह की लड़की रतनकौर के साथ बड़ी धूम-धाम के साथ किया।

सियालवा के हरीसिंह को भी जिसके पास कुछ ही गाँव राजा अमरसिंह ने रहने दिये थे। मदद दी और उसको कुछ इलाके भी जितवा दिये। यह इलाके सिंहपुरियावालो के कब्जे से निकलवाये थे। इस लड़ाई में कई सौ आदमी पटियाला के मारे गये।

अब तक प्राय. सभी सिख दरबारी दीवान नानूमल से नाराज हो चुके थे। एक बीबी राजेन्द्रकौर ही थीं जो उससे बिगाड़ना न चाहती थीं। किन्तु उसकी एक बात ने बीबी साहिबा को भी नाराज कर दिया। वह बात यह थी :—

"मरहठे सरदारों का एक दल रानी रवा की मातहती में पंजाब आ निकला। नानूमल ने बीबी साहिबा से कहा कि आप भटिंडा चली जायें। वरना मरहठों को नजराना देने की फिक्र करनी पडेगी। बीबी जी इस बात से नाराज होगईं। मरहठों के पंजाब मे आने पर जब नानूमल उनसे मिलने गया तो बीबी साहिबा ने उसके लड़के दत्तामल को इसलिये गिरफ्तार कर लिया कि शायद नानूमल मरहठों के साथ

१ बीबी राजेन्द्रकौर राजा अमरसिंह के चाचा की बहिन थीं।

मिलकर कोई षडयंत्र न रच बैठे। इससे तनातनी और भी बढ़ गई। नानूमल मरहठों को आखिर पटियाला ले ही आया। निकट के एक गॉव मे उनके डेरे डाल दिये। मरहटों के कहने से बीबी जी ने नानूमल के लडके को तो रिहा कर दिया। किन्तु नजराने की रकम पर वे बराबर झगडती रहीं। वे युद्ध करने को भी तैयार होगई। मरहठों ने भी जबरदस्ती नजराना लेने की तैयारी की। किन्तु किसी कारणवश तुरन्त ही उन्हे मथुरा की ओर जाना पड़ा। नानूमल के बेटे दत्तामल और बीबी साहिबा को भी उनके साथ मथुरा की ओर जाना पडा। इधर महाराज साहबसिंह ने दीवान नानूमल का कुल सामान जब्त कर लिया और उनका एक लडका जो बरनाला मे तहसीलदार था। उसे कैद कर लिया तथा उसका भी सारा माल छीन लिया। नानूमल को जब यह पता लगा तो उसने उन लोगो का सगठन करना आरम्भ किया जो विद्रोही भावना रखते थे। कुछ ही दिनों बाद बीबी राजेन्द्रकौर भी लौट आई। नानूमल ने अपने परिवार की कुल दुर्दशा का हाल उनसे कहा। वे पसीज गई और नानूमल को धीरज दिलाया कि तुम्हारे साथ इंसाफ होगा। किन्तु इधर चुगलों ने राजा साहबसिंह जी के कान भर दिये कि बीबी जी भी अपना प्रभुत्व बनाये रखने की फिक्र मे है। साहबसिंह जी चुगलखोरों के हत्थे पर ऐसे चढ़े कि लाख कहने पर भी वे बीबी राजेन्द्रकौर से नहीं मिले। अपने भतीजे की कटुता का बीबीजी के दिल पर इतना धक्का लगा कि वे कुछ समय बाद इस ससार मे चल बसीं। वास्तव में देखा जाय तो पाटियाला की वे महान रक्षक साबित हुई थीं।

नानूमल भी इधर-उधर भटक कर तथा एक दो लड़ाइयॉ पटियाले के साथ लडकर सन १७७२ मे ससार से चल बसा।

दीवान नानूमल के बाद समाने के रहने वाले अलाहीबख्श नामक मुसलमान ने महाराज साहबसिंह को अपने हाथों रख लिया। वे उसकी प्रत्येक बात को मानने लगे थे। उसकी इस प्रकार की हरकतो को देख कर सरदार दयालसिंह अरोडा और सरदार सूबासिंह ढिल्लों ने एक दिन भरे दरबार मे अलाहीबख्श को कत्ल कर दिया। इसके बाद सन् १७६३ ई० मे सरदार अलबेलसिंह राज्य के वजीर नियुक्त हुए। राजा दयालसिंह दीवान बनाये गये।

दीवान अलाहीबख्श के इस प्रकार खुले आम कत्ल के बाद से राजा साहबसिंह खुद भी दरबारियों से सशकित रहने लगे। वे सोचते कभी यह मुझे भी मार सकते हैं। इस चिन्ता मे मुक्ति पाने के लिये उन्होंने फतहगढ़ से अपनी बहिन साहबकौर को बुलाया। क्योंकि राजेन्द्रकौर की भाति ही वे भी बहादुर और होशियार थीं। जब वे पटियाला आ गई तो राज प्रबन्ध की देखभाल का समस्त भार उनको सौंप दिया। बीबी साहबकौर ने राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लेते ही नया प्रबन्ध आरम्भ किया। उन्होंने सरदार तारासिंह की सहायता से नानूमल के भतीजे दीवानसिंह को दीवान बनाया। किन्तु उसके काम मे ढिलाई देखकर गुरुदयाल को दीवान नियुक्त किया। जोकि इस काम मे ठीक उतरा। बीबी साहबकौर के पटियाला आने के कुछ ही दिनों बाद उन्हे समाचार मिला कि उनके पति जयमलसिंह को उनके चचेरे भाई फतहसिंह ने कैद कर लिया है। इसलिये उन्हे वापिस सुसराल जाना पड़ा। जहॉ उन्होंने अपने पति को जेल से छुडाया और अपने इलाके का सुप्रबन्ध किया। इसके बाद वे पटियाला लौट आई।

सन् १७६४ के आरम्भ मे मरहठों ने पजाब की ओर मुँह फेरा। लक्ष्मनराव और अताराव नाम के मरहठा सरदारों की अध्यक्षता मे मरहठो का यह दल नाभा, जीन्द, कैथल आदि सबसे नजराने लेता हुआ पटियाला की ओर रवाना हुआ। बीबी साहबकौर ने नजराना देने मे अपनी हतक समझी और

लड़ाई के लिये तैयार हो गईं। राजगढ़ के पास दोनों ओर से लड़ाई हुई। पटियाला के सैनिकों ने मरहठों जैसी सैनिक योग्यता प्राप्त न की थी। अत: वे मरहठों के सामने से भागने लगे। यह देखकर वीवी साहव-कौर रथ से नीचे उतर आईं। और सैनिकों तथा सामन्तों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा "यदि आप लोग कायर हैं और आपको अपने प्राण प्यारे हैं तथा मान और मर्यादा का कुछ भी खयाल नहीं है तो आप भाग जा सकते है। किन्तु मैं प्राण रखते युद्ध भूमि से हटने वाली नहीं हूँ। क्षत्रिय क्षत्राणियों के दूध का सबूत युद्ध मे ही परखा जाता है। आप चाहे तो अपनी माताओं के दूध को कुत्ती और गधी के दूध सिद्ध कर सकते हैं। किन्तु मैं समझती हूँ। अपमान की जिन्दगी से तो मान सहित मरना ही श्रेयष्कर है। है। एक स्त्री को—जो कि राजघराने और साथ ही आपके परिवार की है—शत्रुओं के बीच मे छोड़कर संसार को अपना मुँह दिखाने की हिम्मत कर सकते हों तो आप लोग अविलंब मैदान छोड़कर भाग जॉय।

वीवी साहिवा के उपरोक्त भाषण ने सेना मे और सेनापतियों मे मर मिटने की भावना पैदा करदी। "न दैन्य और न पलायनम्" सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने मरहठों की सेना पर धावा कर दिया। मरहठों के पैर उखड़ गये और वीवी साहिवा की जीत हुई।

वीवी साहिवा जहाँ बुद्धिमान और ऊँचे दर्जे की बहादुर थीं वहाँ उनमे शासन योग्यता भी काफी थी। नाहन के राजा धर्मप्रकाश के मरने पर जब उसका छोटा भाई करमप्रकाश राज्य का अधिकारी हुआ तो उसके दरवारियों ने वगावत खड़ी कर दी। कर्मप्रकाश ने पटियाला से वीवी साहिवा को अपनी मदद के लिये वुलाया। वे थोड़ी सी फौज के साथ पटियाला पहुँचीं और जाते २ वागियों को ठीक कर दिया। इसके वाद दो चार ही दिन मे वहाँ के शासन का भी प्रवन्ध ऐसे नये सिरे से कर दिया। जिससे सहसा वगावत पैदा होने की गुञ्जायश नहीं छोड़ी। राजा कर्मप्रकाश ने कृतज्ञता स्वरूप वीवी जी को बहुत से कीमती उपहार भेट किये।

रोहतक जिले में, झज्झर के पास एक किला जहाजगढ़ है। वास्तव मे उसका नाम जार्जगढ़ है इसे जार्ज टामसन ने वनवाया था। जोकि माधवराय सिंधिया के सूवेदार (नारनौल) का एक नायक था। खाडेराव ने जार्ज टामसन की वहादुरियों से खुश होकर झज्झर का इलाका उसे जागीर मे दे दिया था। यह जार्जटामसन किसी समय यूरोप से जहाज का खलासी होकर आया था। यहाँ उसने समरू फ्रांसीसी की नौकरी करली। समरू ने किसी वात से नाराज होकर जार्ज टामसन को निकाल दिया। इसके वाद वह खांडेराव के पास जोकि उस समय नारनौल के मरहठा सूवेदार थे,नोकर हो गया। उन्होंने उसे झज्झर का जागीरदार वना दिया। खांडेराव के मरने के वाद जार्ज टामसन स्वतन्त्र हो गया और उसने हांसी और हिसार पर भी अपना कब्जा कर लिया। वीवी साहवकौर को इससे भी लड़ना पडा। इसके पास युद्ध-विद्या मे प्रशिक्षित आठ सौ सैनिक और पचास तापें थीं। फूल राज्यों के पारस्परिक झगड़ों को देखकर इसने जीन्द पर हाथ डाला। किन्तु इसके दुर्भाग्य से जीन्द की रक्षा करने के लिये कैथल, फरीदकोट और पटियाला सभी राज्यों से सेनायें इकट्ठी हो गईं। वीवी साहवकौर के हाथ मे सेना सचालन सुपुर्द हुआ। विजय सिखों की हुई और जार्जटामसन हार कर दिल्ली की ओर चला गया।

वीवी साहवकौर की वजह से जहाँ पटियाला के आतरिक झगड़े वन्द रहे और रियासत टुकडे-वन्दी से वची वहाँ कुछ इलाके जीते जाकर राज्य को वढाया भी गया। इन सव वातों को देखते हुये चाहिये तो यह था कि राजा साहव उनके अहसानों से उऋण होने की कोशिश करते और आजीवन उन्हे स्नेह की निगाह से देखते। किन्तु वे अपने स्वार्थी कर्मचारियों के वहकावे में आ गये। यह भी कहा जाता

है। कि राजा साहब की रानी आसकौर भी यह चाहती थी कि बीबी साहिबा के पद पर वह काम करे। इन बातों का यह नतीजा हुआ कि राजा साहबसिंह जी ने अपनी बहन पर तीन इलजाम लगा कर उन्हे हटाने की कोशिश की।

(१) राजा नाहन ने जो हथिनी बीबी साहिबा को भेंट दी थी वह उन्होंने निज के लिये रख ली है।

(२) बिना सलाह मशविरा किये ही उन्होंने अपनी जागीर मे सन् १७९६ में एक किला बनवा लिया है।

(३) भोरियॉ गॉव का नाम बदल कर उभयवाल रख लिया है।

बीबी साहिबा उन दिनों जींद मे ठहरी हुई थीं। जब उन्हे पता चला कि उनका भाई उनके अहसानो को भूल कर दुष्टो के काबू मे फॅस कर उनके विरुद्ध हो गया तो उनके दिल को बडी चोट लगी और वे बरनाला न जाकर उभयवाल चली गईं। स्वार्थी लोगों ने बीबी साहिबा की इस बात से भी लाभ उठाया। उन्होने महाराज को भड़काया कि बीबी साहिबा आपकी जरा भी परवाह नहीं करती हैं। राजा साहब भी उन लोगो के ऐसे हाथों चढे कि उन्होंने बीबी साहिबा को लिख भेजा आप उभयवाल के किले को खाली करके अपनी ससुराल फतहगढ़ चली जावे। बीबी साहिबा ने नाराज होकर किला खाली करने से इन्कार कर दिया। फिर क्या था सन् १७९६ की भरी गर्मी मे राजा साहबसिंह ने उभयवाल किले पर हमला कर दिया। तीन दिन तक दोनों ओर से लडाई हुई। अत मे सरदार लालसिंह और जोधसिंह कलसियावालो ने दोनों भाई बहिनों मे समझौता करा दिया और दोनों को पटियाला वापिस कर दिया किन्तु रास्ते से महाराज को उनके मुसाहिबो ने फिर भडका दिया। महाराज ने भवानीगढ मे लाकर बीबी जी को नजरबन्द कर दिया। बीबी जी बडी साहस वाली थीं। अपनी बुद्धिमानी से नजरबन्दी मे से निकल गई और अपने किले उभयवाल मे जा पहुची। राजा साहबसिंह को जब यह समाचार मिला तो वे खिसियाये तो सही किन्तु फिर उन्होने चुप्पी साध ली और बीबी जी के साथ कोई छेडखानी नहीं की क्योंकि वे देख चुके थे कि इसमे उन्हीं को लोग बुराई देते थे किन्तु बीबी जी के हृदय पर भाई के इस रुख के कारण ऐसी ठेस लगी कि वह एक ही साल के अन्दर चल बसीं। राजा साहब को भी उनके मरजाने के बाद बड़ा रज हुआ क्योंकि आखिर तो दोनों भाई बहिन थे।

जार्ज टामसन ने पुन पजाबी रियासतों को लूटना शुरू कर दिया, असल मे बात यह थी कि फौज तो उसने ज्यादा इकट्ठी करली थी और इलाका उसके पास थोडा था। उसने नाभा, जीन्द की भॉति ही पटियाले के कुछ हल्कों को लूटा और नरवाना तथा खूनरी आदि हल्कों को उसने अपने राज्य मे भी मिला लिया। टामसन से तंग आकर इन समस्त फुलकियन राज्यो ने टामसन के दुश्मन पैरन साहब को अपनी मदद के लिये चार लाख रुपये के भाडे पर बुलाया। उसने कुछ ही दिनों की लडाई मे टामसन को भगा दिया और इन लोगो के इलाके जो उसने जीते थे वापिस कर दिये। किन्तु पैरन को रुपया देने के लिये इन राजाओ ने उसे पंजाब मे इधर-उधर घुमाया। अधीनस्थ लोगों से नजराने वसूल किये। पैरन को भी चोट लग गई उसने भी फिर दुबारा नजराने लेने के लिये पजाब की ओर हमला किया और नजराने वसूल किये। उसको भी अन्धा-धुन्धी उस समय तक चली जब तक कि लार्ड लेक ने पैरन को खदेड़ न दिया।

रानी आसकौर इस समय पटियाला की मुख्य शासक थीं, राजा साहब तो नाम मात्र के राजा थे। वे बहादुर और अक्लमद भी थीं। दुलद्दी गांव के लिये उन्हे नाभा से लडना भी पड़ा था, लडाई के समय

वे खुद मैदान में रहती थीं। रानी आसकौर के दबदबे के आगे दरबारी भी कुछ ऐसा काम न कर सकते थे जिससे राज्य और प्रजा को कुछ नुकसान पहुँच जाय। उनकी मन मानी करई रुकी हुई थी। इसलिये दरबारी लोग रानी साहिबा से नाराज भी थे और उन्होंने महाराज साहबसिंह जी को भड़काना शुरू किया। महाराज से कहा गया कि बीबियों की तरह अब महारानी ही आम मुख्तार हो गई हैं आप को तो कोई भी आगे नहीं लाना चाहतीं। नतीजा यह हुआ कि राजा रानी में मन-मुटाव हो गया और नौबत यहाँ तक पहुँची कि राजा साहब पटियाला गढ़ से बाहर रहने लगे और रानी साहिबा भीतर। बीच २ में रानी साहिबा राजा साहब को मनाती भी रहीं किन्तु चुगलखोरों की बदौलत नौबत यहाँ तक पहुँची कि राजा साहबसिंह ने सन् १८०७ में महाराजा रणजीतसिंह को बुला भेजा। ये इससे एक-डेढ़ वर्ष पहले भी राजा साहब नाभा के बुलाने से इन दोनों रियासतों का झगड़ा निपटाने आ चुके थे और पटियाला से पचास हजार रुपया नजराना लेकर चले गये। अबकी बार राजा साहबसिंह ने उन्हें एक बहुमूल्य कंठा और एक तोप देने का वायदा करके बुलाया था। रानी आसकौर घबरा गई और उन्होंने अपने विश्वासपात्र आदमी द्वारा अपने पति को समझाया कि आखिर इसमें नुकसान किसका होगा। राज्य आपका मेरा अलग-अलग नहीं है। आप मेरे साथ जो भी इन्साफ-गैरइन्साफ करना चाहते हैं करें उसे मैं मानूंगी इसमें लोक हँसी भी तो है किन्तु अब क्या होना था। महाराजा रणजीतसिंह जी तो आ ही धमके। वायदे के अनुसार भेट वसूल की और फिर रियासत में होकर नाभा, जीन्द, कैथल से नजराने वसूल करते हुये लाहौर को चले गये। इन दो ही वर्षों में इन रियासतों को महाराजा रणजीतसिंह जी ने ऐसा दुहा कि इन्होंने उनसे पीछा छुड़ाना ही तय कर लिया और सन् १८०८ में सब मिलकर देहली में अंग्रेजों की शरण में पहुँचे और स्पष्ट शब्दों में अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना की। उस समय अंग्रेजों को भी महाराजा रणजीतसिंह से भय लगता था, इसलिये वे कोई खुला आश्वासन तो न दे सके पर कुछ धीरज अवश्य बँधा दिया।

इधर इन राजा लोगों ने महाराजा रणजीत सिंह जी से भी बनाये रखने की कोशिश जारी रखी किन्तु दिल से यह सब उनके दुश्मन बन गये थे। अंग्रेज भी कोई ऐसा समझौता रणजीतसिंह से करने के लिये कोशिश करने लगे जिसमें इन लोगों की रक्षा हो जाय। आखिरकार ऐसा समझौता हो ही गया।

अंग्रेज सरकार ने रियासतों की सरहद की पैमायश के वास्ते आयोजन किया था। पटियाला की सरहद की पैमायश वायट नाम का एक अंग्रेज करने आया। फूलासिंह अकाली जो कि उन दिनों बागी हुआ फिर रहा था। उसने वायट को मार दिया। पटियाला सरहद की जनता ने इसे बहादुरी का काम समझा, इसलिये लगभग एक हजार आदमी उसके साथ हो गये और पैमायश वालों को मार पीट कर भगा दिया। राजा साहबसिंह के पास यह खबर भेजी तो उन्होंने फूलासिंह अकाली को पकड़ने के लिये फौज भेजी। उस फौज के हाथ फूलासिंह तो क्या आना था किन्तु अंग्रेज अवश्य राजासाहब से इस बात के लिये खुश हुये और उन्होंने 'अधिराज राजेश्वर" की उपाधि इनके खिताब में और बढ़ा दी।

इस समय राज्य-प्रबंध पूर्ण रूप से साहबसिंह के ही हाथ में था। रानी साहिबा को एक जागीर दे दी गई थी जिसमें वह अपने पुत्र युवराज कर्मसिंह के साथ रहती थीं। रानी साहिबा को भी राज-काज करने का ऐसा चस्का लगा था कि वे भी कुछ दुखी-सी रहती थीं। वे सोचती थीं राजा साहब में ऐसी योग्यता शासन चलाने की कहाँ जैसी मेरे अन्दर है और उनकी मुख्तारी में राज्य को हानि ही हो रही है लाभ कुछ भी नहीं और वास्तव में बात ऐसी थी भी। राजा साहबसिंह बराबर राज्य को बर्बाद कर रहे

थे। अनेकों खुशामदियों को उन्होंने जागीरें दे डालीं। खजाने का रुपया वर्वाद कर दिया। वे खुशामदियों के भुलावे मे सहज ही आ जाते थे। जब राज्य की हालत दिन-प्रतिदिन विगड़ने लगी तो कुछ फूल रईसों ने अक्टरलोनी साहव से शिफारस की कि राज्य का प्रवन्ध रानी आसकौर के ही हाथ मे रहना चाहिये। जव अक्टरलोनी ने यही बात राजा साहवसिंह जी के सामने रक्खी तो उन्होंने आगा पीछा सोचकर स्वीकार कर लिया हालांकि वे चाहते थे कि उनकी सौतेली माँ खेमकौर को प्रवन्ध सौंपा जाय तो ठीक रहे।

नये प्रवन्ध के अनुसार मिश्र नोधाराम, दीवान गुरुदयाल और सरदार अलवेलसिंह महारानी साहिवा के सलाहकार मुकर्रिर हुए। एक वर्ष तक तो काम अच्छी तरह से चलता रहा किन्तु फिर भीतर ही भीतर अशांति वढ़ने लगी। एजेन्ट अम्वाला को यह पता चल गया कि राजा साहव शासन मे वाधा डालते है अत उन्होंने पटियाला आकर रानी साहिवा को कानूनन राज्य का मालिक वना दिया। यह घटना ६ अप्रैल सन् १८१२ की है। रानी साहिवा ने अपने एक वर्ष के प्रवन्ध मे एक लाख से ऊपर खजाने मे रुपया इकट्ठा कर लिया था और ३००० सिपाहियो को वक्त पर वेतन चुका देती थीं। महारानी साहिवा के सुप्रवन्ध और शासन योग्यता से स्वार्थी लोग मन ही मन कुढ़ते थे। यहाँ तक कि अलवेलसिंह भी महारानी के खिलाफ हो गया। उसके खिलाफ होने का कारण यह था कि महारानी ने उसकी जागीर पर ७०००) सालाना राज्य-कर मुकर्रिर कर दिया था। महाराज को इन लोगों ने यह कह कर भड़काया कि वे अपने रास्ते का आपको काँटा समझती हैं और शीघ्र ही आपको नजरवन्द करने वाली हैं। राजा साहवसिंह को इस वात पर यकीन आ गया और उन्होंने शीघ्र ही महारानी, युवराज और नोधाराम मिश्र को नजरवन्द करा दिया और आप राज्य करने लगे किन्तु कुछ ही दिनों वाद उन्हे महसूस हुआ कि उनका यह काम उचित नहीं और मेरे से उतना अच्छा प्रवन्ध राज्य का हो भी नहीं सकता। अत उन्होंने उन्हे नजरवन्दी से मुक्त कर दिया और राज्य का काम उन्हे ही सौप दिया। अंग्रेज सरकार ने महारानी साहिवा को परामर्श दिया कि राजा साहव को एक लाख रुपये की जागीर देकर राज्य शासन से पृथक कर दिया जाय। और वे मजवूती से शासन करे। महाराज साहवसिंह शराव खूव पीते थे और फिजूल खर्च भी थे। सन् १८१३ ई० के मार्च मे जागीर मे रहते हुये ही उनका देहान्त हो गया।

राजा साहवसिंह जी की कमजोरियों से पटियाला राज्य की वढ़ोतरी तो रुक ही गई थी साथ ही राज्य को कई वार खतरा भी आ गया था। उनकी कमजोरी से ही रियासत के जागीरदार भी लाभ उठाना चाहते थे यदि रानी आसकौर तत्परता के साथ राज्य को न सभालती तो निश्चय ही पटियाला राज्य की हालत और भी खराव हो जाती। स्वार्थी लोग राज परिवारों मे और यहाँ तक कि राजा रानियों मे भी फूट के वीज किस प्रकार वोने में सफल होते है पटियाला मे उसका सर्वोपरि उदाहरण महाराज साहबसिहजी की ही वदौलत सावित हुआ। नशेवाजी के व्यसन ने भी महाराज को वहुत नुकसान पहुँचाया। जिसने जैसा कह दिया नशे मे उसे ही मान लिया और नशे की वजह से ही इतनी जल्दी उनका देहावसान हुआ।

अपने पिता के स्वर्गवास के वाद सन् १८१३ ई० की ३० वीं जून को कर्मसिंह जी पटियाला के राज सिंहासन पर वड़ी धूम-धाम के साथ आरूढ़ हुये। फुलकियन सरदारों की ओर से इस समय खिल्लत और उपहार देने की पूर्ववत ही रस्म अदा हुई। इस समय सरकार अंग्रेज ने रियासत की ओर से अपना ध्यान हटा सा लिया था। इससे लोगों को सन्देह हुआ कि राज्य मे गड़वड मचेगी और उपद्रव भी होंगे किन्तु परमात्मा की कृपा से कोई

महाराज कर्मसिंह

बखेड़ा नहीं हुआ। सब कार्य ढग से ही चलते रहे। गोरखों से अंग्रेजों की लड़ाई होने पर महाराज कर्मसिंह जी ने यथाशक्ति अंग्रेजों को सहायता दी।

सन् १८१५ के मई के आरम्भ में एक जागीरदार चड़तसिंह ने कुछ विरोधी आन्दोलन का सूत्रपात किया। इस समय अंग्रेजो ने उसकी जागीर जब्त करने मे महाराज को मदद दी। मिश्र नौधाराम और महारानी आसकौर इस समय भी उसी प्रकार प्रबन्ध कर रहे थे।

राज्याधिकारों का कुछ मद ही ऐसा होता है जिसमे न तो भाई-भाई का सम्बन्ध रहता है और न बाप बेटे तथा मॉ बेटे का। महाराज कर्मसिंह के सयाने होने पर पटियाला मे यह घटना भी सुनने को मिली कि मॉ बेटों मे मनमुटाव हो रहा है। मॉ, चाहती है कि अभी और कुछ दिन मैं ही शासन करूँ और पुत्र अब अपने हाथ मे शासन सूत्र लेना चाहता है। मिश्र नौधाराम इस हालत को देखकर बड़ा घबराया और बेचारा ज्वाला जी के दर्शनों के लिए चल दिया किन्तु चूंकि उसने भी हकूमत का मजा लिया था। उसकी ज्वाला के दर्शनों से भी वह तृष्णा न छूटी। पटियाला की हवा देखने को लौट ही पडा। इधर उसकी सेवाओं की अब कोई जरुरत नहीं समझी जा रही थी। अतः रास्ते मे ही उसे मुल्के अदम रवाना कर दिया गया। यह उसे पुरानी सेवाओ का पुरस्कार मिला। किन्तु उसने हकूमत की थी या सेवा यह तो कैसे कहा जा सकता है।

अब रह गई मॉ, उसके लिये भी महाराज कर्मसिंह जी ने प्रबन्ध कर दिया उन्होंने कप्तान जार्ज ब्रज असिस्टेण्ट एजेन्ट को पटियाला बुलाकर घोषणा करा दी। "अब राज्य का प्रबन्ध सोलह आने महाराज कर्मसिंह के अधिकार मे है। सब लोग इन्हीं की आज्ञा मानें। जो कोई इनके कार्यों मे हस्तक्षेप करेगा उसे सख्त सजा दी जायगी। राजमाता आसकौर को सनोर की जागीर मौजूद है। वे पटियाला को छोड़ जाय और वहीं रहे।"

राजमाता आसकौर जार्ज ब्रज के आदेशानुसार सनोर चली गईं किन्तु अन्तिम दिन ईश्वराधना मे व्यतीत करने की अभी उनकी भी इच्छा नहीं हुई। पचास लाख के जवाहिरात भी अपने साथ सनोर ले गईं। माया को भला कैसे छोड़तीं। इधर महाराज भी माया को 'मॉ' से अधिक ही समझते थे। अत. वे क्यों बर्दाश्त करते कि उनकी बजाय उनकी मॉ के पास इतनी अतुल माया रहे। उन्होंने भी सवाल उठा दिया भला इतनी बड़ी जागीर की 'मॉ' को क्या जरूरत और वे जवाहरात का भी क्या करेंगी। वे तो राजकुमारों और राज महिषियों के पहनने की चीजे हैं। और जागीर लेने की उन्हे जरूरत ही क्या है। यहॉ रहे और जितना खर्च उनके खाने पीने पर पड़े. लेती रहे। सरकार ने उनकी बात को सुना और कप्तान मरे साहब को जोकि एजेन्ट साहब थे। पटियाला मे मॉ बेटे के झगड़े को निपटाने के लिए भेजा कप्तान साहब ने रानी आसकोर से कहा आप पटियाला ही रहें और अपने खर्च के लिये पचास हजार साल लेती रहे। रानी साहब ने कहा—मैं क्या नौकर हूँ जो पचास हजार या पच्चीस हजार लूं। यहॉ रहूँगी तो मालिक बनकर रहूँगी वरना गंगा किनारे जाकर भजन करूँगी। यह एक धार्मिक धमकी थी। जैसे तैसे वे पचास हजार सालाना की जागीर लेकर सनोर रहने पर ही राजी हुईं। जवाहरात उन्होंने लौटा दिये। कहा जाता है अपने बेटे के घर जब एक लड़का पैदा हुआ तो वे पटियाला आ गईं।

एक बाप के दो बेटे थे। दूसरे थे अजीतसिंह महाराज के छोटे भाई. उन्हे भी लोगों ने चंगुल पर चढ़ा दिया। उन्होंने दावा किया कि मेरी अपने भाई से नहीं निभती है. अत राज्य का बँटवारा कर दिया जाय। बेचारे बहुत भटके बहुत कोशिश कीं। आखिर अक्ल आई और फिर भाई से ही समझौता

किया। महाराज ने भी सोचा "घर का भेदी लंका दाह" अत उन्हे १५०००) की जागीर और ३०००) नकद सालाना मुकर्रिर कर दिया और व्याह भी बड़ी धूम से करके अपने भ्रातृत्व का फर्ज अदा किया।

अब तक पुराने प्रबन्ध मे काफी खराबियाँ आ गईं थीं इसलिये घरेलू झगडो से निपटने पर महाराज ने राज्य प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया। उस समय की हालत मे जो प्रबन्ध हो सका था वह अब सुधार चाहता था। उस समय तहसीलदारों को दीवानी और फौजदारी दोनो ही तरह के अख्तियारात हासिल थे। इसी तरह छोटे-छोटे थानेदारो को भी बहुतेरे अधिकार थे इस प्रकार ये सब ही प्रजा को मनमाने तौर पर सताने से अपनी-अपनी जगह के छोटे-मोटे राजा ही बने हुये थे। नौकरो को नौकरी के बदले मे प्राय जागीरें मिली हुई थीं। सिपाहियों को किसी किस्म की कवायद परेट भी नहीं सिखाई जाती थी। नीचे से ऊपर तक रिश्वत और बेईमानी का बाजार गर्म था। इन तमाम कमियों को दूर करने के लिए महाराज कर्मसिंह जी ने भरपूर ध्यान दिया। नये प्रबन्ध मे उन्होंने चार पदाधिकारी अलग २ महकमों की देखभाल और अपीले सुनने के लिए मुकर्रिर किये। खास २ सरदारो को छोडकर नौकरों को जागीर की बजाय टके मुकर्रिर कर दिये। सैनिकों की श्रेणिया कायम कीं। कुछ फ्रासीसी लोगो को कवायद सिखाने के लिये नौकर रक्खा। मालगुजारी मे रुपया महाजन के यहाँ जाने का रिवाज बन्द करके सीधा खजाने मे आने और रसीदे काट कर जमा कराने का कायदा नियत किया। जमीन पर उसकी किस्म को देख कर मालगुजारी बाँधी गई। इस सबके अलावा पुराने किलों और इमारतों की मरम्मत करवाई। अन्य कई नई इमारते भी बनवाईं। इस प्रकार उन्होंने राज्य शासन गृह-प्रबन्ध सभी मे काफी सुधार किया जिसमे प्रजा मे भी संतोष फैला।

सन १८२६ मे भरतपुर पर जब अंग्रेजो ने दूसरी बार हमला किया तो उस समय अग्रेजों को उनकी माँग के अनुसार २० लाख रुपया उधार दिया। इस बात से जाना जा सकता है कि आपने खजाने को भरने मे कोई कसर बाकी नहीं रक्खी थी।

पजाब की चारों सिख रियासते प्राय' आपस मे ही झगड़ा करती थीं। राजा कर्मसिंह जी ने यह कोशिश की कि किसी प्रकार यह लडाई झगड़े मिटे। अंत मे सन् १८३३ ई० मे इन सभी रियासतो ने ढूँढान के मुकाम पर इकट्ठे होकर आपस मे सुलह करली उस सुलह का सार इस प्रकार है—

नाभा, जीन्द, कैथल और पटियाला की सन्धि

(१) हम चारों मे से कोई किसी के नौकर और अपराधी को शरण न देगा।

(२) जब दो रईसों मे झगड़ा हो जाय तो बाकी दो फैसला करेगे।

(३) सरहदी मामलात मे सवत् १८२० तक जिन्होंने जहाँ तक कब्जा कर लिया था। वहाँ तक का माना जायगा।

(४) यदि कोई कर्जदार भागकर दूसरी रियासत मे चला जाय तो पहली रियासत उससे कर्जा वसूल वहाँ भी कर सकेगी।

(५) प्रत्येक राज्य अपनी प्रजा की पुकार पर यदि वह दूसरी रियासत की प्रजा के कानूनन खिलाफ होगी तो उचित इन्साफ मुद्दई के लिये करावेगा।

(६) चोरी का माल लेकर यदि कोई प्रजाजन दूसरी रियासत मे जायगा तो तब तक चोर वही समझा जावेगा जब तक कि उस गाँव के लोग उसके माल को अपने यहाँ रख न लेगे।

(७) भगाई हुई स्त्रियों का पता यदि पॉच साल के भीतर लग जाया करे तो वह असली मालिकों को वापिस करा दी जावे। पाच साल वाद दो सौ रुपये नाते के दिला दिये जाया करे।

(८) यही नियम लड़कियों का व्याह दूसरी जगह करने पर लागू होगा।

(६) कत्ल के मामलों मे कातिल से मकतूल के वारिसों को दो सौ रुपया नकद दिलाया जायगा और कातिल को सख्त सजा दी जायगी।

सन् १८४१ मे अंग्रेजो ने पटियाला महाराज के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि जनरल पेरन की सहायता से जो इलाके सिरसा, हिसार आदि मे जीते हैं। वह हमे वापिस करदो क्योंकि मरहठों के वारिस हम ही है। दोनों ओर से अपनी २ दलीले दी जाती रही अत मे महाराज ने अंग्रेजों की वाते मान लीं। २६६ गावों मे से उन्हे ४१ गॉव हिसार जिले के और २५ सिरसा के इलाके के मिले।

यद्यपि अंग्रेजों के इस व्यवहार से महाराज कर्मसिंह कुछ नाराज हो गये थे फिर भी जब अंग्रेजों की खालसा सेना से लड़ाई हुई तो रसद, सेना आदि देकर आपने अंग्रेजों की खूब मदद की। इससे पहले उन्होंने अफ़गान युद्ध मे अंग्रेजों को पच्चीस लाख कर्ज मे दिये ही थे। सिखों को लडाई मे तो उन्होंने दो हजार सवार और दो हजार पैदल दिये थे वास्तव मे मुदकी मे खालसा सेना को इसी दल से हारना पड़ा था वरना अंग्रेजी सेना के पॉव उखाड़ दिये जा चुके थे।

इस युद्ध मे सहायता देने के उपलक्ष में सरकार ने उन्हे शिमले के पास सोलह परगने दिये थे।

राज खालसा के लेखक ने लिखा है कि "खालसा सेनाओं के विरुद्ध सहायता देने के कारण महाराज कर्मसिंह वहुत शर्मिन्दा हुए थे और उसी शर्मिन्दगी मे (२३ दिसम्बर सन् १८४५) स्वर्ग सिधार गये।"

इसमे कोई शक नहीं कि राजा कर्मसिंह जी अपने पिता और पितामह दोनों से अच्छे शासक साबित हुए और प्रजा की भलाई के भी अनेकों कार्य कर गये। उन मे धार्मिक पक्षपात की मात्रा नहीं थी। हिन्दू, मुसलमान और दूसरे सभी लोगों के साथ आप एक-सा व्यवहार करते थे।

अपने योग्य पिता के वाद आप ही राज्य के मालिक हुए। आपका जन्म सन् १८२३ ई० में हुआ था और सन् १८४६ मे २३ वर्ष की अवस्था मे आप राज्य के मालिक हुए। जिस समय पटियाला का शासन सूत्र आपके हाथ मे आया उस समय अंग्रेजों और खालसा सेनाओं की डट कर लड़ाई हो रही थी। इन्होंने भी अंग्रेजों की पूरी सहायता की। आपकी फौज के तो कुछ आदमियों को यह वात बुरी लगी। सिपाही वागी हो गये। किन्तु वे तुरन्त ही दवा दिये गये। अंग्रेजों को छोटे-छोटे जागीरदारों पर सन्देह हुआ कि शायद वे लोग हमारे पक्ष मे नहीं। इसलिये उन लोगों के सवके अधिकार छीन लिये गये। लड़ाई के वाद कई की जागीरें भी जब्त कर ली गईं। कैथल का राज्य भी इसी कारण से जब्त हुआ था। इसके अलावा अंग्रेजों ने प्रत्येक राज्य मे से जकात का रिवाज उठा दिया। पटियाला को इस साधन से नौ हजार रुपया सालाना की आमदनी होती थी। महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने गवर्नर जनरल को लिख भेजा कि हमे मालूम हुआ है सरकार प्रजा के फायदे के लिये रियासतों मे से जकात उठवा रही है। हमने इसी हेतु से अपने यहाँ से जकात उठा दी है। इसके वदले मे गवर्नर जनरल ने धन्यवाद के साथ दस हजार के इलाके पटियाले को दे दिये।

महाराज नरेन्द्रसिंह

कहा जाता है कि महाराज नरेन्द्रसिंह वड़े भारी दानी थे। उन्होंने सन् १८५० ई० मे जब ज्वाला-मुखी की यात्रा को तो पचास लाख का चढ़ावा चढ़ाया। इसके अलावा और भी वडे-वडे दान किये।

जिनका जिक्र आगे करेंगे।

पंजाब के छोटे-छोटे सरदारों को बेदखल करने से एक लाभ सरकार ने पटियाला राज्य से भी उठा लिया। रियासत के चहारमी लोगों ने जब यह आन्दोलन उठाया कि रियासत हमारी आमदनी का चौथा हिस्सा ले। अब तक वह जो चौथा हिसा हमे देती है यह अनुचित है। चहारमी लोगों और पटियाला दरबार दोनों ने ही सरकार के पास अपने-अपने पक्ष को रक्खा। स्थिति से लाभ उठाने के लिये तुरन्त ही सरकार ने कर्नल मेकन कमिश्नर अम्बाला को जॉच करने के लिये नियुक्त किया। जिस पर उन्होंने लिख दिया कि चहारमी लोग चाहे तो पटियाला से अलग हो सकते हैं। ऐसा ही हुआ भी पटियाला राज्य का चहारमियों वाला सारा इलाका अंग्रेज सरकार के कब्जे मे चला गया।

अप्रैल सन् १८५२ ई० मे महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने अपनी बडी लडकी की शादी धौलपुर के राजकुमार भगवंतसिंह जी के साथ बडी धूमधाम से की जिसमें चौदह लाख रुपया खर्च किया गया। ५०००) का दहेज अग्रेज सरकार ने भी दिया। इस शादी के बाद महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने गंगा-स्नान और तीर्थ यात्रा के लिये तैयारी की। हरिद्वार मे गंगा-स्नान करके और बहुत कुछ दान-पुण्य करके ऋषीकेश और बद्रीनारायण के दर्शनों को गये। इन तीर्थों पर लगभग चौसठ हजार रुपये का दान किया और बद्रीनारायण में एक हजार रुपये सालना का सदावर्त खोलकर आपने धर्म-प्रेम का परिचय दिया।

सन् १८५२ ई० मे ही सितम्बर की १६ वीं तारीख को राजकुमार महेन्द्रसिंह जी का जन्म हुआ। किन्तु चूंकि आपके पुत्र पैदा हो-होकर मर जाते थे। इसलिये इस समाचार को गुप्त रक्खा गया और सन् १८५३ ई० की १४ जनवरी को प्रकट करके खूब धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया।

सन् १८५४ के जीन्द राज्य मे पैमायश पर उठे हुए विद्रोह को दबाने के लिये राजा साहब जीन्द की मॉग पर आपने दो हजार सैनिक और चार तोपों के साथ चौधरी इमामबख्श को भेजा। इस लडाई में बागियों के १७ आदमी जान से मारे गये और ८० जख्मी हुए।

जब हिन्दुस्तान मे अग्रेजों का बोलबाला था। सारे राजा रईस उनका लोहा मान चुके थे तो कौन ऐसा सम्पन्न आदमी होगा जो उनके देश की सैर करने की इच्छा न रखेगा। महाराज नरेन्द्रसिंह ने भी २८ अगस्त सन् १८५४ को विलायत की यात्रा की तैयारी करदी। उन दिनो कलकत्ते से ही आवागमन विलायत के लिये होता था। रास्ते मे आपने काशी दर्शन किये। राजा ईश्वरप्रसाद नारायणसिंह काशी नरेश के घर पर ठहरे। स्थानीय अग्रेज हाकिमों ने भी आपका काफी स्वागत सत्कार किया। यहॉ विश्वनाथ के दर्शनों के बाद अन्य धार्मिक स्थानों को भी देखा। काशी के गुरुद्वारे मे एक सदावर्त जारी कर दिया। यहॉ से अग्निबोट के जरिये पटना और गया को देखते हुए कलकत्ते पहुँचे। कलकत्ता ही अंग्रेजों की राजधानी थी। वहॉ पर सरकार की ओर से आपका खूब स्वागत सत्कार हुआ। बहुत सी मेवा मिठाई और १३००) रुपया नकद सरकार की ओर से आये।

गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने गवर्नमेट हाउस मे दरबार लगाकर आपका स्वागत सत्कार किया। तोहफे भी भेट किये और १७ तोपों की सलामी। नियमानुसार महाराज ने भी दूसरे दिन गवर्नर को अपने स्थान पर बुलाकर स्वागत सत्कार और भेट की रस्म अदा की। इसके बाद कुछ आवश्यक कारण पैदा हो जाने से विलायत यात्रा स्थगित करके महाराज वापिस पटियाला लौट आये।

सन् १८५७ के गदर मे राजा नरेन्द्रसिंह जी ने सरकार का हुक्म प्राप्त होते ही अम्बाला और थाना के मुकामों पर अंग्रेजों की जान बचाने और विद्रोहियों को दबाने मे भरसक मदद दी। आपकी

ओर से २१५६ सवार २८४६ पैदल १७६ अफसर और ८ तोपें देहली, पानीपत, करनाल, अम्बाला, जगाधरी आदि अनेकों स्थानों पर विद्रोहियों का सामना करने के लिये पहुँचे। पटियाला में भागे हुए अंग्रेज स्त्री बच्चों को बड़ी खातिर से रक्खा गया। पाँच लाख रुपया नकद सरकार को उधार दिया गया और दस लाख और भी देने का वायदा किया। रसद तो दिल्ली तक भेजी गई।

महाराज नरेन्द्रसिंह जी ने गदर में जो सहायता की उसके बदले में सरकार ने आपको नारनौल का इलाका सदैव के लिये दे दिया। इसके अलावा भदोड़ का इलाका और जीनत महल आदि कई स्थान दिये। साथ ही "महाराजाधिराज" की उपाधि भी दी।

इस विजय की खुशी में जब अम्बाला में अंग्रेजों ने दरबार किया तो उसमें महाराज नरेन्द्रसिंह के गले में माला डालते हुए गवर्नर जनरल ने कहा था कि महाराज ने इस समय अंग्रेज सरकार की जो सेवायें की हैं वे भूली नहीं जा सकतीं।

सचमुच ही अगर पंजाब के ये फुलकियन रजवाड़े अंग्रेजों के साथ न होते तो पंजाब के सारे सिख चाहे वह अंग्रेजों की ही फौज में क्यों न रहे हों। भड़क जाते और फिर अंग्रेजी राज्य का रहना मुश्किल हो जाता।

गदर के बाद जिस समय इलाका नारनौल पटियाला को सरकार ने दिया तो उसकी वार्षिक आय दो लाख दस हजार बताई थी। किन्तु जब देखा तो एक लाख सत्तर हजार ही आमदनी का टोटल बैठा। पटियाला की ओर से सरकार को इस बात की याद दिलाई गई। सरकार ने बाद जाँच के कनोड का इलाका और दे दिया। किन्तु उसकी बीस वर्ष की आमदनी उस कर्जे की रकम में से काटली जो पटियाला की ओर से दिया गया था। बाकी जो कर्ज पटियाला का सरकार पर था। उसके एवज में कुछ ही दिन बाद सरकार ने इलाका खमानोन और कुछ नकद देकर कुल कर्जे को चुकता कर दिया।

महाराज ने कुछ दिन बाद शिमला जाकर वायसराय के दस्तखतों से उन इलाकों की सनद हासिल कर ली जो सरकार ने उन्हें दिये थे। जिसके अनुसार समस्त पटियाला राज्य पर पीढ़ी दर पीढ़ी महाराज के वंशजों का अधिकार स्वीकार किया गया था। इसके सिवा गोद लेने का अधिकार भी उन्हें प्राप्त होगया।

महाराज ने सरकार के परामर्शानुसार राज्य से सती-प्रथा कन्या-वध जैसे रिवाजों को भी नष्ट कर दिया।

इलाका झज्झर से जो परगने पटियाला को मिले थे। उनमें मुआफीदार भी थे और नवाब झज्झर के अहद में वे एक प्रकार से स्वतंत्र से रईस थे। उनका इलाका जब पटियाला को मिला तो उन्होंने आन्दोलन उठाया और कहा अपनी स्थिति स्वतंत्र ही रखना चाहते हैं। जैसे नवाब हम से भीड़ पड़ने पर जन, धन की मदद लेता था वैसे ही हम अब पटियाला को भी देते रहेंगे। किन्तु महाराज नरेन्द्रसिंह ने यह बात पसन्द नहीं की। मामला दोनों ओर से सरकार तक गया। वहाँ से फैसला हुआ कि माफीदार स्वतंत्र नहीं रह सकते, उन पर पटियाला का अधिकार है।

जिस समय सन् १८५८ में सरकार ने अंग्रेजी ढंग की उपाधियां बांटने का सूत्रपात किया तो उस समय महाराज नरेन्द्रसिंह जी को सितारे हिन्द की उपाधि मिली।

इधर-उधर के झगड़ों से शांत होने पर अंग्रेज सरकार ने कानून बनाने वाली एक कौंसिल का निर्माण किया। उसमें अंग्रेज सरकार ने महाराज नरेन्द्रसिंह जी को भी एक मेम्बर बनाया। उसमें महाराज के साथ बंगाल के लाट साहब की बराबरी का व्यवहार होता था। जिस प्रकार की कुर्सी बंगाल

गवर्नर की होती थी वैसी ही आपकी और उसी प्रकार एक अर्दली आपको दिया जाता था। भारत मे उस समय यह कौसिल अपने ढंग की नई-नई थी अत' महाराज इसमें सन् १८६२ ई० की १८ जनवरी की मीटिंग मे बड़ी खुशी के साथ शामिल हुए थे। इस कौंसिल में जाने से उन्होंने शासन सम्बन्धी बहुत-सी बातों की जानकारी हासिल की थी। उसके अनुसार आप अपने राज्य मे भी कुछ कानून लागू करने में अग्रसर हुये।

महाराज ने अपने राज्य के खजाने मे अटूट धन राशि सग्रह कर ली थी। यही कारण था कि आपने अपनी लडकियो की शादी मे खूब खर्च किया। बीबी वसंतकौर की शादी मे १४ लाख खर्च किये थे यह तो पहले ही बता चुके हैं। दूसरी लडकी बख्तावर कुँवरि की शादी मे भी जो कि महाराजा जसवन्तसिंह जी भरतपुर के साथ व्याही गई थी। दस लाख रुपया खर्च किया था और विशेष अवसरों पर अलग देते थे।

कौंसिल के अधिवेशन के बाद वे कुछ दिन तक कलकत्ता ही ठहरे रहे क्योंकि लार्ड कैनिंग विलायत जा रहे थे और उनके स्थान पर एलगिन आ रहे थे। मार्च मे नए वायसराय के आने पर वे कलकत्ते से पटियाला लौट आये और अपने युवराज महेन्द्रसिंह जी की शादी की तैयारी करने लगे।

किन्तु उनकी यह मुराद पूरी न हो सकी और सन् १८६२ मे १३ नवम्बर को उनका देहावसान हो गया। उनके स्वर्गवास का रियासत और रियासत के बाहर काफी शोक मनाया गया। कई राजा महाराजाओं और गवर्नर पंजाब ने शोक सूचक तार भेजे। महाराज नरेन्द्रसिंह जी बुद्धिमान और योग्य शासक थे उनके जमाने मे राज्य की काफी तरक्की हुई। नारनौल का ११० गॉव का इलाका और दूसरे कई इलाके जिनका जिक्र पिछले पृष्ठों मे कर चुके है उन्हीं के समय मे पटियाला को प्राप्त हुए। उन्होंने अपने पडोसी नाभा, जीन्द और फरीदकोट के साथ भी अच्छा ही व्यवहार किया। उनसे आपसी मेल बढ़ाने के लिए भी कई सन्धिया कीं। आपको बाग लगवाने और इमारते बनवाने का भी बडा शौक था। राज्य मे आपने एक बडा बाग लगवाया। दीवानखाना और महल भी बनवाये। सन् १८६०-६१ के भारी अकाल मे राज्य के कोठों से किसानों को अन्न बाटा। राज्य के जिन हिस्सों मे डाकू प्रकृति के लोग रहते थे वहाँ-वहाँ दौरा करके उन्हे ठीक किया। डाक के प्रबन्ध मे सुधार किया। भूमि-कर मे अन्न की बजाय नकद लेने और नौकरों को वेतन देने के नियम भी आपने ही चालू किये।

पटियाला मे उन्होने एक लाख रुपये की लागत से एक गुरुद्वारा भी बनवाया था और सवा लाख रुपया उसके खर्चे के लिये दिये।

सरकार की ओर से उन्हे "फरजन्दे खास दौलत इगलिशिया मनसूर-उल-जमान अमीर-उल-उमरा" का भी खिताब मिला था।

वास्तव मे उन्होंने बड़ी ही बुद्धिमानी से अपने सारे काम चलाये थे। अंग्रेजों से उन्होंने काफी लाभ भी उठाया और काफी मदद भी दी। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उनकी अंग्रेज परस्ती चाहे जैसी रही हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं उन्होंने पटियाला जैसे बडे राज्य को खालसा की भांति नष्ट होने से बचा लिया।

महाराज महेन्द्रसिंह

अपने पिता नरेन्द्र सिंह जी के देहावसान के बाद महेन्द्रसिंह सन् १८६३ ई० की २६ जनवरी को गद्दी पर बैठे। उस समय आपकी उम्र १० वर्ष चार माह १२ दिन की थी। आपका सिंहासनोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ और अभूतपूर्व ढग से मनाया गया अनेकों अंग्रेज औफीसरान के अलावा कपूर्थला, जीन्द, नाभा, बनारस, अलवर और बर्द-

मान जैसे राज्यों के अधीश्वर और प्रतिनिधि भी इस महोत्सव में पधारे थे। चूंकि महाराज नाबालिग थे इसलिये सरकार की ओर से नाबालिगी के समय तक के लिये एक कौंसिल बना देने की सलाह दी गई किन्तु राज्य की वर्तमान बागडोर जिन लोगों के हाथ में थी उन्होंने महाराज की ओर से एतराज किया कि आन्तरिक प्रबन्ध में सरकार हाथ नहीं डाल सकती है। किन्तु सरकार ने सन्धियों के विस्तृत अर्थ के अनुसार तीन आदमियों की कौंसिल बनाई ही दी। जिसमें सरदार जगदीशसिंह जी नाजिम नारनौल, मियां रहीम बख्श नाजिम कर्मगढ़ और सरदार उदयसिंह जी को मेम्बर बनाया गया। ये लोग राज-काज में काफी होशियार और ईमानदार थे अत: काम भली प्रकार चलने लगा किन्तु कुछ ही महीनों बाद सरदार उदय-सिंह जी का (सितम्बर १८६३ ई०) में शरीरांत हो गया। उनकी जगह पर बख्शी बसावासिंह जी को मुकर्रर किया गया। बख्शी बसावासिंह के लिये कहा जाता है कि वे बड़े होशियार और प्रभावशाली आदमी थे किन्तु "ईश्वरेच्छा बलीयसी" सन् १८६६ ई० में उनका भी देहान्त हो गया और उनकी खाली जगह पर सरदार फतहसिंह जी नियुक्त हुये। इसके कुछ दिन बाद मियां रहीमबख्श भी मर गये और सैयद मुहम्मद हसनखाँ को लेकर उनकी जगह भरी गई।

अब तक कौंसिल का काम अच्छा ही रहा था किन्तु सैयद मुहम्मद हसन के कौंसिलर बनने के समय से उत्पात खड़े हो गये। अच्छे २ और योग्य आदमियों को नौकरियों से अलग करके अपना दल बढ़ाया जाने लगा। कुछ को राज्य से बाहर भी कर दिया गया। इस पार्टीबंदी के समय में ही दीवान निहालचंद को अपने प्राण खोने पड़े। आखिर इस धड़ेबंदी का भी वही कटुफल निकला, जो निकला करता है। सरकारी खजाने में से भी गड़बड़ होने लगी।

इसी बीच सन् १८६४ ई० में लाहौर में जो दरबार हुआ। उसमें प्राय: सभी पंजाबी राजा रईस पधारे थे। महाराज महेन्द्रसिंह जी भी शामिल हुए। महाराज काश्मीर जिनका कि नाम रणवीर-सिंह था। उन्होंने महाराज महेन्द्रसिंह जी को अपने तम्बू में बुलाकर खूब आवभगत की। दोनों ओर से भेंट और उपहार भी दिये गये।

सन् १८६८ ई० की पांचवीं मार्च को महाराज महेन्द्रसिंह जी की शादी हुई।[1] महाराज ने इस अवसर पर बखेर के काम को कतई रुकवा दिया। राजाओं में उस समय यह कुप्रथा थी किन्तु आपने इसे अपने यहां से उठा दिया। इससे आपकी बुद्धिमानी का पता बखूबी चल जाता है।[2]

सन् १८७० ई० में जब राजकुमार अल्फ्रेड अलबर्ट का उनके भारत पधारने के उपलक्ष में लाहौर में दरबार हुआ तो उसमें भी महाराज ने भाग लिया और पंजाब यूनिवर्सिटी को बीस हजार रुपया इसलिये दिया कि वह इस रकम के वजीफे प्रिन्स महोदय के नाम पर छात्रों को दे। यहां पर आपने भावल-पुर के नवाब सादिक मुहम्मदखाँ से भी मुलाकात की। उस समय वह दस ग्यारह साल के ही थे।

यहां पर आपको समाचार मिला कि उनकी बहिन (महारानी भरतपुर) का देहान्त हो गया है, अत: वे पटियाला लौट आये। चूंकि उनकी वह बहिन भी पटियाला ही में आकर स्वर्गवासिनी हुई थीं। लाहौर दरबार के बाद महाराज को सरकार की ओर से "नाइट ग्रेन्ड कमांड तब का" "आली सितारे हिन्द" के खिताब भी मिले थे।

[1] राम नारायनसिंह फैजलपुरिये की लड़की के साथ।

[2] फिर भी शादी में ७० लाख रुपया खर्च हुआ था।

सन् १८७० ई० मे २२ नवम्बर को महाराज महेन्द्रसिंह जी ने भी पटियाला मे एक भारी दरवार किया। उनमे महाराज ने अपने कर्मचारियों को ७० हजार की खिल्लतें वखशीं।

अगले साल की २०वीं जनवरी को महाराज ने कलकत्ता जाने की तैयारी शुरू की। कलकत्ते मे खितावों की सनदें देने के लिये सरकार की ओर से दरवार किया गया था। इसीलिये आप वहाँ गये। वहाँ से लौट कर गया, पटना और वनारस की यात्रा करते हुए पटियाला आ गये। इसी वर्ष नाभा के राजा भगवानसिंह जी के मरने पर आपने वडरूखा के रईस हीरासिंह जी को नाभा का उत्तराधिकारी वनाने के लिये राजा साहव जीन्द के साथ मिलकर कोशिश की, जिसमे आप सफल हुये। इसके वाद शिमले मे लाट साहव से मुलाकात करने गये। वहा आपने अनाथालय के लिये वारह हजार का दान दिया। शिमला से लौट कर आपने पटियाला मे उच्च शिक्षा के लिये एक कालेज की नींव डाली। जिसका नाम महेन्द्र कालेज रक्खा गया। ६० हजार रुपया सालाना खर्च के लिये मन्जूर किया। पटियाला मे तार वर्की का प्रवन्ध हो जाने के वाद आपने अग्रेज सरकार से सरहिन्द के इलाके मे नहर लाने देने की मजूरी को लिखा पढी की जो काफी कोशिशों के वाद मजूर हो गई। कहा जाता है इस नहर के लाने मे आपको तीन करोड के लगभग रुपया खर्च करना पडा था।

यह कहना हम भूल गये हैं कि कौंसिल के मेवरो की पार्टीवन्दी और स्वार्थपूर्ण नीति से तग आकर महाराज ने कौंसिल को उस दरवार मे ही तोड़ दिया था जिसमे कि खिल्लतें वांटी गई थीं। उस समय उन्होंने एक स्वतन्त्र प्रवन्ध अपनी देखरेख मे रक्खा था। सन् १८७० ई० के नवम्वर मे महाराज महेन्द्रसिंह ने जव कि नारनौल मे भयकर अकाल पड रहा था। अनेकों गाँवों मे घूमकर जमींदारों की हालत का निरीक्षण किया। वहाँ के नाजिम की सलाह के अनुसार साठ हजार रुपया की तकावी वाट ई। एक लाख इकसठ हजार का वकाया मुल्तवी किया। इसके अलावा सोलह हजार की पुरानी रकमे भी माफ कर दीं। लगभग एक महीने का दौरा करके वापिस पटियाला आये। जहां आकर आपने परगनों के प्रवन्ध और मालगुजारी की वसूलयावी के लिये कई सुधार किये।

वगाल के अकाल मे भी महाराज ने वहा के प्रजाजनों की सहायता के लिये सरकार को दस लाख रुपये दिये थे।

सन् १८७४ ई० मे महाराज जव अमृतसर स्नान के लिये गये तो आपने १८ हजार रुपये चढ़ावा चढ़ाया और ५१ हजार रुपया दरवार साहव की भेट के लिये इसलिये दिया गया कि इससे सर्व साधारण के लिये लगर जारी किया जाय। इसी वर्ष आपने मुल्तान की भी सैर की।

सन् १८७५ ई० मे जव प्रिंस आफ वेल्स भारत मे पधारे तो आप उनसे मुलाकात करने के लिये गये और उन्हे राज्य मे आने का निमन्त्रण भी दिया। निमन्त्रण के अनुसार प्रिन्स महोदय पटियाला राज्य के राजपुरा में राज्य के महमान हुये, जहा महाराज ने उनकी यादगार ताजा वनाये रखने के लिये अल्वर्ट-महेन्द्रगंज वनाया।

महाराज की अवस्था इस समय कुछ अधिक नहीं केवल पच्चीस साल की थी। राज्य प्रवन्ध सभाले भी अभी व मुश्किल सात ही साल हुये थे कि अचानक देहान्त हो गया। हालाकि दो तीन महीने से आपकी तवियत खराव रहती थी किन्तु इस वात का किसी को स्वप्न मे भी खयाल न था कि महाराज महेन्द्रसिंह जी इतनी जल्दी संसार से कूच कर जांयगे। इसीलिये इस अचानक मृत्यु से राज्य में कुछ सन्देह भी फैला। अग्रेज सरकार की तरफ से भी जाच हुई किन्तु कोई प्रकरण सन्देह के लायक मिला

नहीं। हा, यह वात अवश्य है कि उन्हे शराव की आदत कुछ स्वार्थी लोगों ने वहुत ज्यादा लगादी थी वे बीमारी के दिनों मे भी शराव पीते थे और शराव ही उनकी जान की गाहक साबित हुई।

इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने इस थोड़े से समय मे भी राज्य के सुधार के लिये काफी प्रयत्न किये थे। तार, डाक, स्कूल और शफ़ाखाना जोकि जमाने की खास जरूरत की चीजें समझी जाती हैं। अपने राज्य में जारी कीं। इसके सिवा नहर लाकर तो प्रजा का भारी उपकार किया। समय-समय पर सार्वजनिक संस्थाओं को भी मुक्तहस्त से दान दिये। कूका आन्दोलन को दवाने का जो उपक्रम सरकार की ओर से था उसमें भी आपने सरकार का साथ दिया। इसे उनका उपकार तो नहीं कह सकते। आपको सरकार की ओर से १६ तोपों की सलामी वजाय १७ के इन्हीं कारणों से होगई थी। जयपुर से आकर मीने आपके राज्य में लूट खसोट करके भाग जाते थे। इसके लिये आपने जयपुर महाराज से कुछ शर्तें तय कीं। जिसके अनुसार मीनों को आपे मारने की सुविधाये नहीं रहीं।

सरकारी क्षेत्रों मे उनकी पूछ होनी ही चाहिये क्योंकि वे अंग्रेजों के प्रत्येक काम को वडी उत्सुकता से पूर्ण कर देते थे। इसके वदले में सरकारी अधिकारी भी उनकी इज्जत करते थे। सतलज के पुल का उद्घाटन आपसे ही अंग्रेज अधिकारियों ने कराया था। देशी राजा रईसों मे भी उनका काफी मेल जोल था और प्रजा तो उनके समय में कभी तग ही नहीं की गई। अत प्रजा मे भी आपके लिये काफी प्रेम था।

केवल चार वर्ष की अवस्था मे युवराज राजेन्द्रसिंह जी अपने पिता की गद्दी पर वैठे। उस समय कोई भारी उत्सव तो नहीं हो सका क्योंकि महाराज महेन्द्रसिंह जी की असामयिक मृत्यु से राज परिवार और सभी हितैपियों में गम की घटायें छाई हुई थीं। राज्य प्रवन्ध एक कौंसिल के सुपुर्द ही किया गया। जिसमें सरदार देवसिंह के० पी० एस० ई० को प्रेसीडेंट वनाया गया। कौंसिल वनाने पंजाव गवर्नर के सेक्रेटरी मि० ग्रिफिन साहव खुद पधारे थे। इससे पूर्व कौंसिल वनने तक का प्रवन्ध भी सरकार की इच्छा के अनुसार ही हुआ था इसके अलावा सरकार ने पटियाला में अपना एक रिपोर्टर भी इसलिये मुकर्रिर कर दिया कि वह राज्य प्रवन्ध और कौंसिल की कार्यवाहियों से सरकार को सूचित करता रहे।

महाराज राजेन्द्रसिंह

कहा जाता है सरदार देवासिंह एक योग्य और राजभक्त व्यक्ति थे। अपनी तनख्वाह के १८००) रुपयों मे से भी २००) राज खानदान के खर्च के लिये छोड़ देते थे। वह अपने अन्य साथी मेंवरों की वरावर ही १६००) माहवार ही लेते थे।

शोक समाप्ति के वाद गवर्नर खुद भी पटियाले आये और गद्दीनशीनी का उत्सव मनाया। इसी वर्ष सरकार ने पटियाला के सिक्के का भी अन्य राज्यों की तरह से ही प्रचलन वन्द कर दिया।

कौंसिल अपने समय में वन्दोवस्त कराकर लगान सिक्कों में लेने की प्रणाली भी चला रही थी। जिससे खजाने मे काफी रुपया वढ़ता जा रहा था।

सन् १८८६ मे महाराज की वहिन का विवाह शहजादपुर के रईस जीवनसिंह जी के साथ हुआ। जिसमें लगभग २० लाख रुपया खर्च हुआ। इसके दो ही वर्ष वाद महाराज का भी विवाह सरदार किशनसिंह मानशाहीए चौकेरियावाले की लड़की के साथ वड़ी धूमधाम के साथ हुआ। महाराज भू[illegible]सिंह जी इन्हीं की कोख से पैदा हुए थे।

सन् १८८७ ई० मे उत्तर-पश्चिम में जो युद्ध हुआ, उसमे महाराज ने अपनी सेना अंग्रेजों की मदद को भेजी। चीन के युद्ध में भी महाराज ने सैनिक सहायता सरकार को पहुँचाई। दक्षिण अफ्रीका

के युद्ध के समय में महाराज राजेन्द्रसिंहजी ने कुछ घोड़े सरकार को दिये थे। इस प्रकार सरकार-परस्ती मे उन्होंने कोई कमी नहीं रहने दी।

सन् १८६० ई० के ३ अक्टूबर को महाराज को राज्य के कुल अधिकार प्राप्त हो गये क्योंकि इस समय तक आप वालिग हो चुके थे। कौंसिल खतम कर दी गई। उन लोगों को आपने पुरुस्कार देकर उनकी वापिसी की। जिन्होंने कि नावालिगी में राज्य की अच्छी सेवा की थी। आपने खलीफा मुहम्मद हसन को अपना वजीर बनाया। सन् १८६५ में खलीफा साहब के मरने पर आपने सरदार गुरदत्तसिंह को वजीर बनाया।

महाराज राजेन्द्रसिंह जी को शिकार और पोलो खेलने का वड़ा शौक था। सूअर और शेर तक का शिकार आप वर्छे से करते थे। आपको शिकार करते देखकर अंग्रेज अफसर हैरान हो जाते थे। पोलो और क्रिकेट मे तो नामी-नामी अंग्रेज खिलाड़ियों को आपने हराया था। लखनऊ, कलकत्ता, वम्वई और पूना तक आप पोलो खेलने के लिये गये थे। और प्राय: सभी जगह जीत आप ही की रहती थी।

आपके एक राजकुमार सन् १८७१ ई० के दशहरा के दूसरे दिन पैदा हुये थे। जव आपको तार द्वारा यह खबर शिमला मे मिली तो पटियाला पहुँच कर खुशी मनाई और कर्मचारियों को खुशी मे वख्शीशें दीं। वहुत-कुछ दान पुण्य किया। यही राजकुमार युवराज भूपेन्द्रसिंह थे। जो कि अपने पिता के वाद राज्य के मालिक बने थे।

भटिंडा राजपुरा रेलवे लाइन भी महाराजा राजेन्द्रसिंह जी के ही समय मे वन गई थी।

सरकार ने सीमांत युद्ध मे सहायता देने के उपलच्त में आपको 'दी पोस्ट अगजाल्टर आफ दी स्टार आफ इंडिया" का खिताव और २१ तोपों की सलामी वजाय १६ के मंजूर की थी और काश्मीर के वाद दूसरी कुर्सी सरकारी दरवार मे आप ही को मुकर्रिर थी। इस प्रकार आपने काफी इज्जत वढ़ा ली थी।

आपके समय मे राज्य मे आठ हजार सेना थी जिसे आपने अंग्रेजी तरीके पर सैनिक शिक्षा दिलाई थी।

आपने अपने समय में पंजाव विश्व विद्यालय को ५५०००), अमृतसर खालसा कालेज को १६२०००), इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट लन्दन को ३००००) रुपये दान दिये थे।

आपके संवन्ध में कहा जाता है कि आप एक दयावान नरेश थे। जव आपके सामने किसी मुलाजिम को अलग करने के कागजात पेश होते तो आप बड़े पशोपेश मे पड़ते और उस समय तक किसी को नहीं निकालते जब तक कि उसके सम्वन्ध में खास शिकायते नहीं होतीं।

आपने अपने समय मे खेती की ओर भी यथा सभव ध्यान दिया। रियासत के प्रवन्ध में भी सुधार किये। राज्य मे अंग्रेजी ढग के कायदे कानून प्रचलित किये। अपील के लिये व्यवस्थित अदालते कायम कीं। इन सब बातों को मिलाकर देखते है तो अपने समय के अनेकों राजा महाराजाओं से आप योग्य और अच्छे शासक थे।

सन् १६०७ ई० मे केवल १७ वर्ष राज्य करके और ठीक भरी जवानी मे कुल सत्ताईस वर्ष की आयु मे आपका स्वर्गवास हो गया। आपके देहावसान का शोक समस्त राज्य और सिख-समाज मे मनाया गया। उस समय आपके उत्तराधिकारी युवराज भूपेन्द्रसिंह भी नावालिग ही थे।

महाराजा राजेन्द्रसिंहजी के स्वर्गवास के बाद उनके राजकुमार भूपेन्द्रसिंह जी गद्दी पर बैठे।

महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी की अवस्था उस समय केवल १६ साल की थी। इसलिये राजकार्य फिर कौंसिल द्वारा ही संचालित होने लगा। जो कि ढाई वर्ष तक चला।

महाराज भूपेन्द्रसिंह महाराज भूपेन्द्रसिंह जी ने एटकिन्सन चीफ कालेज लाहौर में शिक्षा पाई थी। सन् १६०३ ई० में जब कि कोरोनेशन दरबार हुआ। ग्रेण्ड रिव्यू दिखलाने के लिये अपनी फौज को ले गये। उसी समय तत्कालीन गवर्नर जनरल कर्जन के साथ आपकी मुलाकात हुई। युवराज जार्ज पंचम से भी जब कि वे लाहौर पधारे थे आपने भेंट की थी।

सन् १६०५ ई० में आपने खालसा कालेज लाहौर के वास्ते एक लाख इसलिये दिया था कि इस रुपये से विदेशों मे शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को कालेज सहायता दे।

सन् १६०८ ई० में जीन्द के एच० के० सेनापति की सुपुत्री के साथ आपका विवाह हुआ। और ३० सितम्बर सन् १६०६ ई० में जब कि आप अठारह वर्ष के हो चुके थे सरकार ने आपको शासनाधिकार प्रदान किये। क्रिकेट के आप बड़े प्रसिद्ध खिलाड़ी थे सन् १६११ ई० मे भारतीय क्रिकेट टीम के आप कप्तान होकर विलायत गये थे। दुबारा आप विलायत बादशाह जार्ज पचम के अभिषेक मे पधारे थे। दिल्ली में जब बादशाह के तिलकोत्सव का दरबार जुडा था तो आप उसमें भी शामिल हुये थे इसी दरबार मे आपको सम्राट की ओर से जी० सी० एस० जार्ज का खिताब मिला था। इस यात्रा मे आपके साथ महारानी साहिबा भी थीं जिन्होंने कि भारतीय राजरानियों की हैसियत से सम्राज्ञी मेरी को मानपत्र भेंट किया था।

सन् १६१४ ई० में जिस समय जर्मन युद्ध आरम्भ हुआ उस समय आप भारत की ओर मे इम्पीरियल-वार कन्ट्रोलस मे शामिल हुये थे और फिर युद्ध मे आपने अपनी समस्त सेना अंग्रेजों के हवाले कर दी थी। साथ ही उन दिनों आपने पुर्तगाल, इटली, फ्रांस, जहा भी युद्ध क्षेत्र था वहाँ भ्रमण किया। इन सेवाओं के बदले मे सम्राट् की ओर से आपको सी० ओ० बी० ई० की उच्च उपाधि मे विभूषित किया गया। शाही दरबारों मे अब तक पटियाला नरेशों की ओर से नजर देने का रिवाज था। इस समय से सरकार ने उसे भी बन्द कर दिया। मेजर जनरल की रैंक का सम्मान भी आपको प्राप्त हुआ था। नियमित रूप से पटियाला के नरेशों के लिये १७ तोप की सलामी थी किन्तु इस समय से १६ तोप की कर दी गई।

आपने शहर पटियाला मे गर्ल्स स्कूल, लेडी हार्डिंङ्ग, नर्स पाठशाला, विक्टोरिया मेमोरियल और पूअरहाउस की स्थापना भी की थी। शंहर की सफाई के लिये महकमा सफाई की भी स्थापना की थी।

राजकीय महकमों मे आपके समय मे उचित परिवर्तन हुआ जिनमे अंग्रेजी ढंग का काफी समावेश किया।

सन् १६२७ ई० में आपने घोषित किया कि हम जाट नहीं हैं राजपूत हैं। और इस राजपूत बनने की धुनि मे जामनगर मे जाकर हाथी भाई नामक के पंडित से आपने सस्कार कराया। हम तो समझते हैं महाराजा साहब ने अपने जीवन में यह सबसे बड़ी भूल की थी। कारण कि अमृत छकते ही कोई भी आदमी हो वह 'सिंह' और 'खालसा' बन जाता है। खालसा के अर्थ होते हैं विशुद्ध, पवित्र और गन्दगी रहित। आग मे तपाने के बाद लोहा जिस प्रकार विकार रहित हो जाता है उसी प्रकार अमृत चखने के बाद कोई भी मनुष्य चाहे वह किसी भी जाति और धर्म का हो 'खालसा' हो जाता है। खालसा को फिर क्या आवश्यकता रहती है कि वह अपना कोई दूसरा सस्कार करावे। वैसे जाट भी तो क्षत्रिय ही

हैं। राजपूत और जाटों मे इसके सिवा क्या अंतर है कि जाट विधवा विवाह करते हैं और वे खान-पान और ऊंच नीच के भेद भाव को बहुत कम मानते हैं। यह रिवाज पुराने समस्त क्षत्रिय वंशों में थे। सिखों की लड़कियाँ गैर सिखों मे यथा सभव नहीं जानी चाहिये और जानी भी चाहिये तो उन्हीं लोगों में जो सिखों से सामाजिक रीति-रिवाज और रहन-सहन में बहुत पास हों और ऐसे जाट ही हैं फिर भी महाराज ने उन लोगों से लड़कियों के व्यवहार करने की भी चेष्टा की जो सिख धर्म और सिख रस्म रिवाज से बहुत दूर थे। लोगों का कहना है कि राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं ने उन्हे राजपूत बनने के लिये बाध्य किया था ख़ैर कुछ भी हो।

इसमें संदेह नहीं वे हिंदुस्तान के राजाओं मे एक ऊँचे दर्जे के राजनीतिज्ञ थे। गोलमेज कांफ्रेस मे भी पधारे थे और भारत की स्वराज्य की माग का समर्थन करते हुए राजाओं का भी एक दृष्टिकोण पेश किया था। किन्तु उन्होंने अपने आचरण से प्रजा मे और बाहर भी एक गहरा असन्तोष पैदा कर दिया था। उन्होंने शादियाँ भी कई कीं।

इससे पहले उनके समय मे महाराजा नाभा के केस को लेकर कुछ अप्रिय घटनाये हुईं जिनमे स्वार्थी लोगों ने आप मे और महाराज रिपुदमनसिंह जी मे मेल नहीं होने नहीं दिया।

नरेंद्र मडल के वायस चासलर आप कई वर्ष तक रहे। फेडरेशन मे न शामिल होने का राजाओं की ओर का जो आदोलन था। उसे आपही की नीति से बल प्राप्त हुआ था।

आपके समय में आपके राज्य मे भी राजनैतिक जागृति प्रजा के लोगों मे हुई जिसे दबाने मे आपने सफलता प्राप्त की। सरदार सेवासिंह की जेल मे होने वाली मौत से आपके प्रति जनता के हृदय मे कटुभाव उत्पन्न हुए थे किंतु समस्त सिख समाज आप से एक दम नाराज हुआ हो ऐसा दिखाई नहीं दिया। कारण कि सिख संस्थाओं को दान देने मे आप सदैव अग्रणी रहते थे।

सन् १९२६ ई० में अखिल भारतीय जाट महासभा ने आपको सभापति बनाना चाहा था। इसके बाद सन् १९३६ ई० में रैवाड़ी के राजपूत महासभा के आप प्रधान चुने गये थे किंतु वहाँ के लोगों की पार्टी बदी और अपने स्वास्थ्य की खराबी के कारण आप उसमे शामिल न हो सके थे।

इतिहास की खोज के लिये आपने एक इतिहास विभाग भी राज्य की ओर से स्थापित किया था। जिसमे अन्य कई कार्यकर्ताओं के अलावा ठाकुर किशोरसिंह जी वारठ को भी रक्खा था किंतु पीछे राजपूतों के आन्दोलन पर महाराज ने उन्हे अलग कर दिया। राजपूत वारठजी से इसलिये नाराज हो गए थे उन्होंने राजपूतों के सम्बध मे कलकत्ते के किसी समाचार पत्र मे कुछ खरी-खरी बाते लिखी थीं।

महाराज भूपेन्द्रसिंह जी के समय मे राज्य कोष की वृद्धि तो नहीं हुई क्योंकि वह खर्चीले राजाओं मे से थे। उनसे स्वार्थी और चलते लोगों ने लाभ भी काफी उठाया।

उन्होंने अपने समय बहुत सा रुपया दान दिया था जिसके कुछ आकडे इस प्रकार हैं—

मिन्टो मेमोरियल फड ५०००), कांगडा रिलीफ फंड १००००), किंग मेमोरियल फड २०००००), खालसा कालेज अमृतसर एण्डोमेंट फड ६०००००), लेडी हार्डिङ्ग मेमोरियल १२५०००), लेडी हार्डिङ्ग मेडिकल कालेज २०००००), सिख कन्या महाविद्यालय फीरोजपुर १००००), सिख धर्मशाला लंदन १२००००), तिव्बिया कालेज देहली २५०००), हिंदू यूनिवर्सिटी बनारस ५०००००) एकमुस्त और २००००), प्रति वर्ष, युद्ध सम्बधी सहायता १५००००००) और प्रजा से सग्रह करके फंड ऋण मे ३५००००)। यह तो सन् १९३३ के आकडे हैं इसके बाद भी उन्होंने क्षयनिवारक फड, बाढ़ फंड, न जाने किन-किन मदों मे

लाखों रुपये दान व सहायता में दिये।

आपको जो-जो उपाधियाँ सरकार की ओर से दी गई थीं उनकी सूची काफी लम्बी है। जी० सी० आई० ई०, जी० सी० एम० आई० जी० सी० वी० ओ० आदि हैं।

अंतिम समय मे आपने एक महत्वपूर्ण घोषणा की थी वह आपको सदैव अमर रक्खेगी वह थी प्रजा को अधिकारों की देन के लिये एक दायित्वपूर्ण सस्था के निर्माण की। जिसके लिये आपने एक कमीशन भी मुकर्रिर कर दिया था।

सन् १६३८ ई० मार्च के महीने की २३ वीं तारीख को महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी के स्वर्गवास के बाद उनके बड़े राजकुमार यादवेन्द्रसिंह जी पटियाला के महाराजा घोषित हुये। महाराजा यादवेन्द्रसिंह का राज्याभिषेक उत्सव बड़े ही समारोह के साथ हुआ। जिसमें प्रतिष्ठित राजा रईस

महाराज यादवेन्द्रसिंह और अंग्रेज अधिकारियों ने शामिल होकर शोभा को दुगुणित किया। महाराज यादवेन्द्रसिंह जी ने इस उत्सव के समय जो घोषणा की वह लोकमत को आनन्दित करने वाली थी। आपने रिश्वत और राजकीय कामों मे पक्षपात को दूर करने और प्रजा के हितों पर ध्यान रखने की घोषणा से प्रजा की वृत्तियों को एक दम अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

संक्षेप में आपका अब तक का जीवन विवरण इस प्रकार है। सन् १६१३ ई० की १७ वीं जनवरी को आपका जन्म हुआ। जब कि आप बालक ही थे। महाराज भूपेन्द्रसिंह जी ने अपनी खुद की निगरानी में आपकी शिक्षा के लिये एक हिन्दुस्तानी ट्यूटर नियुक्त किया। महाराज भूपेन्द्रसिंह जी की आपके लिये प्रबल इच्छा थी। एक योग्य नेता और शासक बनें। जब आप सयाने हुये तो आपको एचसन कालेज लाहौर मे दाखिल कराया। जहाँ आपने मि० ए० सी० सोलज की गार्डियन-शिप में बड़ी लगन से शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद आपने चीफस कालेज का डिप्लोमा प्राप्त किया। आपके स्वभाव और बुद्धिमानी की प्रोफेसर प्रिंसपल और साथी सभी सराहना करते हैं। पढाई के साथ ही आप क्रिकेट के खेलो मे भी अग्रसर थे।

सन १६३० ई० की पहली गोलमेज सभा मे आप अपने पिता के साथ लन्दन पधारे थे। उधर आपने अन्य यूरोपीय देशों की भी सैर की।

वहाँ से वापिस आकर आप फिलौर के पुलिस ट्रेनिंग स्कूल मे दाखिल हुये। जहाँ आपने पुलिस सम्बन्धी कानून और कायदों का अध्ययन किया।

पुलिस ट्रेनिङ्ग पाने के बाद आपने सुपरिंटेन्डेन्ड और इन्सपेक्टर जनरल पुलिस के पदों पर रहकर अपनी क्रियाशीलता का परिचय दिया। डाकुओं का भी दमन इस ड्यूटी के समय में आपने बड़ी दिलचस्पी के साथ किया।

सन् १६३५ ई० मे आप फौजी शिक्षा मे निपुण होने के लिये कोयटा गये। जहॉ कि भूचाल आगया था। आपके साथ एक सिख रेजिमेंट भी थी। आपने वहॉ बड़ी मुस्तैदी और हिम्मत के साथ निजी तौर पर भूचाल सम्बन्धी सहायता के सरकारी कामों मे भाग लिया। जब वहॉ हैजा फैला तो महाराज भूपेन्द्रसिंह जी ने आपको वापिस पटियाला बुला लिया।

सन् १६३६ ई० मे आपको महक्मा जगल के सेक्रेटरी का चार्ज मिला, जिसे आपने बड़ी रुचि के साथ पूरा किया। पहाड़ी इलाके से मंगवा कर आपने अनेक किस्म के फल फूलदार वृक्ष पटियाला के सरकारी बगीचों मे लगवाये।

इसके बाद आपके पास महकमा सदावर्त भी आया। बाढ़ सहायक समिति, कोटा भूचाल सहायक समिति आदि मे आपने प्रमुख की हैसियत से काम करके पहिले ही यह साबित कर दिया कि सार्वजनिक कार्य्यों की ओर आपकी रुचि है।

गरीबों के लिये आपके हृदय मे बराबर ख्याल रहता रहा है। एक बार अस्पताल मे अचानक पहुँच कर आपने देखा कि गरीब लोगों की चिकित्सा पर डाक्टर लोग कोई ध्यान देते हैं या नहीं।

क्रिकेट के आप जन्मजात खिलाडी हैं। आस्ट्रेलियन टीम जोकि एक प्रसिद्ध टीम है उसके साथ आपने खेल मे सफलता प्राप्त करके प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस समय आपने पटियाला मे एक खेल घर बनाने का आयोजन भी किया हुआ है।

आप सार्वजनिक जीवन से दूर भागने वाले रईसों मे से नहीं हैं। उसका अध्ययन करते हैं और जो रुचि के अनुकूल होते हैं। उसमे भाग भी लेते हैं। जातीय संस्थाओं की ओर आपका ध्यान रहता है।

मार्च सन् १९३८ आपके पिता महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी के देहावसान के बाद आपको जब अधिकार मिल गये। तब से तो आप बडी सलग्नता से कार्य करते रहे हैं। प्रजा को बिना किसी मजहबी और कौमी भेद भाव के इन्साफ और नौकरिया मिले इस बात पर तो आप पूरा जोर देने रहे हैं।

सन् १९५८ के अगस्त महीने की १५ तारीख को आपने अपनी दूसरी शादी प्रसिद्ध सिख नेता सरदार हरजानसिंह जी जेजीवालों की सुपुत्री के साथ की थी। वह महारानी सुशिक्षित और उदार खयालों की हैं। इस शादी से सिखों के अंदर बड़ी प्रसन्नता पैदा हुई। सरदार हरजानसिंह जी मान गोत के जाट सिख थे। और सार्वजनिक कामों मे बराबर भाग लेते थे।

उसी वर्ष दशहरा (३-१०-१९३८) के दरबार मे जिसमे कि पजाब सरकार के प्रधान मन्त्री सर सिकन्दरहयातखा कृषिमत्री सर सुन्दरसिंह मजीठिया और सिखों के प्रमुख लीडर मास्टर तारासिंह जी एव सरदार निरजनसिंह जी और ज्ञानी करतारसिंह जी आदि अनेकों सज्जन और जागीरदार एव रईस इकट्ठे हुये थे। महाराज ने एक लोकोपयोगी घोषणा करके लोक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। जिस किसी भी विवेकशील आदमी ने इस घोषणा को पढ़ा है उसी के मुंह से निकला कि पटियाले के वर्तमान महाराज नवयुवक भारतीय राजाओं मे अपना एक विशेष स्थान कायम करने वालों मे साबित होंगे।

इस दशहरे मे दो लाख जन-समूह इकट्ठा हुआ था और शहर को प्रजाजनों ने बडे ही उत्साह से सजाया गया था। जुलूस को देखने वालों का कहना है कि यह समारोह अभूतपूर्व था। महाराज के वजीर सर लियाकतहयातखा जोकि सर सिकन्दरहयातखा के भाई थे—ने प्रबन्ध करने और आगन्तुक जनों का स्वागत-सत्कार कराने मे बडी दिलचस्पी से भाग लिया था।

इस प्रसिद्ध दरबार में महाराजा यादवेन्द्रसिंह जी द्वारा जो घोषणा हुई उसका सार इस प्रकार था—

(१) प्रजा की बहतरी और खुशहाली के कामों में मैं पूरी तरह से दिलचस्पी लूंगा। यह प्रजा विश्वास रक्खे।

(२) मैं अपनी समस्त प्रजा को बिना किसी मजहबी भेद-भाव के एकसा देखता हूँ और सब ही प्रजाजनों के लिये मुलाजमतें और इंसाफ मेरी सरकार द्वारा एकसा मिलेंगे।

(३) प्रजा की भलाई की मुझे हर समय फिकर है। इस समय भी मेरे सामने प्रजा-रंजन की

पटियालाधीश श्री यादवेन्द्र सिंह जी

(श्री मथरादास सेक्रेटरी राजप्रमुख के सौजन्य से प्राप्त)

कई योजनायें हैं।

(४) हमें अनुभव हुआ है कि प्रजा के स्वास्थ्य की ओर और भी कदम बढाया जाय। अत कुछ अधिक डिस्पेन्सरियां राज्य मे खोली जांयगी और चलते-फिरते अस्पताल का भी प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जायगा।

(५) प्रजा की आर्थिक उन्नति और उद्योग-धन्धों की वृद्धि के लिये भी हमारे सामने योजनायें हैं। यह बताने मे हमे खुशी है कि राज्य मे सीमेंट का कारखाना भी खोला जायगा। जिसमें हजारों लोगों को रोजगार मिल सकेगा। सीमेंट के कारबार को चलाने के लिये एक कम्पनी कायम की जायेगी। सम्पन्न लोग उसके हिस्से खरीद कर लाभ उठा सकेंगे।

(६) कर्जे की समस्या भी हमारे सामने है। राज्य में ६६ फीसदी खेतिहर हैं वे लोग बुरी तरह कर्जे से दबे हुये हैं उनके उद्धार के लिये भी कोई तदबीर निकाली जायगी।

(७) इलाका नारनौल मे इस वर्ष चारे की भारी कमी है। इसलिये रेलवे से चारा लाने की सहूलियत के लिये रेलवे का चारा लाने सम्बन्धी भाडा कम करा दिया गया है। रेलवे को जो घाटा इस प्रकार होगा उसे राज्य पूरा कर देगा।

(८) हमारे सामने नौली, भवानीगढ़, पटियाला और धनोर के इलाकों की शिकायत थी कि मालगुजारी उधर के जमींदारों पर ज्यादा है। हमने नजरसानी करके भवानीगढ और नौली के चक में मालगुजारी की रकम में २६ फीसदी कमी करदी है। और पटियाला और धनोरा में इस समय तो पुराने बकाया के ३०६१८) माफ करते हैं और मालगुजारी मे किस प्रकार कमी की जाय यह प्रश्न विचारार्थ है।

(९) प्रजा की भलाई के कामों सम्बन्धी जानकारी हासिल करने के लिये हम इसी शरद ऋतु मे राज्य का दौरा करेंगे।

(१०) स्वर्गवासी महाराज ने जो कानूनी सुधारों के लिये कमेटी कायम की थी वह तत्सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर रही है। हम अवश्य ही राज्य मे राजनैतिक सुधार देखना चाहते हैं।

(११) इस अवसर पर १०१ कैदियों को रिहा किया जारहा है साथ ही समस्त राजनैतिक कैदियों को भी छोड़ा जारहा है जो लोग बाहर भागे हुये हैं उन्हे भी मुक्त किया जाता है।

(१२) जिन लोगों ने राज्य की भलाई मे दिलचस्पी से भाग लिया है उन समस्त सरकारी कर्मचारियों का हम धन्यवाद करते हैं और उनमे से अनेकों को इनाम इकराम भी दिये जाते हैं।

अपने शासन-काल मे महाराज यादवेन्द्रसिंह काफी प्रगतिशील साबित हो रहे थे। यही कारण है कि जब सरदार पटेल ने रियासतें समाप्त कीं तो आपको पेप्सू राज्य का राज-प्रमुख नियुक्त किया। और आपका पटियाला राज्य भी पेप्सू मे शामिल कर दिया गया।

चौबीसवाँ अध्याय

कलसिया राज्य का इतिहास

कलसिया जिला अम्बाला मे एक छोटा-सा सिख-राज्य है। पहले तो यह राज्य भी बहुत बड़ा हो गया था, किन्तु उस समय की परिवर्तनकारी हलचलोंमे इसका बहुत बड़ा भाग निकल गया। इस समय इसका क्षेत्रफल लगभग १७० वर्गमील है सालाना आमदनी १९९७२५) बताई जाती है। राज्य की कुछ भूमि जिला फीरोजपुर में भी है। इस राज्य के ककरौली और बसी मुख्य नगर हैं। आबादी ६७१८१, सैनानी १२५ के करीब हैं।

जिस जाति के महान वीरों ने इस राज्य की स्थापना की वे सिन्धू जाट थे। सिन्धू भारत का अति प्राचीन राजघराना है। महाभारत काल मे सिन्धू लोगों का राजा कौरवों की ओर से लड़ा था। सिकन्दर के समय मे भी सिन्धुओं का सिन्ध मे स्वतन्त्र राज्य था। यह चन्द्रवशी क्षत्रिय है। अधिक खोज करने से इनकी वशावली का सिलसिला उन राजाओं तक पहुँच सकता है जिन्होने भारत मे एक समय अच्छी ख्याति प्राप्त की थी और जो पच्छिमी भारत के एक लम्बे समय तक शासक रहे थे।

कलसिया राज्य के सस्थापक सरदार गुरुबख्शसिंह जी ने किरोड़ा मिसल के साथ पुन. उत्थान किया था। पजाब के बरकियां गॉव का बहादुर सरदार करोड़ासिंह जिस सिख जत्थे के साथ रहता था। उसके प्रमुख शामसिंह और कर्मसिंह थे। इनके दल मे बारह हजार जवान रहते थे। और इन्होंने लगभग दस लाख के इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया था। सन् १७४० ई० में नादिरशाह से मुठभेड़ करते हुये सरदार शामसिंह तो काम आगये।

सरदार गुरुबख्शसिंह

कर्मसिंह ने ६ वर्ष के अर्से में जालधर मे इतनी उन्नति की कि जालन्धर को अपनी राजधानी बनाने में समर्थ हुआ। सन् १७४६ मे दुर्रानियों से लड़ता हुआ यह भी खतम हुआ। तब इस मिसल की बागडोर करोड़ासिंह के हाथ आई और उसी के नाम पर इस मिसल का नाम किरोड़ा मिसल पड़ गया। सरदार गुरुबख्शसिंह ने किरोडा मिसल मे शामिल होकर उन सब लड़ाइयो मे भाग लिया जो किरोड़ासिंह के बाद सरदार बघेलसिंह ने लड़ी थीं। बघेलसिंह को इस मिसल की सरदारी सन् १७६१ ई० मे प्राप्त हुई थी। बघेलसिह धारीवाल गोत का जाट सिख था।

माझा के सिखों ने इससे एक वर्ष पहले होशियारपुर के मुसलमान गवर्नर से बम्बोली को छीना था। उस लड़ाई में सरदार बघेलसिंह और गुरुबख्शसिंह दोनों ही शामिल थे।

आगे चलकर हमें यह दिखाई देता है कि इस मिसल के ये दोनों सरदार अपने-अपने लिये अलग-अलग इलाके कायम करने में लग गये थे। होशियारपुर जिले में सरदार बघेलसिंह और अम्बाला में सरदार गुरुबख्शसिंह अपनी-अपनी रियासतें बनाने लगे। यह भी मालूम होता है कि सरदार गुरुबख्शसिंह जी का देहावसान सरदार बघेलसिंह से पहले ही हो गया था। बघेलसिंह सन् १८०२ ई० में मृत्यु को प्राप्त हुआ। बघेलसिंह का राज उसकी दोनों विधवाओं ने आपस में बाट लिया। रामकौर ने जिला होशियारपुर में दो लाख के इलाके पर कब्जा कर लिया। और रतनकौर ने छलोदीवाले तीन लाख के इलाके पर अधिकार जमा लिया।

सरदार गुरुबख्शसिंह जी के सुपुत्र जोधसिंह ने अपने बाहुबल से अम्बाला के उत्तरी भाग में कुछ भू-भाग अपने कब्जे में कर लिया था। यह वही भू-भाग थे जो आजकल कलसिया इलाके में शामिल हैं। सरदार बघेलसिंह के मरने के बाद सरदार जोधासिंह ने महाराजा रणजीतसिंह के पास यह सवाल पेश किया कि बघेलसिंह जी का सारा इलाका मेरे और उनके उत्तराधिकारियों के बीच बटना चाहिये। महाराजा रणजीतसिंह जी ने सन १८०६ ई० में रतनकौर के पास पहुँच कर उसके इलाके में से एक लाख का 'बुरढीन' वाला इलाका सरदार जोधासिंह जी को दिला दिया। इस तरह यह निपटारा हुआ। बमी, छिछरौली और चिराक के इलाके के सिवाय भी बहुत सारे इलाके सरदार जोधासिंह ने अपने कब्जे में कर लिये थे जो पीछे निकल गये। एक समय था कि जोधासिंह के अधीनस्थ इलाकों की आमदनी लगभग पाच लाख सालाना थी और उनका दरजा महाराजा पटियाला की बराबरी का समझा जाता था। नाभा पटियाला के झगड़ों में उन्हें पंच बनाया जाता था। सभी फुलकियन सरदार उनसे सलाह लेते थे।

सरदार जोधासिंह

सन् १८०७ ई० में जब नारायणगढ़ पर महाराजा रणजीतसिंह जी ने हमला किया था, उस समय सरदार जोधासिंह जी उनके साथ थे। इसके अलावा कई मुहासिरों में उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी का साथ दिया था। महाराजा रणजीतसिंह जी ने भी इनको बदालाम्बरी और शामचपल के इलाके दिये थे।

इनके रुतबा और बहादुरी का पता इसी से चलता है कि तत्कालीन महाराजा पटियाला ने इनके साथ दोस्ती करने के हेतु इनके द्वितीय पुत्र सरदार हरीसिंह के साथ अपनी सुपुत्री की शादी की थी।

सन् १८१८ ई० में जब महाराजा रणजीतसिंह जी ने मुल्तान विजय के लिये सेनायें भेजीं तो सरदार जोधासिंह जी को उनका सेनापति बनाया गया। वे बड़ी बहादुरी के साथ मुलतान के पठानों से लड़ते हुए काम आये। इस युद्ध में अनेकों मुसलमान रईस इकट्ठे हो गये थे और उन्होंने सयुक्त मोरचा लिया था।

अपने पिता के बाद सरदार शोभासिंह जी अपनी रियासत के मालिक हुए। इन्होंने पटियाला के राजा कर्मसिंह की देखरेख में कुछ समय बिताया था और उनसे इनका मेल-जोल भी काफी था।

सरदार शोभासिंह

सरदार शोभासिंह जी को सन् १८२१ ई० में सतलज के उत्तर के कुछ इलाके अंग्रेजों को दे देने पड़े। चूंकि अंग्रेजों की अधीनता तो सन् १८०६ में सरदार जोधासिंह ही फुलकियन स्टेटों की भांति स्वीकार कर चुके थे। खिराज का बोझ हल्का करने के लिये इन इलाकों को सरदार शोभासिंह जी ने लाहौर दरबार को देकर अपना पिंड छुडाया। और अपने राज्य को एक प्रकार से लाहौर दरबार से स्वतन्त्र ही कर लिया।

जब अंग्रेजों की लड़ाई खालसा सेनाओं से हुई तो सरदार शोभासिंह जी ने दोनों लड़ाइयों में अन्य सिख राजाओं की भांति अंग्रेजों ही की मदद की और गवर्नर जनरल की इच्छा के मुआफिक आपने अपने राज्य से राहदारी महसूल भी उठा दिया। जिसके एवज में २८५१) सालाना सरकार ने आपके राज्य को क्षति-पूर्ति में देना स्वीकार किया।

सन् १८५७ ई० के गदर में शोभासिंह और उनके पुत्र लहनासिंह जी ने अंग्रेजों की यथा सामर्थ्य से भी कहीं अधिक मदद की। राज्य की ओर से एक सौ सैनिक तो दिये ही इसके अलावा खुद भी कई स्थानों पर सहायता के कामों में मौजूद रहे। देहली के ऊपर नावों के पुल की रक्षा करने, कालका, अम्बाला और फीरोजपुर की सड़कों पर अंग्रेज स्त्री बच्चों को बचाने और दादूपुरे में थाना कायम करके वहां के उपद्रव को दबाने आदि के कामों में आपने पूरा सहयोग दिया।

इसके बदले में सरकार द्वारा आपके राज्य की गारण्टी और अधिकृत इलाकों पर पीढ़ी दर पीढ़ी का स्वामित्व और गोद लेने के अधिकार प्रदान किये गये। इस मदद से कलसिया एक राज्य और उसके अधिपति राजा मान लिये गये और उन्हें फांसी के अलावा राज्य के आंतरिक प्रबन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई।

सती की प्रथा कन्यावध की कुरिवाज और स्त्रियों का क्रय-विक्रय आपने अपने राज्य में उसी प्रकार उठा दिया जिस प्रकार कि पंजाब की अन्य रियासतों ने।

गदर समाप्ति के अगले वर्ष ही आपका देहान्त हो गया और आपके बाद लहनासिंह जी कलसिया रियासत के राजा हुये जोकि आपके ज्येष्ठ पुत्र थे। सन् १८६२ ई० में आपको सरकार की ओर से ऊपर लिखे हुये अधिकारों की सनद प्राप्त होगई। आप दो भाई थे। दूसरे का नाम मानसिंह था। मानसिंह जी के दो पुत्र जगजीतसिंह और राजेन्द्रसिंह हुये। आपके पुत्र का नाम किशनसिंह था।

सरदार लहनासिंह

सन् १८६९ ई० में केवल दस वर्ष राज्य करने के बाद ही राजा लहनासिंह जी का देहावसान हो गया। उन्होने अपने समय में राज्य का सुप्रबन्ध करने की कोशिश की फिर भी व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं हो पाई।

लहनासिंह जी के बाद उनके पुत्र किशनसिंह जी गद्दी पर बैठे। इन्हें महाराज जींद की राजकुमारी ब्याही गई थीं। जिनसे दो पुत्र पैदा हुये। जगजीतसिंह और रनजीतसिंह। बड़े जगजीतसिंह जी का सन् १८७६ ई० में केवल सात वर्ष की ही उम्र में देहान्त हो गया था। किशनसिंह जी के सम्बन्ध अपने चचेरे भाइयों के साथ अधिक मधुर न थे। राज काज के मामले में किशनसिंह जी जींद की नकल पर अपने यहाँ सुधार करने के इच्छुक थे किन्तु उनका समय से पहले ही देहान्त हो गया।

राजा किशनसिंह

किशनसिंह जी के देहान्त होने के बाद उनके छोटे लड़के रनजीतसिंह जी कलसिया राज्य के मालिक हुए किन्तु उस समय उनकी उम्र काफी नहीं थी। नाबालिग थे अत सरकार ने राज्य प्रबन्ध के लिये तीन आदमियों की एक कौंसिल बनादी। इस कौंसिल ने राज्य की जमीन का बन्दोबस्त कराया और बाकायदा रियासतों जैसे महकमे कायम किये। न्याय, माल और शिक्षा विभागों की स्थापना की। जमीन की उपज और अच्छाई बुराई के हिसाब से जमीन पर कर बँधाया। गाँवों की हालत की ओर भी ध्यान दिया। इस कौंसिल ने राज्य के

राजा रणजीतसिंह

मादक द्रव्यों का ठेका सरकार को ६०००) रुपया सालाना पर दे दिया। टैक्सों और लूट-खसोटों से कलसिया राज्य की प्रजा की काफी दुरावस्था हो गई थी। इसे भी सुधारने का आयोजन कौंसिल ने किया।

सन् १६०६ ई० में राजा रनजीतसिंह जी को राज्य के कुल अधिकार मिल गये। किन्तु खेद है वे केवल दो ही वर्ष शासन करके सन् १६०८ ई० में इस संसार से चल बसे। आपकी एक पुत्री का विवाह मुरसान-बल्देवगढ़ के राजा के साथ हुआ था।

राजा रविशेरसिंह अपने पिता के देहावसान के समय राजा रविशेरसिंह जी की अवस्था भी कुल ६ वर्ष थी इसलिये कमिश्नर देहली की देख रेख में एक कौंसिल की स्थापना की गई। जो आपके बालिग होने तक बराबर राज्य का प्रबन्ध करती रही। जब रियासतें समाप्त हुई और पंजाब की रियासतों का संघ बना तो कलसिया राज्य, पेप्सू संघ में मिला दिया गया।

पच्चीसवाँ अध्याय

सिख-जागीरों का इतिहास

वर्तमान समय में सिखों में सैकड़ों छोटे-मोटे जागीरदार हैं। जिनमे से कुछ तो पेप्सू रियासत के अन्तर्गत है और कुछ पजाब के अन्दर। किन्तु प्राय. सभी सिख जागीरदार पंजाब मे ही हैं। कुछ यू० पी० मे भी हैं किन्तु यू० पी० मे जितने भी जागीरदार है महाराज रणजीतसिंह जी के रिश्तेदारों, दोस्तो और सरदारों मे से हैं जिन्हें महाराजा रणजीतसिंह के बाद अपना दखल जमाने के लिये पंजाब से बाहर निकाल देना उचित समझा था और जिनके गुजारे के लिये कुछ जमीन वहाँ बता दी थी अथवा फिर उन्होंने गदर के समय अग्रेजों की मदद की थी।

सिख जागीरदारों का सबका एक-सा ही इतिहास हो, ऐसी बात नहीं है। इनमे से कुछ तो उन बहादुरों के उत्तराधिकारी हैं जिन्होंने मिसलों के समय मे अपना खून बहा कर कुछ जमीन (इलाकों) पर कब्जा कर लिया था और महाराजा रणजीतसिंह, फूलवश और अग्रेजों की चपेटे खाते-खाते किसी भी रूप से बच रहे। कुछ ऐसे है जिन्होंने महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ मुस्लिम सत्ता को नष्ट करने मे अपना सर्वस्व बलिदान किया था उसके बदले मे महाराज ने उन्हे कुछ इलाके दे दिये थे और फिर अग्रेजों की सेवा-शुश्रूषा से अपने को बचाने मे भी समर्थ हो सके थे। कुछ वे है जो वर्तमान सिख राज्यों के ही छुट भइये हैं। जिन्हे या तो वहां के नरेशों ने ही या अग्रेजों ने राज्य के कुछ भू-भाग पर स्वत्व दे-दिला दिये थे। एक वे भी हैं जो अग्रेज सरकार की ही कृपा से बने है। इन सब के अलावा गुरुओं के खानदान के भी कुछ लोग जागीरदार हैं जिन्हे सिख राजों, मुस्लिम हाकिमों और अग्रेज सरकार सभी से कुछ न कुछ मदद जागीरदार बनने और बने रहने मे मिली है।

सक्षिप्त तौर से हम कुछ जागीरदारों का इतिहास यहाँ जिनके कि सम्बन्ध मे जिक्र करना अत्यावश्यक समझते है—दे रहे हैं।

भगो वाला

यह खानदान कहिलान कहलाता है जो कि इसी नाम के एक प्रसिद्ध जमीदार के नाम पर मशहूर हुआ है। कहिलान की ग्यारहवीं पीढ़ी मे भागसिंह या भगो पैदा हुये। वह पंजाब के गुरुदासपुर जिले मे बटाला के पास अपना एक नया गाँव बसा कर रहने लगे। वही गाँव भगो वाला के नाम से मशहूर हुआ। जागीर भी उसी नाम पर प्रसिद्ध हुई। भगो की सन्तान मे ध्यानसिंह के पुत्र रामसिंह सरदार बाघसिंह जी बाघ के साथी बन गये।

और लड़ाई झगड़ो मे बराबर भाग लेते रहे। बाघसिंह ने सन् १७६५ ई० भुगाय और ग्वातय नाम के दो और गॉव अपने विजित इलाके मे से रामसिंह को दे दिये। रामसिंह बहादुर आदमी थे। उन्होंने कुछ इलाका अपने बाहुबल से भी बढ़ाया और एक अच्छे इलाके के मालिक बन गये। सन् १८०६ ई० में महाराजा रणजीतसिंह जी का इधर दौरा हुआ। उन्होंने भगोवालों के अधिकांश भाग को छीनकर देसासिंह मजीठिया को दे दिया। इस समय रणजीतसिंह का चढता सितारा था इसलिये रामसिंह जी इतने पर भी कांगड़ा के युद्ध मे महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ गये और वहा पर लडाई मे काम आये। यह घटना भी १८०६ ई० की ही है।

देसासिंह मजीठिया ने सरदार रामसिंह जी के नाबालिग पुत्र मिहांसिंह का खयाल रक्खा और उसे अपने लड़के लहनासिंह के साथ सैनिक शिक्षा दिलाई। सरदार देसासिंह जी जब महाराज की ओर से पहाड़ी इलाको के सूबेदार बनाये गये तो देसासिंह जी उधर के पहाड़ी इलाकों की आय मे से २२००) सालाना सरदार मिहांसिंह जी को देते रहे। मिहांसिंह एक प्रकार से इस समय देसासिंह के अधीनस्थ और उनकी सेना के एक जत्थेदार थे। वे बराबर लडाइयो मे भाग लेते। सन् १८२७ ई० में उन्होंने कोटलहेड़ की लड़ाई मे बिना रक्तपात के ही वहा के राजा से चाबियां दिलवा दी थीं। इस तरह जहाँ रणजीतसिंह का वह राज्य मांडलिक बन गया, वहा राज्य के साथ भी इतनी भलाई हुई कि वह एक दम नष्ट होने से बच गया।

सन् १८३२ ई० मे सरदार देसासिंह जी के मरने पर उनके पुत्र लहनासिंह का भी बर्ताव मिहांसिंह के साथ अच्छा ही रहा। उसने इन्हे १५५०) की अपनी रियासत मे जागीर देदी और १२००) साल की पेन्शन कर दी। लहनासिंह को इनका इतना विश्वास था कि जब वह पेशावर की लडाई में गया तो मिहांसिंह को अमृतसर का थानेदार मुकर्रिर कर गया।

मिहांसिंह के पुत्र गुलाबसिंह को लहनासिंह मजीठिया ने अपने तोपखाने का अफसर बना दिया। गुलाबसिंह की कमान मे ग्यारह तोपें दी गईं। गुलाबसिंह भी वफादार और बहादुर आदमी थे। इसलिये उनको भी २११६) सालाना की जागीर लहनासिंह ने ब इजाजत महाराजा रणजीतसिंह बख्शी। गुलाबसिंह ने यहां तक तरक्की की कि जिन दिनों हीरासिंह सिख-साम्राज्य के मन्त्री बने। उस समय गुलाबसिंह सेना मे जनरल के पद पर पहुँच गये। उन्हे इस पद के वेतन में एक हजार सालाना नकद मिलते थे और २४५८) की सालाना आमदनी के खाराबाद और लुहेका लाहौर दरबार की ओर से आपको जागीर में मिले हुये थे। जब हीरासिंह की बजाय जवाहरसिंह सिख साम्राज्य के मन्त्री हुये तो आपका सम्मान इतना और बढ़ा दिया गया कि पहले जहां आपकी कमान मे ग्यारह तोपें थीं अब बारह रहने लगीं। वेतन उतना ही रहा।

दूसरे सिख-युद्ध के समय उन्हें विवश होकर अंग्रेज सरकार के पक्ष मे होना पडा।

सन् १८५३ ई० मे गुलाबसिंह ने सरदार लहनासिंह मजीठिया के साथ काशी की तीर्थ यात्रा की। दूसरे ही साल लहनासिंह की मृत्यु हो गई। अत. आप वापिस अपने देश मे आ गये। सन् १८६३ ई० में आप लहनासिंह जी मजीठिया के पुत्र दयालसिंह के संरक्षक नियत हुए। इससे पहले वे नौशहरा के रईस जस्सासिंह के लड़के रूरसिंह के भी संरक्षक रह चुके थे। इसके बाद कुछ दिनों के लिए राजा सान्सी के सरदार शमशेरसिंह सिन्धानवालिये के पुत्र बख्शीसिंह के भी संरक्षक रहे। आपकी लोकप्रियता उससे प्रकट होती है कि आपको अमृतसर गुरुद्वारा का मैनेजर भी चुना गया था। उन्होंने अपने समय में एक

गलती भी की थी। वह यह कि अपनी जागीर मजीठियों के हाथ सन् १८७० मे तीन हजार रुपये मे वेच दी। किन्तु मजीठियो ने आधी उन्हे उनकी उन सेवाओं के उपलक्ष में वापिस करदी, जो आपने इस खान्दान की की थीं।

सन् १८८२ ई० मे सरदार मिहांसिंह का देहांत हो गया और उनका पुत्र रिछपालसिह उनकी जायदाद का मालिक हुआ। रिछपाल एक योग्य व्यक्ति थे। उन्हे सन् १८५५ मे मुन्सिफी मिल चुकी थी किन्तु अपने पिता की मृत्यु के बाद उसे उन्होंने छोड़ दिया और अपने गॉव मे ही रहकर जागीर की देखभाल करते रहे। सरदार बदनसिंह के साथ जो प्रातीय सरकार के दरवारी थे इनका रिस्ता था।

रिछपालसिंह का सन् १६०८ ई० में देहावसान हो गया। गोपालसिंह जो कि उनके ज्येष्ठ पुत्र थे पिता के वारिस हुए। उनके दूसरे पुत्र पृथ्वीपालसिंह और बिशनसिंह सरकारी ओहदों पर काम करते थे। गोपालसिंह ने अपने भतीजे के ज्येष्ठ पुत्र गुरुबख्शसिंह को गोद ले लिया था। विशनसिंह का सन् १६०४ में ही देहात हो गया था। विशनसिंह के हिस्से मे तीन सौ एकड़ जागीर थी। जिस पर उनके तीन पुत्र काबिज हुए।

सरदार गोपालसिंह को सरकार ने दस मुरब्बे जमीन जिला लायलपुर मे दी थी। उन्होंने पटियाला राज्य में खेरीमनिया नाम का गॉव भी खरीदा था। इस खान्दान के पास जिला गुरुदासपुर मे पॉच गॉवों मे ८५० एकड़ जमीन और कांगड़ा के गाजीया नामक स्थान मे एक चाय का बाग है। जिला गुरदासपुर के भगोवाला मे २०० एकड़ मुआफी और है। माफी और जागीरों से लगभग ३६७६) रुपये सालाना की आमदनी होती थी। यह पुराने समय का एक पूरे इलाके का मालिक कालांतर में पजाव का कुल चार हजार का चीफ्स रह गया।

रांगर नांगल का वह स्थान है जो बटाला के पास बीकानेर से आये हुए जाट लोगों ने कई सौ वर्ष पूर्व आबाद किया था और फिर मिसलों के समय मे इनमे से रनदेव और उसके बेटे नत्थासिंह ने सिख धर्म की दीक्षा लेकर कन्हैया मिसल के सरदार जयसिंह की कमान में रहकर रागर नांगल के इर्द-गिर्द के इलाके पर कब्जा कर लिया था। इस स्थान पर नत्था-सिंह ने एक छोटा सा किला भी बना लिया था।

रागर

नत्थासिंह के बाद कर्मसिंह ने अच्छा नाम पैदा किया। उन्होंने किले को अधिक मजबूत बनवाया और अमृतसर मे एक कटरा आबाद किया जो कर्मसिह रागर नांगल का कटरा कहलाता है। जब महाराजा रणजीतसिंह जी का प्रभुत्व बढ़ा तो इन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और उनकी फौज मे कप्तान का पद लेकर युद्धों मे उनकी सहायता करते रहे। एक बार वेतन न मिलने पर आपने फौज का पक्ष लिया और महाराजा रणजीतसिह जी पर दबाव डाल कर वेतन चुकवाया। इससे महाराज नाराज हो गये और उन्होंने इनका अमृतसर का मकान लुटवा लिया किन्तु फिर दोनों मे मेल हो गया और पेशावर की लडाई में सख्त घायल होने के कारण दुआवा मे महाराजा ने इन्हे एक जागीर भी दी। एक समय उनके पास कई लाख रुपये की जागीर हो गई थी जो कि जिला गुरदासपुर ही मे अवस्थिति थी।

कर्मसिह के लड़के जमीअतसिह भी महाराजा रणजीतसिह की सेना मे ही थे। उनकी वहादुरी के कारण महाराज उन्हे प्यार करते थे। जमीयतसिंह के छोटे भाई बजीरसिह को तीन बार मे महाराज ने एक जागीर दी थी। यह घटना सन् १८२१ ई० की है क्योंकि इससे एक ही वर्ष पहले जमीअतसिंह और वजीर-सिंह का चचेरा भाई रामसिंह दरवन्द युद्ध के समय हजारा मे शहीद हो चुके थे। यह जागीर उसी युद्ध

के उपलक्ष मे मिली थी।

जमीअतसिंह के लड़के अर्जुनसिंह भी एक बहादुर सरदार थे किन्तु महाराज शेरसिंह के समय में कुछ आपसी ईर्षाद्वेष से इनकी जागीर काफी कम करदी गई। कुल २८०००) की आमदनी ही रह गई। इसमें से भी १३०००) के सवार लाहौर दरवार की मदद को देने पड़ते थे। अर्जुनसिंह की माँ राजा खड्गसिंह की रानी चांदकौर की चाची थी। अर्थात् खड्गसिंह की रानी अर्जुनसिंह की चचेरी वहिन थी। शेरसिंह और खड्गसिंह मे भाई-भाई होते हुए भी झगड़ा था। इसी कारण खड्गसिंह और नौनिहालसिंह के मरने के वाद अर्जुनसिंह की जागीर जब्त करली गई।

सतलज के धावे से पहले सन् १८४५ ई० मे राजा लालसिंह ने आपको चार रेजिमेंटों का अफसर नियुक्त किया था। सौरांव के युद्ध मे आप इन्हीं पल्टनों के नायक थे। क्योंकि राजा लालसिंह अंग्रेजों से मिल गया था और यह लालसिंह के इशारे पर ही चले थे। इसलिये सन् १८४७ मे मेजर लारेन्स की शिफारिस पर अंग्रेज सरकार ने इन्हे खिताव भी दिया था।

जव अकारण ही अंग्रेजों ने अटारी के राजा शेरसिंह को छेड़ा तो ये उनके साथ वगावत मे शामिल हो गये। यही क्यों आपके परिवार के सारे ही व्यक्ति राजा शेरसिंह के तरफदार हो गये। जब अंग्रेजी सेनायें रागर नांगल पर पहुंची तो उनको हटाने मे भी इनके पारिवारिक जन सफल हुए। किन्तु १८४८ के १५ अक्तूबर को ब्रिगेडियर हीलरने रांगर नांगलको फतह कर लिया और रांगर नागलकी सारी जागीर सरदार मगलसिंह रामगढ़िया को दे दी। अर्जुनसिंह को केवल १५००) रुपये सालाना की पेंशन उनके जीवन भर के लिये सरकार ने दी। अर्जुनसिंह जी के वाद राजा नाभा की शिफारिस पर उनकी दोनों विधवाओं को केवल २४०) रुपया सालाना की पेंशन सरकार की ओर से की गई। सन् १८५६ ई० मे आपका देहान्त हो गया।

अर्जुनसिंह जी के दो वेटे थे। जिनमें वड़े लड़के वलवंतसिंह ने जैसे-तैसे प्रांतीय दरवारियों मे स्थान ग्रहण किया। वलवतसिंह के दूसरे भाई अतरसिंह थे। दोनों भाइयों के पास गुरुदासपुर और अमृतसर मे केवल १५०० एकड़ भूमि रह गई थी। नाभा के राजा भरपूरसिंह जी ने इन्हे रोही और वूराकलां जागीर में दे रक्खे थे किन्तु उनके उत्तराधिकारी ने उन्हे जब्त कर लिया। अतरसिंह को वे रोही की आमदनी देते रहे। सन् १९०३ ई० में अतरसिंह का भी देहान्त हो गया। उनके दो नावालिग पोते गुरदत्तसिंह और गुरुवचनसिंह नाभा मे ही परिवरिश पाकर वड़े हुए। इनके पिता प्रतापसिंह अपने वाप के आगे ही सन् १९०१ ई० मे मर चुके थे।

फरवरी सन् १९०८ ई० मे सरदार वलवंतसिंह जी का भी स्वर्गवास हो गया। उन्होंने भी दो नावालिग पुत्र हरीसिंह और नारायणसिंह छोड़े। सरकार ने वच्चों के वालिग होने के समय तक के लिए आपकी जागीर को कोर्ट-आफ-वार्डस के प्रवन्ध मे कर दिया था। इस खान्दान को अंग्रेज सरकार से कोई जागीर नहीं मिली। जो भी कुछ शेष रही वह महाराजा रणजीतसिंह जी के समय की ही थी।

जयसिंह कन्हैया के गांव कान्ह के पास ही जुलका नाम का गाव है उसमें वघेलसिंह नाम के एक सिन्धू-गोत्रीय जाट जमीदार रहते थे। हकीकतसिंह उनके लड़के का नाम था। जयसिंह के साथ ही हकीकतसिंह भी सरदार कपूरसिंह सिंहपुरिया के दल में शामिल हो गया। सरदार कपूरसिंह की मृत्यु के वाद दोनों सरदार स्वतन्त्र हो गये। हकीकतसिंह ने कालानौर, वूर, दुलवू, काहनगढ़, अदालतगढ़ और पठानकोट, मतू वगैरह पर अपना अधि-

फतहगढ़

कार जमा लिया। इनकी कमान मे सगतपुर के सरदार साहवसिंह, दादूपुरे के दयालसिह और सतसिह, वनोद के चेतसिह, तारागढ़ के साहवसिह और देसासिह मोहल जैसे प्रसिद्ध २ शूरवीर रहते थे। सन् १७६० ई० मे हकीकतसिह ने चुरियानवाला को मिसमार कर दिया और उसकी जगह पर सगतपुर गाव और फतहगढ़ किले का निर्माण कराया। हकीकतसिह के दूसरे भाई महतावसिह ने चित्तोड़गढ़ नाम से एक दूसरा किला बनवाया। इस प्रकार इनके अधिकृत इलाके मे दो किले हो गये।

सन् १७८२ ई० मे हकीकतसिह का देहान्त हो गया और उनका ग्यारह साल का लड़का जयमलसिह उनका वारिस हुआ उसके समय मे कोई भी उल्लेखनीय वात नहीं हुई। सन् १८१२ ई०मे ३० वर्ष की अवस्था में जयमलसिंह का देहान्त हो गया। महाराजा रणजीतसिह ने मौका पाकर फतहगढ़ पर कब्जा कर लिया और जव कि जयमलसिह की विधवा सरदारनी के तीन महीने वाद एक लडका जिसका कि नाम चांदसिह रक्खा गया था–हुआ तो महाराजा रणजीतसिंहजी ने पन्द्रह हजार रुपये सालाना की आमदनी का एक हिस्सा उसके लिये जयमलसिह के कुल इलाके मे से छोड़ दिया। यह याद रखने की वात है कि महाराजा रणजीत-सिंह के पुत्र कुँवर खडगसिह के साथ जयमलसिंह की पुत्री चाँदकोर का विवाह हुआ था जो कि जयमल सिंह ने अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व किया था। यह विवाह वड़ी ही धूमधाम के साथ हुआ था इसमे गवर्नर जनरल अक्टरलोनी और नाभा, जींद, कैथल के राजा भी पधारे थे। इससे जयमलसिह के गौरव और वैभव का पता चलता है।

सन् १८३९ ई० मे महाराजा रणजीतसिह जी के देहावसान के वाद लाहौर मे जो-जो नाटक ध्यानसिंह वगैरह गद्दारो की नमकहरामी के कारण हुये उनका यहाँ हम विस्तृत वर्णन करना नहीं चाहते। इतना बता देना चाहते है कि महाराज खड्गसिंह और उनके कुँवर नौनिहालसिंह की मृत्यु के वाद जो हकदार खालसा राज्य के खडे हुये थे। उनमे एक महाराज शेरसिंह थे और दूसरी महाराजा खड्गसिंह की विधवा महारानी चादकौर थीं जो कि फतहगढ़ अपनी मा और भाई चादसिंह के पास रहती थीं। रानी चादकौर के सामने दो प्रस्ताव रक्खे गये एक तो यह कि वे महाराज शेरसिंह के साथ अपना नाता करले इससे दोनों ही अधिकारी रह सकें। दूसरे यह कि वे राजा ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह को गोद ले ले। महारानी जी ने दोनों प्रस्ताव ठुकरा दिये और उन्होंने दो वाते रक्खीं। एक तो यह कि उन्हे अतरसिंह सिन्धानवालिया को गोद लेने का अधिकार दिया जाय। दूसरे यह कि कुँवर नौनिहालसिह की वेवा के वच्चा होने वाला है उसे राज्य दिया जाय। वहुत सारे झमेले और झगड़ों तथा फिसाद के वाद लाहौर का राज्य महाराज शेरसिंह के हाथों मे चला गया। रानी चादकौर अपने भाई की जागीर मे ही वापिस आगई।

महाराज शेरसिंह को पता था कि फतहगढ़ मे बहुतसा धन नौनिहालसिंह ने भेजा था। अत उसने फतहगढ़ सेना भेजकर वह धन वापिस मगा लिया। चांदसिंह के लिये केवल ६० हजार रुपये की जागीर रहने दी। इनके दुर्भाग्य का अन्त यहीं नहीं हुआ। ध्यानसिंह का लड़का हीरासिंह जव खालसा राज्य का मन्त्री हुआ तो उसने चांदसिंह का सारा इलाका जव्त कर लिया और दोष यह लगाया कि चादसिंह ने मेरे पिता राजा ध्यानसिंह के मरने पर रोशनी की थी किन्तु लाहौर मे फिर परिवर्तन हुआ और सरदार जवाहरसिंह मन्त्री बने। उन्होंने ३०६०) सालाना आमदनी की जागीर चांदसिंह के लड़के केसरसिंह को वख्शी। जिस पर वे जिन्दगी भर काविज रहे। सन् १८७० ई० में सरदार केसरसिंह की मृत्यु हो गई।

फतहगढ़ में जहां कि किले के खंडहर अवशेष हैं। इस खान्दान के पास बहुत ही थोड़ी जमीन रह गई। अजनाला तहसील के कुछ गांवों में थोड़ी-सी माफी की है। संगलपुर में इस खान्दान के रईस सरूपसिंह जी के वंशज रहते हैं। वहां केवल ३०० बीघा जमीन के मालिक हैं ६२७) रु० सालाना की नकद जागीर सरूपसिंह के पास थी।

भागा

यह खान्दान पहले बहुत धनी और शक्तिशाली था। इस खान्दान का संस्थापक अमरसिंह मान गोत का जाट था और अमृतसर जिले के भागा नामक गॉव में रहता था। सिख धर्म की दीक्षा लेकर यह कन्हैया मिसल के साथ मिलकर यवनों का शोधन और स्व-शक्ति का वर्द्धन करने लगे। सुकलगढ़, सुजानपुर, धर्मकोट और बहरामपुर पर कब्जा करके उन्होंने अपने रहने के लिये सुकलगढ़ में एक किला बनवाया। सन् १८०५ ई० में अमरसिंह के स्वर्ग सिधारने पर उनका बड़ा लड़का भागसिंह अपने इलाकों का मालिक हुआ। भागसिंह योद्धा प्रवृत्ति के आदमी न थे इन्होंने इलाका बढ़ाने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, फारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् होने के कारण अपना अधिकांश समय ज्ञान चर्चा में बिताते थे। चित्रकारी में भी उनको विशेष प्रेम था। इन सबसे ज्यादा काम वह बन्दूक ढालने का जानते थे। अपने पिता के बाद केवल तीन वर्ष तक आप जीवित रहे। देसासिंह मजीठिया इनका फुफेरा भाई था। इसलिये इनकी उसके साथ दोस्ती भी गहरी थी। इनके मरने पर देसासिंह ने यही कोशिश की कि इनका उत्तराधिकारी इनका लड़का हरीसिंह ही बने किन्तु ऐसा हो नहीं सका और भागसिंह का भाई बुधसिंह इलाके का मालिक बना किन्तु बुधसिंह अपने अधिकार को अक्षुण्ण नहीं बना सका। सन् १८०६ ई० में कांगड़ा पर चढ़ाई करते समय महाराजा रणजीतसिंह ने बुधसिंह से सहायता मांगी थी किन्तु यह खयाल करके कि हम रणजीतसिंह के मातहत थोड़े ही हैं एक आदमी की सहायता नहीं दी। इससे चिढ़कर महाराजा रणजीतसिंह जी ने इसके इलाके पर कब्जा कर लिया और केवल धर्मकोट भागा की २२ हजार सालाना की आमदनी की जागीर बुधसिंह के पास रहने दी बाकी देसासिंह मजीठिया को उसकी सेवाओं के उपलक्ष्य में दे दी। सन् १८४६ ई० में बुधसिंह की मृत्यु के बाद राजा लालसिंह ने उस पर भी कब्जा कर लिया किन्तु देसासिंह के पुत्र लहनासिंह मजीठिया की शिफारिस पर बुधसिंह की तीन विधवाओं और लड़के प्रतापसिंह के वास्ते ५०००) सालाना आमदनी की जागीर उनके गुजारे के लिये महाराजा रणजीतसिंह द्वारा दी गई। इसी में भागसिंह के पुत्र हरीसिंह का भी हक—लाहौर दरबार की ओर से रक्खा गया। सन् १८५२ ई० में हरीसिंह की भी मृत्यु हो गई। इनके दो पुत्र थे ईश्वरसिंह और जीवनसिह। क्रमश सन १६०१ ई० और सन् १६०५ ई० में उनका भी देहान्त हो गया। दोनों ने अपने पीछे सात वारिस छोड़े। जिनमें दो पुत्र ईश्वरसिंह के और पाच जीवनसिह के थे। इनमे हरनामसिंह सबसे बड़े थे अतः वे ही सारी जागीर के मालिक बन गये। बटाला के पास बुर्ज आर्यान मे ६१६) सालाना की इनकी जागीर है। इनके दो भाई मुसलमान हो गये। इकबाल और फजलहक उनके नाम रक्खे गये और धर्मकोट में दोनों के पास जागीर थी। शेष भाई सरकारी फौजों और दूसरे महकमों में घुस गये।

खन्दा

रनधावा खान्दान का संस्थापक बीकानेर राज्य से पंजाब की ओर आया था। लगभग ७०० वर्ष पहले उसने पंजाब में सात खान्दानों की नींव डाली। धर्मकोट, बनियानली, डमिचारी, ढाहा, दोरगा या तलवन्डी, काटू नागल और खन्दा उनके प्रसिद्ध भू-भाग थे। रनधावा की पांचवीं पीढ़ी में कजल हुआ। इसने बटाला के पास उपनिवेश कायम किया। नौशहरा, जफर-

वाल, शाहपुर और खन्दा इनके अधिकार में आ गये। रनधावा खान्दान की दूसरी शाखाएँ भी काफी उन्नतिशील बन गईं। इन्होंने आरम्भ मे कन्हैया मिसल के साथ पड़ कर तरक्की हासिल की थी। सन् १७६३ ई० में जयसिह कन्हैया की मृत्यु के समय इनके अधिकार मे लगभग दो लाख सालाना की आमदनी का भू-भाग था किन्तु रानी सदाकौर विधवा जयसिंह ने इनके नौशहरा और हयातनगर के इलाके अपने कब्जे में कर लिये। इससे भागे सरदार प्रेमसिह के समय मे महाराजा रणजीत-सिह जी ने सारे ही इलाके को अपने राज्य मे मिला लिया। केवल १० गॉव इस खान्दान के गुजारे के लिये छोड़े।

प्रेमसिंह के पिता सरदार पजावसिंह ने जोधसिह मजीठिया की पुत्री के साथ विवाह किया था। जोधसिह के पुत्र देसासिह मजीठिया का महाराजा रणजीतसिंह जी पर बड़ा प्रभाव था। इसलिये प्रेमसिह को महाराज ने अपनी सेना मे घुड़सवारों का नायक मुकर्रिर किया। प्रेमसिह ने प्रायः कई युद्धों मे भाग लिया किन्तु सन् १८२४ ई० को अटक नदी को जब महाराजा रणजीतसिह पेशावर पर चढ़ाई करने के लिये पार कर रहे थे अनेकों सवारों के साथ सरदार प्रेमसिह भी वह गये। उनके चार पुत्र थे जिनमे बराबर-बराबर उनकी जागीर बॅट गई।

प्रेमसिह के बाद उनके दो लडके सरदार जयमलसिंह और जवाहरसिंह महाराजा रणजीतसिंह की सेना मे आ गये। जहॉ उन्हे सन् १८३६ ई० मे रामगढ़िया ब्रिगेड के कमांडर सरदार लहनासिंह चाहल की जगह पर जो कि इनके श्वसुर होते थे और मर चुके थे। नियुक्त कर दिया। इन्होंने जमरुद और पहाडी प्रदेशो की सभी लड़ाइयों मे भाग लिया। यह चार भाई थे। जवाहरसिंह और हीरासिंह एक मा से और जयमलसिंह और जसवतसिह दूसरी मा से। किन्तु प्रेम सबमे एक सा था। इनमें से जसवन्तसिंह का सन् १८४४ ई० मे स्वर्गवास हो गया।

जमीन जायदाद पर सदैव से भाई-भाई भी लड़ते आये है। अत जब अलग-अलग होने का सवाल चला तो तीनों भाई आपस में झगड़ा करने लगे। सरदार लहनासिंह ने एक बार तीनों मे उनकी जायदाद का बटवारा भी कर दिया। किन्तु तुरन्त ही उनके काशी चले जाने के कारण मामला सुलझा नहीं। एक पचायत बैठाई गई जिसने खन्दा, शाहपुर, जयमल और उनके भाई को और नौशहरा और झुटपुट जवाहरसिह को। फिर भी फैसला न हो सका। सन् १८५४ ई० मे सैटिलमेंट के समय इनके भाग्य का निर्णय अग्रेज अधिकारियों द्वारा हुआ।

इससे पहले यह बता देना होगा कि जयमलसिंह ने सिखों के दूसरे युद्ध और गदर दोनों समय अग्रेज सरकार की काफी मदद की थी। किन्तु जवाहरसिंह ने इस ओर से उदासीनता ही दिखाई। इसके बदले मे सरकार ने भी इन्हे तहसील उगाहने और इन्साफ करने आदि के सरकारी पद बख्शे थे। स्पेशल कमिश्नर भी बनाये गये। १०००) की सरकार ने खिलअत भी दी थी। सन् १८७० मे उनका स्वर्गवास हो गया। २२००) सालाना की जागीर इसके पुत्र कृपालसिंह के हाथ में इनके बाद रही।

कृपालसिंह को भी सरकार ने बटाला मे मजिस्ट्रेट का पद दिया था। दो वर्ष तक अपने उत्तराधिकार को पूरा करके सन् १८७२ ई० में कृपालसिह का भी स्वर्गवास हो गया। सरकार ने उनकी जागीर जब्त कर ली। कृपालसिंह की सरदारनी मनोकी वाले सरदार गोपालसिंह की पुत्री थीं। कृपालसिंह ने अमरीकसिंह को गोद लिया था। वही उनका वारिस हुआ। सरकार की ओर से न तो उनके पास जागीर ही रही और न दरबार मे उनका स्थान ही रिजर्व रहा।

इस खानदान के पुरखा हरसैन नाम के सिन्धू जाट थे। सन् १५०० के लगभग उन्होंने गुजरानवाला जिले मे हरसैनवाल नाम की नींव डाली जो पीछे से हँसनवाल नाम से मशहूर हुआ। इसके बाद इन्होंने स्यालकोट जिले मे पसरूर तहसील के मध्य करियावंश को हटाकर एक गॉव वसाया। जिसका नाम सिरानवाली प्रसिद्ध हुआ। कारण कि उसमें हजारों आदमियों के सिर काटे गये थे। एक समय इस खान्दान के हाथ से सिहानवाली गॉव निकल गया और इस खानदान का दुरगा नामक एक शख्श स्यालकोट जिले को छोड़कर गुरदासपुर जिले मे चला आया और सिख धर्म की दीक्षा लेकर जयमलसिंह फतहगढ़िया की फौज में भर्ती हो गया। इसके पुत्र लालसिंह ने सैनिक पने मे अच्छी तरक्की की और वह १०० सवारों का अफसर वनाया।

सिरानवाली

लालसिंह की पुत्री वहुत सुन्दर थी। जब महाराजा रणजीतसिंह स्यालकोट का दौरा कर रहे थे तो लालसिंह ने उसे महाराजा रणजीतसिंह को यह कह कर भेट कर दिया कि आप ही जहॉ उचित समझे इसका सम्वन्ध कर दे। महाराज ने उसे अपने पुत्र खड़गसिंह के ही घर मे रख दिया। खड़गसिंह ने उससे पुनर्विवाह कर लिया।[1]

लालसिंह की मृत्यु के वाद उसके पुत्र मंगलसिंह ने इस सम्वन्ध से लाभ उठाया। मंगलसिंह आरम्भ मे निरे देहाती थे। पजामा पहनना इन्होंने लाहौर मे ही आकर सीखा था। कुँवर खड़गसिंह ने थालूर और खीटा की जागीर मंगलसिंह को वख्शी। जिनकी आमदनी लगभग ५०००) सालाना थी। मंगलसिंह उत्तरोत्तर तरक्की करते गये। जब उन्हे चुनियान का इलाकेदार वनाया गया तो उस कार्य को वड़ी योग्यता से पूरा करते रहे। इससे खुश होकर खड़गसिंह जी ने महाराजा रणजीतसिंह की मंजूरी से दीवानी फौजदारी मामलात का मैनेजर और १६०००) सालाना की आमदनी का जागीरदार वना दिया। मंगलसिंह ने अपने पुरखों के प्राचीन गॉव सिरानवाली को भी अपने अधिकार मे कर लिया। जो अव तक अटारीवालों के कब्जे मे था। सन् १८२० ई० से सन् १८३४ तक मंगलसिंह उक्त पदों पर रहे। इसके वाद उन पदों का चार्ज तो सरदार चेतसिंह वजुआ को मिल गया और वे अपनी जागीर को संभालते रहे। इस समय तक मगलसिंह के पास २६१२५०) सालाना आमदनी की जागीर थी। इसके वदले मे वे दरवार लाहौर के लिये ७८० सवार ३० जम्बूरा और २ तोप सदैव रखते थे।

जव लाहौर की राज्यशक्ति महाराज शेरसिंह के हाथ मे आई तो उन्होंने मगलसिंह के पास केवल ३७०००) सालाना आमदनी के इलाके रहने दिये। वाकी सव वापिस ले लिये। किंतु कुछ सोच समझ कर सहीवाला और वेकलचिमी मे राजा शेरसिंह ने मगलसिंह को १२४५००) के इलाके और दे दिये। सन् १८४६ तक मंगलसिंह जी का इन पर अधिकार रहा। इसके वाद जव राजा लालसिंह अंग्रेजों की महरवानी से आगे वढ़ रहा था उसने केवल ८६०००) की पुरानी जागीर इनके पास इस शर्त पर कि वह १२० सवार दरवार की सहायता के लिये हर समय तैयार रक्खेंगे, रहने दी। सिखों की तकदीर के हेर-फेर हुए। उन्होंने हालांकि अंग्रेजों की ही मदद की किन्तु सिख-विद्रोह की समाप्ति के वाद अंग्रेज सरकार ने उनके समस्त इलाके जब्त कर लिये और केवल २००) सालाना की पेन्शन मुकर्रिर की। इनके एक पुत्र रिछपालसिंह नाम के थे सरकार ने उन्हे सरदार की उपाधि देकर प्रान्तीय दरवार मे स्थान दिया। मंगलसिह जी का देहान्त सन् १८६४ ई० मे हो गया। सन् १८७० ई० मे रिछपालसिंह ने काश्मीरी-

१. शायद विधवा थी तभी तो खड़गसिंह ने चादर डालकर पत्नी वनाया था।

सिंह की विधवा रानी की भतीजी से विवाह किया। सन् १८८४ में सरकार ने आपको जिला बोर्ड का चेयरमैन और आनरेरी मजिस्ट्रेट बना कर सम्मानित किया। लगातार १८ साल तक रिछपालसिंह जी ने आनरेरी मजिस्ट्रेटी करके १६०२ ई० में स्तैफा दे दिया। सरकार ने आपके खाली स्थान पर आप ही के पुत्र सरदार शिवदेवसिंह जी को मुकर्रिर किया। सन् १६०७ ई० में सरकार द्वारा शिवदेवसिंह को सरदार का खिताब और प्रांतीय दरबारियों में स्थान प्रदान किये।

यहाँ यह बता देना उपयुक्त होगा कि सरदार लालसिंह ने अपनी जिस रूपवती पुत्री को महाराजा रणजीतसिंह जी की भेंट किया था और जिसके कि साथ महाराजा रणजीतसिंह के उत्तराधिकारी कुंवर खड्गसिंह जी ने चादर डाल कर शादी करली थी और जिसके सम्बन्ध के ही कारण इस खान्दान ने एक दिन अच्छी स्थिति प्राप्त करली थी। वह अपने पति महाराजा खड्गसिंह की मृत्यु होने पर उनके साथ ही सती होगई थी। उसका नाम रानी ईश्वरकौर था।

सिन्धू गोत के जाट चौधरी गजू ने जिला स्यालकोट में मुगल जमाने में मोचल के पास एक गाँव बसाया जिसका नाम वडाला मशहूर हुआ क्योंकि गजू अपने भाइयों में बडा था। इसीलिये उस गाँव का नाम वडाला पड़ गया। इस वंश में गुरदित्ता नाम का एक व्यक्ति मुगल बादशाहों की ओर से आस-पास के इलाकों का कर-वाहक (चौधरी) नियुक्त हुआ। यह पद कई पीढ़ियो तक इनके यहाँ मौरूसी रहा। इसके बाद इसके उत्तराधिकारी दीवानसिंह ने सिख धर्म स्वीकार कर लिया। वह अंतिम समय तक तीन गाँवों का मुगल शासकों की ओर से प्रधान था।

वडाला

दीवानसिंह का पुत्र महतावसिंह बड़ा योग्य और महात्वाकांक्षी था, उसने ५२ गाँवों का ठेका कर-वाहकी का ले लिया। वह इन गावों पर अपना पूर्ण अधिकार करने को उत्सुक था। इसलिये उसने अपने अनेकों साथियों—भंगी मिसल के सरदार गंडासिंह और झंडासिंह से सम्बन्ध स्थापित कर लिया। भंगी सरदारों ने महतावसिंह को इन ५२ गाँवों का अधिपति स्वीकार कर लिया। इसके बदले में वे एक निश्चित संख्या में आदमियों की मदद हिम्मतसिंह से लेते थे। इसके बाद उस समय इनकी स्थिति और भी मजबूत हो गई जब इनके तीसरे पुत्र सुलतानसिंह ने भागसिंह मलोद के रिस्तेदार की एक लडकी से शादी करली। इस शक्ति का उपयोग करके उन्होंने इलाके और धन दोनों ही बढ़ाये। उनकी इस प्रकार की बढ़ोतरी को देखकर सुकरचकिया महासिंह ने उन्हें एक पंचायत के बहाने बुलाकर कैद कर लिया और फिर वडाला पर कब्जा करने के लिये फौज भेजी किन्तु उनके चारों पुत्रों ने बड़ी बहादुरी से सामना किया जिसके कारण महासिंह ने उनसे सुलह करली और एक बडी रकम नजराने की लेकर सरदार महतावसिंहजी को छोड़ दिया। यह रक्म वसूल होने तक सुकरचकिया लोगो ने सुलतानसिंह को जमानत के तौर पर अपने साथ रक्खा।

महतावसिंह के चार लड़के थे। श्यामसिंह, निधनसिंह सुलतानसिंह और गुलाबसिंह। अपने पिता की मृत्यु के बाद श्यामसिंह और निधनसिंह में झगड़ा रहने लगा। इससे अहलूवालिया और दूसरे लोगो ने इनके राज्य को दबाना शुरू कर दिया। घर की फूट से दुश्मन सहज ही लाभ उठाते ही हैं। सन् १८०६ ई० में महाराजा रणजीतसिंह जी ने इधर दौरा किया तो मोचल और वडाला दोनों ही इलाकों को अपने अधिकार में करके कुंवर खड्गसिंह को जागीर में दे दिया। इस समय इन स्थानो पर निधनसिंह का अधिकार था। वह अपने भतीजे के साथ काश्मीर की ओर भाग गया। जहाँ चचा भतीजे काश्मीर के हाकिम अतामुहम्मद के यहाँ नौकर हो गये।

सन् १८१३ ई० में जब महाराजा रणजीतसिंह का दल अतामुहम्मद के विरुद्ध लड़ने गया तो निधनसिंह का भतीजा टेकसिंह महाराजा रणजीतसिंह के सेनापति मुहकमचन्द के साथ मिल गया। इस उपलक्ष मे महाराज ने टेकसिंह को होशियारपुर जिले मे तीन गॉवों का प्रधानत्व बख्शा। टेकसिंह ने इन गॉवों का प्रबन्ध तो अपने छोटे भाई के सुपुर्द कर दिया, खुद अटक की तरफ वहां के मुहासिरों में चला गया। टेकसिंह ने बराबर लाहौर दरबार की सेवाये कीं। जिनके बदले मे उनके चाचाओं को बडाला के अधिकृत प्रदेश के कुछ भू-भाग वापिस मिल गये।

टेकसिंह चार भाई थे। फतेहसिंह, किशनसिंह और साहबसिंह शेष तीन के नाम थे। फतहसिंह जिनके अधिकार में होशियारपुर जिले की तीन गॉवों की जागीर थी। सन् १८३० मे लावल्द मर गये। अत. वहां का प्रबन्ध उनके छोटे भाई किशनसिंह को सौंपा गया। सन् १८४४ ई० मे टेकसिंह का भी देहान्त हो गया। उनके सबसे छोटे भाई साहबसिंह भी महाराज की फौज मे ही थे किन्तु उन्होंने कोई खास तरक्की नहीं की।

सरदार टेकसिंह के ज्वालासिंह और मोहनसिंह नाम के दो लड़के थे। वे काश्मीर ही रहे आये जिनमें से मोहनसिंह का तो वहीं देहान्त हो गया।

सरदार किशनसिंह की भी सन् १८६९ ई० मे मृत्यु हो गई। सरकार ने उनके गांव अपने कब्जे में कर लिये। हॉ, कुछ एकड़ भूमि अवश्य उनके वंशजों के हाथ रह गई।

सन् १८८१ मे साहबसिंह मर गये और सन् १८८३ मे ज्वालासिंह। उनकी जायदाद तो सरकार ने इस कसूर में जब्त करली कि द्वितीय सिख युद्ध मे उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध मे भाग लिया था। हॉ, मोहनसिंह को गदर मे सरकार की काफी सेवा करने के उपलक्ष मे सरकार ने मोचल मे कुछ जमीन जागीर मे बख्शी। १२८) की पेन्शन भी मुकर्रिर की थी। साहबसिह के मरने पर सरकार ने उनके पुत्रों के पास उनकी जायदाद का कुल चौथाई भाग रहने दिया था। साहबसिह ने तीन लडके अपने पीछे छोड़े थे मंगलसिंह, बघेलसिंह और हीरासिंह। सरदार मगलसिंह ने खुद तो मान की रक्षा के लिये सरकारी नौकरी की नहीं किन्तु अपने पुत्रों को जरूर फौज मे भर्ती करा दिया। जहॉ वे शीघ्र ही ऊँचे ओहदों पर पहुँच गये। बघेलसिंह ने काफी तरक्की की। उसने गदर मे २०० आदमी लेकर अंग्रेजों की मदद की। अपनी बुद्धिमानी से उसने अन्डमान की असिस्टेंट सुपरिन्टेन्डेण्टी भी की। सरकार ने उनकी सारी सेवाओं से खुश होकर रायबहादुरी का खिताब, २८० एकड़ जमीन लाहौर जिले के रखपैमार में और ५०० एकड़ गुजरांवाला मे दी। १२००) पेन्शन मुकर्रिर करदी। इसके अलावा प्रांतीय दरबारों मे उनका स्थान रिजर्व किया गया। रायबहादुर सरदार बघेलसिंह जिन्होंने कि समय के अनुकूल अपने को इतना ऊंचा बनाया। सन् १६०८ मे इस संसार से कूच कर गये।

सन् १८७४ ई० मे सरदार का बड़ा पुत्र ठाकुरसिंह अंडमान मे अंग्रेज सरकार की ओर से उनके बाप की वापिसी पर इंसपेक्टर बनाकर भेजा गया। उसके छ. ही वर्ष बाद १८८० ई० मे ठाकुरसिंह का घोड़े से गिरने के कारण देहान्त हो गया। ठाकुरसिंह के दो बेटे थे। उनमें से सोहनसिंह पाचवीं पजाब केवेलरी मे रिसालदार होगया। उसने यहा तक तरक्की की कि असिस्टेण्ट कमिश्नर और फिर पंजाब सरकार का मीर मुन्शी बन गया। सन् १६०८ ई० में इसका छोटा भाई तीम लाइन्सर्स मे रिसालदार हो गया और रायबहादुर सरदार बघेलसिंह का लड़का हाकिमसिंह १८वीं बंगाल केवेलरी मे ओहदेदार बनाया गया जो अफगान युद्ध तक उसी मे काम करता रहा। बाद मे वह ब्रह्मा में पुलिस बटालियन

का सूबेदार बना और फिर वहा से पेन्शन लेकर घर आगया। यहा सरकार ने उसे सिविल जज और आनरेरी मजिस्ट्रेट बना दिया। यही अपने खान्दान के प्रधान माने गये।

इस स्थान को बसाने वाले का नाम कलास था और बजवा उसका गोत था। इसलिये यह गाम कलास बजवा के नाम से मशहूर हुआ। कलास के बाप का नाम मंजा था जिसकी कि समाधि पसरुर मे 'मंजा कामाडी' नाम से प्रसिद्ध है। इस समाधि की पूजा हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों के लोग करते हैं। बजवा गोत के जाट तो जिनके कि गॉव इससे अधिक दूर नहीं होते अपने लड़के-लड़कियों की शादी भी यहीं पर आकर करते हैं। मालूम ऐसा होता है कि मंजा की मृत्यु के बाद उसका लड़का पसरुर को छोड़ कर दूसरी जगह चला गया और वहा उसने कलास बजवा को आबाद किया।

कलास बजवा

कलास से कई पीढ़ी बाद उसके वंश के दीवानसिंह नामक लड़के को भंगी सरदार हरीसिंह ने गोद ले लिया, क्योंकि हरीसिंह के कोई सतान नहीं थी। सन् १७६० ई० मे जब हरीसिंह का देहान्त हो गया तो दीवानसिंह उसके इलाकों का मालिक हुआ किन्तु वह उस सारे प्रदेश की रक्षा नहीं कर सका और लगभग आधा प्रदेश उसके हाथ से निकल गया। जब वह मर गया तो इसी वंश के सरदार धनासिंह को खालसा ने उसका उत्तराधिकारी घोषित किया। धनासिंह पहले से ही युद्धों में भाग लेता था। उसका छोटा भाई मानसिंह तो हरीसिंह की सेवा ही मे खतम हुआ था। धनासिंह योद्धा प्रकृति का आदमी था। जब भगी मिसल के अधिकृत प्रदेशों का बटवारा हुआ था उस समय कलास बजवा, पनवाना और चूहरा धनासिंह के हिस्से मे आये थे। सन् १७६३ ई० मे धनासिंह के मरने पर महाराजा रणजीतसिंह जी ने उसके पुत्र जोधासिंह को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। जोधासिंह तीन भाई थे किन्तु योद्धा वृति अकेले जोधासिंह मे ही थी। इसके तीन वर्ष बाद महाराज रणजीतसिंह किसी कारण से जोधासिंह से नाराज हो गये और उन्होंने उस पर चढ़ाई करने को सेना की एक टुकड़ी भेज दी। जोधासिंह तीन वर्ष तक इन सेना समूहों से नहीं दबाया जा सका। किन्तु अत मे उसने अपने को महाराज की कृपा पर छोड़ दिया। महाराजा रणजीतसिंह जी उसके पास ६००००) सालाना की जागीर छोड़ दी। जोधासिंह को खालसा दरबार मे दरबारियों मे भी ले लिया गया। आगे चलकर इसने अपनी लड़की खेमकौर की शादी युवराज खड्गसिंह जी के साथ करदी। सन् १८१६ ई० मे जोधासिंह का देहान्त हो गया। उसकी विधवा ने अपने प्रभाव से सिख दरबार से यह मजूर करा लिया कि जोधासिंह का उत्तराधिकारी चादसिंह जो कि सरदारनी का रिश्तेदार है बनाया जा सकता है। चादसिंह बजवा खान्दान का ही नवयुवक था।

खालसा सेनाओं के परास्त होने पर रानी खेमकौर को बड़ा रज हुआ। अत उन्होंने अपने पिता के उत्तराधिकारी चांदसिंह को अंग्रेजों के खिलाफ खड़ा किया। चादसिंह और उसका बड़ा भाई गुरुदत्तासिंह भीतर ही भीतर बगावत की तैयारी करने लगे। किन्तु अंग्रेजों को पता लग गया अत. अंग्रेजी सेना ने उनके किले पर धावा करके उनके इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया और उनके गॉव को भस्म कर दिया। रानी खेमकौर को तो सरकार ने २४००) की पेन्शन देकर अपना गुस्सा हल्का किया। चांदसिंह और गुरुदत्तासिह को रियासत से खारिज करके सन्तोष की सास ली। गुरुदत्त तो इस घटना के कुछ ही वर्ष बाद मर गया। चादसिंह मामूली-सी बची खुची जमीन का प्रबन्ध करने मे लगा रहा। सन् १८६७ ई० मे जब चादसिंह का भी देहान्त हो गया तो उसका लड़का भगवानसिंह अपने वंश

का प्रधान मुकर्रिर हुआ। भगवानसिंह की बहिन महताबकौर अटारी के सरदार तेजासिंह के साथ व्याही गई थी उस बेचारी को भी अपने पति के साथ पंजाब से निर्वासित होकर बरेली जिले मे जाना पड़ा। भगवानसिंह को अन्तिम दिनों में सरकार ने आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाया था। उसने अपने लड़के रघुवीरसिंह को एटचिसन कालेज मे शिक्षा दिलाई थी। यही लडका भगवानसिंह के बाद अपने बाप का उत्तराधिकारी बना। रघुवीरसिंह सन् १८६८ ई० मे स्वर्गस्थ होगये। तब उनके लड़के रनबीरसिंह इस वंश के प्रधान मुकर्रिर हुये। इस खान्दान के लोगों में केवल सतसिंह ही सरकारी फौज मे गये। जिन्होंने केवल तीन साल 'मध्यभारत घुड़सवार पल्टन' मे काम किया। इनकी मृत्यु सरदार रघुवीरसिंह से भी एक साल पहले सन् १८६७ में होगई थी।

चौधरी तेजसिंह का आबाद किया हुआ यह गॉव जिला गुजरानवाला में है। तेजसिंह के वंशज इस गॉव में बहुत दिनों से रहते थे। उन्होंने कई गॉव की चौधरात भी मुस्लिम शासकों से ली थी। इस खान्दान में रजवन्तसिह एक प्रसिद्ध पुरुष हुआ था। सन् १७५६ ई० मे इस खान्दान में चौधरी भगतसिंह ने सिख धर्म की दीक्षा ली और गूजरसिंह जो कि एक शक्तिशाली जाट सिख और भंगी मिसल का प्रमुख था—के साथ अपनी लड़की का विवाह करके रूरियाला गॉव पर अपना स्वतन्त्र अधिकार घोषित कर दिया। सरदार गूजरसिंह ने अपने दोनों सालों देवासिह और सेवासिंह को अपने दल मे रख लिया और उन्हें गुजरात जिले में नौशहरा की जागीर भी दे दी। इन दोनों भाइयों का इस जागीर पर सम्मिलित प्रभुत्व रहा। सेवासिंह लडाई मे मारा गया। कुछ दिन बाद गूजर भगी सरदार भी लड़ाई में काम आया। उसके लड़के साहबसिंह ने देवासिंह से कुल जागीर अपने कब्जे में ले ली और उसे केवल रूरियाला और अन्य दो गाव जागीर में रहने दिये।

रूरियाला

देवासिंह के लड़के जोधसिंह ने रूरियानवाला सरदार के साथ जिसका कि नाम भी जोधासिंह था सवारों में नौकरी कर ली और सन् १८२६ तक बराबर युद्धों मे भाग लिया। सन् १८२५ के बाद जोधासिंह कुँवर शेरसिंह जी की फौज मे शामिल हो गये। सैयद अहमदखॉ के युद्ध मे कुवर शेरसिंह के साथ जोधासिंह ने अच्छी बहादुरी दिखाई जिसके उपलक्ष्य में दो सवार की नौकरी की शर्त पर रूरियाला की जागीर १२०४३) रुपयों के साथ हमेशा उनके ही अधिकार में रही। हॉ, बीच मे १८३५ ई० में खालसा दरबार ने किसी कारण से उसे जब्त कर लिया था किन्तु दूसरे ही साल दे दिया।

सन् १८४८ मे अंग्रेज सरकार का पक्ष लेने के कारण गुजरानवाला के कोटली गॉव में भी इन्हे सरकार ने जागीर बख्शी थी।

सतलज के धावे के बाद सरकार ने उन्हे अमृतसर मे ३०००) पर मय उनकी जागीर के अदालती मुकर्रिर किया। सन् १८४० मे स्पेशल कमिश्नर बनाया। जिस पर यह सन् १८६२ ई० तक रहे, अमृतसर दरबार के भी यह प्रबन्धक मुकर्रिर किये गये थे।

इनके छोटे भाई मानसिंह ने भी अच्छी तरक्की पाई। पहले तो वह राजा सुचेतसिंह की फौज मे भरती हुआ था। सिख युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेजों ने उसे लाहौर में ५० सवारों पर अफसर बनाया। १८५२ मे वह पुलिस में भर्ती हो गया और १८५७ के गदर में उसने अंग्रेजों की भरपूर रक्षा की। नवाबगंज के घेरे के समय उसकी खिदमतें अच्छी रहीं लेफ्टीनेंट बुलर की भी उसने रक्षा की। बुलर की मदद करते समय वह बहुत घायल हुआ। इसके उपलक्ष में सरकार ने उसे आर्डर आफ मेरिट की उपाधि दी। इसके बाद यह अमृतसर मे धार्मिक जीवन व्यतीत करता रहा। उसे प्रान्तीय दरबारी भी बनाया गया

और सी० ओ० आई० ई० का खिताब भी मिला। उसकी आमदनी १२०००) रुपये सालाना तक पहुँच गई थी।

सन् १८६२ ई० में सरदार मानसिंह का देहान्त हो गया। उन्होंने अपने जीवन में काफी उन्नति की। यह उनकी विशेषता थी कि जिधर भी वह कार्य करते उसमें पूरी कामयाबी हासिल करते। इनके बाद इनके पुत्र जवाहरसिंह को सरकार ने प्रांतीय दरबारी बना लिया और गुजरानवाला जिले में उसे आनरेरी मजिस्ट्रेट और जेलदार भी मुकर्रिर किया।

सन् १९०७ ई० में सरदार जवाहरसिंह का भी देहान्त हो गया और उनके पुत्र राजवन्तसिंह को जो उनका उत्तराधिकारी था दरबार में स्थान दिया गया।

स० गंडासिंह के बेटे करमसिंह ने भी पुलिस में पद लिया। उनकी जमीन से कुल १५०) सालाना की ही आमदनी थी। सरकारी नौकरी की आमदनी से ही उसने अपने रुतबे को बढ़ाने की कोशिश की।

सरदार मानसिंह के बड़े भाई काहनसिंह के तीन पुत्र हुये। हीरासिंह, वजीरसिंह और शेरसिंह। इनमें से हीरासिंह को सरकार ने चौबीसवीं पंजाब इंफैंटरी में सूबेदार मेजर बना दिया। आगे उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर सरदार बहादुर का खिताब भी दिया। हकदार होने पर सरदार बहादुर हीरासिंह जी ने पेन्शन ले ली। लाहौर और गुजरानवाला जिलों में सरदार हीरासिंह के पास ३०००) सालाना की आमदनी का भूभाग था जिसके कि वे मालिक समझे जाते थे। सन् १९०५ ई० इनका देहान्त हो गया।

हीरासिंह जी के सबसे छोटे भाई शेरसिंह को भी सरकार ने २८ वीं माउण्टेन बैटरी में सूबेदार मेजर बना दिया और सन् १९०१ में उसकी सेवाओं के उपलक्ष में सरकार ने उसे सरदार बहादुर की उपाधि दी।

हीरासिंह जी के दोनों पुत्र भी फौज में चले गये जिनमें से शार्दूलसिंह तो मध्यभारत घुड़सवार सेना में दफेदार और छोटा आशासिंह पंजाब इन्फैंट्री में सूबेदार बना दिये गये। जहाँ उन्होंने वफादारी से काम किया।

सरदार जोधसिंह के पुत्रों में से प्रतापसिंह और हर्षसिंह पुलिस और सेना में चले गये और वहाँ पर क्रमशः सूबेदार और रिसालदार मुकर्रिर हो गये। हर्षसिंह ने अवध युद्ध में अच्छी बहादुरी दिखाई और सन् १८६० ई० में इस संसार से चल बसा। इनका तीसरा भाई दलसिंह भी बंगाल सेना में चला गया। जहाँ वह रिसालदार हो गया। उसका सन् १८८५ में देहान्त हो गया।

सरदार जोधसिंह के बड़े भाई जयसिंह ज्वालासिंह भी २० वीं नेटिव इन्फैंट्री में सूबेदार हो गये। सन् १८८८ में उसका देहान्त हो गया। उसके लिये रुरियाला गाँव की आमद में से २४०) सालाना का हिस्सा था।

सरदार जोधसिंह के वंशजों के पास मौजा रामगढ जिला गुजरानवाला में ६८०) की आय का मौरूसी जागीर में था रुरियाले में कुछ जमीन और अमृतसर में मकानात की जायदाद थी।

यह जागीर अंग्रेजी इलाके में नहीं किन्तु फूल राज्यों में है। इसके मालिक फूल की सन्तान के और नाभा, पटियाला, जींद के भाई बन्धु है। नाभा राज्य के बुजुर्ग तिलोकसिंह के दो पुत्र थे। गुरुदत्तसिंह और सुखचैनसिंह। सुखचैनसिंह के तीन लडके हुए। आलमसिंह, गजपतिसिंह और बुलाखीसिंह। गुरुदत्तसिंह ने जिस प्रकार नाभा राज्य की नींव डाली थी उसी प्रकार सुखचैनसिंह ने जींद राज्य की। सुखचैनसिंह का बड़ा लड़का आलमसिंह लड़ाई में

बडरूखा वाले

मारा गया। इसलिये गजपतसिंह अपने पिता के उत्तराधिकारी हुये। राजा गजपतिसिंह के तीन पुत्र हुये। मेहरसिंह, भागसिंह और भूपसिंह। वड़रूखां का इलाका इन्हीं भूपसिंह जी के अधिकार में आया। इनके दो लड़के हुये करमसिंह और विसावासिंह। कर्मसिंह राजद्रोही होने के कारण अपने हक्कों से वंचित होगये। विसावासिंह वड़रूखां के मालिक रहे। सरदार विसावासिंह जी ने दो शादियाँ कीं किन्तु संतान पहली ही पत्नी से हुई। सुखासिंह और भगवानसिंह नाम के दो पुत्र हुये। सवत् १८८८ ई० मे विसावासिंह मर गये।

सुखासिंह का जन्म सन् १६७० ई० मे चन्द्रकौर के पेट से हुआ था। वोडावाल गॉव के सरदार वुधसिंह की लड़की राजकौर के साथ इसका विवाह हो गया। उसके उदर से हरनामसिंह और हीरासिंह नाम के दो पुत्र पैदा हुए। पिता की मृत्यु के वाद सरदार सुखासिह ने अपने भाई भगवानसिंह के साथ अधिकृत इलाकों का वरावर का वटवारा कर लिया था। किन्तु कुछ विना वटवारे के भी अपने पास वतौर सरदारी के रख लिया था। सन् १८५२ ई० में सरदार सुखासिह की मृत्यु हो गई। उस समय इनकी काफी इज्जत थी। गवर्नर जनरल के यहॉ इन्हे कुर्सी दी जाती थी।

सुखासिंह के वाद उसका पुत्र हरनामसिंह अपनी जागीर का मालिक हुआ। जिसका कि जन्म १८४० ई० मे हुआ था और इस समय जिसकी उम्र १२ साल थी। किन्तु तीन वर्ष के वाद ही हरनामसिंह मर गया। पीछे उसने एक भी पुत्र नहीं छोड़ा।

सुखासिंह के दूसरे पुत्र हीरासिंहजी सन् १८४३ ई० मे पैदा हुये थे। भाई के मरने पर इनकी उम्र केवल १२ साल थी। नाभा के महाराजा भगवानसिंह जी के लावल्द मरने के कारण आप नाभा राज्य के वारिस वनाये गए। वर्तमान महाराज प्रतापसिंह जी आप ही के पौत्र हैं। जो कि महाराजा रिपुदमनसिंह जी के सुपुत्र और उत्तराधिकारी हैं।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि विसावासिह जी के दूसरे पुत्र भगवानसिंह जी थे। जिनका कि जन्म सन् १८१५ ई० मे हुआ था। इनके दीवानसिंह और चतरसिंह नाम के दो पुत्र पहली रानी से जो श्यामगढ़ की थीं हुये और शेरसिंह नामक पुत्र पिंड रुढ़कीवाली रानी से हुआ। अपनी रियासत का वटवारा तो सरदार भगवानसिंह ने अपने भाई सुखासिंह से कर ही लिया था। सन् १८५२ मे इनका देहांत हो गया।

भगवानसिंह जी के वड़े पुत्र दीवानसिंह का जन्म सन् १८४१ मे हुआ था। दीवानसिंह की शादी वाजीदपुरे मे हुई थी। एक पुत्र तो उनका दस साल की उम्र मे ही गुजर गया। दूसरा पुत्र हरनामसिंह सन् १८६० ई० मे पैदा हुआ। तीसरा शमशेरसिंह हुआ। ये दोनों भाई अपनी जागीर पर अपने पिता दीवानसिंह के मर जाने के वाद तक शाति-पूर्वक काविज रहे। हरनामसिंह लावल्द मरे और शमसेर सिंह ने तीन लड़के छोड़े। फतहसिह, चेतसिंह और तेजासिंह इनमें फतहसिंह सन् १८६२ में चेतसिंह १८६६ मे और तेजासिंह जी १६०० मे पैदा हुए थे।

भगवानसिंह जी के शेप दो पुत्र शेरसिंह और चतरसिंह क्रमशः १८८२ और १८६१ ई० मे मर गये। सरदार चतरसिंह ने कोई संतान नहीं छोड़ी थी और सरदार शेरसिह की भी किसी सन्तान का सर लेपिलग्रिफिन ने जिक्र नहीं किया है।

इन सरदारों की राज्य और सरकार मे वड़ी इज्जत थी और रियासती जागीरदारों मे इनका ऊँचा दर्जा भी था।

यह जागीर पटियाला राज्य में वरनाले के पास है। भदौड़ को वावा आलासिंह ने वसाया था।

जिसे आगे चलकर अपने भाई दूना के लिये छोड दिया। दूना की संतान के लोग ही इस जागीर के मालिक हैं। इस प्रकार भदौड़िये भी फूलवशी है। अग्रेजों ने १८५४ मे जिस समय इस जागीर को जब्त किया था। उस समय इसमे ५८ गॉव थे। इस खान्दान का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

भदौडिये

चौधरी दूना के चार पुत्र उत्पन्न हुए। विघासिंह, दाऊसिंह, सगूसिंह और सुखसिंह। चौधरी दूना ने अपने भाई बुधासिंह की विधवा के साथ भी चादर डालकर नाता कर लिया था। उससे भी एक पुत्र शोभासिंह नाम का हुआ था। चौधरी दूना ने बादशाही हाकिमों से मित्रता करके जमीन और धन दोनों बढाये। जितने इलाके का पट्टा अपने नाम करा लिया था। उसकी रकम वक्त पर शाही खजाने में पहुँचाई। १७७८ विक्रमी सवत मे उसने वरनाला, धनौला, कोटदूना को आबाद किया। भाइयों के एवज माल न चुकाने के अपराध मे चौधरी दूना और उसके लड़के दाऊ को लाहौर के हाकिम ने कैद कर लिया। जिसमें दाऊ तो वहीं मर गया और चौधरी दूना छूटने के बाद खवास गॉव मे सवत् १७७३ मे मर गया। कुटुम्बी लोगों ने इसकी समाधि गोइन्दवाल मे गुरु अमरदास जी की समाधि के पास ही बनादी।

चौधरी दूना के पुत्र विघासिंह जिसका कि जन्म सवत्१७६० वि०मे हुआ था की शादी संवत् १७७० वि० मे डिघ के मान गोती जाट भोमे चौधरी की लड़की आगॉ के साथ हुई। जिसके उदर से सवत् १७६२ मे गुरदास नाम का पुत्र हुआ। चौधरी विघासिंह को मालियाना टूट जाने के अपराध मे हाकिम सूवा ने गिरफ्तार कर लिया। इस बीच सवत १७६५ मे गुरदास की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण उसकी मा आगा भी जहर खाकर मर गई। इससे विघा भी ससार से उदासीन होगया। जमीन जायदाद आपने छोटे भाई सुखू को सुपुर्द कर दी।

बिरादरी के लोगों ने विघासिंह को वैरागी होते देखकर पचायत की ओर फिर उस पर दबाव डालकर मोगा तहसील के बिलासपुर गॉव मे धारीवाल जाटो मे उसकी दूसरी शादी संवत् १८०६ मे देसो के साथ करादी। जिससे चूहडसिंह और मोहरसिंह नामक दो लडके पैदा हुये। कुछ दिन बाद सुखसिंह के मर जाने पर विघासिंह ने उसकी स्त्री पर भी चादर डालकर शादी कर ली। उससे दलसिंह पैदा हुये जिसे कोटदूना को देकर अलग कर दिया। संवत् १८३० मे विघासिंह मर गये।

उसके बाद उसका पुत्र चूहड़सिंह जिसका कि जन्म १५ कातिक सवत् १८०६ में हुआ था उत्तराधिकारी हुआ। सवत् १८२३ वि० के फाल्गुन मे पिंड काले के चौधरी मलसिंह की लड़की राजकौर के साथ उसकी शादी हुई। चूहडसिंह ने गुरुदास की बेवा के साथ भी नाता कर लिया। यह बडा बहादुर शूरमा हुआ है। इसकी बहादुरी के पंजाब के उस इलाके मे आजतक गीत गाये जाते हैं। इसने भदौड के आस पास ६० गाँवों पर कब्जा कर लिया। कोटले के पठानों से इसने बलपूर्वक कंगण के ताल्लुके को भी छीन लिया। इसने नाभा और पटियाला दोनों रईसो के इलाकों पर हाथ मारे और लूट मार भी की। इसे डर छू भी नहीं गया था।

सवत् १८५० ई० मे खन्ने गॉव के सज्जनसिंह ने इन्हे दुश्मनी के कारण शराब पिलाकर और सोने के स्थान पर आग लगाकर जिन्दा जला दिया। साथ मे दलसिंह कोटदूना वाला भी जल गया। जब यह खबर इसके पुत्र और संबन्धियों पर पहुँची तो उन्होंने खन्ने गॉव पर हमला करके सज्जनसिंह वराड़ को मार डाला। ग्यारह गॉवों पर कब्जा कर लिया।

चूहडसिंह के बाद उसका पुत्र वीरसिंह जिसका कि जन्म पौप वदी १५ संवत् १८२५ में हुआ था।

उत्तराधिकारी हुआ। इसकी शादी रामपुर के गरेवाल चौधरी वेगा की पुत्री महाकौर के साथ हुई थी। इसके पेट से पैदा होने वाले दोनों लड़के मर गये। सवत् १८४८ में गाजियाना गॉव तहसील मोगा मे महतावकौर से दूसरी शादी की। जिससे जवाहरसिंह, जयमलसिंह और जगतसिंह तीन पुत्र पैदा हुये। वीरसिंह चतुर और शूरवीर आदमी था। इसने महाराजा रणजीतसिंह को एक वहुत वढ़िया घोड़ा जिसकी कीमत २१००) थी, भेंट किया था। सवत् १८८० के क्वार महीने मे इसका देहान्त होगया। इसने अपने जीवन में ही अपने भाई दीपसिंह को हिस्सा जागीर का वांट दिया था। कहा जाता है कि सरदार वीरसिंह को लाट साहव के दरवार मे कुर्सी मिलती थी।

अपने भाई के स्वस्थ होने और जायदाद का वटवारा हो जाने के वाद दीपसिंह ने अपनी जायदाद के प्रवन्ध का काम संभाला। उसका जन्म संवत् १८३४ के क्वार मे हुआ था। और चनारथल सतलज के निकट (रायकोटहाना) मे साहवकौर के साथ शादी हुई थी। जिससे कोई औलाद न होने की उम्मीद मे दाना गॉव के सरदार हरीसिंह गिल की लड़की मानकौर के साथ दूसरी शादी की। इससे भी एक लड़की ही पैदा होने के कारण तीसरी शादी और की। इससे एक लड़का पैदा हुआ। जिसका नाम खड्गसिंह रक्खा गया। जो सीधा-साधा और वहादुर सरदार था। दीपसिंह जी मे अपनापन खूब था। उन्होंने महाराज पटियाला के विरुद्ध रणजीतसिंह जी को सहायता देने से साफ मना कर दिया था। १८५४ मे इसने फ्रांसीसी जार्ज टामसन के विरुद्ध जीन्द की सहायता की। संवत् १८७० मे दीपसिंह ने अपनी जायदाद कतई तौर से वड़े भाई के साझे से अलग कर ली। क्योंकि अव तक कुछ भाग साझे मे ही चला आता था। इसके कुछ ही दिन वाद दीपसिंह का स्वर्गवास हो गया।

दीपसिंह की मृत्यु के वाद खडगसिंह ने जोकि उसका एक मात्र पुत्र था। अपने हिस्से की जागीर का काम सभाला। खड्गसिंह का संवत् १८७६मे जन्म और संवत् १८८६ मे पिंडरले के सरदार विसावासिंह चाहल की पुत्री के साथ विवाह हुआ था। फिर दूसरा विवाह भी इसी गॉव मे खजानसिंह की लडकी के साथ हुआ।

शरीर से सरदार खड्गसिंह जी लंवे-चौड़े और पुष्ट थे। कहा जाता है कि उनका वजन दस मन पक्का था। इन्होंने पजाव के रईसों मे प्रसिद्धि प्राप्त की। अपनी रियासत मे अनेक इमारतें वनवाई। सिख-युद्ध मे आपने अंग्रेजों को ही मदद दी। गदर के समय फीरोजपुर पहुँचकर अंग्रेजों की रक्षा मे अपनी शक्ति खर्च की। गदर के एक साल वाद संवत् १९१५ वि० में खड्गसिंह जी का देहान्त होगया।

खड्गसिंह जी के पुत्र का नाम अतरसिंह था जो संवत् १८९० वि० मे कार्तिक सुदी १२ सोमवार को पैदा हुये थे। ग्यारह वर्ष की आयु मे अतरसिंह जी का पहला विवाह विसनपुर के जैजी सरदार वीरसिंह की पुत्री के साथ हुआ। इसके वाद इस सरदारनी के नि.सतान मर जाने के कारण सवत् १९०६ वि० मे रायपुरे के सरदार चढ़तसिंह की लड़कीके साथ दूसरी शादी हुई। जिससे दो लड़के भगवन्तसिंह, वलवतसिंह नाम के पैदा हुये। सरदार अतरसिंह जी वड़े विद्या-प्रेमी थे। गदर के समय आप भी अपने पिता के साथ फीरोजपुर मे फ्रेडरिक मार्सडन के पास मौजूद थे और अंग्रेजो की रक्षा और भलाई मे आपने भरपूर सहयोग दिया। जैतो के फकीर सामासाह के उपद्रव को दवाने के लिये आप भी पचास सवार लेकर उस इलाके में पहुँचे थे। आपने अपनी रियासत मे भी सुधार किये। पब्लिक के वच्चों की शिक्षा के लिये एक स्कूल भी खोला। सरकार की ओर से उन्हे खिताव भी मिला। दरवार मे उनकी कुर्सी अपने खानदान के लोगों मे आगे रहती थी। लुधियाने में उन्होंने एक पुस्तकालय भी खुलवाया था। सवत्

१८५३ मे उनका स्वर्गवास हो गया।

सरदार अतरसिंह जी के दो पुत्र हुये। उनके नाम यह हैं। सरदार भगवन्तसिंह और सरदार बलवतसिंह। सरदार भगवन्तसिंह जी का जन्म सवत् १९०९ कार्तिक सुदी ६ को और सरदार बलवंतसिह जी का जन्म सवत् १९१२ भादों सुदी ३ को हुआ था।

दोनों भाईयों ने भली प्रकार मौजूदा जमाने के देखते हुये शिक्षा प्राप्त की।

उपरोक्त वर्णन तो दीपसिह जी के वंशजों का है। उनके बड़े भाई वीरसिंह जी ने जवाहर-सिंह, जयमलसिंह और जगतसिह तीन पुत्र छोड़े थे। अब उनका वर्णन करते हैं :—

जवाहरसिंह का जन्म सवत १८८४ के चैत सुदी १२ को शुक्रवार के दिन मानकौर से हुआ था। इसने दो शादियाँ की। पहली संवत् १८५६ मे जव्वेमाजारिये के सरदारों के घर और दूसरी सवत् १८७५ पिंड खयाला के चाहलों की लड़की के साथ। इस दूसरी सरदारनी से अतरकौर नाम की लड़की हुई थी। जिसकी शादी कुँवर नौनिहाल लाहौर के साथ की गई। अतरकौर अपने पति के साथ सती भी होगई थी। जवाहरसिंह बड़ा शूरमा था। वह प्राय' लाहौर ही महाराजा रणजीतसिह की सेवा मे रहा करता था। पिता के मरने पर इसने मालिकी का दावा किया और संवत १८८३ मे वह अपने पिता का उत्तराधिकारी बना। इसके बाद संवत् १८८७ मे जवाहरसिंह का देहान्त हो गया। दो वर्ष बाद इसकी पहली स्त्री मर गई। दूसरी के साथ इसके छोटे भाई जगतसिह ने चादर डालकर शादी करली।

वीरसिह के दूसरे पुत्र जयमलसिह का जन्म सवत् १८४५ के कातिक वदी ११ को हुआ था। सवत् १८५८ के फागुन मे जयमलसिंह का विवाह कूटसी के सरदार बहादुरसिंह की लड़की के साथ हुआ। जिससे खजानसिंह औह निधानसिह नाम दो लड़के और भागभरी नाम की कन्या पैदा हुई। संवत १८६५ पौष सुदी १५ को जयमलसिह का देहान्त हो गया।

सरदार वीरसिंह के तीसरा पुत्र जगतसिंह संवत् १८४८ के पौष वदी ८ को पैदा हुआ था। इसकी पाँच शादियाँ हुईं। एक संवत् १८५६ मे पक्के पथराले के सरावाँ जाटों मे और दूसरी—इस स्त्री के मरने पर संवत् १८६७ ढिलवाँ के सरदार हीरासिंह की पुत्री दयाकौर के साथ। इससे एक पुत्र हुआ।

फिर भी १८८५ मे जगतसिह ने तीसरी शादी मानसां के शार्दूलसिह की लड़की सेखाँ के साथ कर ली। इससे दो लड़के हुये जो १०–१२ साल की उम्र मे ही मर गये। इतने से भी संतोष न होने पर अपने भाई की विधवा से नाता कर लिया। पाँचवीं शादी और भी कराई रतनकौरके साथ जो हमीरवाला कुरज के धारीवालो की पुत्री थी। इससे अजैपाल का जन्म हुआ जो बड़ा फिसादी और खतरनाक आदमी था। कई तो इसने खून किये। लाहौर पटियाला वगैरह भागता फिरा। अत मे संवत् १९२२ में भदौड़ आकर मर गया।

जयमलसिह ने अपना एक उत्तराधिकारी छोड़ा था खजानसिंह। यह सम्वत् १८६१ ई० मे जसकौर के पेट से पैदा हुआ था। सम्वत् १८७० मे मौड़ गाँव के सरदार धन्नासिह की पुत्री साहबदेवां के साथ उसका विवाह हुआ। खजानसिंह अपने ताऊ जवाहरसिह के शामिल रहा। उससे पीछे सरदारी पर भी वही कायम हुआ। सम्वत् १८८८ मे वह मर गया। उसके पीछे उसकी गर्भवती विधवा के महांसिंह का जन्म हुआ।

महांसिंह का जन्म आषाढ़ सुदी १० सम्वत् १८८९ में हुआ था। चार वर्ष की उम्र मे ही वजीरसिंह वगेहरिये की पुत्री अतरकौर के साथ इसका विवाह हुआ। जिससे एक लड़का सम्वत् १९१२ मे पैदा हुआ।

उसका नाम ईश्वरसिंह रक्खा गया। महासिंह शिकार का वड़ा शौकीन था। सरकार से उसे खिलअत और खिताव मिले। दरवार में दूसरे नम्वर की उसकी कुर्सी थी। सम्वत् १९१५ के पोप महीने मे उसका देहान्त हो गया। सरदारनी अमरकौर ने केहरसिंह के साथ पुनर्विवाह कर लिया।

ईश्वरसिह की शादी धारीवालों के लोहार गॉव मे माघ सम्वत १८२० मे हुई। शादी के तीन वर्ष ही वाद सम्वत् १८२३ के क्वार की पूर्णिमा को तपैदिक मे चल वसा। लावल्द मरने के कारण इनका इलाका उसके नजदीकी चाचा केहरसिंह को मिल गया। जिसके साथ कि इसकी मा ने नाता कर लिया था।

केहरसिंह निधानसिंह का लड़का और खजानसिह का भतीजा था। यानी जयमलसिह के दूसरे लड़के निधानसिह का पुत्र था। निधानसिह संवत १८६४ वि० के पौप सुदी १२ को पैदा हुआ। सवत् १८६० मे उसकी शादी जोगे गाव के फैजूसिह चाहल की लड़की चन्दकौर से हुई थी। इसी के पेट से वैसाख वदी १२ संवत १८६२ मे केहरसिह पैदा हुआ था। केहरसिंह लगड़ा होते हुए भी वड़ा वहादुर था। कहारी मे उसने पटियाला की सेनाओं से भी मुकावला किया था। अपनी भाभी के अलावा उसके एक विवाहित स्त्री आसकौर थी। उससे प्रतापसिह और औतारसिह नाम के दो लड़के पैदा हुए थे। केहर-सिंह संवत १९१४ के गदर मे फिरोजपुर मे अग्रेजों की ओर से लड़ता हुआ घायल हुआ था। गवर्नर के दरवार मे उसे भदौड़िये सरदारो से चौथे नम्वर कीं कुर्सी थी। इसे अपने चचेरे भाई के लड़के ईश्वर-सिंह की जायदाद उसके लावल्द मरने के कारण मिल गई थी। प्रतापसिह और औतारसिह जिनके कि जन्म क्रमश सम्वत १८१० और १८२० विक्रमी मे हुये थे अपने वाप के उत्तराधिकारी हुये।

सरदार जगतसिंह जी के पांच पुत्र थे, गुलावसिह, वसावासिह, खेमसिंह, नारायणसिंह और अजपालसिह। गुलावसिंह का जन्म अपाढ़ सुदी ६ सवत १८७४ में दयाकौर से हुआ था, कौलगढ़ के दीवान सोढ़ासिंह की लड़की के साथ सम्वत १८८५ मे शादी हुई। इसके वाद और भी कई शादियॉं कीं किन्तु सतान किसी से नहीं हुई। संवत १९१२ मे यह नि सतान मर गया। अन्तिम दिनों मे यह टिल्लेवाल में रहने लगा था। वसावासिह का जन्म फागुन सुदी १४ सम्वत १८८७ वि० में रतनकौर से हुआ था। सम्वत १८९९ मे दीनों के सरदार हरीसिंह की लड़की के साथ शादी हुई। अपने वाप से नाराज होकर पटियाला रहने लग गया था। आपाढ़ सुदी ८ सम्वत १९०२ मे इसका देहान्त हो गया। खेमासिंह का जन्म सन् १८६५ मे सुखां के पेट से हुआ था। सात साल की उम्र मे ही यह मर गया।

नारायणसिह सम्वत् १८६५ में सुखा के उदर से पैदा हुआ और जल्दी ही मर गया, इसके वाद पैदा होने वाले लड़के का भी नाम सुखां ने नारायणसिंह ही रक्खा। वह भी सम्वत् १८२२ मे ननिहाल मे रहते हुये मर गया।

अजपालसिंह भादों वदी २ सम्वत् १९१५ मे रतनकौर से पैदा हुआ और चार वर्ष ही वाद मर गया। इस प्रकार जगतसिंह का वंश समाप्त हो गया।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि आलासिंह के भाई दूना के पॉच पुत्र थे (१) विघासिंह (२) दाऊ-सिंह (३) संगूसिह (४) सुखसिह और शोभासिह। इनमें दाऊसिह तो लाहौर के जेल मे नि संतान ही मर गया था। संगूसिह भी २३ वर्ष की उम्र मे अपने पीछे अपनी वेवा को छोड़कर मर गया

रामपुरिये,

सम्वत् १७८० में पैदा हुआ था। इसके दो विवाह हुये। सम्वत् १८०१ मे भागां के साथ दूसरा १८१६ वि० मे हरिकौर के साथ। कहा जाता है यह अपने समय का अद्वितीय वहादुर शूरमा था। सम्वत् १८२२ मे यह मर गया। वडी औरत ने अपने देवर विघासिंह

से नाता कर लिया। इसके वशज दूनकोटिये कहलाते हैं। शोभासिंह जेठ सुदी ६ सम्वत् १७७५ मे पैदा हुआ था। इसने तीन शादियाँ कीं। इसके पास रामपुरा और कोट वख्तू की जागीर थी। सम्वत् १८२६ मे इसका देहान्त हो गया। इसके वशज इनकी जागीर पर काविज रहे।[1]

विघासिंह की सन्तान मे से मोहरसिंह और दलसिंह के वशजों का वर्णन शेप है जो इस प्रकार है। दलसिंह सम्वत् १८२४ में भागां के पेट से पैदा हुआ था सम्वत् १८३७ मे काले गांव की केसरकौर के साथ उसका विवाह हुआ। इनके वशज कोटदूने पर मालिक हैं दलसिंह के एक पुत्र जीतसिंह थे जो सम्वत् १८४५ चैत सुदी १२ को पैदा हुये थे। सम्वत् १८५७ में सेखी गोती जाटों की पुत्री खेमकौर के साथ शादी हुई। अपने पीछे दो पुत्र महताव-सिंह और जोधसिंह को छोड़कर सम्वत् १८७५ मे जीतसिंह चल वसे।

कोटदूनिये

महतावसिंह का जन्म संवत् १८८६ के आपाढ़ मे सुदी २ को खेमकौर के उदर से हुआ था। इनकी शादी रामपुर के गरेवालां गोती जाटो मे हुई। दूसरी स्त्री से एक लड़की और एक लड़का पैदा हुए। लडके का नाम उसकी वहन के नाम की तरह अतरसिंह रक्खा गया। अतरसिंह का जन्म सम्वत् १८८८ मे साहवकौर से हुआ था। अतरसिंह के जन्म के तीन वर्ष वाद ही सरदार महतावसिंह का सवत् १८६१ में देहान्त हो गया। अतरसिंह ने तीन शादियाँ कीं, जिनसे एक लड़की और एक लड़का पैदा हुये। लड़की का नाम किशनकौर और लडके नाम किशनसिंह रक्खा, जिसका कि जन्म संवत् १६१६ के भादों मे शामकौर के पेट से हुआ था। यही आपकी मिलकियत के अधिकारी हुये। इनके पिता अतर-सिंह का सम्वत् १७२० मे जव कि यह कुल चार वर्ष के थे देहान्त हो गया था।

जोधसिंह जो कि महतावसिंह के भाई थे। संवत् १८७३ के क्वार मे खेमकौर के पेट से पैदा हुए थे। इन्होंने धारीवाल गोत के जाटों मे शादी की थी। जिससे लालसिंह और पंजावसिंह नाम के दो पुत्र और पंजावकौर नाम की एक लड़की पैदा हुई। इसके वाद इन्होंने दो शादिया और भी करलीं।

लालसिंह का जन्म सवत् १८७० की भादो वदी ४ को सरदारनी धनकौर के पेट से हुआ और इन्हीं के पेट से सवत् १८६३ की माघ सुदी ११ को पजावसिंह का जन्म हुआ। लालसिंह की दो शादिया हुई। पजावसिंह की शादी गिल गोत मे हुई। जिससे दो पुत्र सम्पूरनसिंह और भागसिंह सवत् १७७५ तक ही हो गये थे।

चौधरी विघासिंह के पुत्रों मे मुहरसिंह के वशजों का वर्णन अव तक नहीं कर सके। अत. यहाँ देते हैं।

मोहरसिंह का जन्म सावन वदी २ संवत १८२४वि० को देसो के पेट से हुआ था। संवत् १८३१ई० मे गाव फेरुराई मे टेकसिंह धारीवाल की लड़की राजकौर के साथ शादी हुई। इसके उदर से (१) अमरीकसिंह (२) समुद्रीसिंह और (३) सुजानसिंह नाम के तीन लड़के और महतावकौर नाम की लडकी पैदा हुई। इसके वाद दो शादिया और कीं किन्तु उन दोनों सरदारनियो से कोई संतान नहीं हुई। मोहरसिंह

१. रामपुरिये सरदार कहलाते है। शोभासिंह के (१) जस्सासिह (२) मस्सासिह (३) टेकसिह (४) चडत-सिह और वुधसिह पाच पुत्र पैदा हुए। जिनमें से जस्सासिह नावालिग ही मर गया। वाकी चारो की औलाद रामपुर पर आवाद है। रामपुरे को सरदार रामसिंह ने वसाया था। और वख्तू नामक गाव को शोभासिंह की चादर डाली हुई (भाभी) सरदारनी वख्तो ने वसाया था यह जागीर ६०००) सालाना की थी।

झगड़ालू प्रकृति का आदमी नहीं था। इसलिये उसने असमाल नाम का एक गॉव तो अपने गुजारे के लिये ले लिया। वच्चों को अपने भाई चूहड़सिंह के साथ ही रहने दिया। जव चूहड़सिंह ने अपने दिन निकट समझे तो मोहरसिंह के लड़कों में उसने जद्दी इलाके के दो तिहाई वांट दिये। संवत १६०३ में सरदार मोहरसिंह का स्वर्गवास हो गया।

अमरीकसिंह का जन्म सम्वत् १८४२ में वैसाख वदी ५ को हुआ था संवत् १८५४ में पहली शादी हुई। जिससे चन्दकौर नाम की लड़की पैदा हुई। दूसरी शादी संवत् १८६० में की उससे भी एक लडकी रतनकौर पैदा हुई। सम्वत् १८६७ के क्वार वदी ८ को धर्मकौर के पेट से इस अमरीकसिंह के एक पुत्र देवासिंह पैदा हुआ।

अमरीकसिंह के दूसरे भाई समुद्रसिंह का जन्म सम्वत् १८४६ वैसाख वदी ४ को हुआ था। समुद्रसिंह की चार शादियां हुईं। चौथी सरदारनी प्रतापकौर के पेट से इनके अचलसिंह नाम का पुत्र पैदा हुआ। समुद्रसिंह वाप से नाराज होकर पटियाला महाराज कर्मसिंह के पास जाकर नौकर होगया। सम्वत् १८८१ ई० में भाई माना ने जव भदौड़ पर कब्जा करने के इरादे से हमला किया तो अचलसिंह ने पटियाला की फौजों की मदद से उसे शांत किया। महाराज मोहरसिंह की मौत के बाद महाराजा पटियाला की सिफारिश के कारण और उस वलवे को नष्ट करने की वजह से इलाके की सरदारी वजाय अमरीकसिंह के इसे ही मिली। इसे प्रान्तीय दरवार में कुर्सी मिलती थी। सम्वत् १८६३ में इसका देहान्त हो गया। इसका लड़का अचलसिंह जिसका कि जन्म १८८८ सम्वत् के माघ वदी पंचमी को हुआ था। इसका उत्तराधिकारी हुआ। अचलसिंह ने भी तीन शादिया कीं। अमरीकसिंह के पुत्र देवासिंह ने इस वात का दावा कर दिया कि असल हकदार जागीर का मैं हूँ इसलिये सरदारी मुझे मिलनी चाहिये थी। सरकार ने सरदारी इन दोनों के वजाय मोहरसिंह के तीसरे पुत्र को दे दी। क्योंकि ये दोनों तो मोहरसिंह के पोते थे और पोतों का हक नहीं होता। अचलसिंह ने गदर के समय फीरोजपुर रहकर सरकार की सेवायें कीं।

मोहरसिह के तीसरे पुत्र शोभासिंह का जन्म सम्वत् १८५१ में आषाढ़ सुदी ४ को हुआ था। सम्वत् १८६० में भागणकौर के साथ इनकी शादी हुई। जिससे सम्वत् १८६६ के पौष वदी ८ को उत्तमसिंह नाम का एक लड़का पैदा हुआ। जो अपने वाप की जिन्दगी में ही वटवारा कराकर अलग हो गया। सम्वत् १८८५ में शोभासिंह का अधिक शराव पीने के कारण देहान्त हो गया।

उत्तमसिंह के अतरसिंह नाम का लड़का भादों सुदी ८ सवत् १८६४ में हुआ था। जिसने अपने पूर्वजों की तरह एक स्त्री से सन्तोष न करके वहुविवाह की रस्म को उसी भांति पूरा किया था।

अमरीकसिंह के पुत्र देवासिह का जन्म सम्वत् क्वार वदी ८ सम्वत् १८६७ वि० में धर्मकौर के पेट से हुआ था। इसने भी चार शादियां कीं। आखिर यही कम क्यों रहता। जिनसे कई लड़के पैदा हो-होकर वचपन में ही मर जाते रहे। सम्वत् १८६२ में पिंड उगोकी के धारीवालों की लडकी महतावकौर के साथ शादी की। उससे रामदेवी और नारायणकौर नामक लड़की पैदा हुई। इसी से सम्वत् १६०६ के फागुन में नारायणसिंह नामक पुत्र का जन्म हुआ। अपनी दोनों वहिनों की शादी सयाने होने पर नारायणसिंह को ही करनी पड़ीं क्योंकि देवासिंह तो उस समय तक चलाणा कर चुका था। सम्वत् १६२३ में लधड्डां वाले सरदारों के यहां अपनी भी शादी की।

सरदार आलासिंह के एक भाई दूनासिह के वंशजों का हम वर्णन कर चुके हैं अव दूसरे भाई

वख्ता के वंशजों का वर्णन शेष है। जो कि मलौदिये रईस कहलाते हैं। मलौद इस समय जिला लुधियाना में शामिल है। सन् १७११ ई० मे बख्तमल जी ने सहना गॉव में कोट बख्तमल आवाद किया था जो कि उन्हीं के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था। सन् १७५७ में बख्तमल का देहान्त हो गया[१]। उसके वाद उसके लड़के मानसिंह को अपने पिता के समस्त इलाके पर अधिकार हुआ। मानसिंह ने भी अपने समय में अनेक गॉवों को अपने अधिकार मे करने का प्रयत्न किया। मानसिंह बड़ा दानी था।

मलौद

मानसिंह[२] के दो लडके थे दलेलसिंह और बाघसिंह। इन दोनों भाइयों मे काफी झगड़ा रहा। दलेलसिंह ने राजा साहब पटियाला के पास बाघसिंह की शिकायत की कि मेरे छोटे भाई बाघसिंह ने कोट वख्ता पर जबर्दस्ती कब्जा कर लिया है। दीवानसिंह ने बाघसिंह पर चढ़ाई की। बाघसिंह किले मे बैठकर वड़ी वहादुरी से लड़ा किन्तु आखिर मे हार गया। आठ दिन के युद्ध के वाद कोट बख्ता को दीवान ने वाघसिंह से छिना कर दलेलसिंह को दे दिया। इसके वदले मे दलेलसिंह ने दीवानसिंह को वीस हजार रुपया नकद और एक तोप भेट की। बाघसिंह सन् १८२० मे और दलेलसिंह सन् १८२४ ई० में स्वर्ग रवाना हो गये।

महाराजा दलेलसिंह ने दो लड़के अपने पीछे फतहसिंह और मितसिंह नाम के छोड़े। दलेलसिंह का देहान्त सन् १८२४ ई० मे हुआ था। फतहसिंह अपने बाप की जागीर का सरदार हुआ और अपने वाप के २६ वर्ष वाद मर गया।

फतहसिंह के भी दो लड़के थे। हजूरासिंह और उत्तमसिंह। हजूरासिंह अपने बाप के चार वर्ष ही बाद मर गया। इसलिये उसका छोटा भाई उत्तमसिंह कुल जायदाद का मालिक हुआ और सरकारी कार्यों मे भाग लेने के कारण इसे सरकार की ओर से कुर्सीनशीन किया गया। मलौदियों में इसकी इज्जत सर्वोपरि थी। सन् १८६५ मे इसका स्वर्गवास होगया।

सरदार उत्तमसिंह के पास मौजा सहना और रामगढ़ आदि थे जिनकी आमदनी ३३४५५) सालाना थी।

सरदार दलेलसिंह के छोटे पुत्र सरदार मितसिंह और उसकी सन्तान के पास मलोद और पक्खो वगैरह की जागीरें हिस्से मे थीं। जिनकी आमदनी २०४१) रुपया सालाना की थी। सरदार मितसिंह[३]

१. किन्तु सरदार अतरसिंह रईस भदौड ने संवत १८११ यानी सन् १७५४ में लिया था।

२ मलोद को मानसिंह ने ही मालेरकोटला से जीता था।

३ सरदार मितसिंह के लडके राजा वदनसिंह के छोटे भाई का नाम सरदार सुन्दरसिंह था। जो अपने भाई से पहले ही सन् १६१७ में स्वर्गवास हो गए थे। उनके तीन लडके थे (१) राजेन्द्रसिंह (२) किशनसिंह (३) गुरुदत्तसिंह। इनमें से राजेन्द्रसिंह जी ने सेना में लेफ्टीनेंट का पद लिया और सरकार की अच्छी सेवायें करने के कारण सरदार बहादुर का खिताब पाया। सन् १६२६ में अपने पीछे चार पुत्र छोड़ कर स्वर्गस्थ हो गये। इन चारो के नाम योगेन्द्रसिंह (जन्म १६१०) महेन्द्रसिंह (जन्म १६१३) वीरेन्द्रसिंह (जन्म १६१८) धीरेन्द्रसिंह (जन्म १६२०) है।

किशनसिंह लावल्द मरे और गुरुदत्तसिंह जी के दो पुत्र हुए। राजेन्द्रसिंह और रामेश्वरसिंह। जिनके कि क्रमश सन् १६१४ और १६१७ में जन्म हुये हैं।

का संवत् १८७८ ई० में देहान्त हो गया था। उसके दो लड़के थे (१) वदनसिंह (२) सुन्दरसिंह। वदनसिंह ने अपनी योग्यता और सेवाओं से सरकार को खुश कर लिया था। जिससे सरकार की ओर से राजा का खिताव पाने में सफल हुआ था। उसके छोटे भाई का उसके आगे ही देहान्त होगया। सन् १६२२ में राजा वदनसिंह भी चल वसा। राजा वदनसिंह के तीन पुत्र हुए थे। (१) हरनामसिंह (२) महतावसिंह और (३) सरदार दलसिंह। इनमें पहले दो का देहान्त राजा साहब के जीवन में ही और लावल्द हो गया था। तीसरे सरदार दलसिंह जी ने अपने जीवन को अपने पिता की तरह ही ऊँचा उठाया और अच्छी तरह से अपनी रियासत का प्रवन्ध किया। सरकार के प्रति सद्भाव रखने के कारण सरकार ने वहादुर और आर० बी० ई० की पदवी से विभूपित किया। आपका जन्म सन् १८६८ का वताया जाता है। आपके सन् १८८५ में मन्तसिंह नाम का सुपुत्र का जन्म हुआ। और फिर सन् १६१७ में अमरजीतसिंह पोता हुआ। इस प्रकार सरदार दलसिंह जी अपने समय के खुशवख्त लोगों में समझे जाते हैं।

जमींदारी के कामों में भी आपने रुचि रक्खी। जिससे जागीर के प्रवन्ध में सहूलियत रही। सन्तान को जमाने की रफ्तार के मुआफिक योग्य वनाने की ओर से आप सतर्क रहे हैं।

वख्तमल के दूसरे पुत्र वाघसिंह थे। ऊपर जो इतिहास है। वह उनके वडे पुत्र दलेलसिंह के वंशजों का है।

वाघसिंह के दो पुत्र हुये थे एक रनजीतसिंह दूसरे हकीकतसिंह। वाघसिंह ने अपने ही समय में अपने भाई से जागीर का वटवारा करा लिया था। इसलिये उसके मरने पर अपनी स्वतन्त्र जायदाद के दोनों पुत्र मालिक हुये। वाघसिंह का सन् १८२० ही में देहान्त हो गया। कुछ दिन के वाद दोनों भाइयों ने भी अलग २ होने की कोशिश की किन्तु सन् १८५४ ई० में रनजीतसिंह के मर जाने के वाद हकीकतसिंह के हाथ ही में अपने आप की सारी जागीर आगई क्योंकि उसका भाई रनजीतसिंह लावल्द ही मर गया था।

सन् १८६६ ई० में हकीकतसिंह के एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम वलवतसिंह रक्खा गया। जब कि कुँवर वलवंतसिंह की उम्र केवल ६ वर्ष की थी। सरदार हकीकतसिंह जी का देहान्त हो गया। उनके नावालिग होने तक सरदार वलवतसिंह की मा ने जागीर की देखभाल की। सरकार की ओर से भी ख्याल रक्खा गया।

सरदार वलवंतसिंह जी के दो पुत्र हुये। भगवन्तसिंह और नारायणसिंह। खेद है कि इन दोनों का क्रमश. सन् १६२१ और सन् १६२७ई० में देहान्त हो गया। इन दोनों ही ने तीन पुत्र अपने पीछे छोडे।

सरदार भगवन्तसिंह के वलवंतराजसिंह हैं जिनका जन्म १६२१ में अपने पिता की मृत्यु वाले वर्ष में ही हुआ है और सरदार नारायणसिंह के (१) पुरुपेन्द्रसिंह (२) नरेन्द्रसिंह हैं। जिनमें पुरुपेन्द्र सिंह जी का जन्म १६१६ में और नरेन्द्रसिंह जी का जन्म १६२६ ई० में हुआ है।

खान्दान फूल की वड़ी जागीरों का वर्णन हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं अव छोटी २ जागीरों का जिक्र करते हैं। फूल खान्दान की पाँच छोटी २ जागीरें हैं जो (१) गुमटी वाले, लोहरगढ़िये (२) मिरजे की दयालपुरिये, (३) जिउन्दा वाले, (४) रामपुरिये और (५) कोट दूनेवाली

फूलवंशीय छोटी जागीरें

का भी वर्णन पीछे आ गया है। इन पाँचों जागीरों की लगभग इकत्तीस हजार सालाना की आमदनी है।

इस खान्दान का संस्थापक फूल का पुत्र चौधरी रघु था। जिउन्दे गाँव में उन्होंने अपना प्रभुत्व

स्थापित किया था। चौधरी रघु बहादुर आदमी थे। उन्होंने अपने बाहुबल से इस मिल्कियत को कायम किया था। चौधरी रघु के चार पुत्र हुये। तीन पुत्र निःसतान मर गये। चौथे हरदाससिंह की औलाद आजकल इस जागीर की मालिक है। इन्हीं की एक पत्ती भगरौल है इनके यहाँ बटाई की प्रणाली है। जागीर की कुल आमदनी ४२००) रुपए सालाना है। लगभग १०० आदमियों का इसी पर दारमदार है।

जीऊन्दे वाले

चौधरी फूल की चौथी स्त्री रज्जो के उदर से तीन लडके पैदा हुये। जिनमे से एक नि सन्तान मर गया दो के सन्तान हुई। जिसने गुमटी गॉव को आबाद किया। इनकी सात पत्नी हैं। इस जागीर को स्थापित करने मे इन्हे सुखानन्द वैराड़ से अच्छी सहायता मिली थी। कुल जागीर ८०००) सालाना की है और लगभग ६०० आदमियों का दारमदार इसी के ऊपर है। लगान मे बटाई लेते हैं। यह जागीर राज्य नाभा के मातहत है। जागीर की आमदनी कम होने के कारण खुद भी कास्त करते है।

लोहडगढ़िये गुमटीवाले

सुखचैनसिह के एक पुत्र बुलाखी माई भागो के उदर से पैदा हुआ था। सुखचैनने बुढालीकी ढाव की जमीन मे गढ़ी सुखचैनसिह आबाद की थी। बुलाकी सीधा चौधरी था। कोटकपूरे के पास इसकी शादी हुई। जिससे पैदा होने वाले लड़के का नाम मिरजा रक्खा। मिरजेके छोटे भाई का नाम आलमसिंह था। जब वह मर गया तो मिरजा ने उसकी स्त्री के ऊपर चादर डालकर अपना घर बसा लिया। इससे जैतू नाम का लड़का पैदा हुआ। दयालसिंह पहली स्त्री से पैदा हुआ था। इस प्रकार एक गॉव का ही नाम मिरजे का दयालपुर हो गया। इनके वंशज उसी गॉव मे रहते है। छलाल और जलालपुर भी इन्हीं के पास हैं। कुल जागीर ७०००) सालाना की है। लगभग ६० आदमियों का इसी पर निर्वाह है। लगान मे बटाई का रिवाज है। यह जागीर राज्य जींद मे है।

मिरजेकी दयालपुरिये

रामपुरिये और कोटदूनिये वालों का जिक्र पीछे कर ही आये है।

इन जागीरों का दौरा भदौड़ के सुयोग सरदार अतरसिंह जी ने किया था। उस समय के हालात मे उन्होंने लिखा है कि ये इनमे राजवश का खून अब तक तासीर रखता है। किन्तु पढ़ने लिखने की ओर न तो ध्यान देते हैं और न उसे महत्वपूर्ण समझते हैं।

पिछले वर्षों मे शिक्षा सुधार तथा नौकरियों की ओर इनका ध्यान गया है।

जिस प्रकार मलोद लुधियाने मे है। उसी प्रकार पक्खो, वेर और रामपुर की बहुत छोटी २ जागीरें जिला लुधियाना में फूल वंश की और हैं। जिनमे से प्रांतीय दरबार मे मलोद को ही स्थान मिलता है।

यह जागीर जिला करनाल मे है। पहले इसपर निशानवालिया मिसल का अधिकार था। यहा का अधिपति सरदार हिम्मतसिंह था। उसके मरने पर सरदार कर्मसिंह ने अपना दखल जमा लिया, आरभ मे उसे केवल पॉच गॉव हिम्मतसिंह की सरदारनी से मिले थे। अपनी बुद्धिमानी और बहादुरी से उसने लगभग तीस हजार सालाना आमदनी के इलाके पर कब्जा कर लिया। निशानवाली मिसल मे काफी फूट फैल चुकी थी। सब सरदार आपस की लडाई-भिडाई मे लगे हुए थे। उनकी कमजोरी से सरदार कर्मसिह और महाराजा रणजीतसिंह दोनों ने लाभ उठाया। कहा जाता है सरदार कर्मसिंह सन् १७५६ ई० मे इलाका मांझ से इधर आया था और उसने इस मिसल के साथ मिलकर काम किया था। सन् १७७५ में हिम्मतसिंह के मरने पर उसकी

पक्खो, वेरा रामपुर शाहाबाद

बेवा ने सरदार कर्मसिंह को केवल पॉच गॉव दिये थे। सन् १८०८ ई० मे जब सरदार कर्मसिंह की मृत्यु हुई वह इतना बड़ा वैभव छोड गया कि उसके लड़के खड्गसिंह के साथ पटियाला महाराज कर्मसिंह ने अपनी बहिन प्रेमकौर की शादी की। यह घटना सन् १८०६ ई० की है।

सरदार कर्मसिंह ने चार बेटे अपने पीछे छोड़े। (१) रनजीतसिंह (२) शेरसिंह (३) काहनसिंह और खड्गसिंह। इन्होंने अपने पिता के मरने के बाद लड़-झगड़ कर इलाका आपस में बांट लिया। सरदार खड्गसिंह जिसकी कि शादी पटियाला मे हुई थी सन् १८३१ ई० में नि सन्तान मर गये। इसलिये उनका इलाका सरदार शेरसिंह को दिया गया। तीस वर्ष तक इस इलाके का उपयोग करके सन् १८६१ में शेरसिंह भी मर गये। उनके पीछे उनका लड़का केसरसिंह भी मर गया। केसरसिंह के नि.सतान मरने के कारण अंग्रेज सरकार ने हड़प लिया। यह घटना सन् १८६३ की है। केसरसिंह का इलाका ग्यारह हजार सालाना से ऊपर की आमदनी का था।

जिस सरदार कर्मसिंह ने अपने बाहुबल से इतना बड़ा इलाका पैदा किया था और जिसने पटियाला के दीवान नानूमल को नाक चने चबवा दिये थे। और जो हमेशा अपनी मान मर्यादा के लिये मरने-मिटने को तैयार रहता था तथा जिसने पटियाला की कुछ भी परवाह न करके खुशालसिंह बन्दूरवाले को मदद दी थी। उसका ग्यारह हजार का इलाका इस प्रकार लावारिसी मे अंग्रेज सरकार ने हड़प लिया। हालांकि सरदार कर्मसिंह के दो पुत्र और भी शेष थे।

सरदार रनजीतसिंह के धर्मसिंह और किशनसिंह नाम के दो पुत्र हुये। जो अपने इलाके की बड़ी सतर्कता से रक्षा करते रहे। हालांकि उनको भी यह भय बराबर लगा रहता था कि कहीं उनकी जागीर पर भी हाथ साफ न हो। इसलिये वे अंग्रेज हाकिमों को बराबर प्रसन्न करते रहते थे।

सरदार धर्मसिंह के शिवनाथसिंह नाम के पुत्र पैदा हुये। जो अपने पिता के स्वर्गवास (सन् १८७६ ई०) के ४६ वर्ष बाद सन् १९१५ ई० मे अपने पीछे एक मात्र पुत्र सरदार जस्मीरसिंह को छोड़कर स्वर्गवासी हो गये। सरदार जस्मीरसिंह जी का जन्म १९११ ई० मे हुआ था। इस समय आप ही शाहाबाद जागीर के प्रधान हैं।

सरदार किशनसिंह जी जो कि सरदार धर्मसिंह जी के भाई थे सन् १८८० में स्वर्गवासी हो गये। उन्होंने भी अपने पीछे एक ही पुत्र विचित्रसिंह छोड़े थे। सन् १८९८ मे विचित्रसिंह जी भी प्रस्थान कर गये। उन्होंने अपने पीछे दो लड़के छोड़े थे। राजेन्द्रसिंह और हरेन्द्रसिंह जिनमे से राजेन्द्रसिंह का सन् १९२६ मे देहान्त हो गया। हरेन्द्रसिंह अपने हिस्से पर काबिज हैं जिनका कि जन्म सन् १८९८ में हुआ था। सरदार जयवीरसिंह और हरेन्द्रसिंह दोनों की लगभग ८०००) सालाना की आमदनी की जागीर है। काहनसिंह जो कि सरदार रनजीतसिंह जी के भाई थे वह सन् १८३६ में चलाना कर गये। उनके बाद उनके पुत्र प्रतापसिंह के हाथ जागीर आई जोकि साढ़े तीन हजार सालाना आमदनी की समझी जाती थी।

सन् १८७८ ई० मे प्रतापसिंह भी अपने पीछे रामनारायणसिंह नाम का पुत्र छोड कर चल बसे। संवत १८९२ मे रामनारायणसिंह का भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार सरदार कर्मसिंह के चार पुत्रों में से केवल एक का वंश ही फल फूल रहा है।

यह जागीर (बागरियान) जिला लुधियाना मे है। यहां के रईस भाई के नाम से याद किये जाते हैं। क्योंकि वह भाई रूपा की संतान मे से हैं।

वागरियान

इलाका तरनतारन में वड़ाघर नामक गांव मे आकल नाम का एक सिख रहता था। अनजान मे उसने अपनी लड़की की शादी तुकलानी के सादे मुलतानिये के साथ कर दी। लड़की बड़ी गुरु-भक्त थी। वह अपने पति सादे को लेकर श्री गुरु हरि-गोविन्द जी के पास डरोली में पहुँची। जहा उसे सिख धर्म की दीक्षा दिलाई। सम्वत १७६१ वि० मे उसके एक लडका पैदा हुआ। गुरु जी ने उसका नाम रूपचन्द रक्खा। रूपचन्द ने गुरुजी की अपूर्व सेवा की। उसके अगाध प्रेम और श्रद्धा के वशीभूत होकर गुरुजी ने उसे भाई रूपा के नाम से पुकारा। उसी समय से रूपा का कुल खान्दान भाई के नाम से प्रसिद्ध है। उसी के नाम पर आगे एक गॉव आवाद कराया गया जिसका नाम पिंड भाई रूपा पड़ा। यह पिंड राज्य नाभा मे है। गुरुजी ने प्रसन्न होकर एक खड्ग और कच्छा भाई रूपा को दिये थे। जिन्हे आज भी वागरिया सरदार वड़ी हिफाजत से रखते हैं।

भाई रूपचन्द जी के सात लड़के हुये जिनमे से परमचन्द और धरमचन्द इन दोनों ने गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज से दीक्षा ली थी। और उन्हीं की सेवा मे रहे।

सवत् १७६६ मे भाई रूपचद जी का देहान्त हो चुका था।[1] उसके पॉच वर्ष ही वाद उनके वडे पुत्र परमसिंह का सवत् १७७१ मे देहान्त होगया। भाई धरमसिंह दशमेश जी की आज्ञा लेकर वापिस अपने गॉव आ गये।

विदा करते समय दशमेश जी ने भाई धर्मसिंह को पाठ करने की एक पुस्तक, एक तलवार एक छोटी करद और एक छोटा खंडा दिया। इनमे से इस समय तलवार तो जीन्द नरेश के यहॉ है। वाकी सभी चीजे वागरिया सरदारों के पास हैं।

भाई रूपचन्द जी के सातों पुत्रों की औलाद भाई रूपा, भाई की समाधि, नेहियॉवाला और नट्टी आदि गॉवों में वसी हुई है। किन्तु मुख्य ठिकाने भाई रूपा और वागरिया ही हैं। भाई महानन्द, सदानंद, सूरतिया, मुख्यानंद और कर्मचन्द उनके शेप पॉच पुत्रों के नाम थे। 'शैरे पंजाव' के लेखक राय कालीराम साहब ने जो वशावली दी है। उसके अनुसार आगे का वर्णन इस प्रकार है—

भाई रूपा के बाद उनका वड़ा पुत्र धर्मसिंह उनका उत्तराधिकारी हुआ। धर्मसिंह की शादी माई मुकन्दी के साथ हुई थी। उससे भाई दयालसिंह का जन्म हुआ। दयालसिंह ने राज्य नाभा मे दयालपुर बसाया। माई सूसी के साथ इनका विवाह हुआ था।

भाई दयालसिह जी के घर माई सूसी के उदर से (१) गुरुदत्तसिंह (२) उग्रसिंह (३) नानकसिह और सुखमनसिंह चार लड़के पैदा हुये। जिनमे पहले तीनों पुत्र नि संतान ही संसार से प्रस्थान कर गये। इसलिये आखिर मे सुखमनसिंह ही भाई दयालसिंहजी की सम्पत्ति और जायदाद एवं गद्दी के हकदार हुये।

भाई सुखमनसिंह जी के भी चार लडके हुये। (१) मेहरसिंह (२) संगतसिंह (३) हरदाससिंह और (४) गुरुमुखसिंह। इनमे भाई संगतसिंह जवानी के आरम्भ दिनों मे ही चल वसे। इनकी वेवा माई गौहर से मेहरसिंह जी ने चादर डालकर विवाह कर लिया। किन्तु माई गौहर के उदर से कोई सतान नहीं हुई। इसलिये भाई मेहरसिह भी सन्तानहीन ही संसार से विदा हुये। भाई हरिदास जी के भी कोई सतान नहीं हुई। इनकी पत्नी माई सुखां इनसे पहले ही मर गई थीं। भाई गुरुमुखसिंह जी ने तीन शादियॉ कीं। मल्हां, भरधा, और रामकौर उनके नाम थे। इससे सात पुत्र उत्पन्न हुये। माई मल्हा से

१. जिला फीरोजपुर में भाई की समाधि नाम का गांव आपही की स्मृति में आवाद हुआ था।

अतरसिंह, अनूपसिंह, अनोखसिंह और साहबसिंह नाम के चार पुत्र हुये। जिनमें से अतरसिंह के पुत्र भोलासिंह हुये। जिनकी कि सतान के लोग मौजा ककराला राज्य पटियाला मे रहते हैं। भरथां से बहादुरसिंह और जवाहरसिंह नाम के दो पुत्र हुये। बहादुरसिंह जी के ही सुपुत्र भाई सम्पूरनसिंह हुये। जिनके नाम का प्रकाश अब तक है इन्हीं के लड़के पोते और पड़पोते बागरिया सरदार कहलाते हैं। बहादुरसिंह जी के छोटे पुत्र मूलासिंह थे। भाई बहादुरसिंह ने अपने छोटे भाई जवाहरसिंह जी को मौजा कलाहरान मे आधा हिस्सा देकर अलग कर दिया। जोकि इलाका ककराला मे है।

भाई गुरुमुखसिंह जी की तीसरी पत्नी से एक ही पुत्र महताबसिंह का जन्म हुआ।

सिख महान् कोप गुरुशब्दरत्नाकर के यशस्वी लेखक भाई काहनसिंह जी के कोप से पता चलता है। भाई बहादुरसिंह का देहान्त सं० १९०४, उनके सुपुत्र भाई सम्पूरनसिंह का सं० १९१९ मे हो गया।

भाई काहनसिंह जी के बड़े पुत्र नारायनसिंह जी का भी सम्वत् १९४६ मे देहान्त हो गया। उनके बाद उनकी कोई सन्तान होने की वजह से भाई अर्जुनसिंह जी गद्दीनशीन हुये। आपका जन्म सम्वत १९३१ वि० मे हुआ था। सम्वत् १९५६ मे आपके अरिदमनसिंहजी का जन्म हुआ। जो अपने खान्दान मे प्रथम ग्रेज्यूएट थे। आपके भी सम्वत् १९७७ मे एक सुपुत्र हो चुके हैं। जिनका नाम भाई हरिधनसिंह जी है। इस तरह बागरिया वर्तमान सरदार अर्जुनसिंह जी पुत्र और पौत्र की सम्पन्न फुलवारी मे सर्वानंद का उपभोग कर रहे हैं। ईश्वर का भजन करने मे रुचि सुलक्षणा स्त्री और सुपुत्र पुत्र-पौत्रों से भरा हुआ घर एवं स्वास्थ्य की उपस्थिति यही सर्वानन्द हैं। सरदार अर्जुनसिंह जी के भाई हरधनसिंह समेत तीन पुत्र हैं। अरिगजनसिंह और गहारिवसिंह उनके नाम हैं। जिनके कि क्रमश. सम्वत् १९९१ और १९७२ वि० मे जन्म हुये हैं।

कलाहरां के आधे हिस्सेदार भाई जवाहरसिंह का लड़का केसरसिंह लावल्द मर गया। अत उनका हिस्सा भी भाई अर्जुनसिंह के ही हाथ आगया। आपको सरकार की ओर से सरदार बहादुर और ओ० बी० ई० के खिताब भी मिले थे।

हम यह बता चुके हैं कि भाई सम्पूर्णसिंहजी के दूसरे भाई मूलासिह जी थे। उनके पाच पुत्र हुए। बीरसिंह, भगवानसिंह, विचित्रसिंह, सन्तोपसिंह और बसन्तसिंह इनमे विचित्रसिंह जी के करतारसिंह हुये और दूसरे भाइयों के बारे मे सन्तान सम्बन्धी कोई पता नहीं चलता।

करतारसिंहजी के सम्वत् १९८३ मे भाई हरदयालसिंह जी हुए।

भाई मूलासिंहजी के पुत्रों मे से बीरसिह, सन्तोपसिंह और बसन्तसिंहजी का देहान्त हो गया।

सिख लोग बागरिया सरदारों को भाई रूपाजी के वंशज होने की वजह से प्रेम और सत्कार की निगाह से देखते हैं। यह सब गुरुओं का प्रताप ही समझना चाहिये कि उनके सेवकों के वंशजों का आज तक आदर बना हुआ है और उसी आदर ने सिखों के उरुज के समय भाई खान्दान को जागीरदार और भू स्वत्वाधिकारी की गद्दी पर भी बिठा दिया।

जिला अम्बाला की लाडवह तहसील मे यह जागीर अवस्थित है। इसकी स्थापना चौधरी नानूसिंह जो कि इलाका माझ मे छावल मंडन का रहने वाला था की थी। सिख धर्म की दीक्षा लेकर सरदार

बूड़िया

नानूसिंह ने भंगी मिसल से मिलकर काम किया और शनै-शनै. बूड़िया जैसी रियासत कायम करने में सफल हुआ। सन १७६३ ई० मे जब जैनखा पर सिखों ने हमला किया यह भी अपने दत्तक पुत्र भागसिंह और मित्र रामसिंह के दल मे शामिल

हुआ और बाद विजय के आबाद हो गया। सन १८६४ ई० में बूडिया पर कब्जा कर लिया।

बूडिया का नानूसिंह से पहले का इतिहास यह है कि यहा पर जैनखां की ओर से लक्ष्मीनारायण नाम का एक हिन्दू अफसर था। जब वह छोड़ कर चला गया तो नरवारिया सिखों ने इस पर हाकिमी हासिल करली। नानूसिंह ने जैनखा के परास्त हो जाने के बाद बूडिया पर अपना स्वतंत्र अधिकार जमा लिया। इससे नरवारिया सिख नाराज रहने लगे।

उस समय औरंगाबाद मे पठानों का जोरदार प्रभुत्व था। उन्होंने और नरवारियोंने मिलकर सरदार नानूसिंह को धोखे से औरगाबाद के किले मे बुलाकर कत्ल कर डाला। इस खबर के सुनते ही रामसिंह और भागसिंह को बडा क्रोध आया और उन्होंने औरगाबाद के इलाके पर हमला कर दिया। पठानों को औरंगाबाद से मार भगाया और इस इलाके के दो सौ चार गावों पर अपना झडा फहरा दिया।

सरदार भागसिंह और रामसिंह ने इन गावों को आपस में बांट लिया। जगाधरी और दयालगढ का इलाका मय चौरासी गांव के रामसिंह के अधिकार मे आया और बूडिया मय १२० गांवों के सरदार भागसिंह को मिला।

सरदार भागसिंह का १७८५ ई० मे देहान्त हो गया और रियासत बूडिया उसके बेटे सरदार शेरसिंह के कब्जे मे आया। शैरे पंजाब के लेखक ने बूडिया के पड़ोसी सिख-इलाके के सम्बन्ध में जिस पर कि रामसिंह का अधिकार था लिखा है कि वह सरदार दूलजासिंह के नि'सन्तान मरने पर सरकार ने अपने कब्जे मे कर लिया।

सरदार शेरसिंह ने अपने समय में अंग्रेज अधिकारियों से खूब मेलजोल कर लिया था। कर्नल वैरन साहब के साथ सहारनपुर के मुहासिरे मे भी शामिल हुआ। जहां सन १८०४ ई० मे लड़ता हुआ मारा गया।

सरदार शेरसिंह के दो लड़के थे जयमलसिंह और गुलाबसिंह इन दोनों ने अपने बाप के मरने पर राज्य को आपस मे बांट लिया। इस बटवारे के समय दोनों भाइयों मे आन्तरिक मन-मुटाव भी पैदा हुआ। सरदार जयमलसिंह अधिक दिनों तक अपने हिस्से की रियासत का उपभोग न कर सका उसकी सन १८१७ ई० में मृत्यु हो गई।

चूकि जयमलसिंह ने कोई सन्तान अपने पीछे नहीं छोड़ी थी अत' सारी सम्पत्ति और जागीर-का मालिक उनका छोटा भाई गुलाबसिंह ही हुआ। सरदार गुलाबसिंह ने अपने पैतृक भूमिभाग की उन्नति करनी चाही किन्तु इस समय तक महाराजा रणजीतसिंहजी का बहुत प्रभाव बढ़ गया था। उधर अंग्रेज मुँह बाये खडे थे। इसलिए अपनी ही जायदाद की रक्षा करना मुश्किल हो रहा था। सन् १८४४ ई० मे गुलाबसिंह की भी मृत्यु हो गई।

गुलाबसिंह के बाद बूडिया रियासत के अधिकारी उनके पुत्र जीवनसिंह हुये। उस समय उनके पास इतना भूभाग था जिसमें तेतीस हजार आदमी रहते थे और चालीस हजार के करीब सालाना आमदनी हो जाती थी। जीवनसिंह की बहिन की शादी महाराजा पटियाला महेन्द्रसिंहजी के साथ हुई थी। जो कई बार जीवनसिंह जी के आग्रह से बूडिया भी पधारे थे।

खालसा राज्य के खतम करने और सन १८५७ के गदर को दबाने के लिए अंग्रेजों ने जो लडाइया लड़ीं थीं। उनमें सरदार जीवनसिंह ने अपने रिश्तेदार पटियाला नरेश से उत्साहित होकर अंग्रेजों की मदद करने मे कोई भी कसर नहीं छोड़ी थी। अत गदर की समाप्ति के बाद सरकार ने

आपको सी०आई०ई० का खिताब दिया था। सन १८९३ में आपका देहान्त हो गया।

सरदार जीवनसिंह के पुत्र राजेन्द्रसिंह जी का स्वर्गवास उनसे भी तीन वर्ष पहले १८९० में हो चुका था। अत. जागीर के मालिक उनके पौत्र सरदार लच्मनसिंह जी हुये। लच्मनसिंह सुशिक्षित और योग्य सरदार थे सरकार की सेवायें उन्होंने भी खूब कीं। इसलिये सरकार ने उन्हें सरदार बहादुर का खिताब बख्शा था। सन १९२१ में सरदार बहादुर सरदार लच्मनसिंह का देहान्त हो गया। उन्होंने दो छोटे-छोटे पुत्र छोड़े। (१) रतनअमोलसिंह (२) लालअमोलसिंह। इनके जन्म क्रमश सन् १९१९ ई० और १९२० ई० में हुए थे अत. इनके नाबालिग होने के कारण रियासत का प्रबन्ध कोर्ट आफ वार्डस द्वारा इनके बालिग होने के समय तक के लिए कर दिया गया था।

दमदमे साहब की तलवंडी के महन्त बाबा दीपसिंह मुगलों से युद्ध करते हुये शहीद हुये थे। दीपसिंह के बाद उनका शिष्य सदासिंह भी धर्म युद्ध में ही परलोकवासी हुआ। इस बात से सिख बहुत खुश हुए और उन्होंने इनको शहीद के नाम से पुकारा। सदासिंह का उत्तराधिकारी

शाहजादपुर

महन्त कर्मसिंह अपने दोनों पूर्वजों से बढ़कर शूरवीर साबित हुआ। उसने कुछ गावों पर अपना दखल बिठा लिया। कुछ गाव उसे सिख सरदारों ने भी दिये। पटियाला के महाराज ने भी सिरसा तहसील में सहादरा नाम का गॉव शहीद कर्मसिंह को दिया। इसने सरदार गुरबख्शसिंह और हरीसिंह आदि के साथ मिल कर अनेकों युद्धों मे अपनी बहादुरी का परिचय दिया। सवत १८२५ मे इसने खालसा जत्थों के साथ जलालाबाद लुहाणी के हाकिम पर चढ़ाई की क्योंकि उस्मान हाकिम ने एक ब्राह्मण की स्त्री को जबरन घर मे डाल दिया था। कहा जाता है परगना रनखंडी और उसके इर्द-गिर्द का लगभग एक लाख सालाना की आमदनी का इसके अधिकार मे रहा था। संवत-१८५७ में इसका देहान्त हो गया।

इसके बाद शाहसिंह कर्मसिंह का लड़का गुलाबसिंह गद्दी पर बैठा। इसे मुरव्वतवाला और हौसलेमन्द आदमी कहा जाता है किन्तु सहारनपुर के जिले का सारा इलाका इसके ही जमाने मे हाथ से निकल गया था। करनाल तक अंग्रेजो की हकूमत आई देखकर इसने सम्वन् १८६२ ई० में उनका आश्रय ग्रहण कर लिया।

सम्वत् १९०१ विक्रमी में गुलाबसिंह का देहात हो गया। इसका बेटा सरदार शिवकृपालसिंह उत्तराधिकारी हुआ। इसने सिख-अंग्रेज युद्ध और गदर मे अंग्रेजो की पूरी सहायता की। जिसकी वजह से अंग्रेज इनसे खुश रहे और जागीर जब्त होने से बची रही। शिवकृपालसिंह जी के दूसरे भाई सरदार ठाकुरसिंह नि सन्तान ही मर गये। अत. जागीर पर कोई झगडा नहीं हुआ। शिवकृपालसिंह के लिये तारीख पटियाला के लेखक ने लिखा है यह बहुत ही शराबी था।

सम्वत् १९२८ वि० मे शिवकृपालसिंह का देहान्त होने पर उनके लड़के जीवनसिंह के हाथ जागीर की बागडोर आई। सरदार जीवनसिंह जी का विवाह महाराज महेन्द्रसिंह जी पटियाला की लड़की के साथ हुआ। जिसमे लगभग २० लाख रु० का दहेज उन्हें मिला। दस हजार रुप्या सालाना पटियाला से इनकी सरदारनी जी की पोशाकों के लिए आजीवन आता रहा। इनकी खुद की आमदनी जागीर से करीब चालीस हजार रुपया सालाना थी। इनका विशेष विवरण हम शहीदों की मिसल मे दे चुके हैं।

सरदार जीवनसिंह के दो पुत्र उत्पन्न हुये। रामसिंह और करतारसिंह। इनमें से सरदार रामसिंह जी पटियाला की सेना में लेफ्टीनेन्ट कर्नल के पद पर सुशोभित हुए और अपने पिता के बाद जागीर के

भी मालिक हुये। आपके भाई सरदार करतारसिंह के जगजीतसिह नामक पुत्र हैं जिनका कि जन्म सम्वत् १६७८ वि० में हुआ है और आपके रनजीतसिंह और अजीतसिंह नाम दो सुपुत्र हैं जो क्रमशः सम्वत् १६७१ और १६७२ मे पैदा हुये है। सरदारजी स्वय समझदार और जमाने की हवा के अनुकूल व्यक्ति थे।

यह जागीर भंगी मिसल का अवशेष है। सरदार हरीसिंहजी के बाद भगी सरदारों के कई दल होगये थे। इस जागीर का आरम्भिक इतिहास तो वही है जो हमने भंगी मिसल के वर्णन मे दे दिया है।

पंजवड जागीर

हरीसिंह के तीन पुत्र थे। झण्डासिंह, गंडासिंह और नारदसिंह। पहले दोनों बेटे लडाइयों मे काम आये। मिसल की बागडोर नारदसिंह के लड़के देसासिंह के हाथ मे पहुच गई। क्योंकि झण्डासिंह के कोई पुत्र था नहीं और गंडासिंह का लडका अमरसिंह भी मर चुका था। देसासिंह के गुलाबसिंह और कर्मसिंह दो पुत्र थे। जिनमे कर्मसिंह बहादुर होने के कारण मिसल का सरदार बना। इसकी बहादुरी के कारण मिसल के लोग इसे दूलाजी कहते थे। कर्मसिंह के एक लड़का जस्सासिंह और दो पौत्र फतहसिंह और जयमलसिंह थे। जिस समय कर्मसिंह मरा तो उसका पुत्र और पौत्र दोनों ही पास न थे अत मिसल का अधिपति कर्मसिंह का बड़ा भाई गुलाबसिंह ही बन गया। गुलाबसिंह के जमाने मे भी इलाके पर बड़ी आपत्ति आई। अधीनस्थ सभी छोटे २ इलाके स्वतन्त्र हो गये। जो इलाका हरीसिंह के आगे बीसियो लाख का था। वह अब एक लाख का ही रह गया। अमृतसर शहर, कोहली, मजीठा और नौशहरा वगैरा इलाके ही रह गये। गुलाबसिंह बहुत ज्यादा शराबी थे। रामगढ़ियों की बात मे आकर इसने सम्वत् १८५६ ई० मे महाराजा रणजीतसिंह के विरुद्ध चढ़ाई भी की। जहाँ भसीन के क्षेत्र मे शराब के ही नशे मे मर गया।

इसके मरने के समय इसके लडके गुरुदत्त की उम्र केवल दस साल की थी, कोहली भी हाथ मे निकल गया। इधर मौका पाकर महाराजा रणजीतसिंहजी ने अमृतसर पर चढ़ाई करदी क्योंकि यही इनकी राजधानी था। गुरुदत्तसिंह की माँ सुखा लड़ी तो बहादुरी से किन्तु आखिर स्त्री ही तो थी किला छोड़कर रामगढ़ को मय अपने पुत्र गुरुदत्तसिंह के चली गयी। इस प्रकार सम्वत् १८६० मे इनके पास कोई रियासत नहीं रही। माई सुखा रामगढ़ के सरदार जोधसिंह के पास रहती रहीं और वहीं बैठकर अपने लडके की शादी व्यवहार किये। जब गुरुदत्तसिह सयाना हो गया तो इधर-उधर के लोगों के कहने से साहोवाल की जागीर महाराजा रणजीतसिंहजी ने इसे दे दी किन्तु गुरुदत्तसिंह से उसका भी प्रबन्ध नहीं हुआ। आखिर उसकी एवज मे नकद सहायता लेना स्वीकार करके गुरुदत्तसिंह अपनी सुसराल में जा बसा। जहाँ सम्वत् १८८४ वि० मे उसका देहात हो गया।

गुरुदत्तसिंह के तीन लडके थे। मूलसिंह, गडासिंह और अजीतसिंह (नेत्र हीन)। गंडासिंह नि-सतान ही मर गया। मूलसिंह और अजीतसिंह अपने पुराने गॉव पंजवड़ मे आ गये जहाँ कि इनकी पुरानी मालिकी थी। मूलसिह के सम्वत् १८६६ में बसावासिंह नाम का लड़का हुआ। अजीतसिंह के दो लड़के हुये ठाकुरसिंह और हुकमसिह।

ठाकुरसिंह और हुक्मसिंह दोनों ने ही अंग्रेज सरकार की मदद की। सम्वत् १६१४ के गदर में ये कमिश्नर की आज्ञा के अनुसार बागियों को दबाने के लिये मोरचो पर हाजिर रहे। इसके बाद भी जहाँ पर सरकार को जरूरत हुई। इन्होने अपने को हाजिर किया। इससे सरकार ने इन दोनों भाइयों को सरदार बहादुर के खिताब और इनामात बख्शे। इनकी जागीर मे दो हजार बीघे से ऊपर जमीन पूर्वजों की

सचय की हुई मे से थी। अपनी योग्यता से इन्होंने अपनी इज्जत और संपत्ति को वढ़ाया ही। सरदार ठाकुरसिंह के सम्वत् १९३० मे हरनामसिंह नाम के सुपुत्र पैदा हुये जो कि अपने पिता के उत्तराधिकारी हुये। हरनामसिंह जी के भी दो पुत्र हैं। औतारसिंह और कृपालसिंह जो कि क्रमश. सम्वत १९६६ और १९७० विक्रमी मे पैदा हुए हैं।

सरदार हुकमसिंह के पुत्र सरदार हरदत्तसिंह ने जो कि सम्वत १९४३ मे पैदा हुए थे। अच्छी उन्नति की। सरकार ने उन्हे आनरेरी मजिस्ट्रेट भी वनाया।

सरदार हुकमसिंह जी के तीन पुत्र हैं। (१) सरदार गुरुवख्शसिंह जो सम्वत् १९५९ मे पैदा हुये हैं (२) सरदार शिवदेवसिंह का जन्म सम्वत् १९६१ वि०में हुआ है और (३) सरदार गुरुदयालसिंह सम्वत् १९७३ मे जन्मे हैं।

कर्मसिंह दूला का लड़का जस्सासिंह चान्योट मे था। मिसल का अधिपति गुलावसिंह के वन जाने के कारण वह चान्योटके इलाके पर स्वतंत्र प्रभुत्व जमा वैठा और उस समय तक अधिकारी रहा जवतक कि महाराजा रणजीतसिंह जी ने उस पर अपना कब्जा न कर लिया। जस्सासिंह के दो पुत्र थे। फतहसिंह और जयमलसिंह। महाराजा रणजीतसिंह जी ने इनके गुजारे को थोड़ी सी जमीन छोड दी थी। अन्त मे इनके युद्ध मे मारे जाने के कारण इनका इतिवृत भी समाप्त होगया।

इस भंगी मिसल के संस्थापक सरदार हरीसिंह जी के साथियों मे नत्थासिंह नाम का भी एक वहादुर जत्थेदार था। उसके ज्ञानसिंह, गूजरसिंह, निहालसिंह और आलासिंह नाम के चार पुत्र हुये। जिनमे गूजरसिंह वड़ा प्रतापी हुआ है। इसके साथ महाराजा रणजीतसिंह के पिता सरदार महासिंह ने अपनी वहिन राजकौर का विवाह करने मे अपने को सौभाग्यशाली समझा था और फिर गूजरसिंह की ताकत से महासिंह ने लाभ भी उठाया था। गूजरसिंह के पास सारा गुजरात और तिहाई लाहौर का राज्य था।

गूजरसिंह ने अपने समय मे वहुत सारा इलाका वढ़ाया। उसके राज्य की आमदनी तीस लाख सालाना तक पहुँच गई थी। महासिंह की लड़ाइयों में जव भी जरूरत पड़ी। गूजरसिंह ने मदद दी। सन् १७७८ ई० मे गूजरसिंह का देहान्त हो गया। अपने पीछे उसने सुखासिंह, साहवसिंह और फतहसिंह नाम के तीन लड़के छोडे। इनमे साहवसिंह वड़ा ही योग्य और वहादुर आदमी था इसलिये वही अपने वाप के राज्य का अधिकारी हुआ। हालांकि गुजरात पर उसने अपने पिता की जिन्दगी मे ही कब्जा कर लिया था।

महाराजा रणजीतसिंह के साथ सरदार साहवसिंह को कई वार भिड़ना पडा। लाहौर फतह के वाद दूसरे ही वर्ष जव महाराजा रणजीतसिंह जी ने गुजरात पर चढ़ाई की तो साहवसिंह ने एक अच्छी रकम नजराने मे देकर उन्हे टरका दिया। अकालगढ़ के अधिपति दलसिंह मे साहवसिंह की दोस्ती थी।

महाराजा रणजीतसिंह गुजरात से हटकर लाहौर पहुँचे और उनके पास दलसिंह की शिकायतें पहुँची। अतः उन्होंने दलसिंह को धोखे से लाहौर वुला कर कैद कर लिया और फिर आप फौज लेकर अकालगढ़ पर कब्जा करने के लिये चल पड़े किन्तु अकालगढ उन्हे सहज ही नहीं मिला। दलसिंह की सरदारनी धर्मकौर ने किले के फाटक वन्द करा के वुर्जो पर तोप चढ़ा दीं और वड़ी हिम्मत के साथ लडने लगीं। उधर साहवसिंह के पास मदद के लिये खवर भेजी। इस वात का पता लगते ही महाराजा रणजीतसिंह ने सरदार साहवसिंह पर ही चढ़ाई कर दी। अकालगढ़ का घेरा उठा लिया। साहवसिंह ने तीन दिन तक तो किले के वाहर वहादुरी के साथ सामना किया फिर किले मे वैठकर कई दिन लड़ा। अत मे

वेदी साहबसिंह के बीच में पड़ने से समझौता हो गया और साहबसिंह ने अपने को मांडलिक स्वीकार कर लिया।

महाराजा रणजीतसिंह को गुजरात लेना था। वे कोई न कोई बहाना लेकर गुजरात पर चढ दौड़ते थे। सन् १८१० मे तो उन्होंने आखिर गुजरात को ले ही लिया। साहबसिंह ने भी लड़ने और बहादुरी दिखाने मे कोई कसर नहीं रक्खी किन्तु इस समय रणजीतसिंह जी की जितनी ताकत बढ़ गई थी। उससे साहबसिंह कहाँ तक मुकाबिला करता। कहा जाता है गुजरात के किले मे चालीस लाख नकद का खजाना साहबसिंह का था। उसे महाराज ने अपने काबू मे कर लिया। अत मे रिस्तेदारी का कुछ खयाल करके उसके गुजारे के लिये भगला का इलाका बाकी रहने दिये और सारे राज्य को जब्त कर लिया। इसके एक साल बाद ही साहबसिंह का रंजगम मे ही देहान्त हो गया। एक लडका था गुलाबसिंह वह भी सन् १८३२ ई० मे इस ससार से कूच कर गया।

साहबसिंह का एक भाई फतहसिंह महाराजा रणजीतसिंह की फौजो मे सेना-नायक होगया। सन् १८३२ ई० मे उसका भी देहान्त हो गया। इसके बाद उसका लड़का जयमलसिंह पजवाड़ में ही आ गया। जहाँ कि उनकी जन्मभूमि थी। वहीं १८७१ ई० मे उनका देहान्त हो गया। जयमलसिंह के लडके जवाहरसिंह के चार लड़के हुये। मिहांसिंह, हीरासिंह, बुद्धसिंह और जसवंतसिंह। इनमे मिहांसिंह के दो लडके तेजासिंह और जन्मेजयसिंह हुये। इनमे तेजासिंह केपुत्र चेतसिंह मौजूद हैं। हीरासिंह के बेटे मोतासिंह के चार पुत्रों मे से कृपालसिंह और अतरसिंह दो मौजूद हैं। बुद्धासिंह के पुत्र नाथासिंह का सन १६०१ ई मे देहान्त हो गया। जसवन्तसिंह के पुत्र औतारसिंह के तीन पुत्र गुरुचरनसिंह, जावन्दसिंह और अजीतसिंह मौजूद है।

प्रतापी सरदार गूजरसिंह के एक भाई ज्ञानसिंह के परिवार का वर्णन अभी शेष है। लाहौर मे जो तीसरा हिस्सा सरदार गूजरसिंह का था। उसके प्रबन्धक ज्ञानसिंह के पुत्र चेतसिंह ही थे। लाहौर पर कब्जा करने के लिये जब महाराजा रणजीतसिंह ने चढ़ाई की तो दो साझीदार तो अपनी जान बचाकर भाग गये। किन्तु चेतसिंह कई दिन तक लडता रहा। आखिरकार उसे किला खाली करना पड़ा। क्योंकि सेना के लोग भी फूटकर रणजीतसिंह जी से मिल गये। महाराज ने चेतसिंह के गुजारे के लिये केवल दो गॉव दिये। आगे चेतसिंह के लड़के रामसिंह को फौज मे स्थान दे दिया और उसकी मदद से खुश होकर उसे इनाम भी दिये। सन् १८८८ मे सरदार रामसिंह का देहान्त हो गया। उसके चार लडके थे। प्रताप-सिंह, महताबसिंह, बीरसिंह और चन्दासिंह जिनका कि रामसिंह खुद से भी पहले देहान्त होगया था। इन चारों मे महताबसिंह के दो लडके बूटासिंह और मूलासिंह हुये। बूटासिंह के लड़के का नाम उजागरसिंह है।

बस पंजवाड भगी घराने का यही सक्षिप्त इतिहास है।

सिखों की मिसलों मे रामगढ़ियों की मिसल भी बडी प्रतापशाली थी।[१] उसका वर्णन हम मिसलों वाले अध्याय मे कर चुके है। अत: यहाँ उतना ही करेंगे। जितने से कि जागीरी इतिहास से सम्बन्ध है। सरदार जस्सासिंह पॉच भाई थे। जिनमे जैसिंह जी के कोई पुत्र नहीं हुआ। मानसिंह की पीढियों का सिलसिला उसके बेटे वरियामसिंह पर टूट गया। खुशालसिंह के तीन लडके महताबसिंह, शिवसिंह और गुलाबसिंह हुये। इनका भी सिलसिला

रामगढियों की जागीरें

१ यह मिसल तिरखान अर्थात् बढई लोगो की है।

यहाँ से आगे नहीं मिलता। आगे सरदार जस्सासिंह और तारासिंह की पीढ़ियों का सिलसिला बाकायदा चला है। इन्हीं के वंशजों के पास जागीरें हैं।

सरदार जस्सासिंह रामगढ़िया के दो पुत्र हुये। जोधसिंह और वीरसिंह। जोधसिंह बडा बहादुर आदमी था। किन्तु सन् १८१६ ई० में वह नि सन्तान मर गया। इसके समय मे ही इसके चचेरे भाई दीवानसिंह ने जोकि तारासिंह का लड़का था। इससे जागीर का बटवारा कर लिया।

जोधसिंह के बाद उसका भाई वीरसिंह उत्तराधिकारी हुआ। जो अपने भाई से केवल दस वर्ष बाद ही सन १८२६ ई० मे इस संसार से चल बसा।

वीरसिंह के दो लडके थे। जयमलसिंह और मोहरसिंह[१]। जोधसिंह के मर जानेके कारण महाराजा रणजीतसिंह जी ने वीरसिंह, महताबसिंह और दीवानसिंह के लिये ३५ हजार की जागीर छोड़कर सारा इलाका जब्त कर लिया। इसमें से वीरसिंह के पुत्रों के हिस्से में लगभग दस हजार का इलाका आता था। मोहरसिंह के लड़के का नाम शोभासिंह था। सन् १८४५ ई०मे शोभासिंह और सन् १८४८ मे जयमलसिंह का देहान्त होगया। जयमलसिंह ने तीन और शोभासिंह ने एक लड़का छोड़ा।

जयमलसिंह के तीन लड़कों के नाम—उत्तमसिंह, फतहसिंह और ज्वालासिंह थे। इनमे फतहसिंह नि सन्तान मरे और ज्वालासिंह के सगहरसिंह हुये। उत्तमसिंह जी के सुपुत्र धातासिंह थे। जिनके पास ५०००) सालाना की जागीर होने का उल्लेख 'राज खालसा' के लेखक ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने किया है। धातासिंह के गाजूसिंह और छाजूसिंह दो पुत्र हुये।

शोभासिंह जी के पुत्र अतरसिंह या अच्छरसिंह जी के पास श्री हरिगोविन्दपुर में ६००) सालाना की जागीर थी। उनका सन् १८८० ई० मे देहान्त हो गया। उनके गगासिंह, तिरखूसिंह, तिरभगासिंह और कादिरसिंह नाम के चार लडके हुये। जिनमे तिरखूसिंह जी के नाथासिंह नाम का एक ही पुत्र हुआ है। तिरभंगासिंह जिनका कि सन् १९०० मे देहान्त भी होगया है। उनके तीन लड़के सन १८७८ में धूलासिंह, सन् १८८१ मे ठाकुरसिंह और सन् १८८५ मे चत्तरसिंह पैदा हुये। कादिरसिंह के सन १८६४ में विशाखासिंह नाम के पुत्र हुये। गगासिंह के दीवानसिंह का जन्म १८४५ ई० में हुआ। हीरासिंह १८८० मे मर गये। सुन्दरसिंह (जन्म १८६६) और अर्जुनसिंह (जन्म १८६६ ई०) नाम के चार पुत्र हुये। सुन्दरसिंह जी के लड़के जगजीतसिंह हैं। जिनका कि सन् १८८७ मे जन्म हुआ था।

सरदार जस्सासिंह जी के भाई तारासिंह जी के पुत्र सरदार दीवानसिंह बडी जिद के और निडर आदमी थे। जब महाराजा रणजीतसिंह जी ने उनका सारा इलाका जब्त करके तीनों भाइयों को केवल पैंतीस हजार का इलाका दिया तो आपने फौरन लेने से इन्कार कर दिया और पटियाला चले गये। अंत में महाराजा रणजीतसिंह जी ने इन्हे देसासिंह मजीठिया की मारफत बुलवा लिया और बारमूला की लड़ाई में भेज दिया। जहाँ वह मारे गये।

दीवानसिंहजी के पुत्र सरदार मंगलसिंह महाराजा रणजीतसिंह जी की फौज में सवारो के अफसर मुकर्रिर हुये जहाँ इन्होंने बड़ी बहादुरी दिखाई। कोट कालूवाला, बतरा, कडोला की जागीर प्राप्त की।

सिख राज्य की डावांडोल स्थिति को देखकर यह अंग्रेजों के खैरख्वाह होगये। जोधसिंह के

१. सर लेपिलग्रिफिन ने "चीफ्स एण्ड फैमली आफ नोट" में मोहरसिंह को अकित नहीं किया। शोभासिंह को लिख दिया है। जिसको राज खालसा का लेखक मोहरसिंह का लडका मानता है।

बाद यह अमृतसर गुरुद्वारे के मैनेजर भी बने। अंग्रेजी सरकार ने इन्हे आनरेरी मजिस्ट्रेट और सितारे-हिन्द का खिताब भी दिया था। सन् १८७६ मे इनका देहान्त होगया।

इन्होंने अपने पीछे तीन पुत्र छोड़े। (१) सरदार गुरुदत्तसिंह (२) सुचेतसिंह (३) शेरसिंह। गुरुदत्तसिंह ने अवध की लड़ाई मे अंग्रेज सेना मे भरती होकर सरकार की मदद की। अन्तिम दिनों मे १२००) सालाना की पेन्शन लेकर आप अमृतसर मे रहने लगे। आपके दोनो छोटे भाइयों का जोकि सरकारी ओहदों पर अच्छा नाम पा चुके थे। आपसे पहले ही देहान्त हो गया था। आपका देहान्त सन् १६०० मे होगया। गुरुदत्तसिंहके एक पुत्र सरदारसिंह थे। वे आपसे बहुत पहले १८६२ मे फौत हो चुके थे।

सुचेतसिंह जी के पुत्र बिशनसिंह जिनका कि जन्म १८६८ मे हुआ था। काफी योग्य निकले। पुलिस मे उन्होंने डिपुटीगिरी की और फिर आनरेरी मजिस्ट्रेटी। उनकी सेवाओं के बदले मे सरकार ने उन्हे 'सरदार' का खिताब दिया। आपके चार पुत्र हुये है। (१) नारायनसिंह (२) त्रिलोचनसिंह (३) रिपुदमनसिंह और (४) करतारसिंह। जिनमे नारायणसिंह जी का सन् १६२० मे देहान्त हो चुका है। शेप तीनो की उम्र इस सन् १६५३ मे क्रमश' ५२, ४६ और ३६ साल की है।

शेरसिंह जी के सन्तसिंह और सुन्दरसिंह नाम के दो पुत्र हुये। जिनमे से सन्तसिंह जी का सन् १८६४ मे देहान्त होगया और सुन्दरसिंह जी का सन् १६२६ ई० मे। सुन्दरसिंह जी ने अपने समय में तरक्की की। फर्स्टक्लास के आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे। आपके दो लडके नरेन्द्रसिंह और महेन्द्रसिंह हैं जोकि क्रमश सन् १६१४, १५ मे पैदा हुये है।

इस खान्दान के पास तीन हजार सालाना आमदनी की जागीर सरकार की ओर से है। अमृतसर मे इनके मकानात और दीगर सम्पत्ति है। प्राय' वहीं पर रहते भी हैं।

जालंधर जिले मे बल्लोकी एक गॉव है। डल्लेवाली मिसल का नेतृत्व जब तारासिंह के हाथ में आगया, तो उसने मिसल डल्लेवाली को बड़ी तरक्की दी। उसने बद्धोवाल, धर्मकोट और घेगराना को जीत कर राहूँ को अपना सदर मुकाम बनाया। तारासिंह की बहादुरियों का पूरा हाल डल्लेवाली मिसल के इतिहास मे दिया जा चुका है।

बल्लोकी जागीर

तारासिंह के तीन लडके हुये थे। गूजरसिंह,दसौंधासिंह और झंडासिंह,तारासिंह के सन् १८०७ ई० मे मर जाने से पहले ही इन तीनों ने अपने २ लिये कुछ इलाके बॉट लिये। घुगराना और धर्मकोट पर गूजरसिंह ने कब्जा कर लिया। दक्षिणी बद्धोवाल दसौंधासिंह के अधिकार मे रहा। निकोदर, माझपुर, और बल्लोकी झंडासिंह के अधिकार मे आये। लगभग पॉच लाख का इलाका महाराजा रणजीतसिंह ने जब्त कर लिया। यह वही इलाका था जो कभी तारासिंह के ही कब्जे मे था। यह घटना सन् १८०७ ई० की है। दसौंधासिंह ने किला दक्षिणी को भी छीन लिया था। सन् १८०८ मे महाराजा रणजीतसिंह जी ने दसौंधासिंह और गूजरसिंह से घुघराना और बद्धोवाल के इलाके भी छीन कर गुरदित्ता डल्लेवाला को दे दिये। यहॉ यह न भूल जाना चाहिये कि तारासिंह और साहबसिंह के खान्दान एक ही नहीं थे। हां, मिसल एक ही थी। जो साहबसिंह के बाद तारासिंह के हाथ चली गई थी। दसौंधासिंहने बहुत विरोध किया। पर कुछ वश न चलने पर वह इसी रंज मे अपने ससुराल मे निःसतान मर गया। गूजरसिंह और झंडासिंह को बल्लोकी गॉवों मे आधा मिल गया।

गूजरसिंह के जगतसिंह नाम का लड़का हुआ। जो अपनी निर्मित जागीर मे संतोप से गुजर करता रहा। किन्तु उसके भाग्य मे यह बदा था कि उनके पुत्र लहनासिंह और खजानसिंह दोनों मे से एक

भी नहीं वचा। इस प्रकार गूजरसिंह का भाग भी उनके भाई भंडासिंह के लड़कों के पास चला गया। सरदार भंडासिंह के भी दो पुत्र थे। सरदार नाहरसिंह और सरदार बख्तावरसिंह। सरदारनी रतनकौर जोकि इनकी दादी होती थी और जिसको महाराजा रणजीतसिंह जी की ओर से १८००) माहवार पेन्शन मिलती थी। जब मरगई तो २००) मासिक पेन्शन सरदार नाहरसिंह को मिलती रही। इन दोनों भाइयों का क्रमशः सन १८७२ और सन् १८७३ ई० में स्वर्गवास हो गया। नाहरसिंह जी के पुत्र का नाम सरदार अमरसिंह था। उनका भी सन् १६०४ ई० में देहान्त हो चुका है। यही क्यों सरदार अमरसिंह के पुत्र ठाकुरसिंह भी सन् १६०७ ई० में स्वर्गवासी हो गये। जागीर का प्रबन्ध उनकी सरदारनी की देखरेख में है।

होशियारपुर जिले में बाबा कलाधारी जी के वंशजों की यह जागीर है। बाबा साहब के पाँच पुत्रों में से जयसिंह जी के सुपुत्र साहबसिंह जी बडे योग्य हुये हैं। इन्होंने महाराजा रणजीतसिंह और भंगी मिसल के दरम्यान अपने प्रभाव से कई बार समझौता करवाया था।

ऊना

साहबसिंह जी वेदी लडने-भिडने में भी काफी चतुर थे। दमौधासिंह से किला दक्खिनी को आपने संवत् १८६४ वि० यानी सन १८०७ ई० में छिना कर अपने कब्जे में कर लिया था। सिख-धर्म का प्रचार भी यह बडे प्रेम से करते थे। बहुत सारा इलाका अधिकार में करके इन्होंने ऊना को अपनी राजधानी बनाया। आपका लंगर आठों पहर चलता था। सवत् १८६१ में आपका देहान्त हो गया। बाबा साहबसिंह जी के बिशनसिंह और विक्रमसिंह जी दोनों पुत्र बड़े प्रसिद्ध हुये हैं। सरदार तारासिंह जी की मिंहिनी के पास महाराजा रणजीतसिंह जी के दिये हुये जो गाँव थे वह विक्रमसिंह जी के समय में उनके ही पास आ गये। इस तरह से वेदी बाबाओं के पास काफी इलाका बढ़ गया था। पर जब कि महाराजा रणजीतसिंह जी का साम्राज्य समाप्त हो गया। अंग्रेजों ने संवत् १६०५ में सारी जागीर जब्त करली। कुछ ऊना ही में इनके खर्च के लिये रहने दी। संवत् १६२० वि० में बाबा विक्रमसिंह जी का स्वर्गवास हो गया।

आप के दो सुपुत्र थे। एक सूरजसिंह जिनका कि आप से केवल एक वर्ष बाद ही देहावसान हो गया। दूसरे सुजानसिंह। सरकार की ओर से बाबा सुजानसिंह जी को सरदार साहब का खिताब भी मिला था। संवत १६७७ में सरदार साहब वेदी सुजानसिंह जी का भी परलोकवास हो गया। रामकिशनसिंह, मनमोहनसिंह और शिवदेवसिंह नाम के आप के तीन सुपुत्र हुये थे। जिन में शिवदेवसिंह जी का आप के सामने ही देहान्त हो गया। बाकी दोनों पुत्रों ने ऊँची शिक्षा प्राप्त की और रामकिशनसिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा मनमोहनसिंह सब-रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त होने का लाभ उठा चुके हैं।

सांवलसिंह और देवेन्द्रसिंह नाम के दो पुत्र वेदी रामकिशनसिंह जी साहब के हुये है, जिनमे सॉवलसिंह जी का संवत् १६७५ मे देहान्त हो चुका है। देवेन्द्रसिंह जी के—जिनका कि सवन १६६१ में हुआ है—मदनसिंह नाम का एक पुत्र सवत् १६७६ हो चुका है।

ये सब लोग जो कि वेदी विक्रमसिंह जी के वशज हैं, ऊना मे रहते हैं। ऊने में जो श्री गुरु हरिगोविन्द साहब का पवित्र स्थान दमदमा साहब है। उसका प्रबन्ध इन वेदी साहबान के ही हाथ में है।

बाबा बिशनसिंह जी वेदी के वशज कल्लर जिला रावलपिंडी मे रहते हैं। बाबा बिशनसिंह के पुत्र अतरसिंह जी हुये और उनके पुत्र खेमसिंह जी हुये जिन्हे कि सरकार की ओर से 'सर' का खिताब

भी दिया गया। और उनके पुत्र बाबा गुरुबख्शसिंह जी को 'सर' के सिवा राजा साहब का भी खिताब मिला। संवत् १८५४ में आप के टिक्का सुरेन्द्रसिंह जी का जन्म हुआ है।

सिख लोगों में बेदी खान्दान के प्रति अत्यधिक श्रद्धा है।

यह जागीर भी भाई भगतू के वशजों की वसाई हुई है। कैथल के वर्णन मे भाई भगतू का जिक्र आ चुका है। सिद्धू वश मे यह एक प्रसिद्ध धार्मिक पुरुष हुये हैं। भाई भगतू के एक पुत्र चौधरी गौरा थे और गौरा के चौधरी दयालसिह उत्पन्न हुये। चौधरी दयालसिह के सरदार गुरुबख्शसिंह जी उत्पन्न हुये। जिनका १७५० ईस्वी मे देहान्त हो गया। सरदार गुरुबख्शसिंह जी के छ पुत्र हुये। बुद्धासिह, दानसिंह, गुरुदासिह, देसूसिह तख्तसिंह और सुखासिंह।

अरनौली

अरनोली का खान्दान भाई सुखासिह जी से चलता है। जिनके गुरुदत्तसिह और बिसावासिह नामक दो पुत्र हुये। इनमे से गुरुदत्तसिंह लावल्द मर गये थे।

बिसाबासिंह शांति से अपने इलाके मे दिन बिताते रहे, उनके पॉच पुत्र हुये। बहादुरसिंह, पजाबसिह, गुलाबसिंह, काहनसिंह और संगतसिंह। इनमे से तीन निःसंतान मर गये। सन्तान गुलाबसिंह और सगतसिंह के ही हुई। बिसाखासिंह का सन् १८२३ ई० मे देहान्त हो गया।

धनासिंह के लड़के कर्मसिंह के मरने पर उनकी स्त्री भागभरी उसके हिस्से की मालिक बनीं। उसके निस्सतान मरने पर उसके इलाके ककराले पर कैथल के रईस लालसिंह का अधिकार हो गया। किन्तु लालसिंह के बाद गुलाबसिंह और सगतसिह दोनों उस पर अपना-अपना अधिकार बता कर अंग्रेज सरकार की अदालतों मे मुकदमा लडे। इस मुकदमे का असर यह हुआ कि इनकी स्थिति कैथल जैसी अर्थात् राज्य जैसी न रह कर जागीरदारों जैसी हो गई। फैसले मे इन्हे सब इलाका बांट दिया गया।

सतलज की लडाई के बाद अंग्रेजों ने कैथलिया राज्य और इनके बहुत हिस्सों को अपने राज्य में मिला लिया। सन् १८४५ ई० गुलाबसिंह और १८४६ मे सगतसिह का देहान्त हो गया। गुलाबसिह ने जसमीरसिंह और नौनिहालसिंह नाम के दो लड़के छोड़े थे। जिनमें से नौनिहालसिंह का सन् १८६१ मे निसतान ही देहान्त हो गया। अत अपने बाप का कुल इलाका भाई जसमीरसिह के ही हाथ आया। सन् १८६७ ई० मे भाई जसमीरसिंह का भी देहान्त हो गया। उन्होंने भी दो ही लड़के अपने पीछे छोडे। जिनमें से रनजीतसिंह का सन् १६१२ मे ही देहान्त हो गया। बड़े लड़के शमशेरसिंह अपने पीछे केवल चार वर्ष के बालक शुभशेरसिंह को छोड़ कर सन् १६१८ मे चल बसे। इस यही शुभशेरसिंह अरनोली जागीर के मालिक हैं।

भाई सगतसिंह के लड़के अनोखासिह हुये जिनका सन् १८६४ मे देहान्त हो गया। उनसे १८ वर्ष बाद उनके लड़के जबरजगसिंह का भी सन् १६१८ मे देहान्त हो गया।

भाई जबरजंगसिंह जी ने अपने पीछे फतहजगसिंह और शेरजंगसिह दो लड़के छोडे। जिनके कि जन्म क्रमश सन् १६०६ और सन् १६१३ ई० मे हुए हैं। जो कि अपने हिस्से के इलाके सिद्धूवाल पर काबिज हैं।

समय की गति विचित्र है। कैथल जो किसी समय एक राज्य कहलाता था और वह भी नाभा जीन्द और फरीदकोट की तरह एक शक्ति रखता था। एक बड़ी-सी जागीर भी न रहा। बस अरनोली और सिद्धूवाल उसके पुराने वैभव को याद कराने वाले अवशेष अवश्य मौजूद रहे।

भाई भगतू के पुण्यप्रताप और गुरुओं के आशीर्वाद का जो वृक्ष इतना फला फूला था। वह चाहे नहीं रहा किन्तु भाई भगतू सदैव अमर रहेंगे। आज भी सिख उनका नाम याद करने में गौरवान्वित होते हैं। और आज केवल इसीलिये कि अरनोली और सिद्धूवाल के रईस भाई भगतू के वंशज हैं। उन्हें 'भाई' जैसे प्यारे और गुरुओं के दिये हुये नाम से पुकारते हैं।

आनन्दपुर सिखों का महान तीर्थ है। इसका वर्णन तो आगे के पृष्ठों में करेंगे। यहाँ तो केवल जागीर सम्बन्धी ही उल्लेख करना है। लगभग १६०) सालाना आमदनी की जमीन चन्दपुर, बुरज, चीकुना, मेहदड़ी आदि में आनन्दपुर जागीर से लगी हुई है। खालसा राज्य के समय की ६००) सालाना की जागीर मादू और मुखेडा गाँवों में है। आनन्दपुर की गद्दी सोढ़ियों के हाथ में है।

आनन्दपुर

श्री गुरु हरिगोविन्द जी साहब के साहबजादे सूरजमल जी के वंशज इस गद्दी के मालिक हैं। सूरजमल जी के पुत्र दीपचन्द जी हुये और उनके श्यामसिंह जी। श्यामसिंह जहाँ धार्मिक पुरुष थे। बहादुर भी पूरे थे। यह ठीक है कि सूरजमल जी का गुरुआई पाने के लिये प्रयत्न करते समय रुख अच्छा नहीं रहा था। किन्तु उनके पोते श्यामसिंह जी ने श्री गुरु गोविन्दसिंह जी साहब से अमृत चखकर पिछली भेद-भित्ति को गिरा दिया था। अमृत चखाकर गुरु गोविन्दसिंह जी साहब ने श्यामसिंह जी को एक खंडा दिया था। जो इस समय भी आनन्दपुर में सुरक्षित है।

मिसलों के समय में सोढ़ियों के पास कई बार इलाके बढ़ भी गये थे। किन्तु परिवर्तनों के साथ उनके इलाकों में भी परिवर्तन होता रहा। इस गद्दी के अधिकारियों ने कभी इस ओर खास तौर से ध्यान भी नहीं दिया।

श्यामसिंह जी के सात पुत्र हुये। (१) इन्द्रसिंह (२) नाहरसिंह (३) उदैसिंह (४) खेमसिंह (५) प्रेमसिंह (६) धौरसिंह और (७)जवाहरसिंह। इनमें मुख्यतौर से तीन का वंश बढा। इन्द्रसिंह और जवाहर-सिंह के कोई संतान नहीं हुई। प्रेमसिंह के एक पुत्र शेरसिंह के बाद यह शृंखला टूट गई।

इस समय आनन्दपुर के जो सरदार समझे जाते हैं। वे नाहरसिंह जी साहब के वंशज हैं। नाहरसिंह जी का सन् १७९५ ई० में स्वर्गारोहण हो गया। उनके दो पुत्र थे। सुरजनसिंह और जयसिंह। दोनों भाइयों का परिवार खूब फला फूला। सुरजनसिंह जी का सन् १८१५ ई० में देहान्त हो गया। उनके तीन लडके हुये। (१) तिलोकसिंह (२) दीदारसिंह (३) दीवानसिंह। तिलोकसिंह और दीवानसिंह नि.संतान ही क्रमश. सन् १८२४ और १८३६ में चल बसे। दीवानसिंह के भी जिनका कि देहान्त सन् १८५० ई० में होगया। तीन लडके हुये थे। जिनमें तीसरे लड़के गजेन्द्रसिंह की शृंखला उसके लड़के गुरुवचनसिंह पर सन् १९१२ ई० में समाप्त होगई। दूसरे लड़के नरेन्द्रसिंह जी का परिवार खूब बढ़ा। उनके तो एक ही पुत्र मोतीसिंह हुये। किन्तु मोतीसिंह जी के हरकिशनसिंह, प्रीतमसिंह और हरवंशसिंह नामके तीन लड़के हुये। जिनमें से प्रीतमसिंह के तीन लड़के हैं। (१) महेन्द्रसिंह (२) त्रिलोचन-सिंह और (३) जंगबहादुरसिंह उनके नाम हैं। वे क्रमश १९१६, १९१९ और १९२२ ई० में पैदा हुए हैं।

दीवानसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र ब्रजेन्द्रसिंह के दो लड़के हरनामसिंह और रामनारायनसिंह नाम के हुये। जिनमें से हरनारायनसिंह जी सन् १८८६ में नि.संतान ही प्रस्थान कर गये। सोढ़ी रामनारायनसिंह जी के औतारसिंह, जगतारसिंह, और करतार हुये। इनमें से औतारसिंह जी का सन् १९११ में देहान्त हो चुका है। सोढी जगतारसिंह जी ही जोकि सन् १९०२ ई० में पैदा हुये हैं। इस समय आनन्दपुर की गद्दी

के मालिक हैं। आपके जगजीतसिंह और हरजीतसिंह नाम के दो सुपुत्र क्रमश सन १६२२ और १६२४ ई० मे पैदा हो चुके हैं।

सोढ़ी जगजीतसिंह जी साहब के सम्बन्ध मे कहा जाता है। वे मिलनसार रहमदिल वडे समझदार आदमी हैं। बच्चों की शिक्षा की ओर आपका ध्यान है और धार्मिक सत्संग और चर्चा मे रुचि।

कलासवाला

कलासवजवा और कलासवाला दोनों के पुरुपा और गोत एक ही हैं। चौधरी कलास जिनका कि गोत वजवा था। उनके दो पुत्र थे। एक आमीशाह और दूसरा पत्ती। कलासवजवा के सरदार पत्ती की संतान के हैं और कलासवाला के अमीशाह की संतान के। चौधरी कलास ने दो गॉव बसाये। कलासवजवा और कलासवाला। अमीशाह की सन्तान के पास कलासवाला ही रहा। भंगी सरदारों की चढ़ती के दिनों मे अमीशाह की छठी पीढ़ी मे पैदा होने वाले सरदार खुशहालसिंह ने भगियों के साथ मिलकर अपना जौहर दिखाना आरम्भ किया। कुछ गॉवों पर अधिकार भी किया। किन्तु इधर महाराजा रणजीतसिंह जी के प्रभाव के बढ़ने से कुछ अधिक न कर सका। सन् १८३३ ई० मे खुशहालसिंह का देहान्त हो गया। उनके वेटे सरदार गुलावसिंह और दूलासिंह मे से दूलासिंह के ६ लड़के हुये। जिनका कि परिवार काफी फला फूला। इस समय इस जागीर के मालिक सरदार गुरुदयालसिंह जी है। जिनका कि जन्म सन् १६०० ई० मे हुआ है।

सिंधान वाला

सिन्धानवालिये भी उसी वंश के है। जिनके कि महाराजा रणजीतसिंह जी थे। चौधरी बुद्धासिंह और नौधासिंह दो पुत्र थे। महाराजा रणजीतसिंह जी नौधासिंह के प्रपौत्र अर्थात् पोते महासिंह के पुत्र इस प्रकार चन्दासिंह रिस्ते मे महाराजा रणजीतसिंह जी के दादा चड़तसिंह जी के चाचा होते थे और यदि हम इसी प्रकार रिस्ते का हिसाव लगावे तो इस खान्दान के प्रसिद्ध रईस आनरेबुल लेफ्टीनेन्ट सरदार रघुवीरसिह जी ओ० वी० ई० महाराजा रणजीतसिंह जी के नजदीकी प्रपौत्र सावित होते है।

इस खान्दान का आरम्भिक वर्णन मिसल सुकरचकिया के इतिहास मे लिख दिया गया है। अतः उसे दुहाराना आवश्यक नहीं समझते।

चन्दासिंह और नौधासिंह दोनों ही भाई वड़े बहादुर और साहसी थे। इन्होंने संवत १७८१ में रसूल नगर पर कब्जा कर लिया और उसका नाम रामगढ़ रख दिया। किन्तु रामगढ़ मे वहुत दिन तक ठहर न सके। क्योंकि मजीठे के गिल चौधरी लाहौर के हाकिम के तरफदार थे। इसलिये चन्दासिंह और नौधसिंह को गुजरानवाले की तरफ चला जाना पड़ा, जहॉ उन्होंने सुकरचक को आवाद किया और जिसके नाम पर ही उनका जत्था भी सुकर चकिया नाम से मशहूर हुआ। सम्वत् १७६३ में मजीठा के पास ही पठानों से मुकाबिला करते हुये सरदार नौधासिंह मय अपने पिता बुद्धासिंह के मारे गये। सरदार चन्दासिंह ने अपने भतीजे चड़तसिंह की उसी प्रकार देख भाल रक्खी और उसे तरक्की दी। जिस प्रकार कि कोई भी पिता अपने पुत्र की देखभाल कर सकता है। अथवा तरक्की दे सकता है। चड़तसिंह का जन्म सवत् १७७० मे हुआ। वह भी इस समय सयाना था। अपने चाचा की देखभाल मे थोड़े ही दिनों में वह एक योग्य योद्धा होगया। चन्दासिंह और दीदारसिंह नाम के दो पुत्र हुये।

चड़तसिंह ने थोड़े ही दिनों मे गुजरानवाला स्यालकोट और लाहौर तक अपना अधिकार कर लिया। तव दीदारसिंह और उनके पुत्र भी अमृतसर के आसपास के इलाके के रईस हो गये। किन्तु यह इलाका उनके पास उनके खर्चों के लिये था। कायदे से कोई बटवारा नहीं हुआ था। संवत् १८४१ में

दीदारसिंह का देहान्त हो गया।

अपने पीछे दीदारसिंह ने चार पुत्र छोड़े थे। अमीरसिंह, रतनसिंह, गुरमुखसिंह और गुरुबख्शसिंह। इनमे से गुरुबख्शसिंह सरदार महाराजसिंह के दल मे शत्रुओं से लड़ते हुये नि सतान मारा गया। शेष तीन की औलाद मे आज सैंकडो आदमी इस खान्दान मे मौजूद हैं। ये सभी महासिंह और रणजीतसिंह जी के साथ बराबर युद्धों मे शामिल रहे।

हमीरसिंह जी का सम्वत् १८८४ मे स्वर्गवास हो गया। उन्होंने अपने पीछे पॉच पुत्र छोडे। लहनासिंह, विसावासिंह, बुद्धासिंह, अतरसिंह और जयमलसिंह। इनमे से बुद्धासिंहजी का देहान्त भी इसी वर्ष हो गया जिस वर्ष कि उनके पिता का।

बुद्धासिंह जी के पुत्र शमशेरसिंह जी ने अपनी आखो से सिख साम्राज्य का उत्थान और पतन दोनों देखें और उनमें वे हरेक खुराफात से दूर रहते हुये भी अवलोकन करते रहे। फिर भी उन्होंने उस साम्राज्य को बनाने मे जैसे कोई विशेष भाग नहीं लिया। उसी प्रकार बिगाड़ने मे भी नहीं। क्योंकि सरदार शमशेरसिंह जी के कोई सन्तान नहीं थी। अत सरदार लहनासिंहजी के खान्दान मे से सरदार बख्शीसिंह जी गोद लिये। सवत् १९२८ वि० मे सरदार शमशेरसिंह जी का देहान्त हो गया।

बख्शीसिंह का भी अपने पिता के ३६ वर्ष बाद सम्वत् १९६४ वि० मे देहान्त हो गया। सरदार रघुवीरसिंह जी साहब जिनका कि जन्म १९४६ मे हुआ। उनके उत्तराधिकारी हैं। जर्मन युद्ध के समय उन्होंने सरकार को जन-धन से खूब मदद दी। उन्हे आनरेरी लेफ्टिनेन्ट और ओ० वी० ई० के खिताब सरकार ने सेवाओ से खुश होकर दिये हैं। फर्स्टक्लास आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे हैं।

सूबे की कौंसिल के कई बार मेम्बर रह चुके हैं। उनके पास जागीर और जमीदारी से कई हजार रुपये साल की आमदनी है। उनके पास यू० पी० मे एक अच्छा उपजाऊ भू-भाग है। धार्मिक और सामाजिक कामो मे खूब दिल खोलकर भाग लेते हैं और सहायता करते हैं। सन १९३४ ई० मे आप अखिल भारतीय जाट महासभा के अलीगढ़ महोत्सव के प्रेजीडेण्ट भी रह चुके हैं। सीकर के जाट किसान आन्दोलन के साथ आपने गहरी दिलचस्पी जाहिर की थी। उनकी नई दिल्ली मे भी एक आलीशान कोठी है।

सिन्धानवालियों के इतिहास का एक ऐसा भी पहलू है। जिसे कौतूहलवर्द्धक, अनुत्तरदायित्वपन मे किया हुआ और विवेकहीनता के नाम से पुकार सकते हैं। हालांकि उन्हे यह सब कुछ परिस्थिति से मजबूर होकर ही करना पड़ा था किन्तु जो भी कुछ किया गया वह गम्भीरता और सहृदयता और विवेक के साथ नहीं हुआ, यह कहना ही पडेगा।

महाराजा रणजीतसिंह जी के बाद जो अधेरगिर्दी लाहौर मे हुई वैसी तो शायद मुगल साम्राज्य के अतिम दिनों मे नहीं हुई थी। महाराजा रणजीतसिंह जी अपनी उदारता और सीमा के बाहर की निष्पक्षता से कुछ ऐसे व्यक्तियों को ऊँचा चढ़ा गये थे। जो सार्वजनिक और राजवंश के हित की अपेक्षा अपने निज के हित और स्वार्थों के लिए सर्वस्व नष्ट करने और उचित अनुचित का विचार बिना किये बुरा भला सब कुछ करने को तैयार रहते थे। इसके अलावा उनके उत्तराधिकारी भी उतने दबंग नीति-निपुण और ऊँचे हौसले के नहीं निकले जो इन समस्त प्रपंचियों पर काबू करके इतने बड़े शासन को चला ले जाते। परामुखापेक्षिता और असावधानता उनमे काफी मात्रा में रही। यही क्यों वे उस संघर्ष के समय मे भी विलासितापूर्ण जीवन से निर्लिप्त न रह सके।

महाराजा रणजीतसिंह जी के मरने के बाद उनके पुत्र खड्गसिंह जी गद्दी पर बैठे। खड्गसिंह और उनके पुत्र नौनिहालसिंह के एक ही दिन मे मारे जाने की घटनायें सिख-इतिहास की एक भारी कौतूहलजनक घटना है।

राजा ध्यानसिंह, राजा गुलाबसिंह और सुचेतसिंह यह तीन डोगरा राजपूत थे जो बड़ी तंग हालत मे महाराजा रणजीतसिंह की खिदमत मे हाजिर हुये थे। बढ़ते २ यहॉ तक बढ़े कि महाराज ने उनके लिये राजा के खिताबों से भी विभूषित किया। जब महाराज खड्गसिंह गद्दी पर बैठे तो उन्होंने चेतसिंह नाम के एक जाट-सिख को मंत्री बना लिया। हालाकि मरते समय महाराजा रणजीतसिंह जी ने खड्गसिंह जी को ध्यानसिंह के ही सुपुर्द किया था। इससे ध्यानसिंह को उम्मीद थी कि मंत्री मैं ही बनूंगा। अत. उसने अपनी बुद्धिमानी से महाराजा खड्गसिंह जी से उनके पुत्र नौनिहालसिंह तक को भड़का दिया। और चेतसिंह को मरवा दिया। पिता को नजरबन्दी मे पहुँचा कर ध्यानसिंह ने पुत्र को गद्दी पर बिठाया किन्तु बीमारी से जब महाराज खड्गसिंह का देहांत हो गया। उसी दिन नौनिहालसिंह का भी अन्त हो गया।

अब राजा ध्यानसिंह ने अपनी मर्जी के अनुसार शासन चलाने के लिये कुॅवर शेरसिंह जी को बुलाया। किन्तु खड्गसिंह की रानी चन्द्रकौर ने बीच मे आकर नया प्रबन्ध करा लिया। जिसमे उन्होंने अतरसिंह सिंधानवाला को अपना सलाहकार नियुक्त किया। यह प्रबन्ध भी अधिक दिन नहीं चला। इसलिये रानी साहिबा को अपनी जागीर मे लौट जाना पड़ा और कुॅवर शेरसिंह को ही ध्यानसिंह ने अपनी जालसाजी से महाराज बना दिया। चूॅकि सिंधानवाले रानी चन्द्रकौर के पक्ष मे थे। इसलिये महाराजा शेरसिंहजी ने उनको गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। सरदार लहनासिंह तो गिरफ्तार कर लिये गये। अतरसिंह, अजीतसिंह और हरिद्वार की ओर भाग गये।

रानी चन्द्रकौर ने सिखों के सामने अपनी शर्तों मे एक शर्त यह भी रखी थी कि मुझे सिन्धानवालों मे से अजीतसिंह जी को या और किसी योग्य लड़के को गोद ले-लेने दिया जाय और उसे ही गद्दी का अधिकार दे दिया जाय। चूॅकि इस समय प्राय समस्त सिख सरदारों पर राजा ध्यानसिंह और उनके भाइयों का प्रभाव था। अत यह बात स्वीकार नहीं की गई थी। इससे सिन्धानवाले नाराज भी हुए थे। दूसरे शेरसिंह ने उनके साथ यह व्यवहार किया। बस यहीं से सिंधानवालों के हृदय मे कटुता बढ गई। वैसे ज्यादा गौर से हम देखे तो महाराजा रणजीतसिंह जी की ओर से भी एक गलती थी जिस प्रकार उन्होंने दूसरे ऐरे-गैरे लोगों को इतना बढ़ा दिया वहॉ इन अपने भाइयों को कोई तगड़ी-सी जागीर देकर अलग नहीं कर दिया। यदि इन्हे कोई पूरा जिला दे दिया जाता तो ये बेचारे उसमें दूर रहे आते और डोगरा-गिरदी मे फॅसकर न तो अपना नाम बदनाम करते और न सिख-साम्राज्य को नुकसान पहुँचाते।

कुछ समय बीत जाने पर महाराज शेरसिंह ने अपने भोले स्वभाव के कारण सरदार लहनासिंह सिन्धानवालिया को तो कैद से रिहा कर दिया और अतरसिंह अजीतसिंह, को वापस बुला लिया जो ओहदे उनके पहले थे, वे ही फिर उनको दे दिये। धीरे-धीरे रंजिश के भाव दोनों ओर से दूर हो रहे थे। मुहब्बत बढती जा रही थी। राजा ध्यानसिंह को जब यह पता चला तो वह शंकित हुआ और उसने सिंधानवालों को भड़काना शुरू किया कि महाराज तो मौका देख रहे हैं। वे तुम्हें जिंदा रहने देने में अपने लिये खतरा समझते हैं।

सिंधानवालों ने महाराजा शेरसिंह जी के पास जाकर स्पष्ट शब्दों ने कहा कि राजा ध्यानसिंह

आपका दुश्मन है और वह ऐसी बातें हमसे कहता है कि जिससे हम आपके प्राणों के ग्राहक हो जायँ ।

आप कहें तो हम ध्यानसिंह का खात्मा कर दें। भला जो आपसे छिपी-छिपी दुश्मनी रखता है वह क्या नहीं कर सकता। महाराजा शेरसिंह राजी हो गये और उन्होंने अपने हाथ से लिखकर उन्हें दे दिया। उधर उन्होंने वह पत्र ध्यानसिंह को दिखा दिया और कहा महाराज हमारे ही दुश्मन नहीं हैं किन्तु आपको भी जिन्दा नहीं रहने देना चाहते हैं। अगर तुम सहमत हो तो इस दुश्मन को मिटा ही दिया जाय। ध्यानसिंह सहमत हो गया। उसने भी लिखकर दे दिया। इसके बाद तीनों सिंधानवाले सरदार अपने गाव राजा सांसी चले गये। इधर महाराजा शेरसिंह और राजा ध्यानसिंह दोनों एक दूसरे की मौत के दिन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। कहा जाता है कि किसी का बुरा सोचने से बुरा सोचनेवाले का ही बुरा होता है सो इन दोनों का ही बुरा हुआ ।

सन् १८४३ ई० की १५ दिसम्बर को महाराज शेरसिंह शाह बिलावल के पास बारहदरी में कुश्ती देख रहे थे। उनका लड़का प्रतापसिंह बाग में दान-पुण्य कर रहा था। अजीतसिंह तो महाराज के पास गया और लहनासिंह बाग मे जा छिपा। अजीतसिंह ने बारहदरी मे जाकर महाराज को बन्दूक की गोली का निशाना बना दिया और इधर लहनासिंह ने प्रतापसिंह को मार डाला। महाराजा के साथियों ने भी हथियार संभाले पर एक दो, पचासों आदमियों के सामने क्या कर सकते थे। उनके एक विश्वासी नौकर का भी खातमा हो गया।

अजीतसिंह महाराज शेरसिंह जी के शिर को काट कर ले गया। जब किले मे पहुँचा तो उधर से राजा ध्यानसिंह भी मिल गया। जो बड़ा खुश हुआ। अजीतसिंह उसे वापिस लौटा ले गया और पूछा अब क्या करना है। ध्यानसिंह ने कहा, इसके सिवा क्या करना है कि महाराज, दलीपसिंह जी को बना दिया जाय। अजीतसिंह के साथी गुरुमुखसिंह ने जोकि अजीतसिंह का चाचा होता था, कहा ठीक है और मंत्री तो तुम हो ही। हम बनते रहे बेवकूफ। इतना कहकर फड़ाकसे गोली छोड़ दी। और उसके नौकर को भी जोकि भड़क उठा था। उसके साथ सुला दिया और फिर दोनों की लाश एक गन्दी गली मे फिकवादीं।

अजीतसिंह आदि सिन्धानवालों ने महाराज दिलीपसिंह को गद्दी पर बिठाया और अजीतसिंह[1] स्वय वजीर बना।

राजा ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह को जब यह खबर लगी तो वह अपनी जागीर में से सीधा लाहौर पहुँचा और उसने सिख सेनानायकों को भड़काया कि खालसा साहिबान, सिन्धानवालों ने मेरे ही पिता की हत्या नहीं की है। सिख राज्य के एक शुभचिन्तक को खो दिया है और भला जिन्होंने अपने ही रक्त मास के महाराजा शेरसिंह का कत्ल किया हो वे क्या नहीं कर सकते हैं। मालूम यह भी होता है कि ये अंग्रेजों से मिले हुये हैं। इस तरह इन गद्दारों को जीवित बने रहने देना कहाँ तक ठीक है? सिख सब कुछ बर्दाश्त कर सकते थे। किन्तु उन्हें अंग्रेज के हाथ अपने राज्य को चले जाने की बात सुनते ही क्रोध चढ़ आता था। दूसरे उन्हें यह भी बात बुरी लगी कि सिन्धानवालों ने महाराज शेरसिंह और उनके पुत्र को कत्ल किया। लगभग चालीस हजार सैनिक हीरासिंह के साथ हो लिये और किले का घेरा दे दिया।

भीतर जब सिंधानवालों ने सुना तो वे घबराये किन्तु समझ यह रहे थे कि ध्यानसिंह के मारे जाने से फौज उत्तेजित हो उठी है। अत. उन्होंने ध्यानसिंह और उसके नौकर की लाश सेना मे भिज-

१. ज्ञानी ज्ञानसिंह ने लहनासिंह का वजीर बनना लिखा है।

वादी। उस समय ध्यानसिंह की लाश पर बढ़िया से बढ़िया कफन डाल दिया। कहलाया गया कि ध्यान-सिंह को तो इस मुसलमान ने मारा था जिसे कि बदला लेने के लिये मार डाला है। एक ध्यानसिंह का ही मामला होता तो फौज शांत भी हो जाती मामला तो महाराज शेरसिंह और उनके पुत्र प्रतापसिंह का भी था। कहा जाता है जब खालसा दल शात न हुआ तो लहनासिह ने यह भी कहलवा दिया कि जो कुछ हमने किया है। खूब समझकर किया है और अपने बल पर किया है फिर क्या था किले पर गोली गोलो की वर्षा होने लगी। अजीतसिंह बड़ी बहादुरी से लडा और लड़ता हुआ ही मारा गया। लहनासिंह ने मोरी के रास्ते भागना चाहा किन्तु सफल नहीं हुआ। एक मुसलमान ने उसका सिर काट लिया और हीरासिंह के पास जाकर पेश कर दिया।

हीरासिंह ने सिंधानवाले मृत सरदारों की लाशों के साथ जो व्यवहार किया वह उसकी इसा-नियत को जाहिर नहीं करता। उसने लाशों को बाजार मे घसीटवाया। उनके सहायकों और हिमायतियों को भी मार डाला। सरदार सुखसिंह और उनके एक साथी को भी कत्ल कर दिया। उनकी सारी जागीर जब्त कर ली और राजा सासी के मकानों को ध्वंश करने का हुक्म दिया। इससे जो भी बन पडा उसे करने मे उसने कसर नहीं छोड़ी।

सरदार अतरसिंह मय अपने पुत्र केहरीसिंह के किसी प्रकार निकल गया। कहा जाता है पहले तो अतरसिह अंग्रेज अफसरों के पास अम्बाला गया। फिर सतबीरसिह जी के पास चला गया। इधर गुलाबसिंह ने काश्मीरासिंह और पिशोरासिंह के सम्बन्ध मे खालसा के पास समाचार भेजे कि अतरसिंह के कहने मे आकर वे लाहौर पर चढाई करने की तैयारी कर रहे है।

बाबा वीरसिंह सीधे और सच्चे आदमी थे। वे माँझा के सिखों पर प्रभाव भी खूब रखते थे। उन्होंने अतरसिंह को शरण भी दे दी। साथ ही पंजाब के अनेकों प्रतिष्ठित सिख-सरदारों को चिट्ठियाँ लिखीं कि हीरासिंह जो कुछ कर रहा है उस पर ध्यान दे और यह भी खयाल करें कि रणजीतसिंह का राज्य किसी आदमी का राज्य नहीं समस्त सिखों का राज्य है इसे नष्ट होने से बचाये। योद्धा प्रकृति के सैकडों सिख बाबा वीरसिंह से इस सम्बन्ध मे सलाह के लिये भी आने आरंभ हुये। इधर हीरासिंह ने जब यह समाचार सुना तो उसने सेना की एक टुकड़ी बाबा के स्थान पर भेजी। उस समय काश्मीरासिंह भी वहां थे। बाबाजी ने अपने जिन्दे रहने तक ता लड़ाई को रोका किन्तु उनके प्राणात के बाद लडाई न रुकी, दानों आर से डट कर लडाई हुई। इसमें अतरसिह और कश्मीरासिह भी मारे गये। इस प्रकार सिंधानवाले और महाराजा रणजीतसिंह के वशजों का बराबर खात्मा डोगरशाही की स्वार्थ-लिप्सा और राज खान्दान की अविवेकता से होने लगा।

सरदार अतरसिंह सिंधानवाला का लड़का केहरसिंह इस समय भी अंग्रेजी इलाके में था। और कई सिंधानवालिये जो कि अतरसिंह के भाई भतीजे होते थे। अंग्रेजी इलाके मे चले गये थे। और वे उस समय तक वहाँ रहे जब तक कि डोगरों का भी सत्यानाश न हो लिया और खालसा राज्य का खातमा न हो गया। इनमे से कुछ उस युद्ध मे भी रहे जो अंग्रेजों ने सिखों के विरुद्ध किया।

सिंधानवालो की जागीर तो वापिस आगई किन्तु उतनी नहीं जितनी महाराजा रणजीतसिंह जी के समय मे थी।

अंत मे यह कहना पड़ता है कि डोगरों के स्वार्थ और सिंधानवालों के अविवेक ने तथा अन्य सिख विरोधी प्रवृत्तियों ने उस विशाल सिख-साम्राज्य को मिट्टी मे मिला दिया जिसकी जड़े काबुल और

लद्दाख की ओर फैलना चाह रही थीं और अवश्य ही फैलने वाली थीं।

अतरसिंह सिंधानवाला का लड़का केहरसिंह भी सन् १८६४ ई० में स्वर्गवासी हो गया। अजीतसिंह के उस समय तक कोई संतान थी ही नहीं। सरदार लहनासिंह जी के दो पुत्र थे। प्रतापसिंह और ठाकुरसिंह। ये दोनों ही उस समय अंग्रेजी इलाके में चले गये थे। शांति के समय अपने गॉव राजा सांसी में आ गये। प्रतापसिंह के लड़के गुरुबचनसिंह गुरुमुखसिंह के प्रपौत्र हरदत्तसिंह के यहां गोद चले गये। ठाकुरसिंह के (१) गुरुबचनसिंह, (२) बख्शीशसिंह, (३) नरेन्द्रसिंह, (४) गुरुदत्तसिंह हुये। इनमें से बख्शीशसिंह जी सरदार बुद्धसिंह जी के पुत्र शमशेरसिंह जी के यहां गोद चले गये। गुरुदत्तसिंह जी के सरूपसिंह और प्रीतमसिंह दो पुत्र हुये हैं। नरेन्द्रसिंह जी के चार पुत्र हैं। (१) दलपतसिंह (२) कृपालसिंह (३)गजेन्द्रसिंह और (४)विचित्रसिंह। इनमें दलपतिसिंह के तेजेन्द्रसिंह और गजेन्द्रसिंहजी के भूपेन्द्रसिंह जी हैं। बस लहनासिंह जी की सन् १६३६ तक की यही वंश-तालिका है।

हम पिछले पृष्ठों में लिख चुके हैं कि सरदार दीदारसिंह जी के चार पुत्र थे। उनमें से तीन की फुलवाड़ी खूब फली फूली। उनकी संतान में से इस समय प्रमुख २ सज्जन इस प्रकार हैं।

(१) सरदार ले० रघुवीरसिंह जी ओ० बी० ई० और उनके पुत्र।
(२) सरूपसिंह जी सन् १६१५ में पैदा हुये हैं।
(३) नरेन्द्रसिंह जी के चारों पुत्र अजयपालसिंह
(४) औतारसिंह और उनके भाई निरंजनसिंह } एक ही बाप की सन्तान हैं।
(५) करतारसिंह और उनके पुत्र जगजीतसिंह
(६) उजागरसिंह, अमरसिंह और उनके पुत्रगण।
(७) राजेन्द्रसिंह और उनके भाई।
(८) अमलसिंह, अमरसिंह और उनके भाई तथा पुत्र।
(९) कुन्दनसिंह, गुरदयालसिंह और उनके भाई।
(१०) वासदेवसिंह और उनके भाई।

इसी प्रकार अन्य सरदार और उनके भाई हैं। परन्तु प्रांतीय दरबार में स्थान सरदार रघुवीरसिंह जी का ही था।

यह जागीर नकई मिसल का अवशिष्ट भाग है। जहॉ पर हमने नकई मिसल का वर्णन किया है। वहाँ पर इस जागीर के पूर्वजों का परिचय आ गया है। नकई मिसल में जो प्रमुख सरदार चौधरी हेमराज थे। उन्हीं के वंशज इस जागीर के मालिक हैं। आरम्भ में ये लोग लाहौर जिले के परगने चूनियॉ में भडवाल गॉव में रहते थे।

बहरवाल

किसी समय ४५ लाख का इलाका इस जागीर के पूर्वजों के हाथ आ गया था। चौधरी हेमराज के हीरासिंह और नत्थासिंह नाम के दो पुत्र थे। इनमें हीरासिंह ने बाहुबल से इस मिसल की शक्ति बहुत ज्यादा बढ़ा दी थी। सम्वत् १८२६ वि० में हीरासिंह के पाकपट्टन के शेख सुभान के साथ लड़ते हुये मारे जाने के कारण उनका भतीजा नाहरसिंह मिसल का अधिपति बना। क्योंकि हीरासिंह का खुद का लड़का दलसिंह नाबालिग था। नाहरसिंह ने कुल छ वर्ष इस मिसल की सरदारी की। संवत् १८३२ में तपेदिक से उनका भी देहान्त हो गया। अत: सरदारी उनके छोटे भाई रनसिंह के हाथ आई। जिसने अपनी होशियारी से मिसल का अध पतन होने से रक्षा की। इनने भी बहुत

सारे इलाके बढाये। सम्वत् १८३९ मे इसका भी देहान्त हो गया।

रनसिह के तीन पुत्र थे। (१) भगवानसिंह (२)ज्ञानसिह और (३)खजानसिंह। भगवानसिंह के हाथ सरदारी आई। किन्तु वह उसे सम्भाल नहीं सका। उसके समय मे वहुत सारे इलाके हाथ मे निकल गये। सम्वत १८४६ मे गृह कलह मे भगवानसिंह मारा गया। इसने अपनी वहिन की शादी महाराजा रणजीतसिंह जी के साथ करदी थी। इसके छोटे भाई ज्ञानसिंह का जमीन जायदाद पर प्रभुत्व हुआ।

सम्वत १८६४ विक्रमी मे ज्ञानसिंह भी मर गया। तव उसके लडके काहनसिंह को उत्तराधिकार मिला। किन्तु महाराजा रणजीतसिह जी ने काहनसिह के पास केवल पन्द्रह हजार की जागीर रहने दी। खजानसिंह के लिये जोकि काहनसिंह का चाचा था नानकोट का इलाका मिला।

इसके वाद पजाव मे अंग्रेजों का प्रभुत्व वढ़ गया। मुल्तान मे जव मूलराज ने अंग्रेजो के विरुद्ध युद्ध किया तो काहनसिंह का लडका अतरसिंह अंग्रेजों के विरुद्ध मूलराज के साथ मिल गया। इससे अंग्रेज वडे नाराज हुये और उन्होंने जागीर का एक भाग जब्त कर लिया किन्तु काहनसिंह के वहुत कुछ सफाई पेश करने पर अंग्रेज उस वुड्ढे सरदार से खुश भी हो गये और उसे वहरवाल का आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। जागीर लगभग वारह हजार रुपये की रह गई। काहनसिंह के चार लडके थे। चतरसिंह, अतरसिंह, ईश्वरसिह और हुक्मसिंह। जिनमे हुक्मसिंह लावल्द मर गया और ईश्वरसिंह अतरसिंह मुस्लमान हो गये। चतरसिंह भी अपने वाप से १५ वर्ष पहले मर गया। सरदार काहनसिंह का देहान्त सवत् १९३१ वि० मे हो गया। अतः चतरसिंह का लडका रनजोधसिंह जायदाद का मालिक हुआ। किन्तु आपस मे मुकद्दमा चलने पर रणजोधसिंह के पास दो हजार की जागीर रह गई। कुछ ईश्वरसिंह, अतरसिंह और रणजोधसिंह के भाई प्रतापसिंह और ठाकुरसिंह को मिल गई।

सरदार रनजोधसिंह जी के दो पुत्र हुये। ऊधमसिंह और नारायनसिंह। सवत् १९४८ मे उनके मरजाने के वाद जागीर के सरदार नरायनसिह हुये। यह कहना होगा कि ऊधमसिंह के पुत्र और पौत्र सभी का देहान्त हो गया अत. जागीर एक ही भाई के पास रही। सरदार नारायनसिंह जिनका कि देहान्त हो चुका है और हरदयालसिंह ही इस समय इस जागीर के मालिक हैं। सन् १९२१ ई० मे आप के उत्तराधिकारी का जन्म हो चुका है जिनका कि नाम मनमोहन इन्द्रपालसिंह है। अतरसिंह के एक लडका लाभसिंह हुये थे और खजानसिह के वश की फुलवाडी भी खूब फूल रही है।

मिसल नकाई मे चौधरी मीठा के पुत्र कमरसिंह भी एक वड़े वहादुर आदमी थे। ये चीमा के रहने वाले थे। जब मिसल का संगठन ढीला पड गया तो इन्होंने नकाई गॉव के आसपास के इलाके पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। कमरसिंह दो भाई थे। उनके दूसरे भाई का नाम वजीरसिंह था। कमरसिह का सैयदवाले रईस के साथ लड़ते हुए सवत् १८३७ वि० मे देहान्त हो गया। अव तक भी मिसल मे अच्छा सगठन था। इस समय कमरसिह के भाई और रनजोधसिंह के लडके भगवानसिह मे ज्यादा झगडा वढ़ गया। भगवानसिह ने सरदार महासिह सुकरचकिया के लड़के प्रतापी रणजीतसिह के साथ अपनी वहन दातारकौर का विवाह करके ताकत वढाली। इसलिये कमरसिह के भाई वजीरसिह को घाटा पड़ा। महासिंह ने अमृतसर मे भगवानसिह और वजीरसिंह का समझौता भी कराया किन्तु वह समझौता अधिक दिन न चल सका। और संघर्ष यहॉ तक वढ़ा कि भगवानसिंह वजीरसिह के ही हाथों से संवत् १८४६ वि० में मार दिया गया। दलसिंह ने जो कि भगवानसिह का रिस्ते मे दादा होता था वजीरसिंह को मारने की

नकाई

कोशिश की किन्तु वह खुद ही मारा गया। असल में दलसिंह के साथ उसके ही नौकरों ने दगा की।

संवत १८४७ वि० में वजीरसिंह का भी देहान्त हो गया। मेहरसिंह और मोहरसिंह नाम के उसने अपने पीछे दो लडके छोड़े थे। मोहरसिंह का वंश उसके एक मात्र पुत्र हीरासिंह पर समाप्त हो गया। हमें बताया गया है कि इन दोनों बाप-बेटों की मृत्यु स्यालकोट की लड़ाई में महाराजा रणजीतसिंह जी से लडते-लड़ते हुई थी। इन दिनों स्यालकोट भी चार सरदारों के अधिकार में था। जीवनसिंह, साहबसिंह, मोहरसिंह और बाबा नत्थासिंह। इनमें से साहबसिंह तो उस समय गैरहाजिर था। बाबा नत्थासिंह और मोहरसिंह मारे गये। जीवनसिंह को महाराजा रणजीतसिंह ने इलाके देकर छोड दिया।

सरदार मेहरसिंह का भी संवत् १६०० में देहान्त हो गया। उनके तीन लडके जयमलसिंह, धारासिंह और फतहसिंह थे। इनमें जयमलसिंह बचपन में ही मर गया। धारासिंह और फतहसिंह जी के सतानें हुई और खूब कुटुम्ब बढ़ा।

सवत् १६७७ वि० में धारासिंह का देहान्त हो गया। उन्होंने अपने समय में जितना हो सका अंग्रेज सरकार की सेवा की जिससे रही-सही जागीर सुरक्षित रह गई। उनके उत्तमसिंह और शेरसिंह नाम के दो लड़के हुये। इनमें शेरसिंह नि सतान रहे। उत्तमसिंह के तेजासिंह, लालसिंह और वरियामसिंह, नाम के तीन पुत्र हुये। सवत् १६६४ वि० में सरदार उत्तमसिंह जी का देहान्त हो जाने पर सरदार तेजासिंह जी जिनका कि जन्म सवत् १६२८ में हुआ है जागीर के मालिक हुए। आप के छोटे भाई वरियामसिंह जी के संवत् १६५८ में महेन्द्रसिंह, संवत् १६६५ में नरेन्द्र कुमारसिंह, सवत १६६७ में जोगेन्द्रसिंह और सवत् १६७३ में राजेन्द्रसिंह नाम के चार पुत्र हुये हैं, मझले भाई लालसिंह जी के तीन पुत्र हैं। जिनके कि नाम गुरुदयालसिंह, कुमार वसतसिंह और जगजीतसिंह हैं इन तीनों के जन्म क्रमश संवत् १६६७, १६७१, और १६७७ विक्रमी में हुये हैं।

सरदार तेजासिंह जी के चार पुत्र हुये हैं। उनमें ऊधमसिंह संवत् १६४६ में, गुरुचरनसिंह संवत् १६५४ में। हरचरनसिंह सवत् १६५६ और शिवचरनसिंह संवत् १६५६ में पैदा हुये हैं। सरदार तेजासिंह जी के इन चारों पुत्रों के भी सुपुत्रगण हो चुके हैं। शिवचरनसिंह जी के हरेन्द्रपालसिंह गुरुचरनसिंह जडेश्वरसिंह हैं और हरचरनसिंह जी के सुखवतसिंह और हरवंतसिंह है। बलरामसिंह, सुखरामसिंह दोनों पुत्र ऊधमसिंह के है।

नलवा खान्दान

सरदार हरदाससिंह जी जिला अमृतसर में मजीठ के रहने वाले थे। सुकरचकिया मिसल के साथ उनके पुत्र गुरुदयालसिंह जी ने बड़ी बहादुरी से काम किया। सरदार चडतसिंह और सरदार महासिंह जी के साथ बड़ी वीरता और वफादारी के साथ युद्ध करने के कारण सरदार महासिंह ने शाहदरे के पास एक छोटी सी जागीर इन्हे दी थी। सन् १७६१ ई० मे इनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हरीसिंह था। यह हरीसिंह ही पीछे अपनी बहादुरियों के कारण नलवा के नाम से मशहूर हुआ। सरदार गुरुदयालसिंह जी का सन् १७६८ में देहान्त हो गया। अत बालक हरीसिंह जी की देख रेख महाराजा रणजीतसिंह जी के हाथ में ही रही। वे इन्हें खूब प्यार करते थे।

सरदार हरीसिंह जी नलवा का जीवन-वृतान्त दूसरी जगह दिया जा चुका है। अत यहाँ इतना ही बताना चाहते हैं कि जमरूद में सन् १८३७ में वे पठानों से लडते हुये काम आये। उस समय उन्होंने आठ लाख की जागीर और बहुत-सी सम्पत्ति छोडी थी।

सरदार नलवा के चार पुत्र थे। (१) सरदार गुरुदत्तसिंह (२) सरदार जवाहरसिंह (३) सरदार-पंजाबसिंह और (४) सरदार अर्जुनसिंह। ये अलग-अलग दो माताओं के थे। क्योंकि सरदार नलवा के दो सरदारनी थीं।

उस समय मे इनकी जागीर मे गुजरानवाला, कच्छी, नूरपुर, मिठुवाना, कल्लर, खाट, हजारा, खानपुर, और खतक थे। इनकी एवज मे दो रेजीमेन्ट सवारों को, एक तोपखाना, एक ऊँटो का दल, हर समय महाराजा रणजीतसिंह जी की सेवा के लिये तैयार रखने पड़ते थे। उस समय गुजरानवाला एक गुलजार शहर बना हुआ था। एक बहुत सुन्दर बाग सरदार हरीसिंह ने लगवाया था जिसमे फ्रान्स और माल्टा से मगा कर नारगी आदि के बढ़िया-बढ़िया गाछ लगाये थे।

इतनी बड़ी जायदाद को आपस मे बाटने के लिये चारों भाइयो में झगड़ा हो गया और वे आपस मे खून खच्चर पर उतर आये। यह देख कर महाराजा रणजीतसिंह जी ने कुल जायदाद जब्त करली और केवल उनतीस हजार सालाना की आमदनी का इलाका इनके लिये रहने दिया।

सरदार गुरुदत्तसिंह जी सन् १८०७ मे पैदा हुये और सन् १८५४ ई० मे उनका देहान्त हो गया।

सरदार अर्जुनसिंह जी के अच्छरसिंह और सम्पूरनसिंह नाम के दो पुत्र हुये। अर्जुनसिंह जी का सन् १८४८ ई० मे इन्तकाल हो गया। सरदार सम्पूरनसिंह जी के एक पुत्र हुये थे जिनका देहान्त उनके आगे ही सन् १८६८ मे हो गया था। सन् १८७४ मे सम्पूरनसिंह भी चल बसे।

सरदार अच्छरसिंह जी के सन् १८६७ मे एक पुत्र हुये जिनका नाम सरदार नारायणसिंह है। सरकार की ओर से सरदार नारायनसिंह को सरदार बहादुर का खिताब और आनरेरी मजिस्ट्रेटी का दर्जा उनकी सेवाओं के उपलक्ष मे दिया गया।

सरदार नारायणसिंह जी के ८ पुत्र हुए। जिनके नाम इस प्रकार है—(१) करतारसिंह इनका देहान्त हो चुका है (२) मूलसिंह इनका भी देहान्त हो गया। (३) बलवन्तसिंह आप पी० सी० एस० थे। (४) इकबालसिंह आप केप्टिन आई० एम० एस० थे। (५) सन्तसिंह आप पुलिस मे ऊँचे पद पर थे। (६) बख्शीशसिंह (७) कुलवन्तसिंह और (८) इन्दरसिंह।

सरदार नारायणसिंह जी ने सभी पुत्र सुशिक्षित कराये। गुजरानवाला मे आपका खान्दान इज्जतदार घरानों मे था। जेठे पुत्र बलवन्तसिंह जी के दो पुत्रों का हमे मालूम हो सका है। उनके नाम कुलदीपसिंह और अमरजीतसिंह है। शेष भाइयो की सन्तने भी थीं। लोग सरदार हरीसिंह के नाम से अभी तक इन लोगों को नलवा ही कहकर सन्मान से याद करते है।

छब्बीसवाँ अध्याय

सिख-महिला-इतिहास

जिस प्रकार सिख जाति मे अनेकों वृद्ध, युवा और बालक धर्मवीर, शूरवीर और देशभक्त तथा विद्वान् हुए हैं। उसी प्रकार अनेकों सिख माताओं, बहिनों और बेटियों के बहादुराना, दिलेराना और अक्लमन्दाना कारनामों से सिख जाति का माथा ऊँचा हुआ है। इस अध्याय मे कुछ एक ऐसी ही सिख-महिलाओं के जीवन पर प्रकाश डालते हैं।

बीबी नानकी जी सिख धर्म के आदि प्रवर्तक गुरु नानकदेव जी की बड़ी बहिन थीं। उनका विवाह सुल्तानपुर के नवाब के कारिन्दा जयराम जी के साथ हुआ था। बहुत कुछ परिचय बीबी नानकी जी का पीछे के एक अध्याय मे आ चुका है। यहा केवल इतना ही कहना है कि वे परम ईश्वर भक्त बुद्धिमान, साहसी मिलनसार और धर्मप्रिय महिला थीं। संसार से परम विरक्त गुरु नानकदेव जी इनसे इतना प्यार करते थे कि जब भी वे याद करतीं गुरुजी परदेश से उसी समय उनसे मिलने को चल पड़ते थे।

बीबी नानकी जी

बीबी भानीजी सतगुरु अमरदास जी की पुत्री थीं और गुरु रामदास जी के साथ उनका विवाह हुआ था। आपने गुरु अमरदास जी की बड़ी सेवा की जिनका कि वर्णन हम प्रथम ही कर चुके हैं। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि इन्होंने अपनी सेवाओं के द्वारा गुरु अमरदास जी से गुरुआई अपने वश मे स्थिर रहने का वरदान प्राप्त कर लिया था। यह गुरु-भक्त, सेवा-परायण, कष्ट सहने में परम साहसी, परिश्रमशील और दूरन्देश थीं।

बीबी भानी

आप गुरु अर्जुनदेव जी की धर्मपत्नी थीं। ईश्वर मे तो आपकी परम निष्ठा थी ही। साथ ही लंगर के काम की भी आप भली प्रकार देख-भाल करती थीं। परसाद छकनेवालों को कभी कभी आप ही छकाने लगती थीं। छठे पातशाह गुरु हरिगोविन्द जी महाराज आप ही के पुत्र थे। बड़ों का सन्मान करने में आप कभी भी इस बात का खयाल न करती थीं कि मेरा स्थान बहुत ऊँचा है। बाबा बुड्ढा के लिये अपने हाथ मे भोजन खिलाना और उनकी सुविधाओं का ख्याल रखना आपके सेवा-भाव के प्रमाण हैं।

माता गगादेवी जी

गुरु अर्जुनदेव जी की शहीदी के बाद छठे पातशाह के साथ आपने बड़े संकट झेले क्योंकि दुश्मनो से पाला पड़ने के कारण छठे पातशाह को जीवन भर कठिनाइयां उठानी पड़ीं।

माई भागभरी

यह काश्मीर की रहने वाली थीं और सिख धर्म से बडी प्रीति रखती थीं। उधर के लोगों मे इन्होंने गुरुमत का जीवन भर प्रचार किया। इनकी अन्तिम इच्छा थी कि मेरा प्राणान्त गुरु जी के दर्शन करके हो। इसे सिख धर्म की मीरा ही समझना चाहिये। इसकी हार्दिक भक्ति पूरी हुई और गुरु हरिगोविन्द जी साहब ने जाकर उसे दर्शन दिये। वह दर्शन पाकर जीवन-मुक्त होगई।

पजाब मे बागडियान की एक जागीर है। ये लोग भाई साहब कहलाते हैं। इनके यहा गुरु हरिगोविन्द जी का दिया हुआ एक 'कड़छा' है। ये लोग भाई रामा के पुत्र सिद्धू के वशज हैं। इन्हे सिख

राजो बीबी

धर्म मे लाने का श्रेय बीबी राजो को ही है जिसका कि नाम जसोदा भी था। जब वह विदा होकर अपनी ससुराल जारही थी तो डरोली मे कीर्तन की आवाज सुनकर डोली मे से उतर कर उसमे शामिल हो गई। रामा ने इस बात पर क्रोध किया और तलवार लेकर अपनी पुत्रवधू का सिर काटने को तैयार हो गया किन्तु हाथ जहॉ का तहॉ रुक गया। और इसके बाद यह गुरु के उपदेशों से प्रभावित होकर गुरु जी का शिष्य हो गया। उसने वहां से लौट कर सुल्तानपुर के मकान आदि को तोड़ फेंका और गुरुमत मे पूरी श्रद्धा के साथ अपना जीवन बिताने लगे। सिख होने पर उन्होंने उत्तरोत्तर वृद्धि की। इसीलिये आज तक उनके वंशज बीबी राजो को अपनी कल्याणकर्त्री मानते है और उस कड़छे को बडे प्रेम से रखते है जो गुरु जी ने कड़ाह-प्रसाद बनाने के लिये बीबी राजो को दिया था।

जीन्द के राजा गजपतिसिंह जी के जोकि उन दिनों बड़रूखां मे रहते थे। एक लड़की पैदा हुई। जिसको स्त्रियों ने एक बर्तन मे बन्द करके जीते जी गाड दिया। इससे तीन दिन बाद बाबा गूदड़िया

वीर प्रसूता माई मलावा

नाम के एक सत राजा गजपतिसिंह जी के पास आये। उन्होंने कुशल मंगल के बाद पूछा रानी जी के क्या बच्चा पैदा हुआ है? राजा साहब ने उत्तर दिया एक लड़की पैदा हुई थी। वह जन्मते ही मर गई। अत. उसे गाड़ दिया गया है। सत जी मुख्य बात को जान गये कि वह मरी नहीं है। बोले उसके भाग्य मे तो एक महान प्रतापी व्यक्ति को जन्म देना बदा है। सचमुच ही बालिका मरी न थी। वह बर्तन मे अपने अगूठे को पी रही थी।

यही बालिका सरदार महासिंह को व्याही गई और आगे चलकर पञ्जाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह को जन्म देने वाली माई मलावा के नाम से जगत प्रसिद्ध हो गई।

सिख इतिहास मे चमकौर के युद्ध का स्थान बहुत ऊचा है। यहा गुरु गोविन्दसिंह जी साहब ने चालीस शूरवीरों के साथ बीसियों हजार मुगल सैनिकों से युद्ध किया था और अपने दो प्यारे बच्चों को

बीबी शरनकौर

धर्म की बलि देकर त्याग का अभूतपूर्व उदाहरण उपस्थित किया था। बीबी शरनकौर इसी चमकौर की रहने वाली थीं।

जब गुरु जी चमकौर से चले गये और शत्रु लोग अपने दल के मृतकों को गाड फूंक कर निश्चित हो गये। तब सिखों की ल्हासों को पड़ी देखकर बीबी शरनकौर को बड़ा दुख हुआ। चमकौर के मर्द डर के मारे इधर उधर छिपे हुये थे। तब रात के समय बीबी जी ने ही समस्त लाशों को इकट्ठा किया और ईंधन से चिता बना कर उसमे आग लगा दी। आग का प्रकाश देखकर मुगल कैम्प मे से कुछ सिपाही आये। उन्होंने बीबी से पूछा? तुम क्या कर रही हो। उन्होंने कहा देखते हो न,

अपने भाइयों का संस्कार कर रही हूँ। तुर्कों ने फिर पूछा तुमसे किसने कहा कि इनका संस्कार करो। बीबी जी ने बिना ही घबराये हुए बड़े धीरज से कहा। यह मेरा धर्म है। यह मेरे धर्म भाई हैं। इस पर तुर्क आगबबूला हो गये और इन्हें बर्छों मे छेद कर ऊपर को उठा लिया और बोले यह क्या है? बीबी जी ने कहा "यह धर्म पर शहीदी" है। शैतान के दिल नहीं होता है। यह कहावत मशहूर है। उन दुष्टों ने बीबीजी को उस धधकती चिता पर फेंक दिया। किन्तु उस वीर बाला ने उफ तक न की।

आनन्दपुर के आखिरी युद्ध मे जो लोग दशम पातशाह को बेदावा लिख गये थे। उन्हें बड़ा दुःख हुआ, वे सब पुनः गुरुजी की सेवा के लिये उन्हें ढूंढ़ते फिरे। यह लोग मुक्तसर में गुरु जी के दुश्मनों के साथ लड़ते हुए मारे गये। माई भागो भी इस युद्ध मे तुर्कों से लड़ी थीं। और उनके कई घाव आये थे। जब गुरु जी ने उन्हें देखा तो उनको पानी पिलाया और उसके जख्मों पर पट्टी बांधी। कहा जाता है माई भागो की वीरता की कोई पुस्तक नादेड़ मे अब तक रक्खी है।

माई भागो

सुराहे गोत के चौधरी मलूका की पौत्री और चौधरी खन्ना की पुत्री का नाम फत्तो था जो आगे चलकर वीर सरदार राजा आलासिंह जी की धर्मपत्नी बनीं। इनका जन्म सन् १६६७ के आसपास हुआ था। ९ वर्ष की उम्र मे इनकी शादी हो गई।

रानी फत्तो

रानी फत्तो प्रायः प्रत्येक युद्ध में अपने पति के साथ रहती थीं। जहाँ वे निर्भीक थीं वहाँ अक्लमंद भी काफी थीं।

एक बार नवाब मालेरकोटला के कहने से अली मुहम्मदखां रुहेला ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। हालाकि महाराजा की उससे दोस्ती थी किंतु वह नवाब मालेरकोटला की बातों मे आगया।

इसके बाद उन्होंने बरनाला को जहां कि महाराज आलासिंह का सदर मुकाम था लूटने के लिये चढ़ाई की किंतु रानी फत्तो ने उनके आने से पहले ही सारा कीमती माल भटिंडा पहुँचा दिया और अपने इलाके का बड़ी मुस्तैदी से प्रबन्ध करती रहीं। महाराजा आलासिंह को सुनाम के किले मे बन्द किया हुआ था और दो बरस बीत चुके थे आखिर रानी फत्तो ने कर्मसिंह नाम के सिख को और दूसरे सिक्खों को अपने साथ मिलाया। कर्मसिंह सुनाम के किले मे पहुँच गया और उसने अपने कपड़े राजा आलासिंह को पहना कर बाहर निकाल दिया। बाहर घोड़े तैयार खड़े थे। जो आलासिंह को लेकर दौड़ आये। पीछे से कर्मसिंह भी पट्टीदार को मारकर भाग आया। रक्षकों ने भागे हुए लोगों को पकड़ना चाहा किंतु उन्हें पहले से तैनात सिखों ने मार गिराया। यह बात सन् १७४७ ई० की है।

यह कहने मे कोई अत्युक्ति नहीं कि राजा आलासिंह यदि महाराज थे तो रानी फत्तो उनकी वजीर थीं। आलासिंह यदि विजेता थे तो वे चतुर प्रबन्धक थीं। यही वजह है कि उनका राज बराबर बढ़ता रहा।

जिस समय अहमदशाह अब्दाली की सेना बरनाला की लूट को आई थी। उस समय रानी फत्तो ने अपनी बुद्धिमानी से अपने परिवार और तमाम सपति की रक्षा करली और उधर अपने आदमी अब्दाली के पास भी सुलह के लिये भेज दिये।

सन् १७६५ ई० मे राजा साहब का देहांत हो जाने पर भी उन्होंने धैर्य्य को नहीं छोड़ा उस समय राजकुमार अमरसिंह नाबालिग थे। उन्होंने उन्हें गद्दी पर बिठाकर राज काज चलाना आरम्भ कर दिया। यह याद रहे अमरसिंह जी उनके बड़े पुत्र शार्दूलसिंह के पुत्र थे। शार्दूलसिंह का बाप से

भी पहले देहांत हो चुका था।

अमरसिंह जी के एक सौतेले भाई हिम्मतसिंह थे। उन्होंने राज के लिये झगड़ा उठाया किंतु रानी फत्तो ने दोनों के झगड़े को मिटाने के लिये कुछ परगने हिम्मतसिंह को भी दे दिये।

इस वीर रानी का जिसका नाम सारे मण्डल में मशहूर हो गया था। सन् १७७३ ई० में पटियाला शहर मे स्वर्गवास हो गया। उनके पति के पास ही उनका सस्कार किया गया। सारे पटियाला मे उनके लिये शोक छा गया और सभी ने उन्हे याद किया।

राज काज को संभालने की योग्यता और बहादुरी के सिवा भी रानी फत्तो में अनेको ऐसे गुण थे जिनसे उन्हे पटियाला राज्य में अब तक याद किया जाता है। उनके यहाँ जब सिख संगते आती थीं तो वे खुद उनके खाने-पीने का इंतजाम अपनी आखों के आगे कराती थीं। दान-पुण्य से भी कभी मुंह नहीं मोडती थीं।

अभिमान उनमे तनिक भी न था। अगर उन्हे कोई कड़वी बात कहता तो वे उसे दुख पहुँचाने की चेष्टा नहीं करतीं।

उनकी कोशिश रहती थी कि अपनी बिरादरी के लोगों से राजा आलासिंह कोई भी बखेडा नहीं करे और ऐसा ही हुआ भी।

भला ऐसा कौन शिक्षित हिन्दू होगा जो माता गूजरी के नाम से परिचित न होगा। आप दशम पातशाह गुरु गोविन्दसिंह जी की माता और गुरु तेगबहादुर जी की धर्म पत्नी थीं। गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन वृतात के साथ हम आपके सम्बन्ध की घटनाओं पर प्रकाश डाल चुके हैं।

माता गूजरी

यहाँ तो यही कहना है कि आप अत्यन्त बुद्धिमान और धीरज वाली थीं। गुरु गोविंद-सिंह जी आपकी किसी भी आज्ञा का उलघन नहीं करते थे। आनन्दपुर को छोड़ने की उनकी इच्छा न थी। सिखों के साथ ही माता जी ने ही उन्हे आनन्दपुर छोड़ने को बाध्य किया। कारण यह था कि माताजी दयालु भी ऊँचे दर्जे की थीं। चूंकि वहाँ सामग्री के निबट जाने के कारण सिख लोग भूख से छटपटा रहे थे। आप उनके कष्ट को बर्दास्त न कर सकीं और उसका फल यह हुआ कि आपको फिर भारी से भारी विपत्ति झेलनी पडीं। आपके हृदय मे जो धर्म-प्रेम था। उनका तो पता आपके उस धीरज से चल जाता है। जो अपने नन्हे-नन्हे पौत्रों को सरहिंद मे बलिदान की भूमिका के समय धर्म पर दृढ़ रहने का उपदेश देकर प्रकट किया था।[1]

माता सुन्दरीजी दशमेश की धर्मपत्नी थीं। संसार मे ऐसी बहुत कम माँ रही होंगी। जिनके समस्त पुत्र धर्म की बलिपर चढे हों। ऐसी भी कम ही पत्नी रही होंगी। जिनके पति ने अपने पिता, पुत्र, मां और स्त्री सब ही को धर्म पर स्वेच्छा से वार दिया हो। माता सुन्दरी जी को अपने सासु-

माता सुन्दरी जी

ससुर, पति और पुत्रों को धर्म पर निछावर होते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह संसार के इतिहास मे अद्वितीय है। उन्होंने भयंकर से भयंकर दिन देखे। किन्तु कभी भी वे घबराईं नहीं।

रानी सदाकौर कन्हैया मिसल के सरदार और संस्थापक श्री जयसिंह जी कन्हैया की पुत्रवधू थीं। आपके पति का नाम सरदार गुरुबख्शसिंह जी था। सरदार जयसिंह जी ने सरदार महासिंह के साथ

१. माता गूजरी का देहान्त भी उसी समय पौत्र शोक में हो गया।

मित्रता करने के उद्देश्य से अपनी पोती महताबकुँवरि का विवाह महासिंह जी के पुत्र रणजीतसिंह जी के साथ कर दिया था। इस प्रकार रानी सदाकौर महाराजा रणजीतसिंह की सास थीं। आपके ससुर और पति जब युद्धमें काम आगये तो अपने राज्य का आप ही प्रबन्ध करने लगीं। उधर सरदार महासिंह के मरने पर नाबालिग रणजीतसिंह जी की भी आपने सरपरस्ती की। लड़ाइयों में आप खुद शामिल होती थी। आपने दोनों राज्यों को बढ़ाया ही। आप बड़ी बहादुर, शूरमा और हिम्मत की स्त्री थीं। आपके स्वभाव में सख्ती जरूर थी। जिसके कारण महाराजा रणजीतसिंह जी समझदार होते ही आपसे स्वतंत्र हो गये। फिर भी आप इस बात की हर समय देख भाल करती थीं कि कोई उनके दामाद के खिलाफ जाल तो नहीं फैला रहे हैं। अंतिम दिनों महाराजा रणजीतसिंह के कहने से उन्होंने अपना कुल राज्य अपने दौहित्र शेरसिंह को जागीर में दे दिया। क्योंकि दौहित्रे के सिवा और किसी का उस पर अधिकार नहीं पहुँचता था। इनकी राजधानी बटाले में थी। यह घटना संवत १८७७ वि० की है। इसके कुछ ही समय बाद रानी सदाकौर का देहान्त हो गया।

रानी सदाकौर

इसमें कोई सन्देह नहीं रानी सदाकौर बहुत बहादुर और सिपाही मिजाज की स्त्री थीं। उन्होंने रामगढ़िया मिसल के साथ कई महीने तक लड़ाई जारी रक्खी थी। इसके बाद राजा संसारचन्द की सेना के भी छक्के छुड़ाये थे। छोटी-मोटी अनेकों लडाइयों मे उन्हे सामना करना पड़ा।

प्रबन्ध करने में भी काफी चतुर थीं। उनकी रियासत में कभी कोई बखेड़ा उनके जीवन मे खड़ा नहीं हुआ।

बीबी दीपकौर के सम्बन्ध में जितनी जानकारी हासिल होनी चाहिये। उतनी तो नहीं मिलती किन्तु सिखों की प्रत्येक स्त्री बीबी दीपकौर के नाम से परिचित है। उनके जीवन की एक ही घटना ऐसी है। जिस पर प्रत्येक स्त्री चलकर अपने धर्म की रक्षा कर सकती है और सुयश भी प्राप्त कर सकती है।

बीबी दीपकौर

यह घटना उन दिनों की है जब कि दशमेश जी आनन्दपुर मे ही रहते हुए अपने भक्तों को आध्यात्मिक अमृत चखाया करते तथा ज्ञान वर्षा से धर्म-हीन हृदयों को हरा किया करते थे।

दुआबा मे तलवन नाम के एक गॉव मे सिख धर्म की प्रेमिका एक युवती रहती थी। यह गॉव उसका सासुरा था। नाम उसका था दीपकौर। उस गॉव में दूसरे लोगों के हृदयों तक अभी गुरुमत का प्रकाश नहीं पहुँचा था। कुछ वे लोग डरते भी थे। क्योंकि उन्हे मालूम था। मुगल सरकार गुरु लोगों पर खफा हो रही है।

बीबी दीपकौर की इच्छा थी कि कोई संगत इस गॉव मे भी आये और यहाँ के लोगों को भी गुरुमत की शिक्षा देकर उनके हृदयों में प्रकाश करे।

एक समय उसने सुना कि माझा की एक संगत जिसमें स्त्री पुरुष और बाल युवा सभी हैं। कल इधर से होकर आनन्दपुर जा रही है।

संगत जिस रास्ते से गुजरती वह तलवन से तीन चार मील के फासले पर था।

बीबी दीपकौर का पति घर न था। इसलिये खुद ही संगत को बुलाने जाने का इरादा किया और वह दूसरे दिन प्रातः ही उस मार्ग पर जा बैठी और संगत की बाट जोहने लगी।

लोगों मे आतंक फैलाने के लिये उन दिनों मुस्लिम शासकों की ओर से सैनिक जत्थे भी देहातों में घूमा करते थे। दैवात् उस दिन एक ऐसा ही जत्था उस रास्ते पर उधर से ही आ निकला, जिधर से

संगत आने वाली थी।

बीबी दीपकौर ने पहले तो यही समझा कि संगत आ रही है। किन्तु ज्योंही जत्था नजदीक आ चुका बीबी तुरक सवारों को पहचान गई और रास्ते से हट कर एक खेत मे बैठ गई।

उन दिनों मुस्लिम सैनिकों की हिन्दू स्त्रियों के प्रति जैसी भावनायें रहती थीं। यह तो किसी से छिपी हुई बात नहीं है। जत्थेदार सैनिकों को रास्ते पर ही खड़ा करके बीबी दीपकौर के पास पहुँच गया और घोड़े से उतर कर उसके पास ही बैठ गया।

उन दिनों बीबी दीपकौर की उम्र केवल २० वर्ष की थी। रूप फूटा पड़ता था। जमीदार की लड़की शरीर की मजबूत और रंग की गोरी। सेनानायक बीबी के रूप को देखकर विचलित हो गया। पहले तो उसने बीबी दीपकौर से उनका पता ठिकाना पूछा। फिर उसने कहना शुरू किया। देखो, गुरुलोगों से तो बादशाह नाराज है। उनके शिष्य बागी समझे जाते हैं। उन लोगों के साथ किसी को कुछ भी ताल्लुक नहीं रखना चाहिये। आखिरी बात यह है कि मैं चाहता हूँ तुम्हारे जैसी सुन्दरी से मेरे घर की शोभा बढे। उठो, चलो घोडे पर बैठो। बीबी जी ने पहले तो उसे शांति के साथ ही समझाया। उन्होंने कहा, गुरुमत मे अपना दृढ़ विश्वास है। इसकी हमे कोई चिन्ता नहीं कि गुरुमत से बादशाह नाराज होता है या प्रसन्न। हमारा धर्म हमे सच्चरित्र रहने की शिक्षा देता है। तुम्हे जबान संभाल कर बोलना चाहिये।

जब जत्थेदार ने देखा कि यह लड़की सहज ही काबू मे आने वाली नहीं है तो उसने उन्हे पकड़ने को हाथ बढ़ाया। बीबी जी ने तुरन्त ही कमर से तलवार निकाल ली और सिहनी की तरह झपट कर उसका सिर काट कर अलग फेक दिया। शीघ्र ही उसके हाथ से बन्दूक लेकर उसी के घोडे पर सवार हो गई।

अपने जत्थेदार की इस प्रकार हत्या होते देखकर शेष सैनिकों ने जो नौ की तादाद मे थे, बीबी जी पर हमला किया। उन्होंने दो को तो तुरन्त ही गोली का निशाना बनाया। घोड़े की बाग मुँह मे दबाकर दो पर तलवार से हमला किया। उनमें से दो ने झपट कर बीबी जी पर बर्छे से वार किया। किन्तु वह वार साघातिक नही हुआ। इतने मे एक को और मार गिराया। दो भय से भाग गये। दो के साथ बीबी जी बड़ी फुर्ती से मुकाबिला कर रही थीं। इतने मे सगत आ पहुँची। उन दो का भी खात्मा कर दिया गया।

बीबी दीपकौर बच तो गई। किन्तु उनके शरीर पर कई जख्म आये थे। इससे वे बेहोश हो गईं। संगत के लोगों ने उनके घाव ठीक किये और पट्टियाँ बांधी। फिर डोली मे डालकर संगत उन्हे आनंदपुर ले आई। एक अच्छे से स्थान पर सगत ने डेरा लगाये। वहीं बीबी दीपकौर को सुला दिया।

जिस समय दरबार लगा हुआ था। यह माझा की सगत भी दरबार मे पहुँची। दशमेश जी चिल्ला उठे। अरे मेरी बेटी कहाँ है? उन लोगों ने प्रार्थना की महाराज आपकी मुराद किससे है। गुरुजी ने फर्माया। वही मेरी प्यारी बेटी दीपकौर जिसने बहादुरी के साथ अपने धर्म की रक्षा की है।

गुरुजी की आज्ञा से बीबी दीपकौर जी को दरबार मे लाया गया। गुरु जी ने अपने हाथो से उनके घावों को धोया और मरहम पट्टी करके प्रेम से सर पर हाथ फेरकर बीबी जी को आशीर्वाद दिया।

उस दरबार में खडे होकर बीबी दीपकौर ने अपनी आप बीती घटना को सुनाया। जिसे सुनकर लोगों के हृदय प्रेम से गद्गद् हो गये।

सिख लोगों मे बीबी दीपकौर के सतीत्व रक्षण में की गई बहादुरी के आज तक विशेष समारोहों पर गीत गाये जाते है।

जिला अमृतसर में पश्चिम की ओर चौंडा नाम का एक गाँव है। जिस घटना का हम जिक्र करना चाहते हैं वह सिखों की आरम्भिक कष्ट काल की है। इस गाँव में बहादुरसिंह नाम के एक चौधरी रहते थे। जो सच्चे ईश्वर परस्त और गुरुमत-प्रेमी थे। इस इलाके में जो भी सिख थे। उनके जत्थेदार भी आप ही थे। संवत १८८२ वि० की बात है। इनके पुत्र की शादी हो रही थी। किन्हीं कारणों से लड़की वाले यहीं आकर शादी की रस्म अदा कर रहे थे। आस-पास के मिलने वाले सुदूर के रिश्तेदार जमा थे। इसी समय किसी ने आकर खबर दी थी कि माड़ी कम्बोह के गाव वालों की शिकायत पर मियाँ जफरबेग मारपीट करने के लिये आरहा है। वह वहाँ से कभी का चल चुका है। थोड़ी ही देर में आया चाहता है।

बीबी धरमकौर

यह जफरबेग वही था जो भाई तारासिंह जी के यहाँ काफी पिट चुका था और खामख्वाह सिखों की जान का दुश्मन बना हुआ था।

सरदार बहादुरसिंह और दूसरे सिख घबराये नहीं और घबराते भी क्यों ? जबकि इस तरह की घटनाये उनके लिये अब अचम्भे की चीज नहीं रही थीं। मजे में विवाह का काम होता रहा। इतने में जफरबेग ने भी चौंड़ा का घेरा डाल लिया। सरदार बहादुरसिंह ने अपने साथियों से कहा बहादुरो चलो देखते क्या हो ? दुश्मन को मारे या शहीद बने। सबने जोर से हमला किया किन्तु ईश्वर की माया कि वह दुश्मनों के पचासों आदमियों को मार काट कर साफ निकल गये। एक का भी बाल बांका नहीं हुआ।

इस प्रकार का नुकसान होने के बाद जफरबेग ने सरदार बहादुरसिंह के स्त्री बच्चों को सताकर बदला लेने की ठानी। इसलिये उसने बचे हुये पचास आदमियों से बहादुरसिंह के मकान को घेर लिया। घर में उस समय केवल २० स्त्रियाँ थीं। बीबी धरमकौर ने तुरन्त सामना करने का प्रबन्ध कर दिया। उसने दो स्त्रिया तो तलवार लेकर दरवाजे पर अड़ा दीं और दो दीवारों पर बर्छे देकर खड़ी कर दीं। दो स्त्रियों को रिजर्व सैनिकों के तौर पर खड़ा कर दिया। चौदह स्त्रियाँ छत पर चढ़ गई जिनमें कि बीबी धरमकौर खुद भी थीं। छत पर से ईंट पत्थर और गोलियों से उन्होंने दुश्मनों का सामना किया।

बहुत देर तक सामना करते रहने पर जब ऊपर का सामान निबट गया और देखा कि दुश्मन हल्ला करके घर में घुसना चाहता है। बीबी धरमकौर हाथ में तलवार लेकर नीचे कूद पड़ी। कुछ और भी साथिन नीचे आईं। कई आदमियों को भूतल-शायी करके बीबी धरमकौर भी जमीन पर गिर पड़ीं। तलवार अब भी उनके हाथ में थी। इतने में जफरबेग ने देखा कि बस काम बन गया। वह चाहता था कि इसे घोड़े पर ले भागना चाहिये। बहादुरसिंह और तारासिंह की इसी में नाक कट जायगी।

घोड़े से कूदने की आवाज से बीबी धरमकौर चौकन्ना हो गईं और ज्यों ही जफरबेग उनके पास आया, उन्होंने घुमाकर तलवार का एक जोर का हाथ जमाया। वह तलवार जफरबेग के हाथ में लगी जिससे झल्ला कर वह पछाड़ खाकर गिर पड़ा था। इतने में उसके साथी झपट कर उसे उठा ले गये और घोडे पर डालकर ले भागे।[1]

इस तरह सती धरमकौर ने जहाँ अपने धर्म की रक्षा कर ली, वहाँ अपनी कौम का नाम भी रख लिया। धरमकौर की तरह और भी सिंहनियाँ जख्मी हुई थीं किन्तु सब खुश थीं क्योंकि उन्होंने आज अपने ही बल से अपने सतीत्व की रक्षा की थी। यह बीबी धरमकौर सरदार बहादुरसिंह जी की बहू थीं।

१. "बहादुर सिंहनियाँ" ले० सरदार सेवासिंह।

बीबी प्रधानकौर फत्तो रानी की ही पुत्री थीं इनका जन्म भदौड़ में सम्वत् १७१८ ई० में हुआ था। इनकी शादी पिंड रामदास मे बाबा बुड्ढा जी के खान्दान के लोगों मे हुई थी। यह खान्दान रनधावा कहलाता था और इनके पति का नाम सरदारसिंह था।[1] आपके केवल एक ही सन्तान हुई थी वह भी मर गई। इसके कुछ ही दिन बाद आप विधवा हो गईं। इससे अपने पिता राजा आलासिंह जी के ही पास आ गईं और वहीं बरनाले मे रहने लगीं। राजा आलासिंह ने तीस हजार सालाना की जागीर इनके गुजारे के लिये जिंदगी भर को इनके नाम करदी। जिसकी आमदनी से इन्होंने कई लोकोपकारी कार्य किये।

बीबी प्रधानकौर

बीबी प्रधानकौर की रुचि ईश्वर भजन और शुभ कार्यों की ओर थी। इसलिये आलासिंह जी ने इनकी शिक्षा और सलाह के लिये चूनिया के पास हरी गॉव तहसील कसूर के भाई निक्कासिंह को बुलाकर इनके पास रख दिया। भाई खुद बड़ी धर्मात्मा प्रकृति के पुरुष थे। सस्कृत और गुरुमुखी के निक्कासिह विद्वान थे। अत बीबी प्रधानकौर ने इनसे सस्कृत और गुरुग्रन्थ दोनो ही मे अच्छी योग्यता कर ली।

बीबीजी ने भाई निक्कासिह जी के लिये बरनाला और पटियाला मे धर्मशालाये बनवाईं जो कि अब डेहरा बाबा गाथा के नाम से मशहूर हैं। बाबा गॉधासिंह इन्हीं भाई निक्कासिंह जी की पॉचवीं पुश्त मे हुये थे किन्तु वे अपनी करामातों और अच्छे स्वभाव से काफी मशहूर हो गये। उनके नाम के अन्य स्थानों पर भी डेरे हैं।

बीबी प्रधानकौर अपनी जागीर की आमदनी का अधिकांश भाग लोक की भलाई के कामों मे ही खर्च करती थीं। उन्होंने बरनाला मे एक सदावर्त और एक सस्कृत पाठशाला कायम की थी।

सस्कृत मे उन्होंने खुद ऐसी योग्यता हासिल करली थी कि उन्होंने वशिष्ठ पुराण[2] पर एक भाष्य लिखा था। जिसे छप गया बताते है।

बरनाले के डेरे साहब मे एक हस्तलिखित गुरुग्रथ साहब हैं। यह बीबी बीरो के हाथ के लिखे हुये हैं। यह बीबी बीरो बीबी प्रधानकौर की सहेली थीं। प्रधानकौर जी ने इनका आनन्द धर्मसिंह जी रधावा के साथ पढवा दिया था। और उन्हे हर प्रकार की मदद देती रहती थीं।

कहा जाता है बीबी बीरो के कोई सन्तान न थी इसलिये उसने गिल गोत के जाटों मे व्याही हुई अपनी बहिन के लड़के काहनसिंह को गोद ले लिया।

अधिक समय बीबी प्रधानकौर धार्मिक कामों मे ही लगाती थीं। राजधानी मे क्या होता है किसके हाथ में क्या ताकत है इन बातो पर बहुत ही कम ध्यान रखती थीं। फिर भी यह बात न थी कि वे मौका आने पर किसी काम को सम्भाल नहीं सकती थीं। एक बार उन्होंने दीनूमल के व्यवहार को ठीक करने के लिये हस्तक्षेप भी किया था। और उसे कैद भी करा लिया था किन्तु अत मे बीबी साहबकौर की इच्छा के प्रतिकूल जाना उचित न समझ कर अपना रुख शासन प्रबन्ध की उलझनों की ओर से हटा लिया।

सन् १७८६ ई० मे बीबी प्रधानकौर का देहान्त हो गया।

आप सच्ची ईश्वर भक्त, धर्म-परायण, और साधु सतों की खातिर करने वाली राजकुमारी थीं।

१. 'पटियाला शाही घराने की शूरवीर बीबियां'। पे० २७ ले० आत्मासिंह।

२ सभवत वशिष्ठ स्मृति।

और जहाँ तक हमें मालूम पडता है सिक्खों में आप पहली ऐसी महिला थीं जो संस्कृत और गुरमुखी दोनों में काफी पांडित्य रखती हों।

बीबी राजेन्द्रकौर जी राजा आलासिंह जी की पोती और उनके द्वितीय पुत्र भूमियांसिंह जी की पुत्री थीं। इनका जन्म १७३९ ई० में हुआ था। इनके पिता का देहांत जब कि ये केवल नौ वर्ष की थीं हो चुका था। राजा आलासिंह ने इनकी विधवा माता महजादकौर के नाम अपने राज्य का चौथा भाग जागीर कर दिया था। बीबी राजेन्द्रकौर का विवाह राजा आलासिंह जी ने सन् १८५१ ई० में फगवाडे के रईस चौधरी तिलोकचंद जी के घर कर दिया था। दैवगति न्यारी होती है। थोड़े ही दिन बाद बीबी राजेन्द्रकौर विधवा हो गईं। अपने पति से केवल इनके एक लडकी पैदा हुई थी। अपने पति की कुल जायदाद और माल की आप ही मालिक हुईं हालांकि कुछ दावेदार खड़े हुये किंतु आपस में ही लडकर खत्म हो गये।

बीबी राजेन्द्र कौर

बीबी राजेंद्रकौर के पास बहुत बड़ी धनराशि थी। जब अहमदशाह अब्दाली को खिराज में रुपया देने के लिये राजा आलासिंह को जरूरत पडी आपने सत्तर हजार रुपये देने का साहस दिलाया था।

राजा आलासिंह की तरह महाराजा अमरसिंह को भी भट्टी मुसलमानों से बराबर लड़ना पडा। एक गरीबदास नाम के सरदार ने इन्हीं दिनों पंजोर पर कब्जा कर लिया। जब कि अमरसिंह जी भाटियों से लड रहे थे। मनीमाजरे की लड़ाई के बाद महाराज अमरसिंह जी ने गरीबदास और उसके हिमायती हरीसिंह सियालबेवाले पर चढ़ाई की। हरीसिंह के सहायक रामगढिया जस्सासिंह और गुरदत्तसिंह, और साहबसिंह आदि कई मिसलपति थे। इन सबने इकट्ठे होकर पटियाला की फौजों पर हमला कर दिया। जिसमें ३०० से ऊपर आदमी पटियाले के काम आये और वे लूट-पाट भी कर ले गये। इस घटना से महाराज बडे क्रोधित हुये और उन्होंने अपने समस्त भाई-बन्धुओं और रिश्तेदारों को रण-निमंत्रण भेजा। फगवाड़े से बीबी राजेंद्रकौर भी लगभग ३०० सैनिक लेकर पटियाला पहुँचीं। कैथल आदि से भी सहायता आई। इसका फल यह हुआ कि छोटी-मोटी लड़ाइयों के बाद हरीसिंह सियालबा से राजीनामा हो गया।

महाराजा अमरसिंह ने बीबी राजेंद्रकौर की इस सहायता और बुद्धिमानी के लिये हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की।

महाराजा अमरसिंह जी के स्वर्गवास के समय महाराजा साहबसिंह छोटी उम्र के थे। केवल छः वर्ष के। बीबी राजेंद्रकौर ने पटियाला पहुँच कर दीवान नानूमल को वजीर मुकर्रिर किया और सारा राज-प्रबन्ध अपनी बुद्धिमानी से जँचा दिया।

किंतु दो तीन वर्ष बाद ही पटियाला में गडबड़ पैदा हो गई। कुछ हकदार खड़े हो गये और उन्होंने बगावत मचा दी। इनमें किलेदार शार्दूलसिंह की रानी खेमकौर और सोभासिंह धारीवाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। माई हुक्मा महाराज साहब की देख-भाल करती थीं। उनके मरते ही विद्रोह हो गया। राज्य में चारों ओर अराजकता छा गई। और दीवान नानूमल जी को गिरफ्तार कर लिया गया।

जब यह समाचार फगवाडे में बीबी राजेंद्रकौर को मिले तो वे तुरत ही सेना लेकर पटियाला आईं। वहाँ पहुँचकर सारी स्थिति की जानकारी हासिल की और वास्तविकता को जानते ही दीवान नानूमल को कैद से छुड़ाकर उसे फिर से वजीर बनाया।

कहा जाता है कि राजेंद्रकौर कुछ ही महीने पटियाले में न पहुँचती तो राज्य को भारी क्षति पहुँ-

चाने वाली हालत वहाँ पैदा हो जाती।

दीवान नानूमल को राजेन्द्रकौर ने जेल से छुड़ाकर वजीर बना तो दिया लेकिन खजाने मे रुपया तो मालगुजारी और लगान से आता था। देहात के लोग तो यह चाहते ही थे कि राज्य में झगड़ा रहे। इसी में उन्हे लाभ भी दिखाई देता था क्योंकि राज के जागीरदार और अहलकार उन्हें बहकाते रहते थे। बीबी राजेन्द्रकौर आसपास के राजा रईसों को दण्ड दिलाने के लिये मरहठा सरदार धाराराव को जो कि दिल्ली के आसपास था बुला भेजा।

धाराराव की मरहठा सेनायें थानेसर, कैथल होते हुये अम्बाले की ओर आगई। इधर के सरदारों ने पटियाला का जो हिस्सा दवा लिया था उसे वापिस कराया। जो लोग खिराज और माल-गुजारी नहीं दे रहे थे उन्होंने मराठों की लूटपाट के डर से चुकाने मे हीला-हुज्जत करना छोड़ दिया। इसी तरह कुछ रुपया भी हाथ आया।

धीरे-धीरे नानूमल का प्रभाव फिर बढ़ गया। और अब वह महाराज, बीबी और उनके दूसरे साथियो की भी परवाह नहीं करने लगा। क्योंकि मरहठों से उसकी दोस्ती हो चुकी थी। उसने बसतसिंह नाम के किलेदार को जो बीबी राजेन्द्रकौर और महाराज का शुभचिन्तक था कैद कर लिया। इससे बीबी राजेन्द्रकौर को बड़ा दुख हुआ। अब वह भी नामूमल की विरोधी हो गई।

नानूमल समझता था कि मरहठों के डर से बीबीजी दबेंगी किन्तु उन्होंने मरहठों के ही लिये कह दिया कि हमे अब उनकी जरूरत नहीं है और न हम उनको खिराज के तौर (चौथ) देंगे। हाँ लड़ाई का खर्च हम जरूर दे देंगे।

इस प्रकार लड़ाई की नौबत भी आ गई। मरहठा बीबीजी से नाराज हो गये। उनकी कुछ फौजे भी आ चुकी थीं। दीवान मरहठों के पास चला गया। इधर बीबी जी ने उसके पुत्र देवीदत्त को नजरबंद करा दिया। क्योंकि वे समझती थी कि इस तरह वह कोई दगा न कर सकेगा। किन्तु मामला उल्टा हुआ। दीवान नानूमल अपने पुत्रों को छुड़ाने के २०००० मरहठों सैनिकों को पटियाला पर चढ़ा लाया। मरहठों ने बहादुरगढ़ पर कब्जा कर लिया। इस बीच बीबी राजेन्द्रकौर ने राजधानी पटियाला मे बहुत सारी सेना इकट्ठी कर ली। छुटपुट हमले भी मरहठों के साथ हुए। इससे मरहठा सेनापति समझ गया कि बीबी राजेन्द्रकौर को डर दिखा कर नहीं दबाया जा सकता। अत में यह तय हुआ कि बीबी मथुरा जाकर महादाजी सिंधिया से तय कर आवें। वहाँ से वे जो हुक्म ले आवेंगी उसके अनुसार ही मामला निपट जायगा।

बीबी जी मथुरा गई। वहाँ उनकी सिंधिया ने काफी आवभगत की। और मामला डेढ़ लाख रुपया नकद पर निबट गया। किन्तु बीबी जी के पास रुपया कहाँ था। वे पटियाला पहुँच कर देने का वायदा कर आई।

इधर अहलकार लोगों ने महाराज साहबसिंह जी को भड़का दिया कि बीबी जी तो इस प्रकार अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहती हैं। दीवान नानूमल भी उनसे माफी मांगने को फिरता है। इससे आप के हाथ मे अभी राज्य की बागडोर नहीं आनी है। चुगल लोगों की बातों का साहबसिंह जी पर असर हो गया और उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे राजेन्द्रकौर से अब कोई वास्ता नहीं रक्खेंगे। और राज्य प्रबध भी उन्होंने अपने हाथ मे ले लिया।

जब मथुरा से राजेन्द्रकौर लौट कर आई तो उनका किसी प्रकार का स्वागत-सत्कार नहीं हुआ।

महाराज कई बार बुलाने पर भी उनके पास नहीं गये। उधर वे मरहठों में जो वायदा कर आई थीं। उसके लिये भी उन्हें दुख हुआ। अत. इन मानसिक वेदनाओं से वे बीमार पड़ गईं और उसी बीमारी में चल बसीं।

बीबी साहबकौर महाराज अमरसिंह जी की पुत्री थीं इनका जन्म सन १७७१ ई० में रानी राजकौर के उदर में हुआ था। राजा साहब इन्हीं के छोटे भाई थे। आपकी शादी सन १७७७ ई० में कन्हैया मिसल के नायक सरदार हकीकतसिंह के पुत्र जयमलसिंह के साथ हुई थी। जयमलसिंह इनसे एक वर्ष बड़े थे और फतहगढ़ में उनके बाप का सदर मुकाम था।

बीबी साहबकौर

बीबी साहबकौर के पिता राजा अमरसिंह जी का देहान्त १७८१ ई० में हो गया। उस समय आपकी उम्र १० साल और आपके भाई की ७ साल की थी। यह हम पहले लिख आये हैं कि आप के भाई राजा साहबसिंह को राजकाज में बीबी राजेन्द्रकौर जोकि उनकी बुआ होती थीं मदद देती रहीं। बीबी राजेन्द्रकौर का भी सन् १७६१ ई० देहान्त हो गया। उस समय राजा साहबसिंह जी की उम्र लगभग १७ साल की हो चुकी थी और बीबी साहबकौर २० वर्ष की हो चुकी थीं।

पटियाला के अहलकारों में धड़ाबन्दी थी। वे आपस में एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश में रहते थे। महाराज साहब के आगे भी लड़भिड़ बैठते थे। अलाहीबख्श का खून उनके कैम्प में ही किया गया था। इन बातों से महाराजा साहब घबरा गये। जैसे तैसे उन्होंने दो वर्ष तो निकाले किन्तु परिस्थिति बिगड़ती जा रही थी। इसलिये सन् १७६३ ई० में आपने अपनी बहिन साहबकौर को बुला लिया और उन्हें ही वजीर के कुल अधिकार दे दिये। वजारत हाथ में आते ही बीबी साहबकौर ने सब से पहले अधिकारियों में हेर फेर किया। अपने विश्वास के लोगों को रक्खा। बाकी झगड़ालू और अविश्वस्त लोगों को निकाल दिया। उन्होंने सरदार तारासिंह को तो अपना नायब बनाया और दीवान नानूमल के भतीजे दीवानसिंह को दीवान मुकर्रिर कर दिया। दूसरे ओहदों पर भी इसी प्रकार की नियुक्तियाँ कर दीं। इस प्रकार उन्होंने पार्टीबाजी को खतम करने का तरीका अख्तियार किया। जो लाभदायक भी रहा।

जबकि पटियाला में बीबी साहबकौर इस प्रकार का प्रबंध करने में लगी हुई थीं। उसी समय फतहगढ़ में उनके पति जयमलसिंह को उसके चचेरे भाई फतहसिंह ने कैद कर लिया। कैद करने का विवरण इस प्रकार है। सरदार हकीकतसिंह और महताबसिंह दोनों भाई थे। इनमें हकीकतसिंह के लड़के का नाम जयमलसिंह और महताबसिंह के लड़के का नाम फतहसिंह था। जब हकीकतसिंह और महताबसिंह दोनों भाई मर गये तो उनके पुत्रों में जमीदारी के बटवारे के लिये झगड़ा हुआ। जब तक बीबी साहबकौर फतहगढ़ रहीं तबतक तो वे झगड़े को दबाती रहीं किन्तु उनको इधर पटियाला में फँसा देख कर सरदार फतहसिंह ने सरदार जयमलसिंह को कैद कर लिया।

जब यह समाचार बीबी साहबकौर को पटियाला में मिला तो वे पटियाला से सेना की एक टुकड़ी लेकर फतहगढ़ पहुँचीं। भाभी और देवर की सेनाओं में खूब लड़ाई हुई। साहबकौर अपनी सेना का खुद ही संचालन करती थीं। देवर हार गया और उसकी सेना भाग खड़ी हुई वे अपने पति को छुड़ा कर और फिर मजबूत प्रबंध करके पटियाला लौट आईं।

उनकी इस बहादुरी का पटियाला में भी बड़ा असर हुआ। इधर के जो लोग सिर उठाने की तैयारी में थे वे झिझक गये।

दीवान दीवानसिंह अपने काम मे लापरवाह और सुस्त था और पार्टीबाजी मे भी दिलचस्पी लेता था, अत साहबकौर ने उसे हटा दिया और उसकी जगह रामदयाल को दीवान बनाया। इस प्रकार वे सरकारी आदमियों के कारनामों पर कड़ी नजर रखती थीं। साथ ही वे इस बात का ख्याल रखती थीं कि अहलकार लोग प्रजा को अनुचित तरीके से डरा धमका कर रिश्वत आदि मे उसे लूटे नहीं। जमीदारों से मिलने-जुलने की उन्होंने खुली छुट्टी देदी। प्रजाजन उनके पास सीधे जाकर शिकायतें कर सके, इसका उन्होंने ऐलान कर दिया। जार्ज टामसन का जिक्र पिछले अध्यायों मे आ चुका है। वह किस प्रकार मरहठों की सेना का अफसर हुआ और फिर किस प्रकार उनसे अलग होकर उसने पंजाब मे अपनी हकूमत की नींव डाल दी। इन बातो को यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं।

टामसन बराबर लूट मार करता था और उसी से अपनी सेना का खर्च चलाता था। उसे पजाब की रियासतों को लूटने का एक मौका हाथ आया। पंजाब के राजा लाहौर मे इकट्ठे हुये। नादिरशाह के आक्रमण के समय अपनी रक्षा के सम्बन्ध मे विचार करने के लिये। टामसन ने इसे अपने लिये एक मौका समझा और वह जीन्द राज्य मे घुस आया। जब तक जीन्द नरेश लाहौर से लौटे वह राजधानी तक पहुँच गया। फिर भी जीन्द की सेना कई दिन तक लडती रही।

उधर बीबी साहबकौर ने देखा यह दुश्मन आज जीन्द को तबाह करता है। कल पटियाला को भी लूटेगा। इससे अच्छा यही हो कि उसे जीन्द पर चढ़ाई करने का मजा चखाया जाय और इस समय दो ताकते उसे हरा भी सकेंगी। अत उन्होंने एक मजबूत सेना लेकर जीन्द की ओर कूच कर दिया।

दो सेनाओं के बीच मे घिरने पर टामसन बड़ी बहादुरी से लड़ा किन्तु आखिरकार उसे विजय होने के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये। उसके खुद के मुकाबिले पर बीबी साहबकौर आ गई। अत. युद्ध सचालन के काम मे उसे सहूलियत नहीं रही। और उसकी सेना भाग खडी हुई। इस प्रकार इस युद्ध मे बीबी साहबकौर की विजय हुई।

इस विजय से जहा उनका प्रभाव और आतक बढ़ा। वहाँ जीन्द राज्य के साथ मुहब्बत के ताल्लुकात भी बढ़ गये। पटियाला के पार्टीबाज जागीरदार और अहलकारों के दिल मे बीबी जी की दहशत और बढ़ गई।

नाहन की राजपूत रियासत मे उस समय राजा कर्मप्रकाश राज्य करता था। उसके राज्य मे मौजीराम नाम के एक रईस ने बगावत उठा रक्खी थी। उसके साथ बहादुर डाकुओं का एक दल था। वह बहुत कोशिश करने पर भी नहीं दबाया जा सका। तब राजा कर्मप्रकाश ने बीबी साहबकौर को याद किया। वे अपनी फौजे लेकर नाहन पहुँची। मौजीराम अपने दल-बल के साथ मुकाबिले पर आया। बड़ी बहादुरी के साथ लड़ा किन्तु सिखों के आगे उसके आदमी ठहर न सके। बीबी साहब ने उसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया और जिन स्थानों पर उसने कब्जा कर लिया था वे सब राजा साहब नाहन के कब्जे मे कर दिये। राजा कर्मप्रकाश बीबी साहब का बड़ा अहसानमन्द हुआ। उसने बड़ी २ कीमती चीजें बीबी जी को भेट दीं और उन्हे चार महीने तक नाहन मे रखा।

हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर भी बीबी जी को अपने धर्म की रक्षा के लिये जाना पड़ा और उन साधुओं को दंड देना पड़ा। जिन्होंने उदासीन सत संतोपसिंह और प्रियतमदास के सैकड़ों साथियों को जुलूस निकालने के विवाद मे मार डाला था।

सन् १७९४ ई० मे बीबी साहबकौर जी को एक कठिन मोर्चा लेना पड़ा और वह मोरचा मरहठों

से हुआ। १५००० फौज के साथ मरहठा सरदार अन्नाराव और लच्मनराव सिख राज्यों में चौथ वसूल करने के लिये पंजाब में आ घुसे। छोटे २ जागीरदारों का तो कहना ही क्या था किन्तु जीन्द और कैथल के राजाओं ने भी चौथ देकर अपना संकट टाल दिया।

किन्तु बीबी साहबकौर इस चौथ के झगड़े को अपमान और सदा के लिये दिक्कत समझती थीं अतः उन्होंने पंजाब के सभी छोटे २ सरदारों को लिखा कि आप हमारी मदद को आवें। अगर हम मरहठों से जीत गये तो हमारा और आपका क्लेश मरहठों से सदैव के लिये मिट जायगा।

मराठों की सेना अधिक थी और उसके संचालक भी सुलझे हुए सेनानायक थे। अतः सिख फौजें धीरे-धीरे पीछे की ओर हटने लगीं और संभव था कि थोड़ी देर में भाग निकलतीं। बीबी साहबकौर को मालूम हो गया कि सिख सिपाहियों पर मरहठों का रोब गालिब हो गया है। वरना उनके आगे मरहठे हैं क्या चीज ? कहाँ पंजाब के तगड़े जवान और कहां ये नाटे-नाटे मरहठा। उन्होंने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया और अपनी सेना को संबोधित करके कहने लगी। "बहादुरो ! यह क्या कर रहे हो क्या तुम्हारी माताओं ने इसी दिन के लिए दूध पिलाया था। तुम कैसे मर्द हो। देखो मैं स्त्री हूँ। किन्तु तुमको विश्वास दिलाती हूँ। शरीर की बोटी-बोटी उड़ जाने पर भी मैं रण से पीछे कदम नहीं उठाऊँगी। आओ मैं आगे बढ़ती हूँ। और जरूर बढूगी। क्या आप मुझे छोड़ कर भाग जाओगे। लोग आपको क्या कहेंगे यही न कि अच्छे मर्द हो तुम। एक औरत तो मैदान में डटी रही और तुम मैदान में बाहर भाग आये। क्या आप अपने महाराज की बहिन और अपनी बेटी को लड़ाई में अकेली छोड़ कर भाग जाओगे।' इतना कह कर उन्होंने तलवार खींची और आगे की ओर बढ़ीं। फिर क्या था 'वाहि गुरूजी की फतह का नारा लगा कर सिख डट कर लड़ने लगे। दिन भर लड़ाई हुई। कोई भी न हारा। रात हुई और लड़ाई बन्द की गई।

रात के समय बीबी के कैम्प में रईसों और सेनानायकों की सभा हुई। सबने यही कहा कि कि एक तो मरहठों के पास सेना ज्यादा है। दूसरे युद्ध के तरीके वे खूब जानते हैं। अतः जब यह निश्चय है कि हमारी हार होगी तब उचित यही है कि रातों रात हम अपनी सेनाओं को यहां से बचा ले चलें किन्तु बीबी जी भागने पर हर्गिज तैयार नहीं हुई और उन्होंने उसी समय कालीरात में ही महरटों पर छापा मारना निश्चय किया। उन्होंने कहा मरहठा फुर्तीले हो सकते हैं। लड़ने में हुशियार भी होंगे किन्तु वे पंजाबियों जैसे मजबूत नहीं हैं। अतः दिन भर की लड़ाई से वे जरूर थक कर अब सो रहे होंगे। निदान ऐसा ही हुआ। मरहठों की थकी और सोती हुई सेना पर आक्रमण कर दिया गया। मरहठे वीर भले ही थे किंतु चारों ओर से जब दुश्मन उनके बीच में घुस चुका था तब क्या करते आखिर उन्हें भागना ही पड़ा। क्योंकि उन्हें यह भी ख्याल हो गया था कि सिखों के पास और ताजा सेनायें आगई दिखती हैं।

इस प्रकार हिम्मत और बुद्धिमानी से काम लेने के कारण बीबी साहबकौर को विजय मिल गई।

इस लड़ाई के बाद उनका नाम और भी मशहूर हो गया।

सन् १८६५ ई० में बीबी जी को बेदी साहबसिंह और नवाब मालेरकोटला के बीच में पड़ना पड़ा। क्योंकि उसने गौ-वध करना आरम्भ कर दिया था और इस प्रकार की अफवाह फैलाई बेदी ने साहबसिंह ऊना वालों ने। सिख बेदी साहब की बातों पर विश्वास करते ही थे। अतः बीबी साहबकौर ने अपनी सेना मालेरकोटला के साथ युद्ध करने भेज दीं। किंतु महाराज कर्मसिंह जी के साथ नवाब की जो संधि हुई थी। उसके अनुसार उन्हें नवाब की मदद करनी चाहिए थी किंतु धर्म के मामले में

उन्हे खिलाफ होना पड़ता तो वे पीछे न रहीं। दैवयोग से नवाव बीबी साहबकौर की सलाह को मान गया और उसने वेदी साहबसिंह से समझौता कर लिया।

बीबी जी के उपरोक्त इतिहास मे घटनाओं का कुछ हेर-फेर लेखक करते हैं। जार्ज टामसन और नाहन के विवरण को मरहठों के युद्ध से पीछे भी माना जाता है। हमारा मत भी यही है कि जार्ज टामसन से झगड़ा मरहठो की लड़ाई के बाद ही हुआ।

जब बीबी साहबकौर का प्रभाव इस प्रकार बढ़ रहा था तो स्वार्थी लोगों ने महाराज साहब-सिह के कान भरने शुरू किये और एक दिन आया कि दोनों भाई-बहिनों मे गहरा मनमुटाव हो गया। और महाराज साहब ने अपनी बहिन पर निम्न इल्जाम लगाये —

(१) बीबी जी ने राजा कर्मप्रकाश नाहन द्वारा दी गई हथिनी को अपनी निजी सपत्ति बना लिया है हालाकि वह फौजी सहायता के बदले मे मिली है।

(२) बिना ही महाराज से आज्ञा लिये बीबी जी ने अपनी जागीर भेरिया मे एक किला बना लिया है।

(३) साथ ही उन्होंने भेरिया का नाम अपनी ही मरजी से उभयवाल रख दिया है।

(४) बीबी जी महाराज के जो पुत्र हुए उनसे खुश नहीं हुई हैं।

(५) महाराज साहब को यह विश्वास हो गया है कि बीबी जी उनकी आज्ञाओं की कोई परवाह नहीं करतीं।

बस यहीं से दोनों भाई-बहिनों मे गहरा मतभेद हो गया। महाराज साहबसिंह ने एक बार तो यहां तक कृतघ्नता करने की हिम्मत की कि कुछ फौज अपनी बहिन की जागीर पर कब्जा करने को भेजना तय कर लिया किन्तु सरदार दलसिंह आदि के समझाने से वह ऐसा तो न कर सके।

एक बार उन्हे पटियाला बुलाकर कैद करने की भी कोशिश की गई किंतु उस समय वह अपनी बुद्धिमानी से निकल गई।

जार्ज टामसन ने भाई बहिन की लड़ाई से लाभ उठाने के इरादे से पटियाला पर धावा करने का इरादा किया। इस डर से महाराज ने फिर मेल कर लिया।

अतिम दिनो बीबी जी अपनी जागीर उभयवाल मे ही रहने लगी थीं किंतु उन्हे अब जीवन से अधिक दिलचस्पी नहीं रह गई थी। वह अपने भाई के बदले हुए रुख को देख कर सदा ही नाराज रहती थीं। आखिर सन् १८०१ ई० मे उभयवाल मे ही उनका देहात हो गया।

बीबी साहबकौर बहादुर थीं। बुद्धिमान थीं और थीं हिम्मतवाली। इन बातों से भला कौन इन-कार कर सकता है। साथ ही सब किसी को यह भी मानना पड़ता है कि पटियाला राज्य की वे रक्षक भी थीं।

बीबी जी के एक पुत्र पदा हुआ था। जो छोटी ही उम्र मे मर गया। इसलिए सन् १८०१ ई० में बीबी साहबकौर जी के देहात के बाद उनके पति जयमलसिंह जी ने दूसरी शादी कर ली। जयमलसिंह के उस दूसरी सरदारनी से एक लड़की चदकौर नाम की पैदा हुई। यही चदकौर महाराजा रणजीतसिंहजी के पुत्र खड्गसिंह जी के साथ व्याही गई थीं और इन्हीं चदकौर के उदर से महाराज नौनिहालसिंह का जन्म हुआ था।

बीबी साहबकौर ने मलवई बुंगा अमृतसर मे अपने विश्वासपात्र सरदार तारासिंह जी द्वारा

कई मकान बनवाये थे।

दान-पुण्य में भी बीबी जी की अच्छी रुचि थी। बहादुरी में तो पटियाला घराने में वे अद्वितीय मानी जाती हैं।

लाहौर के हाकिम मीर मन्नू ने सिखों के सताने में हद कर दी थी। इस बात को तो प्रत्येक भारत-वासी जानता है। उसके समय में जहाँ सिख पुरुषों के सिरों पर कीमत लगा दी गई थी। वहाँ स्त्रियों और बच्चों के साथ भी काफी बेरहमी की गई थी। मलापुर की बहादुर सिंहिनियों पर उसके द्वारा जो रोमाचकारी जुल्म ढाये गये। उन्हीं का यहाँ हम संक्षिप्त-सा वर्णन करते हैं।

मलापुर की वीरांगनायें

सन् १७५७ ई० की बात है। उसके यहाँ देहात से पकड़ी हुई सिख स्त्रियों का एक गिरोह लाया गया। इल्जाम उन पर यही लगाया गया कि इनके खाविन्द हुकूमत के खिलाफ गिरोह बना कर लूट-मार करते फिरते हैं और यह उनके लिये जगलों में खाना पानी पहुँचाती हैं।

मीर मन्नू ने उन्हें उस प्रसिद्ध कोठरी में डलवा दिया जो इसी काम के लिये मशहूर हो चुकी थी। धूप के समय उन्हें बाहर निकाल कर प्रत्येक से १८-१८ सेर चना पिसवाने का और भूखी प्यासी रखने का हुक्म दिया गया। और कहा गया कि अगर यह इस्लाम कबूल करले तो छोड दिया जायगा।

उन्हें इस प्रकार बराबर चार दिन तक तकलीफें दी गईं। गर्मी के दिनों में धूप में बिठाकर चक्की चलवाना और रात को कोठरी में बन्द कर देना। यह कितनी भयकर सजा है। सुनने मात्र से ही रोमांच हो आते हैं। चौथे दिन मीर मन्नू खुद उनके पास गया और उनसे इस्लाम कबूल करने की बात कही, उन मर्दानी सिंहिनियों ने जवाब दिया। जिस इस्लाम में तेरे जैसे नराधम और शैतान पैदा होते हैं जो स्त्रियों पर इस प्रकार का जुल्म कर सकते हैं। इस प्रकार के धर्म का हम नाम भी नहीं सुनना चाहतीं।

हमें बेतों से पिटवा कर भूख और प्यास से परेशान करके धर्म से नहीं डिगाया जा सकता। हमें तो यह सौभाग्य ही होगा कि अपने धर्म पर कुर्बान हों, जिससे गुरुओं के चरणों में स्वर्ग में हमें स्थान मिले।

अत्याचार करने वाला कोई भी फला-फूला हो। ऐसा कभी दुनिया में हुआ नहीं है।

यदि तेरे इन्सानियत होती, तेरे साथियों के दिल मर नहीं गये होते तो हमारे इन बच्चों को जो अभी दूध और पानी पर ही जीते हैं। इस प्रकार निढ़ाल न होना पड़ता। हम इनका तड़पना देख रही हैं। हमारे माता के हृदय हैं। हृदय चीत्कार कर उठते हैं किन्तु हम धर्म पर अटल रहेंगी चाहे जो कुछ हो।

हमें यह भी विश्वास है कि हम तेरी जेल से मुक्त होंगी। हमारे आदमियों को पता चलेगा तो प्राणों की बाजी लगा कर भी हमें छुड़ा ले जायगे और यदि हमारे प्राण तुरकों के हाथ में जाते हैं तो देश में ऐसी आग धधकेगी जो मुसलमानी हुकूमत को राख कर देगी।

मीर मन्नू सिंहिनियों के मुंह से इस प्रकार बातें सुन कर आग-बबूला हो गया। उसके सिपाहियों ने डडे, लात और घूंसों से सिंहिनियों पर हमला कर दिया। उनकी गोद के बच्चे आसमान की ओर उछाल कर बर्छियों से छेद डाले। इसके बाद यह कहता हुआ वह चला गया कि और सोच लो वरना तुम्हें भी भालों की नोंक पर टांग दिया जायगा।

दूसरे दिन मीर मन्नू शिकार को गया हुआ था। उसका घोड़ा एक जानवर को देखकर, बिदक गया। वह घोडे पर से गिर पड़ा किन्तु एक पांव रकाब मे उलझा हुआ रह गया। घोडे ने उसे घसीट-घसीट कर मार डाला। इस प्रकार उसको इन जुल्मों का फल मिल गया।

उधर जब सिखों ने सुना कि उनकी स्त्रिया इस प्रकार गिरफ्तार करके लाहौर ले जाई गई। उन्होंने प्राणों का मोह छोडकर हमला कर दिया और उस कारावास को तोड़ डाला। लेकिन उनके दिल काप गये जो कुछ उन्होने भीतर जाकर देखा उससे। बच्चों के टुकडे इधर उधर पडे हुये थे और स्त्रिया प्राय: बेहोश पडी थीं। किसी २ के गले मे बच्चों की अन्तडिया पड़ी थीं जिन्हे मीर मन्नू के आदमी, डाल गये थे।

सिख उन देवियों को घोड़ो पर बिठाकर लाहौर से द्रुत गति के साथ निकल गये।

इधर मीर मन्नू की स्त्री पहले तो भागकर दिल्ली पहुँची वहाँ उसे एक ऊँचे ओहदेदार ने अपने घर मे रख लिया किन्तु वह फिर वहाँ से लाहौर मं आई इस प्रकार बेचारी को अपने पति के पापों का दण्ड भोगना पडा।

हमने इन वीर सिंहिनियों को मुलापुर शीर्षक से इसलिये याद किया है कि मीर मन्नू के कर्मचारियों ने गिरफ्तार करके इन्हे मलापुर मे ही इकट्ठा किया था। यह विभिन्न इलाकोंसे इकट्ठी की गई थीं और इनकी तादाद लगभग २०० थी।

जिन लोगो ने लाहौर के शहीदगज को देखा है वह अनुमान कर सकता है कि उस गहरे तहखाने मे जहाँ हवा भी मुश्किल से पहुँचती है। गर्मी के दिनो मे २०० स्त्री-बच्चों को कितना सकट रहा होगा। कलकत्ते की वह काल कोठरी जिसे अग्रेज आज तक याद रखते हैं। शहीदगज के तहखाने की बराबर कभी भी कष्टदायक नहीं रही होगी। धर्म का प्यार भो इसे ही कहते है। वह धर्म ही क्या जिस पर चलने वालों को तकलीफे बरदास्त न करनी पड़ी हो या जिसकी नींव मे बलिदानों का इतिहास न हो।

सिख धर्म को यह गौरव है कि उस पर पुरुप स्त्री और बच्चे सभी ने अपनी बलि चढ़ा कर उसे समुन्नत किया है।

उसी का यह फल है कि आज भी सिख समाज के स्त्री, पुरुप और बच्चे सभी मे अपने धर्म के लिये गहरी श्रद्धा और गौरव है।]

डल्ले वाली मिसल मे सरदार तारासिह जी एक बडे बहादुर सरदार हुये है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध आक्रमणकारी बादशाह नादिरशाह छुटपन मे बकरिया चराया करता था और वह बकरियाँ चराने वाला नादिरशाह दिग्विजयी वीरों मे गिना जाने लगा।

सरदार रतनकौर

इसी प्रकार सरदार तारासिह जी भी आरम्भ मे बकरिया ही चराया करते थे किंतु अमृत चखने के बाद वह ऐसे शूरवीर बन गये कि उन्होंने लगभग आठ लाख आमदनी के इलाके को अपने कब्जे मे कर लिया।

सरदारनी रतनकौर इन्हीं बहादुर सरदार की धर्मपत्नी थी। जब सरदार साहब का देहान्त हो गया तो महाराजा रणजीतसिंह जी मातमपुर्सी के बहाने आपके वहाँ पहुँचे। सरदारनी ने भी महाराज का उचित सत्कार किया उन्हे शहर (राहूँ) से बाहर ठहरा दिया और उनके लिये भेट मे पाच घोडे, हाथी का एक जजीर और छ लाख रुपये पेश किये और कहलाया कि महाराज हमारी जागीर पर सदैव कृपा दृष्टि रक्खे किन्तु महाराज चाहते थे कि इतनी बड़ी जागीर जो कि पांच लाख रुपये सालाना आमदनी

की है इसे अपने राज्य में मिलालें। अतः उन्होंने बुद्धिमानी से किले पर कब्जा करने के लिये सरदारनी के पास खबर भेजी कि हम किले को देखना चाहते हैं। इस पर सरदारनी ने कहला भेजा मैं सब समझती हूँ। किला तो सहज ही महाराज को न दूंगी। महाराज के पास यह खबर भेज कर उधर किले मे लड़ाई की तैयारी करा दी। यह घटना १८०७ ई० की है।

पूरे दिन भर सरदारनी लड़ती रहीं उन्होंने सैनिकों का नेतृत्व खुद किया किन्तु शाम के समय एक नमकहराम ने किले का फाटक खोल दिया। इस प्रकार उनका किला पराजित हो गया।

महाराजा रणजीतसिंह जी भी वीरता से खुश हुये। अत. उन्होंने उनके गुजारे के लिये कई गांव छोड़ दिये। पीछे १८०८) माहवार नकद पेन्शन जीवन भर देते रहे। सन् १८४६ में इस वीरांगना का देहान्त हो गया।

यह कोट समेर के रईस सरदार बख्शासिंह जी की धर्मपत्नी थीं। समेर उन दिनों भटिंडा के ही जिले से सम्बन्ध रखता था। भटिंडा के सरदार जोधसिंह और राजा आलासिंह में एक घनघोर लड़ाई हो चुकी थी। कारण यह था। जोधासिंह ने राजा आलासिंह के दुश्मन चौधरी गेंडेराम[1] की लड़की से शादी कर ली। गेंडेराम भवानीगढ़ का मालिक था। सन १७४६ ई० मे राजा आलासिंह और गेंडेराम में युद्ध हुआ था। कहा जाता है कि गेंडेराम ने अपनी लड़की की मंगनी (सगाई) कैथल के गुरुबख्शसिंह के साथ कर रक्खी थी। किन्तु जब उसने देखा कि कैथल का गुरुबख्शसिंह तो आलासिंह का दोस्त है। उसने अपनी लड़की की शादी बजाय गुरु बख्शसिंह के जोधसिंह के साथ कर दी।

सरदारनी राजू

सरदार जोधसिंह पर इसी अपराध में राजा आलासिंह ने चढ़ाई कर दी। जोधसिंह ने इस बहादुरी से मुकाबिला किया कि आलासिंह के होश फाख्ता हो गये। अत. उसने बुढ़ासिंह के दल को मदद के लिये बुलाया तब कहीं जोधसिंह काबू मे आया। कहा जाता है। यह लड़ाई बराबर तीन महीने तक चली थी।

सुलह मे सरदार जोधसिंह को बहुत सारा इलाका आक्रमणकारियों को देना पड़ा। यह घटना १७५६ ई० की है।

सरदानी राजू अथवा राजकौर इन्हीं जोधसिंह की के स्थानापन्न सुखचैनसिंह मान्रू गोत के जाट की लड़की थीं।

सुखचैनसिंह भी बड़ा बहादुर सरदार था। इस पर आलासिंह के उत्तराधिकारी राजा अमरसिंह ने चढ़ाई की। एक साल तक लडाई होती रही। उसके बाद संधि होगई। सुखचैनसिंह को केवल १२ गॉव रहने दिये गये।

राजा अमरसिंह के मरजाने के बाद और भवानीगढ़मे विद्रोह होनेपर सरदारनी राजूने भी विद्रोह कर दिया। जब दीवान नानूमल चढ़कर आया तो इसने उसको मुकाबिला बड़ी बहादुरी से किया और उसे निराश होकर लौट ही जाना पड़ा।

आखिर विवश होकर नानूमल को समेरी के पास ही एक गढ़ बनवाना पडा। जिसमें फौज सरदारनी के मुकाबिले के लिये रख दी गई।

१. चाहिल गोत के जाट।

अम्बाले के सरदार गुरुबख्शसिंह जी जिन्होंने कि अपने समय में काफी ख्याति प्राप्ति की थी। जब मर गये तो उनकी रानी दयाकौर राज-काज को चलाने लगीं। सन १८०७ ई० में महाराजा रणजीतसिंह ने अम्बाले का दौरा किया। उस समय उन्होंने कुछ नजराना देकर उन्हे टरका दिया। किन्तु महाराज की इच्छा तो अम्बाले को ले लेने की थी।

रानी दयाकौर

रानी दयाकौर प्रबन्ध करने मे चतुर थीं। वे रियासत का काम भली प्रकार चलाती थीं और प्रजाजन भी उनसे खुश थे किन्तु दूसरे वर्ष महाराजा रणजीतसिंह फिर अम्बाला आ धमके। अब उनके साथ काफी सेना थी। रानी दयाकौर उनके इरादे को जान गईं। उन्होंने लड़ाई के लिये तैयारी की। किन्तु दूसरी ओर उन्हे यह भी पता था कि इधर अंग्रेज बढ़े चले आरहे हैं। उन्होंने सोच लिया कि आखिर राज्य तो अपने पास रहना नहीं है। इससे तो अच्छा यही हो कि अंग्रेजों के बजाय सिखों के ही पास रहे।

किला उन्होंने खाली कर दिया। महाराज ने वहाँ का प्रबन्धक गंडासिंह सानी को बनाया।

रानी दयाकौर ने अपने अंतिम दिन भजन-पूजा मे काटे।

जैसा उनका नाम था, वैसी ही उनमे दया थी। इसलिये उनके मा बाप ने उनका नाम दयाकौर रक्खा था।

अकालगढ मे सरदार दलसिंह का आधिपत्य था। दलसिंह ने सरदार महासिंह सुकरचकिया के साथ मिल कर इतनी उन्नति की थी। किन्तु महासिंह के मर जाने के बाद वह साहबसिंह भंगी का साथी बन गया। महाराजा रणजीतसिंह को यह बात अखरी उन्होंने दलसिंह को लाहौर बुलाकर कैद कर लिया।

सरदारनी धर्मकौर

सरदानी धर्मकौर इन्हींकी धर्मपत्नी थीं। ज्योंही उन्हे यह समाचार मिला वे ताड़ गई कि महाराजा रणजीतसिंह अकालगढ पर जरूर हमला करेगा। अत उसने किले के दरवाजे बन्द करा दिये और सैनिकों को हथियार ठीक करने का हुक्म दे दिया।

हुआ भी यही महाराजा रणजीतसिंह जी अपनी सेनाये लेकर अकालगढ़ पर चढ़ गये। किन्तु उन्हे अकालगढ़ लेना मुश्किल हो गया। घेरा डाल दिया गया। दोनों ओर से तोपे चलती थीं। सरदारनी घूम २ कर किले की देखभाल करती थी। इससे भी बढ़कर काम उन्होंने यह किया कि साहबसिंह के पास फौजे भेजने को आदमी भेज दिया।

महाराजा रणजीतसिंह को इस बात का पता चला गया। अत' उन्हेने अकालगढ़ पर से घेरा उठाकर साहबसिंह को अकेला जा घेरना उचित समझा। चार दिन की लड़ाई के बाद साहबसिंह और महाराज मे संधि होगई। उस संधि के अनुसार महाराज ने दलसिंह को छोड़ दिया।

दलसिंह अकालगढ़ पहुँचा और उसने अपनी सरदारनी की इस प्रकारकी बहादुरी और बुद्धिमानी की प्रशसा की। किन्तु अपनी कैद होने के दु.ख से उसका दिल शर्मिन्दा हो गया था। अत. वह चंद ही दिन मे इस ससार से चल बसा। पति के इस प्रकार स्वर्गवास से सरदारनी धर्मकौर को भी बड़ी विरक्तता हुई और जब दुबारा महाराजा रणजीतसिंह अकालगढ़ आये तो उसने उन्हे किले की चाबियाँ देदीं। महाराज ने भी उनके जीवन-निर्वाह के लिये दो गाँव उनको जिंदगी भर के लिये बिना खिराज के देकर उनका सन्मान किया।

भंगी सरदारों में अमृतसर पर सरदार गुलाबसिंह का अधिकार था। लोहगढ़ मे उनका महल था।

सरदार गुलाबसिंह के देहान्त होते ही महाराजा रणजीतसिंह सेना लेकर अमृतसर पहुँच गये। अपनी रियासत का प्रबन्ध सरदार गुलाबसिंह की स्त्री सुक्खां करती थीं। महाराज ने उनके पास खबर भेजी कि तोप जमजमा हमें दे दी जाय तो हम वापिस लौट सकते हैं। माई सुक्खा ने कहला भेजा। तोप तो बाहुबल से प्राप्त की गई थी और तभी दी जा सकती है जब हमारी बाहुओं का बल घट जायगा।

माई सुक्खा

महाराज तो तैयार होकर आये ही थे। उन्होंने किले को चारों ओर से घेर लिया और कहलवा दिया कि अब हम भी बाहुबल से ही ले जायेंगे। माई सुक्खां भी तो आखिर शेरनी थी। लड़ाई हुई और कई दिन लगातार हुई और उस समय तक उन्होंने दरवाजों से महाराज के सैनिकों को नहीं घुसने दिया जब तक कि किले की दीवारें गोलों की मार से टह नहीं गईं।

फिर भी माई ने आत्म समर्पण नहीं किया अपने पुत्र को साथ लेकर बरसते हुये पानी में कड़कती हुई बिजली की रोशनी का सहारा पाकर किले से साफ निकल गईं और जोधसिंह रामगढ़िया के पास सहायता देने को कहा किन्तु उसकी हिम्मत महाराजा रणजीतसिंह जी से लडने की न थी। अत: उसने मध्यस्थ का काम किया और महाराजा रणजीतसिंह जी को सुलह के लिये तैयार कर लिया।

किला और शहर अमृतसर महाराज के हाथ रहे और उन्होंने माई सुक्खा और उनके लड़के के लिये कुछ गाँव जागीर में छोड दिये।

सिख लेखकों ने लिखा है कि अमृतसर अपने अधिकार में आने से महाराज ने विजय उत्सव मनाया था और बहुत कुछ दान-पुण्य भी किया था।

कैथल के भाई खान्दान का भी प्रताप एक दिन काफी बढ़ गया था। कैथल एक राज्य बन चुका था। महाराजा रणजीतसिंह जी के समय कैथल में राजा लालसिंह, राज्य करते थे। आप के दो पुत्र हुये एक उदयसिंह और दूसरे प्रतापसिंह, दोनों ही पुत्रों का राजा लालसिंह जी ने शान के साथ विवाह किया किन्तु दैव की मर्जी दोनों ही लावारिस मर गये। राजा लालसिंह जी के स्वर्गवास के बाद उदयसिंह की रानी महताबकौर ने अपने राज्य की बागडोर संभाली। उदयसिंह जी को अच्छे-अच्छे मकान बनाने और बाग लगवाने का बडा शौक था किन्तु परमात्मा ने उन्हें मौका ही नहीं दिया। कैथल राज्य की उस समय चार लाख सालाना की आमदनी थी जबकि रानी महताबकौर के हाथ में राज्य आया। यह घटना सन् १८४६ ई० के अंतिम दिनों की है।

रानी महताबकौर

रानी महताबकौर स्वाभिमानिनी और वीर प्रकृति की स्त्री थीं। उन्हें अपने प्रबन्ध में अंग्रेजों का हस्तक्षेप अखरा। अंग्रेज तो धीरे-धीरे कैथल पर हाथ साफ करना चाहते थे किन्तु उन्हें चालाकी से काम निकालने की बजाय मैदान में ही आना पड़ा। रानी महताब कौर भी अपनी सेना के साथ लड़ाई के लिये तैयार हो गईं। अंग्रेजों की सेना से उनकी सेना लड़ी तो बहादुरी से किन्तु आखिर वह छोटी सेना कर क्या सकती थी। रानी महताबकौर ने भी भागना ही उचित समझा ताकि वे बाहर से सेनायें लाकर अंग्रेजों से लड़ायें क्योंकि रुपये का उनके यहाँ घाटा नहीं था। किन्तु भागने में वे सफल नहीं हो सकीं। अंग्रेजी सेना ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। और पेहा नामक गाँव में उनके पति द्वारा बनवाई गई भव्य कोठी में उन्हें बीस हजार सालाना की पेंशन देकर नजर बन्द कर दिया। कहा जाता है आजीवन उनके हृदय में एकबार फिर लड़ने की साध रही।

पंजाब में जहाँ, अंग्रेजों ने सर्व प्रथम अपनी सुदृढ़ छावनी डाली थी और जहाँ सिखों ने अंग्रेजों

को भारत से उखाड़ फेंकने के लिये प्रबल युद्ध किया था। उसी फीरोजपुर जिले में अब से करीब एक सौ वर्ष पहिले रानी लक्ष्मणकौर का राज्य था।

रानी लक्ष्मणकौर

सुकरचकिया मिसल में सरदार महासिंह जी के साथ एक सरदार धन्नासिंह थे। वही फीरोजपुर के आसपास के इलाके के रईस बन गये। जब महाराजा रणजीतसिंह गद्दी पर बैठे तो इन्होंने उनकी सेना के साथ रहकर काफी साथ दिया। महाराज भी इनका खयाल रखते थे। फीरोजपुर उनका खिराजगुजार बन गया था। एक बार वे खुद भी खिराज लेने के लिये फीरोजपुर आये थे। रानी लक्ष्मणकौर ने उस समय महाराज का काफी स्वागत-सत्कार किया क्योंकि इस समय तक सरदार धन्नासिंह मर चुके थे और अब प्रबन्ध उनकी सरदारनी लक्ष्मणकौर ही करती थीं। उनका बहुत कुछ इलाका आस-पास के रईसों ने दबा लिया था। अत. महाराज उसे भी वापिस करा गये।

जब महाराज ने देखा कि अंग्रेज बराबर पजाब की ओर पैर बढ़ाते चले आरहे हैं और वे कोई ऐसा समझौता करना चाहते है जिसके अनुसार हमारी सेनायें सतलज के नीचे की ओर न जा सकेंगी। अतः सन्धि होने से पहले महाराज ने फीरोजपुर को भी अपने राज्य में मिला लेने का विचार किया। लक्ष्मणकौर को जो उस समय तक सरदारनी ही कहलाती थीं। अग्रेजो ने बहका लिया और उन्हें रानी का खिताब देकर स्वतन्त्र हो जाने की उनसे घोषणा करा दी।

रानी लक्ष्मणकौर शासन करने मे निपुण थीं, दयाशील थीं। सिख-धर्म मे प्रेम रखती थीं किन्तु इतना कहना पड़ेगा कि वे अधिक चतुर न थीं। उसी का नतीजा यह हुआ कि महाराजा रणजीतसिंह जी के बाद, रानी लक्ष्मणकौर का राज्य अग्रेजों ने अपने कब्जे मे कर लिया। फिर भी हम उन्हे अच्छे शासक के रूप मे तो याद कर ही सकते हैं।

पजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह जी की बहुत प्यारी रानी और खालसा राज्य की अधीश्वरी महारानी जिन्दा को हम भारत की दूसरी लक्ष्मी कहे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यह ठीक है कि वे रानी लक्ष्मी की तरह अग्रेजों से युद्ध मे नहीं लड़ीं। किन्तु इसमे सन्देह नहीं कि अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने के लिये उन्होंने जो प्रयत्न किये उनके बाद रानी लक्ष्मी के सिवा किसी भी भारतीय राज-रानी ने नहीं किये।

महारानी जिन्दा

औलका के जाट सरदार मन्नासिंह की पुत्री और सरदार जवाहरसिंह जी की बहिन थीं। महाराज रणजीतसिंह जी इन पर बहुत प्यार करते थे। वास्तव मे आप बहुत सुन्दरी थीं। आपका शरीर सुगठित और रंग उज्ज्वल था। चेहरे पर वैसा ही तेज था जैसा राजरानी के हुआ करता है। स्वभाव गम्भीर, विचार सुलझे हुए और प्रभावशाली लेखिका और बोलचाल का ढग सौम्य था।

१६, २० वर्ष की उम्र में आप महाराज के राजमहलों मे आई थीं। २१ वर्ष की उम्र मे आपके एक सुन्दर और सलौने राजकुमार का जन्म हुआ। जिसकी ग्रीवा लंबी मजबूत स्कन्ध और बड़ी-बड़ी आंखे थीं। इस राजकुमार का नाम दिलीपसिंह रक्खा गया। और जिसके कारण ही एक दिन जिन्दा रानी से राजमाता और चन्द ही दिन बाद बृटिश राज्य के चाकरशाहों की निगाह मे विद्रोही समझी गई।

राजपुरुष और दरबारियों की लगभग पौन दर्जन आदमियों की हत्या हो जाने के बाद दरबारियों ने उनके सुकोमल राजकुमार दिलीपसिंह जी को गद्दी पर बिठाया। सो इस इच्छा से नहीं कि महाराज दिलीपसिंह के राजत्व-काल में शान्ति और अमन कायम रहे तथा राज्य की जड़ मजबूत हो किन्तु इस

इच्छा से उन्हें गद्दी पर बिठाया गया कि बालक राजा की राजगी में राज्य के कर्ता-धर्ता हम बिना किसी दस्तन्दाजी के रहें और मनमाने ढंग से इस विशाल राज्य का उपयोग करें। इस स्थिति में महारानी जिन्दा सिख-समाज और सिख-राष्ट्र के मंच पर आईं।

महाराज दिलीपसिंह के भी कैसे भाग्य थे-उन्हे तीन बार राजतिलक किया गया। एक बार राजा शेरसिंह को मारने के बाद सिन्धानवालों ने, दूसरी बार सिन्धानवालों का दमन कर के ध्यानसिंह के लड़के हीरासिंह ने और तीसरी बार खालसा सेना को परास्त करके अंग्रेजों ने। महारानी जिन्दा ने हर बार इस तमाशे को देखा। उन्होंने हर किसी पर विश्वास भी किया किन्तु उनके प्रति उन सभी का अविश्वास रहा। यह उनके भाग्य की विचित्रता थी।

हम इस इतिहास का आरम्भ वहां से करते हैं जब शेरसिंह के मारे जाने और सिंधानवालों के दमन के बाद दूसरी बार महाराज दिलीपसिंह गद्दी पर बिठाये गये। महारानी जिन्दा ने राज काज में दिलचस्पी लेना आरम्भ कर दिया।

एक दिन[१] उन्होंने अपने भाई जवाहरसिंह से कहा कि सब दरबारियों को साथ लेकर पलटनों मे जाओ और महाराज के वास्ते पलटनों का अभिवादन कराओ। जब महाराज पलटनों मे पहुँचे तो सभी पलटनों ने प्रेम से उनको सलामी दी। महारानी जी ने ऐसा इसलिये किया कि वह चाहती थीं कि पलटन के लोगों के दिल में महाराज के प्रति प्रेम बढे। हुआ भी ऐसा ही कर्नल महतावसिंह व जनरल महिमासिंह की जो दो पलटनें सिरफिरी हो रही थीं। महाराज को देखकर उन्होंने भी भक्ति के साथ सिर झुकाया।

इसी प्रकार की महारानी जिन्दा की और भी अनेको बातें हैं। जो कि उनकी निपुणता,निर्भीकता न्याय-प्रियता और बुद्धिमानी की परिचायक हैं।

सम्वत् १९०२ के वैसाख की ही बात है अमृतसर के हिंदुओ ने आकर महारानी जी के सामने अर्ज की कि राजमाताजी! अमृतसर मे हिंदू मुसलमानों में एक कुएँ पर पानी भरते समय झगड़ा होगया वह कुआं हिंदुओं का ही है। पास ही मे एक मन्दिर भी था जो इस बात की साक्षी है किंतु हिंदू उस पर मुसलमानो को भी पानी भरने से रोकते नहीं थे। अब झगड़ा हो जाने के बाद मुसलमानों ने आवाज उठाई कि कुआं हमारा है। हीरासिंह जी जो अमृतसर के प्रबधक हैं। उन्होंने रिश्वत लेकर कुएँ के पास के मन्दिर को तुड़वा दियो है और कुआं मुसलमानों को बता दिया है। मुसलमान वहाँ मसजिद बनाने की तैयारी मे हैं। हिंदुओं ने इस विरोध में हड़ताल कर रक्खी है। महारानी जी ने सही घटना को समझ लिया उन्होंने हिंदू पचों को मदिर बनवाने के लिये तो पाँच सो रुपया दे दिये और जवाहरसिंह को बुलाकर हुक्म दिया कि हीरासिह को वहाँ से तुरन्त हटा दो प्रजा के साथ इस प्रकार का अन्याय बर्दाश्त नहीं किया जा सकेगा।

वास्तव मे वे प्रजा के आगे अपने पारिवारिक लोगों के हित का कुछ भी खयाल नहीं करती थीं। एक बार फौज के कुछ पंच इकट्ठे होकर उनके पास गये। उन्होंने कहा, राजामाता जी महाराज जिस समय हाथी पर चढ़कर बाहर निकला करें तो जवाहरसिंह उनके साथ न बैठा करे। हम उनसे राजी नहीं हैं। महारानी ने तुरन्त ही कहा ठीक है। इसमे तो कोई हर्ज नहीं। अपने महाराज के बराबर में तुम चाहे जिसे बैठने दो चाहे जिसे नहीं। दूसरे दिन उन्होंने अपने भाई से कह दिया कि वह अवश्य दिलीपसिंह का

१. वैसाख सम्वत १९०२

मामा है किन्तु महाराज दिलीपसिंह की बराबरी मे बिना सिखों को खुश किये उसे नहीं बैठना चाहिए। प्रजा के प्रति प्रेम की एक और घटना सुनिये। महारानी जी के पास खबर आई कि शहर मे बीमारी फैल रही है और लोगों का विश्वास है कि कुछ ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय तो शांति हो। महारानी जी ने हुक्म दे दिया। अच्छा पचास ब्राह्मण रोज पूजापाठ करें, उनका खर्च हम देंगे। इसी प्रकार एक बार दुकोहर गॉव के जमींदारों ने आकर शिकायत की कि हमारी फसल को अकालियों के एक दल ने लूट लिया। महारानी ने तुरन्त ही हुक्म दिया कि एक फौजी दस्ता जाकर इस बात की जांच करे। पल्टन के वहाॅ पहुॅचने पर अकालियों के जत्थे ने अपना कसूर मान लिया और कहा हमने भूख से विवश होकर ऐसा किया है। सेना के प्रमुख ने महारानी के दिये हुये रुपयों में से कुछ तो जमींदारों के नुकसान का दे दिया। बाकी अकालियों को देकर हिदायत कर दी कि महारानी जी अपनी प्रजा को किसी के भी द्वारा पीड़ा देना पसद नहीं करतीं।

सेना के जिन सरदारों को किसी कारण दड दिया जाता था। महारानी उनके साथ भी न्याय का ही बर्ताव करतीं। जब उन्हे मालूम हुआ कि कुमेदान सरदार महिमासिंह कैद मे हैं। उन्होंने महाराज को तोशा खाने मे भेजकर उसे छुड़ा दिया और महाराज ने उसे उपहार भी दिया।

यदि कोई उनके हुक्म की उदूली करता था तो उसके साथ मे सख्ती का भी व्यवहार करती थीं। जब इन्हीं कुमेदान ने उनके हुक्म को फाड डाला जो उन्होंने सेना के नाम जवाहरसिंह की सलाह मानने के लिखा था—तो आपने आज्ञा दी। उन आदमियों की इतनी बेइज्जती करो ताकि फिर किसी को इस प्रकार का हौसला न हो सके।

अपने भाई जवाहरसिंह के साथ उनका स्नेह था और वे उस पर विश्वास भी करती थीं। वे डोगरा लोगों या गैर सिखों का बहुत ही कम विश्वास करती थीं। एक बार उन्होंने सेना के पचों से कहा था। अगर आप लोग जवाहरसिंह को अपना वजीर बनाले तो इससे मुझे राज करने मे बहुत सुविधाये प्राप्त हो जॉय। दूसरे लोगों के सामने बहुत सी बाते खुलकर मैं नहीं कह सकती हूॅ और न उनसे निजी मामलात पर विचार ही किया जा सकता है। अगर आपलोग मेरी बात मान लेंगे तो मैं आपके बालक महाराज के राज्य और आपकी भलाई के बहुत से काम कर सकूॅगीं।

खेद है कि सिख सेना ने जयचदों के बहकावे मे आकर एक दिन महारानी के भाई जवाहरसिंह जी को मार डाला। इससे महारानी को बहुत ही ज्यादा दु:ख हुआ। उनकी ऑखे रोते२ सूज गईं। उनने हाथ-पैर जमीन पर पटक मारे। सेनानायकों ने बहुत ही उनकी खुशामद की। तब कहीं अपने भाई की लाश को जलाने के लिये दिया।

वे परमात्मा से प्रार्थना करके उस दिन की बाट देखने लगीं। जब उनका प्यारा पुत्र दिलीप बालिग हो जाय और मजबूती के साथ दरबारियों की जालसाजियों और सेना की उद्दडता का दमन करके अपनी प्रजा को खुश करने लायक शासन कर सके।

किन्तु "मेरे मन कछु और है करता के कछु और।" वाली कहावत हुई और सन् १८४५ई० खतम होते न होते ही सिखो और अंग्रेजों की जग छिड गई और विजय होते ही अंग्रेजो ने घोषणा कर दी। अब सिख राज्य स्वतंत्र नहीं रहेगा। उसका सचालन हमारी सलाह के अनुसार होगा। हम लाहौर पहुॅच कर नये सिरे से शासन की व्यवस्था करेंगे। यह घोषणा २० फरवरी सन् १८४६ को की गई थी।

युद्ध के दंड में स्यालकोट और काश्मीर उनके राज्य से निकल गये। कौंसिल का प्रेसीडेंट भी एक अंग्रेज ही बनाया गया। थोड़े ही दिनों में दो तीन संधियाँ गढ़ी गईं और अब महारानी जी को महलों के अन्दर बिठा दिया गया। राज काज से उन्हें कतई अलग कर दिया गया। फौज भी काफी घटा दी गई। अब जितनी रही उसमें कौम परस्तों की संख्या बहुत थोड़ी थी।

अब महारानी जिन्दा के सामने यह दूसरा संकट आ गया। जो पहले से बहुत भयानक था। फिर भी उन्होंने धैर्य बाधा और इस जाल में से अपने राज्य को मुक्त करने के लिये वे कुछ विश्वस्त लोगों के साथ सलाह-मशविरा करने लगी। प्रजा का उनकी ओर आकर्षण बढ़े इसलिये आप बहुत-कुछ दान-पुण्य भी करने लगीं। किंतु अंग्रेज कुछ कम चालाक नहीं होते। रेजीडेंट को इन बातों से सन्देह हो गया और उसने एक पत्र लिखकर महारानी जी को न केवल सरदारों से मिलने में ही सीमा निश्चित करने की सलाह दी। किन्तु दान-पुण्य में कमी करने और उन्हें राजपूत रानियों की तरह पर्दे में रहने की सलाह दी।

यद्यपि मूलराज भी पिछले दिनों सिख राज्य के साथ विश्वासघात कर चुका था। किंतु अंग्रेजों से चौकन्ना वह भी हो गया था। महारानी ने उसके साथ कोई बिगाड़ करने की नहीं सोची। किंतु उनके यहाँ अपनी दासियाँ राजी खुशी के समाचार लेने भेजीं। महारानी जिन्दा की यह बातें उनकी राजनीतिज्ञता को सूचित करती हैं। किंतु रेजीडेंट ने इस बात की भी महारानी जी से कैफियत तलब करली।

सन् १८४७ की १६ वीं अगस्त को उन्हें शेखूपुरा के किले में भेज दिया गया और मासिक वृत्ति भी केवल चार हजार मासिक कर दी गई। महाराजा दिलीपसिंह अपनी माता से अलग होकर बड़े दुखी हुये। माँ के हृदय की व्यथा को तो कहा ही कैसे जा सकता है। उन्होंने शेखूपुरा में पहुँचते ही दूसरे दिन राजी खुशी के समाचार खाने को मिठाई और खेलने को तोते भेजे। रेजीडेंट को यह बात भी अखरी और उसने कुछ दिन के बाद महारानी को ताकीद करदी कि वह महाराज के पास सीधा कोई समाचार नहीं भेज सकतीं। इस आदेश को पाकर महारानी जिन्दा एक ठंडी सांस लेकर चुप हो रहीं।

इसके कुछ ही समय बाद मुल्तान में गड़बड़ी फैल गई। मूलराज अंग्रेजों से बिगड़ गया। महारानी ने इस सम्बन्ध के समाचार जानने को दो आदमियों को भेजा। अंग्रेजों ने उन्हें देवान लडाई में पकड़ लिया। उन्हें तो प्राणदण्ड दे दिया गया। किंतु इस घटना का अर्थ यह लिया गया कि मुल्तान विद्रोह में महारानी जिंदा का भी हाथ है। उनका हाथ रहा हो या नहीं। किंतु इसमें सदेह नहीं अंग्रेजों के लिये महारानी जिंदा के हृदय में कोई सहानुभूति शेष नहीं रही थी। वह उन्हें घर में घुसा हुआ साँप समझ चुकी थीं।

इन बातों से इनकार नहीं किया जा सकता कि शेखूपुरा पहुँचकर भी उन्होंने सरदारों से मिलना जुलना नहीं छोड़ा वह उनके हृदय को टटोलती रहीं। सेना के लोगों को भी बुलातीं रहीं। इन बातों का भी रेजीडेंट कैरी को पता चलगया और उसने साहबसिंह आदि सरदारों को बुलाकर बुरी तरह से डाटा।

महारानी जिन्दा को भी यह बात असहनीय थी। उन्होंने सरदार जीवनसिंह को अपना वकील बनाकर कलकत्ता लाट साहब के पास इसलिये भेजा कि क्या रेजीडेंट को महारानी जिन्दा के ऊपर इतने कडे प्रतिबंध लगाने का अधिकार है। किंतु गवर्नर ने जो उत्तर दिया वह निहायत बेहूदा था। जो उसकी दुर्भावनाओं को व्यक्त करने वाला है। गवर्नर ने कहा "चूंकि रानी जिन्दा ने अपनी दरख्वास्त में अपने को महाराजा रणजीतसिंह की विधवा और महाराज दिलीपसिंह की माँ कह कर सम्बोधित किया है। अत वे मुझसे कुछ आशा न करें।

इसके बाद महारानी जिन्दा के लिये पंजाब से बाहर निकलने का हुक्म जारी कर दिया गया मक्कार रेजीडेंट ने उस हुक्म पर महाराज दिलीपसिंह की मुहर लगवा दी। १४वीं जून को हडसन और लिससडन नाम के दो अंग्रेज कुछ सैनिकों के साथ शेखूपुरा भेज दिये गये।

महारानी ने रेजीडेंट का पत्र पढ़ा। उसमे लिखा था आप के पास यह दो अंग्रेज आ रहे हैं आप को शेखूपुरा से बाहर ले जावेंगे आप इनके साथ हो ले। कोई दुर्व्यवहार आप के साथ न होगा। हमारी सरकार का यही इरादा है कि आप शेखूपुरा छोड़ दे। महारानी ने उस समय बड़े धैर्य का परिचय दिया वे रोई नहीं, न उन्होंने अपने होश को खोया।

जब पजाब की सीमा से बाहर हुई तो उन्होंने हडसन से कहा, रेजीडेंट से कह देना। महाराजा रणजीतसिंह जी की विधवा के साथ अंग्रेज सरकार जो भी कर रही है वह शायद अच्छा ही कर रही होगी।

बनारस मे उन्हे रक्खा गया मेजर मेकग्रेगर उनके रक्षक नियुक्त किये गये। यहाँ कुछ दिन बाद उन्हे बताया गया कि पजाब मे आप एक भीषण षडयंत्र अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने के लिये रच रहीं थीं। आप के दस्तखतों की ऐसी कई चिट्ठिया भी पकडी गई है। इस अपराध मे आपके पास जितने भी जेवर और नकद रुपये हैं वह सरकार के हवाले कर दो और अब आपको पेशन भी केवल एक हजार रूपये सालाना मिलेगी। इस बात को सुनकर महारानी स्तब्ध हो गई, उनके पैर के नीचे से जमीन धसकने लगी। पिंजडे मे बद सिह केवल दहाड़ मार कर अपने क्रोध को प्रकट करके रह जाता है उसी तरह महारानी अपने ओठ चबा कर चुप हो रहीं। उनके पास से लगभग पचास लाख के जेवर और नकद दो लाख रुपये जमा करा लिये।

महारानी के देश निकाले के समाचारो से सिख विक्षुब्ध हो उठे और वह चिल्लाने लगे। जब हमारी राजमाता पजाब से निकाल दी गई है तो हम अंग्रेजों का साथ नहीं दे सकते। हम मूलराज के साथ मिलकर लड़ेगे। ये जो हमारे सरदार इस समय भी अंग्रेजों के साथ हैं। हम इन्हे छोड़ देंगे। सेना मे शहर मे और देहात मे एक ही चर्चा और उत्तेजना फैल गई और इस सबका जो फल हुआ वह था सिखों का दूसरा युद्ध। महारानी जिंदा के राज्य मे चार लाख सिख रहते थे। उनमे से साठ हजार बागी हो गये। यदि उस समय महारानी जिंदा बाहर होतीं तो वे अवश्य रानी लक्ष्मी की तरह उनका नेतृत्व करतीं और वे फिर बता देतीं कि वह महाराजा रणजीतसिंह का ही अर्द्धांग हैं किंतु शोक है कि बनारस के मकान में उन्हे इन समाचारों से भी अनभिज्ञ रक्खा गया।

साथ ही उनके साथ कठोर से कठोर व्यवहार भी किया जाने लगा। उनसे किसी को नहीं मिलने दिया जाता था। वह किस प्रकार खर्च करती हैं। इसकी भी जॉच रक्खी जाने लगी। महारानी जिंदा के इन कष्टो को लक्ष्य मे रख कर अंग्रेजों के ही पत्र 'इंगलिश मैन' ने लिखा था। "इस नारी के साथ जैसा कठोर बर्ताव किया जा रहा है वह हमारे जातीय कलंक का एक उदाहरण है।"

जीवनसिह ने न्यूमार्च नामक एक अंग्रेज को वकील बना कर महारानी की पेशन बढ़वाने के लिये कोशिशे कीं किंतु वे सभी बेकार हुई। टालमटूल की नीति से कोई भी ध्यान नहीं दिया गया। चूॅकि बनारस धार्मिक स्थान था। वहाँ प्रत्येक प्रॉत के हिंदू इकट्ठे होते थे। महारानी जिंदा के समाचार उनके कानों तक सही रूप मे नही तो अफवाह के तौर पर तो पहुँचते ही थे। इसलिये उन्हे बनारस की बजाय चुनार मे रख दिया गया।

सहन करने की कोई हद होती है। इसके अनुसार महारानी जिन्दा ने बहुत सहा। उनके हृदय में इस बात के लिये आग धधक उठी कि किसी प्रकार अंग्रेजों से इन अपमानों का बदला लिया जाय। अन्त. वे चुनार के किले से निकलीं। और भटकती-भटकती नेपाल पहुँचीं। नेपाल के महाराज ने उनका अच्छा स्वागत-सत्कार किया। उनके रहने का भी प्रबन्ध कर दिया और बीस हजार सालाना उनके लिये खाने-पीने को पेन्शन नियुक्त कर दी। किंतु महारानी जिस उद्देश्य से गई थीं वह पूरा न हुआ। भला अंग्रेजों से लड़ने की हिम्मत कौन कर सकता है। जब अंग्रेजों को पता लगा तो वे बड़े आश्चर्य में हुये और उन्हें भय भी पैदा हुआ। इसलिये वे हृदय से इस बात की इच्छा करने लगे कि महारानी नेपाल से वापिस लौट आये। उनके खर्चे के लिये तीन हजार मासिक का प्रबन्ध कर दिया जायगा। इस काम के लिये सम्भव है अंग्रेजों ने ही एक अपरिचित आदमी को महारानी के हितैषी के रूप में खड़ा कर दिया और उसने महारानी जिंदा से भारत में लौटने और उचित पेंशन देने की दरख्वास्त दिलाई। इस समय तक महाराज दिलीपसिंह को राज्य छीन कर पञ्जाब से बाहर निकाल दिया गया था यहाँ तक उन्हें ईसाई भी बना लिया और उसके बाद वह इंगलिस्तान जा चुके थे।

वास्तव में मनुष्य जब विपत्ति में फँसता है और कोई उसका सहायक नहीं होता है तो उसे अनेकों भूल करनी पड़ती हैं। महारानी की भी यह भूल थी किंतु यह सब उनके कुदिन करा रहे थे।

उधर महाराज दिलीपसिंह जी ने अपनी माता की इस इस प्रकार की कष्ट-कथा सुनी तो वे भारत आने को तैयार हुए और अंग्रेजों ने की अवसर से लाभ उठाने के लिये उन्हें इजाजत दे दी।

जनवरी सन् १८६१ ई० में महाराज भारत आये कलकत्ते के स्पेन्सिस होटल में उन्हें ठहराया गया। चन्द दिन बाद महारानी जिन्दा बुलाई गईं। दोनों मा-बेटा, बाप-बेटे. गले से चिपट कर रोये। एक दूसरे की हालत को देख कर दुखी हुये।

बेटे के स्नेह से महारानी जिंदा विलायत जाने को राजी हो गईं। वे इंगलैण्ड चली गईं किंतु वहाँ का रहन-सहन उन्हें पसन्द नहीं आया। वे उसी वेश में रहीं जो उनका हिंदुस्तान में था। प्रात-साय वे अपने घर में सिख-रीत्यानुसार भजन कीर्तन करतीं। विशेष अवसरों पर कड़ाह प्रसाद बनातीं। अपनी माँ के इन धार्मिक और पवित्र भावों को देखकर महाराज दिलीपसिंह को शनै शनै सिख धर्म से प्रेम होने लगा। उनकी माँ उनको गुरुओं के पवित्र जीवन और शहीदों की कुर्बानियों के इतिहास सुनातीं जिससे महाराज का खून खौल उठता। उनके विचार एकदम बदल गये।

महाराज ने गिरजाघरों में जाना, अंग्रेजी सुसाइटियों में शामिल होना सब कुछ छोड़ दिया। इससे भयभीत होकर कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने महारानी को दिलीपसिंह से अलग रहने का प्रबंध कर दिया।

परदेश में भी माँ-बेटे एक साथ न रहने दिये गये। इनका महारानी जिंदा के जीर्ण शीर्ण स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा और वे चिताओं से तिल-तिल कर सन १८६३ ई० में इस संसार से चल बसीं।

महारानी जिंदा इस संसार में नहीं रहीं किंतु वे बहुत कुछ अपने अपूर्व तप का प्रभाव छोड़ गई हैं। वह जब भी हमें याद आयेगा। हमारा सिर उनके लिये झुकता रहेगा।

बीबी हरनामकौर

सन् १९३४ ई० के अप्रैल महीने में अखबारों के पृष्ठों पर जिस वीर युवती के चित्र और बहादुराना समाचार प्रकाशित हुए थे। वह बीबी हरनामकौर उस समय केवल १७ वर्ष की थीं। फीरोजपुर जिले में थाना पुराना के अंतर्गत चौधरीवाला एक गाँव है जिसे पंजाबी बोलचाल में पिंड चौधरीवाला कहते हैं। बीबी हरनामकौर वहीं के

जमींदार सिख सरदार की पुत्री है। उस समय तक आपकी शादी नहीं हुई थी जिस समय कि आपने अपनी वहादुरी से हिन्दुस्तान भर में शौहरत पाई थी।

रात के समय सशस्त्र चार डाकुओं ने आपके घर पर हमला किया। वीवी हरनामकौर अपने भाई समेत डाकुओं के मुकाविले पर खड़ी हो गई। दो डाकुओं को तो मार गिराया और एक को आपने पकड़ लिया। आप पर उस डाकू ने घातक हमला किया किंतु उसे आपने काफी घायल होने पर भी नहीं छोडा। एक भाग गया।

आपकी इस छोटी उम्र में इस प्रकार की वहादुरी की प्रशसा चारों ओर फैल गई। सरकार ने दोनों भाई-वहिनों को एक-एक हजार रुपया और इनकी माँ को दस रुपया महीना पेन्शन कर दी। इसके अलावा दो एकड़ जमीन भी सरकार ने दी। सिख सस्थाओं ने भी वीवी जी का खूब ही सन्मान किया। गुरुद्वारा डेरा साहव की ओर से आपको सरोपा मिला और सिंह सभा की ओर से भरे दीवान में मुवारिकवादी दी गई।

वास्तव में इस बीसवीं सदी में आपने वीवी दीपकौर की तरह वहादुरी दिखाकर अपनी कौम का नाम ऊँचा किया था।

सिख जगत् की वीरागनाओं, विदुपियों और माता-वहिनों का इतना थोड़ा-सा वर्णन करके हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं। सिख जाति ने एक से एक वढ़ कर धर्म भक्त और वहादुर महिलाओं को जन्म दिया है। जो हमारे देश के लिए महान् गौरव की चीज है। हमने तो कुछेक का ही यहाँ वर्णन किया है। जिन्हे अधिक जानना हो वे पंजाव-विभाजन के समय सिख माताओं, वहिनो और पुत्रियों के वलिदान की कहानियो को पढे।

सत्ताईसवाँ अध्याय

सामाजिक दशा

किसी भी जाति की उन्नत और अवनति दशा का पता उसके रहन-सहन खान-पान, स्वास्थ्य, बर्ताव, शिक्षा, साहित्य, संगठन और जीवन निर्वाह के साधनों को देखकर सहज ही चल सकता है। इन्हीं दृष्टियों से हम सिख जाति की अवस्था का दर्शन करना चाहते हैं।

आमतौर से सिखों का रहन-सहन आडम्बरपूर्ण नहीं है। उनमें जो ठाठ बाट से भी रहते हैं उसमें भी विलासिता की गन्ध बहुत कम होती है। शहरों का रिवाज अभी गाँवों में बहुत कम पहुँची है। पुरुष पगड़ी, कुरता, कच्छ, पाजामा, धोती कोट, अचकन, सलवार आदि पहनते हैं। साधारण पहनावा कच्छा, कुर्ता और पगड़ी का ही है। धोती प्राय तहमदनुमा बाँधते हैं।

रहन-सहन

अपेक्षाकृत सिख स्त्री-पुरुष और बच्चे साफ सुथरे रहते हैं। देहातों में भी अपने सम व्यवसायी अन्य लोगों की अपेक्षा सफाई की ओर उनका ध्यान अधिक रहता है।

अधिकाँश में सिखों की आबादी देहात में ही ज्यादा है और जो शहरों में भी है वह भी खान-पान सम्बन्धी अपनी पैतृक आदतों को बहुत दूर तक पालते हैं। गाय भैंसे अधिक रखने के कारण घी दूध खूब खाते हैं। लस्सी उनका उतना ही प्रिय पेय है जितना कि अंग्रेजों का चाय। कड़ाह प्रसाद (हलवा) उनका सबसे प्यारा भोजन है। प्रत्येक उत्सव और त्यौहार पर कड़ाह प्रसाद अवश्य बनवाते हैं। महमान की खातिरदारी में भी कड़ाह प्रसाद का ही ऊँचा स्थान है। व्रज के जमींदार जिस प्रकार खीर को देवताओं का भोजन का नाम देकर प्रिय मानते हैं उसी प्रकार सिख कड़ाह प्रसाद में धार्मिक भावना रखते हैं।

खान-पान

भोजन को रसोई, खाना और भोज्य न कहकर प्रसादा कहते हैं भोजन करने को प्रसादा छकना कहते हैं। उनके यहाँ साधारण भोजन (दाल, रोटी, साग आदि) प्रसाद कहलाता है हलुवा कड़ाह प्रसादा और मांस भोजन महाप्रसाद कहलाता है। वैसे महाप्रसाद कड़ाहप्रसाद की तरह ऊँचा स्थान नहीं रखता और न उसके खानेको लाजिमी करार दिया गया है किन्तु चूंकि आरंभ में जो जातियां सिख पंथ में शामिल हुई थीं उनमें से अधिकाँश माँस के आदी नहीं थे इसीलिए इसको महाप्रसाद इतना बड़ा नाम

दिया गया उन दिनों सिखों की हालत यह हो ही गई थी कि जंगलों मे भूखे मरने की नौवत में महा-प्रसाद से ही प्राण-रक्षा की जा सकती थी। महाप्रसाद ताजा मांस का वनता है इसीलिए झटके का खाना निहित वताया गया है।

सिख धर्म के अन्दर कुछ ऐसे भी सम्प्रदाय हैं जिनमे मांस कतई नहीं खाते। पंजाव जैसे देश मे जहाँ गेंहूँ और वाजरा जैसे वलिष्ठ अन्न वहुतायत से पैदा होते हैं सौभाग्य से सिखों का वही उपनिवेश है।

स्वास्थ्य

खान-पान का सुढग और सादगी इसके अलावा कुसंस्कारों से निवृत और परिश्रम मे रुचि। यह वाते ऐसी है जो स्वास्थ्य की सर्वोतम गारंटी है। यही कारण है कि दूसरे लोगों की अपेक्षा सिख अधिक तगड़े, सुदृढ़ और वलवान होते हैं। अपनी इस मजवूती के कारण उन्होंने सैनिक जातियों मे अपनी सर्वोच्च गणना कराने का सौभाग्य हासिल किया है। वे शारीरिक मानसिक परिश्रम से नहीं घवराते हैं अत खेती और सरकारी सर्विस मे वे उन्नति पर है। उनके स्वास्थ्य भारत ही नहीं किंतु ससार मे सर्वोपरि वना देने लायक है। किंतु खेद है कि व्यायाम का इनमें वहुत कम चलन है। सिख-गाँवों मे अखाड़ों (मल्लयुद्ध के स्थान) और दड वैठक लगाने वालों की कमी है। फिर भी वे अपनी मजवूती और अच्छे स्वास्थ्य के लिए भारत में अच्छा स्थान रखते हैं।

स्वभाव और वर्ताव

सिख स्वभाव से विनोदी और हँसमुख होते है। चिडचिड़ापन वहुत ही कम उनके मिजाज मे होता है। पहली वार की मुलाकात मे ही वे खुलकर वातें करते है। उनसे मिलने पर ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि किसी नये और अपरिचित व्यक्ति से वाते की जा रही हैं। यद्यपि उनके अदर राजसी गुण अधिक है फिर भी वे हृदय के तीव्र और कठोर नहीं होते।

वातचीत वे स्पष्ट कहने और सुनने की आशा करते हैं जहाँ तक भी हो सकता है उनकी वातचीत लाग लपेट की नहीं होती। उनके स्वभाव मे अहंमन्यता की झलक भी नहीं होती। वड़ों का आदर करने की उनमे विशेपता है। साधु-सतों के प्रति उनके दिल मे भक्ति है। ब्राह्मणों के लिये उनके लिये उनके धर्म मे उतना ऊँचा दर्जा नहीं किन्तु उनके दिल मे उनसे कोई घृणा भी नहीं है। यद्यपि उनका उत्थान मुसलमान शासकों की जायदाद के कारण हुआ। किन्तु पड़ोसी मुसलमान के साथ वे सदैव हमदर्दी का व्यवहार करते हैं। ऐसा वे किसी पालिसी से करते हों, यह वात नहीं। किन्तु उनका स्वभाव ही ऐसा है।

दान-पुण्य करने मे उनका स्वभाव और मन कंजूस नहीं, यही कारण है कि उनके धार्मिक स्थानों पर इतनी आमदनी होती है। जितनी कि भारत की किसी भी वड़ी रियासत की हो सकती है।

वे अपमान को वहुत कम वर्दास्त करते हैं। वह फिर चाहे अपने घरवालों की ओर से हो चाहे वाहरवालों की तरफ से। इस मामले मे वे कभी-कभी विवेक को भी ताक मे रख देते हैं, यही कारण है कि आये वर्ष प्रत्येक जिले मे उनमे आपस मे भी खून-खरावियाँ हो जाती हैं।

सैनिक प्रधान जाति होने के कारण धोखा और दगा-फरेव भी वे किसी के साथ नहीं करते यों अपवाद सभी जगह होते है।

अपनी वात के लिये उनके स्वभाव में जिद भी है। कभी-कभी तो 'हमीर हठ' का रूप उनकी वात धारण कर लेती है।

नाच रंग में सामूहिक रूप से उनकी रुचि बहुत ही कम है। खेल कूद और घोड़े की सवारी उनकी रुचि की चीजें हैं।

उनकी स्त्रियों का स्वभाव भी संकुचित और कटुतापूर्ण नहीं होता। कथा कीर्तन में उनकी रुचि पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। उन्हें बड़ा हुआ कुटुम्ब अच्छा लगता है। सिख स्त्री की लालसा रहती है कि उसकी कई महेली हों और घर में देवरानियों का टोला। किन्तु जमाने के साथ अब उनमें से यह भावना विनष्ट होती जा रही है।

जीवननिर्वाह के साधन

पंजाब या भारत के किसी भी हिस्से के उन लोगों को जिन्होंने सिख धर्म ग्रहण किया है। उनके लिये पारमार्थिक लाभ कितने हुये हैं। यह तो सिख ही जाने। किन्तु दो लाभ तो इतने प्रत्यक्ष हैं कि उन्हें कोई भी आदमी जिसे तनिक भी समझने का माद्दा है सहज ही में जान सकता है। एक तो है समाजिक समानता का जिसपर हम आगे के पृष्ठों में प्रकाश डालेंगे। दूसरा है पेशे की आजादी का। खत्री सिख चाहे तो दर्जी और मोची का काम कर सकता है और दर्जी सिख चाहे तो ज्ञानी और ग्रन्थी बन सकता है। जोकि अब जमाने के परिवर्तन के साथ ऐसी स्थिति हो गई है कि दूसरी जातियाँ भी चाहे जिस पेशे को कर सकती हैं। किन्तु सर्व प्रथम यह आजादी दी थी सिख धर्म ने ही। पेशे और जाति का सिख धर्म से कोई खास सम्बन्ध नहीं है। इसका फल यह हुआ कि सिखों ने आर्थिक अवस्था ठीक बनाये रखने के लिये चहुमुखी उन्नति की। राज्य का ऐसा कोई महकमा नहीं जिसमें सिख न मिलेंगे। ज्ञात संसार का ऐसा कोई कोना नहीं जहाँ सिख जीवन-निर्वाह के लिये नहीं पहुँच गये हों। कला-कौशल, दस्तकारी आदि सभी धन्धों को सीखने में उन्होंने पहल की है।

खेती के काम में भी नये आविष्कारों को आजमाने में वे पीछे नहीं रहे। गाय बैलों की नस्ल सुधारने तथा अच्छे २ पशु पालने में उनकी रुचि सदैव उन्नत रही है। अच्छे बीज, अच्छा गुड़, अच्छी कपास पैदा करके सिखों के खेतिहर समुदाय ने अपने को अग्रणी ही साबित करने की कोशिश की है।

हिन्दुस्तान में खास तौर से हिन्दुओं में उन्होंने सर्वप्रथम ईरान और काबुल से घोड़ों और हथियारों के लाने का व्यापार आरम्भ किया था।

इस प्रकार जीवन निर्वाह के प्रत्येक धंधे में से सिख रुचि रखते हैं। यही कारण है कि उत्तरोत्तर उनका समाज हरेक क्षेत्र में उन्नत होता जा रहा है।

सङ्गठन

किसी भी मानव समाज का संगठन किन्हीं विशेष परिस्थितियों में किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये होता है। परिस्थितियों के निकल जाने अथवा उद्देश्य की पूर्ति के बाद स्वभावत उस संगठन का छिन्न-भिन्न हो जाना अनिवार्य है। पर चूंकि वह उत्तम संगठन सदैव बना रहे इसलिये उसे स्थायित्व देने के लिये उन साधनों के प्रति अटूट श्रद्धा के भाव पैदा होना आवश्यक होता है जिनके सहारे वह संगठन उन्नत होकर उद्देश्य की पूर्ति करता है। प्रत्येक ऐसे सगठन के जिसका कि आरम्भ धार्मिक भित्ति पर हुआ हो कम से कम पाच साधन होते हैं। (१) धर्म पुस्तक (२) धर्मस्थान अथवा तीर्थ (३) पर्व और त्यौहार (४) अनुशासन और (५) प्रथायें।

सिखों की धर्म पुस्तक श्री ग्रंथसाहब जो हैं इस सम्बन्ध में हम पिछले अध्याय में काफी लिख चुके हैं। अत. शेप चार आचारों पर अब कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

सिखों के पाच प्रकार के धर्म स्थान है (१) वे जहॉ-जहॉ गुरु साहिबान- ठहरे थे और अब उन स्थानों पर स्मारक स्वरूप धर्मशालाये, गुरुद्वारे अथवा दमदमा है। (२) जहॉ-जहॉ गुरु साहिबान का जन्म हुआ था और वे स्वर्गारोहण हुये। (३) वे स्थान जहां-जहा गुरु साहब ने बावली, तालाब आदि बनवाये। (४) जहॉ-जहॉ गुरु और उनके प्यारे शहीद हुये। (५) जहॉ-जहॉ उनके भक्त उनकी दी हुई वस्तुओं को ले गये और जहॉ कि उन्होंने उन वस्तुओं के रखने के लिये स्मारक स्थान बना लिये। इनके अलावा आज भी जहॉ-जहॉ सिख हैं प्राय' वहीं-वहीं गुरुद्वारे बने हुये है और बनते जारहे हैं किन्तु पुराने धर्मस्थान वे ही हैं जो उपरोक्त पॉच प्रकारों मे से है। हालांकि उनमे कुछ तो बहुत पीछे के बने हुये है फिर भी उनकी स्मृति का महत्व उस समय से सम्बन्ध रखता है जिस समय का कि उनके साथ इतिहास जुडा हुआ है।

यह तो निर्विवाद सही बात है कि धार्मिक भावनाओं के अनुसार प्रत्येक धर्मस्थान तीर्थ होता है किंतु लौकिक भाषा मे तीर्थ उसे कहते है जहॉ किन्हीं विशेप पर्वों पर भारी जन-समुदाय इकट्ठा होकर प्रथा के अनुसार धार्मिक क्रियाओं को पूरा करता हो।

सिखों मे इस प्रकार के बडे-बडे तीर्थों की सख्या इस प्रकार है —(१) श्री बावली साहब (२) अमृतसर (३)मुक्तसर (४) दमदमा साहब (५)करतारपुर (६) तरनतारन (७) ननकाना (८) गोविन्द वाल बावली साहब (९)देहरा गुरु श्री अर्जुनदेव (१०)देहरा बाबा नानक (११)पटना साहब (१२)अविचलनगर (१३) फतहगढ़ सरहिंद (१४) चमकौर साहब (१५) खडूर साहब इनके सिवा करतारपुर और कीरतपुर आदि भी हैं।

इनमे इतने तख्त हैं। (१) अकाल तख्त जो अमृतसर मे है (२) तख्त पटनासाहब (३) तख्त केशगढ़ आनन्दपुर मे (४) तख्त हुजूर साहब अविचलनगर।

इनमे तरनतारन और अमृतसर का तो इतना बड़ा नाम हो रहा है जिन्हे सारा हिंदुस्तान और हिंदुस्तान से बाहर के लोग भी जानते है किंतु यदि हम सिलसिले से आरम्भ करें तो पहिले ननकाना साहब का वर्णन करना होगा। लाहौर से ४८ मील पच्छिम शेखूपुरा जिले मे रायबुलारकी जो तलवण्डी थी और जिसमे कि गुरु नानकदेव जी महाराज का अवतार हुआ था वही अब गुरुजी के नाम पर ननकाना अथवा नानकायन अर्थात् नानदेव का घर कहलाता है। वहॉ 'जन्म स्थान' गुरुद्वारा बना हुआ है। यह गुरुद्वारा बड़ा आलीशान है। गुरुद्वारे से अठारह हजार एकड़ ज़मीन और नौ हजार आठ सौ बानवे रुपये साल की जागीर लगी हुई है। लगभग बीस हजार रुपया साल चढ़ावे मे आ जाते हैं।

जन्म स्थान के सिवा इतने स्थान यहॉ और है।

(१) कियारा साहब—जहॉ प्रथम बार आपने अपने पशु चराये थे। इस गुरुद्वारे से ४५ मुरब्बे जमीन लगी हुई है।

(२) तम्बू साहब—जहॉ कि गुरु नानकदेव जी सच्चा सौदा करने के बाद लौट कर बैठे थे।

(३) पट्टीसाहब—जहॉ कि पाधे के पास उनके पिताजी ने पढ़ने बिठाया।

(४) बाललीला—जहॉ कि बाल-क्रीड़ा करते थे। इस गुरुद्वारे मे १२० मुरब्बे जमीन और इकतीस रुपये सालाना की जागीर है।

(५) मालजी साहब—जिस माल वृक्ष के नीचे गाये चराते हुये सो गये थे और वृक्ष की छाया स्थिर रही थी। इस स्थान से १५० मुरब्बे ज़मीन और ५०) सालाना नकद जागीर है।

(७) वे स्थान जो गुरु अर्जुनदेवजी और गुरु हरिगोविंदजी की यात्रा की यादगार मे है जोकि इस

अकाल बुंगा अमृतसर

दरबार तरनतारन साहिब

तीर्थ भूमि के दर्शनों के लिये आये थे। इस स्थान से १३ बीघे जमीन माफी मे है।

यहाँ पर कार्तिक की पूर्णमासी पर बडा भारी मेला भरता है। अत भक्तजन इस स्थान के लिये उसी प्रकार उमडते हैं। जिस प्रकार भगवान कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा, वृन्दावन को देखने के लिये लोग आते हैं और वास्तव मे ही ननकाना सिखों का वृन्दावन है। ब्रज मे जैसा हम देखते हैं कि यहा भगवान खेले थे। यहाँ उन्होंने दधि-माखन खाया था। यहा काली-मर्दन किया था। यहाँ उनकी गायों का खिरक था इसी प्रकार ननकाना मे सिख-दर्शक गुरु नानकदेव जी के समस्त स्मारक स्थान देखते है। जहाँ गुरु नानकदेव स्नान करते थे और जिसे कि रायबुलार ने तालाब का रूप दे दिया था। आदि इसी प्रकार के श्रद्धापूर्ण स्थानों के दर्शन ननकाना मे होते हैं।

सवत् १६२१ वि० मे श्री गुरु रामदास जी ने गुरु अमरदास जी की आज्ञा से तु ग गुमटाला और सुल्तानपिंड नामक गाँवों के पास एक तालाब खुदवाया जिसे गुरु अर्जुनदेवजी ने पूरा करा कर अमृतसर नाम रक्खा। यह बात सवत् १६४५ वि० की है इससे पहले ही सवत् १६३१ वि० मे ही गुरु का चक नाम से एक आबादी गुरु रामदास जी ने कर ली थी। गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने समय मे 'गुरु के चक' का नाम रामदासपुर रक्खा और उसे खूब तरक्की दी। यहाँ उन्होंने सभी श्रेणियो के लोगों को बसाया। सवत् १६४३ वि० मे उन्होंने उस तालाब को भी पक्का कराना आरभ किया। यह नाम रखने का जो कारण था उसका उल्लेख पहले हो चुका है। इस सरोवर की लम्बाई ५०० फुट चौडाई ४६० फुट और गहराई १७ फुट है। संवत् १६४५ मे इस सरोवर के निकट गुरु अर्जुनदेवजी ने हरिमन्दिर जी के तैयार हो जाने पर सवत् १६६१ वि० मे उसमे ग्रन्थ साहब की स्थापना की। अमृतसर (सरोवर) के नाम पर ही धीरे-धीरे नगर भी इसी नाम से प्रसिद्ध हो गया।

अमृतसर

यह हरिमदिर सिखों के समस्त गुरुद्वारों मे शिरोमणि है। सिखों के लिये अमृतसर का वही स्थान है जो हिंदुओं के लिये काशी और मुसलमानों के लिये काबा का है।

यहाँ पर वैसाखी और दीपमालिका पर दो भारी मेले होते हैं।

इस पवित्र स्थान को मुस्लिम शासकों ने नुकसान पहुँचाया था किंतु जस्सासिंह अहलूवालिया आदि सिख सरदारों ने पुन ठीक करा दिया। इसके साथ काफी इतिहास है। जिसे हम कुछ-कुछ विभिन्न स्थलों पर इस ग्रथ मे लिख भी चुके हैं।

महाराजा रणजीतसिंह के राज्य मे इस नगर के शामिल हो जाने के बाद इसकी खूब उन्नति हुई महाराज ने हरिमदिर जी के फर्श सगमरमर के और कलस स्वर्ण के बनवा कर उन्हें देदीप्यमान करने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

अमृतसर सिखों की धार्मिक राजधानी है। दरअसल तो यह नगर पजाब के समस्त हिंदुओं का तीर्थ बना हुआ है। यहाँ पर सतोषसर, कोलसर, विवेकसर रामसर नाम के और भी तालाब हैं।

हरिमदिर जी के अलावा निम्नलिखित और गुरुद्वारे तथा धार्मिक स्थान अमृतसर मे हैं। (१) अकालतख्त (२) अटलराइ जी का देहरा (३) सालोभाई की धर्मशाला (४) गुरु के महल (५) चरमती-अटारी (६) टाहली साहब (७) थडा साहब (८) मजी साहब (८) दमदमा साहब (६) दरसनी ड्योढी (१०) दुखभजनी बेरी (११) पिप्पली साहब (१२) गुरुद्वारा लोहगढ।

अकालतख्त मे गुरु साहबान और धर्म पर कुर्बान होने वाले तथा अन्य योद्धाओ के शस्त्र

रक्खे हुये हैं। अमृतसर मे अकाली अथवा निहगवीरों के साथ वावा फूलासिंह अकाली रहते थे। उनकी स्मृति मे वहाँ एक गुरुद्वारा भी है।

जिला अमृतसर मे अमृतसर नगर से चौदह मील उत्तर की ओर यह गुरु स्थान है। गुरु अर्जुन-देवजी साहब ने खरीद कर सवत् १६४७ वि० के १७ वैसाख को खारा और पालासुर नामक गाँवों के पास एक तालाब की नींव डाली। इसके ६ वर्ष वाद सवत १६५३ मे यहीं पर एक नगर बसाना आरम्भ किया। उन दिनों इस स्थान से तीन मील के फासले पर नूरुद्दीन का लड़का अमीरुद्दीन नाम का पठान जेलदार रहता था। उसने उन सव ईटों को जो तालाब और नगर के लिये बनवाई थीं उठवा कर अपनी सराय मे लगवा दिया। इस प्रकार लगभग ७० वर्ष तक यह स्थान अर्द्धपूर्ण हालात मे रहा। सवत् १८२३ ई० मे सरदार बुधसिह फैजलपुरिया और दूसरे सरदारों ने जोर पकडा और उस सराय के मकानों की एक-एक ईंट खुदवा डाली और तरनतारन सरोवर के दो किनारे पक्के करा दिये। इसके बाद महाराजा रणजीतसिंह जी ने शेष दो किनारे पक्के करा दिये। कुँवर नौनिहालसिंह जी के समय मे तरनतारन के निर्माण का काम पूरा हुआ। यहाँ गुरु अर्जुनदेव जी ने कुष्ठियों को आराम पहुचाने का कार्य किया था अत यह दुख निवारन भी कहलाता है। ४६६४) सालाना की जागीर भी उसी समय की इस गुरुद्वारे से लगी हुई है। चढ़ावे से चालीस हजार सालाना तक की आमदनी हो जाती है।

तरनतारन

इसके सिवा यहाँ परिक्रमा मे एक मंजी साहब है। दूसरी मजी शहर से वाहर गुरु के खूह के पास है। दूसरा खूह बीबी भानी जी के नाम पर है।

तरनतारन सरोवर की लम्बाई ६६६ फुट और चौड़ाई ६६० फुट है।

जिला अमृतसर मे तरनतारन जी से १० मील के फासले पर खडूर साहब नाम की एक वस्ती है। गुरु अगद जी यहीं पर निवास करते थे। यहीं से उनका सचखड प्रस्थान हुआ था। अत. उनकी स्मृति मे यहाँ एक देहरा है। गुरु अगददेव जी के समय में इस नगर को धर्म-चर्चा का अच्छा सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गुरु नानकदेव जी यहाँ पधारे थे और गुरु अमरदास जी ने तो यहाँ वर्षो गुरु अगददेव जी की सेवा की थी। आवादी के अन्दर गुरुद्वारा है जिससे २६००) सालाना को जागीर लगी हुई है। दरवार साहब की परिक्रमा मे किल्ले का वह करीर भी है। जहाँ गुरु अमरदास जी को अपने गुरु अंगददेव जी के स्थान को पानी लाते समय ठोकर लगी थी। इसके अलावा यहाँ यह स्थान और दर्शनीय है।

खडूर साहब

(१) तपियाना—जहाँ गुरु अगददेव जी तप किया करते थे। इसी स्थान के पास भाई वालाजी की समाधि है।

(२) थड़ा साहब—जहाँ पर कि गुरु अगददेव जी बैठकर पाठ किया करते थे। एक चबूतरा बना हुआ है।

मल्ल अखाड़ा जहाँ पर बैठ कर गुरु अगददेव गाँव के बच्चों को कुश्ती लड़ने की प्रेरणा किया करते थे।

तरनतारन स्टेशन से अग्निकोण मे १५ मील के फासले पर गोइन्दवाल नाम का नगर है। गुरु अमरदास जी की सहायता से गोइन्दा नाम के एक खत्री ने इसे बसाया था। अत: उसी के नाम पर यह गोबिन्दवाल नाम से मशहूर हुआ। यहाँ पर संवत् १६१६ में गुरु अमरदास जी ने

खडूर साहिब

निवास स्थान श्री गुरु अंगद देव जी

थम्ब साहिब
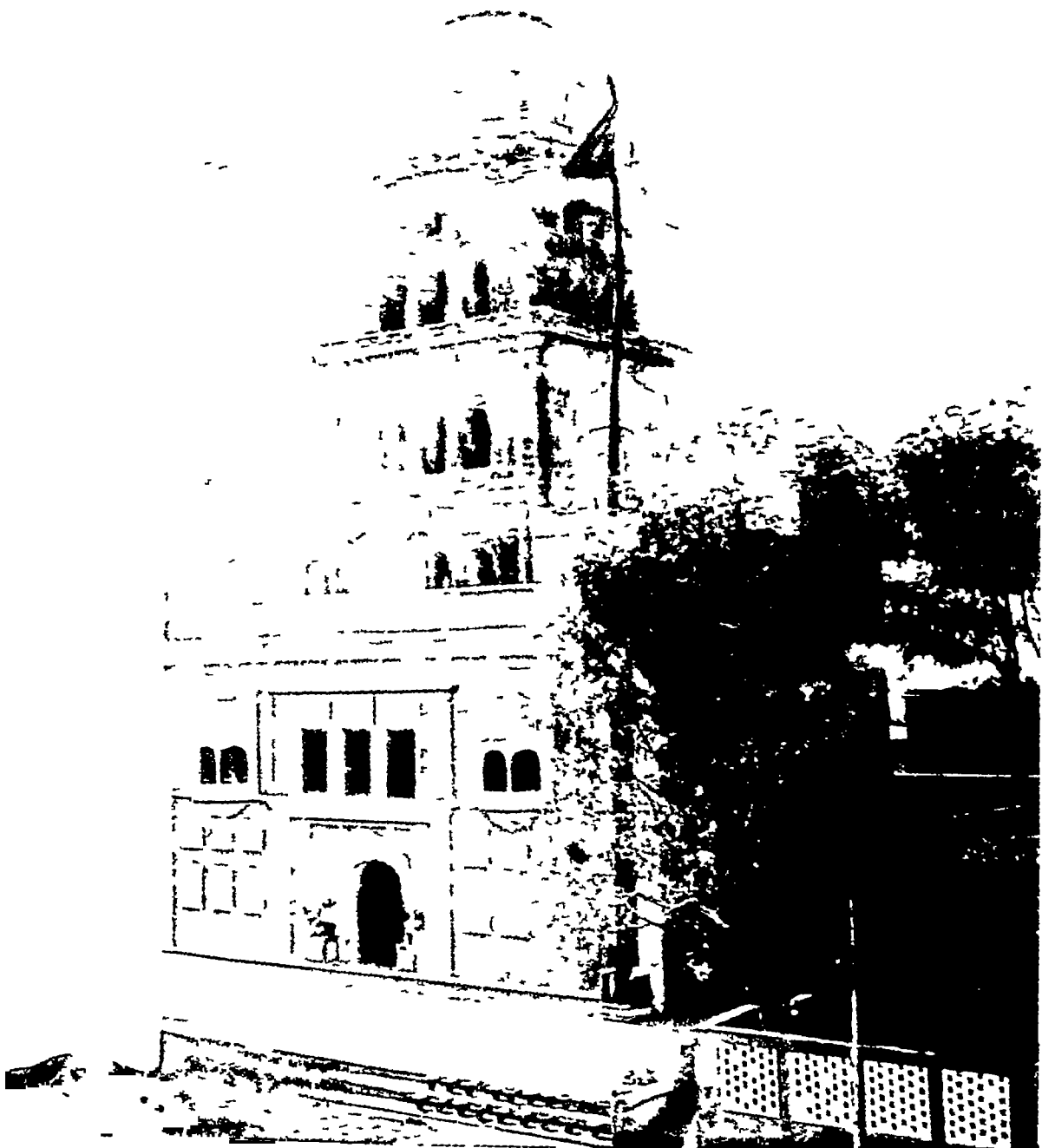
करतारपुर

बावली साहब एक बावड़ी बनवाई थी। जो शनै शनै सिखों के परिश्रम सहायता और प्रेम से सुन्दर बन गई। इसमे ८४ सीढ़ियाँ हैं।

धार्मिक भावनाओं मे यह गया जी से प्रतिस्पर्द्धा करती है। यहाँ क्वार की ५ के दिन बड़ा भारी मेला लगाता है। प्रत्येक सीढ़ी पर अनेको श्रद्धालु सिख जपुजी का पाठ करते हैं। बावली साहब की मान्यता इतनी बढ़ी थी कि मुगल हाकिमों के समय मे जागीर लगना सभव हुआ। उस समय की ११२५) की जागीर लगी हुई है। कपूर्थला और नाभा की ओर से भी कुछ-कुछ जागीरे हैं। कई स्थानों पर इस धर्म-स्थान के मकान हैं। जहाँ से किराया आता है।

यहाँ पर कई गुरुद्वारे और धर्मस्थान हैं। यथा—

(१) अनंद जी का स्थान—गुरु अमरदास जी के पुत्र मोहरी जी के बेटे साहब का नाम अनंद जी था। उन्हीं की स्मृति मे बाजार मे एक मंजी बनी हुई है।

(२) हवेली साहब—श्री गुरु अमरदास जी के रहने का मकान। गुरु जी चौबारे की जिस कीली को पकड़ कर खड़े हुये भजन करते थे। भक्त लोगों ने अब उस कीली को चाँदी से मढ़वा दिया है। इस हवेली मे वह पालकी भी रक्खी है। जिसमे रखकर गुरुवाणियाँ अमृतसर पहुचाई गई थीं। बगंडे मे वह स्थान है। जहाँ रामदास जी को गुरुआई दी गई थी। यहाँ पर बीबी भाणी जी का चूल्हा भी है। जिसे भक्तों ने अब सगमरमर का बनवा दिया है।

(३) गुरु रामदास जी का बनवाया हुआ यहाँ एक खूह (कूप) भी है।

(४) गुरु अमरदास जी के बड़े पुत्र मोहन जी का चौबारा यहाँ बना बना हुआ है।

कुछ विवरण बावली साहब का अन्य स्थानों पर भी आ चुका है। सिखों का सर्व प्रथम यही स्थान है। जहाँ मेला लगना आरम्भ हुआ था।

सिख धर्म मे पहली शहीदी गुरु अर्जुनदेव जी की हुई है। बादशाह जहाँगीर की आज्ञा से चन्दू ने जो तकलीफे गुरु अर्जुनदेव जी को दी थीं। उनकी याद मात्र से रोमांच हो आता है। उन्हीं महान् गुरु का किले के सामने एक भव्य देहरा बना हुआ है। जहाँ कि महाराजा रणजीतसिंह जी की समाधि भी है। दरबार साहब के भीतर एक दीवानखाना भी है। महाराजा रणजीतसिह जी की लगाई हुई इस पवित्र स्थान मे जागीर है। रियासत नाभा मे भी कुछ रकम बंधी हुई है।

देहरा साहब गुरु अर्जुनदेव जी

यहाँ पर गुरु अर्जुनदेव जी के शहीदी दिन की याद मे प्रति वर्ष जेठ सुदी चतुर्थी को भारी मेला लगता रहा है।

डब्बी बाजार मे गुरु जी के नाम पर एक बावली है। गुरु जी ने इसे छज्जू व्यापारी के दिये हुये धन से बनवाया था। शाहजहाँ के समय मे इस बावली को पाट दिया गया था। किन्तु महाराजा रणजीत-सिंह जी के समय मे उसे फिर दुरुस्त करा दिया गया। इसके साथ ११२ दुकान थीं। जिनसे काफी आमदनी होती रही है।

इनके सिवा यहाँ (१) श्री गुरु नानकदेव जी का गुरुद्वारा (२) चूनामडी मे गुरु रामदास जी का जन्मस्थान (३) जन्मस्थान के पास ही गुरु रामदास जी की धर्मशाला (४) मुंजग के बीच श्रीगुरु हरि-गोविन्द जी का स्थान (५) भाटी दरवाजे मे गुरु हरिगोविन्द जी का गुरुद्वारा (६) भाई मनीसिंह जी का शहीदगंज (७) भाई तारुसिंह जी का शहीदगंज और सिंहिनियों का शहीदगंज आदि और भी कई स्थान

दर्शनीय हैं। खेद है कि लाहौर के सब स्थान अब पाकिस्तान में हैं।

गुरु रामदास जी का जन्मस्थान काफी विशाल और आकर्षक है।

जिला होशियारपुर मे कीरतपुर नाम का नगर है। यहाँ पर बाबा गुरुदित्ता जी का देहरा बहुत मशहूर है। किंतु गुरु हरिकिशन जी की जन्मभूमि होने का भी इस नगर को सौभाग्य प्राप्त है। इसे गुरु हरिगोविंद जी ने संवत् १६८३ विक्रमी मे कहलूर के राजा से भूमि खरीदकर गुरुदित्ता जी की मारफत आबाद कराया। आबादी के बीच मे जो शीशमहल है उसी मे गुरु हरिगोविंद जी साहब रहते थे। इसी शीशमहल मे गुरु हरिकिशन जी का जन्म हुआ था। यहीं पर गुरु हरिगोविंद जी का एक गुरुद्वारा है। जो हरिमंदिर भी कहलाता है। उनका बनवाया हुआ एक कुआँ भी है।

कीरतपुर हरिमन्दिर

जहाँ साईं बुड्ढनशाह से गुरु नानकदेव जी ने ज्ञानचर्चा की थी। वहाँ पर एक नानकदेव जी का भी गुरुद्वारा है।

शहर के बीच मे गुरु हरिराय जी साहब का भी गुरुद्वारा है। जिसमे एक बड़ा चुहबच्चा है। जहाँ घोड़ियों के लिये दाना भरा जाता था। दमदमा साहब, पातालपुरी और तीर मजी आदि और भी कई दर्शनीय स्थान हैं।

यहाँ दो एक स्थान को छोड़ सभी से जागीरे लगी हुई है। किंतु यह जागीरें बहुत ज्यादा नहीं हैं।

यहाँ पर गुरु हरिराय जी साहब का भी देहरा काफी अच्छा बना हुआ है। इस पर चढ़ावा अच्छा होता रहा। पटियाला से कुछ निश्चित आमदनी बधी हुई थी।

दिल्ली से गुरु तेगबहादुर जी का शीश जहाँ लाकर यहाँ रक्खा गया था। वहाँ निशानगढ़ बना हुआ है।

इस नगर मे होली पर भारी मेला होता है। जो बाबा गुरदित्ता जी के देहरे पर मनाया जाता है।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि श्री गोविन्दसिंह जी का जन्म उनके पिता जी के प्रवासकाल मे मगध देश की राजधानी पटना मे हुआ था। उनके जन्मस्थान पर आज हरिमन्दिर की भव्य इमारत खड़ी दिखाई देती है और सिख इसे दूसरा तख्त कह कर आदर देते हैं। इस हरिमन्दिर को महाराजा रणजीतसिंह जी ने बनवाया था। तब से अब तक अन्य श्रद्धालु लोग भी बराबर इसमे वृद्धि करते रहे हैं।

हरिमंदिर पटना

यहाँ पर गुरु जी की स्मृति मे इतनी वस्तुये दिखाई जाती हैं :—

(१) पंघुड़ा साहिब—पालना जिसमे बालपन मे विराजते थे, (२) तार तीर, (३) एक छोटी तलवार, (४) एक छोटा खडा, (५) एक छोटा कटार, (६) चन्दन का कंघा, (७) हाथ दाँत की खड़ाऊँ और इनके अलावा नवम गुरु जी की खड़ाऊँ भी हैं।

इस हरिमन्दिर के लिये ३१~)॥ माहवार सरकार देती है। १०००) साल की आमदनी विहार के अमीर गोपालसिंह जी की दी हुई जमीन से होती है। ५००) रियासत नाभा, ४७०) रियासत जीन्द, ७२०) रियासत पटियाला से सालाना मिलते हैं। ४५६।) सालाना फरीदकोट देता है। १६०) सालाना रामीपुर मुहल्ले की २२ बीघे जमीन की आमदनी है। इसके अलावा और भी जमीन भूभागों से कुछ आमदनी होती है और चढ़ावे में भी काफी आता है।

हरिमन्दिर जी के सिवा गुरु तेगबहादुर जी की मंजी, बड़ी सगत और छोटी संगत आदि स्थान

हैं। जो निर्मले सिखों के प्रबंध में है।

पटना में वैसाख सुदी पंचमी को मजी साहब पर मेला लगता है।

संवत १७२३ वि० में गुरु तेगबहादुर जी ने नैनादेवी पहाड़ के पास माखोवाल गाँव की धरती खरीद कर जो नगर सतलज के पास आबाद किया था वही आनन्दपुर के नाम से मशहूर है। दशमेशजी ने इस नगर को एक समय समस्त सिखों का जीवन प्रसारक केन्द्र बना दिया था। उन्होंने संवत १७४६ वि० में इस नगर की रक्षा के लिए पाँच किले आनंदगढ़, लोहगढ़, फतहगढ़, केशगढ़, और होलगढ़ के बनाये। आज इन किलों के स्थान पर गुरुद्वारे बने हुए हैं।

तख्त केशगढ़ साहब आनन्दपुर

इस गुरुपुरी में निम्न स्थान स्मारक स्वरूप बने हुए हैं। (१) तख्तसाहब शहर के मध्य गुरुद्वारा शीशगंज के अहाते में गुरुआई मिलने की स्मृति को कायम रखने वाला उनके नाम का एक गुरुद्वारा है।

(२) एक गुरुद्वारा आनंदगढ़ में है यह आनंदगढ़ आनंदपुर से केवल आध मील दूर है। यहाँ पर एक बावली है जिसमें भूलभुलैयां जैसी कोठरियां हैं। सब मिलाकर लगभग २०००) साल की जागीर इसमें बंधी हुई है।

(३) गुरु तेगबहादुर जी का शीश लाकर जहा आनन्दपुर में रक्खा गया था। वह शीशगंज कहलाता है। लगभग २००) सालाना की आमदनी पटियाला आदि से बंधी हुई है।

(४) तख्त केशगढ़ आनन्दपुर के पास ही है। यहीं पर खालसा पंथ की रचना हुई थी। यहां पर होली के दिन बड़ा भारी मेला होता है। दूसरा मेला वैसाखी पर भी होता है। यहा पर गुरु जी की निम्न वस्तुएँ हैं।

(१) नागनी बरछी जो ८ फुट ६ इच लम्बी है।

(२) भाला जो ८ फुट ११॥ इंच लम्बा है। तथा जिसका सिरा २ फुट ६ इंच लम्बा है।

(३) सैफ दस्ते समेत ४ फुट ३ इच है इसके एक परसे पर 'तौहफा अस्त अली फातिमा हुसैन व हसन' लिखा हुआ है

(४) खडा दुधारा इसी से सिखों की परीक्षा हुई थी। जिसमें पांच प्यारे बने थे।

(५) कटार यह दस्ते समेत २ फुट ३ इंच लम्बी है। वहां पर गुरु के महल, दमदमा साहब, मंत्री साहब, भेरासाहब आदि और दर्शनीय स्थान हैं।

गुरुद्वारा केशगढ़ से काफी जागीरें लगी हुई हैं। यथा ११५०) सालाना की जागीर होशियारपुर जिले के बड़ों गांव में इसे सरदार बघेलसिंह ने लगाया था। ४००) सालाना की गांव गीगनवाल जिला जालंधर में, सरदार मितसिंह जी जत्थेदार द्वारा दी हुई। ११००) सालाना की मोठेपुर गाव में जोकि आनन्दपुर के परगने में ही है। इसे सरदार चड़तसिंह डल्लेवालिया ने भेंट किया था। ७५) सालाना की बिलासपुर रियासत की। ३७५) सालाना राज्य पटियाला ३७) राज्य कलसिया द्वारा दी हुई आमदनी है।

इन स्थानों को देखकर सिखों के नवजीवन दाता की महानता हृदय में हिलोरें मारने लगती हैं। प्रत्येक श्रद्धालु और प्रेमी सिख के मन मे स्वभावत कल्पना उठती है वह समय कितना सुन्दर रहा होगा जब दशमेश जी अपने चारों साहबजादों के साथ अपनी इस आनन्दपुरी में रहते होंगे।

अम्बाला जिला की रोपड़ तहसील मे चमकौर एक गाँव है किंतु सिख इतिहास में इसका स्थान बहुत ऊँचा है आनंदपुर से निकलने के बाद यहां चालीस सिखों और अपने पुत्रों के साथ गुरुजी ही ने

चमकौर साहब

यवनों के अपरिमित दल का सामना किया था। आपके दो साहबजादे श्री अजीत-सिंह जी और जुझारसिंह जी यहीं शहीद हुए थे। उनकी शहीदी के स्थान पर जो गुरुद्वारा है वह कतलगढ़ कहलाता है। संवत १७६१ वि० की पूष की ८ वीं को यह शाका हुआ था। अत. पौह की ८ वीं को यहां भारी मेला होता है।

इस पुण्य स्थान से १०० बीघे जमीन सिख राज्य के समय की लगी हुई है। २००) सालाना की जागीर रायपुर से लगी हुई है और ६५१) सालाना आमदनी पटियाला राज्य से होती है।

गुरु दशमेश जी की यादगार मे यहां एक दमदमा भी है। जिस पर कि वे एक बार कुरुक्षेत्र जाते हुए ठहरे थे। १७ घुमाव जमीन इस दमदमा साहब से लगी हुई है।

जिला गुरुदासपुर में रावी किनारे संवत १५६१ वि० में गुरु नानकदेव जी ने अपने रहने के लिए एक स्थान बनवाया था। जोकि धर्मशाला के रूप मे था। धीरे-धीरे वहां पर एक नगर बस गया जो करतारपुर कहलाया। संवत १५७६ वि० से गुरुजी यहां निश्चित रूप से रहने लग गये, क्योंकि अब तक उन्होंने बड़ी-बड़ी यात्रायें करली थीं। यहीं पर संवत १५६६ वि० मे उनका स्वर्गारोहण हो गया। भक्त लोगों ने नगर के पास ही गुरुजी की समाधि बनवा दी। जिसे रावी की बाढ़ ने नगर समेत अपने में लीन कर लिया।

करतारपुर

बाबा लक्ष्मीचन्द जी और श्रीचंदजी ने पुनः अपने पिता का डेरा बनवाया और नगर भी बसाया जो अब देहरा बाबा नानक के नाम से मशहूर है। गुरुद्वारे के लिये ३७५) सालाना जागीर और ७० बीघा जमीन लगी हुई है। यहां कई स्थान और वस्तुयें दर्शनीय हैं। यहा के शीशमहल मे जिसे कि पाचवे और छठे पातशाहों ने बनवाया था। गुरु अर्जुनदेवजी के भाई गुरुदास जी द्वारा लिखाये हुये ग्रन्थ साहब, गुरु हरिगोविंद जी का ६सेर पक्के तौल का खड्ग और गुरु हरिरायजी का खड्ग आदि वस्तुये रक्खी हुई हैं।

करतारपुर द्वितीय
जिला जालंधर

सरहिंद के मुसलमान शासकों ने आरम्भ से ही सिखों पर पाशविक अत्याचार किये थे। दशमेश जी के दो नन्हे साहबजादे श्री जोरावरसिंह और फतहसिंह जी को सरहिंद मे ही शहीद किया गया था। बहादुर बंदासिंह जी के नेतृत्व मे सरहिंद पर चढ़ाई करके यहाँ के हाकिम वजीरखाँ को मार डाला और सरहिंद को ध्वंश कर दिया। जहाँ साहबजादे शहीद हुये थे। वहाँ सिख लोगों ने एक विशाल गुरुद्वारा बनवा दिया जो फतहगढ़ कहलाता है।

फतहगढ़

इस स्थान से सिख-राज के समय की और पटियाला की दी हुई चार हजार रुपया सालाना की जागीर लगी हुई हैं। प्रति वर्ष पूष की १३ वीं को यहाँ मेला लगता है।

इसके अलावा यहाँ इतने गुरुद्वारे और हैं।

(१) शहीदगंज-युद्ध मे मारे गये ६ हजार शहीदों के संस्कार का स्थान।

(२) शहीदगज (द्वितीय) जहाँ जैनखां के साथ युद्ध करते हुये जत्थेदार सूबासिंह जी शहीद हुये।

(३) शहीदगंज (तृतीय) जहाँ इसी युद्ध मे मल्लसिंह जी शहीद हुये।

(४) ज्योतिस्वरूप जहाँ पर माता गूजरी जी और साहबजादों का संस्कार हुआ।

(५) थड़ा साहब—यहाँ पर गुरु हरिगोविंद जी साहब एक समय थोड़े काल तक विराजे थे।

(६) माता गूजरी जी का बुरज—जिसे कि ठंडा या खूनी बुर्ज भी कहते हैं और जहाँ पर कि माता जी और साहबजादे पकड़े जाने के बाद कैद मे रक्खे गये थे।

देहरा बाबा नानक जी
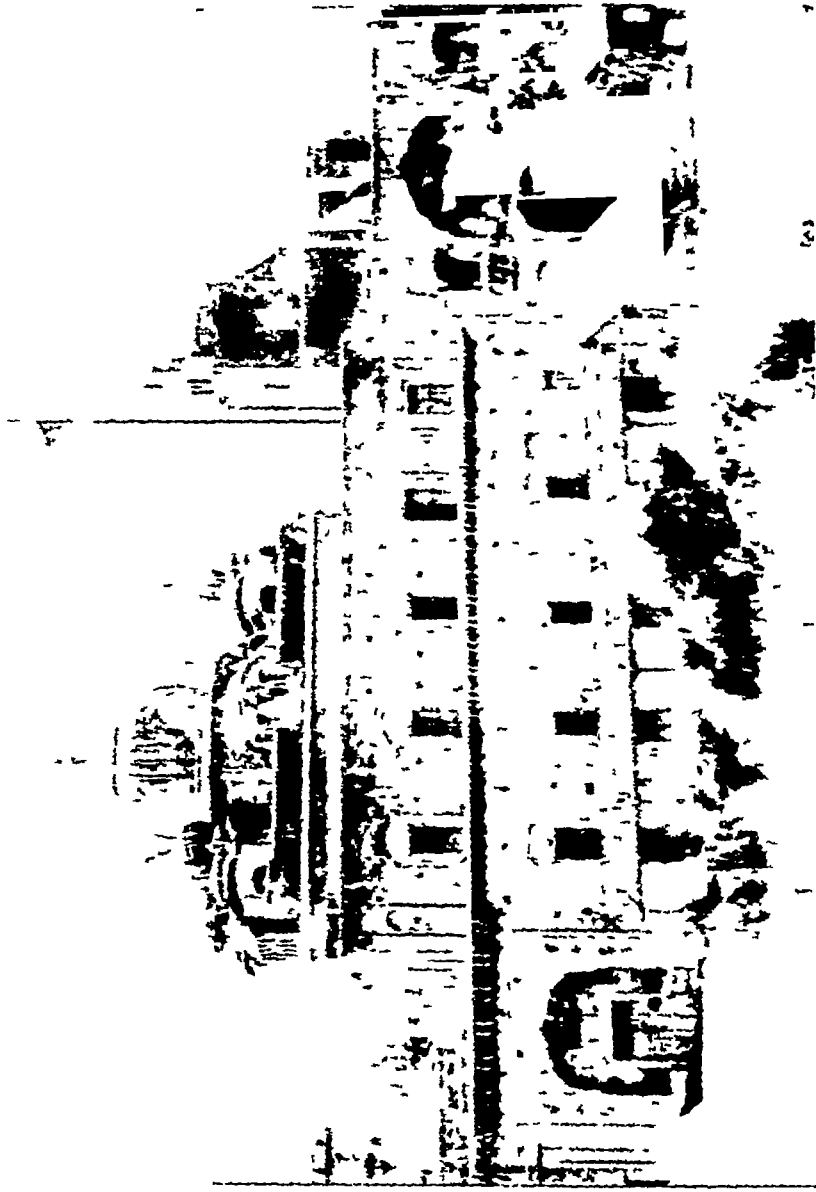
दरबार श्री मुक्तसर साहिब

दरबार मुक्तसर

सिखों का यह पवित्र तीर्थ जिला फीरोजपुर में है पहले यहां खिदराना नाम का एक तालाब था जिसमें चारों ओर से बरसात का पानी भर जाता था। १७६१ वि० के वैसाख में यहां पर गुरु गोविन्द-सिंह के वे योद्धा मुसलमान सेना से लड़कर शहीद हुये थे जो आनन्दपुर में उन्हें बेदावा लिखकर दे आये थे किंतु फिर उनकी आत्मा अपने लिये धिक्कारती रही और वे गुरु जी की तलाश में निकल पड़े। इस खिदराना नामक स्थान पर ही वे सब के सब अपने सेनापति महासिंह और माई भागो के साथ शहीद हो गये। गुरु जी ने उन्हें मुक्ते की पदवी दी और तभी से यह स्थान मुक्तसर के नाम से मशहूर हो गया। इस समय यह सरोवर बहुत सुन्दर और पक्का बना हुआ है।

यहाँ पर इतने स्थान हैं :—(१) शहीदगंज जहाँ पर कि इन शहीदों का संस्कार किया गया, (२) टिब्बी साहब जिस पर खड़े होकर गुरु जी युद्ध को देख रहे थे। तथा जहाँ से उन्होंने तुरक सेना पर बाण-वर्षा की थी, (३) तम्बू साहब जहाँ सिख वीरों ने पड़ाव डाला था, (४) बड़ा दरबार जहाँ दशमेश जी विराजे थे यह गुरु द्वारा सरोवर के किनारे पर ही बना हुआ है। ४३००) सालाना की जागीर सिख राज के समय से ही लगी हुई है।

यहा पर प्रति वर्ष माघी पर मेला लगता है।

दमदमा साहब व तलवण्डी

पटियाला राज की बरनाला निजामत में साबो की तलवंडी में यह पवित्र स्थान है। यहाँ दशमेश काफी समय तक रहे थे और यहीं उन्होंने ग्रंथ साहब की बीड तैयार कराई थी। यहाँ के प्रबन्धक दीपसिंह जी के वशज हैं। यहाँ पर जो सरोवर है वह बहुत ही सुन्दर है सिखों का यह स्थान गुरु काशी के नाम से मशहूर है। संत अतरसिंह जी ने यहाँ एक बड़ा विद्यालय स्थापित किया था। तब से यह कहा जाता है यह स्थान सिख लेखकों और ज्ञानियों के लिये टकसाल है। रियासत नाभा से १००) लगर के लिये मिलता है और भी काफी आमदनी हो जाती है।

चौधरी डल्ले की गुरु जी में बड़ी प्रीति थी यहा से विदा होते समय जो वस्तुएँ गुरुजी ने उसे दी थीं अब वह उनके वंशज सरदार शमशेरसिंहजी के पास हैं जो प्रत्येक शुक्ल दशमी पर दिखाई जाती हैं।

यहाँ पर जंडसर, लिखनसर, टिब्बी और मजी आदि और भी स्थान हैं।

तख्त हजूर साहब नंदेड

यह स्थान दक्षिण हैदराबाद के पास है श्री गुरु गोविन्दसिंह जी का स्वर्गारोहण यहीं पर कार्तिक सुदी ५ सम्वत् १७६५ वि० को हुआ था। हजूर साहब का दूसरा नाम अबिचलनगर भी है। यह खालसे का चौथा तख्त है।

यहां पर गुरु गोविंदसिंह जी के चक्र, चौड़ा तेगा, फौलादी की कमान, गुरज नाराच, कृपाण आदि शस्त्र और दूसरी वस्तुयें रक्खी हुई हैं।

अबिचलनगर के इस भव्य गुरुद्वारे के सिवा नांदेड में इतने धर्मस्थान और हैं :—

(१) शिकार घाट—गोदावरी के किनारे जहाँ दशमेश जी शिकार खेलकर आराम करते थे।

(२) संगत साहब—सगत साहब—जहाँ पर कि गुरु जी ने संगतों को उपदेश दिये।

(३) हीरा घाट—गोदावरी का वह घाट जहां गुरुजी ने बादशाह बहादुरशाह का भेंट में दिया हुआ हीरा नदी में फेंक दिया था।

(४) गोविन्द बाग—दरबार साहब के पास ही है।

(५) नगीनाघाट—जहां पर कि गुरु जी ने सिखों के भेट किये हुये नगीने नदी में फेंक दिये थे।

(६) बन्दा थान—जहां पर कि बहादुर बंदासिंह तप करते थे और गुरु जी ने उन्हें शिक्षा दी।

(७) माता साहबकौर जी का स्थान—यहाँ पर दशमेश जी की द्वितीय धर्मपत्नी कुछ दिनों रही थीं।

(८) माल टोकरी—यहाँ पर गुरु जी को गुप्त खजाना मिला था। जिससे उन्होंने पठान नौकरों को तनख्वाह बाटी थी।

ये दोनों गुरुद्वारे देहली में हैं और दोनों ही गुरु तेगबहादुर जी की स्मृति में बने हुये हैं। शीशगंज तो वह स्थान है, जहाँ अत्याचारी औरंगजेब की कठोर यातनायें सहने के बाद गुरु जी ने धर्महित अपना सिर दिया था और रकाबगंज वह स्थान है। जहाँ गुरु जी का धड़ लाकर उनके भक्तों ने संस्कार किया था। इनमें पहला चाँदनी चौक देहली में और दूसरा नई दिल्ली में सचिवालय के पास है।

शीशगंज, रकाबगंज

पंजाब में सिखों का एक और प्रसिद्ध धर्म-स्थान है। वह है पंजा साहब जिसका कि जिक्र हम गुरु नानकदेव जी के जीवन में कर चुके हैं।

भारत और भारत से बाहर लगभग ८०० स्थान ऐसे हैं। जिनसे गुरुओं का सम्बन्ध है अर्थात वे सब गुरुओं की यादगार में बने हुए हैं। जिनमें से कुछ में सिंह प्रबन्धक हैं कुछ में निर्मले और उदासीन महंत हैं। पंजाब के गुरुद्वारों के लिये सन् १९२५ ई० में गुरुद्वारा एक्ट बन गया है। जो सिखों के घनघोर आंदोलन का फल है।

गुरुद्वारों के सम्बन्ध में इतना वर्णन करने का हमारा मतलब गुरुद्वारों का इतिहास देना नहीं किन्तु इतना बताना मात्र है कि उनके यहाँ धार्मिक स्थानों की चिरकाल तक उन्हें संगठित बनाये रखने के लिये—कमी नहीं है। संगठन का यह मजबूत अंग बहुविस्तृत और पारमार्जित अवस्था में है तथा यह अंग उनकी श्रद्धा का एक केन्द्र बना हुआ है। गुरु-ग्रन्थ के बाद उनके यहाँ गुरुद्वारों का बहुत ऊंचा स्थान और मान है। यही कारण है कि ये गुरुद्वारे एक प्रकार के छोटे-मोटे गढ़ और महल जैसे बने हुये हैं और लाखों ही रुपये साल इन पर चढ़ावा चढ़ता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी सिख समाज ने बड़े जोरों से उन्नति की है। महाराजा रणजीतसिंह जी के समय तक तो शिक्षा में यह समाज काफी पीछे था, किन्तु आज पंजाब में उनका स्थान किसी से पीछे नहीं। प्रारम्भिक और धार्मिक शिक्षा के लिये तो गुरुद्वारे ही काफी मदद देते हैं। ऊंचे दर्जे की शिक्षा के प्रबंध करने वाली एक संस्था सिख-शिक्षा कान्फ्रेंस बनाई गई थी। जिसे स्थापित हुए ४०-४२ वर्ष हो गये। यह प्रत्येक अधिवेशन पर एक हाईस्कूल खोल देती थी।[1] ३२ वे अधिवेशन में जोकि लाहौर में रायबहादुर सरदार विसाखासिंह जी देहली के सभापतित्व में हुआ था। खालसा-कालेज अमृतसर या यूनीवर्सिटी बना देना निश्चय किया गया था और उसमें उसी समय ढाई लाख रुपया इकट्ठा भी हो गया था।

शिक्षा

अमृतसर में सिखों का एक बड़ा खालसा-कालेज है। इसकी नींव ५ मार्च सन् १८९२ ई० में

१ अधिवेशन प्रत्येक वर्ष भिन्न-भिन्न शहरों में होते हैं।

पंजाब के तत्कालीन लाट साहब सर जेम्स लायल के हाथों रक्खी गई और १७ अप्रैल सन् १६०४ में नाभा नरेश महाराजा हीरासिंह जी की अध्यक्षता में एक भारी जलसा हुआ था जिसमें समस्त रियासतों के प्रतिनिधि और उस समय के पंजाब के गवर्नर सर चार्लस रिवाज भी मौजूद थे इस जलसे में बहुत धन इकट्ठा हुआ था इस कालेज का रकबा कई मीलो में होकर है और सभी सिख राज्यों से यहाँ हुई आमदनी होती रही है। पंजाब सरकार से भी सहायता मिलती रही है। इसके अलावा सिखों के और भी कालेज हैं। जिनमें लाहौर और लायलपुर के पाकिस्तान में रह गये।

पंजाब के बाहर जहाँ भी सिखों की आबादी है वहाँ-वहाँ सब जगह छोटे-बड़े स्कूल हैं। दिल्ली में दरियागंज में एक दस्तकारी का स्कूल है। इसके अलावा कुछ दस्तकारी के और भी स्कूल हैं।

लडकों की शिक्षा की तरह सिखो ने लडकियों की शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया है। इतना तो नहीं किन्तु कुछ असंतोषजनक भी नहीं है। सन् १८८७ तक तो २२७ स्त्रियों पीछे एक लडकी सिखों की पढ़ी लिखी थी। उस समय सरकार की ओर से जो कन्या-पाठशालायें खुली थीं। उन्हीं में खास २ घरों की लड़कियाँ जाती थीं। अमृतसर मे खेमसिंह जी बेदी ने एक कन्याशाला खोली थी जिसमें वे अपने ढंग से केवल धार्मिक शिक्षा ही देते थे।

सन् १८६० ई० के आस-पास प्रोफेसर गुरमुखसिंह, भाई हितसिंह ज्ञानी, नौरंगसिंह और डाक्टर चरनसिंह जैसे कुछ पुरुषों ने स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन उठाया। इन्होने एक सिंह सभा बनाई। उसी के द्वारा कुरीतियों के निवारण और धर्म-प्रचार का काम भी होता था। प्रोफेसर गुरमुखसिंह जी के साथी में एक भाई तख्तसिंह जी थे। कहा जाता है कि सिख जाति में स्त्री जाति के वे परम उद्धारक और हिमायती थे। उन्होंने फिरोजपुर में एक कन्या विद्यालय स्थापित किया। जो आगे चलकर पंजाब में स्त्री-शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया।

सन् १६११,१२ ई०की सरकारी रिपोर्ट मे भाई तख्तसिंहके जोकि जाट जमींदार के घर पैदा हुए थे। कन्या विद्यालय के लिये इस प्रकार लिखा गया था—"यह स्कूल भाई तख्तसिंह और उनकी सुपत्नी का खाला हुआ है। इन दोनों ने इस स्कूल को चलाने के लिये धन सग्रहार्थ हिंदुस्तान, जापान और अमरीका देश का भ्रमण किया है। (रिपोर्ट मे अमरीका जाना भूल से छपा है। वे मलाया गये थे।) इन दोनों स्त्री पुरुषों ने स्कूल के लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया है।

सन् १६३८ ई० में भाई तख्तसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। जन्म सन् १८६० ई० मे हुआ था। असली निवासी भरोवाल जिला लुधियाना के थे। इनके पिता सरदार देवासिंह फीरोजपुर में मुलाजमत पर आये थे। यहीं भाई जी का जन्म हुआ।

वास्तव मे भाई तख्तसिंह सर्वप्रिय थे। हिंदू-मुसलमान सभी उनकी प्रशंसा करते हैं। अब यह स्कूल सिख कन्या महाविद्यालय के नाम से मशहूर है बहुत दिनो तक भाई जी की सुपुत्री बीबी गुरबख्शकौर जी इसकी सचालक तथा आचार्य्या रही थीं।

भाई धर्मसिंह जी ठेकेदार दिल्ली ने चार लाख रु० कन्या-शिक्षा के लिये दिये और प्रचार करने के लिये एक ट्रस्ट बना दिया था। इस धनराशि मे लडकियो को वजीफा दिया जाता रहा है। लगभग १०० पाठशाओं के चलाने में भी इस धन से सहायता दी जाती रही है। और प्रत्येक क्षेत्र में सिख लड़कियां से ऊँचे ओहदों पर पहुँच रही हैं। उनमे ज्ञानी, विशारद, डाक्टर लेखक, कवि आदि भी अनेकों हैं।

इस प्रकार लड़के और लड़कियों दोनों ही की शिक्षा मे सिख संतोषजनक रीति से आगे बढ़ रहे

हैं। एक खास बात यह है कि प्राइवेट संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है और सिख प्रायः इन्हीं संस्थाओं में पढ़ते हैं जो उनकी हैं। इन्हें सरकार ग्रांट देती है। इनकी डिग्रियाँ सरकार से स्वीकृत हैं।

सिखों का अधिकांश साहित्य पंजाबी जबान और गुरुमुखी लिपि में है। साहित्य में सिखों ने आशातीत उन्नति की है। वैसे इस समय सिखों की लिखी हुई बहुत सारी किताबें हैं। किंतु दूसरी भाषाओं के मुकाबिले में कम ही हैं। जितनी भी हैं, उनमें धार्मिक अधिक हैं। वैसे जीवन के

सिख साहित्य

हर पहलू पर थोड़ा बहुत साहित्य सिखों ने तैयार किया है। गुरुमुखी भाषा में सबसे पहले जो ग्रंथ लिखा गया था। वह थी भाई बाले जी की साखी। जिसे द्वितीय गुरु अंगददेव जी ने लिखाया था। इसमें गुरुवाणियों के सिवा गुरु नानकदेव जी का जीवन वृत्तांत भी था। कुछ समय तक तो इसने धार्मिक ग्रंथ का भी काम दिया था। पाँचवें पातशाह गुरु अर्जुनदेव जी के समय में आदि ग्रंथ साहब की रचना हुई। जो जन-भाषा में भारत में अनूठा धार्मिक ग्रन्थ है। भाई बाला जी की साखी का आदर उत्तरोत्तर गिरता गया। क्योंकि उसमें बराबर असैद्धान्तिक बातों की वृद्धि दूसरे लोग करते रहे। पंजाब के साहित्यकारों में भाई गुरुदास जी का दर्जा बहुत ऊँचा है और कहा जाता है कि जिस समय भाई गुरुदास जी की रचनाओं को गुरु अर्जुनदेव जी ने देखा तो उन्होंने इन्हें गुरुग्रन्थ साहब की कुंजी कहा। भाई गुरुदास जी की पंजाबी वारों के साथ ही उनके हिन्दी भाषा में लिखे हुए कवित्त स्वयं एक बड़े गौरव की चीज है।

भाई संतोषसिंह जी का महान ग्रन्थ सूरजप्रकाश एक बड़ी अद्भुत रचना है। जिसमें सिख गुरुओं के जीवन दिये हुए हैं।

गुरु ग्रन्थ साहब के पश्चात् सिखों में जिस ग्रन्थ का अधिकतम आदर है। वह है श्री गोविंदसिंह जी दशम पातशाह की रचना। उस एक ही महान ग्रन्थ में जोकि दशम ग्रन्थ के ही नाम से प्रसिद्ध है। अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का समावेश है।

इतिहासों ग्रन्थों में सिख लोग मैकालिफ साहब के लिखे इतिहास को ज्यादा महत्त्व देते हैं। यह इतिहास भाई काहनसिंह जी, ज्ञानी दित्तसिंह, शार्दूलसिंह आदि की मदद से लिखा गया था। आधुनिक सिख लेखकों में भाई काहनसिंह जी बहुत ऊँचे लेखक थे। उनका लिखा गुरु रत्नाकर शब्दकोष शायद सब लेखकों के ग्रन्थों से बड़ा है सिखों के वृद्ध लेखकों में भाई वीरसिंह जी ने काफी लिखा है।

भाई वीरसिंहजी को यदि आधुनिक पंजाबी साहित्य का पिता कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उनकी रचनाओं में से कोई छः सौ के करीब खालसा ट्रैक्ट सोसायटी के लिये लिखे हुए ट्रैक्ट हैं। गुरु नानक चमत्कार, कलगीधर चमत्कार जैसे ग्रन्थ लिखकर उन्होंने पंजाबी गद्य में एक नई रूह फूंक दी थी। गुरुग्रन्थ कोष भी प्रायः उनका ही लिखा हुआ है और भाई संतोषसिंह रचित सूरजप्रकाश जैसे महान ग्रन्थ का १४ जिल्दों में संपादित करना उनके महान कार्यों में से है। इनके अलावा उन्होंने 'सुन्दरी' और 'विजयसिंह' जैसे अनेकों ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर सिखों में जागृति पैदा करने में बड़ा भाग लिया है। काव्य में आप एक संत कवि हैं।

हिन्दी में गुरुमत साहित्य का प्रचार भाई मोहनसिंह जी वैद्य ने अच्छा किया। कुछ थोड़ा सा साहित्य हिन्दी में प्रोफेसर (अब डाक्टर) गंडासिंह जी ने भी लिखा है। संत गोविंदसिंह ने हिन्दी में इतिहास गुरु खालसा अच्छी पुस्तक लिखी है। विज्ञान, दर्शन, काव्य, शिल्प, कला और राजनीति की ओर सिख लेखकों की रुचि बराबर बढ़ी है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

सिख धर्म के अन्तर्गत सम्प्रदायों की विवेचना

संसार मे जितने भी धर्म हैं। उनमे शायद एक भी ऐसा नहीं होगा जिसके अंदर फिरके न हों। इस्लाम के अंदर ७२ फिरके बताये जाते हैं। 'ईसाइयों' मे भी कई फिरके हैं। वैष्णव, शैव और शाक्त भी फिरकेबन्दी से खाली नहीं। यह फिरके अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। अच्छे तो उस हालत मे होते हैं जब वे प्रगतिशील हों किंतु बुरे तो वे हर हालत मे ही हैं। सिर्फ उन दिशाओं को छोड़कर जब किसी विशेष अवसर पर मतभेद को भूलकर एक लाइन मे खड़े हो जांय। सिख धर्म के अंदर भी ऐसे सम्प्रदाय हैं। उन्हीं मे से कुछ प्रमुख संप्रदायों का संक्षेप सा परिचय यहा देना चाहते हैं।

यह सम्प्रदाय सारे भारत में फैला हुआ है। यह सिखो का अंग है भी और नहीं भी। है तो यों कि गुरु ग्रंथसाहब को यह अपना धार्मिक ग्रथ मानते हैं इनके डेरो में ग्रथ साहब का पाठ होता है और गुरु नानकदेव जी से लेकर इस बीसवीं सदी के आरम्भ तक उन्होंने इस पवित्र ग्रन्थ के उपदेशों का प्रचार किया है। दूसरे वे गुरु नानकदेव जी के पुत्र बाबा श्रीचन्द जी को अपने सम्प्रदाय का एक उद्धारक (प्रवर्तक भी) मानते हैं। गुरु नानकदेव जी और बाबा श्रीचन्द जी के उद्देश्यो मे कोई मौलिक भेद भी न था। बाबा श्रीचन्दजी का तप इतना बढा हुआ था कि सिख गुरु उनकी कदर करते थे और भेट भी देते थे। बाबा श्रीचन्दजी ने अपने पिता की वाणियो और उपदेशों का कोई खंडन भी नहीं किया है। लगभग साढ़े तीन शताब्दी तक सिख और उदासीन दूध और पानी की तरह हिल-मिल कर रहे हैं। गुरु मंतव्यों का प्रचार और गुरुद्वारों की पूजा प्राय उदासीनो के ही हाथ रही है। अब गुरुद्वारों के प्रबंध के ऊपर झगड़ा होने पर इस ३०-३५ वर्ष के अंदर दोनों ओर से मतभेद हो गया है।

उदासीन

जिस प्रकार पंजाब मे गुरुद्वारों का घनत्व है उसी प्रकार पंजाब मे उदासियों के डेरो का भी महत्व है यही नहीं किंतु भारत से बाहर यूरोप मे भी उदासियो के प्रबन्ध मे सिख गुरुद्वारों के होने का पता चलता है। चुनांचे एक ऐसा गुरुद्वारा सेंटपीटर्सबर्ग मे सन् १७८२-८३ में था जिसका कि जिक्र जार्ज फौस्टर ने अपने सफरनामे में किया है। बाद मे भी एक ऐसे ही गुरुद्वारा के होने का पता मिलता है। उदासियों के डेरे तो पंजाब के अलावा, सिन्ध, बिहार और यू०पी० मे भी काफी है और उनमें प्राय सभी स्थानों मे गुरु

नानकदेव, गुरु तेगबहादुर और गोविन्दसिंह जी आदि का इतिहास जुड़ा हुआ है। सिन्ध में साधु-वेला उदासियों का एक बहुत बड़ा धर्म स्थान है।

उदासीन मत को शिखरत्व देने में बाबा श्रीचन्द जी का बड़ा प्रभाव था। इसमें कोई संशय नहीं। बाबा श्रीचन्दजी संवत् १५५१ में सुल्तानपुर में पैदा हुए थे उनके दूसरे छोटे भाई बाबा लक्ष्मीचन्दजी थे जिन्होंने करतारपुर मे अपना उपनिवेश रक्खा। बाबा श्रीचन्दजी भी जन्म से सांसारिक मामलों में दिलचस्पी नहीं लेते थे। अत. उन्होंने अपना विवाह भी नहीं किया था। संस्कृत के वे अद्भुत विद्वान् थे। शास्त्रार्थ से उन्होंने कई बार अच्छे २ पंडितों को हराया था। उनके तप के स्थानों के नाम टालीसाहब और बारठगॉव पड़ गये हैं। यह स्थान गुरदासपुर जिले में है। बारठ गॉव मे ही गुरु अर्जुनदेव जी उनसे मिले थे। यहीं पर गुरु हरगोविन्दजी से उन्होंने गुरदिता जी को अपनी सेवा के लिये लिया था। बाबा श्रीचंदजी के भी कई स्मारक स्थान हैं। नगरठडा दौलतपुर, चम्बा शहर मे भी उनके स्थान हैं। वे एक सौ उन्नीस वर्ष तक जिंदा रहे। उनके भक्तों का ख्याल है कि सच्चे मन से पाठ करने वालों को अब भी दर्शन देते हैं।

बाबा श्रीचंदजी की करामातों का भी एक इतिहास है। बादशाह जहॉगीर ने भी उनकी करामातें देखी थीं ऐसा उदासीन लेखकों का कहना है।

उदासीन सतों मे अनेक प्रसिद्ध संत हुए हैं। जिनकी पजाब मे कई स्थानों पर यादगारे बनी हुई हैं। संस्कृत के ऊँचे दर्जे के कई विद्वान अभी भी इस संप्रदाय मे हैं।

यह हम लिख चुके हैं कि बाबा श्रीचंदजी के पहले चेले गुरदित्ता जी हुए। आगे उनके चार सेवक हुये। (१) बालू हसना (२) अलमस्त (३) फूलसाह और (४) गोविन्दजी। यह चारों बड़े प्रसिद्ध सत हुये हैं।

अलमस्त वा अलमस्त मुनि[1] काश्मीर के रहने वाले प० हरदत्तजी के पुत्र थे। वह बाबा श्रीचद जी के संवत १६३१ ई० मे शिष्य हुए। बचपन से ही यह ईश्वर-भक्त थे। शिष्य होने के बाद इन्होंने बाबा श्रीचदजी की अपूर्व भक्ति के साथ सेवा की। सदैव उनके साथ रहने और कम्बल और गुदडी लादने के कारण यह कमलिया भी कहलाने लगे। आज्ञाकारी ऐसे थे कि बाबा जो भी कुछ कह देते थे उसका अक्षरश' पालन करते। अपने गुरु और ईश्वर की भक्ति मे हर समय प्रसन्न रहने के कारण यह अलमस्त भी कहलाते थे। बाबा श्रीचदजी ने इन्हे वरदान दिया था कि तेरे शिष्यों मे भी विद्वान और धर्मी लोग होंगे। तू खुद भी बड़ी ख्याति प्राप्त करेगा। वृद्धावस्था के दिनों मे तो बाबा को कमलिया जी कधे पर बिठाकर जहा वे चाहते ले जाते थे।

बालू हसना जी का सही नाम बालकृष्ण जी था। यह अलमस्त अथवा कमलियाजी के छोटे भाई थे। सस्कृत मे आपने भी भारी योग्यता प्राप्त की थी। शास्त्रों के और ईश्वर के मनन मे आप इतने दत्तचित्त होते थे कि अपने शरीर की भी सुध-बुध भूल जाते थे। एक समय इसी बेसुधी मे एक छत के गिर जाने के कारण आप मृत प्राय: हो गये। आपको शमशान ले जाने की तैयारी होने लगी किन्तु बाबा श्रीचन्द जी ने यह कहकर उन्हें जीवित कर दिया कि तुम कहते हो बालू जी मर गया देखो तो वह तो हॅस रहा है सबने देखा तो सचमुच वे हॅस रहे थे। तभी से वे बालू हसना नाम से मशहूर हुये।

१ उदासीन लोग इसी सम्मानप्रद उपाधि से उन्हें याद करते है।

हीरतपुर

तिलक स्थान

चमकौर साहिब

गोइन्द (गोंदा जी) और फूलसिंह जी के सही नाम गोविन्ददेव और पुष्पदेव जी थे। इनके पिता जयदेव और माँ सुभद्रा श्रीनगर के रहने वाले थे। एक समय यह दम्पति बाबाजी के पास गये और संतान होने का आशीर्वाद चाहा। बाबा जी ने तथास्तु कह दिया। और कहा तुम्हारे दो पुत्र होंगे। उन स्त्री-पुरुषों ने अपने-अपने मन में एक पुत्र बाबा जी को भेंट करने का निश्चय कर लिया। जब पुत्र पैदा हुये तो स्त्री ने कहा मैंने बड़ा पुत्र देने का सकल्प किया था पुरुष ने कहा मैंने छोटा देने का संकल्प किया था। अन्त में यही तय हुआ कि जब संकल्प दोनों का हो गया है तो दोनों ही भेंट कर दिये जाय। बड़े होने पर यह दोनों ही उदासीन मत के अच्छे प्रचारक साबित हुये।

इसी प्रकार इन महात्माओं के अन्य बहुत से प्रसिद्ध शिष्य हुये है। जिनमे अनेकों संस्कृत और शास्त्रों के धुरंधर विद्वान् हुये हैं। इनमे संस्कृत साहित्य का बहुत कुछ प्रचार हुआ था। इन्हीं संतों द्वारा जपु जी पर संस्कृत टीका भी हुई थी।

बाबा श्रीचंद जी ने भी अपने पिता की तरह बहुत यात्राये की थीं। काबुल, सिंध, काश्मीर, यू० पी० आदि प्रान्तों मे उन्होंने यात्रा करके सतधर्म का प्रचार किया। सिन्ध मे हिन्दुओं पर जो अत्याचार मुसलमान शासक करते थे आपने उधर भी यात्रा की। बाबाजी की जीवन यात्रा, उपदेशों शास्त्रार्थों पर उदासियों के यहाँ काफी साहित्य मिलता है।

अंत में इतना कहकर हम इस सम्प्रदाय के इतिवृत्त को समाप्त करते हैं कि हिन्दू और सिखों की शृखला को जोड़ रखने के लिए उदासीन सम्प्रदाय ने एक मजबूत कड़ी का काम किया है।

गुरु गोविंदसिंह जी महाराज ने भाई रामसिंह कर्मसिंह, गंडासिंह, वीरसिंह और शोभासिंह जी को काशी मे संस्कृत विद्या पढ़ने को भेजा था। यह निर्मला शब्द खालसा शब्द का संस्कृत रूपान्तर है आगे जो भी कोई इनके पास विद्या पढ़ता और फिर धर्म-प्रचार मे लग जाता वही निर्मल हुआ। इस प्रकार यह प्रचारकों का समूह निर्मला नाम से मशहूर हुआ। गुरु जी के बाद धर्म-प्रचार मे इनका बहुत हाथ रहा। इसलिये अकाली और दूसरे सभी प्रकार के सिखों में इनका आदर है।

निरमले

इनमें कई बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् और संत हुये हैं। उदासियों की तरह इन्होंने भी बहुत से डेरे स्थापित किये। बाबा श्रीचद जी जैसे महान् व्यक्तित्व का कोई पुरुष तो अवश्य ही इस सम्प्रदाय को नहीं मिला किन्तु सिख धर्म को बढ़ाने में और उसकी महत्ता प्रकट करने मे इस समुदाय ने काफी प्रयत्न किया है।

उदासीन सम्प्रदाय के महात्मा प्रीतमदास ने हैदराबाद के वजीर सानकचन्द से सात लाख रुपया लेकर प्रयाग मे अपने सम्प्रदाय के प्रमुखों को इसलिए सौंप दिया कि तीर्थों मे इस रुपये से स्थान बनायें जाय जिसमें देश-देशान्तर से आने वाले उदासीन सत ठहर सके। इस रुपये से प्रयाग, कनखल (हरिद्वार) और काशी आदि में अनेक अखाड़े बनाये गये। संत गगाराम, कूटस्थ ब्रह्म, और अटल आा इन अखाड़ों के ट्रस्टी बनाये गये।

संतोखदास, हरिनारायनदास आदि ने भी कुछ अखाडे उदासियों के बनाये। इनमें से एक कन-खल मे भी है। इससे निर्मले सत-सिख भी उत्साहित हुये। उन्होंने भी तीर्थों में अखाड़े बनाने का उद्योग किया। भाई तोतासिंह जी महताबसिंह जी और रामसिंह जी आदि संतों की प्रेरणा से संवत १९२८ में महाराज नरेन्द्रसिंह पटियाला, महाराजा भरपूरसिंह नाभा, महाराजा सरूपसिंह जींद ने क्रमश ८००००)

नकद ४०००) सालाना की जागीर १६०००) नकद ५७५) सालाना की जागीर और २००००) नकद और १३००) सालाना की जागीर देकर अखाड़ों का प्रबन्ध कर दिया और इस प्रबन्ध का नाम धर्म-पूजा रक्खा। इस धर्म-पूजा के पहले महंत भाई महतावसिंह जी नियत किये गये।

अखाड़ा निरमला के प्रबंध के लिये जो नियम बनाये गए है। वह दस्तूर-उल-अमल अखाड़ा कहलाते हैं। इनमें महत के चुनाव महत की योग्यता और प्रतिबंध लंगर के प्रबंध आदि नियमों का उल्लेख है। और इन नियमों की पूर्ति तीनों ही राज्यों की जानकारी और सूचना मे होनी चाहिए। यह भी इसमे साकेतिक उल्लेख है।

सिखों मे निहग एक ऐसा दल है जिसे शहीदी का उम्मीदवार दल कह सकते है। निहंग के अर्थ निशंक के हैं। जिसे मौत की चिंता न हो वह निहंग है। सिख साहित्य मे निहंग के अर्थ आत्मज्ञानी और निर्लेप भी हैं। निहंगों के संबंध मे अनेकों कहावते भी हैं यथा.—(१) विचरे निहग। जैसे पिलंग।[1] (२) निरभय होइये भया निहंगा। (३) निहंग कहावै सो पुरुष दुख सुख मन्ने न अङ्ग।

निहंग

निहंग लोग सिर पर फरहरे वाला ऊँचा (ब्रह्मियों जैसा) ढमाला वांधते हैं उसके ऊपर चक्र लगाते है, खड्ग, कृपान आदि शस्त्र रखते है, वस्त्र नीले पहनते हैं, मृत्यु क्या है इसकी उन्हे कोई चिंता नहीं, धर्म पर कुर्बान होने के लिये हर समय तैयार रहते हैं।

निहंग दल कब से बना। इसके संबंध मे सिख साहित्य मे कई उल्लेख हैं। (१) यह कि साहव-जादे फतहसिंह सिर से ढमाला लपेट कर विनोद करते हुए गुरुगोविंदसिंह जी के पास हाजिर हुए। गुरु ने उन्हे देखकर कहा कि इस वाणे का भी सिखों मे एक पंथ होवेगा। या इसे यो कह सकते हैं। "सिर बाधि कफनवा हो शहीदों की टोली निकली।" (२) खयाल यह है कि जब गुरुगोविंदसिंह ने नीले वस्त्र फाड़ फेके तब उनमे से एक चीर भाई मानसिंह ने बांध ली थी। उसी रूप को याद रखने के लिये यह नीला वस्त्र पहनते हैं।

बहादुर बाबा बन्दा जी का जीवन वृत्तान्त किसी पिछले अध्याय मे काफी लिखा जा चुका है। यहा तो केवल यह बताना है कि कुछ सिख उनके श्रद्धालु, और भक्त हैं जो वन्दई कहाते हैं।

चन्द्रभागा नदी के किनारे रियासी के परगना मे भम्मर नामी गॉव के पास डेरा वन्दा के नाम डेरा बाबा वन्दा है।

बन्दई सिख

बन्दई "गुरु ग्रन्थ साहब" को ही अपना धर्म ग्रंथ मानते है। दसों गुरुओं को ही अपना गुरु मानते हैं अरदासा की समाप्ति के बाद चार पांच आदमी गुरु गोविन्दसिंहजी की स्तुति करते हुये बन्दासिंह और उनके तीन उत्तराधिकारियों के नाम लेते हैं।

डेरे के पास बाबा बन्दा का दमदमा है उसमे एक पहर रात रहे नौबत बजती है और सुबह शाम को कीर्तन होता है। वन्दई लोग मृतक के फूलों को मेले के अवसर पर डेरे के पास चन्द्रभागा मे प्रवाहित करते हैं।

बाबा बन्दासिह जी की शहीदी के बाद उनके पुत्र रणजीतसिंह जी गद्दी पर वैठे। रणजीतसिंह के जोरावरसिंह हुये। जोरावरसिंह के बेटे अर्जुनसिंह हुये। अर्जुनसिंह जी के खड्गसिंह और खड्गसिंह के

१. पिलिग=पील=हाथी।

ननकाना साहिब
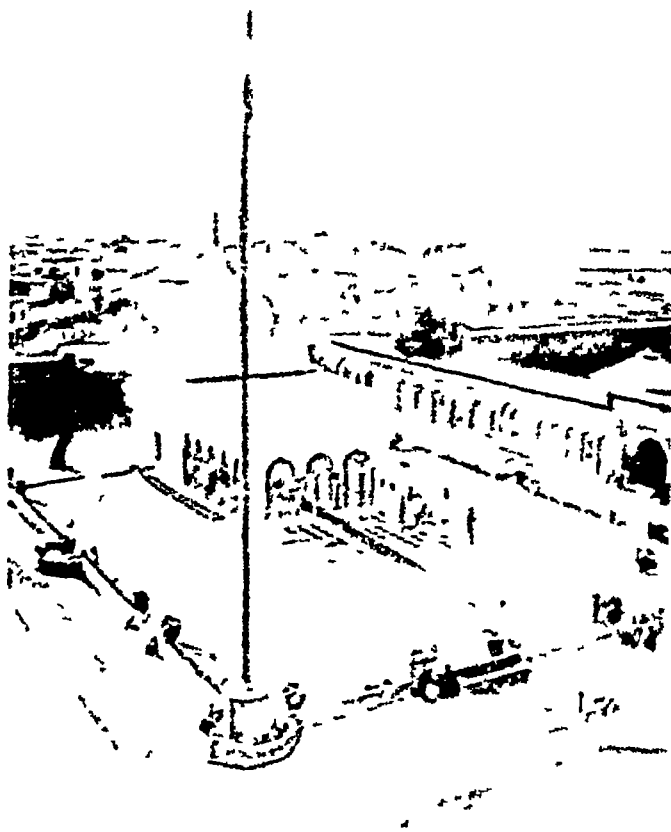
जन्म-स्थान श्री गुरु नानक देव जी

नामधारी सम्प्रदाय के संस्थापक

बाबा बालक सिंह

नामधारी सम्प्रदाय के संस्थापक

बाबा राम सिंह जी

दयासिंह जी हुए। दयासिंह जी के दो पुत्र अतरसिंह और सुजानसिंह जी हुए। इस समय गद्दी पर बाबा अतरसिंह जी ही हैं। इस गुरुद्वारे में बाबा चन्दासिंह के सम्बन्ध की कोई पुस्तक बताई है। इनके इस डेहरेमे महाराजा रणजीतसिंहजी और उनके दरबारी राजा गुलाबसिंह जी की लगाई हुई जागीर भी है।

महाराजा रणजीतसिंह जी के बाद गैर सिख लोगों ने किस प्रकार उनके साम्राज्य का ध्वंस किया यह बात विस्तार से हम पीछे लिख आये हैं। यह भी लिख चुके हैं कि लालसिंह और तेजसिंह नाम के दो सेनापतियों ने महारानी जिन्दा को भी बहका कर खालसा सेना को बुरी तरह नष्ट करा दिया था। हित और अनहित को पशु पक्षी भी जान लेते हैं। अपना विनाश होने पर सिखों के दिल में तेजसिंह और लालसिंह से घृणा पैदा होनी ही थी। किन्तु चूंकि थोड़े दिनों बाद उन्होंने भी अपने कर्मों का फल पा लिया। अत सिखों के दिल में अब ब्राह्मणों के लिये घृणा पैदा हुई कारण कि ये दोनों ही ब्राह्मण थे। इस घृणा का घनरूप हुआ बाबा बालकसिंह उन्होंने प्रण कर लिया कि सिखों में अब तक भी ब्राह्मण धर्म के लिये जो श्रद्धा है उसे उखाड़ कर फेंक दूंगा।

नामधारी या कूका

इन्हीं बाबा बालकसिंह के शिष्य हो गये बाबा रामसिंह। बाबा रामसिंह जी का जन्म लुधियाने जिले के राहियां की भैणी में जस्सासिंह जी के घर संवत् १८७७ की माघ सुदी पंचमी को हुआ था। छोटी उम्र में ही अपने धर्म के प्रति इनके खयाल बड़े पक्के थे। देश भक्ति से भी हृदय लबालब भरा था उन दिनों महाराजा रणजीतसिंह जी लाहौर के शासक थे। आप प्रारम्भ में उन्हीं की सेना में जाकर भर्ती हो गये। किन्तु महाराज की मृत्यु के बाद नौकरी को छोड़ आये। आपका मन देशभक्ति और ईश्वर-भक्ति में लगा हुआ था। लाहौर से आते ही बाबा बालकसिंह जी के पास आगये। जिनसे कि उनका पूर्व परिचय था। आपकी प्रतिभा, उपदेशों में अमृत वर्षा और सत्य धर्म की पराकाष्ठा को देखकर आपके समूह के लोग आपसे बहुत श्रद्धा रखते थे। श्रेणी साहब में आपका एक सर्वोत्तम स्थान था। यहीं प्रायः आप रहते थे। धीरे-धीरे सारे लुधियाना जिले में आपका प्रभाव फैल गया। हजारों ही आदमी आपके श्रद्धालु हो गये।

पंजाब को विजय करनेके बाद अंग्रेज सरकारने मुसलमानोंको स्वभावतः सिर पर चढ़ाया। क्योंकि उसकी नीति ही ऐसी थी। पंजाब में कहीं भी चाहे वह मुस्लिम राज्य ही क्यों न हो महाराजा रणजीत-सिंह जी के समय गौ-वध नहीं होता था। अब स्थान स्थान पर कमेले खुलने लगे। धार्मिक भावों से ओत-प्रोत होने के कारण आपके अनुयाइयों को यह बात सहनीय नहीं हुई। मालेरकोटला और मलौद से बूचड़ गायों को ले जाते हुए संवत् १९२९ वि० में रामसिंह जी के समूह के लोगों ने जो नामधारी और कूका के नाम से मशहूर हैं बुरी तरह से मार डाला। सरकार ने इसे खुली बगावत समझा। उसने ४० नामधारियों को तोपसे उड़ा दिया और तीस आदमियों को फांसी लगा दी। इस काम के लिए न कोई प्रमाणिक जांच की गई और न मुकदमा चला। इसके बाद नामधारियों का सरकार ने दृढ़ता के साथ दमन करना शुरू कर दिया। इस दमन में समस्त रियासतों ने भी साथ दिया। बाबा रामसिंह जी और उनके साथी सूबों को सरकार ने कैद करके रंगून भेज दिया। नामधारी सिखों ने उसी समय से अंग्रेज सरकार से असहयोग कर दिया था।

बाबा रामसिंह जी के बाद गद्दी पर उनके भाई बुधसिंह जी बैठे जो हरीसिंह नाम से मशहूर हुए। आजकल बाबा प्रतापसिंह जी उनके उत्तराधिकारी हैं।

नामधारी सिख नाम की उपासना पर विशेष जोर देने से, नामधारी कीर्तन में घोर कूक लगाने से

कूके कहे जाते हैं। सफेद वस्त्र और प्राय. स्वदेशी पहनते हैं। हरिकीर्तन के समय जोर-जोर मे गाते हैं। भक्ति में विभोर होकर नाच भी उठते हैं। वाहिगुरु के मत्र का उपदेश कान में कहा जाता है। हवन के बड़े प्रेमी है। भैणीसाहब को देखनेवालों का कहना है कि ईश्वर-भक्ति का यहां जो प्रवाह बहता है। वैसा थोड़े ही स्थानों पर होता होगा। रामसिंह जी व उनके उत्तराधिकारियों को उनके अनुयायी गुरु कहते है। और दूसरे सिख उन्हे बाबा कहते हैं।
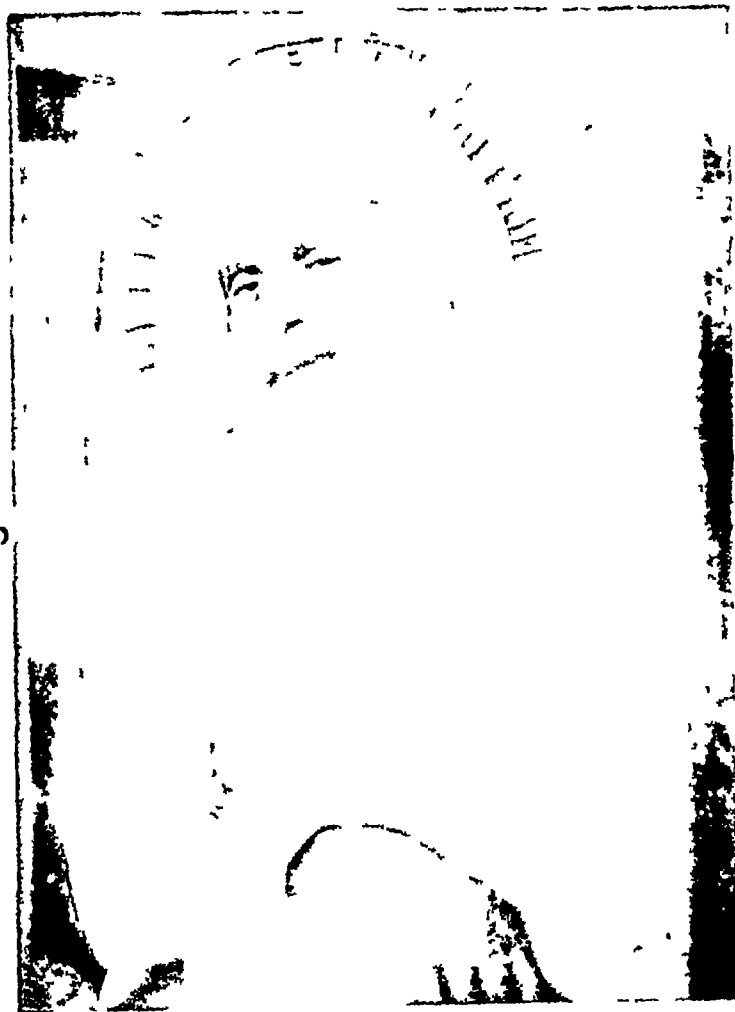
बाबा प्रतापसिंह जी
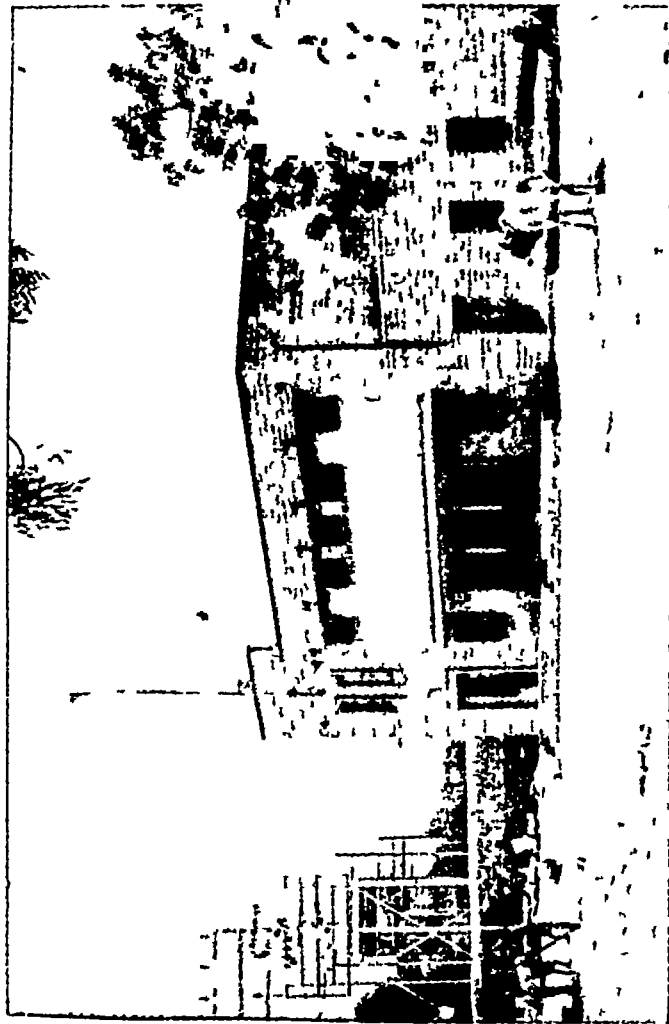
गुरुद्वारा जोधपुर

उन्तीसवाँ अध्याय

सिख-संस्थायें और उनका इतिहास

पिछले अध्याय में हमने सिख-समाज के अंतर्गत जिन सम्प्रदायों का वर्णन किया है। वे एक दिन संस्थाओं के ही रूप में थीं किंतु पुरातन जमाने में जो संस्था कायम होती थी वह आगे चलकर सम्प्रदाय का रूप धारण कर लेती थी इस प्रकार की साची इतिहास में काफी भरी पड़ी है। और कोई भी संस्था भविष्य में भी सम्प्रदाय का ही रूप धारण कर सकेगी यदि उसके संचालक या नेताओं का चुनाव उस संस्था के जन-साधारण के हाथ में न आ जायगा।

सिखों की जमात मौजूदा समय में प्रायः सम्पूर्णतः ऐसी संस्था गुरुद्वारा शिरोमणि प्रबन्धक कमेटी है जिसके संचालकों का चुनाव सिखों के सर्व-साधारण के हाथ है। यह संस्था सिखों की प्रजातन्त्री संस्था है इसके अलावा सिखों की कई संस्था हैं। जो भिन्न-भिन्न अवसरों पर तत्कालीन परिस्थितियों के कारण प्रकाश में आई हैं और उन्होंने कार्य भी सफलतापूर्वक किया है ऐसी ही कुछ संस्थाओं का वर्णन यहाँ हम करते हैं—

सब से पहले संवत् १९३० विक्रमी में अमृतसर में 'गुरसिंह सभा' नाम की एक संस्था सिखों ने स्थापित की। इसके प्रधान बाबा खेमसिंह जी बेदी बनाये गये थे। सरदार ठाकुरसिंह सिंधानवालिये सरदार मानसिंह जी और भाई तारासिंह जी आदि इसमें आरम्भ से सहयोगी रहे।

श्री गुरसिंह सभा

इस संस्था ने रस्म-रिवाज सम्बन्धी कुरितियों को दूर करने और सिख धर्म का प्रचार करने का काम किया।

इससे छः वर्ष बाद लाहौर में भी इसी नाम की सभा कायम हुई। इसकी स्थापना और संचालन में हरिमन्दिर तरनतारनजी के ग्रंथी भाई हरखासिंह, सरदार गुरमुखसिंह, सरदार जवाहरसिंह, भाई निहाल-सिंह, भाई बसन्तसिंह और सरदार करतारसिंह जी आदि ने आरम्भ में अच्छा काम किया। आरम्भ में प्रधान भाई बूटासिंहजी थे।

इस सभा की ओर से 'खालसा गजट' नाम का एक उर्दू अखबार भी निकाला गया। इसके संपादक सरदार मइयासिंह जी हुए थे। कुछ समय बाद इसी सभा ने "खालसा अखबार' भी जारी किया किया। जिसके भाई झंडासिंह जी और ज्ञानी दित्तसिंह जी संपादक रहे।

इसी लाहौर सिंह सभा ने सवत् १६४२ विक्रमी में एक प्रतिनिधि सभा खालसा दीवान के नाम से मुकर्रिर की। इसके प्रधान बाबा खेमसिंह वेदी ही बनाये गये और सरदार गुरुवख्शसिंह, गणेशासिंह भाई बूटासिंह, भाई जैमलसिंह आदि सभा के मन्त्री और खजांची आदि मुकर्रिर हुए। यह सभा शनैः-शनैः बढ़ रही थी। दो जलसे भी इसके हुए। किंतु कुछ ही वर्षो मे इसका काम ढीला सा पड गया।

खालसा दीवान और चीफ खालसा दीवान

खालसा दीवान का काम शिथिल-सा पड़ जाने के कारण संवत १६५८ विक्रमी के वैसाख में अमृतसर मे मेले मे आये हुये प्रमुख २ सिखों ने दीवान का काम सुचारु रूप से चलाने और फिर से मजबूत सगठन बनाने के लिए एक कमेटी मुकर्रिर की जिसके सयोजक सरदार गुरुबख्शसिंह जी बैरिस्टर बनाये गये। लगभग सात महीने बाद अमृतसर मे लगभग १२०० प्रमुख सिखों ने एकत्रित होकर लाहौर खालसा दीवान को एक चिट्ठी इस आशय की लिखी कि कोई सर्व-सम्मत संगठन किया जाय किंतु वहाँ से छः महीने तक भी कोई उत्तर न मिलने पर आखिरकार संवत १६५६ विक्रमी मे एक बड़ा अधिवेशन करके "चीफ खालसा दीवान" नाम की एक बडी संस्था खड़ी की गई। इसके प्रधान भाई अर्जुनसिंह जी बग्गारिया और मत्री सरदार सुन्दरसिंह जीम जीठिया उपमंत्री सोढी सुजान सिंह जी पटियाला नियुक्त हुये। २१ सज्जनों की वर्किङ्ग कमेटी वना दी गई। सवत १६६० वि० तदनुसार सन १६०३ ई० में यह संस्था रजिस्टर्ड हो गई।

इसने धार्मिक और विद्या-प्रचार मे काफी काम किया है। जितने स्कूल और कालेज हैं वे सभी इसी सस्था के प्रयत्नों का फल है।

खालसा कालेज कौंसिल

सन् १८६२ ई० मे सिख सरदारों ने एक भारी दीवान करके खालसा कौलेज कमेटी का निर्माण किया। इस कमेटी ने इसी वर्ष के दिसम्वर मे एक इजलास किया। इसके बाद सन् १८६३ के मई महीने में कालेज की स्थापना के संकल्प से स्कूल जारी कर दिया गया। कालेज की स्थापना के सकल्प से स्कूल जारी कर दिया गया। कालेज सम्बन्धी थोड़ा-सा परिचय अन्यत्र भी दिया जा चुका है। यहाँ इतना ही काफी होगा कि उत्तर भारत की तीन प्रसिद्ध शिक्षण-सस्थाओं—हिन्दू यूनीवर्सिटी बनारस और मुस्लिम यूनीवर्सिटी अलीगढ़—मे खालसा कालेज अमृतसर एक है। जिसे कि सिख यूनीवर्सिटी बनाने के यत्न किये जा रहे हैं।

शिक्षा परिषद्

कालेज को उन्नत किये जाने के लिये यह भी आवश्यक था सिख आबादियों के केन्द्रों मे हाईस्कूल भी हों और साथ ही जाति मे शिक्षा का भाव भी अधिक पैदा हो इसलिये अब से लगभग तीस साल पहले एक सिख एजूकेशन कान्फ्रेंस की भी आयोजना की गई। जिसने प्रति वर्ष नये स्थान मे अपना इजलास करके एक हाईस्कूल स्थापित करने की स्कीम बनाई। उसी के अनुसार यह कान्फ्रेंस प्रति वर्ष भिन्न शहरो मे होती है। इजलास मे जो अपील की जाती है उसमे पचासों हजार रुपया इकट्ठा हो जाता है। और फिर लोकल कमेटी बनाकर हाईस्कूल खोल दिया जाता है। और खुले हुये स्कूल को सहायता दी जाती है।

खालसा बिरादरी सभा

यह हमने कई जगह जिक्र कर दिया है कि सिखों मे अनेको विरादरियों के लोग है। क्योंकि गुरुमत का द्वार सभी धर्मों और सभी जातियों के लोगों के लिये खुला हुआ है। समय की लहर ने समझदार सिखों मे इस बात के भाव पैदा किये कि समस्त सिख एक हैं। उनके अन्दर खत्री अरोड़े और तिरखान आदि के भेद न होने चाहिये। इसी उद्देश्य को लेकर सन्

प्रेस और प्लेटफार्म की वजह से जागृति बराबर होती है। ख्यालातों में भी सुधार होता है। परदेश आने जाने से भी अपनी हालत सुधारने के खयाल पैदा होते हैं। सिख भी भला क्यों न जागते। जिन्होंने जागृति के लिये पिछली शताब्दी मे काफी कुरबानी की थी। गुरुद्वारों का उस समय प्रबन्ध उदासी और निर्मले सतों के हाथ में था और गुरुद्वारों में अतुल सपत्ति थी और प्रति वर्ष आती भी थी। किन्तु उससे सिख समाज का भला कुछ भी नहीं होता था। यह बात समझदार सिखों को खटकती थी। इससे भी आगे सन् १९२० ई० की १२वीं अक्टूबर को एक और घटना होगई। उस समय 'खालसा बिरादरी सभा' का दीवान हो रहा था। कुछ कथित अछूतों ने उसी समय सिख धर्म की दीक्षा ले ली और हरिमदिर जी मे भेंट लेकर दर्शन के लिये गये। पुजारी उन्हे भीतर आता देखकर मन्दिर से बाहर भाग गये। चूंकि सिखों की प्रणाली के अनुसार तख्त साहब सूने नहीं रहते हैं अत उसी समय वहाँ पर २५ सिख मुकर्रिर कर दिये गये। पुजारी डि० कमिश्नर के समझाने से भी जब मदिर मे नहीं लौटा तो डि० कमिश्नर ने श्री दरबार साहब और अकाल तख्त के प्रबन्ध के लिये नौ आदमियों की एक कमेटी मुकर्रिर कर दी।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी

इसी कमेटी ने १५ नवम्बर सन् १९२० को सिखों का एक दीवान किया। इजलास ने १७५ आदमियों की गुरुद्वारा प्रबध के लिये एक प्रतिनिधि कमेटी बनाई। जिसका 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' नाम रक्खा गया। इस कमेटी की पहली बैठक अगले महीने दिसम्बर मे १२वीं तारीख को श्री अकालतख्त साहब मे हुई। जिसमे पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ। ३० अप्रैल १९२१ ई० को इसकी रजिस्ट्री हो गई।

कमेटी ने सगठित होते ही गुरुद्वारों के सुधार अर्थात् अपने प्रबन्धमे लेने का काम आरम्भ किया। श्री तरनतारन में प्रबध सरकार की ओर से था। कमेटी ने एक जत्था तरनतारन पर कब्जा करने के लिये भेजा। किन्तु पुजारी ने इस घमण्ड में कि यहाँ पर तो सरकार का प्रबन्ध है। जत्थे के साथ मार पीट करादी। इस मारपीट मे १३ अकाली और ११ पुजारी दल के आदमी जख्मी हुये।

इसके बाद ही ननकाना साहब पर कब्जा करने के लिये कमेटी ने ऐलान निकाला। महन्त नारायण दास जी को बड़ी चिन्ता हुई। वे ननकाना साहब को सिखों का मानते भी न थे। उसे स्वतत्र रूप से उदासियो का मानते थे। सरकारी लोगो ने भी उन्हे इसी रास्ते पर डाला और जल्दी मे ऐसा काम हुआ जो सिख और उदासियों के लिये किसी भी हालतमे लाभदायक नहीं था। २० फर्वरीको १६आदमियों का जत्था लेकर सरदार लक्ष्मणसिंह ननकाना पहुँचे। जब यह जत्था भीतर पहुँचा। तो मारपीट आरम्भ होगई, छुरी और पिस्तौलों का भी प्रयोग हुआ। अनेको आदमी मारे गये। उसके बाद सिख भडक गये और भारी सघर्ष करने के बाद उन्होंने ननकाना साहब पर कब्जा कर लिया। सरकार ने महन्त और सिख दोनो ही को दड देने की नीति का अवलम्बन किया।

इससे अधिक रोमाचकारी काड है 'गुरु के बाग का' इस पर कब्जा करने के लिये जो कुर्बानियां सिखो ने कीं। वह भारत के इतिहास मे अद्वितीय हैं।

इस प्रकार शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्ध कमेटी के द्वारा आदोलनों का फल यह हुआ कि सरकार ने सन् १९२५ ई० मे गुरुद्वारा एक्ट नाम का कानून बना दिया। इस कमेटी के एक समय मास्टर तारा सिंह जी प्रधान और मत्री ज्ञानी करतारसिंह जी रहे हैं।

उपरोक्त एक्ट के अनुसार इस काम के लिए एक विशेष ट्रिब्यूनल है। जिससे इसी प्रकार के

गुरुद्वारों सम्बन्धी मुकद्दमे फैसल होते हैं।

शिरोमणि कमेटी मे चुने हुये मेम्वर होते हैं यह चुनाव उसी प्रकार होता है जिस प्रकार कि एम-म्बलियों के लिये होता है।

इन संस्थाओं के अलावा सिखों की अन्य भी कई संस्थाये है। उदाहरणार्थ "सर्वहिंदसिख मिशन" सिखों की वह सस्था है जो भारत के प्रत्येक कोने मे सिखों की सख्या वढ़ाने का प्रयत्न कर रही है यह हिंदी मे गुरुमत साहित्य का प्रकाशन भी कर रही है एक समय इसके प्रधान मास्टर तारासिंह प्रचार मत्री मा० सुजानसिंह और मत्री सरदार हरीसिंह थे। खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी नियमित रूप से सिख इतिहास के सबन्ध में जानकारी भरे ट्रैक्ट निकालती है।।

इन सगठनों के अदर रहकर अपने साम्राज्य के ध्वन्स होने के वाद भी सिखो ने अनेकों वार अपने वलवीर्य का पता दिया है। उन्हे धार्मिक और राजनैतिक दोनों ही प्रकार के अधिकारों के लिए सरकार और दूसरी शक्तियों से लड़ना पड़ा है। ननकाना साहव, गुरु के वाग के सिवा जैतों मे महाराज रिपुदमनसिंह जी के देश निकाले के वाद उन्होंने अखड पाठ किया। जिसमे वहुत से लोगों की गिरफ्तारी हुई और कष्ट उठाये, इनकी स्थिति का निरीक्षण करने के लिये जाने पर पंडित जवाहरलाल नेहरू को भी हवालात मे वद किया गया। सन् १६०७ ई० मे कानून कारतकारी मे कुछ परिवर्तन कर दिया गया और वारी दुआव मे मालियाना बढ़ा दिया गया। इन दोनों इलाकोंमे सिखो की आवादी अधिक थी। सरकार के इन इरादों के खिलाफ सिखों ने दुर्दमनीय आन्दोलन उठाकर अपने अधिकारों की रक्षा की। सरदार अजीतसिंह को इस आन्दोलन मे देश निकाला हुआ।

इसके वाद ही सिखों को कृपाण रखने के अधिकार पर भी लडना पड़ा क्योंकि शस्त्र कानून के अनुसार सरकार कृपाण वांधना जुर्म करार देना चाहती थी।

सन् १६१४ ई० मे कोमागाटामारू की दुर्घटना भी सिखो के ही साथ हुई थी। यहां से सैंकडों सिख वावा गुरदित्तसिंह के नेतृत्व मे कोमागाटामारू जहाज मे वैठ कर कनाडा गये थे किन्तु उन्हे कनाडा में नहीं घुसने दिया गया। विवश उन्हें लौटना पड़ा किंतु जव जहाज कलकत्ता आया तो यहॉ गोरे लोगो ने पुलिस की सहायता से उन्हे जहाज से उतरने से रोका। आखिर अग्रेजो की यह ज्यादती थी सिख भिड गये। इसके अपराध मे उन्हे कठिन से कठिन दण्ड काले पानी का दिया गया।

जव नई दिल्ली वसाई जाने लगी तो सरकार से यहां भी सिखों को भिड़ना पडा। कारण कि नई दिल्ली स्थिति रकावगज के गुरुद्वारे की इमारत को भी क्षति पहुँचाने की वात इंजीनियरों ने सोच ली। और एक दीवार का थोड़ा सा भाग क्षत-विक्षत भी कर दिया। इस समाचार से पजाव मे सनसनी फैल गई। सितम्वर सन् १६२० मे हजारों वहादुर सिखों ने प्रतिज्ञा की कि या तो हम अपने प्राण गॅवा देंगे या दीवार की मरम्मत करा देंगे। एक दल भी वनाया गया किन्तु वुजुर्ग लोगों की आज्ञानुसार उन्होंने फिर वैधानिक लडाई सरकार के प्रति स्वीकार करली।

एक राजनैतिक सस्था सिखों मे राष्ट्रवादी सिखों की भी है जो प्रत्येक मामले को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखती है। जो शिरोमणि खालसा दल कहलाती है इस समय अकाली दल और खालसा दल सिखों के दो प्रतिद्वन्दी राजनैतिक अखाड़े हैं।

अन्त में हम इन शब्दों के साथ इस अध्याय को समाप्त करते हैं कि सिख जहॉ वहादुर हैं वहा अनुशासनशील और नियंत्रण मे रहने वाले भी प्रथम कोटि के हैं।

तीसवां अध्याय

पंजाब-विभाजन

सिखो पर पिछले चार सौ वर्ष मे जितनी मुसीवते आईं और उनको जिस प्रकार उन्होंने पार किया उनका वर्णन इस ग्रन्थ के पिछले पृष्ठो मे हो चुका है किन्तु इस बीसवीं सदी के द्वितीय चरण के अन्तिम वर्षों (सन् १९४६-४७) मे जो मुसीवत आई वह कम भयानक नहीं। पिछली किसी मुसीवत ने उनको सामूहिक रूप से अपने देश से गॉव से और घर से विताडित नहीं किया था किन्तु इस मुसीवत ने जहा उन्हे अन्य हिन्दुओं के साथ उनकी आवास भूमियों से विताड़ित किया वहॉ उनके हाथ से सदा के लिये वह भूमियॉ चली गईं और पाकिस्तान के जन्म के साथ ही उनकी जननी जन्मभूमि पंजाब और सीमाप्रात के दो टुकड़े होगये। जिनमे पजा साहिव के जैसे तीर्थ स्थान और लाहौर के जैसे ऐतिहासिक नगर उनके हाथ से निकल गये। यद्यपि सयुक्त पजाव मे वे शेप हिन्दुओ समेत भी अल्पसख्यक थे किन्तु पजाव पुकारा और समझा सिखो का ही जाता था।

मुस्लिम लीग के प्रत्यक्ष-झगडे (डाइरेक्ट-एक्शन) से हिन्द सिखों की सीमान्त पजाव और वगाल में जो क्षति हुई वह अपरिमित है किन्तु सिखों की जो पंजाव मे हानि हुई वह इसलिये शोचनीय है कि सिख जैसी सामरिक कौम जिसने मुसलमानों की वादशाहत के दिनों मे भी मुस्लिम सेनाओं के दॉत खट्टे कर दिये थे। इस समय लीगी गुंडों से अपनी इतनी जन-धन की हानि कैसे करा वैठी ? इसके कुछ कारण हैं जिन पर सिख नेताओं का उन दिनों ध्यान नहीं गया।

(१) वह अपने को हिन्दुओं से अलग समझे हुए वैठे थे और पजाव के हिन्दू भी उनसे खिंचे हुए थे अत हिन्दू और सिख मुस्लिम लीग के वार-वार के ऐलानो के होते हुए भी कोई सयुक्त मोरचा व दल न वना सके जैसे कि मुस्लिम लीग ने उत्पातों के लिने मुस्लिम वालियन्टर कोर और मस्लिम गार्ड वनाये हुए थे।

(२) सिख सेनाओ का एक दल अंग्रेजों पर वडा विश्वास करता था। वह समझता था कि अंग्रेजों ने जव उनकी हिन्दुओं से अलग होने मे पीठ थप थपाई है तो वे उनका कोई नुकसान नहीं होने देंगे वल्कि जव वे हिन्दुस्तान छोडेगे तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के वीच वे एक तटस्थ राज्य सिखिस्तान की और स्थापना कर जायगे।

सिखों के इस जन धन की हानि की कथा वडी ही करुणाजनक और हृदय विदारक है। यहॉ

हम कुछ हवाले उस रिपोर्ट से उद्धृत करते हैं "शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी" की ओर से मुस्लिम लीगियों के अत्याचार नामक प्रकाशित हुई हैं।

उत्तर भारत मे मुस्लिम लीग ने झगड़ों की शुरूआत सरहदी सूबे के हजारा जिले से की, क्योंकि यहां मुस्लिम आवादी ६५ फीसदी थी। सन् १६४६ ई० को १२ दिसम्बर को बटल, सुमइलाही भुंग, गढ़ी जल्लो और उगी नाम के गाँवों पर पहला हमला हुआ। इस हमले मे बटल गाँव के ११ सिख-हिन्दू मारे गये और ११ ही घायल हुए। उगी के बाजार को लूट लिया और पाच हत्याये सिख-हिन्दुओं की हुई। इन दोनों गाँवों के सिख-हिन्दू भागकर सुमइलाही भुंग मे पहुंच गये थे। यहाँ भी हमला हुआ और १४ आदमियों को जान से मार दिया गया तथा २१ को जख्मी किया गया। गढ़ी जल्लो के गुरुद्वारे को ध्वस कर दिया गया।

१८-१२-४६ को मानसेरा तहसील के एक गाँव गढ़ी हवीबुल्ला पर हमला हुआ। यहाँ एक हिन्दू को पहले तो लूटा गया फिर उसे कत्ल कर दिया गया। हवेली गाँव पर कई हमले हुए जिससे तग आकर वहाँ के हिन्दू-सिख मिलिटरी की रक्षा मे पजाब की ओर चल पड़े। इससे एक सप्ताह पहले ता० ११-१२-१६४६ को दद्दड़ गाँव पर हमला हुआ जिसमे वहा पर आए हुए ४० शरणार्थी इस हमले के शिकार हुए। उनमे से १० कत्ल कर दिये गये। जख्मी सभी हुए। सब लूट लिये गये।

इन गाँवों के अलावा मोहरी, दिवल, अखरूटा, पिप्पल, जावा, गहुड़ा फुलगाड़ा, धणाख, मुहाडी, कडछां, मलाछ, दाखली, सैर, बफा, सिहालिआ, समधरा, जबोड़ी, संगकियारी, वालाकोट और भाटा। इन तथा अन्य सभी स्थानों पर लूट पीट और धार्मिक स्थानों के ध्वस के अलावा कत्ल हुए।

चूकि अब तक सरहद मे धाक्टर खान (कांग्रेस) की सरकार थी। इसलिये कांग्रेस ने केवल शरणार्थियों को सान्त्वना देने के सिवा इस अत्याचार के विरुद्ध कोई जोरदार कार्यवाही नहीं की। इन झगड़ों मे मुस्लिम अफसर दगाइयों के मददगार रहे। यही कारण था कि गुडे लोग पूरी तरह मनमानी करके ही किसी गाँव से बाहर होते थे। भाटा गाँव मे ११६ सिख जिंदे ही जला दिये गये। मलाछ में ११५ हिन्दू-सिख कत्ल किये गये।

पजाब मे उन दिनों सर खिजर हयात खा की सरकार थी जो नियस्ट पार्टी के नेता थे। इस सरकार को सिवा मुस्लिम लीगियों के सभी पार्टियों का सहयोग था और सर खिजर हृदय से भी दो-राष्ट्र सिद्धान्त के विरोधी थे। यह मुस्लिम लीग के प्रोग्राम को कतई पसन्द नहीं करते थे। इसलिये उन्होंने सरहद की आग को पजाब मे बढ़ने से भरसक रोका। सर खिजर की इस मुस्तैदी से मुस्लिम लीग बहुत चिढ़ गई और उसने पजाब मे खिजर विरोधी जुलूस निकालने तथा नारे लगाना आरम्भ कर दिया। इन गति विधियों से सिकन्दर हयात के साहबजादे शोकत हयात और बेगम शाह निवाज जैसे सर छोटूराम-कालीन यूनियस्ट भी शामिल होगये। साथ ही पंजाब के तत्कालीन गवर्नर ने भी मंत्रि-मडल को सहयोग देना छोड़ दिया। मुस्लिम लीग की ओर से जगह-जगह लूट पाट कत्ल और जोर जबर आरम्भ हो गया।

इस गुंडापन को सर खिजर कतई पसन्द नही करते थे पुलिस का उन्हे पूर्ण सहयोग मिल नहीं रहा था। आखिरकार उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। त्याग-पत्र देते समय उन्होंने बताया "मुस्लिम लीग को अन्य पार्टियों के साथ समझौता करने के लिये खुला मार्ग छोड़ने की भावना से मैं यह त्याग पत्र दे रहा हूँ।"

खिजर हयात के वजारत छोड़ने पर मुस्लिम लीग की अल्प-सख्या के कारण पजाब में वजारत नहीं बन सकी इसलिए इडिया एक्ट की धारा ६३ के अनुसार वहाँ गवर्नरी शासन हो गया।

मुस्लिम लीगको पजाब में अपनी वजारत न बनने से बड़ा धक्का लगा। ब्रिटिश सरकारके ऐलान अनुसार पजाब मुस्लिम लीग को तभी मिल सकता था जब कि वहा उसका मन्त्रिमण्डल होता। अत वह और भी तेजी से झगड़ों पर उतर आई। पजाब के ऊपरी जिलों मे मुस्लिम आबादी का अनुपात उस समय ६० से लेकर ६० प्रतिशत था।

सारे पश्चिमी पजाब मे ५ मार्च से मुस्लिमदलों के आक्रमण आरम्भ हुए थे कहीं इनका रूप छुट-पुट था कहीं मध्यम गति का और कहीं सामूहिक और तीव्रतर। रावलपिंडी डिवीजन मे जिसके कि प्रत्येक जिले मे मुस्लिम आबादी ८० फीसदी से ६० फीसदी तक थी यह हमले एक दम हुए।

रावलपिंडी डिवीजन इस डिवीजन मेशुरूमे शहरों के हिन्दू सिखोंने इन हमलों का बडी दिलेरी और हिम्मतसे मुकाबला किया। उन्होंने गलियों मे मोरचे लगाकर हमलों को बराबर विफल किया। रावलपिंडी खास मे हिन्दू-सिख विद्यार्थियों के जुलूस पर जब मुसलमानो ने हमला किया तो हिन्दू-मुस्लिम बडी बहादुरी से लड़े और हमलावरों के छक्के छुडा दिए उन्हें भागते ही बना। किन्तु देहातों मे जा हमले हुए उनमें हिन्दू-सिखों की जन-धन की भारी हानि हुई।

रावलपिंडी जिले के गावों मे तो एक प्रकार से कत्लआम ही शुरू कर दिया गया। रावलपिंडी के गावों पर ७ मार्च (१६४७) से हमले आरम्भ हुए और पूरे मार्च भर रहे। वहा जो तबाही हुई वह नोआखाली से कम नहीं थी। इस जिले में जो नृशसता हुई उसका अन्दाज इस बात से चलता है कि १२८ गॉवों में ७००० आदमी मारे गये और प्राय सभी को बे घरबार कर दिया वे जैसे तैसे उन शरणार्थी कैंपों मे पहुँच पाये जो पजाब से लेकर यू० पी० तक मे फैले हुए थे। एक हजार से ऊपर स्त्रियां उड़ाई तथा बेइज्जत की गईं। स्त्रियों को उनके भाई बेटों और पुरुषों के सामने भी बेइज्जत किया ये हमले ढोल बजाकर खुलेतौर पर होते थे। घरों मे आग लगा दी जाती थी। धार्मिक स्थान ध्वस किये जाते थे और धार्मिक ग्रथों को फाड़ फेंका जाता था। यह सब गवर्नरी शासन मे हो रहा था। जब गाव लुट-पुट जाते थे तब कहीं बड़ी मुश्किल से फौजी दस्ते भेजे जाते थे।

लूटपाट और मारकाट के अलावा जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन भी कराया जाता था किन्तु धर्म-परिवर्तन से अधिकाश हिन्दू-सिखों और उनकी बहादुर बहू बेटियों ने धर्म पर निछावर होना ही उचित समझा। इस डिवीजन के थोहा गाव की ६३ स्त्रियों के उच्च बलिदान की गाथा एक मिसाल है। यह घटना अधिक प्रसिद्ध है किन्तु इस प्रकार की और भी अनेकों घटनाये हैं।

अत्याचार इन्सानियत को पार कर गये थे। बच्चों को बर्छों की नोक पर टागना, स्त्रियो की छातिया काटना आदि साधारण बात हो रही थी। कई स्थानों पर गर्भवतियों के पेट फाड दिये गये। इसी जिले के दुनेरन गाव की आबादी में से एक भी सिखों जिन्दा नहीं छोडा गया। उनकी ६० स्त्रिया अपहरण की गईं। १०० जान से मार दिये गये। १५ बलात् मुसलमान बनाये गये। सारा माल लूट लिया गया। इसी भाति भागपुर की सारी सिख आबादी खत्म कर दी गई। बच्चे और स्त्रियों को नही छोडा गया। केवल गांव के ४०० हिन्दू-सिख स्त्री बच्चो ने गुरुद्वारे मे शरण ली, उस गुरुद्वारे मे आग लगा दी गई और किसी को भी जिन्दा नहीं छोडा गया। यही हाल थमाली गाव मे हुआ। वहा के गुरुद्वारे मे भी आग लगा दी वहा ४०० में मे २० आदमी बचे। नकाऊली गाव

मे २४ सिख मारे गये। स्त्रियो ने आत्मघात कर लिया। ५० सिखों को जर्बदस्ती वेधर्म किया गया। सैयद गाव मे ३० सिख मारे और कुछ जवरन मुस्लमान बनाये गये। ८ मार्च १६४७ को अदियाले गाव में १०० से ऊपर मारे गये। और ५० जवरन मुस्लमान बनाये गये। ६ मार्च १६४७ को मदरे गाव मे २०० सिख मारे गये। गुरुद्वारा और स्कूल नष्ट कर दिये गये। कटुहे गांव मे ६० सिख मारे गये और ५०० स्त्रियों का अपहरण किया गया। हरनाली में २४ सिख मारे गये। ३० स्त्रियां अपहरण की गईं। प्रसिद्ध सिख नेता मास्टर तारासिंह के गाव मे २० सिख मारे गये मास्टर तारा सिंह के घर को ध्वस कर दिया गया और उस पर हल चलाया गया। धांधली गांव मे ८० सिख मारे गये। यहा सिखों ने अपनी स्त्रियों को उनके कहने पर अपने हाथों कत्ल करके उनकी लाज वचाई।

मछीआ गाव के २०० सिखों मे से २०० ही मार दिये गये। इसी प्रकार सारे डिवीजन मे वहशीपन चला।

अमृतसर

अमृतसर मे लड़ाई ५ मार्च (१६४७) को आरम्भ हुई वहां मुस्लिम लीग ने पूरी तैयारी कराई थी। एक सिख सिपाही को पत्थरों से मार डाला। वैसे अमृतसर सिखो का कहा जाता है किन्तु यहां उनकी आबादी मुसलमानों से तिहाई थी, हा हिन्दुओं समेत डेढ़ हजार वे मुसलमानो से ज्यादा थे किन्तु, मुसलमानों के पास यहां ८००० ट्रेनिङ्ग प्राप्त गार्ड थे। और पुलिस उनकी पीठ पर थी।

गली, मुहल्ले, रेलवे स्टेशन, कालेज, स्कूल सभी जगह कत्ल आरम्भ हो गये। हिन्दू सिख दोनों ही बे खबर थे वे ५ मार्च की प्रात तक भी यही समझते रहे कि शायद यहां झगड़ा न होगा किन्तु उनकी आशाओं पर पानी फिर गया और अमृतसर की पवित्र भूमि लहू से लाल होने लगी। ता० ११-४-४७ से २२-५-४७ तक रिपोर्ट के जो आंकड़े इकट्ठे किये गये उसके अनुसार १६७ हिन्दू ५६४ सिख मारे गये किन्तु चू कि यहा हिन्दू सिखों ने लाचार होकर जवावी कार्यवाही आरम्भ कर दी थी। इसलिये उनके द्वारा भी ३१६ मुसलमान मारे गये। अमृतसर मे मारकाट का यह सिलसिला जून तक जारी रहा।

सेखूपूरा

रावलपिंडी, लाहौर, मुल्तान, और गुजरानवाला मे ये फिसाद मार्च से आरम्भ होकर अगस्त तक जारी रह। शेखू पुरा मे यह फसाद १७ अगस्त के बाद आरम्भ हुये जव कि यह जिला पाकिस्तान को मिलने का एलान हो गया। और एक हफ्ते मे इस जिले के गांव और शहर सिख हिन्दुओं से खाली कर लिए। ता० २५-२६ अगस्त को वहुत सिख हिन्दू यहां मारे गये। अकेले आत्माराम की फैक्टरी मे ३००० हिन्दू मारे गये। इस कत्ल आम मे कोई १५००० हिन्दू-सिख मारे गये। शेखू पुरे के इस नरमेध की जांच करने जव प० नेहरु और लियाकतअली गये थे तो शेखू पुरे जिले मे २२००० आदमियों के मारे जाने का अन्दाजा किया गया था।

लाहौर

लाहौर मे हमले ४ मार्च (१६४७) को ही आरम्भ हो गये थे। यहां मकानों पर पैट्रोल छिड़क कर आग लगा दी जाती थी। और जब बचाव के लिये हिन्दू सिख वाहर निकलते थे उन्हे वाहर खड़ी भीड कत्ल कर देती थी, सिख-हिन्दुओं को कत्ल करने के लिये लाहौर से बाहर के गुण्डे मुसलमान भी वुला लिये गये थे। भूले विछुड़े रास्तागीरों को छुरे-वाज कत्ल कर देते थे। ये हमले मई मे और भी बढ़ गये। १८ मई को दस हजार की मुसलिम भीड ने भजग पर हमला किया। मुस्लिम थानेदार ने उन्हे थाने के हथियार दे दिये जिन्हे कातिल अपना काम करने के बाद थाने मे लौटा गये। पहले तो आग लुक छिपकर लगाई जाती थी अव खुल्लम-खुल्ला

लगाई जाने लगी। और जब पाकिस्तान बनने का एलान हो गया तो हमले दस गुने बढ़ गये।

लाहौर में बैठा हुआ अंग्रेज गवर्नर रक्षा की कार्यवाही करता था किन्तु गुण्डापन को दबाने की नहीं। चार महीने की मार काट और लूटपाट ने हिन्दुओं को लाहौर से भागने पर मजबूर कर दिया। यही अंग्रेज गवर्नर और मुस्लिम लीग का मंशा था जो पूरा हुआ। हमारे कथन का सबसे बड़ा सबूत लाहौर किले के नीचे जहा फौज भी थी देहरा गुरु अर्जुनदेव के नष्ट हो जाने का है। मुसलिम गार्डों ने इस गुरुद्वारे को जला डाला। और गुरुद्वारा बावली साहब में तो बिलोच मुस्लिम सैनिकों ने खुद सिखों को सगीनों से छेद कर कत्ल किया। अंग्रेज गवर्नर चाहता तो लाहौर के सिख हिन्दुओं की रक्षा के लिये हिन्दू-सिख सिपाही भी बुलवा सकता था।

इन हत्याकांडों का विवरण थोड़ा नहीं है। इस पर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने "मुस्लिम लीगियां दे अत्याचार" नामक जो रिपोर्ट प्रकाशित की है। वह काफी प्रमाणित है। अधिक जानकारी के इच्छुक उसीसे उस समय की भयानक स्थितियों का एक सूक्ष्म दृश्य देख सकते हैं। उसी रिपोर्ट से हम अति सक्षेप मे एक तालिका कत्लों की यहां देते हैं—

हजारा जिले मे ३६ स्थानों पर मुस्लिम गुण्डों द्वारा मार काट, लूट पाट और अग्निकांड हुए। इस जिले के बाफा गाव मे एक सिख मारा गया और ७ स्त्रिया अपहरण की गई। सिंहालिया मे दो कत्ल किये गये। जाबोरी मे १६ हिन्दू मानसहरे से लौटते हुए मार्ग मे कत्ल कर दिये गये। बाला कोट में एक सिख को कत्ल कर दिया गया। भाटा मे ११६ सिख जीते जला दिये गये। इनमे से जो भागे उन्हे गोलियों से भून दिया गया। मलक्छ मे ११५ सिख-हिन्दू, 'झाड मे १५० सिख कत्ल कर दिये गये। स्त्रिया उडा ली गई। पुरनाला, फिवा, पचनद को तबाह कर दिया गया। बटस, उग्गी, सूस, दद्ड में ५५ सिख-हिन्दू मारे गये, ३० गाव तबाह कर दिये गये। इस जिले से सबको भगा दिया।

रावलपिंडी की गुज्जरखान तहसील मे नडाली गाव पर १५००० मुसलमानों ने हमला किया। गाव को लूट लिया गया और अनेकों सिख-हिन्दुओं को कत्ल किया। यही दशा इस तहसील के गोरसीआं गांव मे हुई। ढुंढियाल और अडियाला मे स्कूल मन्दिर गुरुद्वारे सब नष्ट कर दिये गये खोज खोज कर सिख हिन्दुओं को कत्ल किया गया। ४० को जबरन मुसलमान बनाया। रावलपिंडी के ही सधरा गाव मे २०० सिख मारे गये। ४० का पता नहीं चला।

जेहलम तहसील के घुग्गा गांव मे १२८ सिख मारे गये। ४० स्त्रियां अपहरण की गईं। जीहा-वाधा मे १८ सिख मारे गये। ५२ बेदीन किये गये। 'सरफ़ाल कसेर' ४३ व दरवाल मे ६ नारंग मे ६ भसीन मे ३५ नमाजीआ मे ५ हिन्दू सिख मारे गये सैंकडों जबरन मुसलमान बनाये गये। सब को लूट लिया गया।

कैम्बलपुर जिले की फतहजग तहसील के राजड़ गाव मे ३००० सिख-हिन्दुओं को मारा गया। ६५ स्त्रियों को जबर्दस्ती मुस्लिम बनाया गया और जो बच्चे मुस्लिम नहीं बने उन्हे कत्ल कर दिया गया। इसी जिले के २३ गांवों मे ६१० सिख हिन्दुओं को मारा गया। १६५६ घर (हिन्दू-सिखों के) नष्ट कर दिये गये। १३६१ लूट लिये गये। इस जिले मे लगभग ५० गावों मे हत्याकांड लूट पाट और आगजनी हुई।

गुजरात जिले के ३१-३२ गाव लूटे गये और अकेले डिंगा गाव मे ३३०० सिख कत्ल हुए। अनेकों गावों के कत्ल की सूचना प्राप्त नहीं हो पाई।

रावलपिंडी के कत्लों की सख्या का ब्यौरा पहले दिया जा चुका है जिसमे ७००० सिख हिन्दुओं

के कत्ल का पता लग चुका था।

मुल्तान जिले मे कोई २५-२६ स्थानों पर हमले हुए जिनमे अकलें भेलसी कैम्पमें २०००हिन्दू-सिख मारे गये वहां हमला मुस्लिम फौजने किया था। मुल्तान में पहले हमले मे २०० सिख-हिन्दू मारे गये थे।

गुरदासपुर जिले मे भी कोई कसर हमलावरों ने नहीं छोड़ी थी और उसे हद तक पहुचा दिया विलोच सैनिकों ने। यह सब अग्रेज अफसरों की जानकारी में हुआ।

सियालकोट जिले के कोटल पठाणा, गॉव को भीड और मुस्लिम सिपाही दोनों ही ने लूटा। कई स्त्रियो को अपहरण किया और अनेकों सिख हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। स्यालकोट खास में १३ अगस्त को गुंडों के साथ फौज और पुलिस के मुसलमान सिपाहियों ने लूट पाट की। वजीरावाद आई हुई शरणार्थियों की ट्रेन पर हमला किया और उसे लूट लिया तथा अनेकों की जाने लीं। इसके अलावा नारेवाल, पजगराई, लोहारिया, मेगिया, सम वडियाल, खान खास, भुपाल वाला, शकर गढ़, वावली ताहिरा, नूरपुर, नारोरयीआ, धधेड़ा, गूजर वाली, जांजा वाला, गेता, सखतरा, रनसीवास, सजाढा, सलारीआ, फुलेरा, थानेवान, ढिली, बद्दोंमन भोई, सियेवाला, वुधेपुर, कोट कज्ञाल आदि पचासों गॉवों पर हमले हुए। गुरुद्वारों को नष्ट किया गया। घरों को लूटा गया, स्त्रियों को उड़ाया गया और मर्द और वच्चो को कत्ल किया गया। तहसील उमकाके ३५ गॉवों मे २५०० हिन्दू सिख मारे गये थे।

लायलपुर जिले मे भी कोई कसर नहीं छोड़ी गई। खास लायलपुर शहर मे ही मुस्लिम सैनिकों ने खूब उपद्रव किया और चक ३७ के पास शरणार्थी ट्रेन को लूट लिया। इस लूट पाट मे ५० सिख मारे गये। इसी जिले के जडावाला कस्बे के आस-पास के गॉवों और शरणार्थी कैम्पों पर धावे किये गये। १००० सिख-हिन्दू जान से मारे गये और १०००-१२०० घायल हुए। तांदलिया मे ३०० जानें ली गईं और वारडू, २,३,४ मे १६०० हिन्दू-सिख कत्ल किये गये और ४०० स्त्रियों को उड़ाया गया। पच्चीस हजार की भीड़ ने यह हमला २८-६-४७ को किया था, जिसमे पुलिस और फौज के मुस्लिम सिपाही भी शामिल थे। झडावाला और भूमरा के तमाम चकों मे से पीट-पीट कर सिखों को निकाल दिया। इन और दूसरे चकों मे डेढ़ हजार से ऊपर आदमी मारे गये अकेले चक ने १४३ (समुन्दरी तहसील) में ७०० मे से २ आदमी वचे थे। कमालिया में ३५०० झुग्गी मे ३७४२ को गोलियों से मुस्लिम सैनिकों ने भून दिया। चक न० ७४ और चक न० ३०१ मे भी ऐसा ही हुआ। टोवा टेकसिंह और डवावाला स्टेशनों के वीच शरणार्थी ट्रेन को रोककर १४०० हिन्दू सिखों को मारा गया।

यही दशा माटगुमरी, सयालकोट, गुजरावाला, गुरदासपुर, सरगोधा, शेखपुरा, मीआवाली, झग, मुल्तान, मुजफर गढ़ आदि जिलों मे हुआ। सव स्थानों के कत्ल और स्त्रियों के साथ किये वलात्कारों को लिखने में भी हमारा तो हाथ कांपता है। पाठक इसीमे अन्दाज लगाले कि यह कैसा नर मेध था। जिसमे एक पूरी जाति को नष्ट करने की कमर बॉधी गई थी।

दगे शान्त हो जाने और मजहवी पागलपन तथा प्रतिहिंसा की भावना दूर हो जाने पर आज सिख हिन्दू और मुसलमान सभी को इन घटनाओं पर खेद है और इसमें सन्देह नहीं कि उस समय उन मुसलमानों ने जिनके दिल मे ईश्वर की सत्ता मौजूद थी। हिन्दू और सिखो को वचाने की कोशिश की किन्तु उनकी सख्या धर्मान्धों के आगे नगण्य ही रही। हिन्दू सिख वहुल इलाकों मे भी प्रतिशोध के समय अनेकों हिन्दू सिखों ने मुसलमानों की रक्षा की। यही वाते है जो उन पशुतापूर्ण कार्यों को भूल जाने और परस्पर हिलमिल कर रहने को उत्साहित करती है।

इक्कीसवां अध्याय

सिख धर्म और गुरुमत दर्शन

ससार में जितने भी धर्म हैं। उनका आधार कम से कम पाँच बातों पर निर्भर है। अथवा यों कहना चाहिये कि मनुष्यों का कोई भी समूह जब इन बातों के अनुसार अपना जीवन और रहन सहन बना लेता है। तब वह किसी एक धर्म का अनुयायी समझा जाता है। वे पाँच बातें यह हैं—(१) मार्ग दर्शक या प्रवर्तक (२) हिदायत नामा जो कि धर्म ग्रन्थ के नाम से अभिहित होने लगता है। (३) जीवनान्त का लक्ष्य या सार्थक जीवन की लक्ष्य (४) उपास्य और उपासना विधि। (५) आचार और संस्कार।

सिख धर्म की देन

ऐतिहासिक दृष्टि से यह कहना कोई भी गुनाह नहीं होगा कि ससार मे जितने भी मजहब हैं वे किसी न किसी महान् पुरुष द्वारा प्रवर्तित किये हुए हैं। अत यह स्वाभाविक है कि मनुष्य जब किसी धर्म को मानता है तो वह उस धर्म के प्रवर्तक की अवश्य मान्यता करता है। और चू कि धर्म एक मार्ग होता है[1] अथवा उन नियमों का संग्रह होता है जो उस महा पुरुष ने नियत किये थे अथवा उसके अन्त करण से प्रादुर्भूत हुये थे। प्रत्येक धर्म के अनुयायी उस महापुरुष के निर्धारित अथवा कहे हुये नियमों को सग्रह भी कर लेते हैं क्योंकि ऐसा करना जरूरी होता है। यही सग्रह उस प्रवर्तक अथवा नियामक के अनुयायियों का धर्म ग्रन्थ कहलाता है। उन वचनों को श्रद्धापूर्ण भाषा में, मत्र, प्रवचन, आयत, वाणी आदि ऐसे ही आदर सूचक नामों से पुकारते हैं। इन मत्र, प्रवचन और वाणियों मे प्रवर्तक की अन्तरात्मा की वह आवाजें होती हैं जो मनुष्य जीवन को स्वच्छ, ऊचा और आदर्श बनाने के लिये निकलती हैं। और प्राय सभी धर्म प्रवर्तक मनुष्य-जीवन का अतिम लक्ष्य ईश्वर की शरण मे अनन्तकाल के लिये स्थान प्राप्त करना मानते हैं। जिन धर्म-प्रवर्तकों ने ईश्वर को नहीं माना है उन्होंने भी जीव के लिये–अनन्तकाल के लिये-मुक्ति प्राप्त करना तो अतिम लक्ष्य रक्खा ही है। अत प्रत्येक धर्म मे उपासना, उसका एक आवश्यक अग होता है। लक्ष्य पूर्ति के लिये मनुष्य को जितनी योग्यताये आवश्यक हैं। उनकी प्राप्ति के लिये जो कसौटी प्रवर्तकों द्वारा रक्खी गई हैं, वही उस धर्म के आचार और सस्कार है। प्रत्येक धर्म का यही संक्षिप्त स्वरूप है।

१. सिख लोग तो अपने धर्म को कहते भी मार्ग (पथ) ही हैं।

अब हम सिख धर्म की इन्हीं पॉच बातों का परिचय देना चाहते हैं।

प्रवर्तक

सिख धर्म-जिसे कि "गुरमत" कहना भी सार्थक है—के प्रवर्तक श्री गुरु नानकदेव हैं। गुरु अगद जी से लेकर गुरु गोविंदसिंह जी तक और जो नौ गुरु हैं। वे भी नानक देव ही हैं। सिख सम्प्रदाय की यह दृढ़ भावना सारे ससार के धर्मों से विचित्र किन्तु अपने धर्म में अचिन्त्य श्रद्धा के लिये अत्यत उपयोगी है। मुसलमानो की धारणा है कि उनके कई पैगम्बर हुए हैं किन्तु साथ ही वे यह भी कहते है कि हजरत मुहम्मद उन सब मे अधिक ऊचे और खुदा के प्यारे थे। इस प्रकार की भावना से शेष पैगम्बरो का न चाहते हुए भी अपमान हो जाता है। हिन्दुओं मे भी दस अवतारो का मानने वाला प्रत्येक हिन्दू इस चिन्ता मे अवश्य पड़ता है कि इनमे अधिक कलावान (प्रतापवाला) कौनसा था ? इसी हेतु उनमे रामानुजी, माध्वाचारी आदि अनेक भेद भी हो गये। किन्तु सिखों मे यह सवाल नहीं उठता कि अमुक गुरु की वाणी अमुक गुरु से अच्छी हैं। या निवल। न वह ऐसा मानते हैं कि अमुक गुरु इतनी कलाओं के औतार थे। उनका दृढ विश्वास है कि सभी गुरु नानक देव ही थे। अथवा उन्हीं की ज्योति आगे के गुरुओं मे प्रकाश मान थी। इस प्रकार वे प्रत्येक गुरु को अपने पूर्व गुरु का पूरक मानते हैं। जिस प्रकार 'आत्मावै जायते पुत्र।' अर्थात् पुत्र पिता ही होता है—का एक सिद्धान्त है उसी प्रकार "आत्मा वै मथीयते शिष्य" अर्थात गुरु के विचारों का प्रतीक ही उसका शिष्य-गुरु है। इस सिद्धान्त को सिख मानते है। लेकिन प्रत्येक शिष्य उसी प्रकार गुरु नहीं हो सकता जिस प्रकार प्रत्येक पुत्र अपने पिता का साक्षात सस्करण नहीं होता। यह सिद्धान्त सिख समाज का निर्धारित किया हुआ सिद्वात नहीं है। अपितु यह बात स्वय गुरु नानकदेव जी ने कही थी। लहना जी को अगद नाम उन्होंने इसीलिये दिया था कि उन्होंने उनको बिल्कुल अपना सस्करण समझ लिया था।

गुरु नानक देव जी से पीछे जिन गुरुओं ने जो भी प्रवचन किये, वे उन्होंने अपने नाम से नहीं किये। ग्रंथ साहब मे दूसरे गुरुओं के जो प्रवचन या वाणियां हैं। इनमे गुरु नानक देव जी का ही नाम है। उदाहरणार्थ "हम अपराधी निरगुनियारे। ना किछु सेवा ना करमारे। गुरु बोहिथु वड भागी मिलिया। नानक दास सगि पाथर तरिया।" पढ़ने वाला यही समझेगा यि यह वाणी गुरु नानक देव जी की है, किन्तु है वास्तव मे पाचवे गुरु अर्जुनदेव जी की। इस प्रकार अन्य गुरुओं की वाणियो मे भी 'नानक' नाम ही आता है। इसका भाव यही है कि गुरु नानक देव जी के समस्त उत्तराधिकारी गुरुओं का यह दृढ़ विश्वास था कि हमारे अन्दर जो भी महानतम् ज्योति है। वह गुरु नानक देव जी की है। इसी धारणा के अनुसार सिख लोगों मे तीसरे नानक देव, चौथे नानक देव कहने की भी प्रथा पाई जाती है।

इस धारणा से कि दसो गुरु नानक देव ही हैं सिखों मे अपने प्रवर्तकों के प्रति अगाध और समान श्रद्धा है। और इस श्रद्धा का उन्होंने समय समय पर परिचय भी दिया है।

सिख धर्म के ये प्रवर्तक गुरु कहलाते हैं। और सिख गुरु से ऊपर केवल परमात्मा को ही स्थान देते हैं। इसलिये उनके व्यवहार मे परमात्मा का सब से प्यारा नाम वाहिगुरु है।

गुरुओं के सम्बन्ध मे सिखों की धारणा है कि वे मुक्त-पुरुष हैं। परमात्मा ने उन्हे मानव जाति के कल्याण के लिये भेजा था। गुरु नानकदेव जी से बेई नदी में दैवी ज्योति ने साक्षात किया था। यह

घटना सिख इतिहास मे उससे कहीं ऊचा स्थान पाती है जितना कि मुस्लिम इतिहास में जिब्राइल द्वारा हजरत मुहम्मद साहब का खुदा के दर्शन कराना। मुसलमानों का विश्वास है कि फरिश्ता जिब्राइल ने हजरत मुहम्मद के कालिब मे उज्ज्वल वस्तु को रक्खा था और जो काला निशान था, उसे बदल दिया था। जिसके अर्थ होते है कि उस समय से उनमे खुदा के महान् प्रकाश की ज्योति प्रज्वलित हो गई। सिख लोगों की धारणा इससे कुछ अधिक आगे है वे मानते हैं कि गुरु नानकदेव जी उस प्रकाश को जन्म मे ही साथ लाये थे। उनकी यह धारणा बौद्ध और मुस्लमान दोनों से ही आगे है। वह अपने गुरु को घटनाओं से प्रभावित हो कर परिवर्तित हुआ नहीं मानते। किन्तु परमात्मा की ओर से इसी काम को भेजा हुआ मानते है। इस धारणा का जन्म सिखों मे पीछे से हुआ हो ऐसी बात नहीं है किन्तु स्वय दसवे नानकदेव गुरु गोविन्दसिंह जी ने कहा है —

"तिन प्रभु जब आयुस मुह दिया।
तब हम जन्म कलू महि लिया।
चित न भयो हमारो आवन कहि।
चुभी रही श्रुति प्रभु चरनन महि।
जिउं तिउं प्रभु हमको समझायो।
इम कहि के यह लोक पठायो।

इससे पहले के पदो में उन्होंने जन्म धारण करने से पूर्व की अपनी स्थिति भी बताई है। कहा है —

"हेम कूट पर्वत है जहाँ, सप्तशृङ्ग सोभित हैं तहाँ।
सप्तश्रृ ग तह नाम कहावा, पडुराज जह जोग कमावा।
तहँ हम अधिक तपस्या साधी, महाँ काल काल का अराधी।
इहि विधि करत तपस्या भयो, द्वै ते एक रूप है गयो।

इन पदों मे यह बात अधिक ध्यान देने की है कि "द्वै ते एक रूप है गयो।"

गीता मे श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा था —

"यदाहि यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मनम् सृजाम्यहम् ॥

इन दोनों महापुरुषों के वाक्य मे एक लम्बी दूरी तक समानता है। अन्तर केवल इतना है कि श्रीकृष्ण का कहना तो है कि जब जब धर्म की हानि होती है। मैं अवतार लेता हू और गुरु गोविन्दसिंह कहते है। "धर्म की स्थापना के लिये मुझे भेजा गया है।" यह अन्तर केवल इसलिये है कि गीता वेदान्त का एक अग है और वेदान्त ईश्वर और जीव मे द्वैत नहीं मानता।

हमारे इस कथन का यह भी अर्थ है कि सिख धर्म के प्रवर्तक द्वैतवादी थे। और दो से एक रूप होने के लिये जो मुख्य साधन सिख धर्म में है—वह है सतगुरु की प्राप्ति।

गुरु नानकदेव जी ने सतगुरु के सम्बन्ध मे बहुत ही कुछ कहा है। यथा—

"गुरुमुखि बूझै अकथु कहावे। सचे ठाकुर साचौ भावै।" यही नहीं कि गुरु की महानता पर नानकदेव जी ने ही जोर दिया हो किन्तु सभी गुरुओं ने गुरु के महत्व का वर्णन किया है। तीसरे गुरु अमरदास जी ने कहा है —

"पूरे गुरु के सबदि मिलाए।
नानक नामु मिलै वडि आई आपे मेलि मिलावणिआ।"

इस प्रकार सिखों मे गुरु का दर्जा बहुत ऊंचा है। और यही कारण है कि उन्होंने अपने धर्म प्रवर्तकों को गुरु नाम दिया है। इस तरह सिख साहित्य मे गुरु के मानी केवल उस महापुरुष के हैं जो वाहिगुरु अर्थात् परमात्मा से मिलाने की शक्ति रखता हो।

सोलहवीं सदी मे गुरु नानक देव जी और उनके उत्तराधिकारियों की इस घोषणा से कि "सत गुरु तो वही है जो वाहि गुरु से मिला सकता हो।" उस समय के सीमा पर पहुँचे हुए गुरुडम को निश्चय ही बड़ा धक्का लगा था। जब हम पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी का धार्मिक इतिहास देखते हैं तो सहज ही पता लग जाता है कि उस समय गुरुओं की बड़ी भरमार थी। जिसके मन मे आया वही गुरु बन बैठता था। एक-एक शिष्य के बीस-बीस गुरु होते थे। और एक गुरु के पीछे हजारों चेले लगे फिरते थे। इन लाखों गुरुओं मे भले बुरे की पहचान के लिए आखिर कोई कसौटी होनी चाहिये थी और वह कसौटी यही थी कि वाहिगुरु को पहचानने और उससे मिलाने वाला ही गुरु हो सकता है।

इस प्रकार सिखों के गुरु उनके इहिलोक के ही सुधारक नहीं किन्तु ईश्वर से मिलाने वाले भी थे। इतना ऊँचा स्थान है गुरुओं का सिखों के हृदय मे।

इन गुरुओं के रास्ते पर चल कर सिखों ने इस लोक मे भी बहुत उन्नति की है। सिखों का दर्जा हिन्दुस्तान की वर्तमान सभी जातियों, समाजों और समुदायों मे आदरणीय है। उनका यह विकास किस प्रकार हुआ? प्रत्येक गुरु के जमाने में वे कितने आगे बढे। इन बातों का जिकर हम गुरुओं के जीवन चरितों मे कर चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि गुरुओं ने हिन्दु जाति को मानसिक गुलामी से मुक्त करने मे एक बड़ा काम किया था। जिन अन्ध-विश्वासों को गजनवी का मूर्तिध्वसक कार्य और औरंगजेब की कठोर यातनाये भी दूर न करा सकी थीं। गुरुओं की मीठी वाणियों से वह सहज ही दूर हो गया। यही नहीं किन्तु गुरुओं के उपदेशों से मुस्लिम तहजीब का भी बहुत कुछ परिमार्जन हुआ था। गुरुओं ने जिस शैली से अपने खयालात लोगों तक पहुँचाये। वह शैली एकदम सात्विक शैली थी। इस्लाम के प्रचारकों की तरह न तो अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिये उन्होंने तलवार उठाने का उपदेश दिया और न ईसाइयों की तरह किन्हीं भौतिक पदार्थों का लोभ।

उन्होंने मनुष्य को कभी भी बुरा नहीं कहा। आर्य, दस्यु और मोमिन काफिर जैसे दूसरों को कडवे और अपने लिये मीठे शब्दो से उन्होंने मनुष्य जाति का कोई विभाजन नहीं किया। ग्रथ-साहब के आधार पर जो कि गुरुवाणियों का सग्रह ग्रन्थ है। सिख धर्म को विशुद्ध 'प्रेम धर्म' कहा जा सकता है। इस तरह गुरु साहिबान प्रेम धर्म के जन्मदाता और प्रेम के साक्षात अवतार थे। मनुष्य-मनुष्य को सच्चा प्रेम करे और उस प्रेमी समाज का सम्पूर्ण प्रेम परमात्मा मे केन्द्रित हो। तब वह समाज, वह देश कितना अच्छा होगा? गुरुओं का वह प्रयत्न पूर्णतया सफल हुआ या नहीं? सिख लोग भी गुरुओं के मार्ग पर सोलह आने आरूढ़ हैं या नहीं? यह बाते तो दूसरी हैं किन्तु गुरु साहिब जिस आदर्श समाज की रचना करना चाहते थे वह उद्देश्य तो बहुत महान् था।

बौद्ध और खीष्ट धर्मों के प्रवर्तकों में गुरुओं से पहले यही बात हम देखते हैं। व्यक्ति निर्माण और प्रेम धर्म पर उन्होंने भी बड़ा जोर दिया है किन्तु बौद्ध धर्म दर्शनिकता प्रधान होने के कारण उत्कट विद्वानों के अधिक काम की चीज था और खीष्ट धर्म शुष्क तर्क और ऐतिहासिक ढग पर वर्णित होने के

कारण आस्था पैदा नहीं कर सकता था। गुरुओं ने जो भी कुछ कहा है वह सहज ही समझ में आने वाला और सरस होने के कारण सर्वसाधारण के काम की चीज़ बन गया।

सिखों का धर्म ग्रन्थ "आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहब" है। वे अपने धर्म ग्रन्थ का नाम उसी प्रकार इज्जत के साथ लेते हैं जिस प्रकार हिन्दू वेदों को वेद भगवान् और मुसलमान कुरान को कुरान शरीफ बोलते हैं। वे भी बड़ी श्रद्धा और प्रेम के साथ 'ग्रन्थ साहिब जी' कहते हैं।

धर्म ग्रन्थ

अपनी पवित्र धर्म पुस्तक के सम्बन्ध में सिखों की एक और मान्यता है वह यह कि ग्रन्थ साहिब जी गुरुओं का ज्योति-स्वरूप है। ऐसी मान्यता की वृद्धि इस पद से हुई है।'

"गुरु ग्रन्थ जी मानियहु प्रगट गुरां की देह। जो प्रभु को मिलम्रो चहैं, खोज शब्द में लेह।"

गुरु ग्रन्थ साहब का सिख लोग इतना भारी मान करते हैं जिसे देख कर लोग उन पर भी मूर्ति पूजा का दोपार्पण करने लगे हैं। ग्रन्थ साहिब जी पर चँवर ढाला जाता है। और उसे स्वच्छ सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित करके रखते हैं। रखने का स्थान ऊचा और पवित्र होता है। यह है ग्रन्थ साहबके प्रति सम्मान का एक उत्कृष्ट ढग।

'ग्रन्थसाहिब' के पठन को पाठ कहते हैं और पाठ दो प्रकार का होता है। (१) साधारण पाठ और (२) अखड पाठ। अखड पाठ आरम्भ करके बीचमें बन्द नहीं किया जासकता और प्राय ४८ घण्टेमें समाप्त हो जाता है। पाठ के समय पाठक जिसे कि पाठी कहते हैं। स्वच्छ और शुद्ध अंग वस्त्रों से बैठता है। कोई सहारा वह नहीं लगा सकता, न सर नगा रख सकता है। श्रोता लोग इस समय ऊचे आसन पर नहीं बैठ सकते। आने वाले सभी सिख-जन मत्था टेक कर 'श्री ग्रन्थसाहिब' को अभिवादन करते हैं।

पाठ का प्रारम्भ अरदास (मगल-प्रार्थना) से होता है अरदास हाथ जोड़ कर और खड़े होकर की जाती है। अखड पाठमें कडाह् प्रसाद भी किया जाता है। घी, आटा, और खाण्ड सम भागसे जो हलवा बनता है उसे कडाह् प्रसाद कहते हैं। यह कम से कम १। रु० का होता है।

गुरुद्वारों में गुरु ग्रन्थ साहिबजी की सेवा में जो आदमी रहता है वह ग्रन्थी कहलाता है। ग्रन्थ साहब की वाणियों के अर्थ समझने वाले को ज्ञानी कहते हैं। यह शब्द शास्त्री का समवाची है।

"श्री आदि ग्रन्थ" के बाद सिख दशम ग्रन्थ को स्थान देते हैं। धार्मिक कृत्यों में आदि ग्रन्थ ही का उपयोग होता है। हिंदुओं में जो स्थान गीता का है मुसलमानों में जो स्थान कुरान का है सिखोंमें वही स्थान ग्रन्थ साहिब का है। और सन्मान अपने ग्रन्थ का इन दोनों से कहीं अधिक श्रद्धा से करते हैं।

गुरु ग्रन्थ में सात गुरुओं और ३६ अन्य सतों की वाणियों का सग्रह है। गुरुओं में छटे सातवें और आठवें गुरुओं ने कुछ नहीं लिखा। दसवे गुरुजी की वाणी का एक ही चरण है। कहा जाता है कि गुरु तेग बहादुर जी ने कारागार से जो पत्र गुरु गोविंदसिंह जी को लिखा था। उसके उत्तर में ईश्वरीय इच्छा का जो भाव गुरु गोविंदसिंह जी ने व्यक्त किया था वही गुरु ग्रथ मे शामिल हैं।

बल छुट गयो बन्धन पडे कछू न होउ उपाय।
कहु नानक अब ओट हरि गज ज्यों होहु सहाय।
बल होआ बन्धन छुटे, सब किछु होत उपाय।
नानक सब कछु तुमरे हाथ में तुम्ही होत सहाय। ५४

यह पद गुरु गोविन्दसिंह जी का बताया जाता है जो कि मुद्रित ग्रन्थ में महला ६ के अतर्गत ही अकित है।

गुरु ग्रथ साहब का सकलन सर्व प्रथम श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने जोकि पाचवे पातशाह थे किया

था। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती गुरुओ और अपनी वाणियों तथा अन्य संतोंकी वाणियोंका जो सग्रह कियाथा, वह गुरु अर्जुनदेवजी द्वारा कीगई ग्रंथ साहव की बीड़ कहलात है। इससे पहले शिष्य और श्रद्धालु लोग गुरु वाणियों को जो शव्द कहलाते हैं,जबानी याद करते थे। गुरुअगदजीने अपने समयमे एक ग्रंथ लिखायाथा वह एक जन्म साखी कहलाता था। उसमे गरु नानकदेव जी के जीवन वृतान्त और उनके कुछ शव्द दोनों ही चीजे सग्रहीत थीं। और जब तक ग्रंथ साहिबजी का निर्माण नहीं हुआ था, सिखों के लिये यह साखी ही[1] धार्मिक-ज्ञान वृद्धि मे सहायता देती थी।

गुरु अर्जुनदेवजी ने बावा बुड्ढा को वुला कर जोकि पहिले गुरुजी के समयसे अवतक जीवित थे। उनसे शेष गुरुओं के शव्द भी सग्रह करा लिये। बावा बुड्ढा अमृतसर जिले के जाट जमींदार-घरमे उत्पन्न हुए थे। सिखोंमे और गुरु घर में इनका दर्जा राज पुरोहित का जैसा ऊचा होगया था। इन्हें अपने समय तकके सभी गुरुओंकी वाणियां याद थीं। इसके इलावा गुरु अर्जुनदेव ने गोइन्दवालके वावा मोहिनजी से गुरुवाणी की वह सचियां भी प्राप्त कीं जोकि वहां गुरु अमरदास जी के समय से चली आरही थीं। यह सचियां विशेपतया गुरु ग्रंथके संकलनमे सहायक हुई। इस प्रकार गुरु अर्जुनदेव जीके समय मे गुरु ग्रथ साहव की पहली वीड बाधी गई। कहा जाता है भाई गुरुदास जी ने आदि ग्रथ मे लेखक का काम किया था।[2] इस पवित्र ग्रंथ के पहले ग्रन्थी वावा बुड्ढा ही वनाये गये।

ग्रथ साहव का संकलन रागों के सिलसिले से है। यथा राग गोरी के सव पद एक जगह मिलेगे। चाहे वह गुरु नानकदेव जी के हों चाहे अमरदास आदि गुरुओं के। कौन शव्द किस गुरु के हैं? इसका ज्ञान महलों से होता है। महला १ जहाँ लिखा हो वह शव्द प्रथम गुरु नानकदेव जी के और इसी क्रम से अन्य गुरुओं के पहचाने जा सकते हैं।

सिखों का यह पवित्र धर्मग्रन्थ उपासना प्रधान ग्रन्थ है। उपनिषदो को जिस प्रकार हम ज्ञान प्रधान और गृहसूत्रों को कर्म प्रधान ग्रन्थ मानते हैं। उसी प्रकार ग्रन्थ साहव उपासना प्रधान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ ने सोलहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी के तृतीय चरण तक पजाव, सिध और काश्मीर के हिन्दुओं की आध्यात्मिक प्यास को बुझाकर वह अपरमित शांति प्रदान की थी जो हिन्दू धर्म की रक्षा का एक प्रधान कारण हुई। हम बीसवीं सदी मे धार्मिक ग्रन्थो के सरल भापा मे जो ढेर देखते हैं। अव से पचास वर्ष पहले उनका एक दम अभाव था। हिंदू-धर्म की समस्त वाते और उसूल संस्कृत मे थे। जो सर्व साधारण की समझ मे तनक भी न आ सकती थीं। उसके ऊपर भी पावन्दी थी। सस्कृत को केवल ब्राह्मण ही पढ़ सकते थे। धर्मग्रन्थों के पाठ का अधिकार भी ब्राह्मणों को ही था। इसलिये हिंदू-धर्म चन्द ब्राह्मणों की आलमारियों मे बन्द था और वह बड़ी महँगी कीमत पर सुनने को—सो भी द्विजों के लिये—मिलता था। हिंदुओं की इस स्थिति से मुसलमान प्रचारक खूव लाभ उठा रहे थे। आध्यात्मिक प्यास बुझाने के लिये हिंदू समाज बड़ी द्रुतगति से मुस्लिम फकीरो और मुल्लाओं की शरण मे जा रहा था। जाता भी क्यों न जब कि "ओं नमो भगवते वास देवाय" कहने का भी समान रूप से सभी हिंदुओ को अधिकार न था। ऐसे ही समय मे गुरुलोगों का अवतार हुआ और उनकी कृपा से ग्रथ साहव की रचना हुई। जिससे अपनी आध्यात्मिक प्यास वुझाने की प्रत्येक मनुष्य को आजादी थी। ग्रंथ साहव की वाणियों रूपी अमृत की यह वर्षा उसी भापा मे हुई जो पजाव और प्राय सारे उत्तर भारत की रोज की बोलचाल की भापा

१ साखी से अभिप्राय जीवन गाथा से है।
२. भाई गुरुदास जी, गुरु जी की माता के चचेरे भाई थे।

है। इससे हिंदू जाति विधर्मी होने से वच गई। ग्रथ साहव से एक चूहडे से लेकर ब्राह्मण तक सभी ने आत्मिक शांति प्राप्त की। यही नहीं हजारों मुसलमानों ने भी गुरु नानकदेव जी की वाणियों को श्रवण और ग्रहण करके लाभ उठाया। उत्तर भारत के पतनोन्मुख हिंदू समाज के लिये 'ग्रथ साहव' साक्षात संजीवन वूटी साबित हुए।

"गुरु ग्रथ साहिव" मे कवीर, नामदेव और सूर, आदि सतों की वाणियों के सग्रह को देखकर वहुत से लोगों के दिल मे सवाल उठता है कि गुरुवाणियों के साथ उनका सग्रह क्यों किया गया? सीधा सा उत्तर तो केवल इतना ही है कि गुरु लोग उदार थे और इसी वृत्ति से उन्होंने अपने समकालीन सतों की वाणियों को भी अपने ग्रथ मे स्थान दे दिया। परन्तु हम एक गहराई की वात कहना चाहते हैं। जिन लोगों ने महाभारत का अध्ययन किया है वे जानते हैं कि उसमे शैव, शाक्त और वैष्णव सभी प्रकार के आचार्य्यों के प्रतिपादित सिद्धान्तो को स्थान दिया गया है। और इन प्रतिपादनों को सग्रह करने के लिये महाभारत के तीसरे[१] सपादक सौति को यह आवश्यक जान पड रहा था कि वौद्ध धर्म के मुकाविले पर इन सबका एक हो जाना आवश्यक है। ग्रथ साहव मे हम जिन सतों के नाम देखते हैं, वे भारत के प्रत्येक कोने के प्रतिनिधि थे। यथा जयदेव वगाल के और धन्ना राजपूताने के, यही नहीं प्रत्येक जाति के भी उनमे प्रतिनिधि हैं। रैदास चमार और नामा छीपी इसके उदाहरण हैं। इस ग्रथ साहव को सारे भारत का और उसमे वसने वाली प्रत्येक जाति का धर्म ग्रथ वनाने की भावना से ही उन सभी सतों की वाणियाँ इस ग्रंथ मे सग्रह करदी गई जो करीव करीव उन्हीं उसूलों को मानते थे। जिनका कि प्रतिपादन गुरुलोग करते थे। यदि हमारा यह अनुमान ठीक है तो हम कहेंगे ग्रंथ साहव द्वारा भारत का एक धर्म, एक जाति और एक मन कर देने का एक महान् कदम उठाया गया था।

ससार के धर्म ग्रथों में हम एक वात और देखते हैं। वह यह कि उनमें थोडा वहुत इतिहास अपने प्रवर्तक का या उस समय के अन्य लोगों का होता है। वाइविल और कुरान में क्रमश क्रिश्चियन और इस्लाम मत के प्रवर्तकों के सम्बन्ध मे वहुत कुछ इतिहास है। किंतु ग्रथ साहव मे ऐसा इतिहास नहीं है। वह अधिकाशत उपासना ग्रथ है।

यहाँ हम 'गुरु ग्रथ' के पूर्ण परिचय के लिये विभिन्न शीर्षकों में कुछ सार पूर्ण सामग्री उपस्थित करते हैं। इससे 'ग्रंथ साहव' मे क्या है? प्रश्न का बहुत दूर तक हल पाठकों को मिल जायगा।

भाषा

श्री गुरु ग्रथ साहव की भाषा—'गुरु कालीन' भारत की समस्त प्रचलित भाषाओं में से अधिकाश का समुच्चय है। इसके दो कारण है। एक तो यह कि प्रथम गुरु नानकदेव ने समस्त भारत की चार यात्रायें कीं और उन्होंने प्राय सभी जनपदों को देखा। उन जनपदों के सतों विद्वानों और आचार्यों से सतसग किया। उन्हे अपनी वातें समझाईं। यह स्वाभाविक है कि जब कोई यात्री किसी देश मे जाता है और विशेषत प्रचार के लिये तो वह उस देश की भाषा के अनेक शब्दों को अपनी वात समझाने के लिये ग्रहण करता है। दूसरे यह कि ग्रथ साहव में जिन अन्य सतों अथवा भाटों की कविताएँ है, उनमे उन प्रदेशों

१ अब तक महाभारत कमसे कम तीन बार सपादित हो चुका है। द्वैपायन व्यास का जय नामक ग्रथ जो कि युद्ध की समाप्ति पर वना वही जन्मेजय के नाग यज्ञ के वाद वैशम्पायन द्वारा सपादित होने पर भारत कहलाया। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में शौनक आश्रम में इसे महाभारत का रूप सौति ने दिया।

की भाषाओ के शब्दों का आना स्वाभाविक है, जिन प्रदेशो के कि वे निवासी थे। यथा जयदेव जी की कविता में सस्कृत और नामदेव की कविता मे मरहटी शब्दों का होना अनिवार्य है। शेख फरीद की कविता मे फारसी शब्दों का होना भी स्वाभाविक है।

'गुरु ग्रथ' बहुत बडा ग्रथ है। उसमे आये सभी शब्दों पर कुछ लिखना एक लम्बे समय और स्थान की अपेक्षा रखता है, इसलिये हम कुछ शब्दों के उदाहरण ही यहाँ दे रहे है। जिससे पाठक समझलें कि गुरु ग्रथ साहब किस प्रकार भारत की शाब्दिक एकता का सूचक ग्रथ है।

	शब्द	भाषा
(अ)	अन्दरि, असूले, अलाहि	(अरबी)
(आ)	असगाहु, आखहि, आथि, अमृतवेला, आपै, अतै, अमुल, अखरी, अखरा,	(पजाबी हिंदी)
	असख (असख्य) अगम (अगम्य)	(सस्कृत)
(इ,ई)	इकदूइक	(पंजाबी)
	इंद्र, इद (इंद्र) इंदासाणि (इद्रासन) ईसरु (ईश्वर)	(संस्कृत-हिंदी)
(उ)	उपरि	(मगही, हिंदी)
	उज्जले	(वगीय-हिंदी)
(ऐ)	एवँ, ऐहि, ऐतु	(पंजाबी)
(ओ)	ओहु, ओड़क, ओथे	(पंजाबी)
(क)	कागदि, कलाम, काढीआ, कतेबा	(फारसी)
	कुदरति, सिफति, सलामत, मसकति	(फारसी)
	कीता, के, किव, किउ, कवाउ, कुडिआर, कुनू	(पजाबी)
	करता, करते, कवण, कामु, करमी	(हिंदी)
(ख)	खेह, खाहि	(हिंदी)
	खिंथा, खल्ला, खावै, खाही, खादकु खाणीचारे	(पजाबी)
(ग)	गलबढ़, गिरहा, गावारा, गाह, गइआँ, गेडा, गल्ला	(पजाबी-हिंदी)
	गरथ (ग्रथ) गिआनु (ज्ञान) गणत (गणित)	(हिंदी)
(घ)	घाडति, घडीआहि	(पजाबी)
(च)	चगा, चोट चाउ (चाव) चितगुप्तात (चित्रगुप्त)	(हिंदी)
(ज)	जावै, जुगा, जीआ, जीउ, जावा, जिव, जि, जे, जे वड्डु	(पजाबी हिंदी)
	जुग-तारे (युगातर)	(हिंदी)
(ट)	टकसाल	(हिंदी)
(ठ)	ठाक, ठीस	(पजाबी)
(त)	तुहे,	(मगही और पंजाबी)
	ताणु, तुध, तित्थै	(पजाबी)
	तिसु, तिल, ताड, तेता	(हिंदी)

(थ) थापिआ, थाव, थिति	(पजाबी-हिंदी)
इनकी ठेठ हिंदी थाप, थाम, तिथि	
(द) दाति, दिसै, दुआर	(ब्रजी हिंदी)
देदा, दइआ, दतू	(पंजाबी)
दरिगह, दरिआइ, दरि	(पारसी)
(ध) धिआनु, धौलि, धोवै	(पजाबी-हिंदी)
धवले, धातु, धू	(हिंदी)
(न) नाल, नालि, नाउ, नेडे	(पजाबी)
नीसाणु	(अरबी)
नदरि, नवरी	(पर्शियन नजर का अपभ्रंश)
(प) पडि, परवाणु, परधान पसादु, पुत्री, पवहि, पउण, पाणी,	
पवदिआ	(पजाबी-हिंदी)
पालि, पोहि	(पजीबी)
पलीता (अरबी) पातशाही	(फारसी)
(फ) फुरमाण (फर्मान)	(पारसी)
(ब) बना, बीचारु, बुझै, बडिआई, बीजि	(पजाबी-हिंदी)
बदिखलासी बख्शे	(अरबी)
बैसतर, बरमे	(वैश्वानर, ब्रह्मा), (सस्कृत हिंदी)
(भ) भिख, भुख, भखिआ, भवाइअहि, भखुसार भरीएँ	(पजाबी हिन्दी)
भाव, भाण, भगति, भवण, भखनि	(ब्रजी हिन्दी)
(म) मुहाँ, मुहि, मुक्कस,	(पजाबी)
मन्ने, मति, मनु, मान, मति, मुखि, मोख	(पजाबी हिन्दी)
महतु	(बगला-हिन्दी
(र) रजाई	(फारसी)
राहु, राजानु, रीस, रग	(हिन्दी)
रुती (ऋतु) रिखीसर (ऋषिश्वर)	(अपभ्रंश सस्कृत)
(ल) लिवतार लेंदे	(पजाबी)
लेखा (हिन्दी) लोउ (लोग)	(मागधी)
(व) विखम, विगसे, वरमा, विसाहि, विभूति	(हिन्दी)
विदिआ, वेला, वापारिए, विआई, विदाणु	(पजाबी-हिन्दी)
वेखे, वेखाणीर वाचै	(पजाबी)

(स) सहस, सासतर, सगल, सिमृति, अपभ्रंश हैं सहस्र, शास्त्र सकल, स्मृति (सस्कृत शब्दो के)

सतोख, (सतोष) साई (स्वामी)	(हिन्दी)
सुरति,	(पजाबी-हिन्दी)
सलाह, (सिफति)	(अरबी)

साबूण (साबुन)	(पारसी)
सुणिआ, समि, सुआसित, सति, सुहाणी, समाले सिउ, सोहनि	(पंजाबी हिन्दी)
सजोग, सोहे, सिरठी (सृष्टि) सद	(हिन्दी)
(ह) होसी	(राजस्थानी-हिन्दी)
हुकमि, हुकम आदि (फारसी) हादरा, हाई	(अरबी)
होर (पजाबी) हरामखोर (फारसी) हड हडये	(मगही)

यह शब्द गुरु नानक देव जी की वाणियों से लिये हुए हैं। ग्रन्थ साहब मे उनकी भाषा सबसे अधिक क्लिष्ट और कई भाषाओं का समुच्चय है। दूसरे गुरु अगद जी की भाषा गुरुनानक की भाषा से मिलती हुई है हलाकि उतनी जटिल नहीं है। इनके शब्दों मे हिन्दी का पंजाबीकरण रूप बाहुल्यता से है। यथा.—

"जिन वदिआई तेरे नाम की यह रते मन माहि। नानक अमृतु एक हैं दूजा अमृतु नाहि॥
नानक अमृतु मनै माहि पाईए गुरु परसादि। तिनी पीता रग सिउ जिन कउ लिखिया आदि॥

(सलोक सारग की वार महला २)

तीसरे गुरु अमरदास जी की रचनाओं मे वही रूप हिन्दी का है जो गुरु अगद देव जी की रचनाओं मे है। अतर इतना है, जिस प्रकार गुरु नानकदेव से अगद देव की रचनाएँ सुबोध हैं। उसी तरह गुरु अगद देव से गुरु अमरदास जी की रचना सुबोध है। इनकी सबसे अधिक प्रिय रचना 'आनन्द,' है जो सिखों मे प्रत्येक आनन्दोत्सव पर गाई जाती है। भाषा की सरलता और हिन्दी के स्वरुप के दर्शनार्थ उसका कुछ अश हम यहा देते हैं.—

"अनदु भइआ मेरी माए सतिगुरु मैं पाइआ। सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वधाईआ॥[1]
राग रतन मरवार परीआ सबद गावण आईआ। सबदोत गावहु हरी केरा मनि चिनी वसाईआ।
कहै नानकु आनदु होआ सतिगुरु मैं पाइआ॥ (रागु रामकली महला ३)

चौथे गुरु रामदास जी की रचना पिछले तीनों गुरुओं से अधिक सरल और प्रवाह पूर्ण है। उसमे हिन्दी शब्दों का उत्तरोत्तर बाहुल्य है।

यथा —

सो पुरखु निरजनु, हरि पुरखु निरुजनु, हरि अगमा अगम अपारा
सभि धिआवहि सभि धिआवहि तुधु जी हरि सच्चे सिरजण हारा।
सभि जीउ तुम्हारे तू जीआ का दातारा।

(रागु आसा महला ४)

आवहो सत जनहु गुण गावहु गोबिंद केरे राम। गुरमुखि मिलि रहिए घर वाजहि सबद घनेरे राम॥
सबद घनेरे हरि प्रभु तेरे तू करता सभ थाई। अहिनिस जपी सदा सालाही साच सबद लिवलाई॥
अनुदिन सहजि रहै रगिराता रामनामु रिद पूजा। नानक गुरमुखि एकु पछाणै अवरु न दूजा॥

(रागु सूही छत हला ४)

१ इसका ठेठ हिन्दी रूप यह हो सकता है —

आनद भये मेरी माता, सुनि सतगुरु मै पाया, सतगुरु मिले सहज सनआ, मन में गवा बधाया।
अथवा आनद भये सुनि मोरी, माता सतगुरु मै पाये, सतगुरु मिले सहज सन आ, मन मे बजे बधाये।

इस पद के तेरे, तू, थांई, गावहु शब्दों का अधिक प्रयोग व्रज भाषा मे होता है। अथवा यों कहिये कि ये व्रज देशीय लोगों की हर समय की बोल चाल के शब्द हैं। गुरु अर्जुन देव की रचनाओं के समुचित अध्ययन से यह बात भली भाति समझ मे आ जाती है कि उनकी रचनायें लोक भाषा से उठ कर नागरिक भापा मे चली गई थी।

यथा —

जाको रामनाम लिव लागी।

सजनु सुहृद सुहेला सहजे, सो कहिए वड भागी। रहित विकार अलिप माइआते अहं बुद्धि विखु तिआगी॥
दरस पिआस आस एकहि की, टेक हिये प्रिय पागी। अचित सोइ जागनु उठि बैसनु अचित हसत बैरागी॥
कहु नानक जिनि, जगतु ठगाना सु माइआ हरिजन ठागी।

(रागु सारग महला ५)

इस पद मे केवल एक शब्द बैसनु लोक भापा (पजाव की जनपदीय भापा) का है।

इनकी रची हुई 'सुखमनी' का पाठ सिख घरों मे नित होता है। हमारे अपने विचार से वह अव तक की प्रार्थना सम्वन्धी हिन्दी रचनाओं मे सर्व श्रेष्ठ रचना है। उसका पाठ करते समय सहज ही आत्म विभोर हो जाना पडता है।

छटवे, सातवे और आठवें गुरुओं ने कोई रचनाएं नहीं कीं 'गुरु ग्रथ साहव' में पाचवे गुरु अर्जुन देव जी के वाद गुरु तेग वहादुर जी की वाणिया है। इनकी रचना की भापा पन्द्रह आना हिंदी है। ठेठ पजावी शब्दों (सज्ञा अथवा क्रियाओं) की इनकी भापा में वहुत ही न्यूनता है इसका कारण है कि गुरु लोग अव केवल पजाव के न रहकर समस्त उत्तरी भारत के गुरु वन चुके थे। उनकी शिक्षाओं के सुनने के लिए पटना से लेकर अनन्तनाग तक के लोग उत्सुक रहते थे। काशी, मथुरा और हरिद्वार में उनके सिद्वान्तों पर वरावर चर्चा होने लगी थीं। रचना माधुर्य्य मे इनके पद सूरदास से वहुत कुछ मिलते जुलते हैं। यथा —

"यह मन नैक न कहिओ करै।
सीखु सिखाइ रहिओ अपनी सी दुरमति ते न टरै।
मद माइआ के भइयो वावरो हरिजसु नहिं उचरै।
करि परपचु जगत कउ डहकै अपनो उदरु भरै।
सुआन पूछ जिउ होइ न सूधी कहिओ न कान धरै।
कहु नानक भजु राम नाम नित जाते काजु सरै।

इस पद मे नैक, कहिओ, (कह्यो) रहिओ (रह्यो), टरै, भइओ वावरो, डहकै, भरै, सूधी, कान धरैं, काज सरै, शब्द और वाक्य ठेठ व्रज भापा के हैं।[1]

इसी प्रकार उनकी रचनाओं मे मध्य देशीय अथवा सौरसैनी हिन्दी का ही प्रयोग है।

चू कि गुरु ग्रन्थ एक विशाल ग्रन्थ है। उसका अखण्ड पाठ किया जाय तो सौ से लेकर सवा सौ घटे लग सकते हैं। वैसे ग्रन्थी लोग (कथावाचक) सात दिन में पाठ पूरा किया करते हैं। इतने वडे ग्रन्थ का सागोपाग अध्ययन सव किसी के लिये सभव नहीं होता। अत यह आवश्यक है कि प्रत्येक गुरु और

१ नैक = तनक, जरासी। कह्यो = कहना (आज्ञा) रह्यो = रहा है। टरै = टलता, हटता। भइओ वावरे = पागल हो गया है। डहकै = ठगता है। भरै = भरता है। सूधी = सीधी। कान धरै = सुनना, मानना। काजु सरै = काम बनना

उनके उपदेशों का सग्रह अलग-अलग करके जनता तक पहुँचाया जाय। हिन्दी पाठकों के लिए उन अमूल्य उपदेशों के समझने मे कोई कठिनाई नहीं होगी और इस प्रकार हिन्दी साहित्य के भंडार मे वृद्धि भी होगी।

गुरु ग्रन्थ साहब मे जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग प्रत्येक गुरु ने किया है उसका वर्णन तो हमने कर दिया। अन्य संतों की भाषा के जो नमूने हैं उन्हे हिन्दी पाठक अन्यत्र भी देखते रहते हैं वैसे उनका वर्णन आगे के पृष्ठो मे हमने भी दे दिया है और थोड़ा सा प्रकाश भाटों की कविता पर भी डाल दिया है वैसे भाटो की भाषा के नमूने हर प्रात मे देखने को मिलते हैं। फिर यह संत और भाट सब के सब पंजाबी भी न थे।

कविता

अब हम यह देखते है कि 'गुरु ग्रन्थ साहब' मे जो कविता है। वह किस कोटि की है। अथवा किस ओर जनमत को ले जाने वाली है। तथा जिन छंदो अथवा रागों मे यह कविता कथी गई है उनके रूप और नाम क्या क्या है 'गुरु ग्रन्थ साहब' की अधिकाश रचना राग रागनियों मे है। उनका बहुत ही थोडा भाग सवैये, कवित्त, श्लोक और चौबोलों में है। इस प्रकार ग्रन्थ साहिब की रचना को हम दो भागों मे बाट सकते है। (१) सगीत अथवा राग भाग (२) छन्द भाग। ग्रन्थ साहब के दोनो ही भागो अर्थात् राग रागनियों और सलोक सवैयो आदि मे भी गुरुओं के अलावा अन्य सत और भगतजनो की वाणिया है जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्री कबीर जी—इनके तीन सौ से ऊपर पद रागनियों मे और २४० से अधिक श्लोक हैं।

(२) श्री फरीद जी—कबीर जी के बाद फरीद जी का स्थान है। रागों के तो इनके १० ही पद है किन्तु श्लोक १३० है।

(३) श्री नामदेव जी—कबीर जी की भांति ही इनकी वाणिया भी गुरु ग्रंथ मे अनेक रागो मे है जिनकी पद सख्या कम से कम १०० है।

(४) श्री रविदास जी—पद संख्या के लिहाज से उनका चौथा नम्बर है। कई रागो ही मे इनकी भी वाणिया हैं।

(५) श्री त्रिलोचन जी—इनके श्री गूजरी और धनासरी रागों मे ८ पद गुरु ग्रन्थ साहब मे है।

(६) श्री वैणी जी— रामकली और प्रभाती राग मे इनके ७ पद गुरु ग्रन्थ साहब मे है।

(७) श्री जैदेव जी—इनके गूजरी और मारूराग मे ६ पद गुरु ग्रंथ साहब मे हैं।

(८) श्री धन्ना जी—इनके भी ६ ही पद गुरु ग्रंथ साहब मे हैं जो कि आसा और धनासरी राग मे हैं।

(९) श्री राई बलंवड और डूमि के ८ पद रामकली की बार में है।

(१०) श्री भीखन जी—इनके दो पद सोरठि राग मे हैं।

(११) श्री सैणु—धनाश्री राग मे इनका १ पद है।

(१२) श्री पीपा जी—इनका भी धनाश्री मे ही १ पद है।

(१३) श्री रामानन्द—वसंत राग मे रामानन्द जी का १ पद है।

(१४) श्री सूरदास—सांरग राग मे सूरदास जी का १ पद है।

(१५) श्री सधना—इनका राग विलावल मे १ पद है।

(१६) एक नाम सारग राग मे परमानन्द और आता है किन्तु उस पद मे नानक नाम भी है इसलिये यह कहना कठिन है कि परमानन्द ईश्वर के लिये आया है अथवा कोई व्यक्ति ही है।

इन राग रागनियों में कौन से राग हैं और कौन सी रागनिया यह बता देना भी उचित ही होगा।

इनमें सिरी (श्री राग) बसंत, नटनारायन, भैरव राग और शेष रागनिया हैं। कौन रागिनी किस राग की है इसका पता राग शास्त्र इस प्रकार देता है—

गउडी (गौरी) मारू (मारवा) धनासिरी, देव गधारी, आसा, रागनिया हैं श्री राग की। टोढी रागनी हैं वसत राग की। कानडा रागिनी है पचम राग की। वैराडी गूजरी रागिनी है भैरउ राग की। मलार, सोरठि, रागिनी हैं मेघराग की, कल्याण, रागनी है नटनारायन राग की विलावल और रामकली रागनी हैं हिन्डोल राग की। केदारा, गौड रागनिया हैं, दीपक राग की।

राग शास्त्र के आचार्यों का एक मत ऐसा है जिसके अनुसार, जैजैवती, माझ, सूही जैतासिरी। और प्रभाव्रती क्रमश भार्या हैं। दीपक, मेघ, भैरउ, मालकोप हिंडौल राग की। इसका अर्थ है कि ये रागिनिया भी इन्हीं रागों का अग हैं। इसी प्रकार विहागडा श्री राग का पुत्र अथवा अग है। सारङ्ग मेघ राग का और विडहस मालकोप राग का (पुत्र) अग है। तिलग, माली गउडा, तुखारी, यह किस राग के अग है यह पता हमे नहीं लगा। वैसे सस्कृत साहित्य मे ३६ राग रागनिया है जिनमे से अनेकों के नाम भी लोप हो गये हैं।

इन राग रागनियों के गाने के मास, ऋतु और काल निश्चित है यथा —

भैरव राग क्वार कार्तिक महीने (शरदऋतु)में गाया जाता था। श्रीराग मार्गशीर्ष (अगहन) और पौप के महीने मे (हेमन्तऋतु) मे गाया जाता था। इसी प्रकार मालकोप राग माघ फागुन के (शिशिरऋतु) मे, हिन्डोलराग चैत्र, बैसाख के महीने (वसतऋतु) मे दीपक राग जेष्ठ आपाढ़ (ग्रीष्मऋतु) में और मेघराग श्रावण, भादवा (वर्षाऋतु) मे गाया जाता था। आज के देहात के लोग इन राग रागनियों को ऋतु अनुसार ही गाते हैं। ब्रज देश की स्त्रिया मल्हार श्रावण के ही महीने मे गाती है। चाहे जब नहीं।

'गुरु ग्रथ साहब' मे जो राग रागनिया है। उनके साथ तालों का उल्लेख नहीं किया गया है। इससे ऐसे गायक (रागी) को जो पजाब का न हो उन राग रागनियों को गाने मे प्रथम वार दिक्कत का सामना करना पडता है। कभी कभी तो वे यह भी कह बैठते हैं ग्रथ साहब की राग रागनियो मे ताल, ठाट, लय और ठेका किसी का पता नहीं। बात ऐसी नहीं है। उसमे लिखा अवश्य नहीं गया कि अमुक राग अमुक ताल के साथ गाया जाता है किन्तु राग शास्त्र के जानने वाले के लिये इन चीजो का उन रागों मे ढूंढ लेना कठिन नहीं है। यहा हम एक राग का हवाला देते हैं। ग्रथ साहब मे गुरु नानक की वाणिओं में भैरव राग मे एक पद यह है —

मनरे राम भगति चित लाईऐ।
गुरु मुखि राम नाम जपि हिरदै सहज सेति घर जाईऐ।
भरम भेद भउ कबहु न छूटसि आवत जात न जानी।
बिनु हरि नामु कोउ मुकति न पावसि डूबि मुए बिनु पानी।
धधा करत सगलि पति खोवसि भरमु न मिटसि गवाए।
बिनु गुरु सबद मुकति नहीं कबही अधुले धधु पसाए।

इस मे ताल 'तिताला' है और इस पद की ताल और लयों के साथ इसे बखूबी गाया जा सकता है।

करि अभिमान विषय सू राख्यो श्याम सरण नहि आयो ॥
यह ससार है फल सेमर को सुन्दर देखि भुलायो।
चाखन लाग्यो रूई उडि गई हाथ कछु नहि आयो ॥
कहा होत अब के मन सोचे पहले नाहि कमायो।
कहत सर भगवन्त भजन विनु सिर धुनि धुनि पछतायो।

हमे ऐसा भी जान पड़ता है कि गुरु नानकदेव ने प्रत्येक राग को आरम्भ करने से पहले दो पक्ति का पद दोहा अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य छद मे कहा है जैसा कि इसी पद "मनरे राम भगति चितु लाईऐ" के ऊपर "हिरदै नामु सरबु, धनु धारण" गुर परसादी पाईए है लेकिन ऐसा राग भैरउ के साथ ही है अन्य रागो के साथ नहीं। इससे जान पड़ता है गुरु नानकदेव ने अपने भैरव राग को सिंध भैरवी समेत लिखा है। आरभ मे सिध भैरवी की दो दो पक्तिया है फिर भैरव राग है।

हमे ऐसा भी जान पड़ता है कि गुरुओ के समय पंजाव मे—भारत की चार संगीत मतियों मे शिव मति का प्रचार अधिक था और मध्यभारत मे हनुमत अथवा कृष्ण मति का प्रचार था। किंतु गुरु ग्रथ साहव से पहले का पजावी भापा मे अथवा पंजावी सगीतज्ञ द्वारा लिखा हुआ कोई ग्रंथ (राग रागनियों का) उपलव्ध नहीं है। अत इस विपय पर अधिक नहीं लिखा जा सकता है।

और छन्द भाग मे चौपदे, चौवोले श्लोक, सवैये, दोहे और रागमाला के पद्य शामिल है। जिन राग रागनियों मे गुरुओं ने रचना की है उनकी सख्या और नाम इस भाति है। सिरी (श्री) माझ, गउड़ी (गौरी) आसा, गूजरी, देव गंधारी, विहागड़ा, वडहसु, सोरठि, धनासरी, (धनी श्री) जैतसरी (जैत श्री) टोड़ी, बैराड़ी, तिलग, सूही, मिलावलु, गौड़, रामकली, नटनाराइन, माली गउड़ा, वारू, तुखारी, केदारा, भैरउ, वसत, सारंग, मलार (मल्हार) कानड़ा कलियान (कल्याण) प्रभाती, जैजावती।

'जपु', 'सोदर', 'सुखिवड्डा' और सोहिला रागों मे नहीं वाधे गये हैं। ये रागों से विमुक्त हैं। कारण कि प्रार्थना प्रधान है। रागों का समय और लय होते है। प्रार्थना समय और लय से नहीं वाधी जाय तभी वह सर्व जन प्रिय और चाहे जव अलापने योग्य होती हैं।

गुरु नानकदेव की रचनाये समझने मे दुर्गम और पढ़ने मे क्लिष्ट अवश्य हैं किन्तु हैं वे वड़े ऊचे दर्जे की। उनमे भक्तिरस उसी भाति भरा हुआ है जिस भांति नारियल मे दूध भरा रहता है। उनकी जपुजी तो ईश्वर महिमा पर लोक भापा मे अद्वितीय रचना है। सोदर, सोहिला और आसादीवार भी भक्ति का प्रवाह पैदा करने वाली है।

गुरु अंगद जी की वाणी गुरुओं की वारों के वीच-वीच मे श्लोक, माझ, सोरठि, सूही, रामकली, सारंग आदि रागों मे है। इन्होंने प्रेम, विरह और वैराग्य का वडा सुन्दर दृश्य सामने रक्खा है।

तीसरे गुरु अमरदास जी की रचनाओं मे 'आनन्दु' ने आनन्दोत्सवों पर मंगल गायन का रूप धारण कर लिया है। यह रामकली राग मे है। इनकी भाषा रसदार और उच्च श्रेणी की है।

गुरु रामदास जी की रचनाओं मे 'सोपुरुखु' अत्यन्त प्रिय पद हैं। इनकी वारे और छंद भाव पूर्ण है।

गुरु नानक के पश्चात् सब से अधिक रचना गुरु अर्जुनदेव की है। इनके पदों की सख्या कई सैकड़े है। सुखमनी तो इतनी सुन्दर रचना है कि भक्ति की जैसी अमृत वर्षा वह करती है, वह बार-बार सराहने योग्य है।

गुरु तेगबहादुर की रचना मे वैराग्य की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। ससार का मोह कम करने की भावना आपके पदों के पाठ से सहज ही उत्पन्न होती है। अनित्यता सम्बधी इनके श्लोकों का पाठ सिख लोग मृतक सस्कारों के समय पर किया करते है। भाषा इनकी मजी हुई और प्रवाहपूर्ण है।

सिख लोग इन रचनाओं मे से जपु जी का प्रात काल जप अथवा पाठ करते हैं और उसके बाद आसादीवार का कीर्तन करते हैं। सध्या समय 'रहिरास' के पद गाते हैं और सोते समय कीर्तन 'सोहिला' का गायन करते है। कडाह परसाद बरताने और विवाह आदि के शुभ अवसरों पर आनद पढा जाता है।

'गुरु ग्रथ साहब' मे रागों के पश्चात् 'श्लोक सहसकृती' (श्लोक सस्कृत) आते हैं। इन श्लोकों के सम्बध मे हम इतना ही कहेगे कि जिस प्रकार गुरुओं ने अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिये पजाबी से इतर भाषाओं के शब्दों का पजाबी-करण किया था। तैसे ही सस्कृत शब्दों का भी पजाबी-करण किया है। जिससे उनके श्लोक यानी सलोक अति सुगम बन गये हैं। यद्यपि उनका सम्बंध न तो पडितों की सस्कृत से है और न अपभ्रष्ट सस्कृत से। महला १ अर्थात गुरु नानकदेव का रचा एक श्लोक इस प्रकार है।

पढि पुस्तक सधिआ बाद। सिल पूजसि बगुल समाध।
मुखि झूठु बिभूखन सार। त्रै पाल तिहाल बिचार।
गलि माला तिलक लिलाट। दोइ धोती बसत्र कपाट।
जो जानसि ब्रहम करम। सभ फोकट निसचै धरम।
कहु नानक निचसौ ध्यावे। बिनु सतिगुर बाट न पावै।

यह श्लोक वसन्ततिलका छद मे है। इस छद मे १४ मात्राएं होती है। वेदों के छदों को मंत्र और स्मृतियों अथवा पुराणों के छदों को श्लोक कहने की परिपाटी पड़ गई है।[1]

आगे वाले और इस श्लोक द्वारा गुरु नानकदेव ने ब्राह्मणों के थोथेपन का खाका खींचा है। और कहा है कि वे सध्या, विवाद प्रतिमा पूजन और समाधि आदि दिखावे के रूप मे करते है। उस परम ब्रह्म परमात्मा को नहीं पहचान सके है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र सब मे है।

चार सलोकों के पश्चात पाचवे गुरु अर्जुनदेव के ६७ सलोक हैं जिनमे ससार को नाशवान और ईश्वर को सत्य तथा गुरु की महिमा का वर्णन किया गया है। यह श्लोक अनेक वृत्ति छदों मे हैं। ५ वे महलाकी गाथा भी सलोकों में ही है जो २४ द्विपदी सलोकों मे समाप्त की गई है। इस गाथा मे गुरु अर्जुनदेव ने बताया है कि रुधिर, मज्जा हड्डी आदि से बनी देह पर अभिमान करना व्यर्थ है। यह मलीन देह कपूर और पुष्पगध से सुगंधित नहीं होती।

जीवन मे साधु सगति ही श्रेष्ट है साथ मे केवल यश जायगा, माया और नातेदार सब यहीं रह

१. मत्र के लक्षण—प्रयोग सबधित अर्थ का प्रकाशक वाक्य विशेष, द्रव्य देवतादि का प्रकाशक वाक्य विशेष श्लोक छदोबद्ध वाक्य विशेष चातुष्पाद. (न्याय के लक्षण सग्रह से।)

जावेगे, केवल 'गोपाल भजन' काम आयेगा। गोपाल गाथाही ऐसी है जो काम वासनाओका हरण करती है। हरीकीर्तन और साधुओं के वचन ही बड़े कर्म हैं। साध संगति भाग्यवानों को ही अच्छी लगती है नानक हरिनाम जपनेवाले को संसार सागर नहीं व्यापता है। यह जो वहुत ही गूढ़ गाथा है इसे कोई कोई ही जानता है। संसार की वासनाओं को छोड़कर गोविन्द का भजन और साधुओं की संगति यही सुमंत्र है, जो करोड़ों दुखों का नाश करने वाला है।

जो एकोंकार को हृदय मे रखते है। वह वड़भागी है और उनका सारा ही कुल उद्धर जाता है।"

इन श्लोकों के पढ़ने में आनन्द आता है और जितना ही अधिक पढ़ते है उतने ही अच्छे लगते है। वर्ण और मात्राओं की संख्या सीमा से इनमे से अनेकों सलोक मुक्त है और अनेकों सीमा के भीतर हैं। जो वर्ण और मात्राओं की सीमासे मुक्त है उन्हे मिश्रित छंद समझना चाहिये। भाई कान्हसिंह नाभा ने भी अपने 'गुरु छद दिवाकर' मे यही वात कही है। गुरु ग्रंथमे आई हुई कविताओ के सम्वन्ध में उनके लेख का सार इस प्रकार है—

कई गिआनी अखदे अते लिखदे हन कि गुरुवाणी
छद नियमा ते बाहर है, परन्तु इह उन्हां दी भुल्ल है।
हा असीं इह आख सकदे हा कि असीं गुरुवाणी दे
सारे छदा दे रूप नहीं जाणदे। अरु जिन्हा छदा दे लक्खण
असीं जान दे भी हा, उन्हा दे सारे रूपा दा ज्ञान नहीं
रखदे, खास करके मुक्तक छदां तो असी पूरे अणजाण हा। गुरुछद दिवाकर पृष्ठ २१, २२

इस गाथा के आगे अर्जुनदेव के 'फुनहे' है। इस प्रकार के फुनहे निर्गुण सम्प्रदाय के अनेकों संतों ने लिखे हैं। जो अध्यात्मिक होते हुए भी शृंगारिक हो गये है। गुरु अर्जुनदेव ने अपने "फुनहों" को मर्यादा मे ही रक्खा है और अध्यात्मिक ही हैं। इनकी सख्या २३ है। प्रत्येक फुनहा चौपदा है।

एक अनुपम रूपवती को लक्ष्य करके उन्होंने कहा है :—"तेरी मुँह की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता तू नानक के दर्शन से मोह गई है। इसके लिये वलिहारी। उस परमात्मा ने इस जीव को सव सिंगार सौंप दिये हैं। पिया की आसा और प्रेम की पिआस मे तैंने सेज विछाई है किन्तु प्रभु ने जो तेरे मस्तक मे लिखा होगा तो साजन पा जायगी। हे सखी, तैंने आँखों में काजल लगाया है, गलेको पुष्पहार से शोभित किया है। होंठों को पान की लाली से रंगा है। सोलह शृंगार किये हैं। जो घर तेरे कत (स्वामी) आगये तो सव कुछ पा लिया। और जो प्रभु (कत) नहीं आये तो सव शृंगार व्यर्थ जायगा। जिसका पति घर है वही वड़भागिनी है और वही सुहागिणी है। आशावान की आशा की पूर्ति सतगुरु की दयालता पर निर्भर है।

मेरा शरीर तो अवगुणों से भरा हुआ है। सतगुरु दयाल हो गये हैं इससे मन ठहर गया है। उसकी चंचलता जाती रही है। इस असार ससार से सतगुरु ही तार सकता है। जो पूरा गुरु मिल जाय तो आवागमन मिट जाता है।

पर स्त्री की ओर रावण की दृष्टि गई इससे उसको लज्जित होना पड़ा।

ऊपर आकाश नीचे धरती है। दसों दिशाएँ खुल पड़ी है, विजली चमकती है। परदेशो में ढूंढने से पति स्वामी नहीं मिलेगा जो मस्तक में लिखा है। उसके (सहज ही) दर्शन हो जायेगे अर्थात् मिल जायगा।"

इन पदों मे जीव को स्त्री रूप मान कर परमात्म-प्रीतम की दर्शन लिप्सा एवं मिलन इच्छा की झांकी कराई है।

इसी प्रसग मे गुरु अर्जुनदेव ने अमृतसर और रामदासपुर की सराहना की है और कहा है जो लोग बून्द-बून्द जल को भटकते फिरते है उन्हे अमृतसरमें जाकर स्नान और जलतृप्ति करनी चाहिये। अत मे कहा है। ईश्वर के लिये इधर उधर भटनता व्यर्थ है। वह तो प्रभु की शरण मे जाने से ही प्राप्त होगा और सब भव रोगों की औषधि राम नाम है।

फुनहे के पश्चात् इन्हीं पाँचवे गुरु अर्जुनदेव जी के चौबोले है। दो पदो के बध मे यह ११ हैं। इनमे गुरु अर्जुनदेव ने बताया है कि — ईश्वर प्राप्ति लग्न से होती है वैभव से नहीं।

महला ५ के चौबोलों के पश्चात् कबीर जी के श्लोक हैं। हमे ऐसा याद नहीं आता कि कबीर जी के श्लोक 'गुरु ग्रन्थ साहब' के अलावा कहीं अन्यत्र भी हैं। इन श्लोकों का प्रवाह अवश्य कबीर जी के दोहों से मिलता जुलता है। वैसे गुरु ग्रन्थ साहब मे जितने श्लोक हैं वे विभिन्न छदों मे है। यह हम पहले भी कह चुके है। किन्तु कबीर जी के श्लोक दोहा छद मे ही हैं। गुरु ग्रन्थ साहब मे कबीर जी के इन श्लोकों (दोहों) का पजाबी ढग ही है। छाया को छाइया, दिया का दिआ, रचाई का रचाइआ करके ही ग्रन्थ साहब मे लिखा गया है।

इन श्लोकों को क्रियाओं का ठेठ हिन्दी-करण करके पढ़ने से इनका अर्थ सहज ही समझ मे आ जाता है। सारी रचना हिन्दी शब्दों मे है किंतु चार-छ जगह पजाबी के शब्द भी आ गये हैं। यथा—

झुगीआ, (स० १५) छेक, हरुग (स० ३५) पडिवो (४५) खिथा (स० ४७) झीवर टोघने (स० ४६) तूठा (स० ५६) सा दरु (स० ६६) कुछ फारसो अरबी के भी इन श्लोकों मे शब्द हैं जैसे कि नउबति (नौबत) (स० ८८) कलम (स० ८१) गोर (सं० १२७) नापाक (स० १३६) मुला, मुनारे, बाग (स० १८४) सेख, सबूरी-हज, कावा, साबति, खुदाई (स० १८५) जोरी-जुलम हलाल, दफ्तर, हवाल (स० १८६) फुरमाई (स० १६७) खता-पीर (स० १६८) जवाब (स० २००) दीवान (स० २०१) इन श्लोकों मे राजस्थानी हिन्दी का भी एक शब्द मोकला (स० ५६) है।

कबीर जी के इन श्लोकों मे शाक्त लोगों की खूब खबर ली गई है। यथा.—

"कबीर वैसनउ[1] की बू[2]करि भली, साकत[3] की बुरी माइ।
ओह नित सुनें हरिनाम जस, उह पाप बिसाहन जाइ। (स० ५२)

'होनहार सो होइ है साकत सगि न जाउ'। (स० ६६)
साकत कारी कांबरी धोए होइ न सेत, (स० १००)
कबीर साकत सग न कीजिऐ (स० १३१)
साकत ते सूकर भला राखै आछा गाउ (स० १४३)

(सोराह महला ५ का १ अष्टपद)

इन श्लोकों से पता चलता है कि शाक्तों से कबीर साहब को उनके बलिदानों की हिंसा के कारण अत्यन्त घृणा थी। उनसे वह वैष्णवों को अच्छा समझते थे किन्तु यह नहीं कि वैष्णवों के उन्हे आडम्बर पसन्द हो इसलिए उन्होंने उनके लिए भी कहा।

साकत सगुन की जई पियारे जोका पार बसाइ।

१ वैष्णव २ कुतिया ३ शाक्त

जिसु मिलिए हरि निसरं पिम्रारे सो मुइ काले उडिजाइ ।

"कबीर वैसनो हूम्रा त किम्रा भइम्रा माला मेलीं चारि ।

बाहरि कचन बारहा भीतरि भरी भगार ।" (स० १४५)

इन श्लोकों मे वैराग और ज्ञान कूट-कूट कर भरा हुआ है। बड़ी गहराई और वेदना से तथ्यों को प्रकट किया गया है। गुरु और राम इनमे से प्रत्येक की अलग-अलग क्या उपयोगिता है। इस पर कबीर साहब ने यह निर्णय दिया है।

"कबीर सेवा कउ दुइ भले, एकु सतु एक राम, ।

राम जु दाता मुकति को, सतु जपावै नामु ।" (स० १६४)

राम मुक्ति देता है और सत राम का नाम जपाता है इसलिए दोनों की ही आराधना करनी उचित है। किन्तु इसमें पहले इन्हीं श्लोकों मे वे यह भी कहते हैं।

"कबीर साचा सतिगुरु किम्रा करं, जउ सिवा महिचूक ।

अंधे एक न लागहि जिउ बास, बजाहए फूक ।" (सं० १५८)

अर्थात् सतगुरु क्या करेगा जब सिख (चेला) ही लायक न होगा जैसे कि फूटे बास मे फूंक देने से बासुरी की आवाज ही आ सकती है।

हिन्दी मे ऋ, ॠ, ऌ, ॡ समेत ५२ अक्षर हैं। कबीर साहब ने इनके सम्बन्ध मे श्लोक १७३ में कहा है।

"कवन अखर सोधि हरि चरनी चित लाइ ।"

हमने कहा है कि गुरु ग्रन्थ साहब मे "सलोक भगत कबीर" के शीर्षक मे २४३ श्लोक हैं। किन्तु श्लोक २१६ के बाद एक श्लोक महला ३ अर्थात् गुरु अमरदास जी का है। श्लोक २२१ से २३३ तक ऐसे श्लोक हैं जिनमे भोग कबीर हैं महला ५ के भीतर। श्लोक २३४, २३५ ऐसे हैं जो कबीर के बनाये नहीं जान पडते उनमे भोग भी कबीर का नहीं है २३७ से २४० तक श्लोको मे कबीर का नाम है। २२१ वा श्लोक नामा (नामदेव) का और २४२ रविदास का तथा २४३वा सलोक फिर कबीर साहब का है।

'सन्त इतिहास' के लेखकों को इस बात मे सन्देह है कि कबीर साहब गुरु नानक के समय तक भी जीवित थे। फिर कबीर के वचनों का सग्रह गुरु ग्रन्थ साहब मे क्योंकर किया गया। इसके दो उत्तर है एक तो यह कि कबीर की विचार धारा नानक मत से मिलती-जुलती थी। दूसरे कबीर न सही कबीर पथी से तो नानकों का सम्पर्क पड़ा ही होगा। हमारे अनुमान से यह श्लोक राम रतन नाम के कबीर पंथी से संग्रह किये जान पड़ते है जो गुरु अर्जुन देव के समय मे पंजाब मे गुरु दर्शनों को आया गया होगा। इन श्लोकों में श्लेष से राम रतनु शब्द आया है यथा—

"कबीरा तू ही, कबीरु तू तेरी नाम कबीरु ।

राम रतनु तब पाईऐ, जदु पहले तजे सरीरु ॥ (स० ३१)

अर्थात्—तू ही कबीरा है कबीरु भी तू है नाम तेरा कबीरु है। राम पी रतन तो तब मिलेगा जब शरीर को त्याग देना। दूसरा इसका यह अर्थ है कि हे राम रतन! तुझे तेरा सतगुरु-कबीर बिना शरीर छोडे नहीं मिलने का। अर्थ वह तो परलोक मे है।

"कबीर राम रतनु मुख कोथरी पारख आगे खोलि ।

कोई आइ मिलैगो गाहकी लेगो महगे मोलि ॥ (स० २२५)

अर्थात—कबीर तू अपनी राम नाम के रतन वाली कोथरी (थैली) का मुँह किसी पारखी के सामने खोलना जिससे वह उसका अच्छा दाम चुका कर गाहकी करले। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि राम रतन कबीर-वाणी कोथरी का मुँह पारखियों के सामने ही खोला कर। जिससे उसके अमूल्य शब्दों का आदर हो। और कोई अच्छा सा गुण गाहक मिल गया तो अच्छे ही दाम देगा।

गुरु अर्जुनदेव अच्छे पारखी भी थे और दान दाता भी, इसलिये यह श्लोक उन्हे ही सबोधित करके कहा जान पड़ता है।

इन २४३ श्लोकों की कविता बहुत ऊँचे भावों वाली और प्रवाहशील है। विचारों को व्यक्त करने की शैली बहुत ही मनोहर है।

कबीर साहब के श्लोकों के पश्चात गुरु ग्रन्थ साहब मे 'शेख फरीद' के श्लोक हैं।

पंजाब में अजोधन (पाक पट्टन) के रहने वाले ख्वाजा शेख मुहम्मद के लड़के थे। इन का असल नाम शेख ब्रह्म अथवा इब्राहीम था। बाबा फरीद की औलाद में होने से फरीद ही यह भी कहलाते थे।

आदि फरीद की तरह यह भी ऊँचे थे। और उनकी ग्यारवीं पीढ़ी मे पैदा हुए थे।

गुरु ग्रन्थ साहब में इनके दो पद और १३० श्लोक हैं गुरु नानकदेव के साथ उनकी दो बार ज्ञान चर्चा हुई थी। इन्होंने उनसे एक बार कहा था अपने पास तो काठ की रोटी हैं जिसका उत्तर गुरु नानकदेव ने यह दिया था कि खाओ तो कुछ भी किन्तु वह पीड़ा देने वाला न हो।

कई पंजाबी लेखक इन्हे लहँदा भाषा का आदि कवि मानते हैं।

इनकी भाषा का झुकाव पजाबी की ओर है। यह श्लोक भी दोहों मे आबद्ध हैं। शेख फरीद के इन श्लोकों की सख्या १३० है जिनमें पहला अष्टपदी और शेष द्विपदी हैं। इन श्लोकों मे फारसी शब्दो की भरमार हैं क्रियायें भी शब्दों की पंजाबी भाषा मे ही हैं। इन श्लोकों के बीच १२ वे श्लोक के बाद महला ३ लिखा हुआ है किन्तु भोग शेख फरीद का ही है। श्लोक ८१ के बाद म० ५ लिखा हुआ है किन्तु प्रत्येक श्लोक मे नाम फरीद का ही है। श्लोक १०३ के बाद फिर महला ३ अंकित है। और श्लोक १०४ के बाद फिर महला ५ आरम्भ हो जाता है। श्लोक १०७, १०८, १०६, ११० सबके साथ महला ५ लिखा हुआ है। किन्तु इन सभी श्लोकों में फरीद का नाम है।

इन श्लोकों मे कुछ अति गहरे अर्थ वाले और कुछ सहज गम्य हैं कुछ मे आत्मा परमात्मा का वर्णन है कुछ उपदेश हैं।

कुछ नमूने—

जितु दिहाड़ै धनवरी साहे लए लिखाइ।
मलकु जिकनी सुणीदा मुहु दिखाले आइ।
जिंदु निमाणी कढिए हडा कू कडकाइ।
साहे लिखे न चलनी जिंदूकू समझाइ।
जिंद वहुटी मरण तरु लैजासी परणाइ।
आपण हथी जोलिकै गलि लगै धाइ।
बालहु निकी पुरसलात कनी न सुणी आइ।
फरीदा किडी पवंदई खडा न आपु मुहाई॥ (स०—१)

अर्थात—जिस दिन धन का व्याह होने वाला था उसका साहा पहिले ही लिखा जा चुका था। और जिस दूलहे की चर्चा थी वह मुंह दिखावनी कराने के लिये आ पहुँचा। हाडों को कड़का कर वह उस धन को अपने साथ ले जायगा।

उस बहू को समझा दे (कि वह रोये झींके नहीं) दूल्हा तो उसे व्याह कर ले ही जायगा (कारण कि साहा टल नहीं सकता।)

(विदा होते समय अब) वह किसके गले मे गलबहियां डालेगी क्या सुना नहीं कि वह दुलहन बाल से भी कोमल है। फरीद जब तेरा बुलावा आवे तो अपने को असमजस मे न डालना तुरन्त चलने को खड़ा हो जाना।

भाव यह है कि मौत का दिन निश्चित है काल रूप दुलहा आत्मा रूपी दुलहिन को उस मुहूर्त मे अवश्य ही ले जायगा। आत्मा को उस समय कोई सहारा रुकने का नहीं होगा। इसलिये फरीद तो पहले से ही तैयार है मौत चाहे जब आजाय।

× × × ×

फारीदा जे तू अकलि लतीफ काले लिखनु लेख,
आपनदे गिरीवान महि सिरु नीवा करि देखु, (सलोक ६)

अर्थ—फरीदा यदि तू बारीक अक़ल रखता है तो (दूसरों की बुराई के) काले लेख मत लिख क्योंकि तू अपने गरेबान को ओर देखेगा तो पता चलेगा तू स्वयम् कितना बुरा है।

× × × ×

फरीदा खाकु न निंदीए खाकू जेडु न कोइ।
जीवदि आ पैरा तलै मुइआ उपरि होइ॥ (स० १७)

अर्थ—फरीद खाक की निन्दा मत करो इसका जैसा कोई नहीं है जीवन मे तो यह पैरों तले रहती हैं मरने पर ऊपर छा जाती है। अर्थात एक दिन मिट्टी मे ही मिल जाना है।

श्लोक ३१ मे शेख फरीद और गुरु नानक के सवाल जवाब है।

शेख फरीद कहते है—

साहुरे ढोई नालहै पेइये नाही थाउ।
पिरु वावडी ना सुहाई धन सोहागिणी नाउ (स० ३१)

अर्थात्—सासरे मे ढोई न लेना उनका पता मिलता नहीं पति नहीं पूछता है फिर उस धन (स्त्री) का नाम सुहागिणी कैसे है।

गुरु नानक ने उत्तर दिया—

साहुरे पेइए कतकी कत अगमु अथाहु।
नानक सो सोहागिणी जु भावे वे परवाह। (स० ३२)

अर्थात्—सासुरे में कन्त कहाँ है वह अगम्य और अथाह है नानक वही सुहागिणी है जो निश्चिन्त है अर्थात् जानती है कि पिया दूर नहीं।

कविता की दृष्टि से शेख फरीद के यह श्लोक क्लिष्ट होते हुए भी सरस और मन को आकर्षित करने वाले हैं। इन श्लोकों में शृगार रस के माध्यम से भक्ति रस का सुहावना प्रवाह बहाया गया है।

शेख फरीद के श्लोके के बाद 'गुरु-ग्रन्थ' मे पाचवे गुरु अर्जुनदेव जी के सवैये हैं। इनमे हिन्दी

का पूरा प्रवाह है। गण और मात्राओं की परिसीमा से सदैव मुक्त हैं। इनकी सख्या ६ है। इनमें ईश्वर की प्राप्ति के लिए गुरु की शरण आने के लिये ससार भवर मे फँसे हुए लोगों को आमन्त्रण है। इनके बाद ही इन्हीं गुरु अर्जुनदेव के ११ सवैये और हैं। इनमे अन्तर यह है कि पहले ६ सवैया षष्ट पदी है और पिछले ११ चतुष्पदी। पिछले ११ सवैयों मे सतुलित प्रवाह यथेष्ट है। इन्हे मुक्त नहीं कहा जा सकता।[१]

इनके बाद प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम गुरु की प्रशसा मे भाटों के सवैये है। जिनमे कविता और भाव वैसे ही हैं जैसे यह लोग अपनी परम्परा से अपने यजमानों के करते आये है।

पहले महले के सवैयो मे कहा गया है—

"सन्तो के आधार और वर दाता एक परमात्मा के चरणों को हृदय मे धारण करके परम गुरु नानक के गुण गाता हूँ। उनके गुणों को सब कोई, जोगी, जगम, देवता, ऋषि, मुनि और सूरमा गाते हैं। जिनमें कपिल, कणादि अक्रूर आदि सब हैं। यहाँ तक कि शेप महेश और ब्रह्मा भी गाते हैं। गुरु नानक को सतयुग का वावन, त्रेता का राम, द्वापर का कृष्ण और कलियुग का नानक समझना चाहिये।

यह किसी कल नाम के कवि की कविता है।

'सवइये महले दूजे के' मे गुरु अगद की प्रशसा है। कवि कहता है जिसकी (लहणा की) दृष्टि अमृतमयी है जिससे क्षण भर मे कालोच उतर जाती है और तिमिर के नास होने से द्वार दीखने लगता है। जिन्होंने उनकी सेवा की है उनका भव भार हल्का हो गया है। (लहणा) तू राजा जनक का अवतार है। जो इस संसार में 'जल कमलवत' रहता है। उनकी दृष्टि से लोभ मोह का नाश होता है और प्राणी भवसागर से पार होने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। आदि आदि—

यह रचना भी कल नाम के कवि की ही है।

"सवइए महले तीजे के" मे गुरु अमरदास जो की स्तुति अथवा गुणगान है। कवि कहता है गुरु 'अमरदास' की सभी प्रशसा करते हैं, उनका यश सभी दिशाओ में छाया हुआ है।

कवि कल्युचरे जालपु और भिक्खे नाम के तीन कवियो ने गुरु अमरदास जी की प्रशसा से ये सवैये वनाये है—

'सवइए महले चउथे के' का रचियता ठाकुर हरदास का लडका कवि कल्य है। इस कल्पय ने ही कल नाम से पहले और दूसरे गुरुओं के सवैये भी वनाये हैं। इसने गुरु रामदास जी के लिये कहा है—

> 'जगत उधारण नव विधानु भगनह भव तारण।
> अमृत बूंद हरि नामु विस को विखो' निवारणु ॥"

है। पजम गुरु के सवैयों के रचयिता कल्य और मथुरा दो कवि हैं।

इन दोनो के सवैयों की बानगी इस प्रकार है।

> "जै जै कार जासु जग अन्दरि मन्दरि भागु जुगति सिव रहता।
> गुरु पूरा पायउ वड भागी लिव लागी मेदानि मरु सहता।

१. कबीर और फरीद जी की इन वाणियों के सिवा सलोक महिला ३ श्रीराग में कबीर त्रिलोचन भगत वेणी और और रविदास की वाणिया हैं।

भय भजन पर पीर निवारन कल्य सहारु तोहि जसु बकता।
कुलि सोडी गुर रामदास तनु धरम धुजा अरजुन, हरि भगता।"

(सवैया ६)

"कलि समुद्र भये रूप प्रगटि हरिनाम उधारनु।
वसहि सन्त जिसु रिद दुख दारिद्र निवारनु।"
निरमल भेख अपार तासु विनु अवरु न कोई।
मन वच जिनि जगिण अरु भयउ तिह समसर सोई।
मनि मथुरा कछु भेद नहिं गुरुअर्जुन परतख्य रूप हरि।

इन भाटों के सवैयो के बाद "सलोक वाराते वधीक" हैं। अर्थात वह श्लोक जो वारा मे नहीं कहे गये है।

यह श्लोक गुरु नानक देव के हैं। इनकी सख्य ३६ है जिन मे २८ श्लोक जिनका कि एक ही पद है गुरु अमरदास के है जिनमे कहा गया है "अमृतसरु सिफती दा घरु" क्योंकि इससे पहले २७ वे श्लोक मे गुरु नानक देव ने "उसका भी एक ही पद है" कहा था "लाहौर सहरु जहरु कहरु सवा पहरु"।

इसके आगे तीसरे गुरु अमरदास जी के श्लोक हैं। इनकी संख्या ६७ है। इनमे से कुछ उपदेश सवन्धी हैं। कुछ मे गुरुनानक की महिमा है और कुछ मे वताया गया है। वड़भागी वही है जिसके यहा सतगुरु का उपदेश और हरिचर्चा है—वे कहते है—

(१) अतिथि शकाशील नहीं होना चाहिए।
(२) दुखों का नाश शब्द ज्ञान से ही होता है।
(३) जवानी के जाने मे देर नहीं लगती, बुढापे मे कोई वात नहीं पूछता।
(४) सच्चा वसत तो वही है जहा हरीहरि है। क्योंकि विना हरिआली के वसत कैसा ?
(५) जोग न तो र गे कपड़ों मे न मैले कपड़ों मे उसे तो सतगुरु ही जानता है।

महिला ३ के श्लोकों के वाद महला ४ के श्लोक है। जो गिनती मे ३० हैं। गुरु रामदास जी ने इन श्लोको मे सत सगति और गुरु सिखी पर अच्छा प्रकाश डाला है।

इनके वाद पाचवे महले के श्लोक है जिनमे गुरु अर्जुन देव जी ने भारत के प्रसिद्ध राग मारु, सोरठि की सार्थकता वताई है और कहा है कि इनमे गुरु के शब्दों की आराधना हो रामनाम की महिमा गाई जाती हो, क्योंकि उनके समय तक इन रागो मे अधिकाश विरह वर्णन किया जाता था। इन दो श्लोकों से आगे अर्जुनदेव जी ने गुरु महिमा और नाम महिमा का वर्णन किया है इन श्लोकों की सख्या २२ है।

इनसे आगे ५८ श्लोको मे नवे गुरु श्री तेगवहादुर जी की अमृत वर्षा करने वाली वाणी है। जो ठेठ हिन्दी भाषा मे रची गई है। नमूने के तौर पर देखिए—

सग सखा सभ तज गये कोउन निवह्यो साथ।
कहु नानक इह विपति मे टेक एक रघुनाथ।

ये श्लोक प्राय दोहो मे आवद्ध है।

गुरु तेगवहादुर जी के श्लोकों के पश्चात् "मुदावणी महला ५" है। जिसमे कहा गया है। थाल के वीच तीन वस्तु है "सत, सतोष और ईश्वर का नाम जो अमर है। उसे ही प्राप्त करना चाहिए

ये जो तीन वस्तु है इनका आहार अथवा उपयोग करने वाले का उद्धार हो जाता है। ये तीनों वस्तुएँ छोडने की नहीं हृदय में रखने की हैं।

इस मुदावाणी के साथ ही गुरु अर्जुन देव जी का एक श्लोक और है। इस श्लोक के बाद ही सबसे अन्त में *राग माला है इसमें कहा गया है।*

एक राग की पाच स्त्रियां है। आठ पुत्र है। पहिले 'राग भैरउ को गाइये जिसके साथ ही पांचों रागनियों का भी उच्चारण करिये। भैरवी, विलावली, वंगाली और असलेखी ये पाच भैरउ राग की स्त्री हैं। पचम, हरख, विमाख, वगालम, मधु, माधव, ललित और विलावल ये भैरउ राग के आठ पुत्र है इन सब को क्रमश गाना चाहिये।

भैरव राग के पश्चात् "मालक उसक राग" (मालकोप राग) का गायन करै। इसके भी साथ इसकी पाचों रागनियों से गावै। गौडकरी, देवगधारी, गधारी, सीहुती (श्रीहुति) धनासरी (धनाश्री) ये पाच 'भैरउ' राग की स्त्रिया हैं। मारु,-मसत, अग (मस्ताग) मेवारा, प्रवल, चड, खटखट और भवरानद ये भैरउ राग के पुत्र हैं।

तीसरे नम्बर पर हिन्डोल राग का गायन करे। जिसकी पाच स्त्रियां और आठ पुत्र हैं। तेलगी, देवकरी, वमती, सदूर और अहेरी भैरों राग की स्त्रियों के नाम हैं। पुत्रों के नाम सुरमानन्द, भास्कर, चन्द्रविव, मगल, सरसवान, विनोदा, वसन्त और कमोद हैं।

हिन्डौल के पश्चात् दीपक राग के गाने की वारी है। कछेली, पटमजरी, टोडी, कामोदी, और गूजरी इसकी पाच स्त्रिया हैं और कालका, कुन्तस, रामा, कमल, कुसुम, चम्पक, गौरा, कानरा और कल्यान आठ पुत्र हैं।

सिरी राग (श्री राग) की पाच स्त्रियों के नाम वैरारी, करनाटी, गउरी, आसावरी, और सिधकी हैं। मालू, सारंग, सागरा, गौड, गभीर, गुड, कुभ, हमीर उसके आठ पुत्र हैं।

छटा राग मेघ राग है। जिसकी सोरठि, गोडमलारी, आसा, सुही पाच स्त्रिया और वैराधर, गजधर, केदारा, जवलीधर, नट, जलधारा, शकर और श्याम आठ है।

यह षट (छ) राग हैं जिनकी कि तीस रागनियां हैं और ४८ पुत्र हैं।

यह राग माला मनहरण छन्द मे है जिसके प्रत्येक चरण मे सोलह मात्रायें है प्रत्येक छद के अत में २४ मात्राओं वाले द्विपदी भूलना हैं। राग माला ठेठ हिन्दी मे है और सहज ही समझी जा सकती है।

उपदेश और शिक्षायें

वास्तव में तो 'गुरु ग्रन्थ साहव' प्रार्थना-ग्रन्थ है, 'किन्तु उसमे प्रसगवश उपदेश और शिक्षाये भी हैं। उन्हीं उपदेशों और शिक्षाओं मे से कुछ-एक हम यहाॅ उद्धृत करते हैं —

जो कुछ बोलो समझकर वोलो।

> "जितु बोलिऐ पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु।
> फिक्का बोलि विगुच्चणा सुनि मूरख मनि अजाणु॥" (श्री राग महला १)

वाणी संयम—क्योंकि फीका (व्यर्थ) बोलना (वाणी का) विगुच्चन है इस प्रकार के बोलने वाले को मूर्ख ही समझा जायगा।

ऐसा भी मत बोलो, जिससे पराई निन्दा होती हो :—

"पर निन्दा पर मलु मुख सुधी अगनि क्रोध चडाल ।" (श्री राग महला १)

अपने मुंह (वाणी) से जहाँ तुम पराई निन्दा से बचो, वहाँ किसी की स्तुति (खुशामद) भी मत करो । अर्थात् निन्दा और खुशामद दोनों को छोड दो ।

"उस्तुति निंदा दोहु त्यागे खोजे पद निरवाना । (गौडी म० ६)

"गुरमुख बूझै शव्द पतीज उस्तुति किसकी कीजै ।। (वसन्त महला ६)

क्योंकि जो न तो पर निन्दक हैं और न खुशामदी है । तथा जिन्हे लोभ, मोह या हर्ष शोक छू नहीं गये है। वे साधारण आदमी नहीं योगीजन है । यथा —

"पर निन्दा अस्तुति नहि जाकै, कञ्चन लोह समाने ।

हरख सोग ते रहे अतीता, जोगी ताहि वखाने ।।" (धनी श्री महला ६)

मन संयम—वाणी संयम जिस प्रकार व्यर्थ-भाषण और अस्तुति-निन्दा के त्यागने मे होता है। उसी प्रकार मन का संयम, काम, (वासना) लोभ, मोह, क्रोध और बुरे विचारों के छोड़ने से होता है। इस सम्बन्ध मे 'ग्रन्थ साहब' कहते है —

"काम क्रोध लोभ मोह तजारी, दृढु नाम दान, इसनानु सुचारी ।"

"लोभ, मोह मगन अपराधी, करणहार की सेवन साधो ।।" (सूही राम महला ५)

"परहर काम, क्रोध, झूठ, निन्दा, तजि माइआ अहँकार चुकावै ।

तज काम, कामनी, मोह तजै, ता अजन माहि निरजन पावै ।।" (महला ४ वार माझ)

"पर तिय रूप न पेखे नेत्र, साधु की टहल सत सग हेत ।" (गौडी सुख मनी महला ५)

सत संग—अच्छी सगति मे उठने बैठने का उपदेश हमारे देश मे अनन्त काल से चला आता है । एक हिन्दी कवि ने कहा है :—

"सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिये तुला एक अग ।

तुले न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत सग ।।"

गुरु ग्रथ साहब मे सत संग की काफी महिमा वर्णन की गई है ।

चौथे गुरु श्री रामदास जी कहते है :—

"जिउ चन्दन निकट वसे, हिरड बपुरा ।

तिउ सति सगति मिलि पतित परवारु ।।" (गौड राग)

अर्थात्—चन्दन के निकट बसने से जैसे अरंड आदि अन्य वृक्ष सुगधित हो जाते है। उसी प्रकार सतसग से पतित लोग भी पार हो जाते हैं ।"

इसी प्रकार पाँचवे गुरु श्री अर्जुनदेव जी ने कहा है :—

"खोजत खोजत सुनी इहि सोय ।

साधु सगति बिनु तरयो न कोइ ।।" (राग आसा)

इस सम्बन्ध मे गुरु नानकदेव ने एक और भी बात कही कि 'सतसग' भी वह श्रेयष्कर है जहाँ हरिचर्चा होती हो । यथा :—

सति सगति वैसी जाणिए, जिथै एको नाम वखाणिए ।" (श्रीराग)

सेवा—गुरु महानुभावों ने सेवा को भी पूरा महत्त्व दिया है । गुरु अगद और अमरदास की

सेवाओं की कहानियाँ ओजस्विनी हैं। गुरु नानकदेव ने तो कहा है कि यदि तुम ईश्वर के घर जाना चाहते हो तो।

"विच दुनियां सेव कमाइये।
ता दरगह बैसणु पाइए॥" (श्री राग)

श्री गुरु अमरदास जी ने कहा है —

"सति गुरु की सेवा सफल है जे को करे चितु लाइ।
मन चिन्दिआ फलु पावणा हउमैं विचहु जाय॥" (वारसोरठ)

अर्थात्—जो कोई श्री गुरु की सेवा चित्त लगाकर करेगा वह ससार मे मनोवाछित फल पायेगा।

जत्थे बन्दी—सिख पथ मे जत्थे बन्दी ही सिख समाज का जीवन है। जत्थे बन्दी ने ही उसे भारी सकटों से पार किया और उसी ने उनको ससार मे चमकाया है। ग्रन्थ साहब में मिल जुल कर रहने और आपस मे न लड़ने के काफी उपदेश हैं।

मिलि वे की महिमा वरनन साकूं, . (महिला ५)

भारत के आदि विधान निर्माता और समाज-व्यवस्थापक मनु ने धर्म के दश लक्षण बताये हैं।

क्षमा, सन्तोष और दया

धृति (धीरज) क्षमा, मन का दमन, पवित्र रहना, इन्द्रियों पर काबू रखना, विद्या पढना, प्रबुद्ध होना, सत्यवादी बनना, क्रोध को त्यागना और चोरी न करना। गुरुओं ने भी इन सभी बातों पर जोर दिया है उन्होंने कहा है अपनी कमाई पर सन्तोष करो। यथा —

"सम सन्तोष करहू जन भाई। खिमा रहहु सतगुरु सरनाई। (नारु महला १)
सहस खटे लख कउ उठ धावे। तृपत न आवे माया पाछे पावे।
अनिक भोग विखिया के करं। नहिं त्रिपतावं खपि खपि मरे।"
बिना सन्तोषु नहीं कोऊ राजे। सुपन मनोरथ बिरथ सब काजे। (म० ५ सुखमनी)

शील और क्षमा मनुष्य के लिये गुरु नानक की दृष्टि मे कितने महत्वपूर्ण थे? इसका अन्दाजा इस पद से लगता है—

खिमा गही व्रत शील सन्तोष। रोग न व्यापं ना जम देख।—(गौडी महला १)

काम क्रोधादि का त्याग

मनुष्य की इहलौकिक और पारलौकिक दोनों उन्नतियों मे लोभ, मोह, काम, क्रोध और अहकार सदा बाधक रहे हैं। सारे ही प्राचीन ऋषि, मुनियों ने इन्हें मनुष्य का शत्रु माना है। गुरु महानुभाव भी इन्हे परमात्मा के मार्ग मे विकट रोड़े मानते थे इसलिये बार-बार उन्होंने इनका त्याग करने का उपदेश दिया है। यथा—

"अवरि पच हम एक जना। किउ राखहु घर बार मना।
मारहि लूटहि नीत नीत। किस आगे करी पुकार जना। (म० १ राग गौडी)

अर्थात्, हम (जीवात्मा) तो अकेले है और हमारे शत्रु पॉच हैं। हे, मन इन्हे क्यो रख रहे हो? यह हमको प्रतिदिन मारते और लूटते हैं। किसके आगे इनके विरुद्ध फरियाद करें। कारण कि इसमें किसी दूसरे का क्या चारा है जब कि इन्हे घट भीतर पाल रक्खा है। गुरु अर्जुन देव तो इन पाच श ओं के सम्बन्ध मे कहते हैं —

चार वरन चउहा के मरदन, खट् दरसन कर-तली रे।
सुन्दर सुघर सरूप सियाने पचहु मोहि छलीरे।
जिनि मिलि मारे पच सूरवीर, ऐसे कउन वलीरे।
जिनि पच मारि विदार सो पूरा वह कलीरे। (आसा राग)

अर्थात्, चार वर्ण जिनके कि हाथ मे छ. शास्त्र हैं। उनका इन पाच शत्रुओं (विकारों) ने मान मर्दन कर दिया है। यह वहुत लुभावने हैं। इसलिये इन्होंने सबको छल रक्खा है। जिन्होंने इन पच विकारों को मार लिया है उन्हे मैं तो इस कलियुग मे वड़ा वली अर्थात् महापुरुष मानता हूँ। उन्होंने फिर कहा है:—

"निमख काम सुआद कारणि, कोटि दिनस दुखु पावहि।
घरी मुहत रग माणहि, फिरि वहुरि वहुरि पछतावहि।[1] (म० ५ राग आसा)

पल भर के स्वाद और घडी मुहूर्त के रग के करोडों दिन तक वरावर पछतावा ही रहे। ऐसे काम (वासना) को लोग क्यों न नमस्कार कर दे। यह इस वाणी का भावार्थ है।

क्योंकि काम-वासना से —"नरक वास अनेक योनियों का भ्रमण, चित्त का अपहरण, तीनों लोकों मे शोक और सारे जन्म मे किये गये जप, तप का नाश हो जाता है" यथा —

हे काम नरक विस्राम वहु जोनी भ्रमावणह।
चित हरण त्रैलोक गम जप तप सील विदारणह॥

इसी भांति क्रोध के वारे मे श्री गुरु रामदास जी ने कहा है—

"उना पासि दुआसि न भिटिए, जिनि अन्तरि क्रोध चडाल। (श्री राग)

उनके अडोस पडोस को भी मत छुओ जिनके हृदय मे चडाल क्रोध का वास है।

तीसरे गुरु अमरदास जी ने एक श्लोक मे लोभ के सम्वन्ध मे वड़े जोरों से कहा है.—"लोभी का वेसाहु न कीजे, जेका पार वसाई।" जिसका तनक भी वस चले वह लोभी का विश्वास न करे।

इसी तरह मोह के सम्वन्ध मे गुरुओं ने लोगों को सावधान किया है।

ऐ तू मोह डूवा ससार, गुरु मुख कोई उतरे पार— (आसा० महला १)
मोह की जेवरी वाधिउ चोर —(गौड़ी महला ५)
मोह मगन कूप अध ते नानक गुरु काढ —(विलावल महला ५)

अहकार के विनाश के लिये ग्रथ साहव मे अनेकों स्थल पर अनेकों चेतावनी हैं। यथा—गुरु अर्जुन देव कहते हैं।

"हे जनम मरण मूल अहकार पापात्मा।
मित्र तजति सत्रं द्रिडति अनिक माया विस्तीरनह।"

अर्थात् वार-वार के जन्म मरण का मूल कारण अहंकार ही है और यही ऐसा शत्रू है कि जिसके कारण मित्र भी साथ छोड़ जाते हैं और शत्रु मजवूत होते हैं। तथा इसीसे अनेक मायाओं का विस्तार होता है।

भारतवर्ष मे दान पुण्य की महिमा अनन्त काल से चली आती है। गुरु लोगों ने इस प्रणाली

१ छिन सुख लागि जन्म शत कोटी। परहि नरक महि तिय सम को खोटी।—तुलसीदास

दान पुण्य को पूर्ववत ही महत्व दिया है ग्रन्थ साहब मे इस सम्बन्ध में इस प्रकार प्रकाश डाला गया है—

"घाल खाइ किछु हथहु देइ । नानक राह पछाणहि सेइ ॥" (सूही महला ५)

अर्थात्—परिश्रम की कमाई को भी कुछ हाथ से देकर अर्थात दान करके खाना चाहिए। जो ऐसा करते हैं। वे ही भगवान के जानने वाले हैं।

दान देना मनुष्य के लिए उतना ही आवश्यक है जितना शरीर को स्वच्छ रखना और स्नान करना। तथा ससार से पार होने के लिये ईश्वर के नाम-स्मरण मे दृढ़ता। यथा—

"दृड़ नाम दान, इसनान सुचारी। कहु नानक यह तत विचारी।" (सूही महला ५)

आपे का सुधार

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे। निज अचरहि ते जन जग थोरे" की कहावत अति पुरातन काल से चली आती है। इस सम्बन्ध मे 'ग्रन्थ-साहब' कहते है—

"अवर उपदेसै आपु न करै। आवत जावत जन्मै मरै।"

अर्थात—"औरो को तो उपदेश करे किन्तु स्वयम उस पर न चले।" ऐसे लोग ससार मे बार-बार जन्मते मरते हैं। वह कभी भी मोक्ष नहीं पा सकते। क्योंकि ऐसे लोग जो "उपदेस करै, आपु न कमावै। तत सबद न पछाने ढंग के होते है।[1] इसलिये यह आवश्यक है कि—

"प्रथमे मन पर-बोधि अपना पाछे अवर रिझावै। (आसा महला ५)

सार्थक-निरर्थक

हमारे कौनसे काम सारवान है और कौनसे नि·सार अथवा कोनसे कर्म मिथ्या (व्यर्थ) है और कौनसे करने योग्य हैं। इस सम्बन्ध मे भी 'ग्रन्थ साहब' से अच्छा प्रकाश मिलता है। यथा—

"मिथिया स्रवन पर निंदा सुनहि। मिथिआ हसत पर दरब कउ हिरहि ॥
मिथिआ नेत्र पेखत त्रिअ रूपाद। मिथिआ रसना भोजन अनस्वाद ॥
मिथिआ चरन पर-विकार कउ धावहि। मिथिआ मन पर लोभु लुभावहि ॥
मिथिआ तन नहि पर उपकारा। मिथिआ बासु लेत बिकारा ॥"

(गौडी सुखमनी महला ५)

अर्थात्—वे श्रवण (कान) निन्दा योग्य हैं जो पराई निन्दा सुनकर प्रसन्न होते हैं। वे हाथ निंदनीय हैं जो पर द्रव्य को हरने में तत्पर होते हैं। उन नेत्रों को धिक्कार है जो पराई स्त्री के रूप लावण्य पर ललचाते हैं। वह जिह्वा भी किसी काम की नहीं जिसे भोजन मे स्वाद नहीं आता है। वे पैर अच्छे नहीं जो पराया अहित करने को दौड पड़ते हैं। वह मन झूठा है जो पराये पदार्थों पर लुभाता है।[1]

असल में तो —

"वह जिह्वा भली है, जो हरि गुण गाती है। वे कान अच्छे हैं, जिन्हे हरिकीर्तन सुनना अच्छा लगता है। वह सिर अच्छा है,जो गुरुजनों के चरणों की ओर झुकता है। वे नेत्र प्रशसा योग्य है जो साधु (भले आदमियों) के दर्शनों को लालायित रहते हैं। वे हाथ पवित्र हैं जो हरिकथा लिखते है। वे पैर पूजने लायक है, जो धर्म मार्ग पर चलते हैं।[2]

गुरुओं को बनावटी जीवन से बहुत घृणा थी। वे चाहते थे कि लोग सही मार्ग पर चलें और सही जीवन को अपनायें इस सम्बन्ध मे उनके उपदेशों का सार 'ग्रन्थ साहब' मे इस प्रकार है —

[1] आसा महला ३।

वनावटी जीवन

"करतूत पसू की मानस जाति। लोक पचार करै दिन राति ॥
बाहरि भेखु अन्तरि मल माइआ। छपसि नाहिं कछु करै छपाइआ ॥
बाहरि गिआन धिआन इसनान। अंतरि बिआपै लोभु सुआन ॥
अन्तरि अगनि बाहरि तनु सुआह। गलि पाथर कैसे तरै अथाह ॥
—(गौडी सुखमनी महला ५)

अर्थात्—जो रात दिन लोक-प्रपच मे लगे रहते हैं। वे मनुष्य-यौनि मे रहते हुए भी अपने कर्त्तव्यों के कारण पशु हैं।

उनका बाहरी भेस तो अच्छा होता है किन्तु अन्दर दुर्वासनाओं और दुर्भावनाओं से भरा होता है। वे अपनी करतूतों को चाहे जितना छिपाने का यत्न करें किन्तु वे प्रगट हो ही जाती हैं। जो बाहर मे तो बड़े ज्ञानी, ध्यानी और स्नान-पूजा करने वाले हैं किन्तु अन्दर मे लोभ रूपी कुत्ता बैठा रक्खा है। और जिनके भीतर तो (द्वेष की) अग्नि धधकती है किन्तु बाहर शांत दीख पड़ते हैं। गले मे (पाप का) पत्थर बाधे हुए, ऐसे लोग अथाह ससार सागर से कैसे पार होंगे।

१. मागृध कस्यास्विद्धनम्। (ईशावास्योपनिषद)

२ सा रसना धन धन्न है, मेरी जिन्दुडीए, गुण गावै हरि प्रभु के रे राम।
ते स्रवन भले सोभनीक हरि मेरी जिन्दुडीए, हरि कीरतन सुणहि हरि तेरे राम ॥ विहागडा महला ४

कहावतों द्वारा

'ग्रन्थ साहब' में कुछ ऐसे भी वाक्य समूह हैं जो उपदेश करते समय अनायास वन पडे हैं और अब मजे के साथ कहावतों के तौर पर प्रयुक्त किये जा सकते है। इनमें सूत्र रूप में वही उपदेश है जोकि मुहावरों व कहावतों मे पाये जाते हैं। यथा —

१—जब लग दुनिआ रहिए नानक किछु सुणिए किछु कहिए। —धना श्री महला १

अर्थात्—जब तक दुनिया मे रहना है, कुछ न कुछ कहना भी पड़ेगा और सुनना भी पडेगा।

२—विखिआ माते भरम भुलाऐ उपदेश कहिऐ किस भाई। —रामकली महला ३

अर्थात्—दुनिया तो विषयों मे डूबी हुई और भ्रम में भूली पड़ी है। उपदेश किसे किया जाय।

३ – इक कहि जाणहि कहिआ बूझहि तेनर सुघड सरूप। —वार सारग महला १

अर्थात्—एक कहना जानता है किन्तु सुघड़ (चतुर) वह है जो कहे हुए को समझता भी है।

४—परथाइ साखी महापुरख बोलरे साझी सगल जहानै। —वार सोरठ महला ३

अर्थात्—महापुरुष लोग प्रसंगानुसार ऐसी बात कहते है जो सारे संसार के काम की होती है।

५—अमृत छोडि बिखिया लोभाने सेवा करहि बिडानी। —श्री राग महला ३

अर्थात्—परमात्मा को छोड कर जो सासारिक विषयों मे आसक्त हो जाते हैं। वे वास्तव मे पराये दास हैं।

६—सुखिए कउ सभ पखे सुखिया
रोगी के जाणे सभ रोगी। (सोरठ महला ५)

अर्थात्—जो सुखी हैं उनके जाने सारी दुनियां सुखी है और जो रोगी हैं उनके जाने सारा ससार रोगी है।

७—जिउ मन देखहि पर मन तैसा—
जैसी मनसा तैसी दसा—प्रभाती अष्टपदी महला १

अर्थात्—जैसा तुम दूसरों के बारे मे सोचोगे। वैसा ही दूसरे तुम्हारे बारे में सोचेंगे। क्योंकि जैसी मनसा (भावनाएँ) होती हैं वैसे ही हालात बन जाते है।

८—आपुन बुरा मिटावे, ताहि बुरा निकट नहिं आवे।—गौरी बावन अक्षरी महला ५

अर्थात्—अपनी बुराइयों को मिटाने वाले के पास बुरे लोग फटकते भी नहीं।

'श्री आदि गुरु ग्रन्थ साहब' के बाद सिखों मे 'दशम-ग्रन्थ' का स्थान है। यह गुरु गोविन्द सिंह जी की रचना है।*

इस ग्रन्थ को विभिन्न विषयों का समुच्चय ग्रन्थ कहा जा सकता है क्योंकि इसके विषय स्वयम मे एक-एक पुस्तक हैं।

दशम ग्रन्थ के विषयों का विभाजन इस प्रकार किया जाता है—

(१) जापुजी, यह गुरु नानकदेवजी की रचना जपुजी का अनुसरण है। इसमे १९८ छन्द हैं जिनका पाठ प्रात काल की प्रार्थना मे सिख समाज मे किया जाता है।

(२) अकाल उसततु—(अकाल स्तुति) इसका पाठ भी प्रात काल ही होता है।

(३) विचित्र नाटक—इसके प्रारम्भ में गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपना ससार मे आने का कारण तथा वश वर्णन किया है। अनन्तर गुरुओ के मिशन और उन युद्धों का वर्णन किया है जिनमे स्वयम गुरु गोविन्दसिंह जी को लडना पडा था।

(४)—(५) इन दोनों भागों का नाम चडी चरित है। पहले मे महिसासुर, चड, मु ड, सु भ, निसु भ आदि दैत्यों के साथ हुए युद्धो का वर्णन है। दूसरे मे चडी विषयक अन्य बाते है।

(६) चडी दी वार—यह तीसरी पुस्तक भी चडी (देवियो) सम्बन्धी हैं। इसमें चडी विषयक वार्तायें हैं। यह गुरु गोविन्दसिंहजी की उत्कृष्ट पजाबी रचना है।

(७) गिआन प्रबोध—इसमे महाभारत कालीन राजाओं का साकेतिक वर्णन और परमात्म-बोध सम्बन्धी बाते हैं।

(८) चौबीस अवतारों की चौपई—इस भाग मे उन चोबीस अवतारों की कथाये हैं जिनका वर्णन हिन्दू-पुराणों मे काफी विस्तार से किया गया है।

(९) महदी पीर—इस भाग का नाम अब इसी शीर्षक से प्रसिद्ध है हालाकि ग्रन्थ मे नाम नहीं दिया गया है। इसमे कादियानी मुसलमानों की उस कल्पना का वर्णन है जिनमे कहा गया है कि कलगी अवतार के बाद महदी का अवतार होगा।

(१०) ब्रह्मावतार—इसमे, वालमीक, व्याम, कश्यप, वच्छ आदि ब्रह्मा के अवतारो की कथा है यह भाग भी इसी नाम से प्रकाश मे आता है। ग्रथ मे यह नाम नहीं दिया गया है।

(११) रुद्रावतार—इस भाग मे रुद्र अथवा शिवजी के अवतारो का वर्णन है। इस भाग का भी मूल ग्रंथ मे नाम नहीं लिखा है किन्तु अब इसी नाम से इस भाग को याद करते हैं।

(१२) शस्त्र नाम माला—इस भाग मे विभिन्न प्रकार के उन हथियारों की नामावली दी गई है जो महाभारत काल से लेकर गुरु जी के समय तक अस्तित्व मे थे।

* इसके कुछ स्थलो पर सिख विद्वान यह सन्देह भी प्रकट करते हैं कि वह स्थल वास्तव में दशम गुरु जी के हैं अथवा किन्हीं दरबारियो के।

(१३) श्री-मुख-वाक सवैये (बत्तीस) इन सवैयों मे वेद, पुराण और कुराण की आलोचना है।

(१४) हजारे-दे-शब्द--यह शब्द है तो कुल दस ही किन्तु बहुमूल्य समझे जाने के कारण हजारे के शब्द कहे जाते हैं।

(१५) स्त्री-चरित—दशम ग्रन्थ के इस भाग मे ४०४ स्त्रियो की चतुराई और कुटिलता का मनोहारी वर्णन है।

(१६) हकायता—अर्थात कथावा--इस भाग मे १२ गाथाये ६६६ श्लोको मे वर्णित है। शब्द अधिकांश मे फारसी के है।

इन दोनो महान् ग्रंथों के पश्चात् सिख-जगत मे भाई गुरुदास जी की वारा सवैये और कवित्तो का आदर है। कहा जाता है पाचवे गुरु अर्जुन देव जी ने भाई गुरुदास जी रचित वारां को सुनकर कहा था, 'तुम्हारी यह रचना गुरुमत पन्थ की कुंजी है।"

सुधारक अथवा विनाशक

समस्त गुरुग्रथ साहव, और दशम ग्रथ के पढ़ जाने के पश्चात् हम इसी निकर्ष पर पहुँचते हैं कि गुरु महानुभाव हिन्दू-धर्म, हिन्दू सस्कृति और सभ्यता के लिए सुधारक थे। विनाशक नहीं। उन्होंने हिंदुओं की उन्हीं रस्म रिवाज, मान्यताओं और कर्म विधियों के विरुद्ध कहा है जिनसे लोगों मे वास्तविक धर्म से अलगाव और ढोंग ढकोसलों में प्रवृत्ति बढ़ रही थी। कई स्थानों पर उन्होने बड़े मार्मिक शब्दो मे कहा है—

सासतर वेद न माने कोइ। आपो आपै पूजा होइ।
× × ×
गिआन धिआन कछु सूझै नाहीं, चतुर कहावें पडे।
× + ×
असख मूरख अध घोर। असख चोर हराम खोर।
× × ×
पढि पढि पण्डितु वाद बखाने भीतर होदी वसतु न जाने।
× × ×
भस्म चढावें करें पाखड। माया मोह सहें जम दड।
× × ×
इकि कद मूल चुणि खाहि वणखडि वासा।
× × ×
इकि भगवां भेस करि फिरिहिं जोगी सनियासा।

वेद और शास्त्रों के प्रति गुरुओं की स्नेहात्मक वृत्ति थी न कि विरोधात्मक। उन्होंने वेद के सम्बन्ध मे उससे कहीं अधिक अच्छे विचार प्रकट किये है जो कि अंग्रेजी पढ़े लिखे आज के हिन्दू विद्वान करते हैं। उन्होने कहा है—

पाताला पाताल लख आकासा आकास ।

ओडक ओडक भाल थके, वेद कहिंहि इक बात ।

अर्थात् लाखों आकाश और लाखों पाताल हैं। उसका भेद लेने मे सब थक गये। परन्तु वेदों ने उस सम्बन्ध मे एक बात कही है। अर्थात् "नहीं है ओर। नहीं है छोर"।

चच्चा चारे वेद जिन साजे चारे खान चार जुगान।

अर्थात् चारो युग चारो प्रकार की सृष्टि और चारों वेद ईश्वर ने ही उत्पन्न किये हैं।

चार वेद होय सचियार, पडे गुनी जिन चार विचार।

भाव भगति कर नीच सदावें, नानक तो मोखतर पावें।

अर्थात्—चारो वेद सत्य का कथन करते हैं यदि गुनी लोग उन्हे विचारपूर्वक और अपने को साधारण (नीच) समझकर भाव भगति के साथ तो वह मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

गुरु महिमा का वर्णन करते हुए भी उन्होंने वेदों की महत्ता इस प्रकार स्वीकार की है।

गुरु मुख नाद गुरु मुख वेद गुरमुख रहा समाई।

ईश्वर की महानता का वर्णन करते हुए जहा उन्होंने वेदों का हवाला दिया है वहा यही कहा है कि उसके बारे में निश्चयात्मक बात तो वेद भी नहीं कह सके है। अथवा वेद भी उसका गुण वर्णन करते हुए थक गये हैं इसका अर्थ यह नहीं कि वेद कुछ भी नहीं बल्कि यह अर्थ है कि ईश्वर के सम्बन्ध मे जो सबसे अधिक जानकारी रखने वाला वेद है वह भी उसे बताने और उसका गुणगान करने मे अपूर्ण रहा है। यही शब्द वेदों के महान् भक्त संत तुलसीदासजी को "नेति नेति कहि वेद पुकारें।" पद मे कहने पडे हैं।

वेदों के लिए जहा गुरुओ ने अच्छे भाव प्रकट किये है। वहा पुराणों का भी उन्होंने—आर्यसमाजियों की भांति—बहिष्कार नहीं किया है। अपने उपदेशों मे उन्होंने जगह-जगह पौराणिक कथाओं के दृष्टांत दिये हैं। यथा अहंकार की निंदा करते हुए उन्होंने बताया है—

अहंमे गरबु कीआ नही जानिआ। वेद की बिपति पडी पछुतानिआ।

\+ × ×

बलि राजा माइआ अहंकारी। जगन[1] करे बहु भार अफारी।

× × ×

हरीचंदु दान करै जसु लेवै। बिनु गुर अंतु न पाइआ भेवै।

\+ + +

दुरमति हरणाखसु दुराचारी। प्रभु नाराइण गरब प्रहारी।

प्रहलाद उधारे किरपाधारी।

भूलो रावण मुगधु अचेति। लूटी लंका सीस समेति।

सहसबाहु मधु कीट महि खासा[1]। हरणाखसु[2] ले नखहु बिधासा।

दैंत संघारे बिनु भगति अभिआसा।

जरासंध कालजमुन[3] संघारे। रकत बीजु कालुनेमु बिदारे।

दैंत संघारि संत निसतारे।

१, जगन = यज्ञ १ महिषासुर। २ हिरण्यकश्यप ३ कालियवन

बूडा दुरजोधन[४] पति खोई। रामु न जानिआ करता सोई।
कसु केसु[५] चांडूर न कोई। राम न चीनिआ अपनी मतिखोई। गौडी महला १

ईश्वर की महिमा का वर्णन करते हुए सोदरु (आशा राग) मे गुरु नानक ने कहा है तुझे साधारण जनों की तो बात अलग मनुष्यों के धर्माधर्म का लेखा रखने वाला चित्रगुप्त गाता है। महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्राणी और सारे देवी देवता गाते है। यथा—

गावति तुधनो ईसर ब्रहमा देवी सोहति तेरे सदा सवारे।
गावति तुधनो इन्द्र इन्द्रासणी बैठे देवतिया दर नाले।

इतना सब कुछ लिखने का हमारा अभिप्राय यही है कि गुरु लोग हिंदू धर्म का परिमार्जन चाहते थे। विनाश नहीं। वास्तव मे तो वे ब्राह्मणों द्वारा फैलाये जाने वाले ढोंग, ढपाले और ऊँच नीच के भावों के विरोधी थे। और इन मामलों मे उनका रवैया बहुत कुछ महात्मा बुद्ध से मिलता-जुलता है जिस प्रकार महात्मा बुद्ध ने ब्राह्मण के लिए कहा था कि सच्चा ब्राह्मण तो वह है जो दूसरों के प्रति उदार होता है तथा क्षमा, शील, सतोष और ज्ञान से शोभित है।

उसी भांति गुरुमत के संस्थापकों ने कहा था.—

"सो ब्राह्मण जो बिंदे ब्रहम। जपु तपु सजम कमावै करमु।
सील सतोख का राखै धरमु। बधन तोडे होवै मुकतु।

अर्थात्—ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म (ईश्वर) को पहचानता है। जप-तप सयम आदि शुभ कर्मों को करता है। तथा शील और संतोष को रखना अपना कर्त्तव्य मानता है। माया ममता के बधनों से छूटा हुआ है।

यदि देश मे ऐसे ब्राह्मण होते तो गुरुओं की आत्मा को पूर्ण सतोष होता और उन्हे उनके विरुद्ध एक शब्द कहने की आवश्यकता न पडती।

जब समाज के नेता गिरावट को प्राप्त होने लगते है तो समाज भी गिरने लगता है। उसमे अनेकों बुराइया पैदा हो जाती है। गुरुकालीन समाज मे वास्तव मे बुरायों की वृद्धि और अच्छाइयों की कमी हो रही थी। इसी से गुरु नानक और उनके परवर्ती गुरुओ ने हिन्दुओं की तत्कालीन बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाई और इसमे सन्देह नहीं कि उनके द्वारा बहुत कुछ परिमार्जन हिंदू लोगों की बुद्धि और बुद्धि जन्य संस्कारों मे हुआ भी।

हम काफी विचार के बाद इस नतीजे पर पहुँचे है कि जिस भाति शौनिक ने अपने समय तक फैले हुए, शैव, वैष्णव, नारदीय नारायणीय और भागवत धर्मो का-अपने द्वारा [१]सम्पादित-भारत ग्रन्थ मे समन्वय कर दिया था। और जिस प्रकार कि तुलसीदास ने रामायण मे सगुणोपासक और निरगुणोपासक शैव और वैष्णव धर्मों का समन्वय करने का प्रयास किया था। उसी भांति गुरु नानक देव ने उत्तर भारत मे फैली हुई धार्मिक विचारधाराओं का संस्कारित एव परमार्जित रूप ग्रन्थ साहब मे पेश किया है। हमे ऐसा लगता है कि उन्होंने इस बात के लिए गोष्ठियां (कान्फ्रेन्सें) भी बुलाई थीं। जिनमे सिद्ध-गोष्ठी का आभास ग्रन्थ साहब

समन्वयात्मक धर्म

४ दुर्योधन ५ केशी।

में भी मिलता है। उत्कृष्ट हिन्सावादी—जो नर बलि देने से भी नहीं चूकते थे—शाक्तों को छोड़कर उन्होंने कबीर पन्थियों, रैदासियों, नामदेव पन्थियों, धन्नाभगतियों, रामानंदियों और गोरख पथियों यहाँ तक कि सूफियों तक से विचार विनिमय किया और फिर इस प्रकार की अमृतवाणी (गुरु-मत) उनके सामने पेश किया जो सब का साझे का हो सके तथा जो ढोंग ढकोसलों से आच्छादित भी न हो।

यही कारण है कि गुरु नानक देव ने किसी भी धर्म-सम्प्रदाय की बुराई नहीं की अपितु जो-जो बातें उन्हें किसी धर्म-सम्प्रदाय में बुरी जँची उनकी आलोचना भर की। यही काम उनके परवर्ती अंगद अमरदास आदि गुरुओं का रहा।

गुरुमत पर लिखने से पहले हमें यह भी आवश्यक जंचता है कि गुरु महानुभावों ने किस धर्म-सम्प्रदाय की किन बातों को अनुचित समझा। और उनकी आलोचना अथवा नुक्ता-चीनी सुधार की दृष्टि से थी अथवा विनाश की दृष्टि से।

अन्य सम्प्रदायों की आलोचना

सब से पहली आलोचना गुरु नानक देव जी द्वारा यज्ञोपवीत की हुई थी। आरम्भिक आर्यों का उद्देश्य जनेऊ के सम्बन्ध में बहुत उच्च था। वे उसे शुभ कामों का प्रेरक मानते थे किन्तु गुरु नानक के समय में जनेऊ पहनने से लोग अपने को उच्च जातीय समझने लग पड़ते थे। इस प्रकार जनेऊ अहमन्यता का प्रतीक बन रहा था। उन्होंने कहा— दया कपाह सतोख सूत जतु गढी सतु वटु। ऐहु जनेऊ जीव का हइ त पाडे घतु।। श्लोक महला[1]

जनेऊ

अर्थात्—हमे तो दया रूपी कपास के सतोष रूपी सूत की जतों से गढ़ा (गूँथा) हुआ जनेऊ चाहिए।—वह नहीं जो दूसरों के प्रति हमारे मन में घृणा और अपने लिए माया-लोभ पैदा करता है।

गया में उन्होंने—पंडों के यह कहने पर कि अपने पितरों की शान्ति के लिए पिडदान तो कराइये—कहा था — पिंड पत्तल मेरी के सो क्रिया सच्च नाम करतार।

इत्थै उत्थै आगे पीछे यह मेरा आधार।।

पिडदान

अर्थात, मृतकों के लिये मेरे पास पिंड-पत्तल के नाम पर भगवान का सच्चा नाम है जो चारों तरफ व्याप्त है। (पितरों का) यह करतार का नाम ही सहारा है।

इससे पहले उन्होंने, कुरुक्षेत्र के स्नान-पर्व के समय भी जब कि लोग सूरज़ को जल-अर्पण कर रहे थे। करतारपुर की ओर पानी फेंकना आरम्भ कर दिया था, लोगों के पूछने पर बताया कि मैं अपने खेतों को सींच रहा हूँ। जब लाखों कोस दूर तुम्हारा जल सूर्य को मिल जायगा तो मेरा फेंका हुआ पानी कुछ ही-सौ मील पर मेरे खेतों में भी पहुँच जायगा।

जगन्नाथ पुरी में जब उनसे आरती में शामिल होने के लिए कहा गया तो उन्होंने कहा —

गगन में थाल रवि चन्द्र दीपक बने, तारका मडल जनक मोती।—
धूप मलिआन लो पावन चंवरा करे, सगल बनराय फूलन्त जोती।

आरती

अर्थात्, मेरे ईश्वर की आरती कुदरत करती है। गगन थाल है। उसमे चन्द्र और

[1] महाभारत ग्रन्य का पहला नाम जय और फिर भारत था। जब शौनिक ने जो, कि बौद्धकाल में हुआ है उसका सम्पादन किया तो उसका नाम महाभारत रख दिया क्योंकि उसने उसमें पर्याप्त सामग्री बढाई थी। देखो। महाभारत मीमासा सी० वी० वैद्य रचित।

सूर्य दीपक हैं, अनगिनत तारा गण माणिक मुक्ता हैं। वनों में फूलने वाली समस्त बनस्पतियों की झिल-झिलाहट (प्रफुल्लता) उसकी जोति है। उसके तो अनहद बाजे बजते हैं। सार यह कि तुम इस जरा से थाल में दीपक रखकर अथवा धूप, नैवेद्य डालकर तथा शंख घड़ियाल बजाकर जो आरती करते हो यह तो उस विराट पुरुष के लिए मजाक जैसी चीज है।

मूर्ति पूजा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था—"थापिआ न जाइ कीता न होय। आपे आपि निरंजन सोय।" अर्थात् न तो उसकी स्थापना हो सकती है और न उसे बनाया जा सकता है। वह आप ही आप निरंजन अथवा अव्यक्त है। उज्जैन के ओंकार मठ में उन्होंने पंडों से कहा था।

मूर्ति पूजा

"ओ ओकार ब्रह्मा उतपति। ओ ओकार कीआ जिनि चित।
ओ ओकार सैलजुग भए। ओ ओकार वेद निरमए।"

अर्थात्, तुम्हारे उस मन्दिर की मूर्ति जिस पर कि गंगाजल चढ़ाया जाता है। ओंकार नहीं है। ओंकार तो वह है जिसने ब्रह्मा को पैदा किया है। ओंकार तो वह है जिसने मन (चित) को बनाया है। ओंकार तो वह है जिसने ये विकराल पहाड़ पैदा किये हैं और युगों को बनाया है। ओंकार तो वह है जिसने वेदों (सर्व प्रकार के ज्ञान) की रचना की है।

गोरख पंथियों में उपासना का मुख्य आधार योग है। योग में भी वह हठ योग को प्रमुखता देते हैं। गुरु नानक देव ने हठयोग के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे।

हठयोग

"हटु निग्रहु करि काइआ छीज। वरतु तपनु करि मनु नहीं भीजे।
राम नाम सरि अवरु न पूजे॥

× × × ×

निउली करम खटु करम करीजै। राम नाम विनु विरथा सासु लीजै।

× × × ×

अनु न खाहि देही दुख दीजे। विनु गुरु गिआन तृपति नहीं थीजै।" —रामकली महला १

अर्थात्—इन्द्रियों के निग्रह (काबू करने) के लिये जो हठयोग करते हैं। उससे (लाभ तो कुछ नहीं) शरीर को छीजन (हानि) होती है। व्रत (उपवास) और तप (धूनिया लगाकर आग के सामने तपने) से मन तो नर्म होता नहीं। वास्तव में राम नाम के स्मरण से बढ़कर कोई योग, व्रत और तप नहीं है।

नेति, धोती, न्यौली आदि जो षट कर्म है। राम नाम के बिना सब व्यर्थ हैं।

निराहार (भूखे प्यासे रहकर) शरीर को ही दुख देना है। बिना सतगुरु के ज्ञान से मन की तृप्ति नहीं होती है।

जब भूखा रहना, तप करना, उपवास करना और इन्द्रिय निग्रह के लिये हठ करना योग नहीं है और उनके करने वाला योगी नहीं है तो योगी कौन है। इसका उत्तर नवें गुरु तेगबहादुर जी ने इस प्रकार दिया था—

योगी की परिभाषा

"परनिंदा अस्तुति नहीं जाके। कचन लोह समानें।
हरख सोग ते रहे अतीता। जोगी ताहि बखानें। (धनाश्री महला ९)

अर्थात्—जो पराई निन्दा से दूर रहता है, किसी की खुशामद नहीं करता है। जिसके लिये सोने और लोहे में कोई अंतर नहीं अर्थात् लोभ जिसे छू न गया है। और जो हर्ष और शोक से निवृत्त है ऐसा ही मनुष्य योगी है।

गुरु नानक देव योग को बुरा नहीं समझते थे। वे नाथ और जोगियों के जो योग सम्बन्धी पाखण्ड थे। उन्हे छोड़ने को कहते थे। किसी मत्स्येन्द्री पन्थ के जोगी से योग पर जो उनकी बातें हुई थीं। उनका आभास रामकली राग के महला १ से इस प्रकार चलता है।

सुनि माछिन्द्रा नानक बोले। वसिगत पच करै नहि डोलै।
ऐसी जुगति जोग कहु पालै। आपु तरै सगले कुल तारै।
सो अउधूत ऐसी मति पावै। अहिनिस सुन्न समाधि समावै।
भिखिआ भाइ भगति भै चलै। होवै सुत्रिपत सतोप अमूलै।
धिआन रूप होइ आसण पावै। सत नाम ताडी चित लावै।
आसा माहि निरास बुलाए। निहचउ नानक करते पाए।
दीखिआ दारू भोजन खाइ। दरसन की सोझी पाइ॥

अर्थात्—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार नाम के जो पाच विकार हैं। इन्हे वश मे करले और मन को कहीं न डुलावै, यदि ऐसी युक्ति का जोग करले तो आप भी तर जाय और अपने समस्त कुटुम्ब को निस्तार दे। सच्चा अवधूत वह है जो रात दिन शून्य में अपने चित्त को लगाये रहता है अर्थात संसार के आकर्पणों से एक दम अलग होकर आसन मार परमात्मा के ध्यान में मग्न रहता है।

भिक्षुक भाव की भक्ति पर चलै न कि जोर जबरदस्ती (हठ योग) की भक्ति पर। इससे आत्मा में सतोप और मनमें अमूल्य तृप्ति पैदा होगी।

ध्यान मग्न होकर आसन लगा सत्यनाम का त्राटक चित्त मे साधे। आशा मे उदासीनता (उन्मन अवस्था) धारण करले। अर्थात् आशा पूर्ति के लिये उतावल न रक्खे। नानक कहते हैं—इससे निश्चय ही परमात्मा की प्राप्ति होगी।

दीक्षा रूपी नशे का भोजन बनावे। अर्थात् गुरु उपदेश की मस्ती मे मस्त रहे। इसी में छै हों शास्त्रों का मर्म पाया जा सकता है।

गुरु नानक ने नकली साधुओं के लिये भी लताड़ा है और तीर्थों की निस्सारता *तिलक, छापे, तीर्थ, वेश* भी बतलाई है।

"जे आगे तीरथ ता मलु लहे छप्पडि नासै सगवी मलु लाए।
तीरथपूरा सतिगुरु जो अनु-दिनु हरि हरि नामु धिआए।

× × × ×

इकि कद मूलु चुणि खाहि वण खडि वासा। इकि भगवा भेसु करि फिरहि जोगी सनिआसा।
अन्तरि तृसना बहुतु छादन भोजन की आसा। बिरथा जनमु गवाइ न गिरही न उदासा॥

(सलोक महला १)

श्राद्ध (मृतक) पितरों की तृप्ति के लिये क्वार के महीने में हिन्दुओं मे जो श्राद्ध करने की प्रथा है। उसके सम्बन्ध में गुरु ग्रंथ मे ये शब्द हैं—

"आइआ गइआ मुइआ नाउ। पिछै पतल सदिहु काउ।
नानक मनमुख अन्ध पिआर। बाझु गुरु डूबा संसार।" —महला १ वार माझ

अर्थात—आने वाला तो चला गया। उसका नाम तक शेप नहीं। फिर उसकी गैरहाजिरी में पत्तल किसे देते हो।

गुरु नानक देव कहते हैं। मनमुखों (निगुरों) का यह अंधा प्यार है और वास्तविक बात तो यह है कि बिना अच्छे गुरुओं के सारा संसार ही डूब रहा है।

दर्शन

संसार में कोई भी ऐसा धर्म नहीं जिसकी कोई दार्शनिक भित्ति (दीवार) न हो। अपने भारतवर्ष में अनेकों धर्म-सम्प्रदाय हैं जिनमें एक सिख-सम्प्रदाय भी है। सिख लोग अपने धर्म-सम्प्रदाय को पथ अथवा गुरुमत कहते हैं। उनका भारत मे इस समय अपना एक अलग समाज है और ज्यों-ज्यो समय बीतता जाता है। उनकी यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि सिख एक अलग जाति है और उसका अपना अलग धर्म-ग्रथ है।

इस अलगाव (पृथकता) की नींव दूसरे गुरु अंगद के जमाने से पड़नी आरभ हुई। इसका मूल आधार गुरु महानुभाव अथवा सिख नेता न होकर हिन्दुओ के पुरोहित और पडित हुए। पठन पाठन का ठेका पंडे, पुरोहितों अथवा ब्राह्मणों के पास था। वे चाहते थे जिसे पढ़ने लिखने का अधिकारी समझते। चाहे जिसे नहीं। वेदात के प्रसिद्ध ग्रंथ विचार सागर के रचयिता श्री निश्चलदास (अठारवीं सदी) को काशी के पंडितों ने तब पढ़ाया। जब उसने अपनी असली जाति (जाट) को छिपाकर ब्राह्मण बताया था। गुरुओं के शिष्यों मे जाट, अरोडे और ऐसी ही कृषिकार जातियों के शिष्यों की सख्या अधिक थी। सस्कृत पंडितों की भाषा थी। जो कि देव नागरी में लिखी जाती थी अत गुरु अंगद जी ने एक नई लिपि को अपनाया। जो कि आगे गुरुमुखी के नाम से प्रसिद्ध हुई। गुरुओं ने जो भी उपदेश दिये वे सब इसी लिपि मे बद्ध किये गये। और शिष्य लोग इसी लिपि मे पढ़ने लिखने लग पड़े। इस प्रकार हिंदुओ के आचार्य अथवा अगुवा ब्राह्मणों से पंजाब के उन लाखों लोगों का अलगाव आरभ हो गया जो गुरुओ के शिष्य बनते जा रहे थे। यह पहला अलगाव था जो लिपि के माध्यम द्वारा हिंदुओं की उन धर्म पुस्तकों के पठन पाठन से हुआ जो कि सस्कृत भाषा और देव नागरी लिपि मे थीं।

दूसरा अलगाव गुरु रामदास जी के समय मे तब हुआ जब कि समस्त सिखों के लिये समान रिवाज और मर्यादाओं की बात सामने आई। यह सर्व विदित बात है कि ब्राह्मण लोग शूद्र जातियों के संस्कार नहीं कराते है। गुरु रामदास जी ने चार लावा रची जो आनन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिखों के विवाह सस्कार इन्हीं लावाओं को पढ़कर होने लगे। वैदिक आर्यो मे भी चार ही भावरें (लावां) पडती थीं। नामकरण और मृतक सस्कार भी सिखों ने अपने तरीके (किंतु गुरुओं के बनाए अनुसार) निर्धारित कर लिए। इस प्रकार सिखों के हिंदुओं से पृथक होने का यह दूसरा कदम था।

तीसरा अलगाव (पृथकता) पाचवे गुरु अर्जुन देव जी के समय मे हुआ, जब उन्होंने अमृतसर के तालाब को तीर्थ का रूप दिया। कुरुक्षेत्र और हरिद्वार जहां पजाब के बच्चे बच्चे के सर्वोपरि तीर्थ थे। वहा अब उन पजाबियों के लिये अमृतसर और तरन तारन के तडाग मुख्य तीर्थ हो गये।

चौथा अलगाव भेषभूषा का गुरु गोविंदसिंह जी के समय मे आरभ हुआ। केशों का अलगाव ऐसा अलगाव है, जो देखते ही बिन कुछ पूछे ताछे बता देता है कि यह व्यक्ति सिख है।

गुरु महानुभाव हिन्दुओं मे प्रचलित अनेकों ढोंगों को पसन्द नहीं करते थे। वे हिंदू-धर्म का सशोधन करना चाहते थे किंतु हिंदुओं के पेशवाओं अर्थात् ब्राह्मणों ने उनके इस कार्य मे रोडे अटकाये, उनकी मुखालफत की। यही नहीं मुस्लिम शासकों से उन्होंने और उनके प्रमुख अनुयाइयों ने चुगली की। इसमे

गुरुनानक और अंगद से पीछे होने वाले प्रत्येक गुरु को पीढ़ी दर पीढ़ी अपने शिष्यों को इन ब्राह्मण पुरोहितों के संसर्ग मे अलग रखने के प्रयत्न करने पड़े।

हमें विना हीलेहवालेके यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि सिख हिन्दुओंमे एक अलग उपजाति है। वैसेही जैसे कि जैन और बौद्ध हैं। और यह भी सच है कि वे अनेकों रिवाजें भी अलग रखते हैं। लेकिन वे नस्ल से उतने ही हिंदू हैं जितना कोई भी सनातनी जैन अथवा आर्यसमाजी हिंदू हो सकता है। व बातें जिनमें सिख हिंदुओं मे अपने को अलग घोषित करते हैं बहुत स्पष्ट हैं।

यथा:—

(१) वे बहुदेव उपासक नहीं है।

(२) वे अवतारों को ईश्वर नहीं मानते।

(३) उन्होंने अनेकों हिन्दू रीतियों को त्यागा हुआ है। यथा श्राद्ध और ग्रहों का पूजन और मुहूर्तों का प्रभाव।

(४) उन्होंने ब्राह्मण पुरोहितों की गुलामी से मुक्ति पा ली है।

(५) वे जाति पांति व ऊंच नीच के भेदों को पसन्द नहीं करते।

(६) उन्होंने दीक्षा का एक नया नियम अपना लिया है।

(७) उन्होंने अपने अलग तीर्थ और पूजा स्थान बना लिये है।

इसका मतलब है कि जहां तक सामाजिक रस्म रिवाज का सम्बन्ध है। सिख पौराणिक हिन्दुओं से काफी अलग हो चुके हैं किन्तु शेष बातें ऐसी हैं जो आज भी उन्हें हिन्दुओं से अलग नहीं कर सकी हैं। जिनमे से मोटी-मोटी यह हैं।

(१) उनके नाम सिंह और कौर पर रक्खे जाते हैं जैसे कि भारत के अन्य क्षत्रिय रखते हैं।

(२) उनकी दैनिक चर्य्या ठीक वैसी ही है—और गुरुओं ने उसका अत्यन्त क्रियात्मक रूप मे उदाहरण पेश किया था—जैसा कि मनु चाहते थे। "ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धेत"...

... ..."

अर्थात् अमृत वेला (ऊषा काल) मे उठो, शौच, स्नान, ध्यान करो और फिर काम मे जुटो।

दांत, केश, और नाखुनों को साफ रक्खो।

सोने से पहले प्रात सायं की भांति ही ईश्वर प्रार्थना करो।

(३) राम और कृष्ण उनके भी वैसे ही बुजुर्ग हैं। जैसे अन्य हिन्दुओं के। गुरु गोविन्दसिंह जी ने तो इस बात को बड़े जोर के साथ दुहराया था कि हम राम के पुत्रों—लवकुश की सन्तान हैं।[१]

(४) गुरु नानक से लेकर गुरु गोविन्दसिंह जी तक किसी भी गुरु ने किसी भी अभारतीय (गैर-हिन्दू) मजहब को नहीं अपनाया। जो कुछ भी उन्होंने कहा, वह अपनी ओर से कहा। अत जब वेदान्त के मानने वाले भी उतने ही हिन्दू हो सकते हैं। जितने कि मीमांसा के मानने वाले। तब गुरु ग्रन्थ साहब के मानने वाले अपने को लाख अलग समझते हुए भी हिन्दुओं से अलग नहीं हैं।

'गुरु ग्रंथ' भी हिन्दुओं का अपना वैसा ही निज ग्रन्थ है जैसा गीता, वेद अथवा भागवत है। 'ग्रंथ साहब' मे ऐसी कोई बात नहीं जो हिन्दुओं के लिये कल्याणकारी न हो।[२]

१ देखो विचित्र नाटक। २ पंजाब और सिन्ध के हिन्दुओं के लिये तो आज भी 'ग्रन्थ साहब' ही वेद है।

(५) सिखों की भाषा भी वही है जो पंजाब के अन्य हिन्दुओं की है।

(६) पंजाब के सिख और हिन्दुओं के नाते रिश्ते भी बराबर होते हैं।

भारत मे अनेक सम्प्रदाय हैं जिनकी अनेकों बाते आपस में नहीं मिलती हैं। ब्रज के एक हिन्दू और बंगाल के हिन्दू के खानपान और रहन-सहन मे बड़ा अन्तर है। रस्म-रिवाज मे अन्तर है।[1]

हम जिस विषय पर लिखने जा रहे थे। उससे इन बातों का कोई गहरा सम्बन्ध नहीं। प्रसंग वश ही यह बीच मे आगई।

हम "गुरु-मत-दर्शन" की चर्चा कर रहे हैं उसी पर हमे अब लिखना है।

किन्तु 'गुरु-मत-दर्शन' पर अब तक जितने भी देशी विदेशी विद्वानों ने लिखा है। वे असफल ही रहे हैं। यह केवल हमारी ही राय नहीं। पंजाबी में 'गुरु-मत-दर्शन' के लेखक प्रोफेसर शेरसिंह ज्ञानी ने भी इसी बात को पूरे ब्यौरे के साथ खोला है। विदेशी लेखकों मे डाक्टर ट्रम्प और मिस्टर मेकालिफ ने इस ओर लिखने की चेष्टा की है किन्तु वे सिखधर्म (Sikh Religion) पर ही प्रकाश डालने मे समर्थ हो सके हैं। सिख विद्वानों मे से भी कई ने इस ओर कलम उठाया है किन्तु वे भी दर्शन तक न पहुँच कर सिद्धान्तो और आदेशों तक ही चक्कर काटते रहे हैं।

इसका स्पष्ट कारण यह है कि सिख विद्वानों ने जिन्होंने इस ओर लिखने का प्रयत्न किया है। 'दर्शन' साहित्य का काफी अध्ययन नहीं किया। वास्तव मे दर्शन है क्या? जब तक यह न जान लिया जाय तब तक दर्शन का लेखक चाहे वह किसी भी पंथ का दर्शन लिखना चाहे सफल नहीं हो सकता।

इसके साथ ही हम जिस किसी भी पंथ या धर्म का दर्शन लिखना चाहे उसके लिये यह ज़रूरी होगा कि हम उस पंथ के देश के दार्शनिक-प्रवाह का अध्ययन कर ले। क्या वह व्यक्ति इस्लाम दर्शन को यथार्थ रूप में व्यक्त कर सकेगा, जो अरब के दर्शन-प्रवाह के इतिहास मे अनभिज्ञ है।

इस्लाम की दार्शनिकता को अधिक से अधिक सही रूप मे व्यक्त करने के लिए अरब के पुराने धर्मों-मूसाई, ईसाई, इसरायली और जिब्राइली—के दर्शन को जानना आवश्यक है।

इसी भांति हमे सिख-धर्म के दार्शनिक तत्वों अथवा 'गुरु-मत-दर्शन' को जानने के लिए भारत मे दर्शन उत्तरोत्तर विकसित होने अथवा विभिन्न शाखाओं मे फैलने वाले दर्शन का अध्ययन आवश्यक होगा।

इन्हीं दो बातों—दर्शन क्या है—भारतीय दर्शन उत्तरोत्तर किस प्रकार बहुमुखी हुआ—पर पहले हम थोडा सा प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

दर्शन क्या है?

जो वस्तुएँ हमे आँखों से दिखाई देती हैं। उनके सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी देने वाली विद्या को विज्ञान कहा जाता है और जो अदृश्य हैं जिन्हे हम न आँखो से देख सकते हैं और न कानों को जिनका बोध है। अर्थात् जो इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है। उनके सम्बन्ध मे जो हमे अनुभूति होती है। उस जानकारी को दर्शन

[1] दक्षिण में मामा की लडकी के साथ शादी कर लेते हैं। जौनसार बावर में बहुपतित्व प्रथा है। रिवाजो के इतने बडे अन्तर के बाद भी दक्षिण के लोग जब हिन्दू हैं तो सिख उनमें कहीं अधिक निकट हैं। आर्य समाजी जब हरि, राम, गोविन्द और गोपाल नामो को ईश्वर वाची नाम नहीं मानते किन्तु गुरुग्रन्थसाहब इन नामो को ईश्वर वाची समझता है तब सिख आर्य समाजियो की अपेक्षा कहीं अधिक हिन्दू हैं।

कहा गया है ? वैसे यह नहीं कि दर्शन दृश्य वस्तुओं की वास्तविकता पर भी प्रभाव न डालता हो।

ऐसी चीजें न जिनका पता कानों को है न आँखों को और न छूने मे आती हैं। और न सहज ही समझने मे। उनका नाम ईश्वर, जीव और प्रकृति अब तक के विचारकों ने बनाया है। इन तीनो चीजों के बारे मे अधिकतम जानकारी कराने वाली बाते ही दर्शन हैं।

ईश्वर क्या है ? कहाँ है ? उसका रूप रग कैसा है ? वह क्या करता है ? हमारे साथ उसके क्या सम्बन्ध हैं ? क्या हम उसे देख सकते है ? उससे मिल सकते हैं ? हम क्या हैं? जीव हैं तो जीव क्या है ? उसका अस्तित्व इस महान् संसार में क्या है। ससार के बनाने मे ईश्वर जीव का कितना हाथ है ? इसे क्यों बनाया जाता है ? क्या संसार का नाम ही प्रकृति है और प्रकृति क्या है ? वह जड है अथवा चेतन है ? आदि प्रश्न हैं ? इन प्रश्नों के उत्तरों और इस सम्बंन्ध की मान्यताओं का नाम ही दर्शन है।

मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है ? यह प्रश्न और इसका उत्तर दर्शन का फैलाव करते है। दर्शन का कतई फैलाव नहीं होता यदि मनुष्य के साथ मोक्ष का मोह दार्शनिक न बाँध देते।

ऐसे दार्शनिक तो अनेकों हुए हैं जिन्होंने कह दिया है कि ईश्वर नाम का कोई तत्त्व नहीं ? किन्तु ऐसे दार्शनिक कार्लमार्क्स से पहले एकाध ही हुए हैं। जिन्होंने मनुष्य जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य मोक्ष न बतलाया हो।

संसार मे दर्शन ग्रथ तो अनेक है। किन्तु दर्शन के केवल दो ही अग हैं। (१) भौतिक (२) आध्यात्मिक। पूर्व ने आध्यात्मिक और पश्चिम ने भौतिक दर्शन के विकास मे उन्नति की है।

दर्शन के सम्बन्ध मे यह हमारी अति लघु परिभाषा है। किंतु विषय को समझ लेने के लिये यह काफी ही है।

आर्यों के आदि ग्रथ ऋग्वेद मे जो दार्शनिक चर्चा है, वही भारतीय दर्शन का आदि रूप है। आदिम आर्य सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि और वरुण (बादलों) के प्रति बड़े कृतज्ञ थे। इनसे उन्हें बहुत कुछ मिलता था और आजतक सारी दुनिया को मिलता है। सूर्य से प्रकाश, जीवन-दायिनी विभिन्न ऋतुएँ चन्द्रमा से शीतलता और अमृतमयी वनस्पतियाँ, वायु से प्राण (श्वास प्रश्वास) अग्नि से स्वास्थ्य, हिंसक जीवों से रक्षा, और रात्रि मे प्रकाश वरुण अथवा बादलों से पानी। इसलिये वे इन्हे अपने जीवन का आधार होने के कारण अपना सबसे अधिक हितू समझते थे और इसी कारण उन्होंने इनकी प्रशसा मे अनेकों छन्द और गीत बनायें। जिन्हे वे अनेक प्रसन्नता के अवसरों पर बडे प्रेम से गाते थे। इन्हे वे देवता अर्थात् दिव्य-गुणों वाला कहकर पुकारते थे।

भारतीय दर्शन का इतिहास

कालान्तर मे इन देवताओं के प्रति अधिक आकर्षण ने इन्हे उनके सम्बन्ध मे जानने की उत्कठा पैदा की। इस उत्कंठा और जिज्ञासा के उत्तर जो उन्हे बहुत कुछ सोचने और विचारने के बाद मिले वही वेदों का दर्शन भाग है।

वेदों ने जितना दार्शनिक ज्ञान जगत को दिया। उसका सार इतना है। (१) सबसे महान् सत्ता ईश्वर है। जो सत, चित और आनन्दपूर्ण है। ईश्वर के बाद जीव अथवा आत्मा है। जो सतचित है। तीसरी सत्ता प्रकृति अथवा माया है जो केवल सत है।

सत क्या है ? इसको समझाने के लिये वेद ने कहा है—हमारे जो कान हैं। इनमे जो सुनने वाला

है। वही सत है। क्योंकि कान तो सुनने का स्थान (गोलक) है। सुनने वाला तो कोई और ही है। आँखों मे जो देखने वाला है वही सत है।

यह सत सजग है। आँख न रखते हुए भी देखता है। कान न रहते हुए भी सुनता है। अत. चेतन है।

जीव भी सत् चित है। वह आत्मा है। जब वह समझ लेता है कि मै वही हूँ जो यह सब कुछ है। तब वह परमात्म रूप हो जाता है। वेदों ने इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहा, उपनिषदो ने उसकी व्याख्या करदी। व्याख्या मे असल विषय बढ़ जाता है। इस सम्बन्ध की जानकारी भी बढी। अत. उसके पास पहुँचा जा सकता है या नहीं? और कौन सी दीवार है? जो हमे ईश्वर से दूर रख रही है। इसी का निपटारा उपनिषदो मे है।

षट-शास्त्र जो षड-दर्शन के नाम से मशहूर है और जिनके नाम वेदांत, साख्य, न्याय, वैशेषिक और मीमासा है। उन्होंने एक-एक विषय को लेकर दर्शन का विस्तार किया है।

वेदात ईश्वर और जीव दोनों को एक मानता है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने भी कहा था — "द्वैते एक रूप है गयो" (दशम ग्रथ) वे एक है। यह वह वड़ी गहन दलीलों से सिद्ध करता है। वह ससार को स्वप्नवत मानता है। वह कहता है। भ्रम का नाम ससार है। 'योग' परमात्मा के मिलने का एक मुख्य साधन चित्त की वृत्तियों को काबू मे करना बताता है और चित्त की प्रवृति काबू मे कैसे होती है? यही योग का मुख्य विषय है।

'मीमासा' दर्शन मे उन यज्ञ कर्मों पर विचार किया है। जिनके करने से मनुष्य का हित होता है। अथवा स्वर्ग-सुख प्राप्त हो सकता है। 'साख्य' के अर्थ गिनती के होते है। उसने २५ तत्वों पर विचार किया है। इस पच्चीस तत्वों मे ५ ज्ञानेन्द्रिय और ५ कर्मेन्द्रिय तथा ग्यारहवा मन भी शामिल है? यह कैसे बनती है? आदि पर इसमें विचार किया गया है।

वैशेषिक-शास्त्र मे परमाणुवाद को महत्व दिया है। संसार की रचना मे वह परमाणुओ को मुख्य मानता है।

'न्याय' मे ईश्वर को तर्कों दलीलों से सिद्ध किया गया है। न्याय का अर्थ ही तर्क (दलील) होता है। न्याय कहता है कि ससार परिमाणुओं (जर्रो) से ही बनता है। ठीक वैसे ही जैसे कि मिट्टी से वर्तन बनते है। किन्तु वर्तनों को बनानेवाला जैसे कुम्हार है। उसी भाति परिमाणुओं से ससार को बनाने वाला भी कोई है और वही परमेश्वर है।

दर्शन का यह प्रवाह जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है। सीधा तीर की भाति नहीं है। यह उस जलधारा अथवा नदी के पथ के समान है, जो अपने सामने आने वाली ऊँची-नीची, अथवा पहाड़ोवाली जमीन के आने पर बनाती है।

इस धारा को सबसे पहले शैव सिद्धान्तों ने अवरोधित किया। पुन. चारवाक, जैन और बौद्ध-सिद्धान्तों ने। चारवाक लोग मानते थे। ईश्वर नाम की कोई सत्ता नहीं। वह अदृश्य मे कोई विश्वास नहीं करते थे। चारवाकों का कहना था, न कोई आत्मा है और न परमात्मा। यह सारी सृष्टि चार महाभूतो—पृथ्वी, जल, तेज और वायु से बनती है। इन चारो के विभिन्न तरीकों और परिमाणो मे मिलने से विभिन्न प्रकार के प्राणी उत्पन्न हो जाते है।

बौद्ध लोग भी चारवाकों की भाति आत्मा परमात्मा को नहीं मानते थे। वे मन को सब कुछ

मानते थे। सृष्टि के सम्बन्ध में उनका कहना था कि आलय विज्ञान (साइंस के घर) से सारी रचना होती है। आलय विज्ञान की भांति ही वे प्रवृत्ति विज्ञान को महत्व देते हैं। उनका कहना है कि आलय विज्ञान की तरंगों से जड़ सृष्टि और प्रवृत्ति विज्ञान की तरंगों से चेतन सृष्टि बनती है।

जैन लोग आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। उनके विचार से मोक्ष प्राप्त आत्मा ही परमात्मा है। वे सृष्टि को पुद्गलों (सूक्ष्म जर्रों) से बनी मानते हैं। उनके मत के अनुसार जर्रों में रूप, रस और स्पर्श तीन गुण होते हैं। आत्मा और अणुओं के संयोग से वे सृष्टि का होना मानते हैं।

वैदिक दर्शन की जलधारा के सामने यह अवरोधन दर्शन-पहाड़ियाँ जब आईं तो उसका वही रूप हुआ जो पहाड़ों से नदियों का होता हैं। या तो उसके अनेक प्रवाह हो जाते हैं या मुड़ना पड़ता है।

हिन्दुओं के जो छ दर्शन—वेदांत, योग, मीमांसा आदि हैं वे एक नदी की विभिन्न धारायें हैं। जिनका आरम्भ मे (मूल) एक था और अत मे भी एक है।

छ हों दर्शनों में अलग-अलग बातों पर विचार किया गया है किन्तु छ हों के अध्ययन से एक पूर्ण निष्कर्ष बनता है।

'वेदान्त' ने जिसका अर्थ वेदों का अतिम भाग होता है। आत्मा और परमात्मा की एकता पर विचार किया है। 'मीमासा' ने जिसका अर्थ विचार अथवा मनन करना होता है। वेदों के उस कर्मकाड पर विचार किया है, जिससे मनुष्य जीवन सफल होता है। तथा मोक्ष मिलती है। 'योग' दर्शन ने उन तरीकों पर प्रकाश डाला है, जिनसे जीव (आत्मा) परमात्मा को प्राप्त करले। 'न्याय' ने दलीलों द्वारा ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित किया है। 'वैशेपिक' के परिमाणुवाद को स्पष्ट किया है, उसने बताया है, कि सृष्टि परिमाणुओं से बनती है वे परिमाणु कैसे हैं ? उनसे सृष्टि कैसे बनती है ? यह वैशेपिक का मुख्य विपय है। 'साख्य' जिसके कि अर्थ संख्या के होते हैं—ने बताया है कि यह सारा पसारा २५ तत्वों पर अवलम्बित हैं। जिनमे पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय, ग्यारहवा मन और पृथ्वी, जल, आकाश आदि पाच महाभूत शामिल हैं।

इन छ हों शास्त्रों का सगम होता है, श्रीमद्भगवत गीता मे आकर। वह मुख्यत. पडदर्शन का सार है।

दर्शन एक वड़ा गहन विपय है। इसे समझने के लिये जहा वड़ी बुद्धि की आवश्यकता है। वहा समझाने के लिये भी बुद्धि चाहिये। इसलिये यह ज्ञान विद्वानों तक ही सीमित रह गया। उधर बौद्ध और जैन धर्म बराबर बढ़ने लगे क्योंकि उनके अनुयायी बजाय दार्शनिक बातों के महात्मा बुद्ध और भगवान महावीर मे अधिक आस्था रखते थे। इनमे कोई सन्देह भी नहीं कि बौद्ध, जैन प्रवाहों ने वैदिक धर्म और वैदिक दर्शन को पीछे धकेल दिया था। हर नगर और हर गॉव मे बुद्ध और महावीर की पूजा होने लग पड़ी थी।

तब बुद्ध और महावीर के मुकाबिले हिन्दू पुरोहितों ने भगवान राम और कृष्ण को पूजा के लिये खड़ा किया और कहा गया कि राम और कृष्ण परमात्मा की-एक शक्ति विष्णु के अवतार हैं। बस ईश्वर के अवतार लेने की बात यहाँ से आरम्भ हुई।

इस कल्पना का प्रचार किया गया पुराणों द्वारा। इस उपासना पद्धति का नाम सगुण उपासना रक्खा गया। यहां से हिन्दू दर्शन की फिर दो धारायें हो गई। एक सगुण उपासकों की और दूसरी निरगुण उपासको की।

भारतवर्ष में इस समय हिन्दुओं के जितने भी सम्प्रदाय हैं, वे इन्हीं दो मुख्य धाराओं में बटे हुए हैं। दर्शन की यह दो धारायें "सतकाल" में जो ईसा की दसवीं सदी से अठारहवीं सदी तक का है और भी बलवती हुई।

अब तक के इस विवरण का नकशा इस भांति दिया जा सकता है।

अस्तित्व और गुण

(१) वेद के अनुसार
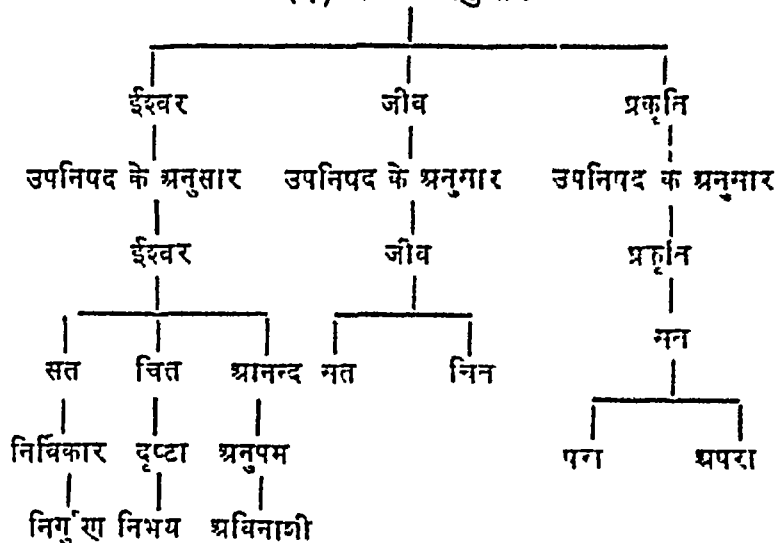
(२) वेद+उपनिषद के अनुसार

(३) ईश्वर के कार्य
वेद+उपनिषद्+षड-शास्त्र के अनुसार

सृष्टिकर्त्ता — सृष्टि नियामक — सृष्टि निर्णायक
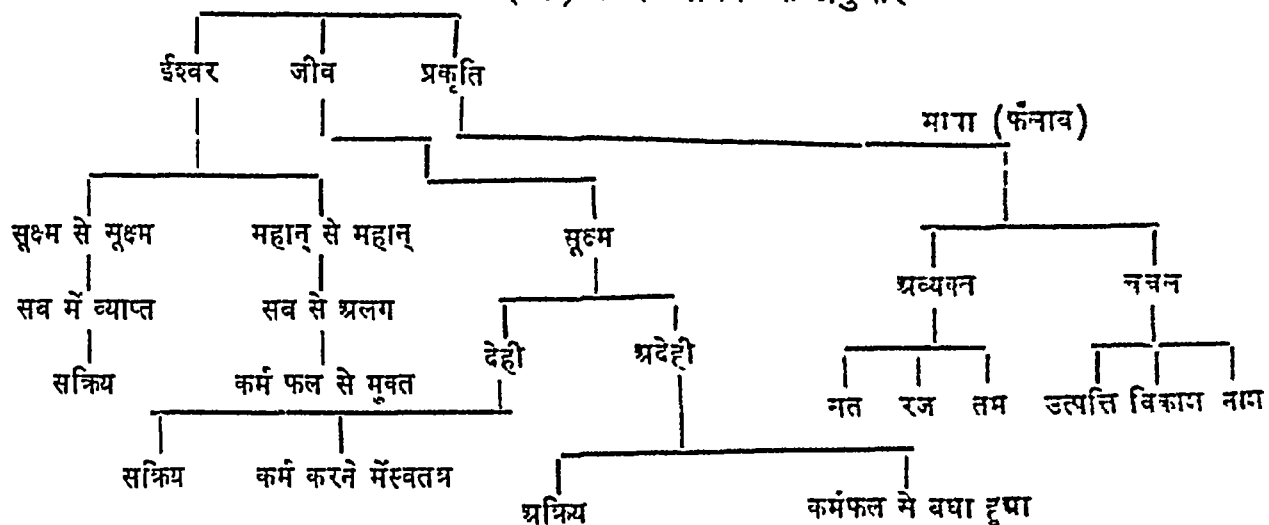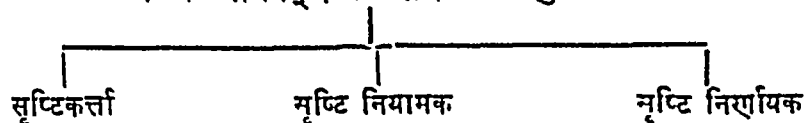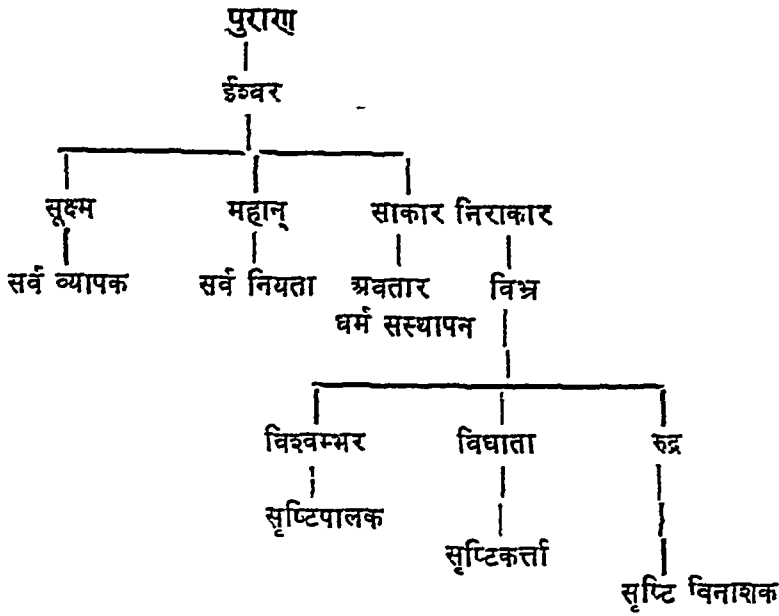
संतकाल में सगुण धारा के प्रवाहकों में बंगाल के चैतन्य, जयदेव, महाराष्ट्र के रामदास तुकोजी, उत्तर-प्रदेश के सूर, तुलसी, दक्षिण के रामानुज और माधव वल्लभ, निम्बार्काचार्य राजस्थान की मीराबाई। निरगुण पंथ के प्रवाहक कबीर, रैदास, नामदेव और गुरु नानक देव हैं। इनमें सगुण धारा पुराणों और निरगुण धारा वेद उपनिषदों के अधिक निकट पड़ती है ।

भारतीय दर्शन का यह संक्षिप्त सा इतिहास है। इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले हम यह यह और बता दें कि सत काल की यह धारा ईश्वर के सम्बन्ध में ही अलग हुई है। प्रकृति और जीव के बारे में निरगुणोपासक संतो ने अधिक विचार नहीं किया है। हां, उन्होंने ईश्वर प्राप्ति के कुछ सरल से मार्ग अवश्य नियत किये हैं। इस प्रकार निर्गुणी सतों का दर्शन ऐसे ढंग का बन जाता है जो पौराणिक भी है और वैदिक भी। अगले पृष्ठों में हम इसी दृष्टि से गुरमत पर विचार करेंगे।

सृष्टि-सृजन

सृष्टि की रचना किस प्रकार हुई ? इस प्रश्न के उत्तर मे गुरुओं ने कहा है —

साचे ते पवना भया पवनै ते जलहोइ।" —श्री राग महला १ घरु १
जल ते त्रिभवणु साजिआ घट घट जोति समोइ ।।

अर्थात्—उस सत (परमात्मा) से पवन हुआ। पवन से जल हुआ। जल से तीनों लोकों की रचना की। प्रत्येक घट (घटक, इकाई) मे उसी का प्रकाश संजोया हुआ है।

और

राती रुती थिती वार। पवण पाणी अगनी पाताल।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरम साल ।।
तिसु विचि जीअ जुगति के रग।
तिनके नाम अनेक अनन्त ।।

अर्थात्—तिथि, दिन, ऋतु (सूर्य्य, चन्द्र) हवा, पानी, अग्नि और पाताल आदि लोक बनाकर उसने इनके मध्य पृथ्वी की स्थापना की। पृथ्वी के बीच मे अनेकों प्रकार के जीव बनाये हैं। जो अनगिनत हैं और जिनके नाम (प्रकार) भी अनेकों है। और वास्तविक वात तो यह है कि—

"जल, थल, महीअल पूरिआ स्वामी सिरजन हार।
अनेक भाति होइ पसरिआ नानक एक कार।। —गौडी थिती महला ५

अर्थात्—अपनी इस रचना मे वह सृजनहार स्वयम पूर रहा (व्याप्त) है। पृथ्वी पर क्या जल और क्या थल सभी मे वह एक ओकार (परमात्मा) अनेक भाति से पसरा (फैला) हुआ है। और यही क्यो ? वह तो—

"आपे रसिआ आपुहि रस आपे रावणहारु।
आपे होवे चोलडा आपे सेज भतारु ।।
रगी रत्ता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि।—श्री राग महला ३ घरु ३

अर्थात—आप ही रस है और आप ही उन रसो का भोक्ता है। अथवा आप ही उन रसो का पैदा करने वाला है ?

आप ही काया (शरीर) हो जाता है और आप ही उस काया कामनी के साथ रमण करने वाला भरतार (जीव) वन बैठता है। वह रगीला अर्थात् अनेक दृश्य दिखाने वाला है। और जगत में जो भी कुछ है वह उसमे पूर्ण रूपेण रमा हुआ है।

इसी बात को ईशोपनिषद् कार ने इस भाति कहा था।

"ईशावास्यमिद सर्व यत्किच जगत्याम् जगत।"

अर्थात्—संसार मे जो भी कुछ है वह सब ईश्वर से आच्छादित है।

"साचे ते पवना भया, पवनै ते जल होय।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध मे प्राय यही मत उपनिषद्, और दर्शनो का भी है। 'गुरु-मत' कार 'साचे' (परमात्मा) से प्रथम ही पवन का होना मानते हैं। तैतिरीयोपनिषद् कार प्रथम आकाश और फिर पवन का होना कहता है। यथा —"आत्मन आकाश सभूत । आकाशाद्वायु । मायोरग्नि । अग्नेराय । अद्भ्य पृथ्वी । पृथिव्या ओपधय ।"—अर्थात् उस आत्मन (परमात्मा) से आकाश हुआ। आकाश से वायु हुई। वायु से अग्नि हुई। अग्नि से जल हुआ और जल से पृथ्वी हुई।

चूंकि आकाश अगतिशील अदृश्य और अविनष्ट है शायद इसीलिये गुरुओं ने उसकी उत्पत्ति पर प्रकाश नहीं डाला। वैसे एक स्थान पर यह कहा अवश्य है कि "पउण पाणी सुन्ने ते साजे।" किन्तु शून्य (आकाश) का प्रयोग संत साहित्य मे ईश्वर के लिये भी है।

सृष्टि कब रची गई। इसका विकास वादियों—भौतिक शास्त्र के जानने वालों ने—विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। हिन्दू ज्योतिष दर्शन ने एक लम्बा समय बताया है।[१] किन्तु गुरु नानक देव और उनके परवर्ती गुरुओं ने इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है—वह इस प्रकार है —

'कवणु सु बेला वखत कवणु कवणु थिति कवणु वारु।
कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु।
बेल न पाइआ पडिती जि होवे लेखु पुराणु।
वखतु न पाओ कादिआ जि लिखनि कुराणु।

२. लगभग पौने दो अरव वर्ष।

तिथि वारु न जोगी जाणै रुति माहु न कोई ।
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई । (जपुजी)

अर्थात्—किस समय, किस महीने, किस ऋतु और किस तिथि वार मे सृष्टि रची गई। न तो उसका पता पंडितों को है न काजियों को, क्योंकि पुराण और कुरान जिन्हे कि लिखते और पढ़ते है इस सम्बन्ध मे कुछ नहीं बताते। योगियों को भी सृष्टि रचना के काल का पता नहीं है। इसे तो सही रूप मे वही जानता है जिसने इसे रचा है।

और यह प्रश्न तो ऐसा ही है जैसे कि कोई पुत्र से उसके पिता के जन्म के तिथि मुहूर्त्त पूछे।[1] जिसने इसे रचा है वही इसके रचना काल को जानता है और तो केवल विचार (अन्दाज) ही कर सकते हैं।[2] यही बात गीता मे श्री भगवान कृष्ण ने भी कही थी। यथा—

"न मे विदु सुरगणा. प्रभवं नमहर्षय. ।
अहमादिहि देवाना महर्षीणां च सर्वश ॥" (अध्याय १० श्लोक २)

अर्थात्—मेरी (ईश्वर) की उत्पत्ति (रचना) के सम्बन्ध मे देवता और ऋषि मुनि भी नहीं जानते क्योंकि देवता और ऋषि मुनि मुझ (परमात्मा) से पीछे ही तो पैदा हुए हैं, उन सबका आदि पुरुष तो मैं (परमात्मा) ही हूँ।

सृष्टि की उत्पत्ति कहाँ से होती है और फिर प्रलय काल मे यह सब भौतिक पदार्थ कहाँ चले जाते हैं? इस सम्बन्ध मे 'गुरुमत' इस प्रकार है.—

"उतपति परलउ सबदे होवै । सबदे ही फिरि ओपति होवै । (माझ महला ३)

अर्थात्—उत्पत्ति और प्रलय शब्द (परमात्मा) से होती हैं। और प्रलय और उत्पत्ति के बीच के समय मे सभी भूत उसी परमात्मा मे आरोपित रहते हैं।

"इकस ते होइउ अनंता । नानक एकस माहि समाये जीउ ।"—माझ अष्टपदी ५ महला ५

जिस प्रकार उत्पत्ति काल मे वह एक से अनेक होता है। उसी भांति यह सब कुछ प्रलय काल मे उस एक (परमात्मा) मे ही समा जाता है।

ईश्वर के सम्बन्ध में

सृष्टि प्रकरण मे हमने जो 'गुरुमत' के सृष्टि रचना सम्बन्धी हवाले दिये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह संसार जो हमारे सामने है। यों ही नहीं बन गया। इसका भी बनाने वाला है। और वह बनाने वाला कोई साधारण पुरुष नहीं अपितु मानव सृष्टि के प्रथम जनक ब्रह्मा का भी बनाने वाला है। विद्युत से अधिक गतिवान मन को भी उसी ने बनाया है। उसी ने ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों को बनाया है और उसी ने (सूर्य चन्द्र बनाकर) युगों का निर्माण किया है। संसार के प्रथम ज्ञान-ग्रन्थ वेदों को भी उसी ने बनाया है।[3]

१. 'पिता का जनम कि जानै पूत । सगल परोई अपने सूत ।
जिसकी सिरठी सो करणै हार । अवर न बूझ करत बिचारे । (गौरी सुखमनी महला ५)

२ लगभग पौने दो अरब वर्ष ।

३. "ओ ओंकार ब्रह्मा उतपति । ओ ओंकार कीआ जिनि चिति ॥
ओ ओंकार सैल जुग भये । ओ ओंकार वेद निरमये । (रामकली महला ?)

उस महान् निर्माता का नाम क्या है ? इसका उत्तर प्रत्येक काल मे भारत के ऋषियों, मुनियों और धर्म संस्थापकों की ओर से यही दिया गया है कि उसका नाम "ओं" है। जिसे भारत के पौराणिकों ने "ॐ" शैवों ने ऊँकार, जैनियों ने 'ॐ', आर्यसमाजियों ने 'ओ३म' कह के पुकारा और लिखा है गुरु नानक देव ने कहा वह '१ ओंकार' है। चूकि वह सृष्टि के आदि से है। युगो के आदि से है। अब भी है। आगे भी रहेगा। अतः उसका नाम 'सत है।[1]

नाम

अत्यन्त आदिम युग मे जब कि ज्ञान का प्रवाह आरम्भ ही हुआ था। ऋग्वेद के एक ऋषि ने भी यही कहा था—एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात्—उस सत को जो एक ही है–विद्वान लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। (ऋ० १, ३, ६४, ५६ और १०-११४-५) अनेक नामों से पुकारने का कारण उस 'सत' अथवा 'एकोंकार' के वे गुण और कृपाये हैं जिनका कि मनुष्य-समाज आभारी है। और कभी भी किसी भी युग मे उऋण नहीं हो सका है और न हो सकता है। वेद ने जहाँ उसे ब्रह्म, आत्मा, ईश, सत्य अमृत, भव स्व जन तप और मह आदि विशेषणों से याद किया तथा जहाँ उसे इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु, रुद्र आदित्य संज्ञाये दी। वहाँ पुराणों ने उसे विष्णु, नारायण, विश्वम्भर, लक्ष्मीपति, त्रिलोकी नाथ, असुर निकन्दन, हरि, आदि नामों से पुकारा। भक्तिकाल मे राम, कृष्ण, दामोदर मुरारे, माधव, गोविन्द, गोपाल, दीन दयाल, कृपानिधान आदि मधुर नामों से उसे स्मरण किया जाने लगा।

गुरु नानक और उनके परवर्ती गुरुओं ने अपने समय के जन साधारण में प्रचलित सभी (परमात्म-बोधक) नामों को अपना लिया। उन्हीं विभिन्न नामों से हरि-स्मरण की प्रणाली डाली इसके अलावा उन्होंने मुसलमानो द्वारा प्रचलित अल्लाह और रब आदि नामों को भी गुरु-ग्रंथ साहब मे स्थान दिया।[2]

'गुरु-ग्रथ साहिब' और 'दसम् ग्रथ' मे परमात्मा के जो नाम आते है उनकी सूची इस प्रकार बन सकती है—

"एकोंकार, सत, अकाल पुरुष, हुक्मी, साहिब, दातार, निरजन, गुणनिधान, करता, निरंकार, गोविन्द, नाथ, सिरजनहार, जगदीश, राम, सँवारनहार, हरि, माधव, अगमागम, अपारा, दुःख विसारणहार, ठाकुर, पारब्रह्म, बे अन्त, (अनन्त), भगवन्त, निरभय, देवणहार, अविनाशी, परमेश्वर, प्रभु, अन्तरजामी विधाता, करतार, सच्चा पातिसाह, मुरारी, सत गुरु, कीता, दयाल, अमृत, साजन, मिहरवान, परवरदगार, करण कारणस्वामी, समदरसी, कृपाल, अल्लहु, अगम, अपार, अलख, कादिर, करीम, कबीर, कबिरा, रहीम, अगोचर, अभेवा, दीन दयाल, गोपाल, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, गोपाल गहिर गंभीर, दुःख भजन, निधान, अमोले, निरभय, निर्वैर, अथाह, अतोले, अकाल-मूरति, अजौनि, स्वयम्, ओनमो, भगवन्त, गुसाईं, जगन्नाथ, जगजीवन, भवभंजन, हृषीकेश, हरिमुकन्द, नारायण, नरहरि, वासुदेव, प्रीतम (आदि ग्रथ)[3]

१ आदि सचु जुगदि सचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु। (जपु जी)

२ लक्ष्मी नारायण, मनोहर, वासुदेव, निरजन, भमसा कत, अविनाशी, अविगत, अगोचर, श्री रँग, वैकुंठ वासी, मच्छ, कच्छप, कर्म, केशव, निराहार, निर्वैर, चतुर्भुज, सांवला, वनमाली, कमल नयन, पीताम्बर, त्रिभुवनधारी, सारगधर, नीछला, निह केवल, धनजय, पतित पावन, दुःख भजन, भव खडन, जोति स्वरूप, कान्हा, कृपाल, गोविंद, जगदीश, नारायण, चिन्तामणि, श्रीराम। (आदि ग्रथ)

३ पीछे से सिखों में परमात्मा का एक और नाम प्रचलित हुआ। "वाहि गुरु"

भगवन्त, भगवान, विष्णु, विश्वम्भर, ब्रह्म, चक्रमनि, चक्रभरने, पीताम्बर धारी, गोपीनाथ, रघुराय, सारंगधर, सॉवल, श्याम, अकाल, पुरुष वासुदेव मोहन, अच्युत ।

इन नामों मे कुछ तो परमात्मा की सर्व व्यापकता को प्रकट करने वाले हैं—जैसे कि, अगम, अगोचर, अपरम्पार, पारब्रह्म, अलख, निरंजन, निरंकार आदि कुछ उनकी दयालुता के बोधक हैं जैसे, दीनदयाल, कृपानिधान, दातार, बचावनहार, पालनहार, सिरजनहार । कुछ नाम भक्तो ने उसके प्रति अपना अगाध प्रेम जताने के लिये रख लिये हैं । यथा पीउ (परमपिता) प्रीतम, मीत आदि । बाकी वे नाम हैं जो हिन्दुओं के अवतारों के थे किन्तु व्यवहार मे परमात्मा को याद करने के लिये ही बरते जाते रहे हैं । यथा.-विष्णु, नारायण, नरहरि, राम, कृष्ण, रघुनाथ, जगन्नाथ, दामोदर मुरारे, गोपाल, गिरधर, गोवर्धनधारी आदि आदि । कुछ नाम ईश्वर सम्बन्धी मुसलमानों द्वारा पुकारे जाने वाले भी हैं । उदाहरण स्वरूप.-खुदा, मालिक, अलाहि, करीम, रहीम आदि, इन नामों का प्रचलन उस समय के आम पजाबियों मे हो गया था ।

गुरु ग्रथ साहिब मे ईश्वर के समस्त नामो में सबसे अधिक प्रयोग 'हरि' का हुआ है । बहुत कम पृष्ठ हैं । जिनमे हरि का नाम न आया हो और अनेकों पृष्ठों की लाइन की लाइन 'हरिजीउ' मे ओत प्रोत हैं ।

'वाहि गुरु' नाम ग्रंथ वाणी मे कहीं नहीं है । वैसे यह सिखों मे प्रयोग खूब होता है । वास्तव मे तो यह एक उल्लासपूर्ण नारा है ठीक वैसा ही जैसा कि "जय हो भगवन्" "धन्य हो परमात्मा" अथवा "सुभान अल्लाह" और "वन्डर फुल गौड" हैं ।

वह कैसा है ? यह सिद्ध हो जाने अथवा मान लेने पर कि परमात्मा "है" सदैव से यह प्रश्न उठता रहा है कि फिर वह है कैसा ? इस सम्बन्ध मे उपनिषदों ने कहा है '—

"वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है ।"

अणो रणीयानम् महतो महीयानम्—कठोपनिषद्

"वह एक से अनेक हुआ है ? यह संसार उसकी अनेकता का ही रूप है ।

एकोऽहम् बहुस्यामि प्रजायेय । वेदान्त । तद्वैक्षत बहुस्याम प्रजायेति—छान्दोग्य

"उसका कोई स्थूल रूप (शरीर) नहीं । किन्तु वह देखता है, चलता है और सुनता है ।"[1]

१. अपाणि पादो जवनो गृहीता ।—श्वेताश्वेतरो०

"वह सबमे व्याप्त है और सबसे अलग भी है ।'

बिनु पद चले सुने बिनु काना—रामायण

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वत ।—कठोपनिषद्

"वह जाना नहीं जाता अपितु महसूस (अनुभव) किया जाता है ।"

नैव वाचा··· · तत्वभावे प्रसीददति—कठोपनिषद्

गुरु महानुभावों ने इन्हीं बातों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है —

"बीज बीज देखउ बहु प्रकारा । फल पाके ते एकोंकारा ।

घटक बीज महि रवि रहिउ, जाके तीन लोक विस्तार ।" (गौडी बावन)

अर्थात्—वह महान् इतना है कि तीनो लोकों मे उसका विस्तार है और सूक्ष्म इतना है कि बीज में भी समाया हुआ है । यही क्यों वह तो—

"सागर में महि बूंद बूंद महि सागरु। (रामकली महला १)

की भांति सूक्ष्म होते हुए महान् मे और महान् होते हुए सूक्ष्म मे व्याप्त है।

एकसु ते सब रूप हहि रगा।

पवणु पाणि वैसतरु सभि सहलगा।

भिन्न भिन्न वेखै हरि प्रभु रगा।

एक अचरज एको हैं सोई।

गुरमुखि विचारै विरला कोई—(गौडी गुआरो महला ३ अष्ट)

अर्थात्—वह एक है उसीसे यह रग बिरगा संसार है। पवन, पानी और अग्नि जो भिन्न भिन्न दिखाई देते हैं सब उसी (एक) प्रभु के रग है।

"करण कारण एकु ओही जिनि कीआ आकार।" (श्रीराग महला ५)

वही करता है। तत्व भी वही है।

एको एकु आपि इकु एकै एकै है सगला पासारे।

जपि जपि होए सगल साध जन एकु नामु धिआइ बहुतु उधारे।

अनिक विसथार एक ते भए।—(सुखमनी)—आसा महला ५

वह केवल एक है उस एक ने अपने एकाकी पन से एक एक करके इतना सारा विस्तार कर दिया है।

वह एक है और एक से अनेक हो गया है। (आपहि एक आपहि अनेक)—सुखमनी।

३— रूप न रेखा मिति नहीं कीमत सबद भेद पतियाइया (राग मारू सोलहे महला १)

तिस रूप न रेखा वरन न कोई गुरमति आप बुझावणिया (राग माझ महला ३)

तिस रूप न रेखिया घट घट देखिया गुर मुख अलख लखावणिया। (राग महला ४ अष्टपदी)

अर्थात्—उसका कोई भी न तो रूप (स्थूल) है और न रंग और वरण।

"सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस नना एकु तोही।

सहस पद विमल नन एक पद गध बिनु सहस तव गध इव चलत मोही।" (राग धना श्री महला १)

अर्थात्—अनेत्री होते हुए भी तेरे सहस्त्र नेत्र हैं। बिना पॉव वाला होते हुए भी तेरे हजारों पग हैं। निर्गन्ध होते हुए भी हजार नासिकाओं से सूंघने वाला है।

४—नाना रूप धरे धरे बहु रगी सभते रहे निआरा।—राग बिहागड़ा म० ६

सो अतरि सो बाहरि अनत। घटि घटि बिआपि रहा भगवत॥

धरनि माहि आकास पइआल। सरब लोक पूरन प्रतपाल॥—सुखमनी

अर्थात्—वह अनन्त परमात्मा बाहर भीतर सब जगह व्याप्त है। पृथ्वी, आकाश और जितने लोक पाताल आदि हैं—उन सब मे वह घट घट वासी प्रभु समाया हुआ है। और भी—

नगर महि आप बाहरि फुनि आपन,

प्रभु मेरे को सगल वसेरा।

अपनी माया आप पसारी आप ही देखन हारा।

नाना रूप धरे बहु रगी सभते रहे निआरा॥

सभ तै नेर सभते दूरि। राग बिहागडा महला ६

नानक आपि अलिपत रहिआ भरि पूर। (सुखमनी)

"कथना कथी न आवै तोटि। कथि कथि कथी कोटि कोटि।"

उसका कितना ही बखान करो उसका छोर नहीं आ सकता। करोड़ों ही उसका बखान करते-करते थक गये हैं।

बोल अबोल मधि हैं सोई। जस उहु है तस लखै न कोई। (गौडी बावन अखरी)

वह शब्द और नि शब्द के बीच में है और जैसा वह है उसे कोई देख नहीं सकता। इसलिये—

काहे रे बन खोजन जाई।

सरब निवासी सदा अलेपा तोही सगि समाई।

पुहप मधि जिउ बास बसतु है मुकर माहि जैसे छाई।

तैसे ही हरि बसे निरन्तर घट ही खोजहु भाई।—(महला ६)

ईश्वर है और वह सर्व व्यापक है। वही इस संसार मे पसरा हुआ है। उसी ने इस संसार को बनाया है। यह जान लेने के पश्चात् यह जानना भी आवश्यक है कि 'गुरु-मत' उसके सगुण निर्गुण होने के सम्बन्ध मे क्या विचार रखता है? क्योंकि 'गुरु-मत' भारत मे उस समय फैला जब कि यहाँ ईश्वर को सगुण और निर्गुण दो भेदों मे विभक्त किया जा चुका था। कुछ एक सम्प्रदाय सगुणोपासक और कुछ निर्गुणोपासक बन चुके थे।

सगुण निर्गुण

'गुरु ग्रन्थ' साहब के समग्र अध्ययन से जो नतीजा निकलता है उसके आधार पर यही कहना पड़ता है कि गुरु लोग सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को मानते थे। हालाकि अधिक झुकाव उनका निर्गुण की ओर था। जैसा कि नीचे दिये हुए इन पदों से पता चलता है—

"अनेक रग निरगुन एक रगा। आपै जलु आपहि तरगा

आप ही मन्दरु आपहि देवा। आपहि पुजारी आपहि सेवा।

खोजत खोजत दरसन चाहे। भाँति भाँति बन अवगाहे।

निरगुण सरगुण हरि हरि मेरा कोई है जीउ आणि मिलावै जीउ।—(माझ म० ५)

निरगुनीआर इआनिआ सो प्रभु सदा समालि।

जिनि कीआ तिसु चीति रखु नानक निवही नालि॥—गोड़ी सुखमनी म० ५ इलोक ४

इतु निरगुनु गुनु कछू न बूझै।

बखसि लेहु तउ नानक सीझै—सुखमनी अष्टपदी

निरगुनीआरे की बेनती देहु दासु हरि राइओ। राग गोडी माझ महला ५

काम क्रोध लोभि मोहि मनु लीनो निरगुण के दातारे।—रागगौडी पूरबी म० ५

राखु पिता प्रभु मेरे। मोहि निरगुन सभगुन तेरे। गौडी म० ५

निरगुण सरगुण आपे सांई। राग माझ अष्टपदी महला ३

तू निरगुण सरगुण सुख दाता। तू निरवाण सरगुण रसिया रंगराता॥ माझ महला ५

तूं आदि पुरखु अपरम्पारु करता जी तुधु जे वड अवर न कोई।

तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तूं एके जी तूं निहचलु किरता सोई।

तुधु आपे भावै सोई वरतै जी तूं आपे करहि सो होई। राग आसा म० ४

तू दरिआउ सभ ही तुझ ही माहि। तुझ बिन दूजा कोई नाहि।
जीअ जन सभि तेरा खेलु। राग आसा महला ४
सहन घटा महि एक अकासु। घट फूटे ते ज्हो प्रगासु। (सूही महला ५)
बाजीगर डक बजाई। सभ खलक तमासे आई॥
बाजीगर स्वांग सकेला। अपने रग रवै अकेला—राग सोरठ कबीर वाणी
बाजीगरि जैसे बाजी पाई। नाना रूप भेख दिखलाई।
सागु उतरि थंमिउ पासारा। तब एकौ एककारा।—सूही महला ५
चचलु सुपनै ही उरझाइओ। इतनी बूझं कबहू चलना बिकल भइओ सगि माइओ। देवगधारी ५
इहि परपचु कीआ प्रभ सुआमी, सभु जग जीवनु जुगणे।
जिउ सललै सलल उठहि बहुलहरी, मिलि सललै सलल समाणे—नट म० ४
मेरे प्रभि साचै इकु खेलु रचाया, कोइ न किस ही जेहा उपाइआ—मारू महला तीन३
ब्रह्म दीसे ब्रह्म सुणिए, ब्रह्मो ब्रह्म बखाणिए।
आतम पसारा करण हारा, ब्रह्म भिन्न न जाणिए।

'गुरु मत' का यह मध्य मार्ग है। उन्होंने निर्गुण और सगुण दोनों विचार धाराओं के बीच ठीक वैसा ही एक मार्ग निश्चित कर दिया। जैसा कि द्वैत और अद्वैत के बीच विशिष्टाद्वैत का मार्ग है। वास्तव में तो गुरु लोग निर्गुण के गुण-गायक थे।कन्तु वे सगुण की भी अवहेलना करना नहीं चाहते थे।[१] इस प्रकार हम उनके मत को "एक विशिष्ट प्रकार का निर्गुण-पन्थ"[२] कह सकते हैं।

श्री रामनुज के शिष्य सम्प्रदायों के सगुण ब्रह्म और गुरुओ के सगुण ईश्वर मे एक बड़ा अन्तर यह है कि उनका ब्रह्म अवतार लेकर भगतों, संतों, देवताओं और गौ-ब्राह्मण की हित-साधना करता है। और गुरुओं का हरि अपने भक्तो को आत्म-दर्शन से तृप्त करता है और उनके लिए अपने अतुल भण्डारों से सारी नियामते बख्श देता है।

जिन जिन धर्मो और सम्प्रदायो ने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया है। उन उन ने उसकी *ईश्वर की विशिष्टता* महानता के सम्बन्ध मे अपनी अपनी रुचि के अनुसार अनेक खयाल जाहिर किये हैं। गुरु महानुभावों ने उसकी महानता को निम्न प्रकार व्यक्त किया है

(१) वह एक है और केवल एक है। दूसरा जो भी कुछ देखने में आता है वह उसी का पसारा अथवा खेल है। माया (प्रकृति) उसका कौतुहल और जीव उसका वैसा ही एक अंश है जैसा कि आकाश का

सभि गुण तेरे मै नाही कोइ। विणु गुण कीते भगति न होइ। जपु जी पौडी २१
निरकार आकार आपी निरगुन सरगुन एक। एकहि एक बखानने नानक एक अनेक—गौडी बावन अक्खरी

नोट—भाई काहनसिंह ने निरगुण का अर्थ बिना गुण वाला किया है। जो हमारी सम्मति में उचित नहीं, आध्यात्मक पक्ष में निर्गुण के अर्थ होते हैं प्रकृतिजन्य अथवा जीवोपम धर्म (जन्म, मरण, उत्पत्ति, लय) आदि से रहित। गुरुओ की दृष्टि में परमात्मा जन्म, मरण, उत्पत्ति, लय के प्रपचो से रहित होने के कारण निरगुण और सृष्टि का कर्ता, पोषक और विनाशक होने के कारण सगुन है। वे पौराणिक की भाँति साकार का अर्थ सगुण और निराकार का अर्थ निरगुण नहीं लेते थे।

घटाकाश होता है। और इसकी उपमा उन्होंने बाजीगर के खेल से दी है। उनका यह मत बहुत दूर तक वेदान्त से मिलता है। वेदान्त जिस प्रकार ससार को स्वप्न मानता है। उसी भांति गुरु महानुभाव भी मानते हैं। जीव और प्रकृति (माया) का वे नाम तो लेते हैं किन्तु उनकी दृष्टि में इसकी महत्ता अधिक नहीं जब केवल (एक मात्र) ईश्वर ही है तो वह सब कुछ है। और उस सब कुछ की जितनी भी अभि-व्यक्ति गुरु महानुभाव कर सकते थे। उतनी उन्होंने की है। इस अभिव्यक्ति में केवल ईश्वर ही दिखाई देता है और सब कुछ उसी के नीचे दब जाता है। यथा—

२—वह आज से नहीं बीच से भी नहीं। युगों के आरम्भ के आदि से है। सृष्टि के आदि से है। सदैव से है और सदैव रहेगा।

३. वह करता पुरुष है। कर्ता भी सम्पूर्ण सत्ता सम्पन्न।

४—वह निरभय है। क्योंकि उसका प्रतिद्विन्दी कोई नहीं।

५—उसका किसी से भी वैर नहीं। क्योंकि सभी उसी के आश्रित हैं। कोई स्वतत्र नहीं।

६. वह अकाल है काल की परिधियों से बंधा हुआ नहीं बल्कि काल का नियंता है।

७. वह किसी से पैदा हुआ नहीं है अपितु स्वयम्भू है।

८—वह सभी जीवों का दाता है। जो कुछ पदार्थ हैं उनका पैदा करने वाला वही है।

९—उसके पास अतुल भंडार हैं। कितना ही वह उसमें से दे। घट नहीं सकते।

१०—चॉद, तारे सूरज, पृथ्वी, हवा और पानी सभी उसके हुक्म में हैं।

११—उसकी रचनाओं का छोर नहीं है। उसमें असख्य ब्रह्मण्ड और असख्य आकास पाताल हैं।

गुरुओं का ईश्वर तो इतना महान है किन्तु ईश्वर के साथ से ही चली आ रही प्रकृति और जीवों की क्या स्थिति है यह जानना भी आवश्यक है।

जीव, प्रकृति

साख्यों, बौद्धों, जैनों और वार्हिस्पत्यों के अनुसार तो प्रकृति ही सब कुछ है किन्तु गुरुओंने प्रकृति को कोई अधिक महत्व नहीं दिया। न उसके विकास, पर। आध्यात्मिक वर्णन में जो कुछ उनके कथनो में प्रकृति (माया) के सम्बन्ध में आ गया है उसमें से यत्र, तत्र फैले हुए कुछ उद्धरण यहाँ देते हैं—

कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भउ सुख सारु।
कुदति पाताली आकासी कुदरति सरब आकार॥

प्रकृति क्या है?

कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचार।
कुदरति खाणा पीणा पैन्हणु कुदरति सरब पिआरु॥

कुदरति जाती जिनसो रगी कुदरति जीअ जहान।
कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु॥
कुदरति पउण पाणी बैसतरु कुदरति धरती खाकु।
सभ तेरी कुदरति तू कादिर, करता पाकी नाई पाकु।
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु॥ आसा महला १

अर्थात्—यह जो दृश्य और श्रवणीय तथा सांसारिक सुखों के पदार्थ हैं सब प्रकृति है। आकाश पाताल सर्व प्रकार के स्थूल रूप प्रकृति हैं। वेद, पुराण और कुरान आदि ग्रथों में जो ज्ञान है वह भी प्रकृति है। खाने, पीने और पहनने के समस्त पदार्थ प्रकृति हैं। जाति, वस्तु, रंग और जहान भर के जीव जन्तु प्रकृति है। नेकी, बदी, मान, अभिमान, पवन, पानी, अग्नि, धरती और अणु परिमाणु सब प्रकृति हैं।

लेकिन यह जो प्रकृति के नाम से अभिहित होते हैं। सब हे प्रभु तेरी ही माया है। इसका सृष्टा तू ही है।[१] जो कि पवित्रतम् पवित्र है। नानक कहते हैं यह तेरे ही अनुशासन मे सचालित होती है। और तू ही इसको देखता तथा निरीक्षण करता रहता है।

तुधु आप जगतु उपाइकै आपु खेल रचाइआ।
त्रै गुण अपि सिरजिआ माइआ मोहु वधाइआ।।[२]

(राग सोरठ महला ३ पौडी ३)

अर्थात्—हे प्रभु तैंने आप ही आप (बिना किसी की सहायता के) इस जगत को बनाकर अपने लिए एक खेल की रचना की है। त्रिगुणात्मक माया का सृजन करके तैंने ही मोह ममता की वृद्धि की है।

तू करण कारण समरथु हहि करते मै तुझ बिनु अवर न कोई।
तुधु आपे सिसटि सिरजीआ आपे फुनि गोई। (श्लोक महला ३ पौडी २६)

अर्थात्—हे, भगवन् तुम्ही इस सृष्टि की रचना मे कारण और तुम्ही करता हो, तुम आप ही सृष्टि को रचते हो और आप ही उसकी प्रलय करते हो।

केते जुग वरते गुबारै। ताडी लाई अपर अपारै।
धधूकारि निरालम बैठा ना तदि धधु पसारा हे।
प्रलय समय जुग छतीह तिनै वरताए जिउ तिसु भाणा तिवै चलाए।
तिसहि सरीकु न दीसै कोई आपे अपर पसारा हे।
गुपते बूझहु जुग चतुआरे घटि घटि वरतै उदर मझारे।
जुग जुग एका एकी वरतै कोई बूझै गुरु, विचारा हे।

अर्थात्—जब प्रलय हो जाती है तो प्रलय उत्पत्ति के बीच के समय मे वह परमात्मा तारी लगा जाता है। उस दशा मे जो कि गुबार (धु ध) पूर्ण होती है। कितने ही युग बीत जाते हैं। उस धुंधाकार मे वह निरावलव (ठाली) बैठा रहता है और उस धु ध से पसारा (रचना) नहीं करता। इस स्थिति मे छत्तीस युग बीत जाते है। फिर जो कुछ उसे भाता है उसी भाति संचालित होता है। उसके कामो मे कोई साझीदार तो है नहीं। आप ही अपना फैलाव कर लेता है। चारों युगों के कहा रहने के गुप्त रहस्य को पूछो तो उसका उत्तर यह है कि यह उस घट घट वासी प्रभु के उदर मे रहते है। प्रत्येक युग मे वह एक ही एक व्याप्त है। इस सम्बन्ध की पूरी जानकारी तो कोई विचार शील गुरु ही जानता है।

यह प्रश्न सदैव से उठता रहा है कि प्रलय काल मे वह सारा पसारा अर्थात् माया और मायापति
रहे कहा? रहते कहा हैं? इसका उत्तर गुरुओं ने जो दिया है वह यह है—

सु ने अलख अपार निरालमु सु ने ताडी लाइदा। मारु महला १

१ माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मा पश्यसि नारद।

कृष्ण नारद सवाद (महाभारत शान्ति पर्व ३३९-४४)

अर्थात्—हे नारद तुम जिसे देख रहे हो, यह माया मेरी ही उत्पन्न की हुई है।

२ त्रिभिर्गुणमयैभावैरेभि सर्वमिद जगत। गीता अध्याय ७ श्लोक १३

अर्थात्—यह सारा जगत मुझ (वासदेव) ने त्रिगुणात्मक माया से बनाया है।

अर्थात्—उस प्रभु ने शून्य मे तारी लगाई।

प्रलयकाल मे वह प्रभु शून्य मे तारी (समाधि) लगा कर रहा तो फिर वह शून्य क्या है ? इसके सम्बन्ध मे गुरु कहते हैं—

शून्य क्या है ?

सु न कला अपरपरिधारी। आपि निरालमु अपर अपारी।
आपे कुदरति करि करि देखे सु नहु सु न उपाइदा॥
पउरा पाणी सुने ते साजे। सृसटि उपाइ काया गड राजे।

अर्थात्—अपार कला वाली शून्य वह स्वयम् निरावलव परमात्मा ही है। वह शून्य से पैदा करके अपनी कुदरति को आप ही देखता है। पवन पानी आदि महातत्वों को वह शून्य से ही रचता है। और सृष्टि का सृजन करके उसके शरीर गढ़ मे (स्वयम ही) विराजता है।

सु नहु धरति अकासु उपाय बिनु थमा राखे सचु कल पाए।
त्रिभवण साजि मेखुली माइआ आपि उपाइ खपाइदा।
सु नहु खाणी सु नहु बाणी। सु नहु उपजी सु नि समाणी।
उतभुज चलतु कीआ सिरि करतै विसमादु सवदि दिखाइदा। (मारूमहला १)

अर्थात्—शून्य से पृथ्वी और आकाश को उत्पन्न किया जो कि विना खंभो के टिके हुए हैं। तीनों भुवनों को माया मेखुली से सजाया है। प्रकृति लय और उत्पत्ति भी शून्य से उपज कर शून्य मे ही समा जाती हैं। अडज, स्वेदज और उद्भिज जीवों को शून्य से पैदा करके आश्चर्यजनक काम उस प्रभु ने किया है।

परन्तु यह सब वास्तविक कुछ नही वाजीगर का खेल भर है। कारण कि "कीता वेखै साहिव आपणा कुदरति करे बिचारो। कुदरति वीचारे धारण धारे जिन कीआ सो जाणे। आपे वेखे आपे बूझै आपे हुकमु पछाणे। जिमि कुछ कीआ सोई जाणै ताका रूप अपारो। नानक किसनो रोईए वाजी हैं यह मसारो।"

(वडहस महिला १ दखणी)

प्रकृति (कुदरति) अथवा माया सम्बन्धी इस वर्णन का सार यही है कि गुरुमत मे माया अकाल पुरुष के उस पसारे अथवा खेल का नाम है जिसे वह मर्जी से फैलाता है और अपनी मर्जी से ही ममेट लेता है। वास्तव मे प्रकृति का स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं।

सभि तेरी कुदरति करता पाकि नाई पाकु। आसा महला १

यही बात गीताकार ने भी कही है और वेदान्ती भी यही समझते है कि प्रकृति परमेश्वर मे ही उत्पन्न हुई है। "प्रकृति स्वामधिष्ठाय" (गीता अध्याय ४ श्लोक ६) अर्थात् प्रकृति अधिष्ठाता मैं (परमेश्वर) हूँ।

प्रकृति अथवा माया के वर्णन के बाद अब हम यह देखते हैं कि जीव के सम्बन्ध मे गुरुओं का मत क्या है ? मारू महला १ मे गुरु नानक कहते है—

"पंच ततु मिलि काइआ कीनी। तिस महि राम रतन लै चीनी।
आतम रामु रामु है आतम हरि पाइऐ सवदि वीचारा है।" ७

अर्थात—पाच तत्वों को मिलाकर शरीर की रचना की। और फिर उस शरीर मे रामरतन (जीव) की स्थापना कर दी। आत्मा (जीव) राम (ईश्वर) है और राम (ईश्वर) आत्मा (जीव) है। जो शब्दों के रहस्य को जानते हैं वे ईश्वर को प्राप्त होते हैं।

"नउ घर थापे थापन हारे। दसवा वासा अलख अपारे।—मारु महला १

अर्थात्—इस शरीर मे उस स्थापन कर्त्ता ने नौ घरों की स्थापना की और दसवां घर बनाया अपने अथवा आत्मा के निवास के लिये।

जीआ अदरि जुगति समाइ रहिओ निरालमु राइआ।
जग तिसुकी छाइआ जिस बापु न माइआ॥ मारू महला १

अर्थात्—वह निरावलम्ब प्रभु युक्ति पूर्वक जीवों के अदर समा रहा है। और यह जगत उस प्रभु की छाया (रचना) है जिसके न माँ है और न पिता।

इन्हीं बातो को गुरु अमरदास जी ने रामकली राग (आनद) मे इस प्रकार कहा है:—

ऐ शरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी ता तू जग महि आइया।
हरि जोति रखी तुध विच ता तू जग महि आया।
हरि आपे माता आपे पिता जिनि जिउ उपाइ जगतु दिखाइआ
गुरु परसादी बूझिआ ता चलतु होआ चलतु नदरी आइआ।
कहै नानक सृसटि का मूलु रचिआ जोति राखी ता तू जग महि आइआ

अर्थात्—ऐ! मेरे शरीर तुझ मे परम पिता परमात्मा ने प्रकाश दिया है तब तू इस ससार मे आ सका है। तेरे मे प्रभु ने प्रकाश रखा है तब इस जगत में आया है। प्रभु के न कोई मां है और न बाप। वे स्वयम ही मां है स्वयम ही पिता। ऐसे नकुल (अकुल) प्रभु ने जीव की उत्पत्ति करके संसार का दिखारा किया है।

गुरु के प्रसाद (आशीप) से मैं यह समझ सका हूं कि यह शरीर चलने वाला अथवा चैतन्य होगया है और चलता हुआ नजर आता है। ऐ मेरे शरीर सृष्टि के मूल और रचनाकर्त्ता प्रभु ने जब तेरे अन्दर प्रकाश स्थापित किया है तब तू इस संसार मे आ पाया है।

गुरु अर्जुन देव कहते है। उस प्रभु की सृष्टि मे असंख्य जीव हैं। जो चौरासी लाख योनियों मे फैले हुए है। उनमे मनुष्य को प्रभु ने श्रेष्ठता दी है। यथा —

"लख चौरासीह जोनि सबाई। माणस कहि प्रभि दीई वडिआई।
इसु पउडी ते जो नर चूके। सो आइ जाइ दुखु पाइदा।"

—मारू सोलहे महला ५

इस सम्बन्ध मे सब मिलाकर गुरुओं का यही मत है कि अंश रूप से परमात्मा ही जीव है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि आग से चिनगारिया, जल से तरंगे और मिट्टी से कण[1] पृथक होते है। ईश्वर से जीव पृथक होकर अनेको योनियों (चोलों) मे चले जाते है और फिर उसी परमात्मा मे लीन हो जाते हैं।

१—जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे निआरे निआरे हुइके फेरि आग में मिलाहिगे।
जैसे एक धूरते अनेक धूर धूरत है, धूर का कनूका फेरि धूर ही समाहिगे।
जैसे एक नद ते तरग कोट उपजत हैं पान के तरंग सबै पान ही कराहिगे।
तैसे विश्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ ताही के उपज सब ताही में समाहिगे।
—(अकाल उस्तुति १७—२)

ऊपर के इन वाक्यों से हमे यह तो पता चल गया कि जीव ईश्वर का अश है और जीव जिन चोलों को धारण करता है उनका निर्माण पाच तत्वों से परमात्मा द्वारा होता है।

गुरुमत में प्रकृति की कोई स्वतन्त्र स्थिति न होने के कारण जीव की स्थिति भी अधिक प्रकाश मे नहीं है। (वैसे उनका यह कथन बहुत अंशों मे वेदान्त से मिलता जुलता है) क्योंकि वह पूर्ण रूपेण ईश्वराधीन है। जैसा कि नीचे की इन वाणियों से पता चलेगा।

जीव की स्थिति क्या है ?

"वसतु माहि लै वसतु गडाई। ताहु भिन्न ना कहना जाई। (सुखमनी)

अर्थात्—एक ही वस्तु से कोई दूसरी वस्तु बनाई जाय तो वह भिन्न नहीं कही जा सकती। उदाहरणार्थ सोने से हार बनवालो, करधनी, कड़े और छाप, छल्ले कुछ बनवालो नाम तो इनके अलग-अलग अवश्य पुकारे जायेगे किन्तु उनमे जो पदार्थ हैं वह तो सोना ही कहा जायगा। आकृतियों की विभिन्नता से उसके मूल रूप मे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

जिउ जल महि जल आई खटाना। तिउ जोती सन जोति समाना।
मिट गये गवन पाई विसराम—

अर्थात—जिस प्रकार जल, जल मे आकर एक हो जाता है त्यों ही यह (सूक्ष्म) प्रकाश वाला जीव (महान्) प्रकाश (परमात्मा) मे विलीन हो जाता है।

कारण कि:—

"ब्रह्म महि जन जन महि पार ब्रह्म
ओति पोति रविआ रूप रँग। —सुखमनी

ब्रह्म मे जीव है और जीवों में ब्रह्म है वह सभी रूपों और रंगों अर्थात आकार प्रकार वाले जीवों मे रमा हुआ है।

जीव जब परमात्मा का ही अश है तो उसमे उसके कुछ तो गुण होने ही चाहिये। इस सम्बन्ध मे गुरु महानुभावों का कहना है।

अजर-अमर

"ना जिउ मरै न डूबै तरै। जिनि किछु कीआ सो किछु करै।"[1] —राग गौडी महला १
मरणहार यह जीअरा नाहीं —राग गौडी महला ५
ना जिउ मरै न कबहू छीजै।" राग वडहस महला ५

अर्थात—वह अजर अमर है। साथ ही एक रस अथवा सम है न घटता है न बढ़ता है।

अपने पिता की भांति वह जीव अजर और अमर तो है किन्तु अधिकार इसके कुछ नहीं हैं। यह जो कुछ करता है वे कर्म भी इसकी निजी प्रेरणा के नहीं होते। कहा है.—

अधिकार

"मारै राखै एको आपि। मानुख के किछु नाही हाथि।
तिसका हुकमु बूझि सुख होई। तिसका नामु रखु कठ परोइ।"—'सुखमनी'

अर्थात्—जैसे वह प्रभु रखेगा चाहे मारकर (दुख से) चाहे रक्षा (सुख) मे वैसे ही रहना

१—नैन छिदन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक (गीता)

पड़ेगा। (इसमें) मनुष्य का कुछ वश नहीं।

तिसके हुक्म (रजायुस) को समझ लेने से सुख होता है इसलिये उसके नाम को कठ में पिरोलो अर्थात् एक क्षण भी नाम लेना मत भूलो।

गुरु अर्जुनदेव ने अपनी इस बात को और भी अधिक स्पष्ट किया है।

वे कहते है —

"आगिआकारी वपुरा जीउ जो तिसु भावै सोई थीउ।
कवहू ऊची नीच महि वसै। कबहू सोग हरख रगि हँसै।
कबहू निंद चिंद विउहार। कवहू ऊभ अकास पइआल॥
कवहू वेता ब्रह्म बीचार। नानक आप मिलावण हार॥
कवहू निरति करै बहु भाँति। कबहु सोइ रहै दिन राति॥
कवहू महा क्रोध बिकराल। कवहू सरव की जोति रवाल॥
कवहू होइ वहै बड राजा। कबहू भेखारी नीच का साजा॥
-कवहू अपकीरति महि आवै। कवहू भला भला कहावै।
जिउ प्रभू राखै ततिही रहै। गुरु प्रसादि नानक सचु कहै।

× × × ×

कवहू कीट हसति पतग होइ जीआ। अनिक जौनि भरमै भरमीआ।
नाना रूप जिउ स्वागी दिखावै। जिउ प्रभु भावै तिवै नचावै॥ (सुखमनी)

अर्थात्—जीव तो वेचारा आज्ञाकारी है। उस प्रभु को जो कुछ भाता है वही होता है।

जीव तो कभी ऊँच और कभी नीच बन जाता है। कभी शोक मे आकुल होता है। कभी सुख की रंगीनी से हँसता है।

कभी निंदनीय और कभी चिन्तनीय दशा मे पहुँच जाता है। कभी उच्च आकाश मे और कभी पाताल मे जा पहुँचता है।

कभी (ब्रह्म) सम्वन्धी विचारों का वेत्ता वन जाता है (किन्तु) इन संयोगों का मिलाने वाला वह प्रभु ही है।

कभी अनेक भांति के नृत्य (नाच रग) करता है। कभी रात और दिन सोनेमें ही बिता देता है।

कभी अत्यन्त क्रोध से भयानक वन वैठता है। कभी उस सर्वेश्वर की (शीतल) जोति का रवा वन जाता है।

कभी राजा महाराजा हुआ फिरता है। कभी भिखारी होकर नीच वेश वाला बन जाता है।

कभी ऐसे काम करने लगता है जिससे उसका अपयश फैल जाता है और कभी ऐसे मार्ग पर चल निकलता है कि चारो ओर से भला ही भला कहा जाता है।

लेकिन सच तो यह है कि (इन कामों मे वह स्वयम कुछ नहीं) जैसे प्रभु उसे रखते है। वैसे ही रहता है।

जब जीव की यह स्थिति है। उसके हाथ में कुछ भी नहीं। कतई तौर पर वह ईश्वराधीन है तब वह क्या करे? कैसे रहे? जिससे कि उसका जीवन सुख और शाति पूर्वक व्यतीत हो जावे और अत मे आवागमन के चक्कर से छूट कर उस परमानन्द को प्राप्त करले जो मोक्ष कहलाता है।

सुख शाति और मोक्ष

इसके लिये गुरुओं ने जो उपाय बताये हैं। वे निम्न प्रकार हैं:—

(१) जीव अहम् (हउमे) को छोड़ दे और वह पूर्णत अपने को गोविन्दार्पण करदे। अर्थात् यह भाव बनाले "हे प्रभु मेरा तो सब कुछ तूही है।

(२) दूसरों की निंदा स्तुति से अपने को अलग करले।

(३) साधु (अच्छे) लोगों की संगति मे रहे।

(४) ऐसे गुरु की शिक्षाओं पर चले जो सतगुरु अर्थात् परमात्मा को पहचानता हो।

(५) संसार में इस भांति रहे जिस भाति कमल जल मे रहता है।

(६) चोरी, झूठ, पर स्त्री गमन, लोभ, मोह का परित्याग करदे।

(७) मन को अच्छे मार्ग और हरि चरणों मे प्रेरित करे।

(८) ऐसे धधे करे जो पर पीड़क न हों, और न ईश्वरीय मार्ग मे बाधा डालने वाले हों।

(९) माया से विमुक्त होने का बराबर प्रयत्न करे।

(१०) सत्य ज्ञान को अवश्य प्राप्त करे। क्योंकि ज्ञान ईश्वर-मिलन के लिये आवश्यक है।

(११) जीवन के समस्त कार्मो से ऊपर भक्ति को समझे और सब प्रकार के प्रपंचों को छोड़ हरिजन बनने का यत्न करे।

सभव है गुरुओं ने इससे भी अधिक कोई और उपाय जीव के कल्याण के लिये–उसके कर्त्तव्यों सम्बन्धी बताये हों। किन्तु हम जितना समझ सके हैं। यह तालिका उसी के अनुसार ही है।

साधारण भाषा मे अहम् का अर्थ "मैं ही हूँ" ऐसा होता है। इस अहम् को सिख साहित्य मे 'हउमे' कह कर याद किया गया है।

अहम्

अहम् से मनुष्य को बहुत हानि उठानी पड़ती है। यह सभी जानते हैं किन्तु जो लोग पाप और पुण्य मे भेद नहीं करते। स्वर्ग और नर्क के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। ईश्वर को ठाली दिमाग की उपज बताते हैं वे अहम् पर ही जीते हैं। ईश्वर के भक्त अहम् को अपने प्रियतम से मिलने मे दीवार मानते हैं। यही कारण है कि समस्त सन्त सम्प्रदाय अहम् के विरोधी रहे हैं। सिख धर्म के संस्थापकों ने अहम् की काफी भर्त्सना की है। वे कहते हैं—

"हउ विचि आइआ, हउ विचि गइआ।
हउ विचि जम्मिआ, हउ विचि मुआ।
हउ विचि दित्ता, हउ विचि लइआ।
हउ विचि खटिआ, हउ विचि गइआ।

× × ×

हउ विचि मूरख, हउ विचि सिआणा।
मोख मुकति की, सार न जाणा।

हउ विचि माइआ, हउ विचि छाइआ।
हउमे करि करि जत उपाइआ।" —सलोक महला १

अर्थात—अहम् के कारण ही आवागमन है। अहम् से ही जन्मना और मौत है। अहम् से ही सब प्रकार के लेन देन है और अहम् मे ही मिलन बिछुरन है।

× × ×

अहम मे मूर्ख है और सियानप भी है किन्तु ससारी बन्धनो से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त करने का सार (तत्व) अहम् मे नहीं है। अहम् मे माया तो है ही किन्तु छाया अर्थात् थोथी वस्तु भी है।

× × ×

"अन्तरि अलखु न जाई लखिआ विचि पडदा हउमै पाई।"
माइआ मोह सभो जगु सोइआ इहु भरमु कतहु किउ जाई॥
—राग गौडी पूरबी महला ५

अर्थात्—अहम् का ऐसा पर्दा पडा हुआ है कि अन्तर मे बैठे प्रभु भी अलख हो रहे है। इस अहम् से पैदा होने वाले माया मोह मे सारा जगत सोया हुआ है। यह भ्रम कैसे मिटे ?

हउमै मैला इहु ससारा। नित तीरथि नावै न जाइ अहकारा।
बिनु गुरु भेटे जमु करे खआरा।
सो जनु साचा जि हउमै मारै, गुर कै सबदि पच सहारे।
आपि तरै सगले कुल तारे। गौडी महला ३

अर्थात्—यह ससार अहम् से मलीन हो रहा है। नित तीर्थों मे स्नान करने से भी यह अहम् (अहकार) नहीं जाता है। यदि इसे छुडाने वाला कोई सतगुरू नहीं मिला तो जिन्दगी को जम बिगाड देगा।

वही सच्चा मनुष्य है जो 'अहम्' को मार देता है। गुरु उपदेशों से काम, क्रोध, मोह, लोभादि पाच शत्रुओं का विनाश कर देता है। ऐसा मनुष्य स्वय तो (इस भव से) पार हो ही जाता है अपितु अपने समस्त कुटुम्ब का निस्तार भी कर देता है।

'त्रैगुण मेट चौथे चितु लाइआ। नानक हउमै मारि ब्रह्म मिलाइआ।" राग गौडी महला ३

अर्थात—अहम् को मारने का एक उपाय है। माया के तीनो गुणों (सत, रज तम से निवृत्त होकर चौथी अवस्था (उन्मन अथवा उदासीन वृत्ति) मे चित का लगाना। अहम् के मरने से ब्रह्म की प्राप्ति हो जायगी।

× × ×

हउमै वडा गुवार, है हउमै विचि बूझि न सके कोई।
हउमै विचि भगति न होवई, हुकमु न बूझिआ जाइ।
हउमै विचि जीउ बधु है, नामु न वसै मन आइ। —बडहस महला ३

अर्थात्—अहम मे वड़ा गुबार है, अहम् के होते हुए कोई (सत्य) को नहीं समझ सकता है और न 'अहम' के होते हुए भक्ति हो सकती है। और न ईश्वरीय आदेश को समझा जा सकता है।

'अहम्' जीव के लिये बन्धन है। इसके होते हुए परमात्मा का नाम भी मन मे आकर नहीं बसता। क्योंकि —

हउमै नावै नालि विरोधु है, दुइ न वसहि इक ठाइ ।
हउमै विचि सेवा न होवइ, ता मनु विरथा जाइ ।"

अर्थात्—'अहम्' और राम नाम मे विरोध है । दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते कारण कि 'अहम्' वाले मनुष्य से सेवा नहीं हो सकती उसका मन व्यर्थ वातों मे फँसा रहता है ।

साराश यह कि विना 'अहम्' (अहकार) के छोडे जीव ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकता है ।

लेकिन अहम् छूट कैसे ? यह एक वडा टेढ़ा प्रश्न है । उपनिपदों और स्वयं गुरुओं ने 'अहम्' को छोड़ने के जो साधन वताये हैं । उनमे ससार से विरक्ति और प्रभु के प्रति अनुरक्ति पैदा होना मुख्य हैं । किन्तु संसार से विरक्ति और प्रभु से अनुरक्ति विना इस ज्ञान के तो नहीं हो सकती कि ससार और प्रभु को समझा जाय । वस, इस समझने का नाम ही आध्यात्मिक ज्ञान है । आध्यात्मिक अथवा व्रह्म ज्ञान के सम्वन्ध मे गुरुओ का मत इस प्रकार है—

"व्रह्म गिआनी सदा निरलेप । जैसे जल महि कमल अलेप ।
व्रह्म गिआनी सदा निरदोख । जैसे सूरु सरब कउ सोख ।।
व्रह्म गिआनी क दृसटि समानि । जैसे राज रक कउ तुलि लागै पवान ।

× × ×

व्रह्म गिआनी निरमल ते निरमला । जैसे मैलु न लागै जला ।।
व्रह्म गिआनी कै मनि होइ प्रगास । जैसे धर ऊपर आकासु ।
व्रह्म गिआनी कै मित्र शत्रु समानि । व्रह्म गिआनी कै नाहीं अभिमान ।

× × ×

व्रह्म गिआनी सदासद जागत । व्रह्म गिआनी अह वुधि तिआगत ।
व्रह्म गिआनी कै मनि परमानन्द । व्रह्म गिआनी कै घरि सदा आनद ।।
व्रह्म गिआनी व्रह्म का वेता । व्रह्म गिआनी एक सगि हेता ।
व्रह्म गिआनी कै होइ अचिंन । व्रह्म गिआनी का निरमल मत । सुखमनी

× × ×

अर्थात्—व्रह्म ज्ञानी सव तरह की वासनाओं से उसी प्रकार निरलिप्त रहता है जिस प्रकार कि कमल जल में रहते हुए पानी से भीगा हुआ नहीं होता ।

जैसे सूर्य्य सर्व रसों का सोखने वाला होते हुए भी निर्दोप है उसी भाति व्रह्म ज्ञानी (गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए भी) निर्दोप है कारण कि वह अपने कर्त्तव्य को पूरा करता है उनमे आसक्त नहीं होता ।

जिस प्रकार कि पवन गरीव,-अमीर सभी को समान रूप से लगता है उसी प्रकार व्रह्मज्ञानी सवको समान दृष्टि से देखता है (क्योंकि वह सव मे ही परमात्मा का प्रकाश देखता है) ।

× × × ×

व्रह्म ज्ञानी उसी भाति निर्मल से निर्मल है । जिस प्रकार (वहता हुआ) जल निर्मल रहता है ।

जिस भाति पृथ्वी के ऊपर आकाश प्रकाशमान है उसी भांति व्रह्म ज्ञानी के हृदय मे प्रकाश होता है ।

ब्रह्म ज्ञानी अपनी ओर से न किसी से शत्रुता रखते हैं और न मित्रता और यदि कोई उनसे शत्रुता मित्रता करे तो वे न तो शत्रुता करने वाले से कुपित होते है और मित्रता करने वाले पर रीझते हैं। क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी मान, अभिमान की परिध से बाहर होते हैं।

× × ×

ब्रह्म ज्ञानी को जागृत अवस्था प्राप्त हो जाती है। उनका 'अहम्' भी छूट जाता है।

ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म (आत्म) ज्ञान का जानकार अथवा व्याख्याता हो जाता है क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी का हेत (ध्यान) एक प्रभु से ही लगा रहता है।

ब्रह्म ज्ञानी का मन निर्मल हो जाता है और वह चिन्ताओं से छुटकारा पा जाता है।

आगे गुरु अर्जुनदेव ने यहाँ तक कह दिया कि—"ब्रह्म गिआनी मुकति जुगति जीअ का दाता। ब्रह्म गिआनी पूरन पुरखु विधाता" है। वेदान्त का भी यही मत है और इसीका प्रतिवादन गुरु नानक देव ने इन शब्दो मे किया था। "जिनी आत्म चिनिआ परमात्म सोई।[1] अर्थात् जिन्होंने आत्मा अर्थात् आप को जान लिया वह परमात्मा ही है।

किन्तु ब्रह्म ज्ञान ऐसी चीज तो नहीं कि चाहा और हो गया। [इस सम्बन्ध मे सत तुलसीदास ने कहा था—"विनु गुरु हो कि ज्ञान, ज्ञानकि होय वैराग बिनु। गावहिं वेद पुराण सुख कि लहहि हरि भगति बिनु।" अर्थात् ज्ञान गुरु के बिना नहीं हो सकता और बिना वैराग के (ब्रह्म) ज्ञान का होना सम्भव नहीं। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए पहले सतगुरु का मिलना आवश्यक है। सतगुरु ही होता है जो इस संसार के माया मोहों से विरक्ति (वैराग) करा सकता है और वैराग के उत्पन्न होते ही जीव अपने को पहचानने लगता है। 'ग्रथ साहब' मे इसी हेतु सतगुरु की महिमा इन शब्दों मे गाई है।

गुरु की आवश्यकता

जो सौ चँदा उगवहि, सूरज चढहि हजार।

ऐत चानण होदिआ गुरु बिन घोर अन्धार। (वार आशा महला २)

अर्थात्—अनेक सूर्य्य चन्द्रों के प्रकाश से भी हृदय का अन्धेरा दूर नहीं हो सकता। वह तो गुरू शिक्षा ही से दूर होगा। किन्तु —

"सत पुरख जिन जानिआ सतगुर तिसका नाउ।

तिसके सग सिख उधरै नानक हरि गुन गाउ॥" (सुखमनी)

अर्थात्—सच्चा गुरु वह है जो सत्य पुरुष (परमात्मा) को जानता है। उसके संसर्ग से ही शिष्य का उद्धार हो सकता है। और

"जिसु मिलिए होइ अनदु, सो सत गुरु कहिए।

मन की दुविधा विनसि जाइ हरि परम पद लहिए।" गौडी महला ४

अर्थात्—जिसके मिलने से प्रसन्नता प्राप्त हो, मन की दुविधा मिट जाय। हरि चरणों मे लौ लग जाय वह सत गुरु है।

दुविधा अथवा सशय[1] जहाँ मनुष्य की उन्नति मे बाधक हैं वहाँ उनके रहते परमात्मा मे कभी भी सच्ची निष्ठा नहीं हो सकती। इसलिये पांचवें पातशाह गुरु अर्जुन देव ने कहा था:—

१. आसा राग अष्ट पदी महला ७

ऐसा कोई जि दुविधा मारि भगावै । इसहि मारि राज योग कमावै । रहाउ--
जो इसु मारै तिस कउ भउ नाहि । जो इसु मारे सो नामि समाहि ।
जो इसु मारै तिसकी त्रिसना बुझै । जो इसु मारे सु दरगह सिझै ।
जो इसु मारे सो धनवन्ता । जो इसु मारे सो पतिवन्ता ।
जो इसु मारे सोइ जती । जो इसु मारे तिसु होवै गती ।"—गोडी महला ५

अर्थात्—कोई ऐसा है जो इस दुविधा (सशय) को मार भगावे क्योंकि इसके मारने से राज-योग की कमाई हो सकती है । इसके मारने से तृष्णा बुझ सकती है । इसका मारने वाला ही सच्चा धनी और लाजवन्त है । इसका मारने वाला ही जती है । इसके मारने वाले को ही सुगति प्राप्त हो सकती है ।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था--"हे अर्जुन तू समस्त संशयों[1] (दुविधाओं) को छोड़कर मेरी वात पर विश्वास कर । यही वात गुरुओं ने जन जन से कही कि संसार के दुखों से छुटकारा पाने के लिये, चौरासी के चक्कर से बचने के लिये, जम के दण्ड से विमुक्त होने के लिये, नर्क यातनाओं से बचाव के लिये सत गुरुओं की शरण मे आओ । यथा —

"बलिहारी गुरुदेव चरन ।
जाके संग पारब्रह्म धिआइऐ, उपदेश हमारी गति करन ।
दूख रोग भै सगल विनासै, जो आवै हरि संत सरन ।
आप जपै अवरहि नाम जपावै, वड़ समरथ तारन तरन ।।--सारंग महला ५

× × × ×

काटे कसट पूरे गुरु देव । सेवक कउ दीनी अपनी सेव ।।
मिट गई चिंत पुनी मन आसा । करी दइआ सतगुर गुण तासा ।।
दुख नाठे सुख आइ समाए । ढील न परी जा गुरु फुरमाए । —गोडी महला ५

× × × ×

गुरु का वचन सदा अविनासी । गुरु कै वचनि कटी जम फासी
गुरु का वचन जीअ कै सगि । गुरु कै वचनि रचै राम कै रगि

+ × × ×

गुरु कै वचनि नरकि न पवै । गुरु कै वचनि रसना अमृतु रवै ।। —गोडी गुआरेरी महला ५

× × × ×

सतिगुरु सिख के बधन काटे । गुर का सिखु विकार ते हाटै ।
सत्ति गुर सिख कउ नाम धन देइ । गुर का सिख वड़ि भागी हे : —सुखमनी

× × × ×

मेरे मन गुर जे वडु अवरु न कोई । दूजा थाउ न को सुझै गुरु मेले सचु सोइ ।
सगल पदारथ तिसु मिले जिनि गुरु डिट्ठा जाइ । — रहाउ
गुरु चरणी जिनि मनु लगा से वड़ भागी माइ ।—श्री राग महला ५
गुरु मुखि नाद गुर मुखि वेद, गुर मुखि रहा समाई
गुरु ईसरु गुर गोरख वरमा गुरु पारवती माई—अपुजी

१. 'संशयात्मा विनश्यति ।

अर्थात्—गुरुदेव के चरनों को बलिहारी है।

जिनके पास बैठकर पारब्रह्म पिता को स्मरण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। गुरुदेव का उपदेश हमारी सुगति करने वाला है। जो भी कोई इन हरि के सन्तों की शरन में आता है उसके भय, दुख और रोग सब मिटा देते हैं। ये सत (गुरु) आप हरि का नाम जपते हैं और दूसरों को जपाते हैं। इसलिए निस्तार करने में यह बड़े समरत्थ हैं।

× × × ×

पूरे गुरु ने अपनी सेवा देकर मेरे समस्त कष्ट दूर कर दिये हैं। सतगुरु के दया करने से मेरी मनोकामनायें पूरी हो गई हैं और चिंता मिट गई है। दुख नष्ट हो गये हैं और सुखों की प्राप्ति हो गई है। गुरु ने जो भी फरमाइश की उस सेवा में मैंने ढील नहीं की है।

× × × ×

गुरु का वचन सदैव सत्य है। गुरु के वचन (आशीर्वाद) से जम का फंदा भी कट गया है। गुरु का वचन जीवनदायी और राम के रंग से भरा हुआ है।

× × × ×

गुरु वचनों पर चलने वाला नरक से बच जाता है, गुरु वाणी में अमृत बरसता है।

× × × ×

सच्चा गुरु अपने शिष्य के बंधनों को काट देता है। और शिष्य समस्त विकारों को त्याग देता है। सच्चा गुरु अपने शिष्य को हरिनाम रूपी महाधन देता है। वह शिष्य बडभागी है जिसको ऐसा गुरु प्राप्त है।

× + \ ×

मेरे मन में तो गुरु से बड़ा कोई नहीं है। दूसरा मार्ग मुझे तो कोई सूझता नहीं। गुरु ने जिस मार्ग पर डाल दिया है वह सच्चा मार्ग है। उसको सभी पदार्थों—की प्राप्ति हो गई जिसने गुरु को पा लिया है। वास्तव में तो वे बडभागी हैं जिनका मन गुरु चरणों में लग गया है।

ईश्वर प्राप्ति के दोनों साधन नाद (शब्द) और वेद (ज्ञान) गुरु वचनों में हैं। गुरु ही नाद के आदि कर्ता शिव और गोरखनाथ हैं तथा वेद का प्रथम व्याख्याता ब्रह्मा भी गुरु ही है पारबती और सरस्वती मां भी गुरु हैं जो कि क्रमश नाद और वेद की प्रथम श्रोता हैं।[1]

गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसुरा।
गुरदेव सखा अगिआन भंजनु गुरदेव बंधिप सहोदरा।
गुरदेव दाता हरिनामु उपदेसै, गुरदेव मंतु निरोधरा।
गुरदेव सांति सति बुधि मूरति गुरदेव पारस परसपरा।
गुरदेव तीरथु अमृत सरोवरु गुर गिआन मजनु अपरंपरा।
गुरदेव करता सभि पाप हरता गुरदेव पतित पवित करा।

अर्थात्—गुरु माता है और पिता है। स्वामी है और ईश्वर है। गुरु ही अज्ञान का दूर करने वाला मित्र है। गुरु कुटुम्बी जन और मां जाया भाई है।

१ कहा जाता है कि निर्जन कैलाश में जब शिवजी ने नाद किया तो वहां उसको सुनने वाली अकेली पारबती मां थी। और वेदों का प्रथम व्याख्यान भी सरस्वती देवी ने सुना था।

गुरु हरिनाम का उपदेश करने वाला (भक्ति) का दाता है। गुरु ही चित्त की वृत्तियों के निरोध करने वाला मत्र है। गुरु शांति, सद्बुद्धि की मूर्ति और स्पर्श से ही लोहे को सोना बनाने वाला पारस है।

गुरु तीर्थों मे अमृतसर है मन के मार्जन (शुद्धि) के लिये अगाध ज्ञान है।

गुरु ही पापों का हरने वाला कर्त्ता पुरुष है। गुरु ही गिरे हुए लोगों को पवित्र करने वाला है।

– गौडी बावन अखरी महला ५

× × × ×

अब प्रश्न यह होता है कि गुरु इतना समरथ और महान् क्यों होता है? इसका उत्तर यह है कि गुरु (१) ईश्वर की भक्ति करता है। (२) गुरु ईश्वर मिलन की साधना मे अपने को खपा देता है। (३) गुरु को ईश्वर के सिवा कुछ सूझता ही नहीं। वह उसके लिये बिना जल की मछली, परदेशी प्रीतम की प्रिया और बिछडे चातक की चकवी की भांति तडपता है। इस तरह गुरु पूरा हरिजन है। सगुण की उपासना करने से वह भक्त है। आत्मज्ञान की साधना में सलग्न रहने से साध है और निर्गुण को पा लेने की तड़प मे संत है।

गुरुमत के प्रवर्त्तकों ने इन तीनों ही प्रकार के हरिजनों को आदर दिया है और कहा है लोगो साधुओं की सगति करो, भक्त जनों से हरिकीर्तन सुनो और सतो की शरण मे जाओ। गुरु ग्रन्थ साहब मे स्थान स्थान पर भक्त, साध और सतों की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। यथा —

"चरन साध के धोइ धोइ पीउ। अपि साध कउ अपना जीउ ॥
साध की धूरि करहु इसनानु। साध उपरि जाइये कुरबानु ॥
साध सेवा वडभागी पाईए। साध सगि हरि कीरतनु गाइऐ।
अनिक विघन ते साधू राखै। हरि गुन गाइ अमृत रस चाखै।" – सुखमनी

अर्थात् साधु के चरनों को धो धो कर पीना चाहिये। अपना प्राण भी उसके अर्पण कर देना चाहिए। साधु की चरण रज भी पवित्र है। उसके ऊपर कुर्बान रहना चाहिये। साधु की सेवा बड़े भाग्य से मिलती है। उसके साथ मिलकर हरि कीर्तन करना चाहिये। साधु अनेकों विघ्न बाधाओं से बचाने वाला है वह हरिगुण गाकर अमृत रस का आस्वादन करता है।

× × × ×

सुनि हरि कथा उतारी मैलु। महा पुनीत भये सुख सैलु।
वडे भाग पाइआ साध सगु। पारब्रह्म सिउ लागो रगु। गौडी गुआरेरी महला ५

× × × ×

तेरी महिमा तू है जाणहि। अपाणा आपु तू आपि पछाणहि।
हउ बलिहारी सतन तेरे। जिनि कामु, क्रोध लोभु पीठा जीउ।
तू निरवैरु सत तेरे निरमल। जिन देखे सभ उतरहि कलमल ॥ माझ महला ५

× × × ×

सतन की महिमा कवन वखानहु। अगाधि बोधि किछु मिति नही जानउ ॥
पारब्रह्म मोहि कृपा कीजै। धूरि सतन की नानक दीजै ॥ —गौडी गुआरेरी महला ५

× × • •

जेते माइआ रंग रस बिनसि जाहि खिन माहि।
भगत रते तेरे नाम सिउ सुख भुचहि सभ ठाइ।—आसावरी महला ५ घरु ३
चल चित्त वित्त भ्रमाभ्रम जगु मोह मगन हित।
थिरु नामु भगत दिडमती गुर वाकि सबद रत ॥ —गूजरी महला १ घरू ४
आपि नचाए सो भगतु कहीऐ आपणा पिआरु आपि लाए।
आपे गावै आपि सुणावै इसु मनु अन्धे कउ मारगि पाए ॥—गूजरी महला ३ घरू १
जो तुध भावहि सेई नाचहि जिन गुरमुखि सबदि लिव लाए।
से भगत से ततु गिआनी जिन कउ हुकम मनाए ॥ —गूजरी महला ३ घरू १
सफलु जनमु भगतां कीता। घूर सेवा आपि लाए।
सबदे राते सहजे माते अनदिनु हरि गुण गाए। —सोरठि महला ३

अर्थात—परमात्मा की महत्ता को परमात्मा ही जानता है। और वह स्वयम क्या है ? इसे भी वह (परमात्मा) स्वयम् ही जानता है। मैं तो बलिहारी उसके संतों की हूँ, जिन्होंने काम, क्रोध, और लोभ को पछाड दिया है

हे ! भगवन तू जहाँ निरवैर है। वहा तेरे सत निर्मल है। जिनके दर्शन से सब दोष दूर हो जाते हैं।

× × × ×

सतो की महिमा को कौन वर्णन कर सकता है। वे अथाह है उनका बोध (जानकारी) क उनकी गम्भीरता की कुछ भी सीमा तो नहीं जान पाया हूँ।

× × × ×

संसार मे माया द्वारा दिखाई देने वाले जितने भी रस रंग है वे क्षण भगुर हैं किन्तु हे परमात्मा ! तेरे भक्तजन सभी जगह सुख भोगते है।

× × × ×

अनस्थिर वृत्ति वाला मन मोह मे मगन होकर संसार मे भ्रमाया है किन्तु भक्त जन परमात्मा के नाम को जो स्थिर है दृढ़ता के साथ पकडे हुए है। और गुरु के उपदेशों में तल्लीन है।

परमात्मा संसार को नचाता है किन्तु भगत वह है जो अपने प्यार को परमात्मा मे लगाकर स्वयम परमात्मा को नचाये।

भगत परमात्मा का ही गायन करता है उसे ही सुनाने को गाता है, और यह जो अंधा मन है। इसको सही मार्ग पर डाल देता है।

ईश्वर को जैसा अच्छा लगता है वैसा ही नाच नाचता है। जिन गुरुमुखों (शिष्यों) ने ईश्वर मे ध्यान लगाया हुआ है वही भगत हैं। वही तत्वज्ञानी हैं जिन्होंने परमात्मा को मना लिया है अर्थात अनुकूल कर लिया है।

गुरु सेवा मे अपने को लगाने वाले भगतो का जीवन सफल हो गया है। वे शब्द में रंगे हुए है शान्ति मे मगन है और रात दिन ईश्वर का गुण गान करते है।

'गुरमत' के सस्थापको का दृढ़ विश्वास था कि जो मनुष्य किसी अच्छे गुरु के उपदेशों के अनुसार चलता है। साधु सगति मे रहता है। भगतों के साथ मिलकर हरि चर्चा करता है। संतों के पास बैठकर ईश्वर का चिन्तन करता है। वह अवश्य ही इस भव सागर से पार हो जायगा।

वास्तविक बात यह है कि जिस प्रकार के लोगों में हम बैठते हैं। उनके आचरणों का हम पर प्रभाव पड़ता है। हमारा मन आजाद अवश्य है किन्तु श्रवणों से जो सुना जाता है। आँखों से जो देखा जाता है, जिह्वा से जो चखा जाता है त्वचा से जो स्पर्श किया जाता है। नासा से जो सूंघा जाता है। उसका हमारे मन पर असर न पड़ता हो ऐसी बात नहीं है। श्रवणों से हम यदि किसी का विलाप सुने तो हमारे मन में दया एव करुणा उत्पन्न होगी। शृंगार रस के गाने सुने तो मन में विषय वासना उत्पन्न होगी। जिह्वा से हम स्वादिष्ट पदार्थ खावे तो मन मे मधुरता आयेगी और सडे गले खावे तो मन मे व्याकुलता पैदा होगी। त्वचा से हम यदि रेशम अथवा स्त्री केश जैसी कोमल वस्तुओं को छुऐ तो मन में गुदगुदाहट पैदा होगी और बिजली के तार को छू ले तो मन धड़कने लगेगा। फूलों को सूंघने से मन में ताजगी आती है और दुर्गन्ध से मन में मिचलाहट पैदा होती है। सुन्दर वस्तुओं को देखकर चित्त प्रफुल्लित होता है और भयानक वस्तुओं को देखकर सिकुड़ता है। तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों की स्थितियों का मन पर प्रभाव पड़ता है। अत. मन को अच्छे रास्ते पर लाने के लिये हरिनाम, हरिस्मरण, हरि जाप हरि चर्चा और हरि दर्शन की लालसा पैदा करने का संत धर्म मे यह सर्वोत्तम साधन समझा जाता था कि व्यक्ति की समस्त प्रवृत्तियों को हरि में केन्द्रित कर दो और यह सतगुरु, संत, साधु और भगत जन ही कर सकते थे अत. प्रत्येक सत सम्प्रदाय ने इसी साधन पर जोर दिया और चूंकि सिख गुरु संत ही थे अत उन्होंने भी इसी साधन को मनुष्य के कल्याण का आधार माना।

मनुष्य के उत्थान और पतन का मुख्य कर्त्ता सदैव से और सभी मत मतान्तरों मे 'मन' माना गया है। अत किसी ने उसे मारने की शिक्षा दी है। किसी ने वश मे करने की और किसी ने उसके रुख को मोड़ देने की। किसी ने यह भी कहा है कि मन दो हैं। एक वाह्य वृत्तियों वाला और एक अन्तर्वृत्तियों वाला। वाह्य वृत्तियों वाले मन को नष्ट करदो और अन्त.वृत्तियों वाले मन को जगा दो।

बात सब की एक है। कहने के तरीके भिन्न-भिन्न अवश्य है। यहा हम मन के सम्बन्ध में भारत मे प्रचलित कुछ मत उद्धृत करते हैं।

"मानसं प्राणिनामेव सर्वं कर्मैककारणम्।
मनोनुरूप वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुट मन ।"—नारद पचरात्र १-७-१८

अर्थात्—मन ही लोगों के सर्व कर्मों का एक मात्र कारण है। जैसा मन होता है। वैसी ही बात-चीत निकलती है और बातचीत से मन प्रगट होता है।

"मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसाचे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
त तो नं दुक्ख मन्वेति चक वा वहतो पद ॥'—धम्मपद

अर्थात्—सभी धर्म पहले मनमे उत्पन्न होते हैं। मन ही मुख्य है। वे मनोमय हैं। जब आदमी मलिन मन से बोलता व कार्य करता है। तब दुख उसके पीछे वैसे ही हो लेता है, जैसे (गाडी के) पहिए बैल के पैरों के पीछे हो लेते हैं। और मन साचे पसन्नेन भासति वा करोति वा। ततो नं सुक्ख मन्वेति छाया व अन्त पायिनी।" अर्थात् जब आदमी प्रसन्न मन से बोलता व कार्य करता है तो सुख उसके पीछे छाया की भांति हो लेते हैं।

"न त माता पिता कयिरा अञ्ञे वापिच ञातिका।
सम्मापणिए हितं चितम् सेय्य सोनं ततो करे।" धम्म पद

अर्थात - माता पिता और दूसरे नातेदार कोई भी मनुष्य की उतनी भलाई नहीं कर सकते हैं। जितना कि सुमार्ग पर गया हुआ चित (मन) कर सकता है।

"यथा गार दुच्छन्न वुट्ठी समति विज्झति।
एव अभावित चित रागी समति विज्झति ॥" धर्मपद ६

अर्थात्—जैसे कि घर की छत ठीक न होने पर वर्षा का पानी घर मे प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार असावधान रहने से चित मे राग प्रविष्ट हो जाते हैं।

"मन एव मनुष्याणा कारण बध मोक्षयो।
वन्धाय विषयासगि मोक्षे निर्विषय स्मृतम।"—मैत्र्युपनिषद ६-३-२

अर्थात्—मनुष्य के वन्धन या मोक्ष का कारण मन ही है मन के विषयासक्त होने से बन्धन और निस्संग होने से मोक्ष मिलता है।

मनस्ते महदस्तु च (महाभारत अश्वमेघ पर्व १०-२१)

अर्थात्—तू अपने मन को विशाल बना।

"मन प्रसाद सौम्यत्व मौनमात्म विनिग्रह।
भाव सशुद्धिरित्येतत्तयो मानसमुच्यते।" गीता अ० १७ श्लोक १६

अर्थात्—मन को शुभ विचारों से प्रसन्न रखना, सौम्यता धारण करना और अनाप शनाप न बोलना, सावधान रहना, भावनाओं को शुद्ध रखना मानस अथवा मन का तप है।

"अथाध्यात्म यदेतद्गच्छती वच मनोऽनेन—
चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्ण सकल्प ॥ केनोपनिषद ४-५

अर्थात्—यह जो मन चलता सा दिखाई देता है। इससे लगातार ब्रह्म का स्मरण करे और उसी का सकल्प करे।

"यह मन सक्ती यह मन सीवं। यहु मन पाच तत्त का जीव ॥
यहु मन लै जं उनमनि रहे। तो तीन लोक को वाता कहे।"—गोरखवानी पद ५० बा

अर्थात्—यह मन ही शक्ति है। यह मन ही शिव है। पांच तत्व वाला जीव भी यह मन ही है जो कोई इस मन को लेकर उनमनि (संसार से उदासीन वृत्ति वाले) रहते हैं। वे तीनों लोकों के रहस्य को जान जाते हैं।

× × × ×

कै मन रहै आसा के पास। कै मन रहै परम उदास।
कै मन रहै गुरु के ओलें। कै मन रहै कामनि के खोलें।"—गोरख वानी
दावि न मारिवा, खाली न राखिवा जांनिवा अगिन का भेक।

अर्थात—या तो मन आशा के झूले मे झूलता है। या एकान्त वास चाहता है। या गुरु के सहारे रह सकता है। अथवा स्त्री के अगल-बगल वहलता है।

न तो उसे दबाकर मारो क्योंकि मन को मारकर तुम कौनसा काम कर लोगे। अच्छे कामों का सकल्प भी तो मन से ही होता है। न उसे खाली रक्खो कारण कि खाली मन मे शैतान का वास होता है। मनरूपी अग्नि (प्रकाश) के इस भेद को जान लो।

"मणु जाणइ उवएसडउ जहिं सोवेइ अचितु।
अचित्तचित्त जो मेलवइ सोइ पुणु होइ णिचितु ॥—शैव मुनि रामसिंह

अर्थात्—मन तभी उपदेश को समझता है, जब वह निश्चिन्त हो जाता है। और निश्चिंत वही होता है जो चित को अचित से अलग कर देता है।

मन मेरो गज जिहवा मेरी काती। मपि मपि काटो जम की फांसी—नामदेव

अर्थात्—मेरा मन गज है और जिह्वा कैंची है। मन रूपी गज से नाप कर जिह्वा रूपी कैंची से मैं जम के फन्दे को काट रहा हूँ। भाव यह कि मैं मन का उपयोग अपने पाप निवारण में कर रहा हूँ।

× × × ×

"कबिरा मनहि गयन्द है, आकुस दै-दै राखु।
विष की बेली परिहरी, अमृत का फल चाखु॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइये, मनही की परतीत॥
मन गयद मानै नहीं, चले सुरति के साथ।
दीन महावत क्या करै, अंकुश नाही हाथ॥
मन कुंजर महमत है, फिरता गहर गभीर।
दोहरी तिहरी चौहरी, डारहु प्रेम जंजीर॥"—'कबीर'

अर्थात्—मन हाथी रूप है। इसे अंकुश के द्वारा मन चाहे मार्ग पर चलने से रोको। विषय रूपी विष बेलि को उखाड़ कर फेक दो और अमृत फल को चाखो। स्वाद लो।

"मन से हार जाने पर (जीव की) हार है और मन को जीत लेने पर जीत क्योंकि प्रियतम (परमात्मा) तभी मिलेगा जब हमें मन पर विश्वास हो जायगा।

हस्ती रूपी मन (सहज ही) नहीं मानता, सुरति के साथ दौड़ा फिरता है। जिस महावत के हाथ में अंकुश नहीं है वह गरीब इसे कैसे वश में कर सकेगा।

मन मस्त हाथी है। वह गह्वर वनों में फिरता है। उसका इलाज यही है कि प्रेम रूपी दुहरी, तिहरी और चौहरी जंजीरों से उसे जकड़ दिया जाय। क्योंकि यदि उसे मारा जायगा तो टुकड़े टुकड़े हो जायगा।[1]

चल मन, हरि चटसाल पढाउ।
गुरु की साठि ग्यान का अच्छर, बिसरै तौ सहजि समाधि लगाऊ।
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनि, ररौ ममौ लिखि आक लखाऊं॥
इहि विधि मुक्त भये सनकादिक, रिदै विचार-प्रकाश दिखाऊ॥
कागद कँवल, मसि कर निर्मल, बिन रसना निस दिन गुन गाऊ।
कहि रैदास, राम भजु भाई, सत साखि दे बहुरि न आऊं।"—रैदास भगत

अर्थात्—मन चल तुझे भगवान् की पाठशाला में पढ़ा दूं। उस पाठशाला में छडी (उदंड बच्चों को पीटने का बेत) गुरु रूप है। ज्ञान रूप अक्षर हैं। इस पढ़ाई को तू भूलेगा तो मैं समाधि लगाकर तुझे ठीक करूंगा। अर्थात् हिलने डुलने नहीं दूंगा।

उस पाठशाला में प्रेमरूप पाटी (तख्ती) है और सुरति रूपी लेखनी (कलम) है। इस पट्टी पर मैं तुझें रा और म (राम) अक्षर लिखकर दिखाऊंगा। सनक आदि मुनीश्वर इसी विधि से सांसारिक

1 कबीर मारो मन कू, टूक-टूक ह्वै जाय।

वचनों मे छूटे थे। हृदय में सुविचारों का प्रकाश करना है।

जब तू इस पट्टी की पढ़ाई को समाप्त कर लेगा। तब (हृदय) कमल को कागज बना सुरतिरूपी निर्मल स्याही से हरिगुन गान का मौन पाठ लिखाऊंगा। इस सम्बन्ध में संतों की साक्षी है कि इस प्रकार से राम भजन का करने वाला आवागमन से मुक्त हो जाता है।

'मन निर्मल तन निर्मल भाइ। आन उपाइ विकार न जाइ॥
जो मन कोयला तो तन कारा। कोटि करै नहि जाहि विकारा॥
जो मन विषहर तो तन भुयंगा। करै उपाइ विषै फुनि संगा॥
मन मैला तन उज्वल नाही। बहुत पचिहारे विकार न जाही॥
मन निर्मल तन निर्मल होई। दादू साच विचारै कोई॥—'दादू दयाल'

चलुरे मन जहँ अमृत बना। निर्मल नीके संत जना।
निर्गुण नाउ फल अगम अपार। सतन जीवनि प्राण,अधार।
सीतल छाया सुखी सरीर। चरण सरोवर निर्मल नीर।
सुफल सदा फल बारह मास। नाना वाणी धुनि परकास।
तहा वास बसि अमर अनेक। तहँ चलि दादू इहै विवेक।—दादू दयाल

अर्थात्—मन की निर्मलता से ही शरीर निर्मल रह सकता है। दूसरा उपाय कोई नहीं। मन काला है तो शरीर भी काला है कितने ही उपाय करो विकार नहीं जा सकते। यदि मन विषधर है तो तन भयानक साप है। यत्न करने से विष ही हाथ पड़ता है। मन मैला है तो शरीर उज्वल नहीं हो सकता। बहुतों ने उपाय किये हैं किन्तु वे पचकर हार ही गये हैं। मनकी निर्मलता से ही शरीर की निर्मलता है। यही सत्य है और इसी का विचार करना चाहिये।

भाव यह है कि शरीर के जो अन्य अंग है वह दस इन्द्रिय मे विभाजित हैं। अत चाहते हो कि हमारी आखें किसी को कुदृष्टि मे न देखे। हमारे कान बुरी बात न सुनें (आदि) तो मन को स्वस्थ और निर्मल बनाओ।

मन निर्मल कैसे बने इसके उत्तर मे दादू दयाल का दूसरा पद है जिस मे वे कहते हैं—

"अरे मन चल वहां चलें जहां निर्मल सत-जन हैं।

वहा उन्हो ने अमृत सदावर्त लगा रक्खा है। उन संतों का जीवन प्राण निर्गुन हरि के नाम जप का फल है वहाँ शरीर को सुखी करने वाली शीतल छाया है। निर्मल नीर वाले चरण-सरोवर है। नाना प्रकार की वाणियों के उपदेश रुपी सुन्दर फल,वहां बारह मास फलते हैं। वहा बसकर अनेकों ने अमरत्व को प्राप्त कर लिया है।

भाव यह कि मन सतजनों की सगति मे ही निर्मल हो सकता है क्योंकि वे अपनी अमृतमयी वाणी मे सुन्दर उपदेश करते है। उनकी रहनी और ज्ञान चर्चा का प्रताप ही मनको निर्मल बना देता है।

मनके लिये सिख गुरुओं ने भी यह भाव जाहिर किये हैं जैसा कि नीचे लिखे उद्धरणों से प्रकट हैं—

"मन मुख मन अजित है, दूजै लगै जाद।
तिसनो सुख सुपनै नहीं दुखे दुख विहाइ।

घर घर पड़ पड़ पंडित थके, सिध समाधि लगाइ।
इहु मन बसि न आवही, थके करम कमाइ।
भेख धारी भेख करि थके, अठसठ तीरथ नाइ।
मन की सार न जाणनी हउमै भरम भुलाइ।
गुरु परसादी भउ पइआ बड भाग बसिआ मन आइ।
भै पइए मन बसि होआ, हउमैं सबद जलाइ।"—वार सोरठ महला ३

अर्थात्—स्वतंत्र हुए मन का जीतना कठिन है। क्योंकि वह दूसरे ही मार्ग को ग्रहण कर लेता है। (और जिसका मन ऐसा हो गया है) तिसे स्वप्न में भी सुख नहीं है। दु:ख ही दु:ख की वृद्धि है।

पंडित पढ़ते पढ़ते थक गये और सिद्ध समाधि लगाते लगाते, यह मन वश मे ही नहीं आता है। अनेको वेशों वाले सम्प्रदायी वेश धरि धरि के थक गये। और तीर्थों मे जाने वाले अड़सठों तीर्थ की यात्रा करके थक गये।

वास्तव में बात यह है कि यह लोग 'अहम्' के भ्रम मे भूले हुए हैं। इसलिये मन के सार को नहीं जान सके।

गुरु के प्रसाद से मेरा सौभाग्य है कि भयभीत हुआ मन वश मे आ गया है, कारण कि मैंने 'अहम्' को जला दिया है।

× × × ×

"गुरु मुख करणी कार कमावै। ता इस मन की सोझी पावै।
मन मैमत मैगल सिक दारा। गुरु अकुस मार जीवालण हारा॥
मन असाध साधे जन कोई, अचर चरै तां निरमल होई।
गुरु मुख इहु मन लइआ सवार, हउमै विचहु तजै विकार।"—धनाश्री महला ३

अर्थात्—मन की गति पर वही काबू पा सकता है। जो गुरुमुख होकर गुरु के बताये हुए कर्मों को करता है। मन मद मस्त हाथी के समान है। गुरु (मन्त्र) अंकुश है। जिसके मारने से इसे होश में लाया जा सकता है।

इस असाध्य मन को वही सभाल सकेगा जिसका गुरु के बताये आचरणों पर चलने से मन निर्मल हो गया है।

"मन कुचर आइआ उदिआनै, गुरु अकुस सचु सबदु नीसानै।"
—राग गौडो अष्टपदी महला १

अर्थात्—यह शरीर तो उद्यान (गह्वर वन) है। इसमे विचरने वाला मन मस्त हाथी जैसा है। इसे वश में लाने के लिये गुरु (मंत्र) अंकुश और सत्य उपदेश निशाने हैं।

"साधो इहु मनु गह्यो न जाई।
चंचल त्रिसना संगि बसत है, याते थिर न रहाई॥"—गौडी महला ९

अर्थात्—संतजनो! यह मन पकड़ मे नहीं आ रहा है। कारण चचल तृष्णा साथ मे बसी हुई है। वही इसे स्थिर नहीं रहने देती है। भाव यह कि मनको स्थिर करनेके लिये तृष्णाको छोडना पडेगा।

"मन हठ करम कमावदे नित नित होइ खुआर।
अतर सांति न आवई ना सच लगै पिआर॥"—श्रीराग अष्टपदी महला ३

अर्थात्—ओ ! मन हठ करके जो तू (अकर्म) कर्म कर रहा है। इससे तो नित खराब ही होता है। तेरे इन कामों से न तो अन्त करण मे शांति आ रही है और न उस सत्य सरूप परमात्मा मे प्यार (ध्यान) ही लग रहा है।

"काइआ नगर इकु बालक वसिआ, खिन पल थिर न रहाई।
अनेक उपाव जतन कर थाके, वारवार भ्रमाई ॥"—बसत अष्टपदी महला ४

अर्थात्—शरीर रूपी नगर मे मन रूपी एक चंचल वालक वसता है (यह इतना नट खट है कि) जो क्षण भर भी स्थिर नहीं रहता है। अनेक उपाय और यत्न किये गये है किन्तु यह बार बार भ्रम जाता है।

"मन खुट रह, तेरा नहीं विसासु, तू महा उदमादा।
खर का पैखर तउ छूटै जउ ऊपर लादा ॥—बिलावल महला ५

अर्थात्—अरे मन वंधा रह तेरा विश्वास नहीं है। क्योंकि तू वडा उपद्रवी है। (जानता है) गधे के पैरों का रस्सा तव खोला जाता है जव उस पर बोझा लाद दिया जाता है। भाव यह कि तुझे नियम मे रखने मे ही हित है।

"इहु मनु आरसी कोई गुरमुख वेखे, मोरचा न लागै जा हउमै सोखै ॥"माझ अष्टपदी महला ३

अर्थात्—यह मन दर्पण है, जो कोई गुरुमुख हैं वही इसे देखते है। इस पर जंग न चढ़ जाय। इसलिये इसके 'अहम्'को सुखा देना चाहिये। भाव यह है कि जैसा मन होगा वैसा ही तन होगा। स्वच्छ दर्पण मे जिस भाति चेहरा अच्छा दिखाई देता है। वैसे ही स्वच्छ मन वाले की शारीरिक चेष्टाये भी अच्छी होती हैं।

"मनि जीते जगु जीत ॥ जपु

अर्थात्—मन को जीत लेने में ही मनुष्य की सच्ची जीत है।

× × × ×

सिख गुरुओं ने जहाँ अपने मन को वश मे करने का उपदेश दिया है। वहाँ यह भी कहा है कि मन मुख लोग अर्थात् निगुरे भवसागर से पार नहीं हो सकते।

हरिरग कउ लोचै सभ कोई, गुरमुख रग चलूणा होई।
मनमुख मनमुख मुगध नर कोरा होई, जे सउ लोचै रग न होवै कोई ॥—सूही महला ४

अर्थात्—सव कोई हरि रग (हरि नाम के रग) को पसन्द करते है और यह रंग गुरुमुख पर ऐसा चढता है कि टिकाऊ रहता है। सार यह कि गुरु ऐसे (हरि प्रेम रंग मे रग देता है जो सहज ही नहीं छूटता। मन मुख मनुष्य वेरग होता है। क्योंकि जो सव रगो को देखता है उसे कोई भी रग नहीं लगता।

"मन की मति तिआगहु हरिजन ऐहा बात कठैनी।
अनदिन हरि हरि नाम धिआवहु गुरु सतगुरु की मति लेनी।"—बिलावल महला ४

अर्थात्—हरिजनो ! मन मुख पने को छोड़ दो और रात दिन गुरु अथवा सतगुरु की सलाह लेकर हरिनाम का स्मरण करो।

"माइआ मोहु गुबार है, तिसदा न दिस्सै उरवारु न पारु।
मनमुख अगिआनि महा दु ख पाइदे डुब्बे हरिनामु बिसारि।"—सलोक महला ३

अर्थात्—माया मोह का जो गुबार है। उसका कोई ओर छोर नहीं दिखाई देता। मनमुख जो मूर्ख हैं वह यहाँ दु ख पाते हैं और हरिनाम को त्याग देने के कारण उस गुबार (भँवर) मे डूब जाते हैं।

> "मन मुख करम कमावणे, जिउ दोहागणि तनि सीगारु।
> सेजै कतु न आवही नित नित होइ खुआरु।
> पिरु का महलु न पावही ना दीसै घरु बारु।"—श्री राग महला ३

अर्थात्—मनमुख का काम ऐसा है जैसे दोहागिनी स्त्री का शृंगार। क्योंकि वह नित नित शृगार करके दु खी होती है। कारण कि उसकी सेज पर उसका पति नहीं आता है। वह न तो पति के महल (अटारी) को पा सकती है और न उसे घर बार ही दीखता है। और जो '—

> "गुरमुखि सदा सुहागणी पिरु राखिआ उरधारि।
> मिठ्ठा बोलहि निवि चलहि सेजै रवै भतारु॥"—श्री राग महला ३

अर्थात्—गुरमुख जो हैं वह सदा सुहागिन की भाति हैं। क्योंकि उसका पति उन्हे हृदय मे धारण किये रहता है। वह मीठा बोलती है। विनम्र होकर व्यवहार करती है। उसका पति उसकी सेज पर पौढ कर उसकी तृप्ति करता है।

भाव यह है कि जो लोग अपने मन के मुताबिक चलते हैं। उन्हे ईश्वर नहीं मिल सकता। ईश्वर तो उन्हीं लोगों को मिलेगा जो सतगुरुओं के बताए मार्ग पर चलते हैं अर्थात् हरि कीर्तन और हरि स्मरण में जिनका मन लगा हुआ है।

सिख गुरुओं के कथनानुसार गुरुमुख लोगों के लिये यहाँ भी शाति है क्योकि वह गुरु उपदेशों मे माया मोह के फंदे से छूट जाता है और अपने 'अहम्' को त्याग कर प्रभु मे अपने को रमा लेता है। और उनका परलोक भी सुधर जाता है क्योंकि वह हरि रूप ही हो जाते हैं।

मनमुख गुरुओं की दृष्टि मे नदी किनारे का वृक्ष है।

गुरु मत में अधिक से अधिक जिस बात पर बल दिया गया है 'हरि नाम' का स्मरण है। साधु बड़ा इसलिये है कि वह हृदय को 'हरि आवास' बनाने लायक बनाता है। भगत बडा इसलिये है कि वह हरि दर्शनों का प्यासा है और गुरु बडा इसलिये है कि मनमुखों को हरि की ओर लगाकर उनके हृदय को शुद्ध बनाता है। सारांश कि यह सब इसलिये बड़े हैं कि उनका लक्ष्य 'हरिनाम' है। सिख गुरुओं का कोई वाक्य कोई उपदेश ऐसा नहीं जिसमे हरि और 'हरिनाम' का जिक्र न आता हो। उनकी दृष्टि में जप, तप, संयम, वेद, पुराण और शास्त्र सब सार हीन हैं यदि वे हरि को बताने मिलाने और उसके प्रति प्रेम पैदा करने मे असमर्थ हैं। इसलिये जहां उन्होंने 'हरि स्मरण' की बार बार शिक्षा दी है और हरि स्मरण को ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य बताया है वहाँ उन्होंने नाम की महिमा पर भी बहुत कहा है। यथा —

नाम महिमा

> "नाम के धारे सगले जन्त। नाम के धारे खड ब्रह्मण्ड॥
> नाम के धारे सिमृत वेद पुरान। नाम के धारे सुनन गिआन धिआन।
> नाम के धारे आगास पाताल। नाम के धारे सगल आकार॥
> नाम के धारे पुरिआ सभ भवन। नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन।
> करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए। नानक चउ थे पद महि सो जन गति पाये। सुखमनी।

अर्थात्—सब जीव जन्तु नाम के ही आधार पर हैं। सारे ब्रह्माण्ड भी नाम पर आश्रित हैं। स्मृति वेद और पुराणों का आधार भी (हरि) नाम ही है। श्रवण मनन और ध्यान भी नाम का ही किया जाता है। आकाश, पाताल और सभी साकार वस्तुओं का धारण करने वाला वह नाम रूप हरि नगर और नगरों के घर सभी नामाधार हैं। नाम के धारण करने और श्रवण से अनेकों का उद्धार हो गया है।

कृपा करिके ईश्वर ने जिन्हें अपने नाम स्मरण मे लगा लिया है। वह आदमी चौथी अवस्था (तुरीय) को प्राप्त होकर मुगति पा जायेंगे।

महान भक्त तुलसीदास ने भी हरि नाम की खूब प्रशंसा की है उन्होंने कहा है राम से राम का नाम कहीं बडा है। क्योंकि राम ने तो एक अहिल्या का ही उद्धार किया था। राम के नाम ने भील, अजामिल, गीध आदि अनेकों पापियों को निस्तार दिया।

नाम के चमत्कारों की प्रशंसा मे गुरु लोगों ने कहा है "हथ कगन को आरसी क्या"? अपना पुराना इतिहास उठाकर देख लो 'नाम स्मरण' से कितनों का कल्याण हो गया है।

"सुणि साखी मन जपि पिआर। अजामिलु उधरिआ कहि एक बार।
वालमीकै होआ साध सगु। ध्रू कउ मिलिआ हरि निसंग।
तेरिआ सता जाचउ चरन रेन। ले मसतकि लावउ करि किरपा देन। १।
गनि का उधरी हरि कहे तोत। गजइन्द्र धिआइओ हरि कीओ मोख। /रहाउ/
विप्र सुदामे दालदु भज। रे मन तू भी भजु गोविन्द।
बधिकु उधारिओ खमि प्रहार। कुबिजा उधरी अगुसट धार।
बिदुर उधारिआ दासत भाइ। रे मन तू भी हरि धिआइ॥
प्रहलाद रखी हरि पैज आप। बसत्र छीनत द्रोपदी रखी लाज।
जिनि जिनि सेविआ अतबार। रे मन सेवि तू परहि पार।
धन्नै सेविआ बाल बुधि। त्रिलोचन गुरि मिलि भई सिधि।
बेणी कउ गुरि किओ प्रगासु। रे मन तू भी होइ दासु।
जैदेव तिआगिओ अहंमेव। नाइ उधरिओ सैनु सेव।
मनु डीगि न डोलै कहूं जाइ। मन तू भी तरसहि सरणि पाइ।
जिह अनुग्रह ठाकुरि किओ आपि। से तै लीन्हे भगत राखि।
तिनका गुण अवगुण न बिचारिओ कोइ। इह बिधि देखि मनु लगा सेव।
कबीरि धिआइओ इक रग। नाम देव हरि जीउ बसहि सगि।
रविदास धिआए प्रभ अनूप। गुरु नानक देव गोविन्द रूप। बसत महला ५ घरु १ दुतुकिआ

अर्थात्—अरे मन इन घटनाओं (साखियों) को सुन कर प्रभु का प्यार के साथ स्मरण कर। अजामिल तो एक बार के उच्चारण से ही तर गया।

वाल्मीक को साधुओं के सत्सग से (हरिनाम) का बोध हो गया और फिर उसने (हरि स्मरण से) अपना उद्धार कर लिया। और ध्रुव को तो परमात्मा (सच्चे प्रेम के कारण) बिना ही किसी संग के मिल गये।

गोतम की त्रिया (अहिल्या) चरण रज के मस्तक पर लगते ही तर गई।

गणिका अपने तोते को राम नाम पढ़ाने से ही पाप निवृत्त हो गई और स्वर्ग को चली गई। और गजेन्द्र ने ग्राह (मगर) से पकड़े जाने पर जब हरि नाम स्मरण किया तो उसे भगवान ने ऐन मौके पर ग्राह से मुक्त कर दिया।

अरे मन तू भी परमात्मा का भजन कर, देख उसने सुदामा जैसे दरिद्र ब्राह्मण के दुख दूर करके उसका बेड़ा पार कर दिया।

वधिक का उद्धार खभ के प्रहार से कर दिया। कंस की दासी कुब्जा का उद्धार पैर के अगूठे को पैर से दबाकर कर दिया।

महात्मा विदुर को उसके दास भाव की भगति से प्रसन्न होकर उद्धार दिया। अरे मन तू भी अपने उद्धार के लिये हरि स्मरण कर।

प्रहलाद की पैज (हरि नाम न छोड़ने की जिद) को अहंकारी हरिणाकुश को जिसने कि रात दिन घर बाहर और देव दानव तथा मनुष्य किसी से भी न मरने के वरदान हासिल कर लिये थे—मार कर रक्खा। और द्रोपदी की—दुष्ट दु शासन द्वारा वस्त्र हरण करके नगी होने से बचाकर लाज की रक्षा की। जिस जिसने भी हरिनाम को याद किया चाहे अत समय में ही सही उनका उद्धार हुआ। अरे मन तू भी हरि स्मरण कर जिससे तेरा बेड़ा पार हो जाय।

धन्ना भगत ने बाल बुद्धि से उसे याद किया तो उसकी बालहट को पूरा किया और त्रिलोचन को गुरु को मिलने पर उनके बताये मार्ग से सिद्धि हुई।

वेणी भगत के हृदय मे गुरु ने राम नाम का प्रकाश किया अरे मन तू भी भगवान का सेवक बन जा।

जयदेव ने हरि दर्शन के लिये अहँकार को छोड़ दिया। हरि भगत के कारण सेना नाई का उद्धार हो गया। मन तू भी डिगै मत हरि शरण मे जाने से तू भी तर जायेगा।

उस प्रभु ने जिस पर भी दृष्टि की, उसका ही निस्तार कर दिया उसने किसी के गुण अवगुणों का खयाल नहीं किया इसी भरोसे पर तू भी उसकी शरण में जा।

कबीर ने उसकी उपासना केवल एक रंग (निर्गुण भाव) से की। नामदेव उसे (मूर्ति रूप) में साथ रखता रहा। रैदास ने उसका भजन विचित्र रूप को सामने रख कर किया और गुरु नानक देव ने गोविन्द रूप से। तू भी उसे भज। वर्ना तो—

> "कण बिना जैसे थोथर तुखा। नाय विहून सूने से मुखा।
> नाम बिना नाही मुखि भागु। भरते विहून कहा सोहाग॥
> नाम बिसारि लगै अन सुआइ। ताकी आस न पूजे काहि।
> मनु रे नामु जपै सुख होइ। गुरु पूरा सालाहिए सहज मिले प्रभु सोइ।

अर्थात्—अन्न के दोनों के बिना जैसे तुख (सिट्टे) थोथे (व्यर्थ) हैं। उसी प्रकार बिना (हरि) नाम के मुँह थोथा है। हरि नाम से खाली मुँह उसी भाति निरभाग है जैसे कि बिना भरतार के स्त्री सुहाग व्यर्थ है। जो हरि नाम को छोड़ कर दूसरे मजे लेते हैं। उनकी इच्छाये पूरी नहीं होती हैं। इसलिए हे मन ! सुख तो हरि नाम के जपने से ही मिलेगा। उस पूरे गुरु की सराहना करनी चाहिए जिससे कि प्रभु का मिलना सरल हो जाता है।

ईश्वर प्राप्ति के लिये जहाँ भक्ति का होना आवश्यक है वहाँ भक्ति के तरीकों की जानकारी भी

आवश्यक है। भारतीय भक्ति परम्परा मे भक्ति-प्रदर्शन के नौ प्रकार वताए गये हैं। जो नवधा-भक्ति के नाम से अभिहित होते हैं। 'ग्रन्थ साहब' का अनुशीलन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि सिख गुरुओं ने मानव कल्याण के लिये नवों प्रकार की भक्तिको अपनाया है। वे नौ प्रकार श्रवण अर्थात् १–ईश्वरके नाम और गुणों का सुनना २–कीर्तन-ईश्वर के नाम और गुणों का गायन। ३—स्मरण—ईश्वर के नाम और गुणों का जप। ४—सेवन—अपने मन से ईश्वर की सेवा तथा उसमे प्रीत करना ५—अर्चन—आत्मा को परमात्मा का समीपी समझ कर उसके सग रहने की भावना। ६—वन्दना—परमात्मा को महान् समझ कर (उसके सामने) विनम्र होना। ७—सेवक भाव—ईश्वर को अपने तन मन और सर्वस्व का मालिक समझ कर उसकी इच्छा के अनुकूल चलने का प्रयत्न करना। ८—मित्र भाव—यह समझना कि मेरा सबसे वड़ा सच्चा हितैषी ईश्वर है जो सुख, दु ख और आपत्ति सम्पत्ति मे सदा मेरा सहायक है। ६—आत्म समर्पण—वह भक्ति है जिस मे मनुष्य यह समझ लेता है कि मैं कुछ नहीं। न मेरे करने से कुछ होने का है। परमात्मा जैसे रखेगा मैं रहूँगा और उसकी शरण मे रहने में ही मेरा कल्याण है।

भक्ति के प्रकार

'ग्रन्थ साहब' मे इन नवों प्रकार की भक्ति के सम्बन्ध मे इस प्रकार प्रकाश डाला गया है।

श्रवण

"सुणिऐ पडि पडि पावहि मान। सुणिऐ लागहि सहजि धिआनु।
सुणिऐ अंधे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु। —जपु जी

अर्थात्—सुनने और फिर सुने हुए को पढ़ने से उसके मान (परिमाण) का पता चलता है। अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है।

उसके सम्बन्ध मे सुनने से सहज ध्यान मे मन लग जाता है।

ईश्वर मार्ग के सम्बन्ध में जो अन्धे हैं अर्थात् जिन्हे ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं है। वे उसके गुणों को सुनकर राह पर चल निकलते हैं। सुनने से ही अगम्य पदार्थ (ईश्वर प्रेम) हाथ लगता है।

ईश्वर के सम्बन्ध मे सुनने से भक्तों का सदैव विकास होता है। दु:ख और पापों का नाश भी हरिगुण सुनने से होता है।

"ऐसा कीरतनु करि मन मेरे। ईहा ऊहा जो काम तेरै। रहाउ।
जासु जपत भउ अपदा जाय। धावत मनुआ आवै ठाइ। —गौडी महला ५

\+ + + +

कीर्तन

"राति न विहावी साकता, जिन्हा विसरै नाउ।
राती दिनस सुहेलिया, नानक हरि गुण गाउ॥—सलोक म॰ ५

\+ + +

हरि कीरति साधु संगति है सिर करमन के करमा।
तेरे सेवक इह रंग माता।
भयउ कृपालु दीन दुख भजन हरि हरि कीरतन इहु मन राता।—सोरठ महला ५ अष्टपदी

\+ + + +

'भली सुहावी छापरी जासहि गुन गाए।
कित ही कास न धवलहर जित हरि बिसराए।"--सूही महला ५

+ + + +

"हउ बलिहारी जो प्रभु धिआवत। जलनि बुझै हरि हरि गुन गावत।"—बिलावल म० ५

+ + + +

"मनूआ नाचै भगति द्रिढाए। गुरु कै सबद मन मनै मिलाए।
सचा ताल पूरे माइआ मोह चुकाए। सबदे निरत करावणिआ।"—माझ महला ३ अष्टपद

अर्थात्—मेरे मन ऐसा कीर्तन कर जो इस लोक और उस लोक दोनों में तेरे काम आवै। जिसके जपने से भव (संसार) की आपदा चली जाय और दौड़ता हुआ मन ठिकाने पर आजाय।

+ + + +

"अरे शाक्त रात को व्यर्थ मत गँवावे। उसके नाम को छोड़ने से--और इन अकृत्यों को करने से—तेरा जन्म व्यर्थ ही जायगा इसलिये रात दिन तू हरि गुण का सुहेला गा।

+ + + +

साधु संगति और हरि कीर्तन सब कर्मों में सिरमौर (श्रेष्ठ) हैं। प्रभु के सेवक इसी रंग में अपने को रंगते हैं। इनको भगवान की दया से हरि कीर्तन ही अच्छा लगता है।

+ + + +

उन महलों से जहाँ कि मनुष्य ईश्वर के गुण-गान को भूल जाता है वह झोंपड़ी अच्छी है जहाँ हरि कीर्तन होता है।

+ + + +

'मैं उन लोगों पर निछावर हूं। जो भगवान का ध्यान करते हैं। क्योंकि हृदय की जलन तो हरि के गुणों का कीर्तन करने से ही शांत होती है।

+ + + +

"भक्ति में मन का दृढ़ होना ही सच्चा नाच है। गुरु के शब्दों का मन में मिलान कर लेना सच्चा संगीत है और माया मोह का छोड़ देना सच्ची लय (ताल) है। शब्द ही सच्चा नृत्यकार है।

+ + + +

"प्रभु कै सिमरन गरभ न वसै। प्रभु कै सिमरन दूख जम नसै॥
प्रभु कै सिमरनि काल परहरै। प्रभु कै सिमरन दुस्मन टरै॥
प्रभु सिमरत कछु बिघन न लागै। प्रभु कै सिमरन अनुदिन जागै॥—गौडी सुखमनी महला ५

स्मरण

"सो सुरता सो वैसनो सो गिआनी धनवत।
सो सूरा कुलवत सोइ जिन भजिआ भगवत॥
खत्री ब्रहमण सूद वैस उधरै सिमर चंडाल।
जिन जानिउ प्रभु आपना नानक तिसहि रवाल॥—गौडी थिती महला ५
जाकै सिमरन होइ अनंदा, बिनसै जनम मरन भै दुखी।
चार पदारथ नवनिधि पावहि, बहुरि न तिरसना भूखी।—सोरठ महला ५
सचि सिमरिऐ होवै परगासु। ताते बिखिआ महि रहै उदास। —धनाश्री म० १ घरु दूजा

अर्थात्—प्रभु के स्मरण से मनुष्य गर्भवास के कष्टों से छुटकारा पा जाता है अर्थात् वह जन्म और मरण के चक्कर से छूट जाता है। और प्रभु के स्मरण से यम-यातनाओं के दुःख भी नष्ट हो जाते हैं।

प्रभु के स्मरण मे मृत्यु भी छोड़ देती है। अर्थात् सहज ही नहीं आती। और दुश्मन का भय भी प्रभु स्मरण से टल जाता है।

प्रभु-स्मरण से हानि कुछ भी नहीं होती। अपितु जो प्रभु का स्मरण करता है वह सदैव जागरूक रहता है।

\+ + + +

वही श्रोता अथवा वेदज्ञ है। वही वैष्णव, ज्ञानी और सच्चा धनी है और शूरवीर और कुलीन भी वही है—जिसने कि भगवान का भजन किया है। उस परम पिता परमेश्वर को स्मरण करने से क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, और शूद्र-यहा तक कि चडाल भी उद्धर गये हैं।

जिन्होंने प्रभु के साथ अपनापन जोड़ लिया है नानक तिन पर बलिहार है।

\+ + +

उसके स्मरण से आनन्द प्राप्त होता है और जन्म मरण के भय और कष्ट नष्ट होते हैं। यही क्यों उसके स्मरण से जीवन के जो परम लक्ष्य—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष नाम के चार पदार्थ हैं वे और नवों प्रकार की निधिया प्राप्त होती है और तृष्णा की भी भूख मिट जाती है। ऐसा है हरि स्मरण।

\+ + +

(वास्तविक बात तो यह है कि) उस सत्य स्वरूप के स्मरण से हृदय का अन्धकार दूर हो जाता है और निर्मल ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। हृदय मे ज्ञान का प्रकाश होने से मनुष्य विषय-वासनाओं की ओर से उदासीन हो जाता है और विषय-वासनाओं से जहाँ हृदय खाली हुआ, वहीं उसका सर्वतोमुखी कल्याण है। कारणकि

"कलि महि राम नामु सारु।" (धनाश्री महला १ घरू ३)

अर्थात्—कलियुग मे हरि नाम ही सार है।

साकार प्रभु की सेवा करने वालो ने मन्दिरों और मठो मे उसके अनेक नामों पर मूर्तियां स्थापित करली हैं किन्तु जो निराकार के उपासक हैं। वे परमात्मा की सेवा कैसे करे। उसका विधान समस्त निर्गुणी सन्तों ने यह बताया है कि उसकी मानसिक सेवा करो। इस सम्बन्ध मे सिख गुरुओं ने जो कुछ कहा है उसका थोडा सा अंश इस प्रकार है.—

"तुझ बिन कौन हमारा, मेरे प्रीतम प्राण अधारा।
अतर की विधि तुमही जानी, तुमही सजन सुहेले।
नयन सरब सुखा मैं तुझते पाए, मेरे ठाकुर अगह अतोले।
बरन न साकिउ तुमरे रगा, गुण निधान सुख दाते।
अगम अगोचर प्रभु अविनासी' पूरे गुरते जाते।"—गौडी महला ५

"हम मल मल धोवहि पाव गुरु के जो हरि हरि कथा सुनावै।—गौडी महला ४

"सतगुरु की सेवा गाखडी, सिर दीजै आप गवाइ।
सबद मिलहि ता हरि मिलै, सेवा पवै सभ थाइ॥—श्री राग म० ३

"जेते जीअ तेते सभि तेरे, विणु सेवा फल किसै नहीं।"—आसा महला १

ऐसी सेवकु सेवा करै, जिसका जीउ तिसु आगै धरै।—धनाश्री महला १ घरु दूजा

अर्थात्—ओ, मेरे प्राणों के आधार प्रियतम (परमात्मा) तेरे विना हमारा कौन है ? मेरे अन्त करण में जो कुछ है उसे तुम भली प्रकार जानते हो। क्योंकि:—

"तूं मेरा पिता तू हं मेरा माता, तू मेरा बधुप तूं मेरा भ्राता।

तूं मेरा सभनी थाई, ताभउ केहा काडा जीउ।[१]

ओ, मेरे अथाह और अतोल ठाकुर सारे सुख मैंने तुम से ही पाये है।

ओ ! गुण निधान और सुखदाता ! मैं तुम्हारी विचित्राओं का वर्णन कैसे कर सकता हूँ क्योंकि तुम अगम अगोचर हो। हे अविनाशी ! तुम्हे पूरे गुरु के द्वारा ही जाना जा सकता है।

× × ×

हम उस गुरु के पैरों को मल कर धोते हैं जो ईश्वर की कथा का वर्णन हमसे करता है।

× × ×

सतगुरु की सेवा अति कठिन है। किन्तु फिर भी अपने को गँवा कर और सिर देकर भी उसकी सेवा करनी चाहिए। जब अनहद शब्द का घोष ब्रह्माण्ड मे होने लगे तो समझ लो हरि मिल गये और सेवा तो सब स्थानों पर प्राप्त की जा सकती है।

× × ×

इस संसार मे जितने भी जीव हैं। वे सब हे परमात्मा तेरे ही हैं। विना सेवा के इन सब का जन्म निष्फल है अर्थात् सेवा अनिवार्य है।

× × ×

हमारी समझ मे उस निरंकार की सेवक ऐसी सेवा करे कि कहदे कि हे प्रभु यह तेरा जीव तेरे आगे है।

जो सेवक यह कह देगा कि 'साहव भावै सो परवाणु।' उसके लिये यह निश्चय है "सो सेवकु दरगाह पावै माणु।" अर्थात् वह सेवक ईश्वर की दरगाह मे सन्मान पावेगा।

प्रचलित अर्थों मे अर्चन का अर्थ पूजा लिया जाता है। और पूजा का अर्थ मूर्ति पूजन समझा जाता है। मूर्तियों पर लोग फूल, चावल, सुपारी, हल्दी, तिलक आदि चढ़ाते हैं। इन्हीं रिवाजों को देखते हुए संत रैदास ने कहा था:—

"दूध तो बछरे थनहु बिटारिउ। फूल भँवर जल मीन विगारिउ।

अर्चन × × ×

मैलागिरि बेरे है भुइ अगा। विख अमिरत बसहि इक सगा।

धूप दीप नईवेदहि वासा। कैसे पूज करै तेरी दासा।"

अर्थात्—दूध तो बछड़े ने थन में ही जूठा कर दिया। फूल को भौंरे ने जूठा कर दिया। मलयगिरि पर चन्दन के वृक्षो से सांप लिपटे हुए है जिससे चन्दन की अमृतमयी सुगन्धि मे सांपों की श्वासप्रश्वांस का विप मिल गया है। धूप और नैवेद्य बासी है। ताजा नहीं। यह तेरा दास फिर किससे तेरी पूजा करै।"

१. तुमेव माता च पिता तुमेव। तुमेव बन्धुश्च सखा तुमेव (भागवत)

किन्तु धूप, दीप, नैवेद्य तथा दूध और फल फूलों से तो साकार पंथी पूजा अर्चन करते थे। निराकार पंथी अपने प्रभु की पूजा कैसे करे ? इसके लिये सिख गुरुओं ने कहा.—

"आतमादेउ पूजिए, बिनु सतगुर बूझ न पाइ।"—वार श्रीराग महला ३
तेरा नाम करी चानणाठीआ जे मन उरसा होइ।
करणी कगु जे रलै, घट अन्तर पूजा होइ। —गूजरी महला १

अर्थात्—आत्मदेव की जो कि घट भीतर है पूजा करो। किन्तु इस पूजा की विधि सतगुरु के समझाये बिना समझ में नहीं आ सकती।

× × ×

हे प्रभु ! तेरे नाम की तो चन्दन वटी बनाई जाय और अपने मन को (मनुष्य) बनावे सिल। फिर सुकृत्यों की केसर मिला कर घिसे। इस प्रकार की जो पूजा है वह अन्त करण में ही हो सकती है।

उस पूजा और अर्चना की तो सिख गुरुओं ने भर्त्सना ही की है। जो मन्दिर और मठों में पुजारी लोग करते हैं। जैसा कि इस एक पद से ही प्रकट हो जायगा।

"मन बेकारी वेडिया वेकारा करम कमाइ।
दूजै भाइ अगिआनी पूजदे दरगहि मिलै सजाइ। —वार श्रीराग महला ३

अर्थात्—मन तो बिना काम के लम्पट हो गया है। जो व्यर्थ के कर्मों में उलझा हुआ है। परमात्मा को मूर्तियों में पूजना द्वैत भाव है जो अज्ञानियों का काम है। इन अज्ञानियों को ईश्वर की दरगाह में सजा मिलेगी।

कालान्तर में कुछ हेर फेर के साथ यह पूजा पद्धति सिखों में 'ग्रंथ साहिब' के प्रति अगाध श्रद्धा के रूप में प्रस्फुटित हुई।

वदना हरि वंदना गुण गावहु गोपाल राइ। —रहाउ ॥
वडै भागि भेटे गुर देवा। कोटि पराध मिटे हरि सेवा।

वन्दना चरन कमल जाका मन रापै। सोग अगनि तिसु जन न विआपै।—धनाश्री महला ५

नमस्कार ताकउ लखवार। इहु मनु दीजै ताकउ वारि।
सिमरनि ताकै मिटहि सन्ताप। होई अनन्दु न विआपहि ताप ॥—भैरव महला ५
सुभ दिवस आए गहि कंठ लाए प्रभ ऊँच अगम अपारे।
विनवति नानक सफलु सभु किछु प्रभु मिले अति पिआरे ॥—विहागडा महला ५ छंत
निवि निवि पाइ लगउ गुरु अपुने आतम रामु निहारिआ।
करत विचारु हिरदै हरि रविआ हरदै देखि विचारिआ।—आसा महला १

अर्थात्—हरि का वन्दन करो। एक बार नहीं अनेकों बार हरि की बन्दना करो। गोपालराय के गुणों का गायन करो। (इस प्रकार का उपदेश देने वाले) गुरुदेव का मिलन वड़े भाग्य से हुआ है। परमात्मा की सेवा में करोड़ों अपराध मिट जाते हैं। जिस मनुष्य का मन प्रभु के चरण कमलों में रम जाता है। उसे चिन्तारूपी अग्नि नहीं जलाती।

उस प्रभु के लिये लाखों बार नमस्कार है। जिसके स्मरण से समस्त संताप (कष्ट) मिट जाते हैं तथा आनन्द की प्राप्ति हो जाती है और दैहिक, दैविक तथा भौतिक नाम के तीनों प्रकार के जो ताप हैं वे पास नहीं आते। इस मन को उस प्रभु पर निछावर कर दो।

+ + +

यह प्रथम दिन का आगमन है जो उस महान् और अगम अपार प्रभु ने मेरे को कंठ से लगा लिया है। नानक अति नम्रता से उस प्रभु की वन्दना करते हैं क्योंकि सब कुछ प्यारे प्रभु के मिलने से सफल हो गया।

\+ + +

अपने गुरु के पैरों की झुककर वन्दना करो। जिनके उपदेश से अपने आपको पहचानने में समर्थ हुए। यह हृदय में विचार करके देख लिया है कि परमात्मा हृदय में ही रम रहा है।

\+ + +

सेवक-भाव तिसु सेवक कै हउ बलिहारी जो अपने प्रभ भावै।
तिसकी सोइ सुणी मनु हरिआ तिसु नानक परसणु जावै।—आसा महला ५

ठाकुर का सेवक आगिआकारी। ठाकुर का सेवक सदा पूजारी।
ठाकुर के सेवक कै मन परतीति। ठाकुर के सेवक की निरमल रीति।
ठाकुर कउ सेवक जानै संगि। प्रभ का सेवक नाम कै रंगि।—सुखमनी

अर्थात—उस सेवक की हम बलिहार जाते हैं जो अपने प्रभु को अच्छा लगता है। हमने उसकी यश (गंध) सुनी है। तिसका स्पर्श (आलिंगन) करने जाने को नानक का मन चाहता है।

\+ + +

ठाकुर के सेवक में कुछ अद्‌भुत गुण होते हैं। वह अपने को ठाकुर का आज्ञाकारी समझता है। सदा ही वह उसी की पूजा करता है। उसके मन में अपने प्रभु का अगाध विश्वास होता है। उसकी समस्त रीतियां शुद्ध पवित्र हो जाती हैं। क्योंकि वह कोई पाप नहीं करता कारण कि वह अपने प्रभु का सदैव अपने इर्द गिर्द समझता है और वह समस्त झंझटों और सोच-विचारों को छोड़कर प्रभु के रंग में रंग जाता है।

\+ + +

जब सेवक इस प्रकार अपने को अपने प्रभु की सेवा में अर्पण कर देता है तो—

"सेवक कउ प्रभ पालन हारा। सेवक की राखै निरकारा।"

× × ×

"अपने जन का परदा ढाकै, अपने सेवक की सर पर राखै।
अपने दास कउ देइ वडाई, अपने सेवक कउ नांव जपाई।
अपने सेवक की आप पति राखै। ताकी गति मित कोउ न लाखै।"—सुखमनी

अर्थात्—प्रभु भी अपने सेवक का पालनहार बन जाता है। और निरंकार होते हुए भी उसकी बात, जिद अथवा पैज को रखता है।

\+ + +

वह अपने सेवक की पुरानी बुराइयों पर परदा डालता है। और उसके सिर की पगड़ी की रक्षा करता है। (एक अर्थ यह भी है कि उस की बात को ऊंची रखता है) ।

अपने सेवक से नाम का जाप कराकर उसकी कीर्ति को फैलाता है। (लोग कहने लगने हैं अमुक व्यक्ति तो बड़ा भारी भगत है)

मित्र-भाव

मन मुख सेती दोसती थोडडिआ दिन चार।
इस परीती तुट्दी बिलम न होवई, इहु दोसती चलन विकार।—वार वडहस म० ३
मनमुख सउ करि दोसती सुख कि पुछै मित।
गुरमुख सउ करि दोसती सतगुर सिउ लाइ चित।
जमण मरण का मूल कटीए ता सुख होवी मित।—सलोक बारां ते बधीक म० ३
मिलिआ होइ न वीछडे जे मिलिआ होई।—सूही महला १
मिलिए मिलिआ ना मिलै, मिलै मिलिआ जो होइ।
अन्तर आतमै जो मिलै, मिलिआ कहिऐ सोइ।—वार सूही महला २
अपना मीतु सुआमी गाइऐ।
आस न अवर काहू की कीजै—सुखदाता प्रभु धिआइऐ।—सारग महला ५
तू मेरे मीत सखा हरि प्रान।
मनु धनु जीउ पिंडु सभ तुमरा इहु तनु सीतो तुमरै धान।—सारंग महला ५
हरि सा मीतु नाही मै कोई। जिनि तनु मनु दीआ सुरति समोई। —मारू म० १
कोउ है मेरो साजनु मीतु। हरिनाम सुनावै नीत।
बिनसै दुख बिपरीति। सभ अरपउ मनु तनु चीतु।—नट पडताल महला ५

अर्थात्—ऐसे लोगों से—जिनका मन काबू में नहीं है अर्थात् भ्रष्ट आचरण वाले हैं—मित्रता निभने वाली नहीं होती। चार छः दिन में ही टूट जाती है। और ऐसी मित्रता का चलना भी बेकार है।

\+ × ×

मनमुखों से दोस्ती करके कोई सुख चाहे वह मूर्ख है। दोस्ती तो गुरुमुखों से करनी चाहिये अर्थात् जो सदाचार के रास्ते पर चल रहे हों। और सतगुरु परमात्मा में चित्त लगाना चाहिये जिससे जन्म-मरण की व्याधियां मिट जाय और सुख शांति मिले।

× × ×

सच्चा मेली (मित्र) मिलने पर कभी बिछुड़ता नहीं। और ऐसा मेली (मित्र) तो परमात्मा ही है।

\+ + +

मिलने वाले अनेकों मिलते हैं किन्तु सच्चे मिलने वाले तो मिलते नहीं। सच्चा मेली (मित्र) तो वह है जो अन्तःकरण (आत्मा) में समा जाता है। (ऐसा मेली तो परमात्मा ही है)

× × ×

आपका जो वास्तविक मित्र अर्थात (परमात्मा) है। उसी का गुण-गान करो और किसी दूसरे पर आस मत लगाओ।

\+ + +

हे प्राणाधार भगवान् तू ही मेरा सच्चा सखा और मित्र है। मेरा यह तन, मन, धन और प्राण सब कुछ तेरा ही है। यह मेरा शरीर पृथ्वी जैसा है। मेरे इस शरीर में अपने प्रेम रूपी हल (सीतो) से आप भक्ति रूपी धान बीजिए।

\+ + +

हरि सरीखा मेरा कोई मित्र नहीं है जिसने इस शरीर में सुरति (सुबुद्धि) का संयोग करके मन

को रचा है। जिससे कि हम उसका चिन्तन कर सकते हैं।

+ + +

कोई मेरा ऐसा सज्जन मित्र है? जो मुझे नित हरि गुन सुनाता रहे। जिससे मेरे विरोधी दुखों का नाश हो और मैं अपने तन, मन अथवा सर्वस्व को जिसे अर्पण कर दूं। (ऐसा मित्र सिवा भगवान के कौन है)

समर्पण-भाव

पूर्ण समर्पण भाव मे भक्त अपने और परमात्मा के मध्य में पत्नी और पति का भाव अपना लेता है।

निर्गुणवाद के प्राय सभी सन्तों ने भक्ति के इस प्रकार को अपनाया है यथा —

"मै बौरी मेरा राम भतार। रचि-रचि ताको करौं सिंगार ॥
भले निंदौं भले निंदो भले निंदो लोग। तन मन मेरा राम पियारे जोग।" —नामदेव (सत सुधासार)

अर्थात्—मेरा भरतार (प्रियतम) राम है। मै उसी पर बावली हुई फिरती हूँ। उसी से मिलने के लिये मैं सुधार-सुधार कर श्रृंगार करती हूँ।

लोग मेरी चाहे जितनी निन्दा करो। मैंने अपने तन, मन को राम प्रियतम से जोड़ लिया है।

हू वारी, मुख फेरि पियारे। करवट दे मोहि काहे को मारे।
करवत भला, न करवट तेरी। लाग गरे सुन विनती मेरी।
हम तुम बीच भया नहि कोई। तुमहिसो कत नारि हम सोई ॥
कहत कबीर सुनो नर लोई। अब तुम्हरी परतीत न होई ।।—कबीर (सत सुधासार)

+ + +

अर्थात्--मैं तो वारी (नवीना) हूँ। मेरे प्रियतम मेरी ओर मुँह करलो। करवट बदल कर अर्थात पीठ देकर मुझे क्यों दुखी करते हो। तेरी करवट भली नहीं है भली तो करवत (गलबांही) है। इसलिये मेरी विनय सुनकर गले से चिपट जा। तुम्हारा जैसा कत और हमारी जैसी काता हमारे तुम्हारे जमाने मे तो कोई हुए नहीं हैं। अरे (दुनियांदार) लोगों तुम्हारा अब विश्वास जाता रहा है और मैंने तो अपने मन को प्रभु-प्रियतम मे लगा लिया है।

+ + +

"मै वेदनि कासनि आखूं, हरि बिन जिव न रहै कस राखू।
जिव तरसै ल्यौं आसरु तेरा, करहु संभाल न सुर मुनि मेरा।
विरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै।
सखी सहेली गरब गहेली। पिय की बात न सुनहु सहेली।
मै रे दुहागिनि अघ कर जानी। गया सो जोवन साध न मानी।—रैदास-(सत सुधासार)

+ + +

अर्थात्—मैं वैद्य को क्या रोग बताऊ।

प्रियतम के बिना यह जीव नहीं रहता, इसे किस विधि से रक्खूं। जब यह जीव तरसता है तभी तेरा आसरा लेती हूँ। मेरी सँभाल तो तुम्हीं करो क्योंकि मेरे तो संभाल करने वाला कोई ऋषि, मुनि और देवी, देवता भी नहीं है।

जो साथिन हैं वे अभिमानिनी हैं। और हे सखी उस पति (परमेश्वर) की बात न पूछो। मै तो

दुहागिन (दुर्भागी) रही। सिर्फ पाप कर्म करके ही मैंने जाने है। यौवन अब चला जा रहा है। कोई साध पूरी नहीं हुई।

+ + +

कहियो जाइ सलाम हमारी राम कूँ। नैन रहे झडलाय तुम्हारे नाम कूँ।
कमल गया कुम्हलाय कलिया भी जायसी। हरि हर, वाजिद, इस वाडी में बहुरि न भँवरा आयसी।
—'वाजिद' (सन्त सुधासार)

अर्थात—राम से जाकर हमारी नमस्कार कहना कि तुम्हारे दर्शन के लिये नैनों में झड़ी लग रही है।

कमल तो कुम्हला गया है। कलियां भी मुरझा कर गिरने वाली है। फिर इस वाटिका में भँवरा आकर क्या करेगा।

+ + +

इस आत्म समर्पण भक्ति को सिख गुरुओं ने भी अपनाया था उन्होंने भी कहा—

"मै मनि तनि विरहु अति अगला किउ प्रीतमु मिलै घरि आइ।
जा देखा प्रभु आपणा प्रभि देखियै दुख जाइ।
जाइ पुछा तिन सज्जणा प्रभु कितु विधि मिलै मिलाइ।"—श्री राग महला ४ घरू १

+ + +

मिलु मेरे प्रीतमा जिउ तुधु विनु खरी निसाणीं।
मै नैणी नीद न आवै जीउ भावै अन्नु न पाणी।
पाणी अन्नु न भावै मरीऐ हावै बिनु पिरु किउ सुखु पाईऐ।—गौडी महला ३

+ + +

× × × ×

गुनु अवगुनु मेरो कछु न बीचारो।
नह देखिओ रूप रग सींगारो॥
चज अचार किछु विधि नहीं जानी।
बाह पकरि प्रिय सेजै आनी॥
सुनिवो सखी कंति हमारो कीअलो खसमाना।
कर मसतकि धारि राखिओ करि अपुना किआ जानै इहु लोक अजाना॥
—आसा महला ५

अर्थात्—मेरे तन, मन में विरह की अत्यन्त तडपन है। किसी तरह प्रीतम घर आकर मिल लें। जिसने अपने प्रियतम को देख लिया है। उसका दुःख चला गया। क्योंकि प्रियतम के तो देखते ही दुःख चला जाता है। मैं अपने साजन से पूछती हूँ। प्रभु जिस विधि से तुम मिलते हो, उसी विधि से मिल जाओ।

× × × ×

मेरे प्रियतम मिल जाओ। तुम्हारे विना मैं दुर्बल हो रही हूँ। मेरे नेत्रों की नींद उड़ गई है।

और अन्न पानी कुछ भी नहीं भाते है। अन्न पानी अच्छा नहीं लगता है। जी मे मरने की आती है। क्योंकि विना प्रियतम के सुख कहाँ है।

× × × ×

प्रियतम जब मेरे ऊपर निहाल हो गये तो उन्होंने न तो मेरे गुण अवगुणों को देखा और न रूप रंग और शृंगार को।

चर्य्या (रोज मर्रा के रहन सहन के ढंग) और आचार विचार की किसी विधि को भी नहीं जाना। बाँह पकड कर प्रियतम ने सेज पर सुला ली।

सखी! हमारे प्रियतम के खममाने के ढंग को सुना। अब प्रियतम से निवेदन है कि अपने कोमल हस्त को मेरे मस्तक पर रक्खे रहो। अनजानों से भरा हुआ यह लोक भी क्या जानेगा? कि प्रीत ऐसी होती है।

संतों और गुरुओं के इन समस्त पदों मे आत्मा को नारी और परमात्मा को पुरुष मान कर उस विरह का रूपक बांधा है जो ईश-मिलन के लिये भक्ति की पराकाष्ठा मे होता है। इस प्रकार की भक्ति का नाम "आत्म-समर्पण" भक्ति है।

भक्ति-भाव मे हरिजनों ने ईश्वर को बालक, माता पिता, सखा और प्रियतम विभिन्न रूपों मे देखा है। इन भावनाओं के अनुसार ही उसे हँसाने, खिलाने, पालन पोषण करने और "बिगरे काज" सँवारने के लिये प्रेरित किया है।

गुरु-मत में भक्ति को किसी भी संत सम्प्रदाय से कम महत्व नहीं दिया गया है।

भक्ति और योग

वैदिक आर्य्य यहि लोक और परलोक के सुखों की प्राप्ति के लिये कर्म, ज्ञान और उपासना को आधार मानते थे।

कर्मों में शुभ कर्म, कुकर्म दो भेद थे। चोरी, व्यभिचार, दगा, फरेब, अहंकार, ईर्षा द्वेष और कुकर्म अथवा त्याज्य कर्म समझे जाते थे। परोपकार, परहित, दान, क्षमा, दया आदि शुभ कर्म कहे जाते थे। शुभ कर्मों में अग्नि-होत्र का एक विशेष स्थान था। यह अग्नि होत्र ही बड़े पैमाने पर होने के कारण यज्ञ कहलाए।

प्राचीन आर्य्यों का यह भी ख्याल था—जोकि पौराणिक काल में पूर्णता को प्राप्त होगया था—कि अमुक्त जीवों के लिये उनके कर्मों के अनुसार या तो स्वर्ग नर्क मे जाना पडता है या विभिन्न योनियों मे भटकना पड़ता है। पुराणकारों ने इन योनियों की संख्या चौरासी लाख निर्धारित की थी और सात स्वर्ग और चौदह नर्क गिनाये थे।

पौराणिक आर्य्यों की दृष्टि में यह कोई नियम न था कि जीव को चौरासी लाख योनियाँ भुगतनी ही पड़े। उनकी निगाह मे तो यह दंड प्रकार था ठीक वैसे ही जैसे कि ताजीरातहिन्द में पाँचसौ दस दफाये हैं किन्तु वे किसी भी एक आदमी पर लागू नहीं होती बल्कि जो जैसा अपराध करता है वह वैसी ही सजा का भागी होता है। जैसे कि दगा फरेब के लिये दफा ४२० अथवा केत्ल के लिये ३०७ हैं। उसी भांति चौरासी लाख योनियाँ भी भिन्न२ अपराधों की सजा भुगतने के लिये कल्पना मे लाई गई थीं। यथा कजूसों के लिये सर्पयोनि का उल्लेख था, योवन पर घमंड करनेवालों का गुबरीला कीड़ा बनने की कल्पना थी।[1]

1. जो जानै मैं जोवन वंतु। सो होवन विसटा का जंतु।—सुखमनी

ऐसे अपराध जिनमें किसी भी योनिद्वारा सजा पूरी होने की सभावना नहीं थी। उन्हे भुगतने के लिये चौदह प्रकार के नर्क थे और चूंकि समस्त कर्मों मे यज्ञ श्रेष्ठ कर्म थे। अत यज्ञ करने वालों के लिये स्वर्ग थे।

आर्यों की कर्म फिलास्फी का यही संक्षिप्त व्याख्यान है। ज्ञान फिलास्फी संसार को स्वयम् को और जो ससार और स्वयम से ऊपर है। उसे समझने के लिये काम की चीज थी। जिज्ञासा, मनन चिंतन और हल ज्ञान-फिलास्फी के आधार थे।

यह निश्चित हो जाने तथा मान लेने पर कि ससार और हमारे से कोई ऊपर भी है और वह सबका नियता तथा पोषक भी है तथा पूर्ण आनन्द उसकी प्राप्ति मे है। उपासना का प्रादुर्भाव हुआ। और ज्यों ज्यों प्रभु-मिलन की उत्कण्ठा प्रवल हुई उपासना के विभिन्न प्रवाह हो गये। जिनमे योग और भक्ति मुख्य है।

ज्ञान ने यह वताया कि परमात्मा है किन्तु उससे मिलन आत्मा का ही हो सकता है। तव आत्मा को परमात्मा का साक्षात् होने मे वाधा क्या है? वह दीवार कौनसी है? जो दोनों के वीच मे है इस प्रश्न का हल भी ज्ञान फिलास्फी ने किया। ज्ञान ने कहा, आत्मा तो चार कोषों से ढका हुआ पाचवॉ कोष है। अन्न, प्राण, मन और ज्ञान कोषों के वाद आनन्दमय कोष है। आत्मा का मुख्य स्थान यही है।

जैसा हम अन्न खाते है। वैसा हमारा प्राण और मन वनता है। सड़ा गला अन्न खाने से प्राण कमजोर और मन मलीन रहेगा। जैसा मन वैसी वुद्धि। और वुद्धि ही ज्ञान की प्रेरक है। अत निष्कर्ष निकला कि ऐसा खाद्य सेवन करो जो प्राण को पुष्ट करने वाला, मन को निर्मल वनाने वाला और सद्-वुद्धि का उत्पन्न करने वाला है। अत. परमात्म-प्राप्ति के लिये आहार भी एक विषय वन गया। अहिंसा, दया और आचार इस आहार-शास्त्र के अग हुए।

अन्न पूर्ण मिलता है अथवा आवश्यकता से भी अधिक मिलता है और प्राण भी पुष्ट है तो इंद्रियां स्फूर्तिवान होने के कारण चचल होगी। चचल इन्द्रिया अनिष्ट कर्म भी कर सकती है। इस शका का समाधान ज्ञान ने यह कह कर किया कि इन्द्रियां मन से वधी हुई हैं। वही इनका प्रेरक है अत' मन की वृत्ति पर कावू पा लो। मन की वृत्ति पर कावू पाने का नाम ही संयम हुआ। सत्यंवद, प्रियम्वद, मा गृध परदारेपु मातृवत और परद्रव्येपु लोष्टवत् सयम शास्त्र के अंग हुए।

शरीर की शुद्धि, प्राण की शुद्धि, मन की शुद्धि और वुद्धि की शुद्धि केवल आत्मा की स्वतंत्रता के लिये अनिवार्य सिद्ध हो गये।

शरीर की शुद्धि ने स्नान, उवटन, चौर, मर्दन और व्यायाम को जन्म दिया। प्राण की शुद्धि ने आरण्य निवास, उद्यान भ्रमण, ब्रह्मचर्य्य और प्राणायाम को जन्म दिया। मन की शुद्धि ने एकान्त, ध्यान, धारणा और अन्तर्वृत्ति को जन्म दिया। वुद्धि की शुद्धि के भावों ने सत्सग, स्वाध्याय और शुभाशुभ के निर्णय तथा स्थित-प्रज्ञता को पैदा किया।

इस प्रकार आत्मा के परमात्मा तक पहुँचने तथा तदाकार होने का जो राज मार्ग वना उसका चित्र निम्न भाति सामने आता है।

१—शरीर को स्वच्छ और स्वस्थ रक्खो। उसे शुद्ध व स्वस्थ रखने के लिए—न्हाओ धोओ, मंजन करो, मर्दन करो और सात्विक आहार करो तथा श्रम एव व्यायाम करो।

२—मन को स्वस्थ रक्खो। कायिक वाचिक, और मानसिक किसी प्रकार का पाप न करने से मन स्वच्छ और स्वस्थ रहता है। किसी को कटु वचन कहना, किसी की निन्दा करना, झूठ बोलना आदि वाचिक पाप हैं और किसी को पीटना, किसी का द्रव्य हरण करना, बुरी दृष्टि से देखना, दुर्गन्ध फैलाना योनि संसर्ग करना आदि कायिक पाप हैं। किसी के अहित की योजनाएं बनाना। बुरे विचार करना मानसिक पाप हैं।

३—प्राणों को सबल और स्वस्थ बनाओ। प्राणों की सबलता सुगन्धित द्रव्यों युक्त स्वच्छ वायु के सेवन और प्राणायाम से होती है।

४—बुद्धि का सदुपयोग करो। बुद्धि के सदुपयोग की प्रेरणा स्वाध्याय और सत्संग से होती है और यदि बुद्धि अच्छी हो तो मन को सुमार्ग पर डाल सकती है। ज्ञान को जागृत कर सकती है। जगा हुआ ज्ञान ही परमात्मा और जीवात्मा को मिलाने वाला है।

५—आत्मा को ईश्वरोन्मुख कर दो।

ऊपर के समस्त प्रयत्नों के पूर्ण होते ही आत्मा ईश्वरोन्मुख हो जाती है।

बस इस सारे ही साधनों से सज्जित होने का नाम योग था। योग से जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करता है और उसमें लीन हो जाता है।

ज्ञान से जीवात्मा अपनी स्थिति का बोधत्व अथवा सजगता प्राप्त करता है। मन से बाहरी बन्धनों को तोड़ता है और प्राण से क्रियाशील अथवा स्फूर्तिवान रहता है। अन्न प्राणों का आधार है।

अत. जीवात्मा के परमात्म-प्राप्ति में प्राण मन और ज्ञान सभी की सहायता अपेक्षित है। और इन सभी साधनों को यथावत जुड़ाने अथवा प्रयोग में लेने का नाम ही योग है।

योग और भक्ति अर्थों में अलग अलग भले ही हैं किन्तु लक्ष्य अथवा साधन दोनों का एक ही है। योग का अर्थ मिलना है और भक्ति का अर्थ अलग करना है। योग मन को प्रवृत्त करता है साधना में। प्राणों को प्रयुक्त करता है ध्यान में। भक्ति मन को अलग करती है माया मोह और अहंम् से। प्राणों को चिन्ता से।

योग का आधार ज्ञान है और भक्ति का आधार श्रद्धा और प्रेम। योगी परमात्मा का साक्षात्कार करता है और भक्त उसमें अपने को खो देता है।

सिख गुरुओं ने स्वर्ग, नर्क, चौरासी लाख योनि, कर्मफल. और यम और उसके दूत एवं गणक (चित्र गुप्त) का अस्तित्व वैसा ही माना है जैसा पौराणिक काल के आर्य्य मानते थे किन्तु उन्होंने तीर्थ श्राद्ध और पूजा अर्चा को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया।

ईश्वर के मिलने के जो दो मार्ग योग और भक्ति थे। उनमें से उन्होंने भक्ति को प्रधानता दी। वैसे योग को भी अपनाया किन्तु योग के हठ अंग को नहीं अपनाया। प्राणायाम में से रेचक कुम्भक को छोड़ दिया किन्तु जप को अपना लिया।

हठ योग के नेति धोती और वस्ती आदि षट कर्मों को अग्राह्य कहते हुए भी उन्होंने हठ योगियों के इस कथन को स्वीकार किया कि नाभि कमल में अमृत झरता है और उसकी ऊर्ध्व गति होने पर अमृतपान किया जा सकता है।

हठ योग के एक अंग (नामा) स्वर विज्ञान में उन्होंने इडा, पिंगला का वर्णन किया है किन्तु वह

वर्णन केवल वर्णनात्मक है क्रियान्वित करने की कोई चर्चा उन्होने नहीं की।

योगियों के ब्रह्माण्ड सिद्धान्त को भी उन्होने स्वीकार किया है। योगी लोग हृदय से लगाकर मस्तिष्क तक कई लोक मानते है। इसी भाति गुरुओ ने भी कुछ हेर फेर के साथ माना है और यह भी स्वीकार किया है कि आत्मा के तुरीयावस्था प्राप्त कर लेने पर अनहद नाद होने लगता है।

इस प्रकार गुरुओं की भक्ति सहजि—योगयुक्त-भक्ति है। और इसी भक्ति के रस मे विभोर होकर उन्होंने हरिदर्शन की अपनी छट-पटाहट को बड़े ही मार्मिक शब्दों मे अनेक बार और अनेक प्रकार से कहा है। इस कहने और छटापट की झाकी 'गुरु ग्रन्थ साहब' मे पूर्णतया होती है।

अब हम सिख गुरुओ की वे वाणिया देकर इस प्रकरण को समाप्त करते है जो कि हमारे उपरोक्त समस्त कथन की आधार है'—

कई जनम भये कीट पतगा। कई जनम गज मीन कुरगा।
कई जनम पखी सरप होइओ। कई जनम हैवर वृख जोइओ।
योगनी का चक्र मिलु जगदीस मिलन की बरिआ। चिरकाल यह देह सजरीआ।

अर्थात—कई जन्म कीड़े पतंगों की योनि भुगतनी पड़ी। कई जनम हाथी मछली और हिरन बनना पडा। कई जन्म तक पक्षियो और सर्पो मे पैदा होना पडा। कई जन्म तक घोड़े और बैल का जीवन बिताना पडा। हे जीव अब परमात्मा से मिल क्योंकि मिलने की बारी आगई है। बड़े लम्बे समय के बाद तुझे यह मानव का चोला मिला है।

लेकिन इन विभिन्न योनियों मे यह जीव क्यो फिरा ? इसके उत्तर मे गुरु अर्जुन देव जी कहते है—

'बहु जौनी फिरहि धुरि किरति लिखिआसा। जैसा बीजा तैसा खासा।

अर्थात्—यह जीव विभिन्न योनियो मे अपने कृत्यों की धुरी पर लेखानुसार घूमता है। जैसा कोई बोयेगा वैसा ही खायेगा। भाव यह है कि मनुष्य जैसे कर्म करता है उसी के अनुसार उसका लेखा यानी हिसाब बनता है कि इसने अमुक कर्म किया है इसलिये अमुक यौनि भुगतनी पड़ेगी। क्योकि अमुक कर्म का फल अमुक यौनि है। वास्तव मे यह यौनि-चक्र कर्म की धुरी पर घूमता रहता है। जैसे कर्म वैसी यौनि।

इस वाणी में इतना अर्थ और समाविष्ट है कि मनुष्य (जीव) जो कर्म करता है। उन्हीं के अनुसार ईश्वर उनको भाग्य रेखा अथवा कर्म लेख तैयार करता है। इस भाग्य लेख को ही पूर्व संस्कार कहा गया है।

यह हमने पहले कहा है कि कुछ ऐसे भी दुष्कृत्य है जिनका फल भोगने के लिये किसी यौनि के कष्ट अपर्याप्त है उन पापो का फल भुगतने के लिये नर्क हैं। नरक का व्यवस्थापक बताया गया है यम को। यम के सैनिक यमदूत और उसके यहा का लेखा जोखा रखने वाला चित्र गुप्त

यमदूत कहलाता है।[1]

"कूकर कूड कमाईऐ गुर निंदा पचै पचान।
भरमे भूला दुख घणो जमु मारि करै खलि हानु।"—श्री राग महला १ घरू १
"अन्तर बिखु मुख अमृत सुणावै। जमपुर बाधा चोटा खावै।"—गौडी महला ५

अर्थात्—बुरे कर्मों के लिये श्रम और गुरु निन्दा पचते नहीं है। इनका कुफल भोगना ही पडता है। और जब मनुष्य भ्रम में भूल जाता है घने दुख उठाता है । (अंत मे) जमदूत उनकी हड्डी पसलियों को तोड़कर खलिहान बना देते हैं।

अन्त करण तो विष से भरा हुआ हो और मु ह से मीठा बोले। ऐसा आदमी बाध कर जमपुर ले जाया जाता है जहाँ उसकी कुटाई होती है।

× × × ×

"ऐर्थ कमावै सो फलु पावै मनमुखि है पति खोई।
जमपुरि घोर अन्धारु महतुगुबारु ना तिथै भैण न भाई।"—वडहंस महला ३

अर्थात्—यहा जो हम करते हैं उसी के फल भोगने पडते हैं। यह मनमुख होने का नतीजा है। यमपुरी मे भयानक अन्धेरा है और गहरे गुबार (धुआ) मे ढकी हुई है। वहाँ अपना कोई नहीं है।

"लालचि लागै नामु बिसारिओ आवत जावत जनमु गइआ ।
जा जमु धाइ केस गहि मारै सुरति नही मुख काल गइआ।

अर्थात्—लोभ मे पड़कर परमात्मा के नाम को विसार दिया। जिसमे आवागमन मे ही कई जन्म बीत गये। कितनी वार केस पकड़ कर के जम ने मार लगाई है। यह याद ही नहीं क्योंकि बहुतेरा समय काल के मु ह मे चला गया।

लेकिन जम का त्रास किस प्रकार दूर हो इस पर गुरुओं ने कहा है—

'एक अपर जिस जन की आसा। तिसकी कटिऐ जम की फासा।

अर्थात्—जिस मनुष्य की आस एक (परमात्मा) मे ही लगी रहती है। उसके लिये जम फास कट जाता है।

जम की भांति ही गुरुओं ने चित्र गुप्त को भी याद किया है गुरु नानक देव ने कहा है—

"गावति तुधनोचितुगुपतु लिखि जाणनि लिखि घरा विचारै" (सोदरु म० १)

अर्थात्—कर्मो का हिसाब रखने वाला चित्र गुप्त भी तुम्हारा ध्यान करता है।

संत कबीर ने तो झुंझला कर कहा था—

"बाबा अब न बसउ इह गाउ। घरी घरी का लेखा मागै काइथु चेतू नाउ।"

अर्थात्—अब मैं (जीव) इस (काया) नगर मे नहीं बसूंगा क्योंकि चित्र गुप्त घड़ी-घड़ी का हिसाब मागता है। (राग मारू)

"अविक जनम भ्रमे जोनि माहि। हरि सिमरन बिनु नरक पाहि।

स्वर्ग नर्क —बसन्त महला ५ घर १ दुतुकीआ

बैकुंठ गोबिंद चरन नित धिआउ। मुकति पदारथु साधू संगति अमृत हरि का नाउ। (सारग महला ५

"ईहा दुखु आगै नरकु भु चे बहु जोनि भरमावै। —सारंग महला ५

अर्थात्—ईश्वर के सिमरन को भूल जाने से अनेको योनियों का भ्रमण और नरक वास है।

१. यहां यह ध्यान में रखने की बात है कि नरक दड भी सावधि (मियादी) है। जोकि पाप के माप के अनुसार निश्चित है।

गोविन्द के चरणो के नित के ध्यान से वैकुंठ मिलता है। साधु संगति मुक्ति का हेतु और हरि नाम अमृत है।

हरि के भूल जाने मे यहा दुख है और आगे (मरने पर) नरक तथा योनियों का भ्रमण है।

योगियों का कहना है कि नाभि चक्र के ऊपर एक सर्पिणी रूप नाड़ी है। उसे उलट दिया जाय तो ब्रह्माण्ड से जो अमृत श्राव होता है उसका रसास्वादन योगी स्वयम कर सकता है गुरुओं ने इस सम्बन्ध मे कहा है —

अमृत श्राव

"अदिसटु अगोचरु पार ब्रहमु मिलि साधू अकथु कथाइआ था।
अनहद सबदु दसम दुआरि वजिओ तह अमृतु नाम चुआइआ था—(मारू महला ५)

अर्थात्—अदृश्य और न समझ मे आने वाले परमात्मा के सम्वन्ध मे एक साधु ने मिलने पर एक विचित्र कथा कही थी कि जब दसवे द्वार (ब्रह्माड) मे अनहद शब्द का रव हुआ तो वहां अमृत नाम का स्राव हुआ।

इसी बात को भगत वेणी जी ने इस प्रकार कहा था —

इडा पिंगला और सुखमना तीन बसहि इक ठाई।
वेणी सगमु तह पिरागु मन भजन करे तिथाई।"

× × × ×

उपजे गिआनु दुरमति छीजे। अमृत रस गगनतरि भीजे। (रामकली)

निरगुनी मतो ने एक ऐसे लोक की कल्पना की थी जहाँ केवल ईश्वर के भक्त ही जा सकते हैं।

सुख महल

सिख गुरुओं ने इस प्रकार के एक स्थान की कल्पना की है और उसे सुख महल नाम दिया है यथा—

"सुख महल जाके ऊँच दुआरे। ता महि बसहि भगत पिआरे।
सहज कथा प्रभ की अति मीठी, विरलै काहू नेत्रहु डीठी। ।रहाउ।
तह गीतनाद खवारे सगा। अश सत करहि हरि रगा।
तह मरणु न जीवणु सोगु न हरखा। साच नाम की अमृतबरखा।—सूही महला ५

अर्थात्—उस सुख महल (आनन्द भवन) के ऊचे-ऊचे दरवाजे हैं। उसमे बस्ती भगत लोगो की है। वहा प्रभु की सहज मधु कथाओं का कीर्तन होता है। किसी विरले ने ही उसे नेत्रों से देखा होगा। वहाँ नृत्य के साथ (हरि) गीतो का घोर रव होता है, और सत लोग हरि के साथ मिलकर रग मनाते है। वहा मरण जीने का झझट नहीं। न शोक और हर्ष है। वहाँ तो हरि नाम की अमृत वर्षा ही मुख्य है।

गुरु अर्जुनदेव जी ने रामकली राग मे इसी 'सुख महल' को 'आनन्द भवन' के नाम से भी याद किया है। गुरु नानक देव ने इसी सुख महल (आनन्द भवन) को सचखंड कहा था। उनका कहना था "सच खंड वसे निरकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल।" –जपुजी

भावातिरेक मे गुरुओ ने इस सचखड को सुख महल, आनन्द भवन कहने के सिवा अनुभव नगर और बेगमपुरा नाम भी दिये है। गुरु अर्जुन देव ने तो यहा तक कहा है कि "इन्द्रपुरी महि सर पर मरना। इन्द्रपुरी निहचल नहीं रहना। शिवपुरी का होइगा काला।" अर्थात् जिसका विनाश नहीं होना है वह यह "सुख महल" अथवा सचखड ही है।

यह सचखंड कहां है। इसका कुछ-कुछ पता नानकदेव जी की पवित्रतम वाणी जपु जी मे चलता है (पौडी ३५ और ३६)

पहिले धर्म खंड है फिर ज्ञान खड तीसरा सरम (शील) खड है चौथा कर्म और पाचवा मच खंड है।

इनमे धर्म खड से परमात्मा धरम साल अथवा धर्मराज के रूप में सृष्टि रचता और मनुष्यों के कर्म फलों के निर्णायक का काम करता हुआ वताया गया है। वहाँ उन्हीं को प्रवेश मिलता है जो कच्चे नहीं हैं और सच्चे सिद्ध हुए हैं क्योंकि यह दरवार ही सच्चा है। कहने का मतलव यह कि जो लोग अपने जीवन में सच्चे उतरते हैं वे इस (धर्म खण्ड) लोक को प्राप्त होते हैं।

ज्ञान खण्ड मे यह विवेचन किया जाता है कि कितनी प्रकार की वायु हैं? कितने जल और वैश्वानर हैं[1] तथा कितने कान्ह (विष्णु) और महेश हैं। अनेक रूप रग और केशों मे रचना करने वाले कितने ब्रह्मा हैं।[2]

काम मे आने वाली कितनी भूमिया हैं और मेरु (पहाड़) कितने हैं। कितने ध्रुव देश हैं और कितने (उप=दूसरे+देस) दूसरे देश हैं। कितने इन्द्र हैं कितने चन्द्र और सूर्य्य हैं और कितने इनके मडल-देश हैं। (मंडल देश से अभिप्राय सौर मंडल अथवा सौर परिवार चन्द्र मडल आदि मे है) इन मंडल देशों मे कितनी प्रकार के सिद्ध-वुद्ध और नाम हैं तथा देवियों के कितने प्रकार हैं। कितने देव, दानव, ऋषि, मुनि, और कितने रतनागार एवं समुद्र हैं। आदि आदि।

इस प्रकार ज्ञान खंड मे ज्ञान की ही प्रवलता है अर्थात् वहा ज्ञान विज्ञान का लेखा जोखा रहता है। वहां शब्द-विनोद का घना आनन्द है।

शील (सरम) खंड में वाणी सौंदर्य अथवा वाणी की मधुरता ही प्रमुख है। उसकी रचना अति विचित्र है। वहां की विचित्रता का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो कोई वहां के सम्वन्ध मे कहेगा तो पीछे पछतायेगा कि मैं तो उसका कुछ भी नहीं कह सका। वहां पर सुरति (स्मरण) मति मनन, वुद्धि और शूर वीर व सिद्धो की शुचिता की रचना होती है।

कर्म खंड मे वाणी प्रवल है। उसमें केवल योद्धाओं, महावीरों और शूरवीरों का प्रवेश है और किसी का नहीं। उनमे परमात्मा रामरूप मे वसता है। वहा शांति सीता के यश गान के रूप मे है। वे लोग जो कि वहां रहते हैं न तो मरते हैं और न ठगे जाते है क्योंकि उनके मन मे परमात्मा रामरूप मे वसते हैं।

सचखंड मे स्वयम् निरकार परमात्मा का वास है। जहा से वह प्रत्येक खंड और खंड मडलों तथा

१. कहते हैं ४९ प्रकार की वायु सात प्रकार के जल और पाच प्रकार के वैश्वानर (अग्नि) है।

२. ब्रह्मा विष्णु, और महेश के सम्वन्ध में गुरु नानकदेव के ये शब्द भी विचारणीय है। एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु। इकु ससारी इकु भंडारी इकु लाइ दीवाणु। जपु

अर्थात—एक मां ने युक्ति पूर्वक तीन बच्चे शिष्य रूप से जन्मे। उनमें से एक तो संसार को संवारने वाला हुआ। दूसरा भडारी अर्थात पालन कर्त्ता वना, तीसरा दीवाल अर्थात दडधिकारी वना।

विभिन्न प्रकार के लोकों पर प्रसन्न दृष्टि डालता है तथा उन्हे नियंत्रण मे रखता है। वहीं से वह उनके देखने (सभालने) और विनिष्ट करने के विचार (आयोजन) करता है।

गुरु गोविन्दसिंह जी ने इस सच खंड का और भी भव्य चित्र खींचा था।

अपनी रचना 'विचित्र नाटक' मे गुरु गोविन्दसिंह जी ने शरीर धारण से पूर्व जो कुछ देखा था उसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है —

"उत्तरा खड मे एक हेमकूट पर्वत है। उसके सात शृंग (शिखर हैं) यह सातों शिखर हेमकूट की शोभा चांदी के कलशों की तरह बढ़ाते हैं। प्रात काल मे जब सूर्य किरणे इन चोटियों पर पड़तीं हैं तो इनका रग देखने ही बनता है। इसे दूर से देखने से मालूम पडता है मानो तप्त सोना चमक रहा है।

इन चोटियों के नीचे एक ढलाव है। जहां समथल है। वहां स्वच्छ पानी का स्रोत भी है। ईश्वर की विचित्र माया यह है कि इन वर्फीली चोटियों के बीच यह स्रोत गर्म पानी देता है।

यहा एक छोटी-सी किन्तु मनोहर वाटिका है। उस वाटिका मे एक सुन्दर कुटिया है। इसी कुटिया मे गुरु गोविन्दसिंह जी कहते है कि मैंने तपस्या की थी।

यहीं से तपस्वी गुरु गोविन्दसिंह जी की श्रुति रस और रग के देश को पार करके आनन्द घर होती हुई अनन्त मे पहुंची थी।

उस अनन्त का वर्णन विचित्र नाटक के अनुसार इस प्रकार है वह अनन्त निर्जीव और जड़ पदार्थ नहीं किन्तु सजीव है और स्वयम् प्रकाशमान चेतना है। वह अनन्त मूर्ति-अमूर्ति और अकाल मूर्ति है। वह अनन्त अनादि अयोनि और आनन्द स्वरूप है किन्तु ऐसा नहीं जैसा हम समझते है किन्तु हमारी समझ से बाहर की और उसी के समझने की चीज है। वह स्वयम् अक्रिय है किन्तु होता सब उसी के करने से है। यह अनयन है किन्तु देखता सब कुछ है और सारा संसार जो देखता है वह देखने की शक्ति मिलती उसी से है। अनन्त मे जो यह चमत्कार है इसका नाम 'आयुस' है। 'यह आयुस' ही संसार के कल्याण के लिये विशिष्ट आत्माओं को संसार मे भेजता है।

वह अनन्त निर्जन भी नहीं है। इसमे वस्ती है। घर ऐसे पदार्थों के बने हैं जिनके लिये हमारी भाषा मे कोई शब्द नहीं है। अर्थात् ससार के मानवी घरों से यह विचित्र है। यह तो न पुराने होते हैं और न जीर्ण शीर्ण सदैव ही एक से रहते हैं। यहा न अपराधी हैं और न अपराधों को रोकने वाले अर्थात् यहां अपराध ही नहीं। फिर यह मकान ऐसे हैं जब जैसी इच्छा करो बन जाते हैं। यह विचारों से भी अधिक सूक्ष्म-किसी वस्तु के बने है इनमे जो रहते हैं वे भी प्रकाश मूर्ति है। उनके चेहरे सूर्य से भी अधिक प्रकाशवान और चन्द्र से भी अधिक सौम्य हैं। खाने को यहां नाम-रस और कीर्तन नामक पदार्थ हैं इनसे ही तृप्ति होती है यहा किसी को भूख नहीं। और है तो यही कि अनन्त के मध्य मे जो यह नगर है इसमे अविचल विश्राम रहे। यहा फूल हैं किन्तु तोडने से वे घटते नहीं। इस नगरी के परे एक दिव्य महल है वह बिलकुल दिव्य उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। दीवारें भी तो प्रकाश की ही बनी जान पडती है। यह महल सारे ससार के प्रकाश का केन्द्र है। ससार को जो भी कुछ मिलता है या संसार मे जो कुछ मिलता है या ससार मे जो भी कुछ है उसका पसारा यहीं से होता है। वहां का प्रकाश आखों को चौंधियाता नहीं ठडक देता है। इस महल मे एक सिहासन है वह भी प्रकाश की किरणों से ही बना जान पडता है। इस सिंहासन पर जो ज्योति है वही वाहि गुरु हैं। वही जगत का पसारा है। इस ज्योति के निकट ही मुक्त पुरुषों को स्थान मिलता है। वे भी ज्योति मय ही दिखाई देते हैं।

मुक्ति-पथ

इस सचखंड की प्राप्ति एवं ईश मिलन के लिये जो साधन एवं सीढियां ग्रन्थ साहब मे यत्र-तत्र वर्णन की हैं उन्हे यदि एक स्थान पर सग्रह कर दिया जाय तो गुरुमत का मुक्ति-पथ इस भाति वन जाता है।

मुक्ति के इच्छुक को पहले ससारी मोह से निवृत्त होना पड़ेगा। क्योंकि गुरुनानकदेव ने कहा है –

"परविरती नरविरति पछाणै। गुरु कै सगि सबदि घरु जाणै।
किसही मदा आखि न चलै सचि खरा सचिआरा हे।" मारु महला १

अर्थात् पहले तो किसी मत-गुरु से शब्द (ईश्वर) के घर के बारे मे जान ले कि वह कैसा है और किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। फिर प्रवृत्ति और निवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करले और किसी को बुरा कह कर न चले अर्थात् दूसरों के अवगुणों को देखने की बजाय अपने अवगुणों को ढूंढे और अपने ही को खरा और सत्यवादी बनावे।

इस पद मे ये बातें कही गई हैं–ईश्वर के घर की जानकारी प्राप्त करना, प्रवृत्ति निवृत्ति का बोध, दूसरों की निन्दा स्तुति से अपने को अलग रखना और आपे को सुधारने का प्रयत्न अथवा अपने को सत्य मय बनाने की चेष्टा करना।

अनन्त काल से भारतीय दार्शनिक कहते आये हैं कि ईश्वर तो महान् से महान है वह अगम् है। अगोचर है। अपरम्पार है। दूर से दूर है किन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म और निकट से निकट भी है। यही बात गुरुओं ने भी कही है जैसा कि इन पदों से स्पष्ट होता है।

"वडा साहिब ऊंचा थाउ। ऊंचे उपरि ऊंचा नाउ॥
ए वड ऊंचा होवे कोइ। तिस वडे कउ जाणै सोइ॥"—जपु जी २

× ×

"पार ब्रह्म अपरम्पार देवा। अगम अगोचर अलख अभेवा॥"—मारु महला ५

× ×

"जब देखउ तब सभ किछु मूलु, नानक सो सूखम सोई अस थूल।"—सुखमनी ४

× ×

"एक पुरख में तेरा देखिआ, तू सभना माहि रवंता।"—सोरठ महला १

अर्थात्–परमात्मा बहुत बड़ा है। उसका स्थान भी बहुत ऊँचा है। ऊंचे से ऊंचा उसका नाम है। वह कितना बड़ा और कितना ऊंचा है। इसे तो वही बता सकता है जो उससे भी बड़ा और ऊंचा हो।

× × × ×

वह पारब्रह्म परमात्मा अगम्य है। इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है। न उसे देखा जा सकता है और न उसके भेदों को जाना जा सकता है।

× × × ×

जब हम अधिक गहराई से उसे देखते हैं तो वह सब कुछ का मूल (आधार) दिखाई देता है। वह स्थूल भी है और सूक्ष्म भी।

एक अपूर्वता (अनोखापन) हमने और देखा है कि वह (महान् से महान् होते हुए भी) सब मे रमा हुआ है।

मोक्ष के आकांक्षी के लिये यही सहारा है कि वह सब जगह है और सब में है यहाँ तक कि घट ही माहिं समा रहा है और उसे वन मे अथवा पर्वतों में खोजने के लिये जाने की आवश्यकता नहीं है।

जब मुमुक्षु को यह विश्वास हो जाय कि ईश्वर सब मे है और मेरे घट मे भी है। तब न तो किसी की निन्दा करे और न खुशामद "स्तुति निन्दा दोनों त्यागे खोजे पद निर्वाना" और न किसी की हिन्सा करे। इससे चित्त निर्मल होगा। निर्मल चित्त मे ही परमात्मा का प्रकाश होता है।

यह पता जब चल गया कि ईश्वर का घर तो अपने घट भीतर ही है तो फिर यह देखना है कि वह कानसी ओट है जो हमे अपने भीतर बैठे परमात्मा को नहीं देखने देती है। गुरु कहते हैं कि वह है ससार (माया) की अनुरक्ति अर्थात् मेरे तेरे मे प्रवृत्ति।

माया मे विरक्त होने के लिए गुरुओं ने निम्न शब्दों मे सोये हुए लोगों को जगाया है।

सगि न चालसि तेरे धना, तू किआ लिपटा वहि मूरख मना।
सूत मीत कुटम अरु वनिता, इनते कहहु तुम कवन सनाथा॥
राज रग माइआ बिसथार, इनते कहहु तुम कवन छुटकार।
असु हसती रथ असवारी, झूठा डफु झूठु पासारी।
जिनि दीए तिसु बुझै न बिगाना, नामु विसारि नानक पछताना॥—सुखमनी

× ×

जिनि कीता माटी ते रतनु, गरभ महि रखिआ जिनि करि जतनु।
जिनि दीनी सोभा वडिआई, तिस प्रभ कउ आठ पहर धिआई॥

× ×

जिनि कीता मूड ते बकता, जिनि कीता वे सुरति ते सुरता।
जिसु परसादि नवै निधि पाई, सो प्रभु मनते विसरति नाही॥
जिनि दीआ निथावै कउ थानु, जिनि दीआ निमाने कउ मानु।
जिनि कीनी पूरन सभ आसा, सिमरउ दिनु रैनि सास गिरासा॥—गौडी गुआरेरी म० ५

अर्थात्—ओ मूर्ख मन, तेरे साथ न तो यह धन जायगा और न पुत्र, स्त्री, मित्र और कुटुम्बी जायेंगे, इनमे तू भला कैसे अपने को सनाथ मानता है और क्यों लिपटा हुआ है। राज (वैभव) रंग यह तो माया का फैलाव है। इससे तुम्हारा कब छुटकारा होगा। हाथी, घोड़े, रथ और अनेकों प्रकार की सवारियाँ सब ढोंग और मिथ्यापन का पसारा है और जिसने यह सब कुछ दिया है उसे तू पहचानता नहीं है। पराई वस्तु अर्थात् धरोहर पर जान दे रहा है। तैंने हरिनाम को छोड़ दिया है। इसके लिये तुझे पछताना पड़ेगा।

× × × ×

जिस परमात्मा ने तुझ मिट्टी के पुतले को रतन का रूप दिया है। और गर्भ के भीतर यत्न पूर्वक तेरी रक्षा की और जिसने तुझे यह शोभापन और बड़प्पन दिया है। उस प्रभु का ध्यान कर (नहीं तो फिर पछताना पड़ेगा)।

× × × ×

जिस परमात्मा ने तुझे मूढ़ से ज्ञानी और बेसुरति (नासमझ) से सुरतिवान (बुद्धिमान) बनाया है। तथा जिसकी कृपा से नवोनिधि प्राप्त की हैं, उस प्रभु को मन से विसार न देना। जिस परमात्मा ने बिना सहारे वाले को सहारा और बिना मान वाले का मान दिया है तथा जिसने सम्पूर्ण आशाओं की पूर्ति की है उसे प्रत्येक श्वास के साथ याद करो।

गुरुओं ने विरक्ति-पक्ष में यह भी कहा :—

"बालकु मरै बालक की लीला, कहि कहि रोवहि बालु रगीला।"

× × × ×

"भरि जोवन मरजहिकिजे, मेरा मेरा करि रोवीजे।"—मारु महला १

अर्थात्—बालक मर जाता है तो बालक के चुलबुल पन और उसके रंग ढग को याद करके रोते हैं।

× × × ×

जवान मर जाता है तो "मेरे लिये वह ऐसा था। वह जीता होता तो मेरे लिये यह करता' ऐसा कह कर रोते हैं।

भाव यह कि बालक के मरने से हमारे मनोरजन और भावी आशाओं को धक्का लगता है और युवा के मरने से हमारे हितों और स्वार्थों को चोट पहुँचती है। इसलिये रोते हैं वरना कोई किसी के लिये नहीं रोता है। गुरुओं के इस उपदेश के साथ हमें याज्ञवल्क्य ऋषि का वह उपदेश याद आता है जोकि उन्होंने मैत्रेयी को दिया था कि हे मैत्रेयी! पुरुष स्त्री को इसलिये नहीं प्यारा है कि वह पुरुष है अपितु इसलिये प्यारा है कि वह उसकी आकाक्षाओं को पूरी करता है और स्त्री पुरुष को इसलिये प्यारी नहीं है कि वह स्त्री है। अपितु इसलिये प्यारी है कि वह उसके अभाव की पूरक है।

इस प्रकार संसार से विराग का उपदेश देते हुए गुरुओं ने बताया है कि माया से बचना चाहते हो तो ईश्वर की ओर (हरि-उन्मुख) हो जाओ क्योंकि :—

"जह अछल अछेद अभेद समाइआ।
ऊहा किसहि विआपत माइआ॥"—सुखमनी म० १

अर्थात्—जहाँ केवल परमात्मा का ध्यान है वहाँ माया की व्यापना नहीं हो सकती।

मनुष्य संसारी वस्तुओं को पराई अर्थात् ईश्वर की समझते हुए उन्हें इस भाति वरते कि यह ईश्वर की धरोहर है। धरोहर से मेरा मोह न होना चाहिए। क्योंकि —

"वसतु पराई अपनी करि जाने।
हउमे विचि दुख घाले॥—सुखमनी महला १

अर्थात्—पराई वस्तु के अपनी समझने मे अहम् पैदा होता है जो दुख का कारण है। बल्कि कबीर के शब्दों मे यह भाव होना चाहिये कि :—

"मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरे। तेरा तुझको सौंपते क्या लागै है मोर॥"

गुरु नानक कहते हैं कि वस इस वृत्ति को धारण करे :—

"राम जपुहि अन्तरि नति धिग्राने ।

लालच छोडि रचहु अपरम्परि इहु पावहु मकति दुग्रारा ।।"— मारु महला १

अर्थात्—अन्त करण से ध्यान पूर्वक राम का भजन करो। लोभ लालचों को छोड उस अपरम्पार परमात्मा के रग मे रग जाओ। बस तुम्हे मुक्ति का द्वार मिल गया ऐसा समझ लो और इस समझ का नाम ही ब्रह्मज्ञान है जो वैराग्य से ही प्राप्त हो सकता है।

जहाँ इस प्रकार का वैराग्य हुआ नहीं कि मनुष्य के ज्ञान कपाट खुल जाते हैं। वह ब्रह्मज्ञानी बन जाता है।

यह एक स्वय-सिद्ध सिद्धान्त है कि यह ससार सागर अनेक सशय रूपी विकारों से भरा हुआ है। सशयो का निवारण ब्रह्मज्ञानी ही कर सकता है। यह एक गोपनीय अथवा रहस्य पूर्ण बात है और इसे वही समझ सकता है जिनकी आत्मा को किसी ब्रह्मज्ञानी ने जगा कर इस रस का आस्वादन कराया हो।

क्योंकि —

गिम्रानु अजन भै भजना देखु निरजन भाइ ।

गुपतु प्रगटु सभ जानिए जे मनु राखे ठाइ ।।"—श्री राग महला १

अर्थात्—क्योंकि ज्ञानाजन ही ससार के माया मोहों को नष्ट करने वाला है। इसी से निरंजन को देखा जा सकता है। ससार और ईश्वर के जो रहस्य हैं, वे भी इसी से जाने जा सकते हैं। इसी से मन को स्थिर रखा जा सकता है।

ज्ञान मन को समझा कर कह सकता है —

"परिहरि कामु क्रोध झुठु निंदा तजि माइआ अहँकार चुकावै ।

तजि काम कामिनी मोह तजैता अजन माहि निरजन पावै ।।"

अर्थात्—काम, क्रोध, झूठ, निन्दा को छोड़ दे। इसके छोड़ने से माया छूट जायगी और अहम् खत्म हो जायगा और काम वासनाओं तथा कामिनी के मोह को भी छोड़ दे। इनके छोडने वाले को परमात्मा दृष्टि-गत होने लगता है।

लेकिन इस प्रकार का ज्ञान विना गुरु के नहीं हो सकता है। यथा —

"भाई रे गुरु विनु गिम्रान न होई ।

पूछहु ब्रह्मै नारदै वेद बिम्रासै कोई ।।"

अर्थात् —ब्रह्मा, नारद, और वेद व्यास चाहे जिससे पूछ लो वह यही कहेगा कि ज्ञान गुरु से ही प्राप्त होना है।

१—"इहि ससारु विकारु सहजे रखि, तरिम्रो ब्रह्म गिम्रानी ।

जिनहि जगाइ पिम्रावै इहु रस, अकथ कथा तिनि जानी ।।"—राग गौडी पूर्वी महला ५

क्योंकि—

चारि पदारथ कहै सभु कोई । सिमृति सासत पडित मुखि सोई ।

विनु गुर अरथु विचारु न पाइया । मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ ।

(गौडी महला १)

\+ \+ \+

जनमि मरै त्रैगुण हित कारु। चारे वेद कथहि आकारु।
तीन अवसथा कहहि वखिआनु। तुरी अवसथा सतिगुर ते हरि जानु।
(गौडी महला १)

+ + +

अर्थात्—स्मृति, शास्त्र और प्रमुख पण्डित सब कोई ऐसा कहते हैं कि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चार पुरुपार्थ हैं जो मनुष्य जीवन का लक्ष्य हैं किन्तु बिना गुरु के उपदेश के यह भाव विचार में ही नहीं आ सकता है कि मनुष्य जीवन का जो अन्तिम लक्ष्य मुक्त-पदार्थ है। वह हरि भगति से ही प्राप्त हो सकता है।

+ + +

चारों वेदों का यह कथन है कि जीव का मरण जीवन उसके त्रिगुणात्मक प्रकृति के फंदे में पड़ने से है। भाव यह कि प्रकृति के सतगुण की अधिकता से जीव अच्छे सात्विकी कर्म करता है और रजोगुण एव तमोगुण की प्रधानता से राजसी और तामसी कर्म करता है। यह कर्म ही उसको भली बुरी योनियों में लाने ले जाने के कारण हैं।

जीव की तीन अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न और सुपुप्त की तो सब कोई व्याख्या कर सकते हैं किन्तु चौथी तुरीय अवस्था का अनुभव तो हरि का जानने वाला सत-गुरु ही करा सकता है।

इस व्याख्या से गुरुओं का अभिप्राय है कि गुरु ही ज्ञानी है। ज्ञानी और गुरु दो नहीं हैं। क्यों कि दुनियां के जितने भी महादेव, ब्रह्मा, गोरख, व्यास, नारद आदिक ज्ञानी थे वह गुरु थे ज्ञानी ही गुरु हो सकता है। और वही सत असत और मनुष्य जीवन तथा भक्ति के रहस्यों को बता सकता है। इस प्रकार गुरु मत का सम्पूर्ण उपदेश सार रूप से इस पद "परविरती नरविरती पछाणै गुरु कै संगि सबदि घरु जाने"। अर्थात् गुरु के सतसंग से प्रवृत्ति निवृत्ति (परा अपरा विद्या, के रहस्य को समझ ले।) और शब्द (ईश्वर) के घर अर्थात् ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर ले और साथ ही "किस ही मंदा आखि न चलै, सचि खरा सचियारा है।" अर्थात् दुनियां के दूसरे लोगों के अवगुणों को देखने की बजाय अपने को उस सत्य स्वरूप परमात्मा के अनुरूप बनाये।

लेकिन सभी लोग तो किसी भी सम्प्रदाय में मुक्ति के अभिलापी नहीं होते। अधिकाश तो गृहस्थ में रहकर अपने जीवन को नेक बनाने के इच्छुक होते हैं। उन के लिए भी गुरुओं ने कुछ सिद्धात स्थिर किये थे।

उन्होंने सच्चा होने की सलाह तो सब को दी थी। कहा था.—

बावा एहु लेखा लिखि जाणु। जित्थै लेखा मंगीए तित्थै होइ सच्चा निसाणु।

अर्थात् अपने भविष्य के लिए ऐसा लेखा (हिसाब) डालो कि जब वहा (परलोक में) हिसाब मांगा जाय तो सच्चा उतरे। और

"अनुदिन कीरतनु केवल बख्यानु। गृहसत महि सोई निरवानु"

अर्थात्–गृहस्थ का केवल प्रतिदिन के हरि कीर्तन और हरि चर्चा से ही कल्याण हो जाता है क्योंकि—

कल में एक नामु किरपानिधि जाहि जपे गति पावै।
और धरम ताके सम नाहित इहि बिधि वेद बतावै। सोरठि म० ६

वैसे पूर्ण धर्म तो वह था जिसे लोग सतयुग में बरतते थे किन्तु उसका ह्रास बराबर होना रहा है यथा:—

सत युग साच कहैं सभ कोई । सचि वरते साचा सोई ।
त्रैते धरम कला इक चूकी । तीन चरन इक दुविधा सूकी ।

+

दया दुआपुरि अधी होई । गुरमुखि विरला चीन्हें कोई ।

+

इस कथन का अभिप्राय था कि जो लोग पूरा धार्मिक जीवन विताना चाहते हैं, वे सत्य आचरण वाले वनें। अपनी नेक कमाई मे से दान पुण्य भी करते रहे।[1] और दीन दुखियों पर दया भाव रक्खें।[2] हरि का सच्चे दिल मे स्मरण करे। वस यही गृहस्थ के लिये कल्याण का मार्ग है। एक बात उन्होने गृहस्थ के लिये और वडे जोर की कही थी कि कोई किसी का शोषण न करे। उनके इस सम्बन्ध के शब्द बड़े मार्मिक हैं यथा —

"जे रत्त लग्गे कपडे जामा होए पलीत। जो रत्त पीएँ माणसा तिन कउ निरमल चीत।"

अर्थात्–कपड़ों को लगने वाला रक्त जब अमिट होता है तो उन लोगों के चित्त कैसे निर्मल होंगे जो मनुष्य का रक्त पीते है और इसी हेतु गुरु नानक ने अमीर मलिक भागों का भोजन गरीबों के रक्त में सना हुआ कह कर खाने से इन्कार कर दिया था।

१. घालि खाहि किछु हथहु देहि।
२. हिंसा तउ मन ते नहीं छुटी जीअ दया पाली।

अनुकूल-प्रतिकूल

ग्रन्थ साहब मे जहाँ गुरु महानुभावों की अपनी वाणियाँ है। वहाँ अन्य भगतों की भी हैं। जिन भगतों की वे वाणियाँ हैं वे भी अधिकाशत. उन्हीं विचारों के निकटवर्ती थे जिनका कि गुरु महानुभाव प्रचार करते थे। अत. उन्होंने इस प्रकार के भक्तों की वाणियों का तो सग्रह किया ही साथ ही भक्ति सम्बन्धी उन विधियों को भी 'ग्रन्थ साहब' में स्थान दिया है जिन्हें कि कबीर नामदेव, दादूदयाल और रैदास प्रभृति संत मान्य करते थे।

इसी भांति जिन संतों अथवा भगतो से गुरुओं का मत नहीं मिलता था उनकी बहुत सी बातों का ग्रन्थ साहब में खंडन भी किया है। इस प्रकार के सम्प्रदायो मे अवधूत नाथ. आई, नारदीय आदि थे। वैष्णव लोगों का मत गुरु-मत के निकट नहीं था किन्तु चूकि श्री रामानन्द जी एक उदार वैष्णव थे इसलिये वैष्णवों के सम्बन्ध मे केवल इतना कहकर ही गुरु लोग चुप हो गये कि :—

वैसनों सो जिसु ऊपरिसु प्रसन्न। बिसनकी माइआ ते होइ भिन्न ॥
करम करत होवे निह करम। तिसु वैसनो का निरमल धरम ॥"—सुखमनी

अर्थात्—वैष्णव तो वह है जिससे अस्पृश्य (अछूत) भी प्रसन्न रहे और जो विष्णु की माया से बचा हुआ हो। अर्थात् जिसे धन दौलत का मोह न हो। कर्म करते हुए भी निष्कर्म हो, (बिना फल की इच्छा से किये कर्म निष्कर्म कहलाते हैं)। इस तरह का जो वैष्णव है उसका ही धर्म शुद्ध है। इसी से मिलती जुलती बात किसी सत ने इन शब्दों में कही थी —

"वैष्णव जन तो तैने कहिए पीर पराई जाने रे।"

वैष्णवों की भाति ही उन्होंने भागवत लोगों के लिये कहा था कि सच्चा भागवत तो वह है जो.—

"भगउती भगवत भगति का रगु, सगल तिआगै दुसट का संगु।
मनते बिनसै सगल भरमु, करि पूजै सगल पारब्रह्म।
साध संगि पापा मलु धोवै, तिसु भगवती की मति ऊतम है ॥"—सुखमनी

अर्थात्—जिसे एक भगवान की भक्ति का रग लगा हो और जिसने सब प्रकार के दुष्ट संग को छोड़ दिया हो तथा जो मन के समस्त संशयों को दूर करके केवल पारब्रह्म का पुजारी बना हुआ हो। बस वही उत्तम भागवत है जिसने साधुओं के सतसंग से अपने पापों को धो डाला है।

भागवत और वैष्णवों की भांति ही पंजाब मे उन दिनो साधुओं की एक सम्प्रदाय रामदासियों के नाम से भी प्रख्यात थी, उसके सम्बन्ध में भी गुरुओं ने कहा था .—

"जिसके मनि पार ब्रह्म का निवासु, तिसका नाम सति रामदास।"

× ×

"सगल सगि आतमु-उदासु, ऐसी जुगति नानक रामदासु ।"

अर्थात—जिसके मन मे केवल परमात्मा का निवास है। उसी को सच्चा रामदास कहा जा सकता है।

× × × ×

सर्व प्रकार के झंझटों को छोडकर जो अपने आत्मचिन्तन मे रहता है। ऐसी ही युक्ति वाला आदमी रामदास है।

ऐसा जान पडता है कि पजाव मे अथवा निचले भारत मे कोई अस्पर्श (अपरस) नामका भी सम्प्रदाय था और यह लोग अपने को किसी से भी छू जाने से बचते थे। ऐसे लोगों को गुरुओं ने इन शब्दों मे समझाया था.—

"मिथिआ नाहि रसना परस, मन महि प्रीति निरजन दरस .

× ×

"पर त्रिय रूप न पेखे नेत्र, साध की टहल सत सग हेत ।
करन न सुनै काहू की निंदा, सभतै जानै आपस कउ मदा ।।
गुरु प्रसादि विखिआ परिहरे, मन की वासना मन ते टरै ।
इन्द्री जीत पच दोख ते रहत, नानक कोटि मधे ऐसा अपरस—सुखमनी

अर्थात्—जिसकी जिह्वा ने स्वादो को छोड़ दिया है। मन में निरजन के दर्शन की लालसा है। पर स्त्री के रूप पर जिसके नेत्र चचल नहीं हो उठते हैं। साधु सतों की सेवा मे अपना समय बिताता है। कानों से किसी की निन्दा नहीं सुनता,अपने को सबसे छोटा मानता है। गुरु के आशीर्वाद से समस्त विषयों और मानसिक विकारों को छोड दिया है। इन्द्रियजित होकर पांचों प्रकार के दोषों से मुक्त हो चुका है। ऐसा ही मनुष्य सच्चा अस्पर्श (अपरस) है जो करोड़ों मे ढूढने पर मिलता है।

भारतवर्ष मे पडितो का कभी भी कोई सम्प्रदाय नहीं रहा किन्तु वे सदैव ही समाज के अगुआ रहे है और प्रत्येक नये समाज सशोधक ने उनके सम्बन्ध मे टीका की है। महात्मा बुद्ध ने कहा था —"पडित तो वह है जिसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश है दृष्टि मे समता है और जो प्राणियों मे भेद नहीं समझता है। तथा जिसने अपने को वासनाओं से मुक्त कर लिया है।

इसी प्रकार गुरुओं ने भी कहा—

"सो पडितु जो मन पर वोधे। रामनाम आतम महि सोधे।

× × × ×

वेद पुराण सिमृत बूझै मूलु। सूखम महि जानै असथल।
चहु वरना कउ दे उपदेसु। नानक उस पडित कउ आदेसु। —सुखमनी

अर्थात—पडित तो वह है जिसने मन को समझ लिया है और रामनाम को आत्मा में संजो लिया है। वेद पुरान और स्मृतियो के मूल भाव को समझ लिया है और इस सत्य को जिसने स्वीकार कर लिया है कि स्थूल भी सूक्ष्म का ही रूप है। और चारो ही वर्णों को उपदेश देता है। ऐसा आदमी ही पडित है और वही बलिहारी योग्य है।[1] उस समय के भारत मे कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी थे जो यह मानते

[1] उस समय के पडित शूद्र वर्णन को उपदेश देना पाप समझते थे।

थे कि आदमी इस जीवन में भी मुक्त हो जाता है।[1] इस प्रकार के विचार रखने वालों के लिए गुरुओं का मत था कि—

"प्रभ की आगिआ आतम हितावै। जीवन मुकत सोऊ कहावै।
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु। सदा अनदु तह नहीं वियोगु।
तैसा सुवरन तैसा उसु माटी। तैसा अम्रतु तैसी विखु खाटी।
तैसा मानु तैसा अभिमानु। तैसा रंकु तैसा राजानु।
जो वरताए साई जुगति। नानक ओहु पुरखु कहिए जीवन मुकति। —सुखमनी

अर्थात्—जिसने अपने आपको प्रभु की रजायुस पर छोड़ दिया है और जिसके लिये हर्ष शोक, मिलन, वियोग सुवरन, माटी, अमृत, विष, मान, अपमान, राजा रंक सब समान है तथा जो प्रभु की युक्ति पर चलता है वही मनुष्य इस जीवन में जीवन्मुक्त है। नारदीय सम्प्रदाय के पूजा विधान पर गुरुओं ने इस भाति कटाक्ष किया था—

"हिन्दू मूले भूले अखूटी जाही। नारद कहिआ पूज कराही।
अंधे गूंग अन्ध अधार, पाथर लै पूजहि मुगध गवार
उहिजा आप डूबे, तुम कहा तारणहार। (वार बिहाग महला १)

अर्थात्—हिन्दू आरम्भ से ही गलती करते हैं कि अक्षय वट के पास जाकर नारद के द्वारा कथन की गई रीति से (मूर्ति) पूजन करते हैं। ये पत्थरों के पूजने वाले जब आप ही (मूर्खता) में डूब रहे हैं तब यह औरों का क्या निस्तार करेंगे।

एक और स्थान पर इसी भांति कहा है कि "नारद करै खुआरी।" अर्थात् लोगों को सही रास्ते पर जाने से यह नारद-पन्थी रोकते हैं।

कुछ साधु वैरागी कहलाते थे। यह प्राय वैष्णवों का ही एक दल था जो लोग घर बार को छोड कर जंगलों और तीर्थों में जाकर भजन करते थे। उन्हें लोग वैरागी और उदासी दोनों नामों से याद करते थे। गुरु नानक स्वयम् वैरागी होगये थे, वैरागी लोग गृहस्थ में उलटना पसन्द नहीं करते थे किन्तु नानकजी जब से अपने परिवार को लेकर करतारपुर की धर्मशाला में रहने लगे तो उनसे वैरागियों ने पूछा भी कि तुम्हारा कैसा वैराग है तब अथवा ऐसे ही अन्य अवसर पर उन्होंने कहा था—

हरि की भगति रते वैरागी, चुकै मोह पिआसा।
नानक हउमै मार पतीजे विरले दास उदासा। —आसा महला १ छन्द
गुर वचनी बाहर घर एकै नानक भया उदासी। मारू महला १

अर्थात्—वैरागी वह है जो मोह को छोड कर हरि भगति में अनुरक्त हो गया हो और जिसने अहम् को भी मार दिया हो। ऐसा आदमी चाहे घर रहे चाहे बाहर क्योंकि गुरु का उपदेश तो घर बाहर एकसा है। उसे कहीं भी पालन कर लो।

गोरख पंथी लोगों के हठ निग्रह के तो गुरु लोग कतई विरुद्ध थे जैसा कि नीचे लिखे पदों से पता चलता है।

१ शंकर मत के कुछ अनुयायी अपने को जीवन में मुक्त हुआ खयाल कर लेते थे।

निउली करम खटु करम करीजै । रामनामु बिन बिरथा सासु लीजै ।

× + × ×

सुण माछिन्द्रा नानक बोले । वसिगत पच करे नहि डोले ।

ऐसी जुगति जोग कहे पाले । आप तरे सगले कुल तारे ।—रामकली महला १

अर्थात्—हठ योग सम्बन्ध नौली आदि छहों कर्म बिना राम नाम के व्यर्थ हैं ।

× × × ×

मच्छीन्द्रनाथ के अनुयायी सुनो—नानक ने कहा—पाचों विकारों से बचाव करले वही सच्चा योग है ।

'आई पथ' के लोगो से उन्होने कहा था —

"आई पथी सगल जमाती मन जीते जगु जीत ।" (जपु)

अर्थात्—सच्चा "आई" तो वह है जो सब को अपनी जमात (सम्प्रदाय) का मानता है और जिसने मन पर काबू पा लिया है ।

पजाब के हरियाना इलाके मे साध लोगों का एक सम्प्रदाय था । उनके पड़ौस मे ही नाथ थे और उनसे ऊपर सिद्ध। इन लोगो के सम्बन्ध में गुरु नानक देव ने कहा था—"आपिनाथ नाथी सभ जाकी रिद्धि-सिद्धि अवरा साद ।" (जपु)

अर्थात्—रिद्धियो (करामातो) के दिखाने वाले सिद्ध लोग और दूसरे साध लोग तथा नाथ इन सब का नाथ (मालिक) एक वही परमात्मा है जिसने सारी दुनिया को नाथ रक्खा है अर्थात नकेल डाल रक्खा है । अत इन सब को व्यर्थ की बातो को छोड़ कर उसी जगत् नाथ की शरण मे जाना चाहिए ।

ये तो हैं वह बातें जिनका गुरु-मत के सस्थापकों ने विरोध किया । अब हम उन बातों पर प्रकाश डालते है जो उन्होंने अन्य सन्त सम्प्रदायों की भांति ही ग्रहण करलीं थीं ।

परमात्मा को निर्गुन भाव मे मानने वाली समस्त सन्त सम्प्रदायों ने अनहद नाद की ओर हरि-दर्शन के आकाक्षियों का ध्यान दिलाया है । गुरु गोरखनाथ ने कहा था कि प्राणों के ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् नासा तक पहुचने पर नाद सुनाई देता है जो गहिर गम्भीर और सार का भी सार है ।[1] इन्द्रियों के दमन और ससार के विकारों से उदासीन रहने से यह अनहद नाद बजता है ।[2] कबीर साहब ने इसी बात को यों कहा था —"जब कुम्भक भरपुर लीना । तह बाजै अनहद बीणा ।"

अनहद

गुरु नानक देव ने अनहद के सम्बन्ध मे अपनी स्वीकारोक्ति इस प्रकार दी थी —पाच सबदि धुनि अनहद वाजे हम घर साजन आये ।" (सूही महला १)

निर्गुणी सतो का खयाल था कि परमात्मा का जब निर्मल हृदय से चिन्तन किया जाता है तो ब्रह्माण्ड मे एक अद्भुत प्रकार का शब्द होता है जो बडा ही अच्छा लगता है और यह निरन्तर बजता है । इसे सुन लेने पर फिर किसी वस्तु की इच्छा नही रहती । जैसे बीण पर सर्प मुग्ध होकर खेलने लगता है

१ सारम् सार गहिर गभीर गगन उछलिग्रो नाद ।

२ अवधू दम को गहिवा उनमनि रहिवा ज्यू बाजवा अनहद तूर ।

और हरिण चरना छोड़ कर आत्म-विभोर हो जाता है। अनहद को सुनकर वही दशा योगी अथवा भक्त की हो जाती है।

गगन मंडल अर्थात् ब्रह्माड में इस अनहद को सुन वही सकता है जो उन्मनि अवस्था को प्राप्त कर लेता है गोरख कबीर, नाम देव आदि सभी ने इस उनमनि पर जोर दिया है।

उनमनि यथा —

"उनमनि रहिवा भेद न कहिवा पीयवा निर्झर पाणी।—गोरख नाथ

× × × ×

पवन पति उनमनि रहन खरा। नहीं मिरतु न जनम जरा—कबीर —रामकली।

गुरुओं ने इसी मत को इस प्रकार व्यक्त किया जो हमारी समझ में कहीं अधिक सहज गम्य है — "रसिक रसिक गुन गावहु गुरमति लिव उनमनि नाम लगान। अम्रितु रसु पीआ गुरसबदी हम नाम विरहु कुरबान।"

परमात्मा के मिलन के लिये जो मार्ग बहुत सोच विचार के बाद पुरातन ऋषियों ने तय किया था वह था योग मार्ग। आगे चलकर योग मार्ग दो पगडंडियों में विभक्त हो गया एक हठ योग मार्ग और

सहजि दूसरा राज-योग-मार्ग। बौद्ध-मत के योगियों ने इन्हें वज्रयान और सहज यान में परिणत कर दिया। संतकाल में हठ योग-नाथ, सिद्ध जोगियों और अवधूतों तक सीमित रह गया। कबीर के परवर्ती और उनसे प्रभावित दूसरे सन्तों ने सहज मार्ग को अपनाया। जैसा कि नीचे उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है—

दादू भाड़ा देह का तेता सहजि विचारि।
जेता हरि बीचि अन्तरा, तेता सबै निवारि।—दादू दयाल
मन का भ्रम मनही तें भागा। सहज रूप हरि खेलन लागा—कबीर

गुरुओं ने इस सहजि के सम्बन्ध में इस प्रकार के अपने विचार प्रकट किये थे —

भाई रे गुरु बिनु सहजि न होइ।
सबदेहीते सहजि ऊपजै हरि पाइआ सच सोइ।—श्रीराग महला ३

× × ×

सहिज सालाही सदा सद सहिज समाधि लगाई।—श्रीराग महला ३

× × ×

गुरु कै चरनि कीओ राज योग।—गौडी म० अष्टपदी

× × ×

गुरु सत सभा दुख मिटै रोग। जन नानक हरिवर सहिज योग—बसन्त महला १

समस्त निर्गुणी सन्तों की वाणियों में शून्य शब्द का व्यवहार हुआ है जो निर्जन और पारब्रह्म दोनों ही के लिये प्रयुक्त हुआ है।

गुरुओं ने कहा था —

शून्य "सुंन कला अपरम्परि धारी। आपु निरालमु अपर अपारी।
भावै कुदरति करि करि वेखै सुनहु सुंन उपाइदा।"

इसी शून्य को दूसरे सतों ने जिस प्रकार अपनी वाणियों में प्रयोग किया है उसके कुछ नमूने इस भाति हैं —

"सु नि मडल मे सोधिले, परम जोति परकास।"—कबीर

× × ×

सहज सुन्नि सब ठौर हैं, सब घट सबही माहि।
तहा निरजन रमि रहा, कोउ दुख व्यापै नाहि।—दादू दयाल

× × ×

बसती न शून्य, न बसती अगम अगोचर ऐसा।—गोरख

निरगुनी सन्तो मे इसी प्रकार की भाव-व्यजना सम्बन्धी अनेको समता है। सुरति, बिरति, शब्द, सन्य लोक, और निर्वाण का वर्णन लगभग सबका—कुछ ही अन्तरों से एकसा है।

इस प्रकार हम देखते हैं महात्मा बुद्ध और शकराचार्य के बाद जिस निर्गुण कल्प-तरु का बीज वपन हुआ था। उसके पौदे की गोरख ने बाढ़ की। कबीर और उनसे प्रभावित नामा, दादू और रैदास ने सींचा और गुरुओं ने उसे खाद देकर बडा किया और यह भी कहा जा सकता है कि उसको कलम भी की। बस 'गुरु ग्रन्थ साहब' से जिस 'गुरु-मत' की झाकी होती है वह वही निर्गुन पंथ है। जिसका बौद्ध और शंकर के पश्चात् पौदा अकुरित हुआ जो अनेकों एकेश्वरीवादी सन्तों द्वारा पालित-पोषित होकर गुरुओं के हाथों मूर्त रूप को प्राप्त हुआ। आचार्य विनोवा भावे ने इस धर्म-वृक्ष (गुरु-मत) को उपनिषदों के अधिक नजदीक बताया है।

सिखों का स्वर्ग

स्वग की कल्पना नई नहीं है और न यह दो चार सदियो से ही है। ससार मे ऐसा कोई भी धर्म नहीं है जिसने किसी न किसी रूप मे स्वर्ग की कल्पना न की हो। वैदिक आर्यों मे लेकर मूसावी ईसाई, जरतुश्ती और मुहम्मदी सभी ने स्वर्ग की कल्पना की है। नास्तिक लोगों ने भी निर्वाण और परमानन्द के रूप मे—आंशिक तौर पर ही सही-स्वर्ग को माना है।

स्वर्ग कहाँ है? यह प्रश्न होने पर उसके स्थान का भी पता दिया है। ईसाइयों ने चौथे आसमान पर और मुसलमानों ने सातवें आसमान पर अपने स्वर्ग (वहिश्त) का अस्तित्व माना है। जो लोग आस्मान को ठोस पदार्थ नहीं मानते—और वास्तव मे वह ठोस है भी नहीं—वे इस बात का सहज ही उपहास उड़ाते रहे हैं। वैसे बात है भी सही यही कि आस्मान स्थूल न होने के कारण गिने भी नहीं जा सकते। किन्तु विज्ञान की अधिक खोज यह बताती है कि इस पोल मे भी मडल अथवा स्तर हैं। जहा का Timedphere (वायुमडल) (एक के बाद एक का) अलग है। इस तरह के चार स्तरों का पता उन वैज्ञानिकों ने लगा लिया है जो मगल या चन्द्र की यात्रा के प्रयत्नों मे लगे हुए हैं। इन स्तरों अथवा मण्डलों पर कैसा लगता है? वहा का वातावरण कैसा है? मन को प्रफुल्लित करने वाला है अथवा डराने वाला? इसकी सूचना वैज्ञानिक शायद उस समय सही रूप मे दे सकेंगे जब इन स्तरों पर अड्डे कायम करना सभव हो जायगा।

यह हो सकता है कि पच्छिम (यूरोप) के प्राचीन ज्योतिषियों ने तारों की खोज के साथ ही इन स्तरों (मडलों) का भी आभास कर लिया हो और ज्योतिषियों की उसी सूचना के आधार पर ईसाई लोगों ने यह कहा हो कि हमारा स्वर्ग चौथे आसमान पर है। मुस्लिम धर्म प्रचारकों के अपने वहिश्त को सातवे आसमान पर बताने के दो कारण हो सकते हैं एक तो यह कि ईसाइयों से ऊँचे पर अपने स्वर्ग को बताया दूसरे अरब अथवा मिश्र के नजूमियों (ज्योतिषियों) की जानकारी मे सात आसमानों (वातावरण) के स्तर जँच गये हो।

पौराणिक आर्य्यों ने स्वर्ग को वैकुण्ठ नाम भी दिया है। और इसे विष्णुलोक मे बताया है। उन्होंने स्वर्गों की गिनती भी दी है। "सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिये तुला इक अग" मे तुलसीदास ने यही सकेत किया है। यह विष्णुलोक कहा है? यह तो नहीं बताया गया किन्तु बताया उसे कहीं आस्मान में ही है। जहा यह स्वर्ग है वहा कोई क्षीर सागर है। वहीं विष्णु रहते है। पौराणिक आर्य्यों मे जो लोग शैव हैं वह शिवलोक मे स्वर्ग मानते हैं। शिवलोक में कोई कैलाश है, वहाँ शिवजी रहते हैं। ब्रह्मा के उपासकों ने अपना स्वर्ग ब्रह्मलोक मे माना था।

पौराणिक लोगों से पहले के लोग जिन्हे वैदिक आर्य की संज्ञा इतिहासकार देते हैं। स्वर्ग को (सम्भवतया) इन्द्रलोक में मानते थे जो देवलोक भी कहलाता था। इस स्वर्ग मे सदा सुख ही सुख का भोग था। भोगों के फलों

नात्मक विभाजन है। इन दस लोकों की कल्पना कबीर के पश्चात् कबीर-पंथियों द्वारा की गई कल्पना है। स्वयम् कबीर जी के पदों से सत्यलोक रंग महल और बेगम देश का ही पता चलता है। वे गगनमंडल में सत्यलोक को मानते हैं। उसी सत्यलोक में बेगम देश है और बेगम देश में रंगमहल है। वहीं कबीर का स्वर्ग है। यथा:—

"सत्यलोक सतपुरुष का करे सुरति से ध्यान।"

+ + +

"अवधू बेगम देस हमारा।
धरन, अकास-गगन कछु नाहीं, नहीं चन्द्र नहीं तारा।
सत्य धर्म की हैं महरावें, साहिब के दरबारा॥

× × ×

जोग जुगति सो रंग महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहैं कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।

× × ×

अपनें विचारि असवारी कीजै। सहजै के पावडें पाव जब दीजै।

× × ×

दे मुहरा लगाम पहराऊँ। सिकली जीन गगन दौराऊँ।
चलि बैंकुंठ तोहि लै तारौं। थकि हित प्रेम ताज नैं मारुं।

× × ×

जहा जरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिए कोइ।
चलि कबीर तेहि देसडैं, वैद विधाता होइ।
कबीर हरि चरणों चला, माया मोह तें छूटि।
गगनमण्डल आसन किया, काल गया सिर कूटि।

× × ×

देखो करम कबीर का, कछु पूरब जन्म का लेखा।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेखा।

गुरु महानुभावों ने भी अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन निर्गुनिये संतों की भांति स्वर्ग की कल्पना की है। उनके स्वर्ग का नाम सच खंड है। यह सचखंड पांचवा लोक है। इन पांचों स्वर्गों (खंडों) का सिलसिला इस प्रकार है। (१) धर्मखण्ड (२) ज्ञानखण्ड (३) सरमखण्ड (४) कर्मखण्ड (५) सचखण्ड। इस सचखण्ड में ही परमात्मा का वास है।

गुरुनानक देव जी ने इन पांचों खण्डों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है:—

राती रुती थिती वार। पवन पाणी अगनी पाताल।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग। तिनके नाम अनेक अनंत।
करमी करमी होइ वीचारु, सचा आपि सचा दरबारु॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु। नदरी करमि पवै नीसाणु॥
कच पकिआई ओथै पाइ। नानक गइआ जापै जाइ॥ ३४॥
धरम खंड का एहो धरमु। (गियानखण्ड का आगातु कर्म)।

त्मक विभाजन है। इन दस लोकों की कल्पना कबीर के पश्चात् कबीर-पंथियों द्वारा की गई कल्पना है। स्वयम् कबीर जी के पदों से सत्यलोक रंग महल और बेगम देश का ही पता चलता है। वे गगनमंडल में सत्यलोक को मानते हैं। उसी सत्यलोक में बेगम देश है और बेगम देश में रंगमहल है। वहीं कबीर का स्वर्ग है। यथा:—

"सत्यलोक सतपुरुष का करे सुरति से ध्यान।"

\+ + +

"अवधू बेगम देस हमारा।
धरन, अकास-गगन कछु नाहीं, नहीं चन्द्र नहीं तारा।
सत्य धर्म की हैं महरावें, साहिब के दरबारा॥

× × ×

जोग जुगति सों रंग महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहैं कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।

× × ×

अपनें बिचारि असवारी कीजै। सहजै के पावडें पाव जब दीजै।

× × ×

दे मुहरा लगाम पहराऊँ। सिकली जीन गगन दौराऊँ।
चलि बैंकुंठ तोहि लै तारौं। थकि हित प्रेम ताज नें मारूं।

× × ×

जहां जरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिए कोइ।
चलि कबीर तेहि देसडें, वैद विधाता होइ।
कबीर हरि चरणों चला, माया मोह ते छूटि।
गगनमण्डल आसन किया, काल गया सिर कूटि।

× × ×

देखो करम कबीर का, कछु पूरब जन्म का लेखा।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेखा।

गुरु महानुभावों ने भी अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन निर्गुनिये संतों की भांति स्वर्ग की कल्पना की है। उनके स्वर्ग का नाम सच खंड है। यह सचखंड पाचवां लोक है। इन पाचों स्वर्गों (खंडों) का सिलसिला इस प्रकार है। (१) धर्मखण्ड (२) ज्ञानखण्ड (३) सरमखण्ड (४) कर्मखण्ड (५) सचखण्ड। इस सचखण्ड में ही परमात्मा का वास है।

गुरुनानक देव जी ने इन पाचों खण्डों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है:—

राती रुती थिती वार। पवन पाणी अगनी पाताल।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग। तिनकें नाम अनेक अनंत।
करमी करमी होइ वीचारु, सचा आपि सचा दरबारु॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु। नदरी करमि पवै नीसाणु॥
कच पकिआई ओथै पाइ। नानक गइआ जापै जाइ॥ ३४॥
धरम खन्ड का एहो धरमु। (गिआनखन्ड का आखहु करमु)।

अर्थात्—(उस अकाल पुरुष ने) (अहो)—रात्रि के पश्चात् ऋतुओं, तिथियों और वारों मे काल का विभाजन किया। फिर पवन से पानी और पाताल से अग्नि को विभक्त करके धरती को स्थापित किया। सृष्टि रचना के सम्बन्ध में परम्परा से भारतीयों का यह मत रहा है कि सृष्टि रचना से पूर्व अर्थात् प्रलय की स्थिति में एक धधूकारा (कुहरा) जैसा आच्छादन था। उसी का ठोस रूप होने और तत्वों के विभाजन से जगत बन गया अग्नि, पानी, पवन और पृथ्वी तत्वों के अलग अलग होने से जो पोल हुई, अर्थात् आसमान बना, उस आसमान और पाताल के बीच मे पृथ्वी की स्थापना की। यह पृथ्वी (स्वर्ग एव मोक्षके अभिलाषिओंके लिये उनके आवागमन के मार्ग में) धर्मशाला जैसी है। सूफी साहित्य में भी जगत को सराय फानी कहा गया है।

फिर इस पृथ्वी पर युक्ति के साथ अनेकों रगों (प्रकारों) के जीवों की रचना की। जिनके कि उनके रूप रग, बनावट, चालढाल और कार्य अथवा जीवन के ढगों के अनुसार अनेक नाम हैं, और वे हैं भी, अनेकों प्रकार के।

ये जीव इस पृथ्वी पर जैसा कर्म करते हैं उन कर्मों पर सत्य (धर्म) रूप परमात्मा अपने सत्य दरबार मे विचार करता है।

उस दरबार में उन्हें ही शोभा (प्रतिष्ठा) प्राप्त होती है जो पच परवाण हैं। अर्थात् जिन्होंने पाच विकारों से अपना आचरण मुक्त रखा है। अपने शुभ कर्मों के कारण वे वहा रहने का निशान प्राप्त करते हैं। उन्हे भी परमात्मा की कृपा दृष्टि प्राप्त होती है।

बस (सक्षेप) में धर्मखण्ड अथवा धर्मलोक का यही धर्म (व्यवहार एवं कारोबार) है।

(धरम खंड का एहो धरमु)। गिआन खड का आखहु करमु ॥
केते पवण पाणी वैसन्तर केते कान्ह महेस।
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रग के वेस।
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस।
केते इन्द चन्द सूर केते केते मंडल देस।
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस।
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद।
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद।
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अतु न अंतु। ॥ ३५ ॥
गिआनखड महि गिआनु परचडु। तिथै नाद विनोद कोड अनदु।

अर्थात्—अब ज्ञान खण्ड अथवा ज्ञानलोक के व्यवहार व कारोबार के सम्बन्ध मे कहते है। परमात्मा के विराट विश्व में कितनी ही प्रकार की अग्नियां हैं। कितनी ही प्रकार के पवन और पानी हैं। और कितनी कर्म-भूमिया हैं। इन कर्मभूमियों मे कितने ही मेर अर्थात् उच्च स्थान और कितने ही ध्रुवप्रदेश और रतनों के भडार समुद्र हैं अर्थात् इन कर्मभूमियों में जल-थल वाले तथा शीत और उष्ण सभी प्रकार के देश हैं। जिनके लिये कितने ही इन्द्र और कितने ही चन्द्र, सूर्य्य हैं और उन चन्द्र, सूर्य के कितने ही मडल (अर्थात सौर मडल और चन्द्र मंडल आदि) हैं। अभिप्राय यह कि इन चन्द्र, सूर्यों के साथ ही उनके मडल भी है (इन ग्रहों के प्रत्येक मडल मे कई कई उपग्रह होते हैं)।

इन सभी कर्मभूमियों के लिये कितने ही कृष्ण (विष्णु) महेश और ब्रह्मा हैं। जो कि इसका सृजन पालन और विनाश करने के काम में लगे हुए हैं। इन भूमियों में कितने ही धर्माचार्य अर्थात् कपिल (सिद्ध) कितने ही सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) कितने ही गोरख मछेन्द्र आदि (नाथ) और शाक्त उपासक हैं। तथा कितने ही देव, दानव हैं।

इन भूमियों में अनेकों प्रकार के जीव (प्राणी) हैं और उनकी अनेकों ही बोलिया है। उस अकाल पुरुष ने इस विराट विश्व का सचालन ज्ञानखण्ड अथवा ज्ञानलोक से होता है जहा कि नाद (अनहद ध्वनि) और विनोद (चिदानन्द) का बहुतेरा आनन्द है।

(इसके पश्चात् सरम खड अथवा शील लोक की बात सुनो ।)

सरम खड की वाणी रूप। तिथै घाडित घडीए बहुत अनूप।
ताकीआ गला कथीआ ना जाहि। जे को कहै पिछै पछुताइ॥
तिथै घडीऐ सुरति मनि बुधि। तिथै घडीऐ सुरा सिधा की सुधि॥

अर्थात्—सरम (शील) खड की अभिव्यक्ति वाणी से नहीं अपितु उसके सौंदर्य से होती है जहा पर कि (परमात्मा अपने) विराट विश्व की विचित्रताओं का सृजन करता है। उस विचित्रताओं के रचना सौंदर्य की बात कही नहीं जा सकती अर्थात् उसे कहने को शब्द और भाव व्यजना शक्ति दोनों का ही अभाव है। जो कोई कहने की चेष्टा भी करेगा तो उसे पीछे पछताना पडेगा। क्योंकि वह समझेगा कि मैं ठीक से उसका वर्णन नहीं कर सका। वहा पर सुरति, मनोभाव और बुद्धि (मेधा) का सृजन होता है। और वहीं देवताओं और सिद्ध पुरुषों के लिये सुधि (दिव्य गुणों और साधनाओं) की रचना होती है।

और—

करम खंड की वाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु।
तिथै जोध महाबल सूर। तिन महि राम रहिआ भरपूर।
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथनें जाहि।
ना ओहि मरें न ठगें जाहि। जिनकै रामु वसै मन माहि।
तिथै भगत वसहि के लोअ। करिहि अनन्दु सचा मन सोइ।

अर्थात्—कर्म खड की यदि हम वाणी द्वारा व्याख्या करें तो कहना होगा कि वह शक्ति लोक है।[1] वहा पर महाबली शूरवीर योद्धाओं का वास है और कोई वहा नहीं प्रवेश पाता। इनमें वीर रूपमें राम व्याप्त होरहा है और महिमा (कीर्ति) रूप से सीता जी हैं। उनके सौंदर्य का बखान नहीं किया जा सकता। उन लोगों के हृदय मे राम का वास है। इसलिये वे न तो मरते हैं और न ठगे जाते है। वहा कई प्रकार के भक्तों का वास है। जिनका कि मन सच्चा था वे वहा (पहुँच कर) आनन्द (मौज) कर रहे हैं।

"सचि खंड वसै निरकार। करि करि वेखै नदरि निहाल।
तिथै खंड मंडल वर भंड। जे को कथै अतन अंत।
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिवकार।
वेखि विगसै करि विचार। नानक कथना करडा सारु।

अर्थात्—(इन सब लोकों मे जो सबसे ऊपर लोक है वह सचखण्ड है) सचखण्ड (सत्य लोक) में निराकार परमात्मा का वास है। यहा से ही वह अपनी रचना को कृपापूर्ण दृष्टि से अवलोकन करता है। वहा उस सचखण्ड में बड़े २ श्रेष्ठ मडल हैं। उनके सम्बन्ध में कहा जाय तो पार नहीं आ सकता वहा अनेको प्रकार के लोग हैं जब जिसे जो हुकुम दिया जाता है उसे करने को वह प्रस्तुत रहते हैं।

नानक कहते हैं मेरे लिये (वहा की रचना का) कथन करना लोहे के चने चबाना जैसे कठिन है। (मैं

१. पौराणिक लोगों ने इस लोक का नाम सूरलोक, सूर्य मण्डल और शिवलोक दिया था। जहा पर युद्ध क्षेत्र में मरनें वालें जाते थें।

इतना ही कह सकता हूँ कि) उसे देखने और विचार करने से ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है।

इन पाचो प्रकार के खण्डों (लोकों) के वर्णन मे गुरु जी ने जो कुछ कहा है उसका सार यह है कि पर-मात्मा ने 'अहोरात्रि' काल की सामाप्ति पर ऋतुओ, तिथियो और वारो में काल का विभाजन किया। पवन, पानी अग्नि और पृथ्वी के रज कणों से जो धु धूंकारा छाया हुआ था। उसे अलग अलग करके आकाश और पाताल के मध्य में पृथ्वी को जीवों के लिये एक धर्मशाला (सराय) के रूप में स्थापित किया। इसका भाव यह है जीव के लिये यह ससार एक सराय के रूप में है यह उसका वास्तविक घर नहीं है यहा उसे चन्द दिन रहना है।

इस पृथ्वी पर अनेकों योनियों वाले जीव हैं उनमें जो कर्मी जीव हैं (यह याद रहे कि प्राय: सभी यौनिया तो केवल भोग यौनिया हैं। इन में कुछ ही कर्म योनिया और भोग योनिया दोनों हें। मनुष्य योनि भोग के साथ ही कर्म योनि भी है) उनके कर्मों पर धर्मखण्ड (धर्म लोक) में सच्चे प्रभु के सच्चे दरबार में विचार होता है। इनमे से जो श्रेष्ठ कर्मों वाले होते हैं वही वहा ठहरते हैं और उन्हे ही वहा रहने का चिह्न मिलता है। और जो कच्चे होते हैं उन्हें पक्के (सच्चे) होने के लिये वापिस कर दिया जाता है। बस यही धर्म खण्ड का वर्णन है। तात्पर्य यह कि इस धरती रूपी धर्मशाला मे रैन बसेरा करने वाले मुसाफिरो मे कुछ को तो उनके अच्छे आचरण के फल स्वरूप धर्म खण्ड मे रोक लिया जाता है और जो आचरण के कच्चे सावित होते हैं वे फिर इधर ही वापिस कर दिये जाते हैं। इस धर्म खण्ड मे साधारण ग्रहस्थ भी अपने कर्त्तव्य में सच्चे उतर जाय तो जा सकते है।

ज्ञान खण्ड में ज्ञानियों के लिये ही स्थान है। और ज्ञान खण्ड की विचित्रता का तो कहना ही क्या ? इस पृथ्वी पर क्या है। वहा तो ऐसी पृथ्वियों के रचने वाले ब्रह्मा तक हें आदि आदि। वहा पहुचने वालों के लिये आनद ही आनन्द है।

ज्ञान खण्ड में परमात्मा के विराट विश्व दर्शन हैं तो सरम खण्ड में मनुष्यों के लिये घड़ी जानी वाली दैवी सम्पदायें बुद्धि, बिवेक, शील आदि हैं।

कर्म खण्ड में उन लोगों का प्रवेश है जो परोपकार के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाते हैं। वहा उन्हें महिमा की देवी सीता और बल के स्वरूप राम के दर्शन होते हैं।

सचखण्ड में केवल वे ही लोग प्रवेश पाते हैं जो कि हुक्मी के हुक्म पर चलें अर्थात् जिन्होंने अपने को ईश्वर के अर्पण कर दिया है।

ससार के सुधार के लिये भी इस सचखण्ड मे से ही (सुधारक) भेजे जाते हैं। इस सचखण्ड में ही बेगमपुरा नामका एक नगर है। उस नगर मे जो सुख महल (आनन्द भवन) है। संत लोग उसी मे स्थान पाते हैं। गुरु गोविन्द-सिंहजी के कथनानुसार उन्हे इस पृथ्वी लोक में परमात्मा ने इसी सच खण्ड नाम के लोक से भेजा था।

"सुख महल जाके ऊच दुआरे। तामहि बसहि संत पिआरे" इस सम्बन्ध का वर्णन हम पीछे के पृष्ठो मे दे चुके हैं। पाठक इस सदर्भ और उस वर्णन को साथ साथ मिला कर पढ़ें, इससे उनकी जानकारी–इस सम्बन्ध की–और भी वृद्धि होगी।

सिख-गुरुओं का स्वर्ग सम्बन्धी यह कल्पना चित्र आध्यात्मिक है तब भी अच्छा है और यदि वास्तव में ही ऐसे कहीं स्वर्ग हो तब भी अच्छा है।

आज जबकि आस्था पर तर्क हावी है। सहज ही लोगों की समझ मे नहीं आता है कि स्वर्ग किन्हीं स्थान विशेषों पर हो सकते हैं किन्तु यदि हों तो कोई आश्चर्य की बात नही है। क्योंकि स्वर्गों की कल्पना दो चार सदियोसे नहीं और नहीं किसी एक देश की ही है।

जो लोग कर्म-फल-सिद्धान्त को मानते हैं उन्हें कर्म फलोंके भोग के लिये, योनि-प्रवाह (आवागमन) विश्राम

(Interval) और इति (End) अथवा मोक्ष भी मानना पड़ेगा। और अस्थायी और स्थायी विश्रामों की अवधिमें किसी स्थान की कल्पना कर ली जाय तो हमारे वर्तमान जीवन को उन्नत बनानेमें कोई बाधा भी नहीं पहुँचती। अपने जीवनमें जहा हम अनेक आशाओं और मनोइच्छाओं की पूर्ति के लिये जूझते रहते हैं वहा स्वर्ग की प्राप्ति के लिये भी प्रयत्न करें तो कुछ बुरा भी नहीं होगा और जब स्वर्ग मिलने के लिये कर्म भी ऐसे बताये गये हों जिनमे दूसरों का हित भी सन्निहित है तो भला ही भला है।

अब रहा यह प्रश्न कि स्वर्ग को देखकर कोई लौटा हो तो उसमे तसल्ली की जावे। इसका तो सीधा सा उत्तर है कि चन्द्र, सूरज और राहु, केतु को कोई भी देखकर नहीं लौटा है। अत. ज्ञान से अथवा विज्ञानसे जब पुराने लोगों द्वारा इनके सम्बन्धके बताये गये अन्वेषण काफी दूर तक सच हैं तो फिर स्वर्ग के सम्बन्धकी सूचनायें भी सही हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

अपनी ओर से तो इस सम्बन्ध मे हम इतना ही कह सकते हैं कि गुरु नानक देव जी ने सच महल का और गुरु गोविन्दसिंहजीने सचखण्ड का जैसा चित्र खींचा है उसके अनुसार सिखोंका सचखण्ड (स्वर्ग) निहायत भव्य है। तथा हृदय में प्राप्ति के लिये भावनाओं का बीज बोता है। और आत्मा कहती है कि ऐसे स्वर्ग की अस्ति (हस्ती) सच ही हो। कल्पना नहीं।

गुरुमत हमारी दृष्टि में

सिखों के सम्बन्ध मे लिखते हुए विभिन्न विभिन्न विचारकों ने गुरु-मत पर एक से ही विचार प्रकट नहीं किये। डाक्टर ट्रम्प ने 'ग्रन्थ साहव' का जो अनुवाद अंग्रेजी मे किया था उसमे लिखा था कि गुरु नानक एक पूर्ण हिन्दू-विचारक थे।[1] उन्होने यह भी लिखा था कि उन पर इस्लाम मत का जो प्रभाव था वह भी इस्लाम-जन्य नहीं अपितु सूफी-जन्य था जो कि हिन्दुओं के ही सर्वात्मवाद का एक रूप है किन्तु "दी डिक्शनरी आफ इस्लाम" मे—सिख धर्म पर एक निवन्ध लिखते हुए फेडरिक पिंकाट ने उन्हे इस्लाम धम्मावलम्वी वताया था और पंजावियो के सुपरिचित मित्र मैकालिफ़ साहव ने 'दि सिख रिलीजन" नामक पुस्तक मे गुरु-मत को नितान्त तीसरा धर्म माना है।

फेडरिक पिंकाट के कथन का समर्थन तो कोई भी नहीं करता न सिख और न ही मुसलमान ऐसा मानते है। हॉ यह वात अवश्य है कि गुरु नानक की यह भावना अवश्य रही थी कि हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्म अपनी-अपनी बुराइयो को छोड़कर एक दूसरे के निकट आ जावे हालांकि उस समय की स्थिति यह थी कि "हिन्दू कहू तो मारा जाऊँ मुसलमान मैं नाहीं।" लेकिन फिर भी गुरु नानक और उनके परवर्तियो ने इस्लाम धर्म की त्रुटियों की खुले दिल से आलोचना की।

"गुरु-मत" तीसरा धर्म है। वाहर से देखने और सुनने मे ऐसा ही लगता है किन्तु यह वात ग्रन्थ साहव से सिद्ध नहीं होती। क्योंकि तनिक से मतभेद से अथवा विचार-स्वातन्त्र्य की अभिव्यक्ति से "गुरु-मत" तीसरा धर्म है तो उसे तीसरा न कहकर हजारवां कहना भी गलत न होगा क्योंकि चारो वेदों, छ हों शास्त्रो और सभी उपनिपदों मे एक ही प्रश्न का उत्तर देने के लिये मत स्वातन्त्र्य का पूरा उपयोग किया गया है।

वास्तव मे तो "ग्रन्थ-साहव" मे एक तीसरा पंथ चलाने की कोई वात ही नहीं है। वहां तो यह कि मनुष्य अपने जीवन को सच्चा वनावे—ताकि वह सत्य स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर ले। [illegible] की प्राप्ति के लिये जो साधन वताये गये हैं वे भी सहस्रों उन साधनो मे से ही हैं जो कि हिन्दू धर्म-ग्रन्थों मे विभिन्न ढंगो से कहे गये हैं। अत' गुरु-मत की उपमा हम वृक्ष की उस डाल से दे सकते है जो पुरानी डालों के वीच मे एक नवीन-जीवन को लेकर नव पल्लवो से आच्छादित होती हुई फूट पड़ती है।

यही कारण है कि उस विशाल हिन्दू धर्म-वृक्ष से खाद्य प्राप्त करते हुये भी 'गुरु-मत' रूपी

१. दी आदि ग्रन्थ इन्ट्रोडक्शन पृ० ६७—११८।

शाख अपना अलग ही अस्तित्व दिखाती है। प्रमाण के लिये हम यहां कुछ शीर्षकों के साथ ग्रन्थ साहब के कुछ स्थलों पर विचार करते हैं।

गुरु महानुभाव द्वैतवादी थे या अद्वैतवादी "ग्रन्थ साहब" को पढ़ने के पश्चात यह प्रश्न स्वभावत मस्तिष्क में उठता है ? जिन लोगों का द्वैतवाद की ओर झुकाव है वे ग्रंथ साहब' में से द्वैतवाद सिद्ध कर सकते हैं और जिन लोगों का 'अद्वैत' में मोह है वह अद्वैत के प्रमाण—'ग्रन्थ साहब' में से सामने लाकर रख देंगे। जैसा कि नीचे के उद्धरणों से प्रकट है :—

द्वैत अद्वैत

"तू पिरु गुणवन्ता हउ अउगुण भारा। (राग वडहंस म० ४) —द्वैत

'कहु नानक हम नीच करंमा'
सरणि परे की राखहु संरमा।—(राग आसा म० ५) —द्वैत

नाहि न गुन नाहि न कछु जपु तपु कउन करम अब कीजै।
नानक हारि परियो सरनागति, अभै दान प्रभ दीजै। (राग जैतश्री म० ९) —द्वैत

हारि परियो सुआमी के दुआरे दीजै बुद्धि विवेका। (रा० सो० म० ५) —द्वैत

जो दीसै सो तेरा रूप (राग तिलंग म० १)—अद्वैत

जिउ जल तरंग जलु जलहि समावहि—राग वडहंस अष्टपदी म० ४ —अद्वैत

नानक आपि आपै रमइआ —अद्वैत

जब इनु किछु करि माने भेदा।
तब ते दूख दड अरु खेदा। राग गौडी अष्टपदी। महला ५ —अद्वैत

प्रणवै नामा भए निह कामा को ठाकुर को दासा रे। राग माली।—अद्वैत

इस प्रकार दोनों पक्षों के पचासों उदाहरण 'ग्रन्थ साहब' से दिये जा सकते हैं। और जिन लोगों ने गम्भीरता से गुरु-मत दर्शन का अध्ययन नहीं किया है। वे अपना चाहे जैसा मत बना सकते हैं।

ऊपर के उदाहरणों के अनुसार यदि कोई कहता है कि गुरु लोग द्वैतवादी थे तो हिन्दू-दर्शन में द्वैतवादी मीमांसक हैं ही और यदि कोई उन्हें अद्वैतवादी बतावे तो वेदान्ती सामने हैं। हिन्दू दर्शन बहुत विस्तृत है उसका संक्षिप्त रूप ग्रन्थ-साहब है।

द्वैत अद्वैत के सम्बन्ध में हमारा अपना निर्णय यह है कि गुरु महानुभाव थे तो अद्वैतवादी ही। किन्तु उन्होंने अपने अहम् को इस स्थिति तक समाप्त कर दिया था कि वे द्वैतवादी से जान पड़ते हैं वे यह कहने का साहस ही नहीं करते कि "मैं ही ब्रह्म हूँ"। सोऽहम अथवा "तत्वमसि" कहने के बजाय उन्होंने अपने लिये "मैं कीट, मैं नीच' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। "घटाकाश और महाकाश" के सिद्धान्त को मानते हुए भी उन्होंने परमात्मा को सागर कहा है तो अपने लिये उसकी बूंद माना है। उसे सूर्य्य कहा है तो अपने लिये उसकी किरण कहा है। "मैं वही हूँ' यह दावा उन्होंने कहीं नहीं किया। बस वेदान्त के अद्वैत और ग्रन्थ साहब के अद्वैत में यही अन्तर है। वेदान्ती कहता है जीव ब्रह्म ही है। माया के आवरण में ढका होने के कारण वह अपने को अथवा 'स्वात्म' को पहचान नहीं पाता है अत वह जीव है। माया के पर्दे के हटते ही वह ब्रह्म है। गुरु लोग भक्त तुलसी दास की भाति कहते हैं "जीव ईश्वर का अंश है।[1] माया से छुटकारा पाते ही वह ईश्वर में उसी भांति समा जाता है जैसे जल जल में मिल

[1]. ईश्वर अंश जीव अविनासी। रामायण

जाता है।[1] जब तक पानी का बुदबुदा पानी में नहीं मिलता तब तक सभी लोग उसे बुदबुदा ही कहते हैं। इसी प्रकार जब तक जीव ईश्वर मे नहीं मिलता है तब तक गुरुओं ने उसे जीव ही माना है और चूंकि वह अपने किसी अवगुणों के कारण ही ईश्वर में मिलने से वंचित हो रहा है अत' उसे अवगुणी और नीच भी कहा है। वह अपनी सेवा से अथवा प्रेम से ईश्वर को प्राप्त कर लेने का यत्न करता है तो गुरुओं के शब्दों मे वह सेवक, दास और प्रियतमा है और यत्न के सफल होने पर "ज्यों जल तरंग फेन जल होइ है तथा सेवक ठाकुर भये एका" हो जाता है। उस समय न सेवक सेवक रहता है और न ठाकुर ठाकुर, दोनों का एक रूप (ब्रह्म) हो जाता है। गुरुमत के जिज्ञासु को बस यहीं द्वैत का भास होने लगता है किन्तु यह द्वैत न तो स्थायी है न वास्तविक यह तो सावधि और अलंकारिक है।

इस बात को हम यों भी कह सकते हैं कि गुरुमत आदि मे अद्वैत को मानता है और अन्त में भी अद्वैत को मानता है किन्तु बीच के समय में जब तक कि ईश्वर से अलग हुआ जीव ईश्वर में ही नहीं समा जाता है 'द्वैत' को मानता है और वास्तव मे यह द्वैतपन उस समय तक रहता भी है जैसा कि गुरु गोविन्दसिंह जी ने कहा है कि "द्वैते एक रूप ह्वै गयो।" किन्तु यह द्वैते एक रूप हुआ कब ? "तब हम बहुत तपस्या साधी। महां काल काल का आराधी" अर्थात् काल का भी जो महाकाल (प्रभु) है उसकी आराधना करते हुए बहुत समय तक तप किया एवं—अपने मे जो अवगुण और कमियाँ है उनको दूर किया तब हमारा द्वै से एक रूप हुआ।

गुरु लोग बीच के जिस समय को जीव के लिये "द्वैत काल" मानते है उसे वेदान्त 'भ्रम काल' कहता है। गुरु-मत अद्वैत होने के लिये भक्ति को प्रमुख साधन मानता है और वेदान्त आत्म-चिंतन को प्रमुखता देता है। वास्तव मे गुरु-मत अद्वैतवाद को सिद्धान्त के तौर तो वेदान्त की भांति मानता है।[2] किन्तु साधन उसका वेदांतिक न होकर भागवतिक है।

हम समझते है कि ईश्वर जीव अथवा द्वैत और अद्वैतवाद के सम्बन्ध मे गुरुओं का जो मत है उसकी हमने सही अभिव्यक्ति की है। अब संसार के सम्बन्ध में जो गुरु-मत है उस पर विचार करते है।

संसार

वेदान्तका मत है कि यह ससार मिथ्या है किन्तु न्याय दर्शन ऐसा नहीं मानता। इसी भाति 'गुरु ग्रथ' मे भी दोनों ही मतों की पुष्टि करने वाली सामग्री मिलती है जैसा कि नीचे दिये गए उद्धरणों से स्पष्ट है.—

जगु सुपना बाजी बनी, खिन महि खेलु खिलाइ।
सजोगी मिलि एक से विजोगी उठि जाइ ॥—(श्री राग महला १)

× × × ×

मृग त्रिसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदै बिचारि। (राग देव गधारी म० ६)
यह जग धूए का पहार। तै साचा मानिआ किह बिचार। (राग बसन्त महला ६)

× × × ×

इस संसार की रचना मृग-मरीचिका जैसी है।

जैसे धुँए का पहाड़ नहीं है। वैसे यह जगत सत्य नहीं है।

यह वाणियाँ तो कहती हैं कि संसार—स्वप्न, मृग—मरीचिका और धुँए के पहाड़ की भांति मिथ्या है।

१. जल जल माहि खटाना—ग्रन्थ साहब
२. तब ही आतम तत्त को दरसै परम पुरुष कह पावै। गुरु गोविन्दसिंह

और निम्न वाणियां कहती हैं कि उस सत्य से उत्पन्न सब कुछ सच्चे हैं।

यथा सचे तेरे खंड सचे ब्रह्मण्ड। (राग आ० वा० म० १)

× × × ×

आपि सति पारी सभु सति। तिस प्रभु ते सगली उतपति (सु० अ० म० ५)

अर्थात् तेरे खंड-ब्रह्मण्ड सब सच है।

जब आप सत्य का धारण करने वाला है तो जो कुछ भी तैने किया है सब सत्य है क्योंकि सब की उत्पत्ति तुझ सांचे से ही तो है।

इन दोनों तरह की वाणियों को पढ़ने वाले के लिये भ्रम होना सहज बात है किन्तु यह दोनों बातें अधिक गौर करने पर विरोधी नहीं अपितु एक दूसरे की पूरक हैं। जहाँ तक इनके अस्तित्व का प्रश्न है। यह सब सच हैं क्योंकि जिन पाँच तत्व और पच्चीस प्रकृतियों से यह संसार अथवा संसार के पदार्थ बने हुए हैं। उनका अस्तित्व तो है ही किन्तु जहाँ उनके इसी रूप में रहने की स्थिरता का सवाल है यह विनष्ट होने वाले है।[1] और इन्द्रियों के भोग के लिये भी सब सच हैं किन्तु आत्मा के भोग के लिये तो यह कुछ भी नहीं है। अतः संसार संसारी की दृष्टि में सत्य है। जिन तत्वों से बना है वे भी सत्य हैं किन्तु उन तत्वों का वर्तमान रूप चिरकाल तक के लिये स्थायी न होने के कारण नाशवान अथवा मिथ्या है और इसी भांति इन्द्रियाँ जिन वस्तुओं का भोग करती हैं इन्द्रियों के लिए सब सत्य हैं किन्तु आत्मा जो स्वयम एक तत्व है उसके लिए यह कोरा स्वप्नवत ही हैं। हम समझते हैं कि षड-दर्शन का भी संसार के सम्बन्ध में (समन्वयात्मक) भाव यही है।

हिन्दू दर्शन ने कर्म सिद्धान्त का मथन करके यह निर्णय दिया है कि "संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण" तीन तरह के कर्म होते हैं। वर्तमान में जैसे भी—सुकर्म अथवा कुकर्म—कर्म हम करते हैं। वे 'क्रियमाण' कर्म कहलाते हैं। और इन किये हुए कर्मों का योग जो होता है। वही संचित कर्म के नाम से पुकारे जाते हैं। उदाहरण के लिए एक आदमी एक रुपया रोज कमाता है और बारह आने खर्च करता है तो चार आने बचत वाले उसका संचित धन (कर्म) हैं। यदि पिछले दिन के चार आने और उसकी जेब में हैं तो आज उसके पास आठ आने संचित हैं।[2] इस संचित धन (कर्मों) के भोग का नाम ही प्रारब्ध कर्म है। प्रारब्ध को ही लेखा-जोखा? 'कर्म रेख', 'भाग्य लिखा' आदि सज्ञायें दी गई हैं। हिन्दू कर्म विज्ञान ने कर्म-फल का भोग भोगना तो जीव के लिये अनिवार्य बताया है किन्तु उसे कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में सस्काराधीन अथवा ईश्वराधीन रक्खा है। अच्छे कर्मों के भोगने के लिये अच्छी स्त्री, अच्छे पुत्र, अच्छी विद्या अच्छे घरों में जन्म और अच्छी संगति की प्राप्ति के अलावा स्वर्ग मिलन का विधान और है। इसी प्रकार बुरे कर्मों के भोगने के लिये चौरासी लाख योनियां एव विभिन्न प्रकार के नरक और यम की यातनाये हैं। गुरुओं ने इन सब को स्वीकार किया है।

कर्म-सिद्धान्त

यथा:— बहु जोनी भवहि घुरि किरति लिखि घामा।

जैसा बीजहि तैसा खासा—(गौडी गुआरेरी म० ५)

+ + + +

१. संचित कर्म (धन) ऋण और भोग दोनो ही दिशाओं में होता है।

२. द्विसट मान सब विनसिये · (बिलावल म० ५)

कई जनम भये कीट पतंगा। कई जनम गज मीन कुरगा।
कई जनम पखी सरप होइओ। कई जनम हैवर[1] वृख[2] जोइओ।
+ + + +
फल पावहि मिटै जम त्रास। नित गावहि हरि हरि गुण जास। (गौडी गुआरेरी म० ५
+ + + +
ऐ तू मोह फिर जोनी पाइ। मोहे लागा जमपुरि जाइ।—(आसा महला १)
+ + + +
सरन गही पार ब्रह्म की मिटिआ आवागमन। —(गौडी थिती महला ५)
+ + + +
स्वर्ग वास ना वाछीए, डरीए न नरकन वास।
होना है सो होइ है मनहि न कीजै आस।
रमइया गुन गाइए जाते पाइए परम विधान।
+ + + +
त्रिविधि करम कमाईअहि आस अन्देसा होइ। (श्री राग म० १)
+ + + +

कर्म के प्रसग में जहाँ सर्व मान्य सिद्धान्त हिन्दू-दर्शन का यह है कि जो जैसा करेगा उसे वैसा भोगना पडेगा। वहा कर्म-विपाक का विधान भी है और वह यह कि यदि किसीने कोई बुरा काम किया है और उसके करने मे उसे मानसिक वेदना हुई है तो कर्म की गुरुता के अनुपात से ही उसे प्रायश्चित करना चाहिये। इस प्रकरण में 'हिन्दू-कर्म-विज्ञान' विविधि कर्मों के प्रायश्चित के लिये विभिन्न ही विधान बताता है किन्तु गुरुमत इस सम्बन्ध मे हिन्दू-दर्शन का साथ न देकर संत मार्ग का ही अनुकरण करता है और बडे मजे के साथ कहता है—

"जब होवत प्रभ केवल धनी। तब बन्ध मुकति कहु किस कउ गनी॥
जब अविगत अगोचर प्रभ एका। तब चित्त गुपत किसु पूछत लेखा। (सुखमनी)"

अर्थात—जब केवल प्रभु ही हमारा धनी हो जाता है। अर्थात हम प्रभु की शरण में चले जाते हैं। तब बन्धन और मुक्ति किस लेखे मे हैं। और जब केवल परमात्मा ही हमारा धनी है। तब चित्र-गुप्त भी किस से हिसाब पूछेगा। इसका भाव यह है कि बन्ध, मोक्ष और स्वर्ग नर्क तो उन लोगों के लिये हैं जो संसारी हैं और जब हम केवल राम के हो जाते हैं तब इनकी हमें क्या परवाह है।

ईश्वर से मिलने के जो अनेकों मार्ग पूर्ण विकास पर पहुँचे हुए हिन्दू-दर्शन अथवा धार्मिक ग्रन्थों में बताये गए हैं उनमें से गुरुओ ने भी अन्य निरगुनी संतों की भांति सहज मार्ग को ही अपनाया है। अंतिम लक्ष्य उनका सच खंड प्राप्ति अथवा ईश्वर मिलन ही है।

नानक महान्

इस कथन के पश्चात कि गुरु नानक देव पिछली दस शताब्दियों मे एक महान् पुरुष थे हम इस प्रसग को समाप्त करते हैं। उनकी महानता को साधारण जनता ही नहीं अपितु उनके युग के-सन्तों ने

१— हैवर = घोडा २ वृख = भेडिया। वृखभ = बैल।

भी स्वीकार किया था। इसके कुछ प्रमाण जो हमें मिल सके हैं इस प्रकार हैं.—

पानप, नानक, रैदास, कबीरा। एक तत्व के चारि शरीरा।[1]

नानक सूरज रूप, भूप सारे परकासे। मघवा दास कबीर ऊसर सूमर बरसा से।

दादू चंद सरूप, अमीकर सबको पोषं। वरन निरजनी मनो त्रिया हृदि जीव सतोषं।

ये चारि महंत चहु चक्कवै चारि पंथ निरगुन थपे।

नानक, कबीर, दादू, जगन, राघो परमातम जपं।—राघोदास निरंजनी संत

अर्थात्—कबीर, नानक, रैदास और पानप नाम के जो चार महासंत हुए हैं। वे एक ही तत्व के चार शरीर थे। (इनमें) नानक सूर्य्य रूप थे जिनका सभी लोकों में प्रकाश है। कबीर इन्द्र की तरह थे जिन्होंने ऊसर जमीन को भी उपजाऊ बना दिया अर्थात् नास्तिकों को आस्तिक बना दिया। दादू चन्द्रमा की भांति उपदेश रूपी अमृत की वर्षा करने वाले थे। ये चारों निर्गुणी पन्थ के चक्रवर्ती थे।

१. पानपदासी सम्प्रदाय की जन श्रुति (उतरी भा० की० सं० प)

परिशिष्ट

विविध विषय

जन-संख्या

सिखों की जन-संख्या सन् १९५१ ई० की गणना के अनुसार कुल भारत में ६२ लाख है। जिसका व्योरा निम्न प्रकार है। उत्तरप्रदेश १ लाख ९७ हजार ६ सौ १२, विहार ३८ हजार ७ सौ ३, उड़ीसा ४ हजार १ सौ ६३, पश्चिमी बंगाल ७६ हजार ८ सौ ६७, आसाम ५ हजार १ सौ ७, मद्रास २ हजार ८ सौ २६, वम्बई ३८ हजार १७, मध्यप्रदेश ३३ हजार ३ सौ ९६, मैसूर ३ हजार २ सौ ४७, ट्रावनकोर राज्य २ सौ ७५, सौराष्ट्र ८ सौ ८१, मध्य-भारत १२ हजार ५ सौ २१, हैदराबाद ८ हजार ४ सौ ४९, राजस्थान १ लाख ४४ हजार २ सौ ३१, दिल्ली १ लाख ३७ हजार ९६, पेप्सू १७ लाख २१ हजार ९ सौ ३५, अजमेर राज्य ३ हजार ९ सौ ६४, मनीपुर ५०, त्रिपुरा ३५, कुर्ग ९, कच्छ ४ सौ ७८, विन्ध्य प्रदेश ५ सौ २६, भूपाल ५ सौ ६२, हिमाचल ५ हजार १९, अंडमान १ सौ २६, सिक्कम १८।

इनमें सिख जाटों की संख्या अन्य १७ जातियों की सयुक्त सख्या से भी दो गुनी है। इस प्रकार अन्य वड़ी से वड़ी किसी भी सिख जाति से जाट सिख १४ गुने से भी अधिक हैं। अरोड़े सिखों से बीस गुने और खत्रिय सिखों से चालीस गुने हैं। रियासतों की जन-सख्या में इनका अनुपात इससे वहुत कहीं ज्यादा है। किन्तु शिक्षा में वे उतने अग्रसर नहीं जितने कि संख्या में हैं।

पंजाव, सीमान्त और काश्मीर से वाहर के अन्य सूवों में जो आवादी सिखों की है। वह प्राय शहरों में है। देहात में वहुत ही सूक्ष्म है। यह भी याद रहे उपरोक्त गिनती में उदासी और सहिजधारी लोगों की गिनती शामिल नहीं है। न भारत से वाहर की संख्या इसमें शामिल है।

सिख मुद्रायें

एक समय था जव पंजाव के समस्त इलाके में सिख सिक्के चलते थे। महाराजा रणजीतसिंह ने अपने राज्य में सिक्के ढलवाने की टकसाल खुलवा रक्खी थी। पटियाला, नाभा जीन्द और कैथल में भी अपने रुपये चलते थे।

कहा जाता है सवसे पहला सिख-सिक्का गुरु गोविन्दसिंह जी ने चलाया था और आनन्दपुर में एक टकसाल भी खोली थी। यह असंभव वात नहीं है किन्तु प्रमाणों का अभाव अवश्य है।

"सैरे पंजाव" के लेखक को कुछ सिक्के पंजाव के सिखों के मिले थे। उसने लिखा है—"जव यह सरदारान सिख इस मुल्क में फैल गये। हरेक ताइफउल्मुल्क होगया और दारुलजर अपनी-अपनी रियासतों का वतौर खुद जारी करके सिक्का जुदागाना जारी कर दिया। चुनांचे वहुत किस्म के सिक्के

(रुपये) इस दुआवा सतलज व जमुना मे हमने जारी पाये। उनकी जिस कदर तफसील मालूम हुई व कैद मरुजा कीमत हाल जैल हैं। इन सिक्कों के अक्षर पढ़ने मे नहीं आते हैं।

जगाधड़ी ।।।‒) सगतसिंह ।।।) जीन्द स्वरूपसिंह ।।=) कैथली ।।।‒) पटियाला शाही ।।।≡) नाभा शाही ।।।=) यह कीमत पंजाब पर प्रभुत्व हो जाने के बाद अंग्रेज सरकार ने स्थिर की थी।

सभी सिक्को पर एक ओर "देगो तेगो फतहो नुसरत व दरंग। याफ्त अज नानक गुरु गोविन्द सिंह" लिखा रहता था। पटियाले के सिक्के पर एक ओर इस प्रकार लिखा रहता था "हुक्म शुद अज कादरे बे चू व अहमद बादशाह। सिक्कह जन बर सीमो जर अज ओ जे माही ता वसाह।" यही इबारत जीन्द के सिक्के पर भी होती थी। नाभा के सिक्के की इबारत खालसा शाही या नानक शाही सिक्के की भाति होती थी। किसी-किसी सिख राज्य मे सोने के भी सिक्के थे।

सिखों के पूरे शस्त्रों के नाम दशम ग्रन्थ मे शस्त्र नाम माला मे श्री गुरु गोविन्दसिह जी ने गिनाये हैं किन्तु कूटस्थ पद होने के कारण समझने मे गलती होने की सम्भावना होती है। वैसे अनेक धर्म-स्थानो पर गुरु गोविन्दसिंह जी के शस्त्र दिखाये भी जाते है। आम तौर से जो हथियार सिख योद्धा बांधते थे उनके नाम इस प्रकार है।

सिख शस्त्र

खड्ग—तलवार जैसा शस्त्र सिख सवार प्राय. इसे कधे के सामने करके चलते थे। हाथ का समकोण बनाकर मूठ को इस प्रकार पकड़ते थे कि सिर ऊपर की ओर हो। यह हथियार कन्धे के सामने आ जाता है। कभी २ कमर मे भी लटकाया जा सकता है।

बर्छी—भाला और बर्छी में अधिक अन्तर नही होता इसकी नोके त्रिधारा होती है, यह सिखो के पास नौ-नौ फुट तक की होती थी। यह दोनों ही हाथ से हूल-हूल कर चलाई जाती है।

कृपाण—यह तो सिखों के पंच ककार मे शामिल है और उनका चिर सहचर हथियार है। तलवार मे और इसमे कोई खास अन्तर नहीं है।

चक्र—यह कन्धे पर बगल मे होकर लटकाया जा सकता है। घुमाकर चलाने का शस्त्र है।

तीरकमान—सिर तक ऊंची कमान और तीक्ष्ण तीर चलाने में सिख बड़े पैने साबित होते थे।

बन्दूक—तुफग भी कहलाती थी।

तोप—पिछले समय मे अच्छी २ तोपें आ गई थीं।

बघनख—यह भी लाहौर के किले मे है।

जिरह बख्तर—जिन्हे पहनकर गोली का भी डर नही रहता था।

लौह टोप—जो सिर पर पहने जाते थे।

भाई काहनसिह जी ने गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोप मे शस्त्रों के चार चित्रों मे नामावली इस प्रकार दी है —

१, असि २. अर्धचन्द्र ३ परशु ४. शमशेर ५. सारंग ६ सिरोही ७ सूल ८ सैफ ९. कती १० करद ११, करौती १२. किरच, १३. कुहुकबाण १४. कुकरी १५. कृपाण १६. खंजर १७ खडा १८. गुप्ती १९. गुरज २०. गोफिया २१. चपड़ा २२. जमदाड़ २३. तॅबर २४ ढाल २५. धनुप बाण २६. तेग २७. बन्दूक २८. त्रिशूल २९. नेजा ३०. बरछा ३१. बघनख ३२. पेकाकस ३३. रामपल आदि लगभग ६२ नाम बताये हैं। इन शस्त्रों के नमूने पटियाला के म्यूजियम मे आज भी मौजूद हैं।

३५ नाचक, ३६ बगनक, ३७ बिछुआ, ३८ वज्र ३९ गुर्ज
४० कुकरी, ४१ फाक, ४२ छुरा, ४३ परशु. ४४ तबर. ४५ बुगदा
४६ गुप्ती ४७ मुगदर, ४८ छोर्ड, ४९ कृपाण. ५० चक्कर पुराना.
५१ जम्भुआ, ५२ चक्कर नया।

५२ तोड़ेदार बन्दूक ५४ पथरकला, ५५ रिवाल्वर, ५६ धमाका, ५७ जम्बूरक, ५८ मसाले टोपीदार बन्दूक, ५६ मीनमुखा तीर, ६० जजोल, ६१ तमचा।
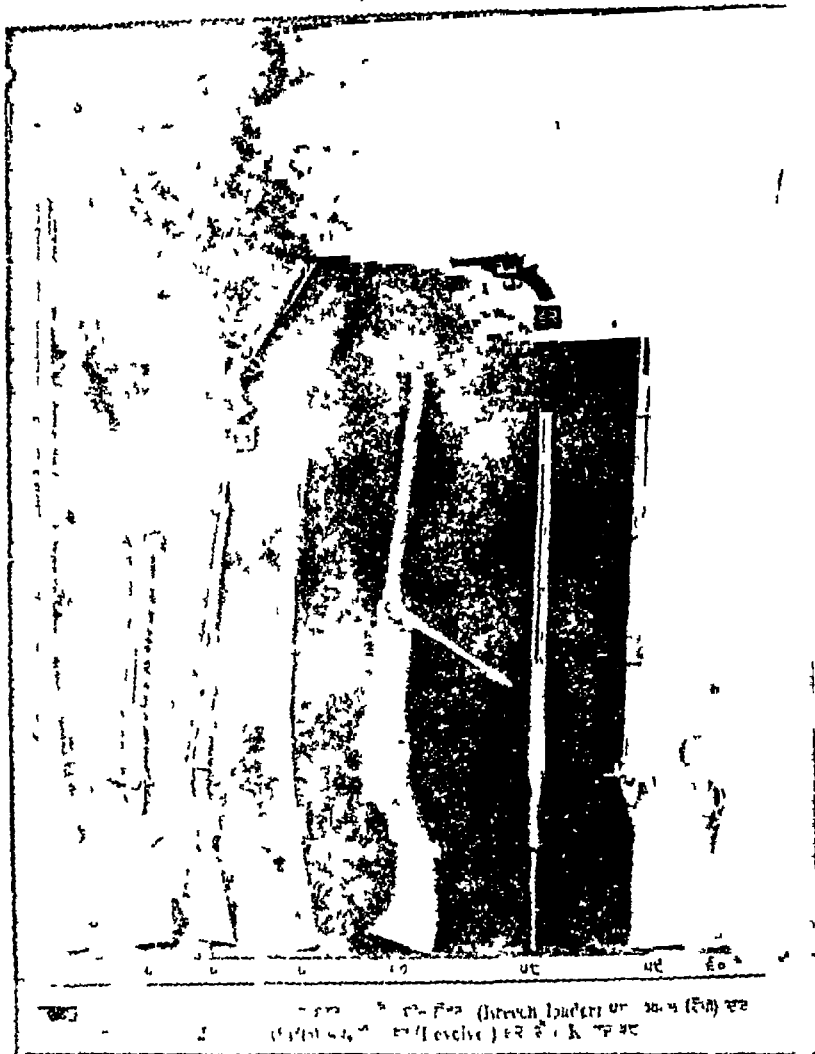
सिखों के झंडे का रंग केसरी है और उसके बीच में चक्र और कृपाणों का चित्र होता है। यही सिखों का धार्मिक और राजनैतिक दोनों प्रकार का झंडा है। इसे सिख लोग निशान साहब के नाम से पुकारते हैं। प्रत्येक ग्राम में और प्रत्येक गुरुद्वारे पर यह निशान फहराता रहता है। झंडे की सलामी देने की प्रथा सिखों में नहीं है किन्तु यह बात नहीं कि वे अपने झंडे के सम्मान में कोई बड़ी कुर्बानी न कर सकते हों।

पताका

विजयोत्सव तथा उल्लास में वे 'सत श्री अकाल' नारा लगाते हैं। सभाओं में हर्ष-वर्द्धक अथवा सिख धर्म के सम्मान की बात आने पर "एक आदमी जोर से चिल्ला कर कहता है" 'जो बोले सो निहाल' फिर समस्त जन घोर धुनि के साथ बोलते हैं "सत श्री अकाल" नमस्कार जयकारों की जगह 'वाहि गुरुजी का खालसा वाहि गुरुजी की फतह' लिखते हैं।

कौमी नारा

जिस समय खान बहादुर जकरिया खान याहियाखान और मीर मन्नू के जमाने में तरह तरह के अत्याचारों से पैदा हुये कष्टों में गुजर रहे थे तो उनके मन की व्यवस्था का अन्दाजा उन शब्दों से लगाया जा सकता है जो कि उन्होंने उस समय रचे थे। भूख और प्यास से मरते थे लेकिन दुखित जीवों की तरह वे निराशापूर्ण और उत्साहहीन नहीं होते और कहते थे कि खालसा 'कड़ाके' हैं। लंगर में जब कोई चीज न पकी हो तो 'लंगर' को मस्त कहते। जब खाने पीने को कुछ न मिलता और घास फूस पर गुजारा करना पड़ता, ईश्वर इच्छा में सन्तुष्ट उसे 'स्वादी' के नाम से पुकारते, खाते तो वे चने होते किन्तु नाम उन्हें 'बादाम' का देते। जब कभी अकेला ही सिंह शत्रुओं से घिर जाता तो घबरा कर निस्सहाय होने की बजाय अपने आपको 'सवा लाख' घोषित कर शत्रु पर टूट पड़ता और जब कोई शत्रु से लड़ता भिड़ता मर जाता तो उसे शहीद हो गया या चढ़ाई कर गया पुकारते। जब किसी ओर को जाने को तैयार होते तो कहते फौजें अमुक स्थान पर धावा बोल रही हैं। और जब किसी कार्य्य के लिए तैयारी करते तो कहते खालसा ने 'कमर कस्सा' कर लिया। फौज में कुछ ऐसे शब्द बोले जाते हैं जो साहित्यिक भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध न रखने वाले होते हुए भी स्फूर्ति दायक होते हैं। अपने कष्ट व सैनिक काल में खालसा वीरों ने भी ऐसे अनेकों शब्दों की रचना की थी। यहा हम कुछ ऐसे ही शब्दों को देते हैं जो सिख जबान में 'सिंहों दे बोले' कहलाते हैं।

सिंहों के बोले

कमर कस्सा = तैयार, (अंग्रेजी में रैडी शब्द जैसा)
महा प्रसाद = जंगी खाना, गोश्त का भोजन
रामजंगे = बन्दूक
सिंह जी = पुरुष का संबोधन
सिंहणी = स्त्री का संबोधन
भुजंग = बालक
भुजंगिनी = बालिका
अफलातून = रजाई, रुई वाला ओढ़ने का कपड़ा
सरब रस = नमक (स्वतन्त्रता के सैनिक को सचमुच नमक ही सर्व रस है)
सजना = तैयार होना
पाच लख = पाच
अथक्क = मरियल टट्टू
अकाली फौज = शहीदी दल

असवारा करना=चढ़ाई करनी
अरदासा=प्रार्थना
मुचालासिंह=लंगड़ा
लखवॉहा=लुंजा
लख अक्खां=काणा
रुपा=प्याज
लड्डू=टींड
खुरमें=बेर
जलेबी=जड की फली
दाख=पील
बदाम=चने
सवा लख=एक
अकल दान=सोटा, डंडा
आनन्द=विवाह
बाज=खुरपा
कुही=दाती
पतालपुरी=कस्सी
सफाजग=तकुआ
सिरखंडी=शकर
कलगासिंह=गजे
सूरासिंह=अंधे
स्वर्गद्वारी—नकटा
ठीकरी=रुपया

कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो विभिन्नपरिस्थितियो से सम्बन्ध रखते हैं। बानगी देखिये:—
असवारा=गुरु ग्रथ साहब की बीड़, आकाशपरी=बकरी, अंजनी=रात, ऐरावत=भैंसा, अमृत वेला=प्रात काल, इन्द्रजल=वर्षा का पानी, इन्द्राणी=तवा, सचखंड=स्वर्ग, सच्चा पात-शाह=गुरु, शिकारी=व्यभिचारी, शीरामहल=झोंपड़ी, कच्चा पिल्ला=मर्यादा हीन, कोतल=चारपाई, गोपाल चदन=मरहम।

इसी प्रकार के सैकडों शब्द हैं। यह सब सांकेतिक शब्द हैं। षड़यन्त्र कारियों और क्रान्ति कारियों को इन शब्दों को पढ़कर आश्चर्य होगा कि मुगल हुकूमत को नष्ट करने का कठोर व्रत लेने वाले सिखों को कितनी २ बुद्धिमानी से काम लेना पड़ा था।

सहायक पुस्तक सूची

इस हिन्दी "सिख इतिहास" को लिखने में जिन पुस्तकों का अध्ययन किया गया तथा जिनसे किसी न किसी रूप में सहायता ली गई उनमें से प्रमुख पुस्तकों की सूची इस प्रकार है—

अंग्रेज लेखकों की

दी हिस्ट्री आफ सिख	कनिंघम।
हिस्ट्री आफ पंजाब राजाज एवं पंजाब चीफस	सर लेपिल ग्रिफन
सर लोगन एन्ड महाराजा दिलीपसिंह	मिसेज लोगिन
दी सिख रिलीजन	एम० ए० मेकालिफ
दी आदि ग्रन्थ इन्ट्रोडक्शन	डा० ट्रम्प
दी डिक्शनरी आफ इस्लाम	फ्रेडरिक पिकाट
दी आर्यन रूल इन इंडिया	ई० बी० हवल
ओरीजन आफ दी सिख	एच० टी० प्रिन्सिप
हिस्ट्री आफ दी सिख	डब्ल्यू० एल० एम० ग्रेगर
रणजीतसिंह	सर लेपिल ग्रिफन

मुस्लिम लेखकों की

हिस्ट्री आफ दी पंजाब— फ्रोम एन्टी क्वालिटी आफ टाइम		सय्यद मुहम्मद लतीफ
तारीख फरिश्ता		मुहम्मद कासिम
तारीख काशमीर		मुहम्मद पीर
आइने अकबरी	(उर्दू)	अबुल फजल
तुजुक जहांगीरी	(उर्दू)	
औरंगजेब नामा	(उर्दू)	
सैर-उल-मुताखरीन	(उर्दू)	मुन्शी लतीफ
दास्ताने हिन्द	(उर्दू)	मस्तूल शाह
बाबा फरीद (गंज शकर)	(उर्दू)	बशीर अहमद
सवाने हयात दातागंज	(उर्दू)	

हिन्दू लेखकों की

तारीख पंजाब	(उर्दू)	भाई परमानन्द
स्वामी गुरु नानक देव	(उर्दू)	ला० दौलतराम
गोविन्दसिंह	(उर्दू)	„ „
सिक्खों का परिवर्तन	(हिन्दी)	डाक्टर गोकुलचंद नारंग
सिखों का उत्थान पतन	(हिन्दी)	पं० नन्दकुमार शर्मा
पंजाब हरण और दिलीपसिंह	(हिन्दी)	„ „
इतिहास गुरु खालसा	(हिन्दी)	सन्तोषसिंह
जाट इतिहास	(हिन्दी)	ठाकुर देशराज
मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण	(हिन्दी)	पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति
भारतवर्ष का इतिहास	(हिन्दी)	ला० लाजपतराय
तारीख पंज हजार माला	(उर्दू)	अज्ञात
रिपोर्ट बन्दोबस्त पंजाब	(उर्दू)	अज्ञात
गुरु का बाग	(हिन्दी)	प्रताप प्रेस
भारत में अंग्रेजी राज	(हिन्दी)	पं० सुन्दरलाल
गुरुकुल (काव्य ग्रंथ)	(हिन्दी)	मैथलीशरण गुप्त
सन्त सुधासार	(हिन्दी)	वियोगी हरि
उत्तरी भारत की संत परम्परा	(हिन्दी)	परशुराम चतुर्वेदी
कबीर की विचारधारा	(हिन्दी)	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
श्री रामानन्द ग्रन्थ माला	(हिन्दी)	अवधकिशोर 'श्रीवैष्णव'
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	(हिन्दी)	डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
कबीर पदावली	(हिन्दी)	डा० रामकुमार वर्मा
श्रीचन्द्रदिग्विजय	(हिन्दी काव्य)	पं० अखिलानन्द शास्त्री
'कल्याण संत अंक'	(हिन्दी मासिक)	गोरखपुर
भारत का धार्मिक इतिहास	(हिन्दी)	पं० शिवशंकर मिश्र
सिखों का बलिदान	(हिन्दी)	श्रीमती कुमुदिनी
गुरु नानक	(हिन्दी)	श्री शालिग्राम
गुरु गोविन्दसिंह	(हिन्दी)	श्री रामवृक्ष शर्मा
उदासीन कमल	(हिन्दी)	श्री ब्रह्मकेतु
गुरु गोविन्दसिंह	(हिन्दी)	श्री राधामोहन गोकुलजी
गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों की धर्म बलि	(हिन्दी)	पुरोहित हरनारायण
पंजाबी शब्द भंडार	(गुरुमुखी)	भाई विशनदास पुरी
[illegible] कोष	(उर्दू)	अनुवादक पं० सुखलाल
[illegible]	(हिन्दी)	परसुराम चतुर्वेदी

नाथ सम्प्रदाय	(हिन्दी)	हजारी प्रसाद द्विवेदी
गोरखनाथ जी	(हिन्दी)	पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

सिख लेखकों की

सूरज प्रकाश	(गुरुमुखी)	
पन्थ प्रकाश	(गुरुमुखी)	
भाई गुरुदास की वारें	(गुरुमुखी)	भाई गुरुदास
तवारीख राज खालसा	(गुरुमुखी)	भाई ज्ञानसिंह
तवारीख सिधू बैराड़ा अते खानदान फूल	(गुरुमुखी)	
तारीख कपूरथला	(उर्दू)	
तारीख पटियाला	(उर्दू)	
तारीख नाभा	(उर्दू)	
सिख सिद्दनिया	(गुरुमुखी)	अज्ञात
बीबी दीपकौर	(,)	भाई मोहनसिंह
गुरु नानक प्रकाश चार भाग	(हिन्दी)	भाई सन्तोखसिंह
पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह	(अंग्रेजी)	प्रो० तेजासिंह सेवक
गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोष	(गुरुमुखी)	भाई कान्हसिंह
पंजाब दीआं वारां	(गुरुमुखी)	डा० गण्डासिंह
गुरुमत प्रकाश	(,)	प्रो० साहबसिंह
गुरुमत दिवाकर	(गुरुमुखी)	प्रो० गुरुमत-प्रेस अमृतसर
अनहद शब्द दसम दुआर	(गुरुमुखी)	भाई रणधीरसिंह
गुरुमत-दर्शन	(गुरुमुखी)	प्रो० शेरसिंह ज्ञानी
गुरुमत फिलास्फी	(गुरुमुखी)	ज्ञानी प्रतापसिंह
सूफिया दा कलाम	(गुरुमुखी)	डा० मोहनसिंह
कतक कि वैसाख	(गुरुमुखी)	स० करमसिंह
बाबा फरीद दर्शन	(गुरुमुखी)	प्रो० दीवानसिंह
अरदास	(गुरुमुखी)	स० ब० जोधसिंह
सिख धर्म की रूपरेखा	(हिन्दी)	शिरोमणि गु० प्र० क० कमेटी
मुस्लिम लीगियों के अत्याचार	(गुरुमुखी)	
सिख रहित मर्यादा	(हिन्दी)	,,
विचित्र नाटक	(,,)	
गुरुमत लेक्चर	(गुरुमुखी)	ज्ञानी प्रतापसिंह
सिख इतिहास लेक्चर	( )	
सिक्खी की है ?	( )	प्रिंसिपल जोधसिंह

टीका जपुजी साहिब	(हिन्दी)	प्रो० तेजसिंह
जीवन कथा गुरु हरिगोविन्द सा०	(गुरुमुखी)	प्रो० गंगासिंह
सरदार हरीसिंह नलुवा	(गुरुमुखी)	बाबा प्रेमसिंह

धार्मिक ग्रन्थ

श्री० आदि गुरु ग्रन्थ साहिब	(गुरुमुखी हस्तलिखित स० १८२६)	
श्री० ,,	(हिन्दी सस्करण) शि० गु० प्र० कमेटी)	
ऋग्वेद संहिता	(हिन्दी टीका समेत) आ० सा० मंडल	
ईश-केन-कठ० छांदोग्य आदि दस उपनिषदें	(हिन्दी टीका समेत) (विभिन्न प्रकाशकों की)	
न्याय दर्शन	(हिन्दी टीका)	वेंकटेश्वर प्रेस
श्रीमद्भागवत	(प० ज्वालाप्रसाद जी हिन्दी टीका समेत)	
गीता रहस्य	(हिन्दी सस्करण)	लोकमान्य तिलक
धम्मपद	(हिन्दी टीका)	आनन्द कौशल्यायन
जपु जी टीका	(हिन्दी टीका)	प्रो० तेजासिंह
जपु साहिब टीका	(गुरुमुखी टीका)	प्रो० साहिबसिंह
सुखमनी साहिब	(गुरुमुखी टीका)	,, ,,
अवधूत गीता		श्री० वेंकटेश्वर प्रेस
नारद पञ्चरात्र		तरनतारन से प्रकाशित

पत्र पत्रिकाएँ

फुलवाड़ी	(गुरुमुखी)	सन् १९३८ से १९४० तक
प्रीत लड़ी	(गुरुमुखी)	,, ,,
कल्याण	(हिन्दी)	संत अंक
सिख वीर	(हिन्दी)	
सतजुग	(गुरुमुखी)	सत अंक स० १९९६ बसंत अंक स० १९९४
गुरु शीआरा	(गुरुमुखी)	सन् १९३२ से १९३७ के कुल अंक

नोट—इनके अलावा पंजाब के कुछ जिलों के गजेटियर, मदुमशुमारी की रिपोर्ट। (अंग्रेजी) में। खालसा ट्रैक्ट सुसाइटी और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अनेकों ट्रैक्ट (गुरुमुखी) में देखने का भी अवसर मिला उन सबके नाम देने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

दान-दाताओं की सूची

नाम	राशि
श्री शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर	५०००)
स० रघुराजसिंह शिवराजसिंह सुपुत्र स० रणजीतसिंह जी गाँव बादल	२०००)
स० जोगेन्द्रसिंह जी गाँव झींडवाली	१०००)
स० राजेन्द्रसिंह जी ,, ,, ,,	२५०)
स० नरेन्द्रसिंह जी ,, ,, ,,	२५०)
स० प्रेमसिंह करतारसिंह जी गाँव गोविन्दगढ	१०००)
स० कपूरसिंह जी (डाक्टर) सुपुत्र स० प्रतापसिंह जी सिद्धू गाँव गोविन्दगढ	१०००)
पत्नी स० शंकरसिंह जी गाँव गोविन्दगढ	१००)
स० नारायणसिंह, बिशनसिंह, बसन्तसिंह जी गाँव अजीमगढ (अबोहर)	१०००)
स० थानासिंह, लखमीरसिंह, जयमलसिंह, भागसिंहजी गाव हौजगन्दट (फाजिलका)	१०००)
स० जोधसिंह नगेन्द्रसिंह जी सुपुत्र स० नारायणसिंह जी गाव दानेवाला	५००)
पत्नी सरदार साहिबसिंह जी दानेवाला	५००)
सरदारनी प्रतापकौर, धर्मपत्नीस्व० स० बूटासिंह जी दानेवाला	२००)
स० बलवन्तसिंह जी गाव दानेवाला	१२५)
स० जसवन्तसिंह जी ,, ,,	१२५)
स० रणजीतसिंह जी ,, ,,	१२५)
स० चरनसिंह जी गाव दानेवाला	८०)
स० सन्तसिंह जी ,, ,, ,,	५०)
स० कोयरसिंह जी ,, ,, ,,	५०)
स० निधानसिंह जी गाव बाम	५००)
श्री सन्त रामसिंह जी, गुरुद्वारा फाजिलका	५००)
स० पृथ्वीसिंह जी सिद्धू, फाजिलका	५००)
श्री डाक्टर मोहनसिंह जी, फाजिलका	५०)
सरदार हरिसिंह जी इन्सपेक्टर महकमा जिरायत, फाजिलका	५)
स० बचनसिंह जी गाव बाडीवाली	५००)
स० लालसिंह जी गाव बाडीवाली	१०१)
चौ० मगलूराम देवीलाल जी गाव बाडीवाली	१०१)
स० हरिसिंह जी ,, ,, ,,	१००)
स० निरंजनसिंह, अजमेरसिंह जी ,, ,,	१००)
स० उत्तमसिंह जी ,, ,, ,,	५१)
स० बहालसिंह जी ,, ,, ,,	५१)
स० हजूरसिंह जी ,, ,, ,,	५०)
स० माहलासिंह जी ,, ,, ,,	३०)
स० गुरुबखशसिंह जी ,, ,, ,,	२५)

स० दिलीपसिंह कीकरसिंह जी गाव रामपुरा केल्वाला	५०१)
स० हरनामसिंह जी बान्दर सुपुत्र स० शुभसिंह जी गाव टाहलीवाला	५००)
स० ईश्वरसिंह, वीरसिंह जी गाव सिद्धपुरा	५००)
स० महेन्द्रसिंह जी गॉव महेन्द्रनगर (घल्लू)	५००)
स० गुरुबख्शसिंह जी, गॉव अबलखराना	५००)
स० रणजीतसिंह, टेकसिंह जी गॉव अबलखराना	५००)
स० पूर्णसिंह जी एम० एल० ए० गॉव मदीर	५००)
स० कृपालसिंह जी, पचायत थेहकलन्दर (फाजिलका)	४००)
स० मोहरसिंह जी गॉव पूर्णपट्टी	३५०)
स० कृपालसिंह, रघुबीरसिंह बलवीरसिंह जी गॉव झुग्गिया केहरसिंह	३००)
चौ० हनुमान जयकृष्ण जी नम्बरदार गॉव कौड़ियावाला	१०१)
चौ० सुरजाराम राजाराम जी ,, ,, ,,	१००)
स० अजायबसिंह जी ,, ,, ,,	१००)
चौ० चुन्नीलाल जी ,, ,, ,,	४)
महन्त सुच्चासिंह जी ,, कोटभाई	५००)
स० अर्जुनसिंह जी ,, चिबडावाली	१००)
स० सज्जनसिंह जी ,, ,, ,,	१००)
श्री ज्ञानी हरनामसिंह जी ,, अबोहर	१००)
स० जीवनसिंह दयालसिंह जी गॉव शेरेवाला	१००)
स० ईश्वरसिंह जी ,, गद्दोडोब	१००)
स० नन्दसिंह जी सस्थापक पजाबी प्रेस, सदर बाजार, देहली	१५१)
स० वरियामसिंह जी, अकाल इजीनियरिंग वर्क्स सदर बाजार, देहली	५१)
श्री सूद एण्ड कम्पनी ,, देहली	५३।≡)
स० शामसिंहजी ,, खुडज	५०)
स० गुरुचरणसिंह डाक्टर ,, मण्डी डबवाली	५०)
ला० रामधनदास जी ,, ,, ,,	५०)
ला० मोहनलाल जी ,, ,, ,,	२५)
ला० लाहौरीराम जी ,, ,, ,,	१५)
स० हरनेलसिंह जी ,, माहूआना	५०)
स० नारायणसिंह जी गॉव बुडियाना	२५०)
स० दलसिंह जी ,, सिंघेवाला	३००)
स० श्रवणसिंह जी ,, सिंघेवाला	१००)
स० अर्जुनसिंह जी ,, सिंघेवाला	२५)
स० हरचन्दसिंह जी ,, मिठड़ी	१००)
स० जगन्नाथसिंह जी ,, तापखेड़ा	१००)
स० हमीरसिंह जी ,, टाबाओलख	५०)

आर्थिक सहयोग देने वाले जिन महानुभावों के फोटो हमे प्राप्त हो सके है उनके चित्र आगे दिये जा रहे हैं।

प्रकाशक—
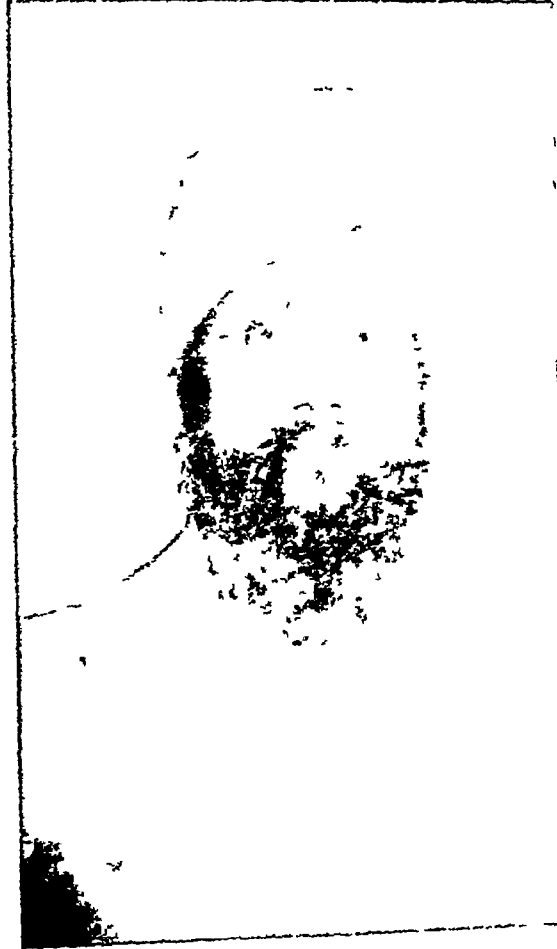
स्वर्गीय सरदार नन्द सिंह जी

मालिक व संस्थापक

पंजाबी प्रेस सदर बाजार देहली-6

स० करतारसिंहजी. गोविन्दगढ़
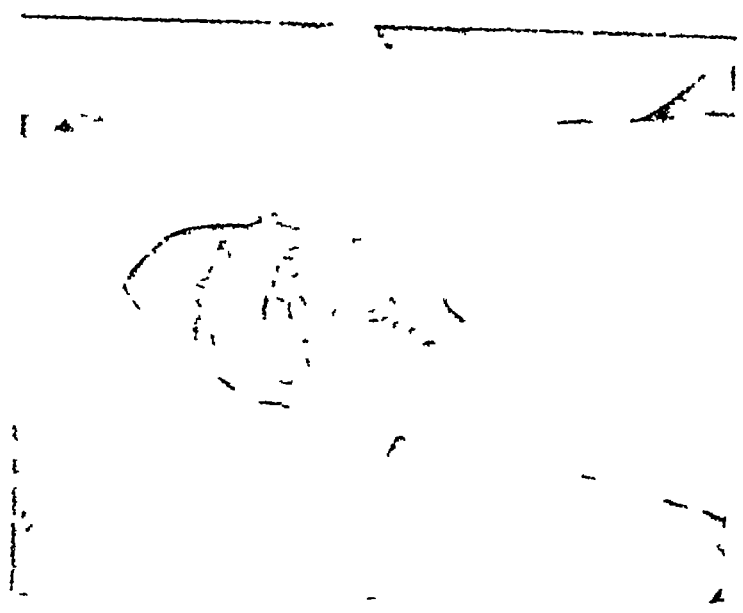
स० प्रताप सिंह जी सिद्धू, गोविन्दगढ़
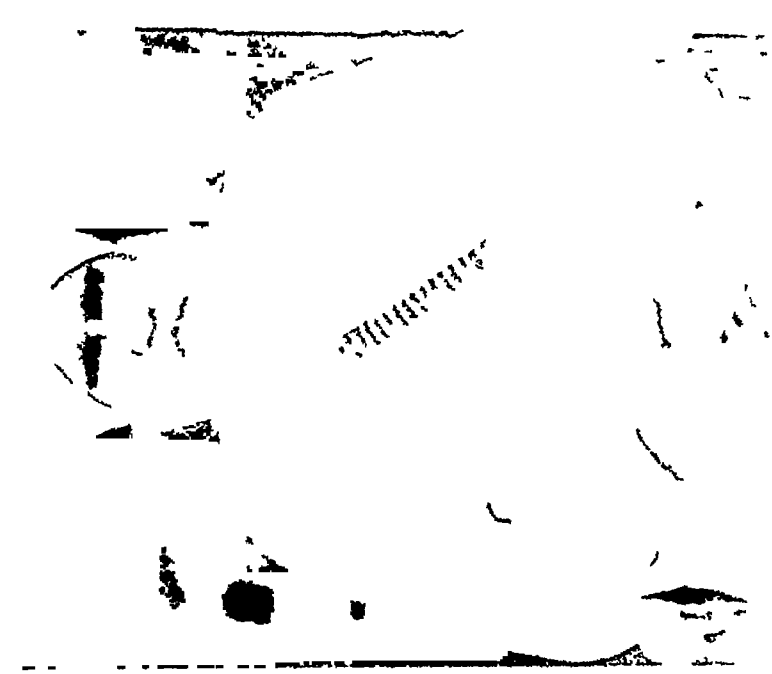
श्रीमती ईश्वर कौर व स० जोगिन्द्र सिह् जी भींडवाली

स० नारायण सिह् जी,अजीमगढ

स० विशन सिह् जी, अजीमगढ

स० बसन्त सिह् जी, अजीमगढ

सरदार रणजीतसिह टेकसिह जी, अबलखराना (फाजिलका)

सरदार करतारसिंह जी नम्बरदार, दानेवाला

स० दिलीप सिंह सिद्धू , रामपुरा केरुवाल।

महंत सुच्चासिंह जी, कोट भाई
मेम्बर शि० गु० प्र० कमेटी
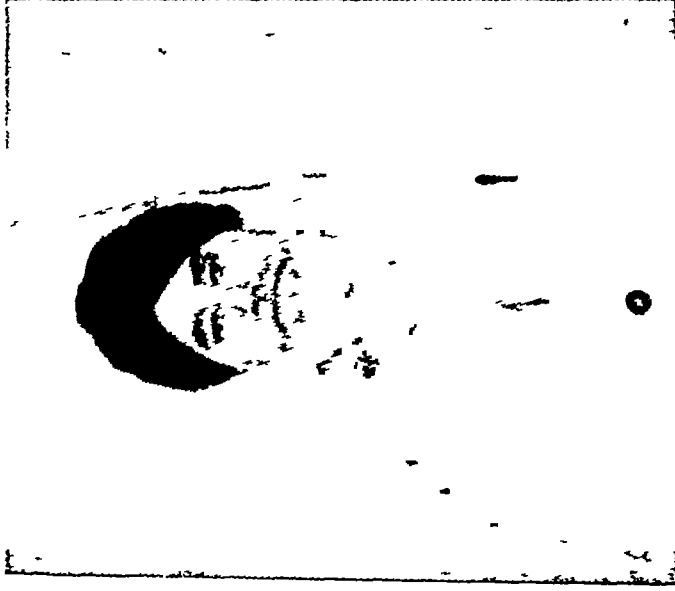
स० पूर्णसिह् जी एम-एल-ए, मदीर (फाजिल्का)
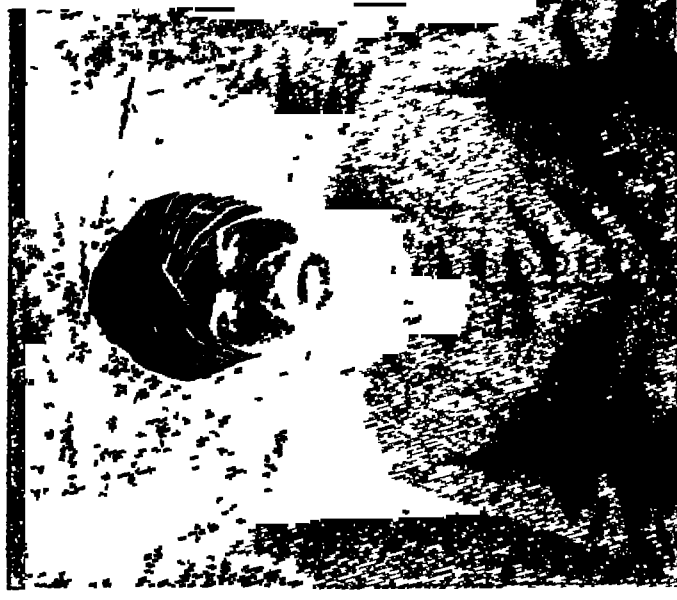
सरदार महेन्द्रसिह् जी, महेन्द्र नगर, (वल्ल॒)

स्वर्गीय सरदार बूटासिंह जी दानेवाला

सरदार निधानसिंह जी, वाम (फाजिलका)

स० लाल सिंह् जी, बांडीवाला

स० बचन सिंह् जी, बांडीवाला

स० नारायण सिंह जी, दानेवाला

स० ईश्वर सिह जी, गद्दोंडोब